श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपद-प्रतिष्ठित सारस्वतसार्वभौम,

पण्डितराज स्वामिश्रीभगवदाचार्य-महाराज-

संशोधितम्

श्रीजानकी-चरितामृतम्

(भाषाटीका-सहितम्)

रामस्नेहीदास (लता)

विरचितम्

प्रकाशिका

कु० गीता शर्मा

कार्तिकेय सेवा सदन; १९-पार्क रोड, (गुप्तारघाट) कैन्टोनमेन्ट, फैजाबाद-२२४००१

(म)हात्मा रामस्नेहिदास (लता) जी का संक्षिप्त परिचय

"मूकं करोति वाचालं" के [illegible] श्रीसीतारामचरण सरोरुहैकनिष्ठ, सरलवृत्ति, (प्र)स्तुत ग्रन्थ के लेखक एवं टीकाकार रामसनेही-[illegible](ल)ता) जी महाराज ने सन् १९१७ में उ[illegible] प्रदेशान्तर्गत श्री सीतापुर मण्डल में जन्म लिया।

आपकी लौकिक शिक्षा उर्दू के माध्यम से मिडिल तक हुई है। अध्यात्म परिसर में आपने गुरुत्रयी का अनुसरण किया।

(१) प्रथम गुरु श्री स्वामी श्री हरिनारायण-[illegible]जी महाराज थे। आपका निवास स्थान श्रीअयोध्या प्रमोदवनस्थित 'श्रीजानकीनिवास' था। श्रीलताजीमहाराज को सन् १९३३ की फाल्गुनी पूर्णिमा 'श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के जन्मदिन' पर नाममंत्रदीक्षा प्रदान की।

(२) द्वितीय गुरु श्री अयोध्याधामान्तर्गत श्रीजानकीघाटनिवासी वेदान्ती श्रीरामपदार्थ-दासजी महाराज थे, जिन्होंने श्रीयुगलसरकार के प्रति सम्बन्धभाव प्रदान किया।

(शेष आवरण पृष्ठ ३ पर)

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

श्रीजानकी-चरितामृतम्

(भाषाटीका-सहितम्)

रामस्नेहिदास "लता"

विरचितम्

प्रकाशिका

कु० गीता शर्मा

कार्तिकेय सेवा सदन; १६-पार्क रोड, (गुप्तारघाट) कैन्टोनमेन्ट, फैजाबाद-२२४००१

प्रकाशिका ▭

श्रीमती कमला अम्बाजी (प्रथम संस्करण)

कु० गीता शर्मा (द्वितीय संस्करण)

कार्तिकेय सेवा सदन

१६-पार्क रोड, कैन्टोनमेन्ट, (गुप्तारघाट) फैजाबाद-२२४००१

मुद्रक ▭

डॉ० अमल चन्द्र चटर्जी, एम० ए०, पी-एच० डी०

मैजेस्टिक प्रिंटिंग प्रेस,

सिविल लाइन्स, फैजाबाद-२२४००१

मूल्य ▭

1000/= मात्र (एक हजार मात्र)

प्रथम संस्करण संवत् - २०१४ (१९५७) – १०००

द्वितीय संशोधित संस्करण संवत् - २०४१ (१९८४) – १०००

प्रकाशन तिथि ▭

विवाह पञ्चमी संवत् २०४१ वि०

२७ नवंबर १९८४

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान ▭

१. कार्तिकेय सेवा सदन

१६-पार्क रोड, कैन्टोनमेन्ट, (गुप्तारघाट) फैजाबाद-२२४००१

२. सुलता पब्लिकेशन्स

मैजेस्टिक प्रिंटिंग प्रेस कम्पाउंड,

सिविल लाइन्स, फैजाबाद-२२४००१

३. कार्तिकेय हरिहर सत्संग सदन

५ - क्षीर सागर, उज्जैन (म० प्र०) ४५६००१
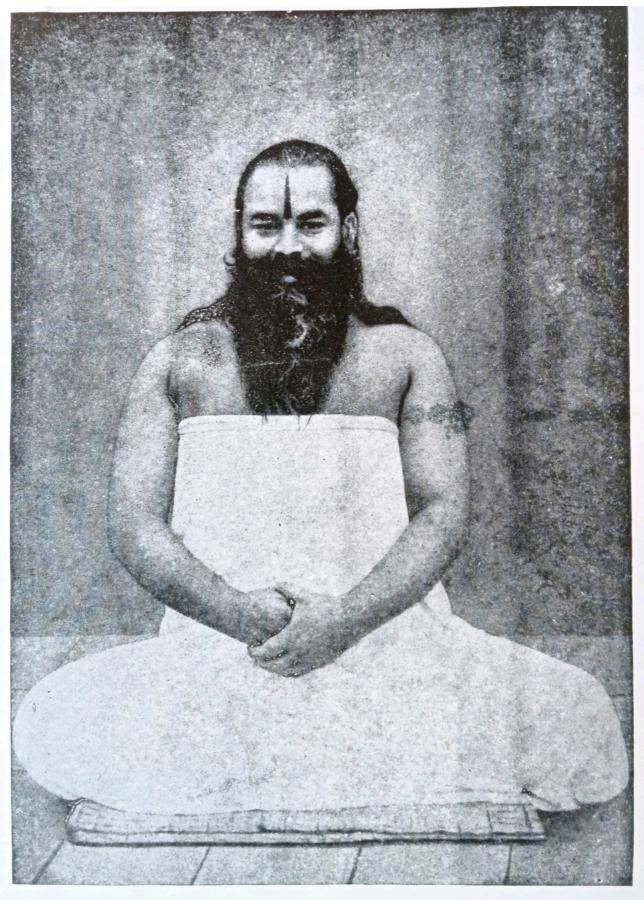
अनन्तश्रीविभूषित महर्षि श्रीकार्त्तिकेयजी महाराज

ममेष्टपूर्त्यैँ कमलाम्बयेदमव्यक्तरूपो हरिहृद्वसन्त्या ।
प्रकाशयित्वा चरितामृतं यः सद्गुचो ददौ तं गुरुमानतोऽस्मि ॥

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

प्राक्कथनम्

महामहोपाध्याय
श्रीमान् पण्डित
गोपीनाथ शर्मा
एम० ए०, डी० लिट्०
कविराज

२/ए सिगरा,
वाराणसी

११-१२-१९५७

जनकपुरवासिना श्रीमता रामस्नेहिदासेन विरचितं श्रीजानकीचरितामृताख्यमष्टोत्तर-शताध्यायसमृद्धं काव्यमंशतो मया क्वचित् क्वचिदवलोकितम्। अवलोक्य च महतीं प्रसन्नतामवाप्तं मे चेत:। कविरयं रचनाकुशल: त्यागविनयादिदिव्यगुणोपेत: भक्तिमान् लब्धभगवत्कृपश्च महता परिश्रमेण विपुलकायमपि प्रसादविमलं काव्यमिदं निर्माय स्वल्पेनैव कालेन मुद्राप्य च गुणदोष-विवेचकानां विदुषां पुरत:विमर्शनार्थं स्थापितवान्, गुणकपक्षपातिन: सन्त: विषयमाहात्म्यानुरोधेन हंसनयेन गुणानेवास्य गृह्णीयुः तद्द्वारा मोदं चाप्नुयुरिति। भक्तस्य स्वाभीष्टदेवताया: चरणेषु भक्त्युपहारनिवेदनात्मकमिदं, न तु काव्यमात्रमिति मन्यमानोऽहं तद्रूपेणैव महात्मन: श्लाधनीयं प्रयत्नमिममभिनन्दयामि। सर्वे भगवल्लीलारसिका: कोविदा इतरेऽपि तल्लीलाकथाशुश्रूषवो जना: भगवत्या: चरितचित्रणयाकलय्य मुदिता भविष्यन्तीति मे विश्वास:। काव्यमिदं प्रांजलमपि मूलकारकृत भाषानुवादसाहित्येन प्रकाशितमिति सामान्यत: भक्तसमाजस्य महान् उपकारोऽस्मात् स्यादिति तत्रैवास्य समुचित आदर: भूयान् प्रचारश्च भविष्यतीति संभाव्यते।

इत: परं ग्रंथकार: श्रीभगवल्लीलारहस्यमपि तत्त्वदृष्टया स्वसंप्रदायानुसारत: स्वानुभूतिबलेन यथाशक्ति वर्णयितुं दत्तचित्तो भविष्यतीति दृढमाशासे, प्रार्थये च श्रीभगवन्तमयं तत्कार्यनिर्वाहार्थं स्वस्थदेहेन चिरजीवी भूयादिति शुभम्।

गोपीनाथ शर्मा

॥ श्रीजानकी वल्लभो विजयते ॥
॥ श्रीमते युगलानन्य शरणाय नमः ॥

भूमिका

अखिलहेय प्रत्यनीक, अनवधिक, अतिशय, असंख्येय, कल्याणगुणगणार्णव, अचिन्त्य सौन्दर्य माधुर्य सुधासिन्धु श्रीभगवान् की प्राप्ति ही मानवमात्र का चरम लक्ष्य है। वेद कहता है कि "उस परमात्मा को पाकर ही मृत्युसे मानव पार हो सकता है दूसरा उपाय नहीं है।"

'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' वे प्रभु ही रसरूप हैं, उस रसको पाकर ही जीव पूर्ण आनन्द से युक्त हो सकता है।

'रसो वै सः रसं ह्ये वायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति! इत्यादि।

इस परम रस की प्राप्ति के लिए शास्त्रों में कर्म, ज्ञान, भक्ति ये तीन साधन कहे गये हैं श्रीमद्भागवत में स्वयं प्रभु ने कहा है कि मेरी प्राप्ति के लिए ये ही तीन मार्ग हैं अन्य उपाय मानव के लिये है ही नहीं। योगास्त्रयो मया-प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया। ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति देहिनाम्। इन तीनों में एकता होने पर भी आस्वाद्यभेद होने से एक की अपेक्षा एक उत्कृष्ट है अर्थात् कर्म से ज्ञान, ज्ञान से भक्ति उत्कृष्ट है।

मानव के पास तीन सामग्रियाँ प्रधान हैं शरीर, बुद्धि, हृदय। शरीर का भोजन कर्म है बुद्धि का भोजन ज्ञान है, किन्तु हृदय का भोजन भक्ति ही है।

श्रीरूप गोस्वामी भक्ति का लक्षण करते हैं—सभी अभिलाषाओं से रहित ज्ञान-कर्म के आवरणों से रहित, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भावों में से किसी एक अनुकूल भाव से भगवान् से प्रेम करना भक्ति है—"सर्वाभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकुल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुच्यने।"

भक्ति से विरुद्ध ज्ञान कर्म ही आवरक है भक्ति-सम्बन्धी ज्ञान कर्म उपयोगी है, ऐसा टीकाकार जीव गोस्वामी कहते हैं आरम्भ में तो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीनों ही साधक के पास रहते हैं किन्तु भजनरस की निष्पत्ति होने पर कर्म ज्ञान में लीन हो जाता है एवं ज्ञान भक्तिरस में विलीन हो जाता है। अन्त में तो बस, रस ही रस रह जाता है इसी लिए गोस्वामी पाद भी कहते हैं कि संयम नियम फूल है, ज्ञान फल है श्रीभगवत्पादारविन्द में रति ही रस है 'संयम नियम फूल-फल ज्ञाना। हरिपद रति रस वेद बखाना॥'

दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर भी अन्त में रस की सिद्धि में ही वेदान्त का पर्यवसान ज्ञात होता है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्' इत्यादि श्रुतियों से सत्-चित, आनन्द ब्रह्म का स्वरूप सर्वविदित है। सत् का विकास कर्मयोग से चिद् का विकास ज्ञानयोग से एवं आनन्द का विकास भक्तियोग से समझना चाहिए। सत् चिद् में चिद् आनन्द में समाविष्ट होता है।

आनन्द ब्रह्म के दो भेद हैं एक षडैश्वर्य प्रधान ब्रह्म तथा एक तिरोहित षडैश्वर्य, आह्लादमय प्रधान ब्रह्म प्रथम ब्रह्म श्रीराघवेन्द्र हैं आह्लादमय प्रधान ब्रह्म श्रीमैथिली हैं तथा सत् चित, आनन्द स्वरूप श्रीराघवेन्द्र हैं तथैव सन्धिनी, संवित, आह्लादिनी स्वरूप श्रीमैथिली हैं। सन्धिनी का संवित का आह्लादिनी में समावेश है। आह्लादिनी सार श्री तत्व

ही वृत्तिभेद से दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भेद से चेतनों के हृदय में अहैतुकी कृपा से प्रकाशित होकर ब्रह्म को आकृष्ट करता है।

चेतनों का स्वरूपतः अधिकार केवल चिद् राज्य में है अर्थात् कैवल्य मुक्ति में ही है, आनन्द में अधिकार आह्लादिनी श्रीमैथिली कृपा कटाक्ष से ही सम्भव है।

तत्वतः एक होने पर भी चमत्कार भेद से दास्य से सख्य, सख्य से वात्सल्य, वात्सल्य से मधुर रस उत्तरोत्तर उत्कृष्ट है।

मधुर रस का स्थायी भाव 'रति' है जो कि प्रौढ़ दशा में प्राप्त होने पर महाभाव दशा को प्राप्त हो जाती है। तब तो मुक्तगण एवं श्रेष्ठ भक्तगण भी इसकी चहना करते हैं प्राप्ति तो दुर्लभ है। रूप गोस्वामी कहते हैं।

इयमेव रतिः प्रौढा महाभाव दशां व्रजेत्। या मृग्या स्याद् विमुक्तानां भक्तानाञ्च वरीयसाम्॥

जिस प्रकार बीज से इक्षु (ऊख) दण्ड, क्रमशः रस, गुड़, खाँड, शर्करा, मिश्री, ओलाकन्द तक एक ही रस परिपाक भेद से इतनी अवस्थाएँ प्राप्त करता है, एवं तत्वतः एक होने पर भी स्वाद वैचित्री भेद से विभिन्न रूप से आस्वाद्य बनता है उसी प्रकार एक ही रति प्रेम, स्नेह, मान-प्रणय, राग, अनुराग, भाव आदि भेदों से अनेक अवस्थाओं को प्राप्त करती है। इनके अवान्तर भेद भी अनेक हैं। यथा :—

बीजमिक्षुः स च रसः स गुडः खण्ड एव सः। स शर्करा सिता सा स्यात्।
स्याद्दृढेयं रतिः प्रेमा प्रोद्यन्स्नेहः क्रमादयम्।
स्यान्मानः प्रणयो रागोऽनुरागो भाव इत्यपि॥

पुनः महाभाव ही रूढ़, अधिरूढ़, मोहन, मोदन आदि तरङ्गों से तरङ्गित मादन महासागर में जाकर अनन्त रस रूप हो जाता है, श्रीप्रियाप्रियतम का अनन्त विहार एक रस इसी मादनाख्य महाभाव में होता रहता है। स्थायी रति की चरम अवधि यही है।

साधारणी, समञ्जसा, समर्था, भेद से रति के और भी तीन भेद हैं क्रमशः मणि, चिन्तामणि, कौस्तुममणि के सदृश जानना चाहिए। भगवद्दर्शन जन्य संभोगेच्छानिदान रति साधारणी कही गई है लोकधर्मापेक्षिता, गुणादिश्रवणोत्पन्ना भेदित संभोगतृष्णा रति समञ्जसा कहलाती है कुलधर्मधैर्य लोक लज्जादि विस्मरण कराने में समर्थ रति को समर्था रति कहते हैं, यह 'रति' एक रस नित्य प्रेयसी में प्रकाशित रहती है।

श्री अवध श्रीलक्ष्मण किलाधीश स्वामी श्री युगलानन्य शरण जी महाराज ने तीनों रति समूह श्री प्रियाजू में स्वीकार किया है, यथा :—

इन सबको आधार नवल निर्णय निज सुनो सुहावन।
साधारणी रति कोउ असमंजस रती प्रभावन॥
कोउ दोऊ ते परे परारति सरस समर्था पावन।
युगलानन्य शरणन स्वामिनि सिय मध्य सकल छवि छावन॥

मादनाख्य महाभाव के लिए भी आपने श्री प्रियाजू में ही एक रसता स्वीकार किया है :—

मादन मन फन्दन अनुरञ्जन अञ्जन ने ही निरखो।
भाव कदम्ब जनक सब ही विधि महानेह निधि परखो॥
बामा वचन विलास वस्तु उर परस न लाज परेखो।
युगलानन्य शरन स्वामिनि सिय अन्तर भाव अशेषो॥

इस प्रकार रति से लेकर मादन पर्यन्त समस्त रस-स्तरों का रसास्वादन रसिक पाठकगण श्रीरूपगोस्वामी विरचित 'उज्वल नीलमणि' में तथा स्वामी श्री युगलानन्यशरण विरचित 'रसकान्ति' में करेंगे, प्रस्तुत प्रसङ्ग केवल संकेत

मात्र है। 'श्रीजानकी चरितामृतम्' एक महान ग्रन्थ है, जिसमें श्रीरामानन्द-दायिनी श्रीमैथिलीजू के मधुरमय चारु चरित्रों का वर्णन है। श्रीसीता तत्व का विशद विवेचन वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में समीचीन रूप से है। मूल केन्द्र तो मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद ही है—'अस्येशाना जगतः' 'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्' आदि मन्त्रों से विपुल वैभव का प्रतिपादन है।

रामतापनी श्रुति भी श्रीमैथिली को जगदानन्ददायिनी, सृष्टि स्थिति संहारकारिणी, बतलाती है, 'श्रीराम सान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी, उत्पत्ति स्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।

श्रुति कहती है 'स्वर्णवर्णा, द्विभुजवाली, सभी अलंकारों से युक्त, चिद्रूपिणी कमलधारिणी श्रीमैथिली के साथ श्रीप्रियालिङ्गनजन्य आनन्द से श्रीरसिकेन्द्र राघवेन्द्र सदा ही पुष्ट रहते हैं।

'हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया चिता। श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः (तापनी।)

श्रीपराशभट्ट कहते हैं—

उद्वाहुस्वामुपनिषदसावाह नैका नियन्त्रीं, श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे।
स्मर्तारोऽस्मज्जननि!यतमे सेतिहासैः पुराणैर्निन्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम्॥

अर्थात् केवल उपनिषद् ही शपथ पूर्वक आपको जगत् की नियन्त्री नहीं कहती है, किन्तु श्रीमद् रामायण भी आपके महान् चरित से उत्कृष्टपूर्वक जीवित है, हे मैथिलीजू! स्मृतिकार श्रीपराशर महर्षि प्रभृति भी इतिहास पुराणों, समस्त वेदों को आपकी महिमा में प्रमाण मानते हैं।

श्रीवाल्मीकीय-रामायण में महर्षि कहते हैं - समस्त श्रीरामायण काव्य श्रीसीताजी का महान् चरित है—'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।' श्रीराघवेन्द्र ने भ्राताओं से श्रीरामायण श्रवण के लिए आग्रह किया और ये मुनिवेषधारी, कुशलव जो चरित सुना रहे हैं, वह मेरे जीवन धारण का कारण है तथा महान् प्रभावों से युक्त है—

इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ। ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्ष्यते महानुभावं चरितं निबोधत।

श्रीरामजी धीरोदात्त नायक हैं जिसका लक्षण है कि अपनी प्रशंसा न सुनने वाला, न कहने वाला, यथा 'कृपावानविकत्थनः' अतः यदि रामचरित प्रधान रामायण होता तो धीरोदात्त नायक श्रीरामजी अपने गुणों के श्रवण के लिए ऐसा आग्रह नहीं करते न तो 'महानुभावं' विशेषण ही देते।

श्रीराघवेन्द्र की अपेक्षा श्रीमैथिली में अधिक करुणा है इसी से पराशर भट्ट ने कहा है कि — हे मातः मैथिली! ताजे अपराध करने वाली राक्षसियों को श्रीहनुमान्जी से रक्षा करके आपने श्रीराघवेन्द्र की सभा को लघु कर दिया क्योंकि जयन्त एवं विभीषण की रक्षा श्रीरामजीने 'मैं आपका हूँ' इतना कहने पर की और आपने बिना ही प्रार्थना के राक्षसियों की रक्षा की। अतः आपकी करुणा अहैतुकी है, वही हम सब आश्रितों के लिये एक मात्र आधार है—

मातर्मैथिलि ? राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया।
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता॥
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः।
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

हे मैथिलि! पिता के सदृश आपके प्रियतम चेतनों के हित की दृष्टि से अपराधों को देखकर कभी-कभी खीझकर रुष्ट होते हैं—तब आप उनकी कोपमुद्रा को देखकर पूछती हैं कि क्या बात है? क्यों इतना रुष्ट हैं? जब प्रभु उत्तर देते हैं कि अपराधी जीवों के अनाचार देखकर मैं रुष्ट हूँ, तब आप बहस करती हैं कि इस जगत् में अपराध रहित कौन है? इस प्रकार उचित उपायों से प्रभु को जीवों के अपराध विस्मरण करा देती हैं अतः आप हमारी माता हैं यथा—

पितेव त्वत्प्रेयान् जननि ! परिपूर्णागसि जने हितस्रोतो वृत्या भवति च कदाचित् कलुषधीः किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितैरुपायैर्विस्मार्य—स्वजनयसि माता तदसि नः ।

इस प्रकार श्रीमैथिली की कृपा से ही जीव परमानन्द प्राप्त कर सकता है श्रीमैथिली का पुरुषाकार वैभव श्रीरामायण में सर्वविदित है पाठक वहीं देखें ।

श्रीराघवेन्द्र की मधुर-उपासना में कुछ सज्जन सन्देह करते हैं किन्तु सन्देह का अवसर किञ्चित्-मात्र नहीं है प्रमाण परतन्त्र महानुभाव गम्भीरतापूर्वक वेदावतार श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण का अध्ययन, मनन करें ।

जब वेदवेद्य पुरुषोत्तम चक्रवर्ती कुमार रूप में अवतीर्ण हुए तब वेद भी श्रीरामायण रूप से अवतीर्ण हुआ ।

यथा—वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेद : प्राचेतसादासीत्साक्षाद् रामायणात्मना । वेदार्थ प्रकाशक रामायण को महर्षि ने कुशलव को पढ़ाया । 'वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः । सर्ववेदान्त वेद्य परात्परतत्त्व श्रीराम तत्व का ही आदि से अन्त तक रामायण में वर्णन है । जब कि वेद ही का अवतार श्रीरामायण है, तब सर्वरस शिरोमणि शृङ्गार रस का रामायण में वर्णन नहीं हो, ऐसी बात नहीं हो सकती । इतना अवश्य है कि जिस प्रकार श्रीकृष्णोपासना में विशेषतः गौड़ीय वैष्णवगण ने परकीया में रस स्वीकार किया है, श्रीरामोपासना में श्रीरामायण केवल स्वकीया के साथ ही श्रीराघवेन्द्र का विहार स्वीकार करती है ।

श्रीमैथिली के साथ श्रीमिथिला से उनकी अङ्गभूत सखियाँ भी साथ आई थीं ऐसा रामायण में वर्णन है, यथाः—

'अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु' पुनः अयोध्या काण्ड में मन्थरा श्री कैकेयी से कहती है कि श्री राम के राज्याभिषेक होने पर श्रीराम की परमा स्त्रियाँ प्रसन्न होंगी तथा—श्रीभरत की अवनति होने से तुम्हारी पतोहू-गण अप्रसन्न होंगी ।

"हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाःस्त्रियः । अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये ।।"

समुद्रतट पर श्री राघवेन्द्र अपनी भुजा को शिर के नीचे रख कर शयन कर रहे हैं, उसी समय महर्षि के हृदय में रस की बाढ़ आई और श्रीराघवेन्द्र के अन्तःपुर की मधुर स्मृति आ गई बस, सुन लीजिए । कहने लगे कि जो भुजा श्रेष्ठ केयूरहारों एवं मुक्ता आदि के बर विभूषणों से विभूषित परम नारियों की भुजाओं द्वारा अनेक बार अभिमृष्ट थीं अर्थात् रसक्रिया द्वारा अभिमर्दित थी, यथा—

"वर काञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः । भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ।।"

यहाँ परम नारियों की भुजायें अनेकों विभूषणों से विभूषित कही गई हैं ये परम नारियाँ भोग पत्नियाँ हैं । इसी तरह श्रीमैथिली ने भी सन्देश में कहा है कि 'पिता की आज्ञापालन करके वन से लौट कर विशाल नेत्र वाली नायिकाओं के साथ आप रमण करेंगे ।

पितुर्निदेशं नियमेन कृत्या वनान्निवृत्तश्चरितव्रतश्च ।
स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणाभिस्त्वं रंस्यसे वीतभयः कृतार्थः ।।

—वा० रा० सु० का०

उत्तरकाण्ड अशोक वाटिका विहार प्रसंग में तो अत्यन्त स्पष्ट है कि श्रीराघवेन्द्र ने मनोऽभिरामा रामाओं के साथ रमण किया ।

"मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः । रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः ।।"

इस प्रकार समस्त रामायण में मधुररस की अजस्रधारा बहती है कृपाभाजन जन तो सदा इस रस का पान कर सन्तृप्त रहते हैं । विशेष जिज्ञासा के लिए 'सुन्दर-मणि-सन्दर्भ, श्रीरामतत्व-प्रकाश' श्रीजानकीगीत आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये ।

'श्रीजानकी चरितामृतम्' के रचयिता महात्मा श्रीराम सनेहीदास जी हैं किन्तु महान् आश्चर्य का विषय है कि रचयिता न तो व्याकरण के ज्ञाता हैं न तो साहित्य, अलंकारों के ज्ञाता हैं, श्रीजनकपुर धाम में श्री राजकिशोरीजी के महल में आप नित्य सेवा में बड़ी श्रद्धा से संलग्न रहते थे, अब तक इनका जीवन सेवा में ही व्यतीत होता है श्री महल की सेवा से हृदव निर्मल हुआ तथा भाव रस ऐसा परिपूर्ण हुआ कि कविता सरिता बह चली जिसमें अवगाहन कर सहस्रों प्रेमीजन कृतार्थ होंगे, साधना भक्ति से सिद्धा भक्ति अर्थात् भाव भक्ति में प्रविष्ट होने पर नित्य लीला का विकास होने लगता है । स्वयं भगवान् कपिल ने माता देवहूति से कहा है कि—

'पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां बदन्ति ।।'

अर्थात् हे मातः ! वे सन्त मेरे अरुण नेत्र युक्त वरदायक प्रसन्न मुख कमल का दर्शन करते हैं तथा मेरे साथ बातें करते है । यहाँ ध्यान में बातें भी सन्त करते हैं यह कपिलजी का कथन है ।

अतः श्रीरामसनेहीदासजीकी इस रचनासे यह सिद्ध है कि श्रीजी की कृपासे यह अनुपम ग्रंथ का निर्माण हुआ है ।

क्योंकि केवल थोड़ी हिन्दी लिखने पढ़ने योग्य ये सन्त हैं, १०८ अध्यायों का इतना विशाल ग्रन्थ का निर्माण करना तो सर्वथा असम्भव है । इसीलिये तो श्रुति कहती है कि—

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम् ।।'

अर्थात् यह परमात्मा श्रवण, मनन निदिध्यासन एवं प्रवचन आदि से नहीं मिलता है किन्तु जिसको प्रभु स्वीकार कर लें उसी को प्राप्त होते हैं तथा उस उपासक के समक्ष अपना समग्र स्वरूप प्रकट कर देते हैं ।

वे पञ्चस्तवीकार कहते हैं कि न्याय आदि दर्शन, वेदार्थ प्रकाशक इतिहास, पुराण आदि द्वारा जो आपकी भक्ति से पुनीत हृदय वाले भक्त हैं उनको वेदों का अर्थ इतना स्पष्ट दीखता है जो दोपहरके सूर्य के प्रकाश में सभी घट पट आदि पदार्थों को लोग देखते हैं । जो लोग आपकी भक्ति से हीन हैं उनको षड्दर्शन एवं इतिहास पुराण आदि से भी यथार्थ बोध नहीं होता है क्योंकि जिनके नेत्र में दोष होता है उनको सूर्य के प्रकाश में भी शंख श्वेत नहीं दीखता है । यथा :—

न्यायस्मृतिप्रभृतिभिर्भवता निसृष्टैर्वेदोपबृंहणविधावुचितैरुपायैः ।
श्रुत्यर्थमर्थमिव भानुकरैर्विभेजुस्त्वद्भक्तिभावितविकल्मषशेमुषीकाः ।।
ये तु त्वदङ्घ्रिसरसीरुहभक्तिहीनास्तेषाममीभिरपि नैव यथार्थबोधः ।
पित्तघ्नमञ्जनमनायुषि जातु नेत्रे नैव प्रभाभिरपि शङ्खसितत्व शुद्धिः ।।

स्वामी रामानुजाचार्य ने भी अपने श्रीभाष्य में कहा है कि जो लोग भक्ति से विमुख हैं तथा तरह-तरह के कुतर्क द्वारा अनन्त कल्याण गुण प्रभु को गुणहीन, एवं विग्रहहीन बतलाते हैं उनका मत आदर के योग्य नहीं है ।

'तदिदमौपनिषद परमपुरुष वरणीयताहेतुगुणविशेषबिरहिणामनादिपापवासनादूषिताशेषशेमुषींकाणाम्········ याथात्म्यविद्भिरनादरणीयम्' (श्रीभाष्य)।

श्रीसीताराम जी का चरित अनन्त है 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्' अतः कोई भी विवेकी भगवच्चरित्र के विषय में ऐसा संशय नहीं कर सकता है कि अमुक चरित में क्या प्रमाण है ! 'नाना भाँति राम अवतारा। रामायण शत कोटि अपारा ।। स्थूल विचारसे देखने पर भी यह प्रतीत होता है कि श्रीसीतारामजीने ११हजार वर्ष तक इस लीला-भूमि में विराजमान होकर महामधुर लीलायें की। तो क्या ? श्री वाल्मीकीय रामायण आदि २०–२५ रामायणों में जो वर्णित चरित हैं उतना ही चरित सरकारने किया? श्रीरामचरितमानस में अथवा वाल्मीकीय रामायण में केवल संकेत मात्र है, भक्तगण ध्यान से विशेष चरितों का दर्शन करें, प्रस्तुत ग्रंथ में केवल उन्हीं श्रृङ्गारिक भावों का बर्णन है ! जो सर्वथा अलौकिक एवं दिव्यधाम की लीलाओंसे ही सम्बन्ध रखते हैं !! अतएव उनमें हम मनुष्यों के लिये परमावश्यक मानव धर्म शास्त्रों के आनुकूल्य प्रातिकूल्य के अनुसंधानों की बात नहीं उठनी चाहिये !!! वे घटनायें भवाटवी में भटकनेवाले दुर्बल बुद्धि वालों के लिये ग्रन्थ में समाविष्ट नहीं हैं, किन्तु सांसारिक मिथ्यात्व की सर्वावस्था में सुदृढ़ संस्कार वाले रामलीला वर्णन कुशल भगवद्भक्ति रसामृत सिन्धु स्वान्त शुकादि वीतराग सन्त शिरोमणियों के ही मनन योग्य हैं !

फिर भी मास-नवाह्लादि पारायण परायण सर्वसाधारण श्रद्धालु भक्तवृन्दों की बुद्धि, कुतर्कादि का शिकार न हो जाय एतदर्थ २१ अध्याय से २२ अध्याय तक 'जीवा-श्रुति-कृपा' आदि सखियों की रूपकपूर्ण लीलाओं का वर्णन किया गया है, जिसमें स्पष्ट है कि 'विरजा' के दक्षिण तट जो भवाटवीमय है उसमें ईश्वरांश जीव की दुर्दशा अवश्यम्भावी है, अतः सेवासक्त योगीन्द्रजन दूरङ्गता सखियां इधर भूल कर भी नहीं आती हैं ! हां उपास्यदेव की उपासना प्रसङ्ग से उन योगीश्वरियों की दृष्टि में अगम्यता अकर्त्तव्यतादि पाश का निःसन्देह ही कोई मूल्याङ्कन नहीं है !

इत्यादि अर्थ को समझाते हुये 'श्री कनकभवनीय लीलाओं' का प्रकृत ग्रन्थ में वर्णन है।

भवाटवी के गृहकूप में आयुर्बल रूपी तृणपुञ्ज के सहारे त्रिविध कर्मरूपी विशाल पर्वताक्रान्त कामक्रोधादि हिंस्रजन्तु तस्करादि त्रासपूर्ण रोगशोक चिन्ताद्याकुला 'जीवा-सखी' के परित्राणार्थ आचार्यरूपा 'कृपा-सखी' से प्रेरित श्रुतिवाक्यरूपा 'श्रुतिरूपा सखी' के द्वारा 'ज्ञान, कर्म्म, उपासना' रूपक त्रिविध राजमार्ग एवं उसकी नानाशाखा प्रशाखाओं के संकेत आदि दिखाकर अन्त में उद्धार का प्रसङ्ग अत्यन्त गम्भीर मननीय है जिसका अधिक वर्णन 'भूमिका' में समुचित नहीं, इसके लिए ग्रन्थ ही श्री जनकराज किशोरी जी की अकारण करुणा से संसार-तापाकुल प्राणियों के कल्याण और भक्तों के स्वान्त सुख के लिये सामने आ चुका ही है।

श्रीराम युधिष्ठिरादि सदृश सन्तति रत्नों के उत्पादन द्वारा विश्व कल्याण के लिए अत्यावश्यक और पातिव्रत्य सतीत्व युत मातृत्व उसकी शिक्षा अपने आदर्श चरित्र से मातृ (नारी) जाति को देने के लिये मीमांसा कर्मकाण्डमय-रजःकणाकुला मिथिल मही से समुत्तीर्ण करुणावरुणालया जगन्माता सीता के मर्यादापूर्ण चरित्र से ही तो सम्पूर्ण काव्य भरा पड़ा है।

प्रधानतया उनके पतितपावनत्व, करुणामयत्व आदि गुण भी अनेक प्रसङ्ग से चरित्र में दिखलाये गये हैं।

'मिथिला भूमि', 'कमला नदी आदि के स्तोत्र 'श्रीजानकी सहस्र नाम' 'विश्वनाट्य-लीला' 'वरदान से पहले ही श्रीपार्वती (गिरिजा) जी द्वारा जानकी स्तुति, लक्ष्मण परशुराम का वीर रस संवाद' 'सनकादिकों का मनोरथ, स्तुति, उच्छिष्ट प्रार्थना', 'अयोध्या यात्रा के अवसर पर चरित नायिका को पातिव्रत्य की शिक्षा' आदि प्रसङ्ग में श्रौतस्मार्त्तमर्यादा के सार्वान्शिक संरक्षणपूर्वक जो सरस वर्णन करके कविने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है उसके चित्रणके लिये ग्रन्थ ही लिख डालने की आवश्यकता प्रतीत होती है भूमिका में तो मैं पाठकों के सामने इतनी ही चर्चा करके विश्राम करना आवश्यक समझता हूँ ! सिता (मिसरी) के माधुर्य ज्ञान के लिये उसका आस्वाद ही आवश्यक है इसी तरह इस काव्य रसास्वाद के लिये काव्यावगाहन को ही आवश्यक समझ कर पाठकों से ग्रन्थावगाहन की प्रार्थना करते हैं।

इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य

जागतिक सम्बन्ध को वन्धनकारक और नित्य (परात्पर ब्रह्म श्रीसीतारामजी के) सम्बन्ध को मोक्षप्रद बतलाकर उनकी विविध प्रकार की लोकोत्तरीय (श्रीसाकेतधामीय) अति सरस-लीलाओं के पुनः पुनः वर्णन के द्वारा मुमुक्षु साधकों को लौकिक तुच्छ, क्षणभंगुर, अहितकर, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्धादि की विषयासक्ति से हटाकर श्रीयुगल रूप में तन्मयता प्रदान करना तथा विविध प्रकार के चरितों के द्वारा श्रीजनकराजकिशोरीजू के अनुपम दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, औदार्य तथा अचिन्त्य शक्ति, ऐश्वर्य एवं अद्भुत भक्ताशेषभावपूरकत्वादि गुणों की पराकाष्ठा का वर्णन करके, समस्त प्राणियों को उनके श्रीचरण कमलों में लगाना है। अतः—

'राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी॥'

इस ग्रन्थ में चार संवाद हैं—याज्ञवल्क्य-कात्यायनी, सूत-शौनक, शिव-पार्वती, स्नेहपरा-श्रीरामजी। श्रीराजकिशोरीजी के जन्म से विवाह पर्यन्त लीलाओं का विशद वर्णन है। १०८ अध्यायों में यह ग्रन्थ विस्तृत है। अन्तिम अध्याय में विषय-सूची भी है। श्रीमैथिलीजू के मधुर चरित के रसास्वादन करने वाले पाठकगण को यदि इस लेख से कुछ भी सन्तोष हुआ तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

आचार्य पीठ श्रीलक्ष्मण किला
श्रीअयोध्याधाम

भक्तानामनुचरः
पं० सीतारामशरण व्यास

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

अस्मिन् ग्रन्थे पूज्यपादानां विदुषां सम्मतयः

(श्री १००८ जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य्य-काशीपीठाधीश-स्वामी श्रीदेवनायकाचार्य्यवर्य्य की सम्मति)

"श्रीजानकी-चरितामृतम्" नाम प्रसाद गुणयुतं भक्तिरसाप्लुतं भव्यं नव्यं काव्यं स्थाली-पुलाक न्यायेन कतिपयस्थलेष्वन्वभावि ।

काव्यस्यास्य रचियिता जनकपुरधामनिवासी महात्मा श्रीरामस्नेहिदास महाभागः । शास्त्रा-भ्यसनाव्यसनिनाऽपि महात्मनोपासनासामर्थ्येन काव्यमेतद्व्यरचीति श्रुतम् ।

परस्मिन्नेव श्रीजानकीविवाह पञ्चमी दिवसे प्रकाशनव्रतमादाय स्थिता महात्मान इति सद्योऽद्यैवाभिप्रायलिपिर्देयेत्यनुरोधमनुसृत्य किञ्चिदुपन्यस्यते ।

मन्ये काव्यस्यास्य प्रेमभावाभिज्ञाने सम्यगुपयोगः स्यात् । भगवत्याः श्रीमज्जनकनन्दिन्या अनुपमवभवैप्रकाशनमनेन सम्पाद्यते ।

सूतोक्तित आरभ्य श्रीकात्यायनीयाज्ञवल्क्यसंवादरूपेण वर्णनमुपक्रान्तं, मध्ये बहुविधसंबाद घटितम्, अष्टोत्तरशता (१०८) ध्यायैः समापितम् ।

प्रमाणतन्त्राणां शिष्टानां काव्यमूलान्वेषणपरा सहजा मनोवृत्तिरिहापि नूनमुदेष्यतीति तत्र स्पष्टमनुक्त्वा मुधा तेषां क्लेशहेतवो मा भूम इति तद्विषये स्फुटं ब्रूमो यत्-आंशिकप्रमाणदर्शनेऽपि प्रकृतकाव्यस्य सर्वांशे मूलभूतं किमपि स्मृतीतिहासपुराणादिकं प्रामाणिकसम्तंकेनापि नोपन्यस्तम् ।

अथाप्यस्मिन् श्रीसीतारामगुणग्रामवर्णनसम्बन्धः, रुच्युत्पादिनी वर्णनसरणिरित्येवमादयो गुणाः श्लाघनीयाः सन्ति ।

एतस्य परिशीलनेन श्रीसीतारामचरणसरोरुहभक्तयङ्कुरं चेतनानां मनस्युदियादिति मङ्गल-माशास्महे ।

विशेषत एतावद्विशालग्रन्थ सम्पादनैकाग्रतां शास्त्राभ्यासमन्तरापि भगवच्चरणावलम्बनबल-लभ्यरचनापाटवञ्च महात्मनामभिनन्दामः ।

विदुषामन्तरङ्गपरीक्षायां के के गुणा दोषा वा तैरनुभविष्यन्त इति त एवतत्र प्रमाणम् ।

मार्ग शुक्ल ४ सो० २०१४
२५।११।५७
'राजमन्दिर-वाराणसी'

देवनायक आचार्यः

श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।।

न्याय, वेदान्त, मीमांसा, व्याकरणाचार्य वैष्णवकुलभूषण पूज्यपाद १०८ श्रीवेदान्तीजी महाराज, श्रीअयोध्याजीकी सम्मति

अखिल ब्रह्माण्डाधिष्ठात्र्याः जगदुद्भवादिकर्त्र्याः आदिशक्त्याः श्रीसीतायाः मधुरातिमधुर-लीलां प्रकाशयितुं श्रीकिशोरीजू कृपावलम्बिना श्रीरामसनेहीदासेन कृतः परिश्रमोऽतीव प्रशस्तः— ग्रन्थेन 'श्रीजानकी-चरितामृतेन' गुप्तप्रकटलीलाविधानं सुगमेन परिज्ञातं भविष्यतीति निश्चिनुमः— इतिहास पुराणोपनिषदादीनां सारं समुद्धृत्य तथा भावुकानां भावं संकलय्य अधुना महती आवश्यकता प्रपूरिता ग्रन्थप्रकाशनेन, सम्भाव्यते यत् अयं ग्रन्थः भावुकानामामोदाय चिरं स्थास्यति।

आशास्महे, वयं वेदान्तिनः—

श्रीजानकीघट्टनिवासिनः

२८-११-५७

रामपदार्थदासाः ।

श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।।

अनेकशास्त्रविशेषज्ञ-प्रकृष्टोपदेशक-परमशान्त-लोकप्रिय- पं० श्री १०८ अखिलेश्वरदासजी महाराजकी सम्मति

श्रीजनकपुरधाम निवासिना श्रीरामसनेहिदासेन प्रकाशतां नीतम्, इदं 'श्रीजानकी-चरितामृतम्' श्रीसीतारामतत्त्वजिज्ञासूनां कृते महदुपकारकं भविष्यतीति निश्चितम्, यत्रोऽत्र काव्ये जगदुदग-पालनादिवैभववत्याः श्रीमत्याः श्रीजनकजायाश्चरित्रमन्यत्र विशदतयानुपलभ्यमानं वैशद्येन काव्यनिर्मात्रा वर्णितम् । श्रीसीतायाश्चरित्रं यद्वाल्मीकीयरामायणादिषु ऐतिह्यादि प्रमाणैश्च परोक्षभाषया वर्णितं तदेवात्रापरोक्षतयाऽदर्शि, ततश्च समेषां समाधिकाल्पबुद्धीनां कृते महदुपकारः कृत इति मन्ये एवमस्य काव्यस्य भाषाऽपि सुष्ठुतरा वर्तते भाषाटीकापि मूललेखकेनेव कृता, महत्काव्यमिदं भूयात्सर्वेषां शुभकृत्सदा ।

इत्यहमाशासे,

पं० अखिलेश्वरदासः

श्रीरामकुञ्ज-रामघाट, अयोध्या ।

न्याय वेदान्त मीमांसाचार्य वेदान्ती स्वामी श्रीरामपदार्थदासजी महाराज,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी।
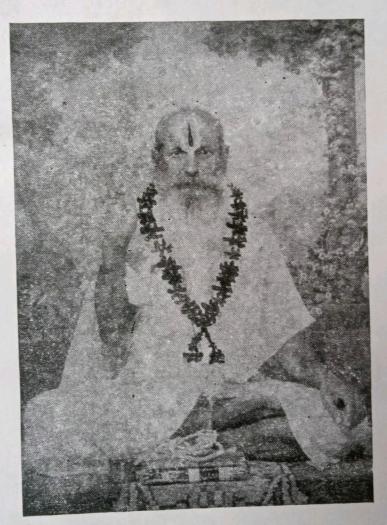
यद्वक्त्रादुपवासिनाऽथ कटुवाक्केनापि नाकर्णिता
सर्वेषामनुकार्यचारुचरितं तं पूज्यपूज्योत्तमम् ।
वेदान्तीत्यभिधानविश्रुतिगतं लोके पवित्रस्मृतिं
श्रीमद्रामपदार्थदासमनिशं वन्दे हृदा सद्गुरुम् ॥

श्री १००८ परिव्राजकाचार्य स्वामि श्रीकरपात्रीजी महाराज की सम्मति

श्रीजानकी पराम्बा विजयते

भजनानन्दमनोहरमसृणमतिना महात्मना श्रीरामसनेहिदासमहाशयेन संदृब्धं श्रीजानकी-चरितामृतं नाम कमनीयं काव्यमिदं दक्षिणानिलसञ्चार इव कस्य मनो न प्रसादयेद्, वसन्त-श्रीसौरभमिव कं सहृदयहृदयं नावर्जयेत् कस्मिन् वा रसास्वादधुरामारूढे शान्ते स्वान्ते सिन्धाविव शरद्राकासुधांशुमरीचिनिचयः परमाह्लादतरङ्गभङ्गान् नोद्वेलयेत् ।

पराशक्तिवरिवस्यासाक्षात्कृत लीलाकल्लोलसमुत्तुन्दिलेऽष्टाशताध्यायीपरिकलिते निर्मलचित्-सुधासरोवरेऽस्मिन् महाकाव्ये क्व मधुरा लीलाविस्तराः क्व प्रमाणसोपानपरम्परोपढौकनं, क्व पराम्बाविलासरसास्वादपारवश्यं क्व काटवपाटवोद्‌घाटनं परीक्षणविलसितानाम् ।

अत्र मधुराः सरसाः सहृदयहारिण्यो रुचिराः पेशलाः समास्वाद्यन्तां परेशयोर्लीलाः, समा-साद्यन्तां समग्राः पुरुषार्थाः, चरितार्थ्यन्तां वर्णाश्रमानुहारीणि रमणीयानि जन्मप्रभृतीनि साधनानि ।

काव्यमिदं चित्सुधानन्दमहोदधेः पूर्णतमपरब्रह्मणः श्रीराघवेन्द्रश्रीरामचन्द्रस्य माधुर्य्यपरमाह्लाद सारसर्वस्वस्वरूपायाः श्रीसीतादेव्या महाशक्तेश्चरितामृतानन्दमहोदधिं भक्त्युद्रेकाध्यक्षीकृतार्थसार्थं सादरभरं निभाल्य भक्तजनेष्वस्य दैनन्दिनीं विसृमरतां स्थास्नुतां च यावद्भगवतः श्रीमन्नाराय-णस्य सकौस्तुभवक्षोदर्शनं स्पृहयति ।

श्री १००८ मतां परमहंसपरिब्राजकाचार्यवर्याणाम्, पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणानाम् श्रीकरपात्रि स्वामिनामभिप्रायावेदकः ।

मार्कण्डेयः
धर्मसंघ-शिक्षामण्डलम्
उपदुर्गाकुण्डम् वाराणसी–६

अधिक श्रावण कृष्ण १२
सं० २०१५

श्री १०८ दार्शनिक सार्वभौम श्रीस्वामि वासुदेवाचार्यजो महाराज की सम्मति

श्रीरामो जयति

सत्काव्यापेक्षितगुणालङ्कारादिभिरलंकृतं श्रीजानकी-चरितामृताभिधं महाकाव्यं श्रमक्रमाभ्यां व्याकरणसाहित्यछन्दोग्रन्थादिकमनधीत्यापि चिरपरिचितेन श्रीरामस्नेहिदासमहोदयेन विरचित-मवलोक्य तपः प्रभावात् कस्याश्चिद्देवताया आकस्मिककृपाकटाक्षाद्वा सर्वमेतत् सम्भवतीति वृतमिदं, रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः। यच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यतीत्यादि-वचनराशिं सत्यापयति। अवस्थायामस्यां प्रामाण्याप्रामाण्यादितर्ककर्कशविचारचातुर्य्यं परित्यज्यै-वैतत्काव्यरसास्वादान्मनसः प्रसादोऽवश्यं भविष्यतीति निवेदयतोऽध्ययोध्यं दार्शनिकाश्रमे निवसतो वासुदेवाचार्य्यस्य सम्मतिः।

दार्शनिकाश्रम
अयोध्या

श्रीजानकीनाथ शर्मा सम्पादक–कल्याण "कल्याण प्रेस" गोरखपुर की सम्मति

श्रीजानकीचरितामृतम् की एक प्रति यहाँ यथा समय पहुँच गयी थी। श्रीभाई जी, श्री गोस्वामीजी तथा अन्यान्य सभी सम्पादक बन्धुओं ने उसे ध्यान से देखा है। रचना बड़ी प्रौढ़, प्राञ्जल तथा प्राचीन सी लगती है।

जिन लोगों ने इस ग्रन्थ को प्रकाशमें लाने की दया की, वे सब भी बधाई के पात्र हैं। ग्रन्थ नितान्त उत्तम है। इसके विषय में जो कुछ लिखा जाय, थोड़ा ही होगा। विशेष भगवत् कृपा।

जानकी नाथ शर्मा
सं० क०
कल्याण प्रेस, गोरखपुर

❊ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❊

विद्वन्मूर्द्धन्य, वेदान्त - भक्तिरसानन्दित - सकलश्रोतृसमाज, विगतपाण्डित्याभिमान सरलस्वभाव परमसुहृद, सस्मित-मृदुभाषी अनन्त श्री स्वामि अखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज की सम्मति :-

श्रीवृन्दावनधाम

अक्षय तृतीया,
२०४२ वि०

'भगवान के नाम का जप, ध्यान, स्मरण, शरणागति, विश्वास सब कुछ कर सकता है। सम्भवको असम्भव असम्भवको सम्भव। श्रीरामस्नेही दासजीके जीवन क्रम में कुछ ऐसा ही चमत्कार हुआ है।

संस्कृत भाषा का अध्ययन न करने पर भी इनके द्वारा जो यह कवित्वमय वाग्विस्तार प्रकाश में आया है वह एक अलौकिक घटना है।

भगवदनुग्रह क्या नहीं कर सकता है? इस रमणीयार्थ प्रतिपादक रसात्मक ग्रन्थ में श्रीजानकीजी के समग्र चरित्रका प्राकट्य हुआ है।

वातसल्य सख्य मधुर एवं दास्य रसकी सम्पूर्ण आभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः श्रीसीतामाताका पावन प्रेममय चरित्र सब रसों का निधान है। वेदों से लेकर साधारण काव्यों तक में इस चरित्र रसका संगोत अपनी स्वर लहरी से जगतको विमुग्ध कर रहा है। परम वातसल्यमयी मधुर रसनिधि जगन्माता श्रीसीताजी इसके द्वारा प्रसन्न हों, लोग इस रसमय संस्कृत वाङ्मय काव्य का रसास्वादन करें और श्रीसीतारामचन्द्रके चरणों में लोगों की प्रीति बढ़े यह मेरी शुभ कामना है।"

अखण्डानन्द सरस्वती

—❊❊❊—

※ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ※

अनेक ग्रन्थों के सिद्ध टीकाकार, परम अमानी, परम सरस-हृदय, युगल-कृपाभाजन, स्वामि श्रीसनातनदेवजी महाराज की सम्मति :-

श्रीरामबाग फिरोजपुरछावनी
दिनांक १८-३-८५

आदरणीय, श्रीलताजी,

सप्रेम जय श्रीसीतारामजी की। आपने श्रीजानकी-चरितामृतम् के विषय में मेरी सम्मति मांगी सो मैं तो संस्कृत का विशेष विद्वान नहीं हूँ। गतवर्ष मैंने इसे आद्योपान्त पढ़ा था। मुझे तो यह रचना बड़ी अद्भुत जान पड़ी। मुझे यद्यपि काव्य के गुण दोषों का कोई ज्ञान नहीं है और स्वभाव से भी बड़ा नीरस हूँ तथापि उसमें रस का अविरल प्रवाह जान पड़ा। बड़ी ही उदात्त, प्राञ्जल और विशद रचना है कई जगह देखा कि जहाँ कोई स्तुति या गुणानुवाद का प्रसंग आया है वहाँ सौ-सौ श्लोक लिखे गये हैं। इससे आपके हृदय की भावभक्ति का परिचय मिलता है मुझे तो ऐसा लगा कि यह प्रासादिक ग्रन्थ आपके हृदय में बैठकर स्वयं श्रीकिशोरीजी ने लिखवाया है।

शेष भगवत्कृपा।

आपका अपना
सनातन देव

—※※※—

※ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ※

लक्ष्मीपुर पी. एन. एम. संस्कृत महाविद्यालयीय प्राचार्य्य पं० श्रीमुनीन्द्रझा महानुभावकी सम्मति

१—खड़का ग्रामनिवासी तनयो झोपाख्य सुन्दरस्याहम् ।
लक्ष्मीपुरस्य दैवी-भाषाविद्यालये महति ।
२—प्राचार्यो विनियुक्तो मुनीन्द्रशर्म्माऽवलोक्य सत्काव्यम् ।
रामस्नेहि-विरचितम् प्रसादि-परमप्रसन्नधीरस्मि ।
३—श्रीजानकी-चरित्रामृतं निपीयान्तरात्मना नूनम् ।
धीमन्तोऽमृतमीयुः सन्तः स्वान्तः सुखायैव ।

पं० श्रीमुनीन्द्र (झा) शर्मा प्राचार्य्यः
लक्ष्मीपुर पी. एन. एम. महाविद्यालय-बाँसी,
पो० बाँसी, भागलपुर ।

※ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ※

शाब्दिकालङ्कारिक-प्रवर-कविवर-जनकपुरास्थराजकीय-संस्कृत-महाविद्यालय, साहित्य-प्राध्यापक-पं० श्रीजीवनाथझा शर्मणां सम्मतिः

सीतारामसेवनासादितसाधुशेमुषीचण,-सद्भावसार्थकीकृतसकलक्षण,-वैष्णवकुलावतंस,-परमहंस निर्वेदव्यपगतविलास,-श्रीरामस्नेहिदासविरचितं जगज्जननी जानकी बालचरित-चितं भविक-भक्ति भावभृतं 'श्रीजानकी-चरितामृतं' निरीक्ष्य परीक्ष्य च स्थालीपुलाकन्यायं निर्मायं समासाद्य प्रसाद्य-मान-मानसतया महत्तराकारतया तूर्णं परिपूर्णं नितरां प्रसीदामितराम्, इति सप्रीति बदति ।

जनकपुरतः
सं० २०१४ गोपाष्टम्याम्

मैथिलीचरणसेवनकर्मा,
जीवनाथ झा शर्मा

✻ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ✻

उत्तरप्रदेश 'देवरिया' मन्डलान्तर्गत 'घूँआटीकर' ग्रामनिवासि-काशी स्थार्जुनदर्शनानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय पदार्थविज्ञान-प्राध्यापक पं० श्रीगोमतीप्रसाद मिश्र व्याकरण-विशिष्टाचार्य-न्यायसाहित्यशास्त्रि बी. आई. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य्य महोदयानां-सम्मतिः

आसीदिदं भारतवर्ष लोकगुरुस्तत्रायमेव विशेष आसीद्यदार्यावर्त्तनिवासिनोऽलोलुपाः कुम्भी धान्याः षडङ्गवेदज्ञानरता उभयलोकतत्त्वज्ञानवन्तः कृतब्रह्मसाक्षात्कारा लोकोपकाररता ब्राह्मणा आसन्, तस्मिन् काले व्यास-बाल्मीकि-कालिदास-प्रभृतिभी रामादिवत्प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवदिति लोकोपकारदृष्टया स्वान्तःसुखाय चानेके महाकाव्यग्रन्थाः सुलिख्यामरत्वङ्गताः ।

इदानीमुदरम्भरित्वाकुले कलिकाले कस्यचिदपि महाकाव्यस्य रचना कीदृशी दुरूहेति सुस्पष्टमेवास्ति ।

त्यागमूर्त्तिना निवृत्ततर्षेण श्रीरामस्नेहिदासमहोदयेन श्रुतिसुखदं मनोहारि भक्तिपूर्णमुभय-लोकसुखजनकं स्वर्गसोपानभूतं 'श्रीजानकीचरितामृत' नामकं महाकाव्यं बिलिख्य लोकस्य सुमहानुपकारः कृतः ।

मन्ये, सर्वान्तर्वासिन्या पराशक्तेर्जगज्जनन्या मिथिलामहीप्रसूताया ईदृशं शोभनं वर्णनमन्यत्र न क्वापि सुलभम् ।

किञ्च-विश्वकल्याणमातृभूमिसेवाभावनाप्रचारप्रसारमये वर्तमानसमये रामयुधिष्ठिरादितुल्य-सन्ततिरत्नोत्पादनद्वारा विश्वकल्याणसम्पादननिदानं यत् पातिव्रत्यसतीत्वयुतमातृत्वं तस्यानुपम-त्यागतपस्यापूर्णश्रुतिसम्मतस्वाचारैर्नारीः शिक्षयितुमवतीर्णाया रामाभिन्नाया भगवत्या जगन्मातु-र्मैथिल्या अपि मातृभूमितया विश्वेषां प्राणिनां मातृभूमिभूतायाः, सेवकानां स्मारकानाञ्च पुरुषार्थचतुष्टयसम्पादिकाया जनक-याज्ञवल्क्यादि-जीवन्मुक्तजनप्रसविन्याः सर्वर्त्तुसुखावहायाः रत्नगर्भाया मिथिलाऽवनेः सरस सरल-ललितभाषया सुविशदवर्णनञ्चैतद्ग्रन्थरत्नस्य विश्वोप-कृतिसम्पादकं सुमहद्वैशिष्टय सम्पन्नञ्चास्ति ।

एतद्ग्रन्थपरिशीलकानां हृदये परमकल्याणकरो मिथिलामैथिल्योर्गाढ़तमो भक्तिभावो नूनमेवोदेष्यतीति सम्भावयामि ।

आशासे च गुणग्राहका विद्वांसो भक्तिपूर्णस्यैतस्य महाग्रन्थस्य समादरं करिष्यन्ति ।

प्रार्थये चाकिञ्चनवित्तौ भगवन्तौ 'श्रीसीतारामौ' यदयं महाग्रन्थोऽकिञ्चनस्यास्य लेखकस्य श्रीरामस्नेहिदासस्य स्वान्तःसुखाय लोकोपकाराय च भूयादिति ।।शुभम्।।

गोमतीप्रसाद मिश्रः

श्रीजानकी निवास प्रमोदवन के महान्त श्री १०८, स्वामी
श्री हरिनारायणदासजी महाराज, श्रीअयोध्याजी

आदर्शपूर्णाह्निकसर्वकृत्यं वात्सल्यसौशील्यदयाक्षमाढ्यम् ।
हर्यादिनारायणदाससञ्ज्ञं श्रीस्वामिपूर्वं गुरुमानतोऽस्मि ॥

श्रीज

कैङ्कर्यनिष्ठ
श्रीरामदास

* श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

श्री १००८ वेदोपनिषद् भाष्यकाराणां सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणामखिलवादिविजयिनां पण्डितराज स्वामिश्रीभगवदाचार्य्यवर्य्याणां सम्मतिः—

श्रीजानकीचरितामृतस्य केचिदंशा मया बहोः कालात्पूर्वमवलोकिताः। मन्ये तत्साम्प्रतिकानां रसिकोपासनापरायणानामुज्जीवयिष्यतीति।

अहमदाबाद ७
९–१२–५७

भगवदाचार्य्यः

—❀❀❀❀—

* श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

साहित्याचार्य्य, विद्याभूषण, विद्वच्छिरोमणि, प्रवलगोरखा-दक्षिणबाहु, कविवर पं० श्रीकुलचन्द्रगोतम-महोदयानां सम्मतिः।

(१) बहिरन्तश्च नितान्तं सुन्दरमेतद्धि नूतनं पुस्तकम्।
मस्तकधार्य्यं विदुषां रत्नोपममेव मन्येऽहम्॥

(२) पदपद्मपूजकानां कवीन्द्रतां शाश्वतीं ददतीम्।
जगदर्चणीयचरणां विदेहजां मातरं वन्दे॥

(३) गुणगणपूर्णा रचना वचनानां माधुरी रुचिरा।
मनुजस्य जगत्यखिले नाऽकृतपुण्यस्य गोचरी भवति॥

(४) अविगीतकल्पनायाः साम्राज्यं प्राज्यमालोच्य।
के वा? सचेतसः स्युर्न विस्मयोत्फुल्लमानसाः सुधियः॥

(५) आदरणीया निपुणैर्भावाभिव्यक्तिरत्युच्चा।
सहृदयसमाजमखिला भासा नीराजितं कुरुते॥

(६) एतद्गुणप्रशंसां चिकीर्षुरपि लेखनीं स्वीयाम्।
त्रपयैव पूर्णतमया न प्रभवाम्यग्रतो नेतुम्॥

(७) मातुर्विदेहजायाः कीर्त्तनमालोचयन् मधुरम् ।
सुकृतातिरेकलभ्यं दृष्टेः साफल्यमाकलये ॥

(८) दोषानुपेक्ष्य काँश्चिद् गुणबाहुल्यं समालोक्य ।
प्राधान्येन विधत्ते व्यपदेशं वस्तुतत्वज्ञः ॥

(९) अद्य मुनेर्वाल्मीकेः सत्यगिरः सर्वपूज्यस्य ।
प्रतिकूलकल्पनायां न लेखनी मे पुरः स्फुरति ॥

(१०) एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ।
इति वाल्मीकिवागाह जगतीत्रयपूजिता ॥

(११) सर्वा शृङ्गारसामग्री रासनर्तनशालिनः ।
श्रीकृष्णचन्द्रस्य कृते यथा शक्त्युपयोज्यताम् ॥

(१२) धृत्वा सनातनं धर्मं वर्तमानाः सचेतसः ।
इमं प्रबन्धमालोक्य किं किं ब्रूयुर्न वेद्मि तत् ॥

(१३) इत्यनल्पेन जल्पेन निरुद्ध्य प्रतिभं निजम् ।
निरीक्ष्यः सौम्यया दृष्टयः समालोचयिता जनः ॥

(१४) समयाऽपव्ययमफलं परिहर्तुं ते प्रभूतकार्यस्य ।
सीतारामसनेहिन्! कविवर! विश्रान्तिमिच्छामि ॥

श्रीरामघाट
वाराणसी
१२-१२-५७

भवदीयः—
कुलचन्द्रगौतमः

सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी जय ॥

डॉ० श्रीमङ्गलदेव शास्त्री M. A., D. Phil (Oxon) रिटायर्ड प्रिन्सिपल (गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस) महोदयकी सम्मति :—

जनकपुर-निवासी भक्तप्रवर श्रीरामसनेहीदासकी अद्‌भुतकृति "श्रीजानकी-चरितामृत" नामक काव्यको मैंने अंशतः यत्र-तत्र देखा। साथ ही उसके निर्माणकी आश्चर्यप्रद कथा भी ग्रन्थकर्ताके मुखसे सुन, बड़ी प्रसन्नता हुई। भक्ति-भावनासे आप्लुत प्रसाद गुण-युक्त यह काव्य निश्चय ही विद्वानों को आह्लादित करेगा। भक्तोंको तो इसमें आनन्द-रसका दिव्यप्रवाह अनुभव गम्य होगा। अपने इष्टदेवताके प्रति इस पवित्र रमणीय उपहारको सफलतापूर्वक उपस्थित करने के लिए मैं हृदयसे ग्रन्थकर्ताका अभिनन्दन करता हूँ।

पूर्ण आशा है कि इस ग्रन्थका जनतामें प्रचार और प्रसार होगा।

इङ्गलिशिया लाइन
बनारस कैण्ट
१६-१२-१६५७

मंगलदेव शास्त्री

—❀❀❀—

श्रीसीतारामाभ्याम् नमः ॥

उत्तर प्रदेशीय माध्यमिक विद्यालय—संस्कृत शिक्षक संघ प्रधान मन्त्रि-श्रीरामबालक शास्त्रिणां महोदयानां सम्मति :—

साधुशिरोमणिना श्रीरामस्नेहिदासेन विरचितं श्रीजानकी-चरितामृतं हिन्दीभाषया सटीकं महाकाव्यं महाकायं विलोक्य चेतसि महान् आनन्दसन्दोहः समजनि। प्रसादगुणगुम्फितं प्रौढबन्ध सम्बद्धं समपेक्षितालङ्कारभूषितं भक्तिरसप्रधानं काव्यमेतत् असत्सम्बन्धं निरस्य सत्सम्बन्धे सन्निवेश्य दिव्यधाम प्रापयेत् काव्यरसिकमिति स्पष्टं प्रतीयते ! वहोः कालात्प्राक् किमपि काव्य-मेतादृशं संस्कृतभाषायां न प्रकाशतां गतमिति मे विचारः। अस्य ग्रन्थस्य प्रणेता प्रकाशकश्च संस्कृतसंसारस्य धन्यवादार्हाविति शुभाशंसानः कामयतेऽस्य प्रचुर प्रचारम्।

रामापुरा, वाराणसी।
१६-१२-५७

रामबालकः

डॉ० हेमचन्द्र जोशी
बी० ए० (आनर्स), एम०ए०, पी-एच०डी, साहित्याचार्य
रीडर, संस्कृत विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय

१२ हीरापुर कालोनी
गोरखपुर

कार्तिक कृ० १३ विक्रम सं० २०४१

भक्त प्रवर परमपूज्य श्रीरामस्नेहि दास 'लता' जी महाराज द्वारा विरचित "श्रीजानकी-चरितामृतम्" महाकाव्य पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रस्तुत महाकाव्य सर्वांश में भगवत्प्रेरित है इसमें सन्देह नहीं। यह महाकाव्य संस्कृत काव्य प्रेमियों एवम् जगन्माता श्रीजानकी तथा श्रीराघवेन्द्र सरकार के चरणोंके उपासकों को निश्चय ही रसास्वादन कराने के अतिरिक्त उनको परमार्थ लाभ करानेमें परम सहायक होगा यह मेरा दृढ़ विश्वास है, महाकाव्य अत्यन्त वृहत् है जो १०८ अध्यायोंमें विभक्त है। इसमें जगज्जननी श्रीजानकी के प्राकट्य से लेकर विवाह पर्यन्त उनकी सभी लीलाओं का अत्यन्त सरल पद्यमयी संस्कृत भाषामें सुविशद वर्णन किया गया है। श्रीजानकी माताके जीवनसे सम्बद्ध ऐसा कोई महाकाव्य संस्कृत में मेरी जानकारीमें उपलब्ध नहीं है। इस काव्यको एक बार पढ़ना प्रारम्भ करने पर उसको छोड़ना सम्भव नहीं है, इतना सरस एवं प्रेरक है यह काव्य।

प्रणेता ने सरल हिन्दी में इसका अनुवाद भी प्रस्तुत किया है जिससे ग्रन्थकी उपयोगितामें वृद्धि हुई है। साथ में नवाह्न तथा मास पारायणके विश्राम स्थलोंका भी निर्देश किया गया है, इससे भी इसकी भक्ति प्रदायिता प्रमाणित होती है।

मैं इस महाकाव्य का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

विनयावनत
हेमचन्द्र जोशी

Padma Bhushan, Knight Commander, Darshanacharya

Dr. B. L. Atreya, M. A., D. Litt.

Research Director, Indian Society for Psychic and Yogic Research.

I have had the pleasure of glancing Mahatma Ram Sanehi Dasa's *Shri Janki-Charitamritam* and the privilege of hearing from him the story of how this great work has been composed and published. I have been amazed at the miraculous way in which everything has been done in this connection.

The work is really an inspired one and I am sure it will rank as one of very valuable works of the cult of the worshippers of Shri Rama. It reveals many aspects of the life of Sri Janakiji which were not known outside the esoteric circle of the cult. The author is a very humble devotee of Sri Janakiji and claims to have got all that he has given to the world throuh inspiration. The language of the work is simple and sweet Sanskrit which has been translated into Hindi by the author himself. I am quite sure everybody who reads it will appreciate it.

B. L. Atreya

Atreya Niwas,

Varanasi-5.

Dec. 2, 1957

॥ श्रीसीताराम ॥

श्रीकनक भवन विहारिणी विहारी सरकारकी जय ॥

आभार प्रकाश

अनन्त करुणावरुणालय, भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीकनक भवन विहारी सरकार की सर्वसमर्थ उस अहेतुकी कृपाको धन्यबाद है, जिसने श्रीकिशोरीजीके नाते इस अकिञ्चन हर प्रकारसे शक्ति-हीन आश्रितकी चिरेप्सित मनोभावनाकी पूर्त्तिके लिए श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थके द्वितीय संस्करण प्रकाशनार्थ आशातीत सब प्रकारकी सुविधा प्रदान की है।

उन्ही की वात्सल्यमयी प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रन्थ निश्चित समय के भीतर सुन्दर ढङ्ग से छप गया।

इसका श्रेय मैजेस्टिक प्रिंटिंग प्रेस के प्रोप्राइटर **डॉ० अमलचन्द्र चटर्जी** एम० ए०, पी० एच० डी० को है जिन्होंने प्रेसके इतर सब काम बन्द करके इतने बड़े काम को सेवा भाव से न्यूनतम खर्चेमें अत्यन्त तन्मयता से श्रद्धापूर्वक सम्पन्न कराया है और इस शरीर को किसी प्रकार की भी असुविधा नहीं होने दी है। आपकी उदार भावना के लिए यह शरीर विशेष आभारी है प्रेस की मुख्य अधिकारी कु० अनिता सिंह बी० ए०, एल एल० बी० तथा शेष सभी कर्मचारियों की श्रद्धा पूर्ण सेवा भी स्तुत्य है।

मैं इन सभीको जगज्जननी श्रीजानकीजीका कृपापात्र समझकर सभी से, प्राप्त असुविधाओं के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

शारीरिक अस्वस्थता और समयाभावके कारण इस ग्रन्थ के प्रूफरीडिङ्ग आदि कार्य अकेले मेरे से होने असम्भव थे। इस कठिन कार्य में फैजाबाद निवासी सत्सङ्गी श्रीरामायणजी के परम प्रेमी श्रीराम अरज तिवारीजीने दाहिने हाथ होकर तन, मन, धन से मुझे आद्यन्त पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। मैं उनकी अथक परिश्रम साध्य सेवा के लिए चिर कृतज्ञ रहूँगा। श्रीकिशोरीजी ने ही इस शरीर की सुविधा के लिए उन्हें चुना है, ऐसा मेरा विश्वास है। अन्त में मैं उन भगवत-चरणानुरागी भक्तों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ को छपवाने में यथा-शक्ति आर्थिक सेवा वहन की है। उनके नाम बतलाना उन्हें सङ्कोच में डालना है और उनकी इच्छा के विपरीत है। वे सभी बधाई के पात्र हैं ऐसी सेवा करने का शुभ अवसर श्री जी उन्हें आगे भी प्रदान करें।

भक्तानुदास रामस्नेहि दास

विवाह पञ्चमी संवत् २०४१ वि०।

श्रीजानकी चरितामृत-विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीअयोध्या (कनक भवन) खण्डम् ॥

अध्याय	विषय	पृष्ठ

॥ श्रीमिथिला (जनक भवन) खण्डम् ॥

अध्याय	विषय	पृष्ठ
९८	तीनों राजकुमारी कुमारों सहित श्रीसीताराम विवाह छवि देखकर भगवान शिवजी को हार्दिकोद्गार ।	८७०
९९	ऊपर कोहवर भवन में वरों को तथा नीचे श्रीअम्बाजी की आज्ञा से बहनों सहित श्रीकिशोरीजी की भोजन-शयन-लीला ।	८८२
१००	श्रीसुनयना अम्बाजी के आदेशानुसार भोजन कराके श्रीसिद्धिजी आदि बहुओं द्वारा चारों वरों का शयनासन ग्रहण ।	८९२
१०१	जनवासे में गुरू—जन आह्लादक वरों का भोजन-विश्राम पुनः अन्तःपुर सुखवर्षिणी कोहवर में भोजन शयन लीला ।	८९७
१०२	बारातियों सहित श्रीचक्रवर्ती महाराज का श्रीमिथिलेश भवन में भोजन ।	९०५
१०३	कङ्कन खोलाई महोत्सव में श्रीजनकजी महाराज द्वारा बारातियों सहित समस्त प्रजा के लिये प्रीतिभोज ।	९१४
१०४	श्रीकुशध्वज भवन में पूरे समाज सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराज तथा सभी कुल पुत्रियों की पहुनाई ।	९२३
१०५	मूर्त्ति पञ्चक रूप में सदा अन्तःपुर रहने के लिए श्रीजनकजी को श्रीरामजी का आश्वासन तथा अयोध्या आगमन ।	९२८
१०६	श्रीकौशल्या अम्बाजी की श्रीरामजी से वात्सल्यपूर्ण वार्ता एवं कदम्ब वन में यक्ष कुमारियों की विश्वनाट्य लीला ।	९४०
१०७	सखियों के पूछने पर भगवान श्रीरामजी द्वारा विश्वनाट्य लीला रहस्योद्घाटन तथा यक्ष कुमारियों कृत रामलीला ।	९४७
१०८	ग्रन्थ के प्रत्येक अध्यायों की विषय-सूची तथा स्तुति पूर्वक श्रीकिशोरीजी से प्राप्तेन्द्रियों के दुरुपयोग की क्षमायाचना ।	९५६

—❀❀❀—

अथ मासपारायण पाठ विश्राम

क्रमाङ्क	अध्याय	पृष्ठ	क्रमाङ्क	अध्याय	पृष्ठ
१	४	३०	१६	५२	४५७
२	६	५६	१७	५६	४६१
३	१५	८१	१८	६०	५२३
४	२१	११६	१६	६४	५५३
५	२२ श्लोक १६३	१५३	२०	६६	५८३
६	२२ श्लोक ४१७	१८७	२१	७५	६०६
७	२४	२१६	२२	७६	६४४
८	२८	२५२	२३	८२	६७०
६	३१	२८०	२४	८६	७०८
१०	३४	३०८	२५	८७	७६५
११	३७	३३७	२६	६४	८३६
१२	४०	३६१	२७	६७	८६६
१३	४३	३८४	२८	१०१	६०४
१४	४६	४०६	२६	१०५	६३६
१५	४६	४३०	३०	१०८	६७४

अथ नवाह्नपारायण पाठ विश्राम

क्रमाङ्क	अध्याय	पृष्ठ	क्रमाङ्क	अध्याय	पृष्ठ
१	१६	१००	६	७६	६४४
२	२४	२१६	७	८७	७६५
३	३६	३१६	८	६७	८६६
४	४८	४१८	६	१०८	६७४
५	६१	५२६			

श्रीरामदूलह सरकार सहित श्रीजानकीजी की भव्य चार रूपों में झाँकी ।

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीहनुमते नमः

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याय नमः।

सकलयुगलकृपापात्रेभ्यो नमः

ग्रन्थावतरण प्रसंग-वर्णनम् ॥

शं ते समीड्यमहिमे मिथिलेन्द्रपुत्र्यै त्रैलोक्यनाथदयिते तरुणाब्जनेत्रे।
त्रात्रेऽस्तु शं सततमेव जगत्त्रयस्य योगीन्द्रसेव्यचरणस्य च तेऽम्बुजाक्ष ॥१॥
हे राम मामसुपतेऽतुलितप्रभाव वैदेहि हंसगतिके करुणापरीते।
तूर्णं युवामवतमीड्यपवित्रकीर्त्ती वैस्मृत्यतः पतनमूलत आत्मनोऽङ्घ्र्योः ॥२॥

एकदा यामुने घट्टे जगन्नाथाभिधे शुभे। श्रद्धया शृण्वतोऽस्माकं महाभागवतेन वै ॥३॥
जगन्नाथप्रसादेन श्रीमता भक्तमालिना। कथां कथयता प्रोक्तं जन्मनो राधिकापतेः ॥४॥
श्रीवृन्दावनचाचोक्ता लीला परिणयावधि। तदुपाकर्ण्य चित्तं मे मोदमग्नमचिन्तयत् ॥५॥
एवं श्रीरामचरितं केनचिल्लिखितं यदि। अयोध्यायां पठित्वा तत्समेष्यामि कृतार्थताम् ॥६॥
लीलास्वरूपसंसक्तः श्रीलीलाविग्रहाज्ञया। कथञ्चिदागतोऽयोध्यां पुरीं वृन्दावनादहम् ॥७॥
श्रीवृन्दावनचाचावत्तत्र केनापि वर्णनम्। युग्ममाधुर्यलीलानां कृतं दृष्टं न च श्रुतम् ॥८॥
वृन्दावनजिगमिषुर्गतवान्मिथिलापुरीम्। पठित्वा तन्महत्वञ्च प्राप्तमेव यदृच्छया ॥९॥
नगरान्ताज्जयाच्छ्रुत्वा पुरं श्रीजनकाभिधम्। योजनैकं दिनादौ च कृतस्नानादिकक्रियः ॥१०॥
श्रुत्यङ्काङ्कविधौ वर्षे वैक्रमीये दलेऽसिते। दर्शनार्थं स्वस्वामिन्या महोत्साहसमन्वितः ॥११॥
पद्भ्यामेव ततो गच्छन्सपादयोजनद्वयम्। मार्गशीर्षे नवम्यां च निशादौ प्राप्तवान्पुरम् ॥१२॥
मार्गभावप्रपूर्त्यर्थं किशोर्याः प्रसभं हि मे। स्वमन्दिरे समाहूय प्रदत्तं दर्शनं शुभम् ॥१३॥
प्रदाय मन्दिरे वासं स्वप्रसादञ्च भोजनम्। विसृष्टदर्शनाशाय सुखं दत्तमवर्ण्यकम् ॥१४॥
दासोऽवधकिशोराख्यः पण्डितः प्रेरितस्तया। एकादश्यां तु वैशिष्ट्यं ममागत्याप्रकाशयत् ॥१५॥
अनुकर्तुं सुपाठ्यञ्च श्रीरामायणमामरम्। रामटहलदासस्य भावपूर्त्यै महात्मनः ॥१६॥
एकादश्यां ततो लब्धनिदेशः कारितस्तया। अधिकारिमहान्ताभ्यां सर्वान्तः करणस्थया ॥१७॥
यावन्मिथिलावासेच्छा सासौविध्यनिवेदनम्। जानकीमन्दिरे वस्तुं सादरं प्रणयेन च ॥१८॥
सेवामिषेण सान्निध्यसौभाग्यं वाञ्छिताधिकम्। प्रदाय कृपया तस्या कृतकृत्यः कृतोऽस्म्यहम् ॥१९॥
स्वस्वरूपपरिज्ञानं पररूपस्य वै तथा। श्रीसीतारामसम्बन्धमष्टयामार्चनं विधिम् ॥२०॥
लब्धवान् कृपया श्रीमद्रामदासस्य सद्गुरोः। स्थानाधिपस्य सन्मौलेर्विहारह्लववासिनः ॥२१॥

नमोऽस्तु सततं तस्मै कैङ्कर्यादर्शदायिने । साधुसेवैकनिष्ठाय वरिष्ठाय महात्मनाम् ॥२२॥
श्रीसीतारामयोर्नामशोभितास्याय सर्वदा । नमोऽस्तु गुरुदेवाय भावनालीनचेतसे ॥२३॥
आजगाम दयामूर्त्तिरयोध्यातः परेच्छया । श्रीवेदान्तीति विख्यातो गुरुः सम्बन्धभावदः ॥२४॥
साकं परमहंसेन रत्नसागरवासिना । सम्पर्कं स्थापयामास ममासौ श्रीप्रचोदितः ॥२५॥
तस्मै पदार्थदासाय श्रीमद्रामपदादये । अयोध्याधामरत्नाय महाराजाय वै नमः ॥२६॥
नमो वेदान्तिने तस्मै गुरुदेवाय सर्वदा । गुरुपादैकनिष्ठाय वरिष्ठाय विपश्चिताम् ॥२७॥
एकस्मिन्दिवसे प्राप्तं दर्शनार्थं रहः स्थितः । श्रीमान्परमहंसो मां कृपयेदमभाषत ॥२८॥
अद्यावधि श्रुता ये ये मया ग्रन्थाश्च वीक्षिताः । सांस्कृताः प्राकृता नानादेशभाषासु वर्णिताः ॥२९॥
कस्मिंश्चिदपि जानक्या लीलानन्देन भावुकैः । यामैकः समयः सेव्यो ग्रन्थे नैवात्र दृश्यते ॥३०॥
तस्मात्त्वयेदृशो ग्रन्थो लेखनीयो हि साम्प्रतम् । तद्धामगुणलीलानां यस्मिन्स्यान्मुख्यवर्णनम् ॥३१॥
कस्याधारेण ग्रन्थस्य कार्यमेतत्समारभे । इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं स महात्मा हि मां प्रति ॥३२॥
कस्याधारेण सम्प्राप्तं कवित्वं वाचि नाकिनाम् । अव्याकरणसाहित्याध्ययनेनैव च त्वया ॥३३॥
तस्याधारः कृपैवास्ति किशोर्या इति निश्चयः । महाराज ! निशम्येति मयोक्तं सोऽब्रवीदिदम् ॥३४॥
तस्या एव कृपाधारं समाश्रित्य कृपानिधेः । शीघ्रमेव सुकार्येऽस्मिन्मनोयोगो विधीयताम् ॥३५॥
तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं भावनिर्भरचेतसः । भक्त्याऽहं साञ्जलिर्वाक्यमब्रुवं तं नतेक्षणः ॥३६॥
दुष्करं कार्यमेतद्धि यथाब्धौ पांसुमन्दिरम् । स निशम्येति मामूचे शङ्कापङ्कविवर्जितः ॥३७॥
लोकेऽस्मिन् प्रायशः सर्वैरिष्टिकाप्रस्तरादिभिः । निर्मीयन्ते गृहाण्युर्व्यां तत्र किं कौतुकं भवेत् ॥३८॥
महदाश्चर्यसन्दोहं तद्धि हर्म्यं विपश्चिताम् । वालुकानिर्मितं यत्स्याद्विशेषेण पयोदधौ ॥३९॥
एवं विद्याविहीनेन काव्यं यत्स्याद्विनिर्मितम् । अनाधारेण ग्रन्थानां लोके तन्महदद्भुतम् ॥४०॥
तस्माद्यदा यथा चित्ते प्रेरणां सा प्रयच्छतु । तथैव गतसन्देहो भव लेखनतत्परः ॥४१॥
श्रीमत्परमहंसस्य भावतल्लीनचेतसः । आज्ञां निधाय हृदये पादयोः प्रणतोऽभवम् ॥४२॥
तस्य भावप्रसिद्ध्यर्थं वीतरागस्य योगिनः । ददौ ध्यानं दयासिन्धुर्भगवान्भक्तवत्सलः ॥४३॥
ग्रन्थेषु सकलेष्वेव जानक्या जानकीधवः । सर्वजीवानुकम्पिन्याः स्वप्रियायाः कृपानिधेः ॥४४॥
लीलानुवर्णनाभावं दृष्ट्वा तस्य निवृत्तये । व्यञ्जयितुं मनश्चक्रे जानकीचरितामृतम् ॥४५॥
माधुर्य्योपासकानां स विशेषानन्ददित्सया । कृत्वा निमित्तं मामस्य कर्ता कारयिता स्वयम् ॥४६॥
बभूव स्वानुभूत्या तत्प्रमाणं प्रोच्यते मया । विश्वासाय तु सर्वेषां यथा बुद्ध्येह निश्छलम् ॥४७॥
लब्धकर्तृत्वसौभाग्यो ग्रन्थस्यास्य च योऽस्म्यहम् । तद्व्याकरणसाहित्यज्ञानं नाध्ययनार्जितम् ॥४८॥
न प्रतिपाद्यविषयबोधो ग्रन्थानुशीलनात् । न सत्सङ्गप्रभावेन महतां विदुषां हि मे ॥४९॥
क्वाहं मन्दमतिर्मूढो हंसवेषेण वायसः । क्वायं ग्रन्थो बुधैः श्लाघ्यो महद्भिश्चारुसत्कृतः ॥५०॥
एकया कृपया तस्याचिन्त्यशक्तेरिदं महत् । सौभाग्यं प्राप्तवानस्मि विद्यार्थी यावनीगिरः ॥५१॥

श्रीजनकपुर धाम

श्रीजानकी मन्दिर का

(बाह्यदृश्य)

वन्द्यं सर्वदिवौकसां मतिमतां ध्येयं महायोगिनां
सीतारामरतात्मनां च महतां भाव्यं सदा सर्वदा ।
सर्वेषामसुधारिणामनुपमं श्रद्धास्पदं शान्तिदं
शश्वन्मैथिलगौरवास्पदमिदं श्रीजानकीमन्दिरम् ।

श्रीजनकपुर धाम

श्रीजानकी मन्दिर का

(भीतरी दृश्य)
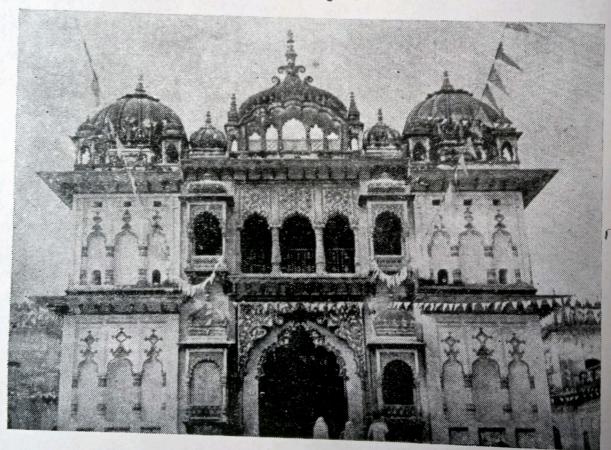
वन्द्यं सर्वदिवौकसां मतिमतां ध्येयं महायोगिनां
सीतारामरतात्मनां च महतां भाव्यं सदा सर्वदा ।
सर्वेषामसुधारिणामनुपमं श्रद्धास्पदं शान्तिदं
शश्वन्मैथिलगौरवास्पदमिदं श्रीजानकीमन्दिरम् ॥

हृदयस्थो यदा यर्हि राघवो मामचोदयत् । तथैव लिखितं तर्हि यथा बुद्ध्या स्वतुच्छया ॥५२॥
इति विज्ञाय विद्वद्भिर्जानकीचरितामृतम् । प्रदानेनात्मसम्मत्या सर्वैरेव समादृतम् ॥५३॥
आदितश्चान्तपर्यन्तं साध्यायाष्टशतोत्तरम् । जानकीमन्दिरे जातं जानकीचरितामृतम् ॥५४॥
कृपया तस्य रामस्य सर्वशक्तिमतः प्रभोः । प्रेरणयाऽथवा तस्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्रया ॥५५॥
जन्म जन्मदिने गीतमुद्वाहः परिणयेऽह्नि । श्रीकिशोर्य्याः कृपाप्राप्तां परिचर्यां प्रकुर्वता ॥५६॥
कदाचिच्छ्लोक एकोऽपि लिखितुँ शक्यते न हि । मासेऽपि कृपया शक्या वार एकेऽप्यशीतिकाः ॥५७॥
देवभाषानभिज्ञेन जानकीमन्दिरे तु सः । सटीकं कारयामास जानकीचरितामृतम् ॥५८॥
स एव पुनरेवास्य सर्वसौलभ्यकाम्यया । कार्तिकेयस्वरूपेण कमलाम्बामचोदयत् ॥५९॥
औदार्येण स्ववित्तेन ग्रन्थस्यास्य मुदा हि सा । प्रीतये सद्गुरोस्तस्मान्मुद्रापणमकारयत् ॥६०॥
योगदानं यदि न स्यात्सर्वशक्तिमतो हि तत् । नार्हः प्रणीतो भवितुं तथा नायं प्रकाशितः ॥६१॥

तस्मात्प्रणौमि शतशस्तमचिन्त्यलीलं श्रीजानकीप्रियतमं भजदर्थदोहम् ।
तामानतोऽस्मि जननीं कमलां सुलभ्यं कृत्वा प्रकाशितमिदं हि यया कृतं वै ॥६२॥
तं कार्तिकेयमुरसा गुरुमानतोऽस्मि ध्यानस्थितो हि कमलां कृपयाऽऽदिदेश ।
ग्रन्थप्रकाशकरणाय महानुभावो ह्यप्राकृतेन वपुषा मम भावसिद्ध्यै ॥६३॥

अलमुक्तेन वहुना विद्वत्स्वत्र महात्मसु । ग्रन्थो ह्येष कृपोद्भूतो नात्र कार्या विचारणा ॥६४॥
मयेदं ग्रन्थसम्बन्धिसर्वतर्कनिवृत्तये । रामसनेहिदासेन ग्रन्थवैशिष्टचवर्णितम् ॥६५॥
यस्य भावप्रपूर्त्यर्थं जानकीचरितामृतम् । कारितं प्रभुणाऽहं तं परमं हंसमानतः ॥६६॥

श्री जानकीध्यानरताय नित्यं लोकेषणापूतिविवर्जिताय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य आजानुबाहोः सततं नमोऽस्तु ॥६७॥

प रात्परानन्दपरिप्लुताय व्यपास्तकामाद्यरिपङ्क्तये च ।
शिष्याय नारायणदासकस्य देशप्रसिद्धेः सततं नमोऽस्तु ॥६८॥

र माविलासापगतस्पृहाय स्थूलोन्नताश्यामशरीरकाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य महाविभूतेः सततं नमोऽस्तु ॥६९॥

म हर्षिकल्पाय गतस्माय शय्यासने दुर्लभदर्शनाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्यावैषम्यनीते. सततं नमोऽस्तु ॥७०॥

हं सैकवृत्तिस्मृतिपावनाय गम्भीरमुद्राय शुभेक्षणाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य सर्वान्नदातुः सततं नमोऽस्तु ॥७१॥

स भाजितायाखिलसाधुसङ्घैर्विज्ञैर्महल्लक्षणकोविदैश्च ।
शिष्याय नारायणदासकस्य प्रख्यातकीर्त्तेः सततं नमोऽस्तु ॥७२॥

श्र मानिने सर्वसुमानदाय विचित्रभावाय दृढव्रताय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य महात्मनो वै सततं नमोऽस्तु ॥७३॥
व सुन्धरादेवकुलोद्भवाय श्रीवैष्णवानां कुलदीपकाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य औदार्यसिन्धोः सततं नमोऽस्तु ॥७४॥
ध रासुतोद्यानसुशोभयित्रे धरासुतोद्याननिवासिने च ।
शिष्याय नारायणदासकस्य प्राप्तेष्टसिद्धेः सततं नमोऽस्तु ॥७५॥
वि वेकिनेऽशेषसतां वराय वैराग्यधाम्ने करुणाप्लुताय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य महामहिम्नः सततं नमोऽस्तु ॥७६॥
हा त्राहि पाह्यादिभृशार्त्तशब्दाप्रियप्रयोगाय यतेन्द्रियाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्याक्षयान्नराशेः सततं नमोऽस्तु ॥७७॥
री ज्योज्झिताशेषतनुक्रियाय वैराग्यभक्तिप्रददर्शनाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य प्रशान्तवृत्तेः सततं नमोऽस्तु ॥७८॥
दा स्ये रतायोर्विभुवः सदैव सुभाषिणे मुण्डितमस्तकाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य प्रसिद्धनाम्नः सततं नमोऽस्तु ॥७९॥
सं सारमायापरिवर्जिताय क्षितीशरङ्काविषमेक्षणाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य प्रशस्तकीर्त्तेः सततं नमोऽस्तु ॥८०॥
न रेन्द्र योगीन्द्रहृदेडिताय सौम्यस्वरूपाय गतालसाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य सद्धर्ममूर्त्तेः सततं नमोऽस्तु ॥८१॥
मा धुर्यभावाञ्चितलोचनाय रत्नाब्धिकूलोटजवासकाय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य वैराग्यमूर्त्तेः सततं नमोऽस्तु ॥८२॥
मि ताशनस्वापसुभाषितायामोघेक्षणस्नेहमुखोदिताय ।
शिष्याय नारायणदासकस्य व्यपास्तभीतेः सततं नमोऽस्तु ॥८३॥

अवनिखखदृगब्दे पौष उग्रे चतुर्थ्यां गुरुरवघविहारीदास इष्टाप्तसिद्धिः ।
प्रवरपरमहंसो धाम साकेतमागाज्जनकपुरगताया रङ्गभूमेः समीपे ॥८४॥
चरितमवनिजाया ग्रन्थरूपेण साकं परममधुरलीलाधामवंशावलीभिः ।
करगतमधुनाऽऽस्तेऽलङ्कृतं यत्कृपातोऽप्रतिमशुभगुणौघैः सादरं तं नमामि ॥८५॥

हे कमल के समान विकसित नेत्र वाली, त्रिलोकीनाथ की प्राणवल्लभा, प्रशंसनीय महिमा वाली श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीकिशोरीजू ! आपका सदा मङ्गल हो । तीनों लोकों के रक्षक तथा योगीन्द्रों के द्वारा सेवनीय श्रीचरणकमल वाले हे कमललोचन प्यारे ! आपका सदा मङ्गल हो । अतुलितप्रभावशाली, प्राणेश्वर, श्रीराम सरकार तथा हे हंसगामिनी करुणामयी

श्रीविदेहराजनन्दिनीजू! आप दोनों सरकार की कीर्त्ति परमप्रशंसनीन है । अतः पतन की कारण स्वरूपा अपने श्रीचरण कमलों की विस्मृति से हमारी शीघ्र रक्षा कीजिए ।

एक बार वृन्दावन में श्रीयमुनाजी के श्रीजगन्नाथघाट पर श्रद्धापूर्वक इस शरीर के श्रवण करते हुए महाभागवत भक्तमाली श्रीमान् पं० श्री जगन्नाथप्रसादजी महाराज ने कथा कहते हुए यह कहा था—श्रीवृन्दावन चाचाजी ने श्रीराधावल्लभजू के जन्मप्रसङ्ग से लेकर केवल विवाह पर्यन्त लीलाओं का ही वर्णन किया है । सुनकर इस शरीर का चित्त आनन्द में डूबकर यह सोचने लगा—कदाचित् इसी प्रकार यदि किसी ने प्राकट्य से लेकर विवाहपर्यन्त श्रीसीतारामजी के मङ्गलमय चरितों को लिखा होगा तो श्री अयोध्याजी में उन्हें पढ़कर कृतार्थ हो जाऊँगा ।

लीला स्वरूपों में पूर्ण आसक्त था अतः श्रीकिशोरीजी की अहैतु की कृपा वशजब लीला स्वरूप सरकार ने ही आज्ञा दी, तब यह शरीर किसी प्रकार उनकी आसक्ति छोड़कर वृन्दावन से श्री अयोध्याधाम चला आया । यहाँ श्रीवृन्दावन चाचाजी के समान श्रीयुगल सरकार की माधुर्य लीलाओं का वर्णन किसी भी ऋषि अथवा महात्माओं के द्वारा किया हुआ न किसी ग्रन्थ में देखने को मिला, न गुरुजनों के मुखारविन्द से श्रवण करने का ही सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

ज्यों ही वृन्दावन जाने को पुनः इच्छुक हुआ, अकस्मात् श्री मिथिला माहात्म्य की पुस्तक मिली । पढ़कर श्रीमिथिला दर्शन की भावना जगी उसे पूरी करने हेतु यहशरीर श्रीमिथिलाजी को विदा हो जयनगर पहुँचा । प्रातःकालीन स्नानादि कृत्य पूरे कर लेने पर वहाँ से जब श्रीजनकपुर मात्र चार कोस ज्ञात हुआ तो यह शरीर बड़े उत्साहपूर्वक अपनी स्वामिनी श्रीकिशोरीजी के दर्शनार्थ पैदल चल पड़ा, तब तक एन० जे० रेलवे ट्रेन चालू नहीं थी अतः उसकी पटरी-पटरी ६ कोस चलकर सम्बत् १९९४ मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी की रात में श्रीजनकपुर धाम पहुँचा । अत्यन्त श्रमित शरीर और अँधेरी रात के कारण दर्शनों की आशा निरस्त हो चुकी थी किन्तु मार्गस्थ भाव को पूर्ण करने के लिए दयामयी श्रीकिशोरीजी ने बलात् इस शरीर को मन्दिर में बुलाकर अपना मङ्गलमय दर्शन प्रदान करने की तो कृपा कर ही दी, इतना ही नहीं उन्होंने उसी प्रथम रात्रि में अपने मन्दिर का वास और अपना ही प्रसादी भोजन प्रदान करके इस शरीर को जो सुख प्रदान किया, वर्णन नहीं हो सकता । एक रात भी तो कहीं अन्यत्र रहने नहीं दिया । उनकी इस अनुपम उदार दया की बलिहारी है ।

श्रीकिशोरीजी की प्रेरणा से एकादशी के दिन पण्डित श्री अवध किशोर दासजी महाराज ने आकर इस शरीर की संस्कृत में कविता करने की योग्यता की विशेपता प्रकट की ।

इसी कारण एकादशी के दिन सबके अन्तःकरण में निवास करने वाली श्रीकिशोरीजी ने परखतिया महात्मा श्रीरामटहलदासजी महाराज का भाव पूर्ण करने हेतु श्रीअमर रामायण जी

की सुखपूर्वक पढ़ने योग्य प्रतिलिपि तैयार करने के निमित्त अधिकारी श्रीशीतलदासजी तथा महान्त श्रीनवलकिशोरदासजी महाराज द्वारा पं० श्रीरामसेवकदासजी महाराज के समक्ष सादर सप्रेम यह आज्ञा प्रदान करायी—जब तक आपको श्रीमिथिलाजी वास करने की इच्छा हो—श्रीकिशोरीजी के मन्दिर में ही निवास करें, और जो भी असुविधा हो निवेदित करते रहें।

कृपावश ग्रन्थ लेखन सेवा के बहाने अभीष्ट से अधिक अपनी सन्निधि में रहने का सौभाग्य प्रदान करके श्रीकिशोरीजी ने इस शरीर को कृतकृत्य कर दिया।

अपने वास्तविक तथा इष्ट स्वरूप का यथार्थ ज्ञान एवं श्रीसीतारामजी महाराज के प्रति सम्बन्धभाव एवं उनकी अष्टयाम सेवाविधि को इस शरीर ने विहार कुण्ड निवासी स्थानाधिपति (महान्त), सन्तशिरोमणि सद्गुरु श्रीरामदास जी महाराज की कृपा से प्राप्त किया।

सन्त भगवन्त सेवा का आदर्श देने वाले सेवानिष्ठ, महात्माओं में श्रेष्ठ उन गुरुदेव को मेरा दण्डवत् प्रणाम है। जिनका मुखारविन्द श्रीसीताराम श्रीसीतारामनाम से सदा सुशोभित तथा चित्त श्रीयुगल सरकार की अष्टयाम मानसिक सेवा में सर्वदा तल्लीन रहता है उन गुरुदेव अनन्त श्री विभूषित श्रीरामदासजी महाराज को हमारा दण्डवत् प्रणाम है।

श्रीकिशोरीजी की इच्छा से इस शरीर के सम्बन्ध भाव प्रदायक, दयामूर्त्ति श्रीवेदान्तीजी महाराज नाम से विख्यात गुरुदेव श्री १०८ पं० श्रीरामपदार्थ दासजी महाराज उन्हीं दिनों श्रीअयोध्याजी से श्रीजनकपुर धाम पधारे और श्रीकिशोरीजी की प्रेरणा से उन्होंने रत्नसागर निवासी श्रीपरमहंसजी महाराज से इस शरीर का सम्पर्क स्थापित कराया। श्रीअयोध्या धाम के रत्नस्वरूप उन वेदान्ती स्वामी श्रीरामपदार्थ दासजी महारजको हमारा दण्डवत् प्रणाम है।

श्रीगुरुमहाराज के श्रीचरण कमलों में जिनकी अनुपम निष्ठा थी तथा जो सभी विद्वानों में परम श्रेष्ठ थे, उन गुरुदेव श्रीवेदान्तीजी महाराज को हमारा दण्डवत् प्रणाम है।

एकदिन यह शरीर श्रीपरमहंसजी महाराज का दर्शन करने के लिए रत्नसागर गया, उस समय वे दिव्यमूर्त्ति श्रीजानकी वाटिका के लतालंकृत घाट पर एकाकी विराजमान थे। कृपा वश इस शरीर से बोले—अभी तक संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी तथा अनेक देश की भाषाओं में लिखित जितने ग्रन्थों को मैंने देखा तथा श्रवण किया है उनमें कोई भी ग्रन्थ ऐसा नहीं है, जिसमें वर्णित श्रीकिशोरीजी की मधुर लीलाओं का आनन्द लेते हुए एक पहर समय का भी सेवन किया जा सके। इस लिए आप ऐसा ग्रन्थ लिखें जिसमें श्रीकिशोरीजी के नाम, रूप, लीला, धाम का प्रचुर वर्णन हो। महाराज श्री के इस आदेश को सुन कर इस शरीर ने प्रार्थना की—किस आधार पर ऐसा ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न करूँ।

श्रीकिशोरीजी को ही अपने हृदय में विराजमान रखने वाले श्रीपरमहंसजी महाराज इस शरीर से बोले—विना साहित्य व्याकरण पढ़े किस आधार से आपको देव भाषा में कवित्व

शक्ति प्राप्त है। इस शरीर ने कहा—महाराजजी ! यह शक्ति तो मात्र श्रीकिशोरीजी की ही कृपा से प्राप्त है, किसी अन्य आधार से नहीं।

श्रीपरमहंसजी महाराज बोले—जिनकी कृपा के आधार से आपको यह योग्यता प्राप्त है, उन्हीं कृपा सागरा की कृपा का आश्रय ग्रहण करके इस सुखद कार्य में मानसिक योग दें।

भाव-विभोर चित्त श्रीपरमहंसजी महाराज की इस मधुर (सुखप्रदायिनी) वाणी को श्रवण करके श्रद्धा समन्वित हाथ जोड़ कर नीचे दृष्टि किए यह शरीर बोला—

श्रीमहाराजजी ! यह कार्य ऐसा ही दुष्कर है जैसा समुद्र में बालू भवन का निर्माण।

यह सुनकर निःशङ्क हृदय हो श्रीपरमहंसजी महाराज ने कहा—लोक में ईंण्टा पत्थर मिट्टी के द्वारा प्रायः सभी लोग भूतल पर भवनों का निर्माण करते ही हैं अस्तु उपयुक्त साधनों द्वारा यदि कोई भवन बनाए तो, आश्चर्य की बात ही क्या है? विद्वानों के लिए आश्चर्यप्रद वही भवन होगा जिसका निर्माण बालुका द्वारा समुद्र में किया जाय। इसी प्रकार विना ग्रन्थों का अवलम्ब लिए विद्या विहीन के द्वारा जिसका निर्माण होगा वह ग्रन्थ अवश्य ही विद्वानों के लिए आश्चर्य का विषय बनेगा, विद्या तथा ग्रन्थों के आधार से लिखित में आश्चर्य की बात ही क्या ? अस्तु जिस समय श्रीकिशोरीजी की आपके हृदय में जैसी प्रेरणा हो, तदनुसार लिखने में प्रवृत्त होते रहें। भाव तल्लीन चित्त श्रीपरमहंसजी महाराज की आज्ञा को हृदय में धारण करके इस शरीर ने उनके श्रीचरण कमलों में प्रणाम किया। चित्त योग द्वारा श्रीकिशोरीजी के चरण कमलों में सदा जुड़े हुए, वीत राग श्रीपरमहंसजी महाराज का भाव पूर्ण करने के लिए भक्त वत्सल, दयासिन्धु भगवान श्रीराघवेन्द्र सरकार ने ध्यान दिया। अस्तु

सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाली कृपासागरा, अपनी प्रिया श्रीजनकनन्दिनी जू की मधुर लीला का समस्त ग्रन्थों में विशेष अभाव देखकर उसकी निवृत्ति के लिए उन श्रीजानकी बल्लभ सरकार ने श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थ प्रकट करने के लिए मनोयोग प्रदान करने की कृपा की। माधुर्योपासकों को विशेष आनन्द देने की इच्छा से भगवान श्रीरामजी ने इस शरीर को निमित्त बनाकर स्वयमेव श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थ के कर्ता, कारयिता बनें हैं। इस बात पर विश्वास दिलाने के लिए यह शरीर अपनी अनुभूति तथा बुद्धि के अनुसार निश्छल भाव से उस का प्रमाण प्रस्तुत कर रहा है कि जिस शरीर को इस महान ग्रन्थ के कर्तृत्व का सौभाग्य प्राप्त है उसे साहित्य तथा व्याकरण का ज्ञान अध्ययनार्जित किञ्चित् भी नहीं है और न ग्रन्थ प्रतिपादित विषयों का ज्ञान ही, ग्रन्थों के अनुशीलन अथवा सन्त विद्वानों के सत्सङ्ग प्रभाव से प्राप्त है।

कहाँ तो मैं मूढ मन्दमति, हंस वेष में कौआ और कहाँ विद्वानों से प्रशंसनीय तथा महातमाओं द्वारा भली प्रकार से सत्कृत यह ग्रन्थ? आकाश-पाताल का अन्तर है। अस्तु मुझ उर्दू भाषा के विद्यार्थी को ग्रन्थ कर्तृत्व का जो यह महान सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह केवल

अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न श्रीराघवेन्द्र सरकार की ही कृपा का परिणाम है ।

हृदयस्थित हो उन्होंने जिस समय जैसी प्रेरणा दी, वैसा ही उस समय इस शरीर ने अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार लिख दिया । ऐसा जानकर ही सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी सम्मति प्रदान करके श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थ का सम्यक् प्रकार से आदर किया है ।

आदि से अन्त पर्यन्त १०८ अध्यायों से युक्त श्रीजानकी चरितामृत की सर्वाङ्ग सम्पन्नता श्रीजानकी मन्दिर श्रीजनकपुर धाम में ही हुई है । उन्हीं सर्वशक्तिमान भगवान श्रीरामजी की सर्वतन्त्र स्वतन्त्र कृपा अथवा प्रेरणा द्वारा श्रीजानकी मन्दिर में ही श्रीकिशोरीजी की कृपा से संप्राप्त उनकी सेवा सम्पादित करता हुआ श्रीजानकीनवमी के दिन प्राकट्य और श्रीविवाह पञ्चमी के दिन ही उनके विवाह का मङ्गल प्रसङ्ग लिखा गया है ।

कभी महीने में भी एक श्लोक लिखने की क्षमता नहीं और कभी श्रीराघवेन्द्र सरकार की कृपा से एक दिन में अस्सी श्लोक तक लिखने का सौभाग्य ।

उन्हीं सरकार ने देवभाषा अर्थात् संस्कृत न जानने वालों के लाभार्थ श्रीजानकी मन्दिर में ही श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थ को भाषा टीका युक्त कराने की कृपा की । पुनः उन्ही दयालु सरकार ने ग्रन्थ की सर्वसुलभता की इच्छा से महर्षि श्रीकार्त्तिकेय स्वरूप से श्रीकमलाम्बाजी को प्रेरणा दी, इस लिए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उदारता के साथ अपने द्रव्य द्वारा गुरुमहाराज की प्रसन्नता के लिए इस ग्रन्थ को छपवाया । यदि वस्तुतः उन सर्वशक्तिमान श्रीराघवेन्द्र सरकार का हार्दिक सहयोग न होता तो निश्चय ही यह ग्रन्थ न लिखा ही जा सकता था और न प्रकाशित होना ही सरल था । अस्तु विद्वान और महात्माओं के प्रति बहुत कहने की क्या आवश्यकता ? यह ग्रन्थ श्रीराघवेन्द्र सरकार का ही कृपासम्भूत है इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं । इस हेतु उन अचिन्त्य लीलाधारी श्रीजानकी वल्लभ सरकार को मैं शतशः प्रणाम करता हूँ जो भक्तों की मनोकामना पूर्ति करने वाले हैं पुनः श्रीकमलाम्बाजी को नमन करता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ को छपवा कर सर्वसुलभ कर दिया ।

श्रीभगवान की हो लीला तथा महिमा का सदा अनुभव करने वाले जिन गुरुदेव महर्षि श्रीकार्तिकेयजी महाराज ने इस अयोग्य का भावपूर्ण करने के लिए कृपावश, अपने अप्राकृत शरीर द्वारा श्रीकमलाम्बाजी के ध्यान में आकर श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थ छपवाने की आज्ञा प्रदान की उन्हें यह शरीर हृदय से प्रणाम करता है ।

ग्रन्थ सम्बन्धी सब प्रकार की तर्क निवृत्ति के लिए इस शरीर (राम-सनेही दास) ने ग्रन्थ की विशेषता का पूरा प्रसङ्ग कह सुनाया । जिन श्रीपरमहंसजी महाराज का भाव पूर्ण करने के लिए प्रभु श्रीरामजी ने श्रीजानकी चरितामृत ग्रन्थ को सम्पन्न कराने की कृपा की है, उन्हें यह शरीर श्रद्धा समन्वित दण्डवत् प्रणाम करता है ।

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीकी जय

—❀❀❀—

परमाह्लादिनि शक्ति भक्तसुखमूल सुहाई । विश्वहेतु निज दिव्य धाम सुख-शान्ति विहाई ॥
भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-दान नित रहैं लुटाई । अवध-धाम गत गोप्रतार-शुचि घट्ट सदाई ॥

मध्य विराजति सोइ कृपालु, बायें ललितांशा । सेवा-परमप्रवीण युक्त सब जासु प्रशंसा ॥
हाथ जोड़ि जो दक्षभाग में खड़ी हुई हैं । श्रीकलाम्बा अमरकीर्त्ति सुख-प्राप्त यही हैं ॥

—❀❀❀—

जो श्रीजनकराजदुलारीजी के ध्यान में निरत और सभी प्रकार की लोकेषणाओं से सदा अछूते रहे, आजानुबाहु महात्मा श्रीनारायणदासजी महाराज के शिष्य उन परमहंसजी महाराज को मैं सर्वदा दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। जिनसे बढ़कर कोई भी शक्ति नहीं उन परात्परा श्रीकिशोरीजी के ही स्मरण चिन्तनानन्द में जो सदा डूबे रहे, काम-क्रोधादि सभी आत्मशत्रु जिन के विनष्ट हो चुके थे, समस्त भारतदेश प्रसिद्ध श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य, उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सदा दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

लौकिक सम्पत्-साध्य समस्त भोगेच्छा से निवृत, लम्ब शरीर, गौरवर्ण श्री अङ्ग से सुशोभित, श्रीकिशोरीजी ही जिनकी सम्पत्ति थीं, श्रीनारायणदासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। जो महर्षियों के समान तेजोमय, ज्ञानमय तथा अभिमान शून्य थे, जिनका दर्शन शयनासन पर कभी भी किसी को सुलभ न था, सबके प्रति जो समान नीति वर्तते थे, जिनकी अनुपम हंस वृत्ति स्मरण मात्र से सबके हृदय को पवित्र करने वाली और मुद्रा गम्भीर थी तथा जिनका दर्शन मङ्गलकारी था, प्राणियों को अन्नाहार प्रदान करने वाले श्रीनारायणदासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं दण्डवत् प्रणाम करता हूं।

समस्त साधु-समाज तथा महात्माओं के लक्षण विज्ञ विद्वानों से सम्मानित, अत्यन्त प्रसिद्ध कीर्ति सम्पन्न श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सदा दण्डवत् प्रणाम करता हूं। किसी से मान की इच्छा न रख कर जो सभी को सम्मान देने, वाले, विचित्र भाव सम्पन्न, अपने नियम के पक्के थे, महात्मा श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सर्वदा नमस्कार (दण्डवत्) करता हूँ।

ब्राह्मण वंश में उत्पन्न तथा जो श्रीवैष्णव कुल भूषण थे, उदारता के सागर महात्मा श्रीनारायणदासजी महाराज के शिष्य, उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सदा नमस्कार (दण्डवत्) करता हूँ। जो श्रीजानकी वाटिका को सुशोभित करने वाले तथा उसी में विराजते थे, इष्ट सिद्धि को प्राप्त, श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सतत दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

समस्त सन्तों में श्रेष्ठ, सारासार के ज्ञाता, वैराग्य धाम तथा जो करुणा रस से सराबोर थे, महामहिमा वाले श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य, उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सदा नमन (दण्डवत्) करता हूँ। जिन्हें हा, त्राहि, पाहि आदि अधिक आर्त्त शब्दों का प्रयोग कभी प्रिय नहीं था और जो अपनी समस्त इन्द्रियों के विजेता थे, अक्षय अन्न भण्डार वाले श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य, उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सर्वदा प्रणाम (दण्डवत्) करता हूँ। कैङ्कर्य रूपी शारीरिक किसी भी क्रिया करने में जिन्हें कभी कोई

लज्जा न थी, जिनके दर्शन मात्र से वैराग्य तथा भक्ति की उपलब्धि होती थी, अत्यन्त शान्त वृत्ति वाले श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं नमस्कार (दण्डवत् प्रणाम) करता हूँ। श्रीकिशोरीजी के दास्य भाव में जो सर्वदा रत रहे, जिनकी बोली बड़ी मधुर (सुखदायक) थी और जो सदैव मुण्डित सिर (भद्र) रहते थे, भारत प्रसिद्ध नाम वाले श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं नमन अर्थात् दण्डवत् करता हूँ।

संसार की माया से जो सदा अछूते रहे, राजा-रङ्क में जिनकी समान दृष्टि थी प्रसिद्ध कीर्त्ति वाले श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सदा दण्डवत् करता हूँ। राजा तथा योगीन्द्र भी हृदय से जिनकी प्रशंसा करते थे, जो सौम्य स्वरूप एवं आलस्य रहित थे, सद्धर्म मूर्त्ति श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंस जी महाराज को मैं सर्वदा नमस्कार (दण्डवत्) करता हूँ।

जिनके नेत्र सदा माधुर्य भाव से सुशोभित थे, रत्नसागर के तट पर जो कुटी में सदा निवास करते थे, वैराग्य मूर्त्ति श्रीनारायण दासजी महाराज के शिष्य उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सदैव नमस्कार (दण्डवत्) करता हूँ।

जो मित भोजी मितनिद्र और मित भाषी थे, जिनका दर्शन, स्नेह और मुख निःसृत वाणी सदा अमोघ थी, सब प्रकार के भयों से मुक्त श्रीनारायणदासजी महाराज के शिष्य, उन श्रीपरमहंसजी महाराज को मैं सतत नमस्कार करता हूँ।

इष्ट सिद्धि को प्राप्त, परमहंसों में सर्वश्रेष्ठ वे गुरुदेव श्री अवधविहारी दासजी महाराज सम्बत् दो हजार एक (२००१) पौष मास की कृष्णा चतुर्थी रविवार के दिन श्रीजनकपुर धाम स्थित रङ्गभूमि के समीप (वर्तमान श्रीसङ्कटमोचन हनुमानजी के स्थान पर) श्रीसाकेत धाम को पधारे। लीला, धाम, वंशावली से युक्त अनुपम मङ्गल गुण समुदाय से अलंकृत श्रीकिशोरीजी का चरित्र, जिनकी कृपा से इस समय ग्रन्थ रूप में कर तल गत हो रहा है, उन परमहंस श्रीअवधविहारी दासजी महाराज को मैं सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

अथ मासिकपाठविश्रामाः।

चतुर्थे त्वादिविश्रामो नवमेऽथ द्वितीयकः। तृतीयः पञ्चदशके चतुर्थस्त्वेकविंशतौ ॥१॥
द्वाविंशे भुवनाङ्केन्दुमिते श्लोके च पञ्चमः। षष्ठमो मुनिभूवेदे श्लोके विश्राम उच्यते ॥२॥
सप्तमश्च चतुर्विंशे ह्यष्टाविंशतिके ऽष्टमः। नवमस्त्वेकत्रिंशे च दशमो वेदविष्टपे ॥३॥
एकादशः सप्तत्रिंशे चत्वारिंशे च द्वादशः। विश्रामः कथितोऽध्याये गुणवेदे त्रयोदशः ॥४॥
चतुर्दशस्तु विश्रामः कार्योऽध्याये रसश्रुतौ। पञ्चदशोऽङ्कवेदे च षोडशो नेत्रमार्गणे ॥५॥

सप्तदशो रसेषौ च गगनर्तौ दशाष्टकः। चतुःषष्ठितमेऽध्याये विश्रामश्चोनविंशकः ॥६॥
ऊनसप्ततिमे विंशः शरर्षविर्कविंशकः। द्वाविंशोऽङ्कहयेऽध्याये त्रयोविंशो ह्यशीतिके ॥७॥
षडशीतितमेऽध्याये चतुर्विंशो विरामकः । मुनिसिद्धौ च विश्रामः पञ्चविंशस्तथोदितः ॥८॥
षड्विंशो निगमाङ्के च सप्तविंशो मुनिग्रहे । अष्टविंशोऽवनिव्योमगगनेऽध्यायके शुभे ॥९॥
ऊनत्रिंशो विरामश्च वाणव्योमभुवीरितः । त्रयस्त्रिंशश्च विश्रामो वसुव्योम सुधाकरे ॥१०॥
विरामाः पठतां चेति सौविध्यार्थं प्रकल्पिताः। भगवद्दत्तया बुद्धया श्रद्धाभावभरात्मनाम् ॥११॥

अथ नावाह्निक पाठविश्रामाः

आदौ स्नेहपरा कुञ्जे दिवोत्थापनवर्णनम् । शृङ्गारागारगमनं श्रीसीतारामयोर्युगे ॥१॥
सर्वेश्वरीपदप्राप्तिस्तृतीयेऽह्नि प्रकीर्त्तिता । चन्द्रभानुसुतायाश्च दम्पत्योः परितुष्टयोः ॥२॥
चतुर्थे मिथिलेशस्य भवने भ्रातृभिः सह। विश्रामो रामभद्रस्य वर्णितोऽनन्तसौख्यदः ॥३॥
सप्रमोदवनस्य श्रीरामस्य काञ्चने वने । आगतस्य च सीतायाः पञ्चमेऽह्नि सुवर्णनम् ॥४॥
भद्रानुशासनं कृत्वा समादृत्य सुचित्रया। श्लिष्टा श्रीजानकी षष्ठे प्रेषिता मातुरन्तिके ॥५॥
सर्वोपास्येति सीतेयं योगेशकविशंसितम्। विश्रामे सप्तमे नाम्नां सहस्रेण महीभृते ॥६॥
अष्टमे मातुरादेशाद्गायन्तीनां सुमङ्गलम्। विवाहमण्डपायानं श्रीसीतायाः सहालिभिः ॥७॥
सीतारामविवाहादि—विविधानन्दवर्णनम् । नवमे वासरे विश्वनाट्यलीलासमन्वितम् ॥८॥

अथवा

आदावष्टादशाध्याये चतुर्विंशे द्वितीयकः । षट्त्रिंशे तु तृतीयश्च वसुवेदे चतुर्थकः ॥१॥
चन्द्रर्तौ पञ्चमः प्रोक्तो ग्रहर्षौ षष्ठमस्तथा। सप्तमो मुनिसिद्धौ च हयाङ्के त्वष्टमः स्मृतः ॥२॥
वसुव्योमक्षितौ पाठविश्रामो नवमः शुभः। एष क्रमो विरामाणामध्यायेषु सुनिश्चिताः ॥३॥

अथैकश्लोकी श्रीजानकी चरितामृतम्

आदौ स्नेहपरानिकुञ्जशयनं श्रीजानकीरामयोः
प्राकट्यं मिथिलेशयज्ञमिषतश्चापोर्विसम्मार्जनम्।
आपाणिग्रहणोत्सवं क्षितिभुवो लीलाकलापान्वितं
श्रीसीताचरितामृतं निगदितं ह्यध्यायमालान्वितम् ॥

सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजू की जय

श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः

श्रीजानकीचरितामृतम्

——❀❀❀❀——

दोहा—भक्ति, भक्त, हरि, गुरु, गरणप, गिरा सशक्ति त्रिदेव ।
बन्दि सबहिं सिय–सिय पिया, सुमिरौं हर अवरेव ॥१॥
बार बार निज युगल प्रभु, चरणकमल शिर नाय ।
कृपावलम्बन करि लिखूँ, टीका सुजन-सुखाय ॥२॥
श्रीसीता-चरितामृतम्, रामप्रिया – यश – गेह ।
टीका युत पढ़ि लहहिं सुख, सज्जन सहित सनेह ॥३॥
सम्बत् मुनि-नभ-गगन-दृग, सुन्दर अगहन मास ।
शर–तिथि, शुक्ला दिवस बुध, टीका करौं प्रकाश ॥४॥
सो सज्जन जन सरल चित, भूल चूक बिसराय ।
पढिहहिं बालक तोतरी, वाणी सहज सुभाय ॥५॥

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥

चेतश्चिन्तयताद्धि सच्च मननं नित्यं विदध्यान्मनो ।
भूयाद्गोनिकरः सदा हितकरो धीः सद्विचारान्विता ॥
अस्माकं कमलार्च्चिते ! प्रतिदिनं रामप्रिये ! याचतां ।
सर्वासम्भवसम्भवाय कुशले ! लीलाजगन्मोहिनि ! ॥१॥

—❀❀❀—

जयतु जनकजाया जानिरिन्दूपमास्यः
स्वजनसुखदलीलो मङ्गलामोदमूर्त्तिः ।
कनकभवननित्यानन्ददाऽनन्तशक्ति-
र्जयतु दयितचेतोवासिनी स्वामिनी मे ॥

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

❀ अनुपमकरुणामय श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❀ श्रीआचार्यचरणकमलेभ्यो नमः

श्रीजानकी-चरितामृतम्

।। श्रीअयोध्या (कनक-भवन) खण्डम् ।।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

मङ्गलाचरण तथा जीव कल्याणार्थं श्रीसीताराम नित्यसम्बन्धाधिकार प्राप्ति साधनोपदेश ।

श्री सूत वाच ।

श्रीन्दुमौलिदयितादिवन्दिता तारिणी सहृदया दयार्णवा ।
वादिशाऽस्तु भवतां शिवाय सा सेवनीयचरिता विदेहजा ॥१॥

तस्यै नमः सततमस्तु सहस्रकृत्वः सीतेति नाम भुवनप्रथितं यदीयम् ।
या सानुकम्पहृदयेन निजेन रामं सर्वेश्वरं कृतवती परितो विमुग्धम् ॥२॥

श्री (लक्ष्मी) जी इन्दुमौलिदयिता श्री (पार्वती) जी आदि प्रधान से प्रधान सभी शक्तियाँ जिन्हें प्रणाम करती हैं, जो सभी के हृदय की पुकार एकाग्रचित्त से सदा श्रवण करती हैं, जैसे समुद्र सर्वथा सभी के लिए अथाह है, वैसे ही जिनकी दया सभी के द्वारा सर्वथा अथाह है, जो भक्तों के वास्तविक हित-अहित की पूर्ण जानकारी रखती हैं, तथा अपने कल्याण के लिए जिनके चरित्र गृहस्थों से लेकर विरक्तों तक सभी प्राणियों के लिये सेवन योग्य हैं वे विदेह महाराज की श्रीराजदुलारी श्रीजानकीजी, आप समस्त प्राणियों का कल्याण करें ॥१॥

जिन्होंने अपने सहज दयापरिपूर्ण हृदय द्वारा सब प्रकार से सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी को मुग्ध (मोहित) कर रक्खा हे, जिनका "श्रीसीताजी" ऐसा सुन्दर, मनोहर, मंगलकरण नाम तीनों लोकों के प्राणियों की जिह्वा पर आज विद्यमान है, उन श्रीकिशोरीजी के लिये हमारा सहस्रों बार सर्वदा प्रणाम है ॥२॥

तस्मै नमः प्रभुवराय सहस्रकृत्वः सम्पूर्णलोकपरिकीर्तितनामकाय ।
यो मैथिलीपरममङ्गलबालकीर्त्तिश्रोतृप्रधानपरमोज्ज्वलकीर्त्यकीर्तिः ॥३॥
तस्यै नमोऽस्त्वहरहः सततं शिवायै या श्रीमहेशमुखतश्चरितानि पूर्वम् ।
श्रीमैथिलीचरणपद्मजुषां हिताय पृष्ट्वाऽर्पयन्मुनिगणाय महीसुतायाः ॥४॥
तस्यै नमोऽस्तु परितः सततं सभावं कात्यायनीत्यभिधया श्रुतिमागतायै ।
या याज्ञवल्क्यमुनिमौलिमपृच्छदेतत् सीतासुमङ्गलयशो जगतः शिवाय ॥५॥
तस्मै नमोऽस्त्वथ सदाऽसकृदम्बिकाया नाथाय वायुतनयाभिधया स्मृताय ।
यः श्रीविदेहतनयादशयानसून्वोर्लब्धानुकम्पजनमुख्य उदारसेवः ॥६॥
तस्मै नमोऽस्तु तनयाय पराशरस्य व्यासाह्वयाय मुनिमौलिविभूषणाय ।
यत्पादपद्मकृपयाऽद्य यशः पवित्रं प्राप्तं प्रदातुमहमस्मि समुद्यतो वः ॥७॥
तुभ्यं नमोऽस्त्वखिललोकहिते रताय सश्रद्धमाप्तयशसे महतां वराय ।
पृष्टेदमद्य सुरहस्यमुरः स्पृशं मे सौख्यं परं त्वमददश्चिरमीप्सितं यत् ॥८॥

जिनके "श्रीराम" इस मङ्गलमय पतितपावन नाम का कीर्त्तन तीनों लोकों में किया जाता है, जो श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू की परम मङ्गलमय बालकीर्त्ति के श्रोताओं में प्रधान तथा कीर्त्तन करने के योग्य परम उज्ज्वल कीर्त्ति वाले हैं, उन प्रभुवर कौशल्या-नन्दनजी को मेरा नमस्कार है ॥३॥ श्रीमिथिलेशललीजू के चरणकमलानुरागी सेवकों के हितार्थ स्वयं प्रश्न करके भगवान् शंकरजी के ही मुखारविन्द से जिन्होंने मुनियों के लिये श्रीभूमिसुताजी के चरित्रों को प्रदान कराया है, उन श्रीपार्वतीजी के लिए सर्वदा मेरा नमस्कार है ॥४॥

श्रीमिथिलेशदुलारीजू के इस सुन्दर मङ्गलमय बाल-चरित को भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजी से जिन्होंने पूछा है, तथा "श्री कात्यायनी" इस नाम से जो श्रवणगोचर हो रही हैं अर्थात् जिनका कात्यायनी यह शुभ नाम सुना जाता है, उनको हृदय से मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ॥५॥ जो श्रीविदेहकुमारी और श्रीदशरथनन्दनजू के कृपापात्रों में मुख्य हैं, जिनकी सेवा सकल मनोरथों को सिद्ध करने वाली है, जो कैङ्कर्य-लोभ से पवन-पुत्र श्रीहनुमान नाम से स्मरण किये जाते हैं, उन अम्बिकापति भगवान् श्रीसदाशिवजी को हमारा बारंबार प्रणाम है ॥६॥

जिनके श्रीचरण-कमल की कृपा से प्राप्त श्रीकिशोरीजी के इस पवित्र यश को मैं आप लोगों को प्रदान करने के लिये सम्यक् प्रकार से उद्यत हूँ, उन मुनि-शिरोमणि पराशर पुत्र भगवान् श्री व्यासजी के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

अहह !! आपने इस परम सुन्दर रहस्य को पूछकर मुझे बहुत दिनों से अभिलषित मन मोहक महान् सुखको प्रदान किया है, अतएव प्राणि-मात्र के हितपरायण, महात्माओं में श्रेष्ठ आप्तयशआप को बार-बार नमस्कार है ॥८॥

सीरध्वजसुताकीर्त्तिः कीर्त्यमाना मयाऽधुना । श्रूयतां यतचित्तेन स्वपृष्टा मुनिसत्तम ॥९॥
रामस्य लोकरामस्य प्रेरणेयं विभाव्यताम् । वक्तुं सीतायशश्चेतो मम लोलायते भृशम् ॥१०॥
सीतारामौ प्रणम्याहं जगद्धेतू जगद्गुरु । अन्तरङ्गां तयोर्लीलां प्रवक्ष्ये प्रेरितात्मना ॥११॥
कात्यायनी तपःसिद्धा याज्ञवल्क्यप्रिया शुचिः । श्रुत्वाऽनेकचरित्राणि पुराणोक्तानि भूरिशः ॥१२॥
निवसन्ती च तेनैव पत्या सार्द्धं शुभोटजे । असौ यच्चिन्तयामास तत्कल्याणि निबोध मे ॥१३॥
अस्मिन् देशे परा शक्तिः सर्वशक्तीश्वरेश्वरी । आविरासीत्क्षितेर्गर्भाच्छ्रीसाकेतविहारिणी ॥१४॥
यस्याश्चरणविन्यासैः पावितेयं वसुन्धरा । ब्रह्मादिभिः सदा वन्द्या तीर्थानां कल्मषापहा ॥१५॥
यस्याः कृपात एवेह विमुक्तिर्भवबन्धनात् । यामृते नात्मनः श्रेयो या हि नः परमा गतिः ॥१६॥
तस्या एवं न चाद्यापि जन्मादिककथा श्रुता । शृण्वन्त्या सत्कथाश्चान्या विपुला बहुकालतः ॥१७॥
सर्वज्ञं पतिमासाद्य ज्ञातव्यमवशिष्यते । यदि वा जीवितं व्यर्थं जीवितं पापजीवितम् ॥१८॥

हे मुनियों में श्रेष्ठ अपने द्वारा पूछी हुई श्रीसीरध्वज महाराज की श्री राजकुमारीजी की बालकीर्त्ति को एकाग्रचित्त से आप श्रवण करें ॥९॥
मेरा चित्त श्रीकिशोरजी के चरित्रों का वर्णन करने के लिये इस समय अत्यन्त लालायित हो रहा है, अतएव आपकी जिज्ञासा और मेरे कथन करने की उत्कट इच्छा में भुवनाभि प्रभु श्रीराम की प्रेरणा ही प्रधान समझनी चाहिये ॥१०॥

प्रेरणा युक्त हृदय हो जाने से अब मैं जगत् (स्थावर जङ्गमादि समस्त प्राणियों) के कारण, सभी चर-अचर के गुरु श्री सीतारामजी को प्रणाम करके उनकी अन्तरङ्ग लीलाओं का वर्णन करूँगा ॥११॥ हे श्रीशौनकजी, तप के प्रभाव से जिनको सिद्धावस्था तथा पवित्रता प्राप्त है, उन याज्ञवल्क्य वल्लभा श्रीकात्यायनीजी ने अपने पतिदेव के द्वारा हृदय की आन्तरिक बातें समझने के लिए जिस प्रकार विचार किया, उसे मैं आपको सुनाता हूँ ॥१२॥१३॥

इसी मिथिला प्रदेश में भूमि के गर्भ से समस्त शक्तिनायक की परात्परा शक्ति श्रीसाकेत-विहारिणी, (श्रीकिशोरीजी) प्रकट हुई थीं ॥१४॥ जिन सर्वेश्वरी जू के श्रीचरणकमल के स्पर्श मात्र से पवित्र हुई यह "श्रीमिथिला-भूमि" सभी के पापों को हरण करने वाली एवं ब्रह्मादि देवों के लिए भी सदा वन्दनीय है ॥१६॥ जिनकी कृपा से ही जन्म-मरण के बन्धन से वास्तविक छुटकारा मिलता है, जिनकी अनुकम्पा हुये बिना अपना कल्याण है ही नहीं, जो हम सभी जीव मात्र की चारो ओर से रक्षा करने वाली तथा सुख और कल्याण की उपाय स्वरूपा हैं ॥१६॥ हाय, मैं बहुत दिनों से अनेक सत्कथाओं का श्रवण करती आरही हूँ तथापि आज पर्यन्त उन (श्रीकिशोरीजी) के ही प्रकट होने की परम मंगलमयी कथा को नहीं सुन सकी हूँ ॥१७॥ सर्वज्ञ पति को प्राप्त करके भी यदि जानने योग्य बात ही जाननी बाकी रह गयी, तो वह पापमय जीवन किस काम का ? ॥१८॥

इति निश्चित्य पूतात्मा सारं सारविदां वरम् । प्रभातेऽपृच्छदासीनं याज्ञवल्क्यं कृतक्रियम् ॥१९॥

श्रीकात्यायन्युवाच ।

परब्रह्मांभूतोऽपि जीवोऽयं केन हेतुना । पीडयते जन्ममृत्युभ्यां बोध्यमानोऽपि चागमैः ॥२०॥
कथमस्य विमोक्षः स्यादनायासेन तद्वद । गोपनीयमपीदानीं न दास्या गोपय प्रभो ॥२१॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमभ्यर्थितः श्रीमान् योगिवर्य्यो महामुनिः । याज्ञवल्क्यः सतां श्रेष्ठ उवाच विनयान्विताम् ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा चैवावधारय । श्रुतीनामत्र सिद्धान्तं मुनीनां भावितात्मनाम् ॥२३॥
नाना योनिषु जीवस्य जन्ममृत्योश्च कारणम् । मोह एव परो ज्ञेयस्तत्स्वरूपं निबोध मे ॥२४॥
असत्सम्बन्धसम्बन्धः सत्सम्बन्धानभिज्ञता । गुणत्रयात्मिका माया तद्बीजमवधार्यताम् ॥२५॥
तस्या निवृत्तिकामस्तु मायेशौ शरणं व्रजेत् । मायेश्वरौ विजानीहि सीतारामौ परात्परौ ॥२६॥

इस प्रकार सार बात को जानना आवश्यक निश्चय करके, विशुद्ध अन्तःकारण वाली श्रीकात्यायनीजी ने, प्रातःकाल आवश्यक क्रिया पूरी करके विराजमान होने पर सारवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी से पूछा ॥१९॥ प्रभो! यह जीव एक तो परब्रह्म का अंश है ही, दूसरे इस को शास्त्र भी बराबर स्वरूप तथा कर्त्तव्यज्ञान कराते रहते है तथापि वह कौनसा कारण है ? जिससे यह जीव, जन्म–मरण से पीड़ित रहता है ॥२०॥ इस जीव को जन्म-मरण से किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है ? छुटकारा पासकने का यदि कोई गुप्त साधन भी हो, तो भी दासी से गुप्त न रखा जाय ॥२१॥ श्रीसूतजी महाराज बोले–हे शौनक मुने ! श्रीकात्यायनीजी की इस प्रकार प्रार्थना सुनकर योगियों में श्रेष्ठ, सन्तप्रवर, महामुनि श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज विनययुक्ता उन श्रीकात्यायनीजी से बोले ॥२२॥ हे देवि ! मैं आप के इस प्रश्न के उत्तर में श्रुतियों तथा अनुभवशील मुनियों का सिद्धान्त कहूँगा, उसे सुनें और हृदय में धारण करें ॥२३॥ हे प्रिये ! नाना योनियों में जीव के जन्म-मरण का मुख्य कारण मोह ही समझना चाहिये, उस का स्वरूप मुझसे समझ लो ॥२४॥

माता, पिता, बन्धु, बान्धव, पुत्र, कलत्र, (स्त्री) मित्र, आदि, जो केवल कल्पना मात्र से मान लिये गये हैं, उनमें आसक्ति हो जाना और जो वास्तविक माता, पिता, बन्धु, मित्र, सुहृद सब कुछ अपने हैं, उन सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अघटित-घटना-पटीयान्, अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सर्वगत, सर्व उर निवासी प्रभु से अपने सम्बन्ध के ज्ञानका अभाव रहना ही मोह का स्वरूप है, उस मोहकी उत्पत्तिका कारण सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों से युक्त माया है ॥२५॥

उस त्रिगुणात्मिका माया से जो बचना चाहे वह मायापति की शरण जाय, मायापति परात्पर प्रभु, श्रीसीतारामजी को ही जानो ॥२६॥

अनेकजन्मसंस्कारैः सतां सत्सङ्गतस्तथा। शास्त्राणां श्रवणाच्चापि प्राकृतं ज्ञानमाप्यते ॥२७॥
अथाविद्यामयं तेन सुखं यद्दृश्यते भुवि। केवलं दुःखरूपं तन्मत्वेहेत निवृत्तये ॥२८॥
ततः श्रीराममुद्राभिरूर्ध्वपुण्ड्रेण चान्वितम्। ब्रह्मिष्ठं शोभितग्रीवं तुलस्या युग्ममालया ॥२९॥
सीतारामरहस्यज्ञं दयादिगुणमन्दिरम्। क्षमावन्तं जितामित्रं सर्वभूतानुकम्पिनम् ॥३०॥
शुद्धधर्मोपदेष्टारं वेदवेदान्तपारगम्। गतद्वन्द्वं मुनिं शान्तं हीनदर्पं दृढव्रतम् ॥३१॥
धर्मिष्ठं शरणं गत्वा गुरुं त्रैलोक्यपावनम्। प्रणतिप्रश्नसेवाभिर्लभेत ज्ञानमद्भुतम् ॥३२॥
अनुभूतिः स्वरूपस्य पररूपस्य तेन वै। इष्ट-प्राप्तिसमुत्कण्ठा विरतिर्जनसंसदि ॥३३॥
प्रेमा-परादिभक्तीनामुदयश्चातिनम्रता। तल्लग्नचित्तवृत्तिश्च सद्गुणानां प्रकाशनम् ॥३४॥
भवत्यत्यन्तवैराग्यं विशुद्धं भव-बाधकम्। विज्ञानस्थदशायाश्च परीक्षेयं मयोदिता ॥३५॥

हे प्रिये! अनेक जन्मोंके शुभसंस्कारों (पुण्यफलों) से, सन्तोंके सत्सङ्गसे और शास्त्रोंके श्रवणसे साधारण ज्ञान प्राप्त होता है ॥२७॥ उस (साधारण) ज्ञानसे पृथ्वी पर जो बाह्येन्द्रिय-विषय-जन्य सुख दिखाई देता है उसे, मायामय अर्थात् क्षणिक केवल प्रलोभन कारक और अन्तमें दुःखद मानकर उससे निवृत्ति पानेकी इच्छा करे ॥२८॥

तदनन्तर श्रीसीतारामजीकी मुद्राओंसे युक्त, ऊर्ध्वपुण्ड्रसे सुशोभित भाल और युगल तुलसीकी कण्ठीसे शोभायमान कण्ठ, परात्पर ब्रह्म श्रीसीतारामजीमें पूर्ण निष्ठा रखने वाले, दया आदि सकल दिव्य गुणोंसे युक्त क्षमा (सहन) शील, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेषादि सकल शत्रुओं पर विजय प्राप्त किये हुए, सभी प्राणिमात्र पर दया करने वाले, शुद्ध धर्मके उपदेशक, वेद और उपनिषत् (वेदान्त) रहस्यके ज्ञाता, शीत-घाम, सुख-दुःख, जीवन-मरण, यश-अपयश, लाभ-हानि, अच्छी-बुरी, इष्ट-नेष्ट सभी परि-स्थितियोंमें समभाव वाले, प्रभुके लीलारहस्यादिका मनन करने वाले, अष्टयाम सेवा-परायण, किसी भी कारणसे चंचलचित्त न होने वाले, अभिमान रहित, अपने नियम व्रतमें दृढ़, वेदानुकूल अपने स्वीकृत धर्ममें पूर्णनिष्ठा रखने वाले, त्रिलोकीको पवित्र करने के लिए समर्थ, ऐसे श्रीगुरुदेव महाराजकी शरण जाकर प्रथम उनको विनीत भावसे श्रद्धापूर्वक प्रणाम करे, फिर सेवापरायण हो, दयाद्रवित गुरुदेवकी आज्ञा मिलने पर अपने कल्याणार्थ प्रश्न करके उनसे अद्भुत (लोकोत्तर याने अलौकिक) ज्ञानको प्राप्त करे ॥२९॥३०॥३१॥३२॥

उस अलौकिक ज्ञानकी प्राप्ति हो जाने पर अपने स्वरूपका और परात्पर प्रभु श्रीसीता-रामजीके स्वरूपका अनुभव तथा अपने उन श्रीयुगल इष्टदेव सरकारकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रकारसे उत्कण्ठा, लोक समाजसे वैराग्य, प्रेमा, परा आदि भक्तियोंका हृदयमें उदय, नम्रताकी प्राप्ति, अपने उपास्यदेवमें चित्तवृत्तिकी आसक्ति और शुभगुणोंका प्रकाश तथा जन्म-मरण नाशक विशुद्ध वैराग्य प्राप्त होता है। विज्ञान प्राप्त किये हुए मनुष्यकी दशाकी यह परीक्षा मैंने वर्णन की है ॥३३॥३४॥३५॥

ततो विज्ञानिनस्तस्य निर्मले हृदि शोभने । श्रीसीतारामसम्बन्धाधिकारो जायते ध्रुवः ॥३६॥

हे शोभने ! तब उस अलौकिक ज्ञान सम्पन्न साधकके निर्मल (विकार रहित) हृदयमें श्रीसीतारामजीके प्रति किसी भी प्रकारके सम्बन्धमें अटल अधिकार प्राप्त होता है ॥३६॥

इति प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीसीताराम—नित्य सम्बन्धियोंकी भावनिष्ठा तथा सेवोपकथन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

चेतसा चिन्तयेदित्थं नित्यसम्बन्धमात्मनः । नाहं देहो न वै प्राणा न मनोऽहं न चेन्द्रियम् ॥१॥
न वर्णी नाश्रमी चाहं नो मनुष्यो न देवता । निरुपाधिकतत्सत्त्वात्तदीयोऽस्मीति केवलम् ॥२॥
विशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपो गतमायकः । तुरीयावस्थया युक्तो महाकारणदेहगः ॥३॥
यथा बद्धो भवेन्मूर्खोऽनित्यसम्बन्धबन्धनैः । तथा मुक्तो भवेद्धीमान् नित्यसम्बन्धसाधनैः ॥४॥
स त्वनन्तविधः प्रोक्तः शान्तारम्भोज्ज्वलान्तकः । वैचित्र्येण रुचीनां च सर्वथाऽभीष्टसिद्धिदः ॥५॥
शान्तं सर्वगतं मत्वा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । तस्यागणितभेदांश्च सुविचार्य पुनः पुनः ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे बोले :— हे प्रिये ! वह लोकोत्तर ज्ञान-सम्पन्न साधक, अपने चित्तसे इस प्रकार चिन्तन करे कि, न तो मैं देह हूँ और न प्राण हूँ, न मन हूँ, न शरीरस्थ कोई इन्द्रिय ही हूँ ॥१॥ वास्तव में मैं न मनुष्य हूँ न देवता ही हूँ, न कोई वर्ण या आश्रम विशेष वाला हूं मैं तो उपाधि [आवरण] रहित ब्रह्मकी सत्ता वाला होनेके कारण उन्हीं सर्वेश्वर प्रभुका अंश हूँ ॥२॥

उस सच्चिदानन्द घन परब्रह्मका अंश होनेसे मैं भी तीनों गुणोंसे परे सत्-चित्-आनन्द-घन स्वरूप, मायासे रहित, तुरीयावस्थासे युक्त, महाकारण याने वासनातीत शरीर में समाया हूँ ॥३॥ जैसे स्वस्वरूप, और परस्वरूपका ज्ञान न रखने वाला मूर्ख, विषयासक्त प्राणी, क्षणभङ्गुर लौकिक सम्बन्धके बन्धनों द्वारा जीवन-मरण रूपी चक्रमें बँध जाता है, उसी प्रकार निज और पर-स्वरूपका ज्ञान प्राप्त बुद्धिमान् प्राणी, उन परात्पर ब्रह्म सर्वेश्वर प्रभु श्रीसीतारामजीके प्रति सदा अपने स्थायी सम्बन्ध भाव के साधनों द्वारा आवागमन से छूट कर अविनाशी अखण्डानन्द सागरमें निवास करता है ॥४॥

लोगों की भिन्न-भिन्न रुचिके कारण सर्वेश्वर प्रभुके प्रति सम्बन्ध,-भाव शान्तिसे प्रारम्भ कर उज्ज्वल (शृङ्गार) भाव पर्यन्त अनन्त प्रकारका वर्णन किया गया है, किन्तु सर्वेश्वर प्रभुके साथ वह सभी प्रकारका सम्बन्ध भाव, साधकको मनोऽभिलषित अर्थात् मन-चाहा फल प्रदानकारी है ॥५॥ तत्त्वदर्शी महर्षियोंने उस सम्बन्ध भावके अनन्त भेदोंको बारम्बार विचार करके तथा उनमें शान्तभावको प्रायः सभीमें समाया हुआ मान कर ॥६॥

स दास्य–सख्य–वात्सल्य–शृङ्गारैर्वर्णितोऽनघे । विभक्तो वितायासः सम्बन्धो नित्यधामदः ॥७॥
क्रमादेकैकभावस्योपासकानां सुचेतने ! धारणां संप्रवक्ष्यामि यथावत्त्वं निशामय ॥८॥
दासस्तु द्विविधः प्रोक्त स्त्वधिकारप्रभेदतः । शृणुतद् यतचित्ता त्वं वदतो मम शोभने ! ॥९॥
मिथिलासम्भवा दासाः सर्वसेवाधिकारिणः । अपरे च त्वया ज्ञेया बाह्यसेवाधिकारिणः ॥१०॥
अत्रादौ मैथिलानां तु धारणा प्रोच्यते मया । सावधानात्मनाऽऽकर्ण्या पुनरन्यत्र वासिनाम् ॥११॥
श्रीविदेहान्वये जाता जानक्या अनुजाः प्रियाः । गौरवर्णावियं च स्मः कार्या सेवा तयोर्हि नः ॥१२॥
पाणिग्रहणकाले तु मैथिल्याः स्मृतिविह्वलाः । सेवार्थमर्पिताः प्रेम्णा मात्रा-पित्रा विचार्य च ॥१३॥
तल्लग्नचित्तवृत्तीनां गतिः सर्वत्र नस्तथा । स्वसॄणां हि यथाऽस्माकं ताभ्यां सार्द्धमिति ध्रुवम् ॥१४॥

उसको दास्य, (दासभाव) सख्य, (सखाभाव) वात्सल्य, (माता-पिता भाव) शृङ्गार, (सखी तथा कान्ता भाव) इन चार प्रकारके भावोंमें विभक्त करके वर्णन किया है । हे निष्पापे ! उस सम्बन्ध भावमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं है, वह नित्य (सदा स्थिर रहने वाले अविनाशी प्रभुके) धाम साकेत को प्रदान करता है ॥७॥

हे शुभमते ! अब मैं उक्त चारों भावोंके उपासकोंकी धारणाका पृथक–२ यथावत् क्रमशः वर्णन करता हूं, आप श्रवण करें ॥८॥ हे शोभने ! अधिकार–भेदके कारण दास दो प्रकारके कहे गये हैं, उनको आप एकाग्रचित्तसे श्रवण करें ॥९॥

श्रीमिथिलाजीमें जिनका जन्म हुआ है, वे दास श्रीयुगल सरकारकी सभी सेवाके अधिकारी हैं, उनसे इतर अन्य देश, नगर निवासी दासोंको आप श्रीसीतारामजीकी बाहरी सेवाके अधिकारी जानिये ॥१०॥ इन दोनों प्रकारके दासोंमें पहले—मैं श्रीमिथिलाजीमें जन्म लिये हुए दासोंकी धारणाका वर्णन करता हूँ, उसे आप सावधान चित्तसे सुनें, पश्चात् अन्य देश निवासी दासोंकी धारणाको श्रवण करेंगी ॥११॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके कुलमें ही हम लोगोंका जन्म हुआ है, अत एव हम श्रीकिशोरीजीके गौर वर्ण, प्यारे छोटे भइया हैं, हमारा कर्त्तव्य श्रीयुगल सरकारकी केवल सेवा मात्र है ॥१२॥

श्री किशोरीजीके पाणि–ग्रहणके समय जब विवाहके बाद उनसे वियोग होनेका अनिवार्य अवसर उपस्थित स्मरण आया तो हम लोग विह्वल हो गये, यह देखकर हमारे माता–पिताजी ने भी हमारे लिए श्रीकिशोरिजी का वियोग सहन न कर सकने योग्य विचार करके हमें युगल सेवामें समर्पित कर दिया ॥१३॥ जैसे हमारी बहनोंको सभी स्थानोंमें जानेका अधिकार है, वैसे ही श्रीयुगल सरकारमें लगी हुई चित्तवृत्ति वाले हम लोगोंका भी निःसंदेह श्रीयुगल सरकारके साथ–साथ सर्वत्र जानेका अधिकार है, यह (श्रीमिथिलाजीमें जन्म ग्रहण किये हुए दासोंकी दृढ़ धारणा होती है ॥१४॥

अन्यत्रसम्भवा दासा रघुवंशं कुलं निजम् । अमात्यपुत्रं वाऽऽत्मानं भावयेयुः सुनिष्ठया ॥१५॥
आचार्यो वायुसूनुश्च तोषणीयो यथार्हतः । दासानामेव आचार्य्यो महाभागवतोत्तमः ॥१६॥
मुख्यसेवाधिकारस्तु रत्नसिंहासनालये । मध्याह्नोत्तरकाले च रामसेवाधिकारिणः ॥१७॥
समर्यादस्य रामस्य सर्वकुञ्जेष्वपि प्रिये ! दर्शनस्याधिकारस्तु विज्ञेयो जानकीपतेः ॥१८॥
गौरवर्णं तथा ज्ञेयमात्मनः कार्यमर्चनम् । श्रीसीतारामयोर्भक्त्या सर्वस्वं तौ दयानिधी ॥१९॥
सर्वः सर्वनियन्ताऽसौ सर्वकारणकारणम् । सर्वावतारमूलं च सर्वसाक्षी च सर्वगः ॥२०॥
श्रीवैकुण्ठादिलोकानां कारणे परमाद्भुते । विचित्ररचनोपेते साकेते परधामनि ॥२१॥
शुद्धसत्त्वमये रम्ये सुदिव्यमणिमण्डपे । ससीतो राजते रामो दासीदासगणैर्वृतः ॥२२॥
दासवृन्दैः सखिव्यूहैः सखीवृन्दै रघूत्तमः । अत्यानन्दमयीं लीलां कुरुते स्वेच्छया प्रभुः ॥२३॥
सख्यभावाश्रितानां च भेदास्तुर्यविधाः स्मृताः । अयोध्यामिथिलानाम्नो वयसश्च प्रभेदतः ॥२४॥
नैमिवंश्यकुमारा ये जानक्याश्च वयोऽवराः । सखायो रामचन्द्रस्य मधुराः पार्श्ववर्तिनः ॥२५॥

श्रीमिथिलाजीसे बाहर अन्य देशोंमें जिनका जन्म हुआ है, वे रघुवंशको ही दृढ़ निष्ठा से अपना वंश समझते हैं, अथवा अपनेको मन्त्रि-पुत्रकी भावना करते हैं ।

उन दासोंको आचार्य महाभागवत-शिरोमणि श्रीपवनकुमारजी को युक्त रूपसे प्रसन्न कर लेना चाहिये, क्योंकि वे ही दास्य भाव वाले सभी साधकोंके मुख्य आचार्य हैं ॥१६॥

इन दासोंको श्रीरत्न सिंहासन कुंजमें और मध्याह्न विश्रामसे उठनेके बाद श्रीयुगल सरकारकी बाहरी सेवा करनेका मुख्य अधिकार है ॥१७॥

हे प्रिये ! मर्यादा युक्त विराजमान श्रीजानकीजीवनके दर्शनका अधिकार तो उन्हें प्रायः सभी कुञ्जोंमें जानिये ॥१८॥ वे अपने शरीरको गौर वर्ण वाला जानें, तथा श्रीयुगल सरकारकी प्रेम पूर्वक सेवाको ही अपना प्रधान कर्त्तव्य और उन्हीं दयानिधिको अपना सर्वस्व समझें ॥१९॥ वे सर्वस्वरूप (सभी प्रकारके स्वरूपोंमें विराजमान) छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े सभी जन्मदाताओंके जन्मदाता, सभी अवतारोंके कारण, सभी प्राणि-मात्र-के अच्छे बुरे कर्मों के साक्षी (गवाह) सब जगह परिपूर्ण ॥२०॥

विचित्र रचनायुक्त, परम आश्चर्यमय, वैकुण्ठादि सभी लोकोंके कारणस्वरूप सर्वोत्कृष्ट श्रीसाकेत धाममें ॥२१॥ शुद्ध सत्वमय, (स्वच्छ) रम्य एवं अत्यन्त दिव्य मणिमण्डपमें दासी तथा दास गणोंसे युक्त श्रीराघवेन्द्र सरकारजू श्रीकिशोरीजी सहित विराजते हैं ॥२२॥

और अपनी इच्छासे दासवृन्द, सखावृन्द तथा सखीवृन्दोंके सहित प्रभु अति आनन्दमयी लीलाओंको करते हैं ॥२३॥ सख्यभाव वालोंके भी अवस्था और श्री अयोध्या मिथिला, युगलपुरियोंके नाम भेदसे चार भेद हैं ॥२४॥ निमि वंशियों के पुत्र जो श्रीकिशोरीजीसे अवस्थामें छोटे है, वे श्रीरामसरकारके समीप रहने वाले मधुर सखा कहलाते हैं ॥२५॥

अव्याहतगतिस्तेषां सर्वकुञ्जेषु नित्यशः। मैथिलीरामचन्द्राभ्यां स्वसृणां च यथा तथा ॥२६॥

बाह्यक्रीडासहायास्तज्ज्येष्ठा मन्त्रीनवंशजाः। सखायोऽन्तःप्रवेशार्हा अपौगण्डवयः स्थिताः ॥२७॥
भ्रातरं मिथिलेन्द्रस्य साकेताधिपतेश्च वा। वात्सल्य-भावसम्पन्नाः स्वात्मानं भावयन्ति हि ॥२८॥
सुखार्थं श्रेयसे चैव मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः। कार्यं तथाऽऽत्मनो यावद्विदुस्ते रामसीतयोः ॥२९॥
शृङ्गारभावसम्पन्नाः कुमार्यो निमिवंशजाः। सर्वसेवाधिकारिण्यो मुख्याः सख्य उदाहृताः ॥३०॥
तासां च धारणां वक्ष्ये सावधानतया शृणु। सुखसाध्यप्रयत्नोऽयं नित्यधाम्नः सुदुर्लभः ॥३१॥
निमिवंशेऽवतीर्णायाः सीतायाः कामरूपिणी। सर्वेश्वर्या विशालाक्ष्या अनुजाऽहं पदानुगां ॥३२॥
सा हि मे परमोपास्या जीवनं परमं धनम्। प्राप्या प्राप्तेरुपायश्च शरणं प्रेमभाजनम् ॥३३॥
तस्या अन्यन्न जानामि न ज्ञातव्यं हि विद्यते। सा सेव्याऽनन्यभावेन मनसा वपुषा गिरा ॥३४॥

श्रीमिथिलाजीमें जन्म लिये हुए, उन सखाओंको भी निमिवंश कुमारियोंके सरीखे ही श्रीयुगल सरकारके साथ-साथ सर्वत्र जानेका अधिकार है ॥२६॥ जो मन्त्रियोंके पुत्र अथवा सूर्यवंशमें उत्पन्न, सरकारसे अवस्थामें कुछ बड़े हैं, वे बाहरी लीलाओंमें सरकारके सहायक बनते हैं, और जिनकी अभी प्रौढ़ अवस्था नहीं हुई है, वे सखा सरकारके अन्तःपुर की लीलाओंमें भी प्रवेशके अधिकारी हैं। इस प्रकार सख्य भाव वालोंकी धारणा होती है ॥२॥ वात्सलय भाव वाले साधक अपनेको, श्रीमिथिलेशजी महाराज अथवा श्रीकोशलेन्द्र महाराजका भाई मानते हैं ॥२८॥

श्रीसीतारामजी को जिससे सुख हो अथवा उनका कल्याण हो, उसे ही मन, वचन, बुद्धि, कर्मसे करना वे अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते हैं। यही वात्सल्य भाव वालोंकी धारणा है ॥२९॥ श्रीनिमिवंश-कुमारियाँ शृङ्गार (कान्ता) भावसे युक्त होनेके कारण श्रीयुगल सरकार की सर्वसेवाधिकारिणी, प्रधान सखी कही गयी हैं ॥३०॥

उन शृङ्गार भाव सम्पन्ना निमि-वंश-कुमारियों की धारणा कहता हूँ, आप सावधान होकर श्रवण करें। यह शृङ्गार-भाव नित्य (सदा सर्वदा एक रस रहने वाले श्रीसीतारामजी के) धाम साकेतकी सुख पूर्वक प्राप्ति कराने वाला है। परन्तु इसकी प्राप्ति भी बहुत कठिनाईसे होती है ॥३१॥ मैं निमिवंश में प्रकट हुई विशाललोचना, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी के पीछे-पीछे चलने वाली उनकी, छोटी बहन हूँ ॥३२॥ अतः हमारे लिए निश्चय ही सबसे बढ़ कर उपासना करने योग्य देवता, जीवनस्वरूपा, परम (उत्कृष्ट, सर्वश्रेष्ठ) धन, प्राप्त करने योग्य, प्राप्ति-उपाय स्वरूपा, सब ओरसे रक्षा करने वाली, निर्भय स्थान तथा प्रेमपात्र वही किशोरीजी हैं ॥३३॥ उन श्रीकिशोरीजीके अतिरिक्त और न मैं कुछ जानती हूँ और न कुछ जानना मुझे आवश्यक ही है, मेरी तो अनन्य भाव पूर्वक हृदयसे, वाणीसे और शरीर से सतत सेवन करने योग्य केवल एक वे ही हैं ॥३४॥

यथा प्राकृतदेहेऽहं प्रविष्टा प्रकृतेः परा । तथा प्राकृतदेहेषु प्रविष्टं मेऽखिलं कुलम् ॥३५॥
पश्यन्त्यपि न पश्यामि कुलं निर्मायिकं स्वकम् । कुतस्तु मैथिलीं सीतामतोऽहं भवपाशगा ॥३६॥

विवाहकाले जनकात्मजाया उद्वाहिताऽहं रघुनन्दनेन ।
सेवार्थमेवेह निबद्धभावा पित्रा प्रदत्ताऽस्म्यसुरक्षणाय ॥३७॥

लक्ष्मीपतिर्मातृकुलस्य देवता श्रीरङ्गनाथः कुलपूज्यदैवतम् ।
सखीप्रधानेन्दुकला ममाप्यसावाचार्यभूता भरताग्रजः पतिः ॥३८॥

मुख्यालयः श्रीकनकालयो मम प्राप्तिः प्रियस्य प्रणिपाततुष्टया ।
प्रधानकं तत्सुखमेव निर्मलं तथा कृपासाध्यमपीतरत्सुखम् ॥३९॥

विस्मृतं सकलं पूर्वं स्मारितं कृपया गुरोः । संस्मरन्ती त्वहोरात्रं स्वीयं यास्यामि तत्पदम् ॥४०॥

जैसे प्रकृति याने मायासे रहित स्वरूप होने पर भी मैंने इस पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से बने हुए शरीरमें प्रवेश किया है, उसी प्रकारसे वह हमारा दिव्य (अमायिक) निमिवंश भी प्राकृत शरीरोंमें प्रवेश कर गया है ॥३५॥

मैं मायिक (पाञ्चभौतिक) शरीरमें आ जानेके कारण अपने दिव्य निमि कुल को अवलोकन करती हुई भी जब निश्चयात्मक बुद्धिसे उसका अनुभव नहीं कर पाती हूँ, तब श्रीकिशोरीजीको किस प्रकार पहचान सकती हूँ ? अतएव आवागमनके चक्करमें पड़ी हूं ॥३६॥ श्रीकिशोरीजीके विवाहके समय, उनमें विशेष बद्धभाव (अत्यन्तासक्त) होने के कारण जब मैं उनके वियोग-भयसे मूर्च्छित हो गयी और मेरे जीनेकी आशा नहीं रही, तब मेरे पिताजीने मेरे प्राणोंकी रक्षाके लिए मुझे सेविका के रूपमें उन्हें समर्पण कर दिया, अतएव श्रीकिशोरीजूके प्रसन्नर्थ श्रीरघुनन्दन प्यारेने भी मेरा कर-ग्रहण स्वीकार कर लिया अर्थात् अपनी बना ली ॥३७॥ अतएव मेरे मातृकुल–देव श्रीमन्नारायण और कुलदेव श्रीरङ्गनाथजी, आचार्या, सभी सखियोंमें मुख्या श्रीचन्द्रकलाजी, और पतिदेव साक्षात् श्रीभरतलालजू के बड़े भइया श्रीराघवेन्द्रसरकारजू हैं ॥३८॥ हमारा मुख्य महल श्रीकनक-भवन है, प्रणाम मात्रसे प्रसन्न हो जाने वाली श्रीकिशोरीजीके द्वारा हमें प्राणप्यारेजूकी प्राप्ति हुई है, श्री युगल सरकार का सुख ही हमारा प्रधान वाञ्छित सुख और विकार रहित स्वसुख श्रीयुगलकृपा लभ्य है ॥३९॥

मैं अपनी पूर्वकी सभी बातें भूल गयी थी, कृपा करके श्रीगुरुदेवने उन्हें स्मरण करा दिया है, अतएव अब मैं दिन–रात अपनी उसी पूर्व परिस्थितिको स्मरण करती–करती पुनः अपने उसी पूर्वपदको प्राप्त कर लूंगी, अर्थात् जैसे मैं पूर्वमें श्रीयुगल सरकारकी सखी थी, भावना करते-करते वैसी ही हो जाऊँगी ॥४०॥

॥ श्री याज्ञवल्क्य उवाच ॥

इत्येवं निश्चयं कृत्वा दृढेन स्थितचेतसा । स्वसखीरूपमाचिन्त्य भावयेद्धाटकालयम् ॥४१॥
सप्तावरणतस्तस्य शोभितस्य सुवेश्मनः । पञ्चमावरणे नित्यं ध्यायेत्स्वावासमन्दिरम् ॥४२॥
ततो गुरूक्तया रीत्या साकं चन्द्रकलादिभिः । समाप्य नित्यकृत्यं च प्रविशेच्छ्रीनिकेतनम् ॥४३॥
आदौ शयनकुञ्ज गन्तव्यः सततं तया । ताभ्यां सार्द्धं सखीभिश्च सर्वतोष उपालयः ॥४४॥
मङ्गलाख्यो निकुञ्जश्च गन्तव्यस्तु ततः परम् । निमीनवंशभूषाभ्यां दन्तधावनसञ्ज्ञकः ॥४५॥
तयाऽयोनिजया साकं पुनर्वै मज्जनालयम् । अथोपभोजनागारं शृङ्गाराख्यं ततः परम् ॥४६॥
सभागारं ततस्ताभ्यामालियूथशतैरपि । अधिगच्छेत्ततः कुञ्जं भोजनाख्यं मनोहरम् ॥४७॥
ततो विश्रामकुञ्जं च सर्वभोगसमन्वितम् । विचित्ररचनायुक्तं ताभ्यां ताभिश्च संव्रजेत् ॥४८॥
फलभोजननैदाघरत्नसिंहासनादिषु । रासहिंडोलप्रभृतिनामभिर्विश्रुतेषु च ॥४९॥
एतेषु सर्वकुञ्जेषु यो विहारो विहारिणोः । अतिचित्रो विचित्रश्च भावनीयस्तदन्वहम् ॥५०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :— हे प्रिये ! शृङ्गार भाव युक्त साधक इस प्रकार की दृढ़ धारणा करके एकाग्रचित से अपने सखी स्वरूप का चिन्तन कर श्रीकनकभवनका ध्यान करे ॥४१॥ सात आवरणों से शोभायमान उस सुन्दर श्रीकनकभवनके पांचवें आवरण में अपने वास-कुञ्ज (निवास महल) का नित्य ध्यान करे ॥४२॥

अपने उस महलमें आचार्यकी बतलाई हुई रीतिसे स्नान शृङ्गारादि सभी कृत्य समाप्त करके वहाँसे श्री चन्द्रकलाजी तथा श्रीचारुशीलाजी आदि सभी सखी समाजके सहित श्रीकिशोरीजीके मुख्य (शयन) कक्ष में प्रवेश करे ॥४३॥ इस प्रकार उसे नित्य शयन कुञ्जमें जाना चाहिए, पुनः सब परिकरके सहित श्रीयुगलसरकारके साथ सर्वतोष नाम की उपकुञ्जमें जावे ॥४४॥ सर्वतोष कुञ्जके पश्चात् उसे मङ्गल कुञ्जमें जाना चाहिए, तदनन्तर निमि और सूर्यवंश के भूषण सदृश शोभा बढ़ाने वाले श्रीप्रिया प्रियतमजूके साथ वह दन्तधावन नामकी कुञ्जमें गमन करे ॥४५॥ पुनः श्रीकिशोरीजू के सहित स्नानकुञ्ज, कलेवा कुञ्ज, तदनन्तर शृङ्गार कुञ्जमें पधारे ॥४६॥ पुनः सखियोंके सैकड़ों यूथों सहित, श्रीप्रिया प्रियतमजूके साथ सभा भवन जावे। वहाँसे मनको हरण करने वाले 'भोजन' महलको प्रस्थान करे ॥४७॥ भोजनके बाद उन सभी सखियोंके सहित वह श्रीयुगल सरकारके साथ, सब प्रकारके भोग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यमयी रचनाओंसे युक्त, विश्राम कुञ्ज में जावे ॥४८॥ श्रीफलभोजन कुञ्ज, श्रीनिदाघकुञ्ज, श्रीरत्नसिंहासनकुञ्ज, श्रीरासकुञ्ज, श्रीहिंडोल कुञ्ज आदि नामोंसे प्रसिद्ध इन सभी कुञ्जोंमें श्रीविहारिणी विहारी (श्रीसीता-रामजीका) जो अत्यन्तसे अत्यन्त परम आश्चर्यमय विहार होता है, उसका प्रतिदिन चिन्तन करना चाहिये ॥४९॥५०॥

ताभ्यां च गम्यते यत्र विहाराय यदा यदा। गत्वाऽनन्तसखीभिश्चाचरेद्दास्यं तु वै तयोः ॥५१॥
श्रीशृंगारवनं रम्यं विहारवनमद्भुतम्। पारिजातं तथाऽशोकं तमालारण्यमेव च ॥५२॥
चम्पकं च रसालं च श्रीविचित्रवनं तथा। अनङ्गकाननं दिव्यं कदम्बारण्यमुत्तमम् ॥५३॥
चन्दनं चारुशोभाढ्यं वनं श्रीनागकेसरम्। द्वादशैतानि रम्याणि सुवनानि निबोध मे ॥५४॥
एतेषु वनमुख्येषु ह्यान्दोलं होलिकोत्सवम्। रसोत्सवं तथा ध्यायेत्तयोः श्रीप्रेयसोः शुभम् ॥५५॥
चङ्गादिकास्तथा लीला रचितेषु सखीजनैः। दिव्यस्थलेषु संभाव्या विहारश्च विचित्रकः ॥५६॥
शृंगाराद्रिश्च रत्नाद्रिः श्रीलीलाद्रिस्तथैव च। मुक्ताद्रिः सर्वथा रम्याश्चत्वारो गिरयस्त्विमे ॥५७॥
विषयांश्च परित्यज्य तौ भजेत्स्वहितैषिणौ। भाव्यौ सर्वगतौ नित्यौ सर्वभूतमयावुभौ ॥५८॥
तयोः कृपाभिलाषश्च कर्त्तव्यः सततं तया। क्षुधार्दितेन चान्नस्य क्रियते वै यथा तथा ॥५९॥
रागद्वेषौ विसृज्याथ काङ्क्ष्यं सर्वहितं सदा। प्रीत्या प्रगल्भया कार्यं तयोर्नामानुकीर्त्तनम् ॥६०॥

श्रीयुगल सरकार भक्तोंको अनेक प्रकारका सुख प्रदान करने वाली लीला करने जहाँ, जब जब पधारें, तब-तब वह अनन्त सखी परिकरके साथ जाकर, वहाँ श्रीप्रियाप्रियतमजू के प्रति दासीवत् व्यवहार करे ॥५१॥

१—श्रीशृङ्गारवन, २—श्रीविहारवन, ३—श्रीपारिजातवन, ४—श्रीअशोकवन, ५—श्रीतमालवन, ६—श्रीचम्पकवन, ७—श्रीरसालवन, ८—श्रीविचित्रवन, ९—श्रीअनङ्गवन, १०—श्रीकदम्बवन, ११—श्रीचन्दनवन, ११—श्रीनागकेसरवन, इन बारह वनों को आप अत्यन्त सुन्दर श्रीयुगल सरकारके विहार करनेके योग्य समझें ॥५२॥५३॥५४॥

इन मुख्य द्वादशवनोंमें वह श्रीप्रिया प्रियतमजूके मङ्गलमय झूलन, होली, रास आदि उत्सवोंका ध्यान करे ॥५५॥ उसी प्रकार सखियोंके द्वारा रचित दिव्य स्थलोंमें श्रीयुगल सरकारकी पतङ्ग आदिक लीलाओं तथा विचित्र विहारोंका ध्यान करना चाहिये ॥५६॥

श्रीशृङ्गाराद्रि, श्रीरत्नाद्रि, श्रीलीलाद्रि, श्रीमुक्ताद्रि, ये चार बड़े ही सुन्दर मणिमय पर्वत हैं ॥५७॥ इन्द्रियोंके सभी प्रकारके बल, बुद्धि, ह्रासक विषयोंका परित्याग करके परम हितैषी (हित चाहने वाले) श्रीप्रियाप्रियतम श्रीसीतारामजूका भजन करे, और अपने दोनों (श्रीयुगल) सरकारको सर्वत्र (सब जगह) विराजमान, सदा एकरस रहने वाले, तथा सभी प्राणियोंका स्वरूप धारण किए हुये निश्चय करे ॥५८॥

जैसे भूखसे व्याकुल मनुष्य अन्नकी चाह करता है, उसी प्रकार साधकको श्रीयुगल-सरकारकी सतत (सब समय, कृपाकी परम अभिलाषा बनाये रखनी चाहिये ॥५९॥ राम कहते हैं आसक्तिको और द्वेष कहते हैं वैरको, अस्तु गाढ़ी प्रीतिके सहित अर्थात् अत्यन्त अनुरागके साथ इन दोनोंका परित्याग करके प्राणीमात्रके हितकी ही सदा कामना करनी चाहिये, तथा युगलसरकारके "श्रीसीताराम" इस शुभ मङ्गल नामका कीर्त्तन बराबर करते रहना चाहिये ॥६०॥

सम्बन्धे च तथा मन्त्रे श्रीसीतारामयोस्तयोः। पूर्णश्रद्धा हि कर्त्तव्या प्रीतिश्च परमाऽचला ॥६१॥
सदा सेवाष्टयामेन कर्त्तव्या निश्चलात्मना। शान्तिशीलक्षमाऽहिंसापरितोषादिसम्पदाम् ॥६२॥
यथाशक्ति यतेताप्त्यै ह्येतद्धनमनुत्तमम्। प्रतिक्षणं तयोः कार्यं स्मरणं पादपद्मयोः ॥६३॥
हेमा क्षेमा वरारोहा सुभगा पद्मगन्धिनी। लक्ष्मणा चारुशीला च तथा चन्द्रकलाभिधा ॥६४॥
अष्टाविमास्तथा मुख्यास्तयोः सख्य उदाहृताः। सर्वसौभाग्यसम्पन्ना गुणरूपविभूषिताः ॥६५॥
इमा यूथेश्वरीणां च प्रवराः परमेशयोः। सखीनामपि सर्वासां नियन्त्र्यो हि विशेषतः ॥६६॥
आसामपि प्रधाने द्वे यूथेश्वर्यौ प्रकीर्तिते। एका चन्द्रकला ज्ञेया चारुशीलाऽपरा प्रिये ॥६७॥
सेवाधर्मसुकुशले विध्वानने सरोजदलनेत्रे। प्रेमाप्लावितहृदये सकलविधौ मुख्यभावज्ञे ।६८।

आचार्य द्वारा प्राप्त हुए श्रीयुगलसरकारके सम्बन्ध तथा उनके मन्त्रमें अटल श्रद्धा एवं परम प्रीति रखनी आवश्यक है ॥६१॥

गुरुदेवकी बतलाई हुई रीतिके अनुसार श्रीयुगलसरकारकी अष्टयाम सेवा सदा एकाग्रचित्त होकर करनी चाहिये। "शान्ति" (वह शक्ति है जो सुख-दुःख, संयोग-वियोग, आदि अनेक द्वन्द्वोंके उपस्थित हो जाने पर भी चित्तको उथल-पुथलसे बचाती है अर्थात् चित्तको स्थिर रखती है) "शील" (वह गुण है, जो मनुष्यको अपने हृदयकी अभिमानशून्यता और कृतज्ञता वृद्धि के द्वारा ही प्राप्त होता है) "क्षमा" (वात्सल्य, सौहार्द सौजन्यादि गुणोंसे प्राप्त हुई वह 'सहनशक्ति' है, जो सामर्थ्य होते हुये भी अपराधी जीवोंके लिये दण्ड देनेकी इच्छा को ही हृदयमें नही आने देती) "अहिंसा" (वह गुणमयी शक्ति है, जो दुष्टसे दुष्ट प्राणीको भी किसी प्रकार दुखी करने की भावना हृदयमें नहीं आने देती) "परितोष" (सभीकी श्रद्धा कराने वाला वह दिव्यगुण है, जो किसी भी परिस्थिति में लोलुपता (लालच) हृदयमें प्रकट नहीं होने देता)। इस गौणी सुसम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्न करता रहे, क्योंकि यही धन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। प्रत्येक क्षण श्रीयुगलसरकारके श्रीचरणकमलोंका स्मरण करना ही साधकका परम कर्त्तव्य है ॥६२॥६३॥ श्रीहेमाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीचारुशीलाजी, श्रीचन्द्रकलाजी ॥६४॥

ये श्रीप्रियाप्रियतमजूकी सर्वसौभाग्य सम्पन्ना गुण रूपसे शोभायमाना अष्ट मुख्य (यूथेश्वरी) सखी कही गयी हैं ॥६५॥ ये अष्ट सखी सभी सखियोंको स्वेच्छानुसार विशेष रूपसे नियमबद्ध करने वाली सर्वेश्वरी-सर्वेश्वर युगलप्रभु श्रीसीतारामजीकी समस्त यूथेश्वरी सखियोंमें सबसे श्रेष्ठ (पदवाली) हैं ॥६६॥ हे प्रिये ! इन अष्ट महायूथेश्वरी सखियों में भी दो यूथेश्वरी सखी प्रधान कही गयीं हैं, उनमें एक श्रीचन्द्रकलाजीको और दूसरी श्रीचारुशीलाजीको जानो ॥६७॥ ये दोनों यूथेश्वरी सुन्दर नितम्बवाली, कमलदललोचना, सब प्रकारके भावोंकी सर्वश्रेष्ठ पण्डिता (जानने वाली) हैं, इनका हृदय श्रीयुगलसरकारके प्रेम प्रवाहमें सदा ही डूबा रहता है ॥६८॥

सत्सङ्गेन विशेषं च रसग्रन्थवरैस्तथा । ज्ञायतां त्यज्यतां चापि सङ्ग एव दुरात्मनाम् ॥६६॥
दिव्यं परिकरं विद्यात् समस्तं भावनास्पदम् । नित्यं रसमयं चैव गतमायं चिदात्मकम् ॥७०॥
नाम्नि रूपे च लीलायां प्रसादे धाम्नि वै तयोः । भाषिताऽनन्यता सद्भिस्तत्पराणां च सङ्गतिः ॥७१॥
इत्थं स्वभावे परिबद्धचित्तैर्यथेप्सिते नैकविधेष्वयासम् ।
मोक्षो हि किं धाम परं दुरापं संप्राप्यते जन्तुभिरेव सर्वैः ॥७२॥

उपासनाकी विशेष और बातें उसे निजरस उपासक सन्तोंके सत्सङ्गसे तथा निजरस प्रधान श्रेष्ठ ग्रन्थों द्वारा ज्ञात करनी चाहिये और दूषित विचार वालोंकी कुसङ्गति का परित्याग निश्चय ही करना चाहिए ॥६६॥

समस्त परिकरको दिव्य, भावना करने योग्य, सदा एक रस रहने वाला, आनन्दमय, पञ्चभूतोंकी सृष्टिसे रहित, चैतन्य (इष्ट) स्वरूप समझे ॥७०॥

इस रसके साधकोंके लिये सन्तोंने श्रीयुगल सरकारके नाम, रूप लीला, धाम, प्रसादआदिकमें सर्वोपरि श्रद्धा रखना और युगल उपासकोंकी ही सङ्गति करना मुख्य कर्त्तव्य बतलाया है ॥७१॥ हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीयुगलसरकारके साथ नित्यसम्बन्ध जोड़नेके लिए, असंख्य प्रकारके भावों में से, अपने हृदयको रुचिकर प्रतीत होने वाले किसी भी एक भावमें जो साधक, चित्तको आसक्त कर देते हैं, उन सभी भाग्यशालियोंके लिये मोक्ष ही क्या ? अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाला प्रभुका नित्य धाम भी, बिना किसी प्रकारका कष्ट सहन किये ही सुखपूर्वक, प्राप्त हो जाता है ॥७२॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

पराशक्तिप्रादुर्भाव-हेतु-जिज्ञासा तथा भगवान शिवजीको श्रीकिशोरीजीसे गुप्त-प्रकट लीला-दर्शन प्राप्ति वरदान ।

श्रीकात्यायन्युवाच ।

भाग्योदयेन कृपया जनकात्मजाया हे प्राणनाथ! भवताऽस्मि कृता कृतार्था ।
साकेतलब्धिसुखसाधनमुक्तमस्मात् तुभ्यं नमोऽस्तु मम कोटिसहस्रकृत्वः ॥१॥

सूतजी बोलेः—हे शौनकजी! यह सब रहस्य श्रीयाज्ञवल्क्य महाराजके मुखारविन्दसे श्रवण करके श्रीकात्यायनीजीने प्रार्थना की—हे प्राणनाथजू ! श्रीकिशोरीजीकी कृपासे आज मेरा परम सौभाग्य उदय हुआ, जो आपने श्रीसाकेतधाम-प्राप्तिका सुख-साध्य-साधन बतलाकर मुझे कृतार्थ कर दिया, अतएव आपके लिये मेरा करोड़ों सहस्रबार नमस्कार है ॥१॥

यस्याः कृपाप्तिपरमेषणयाऽप्यजस्रं संसेव्यते चिरमियं मिथिलामहाभूः।
आविष्कृतं सुललितं तिलकं च भूमेः पादारविन्दरजसाऽप्यवतीर्णया च ॥२॥
दिव्यप्रशस्यगुणरूपदयोरुशक्तिः साऽऽविर्बभूव निमिवंश उदारकीर्तिः।
कस्मात्कथं कथय याज्ञिकवेदिगर्भाद्रूपेण केन वयसा वदतां वरिष्ठ ! ॥३॥

सर्वैश्वर्या जगन्मातुः परा-शक्तेर्महीतले। आविर्भावो मुनिश्रेष्ठ ! महाश्चर्यप्रदो हि मे ॥४॥
यस्या नादिं न मध्यं च नान्तं वेदविदो विदुः। तस्या बत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥५॥
यस्याः स्थिताश्च सेवायां महामायादिशक्तयः। तस्या बत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥६॥
यस्या भृकुटिसञ्चाराद्ब्रह्माण्डानां भवाप्ययौ। तस्या बत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥७॥
यया सर्वमिदं विश्वं यथा रामेण वै ततम्। तस्या बत किमत्र स्यादाविर्भावप्रयोजनम् ॥८॥

विश्वमें पधार कर श्रीकिशोरीजीने अपने श्रीचरणकमलोंकी रजसे स्वयं जिसको समस्त भूमिका सुन्दर तिलक होनेका महान् गौरव प्रदान किया है; उस श्रीमिथिला भूमिका जिन (श्रीकिशोरीजी) की कृपा प्राप्तिकी परम अभिलाषासे ही, हम बहुत दिनों से सेवन कर रही हैं ॥२॥ जिनकी सुन्दर 'कीर्त्ति' स्मरण, मनन, कीर्त्तन, अध्ययन, (पाठ) श्रवण आदिके द्वारा सभी प्रकारके दुर्लभसे दुर्लभ मनोरथोंको प्रदान करने वाली है, वे अलौकिक प्रशंसा करने योग्य अनन्त गुण-स्वरूपा, महाशक्तिसम्पन्ना, करुणावरुणालया, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी निमिवंशमें किस लिये? किस प्रकार? किस रूपसे? किस अवस्थासे यज्ञवेदी गर्भ से प्रकट हुईं? हे वक्ताओंमें शिरोमणि ! उसे आप मुझसे कथन करें ॥३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो सर्वेश्वरी अर्थात् स्थावर जङ्गम, लोक, लोकपाल, छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े सभी चेतनोंके ऊपर शासन करनेवाली हैं, जो सभी चर-अचर प्राणियोंके जन्मदाताओंकी आदि जन्मदाता हैं, तथा जो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ सभी शक्तियोंकी शिरोमणि हैं, उन श्रीकिशोरीजीका भूतलमें प्रकट होना, हमें बहुत ही आश्चर्य करा रहा है ॥४॥ वेदवेत्ता भी जिनका न आदि, न मध्य, न अन्त जान सके, अहो ! उन श्रीकिशोरीजीके भूतल पर पधारनेका क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥५॥ महामायादि सभी प्रमुख शक्तियाँ जिनकी सेवामें सदा विद्यमान रहती हैं, अहो! उन श्रीकिशोरीजीको इस पृथिवीतल पर प्रकट होनेकी क्या आवश्यकता पड़ी? ॥६॥

जिनके भौंहके घुमाने मात्रसे ही अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और विनाश हो जाता है, भला उन श्रीकिशोरीजूका इस मनुष्य लोकमें प्रकट होनेका क्या तात्पर्य ? ॥७॥

जैसे परात्पर ब्रह्म प्रभु श्रीरामके द्वारा यह सारा दृश्य जगत् व्याप्त है, उसी प्रकार जिनकी सत्तासे यह सारा दृश्य जगत् अभिव्याप्त है, अहो ! हमारी उन श्रीकिशोरीजीको धरातल पर प्रकट होनेकी भला क्या आवश्यकता हो सकती है ? ॥८॥

चन्द्रभान्वग्निदामिन्यो यस्यास्तेजोऽब्धिसीकरात् । दुर्निरीक्ष्या जगत्सर्वं भासयन्ति प्रभान्विताः ।९।
सा कथं गोचरीभूय चक्षुषां चर्मचक्षुषाम् । लीलाश्चकार सर्वज्ञ ! सच्चिदानन्ददायिनीः ॥१०॥
कानि कानि चरित्राणि शैशवानि कृतान्यथ । तया पद्मपलाशाक्ष्या पुत्र्या श्रीमिथिलेशितुः ॥११॥
तानि संश्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तवाननात् । श्रावयितुं कृपासिन्धो! त्वं कृपां कर्तुमर्हसि ॥१२॥
यथा चान्याः श्रुता नाथ ! कथा विस्तरशो मया । न तथा निमिभूषाया अद्यावधि भवन्मुखात् ।१३।
एवमुक्तो महातेजाःसर्वतत्वविदां वरः । याज्ञवल्क्यो मुनिश्रेष्ठो व्याजहार वचो हसन् ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

धन्याऽसि कृतपुण्याऽसि भूरिभागाऽसि वल्लभे! यतस्ते हृदि सीतायाः श्रोतुं लीलाः सुलालसा ॥१५॥
अत्र ते कथयिष्यामि संहितां परमाद्भुताम् । जानकीयशसोपेतां महाशम्भुप्रभाषिताम् ॥१६॥
यद्यप्यृषिवरैस्तस्या लीला नैव प्रकाशिताः । अमूल्यधनवत्प्रायो विन्यस्ता हृदि गर्तके ॥१७॥

जिनके समुद्रवत् तेजके सीकर मात्र तेजसे प्रकाशित कठिनता पूर्वक देखने योग्य चन्द्र, सूर्य, अग्नि, विजुली सारे जगत्को प्रकाशमय कर देते हैं ॥९॥ हे सर्वज्ञ! अर्थात् सभी गूढ़ रहस्यों के जानने वाले प्रभो! जिनके सीकर मात्र तेजके कुछ अंशका भी दर्शन बड़ी कठिनतासे हो पाता है, भला उन श्रीकिशोरीजीने चर्म चक्षुओं वाले मनुष्योंके नयनगोचर होकर किस प्रकार सत् चित् आनन्द (भगवदानन्द) प्रदान करने वाली लीलायें कीं? ॥१०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पुत्री कहाकर अर्थात् उनके पुत्रीभावको स्वीकार करके उन कमलदललोचना श्रीकिशोरीजीने कौन-कौनसे शिशु चरित किये ?॥११॥ हे कृपा सिन्धो ! मैं आपके श्रीमुखारविन्दसे विस्तार पूर्वक उन्हें श्रवण करना चाहती हूँ, अत एव आप उन चरित्रोंको मुझे सुनानेकी अवश्य कृपा करें ॥१२॥ हे नाथ ! जैसे और बहुत सी कथाएँ मुझे आपके श्रीमुखारविन्दसे विस्तार पूर्वक श्रवण करने को मिली हैं, उस प्रकार श्रीकिशोरीजीकी बाल्यावस्थादिकी लीलायें मुझे आज तक नहीं श्रवण करनेको प्राप्त हुईं ॥१३॥

श्रीसूतजीबोले:-हे श्रीशौनकजी! श्रीकात्यायनीजीके इस प्रकार प्रार्थना करने पर महातेजस्वी सकलतत्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ एवं भगवद्गुण, रूप, रहस्यादिकोंके मननकरनेवालोंमें उत्तम श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे मुस्कराते हुये बोले ॥१४॥

हे प्रिये ! आपके हृदयमें श्रीकिशोरीजीके चरित श्रवण करनेकी उत्सुकता है, अतएव आप धन्य और बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं आप सभी पुण्यकर्मोंको निश्चय ही कर चुकी हैं ॥१५॥ हे प्रिये ! श्रीकिशोरीजीके चरित-श्रवण करनेकी आपकी इच्छा पूरी करनेके लिये उन (श्रीकिशोरीजी) के यशसे ओतप्रोत भगवान् महाशम्भुकी कही हुई संहिताका मैं आपसे वर्णन करूँगा ॥१६॥ यद्यपि मुख्य ऋषियोंने श्रीकिशोरीजीकी लीलाओंको बहुमूल्य सम्पत्ति मानकर गुप्त कर रखा है, प्रकाशित (प्रसिद्ध) नहीं किया है ॥१७॥

तथापि प्रीयमाणेभ्यः सातिश्रद्धेभ्य आदरात् । वक्तुं मुख्याधिकारिभ्यश्चक्रुरेव यथा कृपाम् ॥१८॥
तथैव तेऽपि व्याख्यास्ये श्रद्धावत्यै वरानने । प्रसादितो भृशं सीतालीलासंस्मारणात्त्वया ॥१९॥
एकदा शोभने ! यात्रा कैलासस्य मया कृता । तस्यामासादितं देवि ! कथारत्नमिदं शुभम् ॥२०॥
प्रार्थ्यमानेन पार्वत्यै दत्तमेतत् पिनाकिना । समक्षं ब्रह्मपुत्राणां यथा तुभ्यं वदाम्यहम् ॥२१॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

प्राणेशाम्भोजपत्राक्ष ! जीवसंसृतिवारणम् । साधनं सुखसाध्यं मे किञ्चनाख्यातुमर्हसि ॥२२॥
रहस्यं जानकीजानेर्विस्तरेण मया श्रुतम् । कृपातस्तव योगीन्द्र ! साक्षाच्छ्रीमुखपङ्कजात् ॥२३॥
न तु सर्वंसहा-पुत्र्या बाललीला मया श्रुता! अद्यावधि कृपासिन्धो! स्वस्वामिन्या महाप्रभो! ॥२४॥
श्रीमताऽपि न मे जातु कृपातः श्राविता प्रिय ! तन्न युक्तं दयागार ! शरणागतवत्सल ! ॥२५॥
महानस्त्यभिलाषो मे श्रोतुं बालयशः शुभम् । मैथिल्यास्त्वदृते स्वामिन्! कं पृच्छामि ततो वद ।२६।

फिर भी उन महर्षियोंने अत्यन्त श्रद्धा युक्त, चरित श्रवण के मुख्य अधिकारी, अपने प्रिय–पात्रोंके प्रति, जैसे श्रीकिशोरीजीके चरितोंके वर्णन करनेकी कृपाकी है, उसी प्रकार मैं भी आपसे उनका वर्णन अवश्य करूँगा, क्योंकि एक तो श्रीकिशोरीजीके चरितोंको स्मरण करानेसे मेरा हृदय आपके प्रति बहुत ही प्रसन्न हो रहा है, दूसरे चरित श्रवण करने के लिये आपकी श्रद्धा भी विशेष है ॥१८॥१९॥ हे शोभने ! अर्थात् अपने मङ्गलमय आचरण व्यवहारोंसे प्राप्तशोभे ! एक समय मैंने कैलाशकी यात्रा की थी । हे देवि! (दैवीगुण युक्ते !) उसी यात्रा में श्रीकिशोरीजीका कथा रूपी यह रत्न मुझे प्राप्त हुआ था ॥२०॥ जिस प्रकार प्रार्थना करने पर भगवान शङ्करजीने ब्रह्मपुत्र सनकादिकोंके सामने श्रीपार्वतीजी को यह कथा रत्न प्रदान किया था, उसे मैं आप से कहता हूं ॥२१॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:–हे प्राणनाथ ! हे कमलदललोचन ! जीवका जन्म–मरण दूर हो और सुखसे किया जासके, ऐसा कोई साधन बतलानेकी कृपा करें ॥२२॥

हे योगिराज प्रभो ! आपकी कृपासे, आपके श्रीमुखारविन्दसे श्रीजानकीवल्लभलालजूका रहस्य तो मैंने विस्तार पूर्वक सुना है ॥२३॥ किन्तु हे कृपासिन्धो ! (अपार कृपा से युक्त) हे महाप्रभो ! (महान् समर्थ) अपनी श्रीस्वामिनी (श्रीभूमिनन्दिनी) जूकी बाललीला ही आजतक मुझे सुननेको नहीं प्राप्त हुई ॥२४। हे प्यारे ! श्रीमान्ने भी कभी कृपा करके मुझे उसे नहीं श्रवण कराया । हे दयाके निवासस्थान ! हे शरण आये हुये जीवोंके अपराधों पर ध्यान न देकर, उनका केवल परमहित चाहनेवाले प्रभो ! यह योग्य नहीं हुआ ॥२५॥

हे स्वामिन् ! श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके मङ्गलमय बाल-चरितोंको सुननेके लिये मेरी बड़ी ही उत्कण्ठा है, उन्हें आपको छोड़कर और किससे पूछूं ? अतएव कृपा करके आपही उनका कथन करें ॥२६॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः सानुरागं सुखश्रवम् । प्रणयाद्भाषितं युक्तं शङ्करो हर्षनिर्भरः ॥२७॥
तूष्णीं भूत्वा ततः किञ्चिद्बाष्पाकुलितलोचनः । गाढमालिङ्ग्य तां प्रेम्णा स्वस्थचित्तो महेश्वरः ।२८
प्रशस्य बहुशः प्राह नोक्ता सत्यमिति प्रियाम् । अपृच्छाभाषणे दोषं मया देवि! प्रपश्यता ॥२९॥
जीवसंसृतिमोक्षाय पर्याप्तं साधनं हि तत् । मया यच्छंसितं पूर्वं पृच्छन्त्यै ते सविस्तरम् ॥३०॥
अद्य ते कथयिष्यामि प्रिये ! त्वद्वाञ्छितप्रदम् । सुचित्रानन्दिनीराम-संवादं परमाद्भुतम् ॥३१॥
तोषितायां मया भक्त्या मैथिल्यां लब्ध एव यः । तदाज्ञप्तेन रामस्य पररूपदिदृक्षया ॥३२॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

एतद्रहस्यमाख्यातुं कृपां कृत्वा ममोपरि । तृषार्त्तां मां भुवः पुत्र्याः पाययस्व कथामृतम् ॥३३॥
त्वयि मे प्राप्तये देवि ! चरन्त्यां परमं तपः । गिरिराजसुते ! श्रुत्वानारदस्य प्रभाषितम् ॥३४॥
दिदृक्षमाणः सद्रूपमेकदा जानकीपतेः । अजपं मन्त्रराजं तद्दिव्यवर्षशतं शिवे ! ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे प्रिये ! श्रवणोंको सुख देनेवाले, अनुराग युक्त, श्रीपार्वतीजूके प्रणय-पूर्वक इस प्रकार कहे हुये वचनोंको श्रवण करके भगवान् श्रीशङ्करजीहर्षमें डूब गये ॥२७॥

पुनः नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुये भगवान शङ्करजी थोड़ी देर बिल्कुल मौन रहकर (श्रीगिरिराजकुमारीजी) को प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाकर स्थिर चित्त हो गए ॥२८॥

हे श्रीशौनकजी ! तत्पश्चात् बहुत कुछ प्रशंसा करके भगवान शिवजी श्रीपार्वतीजीसे बोले:– हे देवि ! बिना पूछे श्रीभगवानके रहस्य वर्णन दोषको मैं जानता हूँ, अतएव बिना पूछे श्रीकिशोरीजीकी लीलाओंको मैंने तुम्हे नहीं सुनाया, यह सत्य ही है ॥२९॥

प्राणियोंको जन्म-मरणसे छुड़ाने वाला सबसे सरल और सुख-साध्य, वही साधन पर्याप्त है, जिसको आपके पूछने पर, पूर्व ही में विस्तार पूर्वक मैं कथन कर चुका हूँ ॥३०॥

हे प्रिये ! अब मैं आपसे परम आश्चर्यमय श्रीसुचित्रानन्दिनी और प्रभु श्रीरामके सम्वादको कहूँगा जो, आपकी श्रीकिशोरीजीके चरित-श्रवणाभिलाषाको अवश्य पूरी करेगा ॥३१॥

हे प्रिये ! एक समय प्रभु श्रीरामके परात्पर स्वरूप के दर्शनोंकी इच्छासे मैंने उनके श्री मन्त्रराजका अनुष्ठान किया, तब उन्होंने मुझे श्रीकिशोरीजीकी आराधना करने की आज्ञा दी, प्रभुके आज्ञानुसार मैं उनकी आराधनामें लग गया, मेरे प्रेमसे श्रीकिशोरीजी प्रसन्न हो गयीं, और उनके आशीर्वादसे मुझे यह संवाद प्राप्त हुआ ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे बोले–हे प्रिये ! भगवान् शङ्करजीके इस गूढ़ बचनको सुनकर भगवती श्रीपार्वतीजीने प्रार्थना की, हे प्यारे ! पहले आप इस रहस्यको कृपा करके सुनाइये, तदनन्तर मुझ प्यासीको श्रीकिशोरीजीके चरित रूपी अमृतका पान कराइयेगा ॥३३॥ श्रीशिवजी श्रीपार्वतीजीसे बोले:–हे प्रिये ! जिस समय श्रीनारदजीका उपदेश सुनकर आप मेरी प्राप्तिके लिये परम तप कर रही थीं ॥३४॥ हे कल्याणि ! उसी अवसर पर एक समय श्रीजानकी-वल्लभलालजूके परात्पर स्वरूपके दर्शनोंकी इच्छासे मैंने दिव्य सौ वर्ष तक उनके श्रीमन्त्रराजका जप किया था ॥३५॥

तदा प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीरामो मामवोचत् । मन्त्रसंप्रेक्ष्यरूपेण कृपासिन्धुरिदं वचः ॥३६॥
द्रष्टुमिच्छसि चेद्रूपं मदीयं परतः परम् । महेश ! भावनागम्यं मम शक्तिं समाश्रय ॥३७॥
सा हि वै परमोपायो मम प्राप्तेः सदा शिव ! विनाराधनया तस्या न मे तुष्टिः कथञ्चन ॥३८॥
सा ममात्मा परिज्ञेया स्वेच्छयात्तसुविग्रहा । तया युक्तोऽस्म्यहं रामो विरामश्च तया विना ॥३९॥
सा ममास्ति परं तत्त्वं जीवनं परमं धनम् । सुखसाधनमात्मस्था प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥४०॥
सर्वस्वं परमाराध्या सर्वसौभाग्यदायिनी । मया शक्तिमती ख्याता सा तया शक्तिमानहम् ॥४१॥
एकात्मा द्विशरीरोऽहं रश्मिभ्यां दीपको यथा । द्वावावां च स्वरूपाभ्यामेक एव हि वस्तुतः ॥४२॥
शरीरेण विना नात्मा शरीरं नात्मना विना । कस्यापि देव! भूतस्य स्वार्थसिद्ध्यै भवेदलम् ॥४३॥
मया तया विहीनेन हीनया च तया मया । काऽपि सिद्धिर्विधातव्या नेति सत्यं ब्रवीमि ते ॥४४॥

तब कृपासागर, भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न होकर मन्त्र संप्रेक्ष्य (मन्त्र शक्ति द्वारा दर्शन प्राप्त होने योग्य) अपने स्वरूपसे प्रकट हो मुझसे बोलेः—॥३६॥ हे महेश! यदि आप भावनासे प्राप्त होने योग्य मेरे परात्पर स्वरूपका दर्शन करना ही चाहते हैं, तो, मेरी आह्लादिनी शक्तिकी शरण ग्रहण करें ॥३७॥ हे शिव! आप निश्चय जानिए मेरी प्राप्तिका "सर्वश्रेष्ठ उपाय" सदावे ही श्रीकिशोरीजी हैं, उनकी आराधनाके विना किसी प्रकारसे भी मुझे प्रसन्नता नहीं होती ॥३८॥

उन्हें निज इच्छासे विश्वविमोहन स्वरूपको धारणकी हुई साक्षात् मेरी आत्मा ही जानिये। उनसे युक्त ही मैं राम (सारे विश्व को आनन्द प्रदान करने वाला हूँ) विना उनके सभीका अन्तिम विश्रामस्थान केवल निरीह, निरञ्जन, सत्तामात्र अनाम, रूप शुद्ध-ब्रह्म हूँ ॥३९॥

अत एव मेरे सुखका साधन, मेरे हृदयमें विराजमान, मेरे प्राणोंसे प्रिय, मेरा परम तत्त्व, मेरा परम जीवन-धन, वे ही श्रीकिशोरीजी हैं ॥४०॥

वे ही सभी आराधना करने योग्य देवताओंमें श्रेष्ठ, भक्तोंको सब प्रकारका सौभाग्य प्रदान करनेवाली, मेरी सर्वस्व हैं। मुझसे युक्त वे शक्तिमती (आद्या शक्ति) कहलाती हैं, और उनसे ही युक्त मैं सर्वशक्तिमान् कहा जाता हूँ ॥४१॥ जैसे दो ज्योतिवाला दीपक देखनेमें दो प्रतीत होता हुआ भी वास्तवमें एक ही है। उसी प्रकार मैं और मेरी परा-शक्ति श्याम-गौर शरीरके कारण देखनेमें भले ही दो प्रतीत होती हों, किन्तु वस्तुतः दोनों शरीरोंकी आत्मा एक ही है ॥४२॥ हे देव ! जैसे शरीरके विना आत्मा, और आत्माके बिना शरीर किसी भी प्राणीका स्वार्थ पूरा करनेके लिये पर्याप्त नहीं हो सकता ॥४३॥ उसी प्रकार मैं (पूर्ण ब्रह्म) उन अपनी प्राणप्रिय शक्तिका अवलम्बन किये विना किसी प्रकारकी सिद्धिका विधान करनेको समर्थ नहीं हूँ और मुझ ब्रह्मका आश्रय लिये विना वे भी किसीभी सिद्धिका विधान नहीं कर सकतीं, यह मैं आपसे यथार्थ कहता हूँ। सरकारके कहनेका भाव यह है—कि वे "श्रीकिशोरीजी" मुझ ब्रह्मकी इच्छा शक्ति हैं और मैं ब्रह्म उनका शरीर हूँ अतः विना इच्छाके भला, कौन किसी सिद्धिको कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। और विना शरीरका अवलम्बन लिये केवल इच्छा भी तो कुछ नहीं कर सकती अतः सरकारका कहना परम युक्त है ॥४४॥

सीति श्रवणमात्रेण हृत्पद्मं मे प्रफुल्लति । तेति श्रुत्वा पराह्लाद-प्रवाहे याति लोलताम् ॥४५॥
वेद्य एवमहं तस्याः सर्वस्वं गिरिजापते ! नात्र ते संशयः कार्यो मद्वचनात्कदाचन ॥४६॥
मत्तो दशगुणा सा वै गौरवेणाधिराजते । धर्मतः सर्वभूतानां माता दशगुणा पितुः ॥४७॥
मम मंत्रे स्थिता सा वै तस्या मंत्रेऽहमास्थितः । तदाऽऽवां सर्वथाऽभिन्नौ विद्धि साहमहं हि सा ॥४८॥
नावयोर्भेददृष्टिस्ते दिदृक्षोः परमं वपुः । मन्त्राभिलक्ष्यरूपेण ततोऽहं दृष्टिगोचरः ॥४९॥
नाम रूपं च मे लीला धाम मन्त्राद्युपासना । तद्विमुखात्मनां कर्तुं न शक्ता सम्मुखं हि माम् ॥५०॥
तस्या विमुखजीवानां कामये नेक्षितुं मुखम् । कुतस्तद्वाञ्छितं दातुं सत्यमेव वदामि ते ॥५१॥
युग्मनामरता ये च युग्ममन्त्रानुजापकाः । युग्मध्यानसमासक्ता युग्मोपासनतत्पराः ॥५२॥
का सिद्धिर्दुर्लभा तेषामावयोः सुखलभ्ययोः । ब्रह्मादिभिस्तु वै येषां पादरेणुर्विमृग्यते ॥५३॥

"सी" इस शब्दके श्रवण मात्रसे ही मेरा हृदय कमल खिल जाता है, इसके आगे यदि कहीं "ता" शब्द सुननेको प्राप्त हुआ तो मेरा यह प्रफुल्लित हृदय-कमल महान् आनन्दके प्रवाह में पड़ कर झूमने लगता है ॥४५॥ हे गिरिजापते! इसी प्रकार आप श्रीकिशोरीजीका सर्वस्व मुझे जानिये । मेरे इन बचनोंमें कभी भी आप सन्देह नहीं करना ॥४६॥ हे शम्भो! इतना ही नहीं, अपितु वे श्रीकिशोरीजी मुझसे भी गौरव (प्रतिष्ठा) में दश गुणा अधिक हैं, कारण धर्म शास्त्रके सिद्धान्तानुसार प्राणी मात्रके लिये माताकी मान्यता पितासे दश गुणा विशेष होती है ॥४७॥ मेरे मन्त्रमें वे श्रीप्रियाजू विद्यमान हैं, और उनके मन्त्रमें मैं विराजमान हूँ । इस हेतु आप हम दोनोंको अभिन्न (एक ही) समझो क्योंकि श्रीकिशोरीजी ही मैं हूँ और मैं ही श्रीकिशोरीजी हूं ॥४८॥

मेरे और मेरी श्रीप्रियाजूके प्रति आपको भेद दृष्टि नहीं है, इसीसे मैं अपने पर (साकेत धाममें विराजमान) स्वरूप के दर्शनाभिलाषी आपके सामने केवल मन्त्र शक्ति द्वारा देखने योग्य स्वरूपसे भी प्रत्यक्ष हो गया ॥४९॥ हे शङ्करजी! जिन जीवोंका हृदय श्रीकिशोरीजीसे विमुख है, उनके सम्मुख मुझको मेरा नाम, रूप लीला, धाम, तथा मन्त्रादिकी उपासना, कोई भी नहीं कर सकता है, अर्थात् ये सब प्रधान साधन भी श्रीकिशोरीजीसे विमुख हृदय वाले साधक प्राणियोंको मेरा प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करा सकते, यह निश्चय है ॥५०॥

हे सदा शिव! आपसे सत्य कहता हूँ, जो श्रीकिशोरीजीसे विमुख प्राणी हैं, उनका मैं मुख भी नहीं देखना चाहता; फिर उनके साधन द्वारा मन चाही सिद्धिको कहाँ तक देनेकी इच्छा कर सकता हूँ? अर्थात् विल्कुल नहीं ॥५१॥

जो साधक मेरे तथा श्रीप्रियाजीके (युगल) नाममें रत हैं, युगल मन्त्रोंका जप करने वाले हैं, युगल ध्यानमें सब प्रकार से आसक्त हैं, युगल उपासनामें लगे हुये है, उन भाग्यशाली भक्तों की चरण धूलिको ब्रह्मादिक देव श्रेष्ठ भी खोजते रहते हैं । जब हम और श्रीप्रियाजी दोनों ही उन्हें सुलभ हो जाते हैं, तब भला उन्हें और कौन सी सिद्धि दुर्लभ रह सकती है ? ॥५२॥५३॥

अतस्त्वं गिरिजाधीश ! शरच्चन्द्रनिभाननाम् । नीलपद्मपलाशाक्षीं कोटिविद्युन्महाप्रभाम् ।।५४।।
तप्तहाटकगौराङ्गीं पक्वबिम्बफलाधराम् । रक्ताम्भोरुहहस्ताब्जां जगत्पावनसुस्मिताम् ।।५५।।
क्वणन्नूपुरपादाब्जां करुणामृतवर्षिणीम् । सर्वश्रृङ्गारसम्पन्नां परिभूतरतिव्रजाम् ।।५६।।
कोटिशीतांशुतापघ्नीं कोटिसूर्यप्रभाकरीम् । कोटिलक्ष्मीपरित्रात्रीं कोटिधात्रीविधायिनीम् ।।५७।।
कोटिदुर्गाशुसंहर्त्रीं कोटिशेषधराधराम् । कोटिकालदुराधर्षामप्रतर्क्यपराक्रमाम् ।।५८।।
परमाह्लादिनीं शक्तिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् । अचिन्त्यामाप्तसङ्कल्पामगम्यां गीर्मनोधियाम् ।५९।
भजनीयगुणोपेतां श्रयणीयकृपालुताम् । श्लाघनीयमहाकीर्त्तिं मननीयुगणावलिम् ।।६०।।

हे पार्वतीनाथ ! अतः आप–जिनका श्रीमुखारविन्द शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्र सरीखे परम-आह्लाद प्रदान करने वाला अति मनोहर है, नीलकमलदलके सरीखे विशाल जिनके नेत्र हैं, करोड़ों विद्युत् (विजुली) पुञ्जके समान जिनके श्रीअङ्गका महान प्रकाश है ।।५४।।

तपाये हुये सुवर्णके समान देदीप्यमान, गौर जिनके श्रीअङ्ग हैं, पके बिम्बाफलकी लालिमा के समान अरुण जिनके श्रीअधर हैं, जिनके हस्त कमलमें लालकमल शोभा पा रहा है, जिनकी मन्द मुस्कान सभी-स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको पवित्र करने वाली है ।।५५।।

ताल-स्वरसे बजते हुये नूपुर जिनके श्रीचरणकमलोंमें सुशोभित हैं, जो करुणारूपी अमृत की वर्षा करने वाली, दिव्य सोलह प्रकारके श्रृङ्गार धारण किये हुई, अपने श्रीअङ्गके सहज सौन्दर्य-माधुर्यसे करोड़ों रति समूहोंका अभिमान दमन कर रही हैं ।।५६।।

जो करोड़ों चन्द्रमाओंके समान सहजमें सारे विश्वका ताप-हरण करने वाली, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश करने वाली और करोड़ों लक्ष्मियोंके समान सब प्रकारसे विश्वकी रक्षा करने वाली, तथा करोड़ों ब्रह्माणियोंके तुल्य जो सृष्टि करने वाली हैं ।।५७।।

जो करोड़ों शेषोंके समान सहजमें पृथ्वी (भूमि) को धारण करने वाली, अर्थात् अपनी शक्तिसे करोड़ों शेषोंकी शक्तिको तिरस्कृत करने वाली हैं, जो करोड़ों कालके समान जीतने में अशक्य हैं, जिनका पराक्रम तर्क शक्तिसे बाहर है ।।५८।।

जो आह्लाद प्रदान करने वाली, सभी शक्तियोंकी शिरोमणि और उनकी कारणस्वरूपा हैं, जिनका स्वरूप सत्-(विकार रहित-सदा एक रस रहने वाला) चित् (चैतन्य स्वरूप) और आनन्दमय है । जो किसीके भी चिन्तनका विषय नहीं हैं । किसी भी प्रकारके सङ्कल्पकी सिद्धि जिन्हें प्राप्त करनी बाकी नहीं है तथा जिन्हें वाणी, मन बुद्धि प्राप्त करने में असमर्थ हैं ।।५९।।

जो भजन करने योग्य सभी विशिष्ट (सौशील्य, वात्सल्य, गाम्भीर्य, कारुण्य, सारल्य, ऐश्वर्य, माधुर्यादि) दिव्यगुणोंसे युक्त हैं, प्राणीमात्रके लिये अपनी परितः सुरक्षापूर्वक सर्वोत्कृष्ट सिद्धि (प्रभु प्राप्ति के हेतु) जिनकी कृपाका अवलम्बन परमावश्यक है, जिनकी महाकीर्त्ति सब प्रकारसे प्रशंसाके योग्य, तथा गुण-पङ्क्ति सर्वदा मनन करने लायक है ।।६०।।

वाञ्छनीयकरच्छायां चिन्तनीयशुचिस्मिताम् ।
शिरोधार्यकराम्भोजां भावनीयाङ्घ्रिलाञ्छनाम् ॥६१॥
श्रवणीययशोगाथां स्मरणीयपदाम्बुजाम् । वरणीयपदासक्तिं चरणीयपरस्मृतिम् ॥६२॥
महामाधुर्यसम्पन्नां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् । निर्व्याजकरुणामूर्त्तिं सर्वजीवानुकम्पिनीम् ॥६३॥
मम पार्श्वसमासीनां द्योतयन्तीं दिशो दश । छत्रचामरहस्ताभिः सखीभिः परिषेविताम् ॥६४॥
अनवद्यां गुणातीतां भावयन्मम वल्लभाम् । जप तन्मनुराजं वै मन्मन्त्रेण समन्वितम् ॥६५॥
सीताशब्दश्चतुर्थ्यन्तः स्वाहान्तस्तु षडक्षरः । श्रीं पूर्वो मन्त्रराजोऽयं प्रियाया मम शङ्कर ? ॥६६॥

प्राणी-मात्रको सब प्रकारकी ताप निवृत्तिके लिये जिनके करकमलों के छायाकी ही इच्छा करनी उचित है, तथा अपने अन्तःकरणकी अपवित्रता दूर करनेके लिये, जिनकी पवित्र मन्द-मुस्कानही चिन्तन करने योग्य है। सभी प्रकारकी आपत्तियोंसे अभय होनेके लिये, जिनके कर-कमल ही सिर पर धारण करने योग्य हैं, विभिन्न प्रकारकी सिद्धि प्राप्तिके लिये जिनके श्रीचरणकमलोंकी रेखाओंका ध्यान ही पर्याप्त है ॥६१॥

दिव्यगुण प्राप्ति तथा मेरी प्रसन्नताके लिये जिनके पावन, मङ्गल चरित्र ही श्रवण करने योग्य हैं। मनुष्यजीवन कृतार्थ करनेके लिये, जिनके श्रीचरण-कमल ही सदा स्मरणीय हैं, सांसारिक सभी प्रकारकी आसक्तियोंको दूर करनेके लिये जिनके श्रीचरण कमलोंकी आसक्ति ही ग्रहण करने योग्य है। मेरे चित्तको अपनी ओर आकर्षित करने (खींचने) के लिये जिनका सुमिरण ही सर्वोत्तम साधन है ॥६२॥

जो महामाधुर्य रससे युक्त, सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली हैं, जीवके किसी भी शुभ कर्त्तव्यकी जिसे अपेक्षा नहीं, उस करुणाकी जो साक्षात् मूर्त्ति हैं, तथा जीवमात्र पर जिनकी पूर्ण अनुकम्पा (दया) रहती है ॥६३॥ जो छत्र-चामर हाथमें लिये हुई अनन्त सखियोंसे सेवित, मेरे पार्श्व (बगल) में विराजमान हो दशो दिशाओंको प्रकाशित कर रही हैं ॥६४॥

जो गुण, रूप, ऐश्वर्य, माधुर्य आदि अपनी अलौकिक अप्राकृत सम्पत्तिकी विशेषताके कारण वेद, शास्त्र, लोक, लोकपालादि सभीके द्वारा स्तुति करने योग्य तथा सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे परे हैं, हमारी उन श्रीप्रियाजीका ध्यान करते हुये, आप उनके मन्त्रराजसे युक्त मेरे मन्त्रराजका जप करें ॥६५॥

हे शङ्कर जी ! "श्रीं" बीज जिसके पूर्व में तथा चतुर्थी विभक्ति युक्त सीता शब्द (सीतायै) मध्यमें और जिसके अन्तमें स्वाहा शब्द है, बस यही हमारी श्रीप्रियाजीका (श्रीं सीतायै स्वाहा) श्रीमन्त्रराज है, श्रीप्रियाजूके सहित मेरा ध्यान करते हुये उनके इस मन्त्रके साथ मेरे षड़क्षर मन्त्रराजका जप करें, तब आपको मेरे परात्पर स्वरूपका दर्शन प्राप्त होगा ॥६६॥

इत्युक्त्वा स मया रामो भगवानभिवादितः । ह्लादयन्मम गात्राणि तत्रैवान्तरधात्प्रभुः ॥६७॥
सोऽहं जितेन्द्रियग्रामो युग्ममन्त्रपरायणः । युग्मध्यानविलीनात्मा प्राभवं दर्शनाशया ॥६८॥
कालेनाल्पीयसा देवि ! प्रसन्ना जनकात्मजा । दर्शयित्वाऽऽत्मरूपं तत् परं रूपमदर्शयत् ॥६९॥
दृष्ट्वैव सहसा तस्य तेजसाऽहं विमूर्च्छितः । समुत्थाय ततोऽपश्यं कथञ्चित्तच्चिरेप्सितम् ॥७०॥
अनन्तसूर्यचन्द्राग्निसुप्रभं वल्गुदर्शनम् । प्रतिरोमरुचिस्पर्द्धिसहस्त्ररतिमन्मथम् ॥७१
दर्शनीयं कृपासाध्यं महामाधुर्यमण्डितम् । अप्रमेयं गुणातीतं चिदानन्दमयं परम् ॥७२॥
मामुवाच ततः साक्षान्मैथिली श्लक्ष्णया गिरा । वाक्यं प्रणतिसन्तुष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा ॥७३॥

श्रीसीतोवाच ।

वरं ब्रूहि मुदा शम्भो! प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते । यत्त्वया काङ्क्षितं श्रेयः समाधिस्थितचेतसा ॥७४॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तोऽश्रुपूर्णाक्षः संस्तभ्यात्मानमात्मना । नत्वा गद्गदया वाचा तामयाचे हि सद्वरम् ॥७५॥

श्रीसूतजी श्रीशौनकजीसे और श्रीयाज्ञवल्क्यजी कात्यायनीजीसे बोले:- इतनी कथा श्रीपार्वतीजीको सुनाकर श्रीभोलेनाथजीने कहा—हे प्रिये ! प्रभुका यह मार्मिक आदेश सुनकर गद्गद हो मैंने प्रणाम किया, तब वे भगवान् श्रीरामजी मेरे अङ्ग प्रत्यङ्गको आह्लादित करते हुये उसी जगह अन्तर्धान हो गये ॥६७॥ हे प्रिये! इस प्रकार भगवान श्रीरामजीके मुखारविन्द से उनका हार्दिक प्रसन्नताकारक साधन श्रवण करके मैंने प्रभुके परात्परस्वरूपका दर्शन पाने की अभिलाषासे इन्द्रिय समुदायको स्ववश करके श्रीसीताराम युगल मन्त्रका जप करते हुए उनके ध्यानमें मनको तल्लीन कर दिया ॥६८॥ हे देवि! बहुत ही थोड़े समयमें श्रीकिशोरीजी प्रसन्न हो गयीं, और उन्होंने मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराकर भगवान श्रीरामजी सहित अपने पर स्वरूपका दर्शन प्रदान किया ॥६९॥ हे प्रिये! उस रूपका दर्शन करके उसके तेजको सहन न कर सकनेके कारण मैं मूर्छित हो गया, पुनः श्रीकिशोरीजी की कृपादृष्टिसे सावधान हो, प्रभु श्रीरामके उस चिरेप्सित परात्पर स्वरूपका दर्शन करने लगा ॥७०॥

वह स्वरूप अनन्त सूर्य, चन्द्र, अग्निके समान सुन्दर प्रकाशमय, देखते ही चित्तको चुराने वाला, रोम-रोमकी शोभासे सहस्त्रों काम और रतिका मान-मर्दन कर रहा था ॥७१॥

वह युगल परात्पर स्वरूप, महामाधुर्यसे विभूषित, तीनों (सत्व, रज, तम) गुणोंसे परे, अन्त न पाने योग्य, चैतन्य, आनन्दमय, केवल कृपा साध्य, बस देखने ही योग्य था ॥७२॥

तदनन्तर मेरे प्रणाम करने पर परम प्रसन्न हो मन्द-२ मुस्कराती हुई साक्षात् सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी बड़ी ही मधुर-वाणी द्वारा मुझसे बोलीं ॥७३॥ हे शम्भो ! मैं तुम पर प्रसन्न हूं, अत एव समाहित चित्त से जो आपने अपने लिये श्रेय रूप-वर चाहा हो प्रसन्नता पूर्वक माँगिये, मैं तुम्हें अवश्य प्रदान करूँगी ॥७४॥ हे प्रिये! श्रीस्वामिनीजूकी कृपा पूर्ण इस आज्ञाको सुनकर मेरे नेत्र भर आये किसी प्रकार हृदयको सम्हाल कर मैंने गद्गदवाणी पूर्वक उन(श्रीकिशोरीजी) से यह इच्छित-वर माँगा ॥७५॥

यदि दित्ससि संप्रीता वरं मे वरदेश्वरि ! । संप्रयच्छाचलां प्रीतिमेतदेवेप्सितं वरम् ॥७६॥
एवमुक्ता मयाऽचिन्त्या प्रत्युवाच शुभं वचः । शृण्वति श्रीरघुश्रेष्ठे ह्लादयन्त्यखिलाः सखीः ॥७७॥

श्रीसीतोवाच ।

याचितं यत्त्वया शम्भो ! तन्मया दत्तमेव ते । दीयतेऽन्यद्वरं पुण्यं तद्गृहाण महामते ॥७८॥
कृपया मम देवेश ! श्रुतीनामप्यगोचरम् । आवयोः परमं गुह्यं रहस्यं सम्यगेष्यसि ॥७९॥
गुप्तप्रकटलीलानां द्रष्टा दर्शयिता भवान् । चारुशीलास्वरूपेण सदा स्थास्यति मेऽन्तिके ॥८०॥

श्रीशिव उवाच ।

उक्तवत्यामिदं तस्यां रहस्यं परमाद्भुतम् । प्रत्यक्षमिव मे सर्वं संबभूव तयोः शुभम् ॥८१॥
ततः सा प्राणनाथेन सखीभिः परिवारिता । त्र्यधीशोपास्यपद्माङ्घ्रिः पश्यतो मे तिरोऽदधात् ॥८२॥
एवमाप्तं मया देवि ! रहस्यं वर्ण्यतेऽधुना । पृच्छया श्रद्धयोपेते ! भक्त्या संतोषितेन ते ॥८३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतदुक्त्वा प्रियां देवो यथा वक्तुं प्रचक्रमे । तथा तुभ्यं प्रवक्ष्यामि शृणु संयतचेतसा ॥८४॥

हे वरदाताओंकी श्रीस्वामिनीजू ! यदि आप सम्यक् प्रकारसे प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहती हैं, तो आप अपने श्रीचरण-कमलोंमें मुझे निश्चल-प्रीति प्रदान करने की कृपा करें ॥७६॥ मैंने जब इस प्रकार की प्रार्थना की, तब चिन्तनमें न आने योग्य वे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी श्रीराम सरकारके सुनते सभी सखियोंको आह्लादित करती हुई बोलीं ॥७७॥

हे शम्भो ! आपने जो माँगा उसे मैं आपको दे चुकी, हे महामते ! अब मैं अपनी इच्छासे कृपा करके जो वर आपको स्वयं प्रदान कर रही हूँ ! उसको ग्रहण करें ॥७८॥

हे देवेश ! हमारे परस्परके परम गोपनीय रहस्यको जिसे वेद भी नहीं जानते, उसे आप सम्यक् प्रकारसे ज्ञात कर लेंगे तथा ॥७९॥ हमारी जो कुछ गुप्त या प्रकट लीलायें हैं, उन्हें आप स्वयं देखलेंगे और अपने कृपापात्रोंको भी उनका दर्शन कराने को समर्थ रहेंगे तथा श्रीचारुशीला सखीके स्वरूपसे सदा मेरे समीपमें निवास करेंगे ॥८०॥

हे पार्वति ! श्रीकिशोरीजीके ऐसा कहते ही युगल सरकारका मङ्गलमय, परम आश्चर्य युक्त, सबका सब रहस्य मुझे प्रत्यक्षवत् दिखाई देने लगा ॥८१॥ तत्पश्चात् जिनके श्रीचरण कमलोंकी उपासना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवोंकोभी करनी आवश्यक है, वे श्रीकिशोरीजी सखियोंसे सेवित, अपने प्राणनाथजूके सहित मेरे देखते-२ अन्तर्हित हो गयीं ॥८२॥ हे देवि ! इस प्रकार आपके पूछने पर, आपके भक्ति-भावसे संतुष्ट होकर मैं अब, इस प्राप्त रहस्यका वर्णन करता हूँ क्योंकि श्रद्धायुक्त होनेसे आप उसके श्रवण करनेकी अधिकारिणी हैं ॥८३॥ हे श्रीशौनकजी! श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोलेः-हे प्रिये! भगवान्श्रीशङ्करजी ने श्रीपार्वतीजी से इतना कहकर जिस प्रकार कहना प्रारम्भ किया था, मैं आपसे कथन करता हूँ, आप एकाग्र चित्त हो श्रवण करें ॥८४॥

श्रीकात्यायन्युवाच ।

अर्थं मन्त्रस्य मे ब्रूहि सीतायाश्च परात्परम् । यं जपता त्रिनेत्रेण रूपं रामस्य वीक्षितम् ॥८५॥
ततो विदेहनन्दिन्या लीलाः श्रवणमङ्गलाः । प्रियायै शंकरेणोक्ता भगवन्कथयादितः ॥८६॥

श्रीसूतउवाच ।

इत्थं प्रियाया वचनं निशम्य श्रीयाज्ञवल्क्यो भगवान् मुनीन्द्रः ।
उवाच वाचा स्मितपूर्वयाऽसौ श्रीमैथिलीध्यानसमन्वितात्मा ॥८७॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्य महाराजके इस वचनको सुनकर श्रीकात्यायनीजी बोलीं:–हे प्राणनाथ! पहले आप हमें श्रीकिशोरीजीके उस मंत्रराजका अर्थ समझाइये, जिसके जपसे भगवान् श्रीभोलेनाथजीने सर्वेश्वर, प्रभु, श्रीरामजीके परात्पर स्वरूपका दर्शन प्राप्त किया था ॥८५॥

तत्पश्चात् श्रीविदेहराजनन्दिनीजूकी उन लीलाओंको आदिसे कहिये, जिनके सुनने से ही जीवका मङ्गल होता हे तथा जिन्हें भगवान् शङ्करजीने अपनी प्राणप्रिया (श्रीपार्वतीजी) को सुनाया था ॥८६॥ हे श्रीशौनकजी ! इस प्रकार मुनि शिरोमणि भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज अपनी प्रिया (श्रीकात्यायनीजीकी) प्रार्थनाको सुनकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूका ध्यान करते हुये मुस्कानयुक्त वाणी से बोले ॥८७॥

इति तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

श्रीसीतामन्त्रार्थ–वर्णन पूर्वक श्रीकिशोरीजीकी लीला–श्रवणार्थियोंकी सौभाग्य–प्रशंसा ।

श्रीयाज्ञवाल्क्य उवाच ।

श्रीमन्मैथिलराजपट्टमहिषी-पुण्याङ्कपूर्णश्रियो, वन्दे वन्द्यमजाब्जनाभगिरिशैः श्रेयोनिधिं शंप्रदम् ।
कामक्रोधमदेषणाप्रशमनं पादारविन्दं शुभं, मुक्तास्पर्द्धिनखद्युति प्रविमलं देवर्षिसिद्धैर्नुतम् ॥१॥
यां विना नो गतिः कापि मामिका हन्त कुत्रचित् । सा श्रीजनकराजस्य तनया मे प्रसीदतु ॥२॥

हे श्रीशौनकजी श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजी से बोले:–हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजीमहाराज की पटरानी (श्रीसुनयनामहारानीजीके) पवित्र गोद की पूर्णशोभा स्वरूपा श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ, जिनकी देव, सिद्ध, सब स्तुति करते हैं, जिनकी बड़ी ही सुन्दर छटा है, जिनके नखोंके प्रकाश से चन्द्रमा भी डाह करता है अर्थात् लज्जित रहता है, जो परममङ्गल स्वरूप स्मरण, ध्यान, सेवन करने वालों के काम, क्रोध, लोभ, मोह अहङ्कार और पुत्र, कलत्र (स्त्री) वित्त (धन) की वासनाको नष्ट करने वाले हैं, तथा जो सभी प्रकार का कल्याण प्रदान करने वाले, समस्त मङ्गलोंके खजाना (कोष), ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिकोंके भी वन्दना करने योग्य हैं ॥१॥ अहह! जिनके बिना हम सभी जीवोंकी कहीं भी कोई अन्य रक्षा करने वाला नहीं, वे श्रीजनकराज किशोरीजी हम सभी पर प्रसन्न हों ॥२॥

स्वाहान्तः षट्पदैर्युक्तः शकारादिर्मनुस्त्वयम् । तस्यैकैकपदस्यार्थमुच्यमानं मया शृणु ॥३॥
शकारार्थो हि जीवोऽयं सर्वसेवाविचक्षणः । रेफस्यार्थस्तु श्रीरामः कोटिब्रह्माण्डनायकः ॥४॥
ईकारो मूलप्रकृतेर्वाचकः कथ्यते बुधैः । परीता जीवब्रह्मभ्यां पदेनानेन गद्यते ॥५॥
सीति सूच्चारणादस्मिन् प्रेमानन्दरुचां सदा । सहजामलभावस्य भवेत्प्राप्तिर्न संशयः ॥६॥
"ता" पदोच्चारणं वेद्यं त्रिगुणार्णवतारणम् । तीव्रवैराग्यसन्दोहमनुरागाङ्कुरार्द्धनम् ॥७॥
प्रिय-संयोगदं नित्यं तद्वियोगाधिनाशनम् । ता पदोच्चारणं ज्ञेयं भावतारुण्यपूरणम् ॥८॥
यावत्कृत्यं हि सीतार्थं प्राणिनोऽशेषमेव तत् । प्रधानं तत्सुखं मत्वा चतुर्थ्यर्थोऽयमुच्यते ॥९॥
स्वाहा स्वातन्त्र्यमुत्सृज्य सुवृत्याऽनन्ययाऽऽत्मनः । सर्वस्वं किल सीताया अर्पणार्थे प्रयुज्यते ॥१०॥

हे प्रिये ! श्रीकिशोरीजीका यह मन्त्रराज आदिमें "श्" और अन्त में स्वाहा इन छः पदों से युक्त है, उस (मन्त्रराज) के एक एक पदका अर्थ मेरे कहते हुये आप श्रवण करें ॥३॥

शकारका अर्थ है प्रभुकी सभी प्रकारकी सेवा में निपुण याने परम चतुर जीव, रकारका अर्थ है कोटिब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी ॥४॥

तत्त्ववेत्ता ज्ञानी जन ईकारको मूलप्रकृतिका वाचक कहते हैं। इस "ई" पदसे युक्त होनेसे श्रीकिशोरीजी जीव और ब्रह्म दोनोंसे मिली हुई कही जाती हैं ॥५॥

"सी" इस पदके प्रेमपूर्वक सदा उच्चारण करनेसे मनुष्योंको विना अन्य साधनों के ही प्रेम, आनन्द, कान्ति तथा स्वाभाविक विशुद्ध भावकी निःसन्देह प्राप्ति होती है ॥६॥

"ता" पद के उच्चारणको सत्व, रज, तम इन तीनों गुणरूपी समुद्रसे पार कर देने वाला, तीव्र वैराग्य, और अनुरागकी वृद्धि करने वाला जानिये ॥७॥

पुनः "ता" पदका नित्य उच्चारण प्यारेका मिलन कराता है, और उनके वियोगसे प्राप्त हुई सारी मानसिक-व्यथाओंको दूर कर देता है, एवं "ता" पदका उच्चारण भावको तरुण अवस्थामें ले आता है अर्थात् खूब पक्का बना देता है ॥८॥

श्रीकिशोरीजीकी प्रसन्नताको ही अपना मुख्य सुख मानकर प्राणी जो कुछ कर्त्तव्य करे वह सब उन्हींके लिये करे, यह "ता" पदकी चतुर्थी विभक्तिका अर्थ है ॥९॥

"स्वाहा" का प्रयोग समर्पण अर्थ में किया जाता है, अतः इस पदका अर्थ हुआ जीव अपनी स्वतन्त्रताका परित्याग करके अनन्य निष्काम वृत्तिसे अपना तन,मन,धन श्रीकिशोरीजीको समर्पण कर दे किन्तु पुनः उन सबमें ममता न रखे बल्कि उनकी क्षीणता और वृद्धिमें केवल अपना यह दृढ़ भाव जमाये रखे कि, मेरी समर्पणकी हुई इन सभी वस्तुओंको श्रीकिशोरीजी जिस समय जिस प्रकार रखना उचित समझती हैं रख रही हैं, और आगेभी इसी प्रकार सदा अपनी रुचिके अनुसार वे इन्हें रखनेकी कृपा करें, क्योंकि ये सभी वस्तुयें अब उन्हीं की हैं, अतएव उनकी रुचि में हर्ष-विषाद करने वाले हम कौन ? ॥१०॥

अथ श्र्यादिनमोऽन्तस्य मन्त्रस्यार्थोऽस्य कथ्यते । श्रूयतां सावधानेन तपःसंशुद्धचेतसा ॥११॥
मूलशक्तिप्रधानाद्याः शुभे ! सर्वा हि शक्तयः । गुणवत्यो ह्यनन्ताश्च यदंशांशसमुद्भवाः ॥१२॥
अनन्तश्रीसमुत्पत्तिकारणं या कृपाकरी । प्रणिपातैकतुष्टा सा शर्मदा श्रीपदात्मिका ॥१३॥
प्राप्तिबाधकदोषान् या स्वाश्रितानां हरेः सदा । हिनस्ति सर्वदुःखान्यमङ्गलानि दयापरा ॥१४॥
या शृणोति सदा दुःखं जीवानां सोपपत्तिकम् । भगवन्तं तथा रामं श्रावयत्यूरुवत्सला ॥१५॥
शरणागतजीवेषु कृत्वा निर्हैतुकीं कृपाम् । त्रायते सर्वदा प्रीत्या मार्जारी स्वार्भकानिव ॥१६॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुर्वर्गप्रदा हि सा । अनायासेन भक्तानां श्रीशब्देन निगद्यते ॥१७॥
अस्य तप्तं हुतं जप्तं दत्तमाप्तमनुष्ठितम् । सुकृतं यद्धि सीतायै नेतरस्यै शरीरिणः ॥१८॥

हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजीने कहा:—हे प्रिये ! "श्री" पद जिसके आदिमें नमः अन्तमें तथा "सीतायै" यह पद जिसके मध्यमें है इन तीन पद युक्त श्रीकिशोरीजीके मन्त्र-राजका अर्थ मैं कहता हूं, उसे आप तप द्वारा पवित्र किये हुये अपने सावधान चित्तसे श्रवण करें ॥११॥ मूलप्रकृति आदि सभी त्रिगुणमयी अनन्तशक्तियाँ जिनके अंश, अंशांशों से उत्पन्न होती हैं अर्थात् रमा, उमा, ब्रह्माणी ये तथा श्रीचन्द्रकलाचारुशीलादिक अष्टयूथेश्वरियां आपकी अंश भूता शक्तियाँ हैं, और इनके अंशोंसे तथा अंशोंकेभी अंशों से अन्यान्य अगणित शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं वे अपनी कारण शक्तिके गुणसेही युक्त होती हैं ॥१२॥

जो प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न हो जाती हैं, शरणागत भक्तोंको सब प्रकारका सुख प्रदान करने वाली, कृपाकी खानि हैं। जिनसे अगणित शोभा, सौन्दर्य, वैभव आदिकी उत्पत्ति होती है, उन्हें "श्री" जी कहते हैं ॥१३॥ दया प्रधान होनेके कारण जो अपने आश्रितोंके सभी प्रकारके अमङ्गल, दुःख और प्रभु प्राप्ति बाधक सभी दोषोंका निवारण करती हैं ॥१४॥

कारण समेत जो सभी जीवोंके दुःखोंको स्वयं श्रवण करती हैं तथा वात्सल्याधिक्यके कारण उन्हें अपने प्यारे भगवान् श्रीरामजीको श्रवण कराती हैं ॥१५॥

जो शरणागत जीवों पर निर्हैतुकी (विना किसी प्रकारके कर्त्तव्यकी अपेक्षा वाली) कृपा करके उनकी सदा-सर्वदा इस प्रकार रक्षा करती हैं, जैसे बिल्ली अपने बच्चोंकी ॥१६॥

जो अनायास (विना साधन विशेषके) ही भक्तोंको धर्म, अर्थ काम, मोक्ष नामक चतुर्वर्ग प्रदान करने वाली हैं, उन्हें "श्री" शब्दसे पुकारा जाता है अर्थात् उपर्युक्त समस्त गुण सम्पन्नाको ही श्री (जी) कहते हैं ॥१७॥ इस जीव द्वारा किया हुआ जो कुछ जप, तप, हवन, व सुकृत है तथा दिया हुआ धनादिक दान एवं प्राप्त किया हुआ वैभव व कौशल है, वह सब श्रीकिशोरीजीके लिये ही है अन्य किसीके लिये नहीं, (यह मध्य-पद "सीतायै" का अर्थ हुआ) ॥१८॥

नमोऽर्थो नैव जीवस्य तदर्थोऽयं विभाव्यताम् । सर्वस्वं खलु जीवस्य श्रीसीतायै समर्पितम् ॥१९॥
नैवात्मानमहं त्रातुं न कोऽप्यन्यो जगत्त्रये । विना सीतां क्षमो जातु श्रुतिज्ञानामिदं मतम् ॥२०॥
तस्मात् पूज्यो न मे कश्चिन्नोपास्यो ध्येय एव नो । तामन्तरेण लोकेषु वैदेहीं जनकात्मजाम् ॥२१॥
सा पूज्या मम सा ध्येया सोपास्या साऽऽश्रयास्पदा ।
वन्द्या मान्याऽनुभाव्या सा ज्ञेया गेया हि सा मम ॥२२॥
राममन्त्रस्य रां बीजे सीताऽकारात्मिकोच्यते । भवभीत्यार्त्तजीवानां शरण्यैका तदाप्तये ॥२३॥
सीतारामावुभावेकावखण्डौ ज्ञानविग्रहौ । तयोर्भेदं न पश्यन्ति पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः ॥२४॥
तस्मात्तौ हि मम श्रेष्ठौ सीतारामौ परात्परौ । नान्यदेवं विजानामि नान्यस्मान्मे प्रयोजनम् ॥२५॥

नमः का अर्थ है जीवका नहीं, इसका तात्पर्य यह है कि इस त्रिलोकीमें जो कुछ भी है वह सब श्रीकिशोरीजीका है, जीवका नहीं, अत एव वह किसी भी व्यक्ति–वस्तुमें अनधिकार आसक्ति करके दण्डका भागी न बने, केवल अधिकारानुसार उनका हितकर सदुपयोग करता रहे और अपना सब कुछ उन्हींके श्रीचरणोंमें समर्पित समझे यही "नमः" शब्द का अर्थ है ॥१९॥ श्रीकिशोरीजी के बिना न मैं अपनी रक्षा करनेको स्वयं समर्थ हूँ और न तीनों लोकोंमें कोई अन्य ही मेरी रक्षा करनेको कभी समर्थ हो सकता है, यह वेदवेत्ताओंका मत (सिद्धान्त) है ॥२०॥ अत एव उन श्रीकिशोरीजीको छोड़ कर हमें किसी की भी पूजा, उपासना तथा ध्यान करना आवश्यक नहीं है, (और यदि निष्काम भाव से करें तो कोई हानि भी नहीं है) ॥२१॥ हमें तो पूजा भी उन्हींकी करनी आवश्यक है, ध्यान भी उन्हींका करना कर्त्तव्य है, उपासना भी हमें उन्हींकी करनी चाहिये, और उन्हींकी शरणागति भी हमें स्वीकार करना कर्त्तव्य है, तथा उन्हींकी वन्दना, उन्हींका सम्मान, उन्हींकी भावना (विचार) उन्हींका ज्ञान, और उन्हींकी लीलाओंका गान हमें करना परम आवश्यक है ॥२२॥

वे श्रीकिशोरीजी राम-मन्त्रके रां बीजमें अकार स्वरूपसे विराजमान कही जाती हैं, अत एव जन्म-मरणके भयसे व्याकुल जीवोंको प्रभु प्राप्तिके लिये, उनकी ही शरणागति स्वीकार करनी परम आवश्यक है । क्योंकि "रकार" वाचक प्रभु श्रीराम और मकार वाचक यह जीव है, इस हेतु प्रभुकी प्राप्ति करवानेमें मध्यस्थ अकार स्वरूपा श्रीकिशोरीजीको बिना अपनाये अर्थात् प्रसन्न किये हुये उनके दाहिने भागमें विराजमान प्रभु कदापि प्राप्त नहीं हो सकते ॥२३॥

श्रीसीतारामजी दोनों सरकार एक हैं अर्थात् उनकी समताका कोई दूसरा है ही नहीं । वे अखण्ड हैं अर्थात् किसीके खण्ड (अंश) नहीं हैं सभी कारणों के कारण वे दोनों सरकार पूर्ण-ब्रह्म हैं । ज्ञानकी साक्षात् मूर्त्ति हैं । तत्त्वका विचारही जिनमें प्रधान है वे बुद्धिमान् महर्षिगण उन श्रीयुगलसरकारमें कुछ भी भेद नहीं देखते । अर्थात् दोनोंको एकही समझते हैं ॥२४॥

इस कारण (ब्रह्मादि) देवश्रेष्ठों से भी श्रेष्ठ वे ही श्रीयुगल सरकार हमारे परम प्यारे हैं, मैं किसी अन्य को जानता ही नहीं, और न किसी अन्यसे मुझे कुछ प्रयोजन ही है ॥२५॥

तयोश्च पार्षदा ये ते ह्यनन्योपासकास्तथा । तन्नामरूपलीलादि-धामान्येव प्रियाणि मे ॥२६॥
अहमस्मि तयोर्भोग्यो भोक्तारौ मामकौ हि तौ । इत्येवं किल सीताया मन्त्रराजार्थ उच्यते ॥२७॥
कुर्वन्त्यर्थानुसन्धानमेवं जपपरायणा । त्वमपि ध्यानसंयुक्ता जीवन्मुक्ता न संशयः ॥२८॥
धन्यास्ते प्राणिनो लोके सीतारामपरायणाः । पशुघ्नास्ते हि विज्ञेया ये च ताभ्यां पराङ्मुखाः ॥२६॥
भूमिभारस्वरूपा हि नररूपेण राक्षसाः । परहिंसारता ये च सीतारामपराङ्मुखाः ॥३०॥
दुर्भगाः क्षीणपुण्यास्ते सीताराममनाश्रिताः । आत्मनः प्रतिकूलानि परेषामाचरन्ति ये ॥३१॥
प्रधानत्वेन नो येषां मैथिली हृदि राजते । धिगस्तु जननं तेषां मिथिलायां विशेषतः ॥३२॥
ब्रह्मादिदेववर्याणां सदा दुष्प्राप्यदर्शना । येषामलभ्यलाभायावतीर्णा जगदीश्वरी ॥३३॥

दोनों सरकारके जो पार्षद तथा अनन्य उपासक हैं, वे और उनके नाम, रूप, लीला, धाम आदि ही हमें परम प्रिय हैं ॥२६॥ मैं उन्हीं श्रीयुगल सरकारके भोगमें आने योग्य हूँ और वे ही श्रीयुगल प्रभु हमारे भोक्ता (भोगने वाले) हैं, यही श्रीकिशोरीजीके मन्त्रराजका अर्थ कहा गया है ॥२७॥ हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजी से बोले:– हे प्रिये ! इसी प्रकार श्रीमन्त्रराजके अर्थका अनुसन्धान करती हुई आपभी युगल ध्यान पूर्वक श्रीयुगल-मन्त्र-जप परायण हो जावें, इससे आप अवश्य जीवन्मुक्त हो जावेंगी इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२८॥ लोकमें वे प्राणी धन्य हैं, जो श्रीसीतारामजीमें लगे हुये हैं, अर्थात् उनका भजन करते हैं और जो श्रीयुगल सरकारसे विमुख हैं, उन्हें निश्चय ही पशुघातक (कसाई) जानो ॥२६॥

जो प्राणी श्रीसीतारामजीका भजन नहीं करते अपितु अपने बल, बुद्धि तथा आचरणों द्वारा दूसरोंके वास्तविक हित (भगवत् प्राप्ति) का हनन करते हैं वे पृथ्वीके भार स्वरूप, मनुष्य रूप बनाये हुये निश्चय ही राक्षस हैं ॥३०॥ जो श्रीसीतारामजीके आश्रित नहीं हैं, और अपने प्रति प्रतिकूल प्रतीत होनेवाले ही व्यवहारों को दूसरोंके प्रति जानबूझकर करते हैं, उनका निश्चयही पूर्व जन्मोंका कमाया हुआ सारा पुण्य समाप्त है, अत एव वे बड़े ही दुर्भागीहैं ॥३१॥

जिन प्राणियोंके हृदयमें प्रधानरूपसे, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजी नहीं विराज रही हैं, उनके जन्मको धिक्कार है । यदि कहीं वे श्रीमिथिलाजीमें जन्म लिये हैं, तो उन्हें और भी विशेष धिक्कार है ॥३२॥ हे श्रीशौनकजी ! श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे कहते हैं :– हे प्रिये ! श्रीमिथिलाजीमें जन्म लिये हुए प्राणियोंको विशेष धिक्कार इस लिये है :– कि जिनका दर्शन ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवोंके लिये भी सदा दुर्लभ है, सभी स्थावर-जङ्गम (चर-अचर) की वही स्वामिनीजू जिन श्रीमिथिलानिवासियोंको, अपने दर्शनादिकोंका सुख प्रदान करनेके लिये श्रीमिथिलाजीमें प्रकट हुई हैं, उन श्रीकिशोरीजीकी ही प्रधानता यदि उनके हृदयमें नहीं जमती, तो वे कृतघ्न होनेके कारण अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा, स्पष्ट ही विशेष धिक्कार के पात्र हैं ॥३३॥

दुर्लभः सुलभो यस्याः प्रसादाद्भवति ध्रुवम् । यां विना नैति संतुष्टिं श्रीरामः साऽस्तु मे गतिः ।।३४।।
धन्यास्युदितसौभाग्या वल्लभे! नात्र संशयः । श्रोतुमभ्युत्सुका तस्या वाललीला महीभुवः ।।३५।।

श्रीसूत उवाच ।

इति मुनिगणसत्तमः प्रभाष्य मृदुवचनं दयितां प्रसन्नचेताः ।
हृदि जनकसुतां विभाव्य सम्यक् पुनरवदन्मुदितः कृतप्रणामः ।।३६।।

जिनकी कृपासे दुर्लभ (श्रीरघुनन्दनप्यारे) भी सुलभ हो जाते हैं, जिनकी कृपा-कटाक्ष हुये विना प्रभु श्रीरामकी प्रसन्नता होती ही नहीं, वे करुणावरुणालया सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी मेरी गति (परमआधारस्वरूपा) हों ।।३४।।

हे प्रिये ! आप उन्हीं श्रीकिशोरीजीकी बाललीलाओंको सुननेके लिये उत्सुक हो रही हैं ! अत एव आप धन्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, आपका सौभाग्य उदय है ।।३५।।

हे श्रीशौनकजी ! इस प्रकार वे मुनिवृन्दोंमें श्रेष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज अपनी प्रिया श्रीकात्यायनीजीसे कहकर बहुत प्रसन्न चित्त हो गये । पुनः अपने हृदयमें श्रीकिशोरीजीका भली प्रकार ध्यान तथा प्रणाम करके मोदपूर्ण हो मधुर वचन बोलेः-।।३६।।

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

"इति मास पारायणे प्रथमो विश्रामः ।।१।।"

--❀❀❀--

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीकिशोरीजीकी स्तुति पूर्वक श्रीयाज्ञवल्क्य द्वारा मुक्त जीवोंका सेवा-स्वातन्त्र्य वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

राकेशास्यां सुभालां जलरुहनयनां पक्वबिम्बाधरोष्ठीं
सुस्निग्धारालकेशीं सुललितचिबुकां कीरसम्मोहिनासाम् ।
कम्बुग्रीवां सुकर्णां निरवधिसुषमालङ्कृतिस्निग्धहस्तां
शङ्खाम्भोजाष्टकोणाम्बरनरकुलिशैश्चिह्निताङ्घ्रिं नमामि ।।१।।

जिनका श्रीमुख चन्द्रके समान है, सुन्दर भाल है, कमलके समान जिनके नयनहैं, जिनके अधर तथा ओष्ठ पके बिम्बाफलके सदृश अरुण हैं; बड़े ही चिकने कुञ्चित (घुंघुराले) जिनके बाल हैं, जिनकी ठोढ़ी बड़ीही सुन्दर है, शुकको मोहित करनेवाली नासिका, शङ्खके समान जिनका कण्ठ है, शोभामय जिनके कान हैं, अनन्त सौन्दर्य मय, भूषणोंसे भूषित जिनके करकमल हैं, शङ्ख, कमल, अष्टकोण, अम्बर, नर, बज्र आदि अड़तालिस चिह्नोंसे चिह्नित जिनके श्रीचरण-कमल हैं, उन श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूं ।।१।।

भाले चातीवरम्या विजितविधुरुचिश्चन्द्रिका भूरिदीप्तिः
सीमन्तः सर्वशोभानिरुपमनिलयो मौक्तिकैः शोभमानः ।
ताटङ्कं कर्णयुग्मे मधुकरपटलभ्रान्तिदा मूर्द्धिनकेशा
नासायां मौक्तिकं यज्जितविधुनि मुखे पक्वताम्बूलवीटी ॥२॥
ग्रैवेयं कम्बुकण्ठे विविधमणिमयं हृत्स्थले हारमाला
देवच्छन्दः सुरम्यः सरसिजकरयोः शोभनाः पारिहार्याः ।
यस्याः कट्यां कलापश्चरणनलिनयोर्हंसकक्षुद्रघण्ट्यः
सर्वाङ्गे युक्तवस्त्रानुपमितरचना भाति सीतां भजे ताम् ॥३॥
कारुण्याम्भोधिरूपां निरवधिसुभगां सर्वसच्चिह्नयुक्तां
विद्युद्दामायुताभां जितरतिसुषमां कोटिचन्द्रोज्ज्वलास्याम् ।
माधुर्य्याम्भोधिपद्मां बिधिहरिगिरिशैर्भाविभिर्भाव्यमानां
क्षान्तिश्लाघ्योरुकीर्त्ति निमिमणितनयां रामकान्तां प्रपद्ये ॥४॥

चन्द्रमाकी छविको परास्त करने वाली, अत्यन्तसुन्दर, महाप्रकाश युक्त चन्द्रिका जिनके भाल पर सुशोभित है, गजमुक्तादिकोंसे शोभायमान जिनकी माँग सभी शोभाओंका उपमा रहित स्थान है। कर्णफूल जिनके युगलकानोंमें सुशोभित हो रहे हैं, मस्तक पर भौरोंके समूहोंका भ्रम (संदेह) कराने वाले जिनके अति सुन्दर कोमल घुंघुराले केश हैं, नासिकामें गजमोतीकी शोभा है, अपनी शोभासे चन्द्रको लज्जित करने वाले जिनके श्रीमुखारविन्दमें पके पानोंका बीरा है ॥२॥ जिनके शङ्खके समान सुन्दर कण्ठमें सौलड़ा हार व अनेक प्रकारकी मणियोंसे बना हुआ कण्ठा, हृदय-देशमें मोतियोंका अत्यन्त सुन्दर हार, मणियों तथा पुष्पोंकी मालायें शोभा दे रही हैं, करकमलोंमें मणिजटित चूड़ियाँ सुशोभित हैं, जिनके सुन्दर कटिभागमें पच्चीस लड़की मणिमयी तागड़ी (कमर बन्धनी, डणकसी या करधनी) और श्रीचरणकमलोंमें नूपुर व घुंघरू सुशोभित हैं, तथा सभी अङ्गोंमें उपयुक्त अर्थात् जिस अङ्गमें जहाँ जैसी चाहिये, वैसी ही वस्त्रोंकी अनुपम सजावट शोभा दे रही है, उन श्रीकिशोरीजीका मैं भजन करता हूँ तथा करूँगा ॥३॥

करुणारस-समुद्रकी जो मूर्त्ति हैं, जिनके सौन्दर्यकी अवधि (अन्त) नहीं, जो सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त हैं, करोड़ों बिजलीकी मालाओं जैसा जिनके श्रीअङ्गका सहज प्रकाश है, जो रति और सुषमा(जिससे बढ़कर और कोई सौन्दर्य हो ही न सके)दोनोंको ही अपने अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्यसे विजय कर रही हैं, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान जिनका निर्मल प्रकाशयुक्त आह्लाद प्रदान करने वाला श्रीमुखारविन्द है, माधुर्य-सिन्धुकी जो लक्ष्मी हैं अर्थात् सिन्धु मात्रकी शोभाका सार तो श्रीलक्ष्मीजी हैं और आप माधुर्यसिन्धुकी शोभाका सार स्वरूपा लक्ष्मी हैं, केवल सिन्धुकी ही नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर आदि भावुक देवगण भी जिनकी अनेक प्रकारसे भावना (पूजा) कर रहे हैं, क्षमा गुणसे जिनकी महती कीर्त्ति विशेष प्रशंसनीय है, उन निमिवंशमणि (श्रीमिथिलेशजी) की दुलारी श्रीरामप्राणवल्लभा श्रीकिशोरीजीकी मैं शरण में हूँ ॥४॥

भूयो भूयोऽपि नत्वा सकरुणहृदयां नीलपद्मायताक्षीं
पापेभ्यो द्वेषकृद्भ्योऽप्यभयकर युगप्रीतिदानप्रसक्ताम् ।
लक्ष्मीदुर्गादिभिश्च प्रतिदिनमभितः सेव्यमानां वरेण्यां
कल्याणानां निधानं क्षितिपतितनयां वन्दनैकप्रसाद्याम् ॥५॥

तस्या एवोरुकीर्त्तेरघहरयशसा भूषिताङ्गी विशेषं
श्रीमत्या भावपूर्णा क्षितिपतिदुहितुः संहिता शम्भुनोक्ता ।
पृच्छन्त्यै ते शुभाङ्गि ! प्रणयत इह सा वर्ण्यते भूमिजायाः
प्रालम्ब्यैवानुकम्पामघटितघटनासुक्षमां भावगम्याम् ॥६॥

सा संहितेयं परमं मुनीनां प्रियं धनं मानसगर्त्तगुप्तम् ।
श्रीमैथिलीबालचरित्ररत्नैर्मनोहरैश्चारुचमत्कृताङ्गी ॥७॥

श्राव्या त्वयैकाग्रहृदा सुपुण्या त्वदीयशङ्कामपहर्तुमीशा ।
यतः किलास्यां जगतां जनन्याः प्राकट्यहेतुश्च परात्परायाः ॥८॥
यशः पवित्रं धृतबालमूर्त्तेः संवर्णितं स्नेहपरामुखेन ।
साक्षाद्दशस्यन्दननन्दनाय श्रीरामभद्राय परात्पराय ॥९॥

अपार करुणा परिपूर्ण जिनका हृदय है, नील कमलके समान विशाल जिनके लोचन है, जिनके दोनों कमलवत् अभय हस्त, पापियों और वैरभाववालोंके लिये भी प्रीति प्रदान करनेमें सदा आसक्त रहते हैं, लक्ष्मी दुर्गादिक सभी विशिष्टसे विशिष्ट शक्तियाँ जिनकी सेवामें सदा तत्पर रहती हैं, जो सभी प्रधानोंमें प्रधान हैं, सभी कल्याणोंका जो खजाना ही हैं, प्रणाम मात्रसे ही जो भली प्रकारसे प्रसन्न हो जाती हैं, उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको बारम्बार प्रणाम करके ॥५॥ अनन्त ब्रह्माण्ड ही जिनकी कीर्त्ति स्वरूप हैं, उन सर्व शोभा सम्पन्ना श्रीमिथिलेशदुलारी अवनिकुमारीजूकी असम्भवको सम्भव करनेमें पूर्ण समर्थ, भावके द्वारा ही प्राप्त होने योग्य, कृपाका सहारा लेकर उन्हीं (श्रीकिशोरीजू) के समस्त पापहारी चरित्रोंसे विभूषित, भावपूर्ण, भगवान् शंकरजीकी कही हुई संहिताका, मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥६॥

जिसके अङ्ग प्रत्यङ्ग श्रीकिशोरीजीके केवल चरित्ररूपी मनोहर रत्नोंसे भलीभांति चमक रहे हैं, वही यह मुनियोंका संहिता रूपी प्यारा तथा श्रेष्ठ धन उनके ही मानसगर्त (तरहरा) में सुरक्षित रहा है ॥७॥ इस संहितामें अद्वितीय (जिनसे बढ़कर कोई दूसरा है ही नहीं उन) जगज्जननी श्रीकिशोरीजीके प्रकट होनेका मुख्य कारण और उनके बाल स्वरूपमें विराजनेके पवित्र यशको श्रीस्नेहपराजीने दशरथ-नन्दन श्रीरामभद्रजूसे वर्णन किया है, अतः इस संहिताको आप एकाग्र चित्तसे श्रवण करें; क्योंकि उपर्युक्त विषय प्रधान होनेके कारण आपकी शङ्काको दूर करनेमें यह अवश्य समर्थ है ॥८॥९॥

वंशावली पुण्यमयी च पित्रोराद्यन्तमध्यैः परिवर्जितायाः ।
अयोनिजाया जनकात्मजाया रसान्विता गुप्तविहारलीला ॥१०॥
प्राकट्यहेतुः प्रथमं मया ते निगद्यते शम्भुमुखोदितो यः ।
चित्तं समाधाय विशुद्धबुद्धे ! स श्रूयतां यच्छ्रवणीय एषः ॥११॥

श्रीशिव उवाच ।

न यद्रविर्भासयते न चन्द्रो नैवानलः स्वप्रभया प्रदीप्तम् ।
यत्रांशिनो ब्रह्महरीश्वराणां तथाऽखिलानां जगतां वसन्ति ॥१२॥
यदाप्तिहेतोर्मुनिहंसमुख्या यतात्मना तीव्रतपश्चरन्ति ।
प्राप्तं शकृद्वत्सुखमुद्विहाय व्यपास्तसम्यक्सदसत्प्रसङ्गाः ॥१३॥
अथो निवर्तन्त इहैव भूयो न यत्र गत्वाऽक्षरसञ्ज्ञकं तत् ।
निर्मायिकं धाम परं जिताशैः सर्वेशपादाम्बुजलीनलभ्यम् ॥१४॥
तत्रापि सत्याऽखिललोकवन्द्या स्थानं परं राममुपाश्रितानाम् ।
न विद्यते कश्चिदुपाय एव विनैकभक्त्या यदवाप्तये च ॥१५॥

वस्तुतः जिनका कभी न आदि है, न मध्य है और न अन्त, उन अयोनिसम्भवा श्रीजनकदुलारीजूकी सरस, गुप्त बिहार लीलाओं और उनके माता-पिता श्रीसुनयना महारानी व श्रीजनकजी महाराजकी पवित्र-वंशावलीका इस संहितामें वर्णन है ॥१०॥

हे विशुद्ध बुद्धे ! अब मैं भगवान शङ्करजीके द्वारा कहा हुआ श्रीकिशोरीजीके प्रकट होनेका मुख्य कारण बताता हूँ, उसे आप चित्तको सावधान रखकर श्रवण करे, क्योंकि यह विषय भली-भाँति श्रवण करने योग्य है ॥११॥ सूर्य, चन्द्र, अग्नि जिसे अपने प्रकाशसे प्रकाशित नहीं कर सकते जो अपने सहज प्रकाशसे स्वयमेव प्रकाशमान है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिकोंके कारण (व्यूह) तथा समस्त लोकोंके कारण-लोक, निवास करते हैं ॥१२॥

यह दृश्य जगत् सत्य है अथवा असत्य ? इस प्रसङ्गको सर्वथा त्यागकर, उपलब्ध सुखोंका विष्ठा (मल) के सदृश आसक्ति रहित परित्याग करके, अपने मनको वशमें रखते हुये जिस धामकी प्राप्तिके लिये परमहंस मुनिवृन्द, घोर तप करते हैं ॥१३॥

जहाँ प्राणी जाकर पुनः इस लोकमें नहीं लौटते, जो समस्त वासनाओंके जीते हुये सर्वेश्वर प्रभुके श्रीचरण कमलोंमें आसक्त भक्तोंके लिये ही प्राप्त होनेमें सुलभ है, वही सर्व श्रेष्ठ अमायिक (पञ्चभूतोंके प्रपञ्चसे न बना हुआ) अविनाशी, दिव्य धाम है ॥१४॥

उस दिव्य धाममें भी सभी लोकोंसे वन्दनीय श्रीराम-उपासकोंका परम (उत्कृष्ट-सर्वोत्तम) स्थान श्रीसाकेत (धाम) है, जिसकी प्राप्तिके लिये श्रीसीतारामजी की एक अनन्य उपासनाको छोड़कर और कोई साधन है ही नहीं ॥१५॥

तस्यामपि श्रीकनकालयाख्यं स्थानं परं योगिभिरप्यगम्यम् ।
ऋते कृपां श्रीजनकात्मजायास्तपोभिरुग्रैः शतकोटियत्नैः ॥१६॥
परात्पर नित्यमनन्तवैभवं सच्चित्परानन्दमयं रसात्मकम् ।
तेजोमयं शाश्वतदम्पतीगृहं युतं च सप्तावरणैः समुच्छ्रितैः ॥१७॥
अगोचरं मैथिलराजपुत्र्याः सम्बन्धनिष्ठापरिवर्जितानाम् ।
मनोगिरामक्षरमप्रमेयं परेशयोर्गात्ररुचिप्रदीप्तम् ॥१८॥
तत्रेश्वराणां परमेश्वरी सा ब्रह्मात्मिका राममनोहरन्ती ।
मन्दस्मिता प्रेमकृपैकमूर्त्तिः सखी-सहस्रै विहरत्यजस्रम् ॥१६॥
तां सप्रियां शाश्वतमुक्तजीवाः सेवासतृष्णाः परमानुरक्ताः ।
रूपाण्यनेकानि विधाय कामं भजन्ति वस्त्राभरणादिकानाम् ॥२०॥
सिंहासनस्थां च भवन्ति केचिद् दृष्ट्वाऽऽतपत्रव्यजनादिकानि ।
विदूषका हास्यकलाप्रवीणाः क्वचिन्नटा नृत्यविदो भवन्ति ॥२१॥

उस श्रीअयोध्यापुरीमें भी श्रीकनक भवन नामका स्थान, अनेक प्रकारके कठिनसे कठिन तप आदि करोड़ों साधन करने पर भी, श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी कृपाके बिना, नीरस योगियोंको परम दुर्लभ है ॥१६॥

वह कनक-भवन ऊँचे-२ सात आवरणोंसे युक्त, सत्, चित् (ब्रह्म श्रीरामके उपासकों) के सेवानन्दसे परिपूर्ण, रसका स्वरूप, अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न, सदा एक रस रहने वाला, तेजो मय, सर्वश्रेष्ठ, शाश्वत (कभी विनाश भावको न प्राप्त होने वाले) दम्पती श्रीसीतारामजीका मुख्य महल है ॥१७॥ वह महल सर्वेश्वरी-सर्वेश्वर श्रीसीतारामजीके ही श्रीअङ्गकी कान्तिसे प्रकाशित तथा तर्कसे अगम्य है श्रीकिशोरीजीकी सम्बन्ध-निष्ठा शून्य हृदय वाले न, उसका मनसे मनन कर सकते है, न वाणी से वर्णन ॥१८॥ जो सभी लोकाधिपोंकी स्वामिनी, प्रेम एवं कृपाकी अनुपम मूर्त्ति तथा ब्रह्म-स्वरूपा हैं, जिनकी सुन्दर मन्द-मन्द मुस्कान है, वे श्रीसाकेत-विहारिणी श्रीकिशोरीजी सहस्रों सखियोंके सहित, प्राणप्यारे श्रीरामभद्रजूके मनको हरण करती हुई उस "कनक भवन" में सर्वदा विहार करती हैं ॥१६॥

सेवाके अभिलाषी, परम-अनुरागी, नित्य-मुक्त जीव आवश्यकतानुसार वस्त्राभूषणादिकोंके अपने अनेक स्वरूप धारण करके प्राणप्रियतमजूके सहित उन (श्रीकिशोरीजी) की समयोचित सेवा किया करते हैं ॥२०॥ कुछ नित्य-मुक्त सेवाभिलाषी जीव श्रीकिशोरीजीको सिंहासन पर विराजमान देखकर छत्र, व्यजन (पंखा) आदिक बन जाते हैं, कभी हास्यकलामें प्रवीण विदूषक, कभी नट, कभी नृत्यविद्याके जानने वाले बनकर श्रीयुगलसरकारके सेवा परायण होते हैं ॥२१॥

भूत्वा वयस्याः परिशीलयन्ति सूपानहौ पादसरोजयुग्मम् ।
अशेषसेवास्वधिकारयुक्ताः स्वेच्छास्वरूपाणि विधातुमीशाः ॥२२॥
शय्यावितानास्तरणोपवर्हण-प्रभृत्यनेकानि यथोचितानि वै ।
सद्भोग्यवस्तुत्वमुपेत्य नित्यशः क्वचिद्भजन्ते च सनिद्रलोचनाम् ॥२३॥
बाणा धनुः कन्दुकपद्मवेत्रप्रसूनगुच्छैणपिकादिकाश्च ।
रथं च खेलाखिलवस्तुकानि भवन्ति कामं हि यथावकाशम् ॥२४॥
पारार्थिकाः सच्छ्रुतयश्च सर्वा भूत्वा वयस्याः परिशीलयन्ति ।
शिष्यास्तु भक्तेः रसनिर्भराया मुग्धादिभेदात्परमप्रवीणाः ॥२५॥
तस्यै परानन्दरसाश्रयाय माधुर्यवात्सल्यकृपालयाय ।
लावण्यवारांनिधिविग्रहायै नमो नमः श्रीजगतां जनन्यै ॥२६॥
रामप्रियायै निमिभूषणाय पञ्चेषुजायाऽधिकशोभनायै ।
शचीविधात्रीगिरिजारमाभिः संसेवितायै सततं नमोऽस्तु ॥२७॥

प्रभुकी इच्छासे सभी प्रकारके स्वरूप धारण करनेको समर्थ वे नित्य-मुक्त जीव, कभी सखा होकर सरकारकी लीलामें सहायता करते हैं, तो कभी पदत्राण (जूता) बनकर श्रीयुगल प्रभुके श्रीचरण-कमलोंमें सुशोभित होते हैं। कहाँ तक कहें ? इस प्रकार वे जीव श्रीयुगल सरकारकी सभी सेवाओंके अधिकारी बन जाते हैं ॥२२॥

जब कभी श्रीकिशोरीजी अपनी निद्रावस्थाको प्रकट करती हैं, तब वे मुक्त जीव; पलङ्ग, वितान (चँदोवा) बिछौना, तकिया आदि भोग्य वस्तु बनकर उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करते हैं ॥२३॥

सामयिक आवश्यकताओंके अनुसार वे कभी बाण कभी धनुष, कभी गेंद, कभी कमल, कभी बेंत, कभी फूलोंका गुच्छा, कभी हरिण, कभी कोयल पक्षी, कभी रथ, कभी खेलकी सभी सामग्री बन जाते हैं ॥२४॥

केवल ब्रह्मका प्रतिपादन करने वाली, प्रेमा-भक्तिकी शिष्याभूता, परम चतुरी सभी श्रुतियाँ, मुग्धादि अवस्था भेदसे सखी बनकर अनेक प्रकारसे श्रीकिशोरीजीकी सेवा करती हैं ॥२५॥

जो परम आनन्द-रसकी कारण स्वरूपा, माधुर्य, वात्सल्य और कृपाका निवास, तथा लावण्य समुद्रकी मूर्त्ति हैं, उन जगज्जनी श्रीकिशोरीजीके लिये मेरा बारंबार नमस्कार है ॥२६॥

इन्द्राणी, ब्रह्माणी, रुद्राणी, लक्ष्मीजी आदि सभी प्रधान शक्तियोंसे जो सम्यक् प्रकार सेविता, रतिसे अधिक जो सौन्दर्य सम्पन्ना, इस धरातल पर प्रकट होकर अपने शीलसे निमिवंशकी भूषणके समान सुशोभित कर रही हैं, उन श्रीरामप्रियाजूके लिये मेरा सर्वदा नमस्कार है ॥२७॥

आत्तप्रपत्तीन् विगतान्यवृत्तीन् कटाक्षयन्त्यै करुणार्द्रदृष्ट्या।
कान्तांसविन्यस्तकराम्बुजायै रामप्रियायै सततं नमोऽस्तु ॥२८॥

जिन्होंने अन्य सभीका आश्रय परित्याग करके केवल आप (श्रीकिशोरीजी) की ही शरणागति स्वीकार की है, उन जीवोंको करुणासे भीगी हुई दृष्टि द्वारा अवलोकन करती हुई जो श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर अपना कर-कमल रखे हुए हैं, उन श्रीरामवल्लभाजूके लिये मेरा सतत काल नमस्कार है ॥२८॥

इति पञ्चमोऽध्यायः।

—❀❀❀—

अथ षष्ठोऽध्यायः।

अद्वितीय क्षमानिधि, कृपापीयूषजलधि तथा भावैकग्राहिणी श्रीकिशोरीजीका प्रसंग वर्णन।

श्रीपार्वत्युवाच।

भगवन्! सर्वतत्त्वज्ञ! मैथिली जनकात्मजा। महर्षिभिश्च कविभि कथिता दीनवत्सला ॥१॥
क्षमापीयूषजलधिः सर्वैः श्रुतिपरायणैः। अद्वितीय-कृपाम्भोधिः प्रमाणं चात्र किं भवेत् ॥२॥

श्रीशिव उवाच।

गिरिजे! त्वं महाभागा सीतापादपरायणा। हिताय क्षीणपुण्यानां सुप्रश्नोऽयं त्वया कृतः ॥३॥
श्रूयतां सावधानेन चेतसैका कथा शुभा। वदतो मम वह्वीनां प्रमाणार्थं त्वया शिवे ॥४॥
प्रतीच्यां विश्रुतो देश एको वारहलाह्वयः। तत्र श्रीधर्मशीलस्य चत्वारः सूनवोऽभवन् ॥५॥

श्रीपार्वतीजी भगवान् शङ्करजीसे प्रश्न करती हैं:—हे भगवन्! आप तो सभी बातोंका तत्त्व (मर्म) जानते हैं, अत एव बतलाइये कि जिनके हृदयमें केवल वेदोंकी ही प्रधानता है वे श्रीबाल्मीकिजी आदि सभी कवि और श्रीअगस्त्यजी आदि सभी महर्षिगण श्रीमिथिलेशदुलारीजीको क्षमारूपी अमृतका सिन्धु, अद्वितीय (उपमा रहित) कृपा सागरा कहते हैं, पर इस कथन की वास्तविकता का प्रमाण क्या है? ॥१॥२॥

भगवान् शङ्करजी बोले:— हे पार्वति! आप श्रीकिशोरीजीके चरण कमलोंकी उपासना करने वाली हैं, अत एव बड़भागिनी हैं। आपने उन प्राणियोंके हित (कल्याण) के लिये यह बहुतही सुन्दर प्रश्न किया है, कि जिनका पुण्य पूर्ण नष्ट प्राय हो चुका है ॥३॥

हे कल्याणस्वरूपे! कथित गुणों की सत्यताके प्रमाणार्थ बहुतसी कथाओंमें से मैं एक कथा कहता हूँ, उसे आप सावधान चित्तसे श्रवण करें ॥४॥

पश्चिम दिशामें एक वारहल नामका देश प्रसिद्ध था, उस देशमें धर्मशील नामक एक ब्राह्मणके चार पुत्र हुए ॥५॥

प्रमोदश्चानुमोदश्च सुमोदो मोदसञ्ज्ञकः । ज्येष्ठो मोद इति ख्यात सुतस्तस्य द्विजन्मनः ॥६॥
सुकुमारवयस्येव तेषां माता मृतिं गता । ततो मासत्रयेऽतीते पिता मृत्युमवाप्तवान् ॥७॥
एकात्मानो ह्यपश्यन्तः स्वशरण्यं तिरस्कृताः । पितृव्यादिजनैर्दीनाः पुरौकोभिरुपेक्षिताः ॥८॥
चरन्तो भैक्ष्यवृत्तिं ते ग्रामाद्ग्राम पुरं पुरात् । गच्छन्तः कतिभिर्वर्षैः पुरीं वाराणसीं गताः ॥९॥
तस्यां भैक्ष्येण जीवन्तो न्यवसन्सुखपूर्वकम् । अलब्धद्विजसंस्काराः प्रीयमाणाः परस्परम् ॥१०॥
सदयेन महादेवि ! मया तुष्टेन संस्कृताः । द्विजरूपं समास्थाय सादरं ते यथाविधि ॥११॥
भैक्ष्याय गमनं तेषां यत्र तत्र पृथक्पृथक् । नित्यं प्रजायते देवि ! स्नात्वा भागीरथीजले ॥१२॥
यदन्नं या शुभा वार्ता प्रिये ! तैरुपलभ्यते । सर्वैः सर्वेभ्य आदाय दिनान्ते विनिवेद्यते ॥१३॥
पतितोद्धारिणी सीता रामः पतितपावनः । कथायां महतां श्रुत्वा मोदेनेति निवेदितम् ॥१४॥
शुभकर्मरताः स्वर्गं निरयं यान्ति पापिनः । प्रमोदेनैतदादाय बन्धुभ्यो वाक्यमर्पितम् ॥१५॥

मोद, सुमोद, अनुमोद, प्रमोद, ये नाम उन ब्राह्मण पुत्रोंके थे । चार भाइयोंमें मोद सबसे बड़ा था ॥६॥ वे अभी कुमार अवस्थामें भी न प्रवेश कर पाये थे, कि उनकी माताकी मृत्यु हो गयी । पुनः तीन महीना पीछे उनके पिताभी मर गये ॥७॥ माता-पिताकी मृत्युहो जानेपर उनके चाचा आदि कुटुम्बियोंने उन बालकोंका विशेष तिरस्कार प्रारम्भ कर दिया, पुनः पुरवासियोंने भी जब उनकी उस दयनीय दीन दशा पर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब वे चारों अनाथ बालक, अपना कोई रक्षक न देखकर, एकमत हो, भीख माँगकर अपने जीवनकी रक्षा करते हुए, एक गाँवसे दूसरे गाँव व एक पुरसे दूसरे पुरको जाते हुए कुछ वर्षोंमें श्रीकाशीजी जा पहुँचे ॥८॥९॥

जिनका अभी ब्राह्मण संस्कार (यज्ञोपवीत आदि) भी सम्पन्न नहीं हुआ था, वे चारों बालक उस काशीपुरीमें परस्पर अटल प्रेम रखकर भिक्षा वृत्तिसे जीवन निर्वाह करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे ॥१०॥ हे महादेवि ! मुझे उनकी उस दीनदशा पर दया आगयी, अतः उनकी वृत्तिसे संतुष्ट हो, ब्राह्मण रूप बनाकर मैंने आदर सहित विधिपूर्वक उन बालकोंका ब्रह्म-संस्कार कर दिया ॥११॥ हे देवि ! वे नित्य श्रीगङ्गाजीमें स्नान करके जहाँ तहाँ अलग–अलग भिक्षा माँगने के लिये चले जाते ॥१२॥

सायंकालके समय भिक्षासे लौटने पर उन बालकोंको जो अन्न या शुभ वार्ता दिनभरमें प्राप्त होती, उसे वे सभी सबको निवेदन करते ॥१३॥

श्रीकिशोरीजी "पतितोंका उद्धार करने वाली और प्रभुश्रीरामजी पतितोंको पावन करनेवाले हैं" सन्तोंकी कथामें एक दिन इस रहस्यको सुनकर ज्येष्ठ भाई मोद जब भिक्षासे लौटकर अपने नियत स्थान पर पहुँचा तो, उसने अपने सभी भाइयोंसे उसे कहा ॥१४॥

इसी प्रकार एक दिन भाई प्रमोदने कहींसे सुनकर सभी भाइयों को सुनाया कि "शुभ कर्म करनेवाले स्वर्ग और पाप करनेवाले लोग नरकको प्राप्त होते हैं" ॥१५॥

अहिंसा परमो धर्मो हिंसा धर्मेतरः परः । अनुमोदेन बन्धुभ्यो वाक्यमेतत्समर्पितम् ॥१६॥
साधुगोद्विजदेवानां हेलनं पातकं महत् । भारतीत्यर्पिताऽऽनीय सुमोदेन दिनक्षये ॥१७॥
वाक्चतुष्टयसम्पन्नाश्चत्वारस्ते द्विजात्मजाः । मिथो विचारयाञ्चक्रुः स्वकार्यं हितमेकदा ॥१८॥

द्विजपुत्रा ऊचुः ।

अहिंसायाः परो धर्मो नास्ति कोऽपि जगत्त्रये । नाधर्मोऽप्यस्ति हिंसाया अधिकः प्रियबान्धवाः ॥१६॥
सेवेमहि ह्यधर्मं चेन्निरयं तल्लभेमहि । धर्मं निषेवमाणानां स्वर्गप्राप्तिर्भवेद्धि नः ॥२०॥
श्रीसीतारामसम्प्राप्तिर्वाञ्छनीया परन्तु नः । ययोः प्रसादमश्नीमः पित्रा दत्तं स्म नित्यशः ॥२१॥

श्रीसुमोद उवाच ।

तयोः प्राप्तिप्रयत्नः को येनातिसुखिनो वयम् । सुमोदस्यैतदाकर्ण्य वाक्यं मोदस्तमब्रवीत् ॥२२॥
पतितोद्धारिणी सीता कथ्यमाना मया श्रुता । अस्यार्थं वः प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा सर्वैर्विचार्यताम् ॥२३॥

"तन, मन, वचन, से किसीको किसी प्रकारका कष्ट न देना अर्थात् सुख पहुँचाना सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा किसी प्रकारसे भी किसीको दुखी करना, महान अधर्म है" यह सिद्धांत वचन कहींसे सुनकर अनुमोदने अपने शेष भाइयों को सुनाया ॥१६॥

"साधु, गो, ब्राह्मण तथा देवताओंका तिरस्कार महान् पाप है," कहींसे यह वाणी सुनकर सायं समय सुमोदने अपने भाइयोंको सुनाया ॥१७॥

हे प्रिये ! रहस्यपूर्ण इन चार सिद्धांतकी बातोंसे सम्पन्न होकर वे चारों ब्राह्मण-कुमार, एक दिन आपसमें अपने हितकर कर्त्तव्यका विचार करने लगे ॥१८॥

हे प्यारे भाइयो ! किसीका वास्तविक हित करनेसे बढ़कर तीनों लोकोंमें कोई धर्म नहीं और किसीका अहित करनेसे बढ़कर कोई अधर्म (पाप) भी नहीं है ॥१६॥

यदि हम लोग अधर्मका सेवन करते हैं तो नरक मिलेगा, और यदि धर्मको अपनाते हैं तो स्वर्ग प्राप्त होगा ॥२०॥

किन्तु भाइयो ! हमें तो उन श्रीसीतारामजीकी प्राप्तिकी ही इच्छा करनी चाहिये, जिनका प्रसाद पिताजीके देने पर हम सभी नित्य पाया करते थे ॥२१॥

तीनों भाइयोंका जब यह दृढ़ विचार हो गया, तब आनन्द–मग्न होकर सुमोदने कहा-भाइयों यह विचार तो बहुत अच्छा है, परन्तु उन (श्रीसीतारामजी) की प्राप्तिका उपाय क्या है जिससे हम सब अनायासही सुखी हो जायँ । भगवान् शङ्करजी श्रीपार्वतीजी से बोलेः–हे प्रिये ! सुमोदकी इन बातोंको सुनकर मोद (ज्येष्ठ भाई) ने कहा ॥२२॥

हे भाइयो ! "श्रीकिशोरीजी पतितोंका उद्धार करनेवाली हैं" यह बात मैंने वक्ता श्रीमहात्माजीके मुखसे सुनी थी, अब इसका अर्थ मैं आप लोगोंसे कहता हूं, सुनकर सभी विचार कीजिए ॥२३॥

ये सन्ति पतिता लोके सर्वधर्मबहिष्कृताः । उद्धारः क्रियते तेषां सीतयैव सदा ध्रुवम् ॥२४॥
पावनाय सदा कर्म पतितानां कुमेधसाम् । अधर्माचारयुक्तानां रामस्यैव करे स्थितम् ॥२५॥
अत एव महन्मुख्यैः कथ्यते मुक्तया गिरा । भ्रातरः करुणासिन्धू रामः पतितपावनः ॥२६॥
पतिताश्चेद्वयं स्याम श्रीरामो नः पविष्यति । उद्धरिष्यति सा सीता ध्रुवं चाकिञ्चनप्रिया ॥२७॥
तस्मात्कार्यं प्रयतनं पतिता भवितुं सदा । अस्माभिः स्वेष्टसिद्ध्यर्थमप्रमत्तेन चेतसा ॥२८॥
इति निश्चित्य कर्त्तव्यं द्विजपुत्राः स्वशंप्रदम् । पतिताचारनिरता अभवंस्ते यथामति ॥२९॥
ग्राह्यस्तेषां न सिद्धान्तः शिवे! बुद्धिविनाशकः। प्राणिभिर्भद्रमिच्छद्भिर्ग्राह्यो भावो हि केवलम्।३०।
कालेन कियता भद्रे ! कालधर्ममुपागतान् । धर्मराजभटाः पाशैर्बबन्धुर्भीमदर्शनाः ॥३१॥
त्रासयन्तश्च बह्वीभिर्यातनाभिर्गिरीन्द्रजे ! । असुखप्रदमार्गेण निन्युस्तान् यमसन्निधिम् ॥३२॥
तेऽपूर्वभीषणाकाराश्चकितं यममब्रुवन् । दिश देव ! स्थलं शीघ्रं निवासायोचितं हि नः ॥३३॥

जिन्हें कोई भी धर्म पालन करनेका अधिकार नहीं रह गया है, ऐसे पतित-जीवों का उद्धार स्वयं श्रीकिशोरीजी ही सदा करती हैं, यह निश्चय है ॥२४॥

पापका ही आचरण करनेवाले कुबुद्धि, पतित जीवोंके पवित्र करनेका कार्यभार श्रीरामजीके ही हाथमें रहता है । अर्थात् ऐसे पतित जीवोंको स्वयं श्रीरामजी ही पवित्र करते हैं ॥२५॥

हे भाइयों ! इसी कारण श्रेष्ठ महात्मा भी अपनी स्पष्ट वाणी द्वारा सन्देह त्याग कर श्रीरामजीको करुणा-सागर व पतित-पावन कहते हैं ॥२६॥

अस्तु यदि हम लोग पतित सिद्ध हो जायँ तो, श्रीरामजी हम लोगोंको पवित्र करेंगे ही, तथा सब साधन-शक्ति-शून्य (रहित) व्यक्ति ही जिन्हें प्रिय हैं, वे श्रीकिशोरीजी हम लोगोंका उद्धार निश्चयही करेंगी ॥२७॥ हे भाइयो ! इसलिये अपनी इष्ट-सिद्धिके लिये हम लोगोंको सावधान चित्तसे सदा पतित होनेका ही उपाय करना चाहिए ॥२८॥ भगवान शिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार वे ब्राह्मण कुमार अपने कल्याण (श्रीसीताराम-प्राप्ति) कारक कर्त्तव्यका निश्चय करके, अपने विचारानुसार पतितोंका आचरण करने लगे ॥२९॥ हे कल्याणि ! अपना कल्याण-चाहने वाले प्राणियोंको, केवल उन ब्राह्मण-कुमारोंका अनन्य शुद्ध भाव ही ग्रहण करना चाहिए उनके सिद्धांतको नहीं, क्योंकि वह बुद्धिनाशक (होनेसे सर्व नाशक भी बन सकता) है ॥३०॥ हे कल्याणस्वरूपे ! कुछ दिनोंके बाद वे विप्रपुत्र मृत्युको प्राप्त हो गए, उन्हें भयानक स्वरूपसे युक्त यमराजके दूतोंने आकर रस्सोंसे बाँध लिया ॥३१॥

हे शैल कुमारी ! पुनः अनेक प्रकारकी यातनाओंके द्वारा कष्ट देते हुये बड़े ही दुःखप्रद मार्ग (रास्ते) से वे उन ब्राह्मण-कुमारोंको यमराजके पास ले गये ॥३२॥

जानबूझ कर शास्त्रोक्त महा-पतित-कर्म-परायण होनेके कारण प्रभुकी इच्छासे उन ब्राह्मण पुत्रोंका ऐसा भयङ्कर स्वरूप हो गया, जैसा कि कभी किसीका नहीं हुआ था, उस स्वरूपको देख कर धर्मराज बड़ेही आश्चर्यमें पड़ गये । उनकी वह दशा देखकर उन पुत्रोंने कहा—हे देव ! हम लोगोंके निवासके लिये जो उचित स्थान हो शीघ्र दीजिये, विलम्ब क्यों कर रहे हैं ? ॥३३॥

श्रीधर्म उवाच ।

इति तेषां वचः श्रुत्वा चित्रगुप्तं यमोऽब्रवीत् । पापकर्मानुसारेण स्थलमेभ्यस्त्वयोच्यताम् ॥३४॥

श्रीशिव उवाच ।

न विलम्बोऽत्र कर्त्तव्यो बिभेम्येषां हि दर्शनात् । स दृष्ट्वा पापकर्माणि तेनेत्युक्तोऽगिरं गतः ॥३५॥
शीघ्रमुच्चार्यतां तात ! वासायैषां किल स्थलम् । मुहुस्तेनेति संप्रोक्तश्चित्रगुप्तस्तमब्रवीत् ॥३६॥

श्रीचित्रगुप्त उवाच ।

एषां कर्मानुसारेण नावकाशोऽत्र दृश्यते । कोऽपि सञ्चिन्वता बुद्धया मयाऽतो रुद्धवागहम् ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवं शंसितस्तेन शमनो भयविह्वलः । सर्वेश्वरेश्वरं दध्यो कर्त्तव्यज्ञानसिद्धये ॥३८॥
प्रार्थयामास मनसा विशुद्धेन समाधिना । साकेताधिपतिं देवं शरण्यं सर्वदेहिनाम् ॥३९॥

श्रीधर्म उवाच ।

हे नाथ ! हे रमानाथ ! जानकीवल्लभ ! प्रभो ! कृपया मे भयार्तस्य शरणं भव राघव ॥४०॥

उनके यह निर्भय वचन सुनकर यमराजजी चित्रगुप्तजीसेबोले:- हे चित्रगुप्तजी ! पापकर्मानुसार इन ब्राह्मण कुमारोंके लिये जो नरक उचित हो, शीघ्र कह दीजिये ॥३४॥

आपको विलम्ब करना उचित नहीं है, क्योंकि मुझे इनके दर्शनसे बहुत भय लग रहा है । भगवान् शङ्करजीने कहा:- हे प्रिये ! धर्मराजकी उस आज्ञाको पाकर, चित्रगुप्तजी उनके (पाप कर्मोंका हिसाब) देखकर मौन रह गये ॥३५॥

हे तात ! "इन लोगोंके रहनेके लिये आप शीघ्र ही निश्चित स्थान बताइये" इस प्रकार धर्मराजजी घबड़ाते हुये जब बारंबार चित्रगुप्त से कहने लगे, तब वे उनकी आज्ञासे लाचार होकर बोले ॥३६॥ हे श्रीधर्मराजजी महाराज ! मैंने बहुत कुछ अपनी बुद्धि लड़ाई, परन्तु कर्मानुसार इनके रहनेके लिये यहाँ कोई भी न्याययुक्त स्थल दिखाई नहीं देता, इसी कारण मैं मौन था ॥३७॥ भगवान् शङ्करजी बोले :- हे पार्वति ! श्रीचित्रगुप्तजीके इस प्रकार कहने पर धर्मराजजी भयसे विह्वल हो गये, पुनः हृदयको सम्हाल करके उस विकट समस्या के उपस्थित हो जाने पर हमें अब क्या करना चाहिये ? इस कर्त्तव्यका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वे चर-अचर सभी प्राणियोंके स्वामी भगवान् विष्णु के भी प्रभु श्रीरामजीका ध्यान करने लगे ॥३८॥ पुनः समाधि-क्रियाके द्वारा अपने शुद्ध किये हुये मनसे, प्राणिमात्र की रक्षा करने को समर्थ, श्रीसाकेत विहारी सरकारसे वे प्रार्थना करने लगे ॥३९॥

हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे श्रीजानकी वल्लभजू ! हे राघवजू ! हे प्रभो ! नरकमें आये हुये इन ब्राह्मण पुत्रोंके भयसे मैं घबड़ा गया हूँ, अत एव अब आप कृपा करके मेरी रक्षा कीजिये ॥४०॥

त्वमसि सकललोकप्राणिनां प्राणभूतः शरणमवनिपुत्रीप्राणनाथः परेशः ।
निखिलभुवनलीलाधाम दीनैकबन्धो ! भवतु गतिरिदानीं मे भवानाप्तकामः ॥४१॥
सततपतितकर्माचारिणां कर्मगत्या न हि मम विषयेऽपि स्थातुमेषां स्थलं वै ।
कथमविहितपुण्याः प्रेषणीया दिवि स्युस्तत उचित उपायश्चिन्त्यतां नः शिवाय ॥४२॥

श्रीशिव उवाच ।

इयं तु प्रार्थना तस्य पत्रिकारूपधारिणी । कोटिब्रह्माण्डनाथस्य निपपात पदाम्बुजे ॥४३॥
सा निरीक्ष्यैव रामेण वायुसूनोः कराम्बुजात् । प्रियायै दर्शिता तूर्णं कृपासारैकमूर्त्तये ॥४४॥

श्रीसीतोवाच ।

एतादृशां तु जीवानां निवासस्थानमुत्तमम् । मद्धाम परमं ज्ञेयमस्वर्गनिरयं कपे ! ॥४५॥
पापानां वाऽशुभानां व वधार्हाणां प्लवङ्गम ! । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥४६॥

प्रभो ! अनन्त ब्रह्माण्ड ही आपके लीला धाम (समूह) हैं, आप, सकल लोक निवासी प्राणियोंके प्राण और श्रीअवनि (भूमि) कुमारीजूके प्राणनाथ, ब्रह्मादिकोंके स्वामी तथा आप्त-काम हैं । हे दीनवन्धो ! इस समम आप मेरी रक्षा कीजिये ॥४१॥

हे नाथ ! सब दिन, सब समय, पतितोंके ही आचरण करने वाले इन ब्राह्मण-पुत्रों के लिए कर्म गतिके अनुसार, मेरे इस यम लोकमें ठहरनेके लिये कोई भी स्थान नहीं है । तब जिन्होंने कुछ भी पुण्य नहीं किया, ऐसे इन लोगोंको स्वर्ग भी किस प्रकार भेजा जाय ? अर्थात् न इनको मेरे ही यहाँ रहनेका ठिकाना है, न स्वर्गमें । अतएव हे सर्व समर्थ प्रभो ! अब हमारा जैसे कल्याण हो, उस उपायका आप चिन्तन कीजिए (सोचें) ॥४२॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! धर्मराजकी यह "प्रार्थना" पत्रिका रूप धारण करके कोटि-ब्रह्माण्ड-नायक श्रीसाकेत विहारीजूके सर्वशरण्य श्रीचरण कमलोंमें जा गिरी ॥४३॥

धर्मराजकी उस प्रार्थना-पत्रीको भगवान् श्रीरामजीने अवलोकन करके स्वयं श्रीपवनकुमारजी के कर-कमलों द्वारा कृपा-सारकी अद्वितीय मूर्त्ति, अपनी श्रीप्राणप्रिया (श्रीकिशोरी) जी को दिखाया ॥४४॥ भगवान् शंकरजी बोले—हे प्रिये ! धर्मराजकी उस प्रार्थना-पत्रीको अवलोकन करके श्रीकिशोरीजी बोलीं:-हे पवन पुत्र ! जैसे वे ब्राह्मण पुत्र हैं, वैसे व्यक्तियोंके लिये, न स्वर्गही योग्य निवास स्थान है, न नरक, उनके लिये तो मेरा यह दिव्य-धाम साकेत ही उत्तम निवास-स्थान है ॥४५॥ हे मरुत्नन्दन ! चाहे कैसा भी पापी अथवा कैसा भी अशुभ कर्म करने वाला क्यों न हो, चाहे प्राण दण्डके ही योग्य अपराध क्यों न किया हो, परन्तु श्रेष्ठ पुरुषको उससे द्वेष न करके सर्वदा उसकी भलाईके लिये ही यथा योग्य कृपा करनी कर्त्तव्य है, क्योंकि ऐसा कोई है ही नहीं, जो अपराधसे अछूता रहे, अर्थात् सभीसे कुछ न कुछ अपराध हो ही जाता है, इस सिद्धान्तानुसार हमें उन जीवों पर भी कृपा ही करनी आवश्यक है ॥४६॥

गच्छ तान्दिव्ययानेन मनोवेगेन चानय । सादरं पतितश्रेष्ठान् यमलोकान्ममान्तिकम् ॥४७॥
आशुमुक्तस्त्वया कार्यो यमेशो महतो भयात् । अनेनैव प्रयत्नेन मदाज्ञामवता त्वया ॥४८॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रणम्य दण्डवद्भूमावित्याज्ञप्तोऽनिलात्मजः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो जगामान्तकविष्टपम् ॥४९॥
पश्यतां सर्वदेवानां यमराजभयप्रदान् । विप्रपुत्रान्समादाय स्वस्वामिन्यन्तिकं ययौ ॥५०॥
ईर्ष्यापरायणैर्देवैर्न चैतत्साध्वमन्यत । अतो ब्रह्माणमभ्येत्य त ऊचुर्नतकन्धराः ॥५१॥

देवा ऊचुः ।

अन्यायोऽस्ति महानेष विधातः ! संप्रतीयते । निरयेऽप्यव्यवस्थानां सल्लभ्येयं गतिर्यतः ॥५२॥

श्रीशिव उवाच ।

एतदाभाषितं तेषां श्रुत्वा लोकपितामहः । मैवं तान्वदतेत्युक्त्वा रहस्यं तद्व्यघोषयत् ॥५३॥

अत एव जाओ, और मनकी गतिके समान शीघ्र गमन करने वाले दिव्य विमानके द्वारा उन पतित शिरोमणि चारों भाइयोंको आदर पूर्वक यमलोकसे मेरे पास ले आओ ॥४७॥ इसी उपायके द्वारा मेरी आज्ञाकी रक्षा करते हुये तुम शीघ्र यमराजको महान् भयसे मुक्त करो ॥४८॥ श्रीकिशोरीजीकी इस आज्ञाको पाकर पवनपुत्र श्रीहनुमत्लालजीके सभी अङ्ग पुलकायमान हो गये । पुनः वे उनको भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करके यमलोक पधारे ॥४९॥

उपस्थित सभी देवताओंके देखते हुये यमराजको भय प्रदान करने वाले उन ब्राह्मण कुमारोंको लेकर अपनी श्रीस्वामिनीजूके पास आ पहुँचे ॥५०॥

परन्तु ईर्ष्या-परायण (अपनेसे अधिक किसीकी उन्नतिको न सहन कर सकने वाले) देवताओंने श्रीकिशोरीजी के इस विधानको न्याययुक्त नहीं माना, अतः वे सब ब्रह्माजीके पास जाकर अपने कन्धों को झुकाते हुये बोले ॥५१॥ हे विधातः ! पाप कर्मोंकी विशेषताके कारण जिन पतितोंको नरकमें भी न्यायपूर्वक रहनेकी कोई जगह न दी जा सकी, उन्हें महान् सत्पुरुषोंको मिलने योग्य श्रीसाकेत धाममें बुला लिया गया । बहुत कुछ विचार करने परभी बड़े दरबारका यह बड़ाही अन्याय प्रतीत होता है ॥५२॥

उन देवताओंका यह कथन सुनकर सभी लोकोंके बाबा श्रीब्रह्माजीने हाँ-हाँ, ऐसा मत कहो, कह कर उन पतित कर्मा ब्राह्मणपुत्रोंको जिस सुदृढ़ धारणा के कारण साकेत बुलाया गया, उसको उन्हें कह सुनाया ॥५३॥ (१)

(१) इस कथासे कदाचित् किसीके मनमें किसी प्रकारका भ्रम उत्पन्न न हो जाये, अतः यह स्पष्टीकरण आवश्यक है—इस कथामें आये ब्राह्मणकुमार भगवत्प्राप्तिकी दृढ़ कामना तथा शुद्ध सरल चित्तसे पतित बने । इससे कोई यह न समझे कि पतित बनना ही भगवत् प्राप्तिका एक मात्र साधन है । दीन-हीनकी दशा पर प्रभु ही क्या साधारण जनका भी शीघ्र आकर्षण होता है । भगवत्-प्राप्तिके लिये यदि पतित बनना हो तो, उन ब्राह्मण कुमारों के जैसा ही दृढ़निष्ठ भी होना चाहिए । यदि वैसी निष्ठा नहीं होगी तो भ्रमण करने के लिये चौरासी लक्षयोनियाँ तथा यम-पाशका चक्र तो चलता ही रहेगा ।

ब्रह्मोवाच ।

संप्राप्तिप्रदसाधनं सुभजतां मत्वा सदा सद्धियामुत्कृष्टं यदिवा श्रुतिप्रगदितं पुंसां निकृष्टं परम् ।
सीतारामशुभोपलब्धिकरणं भूयाद्ध्रुवं निर्जरा! भावग्राहिसुरोत्समैकमहितौ तौ सर्वलोकप्रभू ।५४।

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं ते विबुधा मुदान्वितमुखाः संबोधिता वेधसा
संछिन्नाखिलसंशयाः शरणदौ प्राथ्यं क्षमार्थं मुहुः ।
भक्त्या संयतपाणयो विर्नमितस्कन्धद्वया भूरिशो
नत्वालोकमथागमन् जय जयेत्युच्चैर्गृणन्तः स्वकम् ।।५५।।

तस्मादेव महादेवि ! मैथिली जनकात्मजा । सर्वसिद्धान्तकृतप्रोक्ता ह्यापारकरुणार्णवा ।।५६।।

ब्रह्माजी बोले हे देवताओ ! चाहे वेदके द्वारा श्रेष्ठ कहा गया हो, अथवा परम निकृष्ट (नीच), परन्तु "यह साधन हमें अवश्य श्रीसीतारामजी की प्राप्ति करा देगा" ऐसा अटल विश्वास करके जो उस साधनमें लगे रहते हैं, वह साधन उन साधक मनुष्योंको अवश्य श्रीसीतारामजीकी प्राप्ति करा देता है । इसमें किञ्चित् भी सन्देह नही, क्योंकि सभी लोकोंके स्वामी वे श्रीसीतारामजी भावग्राही (केवल भावको ही ग्रहण करने वाले) सभी श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा अनन्य भावसे पूजित हैं अर्थात् भावग्राही सभी देवश्रेष्ठ भी उन्हीं श्रीसीतारामजीको अपना शिरोमणि मानते हैं ।।५४।।

इस प्रकार ब्राह्मण पुत्रोंका सब रहस्य श्रीब्रह्माजीके सुनाने पर देवताओं के सब सन्देह दूर हो गये । अतः उन सभी के मुख पर आनन्द छा गया, तब वे अपने दोनों कन्धोंको झुकाकर हाथ जोड़े हुये, अपने अपराधोंको क्षमा करानेके लिये, सभीको रक्षा प्रदान करने वाले श्रीसीतारामजी से प्रार्थी हुए, पुनः उन्हें बार बार प्रणाम करके, उच्चस्वरसे जय जय पुकारते हुये अपने लोकोंको चले गये ।।५५।। इसलिये हे महादेवि! मिथि महाराजके वंशमें प्रकट हुई श्रीजनक-दुलारीजीको सभी सिद्धान्तकारों ने अपार-करुणा-सागरा ही कहा है ।।५६।। (१)

इति षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

श्री साकेत धाम में जीव कल्याणार्थ श्री सीताराम सम्वाद वर्णन ।

श्रीशिव उवाच ।

अगुणसगुणरूपौ वेदवेदान्तसारौ निरवधिसुषमाढ्यौ भूषितौ स्रग्विणौ तौ ।
जलधरचपलाभौ रत्नसिंहासनस्थौ परमकरुणचित्तौ नौमि सीतां च रामम् ॥१॥
कदाचित्प्राणदाऽमोघा जीवलोकं यदृच्छया । कृपावत्याः कृपादृष्टिः प्रयाताऽऽनन्दवर्षिणी ॥२॥
दीना निरीक्षिता जीवा नानाकर्मपरायणाः । निरस्तसच्चिदानन्दा विषयानन्दलोलुपाः ॥३॥
चिन्तोदिताऽप्यचिन्ताया हृदि ज्ञात्वेति तां प्रियः । अजानन्निव पप्रच्छ प्रियाचिन्तानुचिन्तितः ॥४॥

श्रीराम उवाच ।

किमर्थं प्राणेशे ! विधुनिकरसम्मोहिवदनं तवेदं सम्लानं कथय करुणापूर्णहृदये ।
रमोमावागीशाश्चरणकृपयाऽपारगतयोऽप्यहो यस्या लोके प्रथित विभावस्ते स्थिरगुणाः ॥५॥

जो निर्गुण स्वरूपसे सारेविश्वमें व्याप्त हैं और सगुण स्वरूपसे भक्तोंके भावको पूर्ण कर रहे हैं, वेद और उपनिषद्के जो सार हैं अर्थात् वेद और उपनिषदोंने अपने सारे कथनका लक्ष्यकेन्द्र जिन्हें नियत किया है, निरुपम-सौन्दर्यसे जो युक्त तथा सभीप्रकारके भूषणोंसे विभूषित हैं, गले में सुन्दर माला पहिने हुये हैं, मेघ और बिजलीके सदृश जिनके श्रीअङ्गका प्रकाश है, मणिमय रत्न-सिंहासन पर जो विराजमान हैं, जिनका चित्तपरम करुणारससे युक्त है, श्री साकेत धामके भूषण स्वरूप उन प्रभु श्रीसीतारामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

भगवान् शङ्करजी श्रीपार्वतीजीसे बोलेः–हे प्रिये ! किसी समय अनन्त करुणामयी श्रीकिशोरीजीकी आनन्द वर्षा करने वाली प्राणदायिनी एवं कभी भी विफल न होने वाली कृपा दृष्टि अकस्मात् जीव लोकको गयी ॥२॥

उन्हें सभी जीव सत्, चित्, आनन्दसे सर्वथाशून्य, अनेक प्रकारके सकाम कर्मों में फँसे हुए, इन्द्रियोंके विषय-सुखकी प्राप्तिके लिये ही सदा चिन्ता युक्त, अति दीन दिखलाई दिये ॥३॥

अत एव सर्व चिन्ताओंसे रहित श्रीकिशोरीजीके कोमल हृदयमें चिन्ताका उदय हुआ । श्रीप्रियाजूकी चिन्तासे चिन्तित होकर, जानते हुए भी अज्ञानीके सरीखे श्री रघुनन्दन प्राण-प्यारेजू ने यह प्रश्न किया ॥४॥ हे श्रीप्राणेश्वरीजू ! जिनके श्रीचरण कमलोंकी कृपासे श्रीलक्ष्मीजी, पार्वतीजी, तथा श्रीब्रह्माणीजी को पार न पाने योग्य महिमा और जगत्प्रसिद्ध ऐश्वर्य तथा सदा स्थिर रहने वाले गुण अनायास ही प्राप्त हैं । हे करूणापूर्ण हृदयाजू ! उन आपका अनन्त चन्द्रमाओं को भी अपने स्वच्छ प्रकाश तथा आह्लादक गुणसे मोहित करने वाला यह श्रीमुखारविन्द मलिन क्यों हुआ ? उसे आप मुझसे कहने की कृपा करें ॥५॥

प्रिये यद्वा मत्तस्तव भवतु चिन्तापहरणं तदाख्यातुं कार्या सपदि हि कृपा ते प्रियतमे ! । न हि द्रष्टुं शक्तोऽस्म्यहमपरितुष्टेन्दुवदनं प्रबुध्यैतत्सत्यं हृदयगतभावं प्रकटय ॥६॥

श्रीसीतोवाच ।

अहो प्राणप्रेष्ठ ! क्षितितलमधो दृष्टिरभितो यदृच्छासंप्राप्ता मम हृदयचिन्तैकजननी । व्यवस्थां तत्रत्यां प्रियवर ! समीक्ष्याति करुणा प्रजाता मे चेतस्यविरलतया कारणमिदम् ॥७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा विशालाक्षी शरच्चन्द्रनिभानना । प्रेयसश्चिबुकं स्पृष्ट्वा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

श्रीसीतोवाच ।

श्रूयतां तद्वदन्त्या मे सावधानतया प्रिय ! । उपायं चोचितं तस्य त्वं चिकीर्ष प्रियाय मे ॥९॥
आवयोरंशसंभूता आवयोस्तुल्यविग्रहाः । साधना-धाम संप्राप्य मुक्तिद्वारं नृणां वपुः ॥१०॥
मोहिता मायया हन्त विषयानन्दसस्पृहाः । यतमानाः सुखायैव प्रायो दुःखं व्रजन्ति ते ॥११॥

हे प्रिये! अथवा मुझसे ही यदि आपकी चिन्ता दूर होने वाली हो, तो भी आप शीघ्र कहने की कृपा करें, क्योंकि हे प्राणप्यारीजू ! आपके मुरझाये हुये श्रीमुखारविन्दका दर्शन करनेको मैं असमर्थ हूँ। यह सत्य जानकर मुख-मलिनता के कारण स्वरूप अपने हृदयमें आये हुये भावको आप शीघ्र प्रकट कीजिये ॥६॥ श्रीप्रियाजू बोलीं—अहो श्रीप्राणनाथजू ! चिन्ताको जन्म देनेवाली मेरी सहज दृष्टि अकस्मात् ही आज नीचे पृथ्वीतल पर पड़ी अस्तु वहाँकी दुर्व्यवस्थाको देखकर मेरे चित्तमें अविरल करुणा प्रकट हो गयी है, हे प्यारे ! यही मेरे मुख-मलिनताका मुख्य कारण है ॥७॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः— हे पार्वती ! जिनका शरद् ऋतुके चन्द्र समान अत्यन्त मनोहर श्रीमुखारविन्द व विशाल लोचन हैं, वे श्रीकिशोरीजी इस प्रकार अपने मुख मालिन्यका कारण बताकर, अपने श्रीप्राणनाथजूकी ठोढ़ीका स्पर्श करके बोलीं ॥८॥

हे प्यारे ! इस समय मेरे हृदयमें जो भाव आया है उसे कहती हूँ, आप सावधान चित्तहो श्रवण कीजिये, तदनन्तर मेरी प्रसन्नताका उपाय करनेकी इच्छा करें ॥९॥

हे प्यारे ! ये मृत्युलोक निवासी समस्त जीव हमारे-आपके ही अंशसे उत्पन्न, हमारे-आपके ही जैसे शरीर धारी, सभी साधनाओंका स्थान तथा मुक्ति द्वार-स्वरूप इस मनुष्य शरीरको पाकर ॥१०॥ माया द्वारा मोह-ग्रस्त किये हुए वे प्राणी, केवल विषय सुखके लिये ही लालायित हो उस सुखकी प्राप्ति साधना में दिन-रात रत रहने पर भी प्रायः दुखको ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हें विषय सुख भी तो पूर्ण नहीं प्राप्त होता, यह कितने खेदकी बात है ॥११॥

सुखमप्राकृतं तेषां कुत एव भवेदिदम् । अखण्डं दिव्यकं प्रेष्ठ ! नास्ति यज्ज्ञानमप्युत ॥१२॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रिययाऽऽशंसितं श्रुत्वा वल्लभो लोकवल्लभः । कृपार्द्रहृदयः श्रीमान् व्याजहारोत्तरं शुभम् ॥१३॥

श्रीराम उवाच ।

जीवानां दुःखमोक्षाय सुखायैव युगे युगे । मम सत्वगुणो विष्णुर्जायते नैकरूपतः ॥१४॥

श्रुतिशास्त्रपुराणानि मयोपनिषदादयः । संहिताः स्मृतयश्चैव मुनिवर्य्यैः प्रचारिताः ॥१५॥

विनिन्द्य विषयानन्दं प्रोच्य मायामयं जगत् । कोटयः सुखमार्गाश्च दर्शिता मे दयानिधे ॥१६॥

श्रेयसे भुवनस्यास्य बहूपायाः कृता मया । यथाशक्ति यथाबुद्धि दूषणं किं ततो मम ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रेयसोक्तमिदं वाक्यं समाकर्ण्य जगद्धिता । प्रत्युवाच वचो भूयः सादरं प्रणयान्विता ॥१८॥

श्रीसीतोवाच ।

सत्यमेतत्परं माया मोहिनी ज्ञानिनामपि । तयैव वञ्चिताः प्रेष्ठ ! विसारे सारबुद्धयः ॥१९॥

हे ! श्रीप्राणप्रियतमजू ! फिर हमारे इन दिव्य धाम निवासी जीवोंका सर्व विकार रहित, पूर्ण, सदा एक रस रहने वाला, यह अप्राकृत सुख भला उनको कहाँ से प्राप्त हो सकता है? जिसका उन्हें ज्ञान तक नहीं है ॥१२॥ भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! लोकवल्लभ श्रीप्यारेने अपनी श्रीप्रियाजूके ये बचन सुनकर कृपासे द्रवीभूत हृदय होते हुये उन्हें यह मङ्गलकारी उत्तर प्रदान किया ॥१३ ॥ हे श्रीप्रियाजू ! जीवोंकी दुःख निवृत्ति और सुखप्राप्तिके लिये ही युग-युगमें हमारे सत्व गुणस्वरूप भगवान् विष्णु-कछुवा, मछली, शूकर तक, अनेकानेक रूपोंसे प्रकट हुआ करते हैं ॥१४॥ मैंने स्वयं मुनियोंके द्वारा चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, ग्यारहसौ अस्सी उपनिषद्, सभी संहिता, सभी स्मृतियां महाभारतादिक इतिहास तथा और भी अनेक धर्मग्रन्थोंका प्रचार करायाहै ॥१५। हे श्रीदयानिधेजू ! उन सभी छोटे बड़े ग्रन्थोंमें विषय सुखकी घोरनिन्दा करके इस दृश्य जगत्को प्रभुकी माया (इच्छाशक्तिकी कल्पना) मात्र बतलाकर जीवकी वास्तविक सुख सिद्धिके लिये मैंने करोड़ों मार्ग दिखलाये हैं ॥१६॥ हे श्रीप्रियाजू ! मैंने इन मृत्यु लोक वासियोंके कल्याण के लिये अपनी बुद्धि एवं शक्तिके अनुसार बहुत कुछ उपाय किया है तथापि यदि वे जीव सुखी न हों तो, आप ही कहें-मेरा क्या दोष है ? ॥१७॥

भगवान शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! प्राणप्यारेजूका यह वचन सुनकर श्रीकिशोरीजी सरकार की दयालुता पर मुग्ध होती हुई, सभी जगत्के हितकी भावनासे बड़े आदर पूर्वक प्रणयके साथ पुनः बोलीं ॥१८॥ हे प्रेष्ठ ! आपने जो कहा, वह सब सत्य है, परन्तु-यह त्रिगुणात्मिका (अर्थात् तीन गुण मयी) माया ज्ञानियोंको भी मोहमें डाल देती है, अर्थात्-कर्त्तव्यके ज्ञान से बेसुध कर देती है। यदि इन विषयी जीवोंको उस माया द्वारा मोह हुआ है, तो आश्चर्य ही क्या? अत एव ये प्राणी आपकी उसी मोहिनी मायासे ठगाये हुये, असार संसारमें विषय सुख को ही सार मान रहे हैं ॥१९॥

कालेन महता हीना सुखादस्मादलौकिकात् । कथं तस्मै यतन्तां ते प्रत्यक्षं परिहाय ह ॥२०॥
ध्रुवमेभ्यःपरानन्ददित्सया पृथिवीतलम् । आवाभ्यामेव गन्तव्यं वपुषाऽनेन वल्लभ ! ॥२१॥
सर्वेभ्यः संप्रदातव्यः सोऽयमानन्द उत्तमः । गोपयित्वा निजैश्वर्यं मिलित्वा चरितैः शुभैः ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

तां निशम्य प्रियावाचं सर्वजीवसुखावहाम् । बभाणाश्रित-ध्वान्तेनो व्यञ्जयन् रोषमात्मनः॥२३॥

श्रीराम उवाच ।

वाय्विनेन्द्राग्निमृत्युक्ष्मापद्मोद्भवमहेश्वराः । अतन्द्रिता भयोपेताः स्वकार्ये लग्नचेतसः ॥२४॥

हे प्राण प्यारे! बहुत समयसे ये प्राणी इस (दिव्य धामके) अलौकिक सुखसे वञ्चित हैं, इस कारण ये प्रत्यक्ष विषय सुख को छोड़कर किस प्रकार इस अलौकिक सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हों ? ॥२०॥ हे प्यारे ! अत एव यदि इन मृत्युलोक निवासी प्राणियोंको भी दिव्य धामका सुख प्रदान करना अभीष्ट है, तो हम और आप दोनोंको ही अपने इस दिव्य शरीरसे पृथिवी तलपर प्रकट होना परम आवश्यक है ॥२१॥

अपने ऐश्वर्यको छिपाकर प्राकृत मनुष्योंमें हिल मिल कर, मङ्गलमयचरितोंके द्वारा, अपने दिव्य-धाम निवासियोंका यह उत्तम आनन्द, मृत्युलोक निवासी जीवोंको भी अवश्य प्रदान करना चाहिये । श्रीकिशोरीजीकी इस अमृतमयी वाणीका भाव यह है–कि हमारे इन दिव्यधामनिवासियोंको हमारे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक दिव्य विषय सुखकी सहज प्राप्ति है अतः ये दिव्य सुखको प्राप्त हैं, इस कारण जब हम दोनों मृत्यु लोकमें भी इसी रूपसे प्रकट होंगे, तब वहाँके प्राणी भी उपर्युक्त दिव्य–विषय–सुखको प्राप्त होकर सहज ही तुच्छ विषय सुखको त्याग देंगे, क्योंकि जो प्राणी मधुर शब्दके विषयमें आसक्त हैं उन्हें हमारे जैसा मधुर शब्द और मिलेगा कहाँ ? जो स्पर्श सुखमें आसक्त हैं, उन्हें ऐसा सुखद स्पर्श भी अन्यत्र कहाँ ?जो रूपासक्त हैं, उन्हें भी हमारा सा स्वरूप भी कहाँ मिलेगा ? जो रसासक्त हैं, उन्हें हमारे प्रसादसे बढ़कर मधुर और सरस वस्तु ही कहाँ मिलेगी ? जो गन्धासक्त हैं, उन्हें भी हमारे आपके श्रीअङ्गकी सुगन्धसे बढ़कर और सुगन्ध भी कहाँ मिलेगी ? जो लीला देखनेमें आसक्त हैं, उन्हें ऐसी सुखद मनोहारिणी लीलाओं का दर्शन भी अन्यत्र कहाँ मिलेगा ?अत एव हे प्यारे! हमारे और आपके भूतल पर पधारनेसे, वे तुच्छ विषयासक्त जीव भी सहज में ही दिव्य–सुखके भोक्ता बन जाँयगे ॥२२॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! प्राणि-मात्र को पूर्ण सुखी कर देनेवाली, श्रीप्रियाजूकी उस अमृतमयी वाणीको सुनकर, सूर्यके समान भक्तोंके हृदयान्धकारको अनायास नष्टकर देने वाले, श्रीप्राणप्यारेजू मनुष्योंके प्रति कुछ रोष प्रकट करते हुये बोलेः—॥२३॥

हे श्रीप्रियाजू ! मेरा भय मान कर सभी बड़ेसे बड़े शक्तिमान वायु, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, मृत्यु, पृथिवी, ब्रह्मा, शङ्करादिक–आलस्य छोड़कर अपने अपने नियमित कार्यों में सदा लगे रहते हैं अर्थात् जिसको जो कार्य करनेका आदेश मैंने दिया है उसमें वह अहर्निश लगा रहता है ॥२४॥

दंशभीता ममाभीता भूत्वा मत्तःपराङ्मुखाः। स्वेच्छासञ्चारिणो मर्त्याः प्रबुध्योन्मार्गवर्तिनः ॥२५॥
एतैः क्रीडां चिकीर्षामि नैते पश्यन्ति मामपि। अपराध्यन्ति जानन्तो वल्लभे! चाप्यनुक्षणम् ॥२६॥
ममाप्रीतिकरं कर्म कुर्वाणानामहर्निशम्। हठतो मन्दभाग्यानां कथं तेषां सुखं भवेत् ॥२७॥

श्रीशिव उवाच।

रोषयुक्तमिदं वाक्यं चन्द्रवक्त्रसमीरितम्। श्रुत्वोचे विधुपुञ्जाभविस्मेररुचिरानना ॥२८॥

श्रीसीतोवाच।

बालानामपराधान् किं पश्यन्ति पितरः क्वचित्। मायया संवृतात्मानः कथं त्वां वीक्षितुं क्षमाः॥२९॥
किं बिभ्यति क्वचिद्बालाः पित्रोरैश्वर्यदर्शनात्। तेषां क्रीडा सुखायैव प्रभवत्यार्द्रचेतसोः ॥३०॥

परन्तु मरणधर्मा ये अल्प शक्तिमान् मनुष्य, जिन्हें एक मच्छड़ से भी भय लगा रहता है वे मेरा भय न मानकर, मुझसे ही विमुख हो, वेद, शास्त्र, और किसी महानुभावका आदेश न ग्रहणकर केवल अपने मन माने आचरण करते हुये, समझ-बूझकर कुमार्गगामी हो रहे हैं ॥२५॥

हे श्रीप्राणप्यारीजू! मेरी यह इच्छा रहती है कि मैं इनके साथ-साथ खेलता रहूँ, परन्तु ये मेरी ओर देखते भी नहीं, और जान बूझकर मेरा अपराध किया करते हैं ॥२६॥

हे श्रीप्रियाजू ! जो जीव हठ पूर्वक मेरी अप्रसन्नता कराने वाले ही कर्मोंको दिन-रात किया करते हैं, भला आप ही कहें ? उन मन्द भागियों को, सुख कैसे हो सकता है ? ॥२७॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! चन्द्र पुञ्ज के सदृश प्रकाशमान मुस्कानयुक्त, मनोरम श्रीमुखारविन्द वाली श्रीकिशोरीजी, प्यारेके चन्द्रवत् मुख—कमलसे रोष पूर्वक इन कहे हुये वचनोंको, श्रवणकर बोलीं ॥२८॥

हे प्यारे ! क्या कोई माता-पिता भी अपने अबोध बालकोंके अपराधों पर कभी ध्यान देते हैं ? अर्थात् कभी नहीं। इसी तरह आप भी इन जीवोंके अपराधों पर ध्यान न देनेकी कृपा करें। इनके बुद्धि और नेत्रों पर मायाका पर्दा पड़ा हुआ है, अत एव विना उसके हटाये, ये किस प्रकार आपका दर्शन करने को समर्थ हो सकते हैं ? क्योंकि हे प्यारे। उस मायाका पर्दा हटानेकी सामर्थ्य भी तो इनमें नहीं है, उसे हटाना तो आपके ही-हाथ है, अस्तु इन जीवों को कलङ्क देना कहाँ तक उचित है ? ॥२९॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! क्या ऐश्वर्य देखकर बालक भी कभी अपने माता पितासे भय मानते हैं ? अर्थात् कभी नहीं। अत एव यदि ये जीव आपसे भय नहीं भी मानते हों, तो भी रोषके पात्र नहीं हो सकते। जैसे बालकोंकी सभी सूधी टेढ़ी क्रीडाओंको देखकर उनके अनुरागी माता-पिता सुख ही मानते हैं, रुष्ट नहीं होते, उसी प्रकार अनन्त करुणावरुणालय, सच्चे सुहृद्, जगत्-पिता आप भी, इन जीव रूपी बालकोंके मनमाने आचरणोंसे रुष्ट न होकर सुख ही मानिये ॥३०॥

जीवानां दुर्दशां पश्य दुर्गुणानसमीक्ष्य च । नैष्ठुर्य्यं संपरित्यज्य कारुण्यं भज वल्लभ! ॥३१॥

श्रीशिव उवाच ।

सर्वजीवानुकम्पिन्या वाक्यं वाक्यविदां वरः । कृत्वा कर्णगतं रामश्चतुरः पुनरब्रवीत् ॥३२॥

श्रीराम उवाच ।

अजाचिन्त्यादिनामानि श्रुतिगीतानि वल्लभे ! असत्यानि भविष्यन्ति तेन वेदोऽनृतो भवेत् ॥३३॥

श्रीशिव उवाच ।

विज्ञचूड़ामणेरेतत्पुनराकर्ण्य भाषितम् । प्रेयांसं प्रेयसी प्राह श्रूयतां वदतां वर ! ॥३४॥

श्रीसीतोवाच ।

वेदो नेतीति सम्भाष्य प्रेममग्नो बभूव ह । तस्मादसत्यतां वेदो नैष्यति प्राणवल्लभ ! ॥३५॥

श्रीशिव उवाच ।

कान्तावचनचातुर्यं प्रसमीक्ष्य सतां प्रियः । पुनराह वचः श्लक्ष्णं रसिको रसविग्रहाम् ॥३६॥

हे प्राणप्रियतमजू ! जीवोंके दुर्गुणों पर दृष्टि न देकर केवल उनकी दुर्दशाको देखिये और इनके अवगुणोंको देखने से जो आपके हृदयमें निष्ठुरता आरही है, उसे परित्याग करके इनके प्रति अब केवल करुणा भाव लाइए, अर्थात् कृपा करके इनको दिव्य सुख प्रदान करनेके लिये मनुष्य लोकमें अपने इसी विश्वविमोहन रूप, गुण-सम्पन्न दिव्य मङ्गलमय विग्रहसे पधारने (प्रकटहोने) की इच्छा करें ॥३१॥ भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे प्रिये ! वाक्य (वचन) का अर्थ समझने वालोंमें श्रेष्ठ, परमचतुर-प्राणप्यारे श्रीरामभद्रजू सभी जीवों पर अनुकम्पा (दया) करने वाली, श्रीकिशोरीजीके वचनोंको श्रवण करके बोले ॥३२॥

हे श्रीप्रियाजू ! यदि इन जीवोंपर कृपा करते हुए इन्हें दिव्य सुख प्रदान करनेके लिये इसी अपने स्वरूपसे मृत्यु लोकमें पधारेंगे, तो अजन्मा, अचिन्त्य(चिन्तनसे परे) आदिक वेदोक्तसभी नाम झूंठे सिद्ध होंगे, और उनके असत्य सिद्ध होनेसे वेद भी असत्य सिद्ध होगा ॥३३॥

भगवान्शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! चतुरशिरोमणि प्राणप्रियतमजूका यह वचन सुनकर प्राणप्रिया श्रीकिशोरीजी पुनः प्यारे से बोलीं-हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! श्री प्राणप्यारे जू ! सुनें ॥३४॥

वेदोंने हमारे और आपके स्वरूपको वर्णन करते करते नेति नेति कह दिया है, अर्थात् जैसा हमने कहा है वैसा रूपादिका वर्णन किया है, प्रभु वैसे ही नहीं हैं बल्कि उससे भी विलक्षण हैं, ऐसा कहकर वे प्रेममें डूब गये, अत एव प्रभु ऐसे ही हैं, यह अनिश्चित रखने से वेद झूठा नही हो सकता ॥३५॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः— हे पार्वति! श्रीप्रियाजूकी वचन-चातुरीका भली प्रकार दर्शन करके रसिक-शिरोमणि (भक्तोंको अपने सिरकी मणिके समान श्रेष्ठ मानने वाले) सन्तोंके प्यारे सरकार श्रीरामजी साक्षात् रसकीमूर्ति स्वरूपा श्रीकिशोरीजीसे पुनः बड़े प्रेम से बोले ॥३६॥

श्रीराम उवाच ।

रक्षणार्थं प्रपन्नानां प्रतिज्ञा विहिता मया । नाययुः शरणं यत्ते किं करोमि ततोन्वहम् ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

एतदाकर्ण्य भावज्ञा वचनं प्रेयसोदितम् । तूर्णमेवाब्रवीद्रामं तं गिरा स्मितपूर्वया ॥३८॥

श्रीसीतोवाच ।

अपेक्षायां दयालुत्वं किञ्च ते काऽप्युदारता । वालास्तवास्म्यहं क्वापि पितृपादान् वदन्ति किम् ॥३९॥
स्वायम्भुवो मनुर्जातो भूत्वा दशरथो नृपः । येन तप्तं तपो घोरमावयोराप्तिकाम्यया ॥४०॥
शतरूपा महाराज्ञी कौशल्या नामविश्रुता । बिवाहिता च तेनैव वृद्धत्वं तौ समीयतुः ॥४१॥
ताभ्यां दत्तं वरं यत्तत्कथं विस्मरसि प्रिय ! ब्रह्मादयः प्रतीक्षन्ते ह्यावयोरागमोत्सवम् ॥४२॥

हे श्रीप्रियाजू ! शरणागत जीवोंकी रक्षा करनेकी तो मैंने प्रतिज्ञा ही कर रखी है, तथापि यदि वे मेरी शरण ही न आवें, तो मेरा फिर क्या दोष ? ॥३७॥ भगवान् शङ्करजी बोले—हे पार्वति ! प्यारेके उन कहे हुये बचनोंको सुनकर प्यारेके भावको जानने वाली श्रीकिशोरीजी, मन्द-मन्द मुस्कराती हुई तुरन्त अपने हृदयविहारी प्राण-प्रियतमसे बोलीं ॥३८॥

हे प्राण प्रियतमजू ! अगर आपके हृदयमें यह अपेक्षा है कि, जीव मेरी शरण में आवे और "हे नाथ ! मैं आपका हूँ, आप हमारी रक्षा कीजिए ऐसी प्रार्थना करे तब मैं उसे सब प्राणियोंसे अभय करदूँ" भला आपकी इस अपेक्षामें क्या दयालुता और उदारता हुई ? अर्थात् दयालुता तब मानी जाती है, जब किसी भी प्राणीको दुखी देखकर बिना उसके कहे ही दुख दूर कर दिया जाय । इसी प्रकार किसी भी अन्नके भूखे प्राणीको बिना उसके माँगे ही उसकी भूखको दूर कर देनेमें ही उदारता समझी जाती है । इसके विपरीत दुखी प्राणीके अनुनय-विनयसे विवश होकर दुख दूर करनेमें न दयालुता ही सिद्ध होती है, न उदारता ही, अत एव इन जीवोंके बिना शरणमें आये ही, इन्हें सुखी कर देना हमारा और आपका परम कर्त्तव्य है ! एतदर्थ इसी दिव्य रूपसे हमें और आपको मृत्युलोकमें प्रकट होना आवश्यक है । क्या कोई बालक भी अपने माता-पितासे "हम आपके हैं" कहीं ऐसा कहते हैं ? इसलिये यदि ये मनुष्य आपसे—"हे प्रभो ! हम आपके हैं" ऐसा न भी कहते हों, तो भी पुत्रवत् न कहनेके अपराधसे उपेक्षा के योग्य नहीं हैं, अर्थात् दया के ही पात्र हैं ॥३९॥ हे प्राणवल्लभजू ! हम दोनोंकी प्राप्तिके लिये जिन्होंने पूर्व में कितनी घोर तपस्याकी थी, वे स्वायम्भुव (ब्रह्माजीके पुत्र) मनु महाराज दशरथ महाराजके नामसे इस समय उत्पन्न हैं ॥४०॥ और श्रीशतरूपा महारानी श्रीकौशल्या नामसे विख्यात हुई हैं उनका विवाह भी श्रीदशरथजी महाराजके साथ हुआ है वे दोनों प्राणी इस समय वृद्धावस्थाको भी प्राप्त हो चुके हैं ॥४१॥ हे प्यारे ! उन दोनोंको पूर्वमें जो हम लोग वर दे चुके हैं, उसे कैसे भुला रहे हैं ? उसी वरदानकी आशासे ब्रह्मादिक देवगण हमारे और आपके पृथिवीतल पर पधारने की बाट जोह रहे हैं ॥४२॥

तयोः संयाहि पुत्रत्वमहं श्रीमिथिलेशितुः । यज्ञवेद्याः समुत्पत्स्ये पुत्र्यर्थं तेन याचिता ॥४३॥
केवलानन्दसन्दोहचरित्राणि शरीरिणाम् । प्रेष्ठ ! दर्शयितव्यानि प्रेम–गङ्गा प्रवाह्यताम् ॥४४॥
यत्सुखाप्तिर्न संजाता ब्रह्मादीनां चिरेप्सिता । तद्वृष्टिः पुष्कला कार्या मिथिलाऽयोध्ययोर्भुवि ।४५॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रेयस्या निर्जितो वादे रामः कारुण्यवारिधेः । हर्षरोमाञ्चिताङ्गोऽसौ तामूचे सरसं वचः ॥४६॥

श्रीराम उवाच ।

धन्या तवानुकम्पेयं निरपेक्षा तवोचिता । त्वामृते मयि नान्येषु कुतः स्यात्प्राणवल्लभे ! ॥४७॥
कृपैकसाधनं श्रेयस्तव निर्हेतुकी प्रिये ! देहिनामपि सर्वेषां तथैव परमा गतिः ॥४८॥
सर्वतन्त्रस्वतन्त्रोऽपि सर्वथा ते वशीकृतः । अजेयो निर्जितः सम्यङ् मोहितो विश्वमोहनः ॥४९॥

हे प्राणप्रियतमजू! अस्तु आप उन दोनोंके पुत्र भावको प्राप्त हों, तदनन्तर मैं श्रीमिथिलेशजी महाराजके पूर्व जन्मकी प्रार्थनानुसार उनकी यज्ञ वेदीसे पुत्री रूपमें प्रकट होऊँगी ॥४३॥

हे प्राणप्यारेजू ! इस प्रकार हम और आप पृथिवीतलपर प्रकट होकर प्राणियोंको केवल आनन्द ही आनन्द प्रदान करने वाले चरित्रोंका दर्शन कराएं और अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहारोंसे प्रेमकी गङ्गा बहा दें ॥४४॥ हे श्रीप्यारेजू ! ब्रह्मादिक देव भी जिस सुख प्राप्तिके लिये बहुत समयसे लालायित हैं, श्रीमिथिलाजी और श्रीअयोध्याजी की भूमि पर उसी सुखकी भली प्रकार अखण्ड वर्षा करनी चाहिए ॥४५॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः– हे प्रिये ! इस प्रकार योगियोंके मनोविहारी सरकार, शास्त्रार्थमें अपनी करुणासागर, प्राणप्रिया श्रीकिशोरीजीसे हार गये, पुनः उनकी अपेक्षा-शून्य कृपालुताकी पराकाष्ठा देखकर हर्षसे रोमाञ्चित होते हुये श्रीप्रियाजूसे रस-युक्त यह बोले ॥४६॥

हे श्रीप्राणवल्लभे जू ! अहह ! आपकी इस अनुकम्पा (दया) को धन्यवाद है, जिस कृपाको, जीवोंके किसी भी साधनकी अपेक्षा नहीं है, वह तो आपके ही योग्य है । ऐसी कृपा जब आपको छोड़कर मुझमें भी नहीं है, तब अन्यों में कहांसे हो सकती है ॥४७॥

हे श्रीप्रियाजू ! प्राणिमात्रके कल्याणकी मुख्य साधन स्वरूपा आपकी यह निर्हेतुकी कृपा, ही है तथा यही सभी प्राणियोंकी सब प्रकारसे सुरक्षा करनेवाली है ॥४८॥

हे श्रीप्राणप्रियतमेजू ! आज तक मैं न किसीके अधीन हुआ और न कभी आगे होऊंगा, परन्तु आज आपने अपनी इस अहैतुकी कृपाके द्वारा मुझे अपने वशीभूत कर लिया, अजेयको जीत लिया, और मुझ विश्वविमोहनको, सब प्रकारसे मुग्ध कर लिया है ॥४९॥

यथोक्तं ते तथैव स्याद्यतस्तेऽहं मनोऽनुगः । प्रयावस्तत्पुरे तस्मादावां परिकरान्वितौ ॥५०॥

श्रीशिव उवाच ।

तयोः संवादमाकर्ण्य सख्यो हर्षप्रपूरिताः । प्रणम्य सादरं भूयो युगपद्वाक्यमब्रुवन् ॥५१॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

जयतु जयतु शश्वत्स्वामिनी स्नेहमूर्त्तिर्निरुपमगुणरूपा न्यस्तकान्तांसहस्ता ।
अगतिगतिरुदारा सच्चिदानन्ददात्री परमसरलचित्ता सुस्मिता न शरण्या ॥५२॥
जयतु जयतु मेशः प्राणनाथः परेशो विमलकमलनेत्रः शर्वरीनाथवक्त्रः ।
परमललितलीलो भावगम्यः सुशीलो मृदुलतरनिसर्गो गुप्तसद्भक्तवर्गः ॥५३॥

श्रीशिव उवाच ।

इतिपतितजनानां सच्चिदानन्दसिद्ध्यै निखिलभुवनधामाधीश्वरी भावितश्रीः ।
प्रियतममभिभाष्य स्वोद्भवं निश्चिकाय श्रुतकुल इह यस्मिञ्छ्रूयतामादितस्तत् । ५४॥

हे श्रीप्राणप्यारीजू ! अब आपने जैसा कहा है वैसाही होगा, अर्थात् अवश्य अपने इसी दिव्य स्वरूपसे हम मृत्युलोकमें प्रकट होंगे, क्योंकि मैं तो आपके मनके पीछे-पीछे ही चलने वाला हूँ । अत एव हम और आप अब अपने परिकरके सहित श्रीदशरथजी महाराज तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज के नगरोंमें पधारें ॥५०॥

भगवान्शङ्करजी बोलेः- हे प्रिये ! अपने श्रीप्रियाप्रियतमजूके इस दिव्य संवादको सुनकर पूर्णहर्षको प्राप्त हुई सखियाँ बोलीं ॥५१॥

जिनका चित्त अत्यन्त सरल है, सुहावनी जिनकी मुस्कान है, जो सभी प्राणिमात्रकी रक्षा करनेको समर्थ, भक्तोंको सत्-चित्-आनन्द अर्थात् भगवत्सुख प्रदान करनेवाली, असहायोंकी सहायिका और अत्यन्त उदार स्वभावसे युक्त हैं, जिनके मङ्गलमय गुण और अप्राकृत विश्वविमोहनमोहन-स्वरूपकी कोई उपमा ही नहीं, प्यारेके कन्धे पर जो अपना हस्तकमल रक्खे हुई हैं, उन प्रेम मूर्त्ति हमारी श्रीस्वामिनीजूकी सदाही जय हो ! जय हो ॥५२॥

सज्जन, भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, अत्यन्त कोमल स्वभाव, सुन्दर, शीलवान, भाव (प्रेमकी-पराकाष्ठा) से ही प्राप्त होने योग्य, परमसुन्दर लीलाओंके नायक, चन्द्रवदन, विमलकमलके समान नेत्रवाले, ब्रह्मादिकोंके स्वामी श्रीजानकी वल्लभ श्रीप्राणनाथजूकी सदाही जय हो ! जय हो !! ५३॥ भगवानशङ्करजी बोले :– हे प्रिये ! साक्षात् श्रीदेवीकी भी कारण स्वरूपा, समस्तब्रह्माण्डोंकी स्वामिनी, श्रीकिशोरीजी अपने प्राणप्रियतमजूसे इस प्रकार कहकर पतितजीवोंकी दिव्यसुख-सिद्धिके लिये जिस प्रसिद्ध कुलमें प्रकट होना निश्चय किया, उसे आदिसे श्रवण करें ॥५४॥

इति सप्तमोऽध्यायः ।

--❀❀❀--

१–श्रीस्नेहपराजी अपने शयन भवन में श्री किशोरीजीकी शयन झाँकी करती हुई श्रीराघवेन्द्र सरकारकी आज्ञानुसार उन्हें अपने हृदयाकर्षक श्रीकिशोरीजीके चरितोंको श्रवण करा रही हैं।
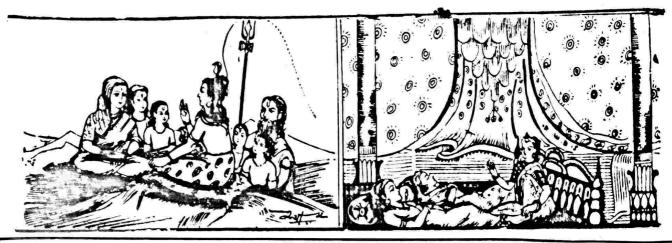
२–श्रीभोलेनाथजी श्रीसनकादिकोंके सहित श्रीयाज्ञवल्क्यजी की उपस्थिति में श्रीपार्वतीजी को श्रीस्नेहपरा व श्रीरामभद्रजूका संवाद श्रवण करा रहे हैं।

३–श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीको श्रीशिव-पार्वती-संवाद श्रवण करा रहे हैं।

४–श्रीसूतजी श्रीशौनकादि ऋषियोंसे नैमिषारण्यमें श्रीयाज्ञवल्क्य और कात्यायनीजीका संवाद वर्णन कर रहे हैं।

अथाष्टमोऽध्यायः

श्रीनिमिवंशावलीका संक्षिप्त–वर्णन ।

श्रीशिव उवाच ।

**अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः । मरीचेः कश्यपो जज्ञे विवस्वान् कश्यपात्मजः ॥१॥
विवस्वतो मनुर्जात इक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः । निमिरिक्ष्वाकुसूनुश्च यशस्वी तत्सुतो मिथिः ॥२॥
जनको मिथिपुत्रश्च तस्माज्जज्ञ उदावसुः । नन्दिवर्द्धनकस्तस्य सुकेतुस्तत्सुतः स्मृतः ॥३॥
सुकेतो देवरातश्च धर्ममूर्त्तिः सुविक्रमः । तस्माद्वृहद्रथो जज्ञे राजर्षेः सत्यसङ्गरः ॥४॥
तस्माच्छूरो महावीरः सुधृतिस्तस्य पुत्रकः । धृष्टकेतुश्च सुधृतेस्तस्य हर्यश्व आत्मजः ॥५॥
हर्यश्वस्य मरुर्जज्ञे तस्य पुत्रः प्रतीन्धकः । सुतः कीर्तिरथस्तस्य देवमीढश्च तत्सुतः ॥६॥
विदुषो देवमीढस्य सूनुस्तस्य महीध्रकः । कीर्तिरातः सुतस्तस्य महारोमा तदात्मजः ॥७॥
महारोम्णस्तु सञ्जज्ञे स्वर्णरोमा प्रतापवान् । ह्रस्वरोमा सुतस्तस्य महात्मा धर्मवित्तमः ॥८॥
ह्रस्वरोम्णो नृदेवस्य राज्ञस्तिस्रो मनोहराः । शुभजाया सदा चैव सर्वदा चेति सञ्ज्ञया ॥९॥**

हे पार्वति ! अव्यक्त भगवान् श्रीविष्णुके पुत्र ब्रह्मा हुये, ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यपजी, श्रीकश्यपजीके पुत्र श्रीविवस्वान्‌जी हुये ॥१॥ श्रीविवस्वानजीके पुत्र मनु महाराज, मनुके पुत्र श्रीइक्ष्वाकु महाराज, इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीनिमि महाराज और श्रीनिमि के यशस्वी पुत्र श्रीमिथि महाराज हुये ॥२॥ श्रीमिथिके पुत्र श्रीजनकजी, श्रीजनकजीके पुत्र श्रीउदावसुजी, श्रीउदावसुके पुत्र श्रीनन्दिवर्धनजी, श्रीनन्दिवर्धनके पुत्र श्रीसुकेतुजी ॥३॥

सुकेतु महाराजके पुत्र बड़े ही पराक्रमी साक्षात् धर्मकी मूर्त्ति श्रीदेवरातजी महाराज, श्रीदेवरातजीके पुत्र श्रीवृहद्रथजी बड़े प्रतापी हुये ॥४॥

श्रीवृहद्रथ महाराजके पुत्र श्रीमहावीर महाराज, श्रीमहावीरके पुत्र श्रीसुधृति महाराज, श्रीसुधृति महाराजके पुत्र श्रीधृष्टकेतु महाराज, श्रीधृष्टकेतुके पुत्र श्रीहर्यश्व महाराज ॥५॥

हर्यश्व महाराजके पुत्र श्रीमरुमहाराज, मरुमहाराजके पुत्र श्रीप्रतीन्धकमहाराज, श्रीप्रतीन्धक महाराज के पुत्र श्रीकीर्तिरथ महाराज, श्रीकीर्तिरथ महाराजके पुत्र श्रीदेवमीढ महाराज ॥६॥

श्रीदेवमीढमहाराजके पुत्र श्रीमहीध्रक महाराज, श्रीमहीध्रक महाराजके पुत्र, श्रीकीर्त्तिरात महाराज, श्रीकीर्त्तिरात महाराजके पुत्र श्रीमहारोमा महाराज हुये ॥७॥

श्रीमहारोमाजीके पुत्र प्रतापवान् श्रीस्वर्णरोमा महाराज, श्रीस्वर्णरोमा महाराजके पुत्र धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महात्मा श्रीह्रस्वरोमा महाराज हुये ॥८॥

श्रीह्रस्वरोमा महाराजकी श्रीशुभजायाजी, श्रीसदाजी, श्रीसर्वदाजी इन शुभ नामोंवाली मनोहारिणी तीन महारानियाँ हुईं ॥९॥

शुभजायासुतौ द्वौ श्रीसीरध्वजकुशध्वजौ । जज्ञिरे सूनवः पञ्च सदायास्तान्निशामय ॥१०॥
श्रीमद्यशध्वजो योगी श्रीमद्वीरध्वजोऽनघः । रिपुतापन उर्वीशः श्रीमद्धंसध्वजस्तथा ॥११॥
वीरः केकिध्वजः श्रीमान् सर्वदायाः सुताञ्छृणु । शत्रुजिच्च यशःशाली तेजःशाल्यरिमर्दनौ ॥१२॥
विजयध्वजो यशःश्लाघ्यस्तथा श्रीमत्प्रतापनः । श्रीमहीमङ्गलश्चैव यशस्वी श्रीबलाकरः ॥१३॥
सर्वबुद्धिमतां मान्यश्चन्द्रभानुश्च योगिराट् । सर्वदायाः सुता एते श्रीमत्सीरध्वजानुजाः ॥१४॥
ह्रस्वरोमसुतानां च भूयोऽपि शृणु वर्णनम् । महिषी-पुत्र-पुत्रीणां सर्वेषां च महात्मनाम् ॥१५॥

राज्ञ्यौ प्रिये सुनयनालघुकान्तिमत्यौ लक्ष्मीनिधिश्च सुगुणाकर आत्मजौ द्वौ ।
श्रीसीरकेतुतनये जगदेकमाता सीताऽखिलेशदयिता च तथोर्मिला द्वे ॥१६॥
राज्ञ्यौ सुभद्रा च तथा सुदर्शना महात्मनः श्रीलकुशध्वजस्य वै ।
निधानकश्रीनिधिकौ च पुत्रकौ श्रीमाण्डवी च श्रुतिकीर्त्तिरात्मजे ॥१७॥
राज्ञी सुचित्रा च यशध्वजस्य श्रीधीरवर्णस्तनयो बभूव ।
पुत्र्यस्तु तस्याः परमा परान्ता स्नेहादिरन्या सुषमेति तिस्रः ॥१८॥

श्रीशुभजाया महारानीसे श्रीसीरध्वज महाराज, श्रीकुशध्वज महाराज, ये दो पुत्र हुये, श्रीसदा महारानीसे पाँच पुत्र हुये, उन्हें श्रवण करें ॥१०॥

१-योगी श्रीयशध्वज महाराज, २-परम निष्पाप श्रीवीरध्वज महाराज, ३-श्रीरिपुतापन महाराज, ४-श्रीहंसध्वज महाराज ॥११॥

५-वीर श्रीकेकिध्वज महाराज । श्रीसर्वदा महारानीके पुत्रोंको सुनें १-श्री शत्रुजित महाराज, २-श्रीयशःशाली महाराज, ३-श्रीतेजःशाली महाराज, ४-श्रीअरिमर्दन महाराज ॥१२॥

५-प्रशंसा करने योग्य कीर्ति सम्पन्न श्रीविजयध्वज महाराज ६-श्रीप्रतापनजीमहाराज ७-श्रीमहीमङ्गल महाराज ८-श्रीबलाकर महाराज ॥१३॥ ९-सभी बुद्धिमानोंके माननीय, योगिराज श्रीचन्द्रभानु महाराज, ये श्रीसर्वदा महारानीके ९ पुत्र श्रीसीरध्वज महाराजके छोटे भाई हुये ॥१४॥

भगवान् शङ्करजी बोले-हे प्रिये ! श्रीह्रस्वरोमा महाराजके सभी महात्मा पुत्रोंकी महारानी, पुत्र, पुत्रियोंका आप पुनः वर्णन सुनें ॥१५॥

श्रीसीरध्वज महाराजकी श्रीसुनयना महारानीजी, तथा श्रीकान्तिमतीजी, ये दो महारानियाँ, श्रीलक्ष्मीनिधिजी, श्रीगुणाकरजी ये दो पुत्र, जगज्जनी सर्वेश्वरप्राणवल्लभा श्रीकिशोरीजी तथा श्रीउर्मिलाजी, ये दो पुत्रियाँ हुईं ॥१६॥ श्रीकुशध्वज महाराजके श्रीसुदर्शना महारानी व श्रीसुभद्रा महारानी, ये दो महारानियाँ, श्रीनिधिजी, श्रीनिधानकजी ये दो पुत्र तथा श्रीमाण्डवीजी तथा श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी ये दो पुत्रियां हुईं ॥१७॥

श्रीयशध्वज महाराजकी महाराणी श्रीसुचित्राजी, पुत्र श्रीधीरवर्णजी और उनके श्रीसुषमाजी, श्रीपरमाजी तथा श्रीस्नेहपराजी ये तीन पुत्रियाँ हुईं ॥१८॥

सुखवर्द्धिनी च सहजासुन्दरिका रतिविमोहिनी पत्न्यः ।
वीरध्वजस्य नृपतेस्तिस्त्रः पुत्र्यस्त्रयः पुत्राः ॥१९॥

आज्ञापरश्च पुत्रः पुत्री तरङ्गा सहजसुन्दर्याः । सुखवर्द्धिन्याः पुत्रः सुरदानी पुत्रिकोमङ्गा ॥२०॥
श्रीमोहिनीति तस्याः सुता वधूर्मदनमालती नाम्नी ।पुत्रो रतिमोहिन्याः श्रीमान् वंशप्रवीणश्च ।२१।
रिपुतापनस्य राज्ञी सुवृताभिधेत्याज्ञाप्रवीणश्च। पुत्रौ श्रीचित्रभानुः श्रीक्षेमा चैव पुत्रिका जज्ञे ।२२।
हंसध्वजस्य पत्नी विख्याता क्षेमवर्द्धिनी नाम्ना । प्रेमनिधिः खलु पुत्रः शुभशीलासञ्ज्ञका पुत्री।२३।
केकिध्वजस्य राज्ञी शशिकान्ता तस्या उभे च पुत्र्यौ । विहारिणीमाधुर्ये पुत्रः सेवापरस्तस्य ॥२४॥
शत्रुजितश्च सुमहिषी शशिकान्तिः पुत्रः शृङ्गारनिधिः। पुत्रवधूर्वर्द्धिनिका पुत्री श्रीचारुशीलाख्या।२५।
श्रीलविदग्धा नाम्नी राज्ञी श्रीकीर्त्तिशालिन : ख्याता। अंशपरस्तत्तनयः पुत्री श्रीलक्ष्मणेत्युदिता।२६।
तेजः शालिसुनृपतेरासीद्राज्ञी विशालाक्षी । पुत्रोऽनूपनिधिश्च प्रयता तनया सुलोचना नाम्नी ॥२७॥
अरिमर्दनस्य पत्नी बभूव सद्‌गुणा सुभद्राख्या तु । तस्यां पुत्री जाता श्रीहेमा भूपतेस्तस्य ॥२८॥

विजयध्वजस्य पत्नी नाम्नाऽशोका गुणैर्महिता ।
उदयप्रभा च पुत्री यस्यां जाता सुलक्षणा विदुषी ॥२९॥

श्रीवीरध्वज महाराजके श्रीसुखवर्द्धिनीजी, श्रीसहजसुन्दरीजी, श्रीरतिमोहिनीजी ये तीन महारानियाँ, तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं ॥१९॥

श्रीसुखवर्द्धिनी महाराणीके पुत्र श्रीदेवदानीजी, पुत्री श्रीउमङ्गाजी । श्रीसहजसुन्दरी महाराणीके पुत्र श्रीआज्ञापारजी, पुत्री श्रीतरङ्गाजी हुईं ॥२०॥

श्रीरतिमोहिनीजूकेपुत्र श्रीवंशप्रबीणजी, पुत्री श्रीमोहिनीजी, पतोहू श्रीमदनमालतीजी हुईं ॥२१॥ श्रीरिपुतापन महाराजकी महारानी श्रीसुवृताजी, पुत्र श्रीआज्ञा प्रवीणजी तथा श्रीचित्रभानुजी, पुत्री श्रीक्षेमाजी हुईं ॥२२॥ श्रीहंसध्वज महाराजकी महाराणी श्रीक्षेमबर्द्धिनीजी विख्यात हैं । उनके पुत्र श्री प्रेमनिधिजी, पुत्री श्रीशुभशीलाजी हुईं ॥२३॥

श्रीकेकिध्वज महाराजकी महाराणी श्रीचन्द्रकान्ताजी, पुत्र श्रीसेवापरजी, पुत्री श्रीविहारिणी जी, तथा श्रीमाधुर्याजी ॥२४॥ श्रीशत्रुजित महाराजकी महाराणी श्रीचन्द्रकान्तिजी, पुत्र श्रीशृङ्गारनिधिजी पुत्री श्रीचारुशीलाजी हुईं ॥२५॥

श्रीयशःशाली महाराजकी महाराणी श्रीविदग्धाजी विख्यात हैं, पुत्र श्रीअंशपरजी, और पुत्री श्रीलक्ष्मणाजी कही जाती हैं ॥२६॥ श्रीतेजःशाली महाराजकी महारानी श्रीविशालाक्षीजी, पुत्री श्रीसुलोचनाजी, पुत्र श्रीअनूपनिधिजी हुये ॥२७॥

श्रीअरिमर्दन महाराजकी महाराणी सर्वगुण आगरी श्रीसुभद्राजी, और उनसे पुत्री श्रीहेमाजी हुईं ॥२८॥ श्रीविजयध्वज महाराजकी महाराणी सर्व गुणकी खानि श्रीअशोकाजी हुईं । उनसे सब शुभ लक्षणोंसे युक्ता उदयप्रभा नामकी पुत्री उत्पन्न हुईं ॥२९॥

प्रतापनस्य महिषी विनीतेति शीलमण्डिता । सुता श्रीसुभगा चैव पुत्रः क्षेमनिधिः स्मृतः ॥३०॥
महीमङ्गलपत्नी तु मोदिनी रूपशालिनी । वरारोहा तु तत्पुत्री मङ्गलादिनिधिः सुतः ॥३१॥
बलाकरस्य नृपतेः शोभनाङ्गी च पत्निका । तनय शीलनिधिकः पद्मगन्धा सुता तथा ॥३२॥
महिषी श्रीचन्द्रभानोर्नाम्ना चन्द्रप्रभा चैव । जानक्याः पार्श्वस्था चन्द्रकलानामिका पुत्री ॥३३॥

श्रीप्रतापनमहाराजकी परम सुशीला महाराणी श्रीविनीताजी, उनके पुत्र श्रीक्षेमनिधिजी, और पुत्री श्री सुभगाजी ॥३०॥ श्रीमहिमङ्गलमहाराजकी परमसुन्दरी महाराणी श्रीमतीमोदिनी जी, उनके पुत्र श्रीमङ्गलनिधिजी, पुत्री श्रीवरारोहाजी ॥३१॥

श्रीवलाकर महाराजकी महाराणी श्रीशोभनाङ्गीजी, उनके पुत्र शीलनिधिजी, पुत्री श्रीपद्मगन्धाजी ॥३२॥ श्रीचन्द्रभानु महाराजकी महाराणी श्रीचन्द्रप्रभा नामसे प्रसिद्ध हैं। उनकी पुत्री श्रीजनकदुलारीजूके साथ चलनेवाली श्रीमतीचन्द्रकलाजी हुईं ॥३३॥

इत्यष्टमोऽध्यायः ।

— ❀❀❀ —

अथ नवमोऽध्यायः ।

श्रीकिशोरीजी तथा माण्डवीजी के मातामह (नाना) आदि का संक्षिप्त वर्णन ।

श्रीकात्यायन्युवाच ।

कृपया ते महायोगिन् भ्रातॄणां मिथिलेशितुः । अपत्यानां च सर्वज्ञ! मदर्थे वर्णनं कृतम् ॥१॥
नाद्भुतं तल्लघुष्वेव गुरवः करुणापराः । तृणानि मूर्द्ध्न दधते गिरयः सर्वदा प्रभो ! ॥२॥
इदानीं श्रावय स्वामिन्! मिथिलाधिपपुङ्गवः । विवाहितो महाराजो जनकः कुत्र योगिराट् ॥३॥
कस्यां लक्ष्मीनिधिर्जातश्चोर्मिला जलदद्युतिः । श्रुतिकीर्तेश्च माण्डव्या नाम मातुश्च किं मुने ॥४॥
लक्ष्मीनिधिविवाहोऽपि कस्मिन्देशे शुभेऽभवत् । का श्वश्रूः श्वसुरः कश्च सूनोर्जनकभूपतेः ॥५॥

हे सर्वरहस्योंको जानने वाले महायोगिराज प्रभो ! आपने मेरे लिये कृपा करके श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी सन्तानोंका वर्णन किया ॥१॥

इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि बड़े लोग छोटों पर स्वाभाविक कृपा करते हैं। जैसे पर्वत इतने बड़े होते हुये भी अपने सिर पर सर्वदा तृणोंको धारण किये रहते हैं ॥२॥ हे स्वामिन् ! अब हमें यह सुनाइये, कि श्रीमिथिला-नृपशिरोमणि योगिराज श्रीजनकजी महाराजका विवाह कहाँ हुआ था ? ॥३॥

प्रभुरहस्योंके मनन करने वाले ! हे नाथ ! कौनसी महारानीजीसे श्रीलक्ष्मीनिधिजीका और मेघसदृश श्यामवर्णवाली श्रीउर्मिलाजीका जन्म हुआ ? श्रीश्रुतिकीर्तिजी और श्रीमाण्डवीजी की माताका क्या नाम था ? ॥४॥ जनकदुलारे श्रीलक्ष्मीनिधिजीका विवाह किस शुभ देशमें हुआ ? उनके सास, ससुरका क्या नाम था ? ॥५॥

कस्मिन्देशे पितुस्तस्य मातामह उदारधीः । भवन्तमपहायान्यः कोऽपरः स्यात्प्रियंवदः ।।६।।

श्री सूत उवाच ।

एवमुक्तो महायोगी मुनिवर्यस्तपोनिधिः । श्रूयतामिति सम्भाष्य कथनायोपचक्रमे ।।७।।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

पूर्वदक्षिणके कोणे विकाशाया महीपतेः । श्रीभूरिमेधसः पुत्रौ सुमालः कुण्डलस्तथा ।।८।।
सुनेत्राकान्तिमत्यौ च सुधाग्रायामुभे सुते । तत्पत्न्यामर्पिते जाते तेन सीरध्वजाय ते ।।९।।
जगदम्बोर्विजा सीता प्रोक्ता सुनयनासुता । लक्ष्मीनिधिश्च सत्पुत्रो जानक्या अनुजः प्रियः ।।१०।।
कान्तिमत्याः सुतः श्रीमान् गुणाकर इति स्मृतः । सुतोर्मिला शुभा तस्या जानक्या भगिनी प्रिया ।।११।
भूरिमेधोऽनुजः श्रीमान् ज्ञानमेधाः प्रतापवान् । गुणाग्रायां तु तत्पत्न्यां जातौ श्रीवीरकान्तकौ ।।१२
सुदर्शनासुभद्राख्ये तथा तस्यां बभूवतुः । बिवाहिते उभे पुत्र्यौ श्रीमद्दर्भध्वजेन ते ।।१३।।
माण्डवीश्रीनिधी प्रोक्तौ भद्रे! सौदर्शनौ सुतौ । सुभद्रायां तथा जातौ श्रुतिकीर्तिनिधानकौ ।।१४।।

हे नाथ ! श्रीलक्ष्मीनिधिजीके पिताजीके नाना किस देशमें रहते थे ? मेरे इन प्रश्नों को सुनकर आप बुरा न मानें क्योंकि, ऐसे प्रिय रहस्यका कहने वाला आपके अतिरिक्त हमें और कौन है? जिससे प्रश्न करूँ ? अत एव यह सब विषय आप ही समझानेकी कृपा करें ।।६।।

श्रीसूतजी बोले–हे श्रीशौनकजी ! श्रीकात्यायनीजीके इस प्रकारसे कहने पर मुनियोंमें श्रेष्ठ तपस्याके निधि, योगिशिरोमणि, श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले–हे प्रिये ! जो आपने पूछा है, उसे सुनिये । ऐसा कहकर वे उनके प्रश्नोंका उत्तर देना प्रारम्भ किये ।।७।।

पूर्व दक्षिणके कोणमें विकाशा नामकी एक पुरी थी । वहाँके राजा श्रीभूरिमेधा महाराजके श्रीसुमालजी व श्रीकुण्डलजी नामके दो पुत्र हुए ।।८।।

श्रीभूरिमेधा महाराजकी श्रीसुधाग्रा महाराणीसे श्रीसुनयनाजी, श्रीकान्तिमतीजी ये दो पुत्रियाँ हुईं । उन दोनोंको श्रीभूरिमेधा महाराजने श्रीसीरध्वज महाराजको अर्पण कर दीं ।।९।।

श्रीसुनयना महाराणीकी पुत्री जगज्जननी, अवनिकुमारी, श्रीकिशोरीजी और उनके प्रिय भैया श्रीलक्ष्मीनिधिजी सत्पुत्र हुये ।।१०।।

श्रीकान्तिमती महाराणीके पुत्र "श्रीगुणाकरजी" इस नामसे स्मरण किये जाते हैं, और श्रीकिशोरीजीकी प्रिय बहिन, श्रीउर्मिलाजी उनकी शुभ पुत्री हुईं ।।११।।

श्रीभूरिमेधा महाराजके छोटे भाई श्रीज्ञानमेधा महाराज बड़े प्रतापी हुये, उनकी गुणाग्रा महाराणीसे श्रीवीरजी, श्रीकान्तजी, ये दो पुत्र हुये ।।१२।।

तथा उन्हीं महाराणी श्रीगुणाग्राजीसे श्रीसुभद्राजी व श्रीसुदर्शनाजी ये दो पुत्रियाँ हुईं । उन दोनों का विवाह श्रीकुशध्वज–महाराजके साथ सम्पन्न हुआ ।।१३।।

श्रीसुदर्शना महाराणीकी पुत्री श्रीमाण्डवीजी, तथा पुत्र श्रीनिधिजी कहे जाते हैं । श्रीसुभद्रा महाराणीके पुत्र श्रीनिधानकजी और पुत्री श्रीश्रुतिकीर्तिजी हुईं ।।१४।।

याम्यां विडालिकापुर्यां श्रीधरो राजसत्तमः । श्रीसुकान्तिः प्रिया तस्य पातिव्रत्यपरायणा ॥१५॥
तस्यां द्वौ तनयौ जातौ कान्तिधारियशोधरौ । सिद्धिर्वाणी च नन्दोषाश्चतस्रः पुत्रिका इमाः ॥१६॥
श्रीलक्ष्मीनिधये सिद्धिर्नन्दा श्रीनिधयेऽर्पिता । वाणी गुणाकरायैव तथोषाश्च निधानके ॥१७॥
वारहलाख्ये कौवेर्य्यां देशे वृन्दारको नृपः । वंश्योऽर्क भास्वरस्तस्य जाज्याया वल्लभोऽभवत् ।१८।
बलायतबलोन्नायौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः । शुभजायाऽभवत्पुत्री ह्रस्वरोम्णे तु साऽर्पिता ॥१९॥
तस्याः पुत्रौ महाभागौ सीरध्वजकुशध्वजौ । पौत्र्यश्चरूपशालिन्यो भूमिजाद्या मनोहराः ॥२०॥
लक्ष्मीनिध्यादयः पौत्रा अभवन्भाग्यशालिनः । सिद्ध्याद्याः पौत्रवध्वश्च स्नुषाः सुनयनादयः ।२१।
तटे महोदधेश्चैकं वारधानं पुरं महत् । विश्वकायो महाराजस्तत्रत्यो नृपपुङ्गवः ॥२२॥
तेनापि विधिना तस्मै पुत्र्यौ द्वे भव्यदर्शने । ह्रस्वरोम्णे नरेन्द्राय प्रदत्ते सर्वदासदे ॥२३॥
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च वर्णिताः पूर्वमेव हि । सर्व एव महाभागा मैथिल्या भावभाविताः ॥२४॥
एषा तेऽभिहिता सूक्ष्मं निमिवंशावली मया । विस्तरेण न मे वक्तुं शक्तिरस्ति महामते ! ॥२५॥

दक्षिण दिशामें विडालिका पुरीके राजा भूपशिरोमणि श्रीधरजी महाराज हुये, उनकी महाराणी श्रीसुकान्तिजी बड़ी ही पतिव्रता थीं ॥१५॥

श्रीसुकान्ति महाराणीके श्रीकान्तिधरजी, श्रीयशोधरजो, नामके दो पुत्र और श्रीसिद्धिजी, श्रीवाणीजी, श्रीनन्दाजी, श्रीउषाजी, ये चार पुत्रियाँ हुईं ॥१६॥

श्रीलक्ष्मीनिधिजीको श्रीसिद्धिजी, श्रीगुणाकरजीको श्रीवाणीजी, श्रीनिधिजीको श्रीनन्दाजी, श्रीनिधानकजीको श्रीउषाजी प्रदानकी गईं ॥१७॥ पूर्व-उत्तर कोणमें वारहल नामके देशमें एक श्रीवृन्दारकजी नामके राजा थे, उनके वंशमें श्रीअर्कभास्वर महाराज हुये उनकी महाराणी श्रीजाज्याजी हुईं उनसे श्रीवलायतजी श्रीवलोन्नायजी ये दो पुत्र और श्रीशुभजाया नामकी पुत्री हुईं, जो श्रीह्रस्वरोमा महाराजको बिवाही गयीं ॥१८॥१९॥

श्रीशुभजाया महाराणीके श्रीसीरध्वज महाराज, श्रीकुशध्वज महाराज ये दो पुत्र तथा श्रीकिशोरीजी आदि परम मनोहर, रूपवती पुत्रोंकी पुत्रियाँ हुईं ॥२०॥

उन्हीं भाग्यशाली श्रीह्रस्वरोमा महाराजके श्रीलक्ष्मीनिधि आदिक पौत्र (पुत्रोंके पुत्र) तथा श्रीसिद्धिजी आदिक पौत्रोंकी पत्नियाँ (बहुयें) और श्रीसुनयनाजी आदि पतोहू हुईं ॥२१॥

पूर्वमें महोदधिके किनारे वारधान नामक एक बड़ा भारी नगर था, वहाँ के राजा श्रीविश्वकायजी महाराज हुये, उनके श्रीसदाजी, श्रीसर्वदाजी ये दो पुत्रियाँ हुईं, उन दोनों पुत्रियोंका विधिपूर्वक विवाह श्रीविश्वकाय महाराजने, श्रीह्रस्वरोमा महाराजसे कर दिया ॥२२॥२३॥

श्रीसदाजी और श्रीसर्वदाजीके पुत्र, पौत्र आदिका वर्णन मैं पूर्व में ही कर चुका हूँ, अत एव इस समय उनका अब क्या वर्णन करूँ ? श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीके भावसे प्रभावित होनेके कारण वे सभी वड़भागी हैं ॥२४॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे बोले :–हे महामते ! मैं ने सूक्ष्म रूपसे ही आपसे निमि वंशावलीका वर्णन किया है क्योंकि, विस्तार पूर्वक उसका वर्णन करनेकी सामर्थ्य ही मुझमें नहीं है ॥२५॥

य इमां मनुजो नित्यमधीते गतकल्मषः । निमिवंशावलीं पुण्यां स भवेद्धरिवल्लभः ॥२६॥

जो मनुष्य इस पवित्र निमिवंशावली का नित्य प्रति पाठ करेगा, वह अवश्यमेव सब पापोंसे मुक्त होकर प्रभु श्रीरामका प्यारा बनेगा ॥२६॥

इति मासपारायणे द्वितीयो विश्रामः ॥२॥

इति नवमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ दशमोऽध्यायः ।

प्रेमासक्ता स्नेहपरा के प्रति श्रीपद्मगन्धा सखीका दिव्योपदेश ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ स्नेहपरा—रामसंवादं कथयामि ते । प्रोदिता कथमित्येव तव शङ्कामपोहितुम् ॥१॥
धीरवर्णानुजा ज्ञेया सुचित्रागर्भसम्भवा । सुता स्नेहपरा श्रीमद्यशःकेतोर्महात्मनः ॥२॥
स्वसृभ्यां सह रामाय सेवार्थं च समर्पिता । सुवर्णभवने प्राप निवासं योगिदुर्लभम् ॥३॥
रात्रौ यामावशिष्टायां कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः । साऽन्वहं शयनागारं याति श्रीपद्मगन्धया ॥४॥
दिदृक्षुर्जानकीरामौ घर्मार्तः पादपं यथा । आतुराऽऽलिजनैः साकं स्वसेवावस्तुहस्तका ॥५॥
शयनान्तं विहारं तं प्रातरुत्थितयोस्तयोः । श्रीसीतारामयोर्दिव्यं महानन्दमयं परम् ॥६॥
दृष्ट्वा तु दैनिकं सर्वं स्वसेवातत्परा मुदा । निशीथोपगते काले पुनरावर्तते गृहम् ॥७॥

भगवान् शङ्करजी बोले :—हे प्रिये ! श्रीकिशोरीजी किस प्रकार प्रकट हुईं ? आपकी इस शङ्काको दूर करनेके लिये अब मैं श्रीस्नेहपरा और श्रीरामजीका संवाद आपसे कथन कर रहा हूँ ॥१॥ उस स्नेहपराको आप श्रीधीरवर्णजीकी छोटी बहन और श्रीसुचित्रा महाराणीके गर्भसे जायमान (उत्पन्न) महात्मा श्रीयशध्वज महाराजको पुत्री जानो ॥२॥

श्रीकिशोरीजीकी सेवा-प्राप्तिके लिये अपने माता-पिताजी द्वारा वह अपनी दो बहिनों (श्रीसुषमाजी, श्रीपरमाजी) के सहित श्रीरामजीको ही समर्पण की गयी, अतः योगियोंके लिये भी परमदुर्लभ श्रीकनक-भवनमें ही उसने निवास पाया ॥३॥

प्रतिदिन रात्रिका एक याम (पहर) समयशेष रहनेपर ही वह शयनसे उठकर किसी प्रकार स्नानादिक सभी आवश्यक क्रियाओंको पूरी करके मुख्यसेवा वस्तु हाथमें लिए हुई श्रीयुगलसरकार के दर्शनोंकी उत्कट अभिलाषासे वह अपनी सखियों सहित श्रीपद्मगन्धाजीके साथ इस प्रकार शयनकुञ्ज जाया करती जैसे धूप से व्याकुल प्राणी छायाके लिए वृक्ष के पास जाता हो ॥५॥

प्रातःकालसे शयनपर्यन्त सेवामें तत्पर रहती हुई श्रीसीतारामजीके दिनभरके सत-चित, परम आनन्दमय उस दिव्य विहारको अवलोकन करके लगभग अर्द्धरात्रिके समय पुनः अपनी कुञ्जको वापस आती ॥६॥७॥

यामं कल्पं च मन्वाना कथञ्चिन्नयते निशाम् । नक्षत्राणि प्रपश्यन्ती सा तु बालस्वभावतः ॥८॥
पुनरुत्थाय सेवायै कृत्वा वै पूर्ववत्क्रियाः । प्रयाति शयनागारं दम्पत्योः प्राणतुल्ययोः ॥९॥
नित्यप्रबोधितां ताभ्यां वियोगं सोढुमक्षमाम् । पद्मगन्धा जगादेदं वचश्चन्द्रकलाज्ञया ॥१०॥
भद्रं ते श्रूयतां गुह्यं रहस्यमिदमद्भुतम् । धैर्यमालम्ब्य सौचित्रि! यतः शान्तिर्भविष्यति ॥११॥
नैतौ श्रीजानकीरामौ प्राकृतावेकदेशगौ । दम्पती सुषमागारावेतौ सर्वगतौ विभू ॥१२॥
स्वेच्छं प्रकटितौ भूमौ सच्चिदानन्दविग्रहौ । कर्तारौ सर्वलोकानां जननीजनकौ तथा ॥१३॥
सर्वज्ञौ निखिलाधारौ निराधारौ परात्परौ । सर्वेश्वरौ तथाऽचिन्त्यौ सर्वशक्तीश्वरेश्वरौ ॥१४॥
एतौ चिदानन्दमयौ निरीहौ सर्वेष्टकल्पद्रुमतामुपेतौ ।
अमेयशक्ती मुनिहंसभाव्यौ शम्भोर्मनोमानसराजहंसौ ॥१५॥

किन्तु अपने बाल स्वाभावके कारण वह बाकी एक पहर रातके समयको भी कल्पके समान विशेष मानकर तारोंको देखती हुई, बड़ी कठिनतासे व्यतीत करती थी ॥८॥ एक याम (पहर) रात्रि इस प्रकार बड़ी कठिनतासे व्यतीत होनेपर, वह पुनः पूर्ववत् स्नान आदिक सभी आवश्यक क्रियाओंको पूर्ण करके अपने प्राणप्यारे, दम्पती श्रीसीतारामजीके श्रीशयनभवनमें जाती ॥९॥

उसकी यह प्रेम दशा देखकर श्रीकिशोरीजी तथा सरकार दोनों ही उसे नित्य प्रवोध कराते थे, परन्तु उसे उनका एक पहर मात्रका भी वियोग, सहन करना कठिन हो जाता था, अतः श्रीचन्द्रकलाजीकी आज्ञासे श्रीपद्मगन्धाजी एकदिन उससे बोलीं ॥१०॥

हे श्रीसुचित्रा नन्दिनि ! आपका कल्याण हो, आप धैर्य धारण करके श्रीप्रिया-प्रियतमजूके इस गुह्य (सभीसे न कहने योग्य) आश्चर्यमय रहस्यको सुनें, उससे आपके हृदयमें अवश्य शान्ति आवेगी ॥११॥ ये अतुलित शोभाके धाम दम्पती श्रीसीतारामजी पञ्चभूतों (क्षिति, जल, अग्नि,आकाश, पवन)से बने हुए शरीर वाले नहीं हैं, अर्थात् इनका श्रीअङ्ग अपाञ्चभौतिक(दिव्य) है, इस हेतु ये एक देशी अर्थात् केवल अपने महलमें ही निवास करने वाले नहीं है, बल्कि सर्वत्र सर्वदा समरूपसे, एक रस विराजमान, सर्वव्यापक पूर्णब्रह्म हैं ॥१२॥ ये सत्-चित् आनन्दमय विग्रह (शरीर) वान् सभी लोकोंके रचना करने वाले माता-पिता होते हुये भी जीवोंकेकल्याण के लिये अपनी इच्छासे स्वयं भूतलपर प्रकट हुए हैं ॥१३॥ ये सभीके, सभी भावोंको, सभीकी सभी परिस्थितियोंको, सभीके ह्रास, और विकास (अवनति-उन्नति) का कारण और सभी उपायोंको भलीभाँति, सब समय जानते हैं। ये सभीके आधार स्वरूप हैं, परन्तु इनका कोई आधार नहीं है। ये बड़े से बड़े, सभी शासकों पर शासन करने वाले, सभी शक्तियोंके स्वामियोंके भी स्वामी, चिन्तनमें न आने योग्य पूर्ण ब्रह्म हैं ॥१४॥ ये श्रीयुगलसरकार ब्रह्मानन्दमय, सभी प्रकारकी लौकिक पारलौकिक इच्छाओंसे रहित, शरणागतजीवोंकी सभी मङ्गल कामनाओंकी पूर्ति करनेके लिये कल्पवृक्षके समान, पार न पाने योग्य-शक्तिसे युक्त, सारग्राही-मुनियोंकी भावनामें आने योग्य तथा भगवान् शङ्करजीके मनरूपी मानसरोवरमें सदा निवास करने वाले राजहंस हैं ॥१५॥

नाभ्यां समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यः श्रीजानकीराघवसुन्दराभ्याम् ।
माधुर्य ऐश्वर्य उरुप्रभावे सौन्दर्यवात्सल्यदयाऽऽर्जवेषु ॥१६॥
परात्परं ब्रह्म ययोर्विभूतिर्ब्रह्मादयः पादरजःप्रपन्नाः ।
ध्यायन्ति यौ योगिन आत्मनिष्ठाः श्रीलोमशाद्या उदिताविमौ तौ ॥१७॥
नादिं न मध्यं न ययोस्तथान्तं विदुश्च देवासुरयोगिसिद्धाः ।
भजन्ति सन्तः कवयो यतीन्द्रा ब्रह्मर्षयः सारविदां वरिष्ठाः ॥१८॥
ययोर्महिम्नः श्रुतिसारयोश्च सर्वांशिनोः शेषमहेशवाण्यः ।
न स्पर्ष्टुमर्हाः श्रुतयोऽपि नूनं छायामपि श्रीरतिमारहेत्वोः ॥१९॥
तावेव चेमौ जगदेकवन्द्यौ श्रीजानकीश्रीरघुराजसूनू ।
सर्वार्थसम्पूरणचित्रकीर्ती जातौ कुले श्रीनिमिसूर्ययोश्च ॥२०॥
आज्ञा शिरोधार्यतमा सहर्षं तयोः सुखेनैव सुखं प्रयाहि ।
न क्षेपणीयः क्षणमात्रकालः स्मृतिं विनाऽनुग्रहरूपयोश्च ॥२१॥

ऐश्वर्य, माधुर्य, अघटित-घटना-समर्थ प्रभाव (महिमा) और विश्वमोहन सौन्दर्य, वात्सल्य, दया, सरलता आदिमें इन श्रीजनकनन्दिनी तथा श्रीरघुनन्दनप्यारे की समता करनेके लिये भी कोई अन्य समर्थ नहीं है, तब अधिक कहाँसे हो सकता है ? ॥१६॥

ब्रह्म (विश्वनियन्ता ईश्वर) जिनकी विशेष विभूति है, ब्रह्मादिक देव श्रेष्ठ जिनके श्रीचरण कमलकी धूलिकी शरणमें हैं, ब्रह्ममात्रमें निष्ठा रखनेवाले श्रीलोमशजी आदि महान् योगिराज भी जिनका ध्यान करते हैं, वही ये सभी उत्कृष्टोंसे उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) पूर्ण ब्रह्म, मङ्गलमय विग्रहको धारण कर प्रकट हुये हैं ॥१७॥ देवता, असुर, योगि, सिद्ध कोई भी आज तक जिनका आदि, मध्य और अन्त न जान सके, सन्त-(ब्रह्मको अपने अन्तस्करणमें रखने वाले) श्रीसनकादिक, श्रीअगस्त्यजी आदि, कवि-श्रीबाल्मीकिजी, श्रीव्यासजी, श्रीउशनाजी आदि, यतिराज-श्रीकपिलदेव आदि, ब्रह्मर्षि-श्रीवशिष्ठजी आदिक, सारवेत्ताओंमें श्रेष्ठ-श्रीनारदादिक जिनका भजन करते हैं ॥१८॥ वेदोंके सार, सभीके कारण, रति और कामके भी मूल(प्राकटचस्थान) भूत, जिन पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्दघन, सगुण, साकार ब्रह्म और उनकी आदि शक्तिकी महिमाको श्रीशेषजी, महेशजी, श्रीसरस्वतीजी तथा चारो वेद वर्णन करते करते भी उसकी छायाका भी स्पर्श करनेको समर्थ नहीं होते अर्थात् जिनकी महिमाकी छायाका भी वर्णन करनेमें वे असमर्थ ही रहते हैं ॥१९॥ सारे स्थावर-जङ्गमके समस्त वन्दनीयों (प्रणाम करने योग्यों) में श्रेष्ठ, सकल मनोरथ प्रदान करने वाली विचित्र कीर्तिसे युक्त, वहीये निमि और सूर्य वंशमें प्रकट हुये, श्रीकिशोरीजी और श्रीदशरथनन्दन प्यारेजू हैं ॥२०॥ अत एव हर्ष पूर्वक तुम्हें श्रीयुगल सरकार की आज्ञा ही सिरपर धारण करना परम कर्त्तव्य है, उनकी प्रसन्नतामें ही तुम प्रसन्न रहो और उन कृपास्वरूप श्रीयुगलसरकारके सुमिरण विना एक क्षणमात्रका समय भी बिताना तुम्हें उचित नहीं है ।२१।

यासां नियोक्त्री स्वसृभावमाप्ता महाकृपावारिधिराप्तकामा ।
सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशपुत्री तासां तु का ब्रूहि शुभे ! ऽनुचिन्ता ॥२२॥
सा वै शरण्या शरणं तु यासां प्रेम्णाऽनुकूला परिपालिनी च ।
ब्रह्माण्डकोटिप्रभुवल्लभाद्या तासां तु का ब्रूहि शुभे! ऽनुचिन्ता ॥२३॥

अतिशयमृदुचित्ता भूपतेर्नन्दिनीयं प्रणतसुखसुखाप्ता दुःखतो दुःखिता च ।
सकलहृदयभावं सर्वदा सर्वकाले स्फुटमिह निखिलं वै वेत्ति वत्से ! यथार्थम् ॥२४॥
सकलविधिहितेयं सर्वकल्याणकर्त्री ह्यगतिगतिसुवेत्री श्रीधरानाथपुत्री ।
प्रणतिपरमतुष्टा नो वधार्हेऽपि रुष्टा त्विति मनसि विदित्वा मा शुचो याहि धैर्य्यम् ॥२५॥

हे शुभे! साक्षात् महाकृपासागरा, पूर्णकामा, सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशकिशोरीजी जिनकी बहिन भावको स्वीकार करते हुए आज श्रीस्वामिनीपद पर विराजमान हैं, उन हम सभीके लिए भला अब किस बातकी चिन्ता है ? ॥२२॥ सभी प्राणीमात्रकी रक्षा करनेको समर्थ प्रेमपूर्वक हम सभोका पालन करने वाली, हमारे सभी प्रकारसे अनुकूल, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायककी प्राणबल्लभा, श्रीकिशोरीजी ही जब हम सभीकी रक्षा करने बाली हैं, तब तुम्ही कहो, हम लोगोंको फिर क्या चिन्ता होनी चाहिए ? ॥२३॥

हे वत्से! श्रीकिशोरीजी सभीके हृदयगत भावोंको सदा-सर्वदा पूर्णतया यथार्थ रूपमें जानती हैं। आपका हृदय बहुतही कोमल है अतः ये आश्रितोंके सुखसे सुखी और दुःख से दुखी होजाती हैं ॥२४॥ श्रीकिशोरीजी कितनी दयालु और क्षमासागरा हैं कि केवल प्रणाममात्र से सभीपर प्रसन्न हो जाती हैं, पर बध करदेने योग्य किसी अपराधी पर भी कभी रोष नहीं करतीं, तथापि सभीके उत्थान-पतन (हित-अहित) की बात भली प्रकार जाननेके कारण सदा सब प्रकार से सभीका हित और कल्याण ही करती हैं केवल प्रिय ही नहीं ऐसा विचार करके तुम मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता न करके धीरज ही धारण करो अर्थात् घबराओ नहीं, क्योंकि वे हृदयके भावको तो जानती ही हैं, अत एव जिस प्रकार हम सभीका हित समझतीं होंगी, वैसा ही करेंगी, अस्तु उनके सभी विधानोंको हितकर समझकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये, जिससे उनका भी हृदय प्रसन्न रहे, अन्यथा वे भी दुखी हो जायेंगी ॥२५॥

इति दशमोऽध्यायः ।

अथैकादशोऽध्यायः ।

श्रीसीतारामजीको अपने भवन ले जाने की प्रार्थिनी स्नेहपराके प्रति
श्रीपद्मगन्धाजीका आदेश ।

श्रीशिव उवाच ।

एवं संबोधिता हृष्टा प्रफुल्लकमलेक्षणा । जहौ दुःखं निजान्तःस्थं स्वामिन्या दुःखशङ्कया ॥१॥
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय यात्वा श्रीशयनालयम् । निरीक्ष्य प्राणनाथौ तौ सफलं मनुते भवम् ॥२॥
आसंवेशविहारं सा श्रयन्ती प्रिययोस्तयोः । दृष्ट्वाऽथ स्वालयं याति श्रीपर्यङ्कशयानयोः ॥३॥
पूर्वजाः स्वा नमस्कृत्य कृतसेवा महामतिः । आज्ञप्ता स्वालिभिः सार्द्धं संविशत्यात्मनो गृहम् ॥४॥
तत्र गत्वा विशालाक्षी शयनीयमनुत्तमम् । श्रीसीतारामयोरर्थं विधाय प्रेमनिर्भरा ॥५॥
प्रसुप्तौ भावयन्ती तौ प्राणनाथौ मनोहरौ । याममेकं निशीथिन्याः कथञ्चित्क्षपयत्यसौ ॥६॥
एकदा सा महाभागा श्रीयशोध्वजनन्दिनी । दम्पत्योः सत्कृपापात्रं पद्मगन्धालयं गता ॥७॥

इस प्रकार श्रीयुगल सरकारके परत्व, गुण, स्वभाव आदिका सम्यक् प्रकारसे बोध कराने पर श्रीस्नेहपराजीने अपनी श्रीस्वामिनीजूके दुखी हो जानेके भयसे हृदयस्थित व्याकुलता का परित्याग कर दिया ॥१॥

अब प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर, श्रीयुगलसरकारके श्रीशयनभवनमें उपस्थित हो अपने श्रीयुगल प्राणनाथ (श्रीसीतारामजी) का दर्शन करके वे अपने जीवनको सफल मानने लगीं ॥२॥

प्रातःकाल शयनसे उठनेके पश्चात् रात्रिमें पलङ्गपर शयन करनेके समय तक श्रीयुगल सरकारकी सेवा परायण रहती हुई, उनके समस्त आनन्दप्रद विहारोंको अवलोकनकर वे अपने महलको जाने लगीं ॥३॥

श्रीयुगलसरकार ही विश्वके सभी स्वरूपोंको धारण करके हमारे दशो दिशाओंमें विद्यमान हैं, इस प्रकारकी बुद्धि प्राप्त हो जाने पर श्रीस्नेहपराजी अपनी प्रधान ज्येष्ठा बहनोंके यहाँ जाकर, समयोचित सेवा बजाकर, प्रेमवश उनके बार-बार जानेकी आज्ञा देने पर ही वे उन्हें प्रणाम करके, निज सखियोंके सहित अपने महलको जाया करती थीं ॥४॥

निज महलमें जाकर श्रीयुगलसरकार के निमित्त अत्यन्त सुन्दर शय्या सजाकर प्रेम निर्भर हो जाती पुनः दोनों मनोहर प्राणनाथों को उसी पर्यंक पर शयन किये हुये ध्यान करती हुई वे अर्द्धरात्रिका शेष एक पहरका समय भी, बड़ी कठिनता से व्यतीत करने लगीं ॥५॥६॥

श्रीयुगलसरकारकी उत्तम कृपापात्र, बड़भागिनी, श्रीयशध्वजनन्दिनी स्नेहपराजी एक दिन श्रीपद्मगन्धाजीके महलमें पहुँचीं ॥७॥

कृत्वाऽथ पूजनं तस्याः सादरं शुभशेमुषी । तयादिष्टेप्सितं सर्वं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ममाचार्ये ! युक्तिं वदतु भवती कामपि यया, धरापुत्री पत्या सह परिजनैर्मे तु सदनम् ।
पुनीयात्प्रेमज्ञा स्वपदरजसा सार्द्रहृदया, मनोऽभीष्टं त्वेतद्यदिह गदितं विद्धि परमम् ॥९॥

श्रीपद्मगन्धोवाच ।

साधु साधु महाभागे! विचारोऽत्यन्तसुन्दरः । कृतकृत्या हि ता यासां स्वामिन्यां निश्चला रतिः ॥१०॥
यदि नाराधिता श्यामा जगन्मोहनमोहिनी । क्षमौदार्यदयोपेता तपसा किंनु भूयसा ॥११॥
आराधिता जगन्माता मैथिली चेज्जगद्धिता । परमाह्लादिनी वत्से ! तपसा किं नु भूयसा ॥१२॥
यासां प्रीतिर्न वै तस्यां ता मृता अमृताशनाः । वञ्चिता दुष्कृतैर्नूनं दुर्भगाः पतिताः स्मृताः ॥१३॥
विद्धि योगं कुयोगं त्वं ज्ञानमज्ञानमेव च । न भवेदचला प्रीतिर्यदि तस्यां सतां गतौ ॥१४॥

वहाँ शुभ बुद्धि सम्पन्ना वे स्नेहपराजी श्रीपद्मगन्धाजीका पूजन करके उनकी आज्ञा पाकर अपना अभिलषित मनोरथ निवेदित करने लगीं ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे ममाचार्ये ! आप हमें कोई ऐसी युक्ति बतादें, जिसके द्वारा प्रेम—तत्वको जानने वाली, दया, वात्सल्यादिक दिव्य गुण रूपी अमृतसे आर्द्र, (भीगे) हृदय वाली, धरणि (भूमि) नन्दिनी, श्रीकिशोरीजी प्राणप्यारेके साथ, समस्त परिकर सहित, अपने श्रीचरणरजसे मेरे गृहको पवित्र करदें, इस समय मेरे मनका यही अभीष्ट भाव जानें, ॥९॥

हे महाभागे ! तुम्हारा विचार बहुत ही अच्छा एवं अत्यन्त सुन्दर हैं, क्योंकि जिनका अटल प्रेम श्रीकिशोरीजीमें है, वे निश्चय ही कृतकृत्य हैं ॥१०॥

अपने गुण, रूप, लीलादिकोंसे सारे जगत्को मुग्ध करने वाले प्राणप्यारेके चित्तको भी जो अपने दिव्य कारुण्य, वात्सल्य, सारल्य, सौशील्य, औदार्य, माधुर्यादि गुणोंसे मोहित करने वाली हैं, उन श्रीकिशोरीजीकी यदि प्रसन्नता प्राप्त न हो सकी, तो उस विशाल तपसे क्या लाभ ? ॥११॥ और यदि चर-अचर प्राणियोंका हित करने वाली जगज्जननी, परमाह्लादिनी श्रीकिशोरीजी ही प्रसन्न हैं, तो फिर विशाल तप करनेका प्रयोजन ही क्या ? ॥१२॥

जिनका प्रेम श्रीकिशोरीजीमें नहीं है, वे अमृतका आहार करने वाली होने पर भी, मृतक हैं तथा वे निश्चय ही अपने पाप कर्मोंके द्वारा ठगी जारही हैं, इससे वे दुर्भागिनी और पतिता समझी जाती हैं ॥१३॥ यदि सन्तोंकी गति स्वरूपा उन श्रीकिशोरीजीमें प्रेम नहीं हो रहा है तो अपने योग-साधनको कुयोग (विपरीत फल प्रदान करने वाला साधन) और प्राप्त हुए ज्ञानको निश्चय ही अज्ञान समझो, क्योंकि वास्तविक ज्ञान जब प्राप्त होता है, तब श्रीकिशोरीजी में प्रेम होना अनिवार्य हो जाता है ॥१४॥

यस्या वश्यायते प्रेष्ठोऽनन्तब्रह्माण्डनायकः । अन्येषां का गतिस्तर्हि तामृते नो भविष्यति ॥१५॥
यस्याज्ञावशवर्तिनश्च हरयः पद्मासनाः शङ्करा,मार्तण्डाः शशिनो यमा हरिहया वित्तेश्वरा वायवः ।
काला दिक्पतयोऽग्नयश्च वरुणाः शेषाः सुरा राक्षसाः, सर्वे सर्षिमहर्षयो रघुपतेर्ब्रह्माण्डवृन्देस्थिताः॥१६॥
सोऽपि प्राणधनं तु नः सुमधुरो यस्याः कृपावारिधेर्द्रष्टुं चेह कृपार्द्रदृष्टिमनिशं लोलायते सर्वदा ।
यस्या एव कृपात आर्यतनयं प्राप्ता वयं दुर्लभं, तस्या विस्मरणात्परं किमधिकं पापं हि नो गर्हितम् ॥१७॥
कृतकृत्याऽसि धन्याऽसि कृतपुण्याऽसि सन्मते । जानक्यास्त्वं कृपापात्रं सफलं तव जीवितम् ॥१८॥
भावज्ञा हृदयज्ञाऽसौ सर्वासां परमेश्वरी । प्रणिपातप्रसन्ना हि स्वामिनी नः कृपानिधिः ॥१९॥
वाञ्छितं प्राप्स्यसे नूनं सर्वथेति मतिर्मम । तस्माद्व्रज प्रणम्येदं श्रीकलायै निवेदय ॥२०॥
यथाऽसौ सम्मतिं दद्यात्कर्त्तव्यं तत्तथा त्वया । तयोररीकृतं विद्धि राजपुत्र्येति निश्चितम् ॥२१॥

अनन्त ब्रह्माण्डनायक श्रीप्राणप्रियतमजू भी जिनके अधीनसे रहते हैं, उन श्रीकिशोरीजीको छोड़कर भला हम सभीके लिये और ठिकाना ही क्या होगा ? ॥१५॥

अनन्त ब्रह्माण्डोंमें विराजमान-अनन्त विष्णु, अनन्तब्रह्मा, अनन्तशिव, अनन्तसूर्य, अनन्तचन्द्र, अनन्तयम, अनन्तइन्द्र, अनन्तकुबेर, अनन्तवायु, अनन्तकाल, अनन्तदिक्पाल, अनन्त अग्नि, अनन्तवरुण, अनन्तशेष, अनन्तदेव, अनन्तराक्षस, अनन्तऋषियों के सहित सभी महर्षिगण जिनकी आज्ञाके वशमें रहते हैं ॥१६॥ वे अत्यन्त मधुर हमारे प्राण प्यारे प्राणधन भी, जिन कृपासागरा (श्रीकिशोरी) जीकी कृपा रससे भीजी हुई दृष्टि (चितवन) का दर्शन करनेके लिये सर्वदा चञ्चलसे (लालायित) रहते हैं, जिनकी कृपासे ही हम लोगोंको ब्रह्मादिदेव-दुर्लभ श्रीप्राणप्यारेजू प्राप्त हुये हैं, उन श्रीकिशोरीजीको ही भुला देनेके समान भला हम लोगोंके लिये और क्या निन्दित पाप हो सकता है ? ॥१७॥

श्रीप्रियाप्रियतमजूके ही नाम, रूप, लीला, धामादिकोंमें अपनी मतिको स्थिर रखनेवाली हे स्नेहपराजी ! तुम निश्चय ही समस्त पुण्यों तथा समस्त श्रुति-शास्त्र विहित कर्त्तव्योंका पालन कर चुकी हो, इसीसे तुम श्रीकिशोरीजीकी कृपा पात्रा हुई हो, अत एव तुम धन्य हो, तुम्हारा जीवन सफल है ॥१८॥ सभी पर शासन करने वाली परमशक्तियों की स्वामिनी, सभी के हृदय को तथा सभीके भावोंको भलीभाँति जानने वाली हमारी श्रीस्वामिनीजू केवल प्रणाम मात्र से ही प्रसन्न हो जाती हैं अतः वे कृपा की भण्डार हैं ॥१९॥

मेरा विश्वास है कि, तुम्हारी इच्छा सब प्रकारसे पूर्ण होगी, अत एव अब तुम जाकर श्रीकिशोरीजीकी मुख्यकलास्वरूपा (श्रीचन्द्रकला) जी से अपनी उत्कण्ठा निवेदित करो ॥२०॥

श्रीचन्द्रकलाजी इस विषयमें तुम्हें जैसी सम्मति प्रदान करें, वैसाही करना, उनकी स्वीकृति को तुम निश्चय ही श्रीकिशोरीजी की स्वीकृति जानना ॥२१॥

इति एकादशोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

श्री चन्द्रकलाजी द्वारा आश्वासनप्राप्ता स्नेहपरा सखीका श्रीकिशोरीजीकी कृपा के प्रति आत्मविश्वास वर्णन ।

श्रीशिव उवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सुचित्रानन्दवर्द्धिनी । प्रागाच्चन्द्रकलावेश्म प्रसन्नमुखपङ्कजा ॥१॥
सम्मानिता तया प्रीत्या पृष्टा सा नतमस्तका । प्रणम्य करुणारूपामिदमूचे कृताञ्जलिः ॥२॥
कारुण्यामृतवारिधे! रसनिधे! रासप्रिये! सद्गते! ,श्रीमच्चन्द्रकले! प्रसीद! कृपया! मय्यात्मकामप्रदे!।
रासोल्लासविवर्द्धिनि! प्रियरते! संयोगदे! प्रेयसोरानन्दैकनिधे! त्वदंघ्रियुगलं सन्नौमि यूथेश्वरि! ।३॥
आर्ये त्वामिदमर्थयेऽद्य शुभदां सङ्कल्पसिद्धिप्रदां, त्वं सम्प्रार्थय दम्पती मृदुगिरा गन्तुं मदीयालयम् ।
अस्त्येवं हि मनोरथो रसनिधे! संदुर्लभः सर्वदे! ,तत्पूर्त्तिः खलु वर्तते तव करे स्यान्नान्यथेति ध्रुवम् ।४।

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

ईदृशीं त्वं मतिं प्राप्ता कुतः परम दुर्लभाम् । न त्वद्भुतं भवेदत्र तयोरुच्छिष्टसेवनात् ॥५॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः–हे प्रिये! श्रीपद्मगन्धाजीके वचन सुन कर श्रीसुचित्रा अम्बाजी के हृदयके आनन्दको बढ़ाने वाली, स्नेहपराजीका मुख कमल प्रसन्न हो गया, वह (उनकी आज्ञाके अनुसार) श्रीचन्द्रकलाजीके महलमें पहुँची ॥१॥

श्रीचन्द्रकलाजीसे सम्मानित होकर प्रेमपूर्वक उनके पूछने पर स्नेहपराजीने सिर झुकाकर प्रणाम किया पुनः हाथ जोड़कर वे करुणास्वरूपा श्रीचन्द्रकलाजी से बोलीं ॥२॥

हे रासका उल्लास (भगवदानन्द) बढ़ाने वाली ! हे प्रियरते ! हे श्रीप्रियाप्रियतमजूका संयोग प्रदान करने वाली ! हे आनन्दकी सर्वोत्तम निधे हे समस्त यूथेश्वरियोंकी स्वामिनीजू ! मैं आपके दोनों श्रीचरण-कमलोंको सम्यक् प्रकार (मन, वाणी, शरीर) से प्रणाम करती हूँ । हे करुणारूपी अमृतकी सागरे! हे रसनिधे! हे सद्गते ! (श्रीयुगलसरकारको ही अपना सर्वस्व मानने वाली) हे रासमें (प्रभु उपासकोंके प्रति) विशेष प्रेम रखने वाली! हे मनोगत कामनाओंको पूरा करने वाली ! श्रीचन्द्रकलेजू ! आप मुझपर प्रसन्न हों ॥३॥

हे श्रीरसनिधे जू ! हे आश्रितोंके सङ्कल्पकी सिद्धि प्रदान करने वाली ! हे समस्त मङ्गलों को देने वाली ! आपसे आज मैं यह प्रार्थना कर रही हूँ कि, आप अपनी कोमल वाणी द्वारा श्रीप्रियाप्रियतमजूसे मेरे महल पधारनेके लिये प्रार्थना कर दीजिये, हे आश्रितोंको सब कुछ मनोवान्छित प्रदान करने वाली ! हे चन्द्रकला जू ! मेरा मनोरथ तो सब प्रकारसे दुर्लभ ही है, उसकी पूर्ति बस आपके ही करकमलमें है, बिना आपकी कृपाके (अन्य किसी साधनोंसे) वह पूर्ण नहीं हो सकता, ऐसा निश्चय है ॥४॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:– हे स्नेहपरे ! ऐसी परम दुर्लभा बुद्धि तुम्हें कहाँ से मिली ? किन्तु श्रीयुगलसरकारके प्रसाद सेवन से उस की प्राप्ति में कोई विशेष आश्चर्य की बात भी नहीं है ॥५॥

साध्वभीष्टं च ते वत्से! श्रुत्वाऽहं हर्षनिर्भरा । वरं ददाम्यतस्तुभ्यं सफलोऽस्तु मनोरथः ॥६॥
भोजनाख्यं मया सार्द्धं कुञ्जमभ्येत्य तत्र वै । अशनान्ते त्वया ताभ्यां निवेद्यं काङ्क्षितं स्वकम् ॥७॥
तावुभौ साधु सत्कर्तुं प्रबन्धः क्रियतां शुभे! श्वः परश्वोऽथवा प्रेष्ठौ नेतव्यावात्ममन्दिरे ॥८॥
सालियूथसहस्राणामनुगानां तयोरपि । सत्काराय त्वया कार्यः प्रबन्धो भद्रमस्तु ते ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

परमाचार्ययाऽऽज्ञप्ता स्वकुञ्जमगमत्तदा । अब्रवीत्स्वाः सखीः सर्वाः समाहूय कृताञ्जलीः ॥१०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

याहि चित्तवति! क्षिप्रं सूक्ष्मबुद्धे! मनस्विनि! यथा चन्द्रकला प्राह क्रियतामविलम्बितम् ॥११॥
अहं तत्रैव गच्छामि यत्र स्तो नित्यदम्पती । रसमाधुर्यसौन्दर्यक्षमाकारुण्यवारिधी ॥१२॥

सख्य ऊचुः ।

कृतं यथोक्तमस्माभिर्द्रष्टुमर्हसि शोभने! देशिकाभ्यां तथा सर्वं प्रबन्धं दर्शयाधुना ॥१३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

साधु साधु प्रपश्यामि दर्शयिष्यामि साम्प्रतम् । देशिकाभ्यां प्रमोदध्वं प्रबन्धं भद्रमस्तु वः ॥१४॥
इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं पद्मगन्धालयं शुभम् । नमस्कृत्याञ्जलिं बद्ध्वा तामुवाच शुचिस्मिताम् ॥१५॥

हे वत्से ! तुम्हारा अभीष्ट बहुत सुन्दर है, उसे सुनकर मैं हर्षसे परिपूर्ण हो बरदान देती हूँ "तुम्हारा मनोरथ सफल हो" ॥६॥ मेरे साथ भोजन कुञ्ज चलकर वहाँ भोजनके पश्चात् श्रीप्रियाप्रियतमजूसे अपना इच्छित निवेदित करना ॥७॥

हे शुभे ! सबसे पहले आप श्रीप्रियाप्रियतमजूके सत्कारका उचित प्रबन्ध कर लो, तदनन्तर चाहे कल अथवा परसों, उन्हें अपने महल ले जाना, यही उचित होगा ॥८॥

तुम्हारा कल्याण हो ! हजारों सखी यूथोंके सहित श्रीयुगल सरकारके सभी अनुचर-अनुचरियोंके सत्कारका भी प्रबन्ध तुम्हें कर लेना चाहिये ॥९॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! परमाचार्या (श्रीचन्द्रकलाजी) की आज्ञा पाकर स्नेहपराजी अपनी कुञ्ज पधारीं, वहाँ सखियोंको बुला कर, उन्हें हाथ जोड़े हुये अपने सामने खड़ी देखकर वे उनसे बोलीं ॥१०॥ मैं उसी महलको जा रही हूँ जहाँपर रस, माधुर्य, सौन्दर्य, क्षमा, कारुण्य (दया) आदिके समुद्र नित्यदम्पती श्रीप्रियाप्रियतमजू विराज रहे हैं ॥१२॥

श्रीस्नेहपराजीकी सखियाँ बोलीं :– हे शोभनेजू ! आपकी आज्ञानुसार सब प्रबन्ध हो गया है, उसे आप अवलोलन कर लें, पुनः उन दोनों श्रीआचार्याजी को भी दिखला दें ॥१३॥

सखियोंकी प्रार्थना सुनकर श्रीस्नेहपराजी बोलीं–सखियों ! बहुत अच्छा आप लोगोंका कल्याण हो । श्रीप्रियाप्रियतमजूके सत्कारार्थ किये हुये प्रबन्धको मैं अभी देखती हूँ तथा श्रीपद्मगन्धाजी और श्रीचन्द्रकलाजीको भी दिखलाऊँगी, प्रसन्न रहो ॥१४॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजी सखियोंसे इसप्रकार कहकर तुरन्त श्रीपद्मगन्धाजीके मङ्गलमय महलको गयीं, और नमस्कार करके हाथ जोड़कर बोलीं ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अहं पूज्ये! त्वयाऽऽज्ञप्ता प्रागां चन्द्रकलां प्रति । यथाऽऽदेशस्तया दत्तो विधायैवाहमागता ॥१६॥
इतो मया नु किं कार्यं तन्मे ब्रूहि कृपानिधे! रसाधिपे रसागारे! रसमूर्ते! नमोऽस्तु ते ॥१७॥

श्रीपद्मगन्धोवाच ।

गच्छ सौम्ये! मया साकं तामेवेन्दुकलामरम् । प्रणिपत्याञ्जलिं बद्ध्वा तस्यै सर्वं निवेदय ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आज्ञाप्रमाणमेवार्ये ! गच्छाव त्वरितं शुभे ! तस्याः सुरम्यमागारं द्रष्टुं तां त्वरते मनः ॥१९॥

श्रीशिव उवाच ।

दृष्ट्वा त्वरां तु सा तस्याः पद्मगन्धा मुदान्विता । वायुवेगं समारुह्य विमानमगमत्तदा ॥२०॥
द्वारि त्यक्त्वा विमानं सा तया तद्धर्म्यमाविशत् । तत्पदाम्भोरुहे भक्त्या ववन्दाते उभे च ते ॥२१॥
आशीर्वादमसौ दत्त्वा तदा प्रोवाच सादरम् । ब्रूतं विवक्षितं यच्च मयादिष्टे परिस्फुटम् ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्ता मधुरं प्रेम्णा पद्मगन्धेङ्गिता मुदा । गृहीताङ्घ्रिस्तु सोवाच प्रेमगद्गदया गिरा ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

नमश्चन्द्रकले ! तुभ्यं दम्पत्योः प्रीतियोगदे ! । चन्द्रभानुसुते ! ज्येष्ठे ! प्रधानालिगणेश्वरि! ॥२४।

हे पूज्ये ! मैं आपकी आज्ञानुसार श्रीचन्द्रकलाजीके पास गयी थी, उन्होंने जो आज्ञा दी, पूरी करके आपके पास आई हूँ ॥१६॥

हे रसाधिपे ! हे रसमन्दिरे ! हे रसमूर्त्ते ! हे श्रीकृपानिधेजू ! आपको नमस्कार है अब मुझे क्या करना उचित है ? आज्ञा करें ॥१७॥ श्रीपद्मगन्धाजी बोलीं—हे सौम्ये ! मेरे साथ तुम शीघ्र श्रीचन्द्रकलाजीके पास चलो, और उन्हें प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर, सम्पादित सब कृत्योंको निवेदन करो ॥१८॥ श्रीपद्मगन्धाजीकी आज्ञा सुनकर श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे शुभे ! हे आर्ये ! मेरे लिये तो आपकी आज्ञा ही प्रमाण है, अतः अब यहाँ से श्रीचन्द्रकलाजीके सुन्दर महलको शीघ्र प्रस्थान करें, क्योंकि उनके दर्शनोंके लिये मन शीघ्रता कर रहा है ॥१९॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीकी आतुरता देखकर श्रीपद्मगन्धाजीने बहुत प्रसन्नता पूर्वक वायुवेग नामके विमानमें विराजमान होकर प्रस्थान किया ॥२०॥

श्रीचन्द्रकलाजीके महलके द्वारपर विमानको छोड़कर श्रीपद्मगन्धाजीने श्रीस्नेहपराजीके सहित उनके महलमें प्रवेश करके श्रीचन्द्रकलाजीके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम किया ॥२१॥

श्रीचन्द्रकलाजी आशीर्वाद देकर बड़े आदरके साथ बोलीं—तुम्हें जो कहना अभीष्ट हो, मेरी आज्ञा से, स्पष्ट रूपमें कहो ॥२२॥ इस प्रकार प्रेमपूर्वक श्रीचन्द्रकलाजीकी आज्ञा तथा श्रीपद्मगन्धाजीका सङ्केत पाकर श्रीस्नेहपराजी उनके श्रीचरणकमलोंको पकड़े हुये अपनी गद्गद वाणी द्वारा बोलीं ॥२३॥ हे श्रीचन्द्रभानु पुत्रि ! हे ज्येष्ठे ! हे प्रधानसखीसमाजकी स्वामिनी! हे श्रीप्रियाप्रियतम (श्रीसीतारामजू) का प्रीतिरूप योग प्रदान करने वाली! श्रीचन्द्र-कलेजू! मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥२४॥

कृत्वा कृत्यं यथाऽऽदिष्टं भवत्या पूर्वमग्रजे ! । आगताऽहं त्वदभ्याशे तन्निवेदयितुं च ते ॥२५॥
द्रष्टुमर्हसि तत्सर्वं स्वयमेव कृपानिधे ! श्रीपद्मगन्धया सार्द्धं प्रयाय भवनं मम ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

सा निशम्य प्रहृष्टात्मा तया श्रीपद्मगन्धया । विमानं वरमारुह्य तस्या भवनमभ्यगात् ॥२७॥
नीत्वा पूज्ये हि ते कुञ्जे स्वकीये मणिनिर्मिते । यथावत्पूजनं कृत्वा ताभ्यां सर्वं प्रदर्शितम् ।२८॥
दृष्ट्वा ते ययतुर्मोदं प्रसन्ने भद्रमूचतुः । प्राप्स्यसि स्वेप्सितं शीघ्रमित्युक्त्वा गन्तुमुद्यते ॥२९॥
ताभ्यां सार्द्धं ततो गत्वा मैथिलीराममन्दिरम् । अभवत्तत्परा चासौ सेवायां प्रेयसोस्तयोः ॥३०॥
गोपयन्ती मनोहर्षं जातं जातं नवं नवम् । सा तु युग्मेक्षणानन्दा जगादेदं निजं मनः ॥३१॥
मद्गृहं यास्यतोऽद्यैतौ श्रीनिकुञ्जविहारिणौ । कृतकृत्या भविष्यामि मत्समा नापरा भवेत् ॥३२॥
इति संस्मृत्य संस्मृत्य मुह्यन्ती हर्षवेगतः । श्रीपद्मगन्धयाऽऽश्वस्ता लब्धसञ्ज्ञा प्रहृष्यति ॥३३॥
अथासौ कुञ्जमासाद्य भोजनाख्यं मनोहरम् । बहुधा चिन्तयामास मज्जन्ती हर्षवारिधौ ॥३४॥

श्रीयुगल सरकारका सत्कार करनेके लिये आपने जो आज्ञा दी थी, उसीकी पूर्त्तिका समाचार निवेदन करने मैं आई हूँ ॥२५॥ हे श्री कृपानिधेजू ! श्री पद्मगन्धाजी के सहित आप स्वयं मेरे महल पधार कर उस प्रबन्ध को देखने की कृपा करें ॥२६॥

भगवान् शङ्करजी बोलें—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीकी प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न हृदय होती हुई, श्रीचन्द्रकलाजी श्रीपद्मगन्धाजीके साथ श्रेष्ठ विमानमें विराजमान होकर उनके भवनको पधारीं ॥२७॥ श्रीस्नेहपराजीने अपने मणि-निर्मित महलमें दोनों पूजनीया बहनोंको लेजाकर, विधिपूर्वक उनका सत्कार करके, श्रीयुगल सरकारके सत्कार के निमित्त अपनी सखियोंके द्वारा किये हुये उन्हें सारे प्रबन्धोंको दिखलाने लगीं ॥२८॥

दोनों उस प्रबन्धको देखकर सुखी और प्रसन्न होकर बोलीं—तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा मनोरथ शीघ्र सफल होगा, इतना कहकर वे चलनेको उद्यत हो गयीं ॥२९॥

श्रीस्नेहपराजी उन दोनों बहनोंके साथ, श्रीसीतारामजीके महल जाकर उनकी सेवामें लग गयीं ॥३०॥ श्रीयुगलसरकारके ही दर्शनोंमें आनन्द मानने वाली श्रीस्नेहपराजी, हृदय में उत्पन्न होने वाले नये-नये हर्षको छिपाती हुई अपने मनसे बोलीं ॥३१॥

आज ये श्रीनिकुञ्जविहारिणी विहारीजी मेरे महल पधारेंगे, अत एव आज मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगी, आज मेरे भाग्यकी समता करने वाली कोई और न होगी ॥३२॥

इस प्रकार उस सुखको सम्यक् प्रकार बारंबार स्मरण करके हर्षके वेगसे मूर्च्छित होतीं पुनः श्रीपद्मगन्धाजीके द्वारा आश्वासन पाकर सावधान हो वे अत्यन्त हर्षको प्राप्त हो जाती थीं ॥३३॥ इसके बाद वे (श्रीस्नेहपराजी) श्रीयुगलसरकारके मनोहर भोजन कुञ्जमें पहुँचकर हर्ष सागरमें डूबती हुई, बहुत प्रकारका चिन्तन करने लगीं ॥३४॥

कच्चिन्ममालयं नूनं यास्यतो दीनवत्सलौ । कच्चित्स्वपादरजसा मद्गृहं पावयिष्यतः ॥३५॥
कच्चिन्मयाऽर्पितं दिव्यमासनं स्वीकरिष्यतः । कच्चिन्मनोरथं प्राणवल्लभौ पूरयिष्यतः ॥३६॥
यद्यपि सर्वथा हीना पतिताऽज्ञाऽस्मि वालिका । करिष्यतः कृपां नूनं तथापि श्रीप्रियाप्रियौ ॥३७॥
नेयमद्यापि भावज्ञा स्वामिनी मम कर्हिचित् । ममाप्रियं कृतवती क्षमासारा कृपानिधिः ॥३८॥
अनया पालितैवाहं लालिताऽस्मि सुता यथा।अस्याः कराङ्गुलीं श्रित्वा कालान्नापि विभेम्यहम्३९
इयं सर्वांशिनी प्रोक्ता सर्वज्ञा नारदादिभिः । सर्वेश्वरी जगन्माता करुणासिन्धुरूपिणी ॥४०॥
परीक्षितेयमस्माभिर्नस्तुत्यैव हि बुध्यते । निःसंशयं ममाभीष्टं सफलं सा करिष्यति ॥४१॥

क्या दीनवत्सल श्रीयुगल प्रभु निश्चयही मेरे महलमें पधारेंगे ? क्या वे अपने श्रीचरण कमलोंकी धूलिसे, मेरे महलको निश्चयही पवित्र करेंगे ? ॥३५॥

क्या मेरे द्वारा अर्पण किये हुये दिव्य आसनको, श्रीयुगलसरकार स्वीकार करेंगे ? क्या प्राणोंके समान प्यारे वे श्रीयुगल सरकार मेरे मनोरथको निश्चय ही पूर्ण करेंगे ? ॥३६॥

यद्यपि मैं सब प्रकारके साधनोंसे हीन हूँ, पतित हूँ, मूर्खा हूँ, बालिका हूँ तथापि मेरे ऊपर श्रीप्रियाप्रियतमजू कृपा तो, करेंगे ही ॥३७॥

सभीके हृदयस्थित भावको जानने वाली, क्षमाकी सारस्वरूपा, कृपाकी मन्दिर इन श्रीस्वामिनीजीने कभी भी आजतक मेरी अप्रसन्नता का कोई व्यवहार किया ही नहीं है ॥३८॥

इन्हीं श्रीकिशोरीजीने पुत्रीके समान मेरा लालन-पालन किया है, अपनी इन श्रीस्वामिनी-जूके हाथकी अङ्गुलीका सहारा पा जाने पर, मैं कालसे भी नहीं डरती ॥३९॥

हमारी इन श्रीस्वामिनीजीको श्रीनारदजी आदि सभी ऋषियोंने सभीकी मूलकारण-स्वरूपा, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंकी सभी परिस्थितियोंकोजानने वाली, समस्त छोटेसे छोटों और बड़े से बड़ोंकी स्वामिनी, चर-अचरकी माता, एवं करुणासागर स्वरूपा कहा है ॥४०॥

श्रीकिशोरीजी उपर्युक्त सभी दिव्य गुण सम्पन्ना हैं, ऐसा हम लोगोंने परीक्षा करके भी देख लिया है, केवल उन लोगों द्वारा की हुई स्तुतिमात्रसे ही नहीं समझ रही हूँ, इसलिये वे मेरे अभीष्टको अवश्यही पूरा करेंगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥४१॥

इति द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

स्नेहपरा सखीका स्तुतिपूर्वक श्रीयुगलसरकारके प्रति स्वाभीष्ट निवेदन ।

श्रीशिव उवाच ।

इति निश्चिन्वती बुद्धया दम्पत्योः करुणैषिणी । सेवायां तत्परा जाता वीक्षमाणा तयोश्छबिम् ॥१॥
भोजनान्ते ततस्तत्र सुखासनविराजितौ । नीराजितौ विशालाक्षौ शरच्चन्द्रनिभाननौ ॥२॥
दृष्ट्वा विद्युद्घनाभौ तौ कोटिराकेशशोभनौ । प्रणम्य बहुशः प्रेष्ठौ तदा स्तोतुं प्रचक्रमे ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

जयाष्टमीन्दुमस्तके ! शरत्सुधाकराननेे ! मुखप्रभाजितेन्दुक ! प्रियस्मितान्वहं जय ॥
वसुन्धराधवात्मजे ! वसुन्धरासमुद्भवे ! वसुन्धरेश्वरात्मज ! प्रियासुनाथ ! मे जय ॥४॥
कृपाप्रपूर्णवीक्षणे ! ऽद्वितीयदिव्यलक्षणे ! विभूषिपद्महस्तके ! जयाम्बुजातलोचने ! ।
स्वभावमोहनेक्षण ! प्रकृष्टदिव्यलक्षण ! जयारविन्दलोचनामृतांशमोहनानन ! ॥५॥

श्रीप्रियाप्रियतमजूकी कृपा-कांक्षिणी वे श्रीस्नेहपराजी अपनी बुद्धिके द्वारा ऐसा निश्चय करके, श्रीयुगलछबिको अवलोकन करती हुई सेवामें लग गयीं ॥१॥

उस कुञ्जमें भोजनके पश्चात्, आरती हो जाने पर विशाललोचन, शरत्ऋतुके चन्द्रमा सदृश श्रीमुखारविन्द वाले दोनों (युगल) सरकार सुखासन से विराजमान हुये ॥२॥

बिजली और मेघके समान गौर श्याम वर्ण, करोड़ों शरत्ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्र सदृश शोभायमान, उन श्रीप्रियाप्रियतमजीका दर्शन करके तथा बहुत वार प्रणाम करके श्रीस्नेहपराजी स्तुति करने लगी ॥३॥ अष्टमीके चन्द्र समान मस्तक वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो ! शरद्ऋतुके चन्द्रमाके तुल्य अत्यन्त आह्लाद प्रदायक, प्रकाशयुक्त श्रीमुख-कमल वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो। अपने श्रीमुखकी छटासे चन्द्रमण्डलको निन्दित करने वाले ! प्यारे ! आपकी जय हो। प्रिय मुस्कान युक्त हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो। हे श्रीपृथ्वीपतिनन्दिनीजू! हे पृथ्वी से प्रकट होने वाली श्रीस्वामिनीजू! हे भूपतिकिशोर प्राणनाथ-श्रीप्यारेजू! आप दोनों श्रीयुगलसरकारकी सदा ही जय हो ॥४॥

हे कृपा से परिपूर्ण चितवन वाली ! हे दिव्य लक्षण युक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ ! हे दिव्य विभूषणों से विभूषित कमलवत कोमल हस्तवाली श्रीस्वामिनी जू ! आपकी जय हो। स्वभाव से ही सभी को मुग्ध करने वाली चितवन वाले ! हे उत्तमोत्तम दैवी लक्षणों से सम्पन्न, कमलदल के समान अरुण कोरयुक्त नेत्रवाले श्रीप्राणप्यारे जू ! आपकी जय हो ॥५॥

जितच्छबिस्मरप्रिये ! समस्तआर्दवाश्रये ! ललल्ललाटचन्द्रिके ! सुकुण्डले ! ललन्तिके !।
द्युमत्किरीटकुण्डलालकाञ्चितास्य मण्डल ! मनोजमोहनाकृते ! नमोऽस्तुवां जगत्पते ! ॥६॥
प्रसूनगुम्फिकुन्तले ! सुदामशोभिहृत्स्थले ! जयासमग्रभूषण ! स्वभाववीतदूषण !।
मनोहराब्जहस्तके ! जयातिकोमलाङ्घ्रिके ! जयारविन्दहस्तकाश्रितामरद्रुमाङ्घ्रिक ॥७॥
तडिन्निकाय सद्द्युते ! नवीनवारिदाकृते ! रसाकृते ! रसाम्बुधे ! रसानुरक्तिवारिधे।
अशेषसद्गुणाञ्चिते ! सुखाम्बुधे ! महामते ! युवां जगत्परप्रभू ! प्रियौ जयेतमीप्सितौ ॥८॥

युवामशेषदेहिनां सदात्मनोऽधिकप्रियौ ।
युवां जगद्दृगुत्सवावशेषमोहनाकृती ।
युवामतुल्यसौभगौ रसाम्बुधी क्षमाम्बुधी ।
युवां जयेतमन्वहं सकृन्नतिप्रसादितौ ॥९॥

अपनी अप्राकृतच्छवि से रतिको जीतने वाली, समस्त कोमलता की आधारभूता ललाटपर चमकती हुई सुन्दर चन्द्रिका कानोंमें सुन्दर कुण्डल, गले में मुक्तामणिमयी कण्ठी वाली हे श्रीकिशोरीजी ! तथा प्रकाश युक्त किरीट कुण्डलधारी, घुंघुराले केशों से सुशोभित मुखमण्डल वाले, हे जगतपति श्रीप्राणप्यारे जू ! आप दोनों सरकार को नमस्कार है ॥६॥

हे फूलोंसे गुथे हुये केशवाली! हे सुन्दरमालाओंसे सुशोभित हृदय प्रदेशवाली श्रीस्वामिनीजू! हे अल्प भूषणधारण किये हुये ! स्वाभावसे ही सब प्रकारके दोषोंसे रहित श्रीप्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो । हे मनोहर कमलके समान सुकोमल हाथवाली ! हे अत्यन्त कोमल श्रीचरण कमलवाली ! श्रीस्वामिनीजी ! आपकी जय हो । हे अरुण कमलके समान हाथ वाले ! हे आश्रितोंके लिये कल्पवृक्षके सदृश श्रीचरणवाले प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥७॥

बिजली-समूहके समान सदा एक रस स्थायी गौर कान्तिवाली श्रीस्वामिनीजू ! हे नवीन मेघके समान श्याम शरीर वाले ! श्रीप्यारेजू ! हे रसस्वरूपे ! हे रससागरे श्रीस्वामिनीजू ! हे वात्सल्य शृङ्गारादि सभी रसोंके तथा प्रेमके सागर श्रीप्रियतमजू ! हे समस्त सदगुण विभूषिते ! हे सुखसागरे श्रीस्वामिनीजू ! हे महा (अनन्त, अखण्ड, असीम, अतर्क्य) मतिवाले प्राणप्यारेजू ! हे जगत्के सर्वोपरि स्वामी सभीके कामनास्पद श्रीप्रिया प्रियतमजू ! आप दोनों सरकार की सदा ही जय हो ॥८॥ आप दोनों सरकार, समस्त प्राणियोंको सदा अपनी आत्मासे भी अधिक प्यारे, स्थावर-जङ्गम (चर-अचर) प्राणियोंके नेत्रोंको उत्सवके समान आनन्द प्रदान करने वाले, अपने स्वरूपसे सभीको मुग्ध करने में समर्थ. किसीसे भी तुलना न करने योग्य सौन्दर्य रसके समुद्र तथा क्षमाके सागर केवल प्रणाममात्रसे प्रसन्नताको प्राप्त हो जाने वाले हैं, अतः आप दोनोंकी सदा ही जय हो ॥९॥

युवां निमीनवंशजौ शतेनविघ्वधिद्युती युवां मनोहरस्मितौ सुवीक्षणौ सुभाषितौ ।
युवां कुलाभिभूषकौ जगच्छिरोमहामणी युवां जयेतमन्वहं महाकृपामृतोदधी ॥१०॥
युवामनाथवत्सलौ प्रधानवाञ्छितप्रदौ युवां हि नः परागतिः समस्तभावपूरकौ ।
युवां हि नः परं धनं तपः फलं च मङ्गलं युवां जयेतमन्वहं प्रियाप्रियौ! निरामयौ ॥११॥
इमं श्रुत्वा स्तवं दिव्यं सरसं प्रेमतोषितौ । च्युतां पदाब्जयोर्दीनां परिष्वज्येदमूचतुः ॥१२॥
किं त्वया काङ्क्षितं भद्रे! सम्यक्कथय मा शुचः । संकोचोऽस्ति वृथा सर्वं न चिरादेव लप्स्यसे ॥१३॥

श्रीदम्पती ऊचतुः ।

एवमाश्वासिता ताभ्यां स्वधर्ममनुचिन्त्य सा । भक्त्या करपुटं बध्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥१४॥
श्रीचन्द्रकलया साक्षात्तथा श्रीपद्मगन्धया । नोदिता नतदृष्टिश्च प्रेममग्नेदमब्रवीत् ॥१५॥
कृतार्थाऽहं कृतार्थाऽहं कृतार्थाऽहं न संशयः । यदि प्रीतौ मयि प्रेष्ठौ वरं दातुं समुद्यतौ ॥१६॥

आप दोनों सरकार निमि और सूर्य वंशमें प्रकट हुये हैं, आपकी कान्ति सैकड़ों सूर्य व चन्द्रसे बढ़कर है, आप दोनोंकी मुस्कान बड़ी मनोहारी, चितवन व वाणी सभीका मङ्गल करने वाली है, आप दोनों सरकार अपने अपनाये हुये कुलों को सुशोभित करने वाले, सारे विश्वके सिर (दिव्य धामों) की महा (असीम) मणिके समान सदा एक रस प्रकाशित रखने वाले हैं, जीवोंको भगवदानन्द प्रदान करनेकी इच्छायुक्त,-निर्हेतुकी-कृपामृतके सागर, प्राणप्यारे श्रीयुगल सरकारजू ! अतः आप दोनोंकी सदा ही जय हो ॥१०॥

हे सकल बिकार रहित श्री प्रियाप्रियतम जू! आप दोनों सरकार अनाथ अर्थात् (अ=परमात्मा नाथ–स्वामी) श्रीयुगल सरकार को ही अपना एक स्वामी माननेवाले सभी प्राणियों के अवगुणोंको न देखकर अगाध वात्सल्यवश केवल हित करने वाले मनचाहे वरदाताओं में मुख्य भक्तों के समस्त भावों को पूरा करने वाले, हम आश्रितों के परमरक्षक, तपस्या के, मङ्गल स्वरूप, हमारे सर्वोपरि धन भी आप ही श्रीयुगल सरकार हैं, अतः आप दोनों सरकार की सदा ही जय हो ॥११॥ भगवान् शङ्करजो बोले–हे प्रिये ! इस अनुराग युक्त दिव्य स्तुतिको सुनकर प्रेमसे प्रसन्न हो, श्रीयुगल सरकारजी दीन भावसे अपने श्रीचरणों में पड़ी हुई श्रीस्नेहपराजीको हृदयसे लगाकर बोले ॥१२॥ हे कल्याणि ! तुम क्या चाहती हो ? पूर्णरूपसे कहो, व्यर्थ सङ्कोच एवं चिन्ता मत करो जो चाहती हो शीघ्र मिलेगा ॥१३॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीयुगलप्रभुकी ओरसे आश्वासन पाकर श्रीस्नेहपराजी भलीभांति आज्ञा पालन रूपी अपने कर्त्तव्य का विचार करके श्रीयुगल सरकार को बारंबार प्रणाम करके श्रीचन्द्रकलाजी तथा श्रीपद्मगन्धाजी का सङ्केत पाकर हाथ जोड़े हुई, दृष्टि नीचे की ओर रखकर प्रेम में मग्न हो बोलीं ॥१४॥१५॥

हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! यदि आप मुझपर प्रसन्न होकर वर देनेको उद्यत हैं तो, मैं तीनों काल, तीनों लोक में कृतार्थ हूँ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥१६॥

यौ कोटिभुवनाधीशौ सच्चिदानन्दविग्रहौ । तौ युवां हि मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥१७॥
यौ च भूमण्डलाधारौ वेदैर्नेतीति कीर्त्तितौ । तौ युवां स्थो मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम॥१८॥
ययोरंशांशकलया सम्भूतं सचराचरम् । तौ युवां स्थो मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥१९॥
ययो रमाशिवाधात्र्यो न गच्छन्ति प्रसन्नताम् । तौ युवां स्थो मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम॥२०॥
यावदृश्यौ सुसिद्धानां मनोवाग्धीभिरप्यजौ । तौ युवां हि मयि प्रीतौ सफलोऽर्थो न को मम ॥२१॥
श्रीकिशोरि ! दयागारे ! प्राणनाथ ! दयानिधे ! किं न लब्धं मया सर्वं युवयोः प्रीतयोर्ननु ॥२२॥
वाञ्छितं मनसा यन्मे युवाभ्यां ज्ञातमेव तत् । तथाऽऽप्याज्ञां पुरस्कृत्य प्रवक्ष्ये रसवारिधी ॥२३॥

गत्वा मदीयभवनं करुणार्द्रनेत्रौ पादारविन्दरजसा कुरुतं पवित्रम् ।
कामं त्विदं ह्यसुलभं मनसेप्सितं मे ऽन्येषां किशोरि! रघुराज! तथापि देयम् ॥२४॥

जो करोड़ों भुवनोंके चक्रवर्ती (बादशाह) हैं, जिनका मङ्गलमयविग्रह सदा एकरस रहने वाला, चैतन्यस्वरूप, आनन्द मय हैं, वे दोनों सरकार ही जब आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, मेरा कौन सा अर्थ पूरा होनेको अब शेष रह गया ? ॥१७॥

जो सारे भूमण्डलके आधार भूत हैं, वेद भगवान् जिन्हें "न इति न इति अर्थात् हमने जैसा निरूपण किया है, प्रभु ऐसे ही नहीं हैं, अपितु उससे भी विलक्षण हैं, उस से भी विलक्षण हैं" ऐसा कहते हैं, वे (आप दोनों सरकार ही) जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, फिर अब मेरा कौन सा अर्थ पूरा होने को शेष रह गया?॥१८॥ जिनके अंश महाविष्णु, उनके अंश भगवान् विष्णु, उनके कलास्वरूप श्रीब्रह्माजी, और उन के द्वारा चर-अचर प्राणिमय यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है, वे ही (आप श्रीयुगल सरकार) जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो, फिर अब कौन सा मेरा अर्थ सफल नहीं है ? ॥१९॥ श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीब्रह्माणीजी भी जिनको प्रसन्न नहीं कर पातीं, वे ही (आप दोनों सरकार) जब मेरेपर प्रसन्न हैं तो फिर मेरा अब कौनसा अर्थ सफल नहीं है ? ॥२०॥ जो पूर्णसिद्धोंके भी मन, वाणी, बुद्धिके विषय नहीं होते, वे आप दोनों सरकार ही जब मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो फिर मेरा कौनसा अर्थ अब पूरा होने को शेष रह गया ? ॥२१॥ हे दया-मन्दिर श्रीकिशोरीजू ! हे दयाके निधि श्रीप्राणनाथजू ! आप दोनों सरकारके प्रसन्न होनेपर, आज मैंने क्या नहीं पाया ? अर्थात् सब कुछ पा लिया ॥२२॥

हे रससागर श्रीप्रियाप्रियतमजू ! जो मेरा मन चाहता है वह आपको ज्ञात ही है, तथापि आपकी आज्ञाको प्रधान मानकर उसे निवेदन करती हूँ ॥२३॥

हे करुणासे आर्द्र लोचन, श्रीयुगलसरकार ! मेरे भवन पधारकर अपने श्रीचरण कमलकी धूलिसे उसे पवित्र करनेकी कृपा कीजिये । हे श्रीकिशोरीजी ! हे रघुराज श्रीप्राणप्यारेजू ! यद्यपि यह मेरा मनोरथ निःसन्देह अन्य प्राणियोंके लिये पूर्ण होना दुर्लभ है, तथापि मुझ दासी के लिये इस ईप्सित को प्रदान करना ही उचित है ॥२४॥

मन्ये मनोरथमिमं सुदुरापमेव ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि किं मनुष्यैः ।
जातौ यया करुणया निमिसूर्यवंशे लभ्यस्तयैव किल चात्र न संशयो मे ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

इति वरमभिकाङ्क्षितं निवेद्य प्रणयत आत्मवती प्रियाप्रियाभ्याम् ।
अतितरमृदुपादपङ्कजेषु व्यलुठदतीवसुभक्तियोगनम्रा ॥२६॥

मैं मानती हूँ कि मेरा यह मनोरथ ब्रह्मादि-देव-श्रेष्ठोंके लिये भी विशेष दुर्लभ है, मनुष्यके लिये तो बातही क्या ? परन्तु हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आपकी हो जिस निर्हेतुकी करुणाने आप दोनों सरकार को ही जिस निमि और सूर्य वंश में प्रकट कर दिया है, वही आपकी करुणा मेरे इस दुर्लभ मनोरथको भी सुलभ करेगी, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२५॥

भगवान शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! इस प्रकार विनय पूर्वक श्रीप्रियाप्रियतमजूसे अपने अभिलषित (चाहे हुये) वरको निवेदन करके, आत्मवती (श्रीयुगलसरकारको अपने हृदयमें स्थित कर चुकने वाली श्रीस्नेहपराजी) प्रणयपूर्वक दोनों सरकारके अतिशय सुकोमल श्रीचरणकमलोंमें लोटने लगीं ॥२६॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः ।

— ❀❀❀ —

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

अभिलषित आश्वासन पाकर स्नेहपरा सखीका निज भवन प्रस्थान ।

श्रीशिव उवाच ।

एवमस्त्विति तामुक्त्वा प्रहृष्टौ दययाञ्चितौ । स्वपाणिभ्यामुभौ तस्याः शिरः पस्पृशतुः स्वयम् ॥१॥
गाढ़मालिङ्गनं दत्वा कृपादृष्ट्या विलोक्य च । हस्तच्छायागता ताभ्यां कृतकृत्या हि सा कृता ॥२॥
पुनश्चन्द्रकला ताभ्यां मुख्ययूथेश्वरीश्वरी । प्रेरिता तत्र सर्वाभ्य इदं प्रोवाच सादरम् ॥३॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

सख्योऽद्य श्रीमती श्यामा जगदानन्दकारिणी । तोषिता गाढ़भावेन गन्त्री स्नेहपरालये ॥४॥

भगवान शिवजी बोले हे प्रिये ! दयालु श्रीयुगल सरकार श्रीस्नेह पराजी पर प्रसन्न हो, उनसे स्वयं एवमस्तु (ऐसाही होगा यह) कहकर उनके सिर पर अपना कर-कमल फेरने लगे ॥१॥ पुनः श्रीयुगलसरकारजीने श्रीस्नेहपराजीको अपनी कृपापूर्ण दृष्टिसे अवलोकन करके भली-भाँति अपना आलिङ्गन सुख-प्रदान कर, अपने हाथोंकी छायामें लेकर उनको कृतकृत्य कर दिया ॥२॥ तत्पश्चात् मुख्य यूथेश्वरियों (श्रीहेमा क्षेमा बरारोहादिकों) पर भी शासन करने वाली श्रीचन्द्रकलाजी श्रीयुगल सरकारकी प्रेरणासे सबोंके प्रति आदर पूर्वक यह बोलीं ॥३॥ हे सखियो ! आज चर, अचर सभी प्राणियोंको आनन्दप्रदान करने वाली श्रीमती किशोरीजी श्रीस्नेहपराजीके महल पधारेंगी, क्योंकि वे उनके गाढ़ भावसे प्रसन्न हो गयी हैं ॥४॥

प्रीता परिजनैः साकं सप्रिया करुणानिधिः । अपराह्ने विशालाक्ष्यो नैका विदितमस्तु वः ॥५॥

श्रीशिव उवाच ।

तच्छ्रुत्वा मृगशावाक्ष्यो जयेत्यूचुर्मुहुर्मुहुः । पश्यन्त्यस्ता तयोर्वक्त्रं विह्वलत्वमुपाययुः ॥६॥
ततः सर्वा समाश्वस्ता निर्जग्मुर्मन्दिरात्ततः । ताभ्यां सार्द्धं सुविश्राम-भवनं प्रतिपेदिरे ॥७॥
नानामणिगणाकीर्णे नानारत्नोपशोभिते । सर्वर्तुसुखसंवेशे तप्तचामीकरप्रभे ॥८॥
अन्तर्द्वारैर्गवाक्षैश्च विशालामलदर्पणैः । मनोहरैस्तथा चित्रैः सर्वतः समलङ्कृते ॥९॥
मण्याकीर्णचतुष्प्रान्तैर्वितानैः परिशोभिते । सच्चिन्मये महारम्ये सर्वभोगसमन्विते ॥१०॥
विशालेन प्रभाढ्येन मनोदृष्ट्यपहारिणा । निःसरेणाति भव्येन चित्रितेन समञ्चिते ॥११॥
वज्रसारकपाटैश्च नानारत्नचमत्कृतैः । सार्गले भावनागम्ये तस्मिंस्तौ भवनोत्तमे ॥१२॥
रत्नमाणिक्यपर्यङ्के कोमलास्तरणाञ्चिते । शयानौ वीक्ष्य चक्षुर्भ्यां वभूवुः कीलिता इव ॥१३॥

हे विशाललोचनाओ ! करुणाकी निधि श्रीकिशोरीजी आज दिनके तीसरे पहर स्नेहपराजीके यहाँ अकेली ही नहीं अपितु (बल्कि) परिकरके सहित प्राणप्यारेके साथ-साथ पधारेंगी, यह बात आप लोगोंको ज्ञात होनी चाहिए ॥५॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे पार्वति ! श्रीचन्द्रकलाजीसे यह सूचना सुनकर मृग बच्चोंके समान सुन्दर नेत्रवाली सभी सखियाँ, श्रीयुगल सरकारका बारंबार जयकार बोलने लगीं। पुनः दोनोंके मुख चन्द्रका दर्शन करती हुई विह्वल हो गयीं ॥६॥

तदनन्तर श्रीचन्द्रकलादि यूथेश्वरियोंके द्वारा आश्वसन पाकर वे सब सखियां दोनों सरकारके सहित उस भोजन कुञ्जसे निकलीं और सुन्दर विश्राम–सदनमें पहुचीं ॥७॥

अनेक प्रकारकी मणि समूहोंसे जटित अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित, जिसमें सभी ऋतुओंमें सुखप्रद शयन, तपाये हुये सोनेके सरीखे प्रकाश युक्त, ॥८॥ भीतर चारो ओर जाली झरोखा (खिड़की), विशाल स्वच्छ दर्पण विविध प्रकारसे मनको हरण करनेवाले सुन्दर चित्रों (तसवीरों से सजाये हुये, ॥९॥ झालरसे सुशोभित, चारों किनारों पर मणियोंसे युक्त वितानों (चँदोवों) से अत्यन्त शोभायमान, सदा एकरस रहने वाले विहारके परमयोग्य, सुखद, सभी आवश्यक सामग्रियों (चीजों) से युक्त, ॥१०॥ प्रकाश युक्त अनेक प्रकारकी चित्रकारी किये हुये, मन और दृष्टिको हरण करनेवाले, अति सुन्दर विशाल दरवाजोंसे युक्त ॥११॥ अनेक रङ्गोंके रत्नोंकी रचनासे चमकते हुये, वज्रके सारके समान अति सुदृढ़ (अत्यन्त मजबूत), अर्गला (किवाड़ोंको खुलनेसे रोकने के लिये दीवालमें लगाई जानेवाली बल्ली) लगे हुये किवाड़ोंसे युक्त, भावनाके द्वारा ही प्राप्त होंने योग्य, उस उत्तम महलमें ॥१२॥

रत्न खचित मणियोंके बने हुये कोमल-बिछावनसे शोभायमान, पलङ्गपर श्रीयुगलसरकारको शयन किये हुये दर्शन करके, वे सभी सखियाँ कीली हुई मूर्तियों के समान हो गयीं ॥१३॥

समाश्वास्य समाज्ञप्ता विश्रामार्थमनिन्दिताः । पुनः प्राणाधिकाभ्यां ता मैथिल्या राघवेण च ।१४।।
कृच्छ्रात्प्रणम्य तौ प्रेष्ठौ श्रीनिकुञ्जविहारिणौ । ययुः स्वं स्वं निकेतं ताः काश्चित्तत्रैव शिश्यिरे।१५।
साऽपि ताभ्यां समाज्ञप्ता नमस्कृत्य पुनः पुनः । कृच्छ्रात्स्नेहपरा प्रागाच्चिन्तयन्ती च तौ गृहम् ।१६।।

प्राणोंसे बढ़कर प्यारे श्रीयुगल सरकार श्रीमिथिलेशनन्दिनी व रघुनन्दनजीने सभीको सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर विश्राम करनेके लिये आज्ञा प्रदानकी ।।१४।।

श्रीनिकुञ्जविहारिणीविहारी प्राणप्यारे युगलसरकारकी आज्ञाको स्वीकार कर बड़ी कठिनतासे वे अपने-अपने महलों को गयीं और कुछ ने वहीं विश्राम किया ।।१५।।

वे श्रीस्नेहपराजी दोनों सरकारकी आज्ञा पाकर उन्हें बारंवार नमस्कार कर, दोनोंको स्मरण करती हुई, बड़ी कठिनतासे अपने निवास महलको गयीं ।।१६।।

इति चतुर्दशोऽध्यायः ।

— ❀❀❀ —

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

स्नेहपराका अपनी सखियोंके प्रति प्रेम–प्रलाप ।

श्रीशिव उवाच ।

ततस्तु संप्राप्य निवासमात्मनस्तयोः कृपां स्नेहपरा व्यचिन्तयत् ।
जहर्ष सा तौ मनसैव दम्पती प्रणम्य भूयो निजकृत्यमैक्षत ।।१।।
आहूय सर्वा निजकिङ्करीस्ताः सोवाच वाक्यं परमादरेण ।
सत्कारकृत्यं भवतीभिरेव सम्पादितं द्रष्टुमहं समीहे ।।२।।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ।
ममालयं पुण्यचयेन सेव्यौ प्रफुल्लपङ्केरुहपत्रनेत्रौ ।।३।।

श्रीस्नेहपराजी श्रीयुगल सरकारके विश्रामभवनसे अपने महलमें पहुँचकर, उनकी कृपाका चिन्तन करने लगीं, जिससे वे बहुत हर्षित हो श्रीयुगलसरकारको मानसिक प्रणामकरके अपने कर्त्तव्यका विचार करने लगीं ।।१।। जिन्होंने श्रीयुगल सरकारके सत्कारका सब प्रबन्ध किया था, अपनी उन किङ्करियोंको बुलाकर वे आदर पूर्वक बोलीं–हे सखियों ! आप लोगोंके किये हुये कृत्यको मैं देखना चाहती हूँ ।।२।। क्योंकि खिले कमलपत्रके समान नेत्रवाले, बड़े ही पुण्य प्रभावसे सेवनीय, श्रीनित्यबिहारिणी-बिहारी, कृपालू युगलसरकार, कृपा करके तीसरे पहर आज मेरे घर पधारेंगे ।।३।।

प्रपन्नभृत्याम्बुजकाननार्कौ विदेहकाकुत्स्थकुलप्रदीपौ ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥४॥
मनोहरस्मेरसुधाकरास्यौ दृगुत्सवौ सर्वचराचराणाम् ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥५॥
मुनीन्द्रवृन्देडितपुण्यकीर्त्ती सतां गती सेव्यतमावशेषैः ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥६॥
महार्हवस्त्राभरणाञ्चिताङ्गौ पयोदविद्युद्द्युतिपुञ्जकान्ती ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥७॥
आदर्शसूक्ष्मामलकोमलाङ्गौ मन्दस्मितौ साञ्जनकञ्जनेत्रौ ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालु आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥८॥
विम्बाधरौ दाडिमचारुदन्तौ विशालभालौ मणिकुण्डलाढ्यौ ।
अद्यापराह्ले कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥९॥

शरणमें आये हुये सेवा- परायण भक्त रूपी कमल वनको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले श्रीविदेह और काकुत्स्थ वंशको दीपकके सदृश प्रकाशित करने वाले वे नित्यविहारिणी-विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार कृपा करके आज तीसरे पहर मेरे महलमें पधारेंगे ॥४॥

मनोहरण मुस्कान् युक्त, चन्द्रमाके तुल्य, परम आह्लादप्रदायक श्रीमुखार-विन्द वाले, सभी स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके नेत्रोंको उत्सवके सदृश सुख देने वाले वे श्रीनित्य-विहारिणी-विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार कृपा करके आज तीसरे पहर मेरे महलमें पधारेंगे ॥५॥

बड़े से बड़े मुनिराज भी जिनकी पवित्र कीर्त्ति की स्तुति करते हैं, जो सन्तों की सब प्रकारसे रक्षा करने वाले हैं। सभी छोटे से छोटों और बड़े से बड़ों को भी जिनकी सेवा करना परम कर्त्तव्य है, वे हमारे श्रीनित्यविहारिणी विहारी कृपालु श्रीयुगल सरकार कृपा करके तीसरे पहर आज मेरे महल पधारेंगे ॥६॥

बहुमूल्य वस्त्र और भूषणोंसे सजाये हुये श्रीअङ्ग, मेघ और बिजलीकी द्युतिसमूहके समान श्याम–गौर वर्णमय श्रीअङ्गकी कान्ति वाले श्रीनित्यविहारिणी-विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार, कृपा करके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य पधारनेकी कृपा करेंगे ॥७॥

दर्पण के समान प्रतिबिम्बग्राही मल रहित, कोमल अङ्ग, मन्दमुस्कान तथा अञ्जनसे आँजे हुये जिनके नेत्र कमल हैं, वे नित्यविहारिणी विहारी, कृपालू श्रीयुगलसरकार आज कृपाकरके तीसरे पहर मेरे महलमें पधारेंगे ॥८॥ जिनके बिम्बा फलके समान लाल ओष्ठ और अधर हैं, अनारके दानोंके समान अत्यन्त सुन्दर जिनकी दन्त पंक्ति व विशाल भाल है, जो अपने सुन्दर कानोंमें मणियोंके कुण्डल धारण किये हुये हैं, वे श्रीनित्यविहारिणीविहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार आज मेरे यहाँ तीसरे पहर अवश्य ही पधारेंगे ॥९॥

मधुव्रतस्निग्धसुकुन्तलौ श्री-मन्दीकृतानङ्गरतिव्रजौ च ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१०॥
तिरस्कृतानन्तसुधांशुकान्ती सरोजहस्तौ मृदुलाम्बुजाङ्घ्री ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥११॥
ययोर्विनोपासनया न मुक्तिः संसारदावानलतीव्रतापात् ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१२॥
व्रतैर्न दानैः क्रतुभिस्तपोभिः दृश्यावृते यौ किल भक्तियोगात् ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१३॥
पुंसां ययोर्विस्मरणाधिको नो कापीरिता वै महती विनीष्टः ।
अद्यापराह्णे कृपया कृपालू आयास्यतो नित्यविहारिणौ तौ ॥१४॥
करिष्यतः पावनमद्य कुञ्जं मदीयमेवेति सुनिश्चयो मे ।
अहं तयोः पादसरोजगन्धमाघ्राय हृष्यामि यथा षडङ्घ्रिः ॥१५॥

भौंरोंके सरीखे काले घुंघुराले जिनके सुन्दर बाल हैं, जो अपने श्रीअङ्गकी शोभासे रति और काम-समूहोंको भी तुच्छ कररहे हैं, वे श्रीनित्यविहारिणी-विहारी, कृपालू श्रीयुगलसरकार आज कृपा करके तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य पधारेंगे ॥१०॥

अपने श्रीअङ्गके आह्लाद-प्रदायक प्रकाशसे जो अनन्त चन्द्रमाकी कान्तिको लज्जित करते हुए जो प्रायः अपने करकमलोंमें कमलको धारण किये रहते हैं, कमलके समान ही जिनके कोमल श्रीचरण हैं, ऐसे वे श्रीनित्यविहारिणी-विहारी, कृपालु श्रीयुगलसरकार, कृपाकरके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य पधारेंगे ॥११॥

अन्य विविध साधनोंके करनेपर भी प्राणियोंको जिनका विना भजन किये जन्म मरणरूपी-दावानलके प्रचण्ड ताप से छुटकारा नहीं मिलता, वे कृपालु श्रीनित्यविहारिणी-विहारी श्रीयुगल-सरकार कृपाकरके आज तीसरे पहर मेरे यहाँ अवश्य आवेंगे ॥१२॥

विना भक्ति-योगको अपनाये व्रत, दान, यज्ञ, तप आदिकोंके द्वारा भी जिनका दर्शन प्राप्य नहीं होता, वे कृपालू श्रीनित्यविहारिणी-विहारी श्रीयुगलसरकार आज कृपाकरके तीसरे पहर मेरे यहाँ पधारेंगे ॥१३॥ जिनको भूलजानेसे बढ़कर प्राणियोंकी कोई और महती हानि नहीं कही गयी है, वे श्रीनित्यबिहारिणी विहारी कृपालु श्रीयुगलसरकार कृपापूर्वक आज मेरे यहाँ तीसरे पहर अवश्य पधारेंगे ॥१४॥

मेरा यह निश्चय है कि, वे श्रीकृपालु श्रीयुगलसरकार आज मेरी कुञ्जको अपने श्रीचरण-कमलरजसे अवश्यही पवित्र करगे अहो आज मैं श्रीयुगल प्रभुके श्रीचरणकमलकी सुगन्धको सूंघकर वैसेही सुखी होऊँगी जेसे कमलके सुगन्धोंको ग्रहण करके भौंरा होता है ॥१५॥

पितामहो नैव हरिर्गदाभृच्छम्भुस्त्रिनेत्रो न च पत्न्य एषाम् ।
प्राप्ताः प्रसादं हि यमद्वयं तं प्राप्स्याम्यहं नूनमिहाद्य कामम् ॥१६॥
इत्येवमुक्त्वा प्रमदातिरेकान्मुमोह सा वै कमलायताक्षी ।
प्राबोधयद्बुद्धिमती तदा तां कृताञ्जलिर्भूय उवाच नम्रा ॥१७॥

श्रीबुद्धिमत्युवाच ।

धन्या सुचित्रा जननी तवासौ जाताऽसि यस्यां कुलदीपरूपे ! ।
यशोध्वजस्ते जनकोऽपि धन्यो यस्यात्मजा त्वं कथिताऽसि लोके ॥१८॥
सिद्धाऽसि पुण्याऽसि कृतव्रताऽसि यदीदृशी भक्तिरहैतुकी ते ।
तयोः पदाब्जेषु महाजनेष्टा भाग्यं त्वदीयं मुनिशंसनीयम् ॥१९॥
धन्या वयं पुण्यवतां वरिष्ठा याभिश्च लब्धा त्वममोघभावा ।
सुस्वामिनी पद्मदलायताक्षी कारुण्यपात्रं जनकात्मजायाः ॥२०॥

श्रीशिव उवाच ।

एतावदुक्त्वा वचनं विनीतं क्षणं विमुह्याशु च लब्धसञ्ज्ञा ।
प्रादर्शयत्कृत्यमसौ तदानीं तस्यै ततः सुष्ठुतया कृतं यत् ॥२१॥

ब्रह्मा, गदाधारी विष्णु त्रिलोचन शिव तथा इनकी पत्नियां सावित्री, लक्ष्मी, पार्वतीजी आदि श्रीयुगलसरकारके जिस अनुपम प्रसादको निश्चय ही प्राप्त नहीं कर सकीं, उसीको आज मैं निश्चय ही अपनी इच्छानुसार प्राप्त करूँगी ॥१६॥ भगवान् शङ्करजी बोले- हे प्रिये ! वे कमलपत्रके समान विशाल लोचना श्रीस्नेहपराजी अपनी सखियों से इस प्रकार कहकर हृदयमें विशेष आनन्दकी बाढ़ आजानेके कारण मूर्छित होगयीं, तब उन्हें बुद्धिमती सखीनें सावधान कराया, पुनः अपने सर्वाङ्गको झुकाये हुये वह सखी हाथ जोड़कर बोली ॥१७॥ हे कुलको दीपकके समान प्रकाश युक्त करनेवाली! श्रीस्नेहपराजी आप जिनसे प्रकट हुई हैं, वे आपकी माता श्रीसुचित्रा अम्बाजी धन्य हैं, तथा लोकमें जिनकी आपपुत्री कही जाती हैं, वे आपके पिता श्रीयशध्वजजी महाराज भी धन्य हैं ॥१८॥ आपके सब साधन सफल हैं, आप पुण्यकी तो स्वरूप ही हैं, तथा सभी व्रतोंको आप कर चुकीं, क्योंकि इसप्रकारकी निर्हेतुकी प्रेमाभक्ति प्राप्ति के लिये बड़े-बड़े तत्त्वदर्शी, ब्रह्मोपासक, मुनिवृन्द भी तरसते हैं, श्रीयुगलसरकार के श्रीचरणकमलों में वह आपकी स्वाभाविक है, अत एव आपका सौभाग्य मुनियोंके द्वारा भी प्रशंसा के योग्य है॥१९॥
जिन (हमलोगों) को आप जैसी श्रीकिशोरीजीकी कृपापात्र, सिद्धभाव वाली, कमलदललोचना, सुन्दर (युगलप्रेम परिपूर्णा) स्वामिनी मिली हैं, वे हमभी पुण्यवतियों में श्रेष्ठ, और धन्य हैं ॥२०॥ भगवान् शिवजी बोले-हे प्रिये ! इस प्रकार बुद्धिमती नामकी सखी श्रीस्नेहपराजी से विनीत वचन कहकर थोड़ीदेर प्रेममूर्छाको प्राप्त हुई, पुनः सावधान हो श्रीयुगल सरकारके सत्कारार्थ अपने अच्छीतरह किये हुये सारेकृत्य(प्रबन्ध) को उन्हें अवलोकन कराया ॥२१॥

तुतोष सोद्वीक्ष्य विमुच्य कण्ठान्मणिस्रजं स्वां प्रददौ हि तस्यै ।
हर्षस्तु तस्या न तयैव वाच्यस्तदोदितो यो हृदये विशुद्धे ॥२२॥

श्रीस्नेहपराजीने अपनी सखियोंके द्वारा किये हुये श्रीयुगलसरकारके सत्कार प्रबन्धको देखकर प्रसन्नहो अपने गलेसे मणिमयी माला निकालकर बुद्धिमतीजीको दे दी, हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीके निर्मल हृदयमें उस समय श्रीयुगलसरकारके उस सत्कार, प्रबन्धका दर्शन करके जो सुख हुआ, कहनेको वे (श्रीस्नेहपराजी) स्वयं भी असमर्थ थीं, तब दूसरा उस हर्षको कथन करनेके लिये कैसे समर्थ हो सकता है ? अर्थात् किसो प्रकार भी नहीं ॥२२॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

इति मासपारायणे तृतीयो विश्रामः ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

भवन पधारे हुए श्रीयुगलसरकारका स्वागतपूर्वक सविध पूजन ।

श्रीशिव उवाच ।

तत्रोत्तराह्णे कमलायताक्ष्यः सख्यस्तयोः स्वापगृहाङ्गणे च ।
आगत्य गानं मधुरस्वरेण चक्रुर्यदाकर्ण्य विहीनतन्द्रौ ॥१॥
उत्थाय दिव्यांशुकभूषणाढ्यौ स्थितौ यदाऽन्योन्यमुपेत्य कान्तौ ।
सख्यस्तदैवाचमनं प्रियाभ्यामाचारयामासुतरादरेण ॥२॥
तौ मोहनावादतुरल्पभक्ष्यमन्योऽन्यपूर्णेन्दुमुखे प्रदाय ।
पुनस्तु वीटीं रसिकाधिराजौ नीराजितौ तर्हि मिथः प्रदिश्य ॥३॥
वक्त्रश्रियं दर्पणके विचित्रां सम्प्रेक्ष्य तौ दृष्टिमतां मनोज्ञौ ।
प्रियाप्रियौ पाणिसुशोभितांसौ विरेजतुस्त्यक्तसुवर्णतल्पौ ॥४॥

श्रीशिवजी बोले—हे प्रिये ! वहाँ श्रीयुगलसरकारकी सखियाँ दिवा-शयन-भवनके आँगनमें पहुँचकर, मधुरस्वरसे उत्थापनके पद गाने लगीं, जिनको सुनकर श्रीयुगलसरकार आलस्य रहित हो दिव्य वस्त्र भूषणोंसे विभूषित एक दूसरेसे मिले हुये बैठ गये, तब सखियों ने दोनों सरकारको आदरपूर्वक आचमन करवाया ॥१॥२॥

सभी के चित्तको मुग्ध कर लेने वाले वे रसिकाधिराज (भक्तोंके शासनमें रहने वाले) दोनों सरकार, एक दूसरेके पूर्णचन्द्र समान मुखमें उत्थापन भोग देकर अरोगने लगे तदनन्तर परस्पर पान के बीड़े प्रदान कर चुकने पर सखियोंने दोनों सरकार (श्रीसीतारामजी) महाराजकी आरती की ॥३॥ नेत्रवालोंके मनको हरण करनेवाले वे दोनों श्रीयुगलसरकार दर्पण (आयना) में अपनी आश्चर्यमयी विचित्र शोभाका दर्शन करके, परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर हस्त-कमल रखते हुये सुवर्ण पलङ्गको छोड़कर विराजमान हुए ॥४॥

संप्रेष्य सख्यौ सुभगामनोज्ञे पूर्वं सुचित्रादुहितुः सकाशम् ।
धैर्याय तस्याः सुमनोहराक्षौ लोकाभिरामौ जगदेकबन्धू ॥५॥
समं सखीभिर्गजगामिनीभिः सर्वाभिरानन्दमहानिधाने ।
प्रजग्मतुः स्नेहपरानिवासं विमानमारुह्य मनोजवं स्वम् ॥६॥
ताभ्यां प्रबुध्यागमनं कुजायाः सवल्लभाया द्रुतमद्रवत्सा ।
सुस्वागतार्थं सहिता सखीभिः समातुरा दर्शनकाङ्क्षया च ॥७॥
दृष्ट्वा तदाकाशगतं विमानं मनोजवं विद्युदब्भ्रदीप्तम् ।
समावृतं कोटिसहस्रयानैर्हर्षातिरेकादपतद्धरण्याम् ॥८॥
दृष्ट्वेदृशीं प्रेमदशां तदीयामप्रीयत श्रीमिथिलेन्द्रपुत्री ।
सवल्लभोत्तीर्य ततो विमानादालिङ्गयामास च सानुरागम् ॥९॥
आसाद्य साऽऽलिङ्गनजातशातं पपात पादेषु चा साश्रुनेत्रा ।
बिहीनसञ्ज्ञेव पुनश्च बुद्ध्वा दृष्ट्वाऽऽत्मनाथाविदमाह वाक्यम् ॥१०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुस्वागतं वां करुणानिधाने ! प्रपन्नकल्पद्रुमपादपद्मे ।
प्रोत्फुल्लचार्वम्बुजलोचनाभ्यां प्रियाप्रियाभ्यां मधुरस्मिताभ्याम् ॥११॥

सारे विश्वके उपमा रहित हितकारी, सभी प्राणियोंको आनन्दप्रदान करनेवाले, भलीभाँति मन-हरण-नयन दोनों श्रीप्राणप्यारे सरकार, श्रीसुभगाजी श्रीमनोज्ञाजी नामकी दो सखियोंको, (स्नेहपरा) श्रीसुचित्रानन्दिनीजीके पास पहले धीरज बंधानेके लिये भेजकर ॥५॥ मनके समान शीघ्र चलने वाले मनोजवनामके विमान में बैठकर सभी गजगामिनी सखियों के साथ वे श्रीस्नेहपराजीके महल पधारे ॥६॥ पहले भेजी हुई उन दोनों सखियोंके द्वारा श्रीप्राणप्यारेके सहित भूमिनन्दिनी श्रीकिशोरीजी का आगमन जानकर, दर्शनोंकी प्यासी वे श्रीस्नेहपराजी अपनी सखियोंके सहित सम्यक् प्रकारसे उनका सुन्दर स्वागत करनेके लिये तुरन्त आतुर हो दौड़ीं ॥७॥ उस समय विजुली समूहके समान प्रकाशमान, सहस्रों करोड़ अन्य विमानोंसे घिरे हुये आकाशमें श्रीयुगलसरकारके विमानका दर्शन करके हर्षकी अधिकताके कारण श्रीस्नेहपराजी पृथ्वीमें गिर गयीं अर्थात् मूर्छित हो गयीं ॥८॥ श्रीस्नेहपराजीकी इस प्रकारकी प्रेमदशा देखकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीने प्रसन्न होकर, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित विमानसे उतर कर प्रेमपूर्वक उन्हें हृदयसे लगा लिया ॥९॥ वे श्रीस्नेहपराजी आलिङ्गन-जन्य सुख पाकर सजलनेत्र हो, श्रीयुगलचरणकमलोंमें मूर्च्छित सी गिर पड़ीं । पुनः सावधान हो अपने युगल प्राणनाथ (श्रीसीताराम) जीका दर्शन करके यह वचन बोलीं ॥१०॥ हे करुणानिधान ! हे आश्रितोंके लिये कल्पवृक्ष तुल्य सर्वकामद श्रीचरणकमल ! विकसित कमलके समान सुन्दर लोचन, मधुर मुस्कानवाले, आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूका मैं स्वागत करती हूँ ॥११॥

नमोऽस्तु ते स्वामिनि ! सर्वदायै नमः प्रियायास्तु च तेऽम्बुजाक्ष !।
नमः किशोर्यै जनकात्मजायै नरेन्द्रपुत्राय नमः प्रियाय ॥१२॥
अनन्त राकेशनिभाननायै नमो नमस्तेऽम्बुजलोचनाय ।
सौदामिनीकोटिसहस्रदीप्त्यै नमोऽस्तु नीलाश्ममहाप्रभाय ॥१३॥
नमोऽस्तु ते प्रेमसुधार्णवायै रसस्वरूपाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ।
नमः कृपाक्षान्तिसुविग्रहायै कारुण्यरूपाय नमः प्रियाय ॥१४॥
नमोऽस्तु ते रत्यधिकप्रभायै नमोऽस्तु कोटिस्मरसुन्दराय ।
असङ्ख्यविद्युच्चयचन्द्रिकायै नमोऽस्त्वनन्तार्ककिरीटिने ते ॥१५॥
नमोऽस्तु दिव्याम्बरभूषणाभ्यां पाथोजपत्रायतलोचनाभ्याम् ।
नित्यं युवाभ्यां दयिताप्रियाभ्यां लावण्यवात्सल्यदयानिधिभ्याम् ॥१६॥
वैदेहकाकुत्स्थकुलोद्भवाभ्यां विद्युत्पयोदद्युतिमोहनाभ्याम् ।
तिरस्कृतानन्तरतिस्मराभ्यां नमोऽस्तु वां लोकमहेश्वराभ्याम् ॥१७॥

भक्तोंको सब कुछ प्रदान करने वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकोमैं नमस्कार करती हूँ, हे कमल लोचन ! आप प्यारेजू को मेरा नमस्कार है । श्रीजनकदुलारी श्रीकिशोरीजू को मेरा नमस्कार है, प्यारे राजकुमारजू को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१२॥

अनन्त चन्द्रकेसमान मुखवाली श्रीकिशोरीजीके लिये मेरा नमस्कार है, कमललोचन प्यारेके लिये मैं नमस्कार करती हूँ, करोड़ों हजार बिजलीके समान कान्ति वाली तथा नील मणिके तुल्य महाप्रभा वाले आप दोनों सरकारके लिये मेरा नमस्कार है ॥१३॥

प्रेमामृतसागरा (हे श्रीकिशोरीजी!) आपके लिये मेरा नमस्कार है, रसके स्वरूप प्राण-प्यारेजू! आपके लिये मैं नमस्कार करती हूं । कृपा और क्षमाकी सुन्दर मूर्त्ति श्रीस्वामिनीजू आपके लिये मेरा नमस्कार है, हे करुणाकी मूर्त्ति प्यारेजू (आप) केलिये मेरा नमस्कार है ॥१४॥

रतिसे भी अधिक अनन्त गुणा सौन्दर्य सम्पन्ना श्रीस्वामिनीजूको मैं नमस्कार करती हूँ, करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर (प्यारेजू ! आप) के लिये मेरा नमस्कार है । असंख्य बिजली समूहके समान प्रकाशमान जिनकी चन्द्रिका है उन आप (श्रीकिशोरीजी) के लिये मेरा नमस्कार है, अनन्त सूर्य सदृश प्रकाशमान जिनका किरीट है, उन आप प्यारेजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥१५॥ जिनके वस्त्र और भूषण सब दिव्य हैं, कमलपुष्प दलके समान जिनके विशाल नयन हैं, उन सौन्दर्य, वात्सल्य, और दयाके भण्डार आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू को मेरा नित्य नमस्कार है ॥१६॥ श्रीविदेह व काकुत्स्थ वंशमें प्रकट हुये श्रीअङ्गकी कान्तिसे विजुली और मेघकी कान्तिको आश्चर्ययुक्त करने वाले, अपनी सुन्दरतासे अनन्त रति और कामको अभिमान रहित करने वाले, समस्त लोकोंके सबसे बड़े स्वामी हे श्रीयुगल सरकार ! आप दोनों को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१७॥

आगच्छतं श्रेष्ठतमौ ! स्वदास्या निवेशनं फुल्लसरोजनेत्रौ !
पादाम्बुजैः पावयतं दयालू ! सेत्येवमुक्त्वा न्यपतत्पदाब्जे ॥१८॥
मय्येधते प्रत्यहमेव दिष्ट्या प्रीतिर्यथा ते सितपक्षचन्द्रः ।
इत्युच्चरन्ती क्षितिजा कराभ्यां पस्पर्श तस्याः शिर आदृतायाः ॥१९॥
मुदाप्लुता गानसुनृत्यवाद्यैः छत्राञ्चितौ पुष्पसुवर्षणैः सा ।
नत्वाऽनयत्सध्वजचामरैस्तौ विभूषिताश्वेभविमानसङ्घैः ॥२०॥
प्रियौ निकेतान्तिकमागतौ तौ नीराज्य भक्त्या परया तयैव ।
गृहान्तरे रत्नमणिक्षितावानीतौ दयालू महताऽऽदरेण ॥२१॥
सुखावहे मौक्तिकमण्डपे तौ निवेशितौ चित्रितरत्नपीठे ।
महार्हदिव्यास्तरणांशुकाढ्ये सुवासिते नूतनपुष्पगन्धैः ॥२२॥
सौवर्णपीठेषु सखीगणाश्च यथोचितेष्वेव निवेशितास्ताः ।
सत्कारहेतोरमिता वयस्या नियोजितास्तत्र तयैव तासाम् ॥२३॥

हे विकसित-कमल नयन! हे प्राणाधिक प्यारेजू ! अपनी दासीके महल पधारिये और इसे अपने श्रीचरण कमलोंसे पवित्र कीजिये। भगवान श्रीशिवजी बोले:-हे प्रिये! वे श्रीस्नेहपराजी इस प्रकार अपनी प्रार्थना निवेदन करके श्रीयुगल सरकारके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़ीं ॥१८॥

श्रीकिशोरीजी आदरके साथ बोलीं–हे स्नेहपरे! "सौभाग्य वश तुम्हारी प्रीति मेरेप्रति शुक्ल पक्ष चन्द्रमाके समान प्रतिदिन ही बढ़ रही है"। इस प्रकार कहती हुई अवनिकुमारी श्रीकिशोरीजी, अपने करकमलोंसे उनके सिरको सहलाने लगीं ॥१९॥

श्रीकिशोरीजीके करकमलका स्पर्श पानेके कारण आनन्दमें डूबी हुई, श्रीस्नेहपराजी छत्रसे सुशोभित उन श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करके नृत्य, गान, वाद्य सहित, ध्वज चँवर आदिसे अलङ्कृत, अश्व तथा गजयान-वृन्दके साथ फूलोंकी सुन्दर वर्षा करती हुई अपने महलमें ले गयीं ॥२०॥ महलके समीप श्रीयुगल प्राणप्यारे, दयालू सरकार श्रीसीतारामजीके पहुँचने पर परम श्रद्धापूर्वक आरती करके श्रीस्नेहपराजी उन्हें अत्यन्त आदर समन्वित सुन्दर मणिमय भूमिवाले अपने महलके भीतर ले गयीं ॥२१॥

वहाँ उन्होंने दोनों सरकारोंको मोतियोंके बने हुये सुखप्रद मण्डपमें अनेक प्रकारकी चित्रकारीसे युक्त, बहुमूल्य-दिव्य-बिछावनसे सजाये गये, नवीन पुष्पगन्धसे युक्त, रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया ॥२२॥

पुनः श्रीयुगलसरकारकी समस्त सखियोंको सोनेकी बनी हुई यथायोग्य चौकियों पर बैठाकर उनके सत्कारके लिये असङ्ख्य सखियोंको नियुक्त किया ॥२३॥

मुख्यालिभिः स्नेहपरा समेता सेवां तयोः सा स्वयमाचरन्ती ।
हर्षं गता यं स तथैव वेद्यं वक्तुं न शक्तो द्विसहस्रजिह्वः ॥२४॥
विष्टभ्य साऽऽत्मानमथात्मना द्रुतं यथा विधानं ससमर्चनस्पृहा ।
उवाच तां प्रेमरसाप्लुताशया सवल्लभां श्रीजनकेश्वरात्मजाम् ॥२५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

दत्तं मया पाद्यमिदं पवित्रं शामाब्जदूर्वादियुतं मनोज्ञम् ।
गृहाण कञ्जायतचारुनेत्रे ! सवल्लभे ! स्वामिनि ! मे कृपातः ॥२६॥
नानासुदिव्यौषधिसारयुक्तं सुदिव्यसौगन्ध्यविमिश्रितं च ।
युतं तुलस्या कुसुमैश्च दर्भैरर्घ्यं गृहाणेदमथार्पितं मे ॥२७॥
अनेकगन्धैश्च सुवासितं च दिव्यं सरय्वाः सरितः सुशीतम् ।
आचम्यतां वारि करान्तचारि प्रियेण साकं सरसीरुहास्ये ॥२८॥
नमोऽस्तु ते श्रीजनकात्मजायै सवल्लभायायखिलेष्टदायै ।
गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं किशोरि ! वात्सल्यवती सुरुच्यम् ॥२९॥
पयोदधिक्षौद्रसिताज्ययोजनां विधाय पञ्चामृतमर्पितं मया ।
किशोरि ! कारुण्यरसाप्लुताशये ! प्रगृह्यतामार्यसुतेन च त्वया ॥३०॥

पुनः मुख्य सखियोंके सहित उन्होंने स्वयं श्रीयुगलसरकारकी सेवा करती हुई जिस सुखको प्राप्त किया, उसे वे ही जान सकती हैं उसको बखाननेके लिये दो हजार-जिह्वा वाले (शेषजी) भी असमर्थ हैं ॥२४॥

प्रेम रसमें भीगे हुये हृदय वाली वे श्रीस्नेहपराजी विधि पूर्वक पूजन करनेकी इच्छासे अपने हृदयको शीघ्र सावधान करके प्राणप्यारेके सहित उन श्रीजनकराज किशोरीजीसे बोलीं ॥२५॥

हे कमल सदृश-विशाललोचने ! हे स्वामिनीजू ! सावाँ, कमल, दूब आदिसे युक्त, मनोहर, पवित्र, मेरे द्वारा अर्पण किये हुये इस पाद्य (पाँव धोने योग्य जल) को श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आप केवल अपनी कृपासे ग्रहण करें ॥२६॥ अनेक प्रकारकी सुन्दर दिव्य औषधियोंके सारसे युक्त, दिव्यसुगन्ध मिले हुये तुलसीदल सहित, पुष्प और दर्भ (कुश) से युक्त मेरे द्वारा अर्पण किये हुये इस अर्घ्य (हस्त प्रक्षालन योग्य जल) को स्वीकार कीजिये ॥२७॥

हे कमलमुखि ! श्रीस्वामिनीजू ! प्राणप्यारेजूके सहित आप अनेक प्रकार सुगन्ध मिलाये हुये, करमें शोभित दिव्य, सुशीतल श्रीसरयूजीके जलसे आचमन कीजिये ॥२८॥

आश्रितोंके सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! प्राणप्यारेजूके सहित आप श्रीजनकदुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है, हे वात्सल्यवतीजू ! आप इस श्रेष्ठ रूचिकर, मधुपर्कको ग्रहण कीजिये ॥२९॥ हे कारुण्यरसनिमग्न हृदये ! हे श्रीकिशोरीजू ! प्राणप्यारेजूके सहित आप दूध, दही, मधु, शक्कर, घृतको एकमें मिलाकर मेरे द्वारा समर्पण किये हुये इस पञ्चामृतको स्वीकार कीजिये ॥३०॥

अशेषतीर्थाहृतदिव्यतोयं समस्तमुख्यौषधिमिश्रितं च ।
सहार्यपुत्रेण नतिप्रतुष्टे ! निमज्जनार्थं कृपया गृहाण ॥३१॥
सुकोमलस्निग्धनवीनपीनाङ्गप्रोञ्छनं वास इदं प्रदत्तम् ।
ऊरीकुरु प्राणधनेन साकं जयोर्मिलेशाग्रजपट्टकान्ते ! ॥३२॥
नवाम्बराणीह सुचित्रितानि नित्यामलान्यद्‌भुतभान्वितानि ।
भक्त्यार्पितान्यार्यसुतेन साकं श्रीस्वामिनि ! स्वीकुरु भावतुष्टे ! ॥३३॥
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं सौवर्णवर्णं रघुराजसूनो ।
दत्तं मया स्वीकुरु वारिजाक्ष ! सवल्लभायास्तु नमो नमस्ते ॥३४॥
चूड़ामणिं तालदलं सुचन्द्रिकां ललाटिकां दीप्तिमतीं च कुण्डले ।
ग्रैवेयकं श्रीनिमिवंशनन्दिनि ! प्रगृह्यतामम्बुजपत्रलोचने ! ॥३५॥
आवापकै रत्नचमत्कृतैर्नवं केयूरयुग्मं मणिमण्डितोर्मिकाम् ।
मनोहरे उर्जितभे च कङ्कणे कलापपादाङ्गदकिङ्किणीस्तथा ॥३६॥

प्रणाम मात्रसे प्रसन्न होने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! समस्त तीर्थोंसे लाये हुये पुष्टिकारक समस्त औषधियोंसे युक्त इस दिव्य जलको श्रीप्राणप्यारेजूके सहित स्नानके लिये आप कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिये ॥३१॥

हे उर्मिलावल्लभ (श्रीलषणलालजू) के अग्रज (बड़े भाई) प्राण प्यारे श्रीरामजू की पट्टकान्ते (पटरानी) श्रीस्वामिनीजू! आपकी जय हो, प्राणधनजूके सहित मेरे द्वारा समर्पित सुन्दर, कोमल, चिक्कण नवीन मोटे, इस अङ्ग-प्रोञ्छनवस्त्र (तौलिया) को स्वीकार कीजिये ॥३२॥

प्राणियोंके केवल विशुद्ध, दृढ़भावसे प्रसन्न होने वाली ! हे श्रीस्वामिनीजू ! मेरे द्वारा श्रद्धा पूर्वक समर्पित, अनेक प्रकारकी चित्रकारीसे युक्त, सदा नवीन रहने वाले इन सुन्दर वस्त्रोंको श्रीप्राणप्रियतमजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥३३॥

हे कमललोचन ! हे श्रीरघुराजसूनो ! (श्रीरघु महाराजके वंशजोंके राजा श्रीदशरथजी महाराजके लाडले) श्रीप्रियाजूके सहित आपको मेरा बार-बार नमस्कार है मेरे द्वारा समर्पित सुवर्णतारके सदृश रङ्गवाले परमपवित्र इस यज्ञोपवीत (जनेऊ) को आप स्वीकार कीजिये ॥३४॥

हे श्रीनिमिवंश नन्दिनीजू ! हे कमलदललोचने श्रीस्वामिनीजू ! चूड़ामणि, कानके भूषण, सुन्दर चन्द्रिका, प्रकाश युक्त ललाट-भूषण, (पातफीणी) और कुण्डल, गोप (कण्ठा) को आप ग्रहण कीजिये ॥३५॥ अनेक प्रकारके रत्नोंसे चमकती हुई चूड़ियोंके सहित नवीन बाजूबन्द, मणि जटित अँगूठी, दिव्य प्रकाशमय मनोहर कंगन, पचीस लड़की करधनी, नूपुर (पैंजनी) घुंघुरू तथा–॥३६॥

सर्वाङ्गदेशस्य विभूषणानि गृह्णीष्व चान्यान्यपि मे ऽर्पितानि ।
सौभाग्यमेवं तु कुतः पुनः स्यात् किशोरि! दास्याश्चरणाब्जयोस्ते ॥३७॥
गोपुच्छधेनुस्तनमन्दरांश्च समाणवान् गुच्छकलापरश्मीन् ।
मयाऽर्द्धहारेण युतं च हारं समर्पितं स्वीकुरु सानुकम्पम् ॥३८॥
किरीटनासामणिकुण्डलैः सह ग्रैवेयकं कौस्तुभमङ्गदे शुभे ।
सुकङ्कणे नूपुरयुग्ममूर्मिकां काञ्चीं च गृह्णीष्व ममार्यनन्दन ! ॥३९॥
छन्दद्वयं वै विजयेन्द्रसञ्ज्ञं हारं सुरच्छन्दमथार्धहारम् ।
दिव्यार्द्धरश्मिं च तथैव गुच्छं समाणवं प्रेष्ठ ! गृहाण मत्तः ॥४०॥
अप्राकृतं दिव्यमिमं सुगन्धं मनोहरं घ्राणवतां दयाब्धे ।
सवल्लभा श्रीनिमिवंशभूषे ! सुरोचितं मोदकरं गृहाण ॥४१॥
तापापहं शीतकरं मनोज्ञं वाह्लीकसाराढ्यमनुत्तमं च ।
कर्पूरयुक्तं मलयाद्रिजातं सुचन्दनं सार्यसुता गृहाण ॥४२॥
नवोत्तरीयं वसनं सुसूक्ष्मं विचित्रनानारचनान्वितं च ।
सहार्यपुत्रेण कृपैकसिन्धो ! प्रगृह्यतामार्द्रसरोजनेत्रे ! ॥४३॥

मेरे समर्पण किये हुये और भी सर्वाङ्ग देशके आभूषणोंको आप ग्रहण कीजिये, क्योंकि हे श्रीकिशोरीजी ! आपके श्रीचरण-कमलोंकी सेवाके लिये दासीको फिर ऐसा सौभाग्य कहाँ मिलेगा ? ॥३७॥ हे श्रीकिशोरीजी! गोपुच्छ (२) धेनुस्तन (४) मन्दर (८) माणव (१६) गुच्छ (३२) कलाप (४८) रश्मि (५६) अर्द्धहार (६४) हार (१०८) लड़ी वाले इन मेरे सर्मपित सभी हारों को कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिए ॥३८॥

हे मेरे प्राणनाथजू ! किरीट, नासामणि कुण्डलोंके सहित गोप, कौस्तुभमणि, बाजूबन्द, सुन्दर कङ्गन, नूपुर, अंगूठी, एक लड़की करधनीको आप कृपा करके स्वीकार कीजिये ॥३९॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू! इन्द्रच्छन्द (१००८) विजयच्छन्द (५०४)हार(१०८) देवच्छन्द (१००) अर्धहार (६४) तथा अर्द्धरश्मि, (५४) गुच्छ, (३२) माणव (१६) लड़ी वाले हार को मुझसे स्वीकार करें ॥४०॥

हे दयासागरे ! हे निमिवंश भूषणे ! श्रीकिशोरीजी ! घ्राणेन्द्रिय वालोंके मनको हरण करने वाले आनन्दप्रद, देवश्रेष्ठोंके योग्य, इस विशिष्ट, दिव्य सुगन्धको श्रीप्राणवल्लभजूके सहित आप ग्रहण कीजिये ॥४१॥ हे स्वामिनीजू ! तापको हरने वाले, शीतलता-कारक मन-मोहक, केशरयुक्त, कर्पूर मिश्रित मलयागिरिसे उत्पन्न इस सुखकर चन्दनको श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आप ग्रहण कीजिये ॥४२॥ हे सजलकमलदललोचने ! हे कृपैक सागरे ! अनेक विचित्र प्रकारकी रचनासे युक्त, अति झीने, इस नवीन उत्तरीय-वस्त्र (दुपट्टा) को श्रीप्राणप्रियतमजूके सहित आप ग्रहण कीजिये ॥४३॥

सुवन्यमाल्यानि ससौरभानि नानाविधान्यार्यसुतेन साकम् ।
अङ्गीकुरुष्व स्मितचन्द्रवक्त्रे ! नमोस्तु ते ऽप्राकृतनित्यलीले ! ॥४४॥
सुदूर्वपत्राङ्कुरपत्रपुष्पं यवं तिलं श्रेष्ठतमेन साकम् ।
गृहाण सौलभ्यगुणैकमूर्ते ! किशोरि ! तुष्टा भव मन्दहासे ! ॥४५॥
वनस्पतीनां सुरसोद्भवं च सुगन्धयुक्तं शतपत्रनेत्रे !
धूपं गृहाणेममजादिवन्द्ये ! किशोरि ! सश्रेष्ठतमा मनोज्ञम् ॥४६॥
घृताक्तकर्पूरसुवर्तियुक्तं मयाऽर्पितं दीपमिमं गृहाण ।
प्रसीद दास्यां दयितेन साकं किशोरि ! कल्याणदुघाङ्घ्रिपद्मे ! ॥४७

श्रीशिव उवाच ।

एवं तु साऽऽदीपसमर्हणं च विधाय भक्त्या परयेन्दुमुख्याः ।
सवल्लभाया जनकात्मजाया बभूव नैवेद्यविधिं चिकीर्षुः ॥४८॥
दिव्यं समुद्यद्रविसन्निभप्रभा चतुर्विधं षड्रससंयुतं मुदा ।
निधाय रत्नाञ्चितभाजनेषु सा समार्पयत्स्नेहपरा सुसादरम् ॥४९॥
विनम्रगात्रा प्रणिपत्य दम्पती कृताञ्जलिर्दीनवचो ऽब्रवीदिदम् ।
तवोचितं किञ्चिदपीदमस्ति नो किशोरि! गृह्णीष्व तथापि वत्सले! ॥५०॥

हे मन्द मुस्कान युक्त पूर्ण चन्द्रके समान मुख वाली ! हे अलौकिकनित्य लीला मयी श्रीकिशोरीजू ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ—आप प्राणप्यारेजूके सहित द्वादश वनोंके विविध फूलोंकी बनी हुई अनेक प्रकारकी सुगन्धयुक्त, इन मालाओंको स्वीकार कीजिये ॥४४॥

उपमा रहित सौलभ्य गुण स्वरूपे ! मन्द मुस्कान वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आप प्रसन्न होकर; श्रीप्राणप्यारेजूके सहित दूवकी पत्ती, अङ्कुर तुलसीदल, पुष्प, यव, तिलको ग्रहण कीजिये ॥४५॥ ब्रह्मादि देवोंके लिये भी प्रणाम करने योग्य हे श्रीकिशोरीजी ! अनेक वनस्पतियोंके रससे बने हुये, सुगन्धयुक्त, मनको प्रसन्न करने वाले, इस धूपको श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥४६॥ हे कल्याणदुघाङ्घ्रिपद्मे (अपने श्रीचरणकमलोंके द्वारा समस्त कल्याणोंका दोहनकर भक्तों को देने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! दासीपर प्रसन्न हों और प्यारेके सहित कपूर सहित घी से भीगी वत्तीसे युक्त इस दीपको आप ग्रहण कीजिए ॥४७॥

भगवान शङ्करजी बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार परम श्रद्धा-पूर्वक दीप पर्यन्त पूजन विधि करके श्रीस्नेहपराजीने नैवेद्य-विधि करनेकी अर्थात् भोग लगाने की इच्छा की ॥४८॥

तदनन्तर उदय कालीन सूर्यके समान प्रकाश वाली वे श्रीस्नेहपराजी षट् रसोंसे युक्त चार प्रकारके उन नैवेद्योंको रत्नजटित पात्रोंमें सजाकर बड़ेही आदरके साथ समर्पितकरने लगीं ॥४९॥

अपने शरीरको झुकाती हुई श्रीस्नेहपराजी श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करनेके पश्चात् हाथ जोड़कर यह वचन बोलीं—हे श्रीकिशोरीजी ! यद्यपि आपके योग्य यह कुछ भी नहीं है, तथापि वात्सल्य भाव प्रधान होनेके कारण इसे आप ग्रहण कीजिये ॥५०॥

प्रीतियुता कुरु भोजनमीप्सितमार्यसुतेन युता मृदुहासे ! ।
आश्रितरञ्जनि ! संसृतिभञ्जनि ! शीलकृपागुणरत्नसुराशे
क्षन्तुमिहार्हसि विस्मृतमेव च दीनहिते ! श्रुतिगीतचरित्रे ! ।
वेद्मि रुचिं तु तदाऽमुकवस्तु हि देहि यदेति वदिष्यसि मह्यम् ॥५१॥

हे मनोहर मुस्कानवाली श्रीस्वामिनीजू ! आप श्रीप्राणप्यारेजूके सहित प्रेम पूर्वक इच्छित भोजन कीजिये । कारण आप तो सदा आश्रितों की आनन्ददायिनी जन्म-मृत्युचक्र विनाशिनी तथा सर्वदादीनहितकारिणी कृपाशीलादि गुणरत्नों की प्रचुर राशि हैं अतएव वेद भगवान आपके चरित्रों का गान करते हैं । अपनी कुञ्ज में बुलाने पर जो कुछ त्रुटि हुई हो, क्षमा करेंगी । मैं आपकी तभी भोजन में रुचि जानूँगी जब आप मुझसे "अमुक वस्तु दो" कहेंगी ॥५१॥

इति षोडशोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

श्रीयुगल सरकारकी भोजनलीलापूर्वक स्नेहपराकी सस्तुति क्षमायाचना ।

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य वचो गतस्मयं तस्या मनोज्ञं करुणैकवारिधिः ।
आश्वास्य तामालिसमूहमध्यगा सवल्लभाऽथारभतात्तुमीश्वरी ॥१॥
ग्रासं विधाय रमणीमणिकण्ठरत्नं श्रीकोशलेन्द्रमहिषीवरशुक्तिजातः ।
प्रादान्मृगाङ्कवदने दयितः प्रियाया प्रेष्ठेन्दुपूर्णवदने दयिता च हृष्टा ॥२॥
तावादतुः प्रेष्ठतमौ सुभोजनं स्वादूच्चरन्तौ च पुनः पुनर्भृशम् ।
मुहुर्मुहुः प्रेष्ठतमाय साऽऽर्पयत्तस्यै तथाऽसौ कवलं रसप्रियः ॥३॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीके अभिमान रहित, इस मनोहर वचनको सुनकर, सखी समूहके बीचमें विराजमान, करुणाकी उपमा रहित सागर स्वरूपा, अन्तर्यामिनी रूपसे प्राणी मात्रपर शासन करने वाली श्रीकिशोरीजीने उन्हें आश्वासन प्रदान कर, प्राणप्यारेजू के सहित भोजन प्रारम्भ किया ॥१॥ श्रीकोशलेन्द्र महिषी (पटरानी) श्रीकौशल्या अम्बाजी रूपी शुक्ति (सीपी) से प्रकट हुये, समस्त सुन्दरी सखियोंकी मणि (श्रीकिशोरीजी) के कण्ठके रत्नवत् शोभा बढ़ानेवाले श्रीप्राणप्यारेजू, श्रीकिशोरीजीके पूर्णचन्द्र समान आह्लादवर्धक श्रीमुखारबिन्दमें तथा प्राणवल्लभा श्रीप्रियाजू, हर्षित हो प्राणप्यारेजूके श्रीमुखारविन्दमें कवल बना-बनाकर देने लगीं ॥२॥ इस प्रकार वे दोनों प्राणप्यारेजू बारं बार वस्तुओंके स्वादका बखान करते हुये सुन्दर भोजनोंको पाने लगे, बारंबार श्रीकिशोरीजी प्यारेको और प्यारेजू श्रीकिशोरीजीको कवल देने लगे ॥३॥

तद्वीक्ष्य वीक्ष्यालिगणाः प्रहर्षं जग्मुर्भृशं मञ्जुलनीरजाक्ष्यः ।
तासां तु नेत्रालिगणा मनोज्ञे तयोर्निपेतुर्मुखपङ्कजे च ॥४॥
आदाय रत्नाञ्चितवारिपात्रं पूर्णं च सख्यौ कमलोदकेन ।
उभे स्थिते पार्श्वे उदीर्णकान्ती संयच्छतः कालमवेक्षमाणे ॥५॥
गायन्ति सख्यो मधुरस्वरेण कूटोक्तिभिस्तौ परिहर्षयन्त्यः ।
न यान्ति तृप्तिं हृदये कथञ्चिन्निरीक्षमाणा ह्यनिशं प्रकामम् ॥६॥
सुव्यञ्जनानि क्वचिदार्यपुत्रो मनोहराङ्गेषु मुदा सखीनाम् ।
उत्क्षिप्य चोत्क्षिप्य विचित्रकेलिर्हसत्यविज्ञातगतिः सकान्तः ॥७॥
न लाघवं तस्य दिदृक्षमाणाः पश्यन्ति कान्तस्य सतां गतेस्ताः ।
पिबन्ति रूपं नयनद्वयेन विस्मृत्य देहस्मृतिमिन्दुमुख्यः ॥८॥
अथो समूचुर्नलिनीदलाक्ष्यो मिथो विदुष्यः परिहासवाक्यम् ।
साश्चर्यमिन्दुप्रतिमाननाश्च तयोर्मनोरञ्जनसाभिलाषाः ॥९॥

श्रीचारुशीलोवाच ।

को यद्भगिन्यां पशुपक्षिसंघा भवार्त्तिशान्त्यै कृतपुण्यपुञ्जाः ।
वर्णाश्च सर्वे विहरन्त्यजस्रं पित्राऽनुजैस्तत्परिरम्भितायाम् ॥१०॥

श्रीयुगल सरकारकी उस आनन्दमयी लीलाको देख देखकर कमललोचना-सखियोंके समूह अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए, अत एव उनके नेत्ररूपी भौरें दोनों सरकारके मनोहर मुख कमल पर जा गिरे ॥४॥ रत्न जटित श्रीकमलाजीके जलसे भरी हुई झारियोंको लेकर विशाल तेजवाली दो सखियाँ श्रीयुगल सरकारके बगलमें उपस्थित हो अवसर देखती हुई उन्हें जल समर्पण करने लगीं ॥५॥ सखियां अपनी कूट (व्यङ्ग) उक्तियों द्वारा श्रीयुगलसरकारको अत्यन्त हर्षित करती हुई मधुर स्वरसे गान करती हैं सततकाल दर्शन करती हुई कभी भी वे किसी-प्रकार दर्शनसे तृप्त नहीं होतीं अर्थात् उत्सुक ही बनी रहती हैं ॥६॥

कभी-कभी विचित्र केलि (अद्भुत खिलाड़ी) श्रीप्राणप्यारेजू अपनी सखियोंके मनोहर अङ्गों पर सुन्दर व्यञ्जनोंको फेंक २ कर, श्रीप्रियाजूके सहित हँसने लगते हैं जब वे उन्हें फेंकते नहीं देख पातीं ॥७॥ सन्तोंके परमाधार, श्रीप्राणप्यारेजूकी हस्त चालन शीघ्रताको देखनेके लिये उत्सुक होनेपर भी वे चन्द्रमुखी सखियाँ नहीं देख पाती थीं अतः शरीर सुधि भुलाकर अपने दोनों नेत्रोंसे श्रीयुगल स्वरूपको पान करने लगीं ॥८॥

उसके पश्चात् वे कमलदललोचना, पूर्णचन्द्रमुखी, विदुषी (पण्डिता) सखियाँ श्रीयुगलसरकारका मनोरञ्जन करानेकी इच्छासे परस्पर आश्चर्यपूर्ण, परिहास वचन कहने लगीं ॥९॥

श्रीचारुशीलादि सखियाँ वोलीं—हे सखियो ! वे कौन हैं ? पिता और भाइयों द्वारा आलिङ्गनकी हुई जिनकी वहिनमें, जन्म-मरण आदिकी पीडा-निवृत्तिके लिये, पूर्व जन्मोंमें पुण्यराशिका सञ्चय किये हुये, चारो वर्ग, पशु, पक्षियोंके समूह सदा विहार करते हैं ॥१०॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

सोऽयं महात्मा मृगपोतनेत्रः सग्रासहस्ताम्बुरुहः प्रियो नः ।
मृषेति भद्रे ! न कथं शृणुष्व वशिष्ठजा नास्य भवेत्स्वसा किम् ॥११॥
भुक्त्वाऽस्य वंशे किल पायसान्नं पतिं विनेष्टाञ्जनयन्ति पुत्रान् ।
सत्याकुमारीभिरनङ्गरूपः कथं ह्युपेक्ष्यो नवसुन्दरीभिः ॥१२॥

श्रीसुभगोवाच ।

अस्वीकृताऽस्य क्षितिपैः प्रजाभिः स्वसार्ऽदिता मन्मथवह्निना सा ।
तपस्विनं चानुजगाम दीना स्वयं सुपीनस्तनभारनम्रा ॥१३॥

श्रीशिव उवाच ।

दृष्ट्वा सलज्जं प्रियमम्बुजाक्षं श्रीचारुशीला निजगाद वाक्यम् ।
सङ्कुच्यते कान्त ! किमर्थमीदृक् त्वयाऽत्र नान्यः सरयूविहारिन् ॥१४॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–हे भद्रे ! वे मृगके वच्चेके समान सुन्दर विशाल शोभायमान नेत्र वाले, अपने हस्तकमलमें कवल (कौर) को लिये हुये महात्मा हमारे श्रीप्यारेजू ही तो हैं। यह सुनकर श्रीचारुशीलाजी बोलीं–नहीं आपका यह कथन झूठा है। यह सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–हे भद्रे ! मेरी यह बात झूठी नहीं, सत्य है। उस पर श्रीचारुशीलाजी प्रश्न करती हैं कि यदि आपकी यह बात सत्य है तो, किस प्रकार ? श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–सुनो–श्रीवशिष्ठ महाराजकी पुत्री श्रीसरयूजी हैं, क्या वे प्यारेकी गुरु बहिन नहीं हैं ? अर्थात् निःसन्देह हैं, पिता (श्रीदशरथ) जी, अनुज (श्रीलक्ष्मणादि) के सहित क्या उनका ये श्रीप्यारेजू आलिङ्गन नहीं करते हैं ? अर्थात् अवश्य करते हैं, तथा सभी वर्णके पुण्यात्मा लोग, एवं पशु, पक्षी भी उनमें विहार करते हैं ॥११॥ श्रीलक्ष्मणाजी बोलीं–अरी बहिनों ! इन प्यारेजूके वंशमें स्त्रियाँ, खीर खाकर ही विना पतिके इच्छानुकूल पुत्र पैदा कर लिया करती हैं, अर्थात् उन्हें सन्तानोत्पादनके लिये पतिकी आवश्यकता ही नहीं रहती। ऐसी बिलक्षण स्त्रियाँ प्यारेके वंशमें हैं। श्रीअवधको नवीन अवस्था सम्पन्ना सुन्दर कुमारी कन्यायें, साक्षात् कामदेवके सदृश विश्वविमोहन स्वरूप वाले इन प्राणप्यारेजूकी भला किस प्रकार उपेक्षा कर सकी होंगी ? ॥१२॥

श्रीसुभगाजी बोलीं–अरी बहिनों एक बात मेरी भी सुनो-अपने स्थूल स्तनोंके बोझसे झुकी हुई इनकी बहिनको जब राजा और प्रजा, किसीने स्वीकार नहीं किया, तब वे स्वयं काम जनित अग्नि से व्याकुल, तथा दीन (विवश) होकर, रूपासक्त तपस्वी (शृङ्गीऋषि) के पीछे चली गयीं ॥१३॥ भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! सखियोंके इन हास्य वचनोंको सुनकर, कमल नयन प्राण-प्यारेजीको लज्जासे युक्त देखकर, श्रीचारुशीलाजी बोलीं–हे कान्त ! हे श्रीसरयूविहारी (सरयूजीमें विहार करने वाले) सरकार ! इन सब गुप्त रहस्य पूर्ण बातोंको आपके अतिरिक्त यहाँ सुनने वाला कोई अन्य है, ही नहीं; तब आप इस प्रकारसे सङ्कुचित क्यों हो रहे हैं ? ॥१४॥

जहास मन्दं तु तदा रसज्ञा निशम्य वाक्यानि रसाप्लुतानि ।
सखीजनानां हृदयङ्गमानि सग्रासपूर्णेन्दुमुखी च तासाम् ॥१५॥
ज्ञात्वेङ्गितं स्नेहपरा तयोस्तदा सुशीतलं स्वादुयुतं सुनिर्मलम् ।
जलं परं तृप्तिकरं समार्पयत्ताभ्यां प्रहर्षाश्रुयुतेन्दुभानना ॥१६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

हितौषधीनां सुरसेन संयुतं दृग्जाजलं सौरभमिश्रितं प्रिये ! ।
दत्तं मयाऽऽचम्यमिदं कृपान्विते ! गृहाण तुष्टा सममार्यसूनुना ॥१७॥
सुस्वादुपृक्तानि रसाप्लुतानि नानाविधानीह फलानि भक्त्या ।
मयार्ऽपितानि प्रिय ! ईप्सितानि सवल्लभा स्वीकुरु भक्तिगम्ये !॥१८॥
गृहाण ताम्बूलमिदं मयार्ऽपितं सवल्लभा मङ्गलपुण्यकीर्त्तने ! ।
सपूगमेलाखदिरादिसंयुतं सचूर्णकं दिव्यसुगन्धवासितम् ॥१९॥

श्रीशिव उवाच ।

ततस्तया पुष्करसन्निभेक्षणौ सौदामिनीसान्द्रपयोदविग्रहौ ।
नीराजितौ हर्षनिमग्नया प्रियौ विदेहकाकुत्स्थकुलाभिनन्दनौ ॥२०॥

इस प्रकार श्रीचारुशीलादि उन सखियोंके हृदयमें प्रवेश कर जाने वाले रसमय वचनोंको श्रवण करके सभी रसोंको पूर्ण रीतिसे जानने वाली श्रीकिशोरीजी पूर्णचन्द्रमा के समान अपने आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द में ग्रास लिए हुए मन्द-मन्द मुस्कराने लगीं ॥१५॥

उस समय हर्षाश्रु युक्त पूर्णचन्द्र समान मुखवाली, श्रीस्नेहपराजी, श्रीयुगलसरकारका सङ्केत जानकर, उन्हें अतीव तृप्तिकारक, स्वादयुक्त, शीतल निर्मल-जल सर्मपित करने लगीं ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे कृपान्विते ! हे प्रिये ! श्रीस्वामिनीजू ! हितकारक औषधियोंके रससे युक्त, सुन्दर सुगन्ध-मिश्रित, मेरे द्वारा समर्पण किये हुये, इस आचमन करने योग्य-श्रीसरयू जलको, प्यारेजूके सहित आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कीजिए ॥१७॥

भक्तिसे ही प्राप्त होने योग्य हे श्रीप्रियाजू ! सुन्दर-स्वाद युक्त, रसपरिपूर्ण, अनेक प्रकारके ईप्सित, मेरे इन समर्पण किये हुये फलोंको, श्रीप्राण प्यारेजूके सहित आप स्वीकार कीजिये ॥१८॥

हे समस्त मङ्गल और पुण्यदायक(नाम, रूप, लीला, धाम)के कीर्त्तन वाली श्रीकिशोरीजी! दिव्य सुगन्धसे सुगन्धित, चूना, कत्था, इलायची और सुपाड़ीसे युक्त, मेरे द्वारा समर्पित इस ताम्बूलबीरेको श्रीप्यारेजू सहित आप ग्रहण कीजिए ॥१९॥

भगवान शिवजी बोले:—हे प्रिये! उसके पश्चात् हर्षमें डूबी हुई उन श्रीस्नेहपराजीने कमलके समान सुन्दरनेत्र, विजली और सघन-मेघके सदृश गौर-श्याम विग्रह, विदेह और काकुत्स्थ वंश-को आनन्द युक्त करने वाले, प्रियाप्रियतम (श्रीयुगलसरकार) की आरती की ॥२०॥

पुष्पाञ्जलिं साऽऽर्घ्य ततः प्रियाभ्यां सुस्वादु दिव्यं च सुधाधिकं वै ।
समार्पयच्छ्रीफलमादरेण सदक्षिणं लोकदृगुत्सवाभ्याम् ॥२१॥
स्तुतिं चकारातिविनम्रभावा प्रफुल्लकञ्जायतचारुनेत्रा ।
निपत्य पादाम्बुजयोर्भगिन्याः सवल्लभायाः करुणाकरायाः ॥२२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

जय निमिवंश–पद्मवन–भास्करभे! शुभदे । जय रघुवंश–वारिनिधि–पूर्ण–सुधाकर ए ॥
जय नलिनार्द्र फुल्लदलचारुशुभाक्षि! शुभे । जय मृगशावकाभकमनीयविलोचन! ए! ॥२३॥
जय सुतिरस्कृतायुतसहस्रविभूषिरते ! जय जय वल्लभानवधिमन्मथमन्मथ ! ए !
प्रजय सरस्वतीजलधिजागिरिजादिनुते ! जय विधिविष्णुशम्भुफणिराजसमीडित! ए! ॥२४॥
जय जय हेमचम्पकतडित्प्रतिमाभतनो ! जय सजलाभ्रनीलमणिनीलसरोजनिभ! ।
धृतमणिचन्द्रिकादिललितप्रवराभरणे ! धृतमुकुटाङ्गदादिवरसुन्दरभूषण ए ! ॥२५॥

पुनः उन्होंने समस्त लोकोंके नेत्रोंको उत्सवके सदृश आनन्द प्रदान करने वाले, दोनों सरकारको पुष्पाञ्जलि समर्पण करके, दक्षिणाके सहित, अमृतसे भी अधिक स्वाद युक्त श्रीफल (नारियल) को आदरपूर्वक समर्पण किया ॥२१॥ पूर्ण खिले हुए कमलवत् विशाल नेत्र वाली उन श्रीस्नेहपराजीने, अति विनम्रभावसे प्राणप्यारेजूके सहित करुणाकी खानि स्वरूपा, अपनी बहिन (श्रीकिशोरी) जूके श्रीचरणकमलोंमें गिरकर बड़े प्रेमसे उनकी स्तुति की ॥२२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे श्रीनिमिवंश रूपी कमल-वनको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यकी प्रभास्वरूपे ! हे आश्रितोंको मङ्गल प्रदान करने वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो ! हे रघुवंशरूपी समुद्रको परम आनन्दित करनेके लिये पूर्णचन्द्रस्वरूप प्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो । हे कमलके सरस पत्रके समान सुन्दर मङ्गल लोचने ! हे शुभ स्वरूपे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो । हे मृगशावक (छौना) के सदृश अत्यन्त चञ्चल सुन्दर लोचन प्यारे ! आपकी जय हो ॥२३॥ करोड़ों शृंगार युक्त रतियोंको अपने सौन्दर्यसे सब प्रकारसे तुच्छ सिद्ध करने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । अपने सौन्दर्यसे अनन्त कामदेवोंके मनको मन्थन करने वाले ! हे श्रीप्राणवल्लभजू ! आपकी जय हो जय हो, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती आदि विशिष्टशक्तियोंके द्वारा सदा स्तुतिकी जाने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । ब्रह्मा, शिव, शेष आदिसे प्रशंसित प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२४॥

सुवर्ण मूर्त्तिके सदृश गौर वर्ण, चम्पापुष्पकी मूर्त्तिके समान सुन्दर सुगन्धयुक्त, बिजलीकी मूर्त्तिके समान कान्ति मय विग्रह वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो जय हो, सजल मेघ व नीलमणिके सदृश प्रकाशयुक्त, सच्चिक्कण श्यामवर्ण, कमलके तुल्य कोमल शरीर वाले हे प्यारेजू ! आपकी जय हो ! मणिमय चन्द्रिकादि विशिष्टतम भूषणोंको धारण की हुई हे श्रीकिशोरीजी आपकी जय हो, मुकुट, बाजूबन्द आदि मुख्य भूषणोंको धारण किये हुये हे प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२५॥

जय जय सूक्ष्मदिव्यबहुवर्णतडिद्वसने ! जय जय पीतदिव्यविमलाम्बरभूषित! ए ।
जय धृतपङ्कजे! ऽतिकमनीयसरोजकरे ! धृत दयितांसचारुजलजातमनोज्ञकर ! ॥२६॥

जय जय आर्यपुत्रहृदयाब्जनिवासगृहे ! जय रसिकेश्वरीहृदयकञ्जसुमन्दिर ए ।
जय जगदुत्सवे ! जनकनन्दिनि ! शीलनिधे ! जय जगदब्धिपूर्णरजनीकर ! दाशरथे ! ॥२७॥

जय नृपसूनुचारुमुखचन्द्रचकोरि ! शुभे ! जय दयितामनोज्ञवदनेन्दुचकोर! हरे ! ।
जय शरणागतार्त्तजनकामदुघाङ्घ्रिनखे ! जय जय भक्तकामविबुधद्रुमपद्मपद! ॥२८॥

जय करुणामृतैकपरिपूर्णमहाजलधे ! जय रसवारिधे ! रसिकशेखर ! वल्लभ ! ए ।
जय पतितैकपावनि! किशोरि ! रसेश्वरि! ए प्रियवर! आश्रितार्त्त जनरक्षणतत्पर! ए ॥२९॥

विजलीके समान प्रकाशमान महीन, दिव्य अनेक रङ्गोंके वस्त्र वाली, हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, जय हो, पीले दिव्य विमल वस्त्रोंसे विभूपित हे प्यारेजू ! आपकी जय हो जय हो। अत्यन्त मनोरम कमलवत् कोमल हाथमें कमलको धारण की हुई हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, श्रीप्रियाजूके कन्धे पर कमलके समान मनोहर सुन्दर हाथ रखे हुये हे श्रीप्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२६॥

प्राणप्रियतमजूके हृदय-कमलमें निवासमहल वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो, जय हो। रस (सगुणपरब्रह्म) प्रधानोंकी स्वामिनी, श्रीकिशोरीजीके हृदय-कमलमें सुन्दर महल वाले हे श्रीप्यारेजू ! आपकी जय हो। स्थावर जङ्गम प्राणियोंको उत्सवके सरीखे आनन्द प्रदान करने वाली, श्रीजनकजी महाराजको भगवदानन्दसे युक्त करने वाली ! हे शीलनिधे ! श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। जगत् रूपी समुद्रको पूर्णचन्द्रके समान आह्लाद युक्त करने वाले ! हे दशरथनन्दन श्रीप्राणप्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२७॥

राजपुत्र, श्रीप्राणवल्लभजूके सुन्दर मुखचन्द्रकी चकोरी ! हे श्रीस्वामिनीजू आपकी जय हो। श्रीप्रियाजूके मनोहर-मुख चन्द्रचकोर ! भक्तोंकी समस्त आपत्तियोंको हरण करने वाले ! हे श्रीप्यारेजू आपकी जय हो। शरणागत भक्तोंके समस्त मनोरथ दायक श्रीचरणनख वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान श्रीचरण-कमल वाले हे श्रीप्यारेजू ! आपकी जय हो ॥२८॥

करुणा रूपी अमृतकी उपमा रहित पूर्ण सागरस्वरूपा हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे रस सागर ! हे रसिकशिरोमणि ! हे वल्लभजू! आपकी जय हो। पतित जीवोंके उपमा रहित पावन करने वाली ! हे समस्त रसोंकी स्वामिनी ! हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे आर्त्त व आश्रित भक्तोंकी रक्षामें तत्पर ! हे प्रियवर ! आपकी जय हो ॥२९॥

जय मम भाग्यदे! प्रियरते! रसिकेशनुते! जय जय वाञ्छितप्रद! सरोरुहलोचन ए।
जय निजकिङ्करी–नियुतकोटिसहस्रवृते! जय नवलाङ्गनानिकरकोटिसुसेवित ए! ॥३०॥

ब्रह्मणे नैव लभ्यो न वै विष्णवे शम्भवे नापि शेषाय नान्येभ्य उ।
यो वरः सोऽद्य मह्यं युवाभ्यां कृतः श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३१॥
यौ च योगेश्वराणामदृश्यौ प्रभू नेति नेतीति वेदैः सदा कीर्त्तितौ।
ताविहोत्तीर्य संक्रीडतोऽनेकधा श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३२॥
हीननेत्रौ विहीनाननौ क्रीडतश्चारुफुल्लार्द्रपाथोजपत्रेक्षणौ।
कोटिराकाक्षपानाथभव्याननौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३३॥
अश्रुती शुक्तिकर्णावपाणी मृदुस्निग्धपाथोजहस्तौ च बिम्बाधरौ।
क्रीडतो निष्कलौ सर्वलोकोत्सवौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३४॥

मेरे इस अपूर्व सौभाग्यको प्रदान करने वाली! हे रसिक-नाथस्तुते श्रीस्वामिनीजू! आपकी जय हो। इच्छित वरदानको देने वाले! हे कमल लोचन प्यारे! आपकी जय हो, जय हो। अनन्त सखियोंसे घिरी हुई हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। अनन्त नव सखियोंसे सेवित हे श्रीप्राणप्यारेजू! आपकी जय हो ॥३०॥

अहह!! जो वरदान न ब्रह्माजीके लिये न भगवान विष्णुके लिये और न शङ्करजीके लिये न शेषजी के लिये न किसी और के लिये ही सुलभ हुआ, उसी वरदानको आज आप दोनों सरकारने मेरे लिये सुलभकर दिया, इस हेतु मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥३१॥ जो आप दोनों सरकार अति सूक्ष्मतमस्वरूप होनेके कारण बड़े-बड़े योगेश्वरोंके भी नयन-गोचर नहीं हो सकते, वेद जिन्हें नेति-नेति अर्थात् ऐसे ही नहीं इतने ही नहीं, बल्कि इससे भी विलक्षण, अनन्त महिमावान् कहते हैं, वे ही इस पृथिवी मण्डलपर दृष्टि गोचर होकर विचित्र प्रकारसे क्रीड़ाकर रहे हैं, अत एव आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजीको मैं नमस्कार करती हूँ ॥३२॥ श्रुति भगवती जिस पूर्ण ब्रह्मको नेत्र, मुख आदि समस्त इन्द्रियों से रहित सिद्ध करती है, वही आप दोनों सुन्दर खिले सरस कमलदललोचन, करोड़ों शरद-पूर्णिमाके चन्द्रतुल्य, अखिल जगदाह्लाद प्रदायक, भावनाके योग्य मुखारविन्द वाले बनकर भक्त-सुखद लीला कर रहे हैं, अतएव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूको नमस्कार करती हूँ ॥३३॥

जिन्हें श्रुति भगवती अश्रुती (श्रवण रहित) कहती हैं वे, ही आप सुन्दर शुक्ति समान कर्णोंसे युक्त हमारे नयनके विषय हो रहे हैं, जिन्हें वह अपाणि (हस्त रहित) सिद्ध करती हैं, वे ही आप कोमल सचिक्कण कमल सदृश शीतल मनोहर हस्तोंसे युक्त, बिम्बाफलके समान लाल अधर वाले, हम सबोंके सामने विराजमान हैं। जिन्हें श्रुति निष्कल (समस्तकलाओंसे रहित) बतलाती है, वे समस्त कलाओंसे युक्त तथा उत्सवके समान सभी लोकोंके सुखद बने हुये हैं, अत एव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू को नमस्कार करती हूँ ॥३४॥

पूर्णकामौ सदा प्रीतिमावाञ्छतौ निस्तनू सर्वलोकाभिरामाकृती ।
क्रीडतौ ह्लादयन्तौ सतां स्वालिभिः श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३५॥
ध्यानगम्यौ मुनीनां कथञ्चित्परौ दिव्यसिंहासनस्थौ मयाऽभ्यर्च्चितौ ।
क्रीडतो ऽनिन्द्रियौ सेन्द्रियौ शोभनौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३६॥
सर्वलोकाशिनौ राजवंशोद्भवौ लालितौ पालितौ मातृभिः पालकौ ।
क्रीडतो दिव्यकेली यथा प्राकृतौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३७॥
या कृता वै युवाभ्यां कृपा मय्यपि प्रोदिताम्भोजपत्रार्द्रनेत्रौ! परा ।
सा च वाचा न वाच्या कृपावारिधी! श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३८॥
श्रीप्रियाया विना सानुकम्पेक्षणं प्राप्तिरस्तीह नूनं दुरापा तव ।
नैव लभ्यं विना वै तया सत्सुखं श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥३९॥

श्रुति जिन्हें पूर्ण काम कहती हैं, वे ही आप सदा जीवोंसे प्रेमकी कामना रखते हैं। जिन्हें वह निराकार कहती है, वे आप अखिल विश्व विमोहन विग्रह (स्वरूप) धारण कर सज्जनोंको आह्लादित करते हुये अपनी सखियोंके साथ लोकपावन लीलायें कर रहे हैं, अत एव आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूको मैं नमस्कार करती हूँ ॥३५॥

जो विशेष साधन सम्पत्तिके द्वारा ही कहीं मुनियोंके ध्यानमें आते हैं, वे परात्पर प्रभु आप दोनों सरकार, मेरे द्वारा पूजित होकर दिव्य सिंहासन पर विराजमान हैं। श्रुतियोंके द्वारा जिन्हें इन्द्रियातीत कहा गया है, वही आप श्रीयुगलसरकार समस्त इन्द्रियोंसे युक्त शोभायमान हैं, अत एव आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूको मेरा नमस्कार है ॥३६॥

जिन्हें श्रुति समस्त लोकोंका कारण सिद्ध करती है, वे आप दोनों राजकुलमें प्रकट हैं, जिन्हें वे श्रुतियाँ अखिल पालक कहती हैं, वे आप दोनों अपनी माताओंसे लालित पालित हैं, जिन्हें श्रुति दिव्य केलि कहती है, वे आप दोनों माया रचित मनुष्योंके सदृश सब लीला कर रहे हैं, अतएव आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥३७॥

खिले कमलपत्रके समान दयापूर्णविलोचन हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आपने मेरे ऊपर जो सर्वश्रेष्ठ कृपाकी है, उसे वर्णनकरने की शक्ति मेरी वाणीमें नहीं हैं, अतः कैसे वर्णन करूँ ? हे कृपावारिधि श्रीयुगलसरकार ! इस असमर्थताके कारण मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥३८॥ हे प्राणनाथजू ! इस लोकमें श्रीप्रियाजूकी कृपावलोकन हुये बिना, आपकी प्राप्ति निश्चय ही दुर्लभ है, और बिना आपकी प्राप्ति हुये आपके नित्य पार्षदोंको प्राप्त सहज सेवा सुख, निश्चय ही दुर्लभ है, अत एव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूको नमस्कार करती हूँ ॥३९॥

या गतिर्दुर्लभा वै मुनीनामपि क्लिष्टयोगव्रतेज्यातपोभिः क्षितौ ।
सैव लभ्येन्दुमुख्याः कृपातः सुखं श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४०॥
नैव येषां गतिः कापि दृष्टा युवां हे प्रियौ स्थो हि तेषां गतिः शाश्वती ।
चेष्टितं विद्महे वै युवाभ्यां न हि श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४१॥
नैव लभ्यौ युवां चेह सर्वैरपि ब्रह्मविष्ण्वादिभिः साधनैर्निश्चितम् ।
तौ हि लभ्यौ कृपामात्रतो वीक्षितौ श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४२॥
नैव भाग्यं कथञ्चिन्मदीयं त्विदं ज्ञायते वां कृपैवेह निर्हैतुकी ।
कुञ्जमभ्येत्य दत्तं सुखं हीदृशं श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४३॥
ईदृशी सत्कृपा मय्यहो सर्वदा चेह कार्या युवाभ्यां जगत्क्षेमदा ।
नापरा काऽपि मे वां गतिर्मे परा श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४४॥
या प्रमादान्मया स्यात्कृता विस्मृतिः क्षम्यतां सा दयालू! मया प्रार्थितौ ।
किङ्करी वामहं पादपद्माश्रिता श्रीप्रियावल्लभाभ्यामतो वै नमः ॥४५॥

जो गति पृथिवी पर मुनियोंके लिये कठिन योग, व्रत, यज्ञ, तप आदिके द्वारा भी दुर्लभ है, वही चन्द्रमुखी श्रीकिशोरीजी की कृपासे सुख पूर्वक प्राप्य हो जाती है, अतः मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार करती हूँ ॥४०॥ जिनकी कोई भी रक्षा करने वाला नहीं दीखता है, उनकी आप दोनों सरकार ही सदा—सर्वदा रक्षा करते हैं, आपने हम सभी चरणाश्रितोंको विलक्षण सुख देने हेतु क्या न क्या चेष्टा की है ? उसे हम कोई नहीं जानती, अत एव आप दोनों सरकारको मैं नमस्कार ही करती हूँ ॥४१॥ साधनोंके द्वारा आप दोनों सरकार ब्रह्मा, विष्णु आदिके लिये भी दुर्लभ हैं, ऐसा श्रुति शास्त्रों तथा मुनिवाक्योंसे निश्चित है, अतः मैंने देख लिया, आप दोनों सरकार केवल अपनी निर्हैतुकी कृपासे ही सुलभ हैं, अन्य साधनोंसे नहीं । अत एव मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजी को नमस्कार करती हूँ ॥४२॥

हे श्रीयुगल सरकार! जिसकी प्रेरणासे आप दोनों सरकारने मेरी कुञ्जमें पधार कर, मुझे इस प्रकारका अपूर्वसुख प्रदान किया है, वह किसी प्रकार भी मेरे भाग्य की नहींउसे मैं आपकी निर्हैतुकी कृपाकी ही प्रबलता जानती हूँ अतः आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये नमस्कार है ॥४३॥

अहो! आप दोनों सरकार जीवलोकमें इसी प्रकार सदा एक रस रहने वाली अपनी विश्व-कल्याणकारिणी निर्हैतुकी कृपा, मेरे प्रति सदा करते रहें, क्योंकि मेरी सर्वोत्तम गति तो आपही दोनों सरकार हैं दूसरा कोई नहीं, एतदर्थ मैं आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूको नमस्कार करती हूँ ॥४४॥ हे दयालु श्रीयुगल सरकार! प्रमादके कारण सत्कार करनेमें जो कुछ मेरी भूल हो गयी हो, मेरी प्रार्थनासे उसे क्षमा करेंगे, क्योंकि मैं आपके श्रीचरण कमलोंकी आश्रित किङ्करी हूँ, इस हेतु आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥४५॥

इति सप्तदशोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

माध्याह्निक विश्रामोत्थान समन्वित श्रीयुगलसरकार की पुष्प शृङ्गार सेवा ।

श्रीशिव उवाच ।

एवं संस्तुतयाऽऽश्वस्ता गृहीतचरणाम्बुजा । मृदुस्वभावया प्रेम्णा विनीतमिदमब्रवीत् ॥१॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

कुरुतं शयनं कलितास्तरणे करुणाम्बुनिधी कृपया त्वचिरम् ।
रचितं शयनीयमिदं सुखदं भवतोः शयनाय सुगन्धयुतम् ॥२॥
क्षमितं वहु कष्टमिदं कृपया भवता प्रभुयुग्म ! मदर्थमहो ।
कुरुतं शयनं कलितास्तरणे करुणाम्बुनिधी ! कृपया त्वचिरम् ॥३॥
परिपूरयतं मम तर्षमिमं प्रिय ! दाशरथे ! मिथिलेशसुते !
कुरुतं शयनं कलितास्तरणे करुणाम्बुनिधी ! कृपया त्वचिरम् ॥४॥

श्रीशिव उवाच ।

तत एव तथेति निगद्य तयोः शयनीयमुपागतयोः सुषमाम् ।
मिथिलेशसुतारघुनन्दनयोः प्रददर्श विनिन्दितकामरतिम् ॥५॥
कुसुमेषुशरासनसुभ्रुयुगौ तरुणाम्बुरुहार्द्रसुचारुदृशौ ।
चलकुण्डलशोभिकपोलयुगौ मधुपावलिकुञ्चितशीर्षरुहौ ॥६॥

भगवान् शङ्करजी बोले, हे पार्वति ! इस प्रकार स्तुति करने पर अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली श्रीकिशोरीजीने प्रसन्न हो, उसे आश्वासन प्रदान किया, तब श्रीस्नेहपराजी ने उनके युगल श्रीचरणकमलोंको पकड़कर विनय पूर्वक यह प्रार्थना निवेदन की ॥१॥

हे करुणासागर श्रीयुगलसरकार ! आपके शयनके लिये यह सुगन्ध युक्त, सुखद शय्या तैयार है, अतः बिछावन युक्त इस सुन्दर शय्यापर कृपापूर्वक थोड़ी देर शयन कर लीजिये ॥२॥

हे अनन्त शोभा सम्पन्न श्रीयुगल सरकार ! आपने मेरे संतोषके लिये बहुत कष्ट सहन किया है, अतः हे करुणासागर ! कृपा करके थोड़ी देर शयन कर लीजिये ॥३॥

हे श्रीमिथिलेशकिशोरीजी ! हे श्रीदशरथनन्दन प्राणप्यारेजू ! आप दोनों करुणाके सागर हैं, एतदर्थ कोमल बिछावन युक्त शय्यापर थोड़ी देर शयन कर लीजिये, और इस कृपा द्वारा मेरे इस मनोरथको सफल कीजिये ॥४॥ भगवान् शङ्करजी बोले हे प्रिये ! "ऐसा ही हो" कहकर श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीरघुनन्दनजू शय्या पर पधारे, तब श्रीस्नेहपराजी काम और रतिको लज्जित करने वाली, दोनों (सरकार) की उपमा रहित (निरतिशय) सुन्दर, शयन-छविका दर्शन करने लगीं ॥५॥ दोनों सरकार की कामदेवके धनुषके समान मनोहर भौंहे, नूतन कमलके समान रसयुक्त अत्यन्त सुन्दर नयन, मणिमय कुण्डलोंसे सुशोभित युगलकपोल, भौंरों की पंक्तियोंके समान काले घुँघुराले बाल ॥६॥

वरकुङ्कुमवर्द्धितभालरुची नवविम्बफलाभमुशोभ्यधरौ ।
करकाभमनोज्ञतडिद्दशनौ घनवैद्युतविन्दुलसच्चिबुकौ ॥७॥
शरणागतसर्वसुभीतिहरप्रणतेप्सितदाम्बुजमञ्जुकरौ ।
धृतसूक्ष्ममनोहरनीलसुपीतनवाद्भुतचारुतडिद्वसनौ ॥८॥
सुरबह्मिफणीशगणेशनुताऽऽश्रितकोटिसुरद्रुमपद्मपदौ ।
पदपद्मजुषां दुरितौघहरद्विजराजचयाभपदाब्जनखौ ॥६॥
निजरूपतिरस्कृतकोटिशतव्रजकामरतिप्रियचारुरुचौ ।
मुनिपुङ्गवहंसमनोनिलये सततं महितौ किल भावनया ॥१०॥
इति ताववलोक्य महासुभगौ न शशाक निरोद्धुमपि स्वमनः ।
कृपया च तदैव तयोरकरोत्पदपङ्कजसेवनमेकगतिः ॥११॥
पुनरिङ्गितमाप्य निरालसयोर्हृदयेश्वरयोरुभयोः सुभगा ।
अनुरागसुनिर्भरसद्धृदया कृतकृत्यमसौ मनुते स्म भवम् ॥१२॥
आदाय पूर्णं मणिवारिपात्रं तयोः सकाशं सरयूदकेन ।
अकारयद्वाचमनं प्रियाभ्यां प्रक्षाल्य पूर्णेन्दुमुखं मनोज्ञम् ॥१३॥

उत्तम केशरकी खौरसे भालकी शोभा विशेष बढ़ रही है नवीन विम्बाफल समान लाल अधर, सुशोभित हो रहे हैं दाडिम (अनार)के दानोंके समान मनोहर दाँत, विजलीके सदृश चमक रहे हैं मेघ और विजलीके सरीखे देदीप्यमान श्यामगौर विन्दु दोनों सरकार की ठोढ़ी पर शोभायमान है ॥७॥ दोनों सरकारके करकमल शरणागत भक्तोंके भयहारी तथा इच्छित मनोरथोंको पूर्ण करने वाले है। दोनों सरकार झीने मनोहर नील पीतरङ्गके नवीन अद्भुत, विजलीके समान कान्तिमय वस्त्रोंको धारण कर रखे हैं ॥८॥

त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), शेष, गणेश आदि जिनकी स्तुति करते हैं, जिनके श्रीचरण-कमलोंके नख आश्रितोंके लिये कोटि कल्पवृक्षके समान कामद तथा सेवकोंके समस्त दुःखोंको हरनेवाले, चन्द्रवत् शीतल, प्रकाशमान तथा आह्लादप्रद हैं ॥६॥

दोनों सरकार अपने स्वरूपसे सौ करोड़ काम और रतिकी मनोहर छविको लज्जित कर रहे हैं, हंसवृत्ति सम्पन्न मुनिश्रेष्ठ अपने मन रूपी मन्दिरमें, भावनाके द्वारा आप दोनों की सदा पूजा करते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य सम्पन्न श्रीयुगल सरकारका दर्शन करके वे अपने मनको निज वशमें रखनेको समर्थ न रह सकीं, अथात् प्रेम विह्वल हो गयीं, पुनः श्रीयुगल सरकारकी कृपासे वे(श्रीस्नेहपराजी) सावधान हो, उनके श्रीचरण-कमलोंकी सेवा करने लगीं ॥११॥ पुनः आलस्य रहित हुये अपने हृदयेश्वर प्राणप्यारी-प्यारेजूका सङ्केत (इशारा) पाकर सौभाग्यवती श्रीस्नेहपराजी अनुराग परिपूर्ण हृदय हो गयीं और अपने जीवनको कृत कृत्य मानने लगीं ॥१२॥ श्रीसरयू जल पूर्ण, मणिमयजलपात्रको, उन्होंने दोनों सरकारके पास लाकर, श्रीप्रियाप्रियतमजूके मनोहर मुखचन्द्रको धो कर आचमनकराया ॥१३॥

पुष्पार्तिकं तर्हि कृतं तया वै प्रदाय पुष्पाञ्जलिमाह पश्चात् ।
इमानि पौष्पाणि विभूषणानि शृङ्गारहेतो रचितानि भक्त्या ॥१४॥
कृपात ऊरीकुरुतं दयालू ! नमो युवाभ्यां रसिकेश्वराभ्याम् ।
प्रीत्येति तस्याः सुवचो निशम्य संभूषयावामिति चोचतुस्ताम् ॥१५॥

श्रीशिव उवाच ।

प्राणप्रियाप्राणपरप्रियौ तौ दृष्ट्वाऽऽत्मनि प्रीतियुतौ प्रकामम् ।
विभूषयामास निदेशमेत्य मनोहराङ्गेषु यथोचितं सा ॥१६॥

तदनन्तर श्रीस्नेहपराजीने श्रीयुगल सरकारकी फूल आरती की, पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान करके हाथ जोड़े हुई वे बोलीः—हे दयालुसरकार! भक्तिपूर्वक फूलोंसे बनाये हुये इन आभूषणोंको शृङ्गार के लिये, आप कृपया स्वीकर कीजिये, एतदर्थ आप दोनों रसिकेश्वरों (भक्तोंकी आज्ञामें चलने वालों) के लिये मैं नमस्कार करती हूँ। भगवान् श्रीशङ्करजी पार्वतोजीसे बोलेः— हे प्रिये ! श्रीयुगलसरकार उन श्रीस्नेहपराजीके प्रेमपूर्वक कहे हुये सुन्दर (विनीत) बचनोंको श्रवण करके बोले :— हे प्रिये ! इन पुष्पाभूषणोंको तुम्हीं धारण करा दो ॥१४॥१५॥

भगवान् शिवजी बोले :— हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीने अपने प्रति दोनों प्राणप्यारे सरकारों को इस प्रकार प्रसन्न देख कर उनकी आज्ञा पाकर भूषणों को इच्छानुसार उन के मनोहर श्रीअङ्गोंमें यथोचित धारण कराया ॥१६॥

इति अष्टादशोऽध्यायः ।

इति-नवाह्नपारायणे प्रथमो विश्रामः ॥

—❀❀❀—

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

प्यारे द्वारा श्रीचन्द्रकलाजी की प्रार्थनाका समर्थन, श्रीकिशोरीजीका झूलन कुञ्ज प्रस्थान ।

श्रीशिव उवाच ।

गत्वा ततश्चन्द्रकलेति नाम्नी यूथेश्वरी ह्यग्रचरी सखीनाम् ।
जयेति संभाष्य विनम्रगात्रा प्रणम्य मूर्द्धना पुनराह वाक्यम् ॥१॥

उसके बाद समस्त सखियोंके आगे चलने वाली, श्रीचन्द्रकला नामकी यूथेश्वरी सखीने श्रीयुगल सरकारके पास आकर जय-जय बोलकर अपने शरीर को झुकाये हुई, सिर से प्रणाम करके यह प्रार्थना, निवेदन की ॥१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

आच्छादितं सान्द्रघनैर्नभस्तलं वर्षन्ति ते मन्दतरं सुधाजलम् ।
त्रिधाऽनिलो वाति सुखप्रदः प्रिये! विभाति पृथ्वी हरिदम्बरावृता ॥२॥
वने मयूराः शुकसारिकाश्च रावं मनोज्ञं कुर्वन्ति हृष्टाः ।
नृत्यन्ति केचित्स्वगणैः समेता इतस्ततो धावति कोकिलश्च ॥३॥
भृङ्गाः प्रमत्ताः प्रपिबन्ति कामं सरोरुहाणां मकरन्दमार्ये ! ।
गुञ्जन्ति धावन्ति सुपुष्पितेषु नवद्रुमेषु प्रिय ! इन्दुवक्त्रे ! ॥४॥
महीरुहाः पुष्पफलैः समन्विताः सुखप्रदा दृष्टिमतां मनोहराः ।
विभाति दृग्जा नवचित्रपङ्कजा प्रवाहशब्दैश्च दिशो भजन्ती ॥५॥
सर्वा हि सख्यो युवयोरिदानीमान्दोलकुञ्जोत्सवमेव कामम् ।
दिदृक्षवः सन्ति किशोरि ! नूनं यथेप्सितं तत्विह संविधत्स्व ॥६॥

श्रीशिव उवाच ।

श्रुत्वा वचः कर्णसुखं सुरुच्यं राजीवनेत्रो रसिकेन्द्रमौलिः ।
स्पृष्ट्वा कराग्रेण मुदा प्रियायास्ततो मनोज्ञं चिबुकं जगाद ॥७॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:– हे श्रीप्रियाजू ! इस समय आकाश सजल मेघोंसे ढका है और वे (मेघ) नन्हीं-नन्हीं बूँदोंसे अमृत रूपी जलकी वर्षा कर रहे हैं, हृदयको अत्यन्त सुख देने वाला त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) पवन भी चल रहा है, पृथिवीदेवी हरे रङ्गके वस्त्रोंको धारण की हुई अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही हैं ॥२॥

विचित्र वर्णके शुक, सारिका (तोता, मैना) आनन्दित चित्तसे वनोंमें शब्द कर रहे हैं और अपने-अपने यूथों से युक्त होकर नृत्य कर रहे हैं, कोयल इधर उधर(हर्षसे)उछल-कूदकर रही है ॥३॥ हे आर्ये ! हे चन्द्रवदने ! हे श्रीप्रियाजू! उन्मत्त भौंरे सुन्दर नवीन फूले हुये वृक्षों पर गूँजते और दौड़ते हैं, तथा इच्छानुसार कमल फूलोंके रसका पान कर रहे हैं ॥४॥

वृक्ष, पुष्प फलोंसे सुशोभित-देखनेसे सुख प्रदान करने वाले, तथा मनको हरण करने वाले हैं, श्रीसरयूजी अपने प्रवाह शब्दको दशो दिशाओंमें व्याप्त करती हुई विविध प्रकारके कमल पुष्पोंसे विशेष शोभाको ग्रहण कर रही हैं ॥५॥

हे श्रीकिशोरीजू ! ऐसा सुअवसर देखकर आप दोनों सरकारकी सभी सखियाँ झूलन कुञ्जका उत्सव इच्छानुसार देखनेके लिये लालायित हो रही हैं, इस विषयमें आपकी जैसी इच्छा हो करनेकी कृपा करें ॥६॥ भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! रसिकेन्द्रमौलि (भक्तोंको-अपना सबसे बड़ा शासक मानने वाले) कमलनयन श्रीप्राणप्यारेजू श्रीचन्द्रकलाजीके कर्णसुखद तथा अपनी रुचि पूर्त्ति करने वाले इन शब्दोंको सुनकर, श्रीप्रियाजूकी मनोहर ठोढीको अपनी अङ्गुलीसे छूकर बोले ॥७॥

ममापि चान्दोलमहोत्सवे प्रिये ! जातोऽभिलाषो हृदये महानयम् ।
श्रुत्वा सखीनां च तथेप्सितं वरं यद्रोचते ते दयिते कुरुष्व तत् ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच

उत्कण्ठितं प्रेष्ठ! यदि त्वयाऽपि हि कार्यस्तदान्दोलमहोत्सवो ध्रुवम् ।
ममाप्ययं रूपनिधे ! महान् प्रियो न तृप्तिमाप्नोति मनः कदाचन ॥९॥
प्रयाहि भद्रे ! क्रियतां प्रबन्धस्तटे सरय्वाश्च वने सुनीपे ।
कलस्वना यत्र विहङ्गमाश्च विचित्रवर्णाः सुभगा मयूराः ॥१०॥
नवद्रुमाः पुष्पफलादिभारैर्विनम्रशाखाभ्रमराभिजुष्टाः ।
भूवारिजाश्चित्रविचित्रवर्णाः सुपुष्पिता भाति सुकेतकी च ॥११॥
विचित्रवृक्षैः सुरवृक्षकल्पैस्तीरोद्भवैः पुष्पफलावनम्रैः ।
द्विजौघजुष्टैरुपशोभिता सा सुगह्वरैश्चारुलतानिकेतैः ॥१२॥
श्रीनेत्रजा यत्र सुधाम्बुपूर्णा मरालवृन्दैरधिकं विभाति ।
प्रोत्फुल्लकञ्जैः परिशोभिता च प्रियालि! माणिक्यतटीङ्गितज्ञा ॥१३॥

सरकार बोलेः—हे प्रिये ! सखियोंका मनोरथ सुनकर मेरे हृदयमें भी झूलनेकी बड़ी इच्छा हो रही है, परन्तु हे प्रियतमेजू ! अब आपकी जिसमें रुचि हो वही उत्सव करनेकी कृपा करें ॥८॥ श्रीकिशोरीजी बोलीं:—हे प्राणप्यारेजू ! यदि झूलनोत्सवके लिये आपकी भी इच्छा है तो, निश्चय ही उसको करना है, क्योंकि हे रूपनिधे श्रीप्यारेजू ! मुझे भी यह उत्सव महान प्रिय है, इस उत्सवसे तो मेरा मन कभी भी तृप्त नहीं होता ॥९॥

श्रीप्यारेजूसे इतना कहकर श्रीकिशोरीजी एक सखीसे बोलीं—हे कल्याणी ! तुम श्रीसरयूजी के किनारे कदम्ब वनमें जाओ, तथा जहाँ बड़ी ही मीठी बोली बोलने वाले विचित्र रङ्गके सुन्दर मोर पक्षी हैं वहाँ झूलनका प्रबन्ध करो ॥१०॥

जहाँ भौरोंसे सेवित, पुष्प फलोंके भारसे झुकी हुई डालियों वाले नवीन वृक्ष हैं, चित्र-विचित्र रङ्गके जहाँ गुलाब हैं, सुन्दर फूली हुई केतकी जहाँ शोभा दे रही है ॥११॥

जहाँपर श्रीसरयूजी पक्षिसमूहोंसे सेवित, कल्पवृक्षके समान प्रभावशाली, किनारे पर उत्पन्न पुष्प फलादिसे झुके हुये, विचित्र वृक्षों तथा सुन्दर गह्वरों और लतागृहोंसे सुशोभित हैं ॥१२॥

हे प्रियसखी ! जहाँ पर अमृत समान जलसे परिपूर्ण सङ्केतको भली भाँति समझने वाली, श्रीसरयूजी, उस हंसवृन्द तथा फूले हुये कमलोंसे विशेष शोभा पा रही हैं और उनके दोनों किनारे मणियों से बँधे हैं उस कदम्ब बनमें जाकर झूलनोत्सवका प्रबन्ध करो ॥१३॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति सोक्तवेन्दुकला नता तामान्दोलकुञ्जाधिकृतान्तिकं च ।
संप्रेषयामास सखीं सुविज्ञां श्रीप्रेयसोरागमसूचनार्थे ॥१४॥

ततस्तु चालौकिकदम्पती तावलौकिकैर्दिव्यगुणैः परीतौ ।
अलौकिकाकर्षणयुक्तदिव्यसौन्दर्यसंभूषितसर्वगात्रौ ॥१५॥

निवेशितौ सादरमम्बुजाक्षौ श्रीजानकीपङ्क्तिरथात्मजौ तौ ।
प्रेमाश्रुमुख्या विनयेन दिव्ये मृद्वंशुके रत्नमये सुपीठे ॥१६॥

सुचर्वणं मिष्टफलान्यथैव ददौ सुनैवेद्यमपि प्रियाभ्याम् ।
ताम्बूलवीटीं रचितां स्वहस्तैः प्रदाय नीराजनमेव चक्रे ॥१७॥

ततस्तयोः सा प्रणतिं विधाय तस्थौ समीपे किल बद्धपाणिः ।
आश्वासिता श्लक्ष्णवचोभिराद्यैः सकान्तया श्रीमिथिलेन्द्रपुत्र्या ॥१८॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे प्रिये! श्रीकिशोरीजीकी इस आज्ञाको सुनकर, श्रीचन्द्रकलाजीने "ऐसा ही होगा" कहकर झूलन कुञ्जकी अधिष्ठात्री सखीके पास श्रीयुगलसरकारके शुभागमनकी सूचना देनेके लिये, मनके वेगके समान शीघ्र पहुँचने वाली सुविज्ञा सखीको भेजा ॥१४॥

तदनन्तर प्रमाश्रुमुखी श्रीस्नेहपराजी ने लोकोत्तर दिव्य गुणोंसे युक्त, अलौकिक आकर्षण सम्पन्न, दिव्य सौन्दर्य-विभूषित-सकल अङ्गों वाले, अलौकिक प्रियाप्रियतम, कमलनयन श्रीजनक-नन्दिनी—दशरथनन्दनप्यारेजूको आदर पूर्वक विनयके सहित कोमल विछावन युक्त रत्नमय सुन्दर चौकी पर विराजमान किया ॥१५॥१६॥

पुनः अनेक प्रकारके सुन्दर, चर्वण (चबेना) और मीठे फलोंका नैवेद्य श्रीयुगल सरकारको अर्पण किया पश्चात् अपने हाथोंसे बनाये पान बीड़ोंको प्रदान करके, उनकी आरती की ॥१७॥

प्रणाम करके वे प्रेम विह्वल हो गयीं, पुनः श्रीप्राणप्यारेजूके सहित श्रीकिशोरीजीके अनुपम, मृदुल, सस्नेह वचनोंके द्वारा आश्वासन पाकर (श्रीस्नेहपराजी) हाथ जोड़कर समीपमें जा बैठीं ॥१८॥

इति एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ विंशोऽध्यायः ।

झूलन – महोत्सव ।

श्रीशिव उवाच ।

विमानमारुह्य मुदा तदानीं नरेन्द्रसूनुर्नरराजपुत्री ।
समन्वितौ सर्वसखीनिकायैः प्रजग्मतुश्चारुवनं सुनीपम् ॥१॥
आन्दोलकुञ्जाधिकृता निशम्य विमानशब्दं परमप्रहृष्टा ।
सुस्वागतार्थं जनकात्मजायाः प्रत्युज्जगाम प्रियपार्श्वगायाः ॥२॥
प्रणम्य नीराजनमुत्सवं च चकार भक्त्या नलिनाक्षयोः सा ।
नीतौ तयाऽऽन्दोलनिकुञ्जमाद्यं सखीगणैर्गीतगुणौ प्रियौ तौ ॥३॥
लतासुवेश्मानि मनोहराणि तटे सरय्वाश्च विशालकानि ।
सौवर्णदण्डैश्च विनिर्मितानि सुगन्धवातैः परिषेवितानि ॥४॥
ध्वजापताकावरतोरणानि सुपुष्पमाल्यैः परिशोभितानि ।
विहङ्गमैश्चापि सुकूजितानि रम्यातिरम्याणि नभःस्पृशानि ॥५॥
पीतारुणश्वेतविनीलवर्णैर्लसन्ति पुष्पै रचितानि रुच्यैः ।
पयोमणिक्ष्मापरिशोभितानि नवाम्बुदस्तम्भमयानि यत्र ॥६॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः–हे प्रिये ! उस समय श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्री दशरथनन्दन प्यारे, दोनों सरकार, सखीवृन्दोंके सहित विमानमें विराजमान होकर कदम्ब बन पधारे ॥१॥

विमानके शब्दको सुनकर झूलन कुञ्जकी मुख्य सखी परम हर्षको प्राप्त हो, प्यारेजूके बगलमें विराजमान, श्रीकिशोरीजूका सुन्दर (यथोचित) स्वागत करनेके लिये आगे बढ़ी ॥२॥

प्रणाम करके बहुत ही प्रेम पूर्वक, उसने कमलनयन दोनों श्रीयुगल सरकारका आरतीमहोत्सव मनाया, और सखियोंने गुणगान किया, उसके बाद वे सखियाँ दोनों श्रीप्रिया प्रियतमजूको उस अनुपम झूलन कुञ्जमें ले गयीं ॥३॥

श्रीसरयूजीके जिस किनारे पर सोनेके दण्डोंसे बनाये हुये सुगन्धित वायु (हवा) से सेवित ध्वजा पताका वन्दनवारसे युक्त सुन्दर फूलों की मालाओं से सजाये, पक्षियोंके मधुर शब्दसे गुञ्जायमान, आकाशका स्पर्श करनेवाले (अत्यन्त ऊँचे), बहुतही रमणीय, लता भवन हैं जिनमें कोई-कोई निकुञ्ज, जस्तके रङ्गके समान मणि भूमिसे सुशोभित, नवीन मेघोंके सदृश मणिमय स्तम्भों (खम्भों) से युक्त, पीत, लाल, श्वेत, नील रङ्गके फूलोंसे बनाये हुये अत्यन्त शोभा दे रहे हैं ॥४॥५॥६॥

अर्घ्यादिकं तत्र विधाय मुख्या आन्दोलकुञ्जस्य सखी सुभक्त्या ।
प्रादर्शयद्दीपमथ प्रियाभ्यामाघ्राप्य धूपं स्मितमोहनाभ्याम् ॥७॥
समर्प्य दिव्यानि नवानि ताभ्यां फलानि मिष्टानि सुधोपमानि ।
उत्साहवीर्यादिविवर्द्धकानि सुस्वादुसौगन्धयुतानि हृष्टा ॥८॥
चकार नीराजनमम्बुजाक्षी सुकार्यभक्त्याऽऽचमनं प्रियाभ्याम् ।
ताम्बूलवीटीं परिदिश्य पश्चात् सखीसहस्त्रैर्बहुवाद्ययुक्तैः ॥९॥
प्रदत्तपुष्पाञ्जलिरिन्दुमुख्या नतोरुभाला परमादरेण ।
पपात पादाम्बुजयोः परस्य पुरः प्रियायाः सदयाम्बकायाः ॥१०॥
उत्थापिता सा च कृतप्रणामा प्रोवाच बद्ध्वाञ्जलिमादरेण ।
श्रीस्वामिनि ! प्रेष्ठ ! मया च दास्या कृतः प्रबन्धो युगदोलनाय ॥११॥
कृत्वेममान्दोलमहोत्सवं च निजाश्रितानां सुखमावह त्वम् ।
एकाग्रचित्तेन च द्रष्टुकामाः सर्वाः स्थिता अत्र समुत्सुका हि ॥१२॥
ओमित्यथाभाष्य सुदम्पती तावुत्थाय दत्तांसभुजौ कृपालू ।
आन्दोलके तर्हि सुसज्जिते च निविश्य तौ रेजतुरालिवृन्दे ॥१३॥

उस झूलन कुञ्जमें-वहाँकी मुख्य सखीने सुन्दर मन्द मुस्कानसे सारे स्थावर जङ्गम प्राणियों को मोहित कर लेने वाले, श्रीयुगल सरकारके लिये, भक्तिपूर्वक, अर्घ्य आदिकी विधि करके, धूप देकर दीपकका दर्शन कराया ॥७॥ पुनः उत्साह, पराक्रम वृद्धि कारक सुन्दर स्वादु. सुगन्धसे युक्त, नवीन, दिव्य, अमृतके समान मीठे फलोंको समर्पण कर बड़े ही हर्षको प्राप्त किया ॥८॥ तत्पश्चात् आचमन कराके प्रियाप्रियतम श्रीसीतारामजूको पानका बीरा देकर बहुत प्रकारके बाजोंके साथ हजारों सखियोंके सहित, उस कमललोचना (झूलन कुञ्जकी प्रधान सखी) ने उनकी आरती की ॥९॥

उसके बाद दोनों सरकारको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके सिरको झुकाये हुई बड़े ही आदर पूर्वक परात्पर प्यारे सरकार तथा चन्द्रमुखी, सदयलोचना, श्रीप्रियाजूके श्रीचरण कमलों के आगे गिर गयी ॥१०॥ श्रीयुगल सरकारके उठाने पर उसने प्रणाम किया, और हाथ जोड़-कर आदर पूर्वक बोलीं:-हे श्रीस्वामिनीजू ! हे प्राण प्यारेजू ! दासी ने युगल झूलन का प्रबन्ध कर लिया है ॥११॥ अतएव इस झूलनोत्सवको प्रारम्भ करके, आप अपने समस्त आश्रितों का सुख बढ़ाने की कृपा कीजिये, क्योंकि-आपकी ये सभी सखियाँ एकाग्र चित्तसे इस उत्सवका दर्शन करनेकी अभिलाषा से यहाँ बड़ी ही उत्सुकता से विराज रही हैं ॥१२॥

भगवान् श्रीशङ्करजी बोले:-हे प्रिये! झूलन कुञ्जकी अधिष्ठात्री (मुख्य) सखीकी यह प्रार्थना सुनकर, वे कृपालु सुन्दर दम्पती श्रीसीतारामजी, परस्पर कन्धेपर भुजा रखे हुये उठे और बहुत उत्तम रीति से सजाये हुये झूलन पर बैठकर सखियोंके झुण्डमें सुशोभित हुये ॥१३॥

आन्दोलयामासुरतीवपुण्याः सख्यस्तयोः प्रेमनिमग्नचित्ताः ।
काश्चिज्जगुर्ह्लादकरं मनोज्ञं मल्हारराग रसवर्द्धनं च ॥१४॥
काश्चिच्च वाद्यानि सुवादयन्त्यो दृक्सम्पुटाभ्यां स्म पिबन्ति हृष्टाः ।
स्वरूपमाधुर्यसुधां तयोश्च कृपैकलभ्यां न हि यत्नसिद्धाम् ॥१५॥
काश्चिन्मयूरीव घनं निरीक्ष्य सौदामिनीदामसमावृतं च ।
सहप्रियं प्रेष्ठमतुल्यरूपं विलोकयन्त्यो ननृतुः स्त्रियस्ताः ॥१६॥
आनन्दमत्ताः पुलकायमाना अपास्तदेहस्मृतयो मृगाक्ष्यः ।
जडीकृता रूपसुधैकपानाद्विहारिणा प्रेष्ठतमेन सख्यः ॥१७॥
काश्चिच्च पुष्पाणि सुसौरभानि तयोरुपर्युत्तमकानि भूयः ।
जयेति सम्भाष्य निगूढभावा हर्षप्रकर्षाद्ववृषुः समेताः ॥१८॥
प्रियां तदाऽऽन्दोलयितुं किलेशो ब्रह्मादिकानां स्वयमेव कामम् ।
संप्रार्थयामास विनम्रभावः कृताञ्जलिस्ताश्च सखीः प्रियायाः ॥१९॥

तब दोनों सरकारके प्रेममें डूबे चित्त वाली, अत्यन्त पुण्य शीला सखियाँ श्रीयुगल सरकार को झुलाने लगीं और कुछ आह्लादकारी, आनन्दकी वृद्धि करनेवाला मनोहर मल्हार राग गाने लगीं ॥१४॥ कुछ सखियाँ अनेक बाजोंको सुन्दर बजाती हुई हर्षित हो, अन्य साधनोंसे अलभ्य, केवल कृपासे ही प्राप्त होने योग्य, श्रीयुगल सरकारकी स्वरूपसुधा माधुरी का पान अपने नेत्र रूपी दोनों द्वारा करने लगीं ॥१५॥

विजलीकी माला से युक्त मेघको देखकर जैसे मोरनी नाचने लगती हैं वैसे ही श्रीकिशोरी जीके सहित अतुल्य रूप (तुलनामें न आसकने योग्य) सौन्दर्य वाले प्राणप्यारेजूका दर्शन करती हुई वे सभी सखियाँ नाचने लगीं ॥१६॥

वे मृगलोचना सखियाँ, आनन्दमें मस्त, पुलकायमान होती हुई, अपने शरीरकी सुधि बुधि भूल गयीं, झूलनविहारी श्रीप्राणप्यारे सरकारने अपनी रूप माधुरीका पान कराके सभी सखियों को जड़ (बेभान) बना दिया ॥१७॥

तदनन्तर छिपे भाववाली कुछ सखियाँ संमिलित रूप से हर्षवाहुल्यके कारण, जय हो, जय हो, बोलकर श्रीयुगलसरकार पर सुन्दर सुगन्ध युक्त उत्तम फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥१८॥

उस समय ब्रह्मादिकों पर भी शासन करने वाले प्राणप्यारे सरकारने, श्रीप्रियाजूको अपने हाथसे स्वयं झुलानेकी इच्छासे, विनम्र भाव हो, श्रीप्रियाजूकी उन (झुलाने वाली) सखियोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की ॥१९॥

श्रीराम उवाच ।

यूयं हि धन्याः कृतपुण्यपुञ्जाः सख्यः प्रियायाः करुणापयोधेः ।
सेवारताः श्रीनिमिवंशजाता भद्रं सदा वः खलु तत्सुखिन्यः ॥२०॥
ज्ञात्वा निजं भूरिनतं प्रियायाः सम्बन्धतो मामपि भूरिभागाः ।
सेवाधने कञ्चिदनुग्रहेण स्वकीयके यच्छत भागमद्य ॥२१॥

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य वचः प्रियस्य निगूढभावान्वितमार्यसूनोः ।
उरः स्पृशं वाक्यविदां वरिष्ठा आन्दोलयेति प्रियमूचुराल्यः ॥२२॥
निदेशमासाद्य तदा सखीनां सस्मेरपार्वेन्दुनिभाननानाम् ।
श्रीकोशलाधीशसुतो ऽवतीर्य मणिक्षितौ पाणिगृहीतरज्जुः ॥२३॥
आन्दोलयामास विशुद्धभावो
विगाढभावेन रसैकमूर्त्तिः ।
अशेषदिव्याभरणाञ्चिताङ्गो
निःशेषदिव्याभरणाञ्चिताङ्गीम् ॥२४॥

अरी सखियों ! आप लोगोंका सदा मङ्गल हो आप लोगोंने पूर्वजन्ममें पुण्यपुञ्ज (जप, तप, व्रत यज्ञ, दान, पाठ, पूजा आदि समस्त सत्कर्मों) को विधिवत् किया है, अतएव निमिवंशमें जन्म लेकर करुणालया श्रीकिशोरीजीके ही सुखमें सुख मानने वाली, उनकी सेवा परायणा सखी हुई हैं, अतः निश्चय ही आप सब धन्य हैं ॥२०॥

अरी बड़भागिनी सखियों ! मैं बहुत बहुत प्रणाम करता हूँ, आप लोग श्रीप्रियाजूके सम्बन्धसे हमें अपना समझकर आज अपने सेवा रूपी धनमें से कुछ थोड़ा सा भाग, कृपा करके हमें भी प्रदान करें ॥२१॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे प्रिये ! अत्यन्त गूढ़ भाव युक्त, हृदयको परम प्रिय लगने वाले श्रीप्यारेजूके इस वचनको सुनकर, वाणीका अर्थ समझनेमें वे परम चतुरी सखियाँ बोलीं:— हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आप भी "झुला लीजिये" ॥२२॥

भगवान शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! मुस्कान युक्त चन्द्रमुखी सखियोंकी आज्ञा पाकर श्रीकोशलेन्द्रकुमार सरकारने झूलनसे मणिरचित भूमि पर उतरकर, अपने हस्त कमलसे झूलनकी डोरी पकड़ ली ॥२३॥

अपने श्रीअङ्गोंमें सम्पूर्ण भूषणोंको धारण किये हुये विशुद्ध (ब्रह्म) भाव युक्त, श्रीप्राणप्यारे सरकारजी, नखसे शिखा पर्यन्त सभी दिव्य आभूषणोंको श्रीअङ्गोंमें धारण की हुई रसकी उपमा रहित मूर्त्ति, श्रीकिशोरीजीको झुलाने लगे ॥२४॥

पीताम्बरः श्यामल एक एकां नीलाम्बरां हाटकगौरमूर्तिम् ।
सुखैकधामा सुभगः किरीटी सुखैकरूपां मणिचन्द्रिकाढ्याम् ॥२५॥

तडिन्नभां मेघनिभः शुभां शुभो नीलाम्बुजाक्षीमरविन्दलोचनः ।
ताटङ्ककर्णां मणिकुण्डलश्रुतिः कान्तां स कान्तः कमनीयविग्रहाम् ॥२६॥

प्रेम्णाऽतिगाढ़ेन सखीनिकाये तद्रूपमाधुर्यमवेक्षमाणः ।
आन्दोलयंस्तां न जगाम तृप्तिं श्रीकोशलाधीशसुतप्रधानः ॥२७॥

हर्षप्रमत्ताश्च बभूवुराल्यो जयेति रम्यां गिरमुच्चरन्त्यः ।
मुहुर्मुहुस्ताः कुसुमान्यवर्षन्नुत्फुल्लनीलाम्बुजपत्रनेत्राः ॥२८॥

दिव्यं प्रसूनं ववृषुश्च देवाः संशुश्रुवे दुन्दुभिनिःस्वनश्च ।
सुधाकणान्सूक्ष्मतरानवर्षन् विनद्य मन्दं मधुरं पयोदाः ॥२९॥

आमोदमादाय ववुश्च वाताः सुशीतलाः सत्वरताविहीनाः ।
मधुव्रताः पङ्कजशङ्किनश्च परिभ्रमन्ति स्म तयोः पुरस्तात् ॥३०॥

तदा चकोराश्च समेत्य तत्र सुविस्मिताश्चन्द्रमुखं निरीक्ष्य ।
कावागतो ऽयं सुरलोकवासी कृत्वा कृपां चेति हि मेनिरे ते ॥३१॥

श्यामशरीर, अद्वितीय (उपमारहित), पीताम्बर धारण किये हुये सुखके धाम, सर्वसौन्दर्य, सम्पन्न किरीटधारी, मेघवर्ण, मङ्गलमय, अरुणकमलदललोचन, कानोंमें मणिमय कुण्डल धारण किये हुये, श्रीप्राणप्यारेजू, तुलनासे रहित, सुवर्णके समान गौर वर्ण, नीलाम्बर धारण की हुई, सम्पूर्ण सुखोंकी सर्वश्रेष्ठ मूर्त्ति, मणिमय चन्द्रिकासे विभूषित, बिजलीके समान कान्ति से युक्त, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, नीलकमलदललोचना, अत्यन्त मन-हरण, सुन्दर, विश्व-मोहनविग्रहा, कर्णफूल कानोंमें धारण की हुई श्रीप्रियाजूको ॥२५, २६॥

सखियोंके झुण्डमें अत्यन्त गाढ़ प्रेमपूर्वक झुलाते हुये श्रीकोशलराजकुमारों में प्रधान प्यारेजू, श्रीप्रियाजूकी स्वरूपमाधुरीका पान करते, तृप्त नहीं हुए ॥२७॥ श्रीकिशोरीजी को झुलाते हुये सरकारको देखकर, पूर्ण खिले नीले कमलपत्रके समान विशाल लोचना सखियाँ, वारं बार मङ्गलमय जय जय शब्द उच्चारण करती हुई, हर्षसे पागल हो, दोनों सरकार पर पुष्प बरसाने लगीं ॥२८॥ देवगण दिव्य (कल्पवृक्षके) फूलोंकी बरसा करने लगे, नगाड़ोंका शब्द सुनाई देने लगा, मेघ गर्जना करके धीरे धीरे अत्यन्त नन्हें नन्हें अमृत कणोंको बरसाने लगे ॥२९॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगी, मुख, नेत्र, हस्त-पादारविन्दादि के दर्शन करते हुये कमल पुष्पोंकी आशङ्कासे, भौंरे दोनों सरकारके आगे घूमने लगे ॥३०॥ उस समय वहाँ आकर श्रीयुगलसरकारके मुखचन्द्रका दर्शन करके चकोर विस्मित हो गये, पुनः हमारे प्रिय स्वर्गलोकवासी यह चन्द्रदेव, हम सब पर कृपा करके ही आज भूतलमें पधारे हैं, ऐसा वे मानकर अत्यन्त हर्षित हुए ॥३१॥

अथेङ्गितं प्राप्य च लब्धकामः प्रियाकराम्भोजगृहीतपाणिः ।
समारुरोहाशु पुनश्च तस्मिन्नान्दोलके पुष्पमये सुरम्ये ॥३२॥
एवं निकुञ्जे परिदोल्यमानौ सुदम्पती तौ सरयूर्विलोक्य ।
हर्षप्रवेगाज्जलमुत्क्षिपन्ती सा श्रावयामास रवं विचित्रम् ॥३३॥
कादम्बकान् हंसततिं झषादीन् विचित्रमत्स्यान्परिधावमानान् ।
संक्रीडमानान्ससुखं मिथो वै प्रादर्शयत्स्वात्मनि संस्थितांश्च ॥३४॥
तौ वीज्यमानौ परितः सखीभिः सुपुष्कराणां व्यजनैः सुखार्हौ ।
आन्दोलके पुष्पमये विचित्रे विरेजतुस्तौ परिदोल्यमानौ ॥३५॥
पुष्पाम्बरौ पुष्पविभूषणौ तौ सालस्यकाम्भोजदलायताक्षौ ।
विजृम्भमाणौ च मुहुर्मुहुस्ता उदीक्ष्य सख्यो विनयेन चोचुः ॥३६॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

हे स्वामिनि ! प्रेयसि हे कृपालो ! प्राणेश ! राकाधिपमोहनश्रीः ।
भद्रं युवाभ्यां श्रमितौ स्थ इत्थं विसृज्यतां दोलमहोत्सवोऽयम् ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

विज्ञाय सा चेष्टितमम्बुजाक्ष्याः प्रियस्य चान्दोलगृहालिमुख्या ।
आज्ञां समादाय सुमुख्यकायाश्चन्द्रप्रभाया दुहितुः प्रविज्ञा ॥३८॥

इस प्रकार अपने मनोरथको भली भाँति पूर्णकरके श्रीप्राणप्यारीजूके हस्तकमल द्वारा अपना हाथ पकड़े जाने पर, श्रीप्रियतमजू श्रीप्राणप्यारीजूका संकेत पाकर उस मनोहर, पुष्पमयभूलन पर पुनः विराजमान हो गये ॥३२॥ इस प्रकार भूलनकुञ्जमें सखियोंके द्वारा भुलाते हुये श्रीयुगलसरकारका दर्शन करके, हर्षकी विशेष वृद्धिके कारण जलको उछालती हुई, श्रीसरयूजी विचित्र शब्द सुनाने लगीं ॥३३॥ पुनः अपने उदरमें रहने वाले, दौड़ते और परस्पर क्रीड़ाकरते हुयेवत्तख, हंस, मगरतथा विचित्र प्रकारके मत्स्य आदिकोंका दर्शन कराने लगीं ॥३४॥

चारों ओरसे सखियों द्वारा फूलके बने हुये पङ्खोंसे सेवित होते हुये, वे सदा ही सुखके योग्य, श्रीयुगलसरकारजू विचित्र, पुष्पमय भूलनपर भूलते हुये बहुत ही शोभाको प्राप्त हुये ॥३५॥

फूलोंके वस्त्र फूलोंके ही भूषण धारण किये आलस्य युक्त कमल नयन दोनों सरकारको बारंबार जम्भाई लेते हुये देखकर सखियाँ विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगीं ॥३६॥

हे श्रीस्वामिनीजू! हे प्राणप्यारीजू! हे कृपामयि! हे प्राणनाथजू! हे शरद्पूर्णचन्द्र विमोहन कान्तिवाली श्रीकिशोरीजू! आप दोनों सरकारका मङ्गल हो। हे श्रीप्रियाप्रियतमजू! अब आप निश्चय ही थक गये होंगे अत एव आजके इस भूलन महोत्सवको विसर्जित कीजिये ॥३७॥

भगवान शंकरजी बोले हे प्रिये! सखियोंके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर भूलन कुञ्जकी प्रधान सखीने कमललोचना श्रीप्रियाजू तथा प्राणप्यारेजूका संकेत समझकर श्रीचन्द्रकलाजूकी आज्ञा पाकर ॥३८॥

प्रचक्र आन्दोलविसर्जनार्त्तिकं तदाह्निकं गानसुयन्त्रवादनैः ।
समर्प्य पुष्पाञ्जलिमादरात्तदा रोमाञ्चिताङ्गी निपपात पादयोः ॥३९॥
ततस्तु सर्वालिगणाः शुभास्या प्राणेश्वरौ प्राणपरप्रियौ तौ ।
श्रीजानकीराघवयोः पदाब्जे सुकोमले संजगृहुः प्रणम्य ॥४०॥

सुन्दर गान वाद्यके सहित उस दिनके झूलनकी विसर्जन-आरती की, पुनः वह मङ्गल मुखी सखी उस, समय पुष्पाञ्जलि समर्पण करके, रोमाञ्चित शरीर हो, श्रीयुगलसरकारके श्रीचरण कमलोंमें गिर पड़ी ॥३९॥

उसके पश्चात् सभी मङ्गलमुखी सखियोंके वृन्दने अपने दोनों प्राणाधिक, प्राणनाथ, श्रीयुगल सरकारको प्रणाम करके उनके सुन्दर, कोमल, श्रीचरणकमलोंको पकड़ लिया ॥४०॥

इति विंशोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथैकविंशोऽध्यायः ।

श्री सरयूतट विहार पूर्वक श्रीयुगलसरकारका रत्नसिंहासन भवनागमन तथा सखियोंका मङ्गलगान ।

श्रीशिव उवाच ।

ततः परस्तान्निमिसूर्यवंश्यौ सौन्दर्यमाधुर्यमहासमुद्रौ ।
आन्दोलिकायाः परयन्त्रितायाः उत्तेरतुस्तौ स्मयमानवक्त्रौ ॥१॥
छत्रं समादाय कराम्बुजेन तावन्वगात्काचनपौष्पमेकम् ।
काश्चित्तयोः पार्श्वगता वराङ्गयो नीत्वा स्वहस्ते व्यजनं विचित्रम् ॥२॥
सुचामरे हस्तगते च कृत्वा सख्यो स्थिते दक्षिणपार्श्वके च ।
ताम्बूलपात्रं च पतद्ग्रहं च करे गृहीत्वोपगते मनोज्ञे ॥३॥

तदनन्तर सौन्दर्य माधुर्यके महान् समुद्र, मन्द-मन्द-मुस्कान युक्त, श्रीमुखारविन्द वाले निमि-सूर्यवंशी, श्रीयुगल सरकार उस झूलनसे उतर गये ॥१॥

कोई सखी उपमा रहित सुन्दर, फूलोंसे बनाये हुये छत्रको अपने हस्त कमलमें लेकर, दोनों सरकारके पीछे चली और कुछ श्रेष्ठलक्षण युक्त, अङ्ग वाली सखियाँ, विचित्र शोभा युक्त पङ्खोंको अपने हस्तमें धारण किये हुये, बगलमें चलने लगीं ॥२॥

दो सखियाँ सुन्दर चँवर अपने हाथमें लेकर श्रीयुगल सरकारके दाहिनी ओर खड़ी हुई और कोई पानदान हाथमें लेकर आगे और कोई पीकदान लिये समीप चलने लगीं ॥३॥

पुण्ड्रेक्षुखण्डानि नितान्तमिष्टान्यादाय तष्टानि सुसज्जितानि ।
फलानि चान्यानि मनोरमाणि तस्थुश्च काश्चिद्धृतरुक्मदण्डाः ॥४॥
अरिक्तहस्ताभिरुभौ समेतौ वरांशुकाभूषणभूषिताभिः ।
संसेव्यमानौ परितः सखीभी रमाविधात्रीगिरिजोपमाभिः ॥५॥
प्रजग्मतुस्तौ पुलिने सरय्वा मत्तेभशार्दूलमरालगत्या ।
विचेरतुस्तत्र यथा सुखं च तदीयकल्लोलविलोलदृष्टी ॥६॥
सरोजनेत्रौ तडिदम्बुदाभौ निरीक्ष्य तौ विश्वविमोहनाङ्गौ ।
मत्स्यादयो वीतभयाः समेतास्तयोः पुरस्ताज्जलजन्तवश्च ॥७॥
हंसा उपागत्य तयोः पदाब्जे लुठन्ति नृत्यन्ति परिक्रमन्ति ।
स्पृष्टाश्च ताभ्यां जनजीवनाभ्यां निमील्य चक्षूँषि कलं स्वनन्ति ॥८॥
कादम्बकाद्या जलकुक्कुटाश्च समाययुर्वीतभयाः समेत्य ।
विक्रीडितुं तीव्रतरप्रमोदात्समन्ततस्तत्र तदा मयूराः ॥९॥
विभिन्नवर्णाश्च मृगाश्चकोरा विभिन्नवर्णाः शुकसारिकाश्च ।
आगत्य नाथौ परितोषयन्ति निजैर्निजैर्मुख्यगुणैः सुभक्त्या ॥१०॥

कुछ सखियाँ मणिमय थालोंमें सजाये हुये, अत्यन्त मीठे छीले गन्नोंके टुकड़ों तथा फलोंको लेकर और कुछ श्रीयुगल सरकारकी सेवापरायणा अनेक सौभाग्यशालिनी, सखियाँ, सुवर्णकी छड़ियोंको हाथमें लेकर अपने प्राणोंसे अधिक प्यारे दोनों सरकारके दाहिने बायें खड़ी हो गयीं ॥४॥ श्रीलक्ष्मीजी, श्रीविधात्रीजी, श्रीपार्वतीजी जिनकी उपमा देने योग्य हैं, उन श्रेष्ठ वस्त्र भूषणों से भूषिता सेवा वस्तु युक्त हस्तकमलवाली सखियोंके द्वारा, अनुराग पूर्वक चारों ओरसे सेवित होते हुये ॥५॥ मस्त हाथी, सिंह और हंसकी चालसे वे दोनों श्रीयुगल सरकार श्रीसरयूजीके किनारे पधारे, और वहाँ उनकी तरङ्गोंकी शोभा देखनेके लिये चञ्चल दृष्टि किए सुखपूर्वक टहलने लगे ॥६॥ उसी समय कमल दलके समान विशाल सुन्दर नयन, मेघ और बिजुलीके सदृश कान्ति, विश्वविमोहन अङ्ग, उन दोनों सरकारका दर्शन करके मछली आदिक जलके जीव, भय छोड़कर उनके सामने आगये ॥७॥

हंस, पासमें आकर श्रीयुगल सरकारकी परिक्रमा करते हैं, पुनः आनन्दमें मस्त हो नृत्य करते हैं और श्रीचरणकमलोंमें लोटने लगते हैं, पुनः भक्तोंके जीवन स्वरूप श्रीयुगलसरकारके श्रीकर-कमलोंका स्पर्श पाकर, वे आँख मीचकर सुन्दर बोली बोलते हैं ॥८॥

जल कुक्कुट (जलके मुरगा) बत्तख आदि मिलकर निर्भयता पूर्वक आगये, एवं आनन्दयुक्त, मोर भी चारों ओरसे अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करनेके लिये युगलसरकारके समीप आ पहुँचे ॥९॥

अनेक प्रकारके मृग, चकोर, शुक (तोता) सारिका (मैना) आदि आ-आकर अपने-अपने मुख्य गुणोंके द्वारा बड़े ही प्रेमपूर्वक, अपने स्वामी श्रीसीतारामजीको प्रसन्न करने लगे ॥१०॥

प्राणेश्वरो तान्पदयोः प्रपन्नान् स्पर्शेन संभाव्य सहाशनेन ।
यथोचितं सत्कुरुतः स्म सर्वान् सरित्तटस्थावभिजातहर्षौ ॥११॥
सुतर्पितांस्तानवलोक्य सख्यः प्रियाप्रियाभ्यां मधुरस्मिताभ्याम् ।
विज्ञापयामासुरतीवनम्राः श्रीरत्नसिंहासनसद्मवेलाम् ॥१२॥
प्रेष्ये तदैवाययतुः सकाशं श्रीजानकीश्रीरघुराजसून्वोः ।
श्रीरत्नसिंहासनमुख्यकायास्तौ नेमतुस्ते शिरसा निपत्य ॥१३॥
आज्ञां समादाय कृताञ्जली ते तावूचतुः प्राणपरप्रियौ च ।
वेला व्यतीतेति विचार्य सद्यः संप्रेषिते स्वः किल मुख्यसख्या ॥१४॥
समागतैर्दर्शनलालसैश्च प्रियौ ! जनैराकुलितो निकेतः ।
विना युवाभ्यां न हि शोभतेऽसौ यथाऽक्षिहीनं कमनीयगात्रम् ॥१५॥
मुहुर्मुहुर्मार्गमवेक्षमाणा दिदृक्षया व्यग्रमनाः सखी वाम् ।
कृपानिधे! स्वामिनि! हे किशोरि! प्राणप्रिय! प्रेष्ठ! दयामयेति ॥१६॥

श्रीसरयूजीके किनारे पर विराजमान, श्रीयुगलसरकार अत्यन्त हर्षको प्राप्त हो, अपने श्रीचरणोंमें आये हुये, उन बड़भागी जीवोंको स्पर्श व भोजन प्रदानके द्वारा संतुष्ट करके सभीका यथोचित सत्कार करने लगे ॥११॥ मधुर मधुर मुस्कराते हुये श्रीप्रियाप्रियतमजूके द्वारा, उन सभी आगन्तुक जीवोंको भली भाँति तृप्त किये देखकर, अत्यन्त विनम्रभाव वाली सखियोंने श्रीयुगल सरकारको श्रीरत्नसिंहासन नामक महल में पधारनेकी, उपस्थित बेलाका, स्मरण करवाया ॥१२॥ उसी समय श्रीरत्नसिंहासन कुन्जकी प्रधान सखीकी दो दूतियाँ श्रीजनकनन्दिनी-रघुकुलनन्दन श्रीसीतारामजूके, पास आपहुँची, पुनः उन्होंने उनके श्रीचरण-कमलोंमें गिरकर सिर झुकाके प्रणाम किया ॥१३॥

पुनः आज्ञा पाकर वे हाथ जोड़े हुई श्रीप्रियाप्रियतमजूसे बोलीं:-हे श्रीयुगल सरकार ! आपका, अपने महल पधारनेका समय व्यतीत हो गया विचार कर, (श्रीरत्नसिंहासनकी) मुख्य सखीजूने हम लोगोंको यहाँ भेजा है ॥१४॥

हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे आये हुये लोगोंसे वह रत्नसिंहासन भवन पूर्ण भर गया है, परन्तु बिना आपके पधारे वह इस प्रकार शोभाहीन प्रतीत होता है-जैसे दोनों नेत्रोंसे हीन सुन्दर शरीर ॥१५॥

रत्नसिंहासनकी मुख्य सखी आपके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे बारं बार आपके आगमनकी बाट देखती हुई व्यग्र चित्त हो "हे कृपा निधेजू ! हे श्रीस्वामिनीजू ! हे श्रीकिशोरीजू ! हे श्रीप्राणप्यारेजू ! हे प्रेष्ठाजू ! ॥१६॥

समुच्छ्वसन्ती प्रलपत्यधीरा नैवागतावित्यधुनाऽपि कस्मात् ।
कृत्वा कृपां शीघ्रमितो दयालू गन्तुं रुचिं धत्तमदः सुखाय ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा सदयाम्बुजाक्षी हे प्रेष्ठ ! गच्छाव इतोऽचिरेण ।
प्रियं समाभाष्य समुत्थितेति दृष्ट्वोदतिष्ठद्दयितोऽपि तां सः ॥१८॥
सर्वाभिरारुह्य मृगेक्षणाभिर्विद्युज्जवं तौ तु महाविमानम् ।
आसेदतुस्तत्क्षणमेव दिव्यं श्रीरत्नसिंहासनमुख्यवेश्म ॥१९॥
ध्वजापताकावरतोरणाढ्यं जाम्बूनदस्तम्भसहस्रयुक्तम् ।
गुल्मान्वितं दामविभूषितं च मनोहरं शक्रसभाधिकं तत् ॥२०॥
चिरस्थिता द्वारि तदालिमुख्या कृत्वाऽऽर्तिकं हर्षनिमग्नचित्ता ।
उत्तार्य तस्मान्महतो विमानादारोप्य चान्यत्र सखीविमाने ॥२१॥
गृहान्तरं सा ऽनयदासु हृष्टा सुदम्पती प्रेमनिधी स्मितास्यौ ।
सर्वाङ्गनाभिर्मृगदीक्षणाभिः पुष्पाम्बराभूषणमोहनाङ्गौ ॥२२॥

हे दयामय ! आपने किस कारण अभी तक पधारनेकी कृपा नहीं की" ? इस प्रकार ऊर्ध्वश्वास लेती हुई वह, अधीर होकर प्रलाप कर रही है, अत एव हे दयालु सरकार ! अब कृपा करके उस सखीको सुखी करने के लिये यहाँसे श्रीरत्नसिंहासन भवन शीघ्र पधारनेकी रुचि करें १७॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे प्रिये ! इस प्रकारसे रत्नसिंहासन कुञ्जकी मुख्या सखी के द्वारा भेजी हुई सखियोंकी प्रार्थना सुनकर, वे दयापूर्ण कमल-लोचना श्रीकिशोरीजी, प्राण-प्यारेजूसे बोलीं–हे प्यारे ! यहाँसे अब शीघ्र पधारें, ऐसा कहकर श्रीप्रियाजू उठ खड़ी हुईं। उन्हें उठी देखकर श्रीप्राणप्यारेजू भी उठ खड़े हुये ॥१८॥

विद्युज्जव (विजलीके वेगके समान चलने वाले) विशाल विमान पर श्रीयुगलसरकार, मृग-नयनी सखियोंके साथ विराजमान होकर, क्षणमात्रमें ही उस दिव्य रत्नसिंहासन नामके मुख्य महलमें जा पहुँचे ॥१९॥ छोटे २ वृक्षोंकी पंक्तिसे युक्त, मालाओं से सुसज्जित, सोनेके हजार खम्भोंसे शोभायमान, ध्वजा-पताका तथा श्रेष्ठ वन्दनवारसे युक्त, जनसमुदायसे गुञ्जायमान, वह भवन बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रहा था ॥२०॥

बहुत देरसे अपने द्वारपर खड़ी हुई रत्नसिंहासन कुञ्जकी मुख्य सखीजू श्रीयुगल सरकारकी आरती करके हर्ष निमग्नचित्त हो सभी विशाललोचना सखियों सहित पुष्पोंसे बनाए हुए वस्त्र-भूषणों से अलङ्कृत अपने श्रीअङ्गकी छटासे समस्त जड़-चेतनां को मोहित करने वाले प्रेमके भण्डार, मुस्कानयुक्त मुखकमलवाले सुन्दरदम्पती श्रीसीतारामजीको उस विशाल विमान से उतार कर दूसरे सखी-विमान में विराजमान करके भीतर भवनमें ले गयीं ॥२१॥२२॥

आघ्राप्य धूपं च सुगन्धयुक्तं प्रादर्शयन्मङ्गलदीपमाली ।
निधाय सस्वादुसुतेमनानि पुनश्च सौवर्णविशालपात्रे ॥२३॥

नैवेद्यहेतोर्नियताञ्जलिः सा समर्पयामास समादरेण ।
अनेकशः प्रार्थनया विनीता जलं सरय्वाश्चपके निधाय ॥२४॥

यद्रोचते सुष्ठुतया प्रियाभ्यां ददाति सा तद्विपुलं स्म वस्तु ।
पुनः पुनः प्रार्थनयोरुभक्त्या श्रीजानकीपङ्क्तिरथात्मजाभ्याम् ॥२५

सुस्वादयुक्तं त्वमृतोपमानं रुचिं समुत्प्रेक्ष्य ददौ सुतोयम् ।
त्यक्तामृतस्वाद्वशनस्पृहाभ्यामकारयत्स्वाचमनं सभावम् ॥२६॥

प्रक्षाल्य पूर्णेन्दुमुखं च हस्तौ तयोः पयः पानमकारयत्सा ।
ताम्बूलवीटीं पुनरेव दत्वा नीरजयामास सुदम्पती तौ ॥२७॥

प्रदत्तपुष्पाञ्जलिरात्मनाथौ ननाम शीतांशुमुखी सुभक्त्या ।
आश्वासिता सर्वदृगुत्सवाभ्यामवाप धैर्यं विरहाकुला सा ॥२८॥

वहाँ पहुँचने पर उस सखीने श्रीयुगल सरकारको सुन्दर गन्धयुक्त धूप सुँघाकर, मङ्गलमय दीपक दिखाया, पुनः सुवर्णके विशाल पात्र(थाल) में स्वादिष्ट व्यञ्जनोंको सजाकर तथा गिलासमें श्रीसरयू जल रखकर, बड़े ही आदर पूर्वक अनेक प्रकारकी प्रार्थना सहित विनम्र भाव से हाथ जोड़कर श्रीयुगल सरकारको नैवेद्य समर्पण किया ॥२३॥२४॥

श्रीयुगल सरकार, जिन-जिन पदार्थोंको रुचि पूर्वक ग्रहण करते थे उन-उन को वह विशेष श्रद्धा और प्रार्थनापूर्वक, बारं बार अधिक मात्रामें समर्पण करने लगी ॥२५॥

पुनः श्रीयुगलसरकारकी रुचि देखकर उसने अमृतके समान सुन्दर स्वादयुक्त श्रीसरयूजल प्रदान किया, पश्चात् अमृत समान हितकर स्वादिष्ट भोजन से विरत हुए श्रीयुगल सरकारको उसने भाव पूर्वक आचमन कराया ॥२६॥

तदनन्तर श्रीयुगलसरकारके पूर्णचन्द्र सदृश विश्वसुखद श्रीमुखारविन्द, और हस्त कमलोंको धोकर दुग्धपान कराया पुनः पानका बीरा प्रदान कर, दोनों सरकारकी आरती उतारी ॥२७॥

पश्चात् पुष्पाञ्जलि समर्पित कर, उस चन्द्रमुखी सखीने, भक्तिपूर्वक अपने दोनों श्रीस्वामिनी स्वामीजीको प्रणाम किया किन्तु बादमें होनेवाले वियोगको याद करके वह उसी क्षण व्याकुल हो गयी, पुनः सभी प्राणियोंके नेत्रोंको उत्सवके समान विशेष आनन्द प्रदान करने वाले दोनों सरकारका आश्वासन पाने पर उसे धैर्य प्राप्त हुआ ॥२८॥

सहस्रपत्रस्य च मध्यदेशे वैडूर्यमुक्तामणिनिर्मितस्य ।
महार्हरत्नाञ्चितदामयुक्ते श्रीरत्नसिंहासन आलिवृन्दैः ॥२९॥
निवेशितौ सादरमम्बुजाक्ष्या प्रियाप्रियौ प्राणधने मनोज्ञौ ।
विरेजतुस्तौ विधुकोटिकान्ती सरोजहस्तौ सरसीरुहाक्षौ ॥३०॥
स्कन्धार्पितस्निग्धभुजौ रसेशौ रसाश्रयौ कुञ्चितकुन्तलौ तौ ।
सस्मेरकोटीन्दुमनोहरास्यौ विम्बाधरौ पुष्करसन्निभाक्षौ ॥३१॥
तौ लज्जितानन्तरतिस्मरच्छबी विनीलपीतांशुकमण्डिताङ्गकौ ।
महार्हदिव्याभरणैश्चमत्कृतौ तडिद्घनस्पर्द्धिसुशोभनद्युती ॥३२॥
प्रकाशयन्तौ प्रभया सभागृहं सुपीतनीलोत्पलपाणिपल्लवौ ।
सखीसहस्रैर्जयतः सुसेवितौ श्रीजानकीदाशरथी प्रियाप्रियौ ॥३३॥
माधुर्यसौशील्यगुणोपपन्नौ लावण्यपाथोनिधिसत्कृतौ च ।
जगच्चकोरेन्दुसहस्रकल्पौ सुखास्पदौ प्राणपरप्रियौ तौ ॥३४॥

उस कमल-लोचना सखीने, वैडूर्य (लाल रङ्गकी मणि) मुक्ता और अन्यान्य मणियोंसे बनाये हुये, सहस्रदल कमलके मध्य भागमें बहुमूल्य रत्नोंसे अलङ्कृत मालाओंसे सजाए हुये, रत्नमयसिंहासन पर, सखी वृन्दों सहित दोनों प्राणधन, मनहरण श्रीप्रियाप्रियतमजूको विराजमान किया, उस सिंहासन पर कमल–नयन, चन्द्रसे, करोड़ गुणा अधिक कान्ति युक्त श्रीयुगल प्रभु अपने हस्तमें कमलको लिये हुये बहुत ही शोभाको प्राप्त हुये ॥२९॥३०॥

परस्पर एक दूसरे के कन्धे पर अपनी अत्यन्त सच्चिक्कण भुजाको रखे हुये, समस्त रसोंके स्वामी और कारण, कुञ्चित (घुँघुराले) केश युक्त, मन्द मुस्कानसे सुशोभित, करोड़ों चन्द्रमाओंको मुग्ध करने वाले श्रीमुखारविन्दसे युक्त, बिम्बाफलके सदृश अरुण अधर वाले तथा कमलके समान विशाल नयनसे सुशोभित, अपने श्रीअङ्गकी शोभासे अनन्त रति और कामके सौन्दर्यको लज्जित करने वाले, नीलाम्बर पीताम्बरसे विभूषित, बहुमूल्य दिव्य भूषणोंसे देदीप्यमान श्रीअङ्ग, कान्तिसे बिजली और मेघको ईर्ष्या युक्त करने वाले, करकमलोंमें नील पीत कमलको धारण किये हुए, सहस्रों सखियोंसे सेवित, दोनों श्रीयुगल सरकार, (श्रीजनकनन्दिनीरघुनन्दन प्यारे) जू, अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे, उस सभा-भवन (श्रीरत्नसिंहासन कुञ्ज) को प्रकाश युक्त करते हुये सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित हुए ॥३१॥३२॥३३॥

जो सौशील्यमाधुर्य गुणों से युक्त, लावण्य सागर से सत्कृत, सहस्रों चन्द्रमावत् जगत्रूपी चकोर के आह्लादक सर्व सुखस्थान तथा प्राणाधिक प्यारे हैं ॥३४॥

श्रीचन्द्रिकारत्नकिरीटयुक्तौ सुकुञ्चितस्निग्धशुभालकौ च ।
सुर्चचितस्निग्धविशालभालौ पञ्चेषुकोदण्डनिभभ्रुवौ तौ ॥३५॥
विशालकञ्जायतमोहनाक्षौ नासामणिद्योतितनासिकौ च ।
बिम्बाधरौ दाडिमचारुदन्तावादर्शसूक्ष्माञ्चितशुभ्रगण्डौ ॥३६॥
ताटङ्ककर्णोत्पलचित्तचौरौ सुकम्बुकण्ठौ सुनिगूढजत्रू ।
सकङ्कणस्निग्धभुजङ्गबाहू भजज्जनाभीतिकराब्जपाणी ॥३७॥
हारौघदिव्यद्धृदयप्रदेशौ काञ्च्याऽन्वितौ सूक्ष्मकटी सुजङ्घौ ।
रम्भोरुयुग्मौ सुनिगूढगुल्फौ सुनूपुरालङ्कृतपद्मपादौ ॥३८॥
सुधाकरश्रेणिनखौ मनोज्ञौ सतां गती सर्वनिषेव्यसेव्यौ ।
सिन्दूरपुञ्जाङ्घ्रितलौ प्रवर्षदप्राकृतानन्दसुधाकटाक्षौ ॥३९॥

जो दोनों सरकार चन्द्रिका और किरीटसे युक्त हैं, चिकनी, घुंघराली मनोहर जिनकी अलकावली हैं, जिनके विशाल मस्तकपर चन्दन आदिकी खौर लगी हुई है । कामदेवके धनुषके समान जिनकी सुन्दर तिरछी भौंहें हैं ॥३५॥

कमलदलके समान जिनके विशाल व मनोहर नेत्र हैं । नासामणिके द्वारा जिनकी नासिका चमक रही है । विम्बाफल (कुन्दरु) के समान लाल २ जिनके अधर व ओष्ठ हैं । अनारदानोंके समान जिनकी सुन्दर चमकदार दन्तपङ्क्ति है । शीशाके समान प्रतिबिम्ब ग्रहणकारी जिनके अलंकृत कपोल हैं ॥३६॥

कर्णफूल और कुण्डलोंकी शोभासे जो सभीके चित्तको चुरा रहे हैं । शङ्खके आकारका जिनका बड़ा ही सुन्दर कण्ठ (गला) है । गलेसे कण्ठतक आनेवाली हड्डी जिनकी छिपी हुई है । सर्पके समान जिनकी चिकनी सुडौल भुजायें कङ्कण (कङ्गना) व कड़ोंसे विभूषित हैं । जिनके करकमल भक्तोंको अभयदायक हैं ॥३७॥ जिनका हृदयप्रदेश हार समूहोंसे प्रकाशित हैं । सिहके समान जिनकी पतली कमर है । कमरमें करधनी धारण किये हैं । केलाके खम्भके समान चिकने, सुडौल, रोमरहित जिनके सुन्दर जङ्घे हैं । पैरकी गाँठे छिपीहुई हैं । जिनके श्रीचरणकमल नूपुरोंसे अलंकृत हैं ॥३८॥ चन्द्रपङ्क्तिके समान जिनके नखोंकी शोभा है । सज्जनोंके जो एकही आधार हैं तथा सभी सेवनीय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके लिये भी जो परम आराधनीय हैं । जिनके श्रीचरणकमलके तलवे सिन्दूरकी ढेरीके समान लाल हैं । जिन दोनों सरकारका कटाक्ष, भगवदानन्दरूपी अमृतकी वर्षा कर रहा है ॥३९॥

छत्रावृतौ स्मेरमृगाङ्कवक्त्रौ मन्दस्मितौ मङ्गलवीक्षणौ च ।
निजालिभिश्चामरसेव्यमानौ संपश्यतां दृष्टिमनोहरन्तौ ॥४०॥
सुसुन्दरौ वीक्ष्य जयेति चोक्त्वा नेमुश्च तौ प्रेमपरिप्लुताक्ष्यः ।
क्षणं तु निःशब्दमभूद्गृहं तज्जनाश्च तौ द्वौ स्तिमिता अपश्यन् ॥४१॥
तत्राययुः श्रीभरतादयोऽपि सर्वेऽनुजा भानुकुलोद्भवाश्च ।
पुरौकसां देवि ! तथैव पुत्राः प्रिया वयस्या अवलोकनाय ॥४२॥
सम्मानितास्ते च कृतप्रणामाः सर्वे हि ताभ्यां परमादरेण ।
उपाविशंस्तेऽपि तदा निदेशात्कृपाकटाक्षेन निरीक्षिता द्राक् ॥४३॥
गुरूंश्च मातॄः स्वयमेव भक्त्या प्रणेमतुस्तौ सुपवित्रकीर्त्ती ।
दासैर्मुदा वन्दितवारिजाङ्घ्री नीराजयामास गृहालिमुख्या ॥४४॥
देवा मुनीन्द्रा ऋषयश्च सिद्धा गन्धर्वविद्याधरचारणाश्च ।
कलत्रिणः किन्नरनागयक्षा दिदृच्छयाऽथोऽप्सरसः सहर्षाः ॥४५॥
तत्राभ्युपेता अखिलाण्डनाथौ सोपायनाम्भोजकराः शुभाङ्गाः ।
उभौ नमस्कृत्य सुतुष्टुबुस्ते नमस्कृताः सादरमेव ताभ्याम् ॥४६॥

जिनका मुखारबिन्द, छत्रसे आवृत पूर्णचन्द्रके सदृश सर्वाह्लादक, प्रकाशमय है, जिनकी मन्द मुस्कान, व दर्शन मङ्गलमय है, अपनी सखियों द्वारा चँवरसे सेवित, तथा दर्शन करनेवालों के नेत्र और मनको हरण करनेवाले, अपने आश्रितोंपर प्रेमपूर्ण दृष्टि फेंक रहे हैं उन दोनों सुन्दर श्रीयुगलसरकारका दर्शन करके, प्रेमाश्रुयुक्त लोचना सखियाँ "जय हो, जय हो" कहकर उन्हें प्रणाम करने लगीं, उस समय, क्षण मात्रके लिये सारा भवन निःशब्दसा होगया, सब लोग मूर्त्तिके समान एकटक दृष्टिसे दोनों सरकारका दर्शन करने लगे ॥४०॥४१॥ भगवान् शङ्करजी बोले—हे देवि! उस श्रीरत्नसिंहासन कुञ्जमें श्रीभरत, लषण, रिपुसूदन आदि सभी सूर्यवंशी भैया तथा सरकारके प्रियसखा, जो पुरवासियोंके पुत्र थे, वे भी दर्शनोंके लिए सब वहाँ आगये ॥४२॥

उन सभीने श्रीयुगल सरकारको प्रणाम किया, दोनों सरकारने उनका बड़े ही आदर पूर्वक सम्मान किया, तब वे उनकी कृपाकटाक्षसे अवलोकित हो, आज्ञा पाकर समीपमें जा विराजे॥४३॥

अत्यन्त पवित्र कीर्त्तिवाले, श्रीयुगलसरकारने श्रद्धापुरःसर अपने गुरु और मातृवर्गको स्वयं प्रणाम किया तदनन्तर दोनों सरकारके श्रीचरणकमलोंमें दासवर्गके हर्षपरिपूर्ण हृदयसे प्रणामकर लेनेपर प्रधान सखीने उनकी आरती की ॥४४॥

अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीयुगलसरकारका दर्शन करनेकी उत्कण्ठासे, अपने हाथोंमें अनेक प्रकारकी भेंट(उपहार)लिये, मङ्गलमय विग्रह धारण किये हुये उस समय अपनी-२ धर्मपत्नियों के सहित देव, मुनीन्द्र, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, यक्ष, अप्सरायें वहाँ आगयी, उन सभीको श्रीयुगलसरकारने बड़े आदरपूर्वक नमस्कार किया । वे सभी दोनों सरकारको प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥४५॥४६॥

त उदिताम्बुरुहायतलोचनौ प्रणयपूर्णकृपामृतवारिधी ।
करुणयाऽऽर्द्रदृशाऽनुकटाक्षिता विहितपङ्क्तिपदाः समुपाविशन् ॥४७॥
सख्यस्तदानन्दनिमग्नचित्ता दत्तांसबाहू समुदीक्ष्य कामम् ।
तावात्मनाथौ तडिदम्बुदाभावेकस्वरेणोचुरुदारभावाः ॥४८॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

सीरध्वजानन्दसुविग्रहाभ्यां श्रीकोशलाधीशदृगुत्सवाभ्याम् ।
स्वाभाविकाह्लादविवर्द्धनाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥४९॥
ताराधिपस्पर्द्धिशुभाननाभ्यामादर्शतुल्याङ्कितगण्डकाभ्याम् ।
प्रोत्फुल्लकञ्जाञ्जितलोचनाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५०॥
रामाजनैरञ्चितमस्तकाभ्यां विम्बाधराभ्यां मधुरस्मिताभ्याम् ।
नासामणिद्योतितनासिकाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५१॥
माल्यैर्विचित्रैर्विविधैर्वृताभ्यां सकङ्कणस्निग्धकराम्बुजाभ्याम् ।
तडिद्घनाभाकृतिमोहनाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५२॥

पुनः उन कृपारूपी अमृतके समुद्र, प्रफुल्ल कमलके समान विशाल लोचन श्रीयुगलसरकार की दयार्द्र दृष्टिका कटाक्ष प्राप्त करके वे, पङ्क्ति बाँधकर समीप में बैठ गये ॥४७॥

उस समय बिजली और मेघके समान प्रकाशमान, परस्पर, एक दूसरेके कन्धेपर भुजा रखे हुये, अपने दोनों श्रीस्वामिनी-स्वामीका दर्शन करके सखियोंके चित्त आनन्द समुद्रमें डूब गये, अतः उदारभावा अर्थात् जिनका भाव सब कुछ प्रदान करने वाला बन जाता है, वे सभी एक स्वरसे बोलीं ॥४८॥ श्रीसीरध्वज महाराजके आनन्दकी सुन्दर मूर्त्ति, श्रीदशरथजी महाराजके नेत्रोंको उत्सवके सदृश नित्य आनन्दप्रद, अपने सहज स्वभावसे आश्रित जनों की आह्लाद वृद्धि करने वाले हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा सुमङ्गल हो ॥४९॥

अपने परम आह्लादप्रद प्रकाश युक्त मुखारविन्दकी छटासे चन्द्रमाको और अपने कपोलों की प्रतिविम्ब-ग्रहण शक्तिसे शीशेको, ईर्ष्या (डाह) युक्त करने वाले, पूर्ण खिले कमलके समान विशाल अञ्जनयुक्त नयन, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा ही सुमङ्गल हो ॥५०॥ सखियोंके द्वारा तिलक तथा खौर आदिकी रचनासे युक्त मस्तक, बिम्बाफल के समान लाल–लाल अधर, मधुर मुस्कान, तथा नासामणिसे प्रकाशित नासिका वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सतत सुमङ्गल हो ॥५१॥

विचित्र रचना युक्त, अनेक प्रकारकी मालाओंसे ढके वक्षः स्थल तथा कङ्कण युक्त सचिक्कण करकमल वाले, बिजली और मेघकी कान्तिको अपने श्रीअङ्गकी छटासे मुग्ध करने वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा ही सुमङ्गल हो ॥५२॥

यतात्मभिर्भाव्यपदाम्बुजाभ्यां सुधाकरस्पर्द्धिनखद्युतिभ्याम् ।
महार्हदिव्याम्बरभूषिताभ्यां प्रियाप्रियौ वामनिशं ! सुभद्रम् ॥५३॥
मञ्जीरहाराङ्गदकण्ठभूषैरलङ्कृताभ्याममृतेक्षणाभ्याम् ।
कलापपीताम्बरबद्धकट्यौ ! प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५४॥
गजेन्द्रमुक्ताञ्चितमण्डनाभ्यां सङ्गच्छिदाभ्यां ललितेक्षणाभ्याम् ।
तिरस्कृतासङ्ख्यरतिस्मराभ्यां प्रियाप्रियौ वामनिशं सुभद्रम् ॥५५॥
लम्बाब्जदामाहितदीप्त्युरोभ्यां नवालिवृन्दैः समुपासिताभ्याम् ।
सचामरच्छत्रवृताननाभ्यां प्रियाप्रियौ ! वामनिशं सुभद्रम् ॥५६॥
एवं वदन्तीषु सखीषु तासु ह्यदृष्टवाणी श्रुतिगोचराऽभूत् ।
सा वर्ण्यते भक्तिरसप्रपूर्णा श्राव्या त्वयैकाग्रहृदाऽऽत्मलब्ध्यै ॥५७॥

जिन्होंने चित्तको अपने वशमें कर लिया है, उन्हें भी अपने जीवनकी सफलता-प्राप्तिके लिये जिनके श्रीचरण कमलोंका चिन्तन परमावश्यक है, जिनकी नख–कान्तिसे चन्द्रमा अपने मानभङ्गकी आशङ्कासे ईर्ष्या(डाह)करता है, जो बहुमूल्य दिव्य, प्रकाश युक्त वस्त्र और भूषणोंसे विभूषित हैं उन आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजू ! का सर्व काल सुमङ्गल हो ॥५३॥

नूपुर, हार, कण्ठा आदि भूषणोंके शृङ्गार से सुसज्जित अमृतके समान मृतको जीवित कर देने वाली चितवनसे युक्त, २५ लड़की करधनी और पीताम्बरसे बँधी सुशोभित कमर वाले ! हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा ही सुमङ्गल हो ॥५४॥

गजमुक्ता आदिसे जटित किरीट-चन्द्रिकादिभूषणोंके शृङ्गारसे युक्त, सब प्रकारकी आसक्ति को नष्ट करने वाले, मनोहर दर्शन, अपने छवि सौन्दर्यसे अनन्त रति और कामको लज्जित करने वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा ही मंगल हो ॥५५॥

कमलकी लम्बी मालासे देदीप्यमान वक्षःस्थल, नवीन सखीवृन्दोंसे सुसेवित, चवँर सहित छत्रसे ढके मुखारविन्द वाले, हे श्रीप्रियाप्रियतमजू ! आप दोनों सरकारका सदा–सर्वदा परम मङ्गल हो ॥५६॥

भगवान शिवजी बोले–हे प्रिये! इस प्रकार उन सखियोंके मङ्गलानुशासन करते ही अदृष्ट (न दिखाई देने वाली सखीकी) वाणी सभीको सुनाई पड़ने लगी, वह भक्तिके रसों से परिपूर्ण थी, अत एव उसे स्वस्वरूपकी प्राप्तिके लिये, आप भी एकाग्र हृदयसे श्रवण करें, मैं वर्णन करता हूँ ॥५७॥

इत्येकविंशोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे चतुर्थो विश्रामः ॥४॥

—❀❀❀—

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

अव्यक्त स्वरूपा जीवासखी की करुण–प्रार्थना ।

अदृष्टवाण्युवाच ।

नमोऽस्तु ते खञ्जनलोचनायै विदेहवंशर्षभपुत्रिकायै ।
नमोऽस्तु चन्द्रप्रभचन्द्रिकायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१॥
ललन्तिकाशोभितमस्तकायै चलत्तडित्स्पर्द्धिसुकुण्डलायै ।
मुक्तामणिद्योतितनासिकायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥२॥
आदर्शसूक्ष्मामलगण्डकायै नमो रतिस्पर्द्धिमहाच्छटायै ।
राकाशशाङ्कप्रतिमाननायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥३॥
विम्बाधरायै नवकुन्ददत्यै दयासुधानिर्भरनीरजाक्ष्यै ।
नमोऽस्तु ते कुञ्चितकुन्तलायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥४॥
नमोऽस्तु ते नृत्यदतीवरम्यसरोरुहालङ्कृतपाणिपद्मे ।
सुवर्णसूत्रद्युतिमद्दुकूले ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥५॥

अदृष्ट वाणी बोली :–हे सर्वेश्वरी! श्रीकिशोरीजू! जिनके चञ्चल नेत्र खञ्जन पक्षीके समान हैं, विदेहवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी जो सुपुत्री हैं, उन आपके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ! चन्द्रमाके समान प्रकाशमान चन्द्रिका वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपको मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न हों ॥१॥ ललन्तिका (माँगटीका) से शोभायमान भाल और चञ्चल बिजली को लज्जित करने वाले देदीप्यमान कुण्डल, मुक्तामणिसे प्रकाशमान सुन्दर नासिका वाली हे सर्वेश्वरी ! श्रीकिशोरीजू ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न हों ॥२॥

दर्पणके समान सूक्ष्म प्रतिविम्ब ग्रहणशील निर्मल-कपोल, रतिको स्पर्द्धा (डाह) कराने वाली महाछवि एवं शरदपूर्णिमाके चन्द्रमाके समान अत्यन्ताह्लाद प्रदायक मुखवाली हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू! आपको मैं नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥३॥

बिम्बाफलके समान लाल अधर, नवीन कुन्दके समान सुन्दर दाँत, दयारूपी अमृतसे लबालब भरेहुए कमलके सदृश विशाल लोचन तथा घुंघुराले केश वाली, हे सर्वेश्वरी ! श्रीकिशोरीजी ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥४॥

अत्यन्त सुन्दर नाचते हुये कमलसे विभूषित हस्तकमल तथा सुवर्णके धागोंके समान प्रकाश मान दुपट्टावाली हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥५॥

नमो नमस्तेऽस्तु सवल्लभायै केयूरहारादिसमञ्चितायै ।
अनेकदिव्याम्बरभूषितायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥६॥
हारैरनेकैर्मणिमौक्तिकैश्च व्यलङ्कृतायै सततं नमस्ते ।
विभिन्नरत्नाञ्चितनूपुराढ्ये ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥७॥
मुनीन्द्रहंसाश्रितवारिजाङ्घ्रे ! प्रसूनसिंहासनराजितायै ।
नमो नमस्ते श्रुतिभिर्विमृग्ये ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥८॥
निकुञ्जकेल्युत्सुकमानसाभिर्विभूषणयाढ्यालिभिरर्च्यमाने ।
नमोऽस्तु ते प्रेष्ठहृदालयायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥९॥
प्राणेशनेत्रोत्सवविग्रहायै नमोऽस्तु ते शाश्वति ! शान्तिदायै ।
नमः प्रपन्नाभयदानशीले ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१०॥
नमोऽस्तु ते ब्रह्महरीशवन्द्ये ! ह्यङ्गीकृतानाथसमाश्रितायै ।
नमोऽस्तु सर्वाद्यगुणालयायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥११॥

केयूर (बाजूबन्द) हार आदिसे विभूषित, अनेक दिव्य वस्त्रोंसे अलंकृत, हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥६॥

अनेक प्रकारके मणि और मोतियोंके हार शृङ्गारसे युक्त, विविध रत्नोंसे जटित नूपुरोंको धारण किये हुई, हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू ! आपके लिये मेरा सदा ही नमस्कार है, आप मुझ पर प्रसन्न होइये ॥७॥ हंसवृत्तिवाले मुनिराज, जिनके श्रीचरणकमलोंकी शरणमें रहते हैं, वेदों के द्वारा ही जिनकी विशेष खोजकी जासकती है, फूलोंके सिंहासन पर विराजमान हुई, उन, आप सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीको मेरा बारंबार नमस्कार हैं, आप मुझपर प्रसन्न होवें ॥८॥

भूषण भूपिता निकुञ्ज, केलियों (लीलाओं) के लिये उत्सुक मन वाली, अपनी समस्त सखियों द्वारा पूजित होती हुई, प्राणप्यारेजूके हृदय रूपी महलमें सदा निवास करने वाली, हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी! आपको मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥९॥

हे तीनों (भूत, भविष्य, वर्तमान) कालोंमें सदा अविचल रूपसे विद्यमान रहने वाली ! तथा अपने शरणागत जीवोंके लिये अभय दान लुटाने वाली! हे शान्ति प्रदान करने वाली! हे श्रीप्राणनाथजू ! हे नेत्रोंको उत्सवके सदृश सदा स्वाभाविक, नित्य नूतन, आनन्द प्रदायक स्वरूप वाली, हे सर्वेश्वरि ! श्रीकिशोरीजू ! आपको बारं बार नमस्कार है । आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१०॥ ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवश्रेष्ठोंके प्रणाम करने योग्य हे श्री स्वामिनीजू ! हे अनाथ अर्थात् जिनके केवल विश्वव्यापिनी आपही नाथ है दूसरा कोई नहीं उन शरणागत जीवोंको निश्चय स्वीकार करनेवाली आपको मैं नमस्कार करती हूँ । हे समस्त-श्रेष्ठ गुणोंकी मन्दिर स्वरूपा सर्वेश्वरी ! श्रीकिशोरीजी ! मेरा आपको नमस्कार है, मुझपर प्रसन्न हों ॥११॥

नमो नमस्तेऽस्तु गतामयायै तिरस्कृतानन्ततडित्प्रभायै ।
नमोऽस्तु राकेशकरस्मितायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१२॥
नमो जगन्मोहनमोहनाङ्ग्यै कौतूहलाह्लादसुविग्रहायै ।
नमोऽस्तु ते रञ्जितसंश्रितायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१३॥
नमोऽस्तु ते राघवपट्टकान्ते ! रासेश्वरि ! स्निग्धसुकोमलाङ्गि ! ।
कारुण्यपीयूषसमुद्ररूपे ! किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१४॥
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः कृपाक्षमौदार्यसुखालयायै ।
मनोहरस्मेरसुधांशुमुख्यै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१५॥
नमोऽस्तु ते सर्वजगद्धितायै कौशेयदिव्याम्बरभूषितायै ।
अजात्मजज्येष्ठसुतप्रियायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१६॥
नमोस्तु सीरध्वजपुत्रिकायै विदेहवंशाब्जरविप्रभायै ।
दयार्द्रफुल्लाम्बुजलोचनायै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१७॥

मायिक विकार रूपी रोगोंसे रहित, अपने स्वाभाविक श्रीअङ्गके प्रकाशसे अनन्त विजलियों के प्रकाशको तुच्छ करने वाली हे श्रीस्वामिनीजू ! आपको मेरा नमस्कार है नमस्कार है। शरत्ऋतुके पूर्ण चन्द्र किरणोंके समान परमाह्लाद प्रदायक, मन्द मुस्कान वाली हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू आपको मैं नमस्कार करती हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये ॥१२॥

समस्त स्थावर जंगम प्राणियोंको अपनी छबि माधुरीसे मुग्ध करनेवाले प्राणप्यारे (श्रीरामभद्र) जूको भी मोहित करनेवाले श्री अङ्गोंवाली, आश्चर्य और आह्लाद की सुन्दर मूर्त्ति स्वरूपा हे श्रीस्वामिनीजू ! आपको मेरा नमस्कार है, आश्रितोंको सब प्रकारसे सुखी रखने वाली हे सर्वेश्वरी! श्रीकिशोरीजी! मैं आपको नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये॥१३॥

हे श्रीरघुनन्दनजूकी पट्ट महिषी (पटरानी)! हे श्रीरासेश्वरि अर्थात् भगवत्सम्बन्धी भक्तों की स्वामिनी जू ! हे अत्यन्त सचिक्कण सुकोमल श्रीअङ्गी वाली ! हे करुणामृत सागरे। हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी ! आपके लिये मेरा नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१४॥

कृपा क्षमा उदारता सुखोंकी मन्दिर स्वरूपा, मनोहर मन्द मुस्कान युक्त चन्द्रमुख वाली हे श्रीकिशोरीजी! आपको मेरा सहस्रों (हजारों) बार नमस्कार है, प्रणाम है, आप मुझपर प्रसन्न होवें ॥१५॥ सभी स्थावर जङ्गम प्राणियोंका हितकरनेवाली, रेशमी दिव्यवस्त्र, भूषणों से भूषिता, श्रीदशरथजी महाराजके ज्येष्ठ राजकुमारजूकी प्राणवल्लभा हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी ! आपके लिये मेरा नमस्कार है आप मुझपर प्रसन्न होवें ॥१६॥

हे विदेह वंशरूपी कमलको सूर्यकी प्रभाके समान प्रफुल्लित करने वाली ! हे श्रीसीरध्वज नन्दिनीजू ! हे दयासे गीले प्रफुल्लित कमलके समान विशाल लोचनाजू ! हे सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजू ! आपको मैं नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१७॥

नमो नमस्तेऽस्तु मृदुस्मितायै समस्तमाङ्गल्यगुणालयायै ।
निजाश्रितेभ्योऽखिलकामदात्र्यै किशोरि ! सर्वेश्वरि ! मे प्रसीद ॥१८॥

कनकभवननित्यानन्तसन्दानहेतो विमलकमलनेत्रे ! सच्चिदानन्दरूपे ।
भवतु शरणमेवाम्भोजपादो भवत्याः सपदि सदयचित्ते ! भूरिशस्ते नमोऽस्तु ॥१९॥

यावन्न धास्यामि शिरः पदाब्जयोर्ब्रह्मादिदेवैर्हृदि भावनीययोः ।
भजज्जनाभ्यर्थितकल्पवृक्षयोस्तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२०॥

यावन्न पश्यामि निजात्मनः प्रियौ यथेप्सितं दृष्टिपथं गतावुभौ ।
मनोहरौ सर्वदृगुत्सवाकृती तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२१॥

यावन्न कञ्जायतचारुलोचनौ दयानिधाने सुषमामहाम्बुधी ।
गमिष्यतो दृष्टिपथं च मे प्रभू तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२२॥

अत्यन्त मृदु (मन्द, हृदयाकर्षक) मुस्कान वाली, समस्त मङ्गल अर्थात् दयाक्षमा, सौशील्य, वात्सल्य गाम्भीर्य, सौहार्द, औदार्य आदि गुणोंकी मन्दिर स्वरूपा, अपने आश्रितोंके लिये समस्त मनोरथोंको प्रदान करने वाली, हे सर्वेश्वरी ! श्रीकिशोरीजी ! मैं आपको बारंबार नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होवें ॥१८॥

हे श्रीकनकभवनके अविचल आनन्दकी कारण स्वरूपे ! हे अमल कमलके समान विशाल नेत्रों वाली ! हे सत्-चित्-आनन्द रूपिणी ! हे दया से परिपूर्ण हृदय वाली ! सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी ! मैं आपको बारंबार नमस्कार करती हूँ, अब आपके श्रीचरणकमल ही मेरी शीघ्र रक्षा करें ॥१९॥ ब्रह्मादि देवताओंको भी कल्याण सिद्धिके लिये अपने हृदयमें जिनकी भावना(चिन्तन) करना आवश्यक है, जो कल्पवृक्षके सदृश तत्क्षण भक्तोंको मनोवाञ्छित प्रदान करने वाले हैं, आपके उन श्रीचरणकमलोंमें मुझे अपना सिर रखनेका जब तक सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा, तब तक किसी प्रकार भी मुझको अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥२०॥

जब तक अपनी आँखोंके सामने प्राप्त हुये, सभीके नेत्रोंको उत्सवके सदृश नूतन सुख प्रदायक विग्रह वाले, मनहरण, अपने दोनों प्राणप्यारे श्रीयुगलसरकारका मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मेरे हृदयको अब कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥२१॥

कमलके समान आह्लाद गुण युक्त विशाल नयन, दयानिधान, निरतिशय सौन्दर्य अर्थात् जिससे बढ़कर और कोई सुन्दरता न हो सके उस के महासमुद्र, असम्भवको सम्भव करनेमें पूर्ण समर्थ श्रीयुगलसरकारजू जब तक हमें अपना दर्शन नहीं प्रदान करेंगे, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति न प्राप्त होगी ॥२२॥

यावन्न राकेशनिभाननावुभौ तडित्पयोदप्रतिमद्युती स्वयम् ।
प्रदास्यतो दर्शनमात्मनो विभू तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२३॥
यावन्न दिव्याम्बरभूषणाञ्चितौ चलत्तडित्कुण्डलशोभिगण्डकौ ।
पश्यामि दृग्भ्यां रजनीकराननौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२४॥
यावन्न वीक्षे सुमनोहरच्छबी विनीलपीतांशुकधारिणावहम् ।
किरीटरत्नाञ्चितचन्द्रिकान्वितौ तावन्न मे जातु च शान्ति रेष्यति ॥२५॥
यावन्न हाराङ्गदनिष्ककिङ्किणीसुकङ्कणाद्यैश्च विभूषितौ प्रियौ ।
वीक्षे दृशा कोटितडिन्निभद्युती तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२६॥
यावन्न कान्ताङ्कगतां शुभेक्षणां दयामयीं श्रीमिथिलेशनन्दिनीम् ।
वीक्षे दृशा पद्मपलाशलोचनां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२७॥
यावन्न दिव्याम्बरभूषणान्वितां धृतप्रियांसाम्बुजशोभिहस्तकाम् ।
वीक्षे दृशा स्वालिगणैर्विराजितां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२८॥

शरदृतुके पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य परम आह्लाद प्रदायक, उज्वल प्रकाशमय मुख, बिजली और मेघके समान श्यामगौर कान्ति वाले, विश्वरूप श्रीजनकनन्दिनी रघुनन्दन प्यारे दोनों सरकारजू जब तक स्वयं मुझे दर्शन नहीं प्रदान करेंगे, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥२३॥ दिव्य वस्त्र और भूषणोंको धारण किये हुये, बिजलीके समान चमकदार चञ्चल कुण्डलोंसे शोभित कपोल, चन्द्रवदन श्रीयुगलसरकारका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥२४॥ जिनकी सुन्दरता अत्यन्त मनहरण है, नील-पीत रङ्गके सुन्दर दिव्य वस्त्रोंको जो धारण किये हुये हैं, किरीट व अनेक रत्नोंसे जटित चन्द्रिकासे जिनके सिर शोभायमान हैं, उन श्रीयुगलसरकारको जब तक मैं अवलोकन नहीं करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥२५॥

अनेक प्रकारके हार, बाजूबन्द, कण्ठा, करधनी, सुन्दर कङ्कण चूड़ी आदि भूषणोंसे विभूषित करोड़ों बिजलीके समान कान्ति वाले, अपने दोनों सरकारको जब तक मैं अपनी आँखोंसे नहीं देखूँगी, तब तक मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥२६॥

श्रीप्राणप्यारेजूकी गोदमें विराजमान, मङ्गलमयी चितवन वाली, दयास्वरूपा, कमल पत्रके समान विशाल लोचना श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीको, जब तक मैं अपने इन नेत्रोंसे नहीं देखूँगी तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥२७॥

सखियोंके समूहमें विराजमान दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे भूषित, प्राणप्यारेजूके कन्धे पर कमल पुष्पसे शोभायमान अपना करकमल रखे हुई, श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं अपने इन नेत्रोंसे दर्शन नहीं करूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥२८॥

यावन्न सूक्ष्माम्बरभूषणान्वितां स्वल्पालसां तल्पगतां प्रियान्विताम् ।
प्रक्षालितास्यामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥२६॥
यावन्न भक्त्याऽऽलिगणैर्नमस्कृतां विद्युन्निभां श्रीदयितोपसंस्थिताम् ।
नीराजिताङ्गीमवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥३०॥
यावन्न यान्तीमथ मङ्गलालयं गृहीतसर्वेशकराम्बुजाङ्गुलिम् ।
वीक्षे दृशा हंसगतिं विभूषितां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥३१॥
यावन्न गोनागमृगद्विजात्मजान् मुहुः स्पृशन्तीं रघुराजसूनुना ।
आलोकयन्तीमनुरागविग्रहां तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥३२॥
यावन्न सप्राणपतिं शुभेक्षणां विराजमानां चतुरस्त्रपीठके ।
द्रक्ष्याम्यहं सद्मनि दान्तधावने तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥३३॥
यावन्न भक्त्याऽऽलिनिकायसेवितां नीराजितां वेश्मनि दान्तधावने ।
पाथोजहस्तामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥३४॥

अल्प वस्त्र भूषणोंको धारण की हुई, किञ्चित् आलस्ययुक्त, प्राणप्यारेजूके सहित पलङ्ग पर विराजमान अपनी प्रधान सखियों द्वारा प्रक्षालितमुख हुई श्रीकिशोरीजीका मैं जब तक दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझको अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥२६॥

उस शयन कुञ्जमें श्रीप्राणप्यारेजूके समीपमें विराजमान, आरती उतारे हुये श्रीअङ्गों वाली सखियों द्वारा, भक्ति भावपूर्वक प्रणामकी हुई, बिजलीके समान चमकती हुई, श्रीकिशोरीजीका दर्शन जब तक मैं नहीं करूँगी तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं हो सकती ॥३०॥

जब तक सर्वेश्वर प्राणप्यारेजूके करकमलकी अङ्गुली पकड़कर मङ्गल कुञ्ज पधारती हुई श्रीकिशोरीजीका, मैं अपनी इन आँखोंसे दर्शन नहीं करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥३१॥

मङ्गल कुञ्जमें—स्वस्तिक आसन पर विराजमान होकर श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके सहित कामधेनु गौ, ऐरावत हाथी, मृग (हिरण) शुकसारिकादिक पक्षियोंके बच्चोंका दर्शन, स्पर्श करती हुई, अनुरागमूर्त्ति श्रीकिशोरीजीका, जब तक मुझे दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक कभी भी मुझको अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥३२॥

दन्तधावन कुञ्जमें प्राणप्यारेजूके सहित मणिमयी चतुष्कोणकी चौकी पर विराजमान, चितवन मात्रसे मङ्गल करने वाली श्रीकिशोरीजीका, जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥३३॥

दातून कर चुकने पर हाथमें कमलका फूल लिये हुई, सखी गणोंसे परम श्रद्धा पूर्वक सेवित, आरतीसे सत्कृतकी हुई, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका, जब तक दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥३४॥

यावन्न च स्नानगृहान्तरे गतां सुस्नापितां मङ्गलभूषणान्विताम् ।
सादर्शहस्तामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।३५।।
यावन्न तां वै लघुभोजनालये सुभोजनं सालिगणां प्रकुर्वतीम् ।
वीक्षे सरामां मणिपीठमण्डपे तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।३६।।
यावन्न यान्तीं शिविकामधिष्ठितां शृङ्गारसद्मालिगणैः समावृताम् ।
सहार्यपुत्रामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।३७।।
यावन्न सर्वाभरणैरलङ्कृतां कौशेयदिव्यामलवस्त्रमण्डिताम् ।
श्यामां सकान्तामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।३८
यावन्न वीक्षेमणिरत्ननिर्मिते सभागृहे मौक्तिकमण्डपान्तरे ।
माणिक्यसिंहासनगां सवल्लभां तावन्नमे जातु च शान्तिरेष्यति ।।३९।।
यावन्न तौ प्राणधने शुचिस्मितावुच्छिष्टमन्नं कृपया प्रदास्यतः ।
स्वयं कराभ्यां करुणैकवारिधी तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।४०।।

स्नानकुञ्जमें विराजमान, स्नान करायी गई, मङ्गल भूषणोंसे अलङ्कृतकी हुई आयना (दर्पण) हस्तकमलमें ली हुई, श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक अब मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ।।३५।।

कलेऊ कुञ्जमें प्राणप्यारेजूके सहित, सखी गणोंसे युक्त, मणिमयी चौकीपर विराजमान होकर भोजन करती हुई, श्रीकिशोरीजीका जब तक दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक मुझे कभी भी शान्ति नहीं हो सकती ।।३६।। श्रीप्राणप्यारेजूके सहित, पालकी में विराजमान, सखी गणोंसे घिरी, शृङ्गार कुञ्जको जाती हुई श्रीकिशोरीजीका, जब तक मुझे दर्शन नहीं प्राप्त होगा, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ।।३७।।

दिव्य, निर्मल, रेशमी वस्त्रोंसे भूषित, सर्वशृङ्गारसे अलंकृत, श्रीप्राणनाथजूके सहित, श्रीकिशोरीका जब तक दर्शन नहीं करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ।।३८।।

अनेक प्रकारके रत्नोंकी कारीगरी (सजावट) से युक्त, मणिरचित सभा कुञ्जमें, मोतियों के मण्डपमें मणिमय सिंहासनपर, श्रीप्यारेजूके सहित विराजी हुई श्रीकिशोरीजीका जब तक मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तबतक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ।।३९।।

पवित्र मुस्कान, प्राणधन, करुणासागर, वे दोनों सरकार जब तक कृपा करके अपने कर-कमलोंसे मुझे स्वयं अपनी प्रसादी (जूठन) नहीं प्रदान करेंगे, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ।।४०।।

यावत्सरय्वा अमृतोपमं पयो दिव्यौषधीनां सुरसेन मिश्रितम् ।
दिशामि ताभ्यां न सुगन्धवासितं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४१॥
यावन्न ताविष्टतमौ मनोहरौ प्रक्षालिताम्भोजकराननाङ्घ्रिकौ ।
पश्याम्यहं बिम्बफलारुणाधरौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४२
यावन्न तौ सादरमात्मनः प्रियौ सिंहासने काञ्चनके सुसज्जिते ।
निवेशयामि प्रणयात्प्रियाप्रियौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४३॥
यावन्न विश्रामगृहं सहप्रियां शनैर्व्रजन्तीं कलहंसगामिनीम् ।
मन्दस्मितास्यामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४४॥
यावन्न ताभ्यां रचितां सुवीटिकां प्रीत्या कराभ्यां प्रदिशामि हर्षिता ।
निरीक्षमाणा सुमनोहरच्छबिं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४५॥
यावन्न चोभौ फलभोजनालये पुष्पाम्बरौ पुष्पविभूषणाञ्चितौ ।
सिंहासनस्थाववलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४६॥

दिव्य पौष्टिक औषधियोंके रससे मिला हुआ, अमृतके तुल्य स्वादिष्ट, सुगन्ध युक्त श्रीसरयूजलको, जब तक मैं अपने हाथोंसे श्रीयुगल सरकारको स्वयं समर्पण नहीं करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥४१॥

धोये हुये कमलके समान हाथ, मुख, पाँव, मन-हरण, विम्बा फलके सदृश लाल अधर वाले अपने सर्वोत्तम इष्टदेव श्रीयुगल सरकारका जब तक मुझे दर्शन नहीं मिलेगा, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥४२॥

सुन्दर रीतिसे सजाये हुये सुवर्ण सिंहासन पर अपने उन प्यारे (प्रियाप्रियतम श्रीयुगल) सरकारको आदर पूर्वक प्रणय अर्थात् अत्यन्त सरस प्रेम के साथ जब तक मैं स्वयं नहीं बिठालूंगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥४३॥

श्रीप्राणप्रियतमजूके सहित हंसके समान सुन्दर धीरे २ विश्राम कुञ्ज पधारते हुये, मन्द मुस्कान युक्त मुखवाली श्रीकिशोरीजीका मैं जब तक दर्शन नहीं पाऊँगी तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥४४॥

जब तक श्रीयुगल सरकारकी अत्यन्त मनहरण छबिको अवलोकन करती हुई मैं उन्हें भली प्रकार बनाया हुआ पानका बीरा नहीं समर्पण करलूंगी, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥४५॥ जब तक फलभोजन कुञ्जमें फूलोंके वस्त्र व भूषणोंको धारण किये हुये सिंहासन पर विराजमान, दोनों सरकार (श्रीसीतारामजी) का मैं दर्शन नहीं करलूंगी, तब तक मुझे अब किसी प्रकार भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥४६॥

यावन्न मिष्टानि फलानि भक्तितो सुभक्षयन्तौ मधुरस्मिताननौ ।
मिथोऽर्पयन्तावबलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४७॥

यावन्न सर्वालिगणैः समन्वितौ निदाघकुञ्जे विमलाम्भसि प्रियौ ।
पश्यामि कामं जलकेलितत्परौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४८॥

यावद्धृतांसामलपाणिपल्लवौ न रत्नसिंहासनसञ्ज्ञकालये ।
सिंहासनस्थाववलोकयाम्हं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥४९॥

यावन्न सर्वाश्रयणीयसद्गणैः संवेष्टितौ चामरशोभिहस्तकैः ।
पश्यामि दृग्भ्यां ससरोजहस्तकौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५०॥

यावन्न नैशाशनमन्दिरान्तरे विराजमानौ प्रभयाऽतिभास्वरे ।
सुभक्षयन्तावबलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५१॥

यावन्न सर्वाक्षिसरोजभास्करौ ग्रासान् सहासं ददतौ परस्परम् ।
रमाश्रयौ तावबलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५२॥

फल भोजन कुञ्ज में वहाँ की सखी द्वारा समर्पण किये हुये मीठे फलोंको, आपसमें एक दूसरेको पवाते, मधुर २ मुस्काते हुये जब तक मैं नहीं दर्शन करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥४७॥ जब तक सखियोंके सभी झुण्डोके सहित निदाघ कुञ्जके स्वच्छ जलमें जलकेलि करते हुये श्रीयुगल प्राणबल्लभ (श्रीसीतारामजी) का मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥४८॥

जब तक रत्नसिंहासन नामके सुप्रसिद्ध भवनमें, परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर हस्तकमल रखकर सिंहासन पर बैठे हुये श्रीयुगल सरकारका मैं दर्शन नहीं करलूंगी, तब तक कभी भी मुझे अब चैन नहीं मिलेगी ॥४९॥

जब तक चामर (चँवर) आदि सेवा सामग्रियोंको हाथमें लिये, समस्त आश्रितवर्गोंसे घिरे, हाथमें कमल पुष्प धारण किये हुये, श्रीयुगलसरकार का मैं दर्शन नहीं प्राप्त कर लूंगी, तब तक अब कभी भी मुझे शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥५०॥

अत्यन्त प्रकाश युक्त ब्यारू कुञ्जमें सखियोंके बीचमें श्रीयुगलसरकारको विराजमान हो, जब तक रूचिपूर्वक ब्यारू करते हुये मैं दर्शन नहीं प्राप्त करलूंगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं आयेगी ॥५१॥ समस्त प्राणिमात्रके नेत्ररूपी कमलोंको भगवान् भास्कर (सूर्य) के सदृश प्रफुल्लित कर देनेवाले, समस्त शोभाके मूलभूत, श्रीयुगलसरकारका मुस्काते हुये परस्पर ग्रास प्रदान करते हुए जबतक मैं दर्शन नहीं करलूँगी तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिलेगी॥५२॥

यावन्न पूर्णेन्दुमनोहराननौ सखीजनेभ्यो मधुरस्मितावुभौ ।
पश्यामि शेषं ददतौ पृथक् पृथक् तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५३॥
यावन्न दिव्यास्तरणैः परिष्कृते सौवर्णतल्पे कृतभोजनावुभौ ।
सुखं शयानाववलोकयाम्हं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५४॥
यावन्न रासोचित भूषणाम्बरौ शृङ्गारकुञ्जे मणिमण्डपे स्थितौ ।
शृङ्गारमूर्त्ती ह्यवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५५॥
यावत्सखीमण्डलमध्यवर्तिनौ तिरस्कृतानन्तरतिस्मरच्छबी ।
नेक्षे स्थितौ रासगृहे मृदुस्मितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५६॥
यावन्न कान्तं नतमस्तकं प्रियं मानान्वितां प्राणसमां कृताञ्जलिम् ।
सम्मानयन्तं ह्यवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५७॥
यावन्न पश्यामि च रासमण्डले मध्ये सखीनामपि रासतत्परौ ।
धृतांसपाणी मृगशावकेक्षणौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥५८॥

जब तक सखीजनोंके लिये अपना प्रसाद वितरण करते हुये, पूर्णचन्द्रके समान मनहरण मुखारविन्द व मधुर मुस्कान वाले श्रीयुगलसरकारका मैं दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तब तक मुझे किसी प्रकार भी शान्ति न मिलेगी ॥५३॥

जब तक भोजन करके दिव्य बिछावनसे सुशोभित, सुवर्ण पर्यङ्कपर शयन किये हुये श्रीयुगल-सरकारका मैं सुखपूर्वक दर्शन नहीं प्राप्त करूँगी, तबतक कभी भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ॥५४॥

जब तक रासोचित अर्थात् भगवदानन्द प्रदायक लीलाओंके योग्य वस्त्राभूषण धारण करके शृङ्गार कुञ्जके मणिमय मण्डपमें विराजमान हुये, शृङ्गार रसस्वरूप दोनों श्रीसीतारामजी का मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति न मिलेगी ॥५५॥

जब तक रास कुञ्जमें सखीमंडलके बीचमें विराजमान, अपनी छविसे अनन्त रति और कामदेव को तिरस्कृत करने वाले श्रीयुगलसरकारको मृदु मुस्काते हुये मैं नहीं देखूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥५६॥

सखियोंके विनोदार्थ उस रासलीलामें मान करती हुई श्रीप्राणप्यारीजूको मस्तक नीचे किये 'हाथ जोड़कर भली प्रकार मनाते हुये' श्रीप्राणप्यारेजूका जब तक मैं दर्शन नहीं करूँगी, तब तक अब कभी भी मुझको शान्ति नही होगी ॥५७॥

जब तक रासमण्डलमें, सखियोंके बीचमें परस्पर कन्धोंपर हस्तकमल रखकर मृगशावक लोचन श्रीयुगलसरकारका रास अर्थात् भगवदानन्द प्रदायक लीला करते हुये मैं दर्शन नहीं प्राप्त करलूंगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति न होगी ॥५८॥

यावत्स्वहस्ते प्रियपाणिपङ्कजं निधाय नृत्यामि न रासमण्डले ।
प्रीत्यै प्रियायाः सहिताऽलिभिः सुखं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।५९।।
यावन्न नृत्यन्तमतीवसुन्दरं ह्यग्रे प्रियाया बहुधा रसात्मकम् ।
पश्यामि विस्मेरसुधाकराननं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।६०।।
यावन्न हस्ताङ्घ्रिसरोरुहाणि तौ सुचालयन्तौ गतितालभेदतः ।
वीक्षे प्रियौ रासविलासतत्परौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।६१।।
यावन्न चान्दोलगृहे प्रियाप्रियौ सन्दोल्यमानौ मणिदोलसंस्थितौ ।
पश्याम्यहं स्वालिगणैरुपासितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।६२।।
यावन्न रत्नाञ्चितदोलकालये प्रियाप्रियौ कोटिरतिस्मरच्छबी ।
यथामनस्तौ परिदोलयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।६३।।
यावन्न वीक्षे दयितं सखीगणे मनोहरं प्रेमनिमग्नचेतसा ।
प्राणेश्वरीदोलनकर्मतत्परं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।६४।।
यावन्न पुष्पाम्बरभूषणाञ्चितौ सन्दोलयन्ताववलोकयाम्यहम् ।
आन्दोलके पुष्पमये सरित्तटे तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ।।६५।।

जब तक रास अर्थात् भगवद्भक्ताओंके मण्डलमें श्रीप्रियाजूकी प्रसन्नताके लिये सखियोंके सहित अपने हाथमें श्रीप्राणप्यारेजूके हस्त कमलको रखकर सुख-पूर्वक मैं नृत्य नहीं करूंगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ।।५९।।

जब तक, सम्पूर्ण रसोंके स्वरूप, मन्दमुस्कान युक्त, चन्द्रवदन, अत्यन्त सुन्दर श्रीप्राणप्यारे जी को, श्रीप्रियाजूके आगे बहुत प्रकारसे मैं नृत्य करते हुए नहीं अवलोकन करूंगी, तब तक किसी प्रकार भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ।।६०।।

जब तक रासकेलि-परायण श्रीयुगलसरकारको, गति-ताल-भेदानुसार मैं हस्त और पाद-कमलोंका सञ्चालन करते हुये नहीं देखूंगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ।।६१।।

झूलनकुञ्जमें सखीगणों से सेवित, मणिमय झूलेपर विराजमान, श्रीयुगलसरकारको जब तक झूलते हुये मैं नहीं अवलोकन करूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ।।६२।।

करोड़ों रति और कामदेवकी छबिको धारण किये हुये, श्रीप्रियाप्रियतमजूको रत्न खचित झूलन भवनमें, जब तक मैं मनभर नहीं झुला पाऊँगी, तब तक मेरे हृदयको अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ।।६३।। अपनी सर्वस्व भूता श्रीप्राणेश्वरीजीको सखियोंके समूहमें प्रेमनिमग्न चित्तसे भली-भाँति झुलाते हुये श्रीप्राणप्यारेजूका जब तक मैं दर्शन नहीं करूंगी, तब तक मुझे अब किसी प्रकार भी विश्रान्ति नहीं मिलेगी ।।६४।।

श्रीसरयूजीके किनारे फूलोंका श्रृङ्गार धारण किये, पुष्पमय झूलनपर झूलते हुये श्रीयुगल, सरकारका जब तक मैं दर्शन नहीं पाऊँगी, तबतक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ।।६५।।

यावन्न वासान्तिकरत्नमन्दिरे प्रेष्ठौ वसन्तोत्सवसक्तचेतसौ ।
पश्याम्यहं चन्द्रमुखीव्रजान्वितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥६६॥
यावत्सखीवेषमतुल्यसौभगं प्राणप्रियाया मृदुपादपङ्कजे ।
मूर्द्ध्ना स्पृशन्तं न विलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥६७॥
यावन्न मुख्ये शयनालयान्तरे सुस्निग्धवस्त्राञ्चितरत्नतल्पगौ ।
सुखं शयानौ परिशीलयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥६८॥
यावन्न सन्तापकृशानुवारिणोः श्रीप्रेयसोः स्निग्धपदारविन्दयोः ।
सामेयशातं विलुठामि निर्भया तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥६९॥
यावन्न कोटीन्दुविमोहनाननौ कृपाकटाक्षं मयि पातयिष्यतः ।
सुखं शयानौ सुमनोहरस्मितौ तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७०॥
यावत्स्वकीयाभयहस्तपङ्कजं संधास्यति प्रीतियुता न शीर्षिण मे ।
सर्वस्वभूता मम दीनवत्सला तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७१॥

वसन्त ऋतुके रत्नमय भवनमें, चन्द्रमुखी सखियोंके झुण्डमें जब तक-फागखेलमें आसक्त चित्त, श्रीयुगल सरकारका मैं दर्शन नहीं प्राप्त करलूंगी, तब तक मेरे हृदयमें अब कभी भी चैन नहीं पड़ेगी ॥६६॥ तुलना न कर सकने योग्य अपार सौन्दर्य सम्पन्न, श्रीप्राणप्यारेजीको सखी का वेष धारण करके श्रीप्रियाजूके सुकोमल श्रीचरणारविन्दों को, सिरसे स्पर्श करते हुये जब तक मैं नहीं देखूंगी, तब तक मुझको अब कभी भी शान्ति नहीं मिलेगी ॥६७॥

अत्यन्त चिक्कण बिछावन युक्त, रत्नमय पर्यङ्क पर मुख्य शयन भवनमें जब तक सुखपूर्वक शयन किये हुये, श्रीयुगल सरकारकी सेवाका सौभाग्य मुझे नहीं मिलेगा, तब तक मुझे कभी भी अब शान्ति नहीं मिल सकेगी ॥६८॥ जब तक श्रीप्रियाप्रियतमजूके सन्ताप रूपी अग्निको जलके समान शान्त कर देने वाले चिकने, श्रीचरण-कमलोंमें, अपार सुख-पूर्वक, निर्भय हृदयसे मैं, नहीं लोटूंगी, तब तक कभी भी मुझे अब चैन नहीं मिलेगा ॥६९॥

जिनका श्रीमुखारविन्द करोड़ों चन्द्रमाओंको विमुग्ध करदेने वाला है, तथा जिनकी मुस्कान अनायास मनको हरण कर लेती है, वे दोनों श्रीयुगल सरकार अपने पर्यङ्क (पलङ्ग) पर सुख पूर्वक शयन किये हुये जब तक मेरे ऊपर अपना कृपाकटाक्ष नहीं डालेंगे, तब तक किसी प्रकार भी मेरे हृदयमें अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥७०॥

जब तक मेरी सर्वस्वभूता दीन अर्थात् साधनादि सर्वाभिमान शून्यजन वत्सला श्रीकिशोरीजी प्रसन्नता पूर्वक अपना अभय हस्त कमल मेरे सिर पर नहीं रखेंगी, तब तक कभी भी मुझको अब शान्ति नहीं मिल सकती ॥७१॥

यावन्न सस्मेरसुधाकरानना मृदु स्पृशन्ती हृदयङ्गमं वचः ।
मां श्रावयिष्यत्यसिताब्जलोचना तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७२॥
यावन्न तस्या मृदुपादपल्लवौ दृग्भ्यां कराभ्यां शिरसा स्पृशाम्यहम् ।
नेत्थं निधायोरसि पीडयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७३॥
यावन्न चानन्दमयाश्रुविन्दुभिः श्रीराजपुत्र्या मृदुपादपङ्कजे ।
प्रक्षालयामि द्रुहिणादिवन्दिते तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७४॥
यावन्न पूर्णेन्दुनिभाननं प्रियं रहः शयानाऽऽत्मसुदिव्यमन्दिरे ।
वीक्षे समीपे मृगशावकेक्षणं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७५॥
यावन्न चामीकरतल्पशायिनोः करोमि पादाम्बुजयोर्निषेवणम् ।
शय्योपविष्टाऽखिलदुर्लभेष्टदं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७६॥
यावन्न तस्याङ्क उदारकीर्त्तनां सुनूतनेन्दीवरपत्रवर्ष्मणः ।
प्रियां शयानामवलोकयाम्यहं तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७७॥

जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रमाके समान परमाह्लाद वर्द्धक, मुस्कान युक्त है, वे नीलकमलदल लोचना श्रीकिशोरीजी जब तक अपने सुकोमल कर कमलोंसे स्पर्श करती हुई, अपनी हृदय हारिणी बोली मुझे नहीं सुनायेंगी तब तक किसी प्रकार भी मुझे चैन नहीं पड़ सकती ॥७२॥ जब तक श्रीकिशोरीजीके सुकोमल श्रीचरणकमलोंको अपने नेत्रों, हाथों और सिरसे मैं स्पर्श नहीं करूँगी तथा जब तक अपने हृदयपर रखकर, उनकी सेवा नहीं करूँगी तब तक मुझे कभी भी शान्ति नहीं मिल सकेगी ॥७३॥

श्रीमिथिलेशदुलारीजूके ब्रह्मादि देव वन्दित सुकोमल श्रीचरणारविन्दोंको जब तक मैं अपने आनन्दमय अश्रुविन्दुओंसे नहीं धोऊँगी, तब तक कभी भीं मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ॥७४॥ पूर्णिमाके चन्द्र समान विश्वसुखद-मुखारविन्द तथा मृगछौनाके नेत्रोंके सदृश विशाल नयन, श्रीप्राणप्यारेजीको अपने दिव्य भवनमें अकेली सोई हुई मैं जब तक समीपमें विराजमान नहीं देखूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥७५॥

जब तक उनकी सेजके पास बैठी हुई, सुवर्णके पर्यङ्क (पलङ्ग) पर शयन किये हुये श्रीयुगल सरकारकी समस्त दुर्लभ मनोवाञ्छित प्रदान करने वाली श्रीचरणकमलोंकी सेवा, मैं नहीं करलूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिल सकेगी ॥७६॥

अत्यन्त नवीन नील कमल दलके सदृश श्याम विग्रह वाले प्यारेजूके अङ्कमें सोती हुई उदार कीर्त्तना अथात् जिनका कीर्त्तन धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको ही नहीं बल्कि स्वयं उन श्रीकिशोरीजी को प्रदान कर देने वाला हैं, उन श्रीप्रियाजूका जब तक मैं दर्शन नहीं करलूँगी, तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं होगी ॥७७॥

यावत्स्वकान्तेन्दुमुखे मनोहरे पश्यामि ताम्बूलसुवीटिकां मुदा ।
प्रियं कराभ्यां प्रदिशन्तमादरात्तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७८॥
यावत्सकान्तः कलहास्यवीक्षण-सम्भाषणाद्यैरभिनन्द्य किङ्करीः ।
निमीलिताक्षः स मया न दृश्यते तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥७९॥
यावच्छयानौ न निसर्गसुन्दरौ निरीक्ष्य नित्यावखिलाण्डनायकौ ।
नमामि भक्त्या प्रणयान्वितात्मना तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८०॥
यावत्क्रियेते हृदयस्थितावुभौ भुक्तां स्रजं प्राप्य तयोरभीप्सिताम् ।
मुदा प्रदत्तां कृपयाऽऽलिमुख्यया तावन्न मे जातु च शान्तिरेष्यति ॥८१॥
यथा शिशुर्वै रहितो जनन्या नारी विहीना च यथैव पत्या ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या वदामि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८२॥
यथैव राज्ञा रहितः सुदेशो राजा स्वदेशेन यथा विहीनः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या वदामि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८३॥

श्रीप्राणप्यारीजूके मनहरण श्रीचन्द्रवदनमें अपने करकमलों द्वारा, पानका बीरा प्रदान करते हुए जब तक मैं श्रीप्यारेजूको नहीं अवलोकन करूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती ॥७८॥

अपनी मन्दमुस्कान, मनहरणचितवन, पिकवाणी आदिके द्वारा किङ्करियोंको आनन्दित करके निद्रा का भाव प्रकट करनेके लिये, आँखें बन्द किये हुये, श्रीप्राणप्यारेजू श्रीप्रियाजू के सहित मुझे जब तक दर्शन नहीं प्रदान करेंगे, तब तक कभी भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ॥७९॥ स्वाभाविक सुन्दर, सदा एक रस रहने वाले, अनन्त ब्रह्माण्डनायक श्रीयुगल सरकार को शयन किये हुये दर्शन करके जब तक मैं प्रेमपूर्वक, श्रद्धासमन्वित नमस्कार नहीं करलूंगी तब तक कभी भी मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी ॥८०॥

जब तक श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा कृपाकरके प्रदानकी हुई अपनी मनचाही श्रीयुगलसरकार की प्रसादी मालाको प्राप्त करके, मैं उन दोनों प्यारोंको अपने हृदयमें नहीं बसालूँगी, तब तक मुझे अब कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥८१॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! महतारीके बिना शिशु और पतिके बिना स्त्रीकी जो दशा होती है, वही दशा आपके बिना मेरी है, उसको मैं क्या कहूँ? आप हृदय विहारिणी है, अतः स्वयं जानती हैं ॥८२॥ हे श्रीकिशोरीजी ! जैसे राजाके बिना सुन्दरदेश और अपने देशसे हीन राजा जैसे श्रीविहीन, अनाथ एवं अरक्षित सा हो जाता है उसीप्रकार आपके बिना मैं हूँ, यह आप स्वयं जानती हैं, क्योंकि सर्वान्तर्यामिनी रूपसे मेरे भी हृदयमें विराज रही हैं, अतः अपनी इस परिस्थितिको आपसे क्या निवेदन करूँ ॥८३॥

सूर्यो यथा वै प्रभया विहीनो दिनं च सूर्येण यथा विहीनम् ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८४॥
रात्रिर्यथा चन्द्रमसा विहीना ज्योत्स्ना विहीनस्तु यथैव चन्द्रः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८५॥
यथा सरित्स्यात्सलिलेन हीना फणी विहीनो मणिना यथैव ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८६॥
यथा शरीरं ह्यसुभिर्विहीनं गृहं विहीनं प्रजया यथैव ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८७॥
यथा फलं चापि रसेन हीनं यथा द्रुमश्चेह दलैर्विहीनः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८८॥
वाणी विना व्याकरणं यथैव यथा च नारी वसनेन हीना ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥८९॥
करेण हीनस्तु यथा करीन्द्रो यथाऽऽत्मबोधेन विना मनुष्यः ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥९०॥

जैसे प्रभासे रहित सूर्य और सूर्यके बिना दिन सुन्दर नहीं लगता, उसीप्रकार आपके बिना मैं बुरी लगरही हूँ, यह आप हृदयमें निवास करती हुई स्वयं जानती हैं अतः मैं क्या कहूँ?॥८४॥ जैसे चन्द्रमाके बिना रात्रि, और चान्दनीके बिना चन्द्रमा बुरा लगता है, उसी प्रकार आपके बिना मेरी दशा है, उसे आप हृदयमें विराजमान होनेके कारण स्वयं ही जानती हैं, अत एव उसे मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥८५॥ जैसे जलके बिना नदी शोभा हीन है और मणिके बिना सर्पका जीवन भी महान् दुःखप्रद है, उसी प्रकार आपके बिना मेरा जीवन भी व्यर्थ है, सो आप जानती ही हैं क्योंकि हृदयमें विराज रही हैं, अतः इस विषयमें आपसे और क्या निवेदन करूँ ॥८६॥ हे श्रीस्वामिनीजू ! जैसे प्राणोंके बिना शरीर, सन्तानके बिना घर शोभा शून्य है, उसी प्रकार आपके बिना मेरा यह जीवन व्यर्थ है, इसे हृदय (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में बैठी हुई आप स्वयं जानती है अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥८७॥ हे श्रीकिशोरीजो ! जैसे लोकमें नीरस फल तथा पत्तोंसे हीन वृक्ष अशोभित हैं, उसी प्रकार आपके बिना मेरा यह जीवन भी सर्वथा निष्फल है, उसे मैं क्या कहूँ ? हृदयमें विराजमान होनेसे आप सब स्वयं ही जानती हैं ॥८८॥ व्याकरण ज्ञानके बिना जैसे वाणी और वस्त्र विहीन स्त्री शोभाहीन है उसी प्रकार आपके सामीप्य बिना मैं हूँ अतः क्या कहूँ ? हृदयमें विराजमान होनेसे आप सब स्वयं जानती हैं ॥८९॥ हे श्रीसुनयनाहृदयनन्दिनीजू ! जैसे बिना सूण्डके गजराज और आत्मज्ञानके बिना मनुष्य का जीवन बेकार है, उसी प्रकार आपके बिना मेरा यह जीवन सर्वथा निष्फल है, अतः मैं क्या कहूँ ! आप हृदय-निवासिनी सब जानती ही हैं ॥९०॥

यथा श्रुतिज्ञस्तव भक्तिहीनो सम्पत्तिलुब्धस्तु यथा विरागी।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥६१॥

यथा विहीनस्तपसा तपस्वी सन्तोषहीनस्तु यथेह साधुः।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥६२॥

यथा वपुः स्याच्छिरसा विहीनं वाणी तथाऽर्थेन यथा विहीना।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥६३॥

विष्णुत्वहीनस्तु यथैव विष्णुर्धातृत्वहीनस्तु यथा विधाता।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥६४॥

रुद्रत्वहीनस्तु यथैव रुद्रो धनेन हीनस्तु यथा कुबेरः।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥६५॥

वह्निर्यथा दाहकशक्तिहीनः पक्षेण हीनस्तु यथा पतत्त्री।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥६६॥

जैसे आपकी भक्तिसे हीन सकल वेदोंके रहस्यको जानने वाला बिद्वान् और वैराग्य हीन विरक्त वेषधारी साधक शोचनीय है, उसी प्रकार हे श्रीकिशोरीजी आपके विना मैं शोचनीया हूँ, अधिक क्या निवेदन करूँ ! आप सब जानती ही हैं क्योंकि हृदय (मन, बुद्धि, चित्त व अहङ्कार इन चारों) में आपका सदा निवास है ॥६१॥

जैसे तप-साधन रहित, वेष मात्रका तपस्वी और सन्तोष हीन साधु मृतक तुल्य है, उसी प्रकार आपके बिना मैं भी मृतकके समान हूँ, यह आप हृदयमें निवास करती हुई स्वयं ही जानती हैं, उसे मैं क्या कहूँ ? ॥६२॥ जैसे सिरके बिना धड़ (शरीर) और अर्थके विना वाणी की शोभा नहीं है, उसी प्रकार आपके सामीप्यके बिना मैं भी बुरी लग रही हूँ, यह हृदयमें निवास करने वाली आप स्वयं ही जानती हैं, मैं क्या कहूँ ॥६३॥

जैसे सर्व व्यापकत्व गुणके बिना भगवान् विष्णु और विधान शक्तिसे रहित विधाता (ब्रह्मा) उपहासके पात्र माने जायेंगे, उसी प्रकार आपके बिना मैं भी उपहास की पात्र हूँ, यह आप स्वयं ही जानती हैं क्योंकि हृदयमें निवास करती हैं, अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥६४॥

विश्वसंहार शक्तिसे हीन रुद्र और धनहीन कुबेरकी जैसे हँसी होना स्वाभाविक है, उसी प्रकार आपके विना मेरी हँसी भी अनिवार्य है, यह आप जानती ही हैं, क्योंकि हृदयमें विराज रही हैं, अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥६५॥ जैसे जलानेकी शक्ति से हीन अग्नि और पङ्खोंके बिना पक्षी दयनीय है, उसी प्रकार आपकी समीपताके बिना मैं भी हँसीके योग्य और दयाकी पात्र हूँ, यह आप हृदयबासिनी होनेसे सब जानती ही हैं, अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥६६॥

देवं विना देवगृहं यथैव पुमान्मनुष्यत्वविवर्जितश्च ।
तथाऽस्मि लोके रहिता भवत्या ब्रवीमि किं वेत्सि हि तद्धृदिस्था ॥९७॥
एवं विचार्यैव दशां मदीयां यथेप्सितं कार्यमहो भवत्या ।
प्रसीद मे स्वामिनि ! दीनबन्धो ! यतस्तवाहं शतपत्रनेत्रे ! ॥९८॥
काश्चित्तृषार्त्ता म्रियते पिपासया गङ्गाजलस्था वनजायतेक्षणे ।
काचित्सनाथा विधवेव दृश्यते ह्याश्चर्य्यमेतत्तु किशोरि! दृश्यताम् ॥९९॥
अङ्के स्थिता मातुरिहैव बालिका काचित्प्रिया वै म्रियते ह्युपेक्षया ।
संपीड्यमाना क्षुधया पिपासया ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि! दृश्यताम् ॥१००॥
ज्योत्स्नान्वितः कश्चिदिहैव चन्द्रमाः खद्योतकल्पः सुनिरीक्ष्यते जनैः ।
तापार्दितो वारिकणेन सिच्यते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१०१॥
कश्चिच्छुभाङ्गि ! प्रलयोग्रभास्करः प्रच्छाद्यते वै तमसा महीतले ।
शीतार्दितो बह्निमपेक्षते हृदा ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१०२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जैसे देवताके बिना देवमन्दिर और मनुष्यत्व (मनन शीलता) के बिना मनुष्य नष्टश्री और पृथ्वीका भार होता है, उसी प्रकार मैं भी आपकी समीपताके बिना श्रीहीन और पृथ्वीका भार ही हूँ, हृदयमें निवास करनेके कारण यह आप स्वयं ही जान रही हैं, अतः मैं क्या निवेदन करूँ ? ॥९७॥ दुखियोंका हितकरने वाली हे श्रीस्वामिनीजू! मेरी इस प्रकारकी दयनीय दशाको विचार करके, जैसा उचित समझें, अपनी इच्छानुसार करें । हे श्रीकमललोचनेजू ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवें, क्योंकि मैं आपकी ही हूँ ॥९८॥

हे कमलदललोचने श्रीकिशोरीजी ! कोई एक ऐसी है, जो गङ्गाजीके जलमें तो विराज रही है परन्तु प्यासके कारण मर रही है, एक ऐसी है, जो सधवा होने पर भी विधवा सी प्रतीत हो रही है इस आश्चर्य मयी घटनाको आप स्वयं अवलोकन कीजिये ॥९९॥

कोई अत्यन्त प्रिय बालिका अपनी माताकी गोदमें बैठी हुई है किन्तु उपेक्षा दृष्टिके कारण क्षुधा पिपासा (भूख-प्यास) से पीड़ित हो मर रही है, हे श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्यमयी घटनाको आप अवलोकन तो कीजिये ॥१००॥

कोई एक पूर्ण प्रकाश युक्त चन्द्रमा है, उसे लोग जुगुनू सदृश तुच्छ दृष्टिसे देख रहे हैं, वह (चन्द्र) भी तापसे अत्यन्त व्याकुल है, अतः उस पर जल कणोंका छिड़काव किया जा रहा है, हे श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्य पूर्ण घटनाको आप अवलोकन कीजिये ॥१०१॥

प्रलय कालका एक प्रचण्ड सूर्य है, परन्तु पृथिवी तल पर उसे अन्धकार ढँक रहा है, वह ठण्ढीसे घबराकर हृदयसे अग्निकी अपेक्षा कर रहा है, हे शुभाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्यमयी घटनाको आप निश्चय ही अवलोकन कीजिये ॥१०२॥

कश्चिन्नृपत्वेन युतो नराधिपो ह्यकिञ्चनत्वेन भृशं प्रपीड्यते ।
क्षुधार्दितो मृत्युमपेक्षते निजं ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि ! दृश्यताम् ॥१०३॥
कश्चिच्छरण्यस्य कृपामृताम्बुधेः सर्वेश्वरस्याश्रयणे पदाब्जयोः ।
सुतत्परोऽनाथ इवाभिपीड्यते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि! दृश्यताम् ॥१०४॥
काचिच्च शार्दूलसुता दुरात्मभिः संक्लिश्यते ग्राममतङ्गवैरिभिः ।
स्वस्या हि मातुः पुरतो न सेक्षते ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि! दृश्यताम् ॥१०५॥
सुवत्सला काचिदचिन्त्यवैभवा ज्ञात्वाऽभिवीक्ष्याप्यनुगामुपेक्षते ।
सङ्क्लिश्यमानां दयितां दयानिधे! ह्याश्चर्यमेतत्तु किशोरि! दृश्यताम् ॥१०६॥
प्रसीदताच्चारुमनोज्ञहास्ये ! संमर्षयामर्ष्यमहापराधान् ।
कारुण्यमेवाभरणं त्वदीयं दयानिधे ! संत्यज निर्दयत्वम् ॥१०७॥

कोई एक नरपालन सामर्थ्य (बल, बुद्धि, सेना, कोष आदि) युक्त राजा है, परन्तु निर्धनता से दुखी हो रहा है, यहाँ तक कि भूखसे व्याकुल हो सुख पूर्वक मृत्युकी बाट जोह रहा है, हे श्रीकिशोरीजी इस आश्चर्यमयी घटनाको भी आप अवलोकन कीजिये ॥१०३॥

कोई एक ऐसा है, जो आश्रित वत्सल, सर्वेश्वर, कृपासुधासागर, सब प्रकार रक्षा करने वाले, सर्वसमर्थ प्रभुके श्रीचरण-कमलोंकी सेवामें तत्पर होने पर भी अनाथकी भाँति पीड़ित हो रहा है, हे श्रीकिशोरीजी इस आश्चर्यमयी घटनाको भी आप अवश्य अवलोकन करें ॥१०४॥

एक शार्दूल की बच्ची है, उसे उसके सामने ही कुत्ते तङ्ग कर रहे हैं, पर वह देखती ही नहीं, हे श्रीकिशोरीजी ! इस आश्चर्यमयी घटनाको भी आप अवश्य अवलोकन कीजिये ॥१०५॥

अहो कोई एक हैं, जिनका ऐश्वर्य चिन्तन शक्तिसे अगोचर है, जो वात्सल्य रसमें प्रधान व दया की समुद्र हैं, उनकी प्रिय अनुचरी (दासी) अत्यन्त क्लेशको पारही है, परन्तु वे जानकर और देखकर भी उसके दुःख हरण करनेकी ओर ध्यान नहीं दे रही हैं। हे श्रीकिशोरीजी! इस आश्चर्य पूर्ण घटना को भी आप अवश्य अवलोकन कीजिये ॥१०६॥

इस प्रकारसे उस जीवा सखीने उपर्युक्त व्यङ्गोक्तियोंके द्वारा अपनी आरूढ़च्युत दशाको आश्चर्यमयी घटनाओंका रूप देकर श्रीकिशोरीजीसे देखनेके लिये प्रार्थना निवेदनकी, उस समय उसके हृदयमें श्रीकिशोरीजी मुस्कराती हुई प्रतीत हुई अतः जीवासखी भावबदलकर प्रार्थना करती है:– हे सुन्दर मनहरण मुस्कान युक्ता श्रीकिशोरीजी ! मैंने अपनी मूर्खता वश क्या–क्या कह डाला ? इन अक्षम्य अपराधोंको आप क्षमा करें, और दुखी जानकर प्रसन्न हों ! हे दयानिधेजू ! आश्रितोंके दुःखको देखकर द्रवित होना ही आपका प्रधान भूषण है, अत एव कठोरताका परित्याग कीजिये ॥१०७॥

क ईश्वरः साधयितुं जगत्त्रये विनिर्दयत्वं करुणानिधे ! त्वयि ।
क्षमस्व वात्सल्यवतीरितं मया किशोरि ! मौढ्यात्प्रणयादनर्गलम् ॥१०८॥
खगा यथा खे च बहूत्पतन्ति व्रजन्ति पारं न तथा मुनीन्द्राः ।
तव क्षमाशीलकृपादिकानां परिस्थितिं स्वामिनि ! वर्णयन्तः ॥१०९॥
गतिस्त्वमेवासि चराचराणां स्थितिस्त्वयैवाश्रितकामधेनो ! ।
संमर्षयाघौघमहो कृपातः किशोरि ! मातेव जगत्त्रयाम्ब ! ॥११०॥
घनिष्ठसम्बन्धमृते न जातु प्राप्तिर्भवत्या इति निश्चितं हि ।
गुरोः सकाशात्तमवाप्य विज्ञाः सुखेन संयान्तु तव प्रसादम् ॥१११॥
चराचरं सर्वमिदं त्वदंशजं त्वयाऽभिगुप्तं त्वयि सुप्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येव चान्ते प्रविलीयते तथा त्वया ततं सर्वजगद्धितैषिणि ! ॥११२॥
छलं स्त्रियं काञ्चनमुत्सृजन्तो भजन्ति ये त्वां विगताभिलाषाः ।
सुखेन ते त्वच्चरणप्लवाश्रितास्तीर्त्वा भवाब्धिं तव यान्ति धाम ॥११३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आप वात्सल्य रसकी सागर हैं, अत एव मेरे द्वारा मूर्खता या प्रणय वश अनुचित कहे हुये शब्दोंको क्षमा कीजिये, क्योंकि आपतो दयाकी भण्डार ही हैं, आपमें दयाहीनता सिद्ध करनेके लिये त्रिलोकोंमें भला कौन समर्थ हो सकता है ? ॥१०८॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! जैसे आकाशमें पक्षीगण अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार बहुत कुछ उड़ते हैं, परन्तु उस (आकाशका) पार नहीं पाते, इसी प्रकार श्रेष्ठ मुनिगण भी अपनी-अपनी शक्ति और मतिके अनुसार आपके क्षमा शील कृपादिक दिव्य मङ्गल गुणोंकी परिस्थितिका वर्णन करते हुये कभी भी पार नहीं पाते ॥१०९॥ हे आश्रित-काम-दोहे (शरणागतजीवोंकी सभी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली) ! चर अचर प्राणियोंको आपही सम्हालने वाली हैं, आपही के द्वारा इनकी स्थिति भी है, अतएव हे जगज्जननी श्रीकिशोरीजो! आप मेरे अपराधपुञ्जोंको अपनी कृपासे ही क्षमा करें ॥११०॥ हे श्रीस्वामिनीजू! बिना घनिष्ठ सम्बन्ध के आपकी प्राप्ति कभी नहीं होती है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है, अतएव बुद्धिमानोंको चाहिये कि, आचार्य द्वारा वे उस (सम्बन्ध-भाव) को प्राप्त करके सुखपूर्वक आपके प्रसादको प्राप्त कर लें ॥१११॥ हे स्थावर जङ्गम प्राणियोंका हित चाहने वाली श्रीकिशोरीजी ! यह सारा चर अचर मय जगत्, आपके ही अंशसे प्रकट, और आप में ही स्थित है, आपही इसकी रक्षा करने वाली हैं, तथा अन्तमें यह सब दृश्य प्रपञ्च आपमें ही विलीन होगा और अभी भी यह सारा विश्व आपके द्वारा व्याप्त हो रहा है ॥११२॥

छल, स्त्री, धन आदि आसक्ति-वर्द्धक वस्तुओंका परित्याग करते हुये जो सब कामनाओंको छोड़कर आपका भजन करते हैं, वे सुखपूर्वक आपके श्रीचरण कमल रूपी जहाजका अवलम्ब लेकर संसार-सागरको पारकर आपके दिव्य धामको प्राप्त होते हैं ॥११३॥

जना हृदिस्थेन सुवञ्चिता इव केनापि देवेन सुमन्दभाग्यतः ।
विसृज्य ते पादसरोजमर्थदं भजन्त्यनाढ्यान् हतमङ्गलश्रियः ॥११४॥
झणत्पदाब्जाभरणस्य नादः श्रुतो न यैस्त्वन्निमिवंशभूषे ! ।
तेषां गतं व्यर्थमिदं सुजन्म सुरैर्विमृग्यं जलजोदराक्षि ! ॥११५॥
नमन्ति गायन्ति भजन्ति ये त्वां सर्वात्मना वै शरणं प्रयान्ति ।
धन्याः कृतार्थाः कृतपुण्यपुञ्जा नमोऽस्तु तेभ्यो मम कोटिकृत्वः ॥११६॥
तवानुकम्पा न करोति किं किं निरक्षरं विज्ञतमं करोति ।
मूकं च वाचालमरिं सुमित्रं तुषारमग्निं शमशं किशोरि ! ॥११७॥
दशा मदीयाऽपि निरीक्षितव्या स्वभावसिद्धेव कृता मया या ।
विगर्हणीया भुवि शोचनीया महद्भिरार्ये ! कमलायताक्षि ! ॥११८॥
धनं मदीयं तव पादपङ्कजं विराजितं मे हृदयान्धगर्तके ।
प्रज्वाल्य तत्प्रेमसुदीपमञ्जसा प्रदर्शयानुग्रहभावतोऽधुना ॥११९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! लोग अत्यन्त मन्द भाग्यके कारण हृदयमें विराजमान किसी देवतासे वञ्चित किये (ठगे) हुयेके समान सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करने वाले आपके श्रीचरणकमलों को छोड़कर दरिद्र, धन हीनोंकी सेवा कर रहे हैं ॥११४॥

हे निमिवंशकी भूषण स्वरूपा ! हे कमलदललोचना श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने झङ्कार करते हुये आपके पाद-भूषणोंका शब्द नहीं श्रवण किया, उनका देवताओंके द्वारा खोजने योग्य यह सुन्दर मानव-जीवन व्यर्थ ही नष्ट हुआ ॥११५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो आपको नमस्कार करते हैं आपके गुणोंका गान करते हैं, तथा जो सब प्रकारसे आपकी शरणागति स्वीकार करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, और बहुत बड़े पुण्यशील हैं, उनके लिये करोड़ों बार मेरा प्रणाम है ॥११६॥

हे श्रीकिशोरीजी! आपकी कृपा क्या नहीं करती? अर्थात् सब कुछ करती है । जिसने एक अक्षर नहीं पढ़ा, उसे वह प्रकाण्ड विद्वान्, गूंगेको वाचाल (खूब बोलने वाला) शत्रुको सुखद-मित्र, अग्निको हिम (वर्फ)के समान शीतल, और अमङ्गलको मङ्गलमय बना देती है ॥११७॥

हे कमलके समान विशाललोचना श्रीकिशोरीजी ! मेरे द्वारा स्वभाव-सिद्धा सी बनाई हुई, सन्तोंके द्वारा अत्यन्त निन्दनीया तथा शोचनीया मेरी इस दशाको भी अवलोकन करना चाहिए ॥११८॥ हे श्रीस्वामिनीजू ! मेरे अँधेरे हृदय रूपी गढ़ेमें विराजमान, आपका श्रीचरण कमल ही मेरा निज धन है, अतः अपने कृपा भावसे मेरे इस अँधेरे हृदयमें प्रेमरूपी सुन्दर दीपक जलाकर मुझे उसका अब दर्शन करा दीजिये ॥११९॥

न कुत्सितं कर्म तदस्ति हे प्रिये ! व्यधायि यन्नेह मया सहस्रशः ।
विपाककालेऽभिमुखं तवागता क्रन्दामि साऽहं कृपया प्रसीद मे ॥१२०॥
पठन्तु वेदागमसत्पुराण स्मृतीतिहासानिह संहिताश्च ।
अहं तु वां नाम पठानि पूतं किशोरि ! सौभाग्यमिदं प्रयच्छ ॥१२१॥
फलेद् द्रुतं मे ऽ यमभीष्टवृक्षस्तवानुकम्पामृतवर्द्धितो हि ।
विनष्टिमाप्नोत्वचिरेण सम्यङ् ममाहितं दुर्व्यसनं समूलम् ॥१२२॥
बलं त्वदीयं बलमेव विद्यात् कुर्यात्तवार्चां गुणकीर्त्तनाढ्याम् ।
यायाच्छरण्यं शरणं वरेण्यं मनस्त्वदीयाङ्घ्रिसरोजमार्ये ! ॥१२३॥
भवे भवे वै कृपया भवत्या त्वज्जन्मभूमौ मम जन्म भूयात् ।
रतिस्त्वदीयाङ्घ्रिसरोजयोश्च स्वभावजेवास्त्वनपायिनी च ॥१२४॥
मतिं हि तां देहि यया त्वहर्निशं तवानुकम्पां सुखदुःखयोरपि ।
विनष्टशङ्का सकलेषु जन्मसु प्रतिक्षणं चेतसि भावयाम्यहम् ॥१२५॥
यदीह मय्यस्ति तवानुकम्पा किशोरि! काचित्किल भूरिभाग्यात् ।
तदा कृतार्थाऽस्मि न संशयोऽत्र भवस्तु नूनं सफलो ममाद्य ॥१२६॥

हे श्रीप्रियाजू ! जगत्में वह कोई भी निन्दित कर्म नहीं है, जिसे मैंने सहस्रों बार न किया हो, परन्तु उनका फल उदय होने पर वही मैं आपके सम्मुख आकर अब रो रही हूँ. अतः कृपा करके आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥१२०॥ हे श्रीकिशोरीजी ! भले कोई वेद पढ़े, सत्पुराण, स्मृति, इतिहास और संहिताओंको पढ़े, परन्तु आप हमें वह सौभाग्य प्रदान कीजिये, जिससे मैं केवल आप ही श्रीयुगल सरकारके पवित्र 'श्रीसीताराम' इस नामका पाठ करती रहूँ ॥१२१॥

हे श्रीकिशोरीजी! मेरा दुर्व्यसन रूपी शत्रु शीघ्र सम्यक् प्रकारसे जड़ सहित नष्ट हो जावे। आपकी कृपा रूपी अमृतसे बढ़ा हुआ, मेरा यह मनोरथ रूपी वृक्ष शीघ्र फलवान् हो ॥१२२॥

हे आर्ये ! मेरा मन आपके ही बलको अपना बल, और गुण कीर्त्तन आदिसे युक्त आपकी पूजाको ही, अपना वास्तविक कर्त्तव्य जाने, तथा रक्षा करनेको पूर्णसमर्थ आपके ही सर्वश्रेष्ठ श्रीचरणकमलोंकी शरण ग्रहण करे ॥१२३॥ हे श्रीकिशोरीजी! जब-जब मेरा जन्म हो, तब-२ आपकी कृपासे आपकी ही जन्मभूमि (श्रीमिथिलाजी) में होवे और मेरी प्रीति सदा आपके ही श्रीचरण कमलोंमें एक रस स्वाभाविक बनी रहे ॥१२४॥

हे श्रीकिशोरीजी! मुझे सभी जन्मोंमें वह मति प्रदान कीजिये, जिसके द्वारा निःसन्देह होकर सुख–दुखमयी दोनों प्रकार की उपस्थितिमें भी रात–दिन अपने चित्त में क्षण–क्षण मैं आपकी ही दया का सदा अनुभव करती रहूँ ॥१२५॥

हे श्रीकिशोरीजी! परम सौभाग्यवश मेरेप्रति आपकी यदि किञ्चित् भी कृपा है, तो मैं कृत-कृत्य हूँ और मेरा जन्म अवश्य सफल है, इसमें नेक भी सन्देह नहीं ॥१२६॥

एवं रमेरन् विषयेषु दुर्भगा मनस्तु मे त्वच्चरणारविन्दयोः ।
भजन्तु लोकाः कमपीष्टदैवतं मनो मदीयं तु तवाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥१२७॥
ललन्तु केचित्कमपीह संश्रिताः परन्तु चेतो मम नष्टसंशयम् ।
त्वदीयसुस्निग्धपदाम्बुजाश्रितं न चान्यथा जातु किशोरि! वञ्चितम् ॥१२८॥
वरं प्रयच्छेदमभीप्सितं शुभे ! सुसाधुमृग्यं मुनिवर्यसम्मतम् ।
ममास्तु भक्तिस्त्वयि निर्मला सदा क्षयं व्रजेद्दुर्व्यसनं सकारणम् ॥१२९॥
सतां स्वभावं कलयेत्तु सर्वदा गृह्णातु मा वृत्तिमथासतां मनः ।
सदैव पश्येत्त्वदनुग्रहं प्रिये! निजां स्थितिं चैव किशोरि! निश्चलाम् ॥१३०॥
षडङ्घ्रिवृत्तिं तव पादपङ्कजे लभेत चित्तं मम नित्यमेव हि ।
नैव श्ववृत्तिं भजतां सुचञ्चलां निरङ्कुशत्वेन युतां किशोरि! मे ॥१३१॥
शमं व्रजेच्चञ्चलमुज्झितेषणां निर्द्वन्द्वमार्ये ! तव पादपङ्कजे ।
पाथोजनेत्रे! निवसेन्मनो हि मे विहाय यायान्मिथिलां न कुत्रचित् ॥१३२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! दुर्भागी जीव भले अपनी इच्छाके अनुसार विषयोंमें रमें अर्थात् सुख मानें किन्तु मेरा यह मन सर्वदा आपके ही श्रीचरणकमलों में विहार करे । लोग भले किसी अन्य इष्टदेवोंका भजन करें, परन्तु मेरा मन आपके ही श्रीचरणकमलोंका निरन्तर भजन करे ॥१२७॥

कोई जीव भले ही किसीका आश्रय लेकर आनन्द मानें, परन्तु मेरा यह चित्त समस्त सन्देहोंसे रहित होकर सदा आपके ही सुकोमल श्रीचरणकमलोंका आश्रित हो कर ही सुखका अनुभव करे, अन्यथा(आपके श्रीचरणकमलोंसे वञ्चित रहकर यह)कभी भी सुख न माने ॥१२८॥

हे सकल मङ्गलरूपा श्रीकिशोरीजी ! जिसे मुनिश्रेष्ठ भी सबसे उत्तम मानते हैं और श्रेष्ठ सन्त भी जिसकी खोज करते हैं, वही उपर्युक्त अभीष्ट वर मुझे प्रदान कीजिये, जिससे मेरी निष्काम भक्ति सदा आप में बनी रहे और मेरा दुर्व्यसन अर्थात् खोटा अनावश्यक अभ्यास समूल नष्ट हो जावे ॥१२९॥ हे श्रीप्रियाजू ! मेरा मन, संतोंके स्वभाव प्राप्तिकी ही सदा उत्कण्ठा रखे, कभी भी असज्जनों अर्थात् दुष्टों की वृत्तिको न ग्रहण करे, तथा हे श्रीकिशोरीजी! यह मेरा मन एकाग्र होकर अपनी स्थिति और आपके अनुग्रहका सदैव दर्शन करता रहे ॥१३०॥

हे किशोरीजी ! मेरा चित्त आपके श्रीचरणकमलोंमें नित्य भौंरेकी वृत्ति ग्रहण करे, शासनहीन कुत्तेके समान परम चञ्चल वृत्तिका, वह कभी भी सेवन न करे ॥१३१॥

हे आर्ये ! हे कमललोचने ! मेरा मन चञ्चलताको छोड़कर, सभी प्रकारकी वासनाओंसे रहित हो, सुख-दुःख शीतोष्ण, लाभ-हानि, संयोग-वियोग, मान-अपमानमें समताको ग्रहण करता हुआ, आपके श्रीचरणकमलोंमें शान्ति ग्रहण करे, तथा आपके ही श्रीचरणकमलोंमें सदा निवास करे और श्रीमिथिलाजीको छोड़कर कभी भी अन्यत्र न जावे ॥१३२॥

हसन्तु निन्दन्तु वदन्तु दुर्वचो जना नियुक्ता हृदयस्थितेन वै ।
केनापि देवेन पदाम्बुजाश्रितं न संस्थितिं स्वां प्रजहातु मन्मनः ॥१३३॥
क्षमस्व वात्सल्यवति ! क्षमानिधे ! सुदुष्कृतानि प्रचुरीकृतानि मे ।
पापात्मनाऽनन्तसहस्रजन्मभिर्दयानिधे ! प्रेक्ष्य पदाम्बुजाश्रिताम् ॥१३४॥
त्रस्ताऽस्मि भीताऽस्म्यपि सर्वथैव किशोरि ! कामं सुतिरस्कृताऽहम् ।
यथोचितं दुर्गतिरस्ति लब्धा मया त्वदीयाङ्घ्रियुगं त्यजन्त्या ॥१३५॥
ज्ञप्तिर्ममैषा हृदयस्थितायै कृपासुधापूर्णविलोचनायै ।
निवेद्यते सप्रियशोभितायै सर्वस्वभूते ! मयि संप्रसीद ॥१३६॥
नमस्तेऽम्बुजाक्ष्यै सतामार्तिहन्त्र्यै विदेहात्मजायै चिदानन्दमूर्ते ! ।
रमाशैलपुत्रीविधात्रीभिरीड्ये ! नमस्तेऽन्वहं प्रेष्ठहृद्भावविज्ञे ! ॥१३७॥
नमस्ते सतां सर्वसौख्यप्रदात्र्यै सुशीले ! क्षमाक्षीरधे ! दिव्यकान्ते ! ।
नमस्तेऽस्तु भूयो महाप्रेममूर्त्ते ! विदेहात्मजे ! स्वालिवृन्दैःसमेते ! ॥१३८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! हृदयमें विराजमान हुये किसी आवेशरूप देवताकी प्रेरणासे लोग भले मेरी हँसी करें, निन्दा करें और दुर्वचन कहें, परन्तु मेरा मन आपके श्रीचरणकमलोंका आश्रित होकर अपनी स्थितिका कभी भी परित्याग न करे ॥१३३॥

हे वात्सल्यवती ! दयानिधे ! श्रीकिशोरीजी ! मैं ने अनन्त सहस्र जन्मों में जो पाप बुद्धिके करण ढेरके ढेर खोटे कर्मोंका सञ्चय कर लिया है, उन्हें आप अपने श्रीचरणकमलोंकी आश्रित समझकर मुझे क्षमा करें ॥१३४॥ हे श्रीकिशोरीजी ! आपके श्रीचरणकमलोंका त्याग करनेके कारण मैं सब प्रकारकी यथोचित दुर्गतिको अब प्राप्त हो चुकी हूँ, तिरस्कार प्राप्तिमें भी अब कुछ कमी शेष नहीं है, एतदर्थ बहुत दुखी हूँ और अपने कर्मोंके फल-भोग-भयसे डर रही हूँ ॥१३५॥ हे मेरी सर्वस्वभूता श्रीकिशोरीजी ! प्राणप्यारेजूके सहित शोभमाना, हृदय-निवासिनी कृपारूपी अमृतसे पूर्ण लोचनाजू, आपसे यही निवेदित कररही हूँ कि आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१३६॥ हे श्रीप्राणप्यारेजूके हृदयका भाव भली भाँति जानने वाली ! हे चित्, आनन्द-विग्रह अर्थात् ब्रह्मके आनन्दकी मूर्त्ति श्रीकिशोरीजी ! हे सन्तोंका दुख हरने वाली ! हे रमा, उमा, ब्रह्माणियोंके द्वारा स्तुति करने योग्य श्रीकिशोरीजू ! आप श्रीविदेहनन्दिनीजीको मेरा सतत नमस्कार है ॥१३७॥ हे सौशील्यगुणयुक्ते ! क्षमासागरे ! दिव्यकान्तिवाली ! हे श्रीकिशोरीजी ! आप सन्तोंको सभी सुख प्रदान करती है, अतः आपके लिये मेरा नमस्कार है। हे महाप्रेममूर्त्ते ! हे सखीबृन्दोंसे युक्ते ! श्रीविदेहनन्दिनीश्रीस्वामिनीजू ! आपको मेरा वारं वार नमस्कार है ॥१३८॥

दिनेशान्वयाम्भोजहंसप्रियायै शरच्चन्द्रपुञ्जाभचारुस्मितास्ये ! ।
नमस्तेऽस्तु विद्युत्सहस्रप्रभायै लसद्रत्नसिंहासने राजितायै ॥१३९॥
कृपोपेतनेत्रे ! मनोज्ञाङ्गि ! नित्ये ! नमस्तेऽस्तु हारावलीभूषितायै ।
नमस्तेऽस्तु दिव्याम्बरालङ्कृतायै मणिव्रातसङ्गुम्फिताभूषणायै ॥१४०॥
तडित्कोटिपुञ्जोज्ज्वलच्चन्द्रिकायै लसत्कङ्कणाम्भोरुहोदारहस्ते ! ।
रविभ्रान्तिकृत्कर्णपुष्पे ! रसज्ञे ! सदा प्रेष्ठमोदप्रदे ! मन्दहास्ये ! ॥१४१॥
नमस्ते प्रियाब्जाक्षिवालार्कवक्त्रे द्विरेफावलीकुञ्चितस्निग्धकेशि ! ।
नमस्तेऽन्वहं नूपुराढ्याङ्घ्रिपद्मे ! प्रपन्नार्त्तकल्पद्रुमाब्जाङ्घ्रिरेणो! ॥१४२॥
नमस्तेऽस्तु सेवेप्सितैकप्रदात्र्यै मृदुस्मेरपूर्णेन्दुकान्ताननायै !
नमः प्राणनाथत्मनित्यालयायै सुकारुण्य पीयूषसद्माब्जनेत्रे ॥१४३॥

शरत् ऋतुके पूर्णचन्द्र पुञ्जके समान सुन्दर मुस्कान युक्त मुखवाली हे श्रीकिशोरीजी ! आप सूर्यवंशरूपी कमलको सूर्यकेसमान खिलाने वाले श्रीरामभद्रजूकी प्राणप्रिया हैं, और अत्यन्त शोभायमान रत्नसिंहासन पर विराजमान, सैकड़ों विजलीके समान प्रभा (प्रकाश) वाली हैं, अतः आपके लिये मेरा वारंवार प्रणाम है ॥१३९॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके कटाक्ष कृपासे युक्त तथा सभी अङ्ग मनको हरण करने वाले हैं, आप सदा ही एकरस बनी रहती हैं, हारकी पङ्क्तियोंसे आपका हृदयस्थल सुशोभित हो रहा है, मैं आपको नमस्कार करतीहूँ। मणियोंसे गुथे हुये जिनके भूषण हैं, दिव्यवस्त्रोंसे जो विभूषिता हैं, उन आपको मेरा नमस्कार है ॥१४०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो करोड़ों बिजलीके समूहोंके समान प्रकाशमान चन्द्रिकाको धारण किये हुई हैं, जिनके उदार हस्तकमल सुन्दर कङ्कणोंसे अलंकृत हैं तथा सूर्यका भ्रम कराने वाले जिनके कर्ण भूषण हैं, जो सभी रसोंका यथार्थ परिज्ञान रखती हैं, और सदा अपने प्राणप्यारेजी को परम सुख प्रदान करती रहती हैं, जिनकी मन्द-२ सुन्दर मुस्कान है, उन आपको मेरा बारंबार नमस्कार है ॥१४१॥ हे श्रीकिशोरीजी ! प्यारेके नेत्र रूपी कमलको खिलानेके लिये जिनका श्रीमुखारविन्द उदय कालके सूर्यके समान है, जिनके केश भ्रमरोंके समान काले और कुञ्चित (घुँघुराले) हैं, उन आपको मेरा नमस्कार है। जिनके श्रीचरणकमल नूपुरोंसे सुशोभित हैं, तथा जिनके श्रीचरणकमलकी धूलि, शरणागत भक्तोंको कल्प वृक्षके समान सर्वाभीष्ट प्रदान करने वाली है, उन आपको मेरा सर्वदा नमस्कार है ॥१४२॥

जो भक्तोंके सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली हैं, जिनके नेत्र कमल, कृपारूपी अमृतके भवन हैं, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपको मेरा नमस्कार है। श्रीप्राणनाथजीका हृदयही जिनका नित्य महल है, मधुर मुस्कान युक्त, पूर्ण चन्द्रके सदृश अत्यन्त सुन्दर, आह्लाद कारक, प्रकाशमय, जिनका श्रीमुखारविन्द है, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपको मेरा सतत नमस्कार है ॥१४३॥

नमो भाग्यदे ! भक्तदौर्भाग्यहन्त्र्यै !
प्रपन्नाखिलाभीष्टदानप्रसक्ते ! ।
शुभं ते चिरञ्जीव सप्राणनाथा
दयालो ! दया मे विधेया भवत्या ॥१४४॥

हे हे स्वामिनि ! सर्वदे ! गुणनिधे ! कल्याणवारां निधे !
हे सर्वेश्वरि पद्मपत्रनयने ! कोटीन्दुतुल्यानने ! ।
हे साकेतविहारिणि ! प्रियवरे ! सौशील्यरत्नालये !
हे श्यामे ! वरभूषणे च रसिके ! जानामि न त्वां विना ॥१४५॥

नैवेहास्ति गतिर्हि कापि शुभदे ! त्वत्पादपद्मादृते ।
मह्यं सत्यमवेहि नानृतमहं त्वां वच्मि सत्योज्झिता ॥
वात्सल्यात्त्वमशेषहृद्गतिसुवित् प्रीता भवातो मयि ।
प्राणेशात्मसरोजकुञ्जनिलये ! जानामि न त्वां विना ॥१४६॥

हे भक्तोंके दुर्भाग्यको नष्ट करने वाली ! तथा आश्रितों के सम्पूर्ण मनोरथोंको प्रदान करनेमें विशेष आसक्त रहने वाली, उत्तम भाग्य प्रदायिनी ! श्रीकिशोरीजी ! आपको मेरा नमस्कार है । हे दयालो ! आपका मङ्गल हो, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आप अनन्त काल तक जीवित रहें एवं मेरे प्रति दया करें ॥१४४॥

हे श्रीस्वामिनीजू आप सभीका शासनसूत्र अपने हाथमें रखने वाली ! कमलदललोचना भक्तोंको सब कुछ प्रदान करने वाली, समस्त गुणोंकी प्रचुर भण्डार स्वरूपा, समस्त मङ्गलोंकी सागर, करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश परम आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमान मुखारविन्द वाली, श्रीसाकेत विहारिणी प्यारे से श्रेष्ठ, सौशील्य गुणकी समुद्र, किशोरावस्थासे युक्त श्रेष्ठ भूषणोंको धारण किये हुई प्रियतम–सुखास्वाद–परायणा हैं, आपके विना मैं और कुछ नहीं जानती ॥१४५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! यद्यपि मैं झूठी हूँ तथापि आपसे सत्य कह रही हूँ, कि आपके श्रीचरण कमलोंके बिना मेरा कोई और उपाय है ही नहीं, आप इसे असत्य न जानें । फिर आप तो सभीके हृदयकी गतिको जानती ही हैं, अतः आपसे असत्य क्या छिप सकता है ? श्रीप्राणप्यारेजूके हृदय रूपी कमलकुञ्जमें निवास करने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! मैं आपके बिना और किसीको जानती ही नहीं हूँ, अतः आप अपने वात्सल्य-भावसे ही मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥१४६॥

पापा पापविचक्षणा चपलधीः पापोद्भवा पापिनी
पापात्माऽखिलपापकण्टकगृहं सर्वापराधाश्रयः ।
सैवाहं शरणं गता निखिलदौ पादौ त्वदीयौ शुभौ
तस्मादेव दयस्व किञ्चन परं जानामि न त्वां विना ॥१४७॥

संस्मृत्येह कृपां च तेऽपरिमितां निर्हैतुकीं भूरिदां
जातायां नहि दुर्लभं किमपि वै यस्यां त्रिलोक्यामपि ।
यात्यानन्दमिदं मनो हि परमं मे पापरूपं ह्यतो
निर्भीताऽस्मि कृता तयैव शुभदे! जानामि न त्वां विना ॥१४८॥

लोके मे बहवः श्रुता मुनिवरैर्वेदैश्च सङ्कीर्त्तिताः
कारुण्यामृतसिन्धवश्च शुचयो दीनप्रिया वत्सलाः ।
सौशील्यादिगुणालयाः प्रवरदाः पूर्णेन्दुभव्यानना-
स्त्वादृक्कोऽपि निरीक्ष्यते न तु मया जानामि न त्वां विना ॥१४९॥

हे श्रीकिशोरीजी! मैं पापका स्वरूप, पाप करनेमें सब प्रकारसे चतुर, चञ्चल बुद्धि, पापोंसे ही जन्मी हुई, पाप कर्म में रत पापमय बुद्धि वाली व समस्त पाप रूपी काँटोंका निवास स्थान तथा सभी अपराधोंका घर आपके मङ्गलमय सर्वाभीष्टप्रदायक श्रीचरणकमलोंकी शरणमें आयी हूँ, अतः आप मेरे प्रति दया कीजिये, क्योंकि मैं आपको छोड़कर और कुछ नहीं जानती ॥१४७॥

हे सकल मङ्गल प्रदान करने वाली श्रीकिशोरीजी ! मेरा यह पापी मन आपकी उस हेतु रहित अपार कृपाका स्मरण करके परम आनन्दको प्राप्त हो रहा है, जो भक्तोंको उनकी योग्यता से करोड़ों गुणा अधिक फलदान दे डालती है तथा जिसके प्रकट हो जाने पर तीनों लोकोंमें कोई भी वस्तु भक्तके लिये दुर्लभ रह ही नहीं जाती । मुझे आपकी उसी निर्हैतुकी कृपाने निर्भय कर दिया है, अत एव मैं आपके विना और कुछ नहीं जानती ॥१४८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! लोकमें मुनियों और वेदोंके द्वारा गाये हुये बहुतसे करुणा रूपी अमृत के सागर, परम पवित्र, दीनोंको प्यार करने वाले परमवात्सल्य भावसे युक्त, सुशीलता आदि गुणोंके मन्दिर, दाताओंमें-शिरोमणि, पूर्णचन्द्रके समान परमाह्लादवर्द्धक मुखारविन्द वाले श्रवण किये हैं, परन्तु आपके सदृश मैंने किसीको भी नहीं देखा, अत एव आपके विना मैं और किसी को भी नहीं जानती हूँ ॥१४९॥

त्वं हि स्वामिनि! मे पिता च जननी विद्या तथा सौख्यदा
बन्धुर्दीनपरायणा सुमतिदा लावण्यशीला परा।
आचार्या परमा हिता शरणदा दौर्गुण्यविध्वंसिनी
सर्वस्वं च हितैषिणी सुखनिधिर्जानामि न त्वां विना ॥१५०॥
यस्याः पादसरोजरेणुरनिशं संमृग्यते नैगमै-
र्वेधोविष्णुमहेश्वरादिबिबुधैर्नैवाप्यते जातुचित्।
तामुत्सृज्य किशोरि ! चाप्यहह वै वात्सल्यवारां निधिं
यायां कुत्र किमर्थमेव वद मे जानामि न त्वां विना ॥१५१॥
वाञ्छा मेऽस्ति न काचिदप्यवनिजे! त्वां प्राप्य वै स्वामिनीं
नाहं त्वद्बलगर्विताऽद्य कलये किञ्चित्सुरेशानपि
प्राबुद्धये न कदाचिदप्यवनिजे ! लोकेषु चाद्यापि वै
तत्त्वं वेत्सि हि किं ब्रवीमि तदतो जानामि न त्वां विना ॥१५२॥
भवाम्बुनाथोदरपातिताऽस्मि स्वकर्मभिर्मन्दमतिः प्रकामम्।
तुदन्ति कामादिजलौकसो मां ते शान्तिमांसादवरा किशोरि ॥१५३॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! आप ही मेरी माता, पिता, विद्या, सुख देनेवाली, बन्धु, दीनोंका सम्हाल करने वाली, सुन्दर मति प्रदान करने वाली, अत्यन्त छबिमाधुर्य सम्पन्ना, सद्गुरु, हित करने वाली, रक्षा करनेवाली तथा खोटे गुणोंको नष्ट करने वाली, सुखोंकी खजाना, हितचिन्तन करने वाली मेरी सर्वस्व हैं, अतएव आपको छोड़कर मैं और कुछ नहीं जानती ॥१५०॥

जिनके श्रीचरणकमलोंकी धूलिको ब्रह्मा, विष्णु-महेशआदि देवता तथा वेद-वेत्तागण सतत खोजते रहते हैं, पर वह कभी प्राप्त नहीं होती, हे श्रीकिशोरीजी! अहह उन आप वात्सल्य-सागराको छोड़कर बतलाइये मैं कहाँ ? और किस लिये जाऊँ ? आपके अतिरिक्त मैंतो और कुछ जानतीही नहीं ॥१५१॥

हे श्रीधरणिनन्दिनीजू ! आप स्वामिनीको पाकर मुझे किसी भी प्रकार की इच्छा अब शेष नहीं है, आपके बलके अभिमानसे मैं देवनायकोंको भी कुछ नहीं गिन रही हूँ, और न उन्हें आज तक त्रिलोकीमें कुछ समझती ही रही, सो मैं क्या कहूं ? आप जानती ही हैं, कि मैं आपके विना और कुछ नहीं जानती ॥१५२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मुझ मन्द मतिको अपने ही कर्मों ने संसार रूपी समुद्रके बीचमें पटक दिया है जिससे कामादि रूपी मगर आदिक जलजन्तु मुझको अत्यन्त कष्ट दे रहें हैं, क्योंकि वे शान्ति रूपी माँसके मुख्य भक्षक ठहरे ॥१५३॥

बलोत्कटेभ्यः कृपया कृपालो ! विमोचनं कारय मे प्रियेण ।
स एव संरक्षणयोगदक्षो निजाश्रितानामपि मृत्युवक्त्रात् ॥१५४॥

तुलोध पापेष्वधमेषु चापि वधार्हणीयेष्वपराधकेषु ।
यथा तथा मे भव सुप्रसन्ना निर्व्याजया सत्कृपयैव चाशु ॥१५५॥

सुबुद्धिमार्ये ! कृपया प्रयच्छ सप्रेमभक्ति विमलां सबोधाम् ।
अहं समासाद्य पदारविन्दे निवेशये यां स्वमनोऽलिपोतम् ॥१५६॥

प्रसीद कारुण्यरसाप्लुताक्षि ! स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषे ।
प्रदेहि कैङ्कर्यमजादिकाङ्क्ष्यं पदाब्जयोर्मे करुणैकलभ्यम् ॥१५७॥

सन्तस्तु यद्भावनया सुतृप्ताश्चरन्त्यदुःखं विषयेष्वसक्ताः ।
तत्प्राप्तिरस्त्वाशु किशोरि! मेऽपि प्रसीद सीरध्वजनन्दिनि! त्वम् ॥१५८॥

नासादितः स्वामिनि ! भोग एव न प्रेमयोगो न तथाऽऽत्मबोधः ।
गतं मदीयं खलु सर्वथैव निरर्थकं हन्त मनुष्यजन्म ॥१५९॥

दत्तप्रियांसाम्बुजमञ्जुहस्तां स्मितेन्दुवक्त्रां वनजायताक्षीम् ।
त्वां तप्तचामीकरभूषिताङ्गी कदा नु वीक्षेऽक्षिगतां कृपालो ॥१६०॥

हे कृपालो! इन उक्त महाबलवानोंसे कृपा करके श्रीप्राणप्यारेजूके द्वारा मुझे मुक्त करवा लीजिये क्योंकि श्रीप्राणप्यारेजू अपने अश्रितोंकी मृत्युके मुखसे भी रक्षा करने में अत्यन्त प्रवीण हैं ॥१५४॥ हे श्रीकिशोरीजी ! आप जिस निर्हेतुकी केवल कृपा वश होकर अत्यन्त पापी, अधम, प्राणदण्ड योग्य अपराध करने वालों पर भी प्रसन्न हो गयीं, उसी कृपा वश आप मेरे ऊपर भी शीघ्र प्रसन्न हूजिये ॥१५५॥

हे आर्ये! हमें कृपा करके वह ज्ञान युक्त, प्रेम भक्ति समन्वित, उज्वल, सुन्दर, बुद्धि प्रदान कीजिये जिसको पाकर मैं अपने मन रूपी भौंरेके बच्चेको आपके श्रीचरणरूपी अरुण कमलमें बिठा सकूँ ॥१५६॥ हे सहज स्वभावसे समस्त दोषोंसे रहिते, हे कारुण्य–रसपूर्ण कमललोचने श्रीकिशोरीजी! मुझपर प्रसन्न हों। ब्रह्मादि देवोंको भी जिसकी इच्छा करना कर्त्तव्य है, जो केवल कृपासे ही प्राप्तहो सकती है, मुझे वही अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवा प्रदान कीजिये १५७

हे श्रीसीरध्वजनन्दिनी श्रीकिशोरीजी! आप मुझपर प्रसन्न होवें, सन्त जिस भावनाके रसमें छके हुये विषयोंसे निरासक्त होकर, इस संसार रूपी जङ्गलमें सुख पूर्वक बिचरते हैं, उसकी प्राप्ति मुझे भी शीघ्र हो जावे ॥१५८॥ हे श्रीस्वामिनीजू ! न मैंने भोग ही प्राप्त कियाऔर न प्रेम योग, न आत्मज्ञानकी ही प्राप्ति की, अतएव मेरा यह मनुष्य जन्म, हाय विलकुल व्यर्थ ही नष्ट हो गया ॥१५९॥ हे कृपालो! जिनका मन्द मुस्कान युक्त पूर्णचन्द्रके समान प्रकाश युक्त परमाह्लाद प्रदायक श्रीमुखारबिन्द, कमलके समान विशाल नयन तथा तपाये हुये सुवर्ण(सोने) के समान शृङ्गार युक्त गौर अङ्ग हैं, श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर सुन्दर हस्तकमल रखे आँखोंके सामने पधारी हुई, आपका मैं कब दर्शन करूँगी ? ॥१६०॥

तदेव सौभाग्यदिनं मदीयं भविष्यति स्निग्धकरारविन्दम् ।
यस्मिन्नुदीक्षे स्वशिरःस्थितं श्रीप्राणेशकण्ठाभरणं त्वदीयम् ॥१६१॥
कां यामि हा हा शरणं शरण्ये! यस्याः कृपातो मम वाञ्छितं स्यात् ।
ऋते त्वदीयाङ्घ्रिसरोजयुग्मान्न वीक्ष्यते कश्चिदुपाय एव ॥१६२॥
तां भक्तिमेष्यामि यया सहर्षं कृपां करिष्यस्यमलाम्बुजाक्षि ! ।
कदान्विति ब्रूहि कृपैकमूर्त्ते ! किशोरि ! देवैरपि मार्गणीयाम् ॥१६३॥
सवल्लभा सालिगणा कदा वै सरोरुहं पाणितले दधाना ।
सस्मेरपुर्णेन्दुमुखी सभूषा हृदालये मे विहरिष्यसि त्वम् ॥१६४॥
हरिप्रियां हारविभूष्युरस्कामशेषसौन्दर्यनिकेतनाङ्गीम् ।
विहारिणीं बिम्बफलाधरोष्ठीं पश्यन्ति ये त्वां खलु तेऽतिधन्याः १६५॥
स्तादाशु संप्रीतिकरस्वभावो मनोरथश्चेति हृदि स्थितो मे ।
करोमि किं दुष्टमनो न याति स्थैर्यं महाचञ्चलमर्चनीये ! ॥१६६॥

हे श्रीकिशोरीजी! श्रीप्राणनाथजूके कण्ठका भूषण स्वरूप कमलके समान कोमल स्निग्ध, आपके हाथको जिस दिन मैं अपने सिर पर विराजमान देखूँगी, वही मेरे परम सौभाग्यका दिन होगा ॥१६१॥ हे समस्त चर-अचर, ब्रह्मासे मशक (मच्छड़) पर्यन्त जीवोंकी रक्षा करने को समर्थ श्रीस्वामिनीजू ! मैं किसकी शरण जाऊँ? जिसकी कृपासे मेरी इस पूर्वोक्त अभिलाषा की सिद्धि हो ! हा हा आपके युगल श्रीचरणकमलको छोड़कर इस मनोरथकी प्राप्तिके लिये दूसरा और कोई उपाय दीखता ही नहीं ॥१६२॥ हे कृपाकी उपमा रहित विग्रहवती, अमल कमलके समान नेत्रवाली, श्रीकिशोरीजी ! बतलाइये-देवताओंमें खोजने योग्य मैं आपकी उस-भक्तिको कब प्राप्त करूँगी? जिसके प्राप्त हो जानेपर आप हर्ष पूर्वक, मेरे हृदयकी उत्कण्ठा पूरी करनेके लिये, स्वयं कृपा करेंगी ॥१६३॥ हे श्रीस्वामिनीजू! पूर्ण शृङ्गार युक्त, अपने करकमलमें कमलको धारणकी हुई! श्रीप्राणप्यारेजूके सहित, सखी वृन्दोंके समेत मन्दमुस्कान युक्त, पूर्णचन्द्र के समाम परमाह्लाद-वर्द्धक प्रकाशमान मुख वाली कब आप मेरे हृदयरूपी मन्दिरमें विहार करेंगी?॥१६४॥ जिनके श्रीअङ्गोंमें ही समस्त सौन्दर्यका निवास है, अरुण बिम्बाफलके समान जिनके अधर और ओष्ठ हैं, हारोंसे अलंकृत जिनका उरस्थल है, सारे विश्वमें जो नाना रूपोंसे विहार कर रही हैं, तथा भक्तोंके पाप और दुःख को हरने वाले श्रीरघुनन्दन प्यारेजूकी जो प्रिया हैं, उन आपके दर्शनसुखका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है, वे निश्चय ही परम धन्य हैं ॥१६५॥

हे विश्व मात्रके पूजने योग्य, श्रीकिशोरीजी ! मेरे हृदयमें मनोरथ तो यही विद्यमान है, कि मेरा स्वभाव ही आपकी शीघ्र पूर्ण प्रसन्नता कराने वाला हो जावे, परन्तु करूँ क्या ? यह मेरा दुष्ट महा चञ्चल मन स्थिर नहीं होता ॥१६६॥

जनाः प्रमत्ता हितबुद्धिहीना मज्जन्ति संसारपयोधिमध्ये ।
सङ्क्लिश्यमाना मदनादिनक्रैरपास्य ते पादसरोजपोतम् ॥१६७॥
न तेऽनुरक्ताः सदयाक्षिदृष्टा लब्धाङ्घ्रिपङ्केरुहदीर्घनौकाः ।
प्रिये ! निमज्जन्ति भवे प्रपन्ना दयानिधे ! पुण्यकृतां वरिष्ठाः ॥१६८॥
कदा नु ते स्निग्धपदारविन्दे ब्रह्मादिदेवैर्मनसाऽभिजुष्टे ।
मनोऽलिपोतो मम चम्पकाभे सुनूपुराढ्ये प्ररमेत भूयः ॥१६९॥
रासप्रियां रासकलासुदक्षां रासेश्वरीं रासरसेशकान्ताम् ।
रासस्थले रासविलासमग्नां कदा नु संवीक्ष्य कृती भवेयम् ॥१७०॥
जपादियोगं न च वेद्मि कश्चित्कृतो न मे जातु च मुक्तियत्नः ।
नानुष्ठितः प्रीतिकरो हि योगस्तव प्रसन्नाक्षि ! मया कदाचित् ॥१७१॥
पुनीहि मे ऽन्तःकरणं स्वदृष्ट्या पाथोजपादावपि सन्निधत्स्व ।
मनोमृगं मे स्मितपाशवद्धं कृत्वाऽर्पितं ते कृपया गृहाण ॥१७२॥

जिनकी बुद्धि हितकारिणी नहीं है, वे लोग प्रमाद वश ही आपके श्रीचरण कमलरूपी जहाजको त्याग कर संसार रूपी समुद्रके बीचमें डूब रहे हैं, और उन्हें कामादिक मगर अत्यन्त कष्ट पहूँचा रहे हैं ॥१६७॥ हे दयानिधे श्रीप्यारीजू! परन्तु जिन पुण्यात्माओंको आपके श्रीचरणकमलकी विशाल नौका मिल गयी है, तथा जिन्हें आप अपनी दयापूर्ण दृष्टिसे अवलोकन कर चुकी हैं, वे आपके प्रेमी शरणागत भक्त, संसार सागरमें कभी नहीं डूबते ॥१६८॥

हे श्रीकिशोरीजी! ब्रह्मादि देवताओंके मन द्वारा सेवित, चम्पा पुष्पकी द्युतिको जीतने वाले, नूपुरोंसे युक्त, अतीव चिक्कण, आपके श्रीचरण कमलमें मेरा यह मन रूपी भौंरेका बच्चा कब पुनः पुनः क्रीड़ा करेगा ? ॥१६९॥

जिन्हें रासप्रिय है, रासकी कलामें जो अत्यन्त निपुण, और रास रस नायक श्रीरामजी सरकारकी प्राण प्यारी हैं, उन आपका रास-स्थलमें रास केलि करते हुये कब मैं भली भाँति दर्शन करके कृतकृत्य होऊँगी ॥१७०॥

हे प्रसन्न लोचना श्रीकिशोरीजी! मैं जप आदिक किसी भी योगको नहीं जानती हूँ, और न मैंने कभी अपनी मुक्तिके लिये ही कुछ प्रयत्न किया है, न आपके प्रसन्नता कारक कभी मैंने भक्ति योगका अनुष्ठान ही किया है ॥१७१॥

हे श्रीकिशोरीजी! आप अपनी कृपादृष्टिसेही मेरे अन्तःकरणको पवित्र कीजिये और अपने श्रीचरणकमलोंको उसमें रख दीजिये तथा आपको मेरे अर्पण किये हुये मनरूपी मृगको अपनी मुस्कान रूपी डोरीमें बाँधकर कृपा पूर्वक स्वीकार कीजिये ॥१७२॥

त्रीण्येव मुक्त्यै किल साधनानि प्रोक्तानि वेदैरपि विश्रुतानि ।
तानि त्वदीयां न कृपां विनाऽपि प्रयान्ति सिद्धिक्षमतां कदाचित् ॥१७३॥
दिश स्वप्रेमाप्लुतभक्तियोगं कृपैकहेतुं गतसर्वदोषम् ।
निरीक्ष्य पादाम्बुजयोः प्रपन्नां किशोरि ! मां त्वं प्रणिपाततुष्टे ! ॥१७४॥
व्यवस्थचित्ता गतसर्वतृष्णा यथा च कैङ्कर्यरता भवेयम् ।
तथाऽनुगृह्णीष्व किशोरि ! मह्यं चिराय मे कूलमिवासि लब्धा ॥१७५॥
सिञ्चन्त्य आरात्प्रियमात्मनाथं लब्धेङ्गिताः कोशलराजसूनुम् ।
तवालिमुख्यास्त्वयि बद्धभावा दृश्या भविष्यन्ति कदा नु ता मे ॥१७६॥
हारांश्च नव्यानि विभूषणानि सुपुष्कराणां रचितानि भक्त्या ।
मयाऽर्पितानि प्रणयेन तुष्टा संधारयिष्यस्यथवा कदा त्वम् ॥१७७॥
सहार्यपुत्रेण मुदा स्वपन्त्याः पुष्पाम्बरालङ्कृतरत्नतल्पे ।
कदा भवत्याः पदपद्मसेवा लभ्या च मे रूपसुधां पिबन्त्याः ॥१७८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मुक्ति प्राप्तिके लिये कर्म, ज्ञान, उपासना ये, ही तीन साधन वेद कथित सुने जाते हैं, परन्तु ये तीनों भी बिना आपकी कृपा हुये मुक्ति प्राप्तिकराने में कभी समर्थ नहीं होते ॥१७३॥

प्रणाम मात्रसे संतुष्ट (प्रसन्न) हो जाने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आप मुझे अपने श्रीचरणकमलोंकी शरणमें आई हुई देखकर, उस परमपवित्र प्रेममें भीजे हुये भक्ति योगका उपदेश करनेकी कृपा कीजिये कि, जिसके द्वारा आपकी कृपाका प्रवाह (बहना) स्वयमेव प्रारम्भ हो जाय ॥१७४॥ हे श्रीकिशोरीजी ! अब आप मेरे प्रति ऐसी अनुकम्पा कीजिये कि जिससे मैं सब कामनाओंसे मुक्त, एकाग्रचित होकर आपकी सेवा परायणा बन जाऊँ। हे श्रीकिशोरीजी! इस संसार–सागरके प्रवाहमें डूबती हुई को, बहुत दिनोंके बाद जीवन-आशाप्रद, आपका यह स्मृतिरूपी अवलम्ब मुझे इस प्रकार मिला है, मानों किनारा ही मिल गया हो ॥१७५॥ हे श्रीस्वामिनीजू ! जिन्होंने आपके प्रति अपना सम्बन्ध-भाव बाँध लिया है, वे आपकी सखियाँ आपका इशारा पाकर अपने प्रिय प्राणनाथ, श्रीकोशलकुमारजीको (फागके उत्सवमें रंगसे)सिञ्चन करती(भिगोती)हुई कब अपना मुझे दर्शनप्रदान करेंगी ॥१७६॥

हे श्रीकिशोरीजी ! प्रेमपूर्वक बनाकर मेरे समर्पण किये हुये-सुन्दर फूलोंके हार तथा नवीन भूषणोंको, मेरे प्रणय भावसे प्रसन्न होकर कब आप धारण करेंगी ॥१७७॥

हे श्री किशोरीजी ! युगल छवि-सुधाका पान करते हुये, कब मुझे पुष्पोंके बिछावन से युक्त रत्नमय पलङ्ग पर, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सुख पूर्वक शयन की हुई आपके, श्रीचरणकमल की सेवा, प्राप्त हो सकेगी ? ॥१७८॥

नवामलोत्फुल्लसरोजनेत्रां सिंहासनस्थां सुषमैकमूर्त्तिम् ।
कदालकालङ्कृतमोहनास्यां द्रक्ष्याम्यहं प्रेष्ठकराञ्चितांसाम् ॥१७९॥
स्थानं स्वकीयं सुखदं दुरापं कदा नु वेत्ता पदपङ्कजं ते ।
मनःषडङ्घ्रिर्मम हीनतृष्णः किशोरि ! वात्सल्यवति ! प्रसीद ॥१८०॥
मङ्गलं ते दयासिन्धो ! धरित्रीगर्भसम्भवे ! । वेद्यायै श्रुतिसारज्ञैर्ज्ञानभक्त्यैकमूर्त्तये ॥१८१॥
मङ्गलं तेऽसुनाथाय यतीनां लक्ष्यरूपिणे । भक्तवश्याय भक्तानां नाकिवृक्षाम्बुजाङ्घ्रये ॥१८२॥
मङ्गलं मिथिलेन्द्राय जनन्या सहिताय ते । ब्रह्मादिसकलाभीष्टदातृदानविधायिने ॥१८३॥
मङ्गलं मिथिलायै च नतायै सर्वधामभिः। यत्रत्यानां च सौभाग्यं विस्मिता वीक्ष्य लोकपाः ॥१८४॥
मङ्गलं ते सखीभ्योऽस्तु स्तुत्यकीर्त्तिभ्य एव च । सुलब्धाशेषकैङ्कर्यावसराभ्यो जगद्धिते ॥१८५॥

जिनके नव निर्मल कमलके समान खिले नेत्र हैं, उपमा रहित सौन्दर्यकी जो विग्रह हैं, अलकावलीसे सुशोभित, मन-मोहक जिनका श्रीमुखारविन्द है, प्राणप्यारेजूके करकमलसे सुशोभित जिनका स्कन्ध भाग है, सिंहासन पर जो विराज रही हैं, उन आपका प्रत्यक्ष दर्शन मैंकब प्राप्त करूँगी ॥१७९॥

हे वात्सल्य रसमयी श्रीकिशोरीजी ! मुझपर प्रसन्न होइये । मेरा मनरूपी भौंरा समस्त वासनाओंसे मुक्त होकर कब आपके दुर्लभ श्रीचरण-कमलोंको ही अपना सुखद, निवास–स्थान समझेगा ? ॥१८०॥ हे दयासिन्धो ! हे पृथिवीके गर्भसे प्रकट हुई श्रीकिशोरीजी ! वेदोंका सार जानने वाले विद्वान् ही आपकी महिमाको कुछ समझ सकते हैं, आप ज्ञान और भक्तिकी साक्षात् विग्रह हैं, अतः आपका सदा ही मङ्गल हो ॥१८१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो यतियोंके लक्ष्य (परब्रह्म) स्वरूप, भक्तोंके अधीन रहने वाले तथा कल्पवृक्षके सदृश भक्तोंके सर्वाभीष्टदायक श्रीचरणकमल वाले हैं, उन आपके श्रीप्राणनाथजू का मङ्गल हो ॥१८२॥

ब्रह्मादि देवताओंको भी सर्व प्रकारका अभीष्ट प्रदान करने वाले जो सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामसरकारजू हैं, उन्हें भी दान प्रदान करने वाले आपकी श्रीअम्बा (सुनयनामहाराणी) जीके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजका मङ्गल हो ॥१८३॥

जहाँके निवासियोंका सौभाग्य देखकर सभी लोकपाल भी आश्चर्य चकित हैं, तथा सभी धाम भी जिसे प्रणाम करते हैं, आपकी उस श्रीमिथिलाजीका मङ्गल हो ॥१८४॥

चर–अचर प्राणी मात्रका हित करने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने आपकी सेवाका पूर्ण अवसर प्राप्तकर लिया है, उन प्रशंसनीय कीर्त्ति वाली आपकी सखियोंका मङ्गल हो ॥१८५॥

जयेन्दुकोटिभानने ! सरोरुहार्द्र लोचने ! जयामितार्त्त वत्सले ! किशोरि ! कान्तजीविते ! ।
जयाब्जपाणिपङ्कजे! प्रियात्मनित्यमन्दिरे! कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते ॥१८६॥
जयाजविष्णुशङ्कराहिराड्दुरापदर्शने ! जयाखिलाङ्गशोभने ! सुदिव्यभूषणान्विते ! ।
जयालिवृन्दसेविते ! रसाश्रये ! रसाकृते ! कदा दयिष्यसे शुभे! स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते !॥१८७॥
जयाश्रितामरद्रुमारविन्दकोमलाङ्घ्रिके ! जयेश्वरेश्वरेश्वरि ! क्षितीश्वरात्मजप्रिये ।
गुणाम्बुधे! क्षमाम्बुधे! शुभाम्बुधे! सतां गते! कदा दयिष्यसे शुभे! स्वतो मयि श्रियार्ऽच्चिते! ॥१८८॥
नमोऽस्तु ते सदाऽन्वहं सुलालिताश्रितावले ! समस्तसद्गुणालये ! विदेहराजकन्यके ! ।
नरेन्द्रसूनुसङ्गते ! प्रकृष्टदीनवत्सले ! कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते! ॥१८९॥

हे चन्द्रसे कोटि गुणा अधिक प्रकाश युक्त श्रीमुखवाली ! हे कमलके समान आर्द्र (दयासे द्रवित) नेत्र वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे आर्त्तभक्तोंके प्रति अत्यन्त वात्सल्य भाव रखने वाली ! हे प्राणप्यारेकी जीवन स्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। अपने करकमलमें कमलका पुष्प धारण करने वाली तथा प्यारेके हृदयको ही अपना स्वच्छ महल बनाने वाली श्रीस्वामिनीजू! आपकी जय हो । श्रीदेवीसे पूजित! मङ्गल स्वरूपा हे श्रीकिशोरीजी! कब आप अपनी ही निर्हेतुकी दया से द्रवीभूत होकर, स्वयं मुझपर कृपा करेंगी ? ॥१८६॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश शेष आदिके लिये भी कठिनतासे दर्शन पाने योग्य हे श्रीकिशोरीजी आपकी जय हो। सभी अङ्गोंसे परम सुन्दर प्रतीत होने वाली आपकी जय हो। अत्यन्त दिव्य भूषणोंको धारण करने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे सखी वृन्दोंसे सेविता, सभी रसों की कारण भूता, रस की मूर्त्ति, श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे मङ्गल मयीजू! हे श्रीदेवी से पूजितेजू! कबआप अपनी ही कृपा से द्रवित होकरमुझपर दया करेंगी ॥१८७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके अरुण कमलके समान "सुकोमल श्रीचरणकमल" आश्रित भक्तों के अभीष्ट पूरा करनेके लिये कल्पवृक्षके समान हैं, आपकी जय हो। हे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजी सरकारकी प्राणप्यारी और सभी शासक-शक्तियों पर शासन करनेवाली श्रीजनकजी महाराज की दुलारी आपकी जय हो। हे समस्तगुण सागरे ! क्षमासिन्धो ! हे समस्त मङ्गलोंकी समुद्र-स्वरूपे! हे सन्तानोंकी रक्षा करने वाली। हे मङ्गल स्वरूपा ! हे श्रीदेवीसे पूजिते श्रीकिशोरीजी ! आप अपनी ही निर्हेतुकी कृपासे कब मेरे ऊपर दया करेंगी ॥१८८॥

जिनके द्वारा आश्रित भक्तोंका अत्यन्त लाड़ लड़ाया जा रहा है, जो समस्त सद्गुणोंकी मन्दिर और श्रीविदेह महाराजकी कुमारी हैं, तथा श्रीचक्रवर्तीकुमारजीके समीप में विराज रही हैं, जो दीन जनोंके प्रति वात्सल्य भाव रखने वालियोंमें परमश्रेष्ठ श्रीदेवीजीसे पूजित, मङ्गल स्वरूपा हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपको मैं सतत नमस्कार करती हूँ, आप अपने अपेक्षा रहित सहज स्वभावसे, मेरे प्रति कब कृपा करेंगी ॥१८९॥

अनन्तमारवल्लभाविमोहनाङ्गि ! सर्वदे ! ससुस्मितेन्दुभानने ! सुरक्षिताङ्घ्रिसंश्रिते ।
अमोघपुण्यदर्शने! शुभाक्ष्युदारकीर्त्तने ! कदा दयिष्यसे शुभे ! स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते ! ॥१६०॥
दृगम्बुजालये ममाऽऽवसानघस्मितानने ! न रत्नकाञ्चनालये मृदुर्हि वस्तुमर्हसि ॥
इदं सुवाञ्छितं मया समीक्ष्य वीक्ष्य चासकृत् कदा दयिष्यसे शुभे! स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते! ॥१६१॥
बृहत्क्षमादयार्जवानृशंसतासुशीलता – शरेण्यतावरेण्यतामनोज्ञतामहानिधे ! ॥
ऋते त्वदङ्घ्रिपङ्कजाद् गतिर्नु केतरा हि मे? कदा दयिष्यसे शुभे! स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते! ॥१६२॥
अहं किशोरि ! यादृशी शुभाऽशुभाऽपि मूढ़धीस्त्वदीयसर्वकामदं पदाम्बुजं समाश्रिता ।
प्रसीद भूरिवत्सले ! रमाशिवादिवन्दिते ! कदा दयिष्यसे शुभे? स्वतो मयि श्रियार्ऽचिते! ॥१६३॥

हे अपने श्रीअङ्गोंकी छबिसे अनन्त रतियोंको मुग्ध कर लेने वाली! आश्रितोंको सब कुछ प्रदान करने वाली ! सुन्दर मुस्कान युक्त, चन्द्रमाके प्रकाशके समान शीतल प्रकाश युक्त श्रीमुख कमल वाली ! अपने श्रीचरण कमलोंके शरणागत भक्तोंकी रक्षा करने वाली! मङ्गलमय नेत्र, अमोघ अर्थात् कभी भी निष्फल न जाने वाले दर्शन, उदार अर्थात् बिना और किसी साधनकी अपेक्षा रखते हुये, ही भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सब कुछ प्रदान कारी कीर्त्तन वाली, मङ्गल स्वरूपा, श्रीदेवीसे पूजित हे श्रीकिशोरीजी ! कब आप अपनी ही कृपासे मुझपर दया करेंगी ?॥१६०॥

हे पवित्र मुस्कान युक्त श्रीमुखारविन्द वाली श्रीकिशोरीजी! आप मेरे नेत्ररूपी कमल-भवन में निवास कीजिये, रत्न और कञ्चन-भवनमें नहीं, क्योंकि आप अत्यन्त सुकुमारी हैं, इन कठोर महलोंमें बसनेके योग्य नहीं हैं, अतः मैंने बारं बार भली–भाँति सोच–विचार करके ही यह (उपर्युक्त) इच्छा हृदयमें जमाई है। हे श्रीदेवीसे पूजित, मङ्गल-स्वरूपा, श्रीकिशोरीजी! कब आप अपनी स्वाभाविकी कृपासे द्रवित होकर मेरे प्रति दया करेंगी? ॥१६१॥

हे अत्यन्त क्षमा, दया, सरलता, मृदुलता, अतीव दयालुता, सुशीलता तथा रक्षा करनेकी पूर्ण योग्यता, सर्वश्रेष्ठता, मनोहरता समूहकी महानिधि श्रीकिशोरीजी! आपके श्रीचरण कमलों के अतिरिक्त मेरी दूसरी और गति ही कौन है? हे श्रीदेवीसे पूजित मङ्गल स्वरूपा श्रीकिशोरीजी! कब आप अपने सहज दयालु स्वभावसे मेरे प्रति दया करेंगी ॥१६२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! मैं जैसी भी अच्छी बुरी मूढ़ मति हूँ, आपके ही सर्वाभीष्ट दायक श्रीचरण कमलोंकी ही आश्रिता हूँ, आप प्रसन्न होइये। हे अत्यन्त वात्सल्य गुण युक्ते! रमा, पार्वतीजी आदिसे वन्दिता, श्रीदेवीसे पूजित, मङ्गलस्वरूपा हे श्रीकिशोरीजी। अपने सहज स्वभावसे ही कब आप मेरे प्रति दया करेंगी ॥१६३॥

॥ इति मासपारायणे पञ्चमोऽविश्रामः ॥५॥

श्रीविदेहात्मजे! प्राणनाथप्रिये! स्वामिनी त्वं मदीयाऽसि सर्वेश्वरी ।
चारुफुल्लासिताम्भोजपत्रेक्षणे ! सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥१६४॥
सीतिवर्णस्तु यस्याः शुभो नाम्नि वै पूर्वकोऽर्थप्रदःशोकसंतापहा ।
तुष्टिदः प्रेयसो वक्तृकल्पद्रुमः सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥१६५॥
ताः स्त्रियस्ते नराश्चेह लोकत्रये पूजनीयोत्तमाः सर्वदेवर्षिभिः ।
याश्च ये त्वत्कृपाभाजनान्यर्थदे ! सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥१६६॥
यैरहो नादृते त्वत्पदाम्भोरुहे कोमले भक्तकल्पद्रुमौ सुन्दरे ।
तैर्न वै लभ्यते सिद्धिरेवेप्सिता सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥१६७॥
स्वामिनी त्वं हिता सर्वमोदप्रदा सर्वकल्याणदा रूपशीले ! हि नः ।
त्वां समाश्रित्य किं नो सुखं भुज्यते सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥१६८॥
हारिणी संसृतेः सर्वकामप्रदा प्राणनाथासुभूते ! जगन्मङ्गलम् ।
या नुता ब्रह्मविष्णवीशशेषादिभिः सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥१६९॥

हे श्रीप्राणनाथ, रघुनन्दन प्यारेजूकी प्रियाजू । हे श्रीविदेहनन्दिनीजू आप सभीका शासन करने वाली, मेरी स्वामिनी हैं, हे सुन्दर खिले हुये नीले कमलदलके समान नेत्र वाली, श्रीकिशोरीजी! मैं आपका सभी भावोंसे आश्रय ग्रहण करती हूँ, करती हूँ ॥१६४॥

हे श्रीकिशोरीजी! मङ्गलमय, शोक सन्तापको हरण करने वाला अभीष्टदायक, प्राणप्यारेजी की प्रसन्नता कारक, बक्ताके लिये कल्पवृक्ष के समान मनोवाञ्छित वर देने वाला, जिनके नाम का पूर्व वर्ण "सी" है, उन आपका मैं सभी भावों से आश्रय ग्रहण करती हूँ, करती हूँ ॥१६५॥

हे भक्तोंको सब कुछ प्रदान करने वाली श्रीकिशोरीजी ! जो आपकी कृपाके पात्र बन चुके हैं, वे तीनों लोकोंमें सभी देवता और ऋषियोंके द्वारा भी परम पूजनीय अर्थात् पूजा करने के योग्य हैं, अतः मैं सभी भावोंसे उन आपकी शरणागति स्वीकार करती हूँ, करती हूँ ॥१६६॥ अहो! जिन्होंने आपके भक्तकल्पतरु, सुन्दर, कोमल श्रीचरणकमलोंका आदर नहीं किया है, उन्हें भगवत्प्राप्तिस्वरूपा मनोभिलषित सिद्धि मिलती ही नहीं, अतः मैं सभी भावोंसे आपकी शरणमें जाती हूँ, जाती हूँ ॥१६७॥ हे रूपशीले ! श्रीकिशोरीजी ! आप ही हम लोगोंको सर्व कल्याण प्रदान करने वाली हैं, सकल सुखदायिनी तथा हित सोचने वाली स्वामिनी हैं, आपकी शरणमें आकर प्राणियोंको कौन सुख नहीं प्राप्त होता? अर्थात् उत्तमसे उत्तम ऐसा कोई सुख नहीं, जो आपकी शरणमें आने पर भक्तोंको न मिलता हो अत एव मैं सभी भावोंसे, उन आपकी शरण ग्रहण करती हूँ, करती हूँ ॥१६८॥ हे श्रीप्राणप्यारेजूकी प्राणभूता श्रीकिशोरीजी ! जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेष आदि देव श्रेष्ठ भी स्तुति करते हैं, जो चर-अचर प्राणियोंकी मङ्गल-स्वरूपा, सर्वमनोरथों को प्रदान करने वाली तथा भक्तोंका जन्म-मरण दूर करने वाली हैं, उन आपका मैं सभी भावों द्वारा आश्रय ग्रहण करती हूँ, ग्रहण करती हूँ ॥१६९॥

या भजद्धृत्तमोनाशनानुस्मृतिः पावनी पावनानां यशोदाऽच्युता ।
आलियूथेश्वरीस्वामिनी श्रीप्रिये! सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२००॥
मोहनः सर्वलोकस्य यस्या वशे संस्थितः सर्वदा मोहितो रूपतः ।
ह्लादिनी रासलीलेश्वरी या शुभा सर्वभावेन तां त्वां श्रयेऽहं श्रये ॥२०१॥
अस्मि पापाऽधमा यादृशी तादृशी किन्तु ते पादपाथोजयोः किङ्करी ।
त्वं हि मातो पिता सद्गुरुर्मे हिता, त्वं स्वसा बन्धुरग्या गतिः शाश्वती ॥२०२॥
या क्षमाप्रीतिकारुण्यशीलैर्वृता, सर्वसौभाग्यदा कोटिचन्द्रानना ।
दुर्लभा दुर्लभैर्ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वत्सला वत्सलेभ्योऽखिलेभ्योऽधिका ॥२०३॥
तामृते त्वां गतिः का ममास्तीह वै बिद्धि सत्यं त्विदं नानृतं मद्वचः ।
देहि दास्यं स्वपादाब्जयोः स्वामिनि! श्रीः! श्रियः संप्रसीद प्रसीदाशु मे ॥२०४॥
सर्वापराधपाशेभ्यो नरा मुक्ता ययोक्षिताः । तया प्रपश्य मां दृष्टचा सार्द्रयेहाश्नमोघया ॥२०५॥

हे श्रीप्रियाजू! जो सखियोंकी यूथेश्वरियोंकी स्वामिनी, कभी भी अपने स्वभावसे च्युत न होने वाली, तथा भक्तोंको अनेक प्रकार यश प्रदान एवं पावनोंको भी पावन करने वाली हैं, जिनका बारं बारका चिन्तन भक्तोंके हृदयका अन्धकार दूर करने वाला है, उन आपकी मैं सभी भावोंसे शरण हूँ, शरण हूँ ॥२००॥

हे श्रीकिशोरीजी! सभी लोकोंको अपनी छबि माधुरीसे मुग्ध करलेने वाले श्रीप्राणप्यारेजू भी, जिनके रूप सौन्दर्यसे मोहित होकर सदा वशमें बने रहते हैं, जो अपने सहज स्वभावसे सभीको आह्लादित करती रहती हैं तथा जिनकी अध्यक्षतामें ही रास लीला होती है उन आपकी सभी भावोंसे मैं शरणागत हूँ, शरणागत हूँ ॥२०१॥

हे श्रीकिशोरीजी! मैं पापिनी व अधम जैसी भी हूँ वैसी आपके ही श्रीचरणकमलों की किङ्करी हूँ और आप ही मेरी माता, पिता, सद्गुरु, हित करने वाली, बहिन, भइया और आपही मेरी सर्वोतम गति अर्थात् कल्याण का उपाय हैं ॥२०२॥

जो क्षमा, प्रीति, करुणा, शीलका भवन और सर्व-सौभाग्य प्रदान करने वाली हैं, कोटि चन्द्रमाओंके समान आह्लादप्रदायक जिनका श्रीमुखारविन्द है, जो दुर्लभ ब्रह्मा, विष्णु आदिकों के लिये भी दुर्लभ हैं और समस्त वात्सल्य रस प्रधानोंसे बढ़कर जिनका वात्सल्य है ॥२०३॥

उन आपके बिना मुझे भला और कौन सम्हालने वाला है? यह आप सत्य जानें, मेरे वचनों को झूठे ही न मानें। हे श्रीदेवीकी भी शोभा सम्पत्स्वरूपा श्रीकिशोरीजी! अब शीघ्र प्रसन्न हों, शीघ्र प्रसन्न हों हे श्रीस्वामिनीजू! मुझे अपने श्रीचरण-कमलों की सेवा प्रदान कीजिये॥२०४॥

हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जिस दृष्टि द्वारा अवलोकन करने पर प्राणी सभी अपराध पाशों (बेड़ियों) से मुक्त हो जाता है आप अपनी उसी अमोघ, दयाद्रवित कृपा दृष्टिद्वारा मुझे शीघ्र अवलोकन कीजिये ॥२०५॥

निश्चितो मम सिद्धान्तः कृपारूपाऽसि सर्वदे! । तदन्यथा प्रपश्यामि क्लिश्यमानाम्बुजेक्षणे! ॥२०६॥
किञ्चित्परिचितं चापि लोकाः सम्मानयन्ति हि । कीदृशं पश्य भावज्ञे! किं बहूक्त्या ममाग्रजे! ।२०७।
कच्चिच्च धनिनो लोके पूजामर्हन्ति केवलम्।कच्चिन्नाकिञ्चनाः पूज्या विरक्तास्त्वामुपाश्रिताः।२०८।
येषां सर्वं त्वमेवासि त्वत्कामा ये त्वदाश्रिताः।कच्चिन्न ते विशालाक्षि! त्वदुच्छिष्टाधिकारिणः।२०९।
कच्चिच्च ते जगन्मातर्धनाढ्या एव वल्लभाः । कच्चिन्न सर्वभावेन त्वत्पदाम्भोजमाश्रिताः॥२१०॥
कच्चित्ते गुणिनोऽप्येव सन्ति प्रेष्ठा महीतले । कच्चिन्न सर्वभावेन त्वां प्रपन्ना अकिञ्चनाः ॥२११॥
कच्चित्सर्वं परित्यज्य निश्चितार्था अकिञ्चनाः।यातास्त्वां शरणं ये वै वल्लभाः सन्ति ते न ते॥२१२॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना । येषां परागतिश्चाहं कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२१३॥
अहं भक्तपराधीना ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः । साधुभिर्बद्धचेतस्का कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२१४॥

हे सब कुछ प्रदान करने वाली कमलदललोचना श्रीकिशोरीजी! आप साक्षात् कृपाका स्वरूप हैं, ऐसा मेरा निश्चित सिद्धान्त है, परन्तु मेरे क्लेशोंका अन्त नहीं हो रहा है, इसलिये अपने सिद्धान्तके विपरीत मैं आपको अनुभव कर रही हूँ ॥२०६॥

देखिये जिससे थोड़ा भी परिचय होता है उसका लोग किस प्रकार आदर करते हैं ? हे भावज्ञे मेरी बड़ी श्रीबहिनजू ! बहुत निवेदन करनेसे क्या ? क्योंकि आप मेरे हृदयके भावको भली प्रकारसे जानती ही हैं-आपसे मेरा छोटी बहिन होनेका सम्बन्ध भी है न ॥२०७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! क्या लोकमें संसारी सम्पत्तिशाली ही पूजाके अधिकारी हैं ? क्या आप ही जिनकी सम्पत्ति हैं वे आपके आश्रित विरक्त जन आदरणीय नहीं हैं ? ॥२०८॥

हे विशाललोचना श्रीकिशोरीजी ! जिनकी सब कुछ आप ही हैं, और आपकी इच्छा ही जिनकी इच्छा है तथा जो आपके ही आश्रित हैं, क्या वे आपकी जूठनके भी अधिकारी नहीं हैं ॥२०९॥ हे जगज्जननि ! क्या आपको धनाढ्य लोग ही प्यारे हैं ? क्या सर्वभावसे आपके श्रीचरण कमलोंकी शरणमें आने वाले आपको प्रिय नहीं हैं ? ॥२१०॥

हे स्वामिनीजू ! क्या आपको गुणी लोग ही अत्यन्त प्रिय हैं? और अकिञ्चन आश्रित प्रिय नहीं हैं? ॥२११॥ हे श्रीकिशोरीजी! जिन्होंने अपने जीवनका चरम(अन्तिम)अर्थ आपकी प्राप्ति ही निश्चित करके, अकिञ्चन बनकर आपकी शरणमें प्राप्त है, क्या वे आपको प्रिय नहीं हैं ॥२१२॥

जिनकी परमगति मैं ही एक हूँ, उन साधु भक्तोंके विना मैं अपना अस्तित्व ही नहीं चाहती, क्या यह श्रीमुखकी वाणी झूँठी ही है ? ॥२१३॥

जैसे पाला हुआ पक्षी अपने मालिकके अधीन होता है, उसी प्रकार मैं भी अपने भक्तोंके पराधीन हूँ, वे अपनी प्रेमरूपी डोरीसे मेरे चित्तको ही बाँध लेते हैं, क्या यह वचन झूठा ही है ? ॥२१४॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२१५॥
न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः । तस्मै देयं ततो ग्राह्यं कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२१६॥
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । कच्चित्किशोरि ! सम्प्रोक्तमिदमद्यानृतं वचः ॥२१७॥
ये दारागारपुत्राप्तान् हित्वा मां शरणं गतः । कथं तानुत्सहे त्यक्तुं कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२१८॥
न मे प्रियतमस्तावानात्मयोनिर्न शङ्करः । नैवात्मा च यथा भक्ताः कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२१९॥
भक्ता ममास्मि भक्तानां मयि तेषु भिदा न च । तेषां द्रोही मम द्रोही कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२२०॥
प्रपन्ना हि मम प्राणास्तेषां प्राणा अहं किल । पूजनीया यथाऽहं ते कच्चिच्चेत्यनृतं वचः ॥२२१॥
निर्द्वन्द्वा निःस्पृहाः क्षान्ता ये जना मत्परायणाः।देवाश्च तान्नमस्यन्ति कच्चिच्चेत्यनृतं वचः॥२२२॥
एतादृशानि वाक्यानि प्रोक्तान्यृषिवरैर्मुहुः। कच्चित् किशोरि! सन्त्येव वृथोन्मादकराणि वै ॥२२३॥

जिसके हिस्सेमें केवल मैं ही हूँ, वह महान्से महान् दुराचारी भी होकर यदि मेरा भजन करता है तो, उसे साधु ही मानना चाहिये । क्या श्रीमुखकी यह वाणी असत्य ही है ॥२१५॥

चारो वेदोंका पारंगत मुझे उस प्रकार प्रिय नहीं है, जिस प्रकार मुझे अपना भक्त श्वपच भी प्यारा है, अत एव अपने कल्याणार्थ यदि कुछ देना चाहते हैं। तो उसे दीजिए, और वह भक्त कृपा करके जो कुछ भी दे, उसे प्रसाद समझकर अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिये, क्या यह वचन असत्य ही है ? ॥२१६॥

जो साधक, जिस भावसे मेरी शरण ग्रहण करते हैं, उनको मैं उसी भावसे स्वीकार करती हूँ। हे श्रीकिशोरीजी ! क्या आपका यह उक्त वचन, आज असत्य ही होगा ? ॥२१७॥

जो स्त्री, पुत्र, घर आदिक सहज प्राप्त सभी वस्तुओंकी ममता छोड़कर, केवल मेरी शरण लेते हैं, भला उनका मैं किस प्रकार त्याग कर सकती हूँ ? क्या यह वचन भी असत्य है ? ॥२१८॥ जिस प्रकार मुझे भक्त प्यारे हैं, उस प्रकार न मुझे ब्रह्मा प्रिय हैं, न शङ्कर और न अपनी आत्मा ही, क्या यह बचन झूठा ही है ॥२१९॥

भक्त मेरे हैं, और मैं भक्तोंकी हूँ, मेरे और भक्तोंमें कोई भेद नहीं, जो भक्तोंका द्रोही (वैरी) है, वह मेरा द्रोही है, क्या यह वचन भी असत्य है ? ॥२२०॥

आश्रित भक्त ही मेरे प्राण हैं और मैं उनकी प्राण स्वरूपा हूँ अतः जैसे लोकमें मैं पूज्या हूँ उसी प्रकार मेरे भक्त भी पूजनीय हैं ॥२२१॥ जो सुख-दुःख, शीतोष्ण, शत्रु-मित्र, लाभ हानि में एक समान रहते हैं और किसी भी प्रकारकी इच्छा नहीं रखते तथा सहन शील होकर मेरा निरन्तर भजन करते हैं, उन्हें देवता भी नमस्कार करते हैं, क्या यह वचन झूठा ही है ?॥२२२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! ऋषि श्रेष्ठों ने श्रीमुखके जो इस प्रकारके बहुतसे वचनोंका कथन किया है, क्या वे व्यर्थ ही पागल बनाने के लिए हैं?॥२२३॥

केचित्पत्न्यर्थमेवेह नाना कर्मपरायणाः । प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२२४॥
केचिन्मित्रार्थमेवान्ये यथाशक्ति दयानिधे ! । प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२२५॥
भ्रातुरर्थे तथा केचिच्छ्रमेण बहुना किल । प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२२६॥
मातुरर्थे तथा केचिद्यथाशक्ति यथामति । प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२२७॥
नाना कुर्वन्ति कर्माणि तोषणाय पितुः स्वयम् । केचित्स्वसुः प्रियार्थाय तनयानां प्रियाय च ॥२२८॥
शिष्याणां चैव प्रीत्यर्थे केचित्स्वीकृतसौहृदाः। केचित्स्वकिङ्कराणां वै प्रीतये भृत्यवत्सलाः ॥२२९॥
केचित्परिचितानां च प्रीतये बहुधार्थिनः । प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२३०॥
स्वस्वप्रियस्य संप्रीत्यै प्रयतन्ते समे जनाः । प्रियवस्तु समादाय प्रयच्छन्ति प्रयत्नतः ॥२३१॥
मिथ्याभिभाषणं चौर्यं दैन्यं च प्रियहेतवे । प्रियवस्तु समादाय प्रदानं क्रियते जनैः ॥२३२॥
मम माता पिता भ्राता सद्गुरुः प्रेमभाजनम् । स्वामिनी वत्सला त्वं हि पूर्वजाऽसि परागतिः ।२३३।

कोई अपनी स्त्रीके लिये ही अनेक प्रकारके कर्मोंमें रत हैं तथा जो भी उनकी समझमें प्रिय वस्तु प्रतीत होती है उसे लाकर प्रयत्न पूर्वक उसे देते हैं ॥२२४॥

हे दयासागरा श्रीकिशोरीजी ! कोई मित्रोंके लिये ही अपनी शक्तिके अनुसार प्यारी वस्तु लाकर प्रयत्न पूर्वक उन्हें समर्पण करते हैं ॥२२५॥ कोई अपने भाईके लिये ही, बहुत परिश्रम से प्रिय वस्तु लाकर उसे प्रयत्न पूर्वक प्रदान करते हैं ॥२२६॥

कुछ अपनी माताके लिये ही अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार प्रयत्न करके प्रिय वस्तुको लाकर उसे समर्पण करते हैं ॥२२७॥ कोई अपने पिताको सन्तुष्ट करनेके लिये, कोई अपनी बहिनकी प्रसन्नताके लिये, कोई अपने पुत्रव पुत्रियोंके सन्तोषार्थ अनेक प्रकारके कर्म करते हैं॥२२८॥

कोई सुहृदता वश अपने शिष्योंकी प्रसन्नताके लिये, कोई अपने सेवकोंपर वात्सल्य रखनेवाले कोईअपने किङ्करोंकी प्रसन्नताके निमित्त, कोई अनेक प्रकारकी स्वार्थसिद्धि चाहनेवाले, अपने परिचितोंकी प्रसन्नताके लिये ही प्रिय वस्तु लाकर, उन्हें प्रयत्न पूर्वक समर्पण करते हैं ॥२२९॥२३०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! कहाँ तक कहें ? सभी लोग अपने अपने प्रियकी प्रसन्नताके लिये प्रयत्न करते हैं और युक्ति-पूर्वक उसकी प्यारी वस्तु लाकर उसे प्रदान करते हैं ॥२३१॥

हे श्रीस्वमिनीजू! इतना ही नहीं बल्कि अपने प्रियके निमित्त लोग झूठ भी बोलते हैं, चोरी भी करते हैं, और दीनता भी प्रकट करते हैं फिर भी प्यारी वस्तु लाकर उसे प्रयत्न पूर्वक प्रदान अवश्य करते हैं ॥२३२॥ हे श्रीकिशोरीजी ! मेरी माता, पिता, भ्राता, सद्गुरु, प्रेमपात्र, स्वामिनी, वात्सल्यभाव रखने वाली, सबसे बढ़कर रक्षा करने वाली, कल्याणकी सर्वोत्कृष्ट उपाय स्वरूपा तथा सम्बन्धमें बड़ी बहिन भी तो मेरी, आप ही एक हैं ॥२३३॥

अनवाप्तत्वदुच्छिष्टप्रसादाया इयच्चिरम् । भुवनत्रयसम्पूज्ये ! धिगस्तु मम जीवितम् ॥२३४॥
का नु शक्ता भवेत्सोढुमेतद्दुःखं महीतले । कयाऽऽशया स्वयं ब्रूहि जीवितं धारयाम्यहम् ॥२३५॥
यस्याः सर्वं त्वमेवासि त्वदन्यां नैव वेत्ति या । भवत्योपेक्षिता यायात्कां गतिं वद साऽधुना ॥२३६॥
शरण्याऽसि वरेण्याऽसि भावज्ञाऽस्यखिलांशिनी । नैवोपेक्षा त्वया कार्या स्वाश्रितानां दयानिधे॥२३७॥
यतो ब्रह्मणि ब्रह्मत्वं विष्णौ विष्णुत्वमप्यसि । त्वं हि धातरि धातृत्वं शङ्करत्वं च शङ्करे ॥२३८॥
गणेशत्वं गणेशे च धनेशत्वं धनाधिपे । शक्तित्वं चासि शक्तौ त्वं यमत्वं त्वं यमेऽप्यसि ॥२३९॥
काले त्वमसि कालत्वं मृत्युत्वं च मृतावपि । देवेशत्वं च देवेशे जलेशत्वं जलाधिपे ॥२४०॥
रवित्वं त्वं रवौ चासि चन्द्रत्वं त्वं निशापतौ । अमृतेऽस्यमृतत्वं त्वं प्रभुत्वं त्वं प्रभावपि ॥२४१॥
पवने पवनत्वं त्वं पावकत्वं च पावके । हरित्वं त्वं हरौ ज्ञेया हरत्वं च हरे खलु ॥२४२॥
दयालुत्वं दयालौ च सिद्धौ सिद्धित्वमप्यसि।क्षमात्वं त्वं क्षमायां च क्षान्तौ क्षान्तित्वमप्यसि॥२४३॥
तपस्विनि तपस्वित्वं योगित्वं चैव योगिनि । वैष्णवे वैष्णवत्वं त्वं साधौ साधुत्वमप्यसि ॥२४४॥

हे त्रिभुवन पूजनीय श्रीचरण-कमले! वह मैं आपके जूठन प्रसादको भी प्राप्त नहीं कर सकी हूँ, अतएव मेरे इस जीवनको धिक्कार है ॥२३४॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! मुझे जो यह दुःख इस समय प्राप्त है, भला उसे पृथिवी पर कौन सहन करने को समर्थ हो सकेगी? अब आप ही बतलाइये, किस आशासे मैं जीवन धारणा करूँ ॥२३५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिसकी आप ही सब कुछ हैं जो आपके अतिरिक्त अन्य किसीको कुछ जानती ही नहीं, बतलाइये—वह आपकी उपेक्षा होने पर अब किसकी शरण जाये?॥२३६॥

हे दयानिधेजू! आप सभी प्राणी मात्रकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ, सर्वश्रेष्ठ, हृदयके भावको समझने वाली और सभी की मूलभूता हैं, अतएव आपको अपने आश्रितोंकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ॥२३७॥ क्योंकि ब्रह्ममें सबसे बड़ा होनेका, विष्णुमें सर्वव्यापक होनेका, विधातामें सृष्टि आदिक विधान करनेका, शङ्करमें कल्याण करनेका, सहज गुण आप हीं हैं ॥२३८॥

गणेशमें गणनायक होनेका, कुबेरमें धनाधिप होनेका, शक्तिमें शक्ति होनेका, यमराजमें यमन (शासन) करनेका गुण, आपही हैं ॥२३९॥ कालमें (संहार) करनेका, मृत्युमें मारनेका, इन्द्रमें देवराज होनेका, वरुणमें जलनाथ होनेका, गुण भी आप ही हैं ॥२४०॥

सूर्यमें शीतहरणपूर्वक प्रकाश करनेका, चन्द्रमामें प्रकाशपूर्वक शीतलता तथा पुष्टि प्रदान करनेका, अमृतमें अमर करने का गुण भी आप ही हैं ॥२४१॥

अग्निमें जलानेका, वायुमें शोषण पूर्वक उड़ानेका, हरिमें भक्तोंके दुःख, पाप-ताप आदि हरण करनेका, हरमें भक्तोंके अनेक संकट दूर करनेका गुण भी निश्चय आप ही हैं ॥२४२॥

दयावानोंमें दयालु होनेका सिद्धिमें सिद्ध करनेका, क्षमामें क्षमाका, सहन शीलतामें सहनेका गुण भी आप ही हैं ॥२४३॥ तपस्वीमें तपःशील होनेका योगियोंमें योग परायण होनेका, वैष्णवमें विष्णु भक्त होनेका, साधुमें साधन शीलताका गुण भी आप ही हैं ॥२४४॥

वीर्ये त्वं चासि वीर्यत्वं वरत्वं च वरे तथा । श्रेष्ठे त्वमसि रामत्वं कृष्णे कृष्णत्वमप्यसि ॥२४५॥
नृसिंहत्वं नृसिंहे त्वं वामनत्वं च वामने । दातृत्वं दातरि त्वं च भर्तृत्वं भर्तरि ह्यसि ॥२४६॥
नृपे नृपत्वं भ्रातृत्वं भ्रातरि त्वं वरानने ! । सुशीलत्वं सुशीले च मृदुत्वं त्वं मृदावसि ॥२४७॥
गुरुत्वं त्वं गुरौ चासि बन्धौ बन्धुत्वमप्यसि । कामत्वं चासि कामे त्वं रतित्वं चासि वै रतौ ॥२४८॥
शुभे शुभत्वं कार्यत्वं कार्ये चासि रसे रसः । शरण्यत्वं शरण्ये त्वं शुचित्वं चासि वै शुचौ ॥२४९॥
देवे त्वमसि देवत्वं सिद्धे सिद्धत्वमप्यसि । वरेण्यत्वं वरेण्येऽसि हीश्वरत्वं त्वमीश्वरे ॥२५०॥
मनोज्ञत्वं मनोज्ञे च सुखत्वं चासि वै सुखे । सुभगे सुभगत्वं त्वं कर्तृत्वं चासि कर्त्तरि ॥२५१॥
रसिके रसिकत्वं त्वं भाव्ये भाव्यत्वमप्यसि । ध्येयत्वं त्वमसि ध्येये सद्व्रतत्वं च सद्व्रते ॥२५२॥
ह्लादत्वं त्वमसि ह्लादे संस्कृतत्वं च संस्कृते । प्रकृतौ प्रकृतित्वं च ज्ञेये ज्ञेयत्वमप्यसि ॥२५३॥
तत्त्वत्वं चासि वै तत्त्वे जीवे जीवत्वमप्यसि । अमरे चामरत्वं त्वं बुधत्वं त्वं बुधेऽप्यसि ॥२५४॥
गेयत्वं चासि वै गेये ध्यातृत्वं ध्यातरि ह्यसि । मुनौ, मुनित्वं त्वं चासि ऋषित्वं त्वमृषावपि॥२५५॥

वीर्य में वीर्यत्वका और श्रेष्ठमें श्रेष्ठताका, प्यारेमें सबको आनन्दित करनेका तथा सबको अपनेमें और सबमें स्वयं रमण करनेका गुण, एवं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीमें सभीको अपनी ओर आकर्षित करने तथा भक्तोंके सकल शोक और पापोंके खींच लेनेका गुण आपही हैं ॥२४५॥ नृसिंह देवमें नरसिंह होनेका, वामनजीमें वामन होनेका, दातामें दानी होनेका, भर्तामें भरण, (पोषण)करनेका गुण भी आपही हैं ॥२४६॥ हे श्रीवराननेजू ! नृप (राजा) में मनुष्योंके पालन रक्षणका, भाईमें भाईपनका, सुशीलमें सुशीलताका और मृदुमें कोमलताका गुण, आपही हैं ॥२४७॥ हे श्रीकिशोरीजी ! गुरुमें अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करनेका, बन्धु में बन्धुपनाका, काममेंकामना योग्य होनेका, रतिमें रति (प्रेम) का गुण आप ही हैं ॥२४८॥

शुभमें शुभ होनेका, कार्यमें करनेकी आवश्यकताका, रसमें सरसताका, रक्षणसामर्थ्य सम्पन्न में रक्षा करनेकी योग्यताका, पवित्रमें पवित्रताका गुण, निश्चय आपही हैं ॥२४९॥

देवतामें दिव्यताका, सिद्धमें सिद्धिका, श्रेष्ठमें श्रेष्ठताका, ईश्वरमें ईश्वरताका गुण भी आप ही हैं ॥२५०॥ मन हरण में मनोहरताका, सुखमें सुखी करनेका, सुन्दरमें सुन्दरताका, कर्त्तामें करनेका गुण भी आपही हैं ॥२५१॥ रस प्रेमियों अर्थात् भगवद्-उपासकोंमें उपासनाका रसास्वादन योग्यताका, भावना योग्योंमें भावनाकी योग्यता गुण, आपही हैं, ध्यानयोग्यमें ध्यानास्पद होनेका सद्व्रतोंमें उत्तम व्रत होने का गुण भी आप ही हैं ॥२५२॥

आह्लादमें आह्लादित करनेका, संस्कार युक्तमें संस्कार सम्पन्न होनेका, प्रकृति (माया) में जगत्प्रपञ्च रूपी सर्वोत्कृष्ट कृति (कार्य) करनेका और जानने योग्यमें जानने योग्य होनेका गुण भी आप ही हैं ॥२५३॥

तत्त्वमें तत्त्व होनेका, जीवमें जीव होनेका, अमरमें अमर होनेका, बुद्धिमानमें बुद्धिमत्ताका गुण भी आप ही हैं ॥२५४॥ गान योग्यमें गान योग्य होनेका, ध्यान करने वालेमें ध्यान करने की योग्यताका, मुनिमें मनन करनेका, ऋषिमें मन्त्रद्रष्टा होनेका गुण भी आप ही हैं ॥२५५॥

लालित्ये चासि मञ्जुत्वं स्वामित्वं स्वामिनि ह्यसि। स्वजने स्वजनत्वं त्वंप्रियत्वं त्वं प्रिये स्मृता ॥२५६॥
सुलभे सुलभत्वं त्वं दुर्लभत्वं च दुर्लभे। दुर्धर्षत्वं च दुर्धर्षे दुर्जयत्वं च दुर्जये ॥२५७॥
सारे सारत्वमेवासि नित्ये नित्यत्वमप्यथ। मुक्ते त्वमसि मुक्तत्वं मुक्तौ मुक्तित्वमेव च ॥२५८॥
गतौ गतित्वं त्वं प्रोक्ता प्रेरकत्वं च प्रेरके। आधारत्वं तथाऽऽधारे साधनत्वं च साधने ॥२५९॥
यत्किञ्चिद्विद्यते लोके मनोवाग्दृष्टिगोचरम्। तत्तत्तत्त्वं त्वमेवासि निश्चितेति मतिर्मम ॥२६०॥
एवं स्मृत्वाऽऽत्मनो रूपं व्यापितं भुवनत्रये। नैवोपेक्षा त्वया कार्या स्वाश्रितानां दयानिधे! ॥२६१॥
त्वदन्या नैव जानामि त्वदन्या नास्ति मे गतिः। न काचित्त्वामुपाश्रित्य क्लेशपात्रत्वमर्हति ॥२६२॥
आश्चर्यं तु मदीयान्तःकरणे जायते भृशम्। किं नु सूर्याश्रिता क्लिश्येच्छीतेनाम्बुजलोचने! ॥२६३॥
चन्द्राश्रिता च धूपेन मृत्युनाऽमृतमाश्रिता। कल्पवृक्षाश्रिता क्लिश्येन्निर्धनत्वेन भूरिदे ! ॥२६४॥

सौन्दर्यमें सुन्दरताका, स्वामीमें शासन और पालन करनेका, स्वात्मीयता (अपने पन) का, प्यारेमें प्रिय होनेका गुण भी आपही स्मरणकी जाती हैं ॥२५६॥

सुलभमें सुलभताका, दुर्लभमें दुःख साध्य होनेका और कठिनतासे जीतने योग्यमें, कठिनतासे जीतने योग्य होनेका, कठिनतासे हरा सकने योग्यमें, उसकी इस योग्यताका गुण भी आप ही हैं ॥२५७॥

सारमें सार होनेका, नित्यमें सदा एक रस रहनेका, मुक्तमें मुक्त होनेका, मुक्तिमें मुक्त करने का, गुण भी वास्तवमें आपही हैं ॥२५८॥

गतिमें गमन व रक्षा करनेका, प्रेरणा करने वालेमें प्रेरणा करनेका, गुण भी आपही कही गयी हैं, तथा आधारमें धारण करनेका, साधनमें सिद्ध करनेका गुण भी आप ही हैं ॥२५९॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! इस लोकमें जो कुछ मननमें आता है; वाणी से कथन किया जाता है तथा दृष्टिसे जो दिखाई देता है, उस सबका तत्त्व (प्रधानगुण अर्थात् शक्ति) आप ही हैं, ऐसी मेरी निश्चित मति है ॥२६०॥

हे श्रीदयानिधेजू ! इस प्रकार तीनों लोकोंमें अपने स्वरूपको व्यापक स्मरण करके अपने आश्रितोंके प्रति आपको उपेक्षा करना उचित नहीं है ॥२६१॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपके अतिरिक्त न मैं किसी दूसरीको जानती ही हूँ, न दूसरी कोई मेरी रक्षक ही है। आपकी शरणमें आ जाने पर किसीको भी क्लेशभाजन होना उचित नहीं है ॥२६२॥ हे कमललोचने श्रीकिशोरीजी ! मेरे अन्तः करणमें यह महान् आश्चर्य हो रहा हैं, क्योंकि क्या भगवान सूर्यकी शरणमें जाने वालेको भी शीत (ठण्डो) का क्लेश सहन करना पड़ता है ? ॥२६३॥ क्या चन्द्रदेवकी शरणमें गया हुआ धूपके, और अमृतका आश्रय लेने वाला भी मृत्यु तथा कल्पवृक्षाश्रित भी निर्धनता के कष्टका अवश्य अनुभव करे ॥२६४॥

शरणं त्वत्पदाम्भोजमाश्रितेह यथाऽगतिः । कृच्छ्रमृच्छेद्दयाम्भोधे ! सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥२६५॥
शार्दूलीं च समाश्रित्य ग्रामसिंहैः प्रपीड्यताम् । कामधेनुमुपाश्रित्य क्षुत्तृड्भ्यां दुःखमश्नुयात्॥२६६॥
खगेन्द्रं शरणं गत्वा पन्नगैः पीडिता भवेत् । गङ्गां शरणमभ्येत्य क्लेशमीयात्पिपासया ॥२६७॥
चक्रवर्तिनमाश्रित्य पीडां प्राप्नोतु दौर्जनीम् । गुरुं शरणमभ्येत्य संसृतिक्लेशभाग्भवेत् ॥२६८॥
महाविष्णुमुपाश्रित्य रक्षोभिः कृच्छ्रमाप्नुयात् । वाणीं शरणमासाद्य मूर्खताधिमवाप्नुयात् ॥२६९॥
महालक्ष्मीमुपाश्रित्य महादारिद्र्यसंभवम् । कृच्छ्रमृच्छेद्दयाम्भोधे ! त्वमेव वक्तुमर्हसि ॥२७०॥
यस्याः परा न वै काचिद्या च सर्वांशिनी स्मृता । दयामृतैकपाथोधिः क्षमाशीलसुखाम्बुधिः ॥२७१॥
सर्वज्ञा करुणाधाम्नी सर्वगा सर्वकामदा । सर्वैर्हितपादाब्जा सर्वैश्चापि नमस्कृता ॥२७२॥

हे दयासागरा श्रीकिशोरीजी! इसीप्रकार क्या आपके सकल काम पूरक श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेवालीको भी आपत्तिमें पड़ना अनिवार्य है ? ॥२६५॥

शार्दूली(जो अपने पञ्जेमें हाथी तकको पकड़ कर उसे आकाशमें उड़ाकर खाजाती है उस) का आश्रय ग्रहण करनेपर भी क्या कुत्तोंसे पीड़ित होना उचित है ? क्या कामधेनु गऊकी शरण में आकर भी भूख प्यासका दुःख सहन करना युक्त है ? ॥२६६॥

क्या गरुडकी शरणमेंजाकर भी सर्पोंके द्वारा कष्टपाना उचित हैं ? भगवती श्रीगङ्गाजी की शरणमें गयी हुईको भी क्या प्यासका कष्ट भोगना उचित है?॥२६७॥

चक्रवर्ती राजाकी शरणमें जानेपर भी क्या दुष्टोंसे पीड़ित होना उचित है ?क्या गुरुमहाराजकी शरणागति स्वीकार करनेपर भी जन्म-मरणका क्लेश भोगना न्याय युक्त है? ॥२६८॥

महाविष्णुकी शरणमें प्राप्त होनेपर भी क्या राक्षसोंसे महान कष्टपाना उचित है ? हे श्रीप्रियाजू! क्या सरस्वतीका आश्रय लेनेपर भी मूर्खताका मानसिक-कष्ट सहन करना युक्त है ? ॥२६९॥ हे दयासागरा श्रीस्वामिनीजू! उसी प्रकार आप ही कहें? क्या महालक्ष्मीजीकी शरणमें गयी हुईको भी महा दरिद्रताका संकट सहन करना उचित है ? ॥२७०॥

जिनसे बढ़कर कोई और है ही नहीं, जो सभीकी कारण रूपमें स्मरण कीजाती हैं, जो दयारूपी अमृतका समुद्र और क्षमा, शील, सुखका सागर ही हैं अर्थात् जिनके दया, क्षमा, शील, सुखादिक गुण समुद्रके समान अथाह हैं ॥२७१॥

सभीके भूत, भविष्य, वर्तमानको अनायास जानने वाली, करुणाकी भवन, सर्व-काल, देश में एक रस सर्वत्र, विराजमान, आश्रितोंकी सकल कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, सभी देव, नर, मुनि, सिद्ध, योगी, भूत, प्रेत, राक्षस, छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़ोंके द्वारा जिनके श्रीचरण कमल पूजित हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदि सभी बड़ेसे बड़े और छोटेसे छोटे प्राणी जिन्हें नमस्कार करते हैं ॥२७२॥

सर्वासामपि शक्तीनां नियन्त्री परमेश्वरी । असीमाऽचिन्त्यशक्तिर्यार्दुर्विभाव्याऽच्युता वरा ॥२७३॥
तामेव शरणं यात्वा कथं शोचितुमर्हति । यदि तत्रापि शोकः स्यात्कां यायाच्छरणं जगत् ॥२७४॥
इत्थं विचार्य सर्वज्ञे ! निर्हेतुक्यनुकम्पया । प्रीयस्व करुणापूर्णे ! श्रीसीरध्वजनन्दिनि ! ॥२७५॥
यन्मुखात्त्वं मया प्रोक्ता कृपापीयूषनीरधिः । तस्माद्भाष्या कथं त्वं स्या निर्दया मे शुचिस्मिते ।२७६।
पितृत्वं चैव मातृत्वं बन्धुत्वं मयि दर्शय । येभ्यो मनो व्रजेच्छान्ति मदीयं चिन्तयाऽऽकुलम् ॥२७७
लोकानामुपकारः स्यात्सर्वेषामिह तत्कृते । नास्तिकत्वं परित्यज्य नास्तिकास्त्वां श्रयन्तु हि॥२७८॥
यदि त्वां शरणं गत्वा पुनः शोकोऽवशिष्यते । अपि मोघा भवेर्त्तर्हि प्रपत्तिस्तव हे प्रिये!॥२७९॥
पूर्वकर्मविपाकेन ब्रूयाश्चेत् सुखदुःखिते । अपि मोघा भवेर्त्तर्हि प्रपत्तिस्तव हे प्रिये ! ॥२८०॥

जो उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि सभी महाशक्तियोंको भी स्वेच्छानुसार विभिन्न कार्योंमें लगाने वाली सभीकी स्वामिनी हैं, जिनकी शक्ति चिन्तन सामर्थ्य से परे है तथा जिनके स्वरूप की भावना बड़ी ही कठिनतासे की जासकती है, एवं जिनका रूप, गुण, ऐश्वर्य सब असीम है, जो तीनों कालमें एक रस रहती हैं, कभी जिनमें किञ्चित् भी त्रुटि नहीं आती, जिनसे बढ़कर कोई हुआ है, न है, और न होगा ॥२७३॥

हे श्रीकिशोरीजी! भला उन (आप) की शरणमें जाकर भी किसी जीवकी शोक करना किस प्रकार उचित हो सकता है? यदि ऐसेकी शरण लेने पर भी चिन्ता बनी रही तो, अपने दुःख की निवृत्ति के लिये यह जगत् (चर-अचर प्राणि-समूह) फिर और किसकी शरणमें जावे ॥२७४॥

हे करुणापूर्णे श्रीसीरध्वजनन्दिनीजू ! हे सर्वज्ञे! ऐसा विचार करके अपनी निर्हेतुकी कृपासे ही आप प्रसन्न हो जाइये ॥२७५॥ हे शुचिस्मिते! श्रीकिशोरीजी! जिस मुखसे मैंने आपको कृपा-पीयूप-सागरा कहा है, उसीसे आपको दया हीन कहना कैसे उचित हो सकता है ? ॥२७६॥

हे श्रीस्वामिनीजू ! अब कृपा करके मेरे प्रति अपना मातृभाव, पितृभाव, तथा बन्धुभाव प्रकट कीजिये, जिससे मेरा चिन्तासे व्याकुल हुआ यह मन शान्तिको प्राप्त हो जाय ॥२७७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! यदि मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लेंगी, तो सभीके लिये उपकार होगा और नास्तिक जीव भी "ईश्वर कोई वस्तु नहीं है" इस भावनाका परित्याग करके निश्चय ही आपकी शरणागति ग्रहण करलेंगे ॥२७८॥ हे श्रीप्यारीजू! यदि आपकी शरणमें आकर भी शोककी निवृत्ति न हुई, तो आपकी शरणमें आना ही निष्फल होगा, यह निश्चय है ॥२७९॥

हे श्रीप्रियाजू! यदि आप कहें कि, सुख-दुःख तो पूर्वजन्मके किये हुये स्वकर्मानुसार मिलते हैं, उनका प्रवाह रोका नहीं जासकता, तो आपकी शरणमें आनाफिर निष्फल ही हुआ ॥२८०॥

मृदुस्वभावाऽसि दयापयोधे ! वात्सल्यभाग्दीनहिता शरण्या ।
मयि प्रसीदाश्वनुपेक्ष्य दासीं निजानुगां शोकसमुद्रमग्नाम् ॥२८१॥
श्रीस्वामिनि! प्रेष्ठमनोनिकेतने! स्वान्तःस्थितं! वच्मि शृणु त्वमात्मदे !।
निजानुगामेव विचार्य वत्सले ! प्रसीद मां मङ्क्षु जनानुकम्पिनि ! ॥२८२॥
सीमे कृपायाः परमार्हयोस्तव ह्यशेषकल्याणदयोः सुमृग्ययोः ।
वेधोमहेशादिसुभावनीययोः कदा निधास्ये स्वशिरः पदाब्जयोः ॥२८३॥
तासां कदा सङ्गमुपेत्य वै सुखं द्रक्ष्यामि लीलास्तव चित्तहारिणीः ।
या सर्वदैवानुगतास्तव प्रिये ! सर्वात्मना त्वच्चरणाम्बुजाश्रिताः ॥२८४॥
यैरर्चिता त्वं भुवि वै महात्मभिस्तेषां कृपा स्यान्नु कदा मयि स्थिरा ।
धन्या हि ते भूमितले शुचिव्रतास्तेषां कृपा येष्विति निश्चयो मम ॥२८५॥
विद्या हि सा ज्ञानमुदेति ते यया व्रतं हि तत्प्रीतिकरं च यत्तव ।
तपस्तु तद्येन च भक्तिराप्यते कृतिर्यया भक्तिपरायणं मनः ।२८६॥

हे दयाकी निधि श्रीकिशोरीजी ! अब आप अपनी अनुचरी दासी पर उपेक्षा दृष्टि न करके प्रसन्न होवें, क्योंकि इस समय यह शोकसागरमें डूबी हुई है, आप तो अत्यन्त कोमल स्वभाव युक्त, क्षमासागर, सर्वाभिमानशून्य–आश्रितोंका परम हित करने वाली तथा सब प्रकारसे रक्षा करनेको समर्थ हैं, अतः मेरी उपेक्षा न करें ॥२८१॥

हे श्रीप्राणप्यारेजूके मन रूपी मन्दिरमें निवास करने वाली! हे भक्तों पर परम अनुकम्पा (दया भाव) रखने वाली ! हे वात्सल्यरसमयी श्रीस्वामिनीजू ! मैं अपना विचार पूर्वक निश्चय किया हुआ मनोरथ आपसे निवेदन कर रही हूँ, आप उसे कृपया श्रवण कीजिये और मुझे ही अनुचरी (दासी)विचार कर प्रसन्न हूजिये ॥२८२॥

हे कृपाकी सीमा स्वरूपा श्रीकिशोरीजी! ब्रह्मा, शिव आदि देवश्रेष्ठोंको भी जिनकी भावना करनी आवश्यक है, तथा प्राणीमात्रके लिये जिनकी खोज करना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है, जो समस्तकल्याणोंको प्रदान करने वाले और परमपूजनीय हैं, आपके उन श्रीचरणकमलोंमें मैं अपना सिर रखनेका सौभाग्य कब प्राप्त करूँगी ? ॥२८३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो सर्वदा आपके पीछे चलने वाली और सब प्रकारसे आपके ही श्रीचरणकमलोंके आश्रित हैं, मैं उनका सङ्ग प्राप्त करके कब आपकी चित्तचोरनी लीलाओंका सुख-पूर्वक दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥२८४॥ हे श्रीकिशोरीजी ! जिन महात्माओंने प्रत्यक्ष रूपमें आपकी पूजा कर ली है, उनकी कृपा जिन पर होती है, वे भी धन्य, मान्य और पवित्र व्रत वाले हैं, ऐसा मेरा निश्चय हैं अतः उन महापुरुषोंकी कृपा मेरे पर कब होगी ? ॥२८५॥

विद्या वही है जिसके द्वारा आपके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान हो और व्रत वही है, जिससे आपके श्रीचरण-कमलोंमें प्रेमकी प्राप्ति हो, वही तप है, जिससे आपकी भक्ति मिले, और क्रिया वही ठीक है, जिसके द्वारा आपके श्रीचरणकमलोंमें मन लगे ॥२८६॥

मदीयमूर्द्धानमजादिपूज्ययोः पदाब्जयो रेणुरलङ्करिष्यति ।
कदानु तुच्छीकृतचन्द्रसञ्चया नखद्युतिर्मे हृदयं प्रवेक्ष्यति ॥२८७॥
हे कञ्जपत्रायतचारुलोचने ! श्रीस्वामिनि ! प्रेष्ठहृदम्बुजालये ।
दास्यामि हस्तेन कदा नु वीटिकां भावत्कजैवातृकसुन्दरे मुखे ॥२८८॥
रासस्थलीं तेऽनुगता कदा न्वहं द्रक्ष्यामि रासं ननु दिव्यविग्रहे ! ।
शिक्षानुसारं तु कदा विधास्यते स्वयञ्च तद्ब्रूहि दयासुधानिधे! ॥२८९॥
ममेश्वरि ! ज्ञाननिधे ! प्रसीद मामवेहि दासीं स्वपदाब्जसंश्रयाम् ।
कदा नु मे दास्यसि भूर्यनुग्रहे ! निर्हेतुकीं भक्तिमभीप्सितां शुभाम् ॥२९०॥
वल्मीकयोनिः कलशोद्भवो मुनिः श्रीगाधिपुत्रोऽत्रिररुन्धतीपतिः ।
श्रीनारदोऽन्येऽपि वदन्ति नित्यशः कीर्त्ति त्वदीयामतिनिर्मलां शुभाम् ॥२९१॥
लभन्त एवान्तमपीह जातु नो मज्जन्ति चानन्दसुधापयोनिधौ ।
तदा कथं वक्तुमहं क्षमा यशस्तव प्रिये ! तत्स्वयमेव मां वद ॥२९२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! कब ब्रह्मादि देवताओंके पूजने योग्य आपके श्रीचरण-कमलकी धूलि मेरे मस्तकको सुशोभित करेगी ? और कब चन्द्रसमूहोंको अपनी कान्तिसे तुच्छ करने वाली आपके श्रीचरण-कमलकी नख-ज्योति मेरे हृदयमें प्रवेश करेगी ? ॥२८७॥

हे कमलदलके समान विशाल सुन्दर नेत्र वाली ! हे प्राणप्यारेजूके हृदयमें निवास करने वाली श्रीस्वामिनीजू ! आपके चन्द्रतुल्य प्रकाशमान श्रीमुखमें मुझे पानका बीरा प्रदान करने का सौभाग्य कब प्राप्त होगा ? ॥२८८॥ हे दिव्यविग्रह-सम्पन्ना श्रीरासेश्वरीजू ! आपके पीछे-पीछे रासस्थलीमें जाकर कब मैं आपके रास-उत्सवका दर्शन करूँगी ? हे समस्त प्राणियोंका हित चाहने वाली श्रीकरुणानिधिजू ! और कब मैं भी आपकी शिक्षानुसार स्वयं रास करूँगी? वह मुझे बतलाइये ॥२८९॥ हे ज्ञाननिधे ! मेरी स्वामिनीजू ! मुझे अपने श्रीचरण कमलोंकी आश्रित दासी जानिये और मेरे ऊपर प्रसन्न होजाइये । हे अपार करुणामयीजू ! सुर, नर, मुनि, सिद्ध, योगिजन जिसको चाहते हैं, अपनी मङ्गलमयी निर्हैतुकी उस प्रेमाभक्तिको मुझे कब प्रदान करेंगी ? ॥२९०॥ हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीवाल्मीकिजी महाराज, श्रीअगस्त्यजी महाराज, श्रीविश्वामित्रजीमहाराज, श्रीअत्रिजी महाराज, श्रीवशिष्ठजी महाराज, श्रीनारदजी महाराज तथा अन्य महर्षिगण आपकी मङ्गलमयी अत्यन्त उज्वल(परमनिर्दोष)कीर्त्तिका गान करते हैं ॥२९१॥

परन्तु आपकी महिमाका कभी पार नहीं पाते, बल्कि आनन्दसागरमें डूब जाते हैं, हे श्रीप्रियाजू ! तब मैं क्षुद्रबुद्धि आपके उस अप्रमेय यशको वर्णन करनेके लिये किसप्रकार समर्थ हो सकती हूँ ? यह आपही बतलाइये ॥२९२॥

भान्वादयस्ते प्रभया प्रभासितास्त्वं भाससे स्वीयरुचा न कस्यचित् ।
सोमास्त्वदीयाङ्घ्रिनखप्रभांशजा अनन्तब्रह्माण्डगताश्च शुश्रुम ॥२६३॥
यैस्तोषिता त्वं सुमनोहरस्मिते ! तैस्सर्व एवसुभृतः सुतोषिताः ।
सर्वान्तरात्माऽसि यतो रसाश्रये ! प्राणप्रियप्राणवरप्रिया ध्रुवम् ॥२६४॥
धीराः श्रयन्ते परिशुद्धचेतसस्त्वां कोविदाः श्रीरघुनन्दनाप्तये ।
ब्रजन्त्यनायासमिहेश्वरेश्वरं तमन्य एव स्युरनाप्तवाञ्छिताः ॥२६५॥
महत्कृपानूनमुदेति वै यदा तदैव भक्तिस्तव चाधिगम्यते ।
प्रसीद कल्याणि! निजानुकम्पया नो वीक्ष्य मेऽघौघशिलोच्चयान् किल ॥२६६॥
हितैषिणी त्वं जगतोऽखिलस्य च त्वं स्वामिनी त्वं जननी परावरे ।
विश्वम्भरा त्वं परमेश्वरेश्वरी प्रसीद दास्यां मयि दीनवत्सले ॥२६७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी ही कान्तिसे सूर्य, चन्द्र, अग्नि, बिजली आदि प्रकाशमान हैं किन्तु आप अपनेही तेजसे प्रकाशयुक्त हैं, न कि किसी अन्यके प्रकाशसे । अनन्त ब्रह्माण्डोंमें जो चन्द्रमा हैं, वे भी आपके श्रीचरणकमल नख-ज्योतिके अंशसे ही प्रकाशमान हैं, ऐसा हमने सुना है ॥१६३॥ हे रसकी कारण-स्वरूपा ! सुन्दर मन-हरण मुस्कानवाली श्रीकिशोरीजी! जिन्होंने आपको प्रसन्न करलिया, उन्होंने विधिपूर्वक विश्वके समस्त प्राणियोंको भी प्रसन्नकर लिया है, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं, क्योंकि जो सभीके प्राणतुल्य प्रिय, श्रीरघुनन्दनप्यारेजू हैं, आप उनकी आत्मामें रहने वाली हैं ॥२६४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो आपके और श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके स्वभाव और रहस्यको जानते हैं, वे धीरजन समस्त वासनाओंसे अपने चित्तको शुद्ध रखकर श्रीप्राणप्यारेजूकी प्राप्तिके लिये आपका भजन किया करते हैं अतः उन्हें किसी प्रकारकी भी परिस्थिति लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं कर पाती, जिससे वे इस जीवनमें ही उन सर्वेश्वर सरकारको, बिना किसी कठिनताके ही प्राप्त कर लेते हैं परन्तु जो मूर्ख आपका आश्रय नहीं लेते, उनकी आशा निष्फल हो जाती है। अर्थात् उन्हें वे श्रीप्राणप्यारेजी प्राप्त नहीं होते ॥२६५॥ हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! महापुरुषोंकी कृपा जब उदय होती है, तभी आपके श्रीचरणकमलोंकी भक्ति प्राप्त होती है अन्यथा नहीं, अत एव आप मेरे पापरूपी पहाड़ समूहों पर ध्यान न देकर अपनी सकल अपेक्षा रहित कृपासे ही मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥२६६॥

हे सर्वोत्कृष्ट (ब्रह्म) स्वरूपा, दीन वत्सला श्रीकिशोरीजी ! आप इस समस्त स्थावर-जङ्गम जगका हित चाहने वाली हैं, आपही माता हैं, और आपही हित दृष्टि से आवश्यकतानुसार इसका शासन करने वाली हैं. आपही भगवान शङ्करजी आदिकोंकी स्वामिनी हैं, आप ही सारे बिश्वका पोषण–भरण (पालन) आदि करने वाली हैं, मैं आपकी दासी हूँ मेरे प्रति प्रसन्न होइये ॥२६७॥

तन्नाप्नुयां प्रीतिकरं न यत्तव ह्यशेषकल्याणगुणैकसागरे ! ।
प्रयच्छ बुद्धिं हतसर्वकल्मषां शुद्धाशया त्वां तु भजाम्यहं यया ॥२९८॥
नः पश्य सम्पादितभक्तमङ्गले ! दयार्द्रदृष्ट्या हतसर्वदोषया ।
प्रीता त्वमस्मासु यदीह संसृतौ वयं कृतार्थाः खलु नात्र संशयः ॥२९९॥
सीमानमार्ये ! न महाक्षमाया ब्रह्माऽपि वेत्तुं हि कथञ्चनार्हति ।
ये ये गुणाः सन्त्यपरैर्दुरापाः कृतालयास्ते त्वयि रामवल्लभे ! ॥३००॥
ता भूरिभागास्त्वयि बद्धसौहृदा याः सर्वभावेन तवाङ्घ्रिमाश्रिताः ! ।
यासां मनो वै मधुपायते सदा त्वदीयपादाम्बुजयोः स्वभावतः ॥३०१॥
प्रसीद मह्यं कृपया यथा तथा निधेहि मे मूर्द्धनि पाणिपङ्कजम् ।
मोघेतरस्पर्शमिति प्रयाचनाममोघतां प्रापय मे कृपानिधे ॥३०२॥
चोद्या त्वया ह्यस्मि च शिक्षणीया सदैव सत्कर्मणि योजनीया ।
वीक्ष्याऽस्मि शिष्येव च किङ्करीव सर्वात्मनाऽऽराध्यतमे ! भवत्या ॥३०३॥

हे श्रीकिशोरीजी! जिससे आपकी प्रसन्नता न होती हो, ऐसी किसी भी वस्तुकी मुझे प्राप्ति ही न हो। हे श्रीकरुणा सागरेजू ! मुझे सकल पाप-रहित वह बुद्धि प्रदान कीजिये जिसके द्वारा मैं शुद्धान्तःकरण होकर सदा आपका भजन कर सकूं ? ॥२९८॥

हे भक्तोंका मङ्गल सम्पादन करने तथा सब दोषोंको हरण करने वाली श्रीकिशोरीजी ! अपनी दयापूर्ण दृष्टिसे हमलोगोंको अवलोकन कीजिये। यदि इस असार संसारमें आप हमलोगों पर प्रसन्न हैं तो हमलोग अवश्य कृतार्थ हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥२९९॥

हे श्रेष्ठगुण सम्पन्ना श्रीकिशोरीजी! सब प्रकारसे प्रयत्नशील होने पर भी जब साक्षात् ब्रह्मा भी किसी प्रकारसे आपकी महती क्षमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते तब इतरोंकी बातही क्या है? हे सर्वेश्वर श्रीराम सरकार की प्राणप्यारीजू ! जिनकी प्राप्ति अन्य सभीके लिए कठिन है, वे सभी सद्गुण सहज स्वभावसे आपमें निवास कर रहे हैं ॥३००॥

जिनका मन आपके श्रीचरणकमलोंमें भौंरावत् सहज स्वभावसे लीन रहता है, जो सभी भावसे आपके श्रीचरणकमलोंके आश्रित हैं और अपना सौहार्दभाव आपमें ही बांध रखे हैं, अर्थात् जो आपको ही सुहृद समझती हैं, वे बड़ भागिनी हैं ॥३०१॥

हे श्रीकिशोरीजी! अब जैसे बने मुझपर प्रसन्न होइये और जिसका स्पर्श कभी भी निष्फल नहीं जाता मेरे सिर पर अपने उसी कर-कमलको रखनेकी कृपा कीजिये ! हे कृपानिधेजू ! मेरी इस याचनाको सफल बनाइये ॥३०२॥ हे आराध्यतमे ! अर्थात् जिनकी उपासना करना समस्त प्राणी मात्रके लिये परम आवश्यक कर्त्तव्य है, ऐसी हे श्रीकिशोरीजू ! जैसे शिष्या व दासियोंको वात्सल्यपूर्ण दृष्टिसे लोग देखा करते हैं, उसी दृष्टिसे आप मुझे अवलोकन कीजिये और सत्कर्मों में लगाइये तथा शिक्षा दीजिये एवं अपनी इच्छानुकूल निःसङ्कोच भावसे सेवादि कार्यों में सदाही प्रेरणा (सङ्केत) करती रहिये ॥३०३॥

दयार्द्रफुल्लाम्बुजपत्रलोचने ! सहप्रिया साऽलिगणा सुशोभने ! ।
मदीयहृत्सद्मनि दृष्टिपाविते वसानुकम्पामृतपूर्णवारिधे ! ॥३०४॥

यात्यञ्जसा त्वद्विषये मनो मम स्वभावतोऽन्यत्र तथैव गच्छति ।
कृपा त्वदीया मयि वर्तते न वा किशोरि ! शङ्केति न मे निवर्तते ॥३०५॥

यदि लभ्यमनेन जन्मना न भवेद्धाम किशोरि ! निश्चलम् ।
शृणु तर्हि मयेरितं वचो मिथिलायां मम जन्म जायताम् ॥३०६॥

यदि पक्षिषु जन्म सम्भवेत् सुखयेयं भवतीं स्वकूजितैः ।
यदि वा हरिणीषु चेत्तदा द्युतिमीक्षेय निजेन चक्षुषा ॥३०७॥

यदि काऽपि लता भवाम्यहं ध्रुवमेष्यामि रजस्त्वदङ्घ्रिजम् ।
नियतेन्द्रियचित्तबुद्धिभिर्यदिहालभ्यमहो शिवास्पदम् ॥३०८॥

यदि वा पवनाशनेष्वहं भविता कीटसरीसृपादिषु ।
तव पादसरोजयो रजः शतकृत्वोऽपि लभेय वाञ्छितम् ॥३०९॥

हे दयासे द्रवित खिले कमलदलके समान विशाल लोचने ! सागरके समान अमृत रूपी-अथाह अनुकम्पा वाली श्रीकिशोरीजी ! आप अपनी कृपावलोकनसे पवित्र किये हुये मेरे हृदय रूपी परम सुन्दर महलमें, समस्त सखीगणोंके सहित, श्रीप्राणप्यारेजूके साथ निवास कीजिये ॥३०४॥ हे श्रीकिशोरीजी! मेरा मन विना किसी परिश्रमके ही आपकी ओर जाता है, परन्तु अपने स्वभाव वश अन्य विषयों की ओर भी गमन करता है, अत एव मेरे प्रति आपकी कृपा है ? अथवा नहीं ? यह मेरी शङ्का, भली प्रकारसे दूर नहीं होती, क्योंकि यदि कृपा न होती, तो मेरे मनकी गति आपकी ओर होती कैसे ? और यदि कृपा है, तो फिर मेरा मन आपके अतिरिक्त विषयोंकी ओर जाता क्यों है?॥३०५॥

हे श्रीकिशोरीजी! यदि इस जन्मके द्वारा मुझे आपका अचल धाम मिलने योग्य न हो, तो मेरा जन्म श्रीमिथिलाजीमें अवश्य हो, मेरी यह प्रार्थना सुन लीजिये ॥३०६॥

क्योंकि श्रीमिथिलाजीमें यदि मैं पक्षियोंमें भी जन्म पाऊँगी, तो अपनी मधुर बोलीसे आपको सुखी करूँगी, यदि मृगी आदि योनिमें जन्म लूँगी, तो अपने विशाल नेत्रोंसे आपकी छवि अवलोकन करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त होगा ॥३०७॥

यदि कोई लताका जन्म पाऊँगी तो भी बड़े हर्षकी बात है, क्योंकि जो इन्द्रिय, चित्त, बुद्धि को अपने वशमें रखने वाले बड़े २ योगियोंको भी यहाँ अलभ्य है, मैं आपकी उस मङ्गलमयी श्रीचरणकमलकी धूलिको अनायास ही प्राप्त करूँगी ॥३०८॥

और यदि मैं साँप बीछी आदिकी योनिमें जन्म लूँगी, तो भी आपके श्रीचरण कमलकी निजवाञ्छित अर्थात् अपनी चाही हुई धूलिको अनन्त बार प्राप्त करूँगी ॥३०९॥

मम धेनुषु जन्म चेद्भवेदिह वै दुग्धवतीपयोऽमृतम् ।
विमलं सुरमृग्यमञ्जसा प्रपिबेयं मुखचन्द्रनिःसृतम् ॥३१०॥

यदि जन्म मधुव्रते भवेदथ जिघ्रेय विहाय चापलम् ।
तव पादसरोजसौरभ परमानन्दमयं हताशुभम् ॥३११॥

अथवा तु चकोरजातिषु प्रभवेज्जन्म किशोरि ! चेदपि ।
द्युतिनिर्जितचन्द्रसञ्चयान् समवेक्षेय नखांस्त्वदङ्घ्रिजान् ॥३१२॥

बहु किं लपितेन मे प्रिये ! न हि दुःखं भुवि मेऽस्ति जन्मजः ।
यदि चेत्थमथो न सम्भवेन्ममदुःखाय तदा भृशं भवेत् ॥३१३॥

कच्चिन्निशास्वापनिकेततल्पगौ विध्वाननौ चित्तहरौ दरालसौ ।
विजृम्भमाणौ च मिथोऽभ्युपेत्य वै द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि! भण्यताम्॥३१४॥

कच्चित्सुगन्धाञ्चितवारिणाऽन्वित – स्निग्धास्यसंप्रोञ्छनचीनवाससा ।
प्रक्षालितेन्दुप्रतिमाननावुभौ द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३१५॥

यदि मेरा जन्म गौ आदिकी योनिमें हुआ, तो देवताओंके द्वारा भी खोजने योग्य आपके श्रीमुखचन्द्रसे निकले हुये प्रसाद स्वरूप श्रीदुग्धवती गङ्गाजीके जल रूपी अमृतका पान, मैं अनायास किया करूँगी ॥३१०॥

यदि मेरा जन्म भौंरेकी योनिमें हुआ, तो भी मैं अपनी स्वाभाविक चञ्चलताको छोड़कर परम आनन्दमय, समस्त अमङ्गलहारी, आपके श्रीचरण-कमलोंकी सुगन्धको सूँघा करूँगी ॥३११॥

अथवा यदि मेरा जन्म चकोरकी जातियोंमें होगा, तो भी कोई दुःखकी बात नहीं, क्योंकि उसमें भी मैं चन्द्रसमूहोंको अपने प्रकाशसे लज्जित करने वाले आपके श्रीचरणारविन्दके नखों का दर्शन किया करूँगी ॥३१२॥ हे श्रीप्रियाजू! विशेष प्रलाप करनेसे क्या लाभ ? यदि उपर्युक्त प्रकारसे पृथ्वीपर जन्म मिले तो भी मुझे उससे कोई दुःख नहीं, अन्यथा अन्यत्र जन्म प्राप्ति मेरे लिये महान् दुःखका कारण ही सिद्ध होगी ॥३१३॥

हे मङ्गलमय अङ्गवाली श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये—शयन भवनके पलङ्गपर एक दूसरे से मिलकर आलस्य युक्त जम्हुवाई लेते बैठे हुये चन्द्र तुल्य मुखारविन्द वाले आप दोनों चितचोर सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा? ॥३१४॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—सुगन्ध युक्त जलसे भीगे हुये झीने चिकने मुखपोंछने वस्त्रसे पोंछे हुये आप दोनों सरकारके चन्द्र तुल्य मुखारविन्दका दर्शन क्या मैं कभी भी प्राप्त करूँगी ॥३१५॥

कच्चिन्नु चान्योन्यभुजान्तरं गतौ मन्दस्मितौ पङ्करुहायतेक्षणौ ।
नीराजमानौ च सखीगणान्तरे द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३१६॥

कच्चित्सुचीनांशुकभूषणान्वितां त्वां पुष्पमाल्यैः सुविभूष्य सप्रियाम् ।
नीराजमानां दयिते ! सखीगणे द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३१७॥

कच्चिच्च सिंहासनमध्यवर्तिनीं त्वां सार्यपुत्रां मिथिलेश्वरात्मजे ! ।
दृग्भ्यां सपाथोजकरां शुचिस्मितां द्रक्ष्याम्यहं जातु किशोरि! भण्यताम् ॥३१८॥

कच्चिच्च सर्वालिनताङ्घ्रिपङ्कजां ताभिर्व्रजन्तीमथ मङ्गलालयम् ।
आधाय कान्तांसभुजं शनैः शनैर्द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३१९॥

कच्चिद्युवां मङ्गलवेश्मनि स्थितौ छत्रावृतावालिनिकायसेवितौ ।
आह्लादयन्तौ निजकिङ्करीः शुभा द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३२०॥

कच्चिद्युवां सद्मनि दन्तधावने षडस्रपीठोपरिसंनिवेशितौ ।
शुभेक्षणौ धावनकृत्यतत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२१॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—सखियोंके बीचमें आरती होते समय एक दूसरेके भुजाके नीचे प्राप्त अर्थात् गलबहियाँ दिये कमल के समान सुन्दर और विशाल लोचन, मन्द-मन्द मुस्कराते हुये आप दोनों सरकारका मुझे क्या कभी भी दर्शन प्राप्त होगा?॥३१६॥ हे मङ्गलाङ्गी श्रीप्रियाजू! मुझे बतलाइये-सखियोंके मण्डलमें अत्यन्त झीने वस्त्र और भूषणों का शृङ्गार धारणकी हुई आपको, श्रीप्यारेजूके सहित पुष्प मालायें पहिना कर आपका आरती के समयका दर्शन क्या मैं कभी भी प्राप्त कर सकूँगी?॥३१७॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू ! मुझे बतलाइये—श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सिंहासनके बीचमें विराजमान, पवित्र मुस्कान युक्त, अपने कर-कमलमें नील कमलको धारण किये हुई आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३१८॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—सब सखियोंके द्वारा श्रीचरण—कमलोंको नमस्कार कर चुकने पर, उनके सहित श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर अपनी भुजा रखे हुये धीरे-२ मङ्गलभवन पधारते समय वाला आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३१९॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—श्रीमङ्गल भवनमें छत्र लगे हुये सखियोंके झुण्डसे सेवित, अपनी मङ्गलरूपा किङ्करियों (दासियों) को आह्लादयुक्त करते हुये आप दोनो सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३२०॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—दन्तधावन कुञ्जमें षट्कोण की चौकी पर सखियों के द्वारा विराजमान किये, मङ्गलमय चितवन वाले आप दोनों सरकारको मुख धोते हुये, क्या मैं कभी भी दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥३२१॥

कच्चिद्युवां सर्वदृगुत्सवाकृती श्रीस्नानकुञ्जे मणिपीठके स्थितौ ।
सुस्नापयन्तौ प्रणयादनेकशो द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२२॥
कच्चिद्युवां लघ्वशनालयान्तरे माणिक्यपीठोपरि चालिसञ्चये ।
संजक्षतौ वारिजपत्रलोचनौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२३॥
कच्चिद्युवां कामरतिस्मयापहौ शृङ्गारकुञ्जान्तरमध्यवर्तिनौ ।
महार्हदिव्याम्बरभूषणान्वितौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२४॥
कच्चिद्युवां ब्रह्महरीशवन्दितौ शचीविधात्रीगिरिजारमार्चितौ ।
प्रकाशयन्तौ प्रभया सभागृहं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२५॥
कच्चिद्युवां काञ्चनपीठके स्थितौ प्रियावदन्तौ वरतेमनानि वै ।
परस्परं ग्राससमर्पणोत्सुकौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२६॥
कच्चिद्दिवास्वापगृहे सुसज्जिते सौवर्णपर्यङ्कगतौ प्रियाप्रियौ ।
सुखं शयानौ परमाद्भुतच्छबी द्रक्ष्यामि वां जातु शुभाङ्गि! भण्यताम् ॥३२७॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये श्रीस्नान कुञ्जमें मणिमय चौकी पर विराजमान, सखियों द्वारा प्रणय पूर्वक अनेक प्रकारसे स्नान कराए जाते हुए, अपने स्वरूपसे सभीके नेत्रोंको उत्सवके समान आनन्द प्रदान करने वाले आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३२२॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—कलेवा कुञ्जमें सखियोंके समूहमें मणिमय चौकी पर भोजन करते हुये, कमल दलके समान विशाल लोचन आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा?॥३२३॥ हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये-शृङ्गार कुञ्जके मध्य भागमें विराजमान अत्युत्तम बहुमूल्य, दिव्य वस्त्र-भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुये, अपनी अतुलित छबि माधुरीसे रति व कामदेवके अभिमानको दूर करने वाले, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३२४॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवश्रेष्ठोंसे प्रणाम किये हुये रमा उमा, ब्रह्माणी, इन्द्राणी आदि विशिष्ट शक्तियोंसे पूजित, अपने श्रीअङ्गके सहज प्रकाशसे सभा-भवनको प्रकाशित करते हुये आप दोनों सरकार का दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३२५॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—भोजन सदन (गृह) में सुवणकी चौकी पर विराजमान, नाना प्रकारके उत्तम व्यञ्जनोंको पाते और परस्पर पवानेकी इच्छासे, ग्रास देनेको उत्सुक हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३२६॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये—भली प्रकारसे सजाये हुये, दिनके शयन भवन (विश्राम कुञ्ज) में, सोनेके पलङ्गपर परम आश्चर्यमय छबिसे युक्त सुखपूर्वक शयन किये हुये आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त हगा ॥३२७॥

कच्चिद्युवां वै फलभोजनालये शुभेक्षणानां निवहैः समावृतौ ।
फलान्यदन्तौ प्रणयार्पितानि च द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२८॥
कच्चिन्निदाघोत्सवमन्दिरे युवां मुदा सरय्वाः सरसि स्थितेऽम्भसि ।
सहालिवृन्दैर्जलकेलितत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३२९॥
कच्चिद्युवामालिसहस्रमध्यगौ नौकाविहारोत्सवदत्तचेतसौ ।
पुष्पाम्बराभूषणभव्यदर्शनौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३०॥
कच्चिद्युवां पुष्पनिकुञ्जमध्यगौ धृतप्रसूनाम्बरभूषणौ प्रियौ ।
तटे सरय्वाः स्वसखीभिरावृतौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३१॥
कच्चिद्युवां रत्नविभूषणाञ्चितौ समावृतौ दाससखीगणादिभिः ।
श्रीरत्नसिंहासनवेश्मनि स्थितौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३२॥
कच्चिद्युवां विश्वविमोहनस्मितौ निशाशनागारगतौ सहालिभिः ।
प्रियावदन्तौ च यथेप्सिताशनं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३३॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—फलभोजन कुञ्जमें कमलनयना सखियोंके यूथसे घिरकर, वहाँकी प्रधान सखीके द्वारा प्रणय पूर्वक समर्पित मधुर फलोंको, पाते हुये आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३२८॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—गर्मीकी ऋतु वाले महलमें, श्रीसरयूजलसे पूर्ण सरोवरमें सखी समूहके साथ आनन्द पूर्वक जल केलि करते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मैं कभी भी प्राप्त कर सकूँगी ? ॥३२९॥

हे मंगलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—सहस्रों सखियोंके बीचमें विराजमान होकर, नौका विहार करते हुये फूलोंके वस्त्र व भूषणोंसे अत्यन्त भव्यदर्शन वाले आप दोनों सरकार का दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३३०॥

हे मंगलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—श्रीसरयूजीके किनारे अपनी सखियोंसे घिरे हुये, पुष्प निकुञ्ज (फूलवँगला) के बीचमें विराजमान, फूलोंके वस्त्र-भूषणोंको धारण किये हुये आप श्रीयुगलसरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३३१॥

हे शोभनाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—क्या रत्नसिंहासन नामके महलमें दासवृन्द, सखीवृन्द आदिसे घिरे हुये, रत्नोंके बने भूषणोंका शृङ्गार धारण किये, आप श्रीयुगल सरकार का दर्शन, क्या मैं कभी भी प्राप्त करूँगी ? ॥३३२॥

हे शोभनाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—सखियोंके सहित ब्यारू (रात्रिके भोजन) कुञ्जमें भोजन करते हुये, अपनी मधुर मुस्कानसे सारे विश्वको मुग्ध करने वाले आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, क्या भर इच्छा मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३३३॥

कच्चिद्युवां संश्रितकल्पपादपावलङ्करिष्णू मणिपीठके स्थिता ।
वराङ्गनाभिः परिषेवितौ मुदा द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३४॥

कच्चिद्युवां रासनिकुञ्जगामिनौ रासार्हणीयाम्बरभूषणान्वितौ ।
मिथोऽर्पितांसैकभुजौ मनोहरौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि भण्यताम् ॥३३५॥

कच्चिद्युवां कोटिरतिस्मरच्छवी निजालिभिः शोभितरासमण्डले ।
ता ह्लादयन्तौ किल रासतत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३६॥

कच्चिद्युवां रासपरिश्रमान्वितावान्दोलकुञ्जे स्वसखीभिरावृतौ ! ।
सन्दोल्यमानौ सुषमामहाम्बुधी द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३७॥

कच्चिद्रसज्ञेन नरेन्द्रसूनुना संदोल्यमानां करपल्लवेन वै ।
त्वां प्रेयसा ह्लादमहार्णवाकृतिं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३८॥

कच्चिद्युवामालिभिरम्बुजेक्षणौ विभाजिताभी रसिकेश्वरौ मिथः ।
मुदा वसन्तोत्सवकेलितत्परौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३३९॥

हे मंगलांगी श्रीकिशोरीजू! मुझे बतलाइये—शृंगारकुन्जमें अपनी सखियोंसे सेवित, आश्रितों को कल्पवृक्षके समान सभी इच्छित फल देने वाले, शृंगारकरनेकी इच्छासे मणिमय चौकीपर बैठे हुए आप दोनों सरकारके दर्शनोंका सौभाग्य, क्या मैं कभी प्राप्त कर सकूंगी ॥३३४॥

हे मंगलांगी श्रीकिशोरीजी! मुझे बतलाइये—रासोचित वस्त्र-भूषणोंका शृंगार धारण किये परस्पर एक दूसरेके कन्धेपर अपनी भुजा रखे, रासकुन्जमें पधारते हुये, सभीके मनकी चोरी करने वाले आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ३३५॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-रासकी कलाको भलीप्रकार जानने वाली सखियोंसे शोभित रासमण्डलमें, करोड़ों रति और कामदेवके तुल्य कान्तिवाले, सखियोंको आह्लादयुक्त करते हुये, रासपरायण अर्थात् अपने भगवदीय आनन्द प्रदायक लीला करनेमें तत्पर आप दोनों सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३३६॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-रासके परिश्रमसे युक्त होनेके कारण झूलन कुन्जमें पधारे हुये सुन्दरताके महासागर स्वरूप, सखियोंसे घिर कर भली प्रकारसे झूलते हुये आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३३७॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये, उस झूलन कुन्जमें, आनन्दपूर्वक क्रियाओं का ज्ञान रखने वाले श्रीचक्रवर्तीकुमार प्राणप्यारेजूके, कर-कमलोंसे झुलाई जाती हुई आह्लादकी महासागर स्वरूपा आपश्रीका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३३८॥ हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये, बसन्त ऋतुकी कुन्जमें, सखियोंके दो भाग करके अपने२ भाग की सखियोंके सहित परस्पर आनन्दपूर्वक फाग खेलते हुये, आप रसिकेश्वर (भक्तोंके शासनमें रहने वाले) कमललोचन श्रीयुगलसरकाका दर्शन क्या मैं कभी भी प्राप्त कर सकूंगो ?॥३३९॥

कच्चिज्जितश्रेष्ठतमां विहारिणा त्वां स्तूयमानां सुदृशामथाज्ञया ।
आलिङ्गयन्तीं तमृतं मुदा प्रियं द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३४०॥

कच्चिद्युवां श्रीसरयूतटे शुभे संवेष्टितावालिशतैरभीप्सितम् ।
प्रियौ चरन्तौ मणिभूषणाञ्चितौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३४१॥

कच्चिद्युवां पुष्पितवाटिकागतौ सुलाल्यमानौ ललितेक्षणाव्रजैः ।
विलोकयन्तौ फलपुष्पवाटिकां द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३४२॥

कच्चिन्निशास्वापगृहे मनोहरे नीराजितां त्वां शतपत्रलोचनाम् ।
विसर्जयन्तीं परितोषिताः सखीर्द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३४३॥

कच्चिद्युवां वै मणितल्पशायिनौ मनोहरे काञ्चनरत्नमन्दिरे ।
सूक्ष्माम्बराढ्यावलकाञ्चिताननौ द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३४४॥

हे मङ्गलाङ्गी श्री किशोरीजी ! मुझे बतलाइये, फागके खेलमें प्यारेको जीत लेने पर मृगनयनी सखियोंकी आज्ञासे आपकी स्तुति करते हुये श्रीप्राणप्यारेजूका तथा उन सत्य (ब्रह्म स्वरूप) श्रीप्यारेजीको हृदय लगाते हुये आपका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३४०॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-श्रीसरयूजीके किनारे मणिमय भूषणोंको धारण किये हुये, करोड़ों सखियोंसे घिरकर, इच्छानुकूल टहलते हुये, आप दोनों श्रीप्रिया-प्रियतम सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ॥३४१॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-फूली हुई वाटिकामें पधारकर, अपनी सुन्दर चितवनवाली सखीवृन्दोंसे प्यार पाते हुये तथा उस वाटिका को अवलोकन करते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३४२॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-रात्रिके शयन भवनमें, शयन आरती हो जाने के पश्चात्, अपनी मनहरण चितवन सुन्दर मुस्कान व अमृतमय बचन आदि अनेकों ढङ्गसे सन्तुष्ट करके सखियोंको, विसर्जन, करती हुई, क्या आप कमलके समान विशाल नेत्रवालीजूका दर्शन, मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३४३॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-सुवर्ण खचित रङ्ग मन्दिरमें, अति झीने वस्त्रोंको धारण किये हुये, अलकोंसे शोभित मुखारविन्द वाले, मणिमय पलङ्ग पर शयन किये हुये, आप दोनों मनहरण सरकारका दर्शन क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३४४॥

कच्चिद्युवां विश्वविमोहनाकृती निद्रावशान्मीलितकञ्जलोचनौ ।
प्रकाशयन्तौ प्रभया स्वकीयया द्रक्ष्याम्यहं जातु शुभाङ्गि ! भण्यताम् ॥३४५॥
कदा नु पश्यामि विचित्रपङ्कजां वशिष्ठपुत्रीं सरयूं मनोरमाम् ।
चक्रायुधानन्दमयाश्रुविन्दुजां तद्ब्रूहि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥३४६॥
कदा नु सत्यां रघुमौलिपालितां वनप्रमोदातिशयेन शोभिताम् ।
आनन्दमग्नैश्च जनैः समाकुलां द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥३४७॥
कदा नु सर्वोत्तमहाटकालयं विशालकं मन्दिरकोटिसंयुतम् ।
तडित्प्रभं स्त्रीजनयूथसङ्कुलं द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥३४८॥
कदोत्थिता स्वालिभिरेव बोधिता सुस्नापिता दिव्यविभूषणाञ्चिता ।
संपूजिता चन्द्रकलां व्रजाम्यहं तद्ब्रूहि कल्याणि ! निजानुकम्पया ॥३४९॥
कदा तया साकमखिन्नचेतसा सखीनिकायेन सखीप्रधानया ।
विशामि ते स्वापगृहोत्तमाजिरे तद्ब्रूहि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥३५०॥

हे मङ्गलाङ्गी श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-अपने मङ्गलमय रूप-सौन्दर्यसे समस्त विश्वको मुग्ध कर लेने वाले, निद्रावश कमलके समान सुन्दर व विशाल नेत्रोंको बन्द किये हुये अपने-अपने वर्णकी गौर-श्याम कान्तिसे उस महलको प्रकाश युक्त करते हुये आप दोनों सरकारका दर्शन, क्या मुझे कभी भी प्राप्त होगा ? ॥३४५॥

हे कल्याणस्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये—कब आपकी कृपासे विचित्र रंगके कमलोंसे सुशोभित, श्रीविष्णुभगवानके आनन्दमय अश्रुविन्दुसे प्रकट हुई, सभीके मनको रमाने वाली वशिष्ठ नन्दिनी श्रीसरयूजीका दर्शन, मैं प्राप्त करूँगी ? ॥३४६॥

हे कल्याणस्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! कब आपकी कृपासे प्रमोद बनसे अतिशय सुशोभित, आनन्दमग्न नर-नारी गणोंसे परिपूर्ण श्रीरघुकुल श्रेष्ठ श्रीदशरथ जी महाराजके द्वारा पालित श्रीअयोध्यापुरीका दर्शन, मैं प्राप्त करूँगी ॥३४७॥

हे कल्याणस्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! आपकी कृपासे—अरबों महलोंसे युक्त, बिजलीके समान प्रकाश वाले, सखियोंके यूथोंसे भरे हुये, विशाल व सर्वश्रेष्ठ, श्रीकनकभवनका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ॥३४८॥ हे कल्याणस्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! मुझे बतलाइये-अपनी सखियोंके द्वारा जगाई हुई उठकर मैं स्नान करके, तथा दिव्य भूषणोंको धारण कर, अपनी अनुचरियोंकी पूजा-ग्रहण करके कब मैं आपकी कृपासे श्रीचन्द्रकलाजीके पास जाऊँगी ? ॥३४९॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! मुझे आप बतलाइये-कब मैं आपकी कृपासे सखी वृन्दके सहित उन प्रधान सखी (श्रीचन्द्रकला) जीके साथ, प्रसन्न चित्तसे, आपके श्रीशयन महलके प्रधान आङ्गनमें प्रवेश करूँगी ? ॥३५०॥

कदोत्थितां श्रेष्ठतमोपराजितां सुवासयन्तीं गृहमङ्गसौरभैः ।
मनोहराङ्गीमलकावृताननां द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥३५१॥

कदा नु कान्तांसकरां शुचिस्मितां विजृम्भमाणां नलिनायतेक्षणाम् ।
त्वां वीक्ष्य दृग्भ्यां विधुमोहनाननामेष्यामि चक्षुष्फलमूरुवत्सले ! ॥३५२॥

कदा नु पुष्पाञ्जलिमार्प्य सादरं कृतस्तुतिस्त्वां प्रणमानि हर्षिता ।
भालोपरिस्थाप्य तवाङ्घ्रिपङ्कजं सवल्लभायाः स्वदृशा स्पृशाम्यहम् ॥३५३॥

कदा नु पुष्पस्रजमुत्तमां नवां संधार्य भक्त्या विहिताञ्जलिः स्थिता ।
नीराजमानां सह राजसूनुना द्रक्ष्याम्यहं त्वां हि तवानुकम्पया ॥३५४॥

कदा नु वै भावसुतोषिता भृशं कराम्बुजं धास्यसि मूर्द्ध्नि मे शुभम् ।
दत्ताभयं संशमिताखिलाशुभं स्निग्धं मनोज्ञं वरदं सुकोमलम् ॥३५५॥

हे कल्याणस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! कब आपकी कृपासे सखियोंके मधुर मंगल गान द्वारा सावधान हो प्राणप्यारेजूके पास विराजमान हुई, अलकावलीसे आवृत (आच्छादित) मुखारविन्दवाली, अपने श्रीअङ्गकी अद्भुत छटासे सभीके मनको हरण करनेवाली तथा अपने श्रीअङ्गकी सहज सुगन्धि से सारे महलको सुगन्धमयकरती हुई आपका दर्शन, मुझे प्राप्त होगा ? ॥३५१॥

हे चन्द्रमाको मोहित करने वाले मुख वाली, परम वात्सल्यवती श्रीकिशोरीजी ! कब मैं पवित्र मुस्कानसे युक्त, कमलके समान सुन्दर और विशाल नेत्रवाली, प्यारेके कन्धे पर अपना हस्तकमल रखे, जम्भुवाई लेती हुई आपका दर्शन करके, अपने नेत्रोंको सफल करूँगी ? ॥३५२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! कब मैं पुष्पाञ्जलि समर्पण करके स्तुतिसे निवृत हो, आपको हर्ष पूर्वक प्रणाम करूँगी ? और कब मैं प्राणप्यारेजूके सहित आपके श्रीचरण-कमलोंको अपने भालपर रखकर, उन्हें नेत्रों से स्पर्श करूँगी ? ॥३५३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! उत्तम नवीन पुष्पमाला आपको धारण कराके भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े खड़ी हुई कब आपकीही अनुकम्पा से मैं राजपुत्र श्रीप्राणप्यारेजू सहित आपकी आरती का दर्शन प्राप्त करूँगी? ॥३५४॥ हे श्रीकिशोरीजी ! मेरे भावसे अति प्रसन्न होकर, कब आप भक्तोंके सब प्रकारसे अभय दायक तथा सकल अमङ्गलोंको शान्त (नष्ट) करदेने वाले, चिकने, मनहरण, अभीष्ट प्रदायक, अत्यन्त कोमल, मंगलमय, अपने श्रीकरकमलको मेरे सिर पर रखने की कृपा करेंगी ? ॥३५५॥

कदा नु सर्वालिगणैः समर्चितां प्रियेण साकं कमनीयविग्रहाम् ।
राजोपचारैरखिलैः सुसेवितां द्रक्ष्यामि यान्तीं भवनं च मङ्गलम् ॥३५६॥
कदा जितेभेन्द्रगती शुचिस्मितौ छत्रावृतास्यौ सरसीरुहेक्षणौ ।
मिथोंऽसविन्यस्तकराम्बुजौ प्रियौ द्रक्ष्याम्यहं वां हि तवानुकम्पया ॥३५७॥
कदा न्वहं मङ्गलवेश्मनि स्थितौ माङ्गल्यवस्त्राभरणैरलङ्कृतौ ।
अवेक्षमाणौ द्विजनागगोशिशून् युवामुदीक्षे कमलायतेक्षणे ! ॥३५८॥
कदा स्पृशन्तीं तरुणाम्बुजेक्षणां गोनागहंसद्विजशावकाञ्छुभान् ।
प्रदर्शयन्तीं दयिताय सादरं द्रक्ष्याम्यहं त्वां मृदुलामलाशयाम् ॥३५९॥
कदा नु सस्मेरमुखीं तडिद्द्युतिं विराजमानां चतुरस्रपीठके ।
सवल्लभां स्वामिनि ! दन्तधावने द्रक्ष्याम्यहं त्वां मुखधावने रताम् ॥३६०॥
कदा नु पश्यामि सखीगणैर्वृतां त्वां प्राणनाथेन कुशेशयेक्षणाम् ।
यथेप्सितं सारयवं च ते जलं समर्पयन्ती कृतकृत्यचेतसा ॥३६१॥

प्राणप्यारेजूके सहित अपनी सखी-वृन्दोंसे पूजित, अत्यन्त सुन्दर स्वरूप, छत्र, चामर, मोर-छल आदि राजाओंके योग्य समस्त सेवा सामग्रियोंके द्वारा भली प्रकारसे सेवित होती हुई आपके मंगल भवन पधारते समय का दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३५६॥ हे श्रीकिशोरीजी! आपस में एक दूसरेके कन्धेपर हस्त कमल रखे हुये, कमलदललोचन, पवित्र मुस्कानवाले, अपनी मधुर चालसे गजराजको भी लज्जित करनेवाले तथा छत्रसे ढकेहुये मुखारविन्दवाले, आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतम–सरकारका दर्शन, मुझे कब आपकी कृपासे प्राप्त होगा ? ॥३५७॥

हे कमलके समान विशाल लोचना श्रीकिशोरीजी! मंगल-भवनमें विराजमान होकर, मंगल-मय वस्त्र भूषणोंका शृङ्गार किये, तोता, मैना, हंस और ऐरावत हाथीके बच्चोंको अवलोकन करते हुये, आप दोनों सरकारका दर्शन, मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३५८॥

हे श्रीकिशोरीजी! उसमंगल कुञ्जमें ही, गो, ऐरावतहाथी, हंस आदि पक्षियोंके बच्चोंको अपने करकमलोंसे स्पर्श करती और श्रीप्राणप्यारेजीको उनका आदरपूर्वक दर्शन करवाती हुई स्वच्छ कोमल अन्तःकरण तथा नवीन खिले कमलके समान नेत्रवाली आप का दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३५९॥ हे श्रीस्वामिनीजू ! श्रीप्राणप्यारेजूके सहित, दन्त–धावन कुञ्जमें, मुख शुद्धिके लिये, मणिमय चार कोणकी चौकी पर विराजमान, मन्दमुस्कान युक्त मुखारविन्द व विजलीके समान कान्ति वाली आपका, दर्शन मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३६०॥

हे श्रीकिशोरीजी! कृत कृत्य चित्तसे रुचिके, अनुसार आपको श्रीसरयूजल समर्पण करती हुई श्रीप्राणनाथजूके सहित, सखीवृन्दोंसे घिरी हुई, कमलके समान सुन्दर विशाल नेत्रवाली आप का दर्शन, कब मैं प्राप्त करूँगी ? ॥३६१॥

कदा च ते प्रोञ्छ्य मुखारविन्दं मन्दस्मितं फुल्लसरोजनेत्रम् ।
विम्बोष्ठमादर्शकपोलमार्ये ! सुनासिकं चारुतरं निरीक्षे ॥३६२॥
कदा नु वीक्षे चतुरस्रपीठके षडस्रके वै वसुकोणपीठके ।
सुस्नाप्यमानौ सरयूशुभाम्भसा स्नानालये सूक्ष्मसिताम्बरौ हि वाम् ॥३६३॥
कदा भवत्याश्चिकुरप्रसाधनं कुर्वन्तमम्भोजदलायतेक्षणम् ।
प्रेमप्रवीणं रसिकेशमादराद् द्रक्ष्यामि कल्याणि ! तवानुकम्पया ॥३६४॥
कदा नु वं राजकुमारभाले स्वयं कराभ्यां तिलकं मनोज्ञम् ।
प्रेम्णा लिखन्तीं नवकुङ्कुमेन त्वां द्रष्टुमेष्यामि सुखस्वरूपाम् ॥३६५॥
कदा नु सर्वालिसमूहसंवृतां सवल्लभां काञ्चनपीठके स्थिताम् ।
बिम्बाधरां त्वां लघुभोजनालये द्रक्ष्याम्यदन्तीं मृदुपाणिपल्लवाम् ॥३६६॥

हे श्रेष्ठे! अर्थात् श्रेष्ठ गुण, स्वभाव, लक्षण, कुल आदिसे युक्त श्रीकिशोरीजी! जिसके खिले कमलके समान सुन्दर और विशाल नेत्र हैं, बिम्बाफलके सदृश लाल जिसके ओठ हैं, आदर्श (दर्पण) के समान स्वच्छ, प्रतिविम्ब ग्रहण करने वाले जिसके कपोल (गाल) हैं और जिसकी मन्द मुस्कान है तथा जिसकी नासिका अत्यन्त सुन्दर है, ऐसे आपके श्रीमुखकमलको पोंछ कर उसका दर्शन मैं भली प्रकारसे कब प्राप्त करूँगी ? ॥३६२॥

हे श्रीकिशोरीजी? श्रीस्नान कुञ्जमें, महीन, श्वेत-वस्त्रोंको धारण कर, चतुष्कोणकी चौकी पर (जिसके प्रत्येक कोण पर मध्यकी ओर झुके हुये सहस्र धार वाले जल यन्त्रोंसे जल गिरता है) षट् कोण, (जिसके प्रत्येक कोणपर हाथियोंकी सूंड़से मध्य भागकी ओर जल गिरता है) अष्ट कोण (जिसके प्रत्येक कोणपर अष्ट सखियोंके हाथमें विराजमान सुवर्ण यानी सोने के अधो मुखी घड़ोंसे सुन्दर स्वच्छ यथेष्ट शीतोष्ण जल गिरता है, उन) पर श्रीसरयूजीके मंगलमय जलसे स्नान कराये जाते समय, आप दोनों सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी?॥३६३॥

हे कल्याणस्वरूपे श्रीकिशोरीजी ! आपकी कृपासे आपके केशोंको आदर पूर्वक संवारते हुए प्रेममार्ग में परम प्रवीण, कमलके समान विशाल सुन्दरनेत्र, भक्तोंके शासन में रहने वाले श्रीप्यारेजूका दर्शन मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३६४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीराजकुमारजीके मस्तक पर, स्वयं अपने करकमलों द्वारा प्रेमपूर्वक नवकेशरसे मनोहर तिलककी रचना करती हुई आप सुखस्वरूपाजीका दर्शन मुझे, कब प्राप्त होगा ? ॥३६५॥ हे श्रीकिशोरीजी ! सखी दलके सहित सुवर्णकी चौकी पर, श्रीप्राणप्यारेजूके साथ, विराजमानहो भोजन करती हुई, विम्बा फलके समान लाल-२ अधर व कोमल हस्तकमल वाली आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३६६॥

कदा न्वहं प्रीतिगृहीतबुद्धिर्जलं सरय्वा विमलं सुमिष्टम् ।
धृत्वाऽम्बुपात्रे सनरेन्द्रजायै समर्प्य ते चन्द्रमुखं निरीक्षे ॥३६७॥

कदा नु चाश्नामि सहालिवृन्दैस्तवाधरोच्छिष्टमनुत्तमान्नम् ।
जलं च पास्यामि सुधोपमं वा सहप्रियाया मननीयकीर्ते ॥३६८॥

ईक्षे कदा वां सुमुखीभिरन्वितौ शृङ्गारकुञ्जान्तरवेदिकोपरि ।
स्वलङ्करिष्णू समुपस्थितौ मिथो भक्तार्थसम्पादितकृत्स्नकृत्यकौ ॥३६९॥

कदा ह्युपस्थाप्य विभूषणानां करण्डमग्रे सुविराजमानाम् ।
विभूषयन्तं स्वकराम्बुजाभ्यां त्वां द्रष्टुमेष्यामि तमिन्दुवक्त्रम् ॥३७०॥

कदा जगन्मोहनमोहनस्मितां प्राणेशनेत्रोत्सवतुल्यहर्षदाम् ।
विभूषयन्तीं मृदुलाब्जपाणिना द्रक्ष्यामि कान्तं जलजायतेक्षणम् ॥३७१॥

कदा युवां चन्द्रमसौ मनोहरौ सौवर्णसिंहासनसन्निवेशितौ ।
नृत्यैश्च वाद्यैः कलगानविद्यया संसेव्यमानाववलोकयाम्यहम् ॥३७२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! प्रेममें भीनी बुद्धि वाली मैं, श्रीसरयूजीके स्वच्छ व मीठे जलको सोनेके गिलासमें रखकर, श्रीचक्रवर्तीकुमारजीके समेत आपको समर्पण करके, कब आपके श्रीमुखचन्द्र का दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥३६७॥ हे मनन करने योग्य कीर्त्ति वाली श्री किशोरीजी ! सखी वृन्दोंके सहित मैं, श्रीप्राणप्यारेजूके समेत आपके सर्वश्रेष्ठ, अधरोच्छिष्ट अन्नका प्रसाद, कब सेवन कर सकूँगी ? और कब आप दोनोंका अधरोच्छिष्ट अमृतके समान जल मुझे पीनेको प्राप्त होगा?॥३६८॥ हे श्रीकिशोरीजी! परस्पर एक दूसरे का शृङ्गार करनेकी इच्छासे, सुन्दर मुखवाली सखियां सहित शृङ्गारकुञ्ज के भीतर वेदी पर विराजमान भक्तों के लिए ही सब कृत्य करने वाले आप दोनों सरकारका दर्शन मुझे कब प्राप्त होगा?॥३६९॥ हे श्रीकिशोरीजी! भूषणोंकी पिटारी आगे रखकर मणिमय चौकी पर विराजमान हुई, आपका अपने कर-कमलों से शृङ्गार करते हुये, चन्द्रवदन श्रीप्राणप्यारेजूका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३७०॥

प्राणप्यारेजूके नेत्रों को उत्सव केसमान विशेष आनन्द प्रदान करने वाली तथा समस्त चर-अचर प्राणियोंको अपनी छविमाधुरी से मुग्ध करने वाले श्रीप्राणवल्लभजीको भी अपनी मुस्कान से मुग्ध करने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! अपने कर-कमलोंसे कमल नयन प्राणप्यारेजूका शृङ्गार करते समय मुझे आपका दर्शन, कब प्राप्त होगा ? ॥३७१॥ हे श्रीकिशोरीजी ! नृत्य, वाद्य, तथा सुन्दर गान विद्याके द्वारा सखियोंसे सब प्रकार सेवित होते हुये सुवर्णके सिंहासन पर विराजमान आप दोनों मनहरण चन्द्रोंका, मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ?॥३७२॥

कदा प्रहृष्टौ निमिभानुवंश्यौ निवेश्य तौ सन्मृदुलासनेऽहम् ।
धृतांसपाणी हृतदृष्टिचित्तौ वीक्षे सखीमण्डलराजितौ वाम् ॥३७३॥
कदा महार्हाम्बरभूषणाञ्चितौ छत्रावृतास्यौ सकिरीटचन्द्रिकौ ।
युवां निरीक्षे सकलाङ्गसुन्दरौ सिंहासनस्थौ परिषन्निवेशने ॥३७४॥
कदा नु वै नाट्यकलां नटानां सुनर्तकानां बहुधा च नृत्यम् ।
गानं कलं गायकभूषणानां वीक्षे युवां वीक्ष्य निशामयन्तौ ॥३७५॥
सुपीतनीलारुणशुक्लवर्णैः पुष्पैः सुगन्धैर्मिलितान्तराले ।
निधाय माले युवयोः सुकण्ठे कदा नु वां पादयुगं ग्रहीष्ये ॥३७६॥
कदा नु माध्याह्निकभोजनालये सुखोपविष्टौ मणिपीठकोपरि ।
वृतौ शरच्चन्द्रमुखीभिरालिभिर्युवां निरीक्षे हरिदम्बरौ प्रिये ! ॥३७७॥
कदा प्रपश्यामि युवामदन्तौ चतुर्विधं षड्रसभोजनं च ।
प्रदाय पूर्वं कवलानि कृत्वा परस्परं भूरिनिगूढभावौ ॥३७८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सखियोंके नृत्य, वाद्य, गान आदिसे पूर्ण प्रसन्न अपनी छविमाधुरीसे प्राणियोंके दृष्टि व चित्तको हरण करने वाले, एक दूसरेके कन्धे पर अपना हस्त कमल रखे हुये जो निमि व सूर्यवंशमें प्रकट हैं तथा कमलके समान जिनके सुकोमल श्रीचरण हैं, उन आप दोनों सरकारको सखियोंके मण्डलमें कोमल आसनपर विराजमान करके मैं कब दर्शन करूँगी?॥३७३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो बहुमूल्य वस्त्र व भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुये हैं, किरीट चन्द्रिका जिनके सिरपर सुशोभित है, छत्र जिनके श्रीमुखारविन्दको ढके हुये है, सभाभवनके मणिमय सिंहासन पर विराजमान, सर्वाङ्गसुन्दर यानी गुण, रूप, वैभव, बल, तेज, चरित्र आदि सभी दृष्टिसे सुन्दर, उन आप श्रीयुगलसरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३७४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! नटोंकी बहुत प्रकारकी नटलीला और नृत्य करने वालोंका बहुत प्रकारका नृत्य (नाच) अवलोकन करके श्रेष्ठ गायकोंका सुन्दर गान श्रवण करते हुये आप श्रीयुगल सरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ॥३७५॥

हे श्रीकिशोरीजी! सुगन्ध युक्त श्वेत(सफेद)लाल, नील, पीत रंगके पुष्पोंकी बनाई हुई मालाओं को गलेमें पहिनाकर, कब मैं आप श्रीयुगल सरकारके श्रीचरणकमलोंको ग्रहण करूँगी? ॥३७६॥

हे श्रीप्रियाजू ! दोपहरके भोजन सदन (गृह) में शरत् ऋतुके चन्द्रमाके तुल्य उज्वल प्रकाश मान, आह्लादकर मुखवाली सखियों से घिरे हुये, हरे रंगके वस्त्रों से युक्त, मणिमय चौकी पर सुखपूर्वक विराजमान, आप श्रीयुगलसरकारका दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३७७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! षड्रसोंसे युक्त, चार प्रकारके भोजनों को कवल बना बनाकर, परस्पर एक दूसरेको पवा कर स्वयं पाते हुये, अत्यन्त अथाह गुप्त भाव वाले आप दोनों सरकार का दर्शन, मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३७८॥

कदा नु सस्मेरसुधांशुवक्त्रौ प्रियाप्रियौ दाडिमचारुदन्तौ ।
मुहुर्मुहुर्ग्रासमथार्पयन्तौ वीक्षेसुखायार्पितवासनानाम् ॥३७९॥
कदा नु वीक्षे रसिकाधिराजं सुधाकरस्पर्द्धिमुखे त्वदीये ।
ग्रासार्द्धकं प्रीतिवशात्समर्प्य भुञ्जानमर्द्धं परयानुरक्त्या ॥३८०॥
कदा नु वै चन्द्रकला रसज्ञा संभोजयन्ती महतादरेण ।
त्वां हासयन्ती सनरेन्द्रपुत्रां पुनः पुनर्मेऽक्षिपथं प्रयात्री ॥३८१॥
कदा नु चामीकरवारिपात्रे सुनिर्मलं दिव्यसुगन्धयुक्तम् ।
जलं निधायामृततुल्यमिष्टं समर्पयिष्ये परमश्रियौ ! वाम् ॥३८२॥
कदा युवाभ्यां कृतभोजनाभ्यां प्रदाय चाचम्यमतीवरुच्यम् ।
विध्वास्यमाप्रोञ्छ्य करौ च पादौ ताम्बूलवीटीर्मुदिता प्रदास्ये ॥३८३॥
कदा नु चाश्नामि कृपैकलभ्यं प्रसादमुच्छिष्टमभीष्टमन्तः ।
नीराजितायां च सखीसभायां त्वयि प्रहृष्टार्यसुतान्वितायाम् ॥३८४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सकल वासना समर्पित सखियों के सुखार्थ परस्पर एक दूसरेको वारं वार ग्रास प्रदान करते हुए मुस्कान युक्त चन्द्रतुल्य आह्लाद वर्धक मुखारविन्द, अनारदानों के सदृश दन्तपंक्ति वाले आप दोनों श्री प्रियाप्रियतम सरकार का दर्शन, मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३७९॥ हे श्रीकिशोरीजी ! चन्द्रमाको स्पर्धा कराने वाले आपके श्रीमुखारविन्दमें, प्रीति वश आधा ग्रास देकर, शेष आधेको परम अनुराग पूर्वक स्वयं पाते हुये, भक्तोंको अपना सम्राट् मानने वाले श्रीप्राणप्यारेजूका दर्शन मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३८०॥

हे श्रीकिशोरीजी! आप दोनों सरकारके परत्वको भली प्रकारसे जानने वाली श्रीचन्द्रकलाजी प्राणप्यारेजूके सहित, आपको परम आदर पूर्वक सम्यक् प्रकारसे भोजन कराती और हँसाती हुई वारम्वार मुझे कब दर्शन प्रदान करेंगी ? ॥३८१॥

हे श्रीकिशोरीजो! दिव्य सुगन्धसे युक्त, निर्मल, मीठे अमृत के समान जलको सोनेकी झारी में लेकर, कब परम आश्चर्यमय छबिवाले आप दोनों सरकारको मैं समर्पण करूँगी? ॥३८२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! भोजन पश्चात्-अत्यन्त रुचिकारक आचमन प्रदान करके, मुख चन्द्र तथा हस्त व श्रीचरणकमलोंको पोंछ कर आनन्दमग्न होती हुई, कब मैं आप श्रीयुगल सरकार को पानका बीरा प्रदान करूँगी ॥३८३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सखियोंकी सभामें श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आपकी आरती हो जानेके बाद, केवल कृपासे ही प्राप्त होने योग्य, अपने अन्तःकरणसे चाहे हुये आप दोनों सरकारके उच्छिष्ट प्रसादका सेवन- सौभाग्य मुझे कब प्राप्त होगा ॥३८४॥

प्रफुल्लपङ्केरुहसाञ्जनेक्षणाम् ।
कदाऽनवद्यां दयितोपशायिनीं
विश्रामकुञ्जान्तररत्नतल्पके द्रक्ष्याम्यहं वै भवतीं कृपावतीम् ॥३८५॥
कदा स्वपन्त्याः पदपद्मपीडनं सवल्लभायास्तव दिव्यतल्पके ।
विगाढ़भावेन निधाय चोरसि प्रिये ! करिष्यामि तवानुकम्पया ॥३८६॥
कदा दयालो ! त्रिदशैरगम्यं मनोहरं सर्वसखीजनानाम् ।
प्रस्वापसंदर्शनमेव कृत्वा मुहुः करिष्ये सफले स्वनेत्रे ॥३८७॥
कदा कृपादृष्टिनिरीक्षिता त्वया सकान्तया स्वापगृहान्तरस्थया ।
सुखं स्वपन्त्या नियताञ्जलिः स्थिता मृद्वङ्गि! मङ्क्ष्यामि सुखार्णवोदरे ॥३८८॥
कदा सतन्द्रौ च निमीलिताक्षौ मनोजचापप्रतिमभ्रुवौ वाम् ।
विलज्जिकोटीन्दुमनोहरास्यौ पद्माक्षि ! वीक्षेऽक्षिवतां मनोज्ञौ ॥३८९॥
कदा स्वपन्तौ परिशुद्धभावौ प्रेमास्पदौ प्रेमविहारिणौ वाम् ।
प्रिय! प्रिये ! ऽथो हि मिथो ब्रुवन्तौ शनैः शनैश्चैव मृगाक्षि! वीक्षे ॥३९०॥

हे श्रीकिशोरीजी ! विश्राम-कुञ्जके भीतर, रत्न-खचित पलंगपर श्रीप्राणप्यारेजूके समीपमें सोई हुई, खिले कमलके समान विशाल और अञ्जन युक्त नेत्रवाली, सब प्रकारसे प्रशंसाके योग्य आप श्री कृपावतीजू का दर्शन, मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३८५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी कृपासे श्रीप्राणप्यारेजूके साथ दिव्य–पलंगपर शयनकी हुई, आपके श्रीचरण-कमलों को अपने हृदय–स्थलपर रखकर बड़े ही गाढ़ भावसे कब मैं उनकी सेवा करूँगी ॥३८६॥ हे दयालो श्रीकिशोरीजी ! कब आपकी कृपासे सखियोंके मनको हरण करनेवाला देवताओंसे अगम्य, आपकी शयन–झांकीका बारम्बार दर्शन करके मैं अपने नेत्रोंको सफल करूँगी ? ॥३८७॥

हे कोमलांगी श्रीकिशोरीजी ! शयन सदनके मध्यमें, सुख पूर्वक शयन करती हुई श्रीप्राण-प्यारेजूके सहित आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करके, कब मैं हाथ जोड़े खड़ी हुई सुख सागरमें गोता लगाऊँगी ॥३८८॥ हे कमललोचना श्रीकिशोरीजी ! कामदेवके धनुष समान सुन्दर भौंह वाले, अपने नयन कमलोंको बन्द किये हुये, नेत्रवालोंके मनको लुभाने वाले, तथा अपनी मनहरण मुखारविन्दकी शोभासे करोड़ों चन्द्रमाको लज्जित करने वाले, तन्द्रायुक्त आप दोनों सरकारका मैं दर्शन कब करूँगी ? ॥३८९॥

जो प्रेमके पात्र और प्रेम में ही सदा विहार करनेवाले हैं, तथा जिनका मनोभाव सब प्रकार विकार रहित है, उन आप दोनों सरकारका सोते समय परस्पर, धीरे-धीरे "हे श्रीप्रियाजू ! हे श्रीप्यारेजू" उच्चारण करते हुए, मैं कब दर्शन प्राप्त करूँगी ? ॥३९०॥

कदाऽऽलिमुख्यापरिबोधितौ वां मनोहरोत्फुल्लसरोजनेत्रौ ।
सुकुन्तलौ बिम्बफलाधरोष्ठौ प्रिये ! निरीक्षे मणितल्पसंस्थौ ॥३६१॥
प्रक्षालिताशेषहिमांशुवक्त्रौ स्वलङ्कृताङ्गौ निजकिङ्करीभिः ।
नीराजितौ प्रेमपरिप्लुताभिर्विलोक्य वीटीश्च कदा नु दास्ये ॥३६२॥
कदा नु माल्यानि सुवासितानि विचित्रपुष्पैः परिगुम्फितानि ।
स्वयं सुकण्ठे तव धारयित्वा युवामुदीक्षे दयितान्वितायाः ॥३६३॥
कदा न्वहं प्रेमपरिप्लुताक्षी कृपाकटाक्षेण निरीक्षिता ते ।
सवल्लभायास्तव पाद पद्मं निधाय भाले सुखिता शुचे ! स्याम् ॥३६४॥
कदानु वै चम्पकदामवर्णां विनीलवस्त्रां गजगामिनीं त्वाम् ।
सुकोमलस्निग्धपदारविन्दां कञ्जाक्षि ! वीक्षे शरदिन्दुवक्त्राम् ॥३६५॥
कदा नु वै कुञ्चितनीलकुन्तलां सिन्दूरपुञ्जाभकराङ्घ्रिपङ्कजाम् ।
निःशेषकल्याणगुणैकविग्रहां त्वां जातु वीक्षेय विभूषणान्विताम् ॥३६६॥

हे श्रीकिशोरीजी! श्रीचन्द्रकलाजी व श्रीचारुशीलाजी आदि मुख्य सखियोंके द्वारा जगानेपर मणिमय पलंग पर बैठे हुये, मनहरण खिले कमलके सदृश लोचन, सुन्दरकेश, विम्बाफलके समान लाल अधर व ओठ वाले, आप दोनों सरकारका दर्शन, मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३६१॥

प्रेममें डूबी हुई किङ्करियोंने जिनके पूर्णचन्द्र तुल्य मुखारविन्दको धोया और सभी अंगों का शृङ्गार किया, उनके द्वारा आरती किये हुये आप दोनों सरकारका दर्शन करके मैं, कब आपको पान का वीरा समर्पित करूँगी ॥३६२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अनेक प्रकारके सुगन्धमय पुष्पों की गूँथी हुई मालाओंको श्रीप्राणप्यारेजू के सहित आपके सुन्दर गलेमें पहनाकर, कब में आप दोनों सरकारका दर्शन करूँगी ? ॥३६३॥

हे शुचे ! (सकल विकार रहिते) श्रीकिशोरीजी! कब आपके कृपापूर्ण कटाक्षसे, देखनेपर, प्रेमभरे नेत्रवाली मैं, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित आपके दोनों श्रीचरणकमलोंको, अपने मस्तकपर रखकर सुखी होऊँगी ? ॥३६४॥

हे कमललोचना श्रीकिशोरीजी ! जिनके श्रीअङ्ग का रङ्ग चम्पा पुष्प माला सदृश गौर है, वस्त्र नीले है, सुडौल जङ्घे और अत्यन्त कोमल चिकने श्रीचरणकमल हैं, जिनका शरद-ऋतु के चन्द्रमा समान मुखारविन्द है और गजेन्द्रके समान गति (चाल) है, उन आपका दर्शन मैं, कब प्राप्त करूँगी ? ॥३६५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिनके घुंघराले केश और सिन्दूर पुन्जके समान लाल श्रीहस्त व पदकमल हैं, भूषणोंसे भूषित, समस्त कल्याणकारी गुणोंकी मूर्ति जो हैं। उन आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ॥३६६॥

प्रेष्ठांसविन्यस्तभुजां कलस्मितां ताटङ्कनासामणिचन्द्रिकान्विताम् ।
दिव्याङ्कनाप्रेमसुदेवलालितां त्वां, द्रष्टुमेष्यामि कदा धवाङ्कगाम् ॥३९७॥
कदा नु मञ्जीरसुनूपुरान्वितां प्रियोपविष्टां सदयाम्बुजेक्षणाम् ।
धृताब्जहस्तां सुषमैकविग्रहां त्वां हन्त पश्यामि जनानुकम्पिनीम् ॥३९८॥
कदा व्रजन्तीं फलभोजनालयं सखीजनानां निवहे मृदुस्मिताम् ।
त्वां सार्यपुत्रां सुखयानकेन वै वीक्षे विभाव्ये ! करुणाप्लुताशयाम् ॥३९९॥
कदा नु पुष्पाभरणैर्विचित्रैर्नैपथ्यकालङ्कृतकोमलाङ्गीम् ।
सवल्लभां काञ्चनपीठके त्वां द्रक्ष्याम्यदन्तीं सुफलानि रुच्या ॥४००॥
कदा सरय्वां जलकेलितत्परां प्रियेण साकं ससहस्रकिङ्करीम् ।
विद्युन्निभां लाघवनिर्जितप्रियां त्वां चारु वीक्षे सुसुखैकविग्रहाम् ॥४०१॥
कदा नु पुष्पालयमध्यभागे सुपुष्पसिंहासनराजमानौ ।
पुष्पाम्बरौ पुष्पविभूषणौ वां प्रेक्षे प्रसूनाभसुकोमलाङ्गौ ॥४०२॥

हे श्रीकिशोरीजी ! श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर अपनी भुजा रखे हुये, सुन्दर मुस्कानसे युक्त, कर्णभूषण, नासामणि चन्द्रिकाको धारण किये, श्रीप्यारेजूकी गोदमें विराजमान, सखियोंके प्रेमरूपी देवतासे लालित, आपश्रीका दर्शन मैं, कब प्राप्त करूँगी ॥३९७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो अपने श्रीचरणकमलों में नूपुर व पायजेबको पहिने हुई हैं, जिनके नेत्र कमल दयासे परिपूर्ण हैं, आश्रित जनोंपर दयाभाव रखनेवाली, श्रीप्राणप्यारेजूके पास विराजमान, अद्वितीय सौन्दर्यकी मूर्त्ति, हाथमें कमल लिये हुई हैं, उन आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३९८॥ भावनाके योग्य गुण-रूप सम्पन्ना हे श्रीकिशोरीजी ! सखियोंके झुण्डमें श्रीप्राणप्यारेजूके सहित सुखयानके द्वारा फल-भोजनकुन्ज पधारती हुई, मृदु-मुस्कानसे युक्त, करुणा परिपूर्ण हृदयवाली आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३९९॥

शृंगार करनेवाली सखीके विचित्र फूलोंके भूषणों द्वारा जिनके कोमल श्रीअङ्गोंका शृंगार, किया गया है, प्राणप्यारेजूके सहित सुवर्णकी चौकीपर सुन्दर फलोंको रुचि पूर्वक पाती हुई आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४००॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो बिजलीके समान प्रकाशवाली सुन्दर सुखकी उपमा रहित मूर्ति हैं, जिन्होंने अपने लाघव (फुर्ती) से प्राणप्यारेजूको हरा दिया है, सहस्रों सखियों के सहित श्रीप्राणप्यारेजूके साथ, श्रीसरयूजी में जल केलि करती हुई, उन आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४०१॥ हे श्रीकिशोरीजी ! पुष्प सदनके मध्यभागमें पुष्पोंके वस्त्र भूषणोंसे युक्त, सुन्दर पुष्पोंके सिंहासनपर सुशोभित होते हुये पुष्पके समान सुकोमल अङ्गों वाले आप दोनों सरकारका दर्शन मैं, कब प्राप्त करूँगी ? ॥४०२॥

कदा नु नाना रचनाचमत्कृते सहस्रनारीनरयूथसङ्कुले ।
ध्वजापताकावरतोरणाञ्चिते वां रत्नसिंहासनके निरीक्षे ॥४०३॥
कदा न्वशेषाम्बरभूषणाढचौ निःसीमसौन्दर्यसुखैकमूर्त्ती ।
निःसीममाधुर्यगुणोपपन्नौ वां रत्नसिंहासनके निरीक्षे ॥४०४॥
कदा नु वै रासनिकुञ्जमध्ये रासस्थले मण्डल आश्रितानाम् ।
दत्तप्रियांसैकभुजां लसन्तीं स्वलङ्कृतां मञ्चगतां निरीक्षे ॥४०५॥
कदा न्वहं राससुकेलितत्परां त्वां प्रेयसा साकमतुल्यसौभगाम् ।
चन्द्राननावेष्टितरासमण्डले बिम्बाधरोष्ठों मृदुलाङ्गि ! वीक्षे ॥४०६॥
कदा नु चीनांशुकमण्डिताङ्गीं तन्द्रान्वितां न्यस्तधवांसहस्ताम् ।
राजोपचारैरुपपचर्यमाणां यान्तीं निशास्वापगृहं निरीक्षे ॥४०७॥
कदा नु तस्मिन्नतिभव्यसद्मनि ह्यनेकपुष्पाञ्चितमाल्यशालिनीम् ।
धृतप्रियांसाम्बुजमञ्जुहस्तकां नीराजितामालिजनैरुदीक्षे ॥४०८॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अनेक प्रकारकी सजावटसे जगमगाते हुये, हजारों नर नारियोंके झुण्डोंसे परिपूर्ण, ध्वजापताका और उत्तम तोरणसे सुशोभित, श्रीरत्नसिंहासन नामके महलमें, आप दोनों सरकारका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४०३॥

हे श्रीकिशोरीजी ! समस्त वस्त्र-भूषणोंसे युक्त, असीम सौन्दर्य और उपमा रहित सुखकी मूर्त्ति तथा असीम माधुर्य–गुणोंसे सम्पन्न श्रीरत्नसिंहासन सदनमें, कब आप दोनों सरकारका, मैं दर्शन प्राप्त करूँगी ! ॥४०४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! रास-कुन्जके मध्य रासस्थलमें, भलीप्रकारसे शृङ्गार की हुई प्यारेके कन्धे पर एक भुजा रखे, सखियोंके मण्डलमें, सिंहासन पर विराजमान हुई आपका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥४०५॥ हे मृदुलांगी श्रीकिशोरीजी ! चन्द्रमुखी सखियोंसे घिरे हुए रासमण्डलमें, जिनके सौन्दर्यकी तुलना ही नहीं है तथा जिनके अधर व ओठ बिम्बाफलके सदृश लाल-२ हैं, उन श्रीप्राणप्यारेजूके सहित रासक्रीड़ा करती हुई आपश्रीका दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगी ! ॥४०६॥ जिनके अंग भीने वस्त्रोंसे विभूषित हैं, प्यारेके कन्धेपर हाथ रखे हुये राजसी उपचार छत्र चामर आदिसे सेवित, रात्रिके शयन भवनको पधारती हुई उन आलस्ययुक्ता आपश्रीका दर्शन मुझे कब प्राप्त होगा ! ॥४०७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! उस अत्यन्त भव्य शयन भवनमें अनेक प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई मालाओं को धारणकर, प्यारेके कन्धेपर अपना कोमलहस्तकमल रखे हुई, तथा सखीजनोंके द्वारा आरती उतारी हुई आपश्रीका, मैं दर्शन कब प्राप्त करूँगी ॥४०८॥

कदा शयानां सममार्यसूनुना सौवर्णतल्पे मृदुलांशुकाञ्चिते ।
पश्येयमाराद्विहिताञ्जलिः स्थिता त्वां चित्स्वरूपां हि तवानुकम्पया ।।४०९।।
श्रीपार्वतीब्रह्मसुतादिसेवितां वेधःसुपर्णध्वजशम्भुभाविताम् ।
अचिन्त्यशक्तिं सुविचित्रवैभवां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ।।४१०।।
सीरध्वजस्यात्मभवां भवापहामत्यन्तसौलभ्यगुणेन भूषिताम् ।
कारुण्यसौशील्यसहिष्णुताकृतिं श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ।।४११।।
तारप्रभाबाम्बुजदीर्घलोचनां बिम्बाधरोष्ठीं शुकतुण्डनासिकाम् ।
मनोहरां कोटिसुधाकराननां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ।।४१२।।
यैरादृता सर्वगतिः सदा शिवा ते वै कृतार्था मुनिभिश्च निश्चिताः ।
तां प्रेयसीं सर्वसुरेश्वरप्रभोः श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ।।४१३।।
नवारुणाम्भोजकरां शुचिस्मितामनन्तविद्युच्चयसन्निभप्रभाम् ।
सुशुक्तिकर्णां वरकुण्डलाञ्चितां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ।।४१४।।

हे श्रीकिशोरीजी ! कब आपकी ही कृपासे हाथ जोड़कर पास खड़ी हुई कोमल बिछावनसे सुशोभित सुवर्णमय पलंगपर, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित शयनकी हुई, चैतन्यघनस्वरूपा आपश्रीका, दर्शन मैं प्राप्त करूँगी! ।।४०९।। श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीसरस्वतीजी आदि महाशक्तियाँ, जिनकी सेवा कर रही हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु महेश भी जिनकी भावना करते हैं एवं जिनकी शक्तिका अनुमान श्रीप्राणप्यारेजूके लिये ही सम्भव है, जिनका गुण रूपादि वैभव अत्यन्त ही आश्चर्यमय है, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरण में हूँ ।।४१०।।

श्रीसीरध्वज महाराजकी पुत्री, भक्तोंके जन्म-मरणको अपहरण करनेवाली, अत्यन्त सौलभ्य गुणसे भूषित, करुणा, सुशीलता, सहिष्णुताकी जो मूर्त्ति हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ।।४११।। जिनके विशाल नेत्र भवसागरसे पार करनेवाले हैं, विम्बाफलके समान जिनके लाल अधर व ओठ हैं, नासिका शुकके समान है, करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश प्रकाशमान आह्लादकारक जिनका श्रीमुखारविन्द है, जो अपने नाम रूप लीला धामादि सभी अङ्गोंसे मनको हरण करनेवाली हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ।।४१२।।

जिन सौभाग्यशाली प्राणियोंने सभीकी रक्षा करनेवाली सदा मङ्गल स्वरूपा श्रीकिशोरीजीका, आदर किया है, वे मुनियोंके द्वारा-कृतार्थ निश्चित हैं, उन सर्व सुरेशोंके प्रभुकी प्राणप्यारी, श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें हूँ ।।४१३।।

नवीन लाल कमलके समान जिनके हाथ हैं, पवित्र मुस्कान है, जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति अनन्त बिजली समूहों के समान है, सुन्दर सीपीके सदृश जिनके कान हैं, जो श्रेष्ठ कुण्डलोंसे सुशोभित हो रही हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरण में हूँ ।।४१४।।

मोहान्धकारान्तकरीं यशस्विनीमगाधसौन्दर्यनिधिं वरप्रदाम् ।
अशेषकल्याणगुणैकसन्निधिं श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४१५॥
न चास्ति भूता भविता न जातुचिद् गुणैः सभद्रैः किल यादृशी परा ।
तामार्द्रपङ्केरुहपत्रलोचनां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४१६॥
मोदप्रदां भूमिसुतामयोनिजां तिरस्कृतानन्तरतिं परात्पराम् ।
माधुर्यवस्त्रां वरभूषणाञ्चितां श्रीस्वामिनीं वै शरणं गताऽस्म्यहम् ॥४१७॥

इति मासपारायणे षष्ठमो विश्रामः ॥६॥

सा चारुकञ्जाभविशालनेत्रा मनोभिरामा भुवनैकवन्द्या ।
सर्वेश्वरी दिव्यविभूषणाढ्या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४१८॥
'सी' वर्ण आह्लादकरो हि पूर्वो यस्याश्च नाम्नो भृशमार्यसूनोः ।
सा चन्द्रवृन्दायुतसुन्दरास्या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४१९॥
तावन्न लभ्यो रघुवंशनाथो यावन्न तुष्येज्जनकात्मजा सा ।
इत्यादिवाक्यैर्मुनिभिः स्तुता या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४२०॥

जो मोहरूपी अन्धकारको दूर करनेवाली और यशरूपी धनसे पूर्ण सम्पन्न, तथा सदा एक रस रहने वाले अथाह सौन्दर्य की उत्तम निधि, वर प्रदान करनेवाली, समस्त कल्याणकारक गुणों की समुद्र हैं, उन श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें हूँ ॥४१५॥

मंगलमय गुणोंकेद्वारा जिनकी समता करनेवाली, न कोई महाशक्ति है, न पूर्वमें हुई थी और न आगे कभी होगी ही, उन आर्द्र कमलदलके समान सुन्दर नेत्रवाली श्रीस्वामिनीजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४१६॥ जो आनन्द प्रदान करनेवाली, भूमिकीपुत्री, किसीकी योनिसे जन्म न ग्रहण करनेवाली अपने छबि-माधुर्यसे अनन्त रतियोंका तिरस्कार करनेवाली, परात्परा अर्थात् सबसे बढ़कर माधुर्य रूपी वस्त्रको धारण किये हुई, उत्तम भूषणोंसे भूषित हैं, उन श्रीस्वामिनी जूकी मैं शरणमें हूँ ॥४१७॥ जिनके नेत्र कमलके समान विशाल हैं, जो अपने सहज स्वभाव, गुण, रूप आदिसे सभीके मनको सुन्दर लग रही हैं तथा जो लोकमें सर्वश्रेष्ठ, वन्दनाके योग्य, सभीपर शासन करनेवाली, दिव्य विभूषणोंसे भूषित हैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षक बनें ॥४१८॥

जिनके नामके पूर्वका "सी" वर्ण श्रीप्राणप्यारेजूका अत्यन्त आह्लाद कारक है, वे अनन्त पूर्ण चन्द्रके समान परम सुखद, शीतल, आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमय मुखवाली श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करें ॥४१९॥ जब तक श्रीजनकलड़ैतीजू प्रसन्न नहीं होती, तब तक रघुवंशके नाथ श्रीप्राणप्यारे सरकारजू भी जीवको सुलभ नहीं होते, इस प्रकारके अनेक वचनों द्वारा मुनिजन जिनकी स्तुति करतेहैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षक बने ॥४२०॥

गतिर्विना यां न च काऽपि लोके प्रोक्ताऽगतीनां क्वचिदेव सद्भिः।
सा प्राणनाथाधिकपुण्यकीर्त्तिः श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४२१॥
तिरस्कृताभा शतशो विधूनां यस्याश्च पादाब्जनखप्रभातः।
सा दुर्विभाव्या मुनिहंसभाव्या श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४२२॥
रजस्तमःसत्वगुणैर्विहीना सतां गतिः सर्वहिता शरण्या।
आह्लादिनी ब्रह्मपरं परेशा श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४२३॥
स्तुतिं न वै शक्ष्यति कोऽपि कर्तुं यथावदम्भोजमनोहराक्ष्याः।
यस्या मनोवाग्दृगगोचरी सा श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४२४॥
मेघाभगात्रांसधृतैकहस्ता रासेश्वरी ध्येयसरोजपादा।
लावण्यवारांनिधिरप्रमेया श्रीस्वामिनी वै शरणं ममास्तु ॥४२५॥

सन्तोंके द्वारा किसीभी प्रसङ्गमें जिनके अतिरिक्त और कोई भी शक्तिमान् अथवा शक्ति, समस्त साधन हीन, पतित, दीन जनोंकी रक्षा करने वाली, कहीं भी नहीं कही गयी है, श्रीप्राणनाथजीसे अधिक पुण्यकीर्ति सम्पन्ना वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करें ॥४२१॥

जिनके श्रीचरण-कमलके नखकी प्रभासे, अनन्तब्रह्माण्डोंके सम्पूर्ण चन्द्रमाओंकी सामूहिक प्रभा, शतशः तिरस्कारको प्राप्त है, जो अत्यन्त कठिनतासे भावनामें आने योग्य, केवल हंसवृत्ति सम्पन्न मुनियों के लिये ही चिन्तनमें सुलभ हैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करें ॥४२२॥

जो सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे परे, सन्तोंकी सर्वोपाय स्वरूपा, सभी चर-अचर प्राणियोंका हित करने वाली, तथा सभीकी रक्षा करनेको समर्थ, प्राणियोंको आह्लादयुक्त करने वाली हैं, ब्रह्मा, विष्णु महेशादि जिनके शासनको शिरोधार्य कर अपने २ कर्त्तव्य पालनमें तत्पर रहते हैं, वे परब्रह्मस्वरूपा श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करें ॥४२३॥

कमलके समान जिन मनहरण लोचनाजूकी कोई वस्तुतः स्तुति कर ही नहीं सकता, क्योंकि वे मन, वाणी, नेत्रोंके लिये अगोचर हैं अर्थात् उनके वास्तविक स्वरूपका न मन, मनन कर सकता है न नेत्र दर्शन ही कर सकते हैं, न वाणी उसका वर्णन ही कर सकती है, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षक बनें ॥४२४॥

मेघके समान जिनका, श्याम श्रीअंग है श्रीप्राणप्यारेजूके कन्धे पर जो अपना एक हस्त-कमल रखे हुई हैं तथा जो रास यानी भगवदानन्दकी मालिकनी हैं, ध्यान करनेके लिये परम आवश्यक कमलके समान कोमल जिनके श्रीचरण हैं, जो लावण्यकी निधि और गुण, रूप, ऐश्वर्य आदि सभीमें अन्तसे परे हैं, वे श्रीस्वामिनीजू मेरी रक्षा करें ॥४२५॥

सीमा क्षमाया रघुनाथकान्ता भाव्या वरेण्या निलयः सुखानाम् ।
श्यामा शुभाङ्गी रुचिरस्मितास्या श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४२६॥
ताम्रारुणाब्जाङ्घ्रितला किशोरी मन्दीकृतानन्तसुधांशुवक्त्रा ।
कारुण्यरत्नैकनिधिः श्रियः श्रीः श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४२७॥
रामाभिरामा श्रुतिवेद्यरूपा सर्वेश्वरी श्रीमिथिलोत्सवा हि ।
विद्युच्चयाङ्गी निमिवंशदीपा श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४२८॥
मन्दस्मिता मङ्गलमङ्गलाब्धिः पुण्यश्रवा सच्चरिताऽम्बुजाक्षी ।
वश्या श्रुतिज्ञा सरलस्वभावा श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४२९॥
प्रवालमुक्तामणिभूषणाढ्या सुचन्द्रिकाशोभितचारुभाला ।
सप्राणनाथा च सखीसहस्रैः श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४३०॥

जो क्षमाकी सीमा और समस्त जीवोंके नाथ श्रीप्राणप्यारेजूकी प्राणवल्लभा, भावना करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखोंका निवासस्थान तथा किशोर अवस्था सम्पन्न, मंगलमय अंग एवं सुन्दर मुस्कान युक्त मुखचन्द्र वाली हैं, वे श्रीस्वामिनीजू कृपा करके मेरी अब रक्षा करें॥४२६॥

जिनके श्रीचरण कमलके तलवे ताम्रके सदृश लाल व कोमल हैं, जो किशोर अवस्थासे युक्त हैं और अपने श्रीमुखारविन्दकी कान्तिसे अनन्त चन्द्र समूहोंको मन्द (फीके) कर रही हैं तथा जो करुणारूपी रत्नकी निधि और शोभाकी भी शोभा हैं, वे श्रीस्वामिनीजू केवल अपनी कृपा से अब मेरी रक्षा करें ॥४२७॥

योगियोंके हृदयमें रमण करने बाले, श्रीप्राणप्यारेजूके हृदयमें जो भली प्रकारसे विहार कर रही हैं, वेदोंके द्वारा ही जिनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जो सर्वेश्वर प्रभुकी प्राणवल्लभा और श्रीमिथिलाजीकी उत्सव स्वरूपा हैं, जिनके श्रीअंग विजली पुञ्जके समान कान्ति से युक्त हैं, जो दीपकके सदृश निमिवंश रूपी भवनकी शोभा बढ़ाने वाली हैं, वे श्रीस्वामिनी (श्रीसाकेतविहारिणी) जू अपनी कृपासे ही मेरी इस समय रक्षा करें ॥४२८॥

जिनकी मन्द-मन्द मुस्कान है, जो मंगलोंके मंगलकी समुद्र हैं, जिनकी लीला व गुणोंका श्रवण अत्यन्त पुण्यमय है, तथा जिनके चरित सब सत् हैं और जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर व विशाल हैं, जो भाव द्वारा वशमें आनेको सरल हैं तथा जो चारो वेदोंको भली प्रकारसे जानती हैं, जिनका स्वभाव अत्यन्त सरल है, वे श्रीस्वामिनी (साकेताधीशप्राणवल्लभा) जू अपनी ही कृपासे मेरी अब रक्षा करें ॥४२९॥

जो मूँगा, मोती, मणियोंके भूषणोंसे युक्त हैं, जिनका मनोहर मस्तक सुन्दर चन्द्रिका से सुशोभित है, अनन्त सखियोंसे युक्त, श्रीप्राणप्यारेजूके सहित वे श्रीस्वामिनीजू अपनी ही निर्हेतुकी कृपासे इस कठिन समयमें मेरी रक्षा करें ॥४३०॥

पञ्चाननाराधितपादपद्मा ब्रह्मांशिनी ब्रह्मपरं त्रिसत्या ।
निरञ्जनाऽऽनन्दमयी निरीहा श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४३१॥
नारायणी भक्तिमदिष्टदात्री सत्यस्वरूपा मृदुसर्वगात्री ।
कृपामृताम्भोधिरनादिराद्या श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४३२॥
स्मितेन्दुवक्त्रा परिशुद्धभावा तुच्छीकृतानन्तरती रसज्ञा ।
दिव्याम्बरा दीनहिता शरण्या श्रीस्वामिनी मां कृपयाऽधुनाऽव्यात् ॥४३३॥
शिरसि धेहि मे हस्तपङ्कजं सरसिजान्वितं शान्तिवर्द्धनम् ।
वरदवल्लभं दीनरञ्जनं करुणयाऽऽश्रितत्राणतत्परम् ॥४३४॥
मृदुवचोऽमृतं सर्वतापहं सुदुरितान्तकं प्रेष्ठजीवनम् ।
मुदमुदश्चयन्त्याशु वीक्ष्य मां सदयचक्षुषा पाययाद्य वै ॥४३५॥

भगवान् शङ्करजी, जिनके श्रीचरण कमलोंकी आराधना करते हैं, जो ब्रह्माकी जननी पर ब्रह्म स्वरूपा, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें सत्य, मायाजनित विकार रूपी कालिमा से रहित, आनन्दमयी, अपने लिये किसी भी प्रकारकी चेष्टा न करने वाली हैं, वे श्रीस्वामिनी-जू ! इस पतित अवस्थामें अपनी स्वाभाविक कृपासे मेरी अब रक्षा करें ॥४३१॥

जो ज्ञानका भवन और भक्तोंको मनोवाञ्छित प्रदान करने वाली हैं, तथा जिनका स्वरूप ब्रह्मसे अभिन्न अर्थात् तत्-स्वरूप ही है, जिनके सभी अंग अत्यन्त कोमल हैं, कृपा रूपी अमृत की जो समुद्र, आदि रहित और सबसे श्रेष्ठ हैं, वे श्रीस्वामिनी (सर्वेश्वर प्राणवल्लभा श्रीसाकेत-विहारिणीजू) अपनी ही साधन अपेक्षा रहित कृपा द्वारा मेरी अब रक्षा करें ॥४३२॥

मन्द मुस्कान युक्त चन्द्रमाके समान जिनका आह्लाद प्रदायक श्रीमुखारविन्द है तथा जिनका भाव अत्यन्त शुद्ध (सर्व विकार रहित) है जो अपने सौन्दर्यसे अनन्त रतियोंको तुच्छ कर रही हैं, तथा सभी शान्त वात्सल्यादि रसोंको जो भली प्रकारसे जानती हैं, जिनके वस्त्र भी दिव्य हैं, जो समस्त साधनाभिमान रहित भक्तोंका विशेष हित करने वाली, एवं मच्छड़से ब्रह्मा पर्यन्तकी रक्षा करनेको समर्थ हैं, वे श्रीस्वामिनीजू अपनी ही स्वभाव सिद्ध कृपासे अब मेरी रक्षा करें ॥४३३॥ हे श्रीकिशोरीजी! जो आपका हस्त-कमल शान्तिकी वृद्धि करने वाला, वरद अर्थात् अक्षय-सुख शान्ति प्रदायक श्रीप्राणप्यारेजीका अत्यन्त प्रिय, दीनजनोंको आनन्द प्रदान करने वाला है, तथा जो आश्रितोंकी रक्षा करनेके लिये सदा तत्पर और कमल पुष्पसे युक्त शीतल, सुखद हैं, उन्हें करुणा पूर्वक मेरे सिर पर रखिये ॥४३४॥

हे श्रीकिशोरीजी! मुझे दयापूर्ण नेत्रोंसे देखकर आनन्दको भी आनन्द युक्त करती हुई, सभी प्रकारके तापों तथा कष्टोंका अन्त करने वाला, श्रीप्राणप्यारेजूका जीवन स्वरूप, अपने वचन-रूपी अमृतका पान, मुझे आप शीघ्र कराइए ॥४३५॥

अपि निजाधरोच्छिष्टमात्मदे ! सपदि दीयतां दीनवत्सले ! ।
निपतिता त्वहं त्वं सुपावनी कृपणतां गतायां कृपां कुरु ॥४३६॥
अयि कदा भवत्याः शुभानने दयितदृक्चकोरेन्दुमोददे ।
प्रियवरोत्तमे सुष्ठुवीटिकां नयनपङ्कजेऽहं समर्पये ॥४३७॥
निजकरेण वै त्वत्पदाम्बुजे भजदभीष्टदे भूमिमङ्गले ।
अजरमापतित्र्यक्षभाविते गजगती कदाऽहं प्रपीडये ॥४३८॥
स्वपिमि निर्भया त्वत्पदाश्रिता चपलबुद्धिरज्ञा निरङ्कुशा ।
अपि कदा त्वया सङ्गता सुखं कृपणवत्सले ! ऽहं रमे चिरम् ॥४३६॥
कमललोचने ! किं वदामि ते मम हृदिस्थिता वेत्सि वै स्वयम् ।
मम गतिस्त्वमेका न चेतरा भ्रमितबुद्धिरस्मीह हे प्रिये ! ॥४४०॥
जय दयानिधे ! कञ्जलोचने ! प्रियदृगुत्सवे ! सुस्मितानने ।
जय जयालियूथौघसेविते ! मयि कृपाकटाक्षं निपातय ॥४४१॥

हे दीन वत्सले ! हे भक्तोंके लिये स्वयं अपने को दे डालने वाली श्रीकिशोरीजी! मैं अवश्य अत्यन्त पतित हूँ, परन्तु आप भी तो पतितों को भली प्रकारसे पवित्र करने वाली हैं, अत एव मुझ दीनके प्रति कृपा करें और अपना अधरोच्छिष्ट प्रसाद मुझे शीघ्र प्रदान कीजिये ॥४३६॥

हे श्रीस्वामिनीजू! आपके जिस मुखारविन्द में कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, जो अत्यन्त ही प्यारा तथा श्रीप्राणप्यारेजूके नेत्र रूपी चकोरोंको चन्द्रसमूहके समान परम सुख प्रदान करने वाला है, उसमें मैं पानका बीरा कब समर्पित करूँगी ॥४३७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जो भजन करने वालोंके सभी प्रकारके मनोरथों को प्रदान करने वाले भूमिके मङ्गल स्वरूप है, ब्रह्मा, बिष्णु, महेश जिनकी भावना करते हैं, जिनकी चाल हाथीके समान मस्त है आपके उन श्रीचरण कमलोंकी सेवा, मैं कब अपने हाथोंसे करूँगी ॥४३८॥

साधनाभिमानशून्य जीवों पर वात्सल्य भाव रखने वाली हे श्रीकिशोरीजी ! मैं मूर्खा, किसीके भी शासनमें न रहने वाली, चञ्चलबुद्धि, आपको प्राप्त होकर आपके श्रीचरणकमलों की आश्रित हुई, कब निर्भय सोऊँगी? और कब आपको प्राप्त होकर अनन्तकाल तक सुखपूर्वक क्रीड़ा करूँगी ॥४३६॥ हे कमल लोचने श्रीकिशोरीजी ! आपसे क्या कहूँ ? क्योंकि आप मेरे हृदयमें स्थित हैं, अतः स्वयं सब जानती हैं। हे श्री प्रियाजू ! मेरी बुद्धि भ्रममें पड़ी है, अतः इस समय मेरी रक्षा करने वाली आपही हैं, दूसरी कोई नहीं ॥४४०॥

हे प्राणप्यारेजीके नेत्रोंको उत्सवके सदृश विशेष सुख प्रदान करने वाली ! हे मन्द मुस्कानसे युक्त रहने वाली! हे दयानिधे! हे कमल लोचने! आपकी जय हो। हे सखियोंके यूथसमूहसे सेवित श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, जय हो, अब अपना कृपा-कटाक्ष मेरी ओर फेंकिये ॥४४१॥

समर्पितं फलं भूरिभूरिशः कमललोचने ! दुर्विधेर्वशात् ।
सुमुखि ! ते विसृष्टाङ्घ्रिसेवया मम महापराधं क्षमस्व तम् ॥४४२॥
कुरु कृपां कृपापूर्णलोचने ! शरणमाशु दास्या भवाधुना ।
चरणयोर्भवत्याः सहस्रशः परमभक्तितो मे नमस्कृतिः ॥४४३॥
नमोऽस्तु तस्यै मम कोटिकृत्वो गोपायितुं दुःखसमुद्रपातात् ।
चक्रे प्रयत्नं बहुकृत्व आर्या या प्रज्ञया नैकविधं स्वशक्त्या ॥४४४॥
तथाऽपि कारुण्यजुषाऽपराधः संमर्षणीयः श्रुतिरूपयाऽसौ ।
विधिर्बलीयान् न हि मेऽस्ति दोषो यः प्राक्षिपन्मां प्रसभं वनेऽस्मिन् ॥४४५॥
कुतो गता हन्त कृपास्वरूपा सखीप्रधाना मिथिलेशजायाः ।
परागतिर्मे हि यथाऽद्य दृष्टा व्यतीतशोका सुखिनी भवेयम् ॥४४६॥
हे प्राणनाथाम्बुजपत्रनेत्र ! दयानिधे ! कोशलराजसूनो ! ।
कृपास्वरूपा क्व गता सखी वां तयोरुकार्यं बत विद्यते मे ॥४४७॥
तामेव चेहाशु दिदृक्षुरस्मि तया बिना मे नहि जातु शर्म ।
प्रसीद दास्यां प्रणतार्त्तिहारिन् सानुग्रहं सङ्गमयामुया माम् ॥४४८॥

हे सुन्दर मुख वाली कमललोचना श्रीकिशोरीजी ! दुर्भाग्य वश मैंने जो आपके श्रीचरण-कमलोंकी सेवा छोड़ी उसका फल मुझे भर पेट ब्याज सहित मिल चुका है, इसलिये मेरे उस महान् अपराधको आप क्षमा कीजिये ॥४४२॥

हे कृपासे पूर्ण नेत्रवाली श्रीकिशोरीजो ! मेरे ऊपर कृपा करें और मुझ दासीकी अब शीघ्र रक्षा कीजिये, एतदर्थ आपके श्रीचरणकमलोंमें परम भक्ति पूर्वक मैं हजारोबार प्रणाम करती हूँ ॥४४३॥ जिन्होंने दुःख सागरमें गिरनेसे मुझे बचानेके लिये अपनी शक्ति व बुद्धिके अनुसार अनेकों उपाय किये, उन श्रेष्ठ स्वभाव सम्पन्ना श्रीश्रुतिरूपाजी को मेरा कोटिशः नमस्कार है ॥४४४॥ वे मेरे आज्ञा न माननेके उस अपराधको श्रीश्रुतिरूपाजी भी अपने करुणापूर्ण स्वभावसे क्षमा करें, क्योंकि भाग्य ही बलवान् माना गया है, अतः मेरा भी कोई दोष नही था। देखो मेरे उस दुर्भाग्यने ही तो, मुझे बलपूर्वक इस संसार रूपी वनमें पटक दिया है ॥४४५॥

हाय जो मेरी परम रक्षा करनेवाली हैं, जिनकी दृष्टि पड़ते ही मेरा सब शोक भाग जावेगा और मैं पूर्ण सुखी हो जाऊँगी, वे श्रीमिथिलेशदुलारीजूकी मुख्यसखी श्रीकृपास्वरूपाजी कहाँ चली गयीं ॥४४६॥ हे कमलदल लोचन ! हे प्राणनाथ! हे दयानिधे! हे कोशलेन्द्र कुमारजू! आप श्रीयुगलसरकारकी श्रीकृपास्वरूपा सखीजी कहाँ चली गयीं? उनसे मेरा बहुत बड़ा आवश्यक कार्य है ॥४४७॥ हे भक्तोंके दुःखको हरण करने वाले ! हे नाथ ! दासी पर प्रसन्न होइये और कृपा पूर्वक उन "श्रीकृपास्वरूपा" सखीजीसे मेरी भेंट करा दीजिए ॥४४८॥

प्रियालि ! यूथेश्वरि ! हे कृपालो ! हे शोभने ! चन्द्रकले ! बहुज्ञे ! ।
कृपासखीं सङ्गमयाऽधुना मे प्रियां वयस्यां कृपयाऽऽत्मनो वै ॥४४६॥
हे चारुशीले ! सदये ! शरण्ये ! हे लक्ष्मणे ! हे विमलोर्मिले च ।
हे पद्मगन्धे ! रतिवर्द्धिनीशे ! क्षेमे ! च हेमे ! सुभगे ! मनोज्ञे ! ॥४५०॥
हेऽशेषसख्यो मम पूज्यपादा ! नमोऽस्तु वः कोटिसहस्रकृत्वः ।
कृपास्वरूपां वदताशु मह्यं यथातथं दुर्लभदर्शनां ताम् ॥४५१॥
एवं तु सम्प्रार्थ्य सखीः समस्ताः प्राणप्रियौ दीनगिरा स्वशक्त्या ।
वक्तुं न किञ्चिद्वचनं च भूयः शशाक सा वै विरहाग्नितापात् ॥४५२॥

हे श्रीप्रियाजूकी मुख्य सहेलीजू ! हे समस्त यूथोंकी स्वामिनीजू ! हे कृपावतीजू ! हे शोभनेजू हे अनन्त ज्ञान सम्पन्नेजू ! इस समय आप लोग कृपा करके अपनी प्यारी सखी श्रीकृपास्वरूपाजू से मेरी भेंट करा दीजिये ॥४४६॥

हे दया युक्ते, शरणमें आये हुये की रक्षा करनेकी सामर्थ्यवाली श्रीचारुशीलाजू! हेलक्ष्मणाजू! हे श्रीविमलाजू, हे उर्मिलाजू ! हे श्रीपद्मगन्धाजू! हे श्रीरतिवर्द्धिनीजू! हे ईशाजू ! हे श्रीक्षेमाजू ! हे श्रीहेमाजू ! हे श्रीसुभगाजू ! हे श्रीमनोज्ञाजू ! ॥४५०॥

हे मेरे पूजने योग्य श्रीचरण कमलवाली समस्त सखियो ! आप लोगोंको मैं करोड़ों हजार वार नमस्कार करती हूँ, जिस प्रकार हो, आप लोग हमें दुर्लभ दर्शना श्रीकृपास्वरूपा सखीजीका हमें पता बतला दीजिये ॥४५१॥

भगवान् शङ्करजी बोले:—हे पार्वतीजी ! इस प्रकार जीवा सखी सभी सखियोंसे तथा अपने प्राणप्यारे श्रीयुगल सरकारसे अपनी शक्तिके अनुसार, दीन वाणीसे प्रार्थना करके, विरह रूपी अग्निके विशेष तापके कारण, पुनः वह कुछ भी न बोल सकी ॥४५२॥

इति द्वविंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

कातर हृदया श्रीकिशोरीजीके प्रति सरकारकी आज्ञासे श्रुतिरूपा
सखी द्वारा जीवा सखीका पूर्ण वृत्तान्त निवेदन ।

श्रीशिव उवाच ।

निशम्य तत्प्रेमजलाप्लुतेक्षणौ प्रियाप्रियौ सादरमीप्सितार्थदौ ।
वियोगतप्तार्त्तविलापसङ्ग्रहं बभूवतुर्विस्मितमानसौ क्षणम् ॥१॥
प्रियं तदाऽपृच्छदमेयसत्कृपा समातुरा श्रीः करुणाप्लुताशया ।
श्रीमैथिली दाशरथिं सखीगणे शरत्सुधांशुप्रतिमप्रियानना ॥२॥

श्रीसीतोवाच ।

हे प्रेष्ठ ! कस्या नु वियोगगाथा? कुतस्त्वियं हन्त समागता च ? ।
तद्वेदितुं क्षिप्रतया समीहे तां द्रष्टुकामा व्यथिताशयाऽस्मि ॥३॥
यावन्न पश्यामि निजां वयस्यां दुःखाभिभूतां शरदिन्दु वक्त्राम् ।
तावत्क्षणार्द्धं मम तद्वियोगात् कल्पायते दुःखतरं दयार्द्र ! ॥४॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! वियोगसे तपी हुई जीवा सखीके उस आर्तविलाप संग्रह को बड़े आदर पूर्वक श्रवण करके, मनोवाञ्छित प्रदान करने वाले प्रियाप्रियतम श्रीसीतारामजी महाराजके कमलके समान विशाल मनहरण नेत्रोंमें, प्रेम जल भर आया और क्षणमात्रके लिये उन दोनों सरकारका मन आश्चर्य-चकित सा हो गया ॥१॥

जिनकी कृपाका थाह (अन्त) नहीं लगाया जा सकता, जिनका श्रीमुखारविन्द शरद ऋतुके पूर्ण चन्द्रके समान सुन्दर, आह्लाद वर्द्धक तथा प्रकाशमान है, उन श्रीमिथिलेश-नन्दिनीजूका हृदय करुणा रससे डूब गया, अतः वे घबराकर सखियों के बीचमें दशरथनन्दन श्रीप्राणप्यारेजू से पूछने लगी ॥२॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू! यह किसके वियोगकी गाथा है ? और कहाँसे आई है ? इसे मैं शीघ्र जानना चाहती हूँ, मेरा हृदय उसके देखनेकी इच्छासे ब्याकुल हो रहा है ॥३॥

हे दयासे द्रवित श्रीप्राणप्यारेजू ! जब तक दुःखोंसे अधीर हुई अपनी उस शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान मुख वाली सखीका मैं दर्शन नहीं करलूंगी, तब तक उसके वियोगमें आधा क्षणका समय भी मुझे कल्पके समान अत्यन्त दुःखप्रद प्रतीत हो रहा है ॥४॥

श्रीशिव उवाच ।

कान्तां समाश्वास्य रघुप्रवीरः पप्रच्छ सर्वाः कमलायताक्षीः ।
कया प्रयुक्तेयमशातगाथा ? कुतः प्रविष्टा श्रुतिमार्गमाल्यः ? ॥५॥
ब्रूयाद्रहस्यं परिवेत्ति येदं ममाज्ञयोत्थाय चिरान्न विज्ञा ।
जिज्ञासया शोकसमुद्रमग्ना प्राणप्रिया यन्मृगशावकाक्षी ॥६॥
तासां समुत्थाय निबद्धपाणिः श्रुतिस्वरूपाऽऽलिवरा तदानीम् ।
प्रणम्य पादौ प्रिययोर्मनोज्ञौ प्रचक्रमे वक्तुमुदारबुद्धिः ॥७॥

श्रीश्रुतिरूपोवाच ।

नाज्ञातमम्भोरुहपत्रनेत्र ! किञ्चिद्युवाभ्यां खलु विद्यतेऽत्र ।
तथापि वक्ष्ये भवतो निदेशाज्जानामि यद् वां चरणैकदासी ॥८॥
सकाशतो वां पुलिनात्सरय्वा विहाय सेवां भवतोः प्रयाता ।
जीवस्वरूपा विरजाप्रदेशं दिदृक्षया मन्दमतिः कुभाग्यात् ॥९॥
निवार्यमाणाऽपि हठात्सखी सा यदा प्रतस्थे विरजां दिदृक्षुः ।
कृपास्वरूपाऽऽलिवरा तदानीमुवाच मां वाक्यमिदं महार्थम् ॥१०॥

भगवान् शङ्करजी बोले ! हे पार्वती ! इस प्रकार श्रीकिशोरीजीके व्याकुल हो जानेपर, सरकार उन्हें आश्वासन देकर अपनी कमल-लोचना सभी सखियोंसे बोले:—हे समस्त सखियो! इस दुःख पूर्णगाथाका प्रयोग किस सखीने किया है ? और कहाँसे यह दुःखमयी गाथा श्रवण मार्गमें प्रविष्ट हुई अर्थात् सुनाई पड़ी है?॥५॥ जो विशिष्ट ज्ञान सम्पन्ना सखी, इस रहस्यको भली प्रकार जानती हो, मेरी आज्ञासे उठकर वह तत्क्षण निवेदन करे, क्योंकि इस रहस्यको जाननेकी इच्छासे मृगशावक लोचना श्रीप्रियाजी, शोक समुद्रमें डूब रही है ॥६॥

भगवान् शङ्करजी बोले हे पार्वती ! श्रीप्राणप्रियतमजूके उस आदेशको सुनकर तथा श्रीकिशोरीजी की उस भक्त बिरह कातर दशाको देखकर, सखियोंमें श्रेष्ठ, श्रीश्रुतिरूपा सखी उठी और दोनों सरकारके मनहरण, श्रीचरण-कमलोंको नमस्कार करके, हाथ जोड़े हुए उसने ज्ञात रहस्य कहना प्रारम्भ किया ॥७॥ हे कमलदल-लोचन प्यारे ! यद्यपि आप दोनों सरकारसे कुछ छिपाहुआ नहीं है, फिर भी मैं आप दोनों सरकारके श्रीचरण कमलोंकी दासी होनेके कारण आपकी आज्ञानुसार इस रहस्य के विषयमें जो मैं जानती हूँ, आपसे निवेदन कर रही हूँ ॥८॥ हे प्यारे ! श्रीसरयूजीके किनारे से ही आप दोनों सरकारकी सेवा छोड़कर मन्दमति, जीवरूपा सखी दुर्भाग्य वश, श्रीविरजाजीके किनारेका प्रदेश देखनेकी इच्छासे वहाँ चली गयी थी ॥९॥ उसे विरजाजीके किनारे जानेसे बहुत कुछ रोका गया, परन्तु जब उसने हठ करके प्रस्थान कर ही दिया, तब सखियोंमें प्रधान श्रीकृपारूपाजी मुझसे बोलीं ॥१०॥

श्रीकृपारूपोवाच ।

इयं हि दुर्भाग्यविनष्टबुद्धिर्नैवात्मनो वेत्ति हिताहिते च ।
विसृज्य सेवां द्रुहिणाद्यलभ्यां दिदृक्षयाऽऽस्तेहठसंपरीता ॥११॥
अतस्तु भद्रे ! क्रियतां प्रयाणं सहानयैकाकृतितस्त्वयाऽपि ।
यत्नैरनेकैरवबोधनीया संरक्षणीया हि तमःप्रवेशात् ॥१२॥
यथा तथा विज्ञतया विहारिणोरुपस्थितेयं पुनरेव कार्या ।
आनीय चैवाभिमुखे भवतया निदेशमेतं शृणु मे प्रयाहि ॥१३॥
तयेत्थमुक्ता विमनायिताऽहं दृष्ट्वाऽनुरोधं सुभृशं च तस्याः ।
आज्ञावशाच्चान्वगमं हि जीवां पराङ्मुखीं स्वामिनि ! दीनबन्धो ! ॥१४॥
सा जीवरूपोपवनं निरीक्ष्य जहर्ष मन्दा विरजातटस्थम् ।
उपेक्षमाणा विचचार मां सा सच्चित्सुखानन्दमयं मनोज्ञम् ॥१५॥
अभ्येत्य कूलं विरजोत्तरं सा पुनः स्थिता हर्षयुता मृगाक्षी ।
अम्भस्तरङ्गानवलोकयन्ती यामीतटस्थोपवनं ददर्श ॥१६॥

हे श्रुतिरूपे ! इस जीवा सखीकी बुद्धिको, इसके दुर्भाग्यने नष्ट कर दिया है, अत एव वह अपना हित, अहित कुछ भी नहीं समझती एतदर्थ ब्रह्मादि देवोंके लिये प्राप्त न होने योग्य, श्रीयुगल सरकारकी सेवाको छोड़कर श्रीविरजाजीका तट देखनेके लिये ऐसा हठकर रही है ॥११॥

हे कल्याणस्वरूपे ! तुम एक रूपसे इसके साथही साथ प्रस्थान करो और अनेक उपायोंसे इसे कर्त्तव्यका ज्ञान कराओ तथा अज्ञान रूपी अन्धकार मय भवाटवीमें जानेसे इसकी रक्षाकरो अर्थात् जिस ससार रूपी वनमें पहूँचते हो अपने स्वरूपका ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसमें जानेसे इसे सब प्रकार बचाओ ॥१२॥

हे श्रुति रूपे ! मेरी आज्ञाका सुनो—इस जीवा सखीके साथ जाओ और अपनी चतुराईसे जैसे बनें श्रीयुगल सरकारके सम्मुख लाकर पुनः इसे उनकी सेवामें उपस्थित करो ॥१३॥

हे श्रीस्वामिनीजू! हे श्रीदीनबन्धुजू! जीवा सखीका अत्यन्त हठ देखकर, मैं भी उससे चिढ़ गयी थी, परन्तु श्रीकृपारूपा सखीजीकी आज्ञासे मन मारकर, आप श्रीयुगलसरकारसे विमुख हुई उस जीवा सखीके, पीछे-पीछे मैं चल पड़ी ॥१४॥

हे श्रीयुगलसरकारजू ! मैं उसके पीछे पीछे चल रही थी, परन्तु वह मेरी ओर देखती भी न थी। जब वह श्रीविरजाजीके किनारे पहुँची, तो किनारेके सत्, चित् सुखानन्द मय, मनोहर, उपवनको देखकर बड़ी प्रसन्न हो, उसमें विचरने लगी ॥१५॥

मृगके समान चञ्चल नेत्रवाली जीवा सखी, श्रीविरजाजीके उत्तरी किनारे पर खड़ी होकर, जल तरङ्गोंको बड़े हर्ष पूर्वक देखती हुई, दक्षिणी किनारेवाले उपवनकी ओर देखा ॥१६॥

तद्द्रष्टुकामा प्रबभूव सद्यः पुनः प्रवेष्टुं स्वमनश्चकार ।
तदीयमुद्योगममुं निरीक्ष्य मया यदुक्तं शृणु तद्वचो मे ॥१७॥
हे जीवरूपे ! किमिदं त्वयेप्सितं करोषि किं कुत्र समागताऽधुना ।
प्राणप्रियाप्राणपरप्रियौ कथं विस्मृत्य हन्ताद्य सुखेन वर्तसे ॥१८॥
भाव्यं हि किं ते नहि बुध्यते मया दृष्ट्वा दशां ते चकितं हि मे मनः ।
निषिद्धचमानाऽपि मया सहस्रधा निवर्तसे नैव यतो दुराग्रहात् ॥१९॥
प्रवेष्टुकामाऽसि च यत्र भूयस्तमोमयीं विद्धि भवाटवीं ताम् ।
प्रविश्य यां नो सुखमेति कश्चिन्न चाशु वै निष्क्रमणं हि यस्याः ॥२०॥
इत्थं मया वै परिबोध्यमाना सा मामनादृत्य च सानुरोधम् ।
उल्लङ्घ्य तूर्णं विरजां विवेश भवाटवीं सूपवनं विचार्य ॥२१॥

तत्क्षण श्रीविरजाजीके उस दक्षिणी किनारेका उपवन देखनेकी, उसके हृदयमें प्रबल इच्छा उदय हो गयी, अतः वह उसमें प्रवेश करनेके लिये मानसिक सङ्कल्प करने लगी । हे मन हरण सरकार! यह देखकर, मैंने उससे जो कुछ कहा उसे आप श्रवण कीजिए ॥१७॥

मैंने कहा:—हे जीव रूपे! आपने मनमें यह क्या विचारा है ? और कर क्या रही हैं ? तथा इस समय आप आई कहाँ हैं ? बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि, प्राणोंके समान अत्यन्त प्यारे श्रीयुगल सरकारको भुलाकर आज आप सुखी कैसे प्रतीत हो रही हैं ? ॥१८॥

हे जीव रूपे! मैं हजारों प्रकारसे मनाकर चुकी, परन्तु तुम अपने खोटे हठसे निवृत्त नहीं हो रही हो, अतएव मेरी समझमें नहीं आता कि न जाने तुम्हारे भाग्यमें क्या(अचिन्तनीय महान् दुःख) होनहार है? हाय तेरी इस विपरीत अवस्थाको देखकर मेरे मनको बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥१९॥

हे जीव रूपे ! अब आप पुनः जिसमें प्रवेश करने की इच्छा कर रही हैं, वह इस किनारे जैसा उपवन नहीं है, उसे तुम अन्धकार (अज्ञान) मय भवाटवी (संसार रूपी वन) जानो, वह भवाटवी कैसी है? कि-जिसमें प्रवेश करके कोई भी सुखी नहीं होता । यदि कहोकि सुख न पाने पर हम वहाँ से लौट आयेंगी, अतः वहाँ जानेमें क्या हानि है ? तो यह तुम्हारा विचार कल्याणकारी न होगा, क्योंकि उस भवाटवीमें पहुँच जाने पर, उससे शीघ्र निकलना नहीं होता ऐसा निश्चय है । अत एव श्रीबिरजाजीके दक्षिणी तटको, जिसे आप अभी उपवन समझ रही हैं, उसे भवाटवी (संसार रूपी वन) समझ करके वहाँ जानेका सङ्कल्प छोड़ श्रीयुगल सरकार की सेवामें लौट चलें ॥२०॥ हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इस प्रकार मेरे समझाते हुये भी, वह जीवा सखी मेरा निरादर करके, हठ पूर्वक तत्क्षण विरजाजीको पार करके उनके, दक्षिणी किनारे पर स्थित भवाटवीको, श्रीविरजाजीके उत्तरी किनारे वाले अप्राकृत (दिव्य) उपवनसे भी सुन्दर विचार करके, उसमें प्रवेश कर गयी ॥२१॥

तद्वच्चाघ्रसिंहकिरिभल्लतरक्षुखड्गजम्बूकशल्यवृककासरनागसर्पैः ।
संसेवितं च परितः प्रसमीक्ष्य बाला त्यक्त्वाऽऽत्महर्षमधिकं भयमाससाद ॥२२॥
भयावहं तत्प्रसमीक्ष्य काननं ततो विनिर्गन्तुमियेष तत्क्षणम् ।
तिस्रो मया पद्धतयो विनिर्मितास्तथापि रेमे वन एव तत्र सा ॥२३॥
मोघं निरीक्ष्य निजकर्म मया तदानीं शाखाशतानि विहितानि पुनश्च तेषाम् ।
नाङ्गीचकार दुरदृष्टतया विमूढा सा पूर्णचन्द्रमुखि ! नैकमपि भ्रमन्ती ॥२४॥
अग्रे पुनः समधिगम्य विमूढकृत्या सिंहादिजन्तुपरिजुष्टगुहासमूहम् ।
दुष्पारमेव समवेक्ष्य भयातिखिन्ना शैलत्रयं भयदमुच्चतरं विशालम् ॥२५॥
गर्त्तं विबुध्य निपपात भियान्धकूपे त्रातारमेव कमपीह न वीक्षमाणा ।
दृष्ट्वाऽध ऊर्ध्ववदनाजगरं च तस्मिन्नाशां जहौ कमललोचन! जीवितस्य ॥२६॥

हे प्यारे! जब वह श्रीविरजाजीके दक्षिणी किनारे पर पहुँची जिसकी वह उत्तरी किनारेसे श्रेष्ठ उपवनका अनुमान कर रही थी, उसे ब्याघ्र, सिंह, शूकर, भालू, चीता, गेंडा, सियार, स्याही, भेड़िया, भैंसा, हाथी और सर्पों द्वारा सब ओर से सेवित देखकर, उस दक्षिणी किनारे पर आने का जो हृदयमें हर्ष था, उसे परित्याग कर अत्यन्त भय को प्राप्त हुई ॥२२॥

हे प्यारे! जब उसने उस बन को भयंकर देखा, तो उसी क्षण वह वहाँ से निकलना चाहा ऐसा अवसर देखकर मैंने तीन सुन्दर, सुगम राज मार्ग बना कर उसे दिखला दिये, परन्तु वह जीवा सखी उन तीनों को छोड़कर, अन्धकार मय उस बनमें भटकने लगी ॥२३॥

हे पूर्णचन्द्रमुखी श्रीस्वामिनीजू ! जब मैंने अपना वह कार्य भी निष्फल देखा, तब उन तीनों मार्गों में प्रत्येक की सैकड़ों सुन्दर शाखायें बना डालीं, जिससे वह, इनमें से यदि किसी भी एक पर चलने लगे तो, उसीके द्वारा मैं जीवा सखीको राज मार्ग पर लाकर भवाटवीसे पार करके सेवा में पहुँचा दूँ, परन्तु दुर्भाग्यने मति हर ली, अत एव उसने उन मार्गों में से किसी एक को भी न अपना कर उसी वनमें भटकने लगी ॥२४॥

आगे बढ़ी तो सिंह आदि हिंसक जीवोंसे युक्त बहुत सी गुफायें तथा भय दायक बड़े बड़े अत्यन्त ऊँचे तीन पहाड़ मिले, जिन्हें पार करना अतिशय कठिन देखकर जब उसे अपनी रक्षाके लिये कोईभी मार्ग समझमें नहीं आया तब जीवा सखी भयसे अति खिन्न हो गयी ॥२५॥

हे कमललोचन! श्रीप्राणप्यारेजू! जब उसने देखा कि मेरी रक्षा करने वाला यहाँ कोई भी नहीं है, तो वह घबराकर उन सिंह आदि हिंसक जीवों की दृष्टिसे अपनेको बचानेके लिये पासमें स्थित अँधेरे कुयें को गड्ढा समझकर उसमें कूद पड़ी । किन्तु जब उस अँधेरे कुयेंके नीचे, ऊपर को मुख किये अजगर सर्पको बैठे देखा, तो उसने अपने जीवन की आशा छोड़दी ॥२६॥

पाणावावाप्य तृणपुञ्जमसौ च दिष्ट्या मृत्योर्भयं हृदयतस्तत उज्जहार ।
आलोक्य तर्हि निलयं मधुमक्षिकानां क्षुत्संयुता करमदाद् ग्रहणाय तस्मिन् ॥२७॥
सर्वा ददंशुरभितः किल जातरोषाः पीडामवाप परमां न च मृत्युमेकम् ।
सञ्ज्ञामवाप्य च पुनः करजाग्रलग्नं किञ्चिल्लिलेह मधु शर्म च तेन साऽऽच्र्छत् ॥२८॥
लब्धा मया परमदारुणवेदनाऽपि कामं तथापि मधु मिष्टतमं विभाति ।
इत्थं विचार्य पुनरेव ददौ स्वपाणिं प्राक्कष्टमेत्य मधुशातमवाप तावत् ॥२९॥
तच्चातितुच्छसुखलब्धिसतृष्णचित्ता सेहेऽल्पकष्टमधुना न हि वारिजाक्ष! ।
लब्धा न योनिरुत भावनया तया का स्वल्पावकाश इह पादमुपेक्ष्य गन्त्र्या ॥३०॥

हे श्रीयुगल सरकार ! संयोग वश उस अँधेरे कुयेंमें कुछ तृण पुञ्ज जीवा सखीके हाथ लग गये, जिनकी आड़ रहनेके कारण वह कूप प्रतीत नहीं होता था उनकी प्राप्तिसे उसने तत्काल मृत्युका भय, अपने हृदयसे निकालही दिया, क्योंकि उसे यह विश्वास हो गया, कि जब तक इस तृण समूह को मैं हाथमें पकड़े रहूंगी तब तक न नीचे गिरूंगी और न मुझे अजगर निगल ही सकेगा । मृत्युका भय हटतेही उसे क्षुधा (भूख) ने आसताया, अतः उसने कुयेंमें मधुमक्खियोंका घर (छत्ता) देखकर अपनी क्षुधा निवृत्ति के लिये, एक हाथ, उसमें दे दिया ॥२७॥ हाथ देतेही छत्तामें बैठी हुई वे सभी मधुमक्खियाँ क्रुद्ध होकर सब ओरसे जीवा सखीको काटने लगीं । जिससे उसकी एक मृत्युही नहीं हुई, परन्तु जो पीड़ा हुई, वह मृत्युसे किञ्चित्भी कम न थी । कुछ देरके बाद पीड़ा कम हो जाने पर जब उसे होश आया, तब उसने अपने नखमें लगे हुए किञ्चित् मधुको चाटा, जिसकी मिठासका आस्वादन कर उसे कुछ सुख प्राप्त हुआ ॥२८॥

हे श्रीयुगलसरकारजी ! जीवा सखी, नखके अग्र भागमें लगे हुये उस मधुको जिह्वासे चाट कर विचारने लगी–अहो ! स्वादुके लोभसे मुझे कष्टतो बहुतही उठाना पड़ा, परन्तु था मीठा । ऐसा विचार कर मिठासके लोभमें पड़कर उसने अपना हाथ पुनः छत्तामें दिया । फलस्वरूप मधुमक्खियोंने भी फिर अपने छत्तेसे निकलकर उसे खूब काटा । जीवा सखी तृणोंको एक हाथसे पकड़े हुई मारे छटपटाहटके नाँच रही थी, परन्तु अजगरके भयसे उन तृणोंका अवलम्ब नहीं छोड़ा । कुछ समयके बाद जब कष्ट कम हुआ, तो उसने अपने नखोंके अग्रभागमें लगे हुये उस किञ्चित् मधुको पुनः चाटा और मिठासको प्राप्त किया ॥२९॥

हे कमल-नयन श्रीप्राणप्यारेजू ! इस प्रकारसे उस मूर्खा जीवा सखीने मधु-मिठासके अत्यन्त तुच्छ सुखकी प्राप्तिकी तृष्णासे थोड़ा नहीं अपितु अवर्णनीय अतिशय कष्टको सहन किया है और इतनेही थोड़े समयमें उसने अपनी तुच्छ वासनानुसार कौनसी योनि नहीं प्राप्तकी अर्थात् चौरासी लाख योनियोंका भोग भी भोग लिया है ॥३०॥

क्वासं क्व काऽस्मि किमिहास्ति मया हि कार्यं बिज्ञातमेतदवलोक्य न चापि शक्ताम् ।
सर्वेश्वरौ ! निखिलदेहभृतां शरण्यौ ! तस्यै विवेकममलं प्रददौ कृपाली: ।।३१।।
तस्मात्स्मृतिं ! व्यपगतां पुनराप्य जीवा संसारदु:खशिखिनो: समवाप्तये वाम् ।
संस्तौति पद्मनयने ! सदये ! विरज्य ! ह्य् द्धारमाप्तुमधुनाऽर्हति सा युवाभ्याम् ।।३२।।
ज्ञातं मया यदिह तत्सकलं किलोक्त संपृष्टया कमललोचन ! आर्त्तबन्धो ! ।
स्वीकार्य एष विनयो मम चोचितश्चेज्जीवैतु पादसरसीरुहदर्शनं वाम् ।।३३।।

श्रीशिवउवाच ।

इत्थं निशम्य वचनं सकृपं मनोज्ञं पुत्री जगाद मिथिलाधिपपुङ्गवस्य ।
संवीतशोकहृदया श्रुतिमाप्रशस्य जीवाहिते सुनिरतां स्वकृपां निशम्य ।।३४।।

श्रीशिव उवाच ।

हे! आलि! यहि कृपया मम चास्ति दृष्टा जीवा सखी त्वरितमेव तमो निरस्य ।
एत्येव नात्र भविता किल तद्विलम्बः सर्वं भविष्यति भवद्विनयानुसारम् ।।३५।।

सभी चर-अचर प्राणियोंपर शासन करने वाले तथा समस्त प्राणियोंकी रक्षा करने को समर्थ, हे श्रीयुगलसरकारजू ! जब श्री कृपा रूपा सखीजीने देखा, कि अब जीवा सखीमें, "मैं पहले कहाँ थी ? अब कहाँ हूँ ? तब कौन थी ? अब कौन हूँ ? क्या मुझे करना आवश्यक है ?" इतना भी जाननेकी शक्ति नहीं रह गयी है, तब उसने उसे दिव्य ज्ञान प्रदान किया ।।३१।।

उस दिव्य ज्ञानकी प्राप्तिसे उसे, जो सुख भूल गया था, सब स्मरण हो आया अतः प्राप्त लौकिक सुखको दु:खमय समझकर उनसे अपनी आसक्ति हटाकर, संसार (जन्म-मरण)के समस्त दु:खोंको भस्मसात् करने वाले आप दोनों सरकारकी प्राप्तिके लिये स्तुति कर रही है । हे दया युक्ते । हे कमललोचने श्रीकिशोरीजू ! आप दोनों सरकारके द्वारा, अब उसका उद्धारही होना उचित है ।।३२।। हे कमललोचने श्रीकिशोरीजो ! हे आर्तबन्धो ! श्रीप्राणप्यारेजू ! जो कुछ मुझे इस अदृश्य वाणीका रहस्य ज्ञात था, प्रश्नानुसार सब निवेदन कर दिया, अब जीवा सखी, आप श्रीयुगल सरकारके श्रीचरण कमलोंको प्राप्त होवे । यदि मेरी यह विनय उचित हो, तो इसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।।३३।।

भगवान शंकरजी बोले–हे पार्वति ! इस प्रकार श्रीश्रुतिरूपाजीके कृपा युक्त मन-मोहक वचनोंको सुनकर तथा अपनी कृपा सखीको जीवा सखीके हित साधनमें तत्पर जानकर भक्त-चिन्ताजन्य शोकसे रहित हो श्रीमिथिलाधिपतिजूकी ललीजूने श्रीश्रुतिरूपाजीकी प्रशंसाकी और उनसे बोलीं ।।३४।।

अरी सखी ! जब मेरी कृपा रूपा सखीकी दृष्टि उसपर हो चुकी है, तो वह शीघ्रही संसार, रूपी अन्धकार वनको परित्याग कर, मेरे पास आ रही है, उसे आनेमें अब बिलम्ब नहीं होगा, जैसी तुम उसके निमित्त प्रार्थना कर रही हो, वैसा ही होगा ।।३५।।

इत्थं तस्यां वदन्त्यामभयदवचनं भावसन्तोषितायां
कूपान्निःसारिता सा श्रुतिकृतसुपथा जीवरूपा तदानीम् ।
आनन्दाम्भोधिमग्ना त्वरितममलधी रत्नसिंहासने वै
प्राणेशौ प्राणतुल्यौ द्विजपतिवदनौ प्राप्य दृष्टा नमन्ती ॥३६॥

भगवान शिवजी बोलेः—हे पार्वति ! जीवा सखीके भावसे सन्तुष्टा श्रीकिशोरीजीके, इस प्रकार अभय वचन कहते ही, उधर श्रीकृपास्वरूपा सखीजीने, जीवासखीका हाथ पकड़ कर, उसे उस तृणाच्छादित कुएँ से निकालकरके श्रुतिरूपा सखीके बनाये हुये प्रधान तीन मार्गोंमेंसे एक भक्तिमार्ग पर चलनेका आदेश कर दिया, अस्तु वह उस मार्गसे श्रीरत्नसिंहासन भवनमें पूर्ण चन्द्रके समान परम प्रकाशमय, आह्लादवर्द्धक श्रीमुखारविन्दवाले, प्राणोंके तुल्य प्रिय, अपने प्राणनाथ श्रीयुगलसरकार (श्रीसीतारामजी) को पाकर हर्षित हो आनन्दसागर में डूब गयी किन्तु सखियोंको केवल वह श्रीयुगलचरणकमलोंको प्रणाम करती हुई ही दिखाई पड़ी, पर वह किस क्षण, किस ओरसे, किस प्रकार वहाँ पहुँची, यह किसीको ज्ञात न हो सका ॥३६॥

इति त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

सान्निध्य सुख प्राप्ता जीवासखी का भावपुष्पाञ्जलि समर्पण

श्रीशिव उवाच ।

जीवस्वरूपाऽथ कृपाप्रसादाच्छ्रीरत्नसिंहासनमुख्यगेहे ।
श्रीमैथिलीराघवयोः सकाशं गत्वा बभूवाशु निरस्तशोका ॥१॥
विलोक्य कामं नयनाभिरामौ चकार भक्त्या प्रणतिं पदाब्जे ।
नेत्राम्बुभिर्युग्मसरोजपादौ प्रक्षाल्य गाढं हृदये दधार ॥२॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीकृपास्वरूपासखीजीकी दयासे वह जीवासखी श्रीरत्नसिंहासन नामके भवनमें श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीरघुनन्दनजूकी समीपता पुनः प्राप्त करके शोक रहित हो गयी ॥१॥ नेत्रोंको परम सुन्दर लगनेवाले उन श्रीयुगलसरकारका इच्छानुसार दर्शन करके, जीवा सखीने बड़े प्रेम पूर्वक उनके श्रीचरणकमलोंमें, प्रणाम किया, पुनः अपने आँसुओंसे उन्हें धोकर और दबाकर हृदय पर रख लिया ॥२॥

सा भावपुष्पाञ्जलिमुरुभक्त्या प्राणप्रियाप्राणपरप्रियाभ्याम् ।
समर्पयामास यथाऽत्र जीवा मत्तः शृणु त्वं यतमानसा हि ॥३॥
सौभाग्यदा च शुभदा सुगतिप्रदात्री सौशील्यरत्ननिचया नृपतेः किशोरी ।
कामप्रियानियुतकोटिविमोहनाङ्गी श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥४॥
रासप्रिया च रसिका रसिकेन्द्रकान्ता रासेश्वरी रसनिधी रसिकैरुपास्या ।
वाणीरमाकुधरजादिभिरर्च्चिताङ्घ्रिः श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥५॥
आनन्दवर्षिजलजातदलायताक्षी शोभानिधिर्गुणनिधिर्नवहेमवर्णा ।
ब्रह्माण्डकोटिपरमेशसुभाविताङ्घ्रिः श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥६॥
सर्वेश्वरी शरणदा भुवनादिकर्त्री कल्याणसौख्यनिलया रुचिरस्मितास्या ।
वेदैर्नुता सुमतिदा मुनिहंसभाव्या श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥७॥

हे पार्वती ! उस जीवासखीने बड़ी ही श्रद्धापूर्वक जिस प्रकार अपने प्राणोंसे प्यारी श्रीकिशोरीजी तथा प्यारे सरकारजीको भाव पुष्पाञ्जलि समर्पण की, उसे मैं सुनाता हूँ, तुम एकाग्र मनसे श्रवण करो ॥३॥ जो सौभाग्य, मङ्गल और सुन्दर गतिको प्रदान करने वाली, सुशीलता रूपी रत्नोंकी समूह, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी किशोरी, व अपने सौन्दर्यसे अनन्त रतियोंको मोहित करने वाली, चन्द्रके समान आह्लाद देने वाले शीतल प्रकाशयुक्त मुखारविन्द वाली हैं, उन हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥४॥

रस (प्रियतम) का नाम रूप लीलाधामादि सब कुछ जिनको प्रिय है, रस (प्रियतम) ही जिनके सर्वस्व हैं, रसिकेन्द्रकान्ता अर्थात् रस (भगवानको) सर्वस्व माननेवाले अनन्य भक्तोंकोही अपना स्वामी मानने वाले उन श्रीप्राणप्यारेजूकी जो प्रिया हैं, जो रास (भगवदानन्द) की स्वामिनी हैं तथा जो रस (प्रियतम) की निधि हैं, भगवदानुरागियोंको जिसकी उपासना करना आवश्यक है, जिनके श्रीचरणकमलों की पूजा श्रीसरस्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी आदि प्रमुख शक्तियाँ भी करती हैं, उन चन्द्र तुल्य श्रीमुखवाली हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥५॥

जिनके नेत्र आनन्दकी वर्षा करने वाले, कमलके पत्रके समान विशाल और सरस हैं, जो शोभा वात्सल्य और सौलभ्य आदि समस्त गुणोंकी खान हैं, जिनके श्रीअङ्गका रङ्ग सोनेके समान गौर हैं तथा जिनके श्रीचरण-कमलोंका चिन्तन करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सबसे बड़े स्वामी (श्रीप्राणप्यारेजू) भी करते हैं, उन चन्द्रतुल्य मुखवाली हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥६॥

जो सभी अल्पसे अल्प व महानोंसे महान् शक्तिमानोंपर भी शासन करने वाले श्रीप्राण-प्यारेजूकी प्रिया हैं, तथा अनाथों व असहायोंकी रक्षा करनेवाली, चौदहो भुवनोंकी आदि कर्त्री (प्रथम रचना करनेवाली), कल्याण व सुखोंकी भवन हैं, जिनका श्रीमुखारविन्द मन्द मुस्कानसे युक्त है, वेदभगवान् जिनकी स्तुति करते हैं, भक्तोंको जो सुन्दर मति प्रदान करती हैं, हंसकी वृत्तिको प्राप्त हुये मुनिजन ही जिनकी भावना करनेके लिये समर्थ हैं, उन चन्द्र तुल्य श्रीमुख-वाली हमारी श्रीकिशोरीजीकी जय हो ॥७॥

श्यामा मनोविजयकामविचिन्त्यपादा विम्बाधराऽभयदशीतलपद्मपाणिः।
संतप्तहाटकरुचिः सरसीरुहाङ्गी श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥८॥
आह्लादिनी त्रिजगतो भुवनाभिरामा सङ्कीर्त्तनीयचरिता मतिशोधनाय।
भाव्या शुभा प्रवरदा वरभूषणाढ्या श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥९॥
विद्युत्सहस्रनिचयाभविमोहनाङ्गी प्राणप्रिया प्रणतपालशिरोमणेश्च।
वेदान्तवेद्यचरणा मृदुसर्वगात्री श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥१०॥
दिव्याम्बरा भुवनपावननामकीर्त्तिर्मुक्ताहिरण्यमणिवारिरुहस्रजाढ्या।
प्रेमाम्बुधिः सहचरीगणसेव्यमाना श्रीस्वामिनी विजयतां मम चन्द्रवक्त्रा ॥११॥
जय जय वारिजाक्षि! मिथिलाधिपराजसुते! निरवधिशर्वरीशनिचयाभलसद्वदने!।
जय नृपचक्रवर्तितनयात्ममनोज्ञगृहे ! विधिहरिशम्भुशेषसुदुरीक्ष्यसरोजपदे ! ॥१२॥

जिनकी सुन्दर, दर्शनीय १६ वर्षकी अवस्था है तथा मनपर विजय चाहनेवाले भक्तोंके लिये जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन नितान्त आवश्यक है, बिम्बाफलके सदृश लाल जिनके अधर हैं व भक्तोंको अभय देनेवाले कमलके सदृश कोमल शीतल जिनके हाथ हैं, तपाये हुये सोनेके सदृश जिनकी गौर कान्ति है और कमलके समान कोमल जिनके अङ्ग है, चन्द्रमाके सदृश सुन्दर स्वच्छ, प्रकाशमय आह्लादवर्द्धक मुखारविन्दवाली उन हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥८॥ जो तीनों लोकोंके चर-अचर प्राणियोंको आह्लाद प्रदान करने वाली, लोकोत्तर सुन्दरताकी मूर्त्ति हैं, अपने चित्तकी शुद्धिके लिये जिनके चरितोंका सङ्कीर्त्तन करना आवश्यक है, जो भावना करने योग्य, साक्षात् मङ्गल स्वरूपा हैं, तथा जो वर प्रदान करने वालोंमें सर्वश्रेष्ठा उत्तम भूषणोंसे विभूषित चन्द्र तुल्य मुखवाली हे उन हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥९॥

जिनके श्रीअङ्ग हजारों बिजली समूहोंकी कान्तिको मोहित करने वाले हैं, जो आश्रितोंके पालन करने वालोंके शिरोमणि (श्रीरघुनन्दनप्यारेजू) की प्राणोंके समान प्यारी हैं तथा जिनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान वेदान्तके द्वारा ही होना सुलभ है, एवं जिनके अङ्ग अत्यन्त कोमल हैं, चन्द्रमाके समान परम आह्लादवर्द्धक मुखवाली, उन हमारी श्रीस्वामिनीजूकी जय हो ॥१०॥

दिव्य जिनके वस्त्र हैं तथा जिनके नामकी कीर्त्ति समस्त भुवनोंको पवित्र करने वाली है, जो मोती, सोना, मणि और कमलकी मालाओंसे भूषित हैं, जिनका प्रेम समुद्रके समान अथाह है, और जो अपनी सहचरियोंसे सेवित हैं, चन्द्रमाके समान परमानन्दवर्द्धक, प्रकाशमय मुखवाली, हमारी उन श्रीस्वामिनीजू की जय हो ॥११॥

हे अनन्त चन्द्रसमूहोंके समान शोभायमान मुखवाली, हे कमलके समान नेत्रवाली हे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीराजदुलारीजू ! आपकी जय हो। जिनके श्रीचरणकमलोंका दर्शन ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेषजीको भी दुर्लभ है तथा जिनकेलिये श्रीचक्रवर्तीकुमार(श्रीप्राणप्यारे) जूका हृदय ही सुन्दर भवन है उन आपकी जय हो जय हो ॥१२॥

जय रसिके ! रसेशमणिमोहिनि ! वेदनुते ! जयकरुणामृताब्धिपरिपूर्णतमाक्षि ! शुभे !।
जय नवसुन्दरीनिकरकोटिसहस्रवृते ! रतिचयकोटिकोटिशतसुन्दरि ! शीलनिधे ! ॥१३॥
जय गुणवारिधे ! नवविभूषितदिव्यतनो ! प्रियतमवाञ्छितप्रवरसिद्धिसुरूपिणि ए ।
जय जनकात्मजे ! पतितपावनि ! दीनहिते ! धृतकरपङ्कजारुणमनोहरपङ्करुहे ! ॥१४॥
जय जय लज्जितानवधिविद्युददभ्रनिभे ! जय रसिकेन्द्रमौलिमुखचन्द्रचकोरि ! रमे ।
जय रसरूपिणि! श्रुतिविमृग्यपदाम्बुरुहे! जय निखिलांशिनि! प्रथितदिव्यगुणे! ऽखिलदे! ॥१५॥
जय रघुनन्दनप्रियवरे ! स्मरणीयगुणे ! जय चरितोद्धृतागणितपापसमूहरते ।
जय शरणागतप्रणतवाञ्छितदप्रवरे ! जय रुचिरस्मिते ! सुमृदुभाषिणि! भूमिसुते! ॥१६॥

हे श्रीप्राणप्यारेजीको अपना सर्वस्व मानने वाली ! समस्त रसोंके मुख्य स्वामी (श्रीप्राणप्यारे)जीको मुग्ध रखनेवाली तथा वेदोंके द्वारा स्तुतिकी जाने वाली हे श्रीकिशोरीजू! आपकी जय हो। हे शुभ (मङ्गल) स्वरूपे ! करुणारूपी अमृत सिन्धुसे परिपूर्ण नेत्रवाली ! हे श्रीकिशोरीजू! आपकी जय हो। हे नवसुन्दरियोंके अनन्त यूथोंसे घिरी हुई ! कोटि कोटि रतियोंके समान सुन्दर रूप वाली! शील की निधि हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो, जय हो ॥१३॥

जिनके वात्सल्य, सौशील्य, कारुण्यादि समस्त गुण समुद्रके समान अनन्त एवं अथाह हैं और जो प्यारेकी मुख्य अभीष्ट सिद्धिका स्वरूप ही हैं, नवीन शृङ्गार युक्त शरीरवाली हेश्रीकिशोरीजी! उन आपकी जय हो। जो श्रीजनकजी महाराज की लाड़िलीजू कहाती हैं, जो पतित जीवोंको पवित्रता प्रदान करने वाली, अभिमान रहित प्राणियोंके हितमें सदा तत्पर रहती हैं तथा जो अपने कर-कमलमें मनोहर अरुण (लाल) कमलको धारण किये हुई हैं, हे श्रीकिशोरीजी ! उन आपकी जय हो ॥१४॥ जिनके श्रीअङ्गकी प्रभासे अनन्त विजलियोंकी खान भी लज्जाको प्राप्त होती है, ऐसी हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो जय हो। भक्तोंको अपना श्रेष्ठस्वामी माननेवाले, श्रीप्राणप्यारेजूके मुखरूपी चन्द्रके दर्शनसे चकोरीके समान कभी तृप्त न होनेवाली, शक्तिस्वरूपसे सबमें रमणकरने वाली हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। जो रस(प्यारे)का स्वरूप हैं, वेदोंके द्वारा जिनके श्रीचरणकमलोंका अन्वेषण किया जाता है तथा जो सभीकी कारण स्वरूपा हैं, क्षमादिक जिनके दिव्यगुण विश्व-विख्यात हैं, भक्तोंके लिये सब कुछ प्रदान करने वाली, हे श्रीकिशोरीजी! उनआपकी जय हो॥१५॥

कल्याण प्राप्तिके लिये जिनके वात्सल्य, गाम्भीर्य, सौशील्य, कारुण्य आदि दिव्यगुणोंका स्मरण करना आवश्यक है, ऐसी श्रीरघुनन्दन प्यारेजूकी समस्त प्रियाओंमें श्रेष्ठ प्रिया(पटरानी जू ! आपकी जय हो। अपने मङ्गलमय चरितोंकेद्वारा असंख्य महापाप-परायणजीवोंका उद्धार करनेवाली आपकी जय हो। शरणागत भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करने वालियोंमें परम श्रेष्ठ हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो। सुन्दर मुस्कानसे युक्त, अत्यन्त कोमल वाणी बोलने वाली हे श्रीभूमिलाडिलीजू! आपकी जय हो ॥१६॥

जय मदनाग्निशान्तिकरयुग्मपदाब्जनखे! जय मम सर्वदे ! सुमतिदायिनि! सौख्यनिधे ।
जय भवसिन्धुपारकरपोतसरोजपदे ! जय जनवत्सले ! जनकनन्दिनि ! केलिरते ॥१७॥
जय नवनागरि ! प्रियवरे ! नवलालिवृते ! जय सुखसागरे! नवलरासरते ! परमे ।
जय जगदेकमङ्गलविभावननामवरे ! जय मृगलोचने ! नृपसुते ! महदेकगते ॥१८॥
जय मणिभूषणे! रुचिरविम्बफलोष्ठि! शुभे! जय मिथिलाधिपाजिरविहारिणि! सर्वहिते!।
जय मम भाग्यदे! रसनिधे ! धृतदिव्यतनो! जय जय सर्वदा सदयितालिचये! ह्यनिशम् ॥१९॥

यस्याः सरोजाङ्घ्रिसुशक्तिचिह्नजा ब्रह्माण्डवृन्दं कृषिको यथा कृषिम् ।
शक्तिः सृजत्यत्ति च पात्यथाज्ञया तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२०॥

जिनके श्रीयुगलचरण कमलोंके नख कामाग्निको शान्त करनेवाले हैं, उन आपकी जय हो। आप सुखोंकी निधि हैं, सुन्दरमति प्रदान करनेवाली हैं, मेरी सब कुछ दाता हैं, आपकी सदा जय हो। जिनके श्रीचरणकमल संसाररूपी सागरसे पार करनेके लिये जहाजके सदृश हैं, उन आपकी जय हो। भक्तोंके अवगुणों को न देखती हुई, सदा उनका हित साधनही करनेवाली, तथा भक्तोंके सुखार्थ नानाप्रकारकी आनन्दमयी लीला करनेवाली! हे श्रीजनकनन्दिनीजू! आपकी जय हो ॥१७॥

हे श्रीकिशोरीजी : जो नवीन गुणचातुर्य से युक्त, सबसे अधिक प्रिय और नूतन सखियोंसे घिरी हुई हैं, उन आपकी जय हो। आप समुद्र के समान अथाह एवं अनन्त सुख सम्पन्न हैं, आप सदा ही नूतन प्रतीत होने वाले श्रीप्राणप्यारेजूके आनन्दमें आसक्त रहने वाली, सभीसे उत्कृष्ट हैं, आपकी जय हो। आपका नाम, स्थावर, जङ्गम समस्त प्राणियोंके अनुपम मङ्गलका उत्पादक है, आपकी जय हो। आपके नेत्र भक्तोंके दर्शनार्थ मृगके समान (सदा चञ्चल रहते) हैं, आप श्रीमिथिलेशजी महाराजकी लली और महात्माओंकी एक (उपमा रहित) ही रक्षा करने वाली हैं, आपकी जय हो ॥१८॥

हे मङ्गलस्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! आपके मणिमय भूषण (भक्तोंके हृदयका अन्धकार दूर करनेके लिये) हैं, आपके ओष्ठ बिम्बाफलके समान लाल और सुन्दर हैं, आपकी जय हो। आप सभी प्राणियोंका हित करने वाली तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजके आङ्गनमें खेलने वाली हैं आपकी जय हो। आप मेरी सौभाग्य प्रदान करने वाली तथा श्रीप्यारेजूकी निधि हैं, दिव्य-अपाञ्चभौतिक, मङ्गलमय विग्रह धारण किये हुई हैं, आपकी जय हो। सखी समूहके सहित और श्रीप्राणप्यारेजूके समेत आपकी सदा सर्वदा जय हो! जय हो ॥१९॥

जिनके श्रीचरणकमलके शक्ति चिह्नसे प्रकट हुई आद्या शक्ति आपकी आज्ञानुसार, ब्रह्माण्ड-वृन्दोंका इस प्रकारसे उद्भव, पालन और संहार करती है, जैसे किसान अपनी खेतीका, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२०॥

या ब्रह्मविष्ण्वीशनुताङ्घ्रिपङ्कजा सौदामिनीकोटिविमोहनद्युतिः ।
महार्हवस्त्राभरणैरलङ्कृता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२१॥
सर्वेश्वरी सर्वजगद्धितैषिणी सर्वं ततं विश्वमिदं ययांऽशतः ।
कारुण्यरत्नैकनिधिःपरीक्षिता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२२॥
या प्रीतिशीला नृपसूनुवल्लभा रक्ताब्जपाणौ धृतनीलपङ्कजा ।
श्यामा शरत्पर्णसुधाकरानना तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२३॥
या कञ्जपत्रायतचारुलोचना सौन्दर्यसौन्दर्यवरप्रदायिनी ।
त्रैलोक्यसंमोहनमोहनच्छबिस्तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२४॥
याऽऽह्लादिनी प्रेमपरा रसाश्रया रामा रमावाग्गिरिजादिवन्दिता ।
सैरध्वजी भूमिसुतेति कीर्त्तिता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२५॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनके श्रीचरण कमलोंकी स्तुति किया करते हैं, तथा जो अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे करोड़ों बिजलियोंको आश्चर्य युक्त करने वाली हैं, बहुमूल्य बस्त्र व भूषणों से जिनका शृङ्गार किया हुआ है, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदाहो सबप्रकार से मङ्गल हो ॥२१॥ जो सभी छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े पर शासन करने वाले श्रीप्राणप्यारेजू पटरानी व समस्त चर-अचर प्राणियों का हित चाहने वाली हैं, तथा जिन्होंने अपने अंशसे सारे विश्वको व्याप्त कर रखा है, जो करुणा रूपी रत्नकी निरुपम निधि (खजाना) ही लक्षित हो रही हैं उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही सुमङ्गल हो ॥२२॥

प्रीति करना जिनका सहज स्वभाव है, जो श्रीदशरथ-नन्दनजूकी प्यारी अपने अरुण कमलके समान हाथमें नीलकमलको धारण किये हुई हैं, जिनकी १६ वर्षकी मधुर अवस्था और शरद्ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रके सदृश विश्वसुखद, प्रकाशमय जिनका श्रीमुखारविन्द है, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सदा ही, सब प्रकार मङ्गल हो ॥२३॥

जिनके कमल-दलके समान सुन्दर व विशाल नेत्र हैं, जो सौन्दर्यको भी सुन्दरता का वरदान देनेवाली हैं, तथा अपनी छबिसे त्रिलोकीको पूर्ण मुग्ध कर लेने वाले श्रीप्राणप्यारेजीको भी चकित करने वाली हैं, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा सब प्रकार मङ्गल हो ॥२४॥

जो आह्लाद प्रदान करने वाली प्रेमको ही मुख्य मानती हैं तथा जो समस्त रसों की कारण स्वरूपा, सभी प्राणियोंको आनन्द प्रदान करने वाली हैं, रमा, उमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियाँ जिनकी बन्दना करती हैं, जो सीरध्वजनन्दिनी, भूमिसुता आदि नामोंसे कथनकी जाती हैं, उन आप अयोनिजा अर्थात् बिना किसी कारण, अपनी भक्तानन्द प्रदायिनी इच्छा मात्रसे हीप्रकट होने वाली श्रीमिथिलेश-दुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥२५॥

या प्रेष्ठहृत्सद्मकृतामलालया रासेश्वरी रासविलासतत्परा ।
लावण्यशीला भुवनैकवन्दिता तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२६॥
याऽनन्तमुख्यात्मसखीगणैर्वृता दिव्यासनस्था दयितांसहस्तका ।
कान्तेडिता स्नेहपराहितैषिणी तस्यै सदाऽयोनिभुवे सुमङ्गलम् ॥२७॥
कारुण्यपूर्णजलजातदलायताक्षी दिव्याम्बराप्रवरभूषणभूषिताङ्गी ।
श्रीचक्रवर्तिसुतचित्तकृताधिवासा तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥२८॥
यस्याः पदाम्बुरुहशक्तिसुलक्ष्मजाता ब्रह्माण्डकोटिरचनादिषु वै समर्था ।
शक्तिर्विरिञ्चिहरिशम्भुनमस्कृताङ्घ्रिस्तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥२९॥
दुष्प्राप्यसर्वगुणरत्नवरैकराशिः सौन्दर्यलेशविजितामितकामपत्नी ।
रासेश्वरी रसिकमौलिमणेः प्रिया या तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३०॥

जिन्होंने श्रीप्राणप्यारेजूके हृदय रूपी महलको ही अपना उज्वल भवन बनाया है जो भगवद् भक्तोंकी स्वामिनी और भगवदानन्दमयी लीला करनेमें तत्पर, लावण्यकी निधि तथा तीनों लोकोंसे उपमारहित नमस्कारकी हुई हैं, उन आप अयोनिजा (बिना किसी कारण भक्त भाव पूरिणी, अपनी निर्हेतुकी इच्छा मात्रसे ही प्रकट होने वाली), श्रीमिथिलेश-दुलारीजीको मेरा नमस्कार है ॥२६॥ जो अपनी अनन्त प्रधान सखी गणोंसे घिरी हुई, दिव्य सिंहासनपर विराजमान, प्यारेके कन्धे पर अपना हस्तकमल रखे हुई हैं, जिनकी प्रशंसा स्वयं प्राणप्यारेजू करते हैं, जो स्नेहपराजूका हित चाहने वाली हैं, उन आप अयोनिजा श्रीमिथिलेश दुलारीजूको मेरा नमस्कार है ॥२७॥

जिनके कमलके समान विशाल नेत्र करुणा रससे परिपूर्ण हैं, दिव्य वस्त्र व अत्युत्तम भूषणोंसे जिनके अङ्गोंका, शृङ्गार किया हुआ हैं, श्रीचक्रवर्ती कुमार(प्राणप्यारे)जूके चित्त रूपी सदनमें जिनका निवास है, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूको मेरा नमस्कार है ॥२८॥

जिनके सुन्दर श्रीचरण-कमलके शक्ति चिन्हसे जायमान शक्ति, करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति पालन व संहार, करनेको समर्थ है, तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिनके चरणोंको प्रणाम करते हैं, उन आप श्रीमिथिलेश-दुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥२९॥

जिन गुणोंकी प्राप्ति बड़ी कठिनतासे होती है, आप उन सभी अलौकिक और अनुपमेय गुणों की राशिस्वरूपा हैं। जिन्होंने अपने सौन्दर्यके स्वल्प अंशसे ही अनन्त रतियों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो भगवदानन्दकी स्वामिनी और भक्तोंको अपने सिरकी मणिके तुल्य श्रेष्ठ मानने वाले (श्रीप्राणप्यारे) जूकी प्राणप्यारी हैं, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजू को मेरा नमस्कार है ॥३०॥

यस्याः कृपा करगतं कुरुते दुरापं मूर्खं विशारदमजं मशकं पयोऽम्भः ।
रात्रिं दिनं दिनकरं द्विजराजकल्पं तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३१॥

यस्या विना करुणया करगोऽप्यलभ्यो न ध्यानकीर्त्तनजपैरपि राघवाप्तिः ।
एतद्वदन्ति मुनयस्त्विह निश्चितार्थास्तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३२॥

नाम्नस्तु सीति खलु वर्णमिदं प्रियायाः पूर्वं निशम्य सुखदं स्वहृदो हि यस्याः ।
वक्तुर्मुखं झटितमातुर ईक्षतेऽयं तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३३॥

यस्याः प्रियः स्वविमुखोऽपि महाप्रियोऽस्य ब्रह्मादिमौलिनमिताम्बुजकोमलाङ्घ्रेः ।
दत्त्वा सुखं बहुविधं क्रियते समीपी तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३४॥

तप्त्वा तपो वहुबिधं विफलं कृतं तैर्यैर्नादृतं चरणपङ्करुहं त्वदीयम् ।
कृच्छ्रैरवाप्य निपतन्ति परं ततस्ते तस्यै नमोऽस्तु मिथिलाधिपतेर्दुहित्रे ॥३५॥

जिनकी कृपा दुष्प्राप्य वस्तुको हथेलीमें रखी हुई जैसी सुलभ, मूर्खको पण्डित, मच्छड़को ब्रह्मा, जलको दूध, रात्रिको दिन, तथा सूर्यको चन्द्रमाके समान शीतल कर देती है, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजीको मेरा नमस्कार है ॥३१॥

जिनकी बिना कृपाके हथेलीमें आई हुई वस्तु भी मिलनी असम्भव है । ध्यान, कीर्त्तन, जप आदि श्रेष्ठ साधनोंके द्वारा भी (बिना जिनकी कृपा हुए) श्रीरघुनन्दनप्यारे नहीं मिलते । ऐसा निश्चित अर्थ वाले मुनिजन कहते हैं, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूको मेरा नमस्कार है ॥३२॥

ये श्रीप्राणप्यारेजू अपने हृदयको सुख प्रदान करने वाले जिन श्रीप्रियाजूके नामका पहला वर्ण "सी" सुनकर तुरन्त आतुर होकर (दूसरा वर्ण "ता" सुननेकी आशासे) "सी" बोलने वालेका मुख देखने लगते हैं, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूको मैं नमस्कार करती हूँ ॥३३॥

ब्रह्मादिदेव जिनको सिरसे प्रणाम करते हैं, ऐसे कमलके समान कोमल श्रीचरण कमल वाले श्रीप्यारेजीको, जिनका प्रेमपात्र अपनेसे विमुख होने पर भी अत्यन्त प्रिय होता है और उसे वे बहुत प्रकारका सुख प्रदान करके अपना समीपवर्ती बना लेते हैं, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूको मेरा नमस्कार है ॥३४॥

हे श्रीकिशोरीजी ! जिन्होंने आपके श्रीचरण कमलोंका आदर नहीं किया उन्होंने निश्चय ही अपना अनेक प्रकारका किया हुआ तप व्यर्थ ही कर डाला क्योंकि यदि उन्हें अनेक प्रकार के महान् कष्टोंको सहन करनेके प्रभावसे लोकोत्तर पद मिल भी गया तो (आपकी कृपा न होनेके कारण) उनका वहाँसे भी पतन हो जाता है, उन आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूके लिये मैं नमस्कार करती हूँ ॥३५॥

भजन्तु केचिद्धृदयस्थमीश्वरं परात्परं ब्रह्म निरीहमव्ययम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥३६॥

भजन्तु केचिद्धरिमिन्दिरापतिं चतुर्भुजं लोकगुरुं जगत्पतिम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥३७॥

भजन्तु केचिद्धृतमीनविग्रहं बृहत्तनुं लोकहितं जनार्दनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥३८॥

भजन्तु केचिच्च वराहरूपिणं हरिं हिरण्याक्षबधादिविश्रुतम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥३९॥

भजन्तु केचित्कमठाकृतिं विभुं समुद्धृतेलाधरमन्दरं हरिम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४०॥

सदा एक रस रहने वाले परात्पर ब्रह्म या हृदयमें विराजमान ईश्वर का कोई भले ही क्यों न भजन करें, परन्तु मैं तो तुरन्त बध कर देने योग्य, अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३६॥

जगत्पति, लोकगुरु, चार भुजाओंसे युक्त, भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान्का कोई भले ही भजन करें, परन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर देने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखनेवाली आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३७॥

भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले लोकहितकारी, विशालकाय, भीमरूप-धारी मीन भगवान् का कोई भले ही भजन करें, किन्तु मैं तो अपराधके कारण तुरन्त बध कर देने योग्य, जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखनेवाली अर्थात् उन्हें दण्ड देनेकी भावना छोड़कर, उनका हित ही चिन्तन करनेवाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३८॥

हिरण्याक्षके बधसे प्रसिद्ध वराह रूपधारी भगवान् विष्णुका कोई भलेही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥३९॥

रसातलमें गये हुये मन्दराचल पहाड़को अपनी पीठ पर रखकर समुद्र मन्थनके लिये ऊपर लाने वाले कछुवा रूप धारी सर्वव्यापक भगवान्का कोई भले ही भजन करें किन्तु मैं तो तुरन्त बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४०॥

भजन्तु केचिन्नृहरिं सतां गतिं खलान्तकं भक्तवचोऽनुसारिणम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४१॥

भजन्तु केचित्त्वदितिप्रियंकरं निलिम्पनाथानुजमादिपूरुषम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४२॥

भजन्तु केचिज्जमदग्निनन्दनं निःक्षत्रियोर्वीकरमुग्रकोपनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४३॥

भजन्तु केचिन्नृपजाकृतिं हरिं दृढव्रतं सद्गुणसिन्धुमव्ययम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४४॥

भजन्तु केचिद्वसुदेवनन्दनं रसस्वरूपं नवनीततस्करम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४५॥

सन्तोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाशकरने वाले तथा अपने भक्तोंके कथनानुसार चलने वाले भगवान् नरसिंहजीका कोई भले ही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल बधकर देनेके योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४१॥

अदितिजीका प्रिय करने वाले, इन्द्रके छोटे भैया, आदि पुरुष, श्रीवामन भगवान् का कोई भले ही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षरण बध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४२॥

बड़े प्रचण्ड कोपको धारण करने वाले तथा पृथिवीको क्षत्रियहीन करदेने वाले जमदग्नि नन्दन श्रीपरशुरामजी भगवान्का कोई भले ही भजन करें, परन्तु मैं तो तत्क्षरण बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली, आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजी का ही भजन करूँगी ॥४३॥

समस्त सद्गुणोंके सागर, अपने ब्रतका पालन करनेमें सदा अचल रहने वाले भक्तोंके दुःख व पापोंको छीन लेने वाले राजकुमारका विग्रह धारण किये हुये अविनाशी राघवेन्द्र सरकार श्रीप्राणप्यारेजूका कोई भले ही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षरण बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने, वाली आप मिथिलेशदुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४४॥ रस स्वरूप, मक्खनचोर, श्रीवसुदेवनन्दन श्रीवृन्दावनबिहारीजीका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरन्त बध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४५॥

भजन्तु केचिद्धृतबौद्धविग्रहं हिंसानिवृत्यै श्रुतिमार्गखण्डनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम ॥४६॥
भजन्तु केचिद्भगवन्तमच्युतं श्रियः पतिं कल्किनमिष्टसत्पथम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४७॥
भजन्तु केचित्कपिलं महामुनिं सतां गतिं व्याकृतसाङ्ख्यशासनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४८॥
भजन्तु केचित्किल नाभिनन्दनं पन्थानमार्षं विदधानमुज्वलम्
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥४९॥
भजन्तु केचित्तपसां निधिं प्रभुं नारायणं मर्दितमन्मथस्मयम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५०॥
भजन्तु केचिद्धयकण्ठमेव वा सङ्गीतशास्त्रैकगुरुं पुरातनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५१॥

हिंसा प्रवृत्ति को रोकनेके लिये, वेद-मार्गका खण्डन करने वाले भगवान् बुद्धजी का कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी क्योंकि मेरा निर्वाह आपके ही पास है ॥४६॥

सत्पथका प्रचार करने वाले कल्कि रूपधारी लक्ष्मी पति, अच्युत भगवान् का कोई भले ही भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४७॥

अथवा सन्तोंकी रक्षा करने वाले साङ्ख्यशास्त्रके रचयिता महामुनि श्रीकपिलदेव भगवान् का कोई भले ही भजन करें किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करदेने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्यभाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४८॥

ऋषियोंके उज्वल मार्ग यानी परमहंसोंके पथका विधान करने वाले,श्रीऋषभ भगवान्का कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेश-दुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥४९॥

तपके निधान, सर्व समर्थ, कामदेवके अभिमानको चूर करने वाले श्रीनारायण भगवानका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरन्त बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५०॥

अथवा कोई सङ्गीत शास्त्रके अद्वितीय गुरु, पुरातन-भगवान् श्रीहयग्रीवजीका भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरन्त बधके योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेशनन्दिनो श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५१॥

भजन्तु केचिद्विधिमब्जसम्भवं तपःपराणां वरदानतत्परम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५२॥
भजन्तु केचिच्छिवमद्रिजापतिं सदाऽऽशुतोषं वृकवाञ्छितप्रदम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५३॥
भजन्तु केचित्करिवक्त्रमृद्धिदं विनायकं विघ्नहरं शुभावहम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५४॥
भजन्तु केचिद्वसुधादुहं पृथुं पवित्रकीर्त्तिं मनुवंशभूषणम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५५॥
भजन्तु केचिद्धृतहंसविग्रहं कुमारचेतोभ्रममूलकृन्तनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५६॥
भजन्तु केचित्सनकादिकान् मुनीन् यैः सारमेकं भजनं विलोकितम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५७॥

अथवा नाभि-कमलसे प्रकट हुये, तप करने वालोंको अभीष्टवर देनेमें तत्पर, भगवान् ब्रह्माजीका भले ही कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करने योग्य अपराधयुक्त जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५२॥

अथवा वृकासुरको अभीष्ट वर देने वाले आशुतोष, पार्वतीपति भगवान् श्रीशिवजीका ही कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५३॥

ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करने वाले मङ्गलप्रद, विघ्नहरण, गजवदन श्रीगणेश भगवान का ही भले ही कोई क्यों न भजन करें किन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५४॥

अथवा मनुमहाराजके कुलके भूषण, पवित्र-कीर्त्ति, गौरूप धारी पृथिवीको दुहने वाले श्रीपृथु-महाराजका भले कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर देने योग्य-अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५५॥

अथवा सनकादिकोंके चित्तका सन्देह निकालने वाले हंस रूप धारी भगवान् विष्णुका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरन्त, बध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५६॥

अथवा जन्म-ग्रहण करके जिन्होंने इस असार संसारमें भगवान्का भजन ही एक मात्र सार देखा है, उन सनकादिक मुनियोंका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरन्त बधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५७॥

भजन्तु केचिन्मुनिमत्रिनन्दनं प्रणीततन्त्रं सदसद्विवेकिनम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५८॥
भजन्तु केचिच्च पराशरात्मजं महाकविं सर्वविदां परं गुरुम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥५९॥
भजन्तु केचित्त्रिदशेश्वरं हरिं शचीपतिं नाकपतिं घनाधिपम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६०॥
भजन्तु केचिद्वरुणं जलेश्वरं धनेश्वरं गुह्यकयक्षनायकम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनी त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६१॥
भजन्तु केचिद्यममुग्रशासनं दिनेश सूनुं कृत भृत्यमृत्युकम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६२॥
भजन्तु केचिद्बलिमिन्द्रवैरिणं प्रसिद्धदातारमजेशयाचकम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६३॥

अथवा तन्त्र शास्त्रके निर्माण करनेवाले सद्-असद् विवेकी, अत्रिनन्दन भगवान् दत्तात्रेय मुनिका कोई भलेही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेश नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५८॥

अथवा महाकवि, समस्तशास्त्रों और वेदोंका रहस्य जानने वालोंके भी परम गुरु, पराशर, नन्दन श्रीवेदव्यास भगवान्का कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तुरन्त बध कर डालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥५९॥ अथवा मेघोंके स्वामी स्वर्गलोकका पालन करने वाले, शची पति, देवराज इन्द्रका भले ही कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करदेने योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६०॥ अथवा जलके स्वामी श्रीवरुणदेवजीका अथवा गुह्यक-यक्ष नायक, धनके स्वामी श्रीकुवेरजीका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप श्रीमिथिलेश-दुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६१॥ अथवा मृत्युको अपना सेवक बनाने वाले, कठोर शासन-परायण सूर्यपुत्र, यमराजका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६२॥ इन्द्रके शत्रु, प्रसिद्धदानी श्रीबलिमहाराजका ही जिनके पास स्वयं भगवान याचक बने हैं, कोई भले ही क्यों न भजन करें, परन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६३॥

भजन्तु केचिद्रविमुग्रतेजसं शुभप्रदं पूज्यतमं त्विषांपतिम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६४॥
भजन्तु केचिद्विधुमब्धिनन्दनं सुधाकरं तापहरंनिशापतिम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६५॥
भजन्तु केचिद्भिषजौ दिवौकसां तावाश्विनेयौ भजदामयापहौ ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६६॥
भजन्तु केचित्त्रिदशान् दिवौकसः कलत्रपुत्रादिसमृद्धिसिद्धिदान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६७॥
भजन्तु केचिज्जगदेकवन्दितां सरस्वतीमीप्सितरामकीर्त्तनाम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६८॥
भजन्तु केचित्सुरदुःखभञ्जिनीं धृतोग्ररूपामिह शक्तिमम्बिकाम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥६९॥

अथवा कोई मङ्गल दानी, परम पूज्य, उग्रतेज—सम्पन्न, ज्योतियोंके पति भगवान् सूर्यका ही क्यों न भजन करें, परन्तु मैं तो तत्काल बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६४॥

कोई भले ही सागरनन्दन, सुधाके आकर, तापहारी, निशाके पति श्रीचन्द्रदेवका क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण वध करडालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६५॥

अथवा कोई भले ही अपने भक्तोंके रोगको दूर करने वाले देवताओंके वैद्य, श्रीअश्विनी-कुमारजीका क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६६॥

अथवा देवलोकमें रहने वाले, स्त्री-पुत्र आदि ऋद्धि, सिद्धि रूपी समृद्धिको प्रदान करने वाले देवताओंका भले ही कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल वध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६७॥ अथवा भले ही कोई जगत् वन्दिता श्रीरामकीर्त्तनाभिलाषिणी श्रीसरस्वतीजीका क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करडालने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली मिथिलेशनन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६८॥

अथवा भले ही कोई देवताओंका दुःख नाश करने वाली भयङ्कर स्वरूपको धारण की हुई श्रीअम्बिकादेवी का क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल बध कर देने योग्य अपराधी पर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥६९॥

भजन्तु केचिद्धरिवल्लभां सतीं पयोधिपुत्रीं भुवनैकवाञ्छिताम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७०॥
भजन्तु केचिद्दनुजान्महोरगान् गन्धर्वविद्याधरयक्षचारणान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७१॥
भजन्तु तत्त्वानि समाहितानि वा गिरीन्समुद्रानथवा नदीर्नदान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७२॥
भजन्तु केचिद्बहुधार्थसिद्धिदान् प्रेतांश्च भूतानि तथान्यकान्यपि ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७३॥
भजन्तु केचिज्जगतीपतीन्नृपान् कवीन्द्विजान् वा धनिनोऽथ कोविदान् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७४॥
भजन्तु केचित्पितरौ सुखप्रदौ हितैषिणौ पोषितकोमलाङ्गकौ ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७५॥

समस्त लोगोंकी अभीष्ट प्रदायिनी सागरनन्दिनी, विष्णुवल्लभा, सती श्रीलक्ष्मीजी का कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध कर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी अपना वात्सल्यभाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७०॥

कोई दैत्योंका, चाहे तक्षक आदि सर्पोंका, अथवा गन्धर्वोंका, किम्बा विद्याधरोंका यक्षोंका, या चारणोंका भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर देनेके योग्य अपराधी जीवोंपर भी वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७१॥ लोग आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पञ्च तत्वोंका अथवा हिमालय आदि पर्वतोंका, समुद्रोंका नदी व नदोंका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करडालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी अपना वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७२॥

अथवा अनेक प्रकारकी लौकिक स्वार्थ सिद्ध करदेने वाले प्रेत भूतादिकों का कोई लोग भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बध करदेने योग्य अपराधी जीवों पर भी अपना वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७३॥

लोग राजाओंका, चाहे कवियोंका, चाहे ब्राह्मणोंका चाहे धनी लोगोंका, चाहे पण्डितोंका कोई भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर डालने योग्य अपराधी जीवोंपर भी निरपराधियोंकी तरह समान भावसे वात्सल्य भाव रखने वाली, आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७४॥ अथवा अपने कोमलगातका पोषण करने वाले, हितैषी, सुखदायी माता-पिताका कोईलोग भले ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी समान भावसे वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७५॥

भजन्तु केचिद्गुणिनोऽथवाऽऽत्मजान् धनानि नारीः परिवारमेव वा ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७६॥
भजन्तु केचित्परिचिन्त्य दुर्लभं शरीरमेवेदमथात्मनो जडम् ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७७॥
भजन्तु केचित्कमपीह किं मया यथेप्सितं योग्यमयोग्यमेव वा ।
अहं तु सीतां मिथिलेशनन्दिनीं त्वां सापराधाशुबधार्हवत्सलाम् ॥७८॥

श्रीशिव उवाच ।

तद्भावपुष्पाञ्जलिमोदसंयुतौ बभूवतुः स्मेरसुधाकराननौ ।
वृतौ स्थितैः सर्वजनैर्निवेशने तस्मिञ्जनानुग्रहविग्रहावुभौ ॥७९॥

चाहे भले ही कोई गुणियोंका, चाहे अपने पुत्रोंका, चाहे नाना प्रकारके धनोंका, चाहे स्त्रियोंका अथवा चाहे अपने परिवारका ही कोई क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्क्षण बधकर देने योग्य अपराधी जीवों पर भी वात्सल्यभाव रखने वाली, आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७६॥

अथवा, दुर्लभ विचार करके, चाहे कोई अपने इस जड़ शरीरका ही क्यों न भजन करें, किन्तु मैं तो तत्काल बधकर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी अपना वात्सल्य भाव रखने वाली आप मिथिलेशदुलारी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७७॥

हे श्रीस्वामिनीजू! विशेष क्या प्रार्थना करूँ? लोग अपनी इच्छानुसार चाहे किसी भी योग्य अथवा अयोग्यका भजन करें, मुझे उससे क्या प्रयोजन ? मैं तो तत्क्षण बध कर डालने योग्य अपराधी जीवों पर भी अपना वात्सल्य भाव रखनेवाली आप मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजीका ही भजन करूँगी ॥७८॥

भगवान् शङ्करजी बोले–हे पार्वती ! जो भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य मङ्गलमय विग्रह धारण करते हैं, रत्नसिंहासन भवनमें समस्त जनोंसे घिरे हुये वे दोनों श्रीयुगलसरकार, जीवासखीकी उस भाव-पुष्पाञ्जलिसे मुदित होगये, अतः चन्द्रमाके समान आह्लादकारक परम प्रकाशमय उनके मनोहर मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुस्कान छा गयी ॥७९॥

इति चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

इतिमासपारायणे सप्तमो विश्रामः ॥७॥

इति-नवाह्नपारायणे द्वितीयो विश्रामः ॥२॥

卐

अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

श्रीयुगलसरकारकी व्यारू, शृङ्गार तथा रासलीला

अथागते द्वे निशिभोजनस्य प्रेष्ये समानेतुमुदारकान्ती ।
प्रजग्मतुः प्रार्थनया सुतुष्टौ तयोर्निशाभोजनवेश्म रम्यम् ॥१॥
षष्ठं विहायावरणं सुरम्यमुपेयतुः सप्तमकं क्षणेन ।
मरुद्विमानेन तडित्प्रभेन सखीसमूहैः परिवेष्टितौ तौ ॥२॥
नीराजितौ वै पथि यत्र तत्र नानासुगन्धैः परिषेचिते च ।
पुष्पावकीर्णे मणिभूमिरम्ये ध्वजापताकाभिरलङ्कृते तौ ॥३॥
तत्तीरयोर्दर्शनसाभिलाषा मनोहराङ्गीर्विपुलाम्बुजाक्षीः ।
निरीक्षमाणौ सकृपार्द्रदृष्टया कृताञ्जलीस्ता ययतुर्मनोज्ञौ ॥४॥
श्रीरत्नसिंहासनकस्य सख्या विज्ञाय चैवागमनं तयोः सा ।
प्रतीक्षमाणा निशिभोजनस्य मुख्या सखी शातमवाप बाढम् ॥५॥
प्रत्युद्ययौ सन्मुखमालिपङ्क्त्या धृत्वा करे मङ्गलभाजनं स्वे ।
उपागतौ सालिगणौ महार्हौ नीराजयामास मुदा प्रियौ तौ ॥६॥

उसके बाद व्यारू कुञ्जकी दो दूतियाँ, श्रीयुगलसरकारको अपने यहाँ ले जानेके लिये आ गयीं, उनकी प्रार्थनासे उदारकान्ति श्रीयुगलसरकार प्रसन्न होकर व्यारू नामके सुन्दर सदन को प्रस्थित हुए ॥१॥ बिजलीके समान प्रकाशयुक्त, वायु-विमानके द्वारा दोनों सरकार सखीवृन्दोंसे घिरे हुये क्षणमात्रमें छठे आवरणको छोड़कर सातवेंमें आ गये ॥२॥

ध्वजा पताका आदिकी सजावटसे युक्त, पुष्प बिछे हुये, मणिमयी भूमिसे सुशोभित, नाना प्रकारकी सुगन्धसे सींचे हुये, उस सप्तम आवरणके मार्गमें जहाँ तहाँ आरती उतारे हुए दोनों सरकार मार्गके दोनों किनारों पर दर्शनोंकी अभिलाषासे मनोहर अङ्ग व कमलके समान विशाल नेत्र वाली हाथ जोड़े हुए खड़ी सखियोंको अपनी कृपार्द्र दृष्टिसे अवलोकन करते हुये आगे पधारे ॥३॥४॥

श्रीव्यारू कुञ्जकी मुख्य सखी, श्रीयुगलसरकारके आगमनकी बहुत देरसे बाट जोह रही थी, अतः उसने जब श्रीरत्नसिंहासन कुञ्जकी सखीजीके द्वारा अपने यहाँ, उनके आगमन का समाचार सुना, तो वह महान् सुखको प्राप्त हुई ॥५॥

पुनः सखियोंकी पंक्ति सहित, वह अपने हाथमें मङ्गल थाल रखकर श्रीयुगलसरकारकी अगवानी करनेके लिये उनके सम्मुख चली। जब वे परमपूज्य दोनों श्रीयुगलसरकार अपनी सखी वृन्दों सहित पासमें आ गये, तो उस (व्यारू कुञ्जकी) सखीजीने उनकी आरती की ॥६॥

प्रसार्य दिव्यास्तरणानि भूमौ नीतौ तया रत्नगृहान्तरे वै ।
दिव्यांशुकाच्छादितहेमपीठे निवेशितौ तौ मणिमौक्तिकाढ्ये ॥७॥
प्रक्षाल्य सा पाणिपदाम्बुजानि प्रदाय चैवाचमनं प्रियाभ्याम् ।
सखीजनेभ्योऽप्युचितासनानि निजाभिरालीभिरदापयच्च ॥८॥
पक्वान्नपात्राणि शतानि तत्र संन्यस्य मुख्या वसुकोणपीठे ।
चतुर्विधं षड्रसकं सुभोज्यं समर्पयाञ्चक्र उदारभावा ॥९॥
प्रसाद्य सा दीनवचोभिरिष्टौ प्राणेश्वरौ प्राणसमप्रियौ तौ ।
अकारयद्भोजनमम्बुजाक्षी रुचिप्रदं वाक्यमुदाहरन्ती ॥१०॥
सख्यौ स्थितेऽम्भश्चषके निधाय हस्ताम्बुजे साम्बुसुवर्णपात्रम् ।
तत्पार्श्वयोः खञ्जनसाञ्जनाक्ष्यौ प्रयच्छतो वीक्ष्य तयो रुचिं ते ॥११॥
गायन्ति गीतानि रसाप्लुतानि तयोः सकाशे रुचिवर्द्धनानि ।
काश्चिद्विचित्रा बहुशो विरच्य प्रहेलिकाः श्रावयितुं प्रवृत्ताः ॥१२॥
अथेङ्गितं प्राप्य निशाशनस्य मुख्या सखी श्रीजनकात्मजायाः ।
अकारयत्स्वाचमनं प्रियाभ्यां सुधाजलैः कञ्जविलोचनाभ्याम् ॥१३॥

पुनः दिव्य पाँवड़े डाल कर अपने रत्न खचित महलके भीतर ले गयी और वहाँ मणि व मोतियोंकी सजावटसे युक्त सुवर्ण (सोने) की चौकी पर उन्हें बिराजमान किया ॥७॥

पुनः श्रीयुगलसरकारके हस्त व पाद कमलोंको धोकर उन्हें आचमन जल प्रदान करके, उसने अपनी सखियोंके द्वारा, श्रीयुगलसरकारकी समस्त सखियोंको बड़े प्रेम भाव पूर्वक उचित आसन, प्रदान कराया ॥८॥ तदनन्तर उस उदार भाव सम्पन्ना व्यारू कुञ्जकी सखीजीने, अष्ट कोणकी चौकी पर सैकड़ों पक्वान्न पात्र सजाकर षट्रसोंसे युक्त चारो प्रकारके भोजनोंको समर्पित कराया ॥९॥ अपने इष्ट प्राणनाथ, प्राणोंके तुल्य प्यारे श्रीयुगलसरकारको दीन बचनोंके द्वारा प्रसन्न करके, रुचि कारक बचनोंको बोलती हुई वह कमल लोचना सखी, उन्हें भोजन कराने लगी ॥१०॥ अञ्जन लगे हुये खञ्जन पक्षीके सदृश चञ्चल लोचना, दो सखियां हाथमें जल भरे सोनेके गिलास व भारीको लेकर दायें बायें खड़ी हो गयीं और वे, दोनों सरकारकी रुचि देखकर जल देने लगीं ॥११॥ कुछ सखियां, श्रीयुगलसरकारके पास बैठकर भावयुक्त होकर आनन्द जनक रुचिवर्द्धक गीतोंको, गाने लगीं और कुछ बहुत सी आश्चर्ययुक्त प्रहेलिकाओंको बना बनाकर सुनाने लगीं ॥१२॥

तत्पश्चात् श्रीजनक-लडैतीजूका सङ्केत पाकर, उस व्यारू कुञ्जकी मुख्य सखीजीने, अमृतमय जलसे कमल लोचन दोनों सरकारको, आचमन कराया ॥१३॥

पुनः पयःपानविधिं प्रियाभ्यामकारयत्प्रार्थनयोरुभक्त्या ।
ताम्बूलवीटीं विरचय्य पश्चात्समार्पयत्सा परयाऽनुरक्त्या ॥१४॥
धूपं समाघ्राप्य सुगन्धियुक्तं गवाज्यकर्पूरयुतं च दीपम् ।
प्रदर्श्य ताभ्यां ज्वलितं सखीभिर्नीराजनं चाथ तया व्यधायि ॥१५॥
श्रीचारुशीलेन्दुकले तदानीं विज्ञापयामासतुरात्मदाभ्याम् ।
यथाविधि स्वर्प्य सुमनाञ्जलिं सा ननाम भक्त्या दयितौ सखीश्च ।
ताश्चापि तौ प्राणपरप्रियौ हि नत्वा मिथो नेमुरतिप्रसन्नाः ॥१६॥
नीत्वा विरामाय ततोऽन्यगेहे तया प्रियौ तौ रुचिरप्रकाशे ।
तूलांशुकैः स्वञ्चितहेमतल्पे विश्रामितौ सूक्ष्मविभूषणाङ्गौ ॥१७॥
तयोस्तदोच्छिष्टममथार्प्य सर्वाः सम्भोजिताः सादरमेव सख्या ।
यथा हि तौ प्रेष्ठतमौ दयालू ताम्बूलवीटयादिभिरादृतास्ताः ॥१८॥
तत्रैव सख्योऽपि च शिश्यिरे ताः श्रीजानकीराघवयोः शुभाङ्ग्यः ।
विश्रामसन्दर्शनमम्बुजाक्ष्यः कुर्वन्त्य एवेप्सितमाप्तकामाः ॥१६॥

पुनः बड़ी श्रद्धा भावपूर्ण प्रार्थना द्वारा श्रीयुगल सरकारको दूध पिलाकर, उसने पानका बीरा बनाकर उन्हें परम अनुराग पूर्वक समर्पण किया ॥१४॥

सुगन्ध युक्त धूपको सुँघाकर, जलते हुये कपूर सहित, गऊके घृतका दीपक, श्रीयुगलसरकार को दिखलाकर, (व्यारू कुञ्जकी उस सखीने) सखियों सहित उनकी आरती उतारी ॥१५॥

पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान करके बड़े ही प्रेमपूर्वक उसने श्रीयुगलसरकारको प्रणाम किया, तदनन्तर उनकी सखियोंको नमन किया, उन सखियोंने भी श्रीयुगलसरकारको प्रणाम करके अति प्रसन्न हृदयसे परस्पर एक दूसरेको प्रणाम किया ॥१६॥

तत्पश्चात प्यारे श्रीयुगलसरकारको, विश्राम करानेके लिये व्यारू कुञ्जकी सखी, दूसरे सुन्दर प्रकाश युक्त भवनमें ले जाकर, उनके अङ्गोंमें भूषणोंका स्वल्प शृङ्गार रखकर, उन्हें मखमली गुद्‌गुद् बिछावन बिछे सुवर्णके पलङ्गपर विश्राम कराया ॥१७॥

श्रीयुगलसरकारके विश्राम कर लेनेपर उसने उनका उच्छिष्ट प्रसाद समर्पण करके सभी सखियोंको प्रेम व आदर पूर्वक भोजन कराया पुनः अपने प्राणप्यारे, दयालू श्रीयुगल-सरकारके सदृश ही, पान आदि के द्वारा सबका आदर किया ॥१८॥

कमलनयनी मङ्गलाङ्गी उन सखियोंने भी श्रीयुगलसरकारके विश्रामका अभीष्ट दर्शन करती हुई कुञ्जके उसी विभागमें विश्राम किया, जिसमें श्रीयुगल-सरकार कर रहे थे ॥१६॥

किञ्चिद्व्यतीते समये तु तत्र प्रेष्ये शुभे चाययतुर्मनोज्ञे ।
शृङ्गारकुञ्जाधिकृतानिदेशादानेतुकामे दयितौ प्रवीणे ॥२०॥
श्रीचारुशीलेन्दुकले प्रणम्य ते चोचतुः स्वागमनस्य हेतुम् ।
ताभ्यां प्रियैः कर्णसुधावचोभिर्विज्ञापितः स प्रियपुङ्गवाभ्याम् ॥२१॥
प्रियाप्रियौ रासनिविष्टचित्तौ प्रचक्रतुस्तर्हि मनोऽभिगन्तुम् ।
ततः सखीनामपि वल्लभानामौत्सुक्यमत्यन्तमवेक्ष्य रासे ॥२२॥
आरुह्य भव्यां शिविकां विशालां शृङ्गारकुञ्जं ययतुः प्रहृष्टौ ।
तत्सद्मनो मुख्यसखी विदित्वाऽऽयान्तौ तदाऽवाच्यसुखं प्रयाता ॥२३॥
सुस्वागतार्थं परमेष्टयोः सा प्रत्युज्जगामाश्वनुरागपूर्णा ।
आर्तिक्यपात्रं च निधाय पाणौ स्वकिङ्करीभिर्गजराजगत्या ॥२४॥
तयाऽऽगतौ प्रेष्ठतमौ सखीभिर्नीराज्य नीतौ भवनान्तरे च ।
मणिप्रकाशे मणिमण्डपे तौ निवेशितौ सांशुकरत्नपीठे ॥२५॥

विश्राम करते कुछ समय बीत जाने पर शृङ्गार कुञ्जकी सखीकी आज्ञासे मनोहर मङ्गल-स्वरूपा, चातुर्यगुण-सम्पन्ना दो सखियाँ, दूती बनकर, श्रीयुगलसरकारको अपने भवन ले जानेकी लालसासे वहाँ पहुँच गयीं ॥२०॥

दोनोंने प्रणाम करके श्रीचारुशीलाजी व श्रीचन्द्रकलाजीको अपने आनेका कारण निवेदन किया, उन्होंने उसे सुधाकी तरह प्रेम भरे मधुर वचनों द्वारा श्रीयुगलसरकारके सामने निवेदित किया ॥२१॥

भगवदानन्द प्राप्त करानेवाली रास लीलाओं में प्यारी सखियोंकी अत्यन्त उत्सुकता देखकर श्रीयुगलसरकारने, उन्हें अपने उस आानन्दको प्रदान करनेके लिये उसीमें दत्त-चित्त होकर, ब्यारू कुञ्जसे रास शृङ्गार कुञ्ज पधारनेकी इच्छा की ॥२२॥

अत एव वे परम शोभायमान विशाल, शिविका (पालकी) में बैठकर बड़े हर्ष पूर्वक शृङ्गार कुञ्जमें पधारे । श्रीयुगलसरकारको अपने कुञ्जमें आते हुये जानकर वहाँ की प्रधान सखीजी को अकथनीय सुख प्राप्त हुआ ॥२३॥

भगवानशिवजी बोले :— हे प्रिये ! शृङ्गार कुञ्जकी वह सखी अनुराग पूर्वक अपने परम प्यारे श्रीयुगलसरकारका स्वागत करनेके लिए, आरती सजाया हुआ थाल अपने हाथमें लेकर निज सखियोंके सहित, गजराजकी चालसे आगे पधारी ॥२४॥

द्वार पर प्राणप्यारे श्रीयुगलसरकारके पहुँच जाने पर, सखी-वृन्दोंके सहित आरती करके वह सखी उनको महलके भीतरले गयी और मणिमय मण्डपमें, मणियोंके प्रकाशसे युक्त कोमल वस्त्र बिछी हुई रत्न चौकी पर उनको विराजमान किया ॥२५॥

आनीय रासोचितभूषणानि परार्ध्यवस्त्राणि सुवासितानि ।
भूषालयस्याधिकृता सुभक्त्या संस्थापयामास यथा क्रमेण ॥२६॥
धृत्वा करण्डानि विभूषणानां दिव्याम्बराणामुभयोः सकाशम् ।
अपावृतास्यानि कृताञ्जलिः सा स्थित्वा पुनश्चन्द्रमुखावपश्यत् ॥२७॥
ततस्तु वेणी रचिता प्रियाया एणीदृशः श्रीरघुनन्दनेन ।
प्रसूनमुक्तामणिभिर्मनोज्ञा प्रेम्णा तु दाक्ष्येण मुदा प्रियेण ॥२८॥
तयाऽपि भाले सुमनोहरे च प्राणप्रियस्य स्वयमम्बुजाक्ष्या ।
सुवेणुपत्रं रचितं मनोज्ञं विगाढभावेन सखीसमाजे ॥२६॥
आदर्शकल्पौ च मिथः कपोलौ प्रेमालयावङ्कयतुस्तथैव ।
ततः परं साञ्जनमञ्जुनेत्रौ कुञ्जेश्वरी सा समलञ्चकार ॥३०॥
पौष्पाणि माल्यानि ससौरभानि सा धारयित्वा प्रिययोः सुकण्ठे ।
धूपं समाघ्राप्य पुनश्च ताभ्यां प्रादर्शयद्दीपमुदारचित्ता ॥३१॥
सौवर्णपात्रस्थितपायसान्नं समर्प्य सा वै परयाऽनुरक्त्या ।
पुष्पार्तिकं चारु चकार भूयः भक्त्या तयोः सर्वसखीसमेता ॥३२॥

पुनः रासके योग्य बहुमूल्य, इत्र आदिसे सुगन्ध युक्त किये हुये वस्त्र व भूषणोंको बड़ी ही श्रद्धा पूर्वक लाकर, श्रीयुगल सरकारके सामने स्थापित किया ॥२६॥

दिव्य वस्त्र व भूषणोंके खुले पिटारे पास रखकर, हाथ जोड़े खड़ी हो वह श्रीयुगल-सरकारके चन्द्र समान शीतल-प्रकाश युक्त, परम आह्लादकारक श्रीमुखारविन्दका दर्शन करने लगी ॥२७॥ तब श्रीरघुनन्दनप्यारेजूने प्रेम पूर्वक मृग लोचना श्रीप्रियाजूकी वेणीको पुष्प, मोती एवं मणियोंके द्वारा बड़ी सुन्दर चातुर्य पूर्ण रचना से गूँथा ॥२८॥

और स्वयं कमललोचना श्रीकिशोरीजीने भी सखी-समाजके बीचमें, विशेष गाढ़ भाव पूर्वक श्रीप्यारेजूके परम मनोहर मस्तकपरवेणुपत्राकार, हृदयाकर्षक सुन्दर तिलक लगाया ॥२६॥

पुनः प्रेमसदन दोनों श्रीयुगलसरकारने फूल पत्ती आदि अनेक प्रकारकी रचनाओं द्वारा दर्पणके समान प्रतिबिम्ब ग्रहण करने वाले कपोलोंको परस्पर अलङ्कृत किया। पश्चात् कुञ्जकी मुख्य सखीजीने कज्जल युक्त सुन्दर नयन उन श्रीयुगलसरकार का पूर्ण शृङ्गार किया ॥३०॥ पुनः उदार चित्ता उस सखीने सुगन्ध युक्त फूल-मालाओंको, श्रीयुगलसरकारके गलेमें धारण कराके उन्हें धूप सुँघाकर मङ्गल दीपका दर्शन कराया ॥३१॥

तत्पश्चात् परम अनुराग पूर्वक, सुवर्णके पात्रमें रखी हुई पायस (खीर) को दोनों प्यारे सरकारके लिये समर्पित करके, उसने समस्त सखियोंके सहित भक्ति भावसे उनकी पुष्प आरती की ॥३२॥

आनन्दमत्ताऽभिमुखे ननर्त प्रदाय ताभ्यां कुसुमाञ्जली च ।
संस्तुत्य भूयः प्रणनाम जुष्टे ब्रह्मादिभिस्तद्द्वयपादपद्मे ॥३३॥
परस्परं चापि ततः सहर्षं ननाम भक्त्याऽऽश्रुपरिप्लुताक्षी ।
रासालयस्याधिकृताज्ञया द्वे सख्यौ तदैवाययतुः सकाशम् ॥३४॥
बद्ध्वाञ्जलिं ते नतमस्तके तौ प्रणेमतुः सत्वरमाप्तलाभे ।
आज्ञापिते चोचतुरम्बुजाक्ष्यौ हेतुं स्वकीयागमनस्य सख्यौ ॥३५॥
श्रीचारुशीलेन्दुकले तदानीं विज्ञापयामासतुरात्मदाभ्याम् ।
प्रणम्य वै चन्द्रचयाननाभ्यां ताभ्यां मिथोंऽसार्पितहस्तकाभ्याम् ॥३६॥
रासोत्सवायाशु ततोऽभिरामौ सखीजनैः साकमतुल्यरूपौ ।
रासस्थलीं श्रीरसिकाधिराजौ प्रजग्मतुः कामगयानकेन ॥३७॥
प्रेष्ठावुपागम्य मनोहराङ्गौ चिन्तापहौ द्वारि सुखैकमूर्त्ती ।
विलोक्य साऽनन्दमहाब्धिमग्ना न स्वागतं चापि शशाक कर्त्तुम् ॥३८॥

पुष्पाञ्जलि समर्पण करके आनन्दसे मस्त हो वह श्रीयुगलसरकारके सामने नाचने लगी तत्पश्चात् स्तुति करके, ब्रह्मादि देवोंसे सेवित, उनके श्रीचरण कमलोंको उसने प्रणाम किया।३३।

पुनः आनन्दके आँसुओंसे डब-डबाये (भरे हुए) नेत्रों वाली उस सखीने हर्ष और श्रद्धासे युक्त होकर सभीको प्रणाम किया। उसी समय रास-कुञ्जकी प्रधान सखीकी आज्ञासे दो सखियाँ श्रीयुगलसरकारके पास आ गयीं ॥३४॥

उन्होंने दर्शनोंका लाभ लेकर सिरको झुकाया और हाथ जोड़कर प्रेम पूर्वक श्रीयुगल-सरकारको प्रणाम किया। पुनः आज्ञा मिलने पर दोनोंने कमल-लोचना श्रीचन्द्रकला व श्रीचारुशीला सखीजीसे अपने आनेका हेतु निवेदन किया ॥३५॥

उन दोनों मुख्य यूथेश्वरी सखियोंने प्रणाम करके, परस्पर एक दूसरेके कन्धेपर हस्तकमल रखे हुये, चन्द्र समूहोंके समान परम प्रकाशमय आह्लाद युक्त मुखारविन्द, भक्तोंके लिये अपने आपको दे डालने वाले, श्रीयुगल-सरकारको उन सखियोंके आगमनका कारण ज्ञात कराया ॥३६॥ इस हेतु भक्तोंको अपना सम्राट मानने वाले, अनुपमेय रूपवाले, सब प्रकारसे सुन्दर, श्रीयुगलसरकार, भगवदानन्द प्रदायक, उत्सव करनेके लिये, इच्छाचारी विमानके द्वारा रासस्थली पधारे ॥३७॥

रास कुञ्जकी सखी अपने द्वारपर पासही उन मन-हरण अङ्गवाले सुखस्वरूप, चिन्ताको दूर करनेवाले श्रीयुगलसरकारका दर्शन करते ही आनन्दरूपी महासागरमें इस प्रकार डूबी कि, उनका स्वागत भी, न कर सकी अर्थात् वेसुध हो गयी ॥३८॥

स्वकिङ्करीभिः परिबोधिताऽथो विष्टभ्य चात्मानमुदारधृत्या ।
नीराजनं हर्षयुता चकार श्रीमैथिलीराघवयोः सखीभिः ॥३९॥
वृष्टिं पुनः पुष्पमयीं विधाय तयोरुपर्यम्बुजनेत्रयोः सा ।
उत्तार्य तस्माच्छिबिकां निवेश्य निन्ये मुदा रासगृहे हृदीशौ ॥४०॥
लतानिकेतैः सफलैश्च वृक्षैर्गुल्मान्विते कोकिलकूजिते च ।
सुपुष्पितारामसमञ्चिते तौ तस्मिन्नपि प्रेष्ठतमौ तयाऽऽल्या ॥४१॥
मनोरमे पुष्पमये सुदिव्ये गवाक्षजालैः समलङ्कृते च ।
त्रिधाऽनिलैः पूरितमण्डपे वै नानापरिस्पन्दसमन्विते च ॥४२॥
सिंहासने रत्नमये सुरम्ये निवेशितौ स्वास्तरणेन युक्ते ।
सखीनिकायैः परिवारितौ तौ विरेजतुः प्रीतिनिषेव्यमाणौ ॥४३॥
छत्रं गृहीत्वा मृदुपाणिपद्मे काचित्तु सिंहासनपृष्ठभागे ।
रराज रामा नलिनायताक्षी दिव्याम्बराभूषणभूषिताङ्गी ॥४४॥
काश्चिच्चलच्चामरपद्महस्ताः स्थिताः सुखं तत्र च सव्यपार्श्वे ।
काश्चिन्मयूरस्य सुपिच्छगुच्छानादाय रेजुः प्रियदक्षभागे ॥४५॥

पुनः अपनी सखियोंके द्वारा सावधानकी गयी, रास कुञ्जकी उस सखीने, अपनी उदार धृतिसे, हृदयको स्थिर करके सखियों सहित श्रीमिथिलेशनन्दिनी व श्रीरघुवरप्यारेजूकी आरती की ॥३९॥ तत्पश्चात् वह अपने हृदयके स्वामी-स्वामिनी कमल-नयन श्रीयुगल सरकारके ऊपर फूलोंकी वर्षा करके उस "कामग" विमानसे उतारकर पालकीमें बिठाकरके रास भवनमें ले गयी ॥४०॥ उस सखीने परम प्यारे दोनों सरकारको लताओंसे बने हुये गृह, फले हुए वृक्ष व गुल्मोंसे युक्त कोयलोंके शब्दसे सुशोभित, फूली हुई वाटिकासे अलंकृत, उस रास भवनमें ॥४१॥

नाना प्रकारकी रचनासे युक्त, शीतल, मन्द, सुगन्ध पवनसे पूर्ण, जालदान (झरोखों) से सुशोभित फूलोंसे बनाये हुये परम सुन्दर, अत्यन्त दिव्यमण्डपमें ॥४२॥

अतीव सुन्दर विछावन युक्त रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया। सखी वृन्दोंसे घिरे हुए, श्रीयुगल सरकारकी, प्रेम पूर्वक उस सखीने इस तरहसे सेवाकी, जिससे वे प्रसन्नताके कारण परम शोभाको प्राप्त हुए ॥४३॥

कोई दिव्य वस्त्र भूषणोंसे भूषित अङ्ग वाली, कमलके समान विशाल लोचना सखी, अपने कोमल हस्त-कमलमें छत्र लेकर सिंहासनके पीछे सुशोभित हुई ॥४४॥

कुछ सखियाँ अपने २ हस्त कमलोंमें चवँर डुलाती हुई सुखपूर्वक, श्रीयुगल सरकारके बायें भागमें खड़ी हुईं और कुछ अपने हाथोंमें मयूरपङ्ख (मोरछल) लेकर उनके दाहिने भागमें सुशोभित हुईं ॥४५॥

सुवर्णदण्डानपरास्तथैव द्विपार्श्वयोः पाणितले निधाय ।
सवल्लभाया जनकात्मजाया रेजुः पराध्यांशुकभूषणाढ्याः ॥४६॥
ताम्बूलपात्राणि मनोहराणि काश्चित्समादाय सरोजपाणौ ।
काश्चित्तु मिष्टानि फलानि भक्त्या निधाय पात्रेषु समास्थिताश्च ॥४७॥
सपल्लवं दीपयुतं च काश्चिद्दास्यो गृहीत्वा कलशं विरेजुः ।
काश्चित्सरय्वा अमृतोपमाम्भः पात्रेषु चाधाय सुवर्णवर्णाः ॥४८॥
काश्चित्तदैवं चषकाणि पाणौ मिष्टान्नपात्राणि तथैव काश्चित् ।
तयोर्विरेजुर्युगपार्श्वयोस्ताः श्रीजानकीराघवयोः शुभाङ्ग्यः ॥४९॥
धूपं तदाऽऽघ्राप्य प्रदर्श्य दीपं नैवेद्यकस्यापि विधिं चकार ।
सुपायसैस्तावपि तर्पयित्वा साऽकारयच्चाचमनं प्रियाभ्याम् ॥५०॥
नीराजनं साऽथ चकार मुख्या हर्षाश्रुकाम्भोरुहपत्रनेत्रा ।
गानैश्च वाद्यैर्दरनिःस्वनैश्च युता वयस्याभिरलङ्कृताभिः ॥५१॥
पुष्पाञ्जलिं सादरमर्पयित्वा प्रियाप्रियाभ्यां मृगशावकाक्षी ।
चक्रे स्तुतिं सा प्रणिपत्य भूयः श्रीप्रेयसोरब्जपदद्वयोर्हि ॥५२॥

कुछ बहुमूल्य वस्त्र-भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुई, सोनेकी छड़ी हाथमें लिये श्रीयुगल सरकारके दोनों भागमें सुशोभित हुईं ॥४६॥

कुछ सखियां, प्रेम पूर्वक अपने हस्तकमलमें मनोहर पानदान, और कुछ मीठे फलोंके पात्र लेकर सुशोभित हुईं ॥४७॥ कुछ दासियाँ आम्र पल्लवके सहित दीप युक्त सुवर्णमय कलशोंको लेकर और कुछ सुवर्णके समान गौर-अङ्ग वाली सखियाँ अनेक पात्रोंमें अमृतके समान स्वादिष्ट श्रीसरयूजीके जलको लिये हुई सुशोभित हुईं ॥४८॥

इसी प्रकार उस समय कुछ सखियाँ गिलास आदि पीनेके लघु पात्र तथा सुस्वादु मिष्टान्न पात्रोंको लेकर श्रीजनकनन्दिनी व श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके दोनों बगलमें सुशोभित हुईं ॥४९॥

उस रास कुञ्जकी सखीने श्रीयुगलसरकारको धूप सुँघाकर तथा मङ्गलदीपक दिखाकर नैवेद्य की विधि प्रारम्भकी, सुन्दर पायस (खीर) से दोनों प्यारे सरकारको तृप्त करके, आचमन कराया ॥५०॥ उसके पश्चात् हर्षाश्रु युक्त कमल-पत्रके समान नेत्रवाली उस प्रधान सखीने, रास-शृंगार सम्पन्ना सखियोंके सहित, गान, वाद्य, और शङ्ख ध्वनि पूर्वक श्रीयुगल-सरकार की आरती की ॥५१॥ पश्चात् मृगके बच्चेके समान विशाल, चञ्चल, लोचना वह सखी, दोनों सरकारोंको पुष्पाञ्जलि प्रदान करके उनके कमलके समान कोमल, सुगन्ध युक्त श्रीचरणोंमें प्रणाम करके स्तुति करने लगी ॥५२॥

जय रासरसेश्वरि ! पूर्णतमे ! रघुनन्दन ! आर्यकुमार ! हरे! ।
जय चारुमृगाक्षि ! मनोज्ञतनो ! जलजाक्ष ! विमोहितमार! हरे ॥५३॥

जय भूमिसुतेऽखिलसौख्यनिधे ! रससद्म ! मनोहररूप ! हरे ! ।
जय शीलकृपापरमायतने ! मम नाथ ! रसेश्वर-भूप ! हरे ! ॥५४॥

जय सर्वसुरद्रुमपद्मपदे ! शरणागतवत्सल ! राम ! हरे ! ।
जय सर्वहितैषिणि ! वेदनुते ! रसिकेश्वर ! रूपललाम ! हरे ! ॥५५॥

जय सर्वसुदिव्यगुणौघयुते ! श्रुतिवेद्य ! निजाश्रितसेव्य ! हरे ! ।
जय कोटिसुधांशुमनोज्ञमुखि ! प्रियवर्य ! परेशविभाव्य ! हरे ! ॥५६॥

रासकुन्जकी सखी बोली:–हे पूर्णतमे ! (परब्रह्म स्वरूपे) हे रासरसेश्वरि ! (भगवदानन्द प्रदायक रस आनन्द की स्वामिनीजू ! हे भक्तोंके दुःखहारी प्राणप्यारे ! श्रीरघुनन्दनजू ! आपकी जय हो। हे मृगके समान विशाल व सुन्दर चञ्चल लोचनोंसे युक्त मन-हरण व मङ्गल-मय विग्रह वाली श्रीकिशोरीजी ! हे कमल नयन ! अपने सौन्दर्यसे कामको मोहित करने वाले, हे भक्तोंके दुःख हारी प्यारे! आपकी जय हो ॥५३॥

हे समस्त सुखोंकी निधि-स्वरूपा श्रीभूमिनन्दिनीजू ! आपकी जय हो। हे आनन्दके मन्दिर! मनहरण रूप, भक्त-दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ! हे शील व कृपाकी सर्वश्रेष्ठ भवन-स्वरूपा श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे रसोंके स्वामी-सम्राट्, भक्त-दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ॥५४॥ हे प्राणिमात्रके लिये कल्पवृक्षके समान अभीष्ट फलदायक चरण-कमल वाली श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। हे शरणमें आये हुये जीवोंके ऊपर वात्सल्य भाव रखने वाले, घट-घट-बिहारी भक्त-दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो। सभी चर-अचर प्राणियोंका हित चाहने वाली, वेदोंके द्वारा स्तुति की हुई हे श्रीस्वामिनीजी! आपकी जय हो। भक्तोंके शासन (आज्ञा) में रहने वाले, रूपसे परम सुन्दर-भक्त दुःखहारी हे प्यारे ! आपकी जय हो ॥५५॥

समस्त, सुन्दर, दिव्य (अप्राकृत) वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, कारुण्य, माधुर्य औदार्य आदि गुण समूहोंसे युक्ता हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। वेदोंके द्वारा कुछ समझमें आने योग्य, तथा अपने आश्रितोंके लिये ही सुलभ-सेवा वाले, भक्त-दुखहारी हे प्यारे ! आपकी जय हो। करोड़ों चन्द्रमाओंके समान मनोहर मुखवाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो। प्रेमपात्रोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा भावना करने योग्य, भक्त दुखहारी हे प्यारे ! आपकी जय हो ॥५६॥

जय रासरते ! रसिकेशनुते ! जय वारिधिजामुनिवास हरे ! ।
जय पद्मजविष्णुशिवार्च्यपदे ! क्षितिजाहृदयाब्जनिवास ! हरे! ॥५७॥

जय दीनहिते ! मिथिलेशसुते ! रघुवंशविभूषण ! कान्त! हरे! ।
जय मोहनमोहिनि ! शीलनिधे ! नृपनन्दन! वल्लभ ! दान्त! हरे! ॥५८॥

जय चन्द्रकलादिसखीमहिते ! मुनिमानसराजमराल ! हरे ! ।
जय जानकि ! रूपनिधे ! परमे ! रुचिरस्मित ! भूषितभाल! हरे! ॥५९॥

जय लज्जितकोटिसहस्ररते ! त्रिदशद्विजधेनुसुपाल ! हरे ! ।
जय दिव्यविभाव्यतनो ! शुभदे ! धृतरत्नविभूषणमाल ! हरे ॥६०॥

श्रीप्राणप्यारेजूके आनन्दमें आसक्त रहने वाली, तथा भक्तोंके शासनमें रहने वाले प्राण-प्यारेजू द्वारा स्तुतिकी हुई हे श्रीस्वामिनीजू ! आपकी जय हो। हे लक्ष्मीजीके सुन्दर निवास भवन, हे भक्त दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो । ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके द्वारा पूजने योग्य श्रीचरण-कमल वाली हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । श्रीभूमिनन्दिनीजूके हृदय रूपी कमलमें निवास करने वाले हे भक्त भयहारी प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥५७॥

साधनाभिमान रहित साधकोंका हित करने वाली हे श्रीमिथिलेश-दुलारीजू ! आपकी जय हो, रघुवंशको भूषित करने वाले ! हे भक्त दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो । हे विश्व-विमोहन श्रीप्राणप्यारेजीको अपने गुण, स्वरूप आदिसे मुग्ध करने वाली, शीलकी निधि स्वरूपा हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो । इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुये हे भक्त दुखहारी नृपनन्दन प्यारेजू ! आपकी जय हो ॥५८॥

श्रीचन्द्रकला आदि सखियोंसे पूजित हे श्रीकिशोरीजी ! आपकी जय हो, मुनियोंके मन रूपी मानसरोवरमें निवास करने वाले राजहंस, भक्तोंके दुखहारी हे प्यारेजू आपकी जय हो। समस्त शक्तियोंमें सर्वश्रेष्ठ, रूपकी निधि हे श्रीजनकलडैतीजू ! आपकी जय हो। सुन्दर मुस्कानसे युक्त खौर आदिसे भूषित भालवाले, हे भक्त दुखहारी प्यारे ! आपकी जय हो ॥५९॥

अपने श्रीअङ्गकी शोभासे करोड़ो हजार रतियों को लज्जित करने वाली हे श्रीकिशोरीजी! आपकी जय हो । विशेष रूपसे देव, ब्राह्मण (ब्रह्मोपासक), गौका पालन करने वाले हे भक्त दुख-हारी प्यारे! आपकी जय हो । अप्राकृत प्राणियोंके द्वारा भावना करनेके योग्य श्रीविग्रह वाली तथा भक्तोंके लिये मङ्गल प्रदायिका हे श्रीकिशोरीजी आपका मङ्गल हो । रत्नोंके भूषण व मालाओं को धारण करने वाले भक्त दुखहारी हे प्यारे ! आपकी जय हो ॥६०॥

अधुना निजपादसरोजरता अनुगाः परिनन्दयतं कृपया ।
मिथिलेशसुते ! रघुनन्दन ! हे निजमङ्गलरासमहोत्सवतः ॥६१॥

श्रीशिव उवाच ।

इयमेव हि सम्प्रति मे पदयोर्युवयोर्विनतिर्विनतिर्विनतिः ।
इति सोक्तवती चरणाम्बुजयोः पतिता भृशमोदभरेण हृदा ॥६२॥
उत्थापिता सादरमम्बुजाक्षी ह्याश्वासिता तर्हि सुखास्पदाभ्याम् ।
स्पृष्ट्वा च सुस्निग्धकराम्बुजाभ्यां कृपाकटाक्षैर्वचनैः स्मितैश्च ॥६३॥
आज्ञापिताः प्राणपरप्रियाभ्यां गन्धर्वनागामरकिन्नराणाम् ।
यक्षादिकानां तनया नृपाणां रासोत्सवाय स्मितमोहनाभ्याम् ॥६४॥
यथोचितेष्वासनकेषु विष्टा माणिक्यरत्नाञ्चितमण्डपे ताः ।
रासोत्सुका रासपरा रसज्ञा राकापतिस्मेरमनोहरास्याः ॥६५॥
वरालकाः पद्मपलाशनेत्राः परार्ध्यदिव्याभरणाञ्चिताङ्गयः ।
प्रतीक्षमाणा मनसा निदेशं श्रीजानकीराघवयोर्विरेजुः ॥६६॥

हे श्रीमिथिलेशनन्दिनी श्रीकिशोरीजी ! हे श्रीरघुनन्दनप्यारेजू ! अब आप दोनों सरकार अपने मङ्गलमय भगवदानन्द प्रदायक महोत्सव द्वारा श्रीचरण-कमलोंमें आसक्त रहने वाली अपनी अनुचरियोंको पूर्ण आनन्दित कीजिये ॥६१॥

हे श्रीयुगलसरकार! इस समय आपके श्रीचरण कमलोंमें, मेरी यही विनती है, यही विनती है, यही विनती है। भगवान शंकरजी बोले :— हे पार्वती ! रास कुञ्जकी मुख्य सखीने इस प्रकार श्रीयुगल सरकारसे प्रार्थनाकी और आनन्दित हृदयसे उनके श्रीचरण कमलोंमें गिर पड़ी ॥६२॥ तब परम सुखके स्थान श्रीयुगल सरकारने उस कमल-लोचन सखीको बड़े आदर-पूर्वक उठाकर, अपने अत्यन्त चिकने व कोमल हस्त कमलोंसे उसके सिर आदिका स्पर्श करके, अपने कृपाकटाक्ष, मुस्कान व मनोहर वचनोंके द्वारा उसको आश्वासन (सान्त्वना) प्रदान किया ॥६३॥ अपने मुस्कान मात्रसे सभीको मुग्ध करने वाले प्राणोंसे परम प्रिय श्रीयुगल सरकारने गन्धर्व, नाग, देव, किन्नर, यक्षादिकों की कन्याओं को तथा राज कुमारियोंको भगवदानन्द प्राप्तिकारणीलीला के लिये आज्ञा प्रदानकी ॥६४॥

उस रत्न खचित मणिमय मण्डपमें शरद्ऋतुके पूर्णचन्द्रके समान मनोहर, मुस्कान युक्त मुखवाली, प्यारके स्वरूपज्ञानसे युक्त, प्यारके नाम, रूप लीला, धाममें आसक्त तथा प्यारके ही आनन्द की उत्सुक, वे सखियाँ यथोचित आसनों पर बैठ गयीं ॥६५॥

उत्तम अलकावलीसे युक्त कमल-दलके समान नेत्र व बहुमूल्य दिव्य-भूषणोंके शृङ्गारसे अलंकृत अङ्गवाली सखियाँ, मन ही मन श्रीजनक-नन्दिनी व श्रीरघुनन्दन प्यारेजूकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती हुई सुशोभित हुईं ॥६६॥

श्रीचारुशीलेन्दुकलादिसख्यः स्थितास्तयोश्चाभिमुखं प्रधानाः ।
श्रुतिप्रियाह्लादकगानविद्यायुक्ताः सखीभिः स्पृहणीयभावाः ॥६७॥
चक्रुः सवाद्यं सरसं च गानं तालादिभेदैः स्वरसप्तकेन ।
प्रसादयन्त्यो नवदम्पती ताः कारुण्यमाधुर्यसुखैकमूर्त्ती ॥६८॥
आज्ञापितास्तु क्रमतोऽम्बुजाक्ष्या सकान्तया वै कृतयूथकाश्च ।
रासाजिरे नृत्यकला विचित्राः प्रादर्शयन्कौशलमात्मनस्ताः ॥६९॥
विद्युल्लतास्ताः समुदीक्ष्य तत्र नवाम्बुदो नैकतनुर्विवेश ।
तेनान्वितास्ता अभवन् हि सर्वा नान्यामपश्यन्सहितां तु तेन ॥७०॥
आत्मानमालोक्य समं प्रियेण नान्याः सखीर्मोदयुता बभूवुः ।
दोर्भ्यां गृहीत्वा प्रियपाणिपद्मे मनोहराङ्गयो ननृतुर्विमुग्धाः ॥७१॥
तासां तदा नूपुरकिङ्किणीनां श्रुत्वा रवं देवगणाः सभार्याः ।
द्रष्टुं तु तद्विस्मितमानसास्ते स्थलोन्मुखाकाशगता विरेजुः ॥७२॥

श्रवणोंको प्रिय तथा आह्लाद कराने वाली गान विद्यासे युक्त, प्रशंसा करने योग्य भाव वाली श्रीचारुशीला एवं श्रीचन्द्रकला आदि मुख्य सखियाँ श्रीयुगलसरकारके सम्मुख विराजीं ॥६७॥
तथा कारुण्य, माधुर्य और सुखकी अद्वितीय मूर्त्ति, सदा ही नवीन रहने वाले श्रीयुगल सरकारको प्रसन्न करती हुई, सप्तम स्वरसे युक्त तालादिक भेद पूर्वक, बाजोंके सहित, सरस (आनन्दमय) गीत गाने लगीं ॥६८॥

श्रीप्राणप्यारेजू सहित कमल लोचना श्रीकिशोरीजीका आदेश पाकर, वे सखियाँ अपने-२ क्रम (पारी) से, यूथ बना २ कर रासके प्राङ्गण (आँगन) में श्रीयुगल सरकारको विचित्र २ (आश्चर्य पूर्ण) नृत्य कला एवं निपुणता, दिखलाने लगीं ॥६९॥

बिजलीकी लता समान उन सखियोंको देखकर, नवीन मेघके समान श्याम वर्ण श्रीप्राण-प्यारेजू, उनके सुखार्थ अनेक (सहस्रों) रूप होकर उन में मिल गये, जिससे सभी सखियाँ श्रीप्राणप्यारेजूसे युक्त हो गयीं, परन्तु किसी भी सखीने अपनेसे अन्य किसी सखीको प्यारेसे युक्त नहीं देखा ॥७०॥ वे मनोहर अङ्गों वाली सखियाँ केवल अपनेको प्यरेके साथ तथा अन्योंको एकाकी देखकर अपने प्रति उनकी विशेष कृपाका अनुभव करके, बड़ी ही सुखी हुई अतः प्यारे पर विशेष मुग्ध होकर वे प्यारेके दोनों कर कमलोंको अपने हाथोंसे पकड़कर नाचने लगीं ॥७१॥ नाचती हुई उन सखियोंके नूपुर किङ्किणी आदिक भूषणोंके शब्दको सुननर अप्सराओंके सहित देवगण विस्मित हो गये, अतः वे अपनी प्रियाओंके सहित उस लीलाका दर्शन करनेके लिये आकर आकाशमें सुशोभित हुए ॥७२॥

पुष्पाण्यवर्षन्विबुधद्रुमाणां दृष्ट्वा हरिं नृत्यकलानिमग्नम् ।
तेषां निपेतुः पटभूषणानि सरोजमाल्यानि गतस्मृतीनाम् ॥७३॥
पुनश्च गानं पुनरेव नृत्यं गानं सनृत्यं पुनरेव चक्रुः ।
आलक्ष्यते प्राणधनं सखीषु निजस्वरूपेण सहस्रशश्च ॥७४॥
ततस्तु कान्तांसधृतैकहस्तः प्रियः सखीमण्डलमध्यगोऽसौ ।
रराज रामो रमणीयरूपः कैशोरमूर्त्तिर्हृतकामदर्पः ॥७५॥
स रूक्षवाचः स्वगिरा पिकादीन् गानेन गन्धर्वसुताश्च रासे ।
व्यलज्जयत्कोटिमनोभवं स रूपेण गुर्वीं सुषमां प्रपन्नः ॥७६॥
यदा प्रियाया मृदुपाणिपद्मे निधाय हस्ताम्बुजयोर्मनोज्ञे ।
ननर्त रामः प्रियया परीतोऽवाग्गोचरा तस्य छबिस्तदाऽऽसीत् ॥७७॥
स्रग्वस्त्रभूषावयवस्मृतिश्च जगाम मूर्च्छां किल सर्वथैव ।
तत्र स्थितानामवलोक्य कामं प्राणेश्वरौ रासपरायणौ तौ ॥७८॥
रामस्तदा रासविलासकौशलं समीक्ष्य तत्रासुपरप्रियायाः ।
माधुर्यसिन्धोश्छबिरूपसिन्धोराश्चर्यसिन्धावभवन्निमग्नः ॥७९॥

वे देवगण भक्त दुखहारी प्यारे को नृत्यकलामें निमग्न देखकर कल्पवृक्षोंके फूलोंकी वर्षा करने लगे, आनन्दमें शरीर आदिका भान न रहनेसे उनके वस्त्र भूषण और कमलकी मालायें गिरने लगीं ॥७३॥ इधर सखियाँ गान पुनः नृत्य पुनः गान पुनः नृत्य सहित गान करने लगीं, उस समय सखियों के बीचमें प्राणधन (प्यारे) भी, अपने स्व स्वरूपसे हजारों दिखाई पड़ने लगे ॥७४॥ अपनी शोभासे कामके अभिमान को चूर करने वाले, सोलह वर्षकी नूतन किशोर अवस्थासे सम्पन्न, सुन्दर स्वरूप, घट-घट विहारी, प्राणप्यारे सरकार श्रीकिशोरीजीके कन्धे पर अपना एक हस्तकमल रखे सखियोंके मध्य-मण्डलमें सुशोभित हुये ॥७५॥

उस रासमें अपनी वाणीसे कोयल आदिकोंको तथा अपनी गानविद्यासे गन्धर्व कन्याओंको तुच्छ करते हुये अधिकातीत शोभाको प्राप्त, उन सरकारजूने अपने रूपसे करोड़ों काम देवोंको लज्जित कर दिया ॥७६॥ जब श्रीप्राणप्यारेजू श्रीप्रियाजूके कोमल व मनोहर हस्त कमलको अपने दोनो हस्त कमलोंमें रखकर श्रीप्रियाजूके सहित नृत्य करने लगे, उस समय उनकी छबि, वाणीसे अवर्णनीय थी ॥७७॥ रास करते हुये दोनों प्राणनाथ (श्रीयुगल सरकार) का, इच्छानुसार दर्शन करके वहाँ उपस्थित सखियोंको, तथा गुप्त रूपसे उपस्थित अन्य देव पत्नियोंको अपने वस्त्र-भूषण, अङ्ग आदिकी सुधि विल्कुल जाती रही ॥७८॥

तब रासकुञ्जमें समुद्रके समान अथाह छबि, रूप, माधुर्य सम्पन्ना, प्राणोंसे परम प्यारी श्रीमिथिलेश-दुलारीजूकी रासक्रीड़ाकी निपुणताको सम्यक प्रकारसे अवलोकन करके योगियों के मनमें रमण करनेवाले घट-घट वासी श्रीप्राणप्यारेजू आश्चर्य-सागरमें निमग्न हो गये ॥७९॥

ततस्तु नागामरसिद्धयक्षगन्धर्वविद्याधरकिन्नराणाम् ।
राज्ञां सुतानां निमिसम्भवानां स्वलङ्कृतानां रतिमोहिनीनाम् ॥८०॥
आज्ञापितानां निधुभानुपुत्र्या यूथैः समावृत्य विचित्ररीत्या ।
कृतो महारासमहोत्सवश्च रामं सकान्तं किल मोदयद्भिः ॥८१॥
पीताम्बरस्ताश्च सखीः समस्ता अनन्तरूपोऽसुखयन्मुदैवम् ।
प्रियेङ्गितज्ञस्तु निशीथकालं व्यतीतमाबुध्य जगाम तन्द्राम् ॥८२॥
अतिश्रमाप्ता अपि ताश्च सर्वा दरालसाकुञ्चितचक्षुरब्जौ ।
निरीक्ष्य संवेशगृहं तदानीं समानयामासुरुदीर्णकान्ती ॥८३॥

तदनन्तर नाग, देव, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, राजकन्याओं तथा अपनी छबिसे रतिको मुग्ध करने वाली सुन्दर शृङ्गार युक्ता निमिवंश कुमारियों ने श्रीचन्द्रकलाजी की आज्ञा प्राप्तकर, समस्त यूथोंके सहित श्रीप्रियाजूके समेत परमप्यारे श्रीरामजी सरकारको अपने आवरण में लाकर उन्हें आनन्दित करते हुये विचित्र रीतिसे महारास महोत्सव प्रारम्भ किया ॥८०॥८१॥ इस प्रकार पीताम्बर धारी श्रीप्राणप्यारेजू आनन्द पूर्वक, अपने अनन्त रूप बनाकर, उन समस्त सखियोंको सुखी किये । पुनः श्रीप्रियाजूके सङ्केत से अर्धरात्रिका समय गत हुआ जानकर, आलस्य प्रकट करने लगे ॥८२॥

अतएव स्वयं विशेष श्रमको प्राप्त हुई वे समस्त सखियाँ, कान्तिपुञ्ज, श्रीयुगल सरकारके नेत्रकमलोंको किञ्चित् आलस्यसे सकुचे हुये देखकर, उसी समय उन्हें शयनागारमें ले गयीं॥८३॥

इति पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

विरह विह्वला श्रीस्नेहपराजी को अपने महलमें श्रीयुगल सरकारकी शयन-झाँकी ।

श्रीशिव उवाच ।

तन्मन्दिरं कोटिशशिप्रकाशं विचित्रचित्रं सुविचित्रशोभम् ।
आवश्यकाशेषसुवस्तुयुक्तं सर्वर्तुसेव्यं गिरिजे ! मनोज्ञम् ॥१॥

हे पार्वती! वह शयन भवन चन्द्र समूहोंके समान शीतल और प्रकाश वाला, आश्चर्यकारी, चित्रोंसे सुशोभित, परम विचित्र शोभा सम्पन्न और आवश्यक समस्त सुन्दर वस्तुओंसे युक्त एवं चित्ताकर्षक तथा सभी ऋतुओंमें सेवन करने योग्य था ॥१॥

विधाय नैराजनमुत्सवं ता निधाय तौ चोरसि कुञ्जमीयुः ।
आघ्राय पादाम्बुजसौरभं च स्वं स्वं कथञ्चित्परितोषिता वै ॥२॥

संप्रस्थितास्वम्बुजलोचनासु स्नेहाञ्चिता स्नेहपरा तदानीम् ।
पत्योः समालोकनसाभिलाषे विमेषशून्ये नयने चकार ॥३॥

ताम्बूलवीटीश्च शिवे ! प्रियाभ्यां समर्प्य माणिक्यसुतल्पगाभ्याम् ।
स्थिता निबद्धाञ्जलिरश्रुनेत्रा दृष्ट्वा वियोगावसराधिमाप्ताम् ॥४॥

महादयार्द्राशयया स्वहस्ताद्भुक्तस्रजो दानत आदरेण ।
प्रियेण साकं स्ववचोभिराज्ञां ददौ स्वकुञ्जं परितोष्य गन्तुम् ॥५॥

आज्ञां च तस्याः सुनिधाय भाले संस्पृश्य दृग्भ्यां चरणारविन्दे ।
निवेश्य चित्ते च तयोः स्वरूपं कुञ्जं गतेन्द्वर्कजया सहैव ॥६॥

स्वापालयद्वारि बहिः स्थिता सा नताऽतिसौभाग्यविभूषिभाला ।
आश्वास्यमाना विपुलप्रयत्नैर्नीता कथञ्चित्स्वनिकुञ्जमाद्यम् ॥७॥

उस शयन भवनमें श्रीयुगल-सरकारकी शयन-आरती करके उनके द्वारा परितोषको प्राप्त करायी गयीं वे सखियाँ, युगल चरणकमलोंकी सुगन्धको सूँघकर, उन्हें अपने हृदयमें विराजमान करके, किसी प्रकार अपने २ कुञ्जको गयीं ॥२॥

जब वे कमललोचना सखियाँ अपने २ कुञ्जके लिये बिदा हुईं, तब अपनी विदाईकी पारी उपस्थित समझकर स्नेहसे शोभित श्रीस्नेहपराजी, श्रीयुगल सरकारका एकटक दर्शन करने लगीं ॥३॥ हे शिवे ! मणिमय सुन्दर पलङ्ग पर विराजमान, दोनों प्यारे सरकारको पानका बीरा समर्पण करके, उनके वियोग वेदनाका समय उपस्थित देखकर, अश्रु युक्त नेत्र हो वह, हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं ॥४॥ श्रीप्राणप्यारेजूके सहित दयासे महाद्रवित हृदय वाली श्रीकिशोरीजीने तब अपने हाथ से आदर पूर्वक प्रसादी मालाके प्रदानसे तथा अपने वचनोंके द्वारा उसे परितोष कराके, निज कुञ्जमें जानेकी आज्ञा प्रदान की ॥५॥

श्रीकिशोरीजीकी आज्ञाको अपने मस्तक पर रखकर, अपने नेत्रोंसे उनके श्रीचरण-कमलों को भली प्रकारसे स्पर्श कर तथा श्रीयुगल छबि हृदयमें विराजमान करके वह श्रीचन्द्रकलाजीके साथ अपनी कुञ्जको गयीं ॥६॥

पुनः श्रीयुगल सरकारके शयन भवनके बाहरी फाटक पर आकर अपने अत्यन्त सौभाग्य भूषित मस्तकको उसीकी ओर झुकाये हुई वह, खड़ी हो गयी, तब श्रीचन्द्रकलाजी वहाँसे बहुत युक्तियों द्वारा आश्वासन कराते हुये उन्हें अपनी श्रेष्ठ कुञ्जमें ले गयीं ॥७॥

ततस्तु तां प्रीतितया मनोज्ञैः कृपालुताऽऽकृष्टाहृदा वचोभिः ।
चन्द्रार्कजा सुष्ठुतया यथार्हमाश्वासयामास सवाष्पनेत्राम् ॥८॥
ग्रीवाद्विमुच्य कुसुमाञ्चितदिव्यमाले श्रीस्वामिनीदयितयोः करकञ्जलब्धे ।
प्रीत्या सरोजकमनीयकरेण तस्या न्यस्ते सुकम्बुरुचिहारिमनोज्ञकण्ठे ॥९॥
तामादिदेश गमनाय पुनः पुनश्च प्रेमाप्लुतेन हृदयेन समादरेण ।
स्पृष्ट्वा तदङ्घ्रियुगलं स्वसखीसमेता तद्धायियौ प्रियतमौ पथि चिन्तयन्ती ॥१०॥
श्रीप्रेयसोर्विरहवारिधिमग्नचित्ता प्रेमाश्रुपूर्णनवसाञ्जनकञ्जनेत्रा ।
ऊचुः सखीति शृणु मे हृदयस्य वार्त्तां पाणिं निधाय निजमञ्जुलकञ्जपाणौ ॥११॥
सौभाग्यभाजनमिदं हि दिनं सुलब्धं दास्यामपीह विहिता च कृपा गरिष्ठा ।
सम्मोहिनी मयि परा करुणावशाभ्यां ताभ्यां विहीनगृहमालि! कथं व्रजेयम् ॥१२॥
रुद्धा गतिश्चरणयोर्मम साम्प्रतं हि कुत्रापि गन्तुमनुगे नहि चास्मि शक्ता ।
इत्थं निगद्य निपपात तु राजमार्गे श्रीप्रेयसोर्वदनचन्द्रविलीनवृत्तिः ॥१३॥

उसके पश्चात् कृपालुतावश अपने आकृष्ट (खिचे हुये) हृदयसे, प्रेमपूर्वक मनोहर वचनोंके द्वारा उन्होंने आँसू भरे नेत्र वाली श्रीस्नेहपराजीको भली प्रकार यथोचित्त आश्वासन प्रदान किया ॥८॥ पुनः श्रीचन्द्रकलाजीने श्रीस्वमिनीजू व श्रीप्यारेजूके हस्त कमलसे मिली हुई फूलों की मालायें अपने गलेसे निंकाल कर, कमलके सदृश सुन्दर, अपने हाथसे, शङ्खकी शोभाको हरण करने वाले श्रीस्नेहपराजीके गले में डाल दी ॥९॥ पुनः प्रेम भरे हृदय से, आदर पूर्वक श्रीचन्द्रकलाजूने उन्हें अपनी कुञ्ज जानेके लिये बारम्बार आज्ञा प्रदान की । तदनुसार वे श्रीस्नेहपराजी उनके युगलश्रीचरणोंका स्पर्श करके अपनी सखियोंके सहित, श्रीयुगलसरकार का चिन्तन करती हुई श्रीचन्द्रकलाजूके महलसे विदा होकर राजमार्गमें आगयीं ॥१०॥

भगवान शङ्करजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीयुगलसरकारके विरह रूपी समुद्रमें डूबे हुये चित्त व प्रेमाश्रुभरे अञ्जन युक्त नवीन कमलके समान नेत्र वाली वे श्रीस्नेहपराजी, सखीका हाथ अपने कमल-कोमल हाथमें लेकर बोलीं:—हे सखी! मेरे हृदयकी बात सुनो ॥११॥

अहह ! आज करुणाके वश हो जाने वाले श्रीयुगल सरकारजू सपरिकर मुझ दासीके कुञ्ज में पधारे, यह उनकी मेरे प्रति परम आश्चर्यकारिणी, बड़ी भारी कृपा हुई । अतः आजका यह दिन मुझे सौभाग्यका पात्र ही मिला । अरी सखी ! जिन श्रीयुगल सरकारके पधारनेसे मेरे उस कुञ्जमें इतने आनन्दकी वर्षा हुई, उनसे शून्य, उस कुञ्जमें कैसे चलूँ ? ॥१२॥

अरी सखी ! मेरे चरणोंकी गति रुद्ध है अर्थात् श्रीयुगलसरकारके विरहसे मेरे पैर आगे बढ़ नहीं रहे हैं, अत एव इस समय कहीं भी जानेको मैं असमर्थ हूँ । भगवान शङ्करजी बोलेः-हे पार्वती ! इस प्रकार कहकर वे श्रीयुगल सरकारके मुख रूपी चन्द्रमें विलीनवृत्ति(अन्तर्वृत्ति) होकर श्रीस्नेहपराजी राज मार्गमें गिर पड़ीं ॥१३॥

सख्यो निरीक्ष्य विरहेण विमूर्च्छितां तां शीतांशुपूर्णवदनां विकला बभूवुः ।
कार्यं किमत्र न हि चेतसि बोधमीयुःशक्त्या कृतेऽपि यतने न च साऽऽप सञ्ज्ञाम् ॥१४॥

आकाशगीः श्रुतिसुखा हि तदैव जाता पुष्पानुवृष्टिसहिता विपुलार्थयुक्ता ।
श्रीमद्यशोध्वजसुते ! सफलो जनिस्ते ह्युत्तिष्ठ याहि भवनं प्रिययोरुपेतम् ॥१५॥

सञ्ज्ञां निशम्य तदवाप च पुष्पवृष्टिं दृष्ट्वाऽथ धैर्यमधिगम्य सखीं बभाषे ।
नो दृश्यते दश सुदिक्ष्वपि काऽपि नारी मर्त्यः कुतः कनकसञ्ज्ञकमन्दिरेऽत्र ॥१६॥

वाणी श्रुता श्रवणमूलसमीपगेव स्वाश्चर्यमुक्तमनयाऽऽलि ! निबोध सत्यम् ।
नूनं हि चेयमधुना सुरवर्त्मवाणी तोषाय मे दयितयोः कृपया प्रसूता ॥१७॥

स्वाश्चर्यकं श्रवणगं हि वचः सखीति "कुञ्जं गतौ हि विरहेण ययोर्युताऽसि" ।
प्रस्वाप्य तौ शयनसञ्ज्ञकमन्दिरेऽहमायामि साम्प्रतमृतं तदिदं कथं स्यात् ॥१८॥

पूर्णचन्द्रमुखी श्रीस्नेहपराजीको श्रीयुगलसरकारके विरहसे मूर्च्छित देखकर सखियाँ व्याकुल हो गयीं, पुनः उन्हें सावधान करनेके लिये उन्होंने यथा शक्ति सब कुछ प्रयत्न किया किन्तु वे सावधान न हो सकीं । अतः सखियोंको सावधान करनेके लिए फिर कोई और उपाय न सूझा ॥१४॥ उसी समय श्रवणोंको सुख देनेवाली बहुत अर्थसे युक्त पुष्पवृष्टि पूर्वक आकाशवाणी हुई कि:—हे श्रीयशध्वजनन्दिनीजू ! आपका जन्म सफल है, उठो और जाओ । तुम्हारा भवन दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारसे सुशोभित है ॥१५॥

उस आकाशवाणीको सुनकर श्रीस्नेहपराजी सावधान हुई, पुनः फूलोंकी वर्षा देखकर धैर्य को प्राप्त हो अपनी सखीसे बोलीं:—हे सखी ! दशो दिशाओंमें मुझे आप लोगोंको छोड़कर यहाँ कोई और स्त्री भी तो नहीं दिखाई देती, तब इस कनक भवनमें मनुष्य कहाँसे आयेगा ? अतः यह फूलोंकी वर्षा किसने की ?, उठो महल जाओ, जिनके बिरहमें तुम व्याकुल हो रही हो उन श्रीयुगल सरकारसे तुम्हारा महल सुशोभित है, यह कहा किसने ? ॥१६॥

अरी सखी ! यह वाणी मुझे ऐसी सुनाई पड़ी है, मानों कोई मेरे कानमें ही कह रहा हो, इसलिये निश्चय ही मेरे सन्तोषके लिये श्रीयुगल सरकारकी कृपासे ही यह आकाशवाणी प्रकट हुई है, सो यह कितने बड़े आश्चर्यकी बात है, परन्तु उसे तुम सत्य जानो ॥१७॥

अरी सखी ! "जिनके विरहसे तुम व्याकुल हो, वे श्रीयुगलसरकार तुम्हारे कुञ्जमें चले गये" आकाशवाणीसे सुना हुआ यह बचन बड़ा ही आश्चर्यमय है, क्योंकि मैं उन श्रीयुगलसरकारको शयन भवनमें शयन कराके ही तो अभी आ रही हूँ, मैं बीच मार्गमें ही हूँ और श्रीयुगलसरकार मेरी कुञ्जमें विद्यमान हैं, यह आकाशवाणीका बचन कैसे सत्य होगा? ॥१८॥

मोघेयमालि ! भवितुं न हि जातु युक्ता मातुः पुरा श्रुतवती बहुवारमेतत् ।
तस्माद्व्रजेम न चिरेण किलात्मकुञ्जं स्यान्मे मनोरथलता सफला न चित्रम् ॥१६॥
वामाक्षिबाहुभृकुटिप्रमुखास्तदङ्गाः विश्वासमाश्वजनयन्स्फुरणैस्तदानीम् ।
गत्वा ददर्श भवनं युगलप्रकाशं प्रेमातुरालिभिरसावतिहाय शोकम् ॥२०॥
अन्तः प्रविश्य मुदिता शयनालये स्वे सुप्तौ निरीक्ष्य चकिता भृशमास बाला ।
दृग्भ्यां तयोश्छबिसुधां सुतरां पिबन्ती ह्यासेदुषीयुगलपादसमीपगा सा ॥२१॥
सेवां चकार विधिना हि मनोऽनुभावैरानन्दमग्नहृदयाऽश्रुकलाकुलाक्षी ।
प्रेम्णा प्रसन्नहृदयावमितद्युती तावुन्मील्य कञ्जनयनेऽहसतां मनोज्ञौ ॥२२॥
दृष्ट्वा तु सा भजदनुग्रहविग्रहौ तौ प्रेमास्पदौ परतमौ नयनाभिरामौ ।
प्राणप्रियौ निजगती सुषमैकमूर्त्तौ बिम्बाधरौ ललितसाञ्जनखञ्जनाक्षौ ॥२३॥

अरी सखी! परन्तु अपनी श्रीअम्बाजीसे यह बात मैं पहले बहुत बार सुन चुकी हूँ, कि, यह आकाशवाणी कभी भी निष्फल नहीं जाती । इसलिये शीघ्र अपनी कुञ्ज चलें, अवश्य ही मेरे मनोरथ रूपी लतामें फल लगेंगे इस विषयमें श्रीयुगलसरकारकी कृपासे कोई आश्चर्य भी नहीं है ॥१६॥ हे पार्वती ! उसी समय श्रीस्नेहपराजीके बायें नेत्र, भुज, भौंह आदि अङ्गोंने अपने फड़कनसे, आकाशवाणीके उस बचनपर उन्हें शीघ्र विश्वास उत्पन्न करा दिया, अतः वे हार्दिक शोकका परित्याग करके दर्शनातुर हो सखियोंके सहित अपने भवनमें पधारीं, वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रीयुगलसरकारके गौर, श्याम प्रकाशसे युक्त अपने भवनको देखा ॥२०॥

फाटकके बाहरसे ही अपने भवनको गौर श्याम प्रकाशसे युक्त देखकर मुदित हो, श्रीस्नेहपराजी भीतर गयीं, वहाँ अपने शयन कक्षमें श्रीयुगल सरकारको सोये हुये देखकर अत्यन्त चकित हो गयी पुनः सावधान होकर श्रीयुगलछबि–सुधाको भली प्रकारसे पान करती हुई दोनों सरकारके श्रीचरणकमलोंके पास बैठ गयीं ॥२१॥

पुनः आनन्दमग्न हृदय और अश्रुओंसे लबा–लब भरे नेत्रों वाली श्रीस्नेहपराजी अपने प्रत्येक मानसिक भावानुसार, श्रीयुगलसरकारके श्रीचरणकमलोंकी विधि पूर्वक सेवा करने लगीं, जिससे असीम कान्ति वाले वे मनहरण श्रीयुगलसरकार प्रसन्न हृदय होकर, अपने कमलके समान सुन्दर नेत्रोंको खोलकर प्रेमपूर्वक मुस्काने लगे ॥२२॥

जिनकी छबि नेत्रोंको परम सुखद है, जो सबसे परे हैं, जिनसे प्रेम करना सब प्रकारसे उचित है, जिनके प्रति प्राणोंके समान प्रेम है, जो अपनी रक्षा करने वाले हैं और सुषमाके स्वरूप हैं, बिम्बाफलके सदृश लाल जिनके अधर हैं, तथा जिनके अञ्जन युक्त खञ्जन पक्षीके सदृश नेत्र भक्तोंका दर्शन करनेके लिये, सदा चञ्चल रहते हैं ॥२३॥

नीलालकावृतशरद्विधुमोहनास्यौ श्रीमन्निमीनकुलमण्डनपुण्यकीर्त्ती ।
श्रीजानकीरघुवरौ रतिमारहेतू प्रेमाम्बुबाहकविभोरतनुः पपात ॥२४॥
संस्पर्शमेत्य च तयोरुपलब्धसञ्ज्ञा श्रीस्वामिनीति दयितेति मुहुस्तदोक्त्वा ।
संवेशभोग्यमतिसुष्ठुतया समर्प्य वीटीर्ददेश विनयेन पुनः प्रियाभ्याम् ॥२५॥
ब्रह्माब्जनाभगजसूदनशेषशेषैः संध्यायमानचरणाम्बुजपीडनं च ।
कर्तुं समारभतभूरिसुखानुभूत्या श्रीप्रेयसोर्जनकजादशयानसून्वोः ॥२६॥
इत्थं तस्यां सुभक्त्या प्रणयवशगता स्निग्धहस्ताम्बुजाभ्याम्,
सेवन्त्यां चारुमत्यां निमिमणितनया प्राणनाथाङ्क एव ॥
सुष्वापाह्लादहेतुः सुखनिधिचरिता सच्चिदानन्दमूर्त्तिः ।
प्रोवाच प्राणनाथो दशरथतनयस्तां सुतुष्टोऽथ कामम् ॥२७॥

काली-काली अलकोंके आवरणसे युक्त, शरद् ऋतुके चन्द्रमाको भी अपने सुन्दर प्रकाश व आह्लादक गुणसे मुग्ध करने वाला जिनका श्रीमुखारविन्द है, जिनकी पवित्र कीर्ति निमि व सूर्यवंश को सुशोभित करने वाली है, जो रति व कामके कारण (उत्पादक) हैं तथा जो रघुकुलमें श्रेष्ठ व श्रीजनकजी महाराजकी दुलारी हैं, भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही जो अपना मङ्गलमय विग्रह धारण करते हैं, ऐसे उन दोनों सरकारोंका दर्शन करके प्रेमके प्रवाहमें शरीर की सुधि (स्मृति) भूल जानेसे श्रीस्नेहपराजी गिर पड़ी ॥२४॥

पुनः श्रीयुगलसरकारके हस्तकमलों का सम्यक् प्रकारसे स्पर्श पाकर सावधान हो वे श्रीस्नेहपराजी "हे श्रीस्वामिनीजू ! हे श्रीप्यारेजू !" इस प्रकार बारं बार कहकर शयन भोग (दूध आदि) बड़ी विनय पूर्वक अच्छी रीतिसे समर्पण करके उन्हें पानका बीरा दिया ॥२५॥

पुनः उन्होंने कथन शक्तिसे परे महान सुखका अनुभव करती हुई परम प्यारे श्रीजनक-नन्दिनी व श्रीदशरथनन्दनजू सरकारके ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष आदि जिनका सदा ध्यान कर रहे हैं, उन्ही दोनों श्रीचरण कमलोंकी सेवा प्रारम्भ की ॥२६॥

इस प्रकार सुन्दर मति वे श्रीस्नेहपराजू परम श्रद्धापूर्वक अपने स्निग्ध हस्त कमलोंके द्वारा श्रीयुगलसरकारके श्रीचरणकमलोंकी सेवामें तत्पर हो गयीं, उनके प्रणयके बशीभूत हो आह्लादकी कारण सत्, चित्, आनन्दमय ब्रह्मका साकार स्वरूप, सुखनिधि चरितोंसे युक्ता, निमि कुलके मणि (श्रीमिथिलेशजी महाराज) की दुलारीजू जब श्रीप्राणनाथजूकी गोदमें सो गयीं, तब परम प्रसन्न हुये श्रीदशरथ-नन्दन प्राणनाथजू अपनी इच्छानुसार श्रीस्नेहपराजीसे बोले ॥२७॥

इति षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

प्यारे के कौतुक निवृत्यर्थं स्नेहपराजी द्वारा श्रीकिशोरीजी के गुण चरित्र वर्णन-भूमिका का श्रीगणेश ।

श्रीराम उवाच ।

वनजलोचन इन्दुनिभानने परमकौतुकमस्ति म इत्यपि ।
कथमगात्तव निश्चलतां रतिः क्षितिभुवो मृदुपादसरोजयोः ॥१॥
कथय मे कृपयाऽऽलि ! रहस्यकं श्रवणगं विदधातुमिहेच्छते ।
अवसरोऽयमुपस्थित उत्तमः पुनरयं श्रवणाय सुदुर्लभः ॥२॥
श्रुतिसुखं चरितं वद पृच्छते श्रुतिगतं स्वदृशा च निरीक्षितम् ।
प्रणयशीलकृपासुषमानिधेर्हृदयसंस्पृशमात्मदमादितः ॥३॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रियतमे सति पृच्छति वै तदा प्रणयसङ्कुचितेन हृदान्विता ।
विनयपूर्वकयाऽऽह तदा गिरा धृतधवाङ्घ्रिसरोजशिरोमणिः ॥४॥
प्रिय ! यथा मिथिलाधिपनन्दिनी परमचित्रगती रसवारिधिः ।
असि तथा त्वमपीह न संशयो न हि भिदा युवयोरणुमात्रिका ॥५॥

हे कमलके समान नेत्र व चन्द्रके सदृश आह्लादकारी मुखवाली स्नेहपराजी ! आपकी भूमि-नन्दिनी श्रीकिशोरीजीके श्रीचरण कमलोंमें ऐसी अटल प्रीति किस प्रकार हुई ? इस विषय में मुझे बहुत ही आश्चर्य है ॥१॥

अरी सखी ! इसलिये आप इस रहस्यको कृपा करके मुझसे कहें क्योंकि मुझे इसके जानने की बड़ी ही इच्छा है, और इस समय यहाँ तुम्हारे द्वारा श्रवण करनेके लिये मुझे अवसर भी बहुत अच्छा मिला है, जिसका पुनः मिलना बहुत कठिन है ॥२॥

इसलिये प्रणय, शील, कृपा, तथा अनुपम सुन्दरताकी सागर स्वरूपा, श्रीप्रियाजूके जो चरित तेरे हृदयमें चुभ कर उनके श्रीचरण कमलोंमें अटल प्रीति प्रदान कर चुके हैं, ऐसे श्रवणोंसे सुने तथा अपनी आँखों से स्वयं देखे हुए उन चरितों को मुझ पूँछने वालेके प्रति आदिसे वर्णन करो, जो तुझ सरीखी भक्ताको आत्म स्वरूपा श्रीकिशोरीजी को ही दे डालने वाले हैं ॥३॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे गिरिराजकुमारी ! श्रीप्राणप्यारेजूके इस प्रकार पूछने पर उनके प्रणय से सङ्कुचित हृदय हो श्रीस्नेहपराजी उनके श्रीचरण कमलोंमें अपनी चूड़ामणि रखकर बहुत ही विनय पूर्ण वाणी से बोलीं ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोली:—हे प्यारे जैसे श्रीमिथिलेश-नन्दिनीजू परम आश्चर्यमयी महिमा वाली तथा आनन्दकी समुद्र हैं, उसी प्रकार आप भी आनन्दके सागर एवं आश्चर्यमयी महिमा वाले हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। हे प्यारे आप दोनोंमें अणुमात्रका भी भेद नहीं है ॥५॥

प्रियतम ! त्वमशेषहृदिस्थितो ननु न वेत्सि वदेति हि सर्ववित् ।
तदपि ते कथयाम्यनुशासनाच्चरितमूर्विसुताङ्घ्रिरतिप्रदम् ॥६॥
श्रुतिगतं मम सम्भवतः पुरा कृतमसुप्रिय ! वा मम शैशवे ।
अविदितं तदयोनिभुवो ध्रुवं परमतो विदितं स्वदृशेक्षितम् ॥७॥
श्रुतिगतं प्रथमं तुनरीक्षितं क्रमविनष्टिभिया कथयामि ते ।
शृणु यदि श्रवणाय च ते रुची रसिकवल्लभ ! आदित एव तत् ॥८॥
निखिलशंप्रदजन्ममहोत्सवे भवत उज्वलकीर्तिनृपाधिपः ।
श्वसुर आप्तमनोरथ एव मे सकलभूमिपतीन्समुपाह्वयत् ॥९॥
मम पिता जनको मिथिलाधिपस्तत उपागमदूरुयशा इह ।
सविधिसत्कृत आत्मविदाम्वरो वरशिशुं स भवन्तमुदैक्षत ॥१०॥
नववपुस्तदवेक्ष्य मनोहरं मदनमोहनमास सुविह्वलः ।
क्व नु ? कुतोऽस्मि ? च कस्त्विति विस्मृतः पुनरवाप्ततनुस्मृतिरास्थितः ॥११॥

हे प्यारे ! आप सभीके हृदयमें विराज रहे हैं, अतः जब सब कुछ जानते ही हैं तो आपही कहें क्या मेरे हृदयके इस रहस्य ज्ञान व श्रीकिशोरीजीके चरितोंको आप नहीं जानते हैं? अर्थात् अवश्य जानते हैं तथापि आपकी आज्ञासे श्रीकिशोरीजीके श्रीचरण कमलोंमें दृढ़ प्रेम प्रदायक, उनके चरितोंको मैं, आपसे वर्णन कर रही हूँ ॥६॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इन श्रीअयोनिजाजूके जो चरित मेरे जन्म पूर्वमें अथवा मेरे शिशु कालमें हुये हैं, उनका मुझे ज्ञान ही क्या? उन्हें तो मैं सुनकर ही जानती हूँ । हाँ, शिशुकाल के बादके चरितोंको मैं निश्चय ही जानती हूँ क्योंकि वे मेरी आँखोंके देखे हैं ॥७॥

हे रसिक वल्लभ ! अर्थात् भक्तोंकोही अपना प्रेमास्पद माननेवाले प्यारे सरकार ! यदि आपकी रुचि श्रीकिशोरीजीके चरितोंके सुननेमें है, तो आप आदिसे ही उन अनुरागप्रद चरितों को श्रवण कीजिये । मैं क्रमभङ्ग भयसे पहले सुने फिर आँखोंसे देखे चरितोंको कहूंगी ॥८॥

हे प्यारे ! सफल मनोरथ, उज्वल (दोषरहित) कीर्तिसे युक्त राजाओंके राजा मेरे श्वसुर श्रीदशरथजी महाराजने, समस्त चर-अचर प्राणियोंके मङ्गल प्रदायक आपके जन्म, महोत्सव में, अपने यहाँ सभी राजाओंको बुलाया ॥९॥ अत एव आपके जन्म महोत्सवमें आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, महायशस्वी मेरे पिता मिथिलापति, श्रीजनकजी महाराज भी यहाँ पधारे और विधिपूर्वक सत्कृत हो जाने पर उन्होंने, अपने अनुचरोंके सहित आपका दर्शन लाभ लिया ॥१०॥

आपके, मदनमोहन, मन-हरण शिशु-स्वरूप का दर्शन करके वे अत्यन्त विह्वल हो गये अतः मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? कहाँ हूँ ? यह भी भूल गये । पुनः अपने शरीरकी सुधि प्राप्त हो जाने पर स्थिर भाव को प्राप्त हुए ॥११॥

सुरमुनीश्वरवन्दितनारदस्तत उपागमदग्निसमद्युतिः ।
तमवलोक्य महीपतिनायकस्त्वरितमुत्थित आसनतोऽखिलैः ॥१२॥
सविधमर्हणमादरपूर्वकं मुनिवरस्य चकार स धर्मवित् ।
समविशन्निकटे पुनरेव तत्समुपलब्धनिदेश उशद्यशाः ॥१३॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

अपि कृतार्थयितुं कृपयैव नः कुत इहागमनं भवतः प्रभो ! ।
सदसि भूमिभृतां तनयो बिधेस्त्विति स पृष्ट उवाच बचो मुनिः ॥१४॥

श्रीनारद उवाच ।

त्वमसि धन्यतमो वसुधापते न हि समस्तव कोऽपि तपोधनः ।
परमहंसमनोनिलयस्तव प्रकटितः शिशुरूपधृगालये ॥१५॥
अधिकमद्य वदामि च किं हि ते परमभाग्यवते कुलनन्दन ! ।
भवत एतदुदीक्ष्य तपःफलं मुनिवराःसुभृशं चकिता वयम् ॥१६॥
तमनुदर्शयितुं क्रियतां कृपा निजसुतं विधिविष्णुशिवेश्वरम् ।
मम महीप ! यदर्थमिहागतिः सपदि द्रष्टुममुं मन आतुरम् ॥१७॥

उसी समय सुर-मुनीश्वरोंसे नमस्कार किये हुये अग्निके समान कान्ति वाले, श्रीनारदजी महाराज आ पधारे, उनका दर्शन करते ही श्रीचक्रबर्तीजी महाराज, उपस्थित सभी सदस्योंके सहित, तुरन्त सिंहासनसे उतरकर खड़े हो गये ॥१२॥

धर्मका रहस्य जानने वाले यशस्वी श्रीकौशलेन्द्रजी महाराजने, विधि सहित, आदर पूर्वक श्रीनारदजीकी पूजाकी. पुनः आज्ञा पाकर उनके समीपमें बैठ गए ॥१३॥

श्रीदशरथजी महाराज बोले–हे प्रभो ! हम लोगोंको कृतार्थ करनेके लिये इस समय कृपा वश आपका शुभागमन कहाँ से हुआ है? श्रीचक्रवर्ती महाराजके द्वारा राज सभामें इस प्रकार पूछे जाने पर भगवद्गुण, रूप, लीला, धाम, मनन-परायण, ब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजी बोले ॥१४॥

हे राजन्! आप निश्चय ही परम धन्यवादके पात्र हैं, आपके समान अन्य कोई भी तपका धनी नहीं हैं, क्योंकि जो तपोधनोंके भी ध्यानमें नहीं आते तथा परम हंसोंके ही विशुद्ध मनोंमें निवास करते हैं, वे ही प्रभु इस समय शिशुरूप धारण करके आपके मणिमय महल में प्रकट हैं ॥१५॥

हे रघुकुलको आनन्दित करनेवाले राजन् । आप परम भाग्यवान्से आज मैं अधिक क्या कहूँ ? हम सभी मुनिगण आपकी तपस्याका फल अपनी आंखोंसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य में पड़े है ॥१६॥

हे राजन् ! जिनके दर्शनोंके लिये ही मेरा आपके यहाँ आना हुआ है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनके शासनमें रहते हैं, अपने उन श्रीलालजीका मुझे वारम्बार दशन करानेकी कृपा करते रहें, अर्थात् जब-जब मैं आपके यहाँ आऊँ, दर्शन कराते ही रहें, इस समय आपके श्रीलालजीका शीघ्र दर्शन करनेके लिये मेरा मन अत्यन्त आतुर हो रहा है, अतः शीघ्र दर्शन कराइए ॥१७॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

इति निशम्य वचः प्रणयोदितं मुनिवरस्य जगाद नृपो मुने ! ।
फलमिदं भवतां कृपयाऽतुलं नतु तपोजनितं कलयाम्यहम् ॥१८॥
यदि च सत्यमिदं प्रकृतेः परो मम सुतत्वमुपागत ईश्वरः ।
करुणयाऽऽत्तसुमङ्गलविग्रहः सुलभ आस स मेऽर्चितुमिच्छते ॥१९॥
समवलोक्य मुनिं मनुजाधिपो निज गिरा किल मौनमुपागतम् ।
द्रुतमिदं च सुमन्त्रमुपस्थितं वचनमाह स शापभिया मुनेः ॥२०॥
त्वमभिगच्छ सुमन्त्र ! ममाज्ञया त्वरितमानय वत्सतराङ्घ्रिशून् ।
इति जगाम सुधीर्भवनोत्तमं नृपवरोक्त उदारयशा असौ ॥२१॥
अनयदाशु भवन्तमुशच्छबि नृपसकाशमसौ जननीगृहात् ।
रुचिरमङ्गलवस्त्रविभूषणं शशिमुखं ह्यनुजैः सह शोभितम् ॥२२॥
लघुसुयानसमागतमन्तिके समवलोक्य सुमन्त्रसुरक्षितम् ।
न च शशाक स नोत्थितुमाश्वतः स हि दधार निजाङ्क इवातुरः ॥२३॥

हे प्यारे ! श्रीनारदजीके इस प्रकार प्रणय पूर्वक कहे हुये बचनोंको सुनकर, महाराज बोले:– हे मुने ! यह अतुलनीय फल, हमें आप लोगोंकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है, इसे मैं अपने तपका फल नहीं मानता ॥१८॥ और यदि यह सत्य है कि अपनी स्वाभाविक असीम करुणा वश होकर "मायातीत ईश्वर ही मङ्गलमय सुन्दर विग्रह धारण करके मेरे पुत्र बने हैं" तो मुझ पूजनाभिलाषीकी पूजाकेलिये वे निश्चय ही सुलभ होगये, अर्थात् ईश्वर भावनासे मैं अपने लालजीकी ही पूजा किया करूँगा, क्योंकि निराकार रूपमें उस ईश्वर की पूजा करनी बड़ी ही अटपटी थी ॥१९॥

हे प्यारे ! महाराज अपने इन वचनोंसे श्रीनारद मुनिको पूर्ण मौन देखकर, उनके शापके भयसे घबराकर पासमें विराजमान श्रीसुमन्त्रजीसे बोले ॥२०॥

हे सुमन्त्रजी ! तुम मेरी आज्ञासे अन्तः पुर जाओ और अत्यन्त छोटे २ मेरे चारों शिशुओं को तुरन्त ले आओ। हे प्यारे ! महाराजकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके सुन्दर बुद्धि सम्पन्न, उदार यश वाले श्रीसुमन्त्रजी, महाराजके अन्तः पुर पधारे ॥२१॥ तथा श्रीअम्बाजीके भवनसे मङ्गलमय वस्त्र भूषणोंको धारण किये हुये, मनोहर छबि सम्पन्न, आप श्रीचन्द्रवदनजीको छोटे भाइयों से सुशोभित श्रीदशरथजी महाराजके पास शीघ्र ले आये ॥२२॥

श्रीसुमन्त्रजीकी संरक्षतामें लघुयान (बालकोंकी सवारी) द्वारा अपने समीप आये हुये आपका दर्शन करके आपके पिताजीसे बैठे न रहा गया. अत एव उन्होंने आतुरके समान उठकर झट आपको अपनी गोदमें ले लिया ॥२३॥

विगतपूर्वविचार उवाच तं पुलकिताङ्ग उपैत्य महामुनिम् ।
मम सुतं परिपश्य शिरोनतं सदय ! नाथ ! च बन्धुभिरन्वितम् ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्रिय ! भवन्तमनङ्गविमोहनं नयनगं सुविधाय स विह्वलम् ।
जडवदास्थितमाह मुनीश्वरं पुनरवेक्ष्य नृपः परिशङ्कितः ॥२५॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

अहह नाथ ! दशा तव कीदृशी किमु भवान् ग्रसितोऽस्ति हि मूर्च्छया ।
वदति नैव च किञ्चिदपीह मे सजलनेत्र ! किमर्थमहो मुने ! ॥२६॥
अपि तु सर्व इहावनिपालका उपगताः समतां किल मूर्त्तिभिः ।
व्रजति मेऽपि च विह्वलतां मनः सुतमवेक्ष्य किमत्र हि कारणम् ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

क्षणमिदं च बभूव कुतूहलं पुनरुपागतशान्तय एव ते ।
अतुलितच्छबिमीक्षितुमुत्सुका जय जयेति मुहुर्मुहुरब्रुवन् ॥२८॥

हे प्यारे ! आपके पिताजीने ईश्वर भावनासे आपकी पूजा करनेका जो विचार किया था वह आपका दर्शन करते ही वात्सल्य रस–धारामें बह गया। उनके सभी अङ्ग आनन्दसे पुलकायमान हो गये, पुनः वे श्रीनारदजीके पास जाकर आपका सिर उनके चरणोंमें झुका कर बोले :– हे दयामय ! हे नाथ! मेरे लालजी अपने भाइयोंके सहित सिर झुकाकर आपको प्रणाम कर रहे हैं, आप उनको अवलोकन कीजिये ॥२४॥

हे प्यारे ! अपनी छबिसे कामको मुग्ध करने वाले आपका, भली प्रकार दर्शन करके मुनि-श्रेष्ठ श्रीनारदजी महाराज विह्वल हो जडके समान स्थित हो गए। उनकी यह स्थिति देखकर आपके श्रीपिताजी विशेष शङ्कासे युक्त हो उनसे बोले ॥२५॥

अहह नाथ! आपकी यह कैसी दशा है? क्या आपको मूर्च्छा हो गयी है? हे अश्रुपूर्णनयन! क्या आप कुछ मनन करनेकी धुनिमें हैं ? जो हमसे अब नेक भी नहीं बोल रहे हैं ॥२६॥

इस राज सभामें उपस्थित सभी राजा भी प्रायः मूर्त्तियोंकी उपमा (तुलना) ग्रहण कर रहे हैं, अर्थात् उनके भी कोई नेत्रादि अङ्ग चलते नहीं दिखाई देते, और मेरा भी मन अपने श्रीलालजी का दर्शन करके विह्वल होता जारहा है, इस उपस्थित परिस्थिति का क्या कारण है ? ॥२७॥

हे प्यारे! क्षण भर यही कौतूहल रहा, पश्चात् वे सब राजा सावधान होकर आपकी उपमा रहित छबि का दर्शन करनेके लिये उत्सुक हो, आपका जयजयकार बोलने लगे ॥२८॥

अजसुतोऽजसुतं मुनिपुङ्गवो नृपतिपुङ्गवमाह यथातथम् ।
यमनुमन्यस आत्मसुतं परं पुरुषमाद्यमवेहि तमव्ययम् ॥२९॥
त्रितनयास्तव चास्य निजांशजा नृपवरोत्तम ! सत्यपराक्रमाः ।
शिवविरिञ्चिनुताः शुचिकिङ्कराः शशिमुखाः पदपङ्कजमाश्रिताः ॥३०॥
प्रियतमोऽखिलदेहभृतामयं चिरमुदीक्षित आत्मशताधिकः ।
असुलभाप्तिसुखेन महीयसा भवति नैव तु कस्य दशेदृशी ॥३१॥
परमशातवपुर्गतमायिकः कुसुमचापविमोहनविग्रहः ।
सकलसाधनमुख्यफलं ह्ययं तव सुतस्त्विदमेव हि कारणम् ॥३२॥
तव तपोनिजदृष्टिपथं गतं चिरमुपासितमद्य यतात्मना ।
नृप ! सुखं परिरभ्य मयोरसा तवसुतं क्रियते सफलो भवः ॥३३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति निगद्य वचो मुनिसत्तमो नृपवराङ्कत आर्द्रविलोचनः ।
समुपगृह्य हृदा परिरभ्य सः प्रिय ! भवन्तमियाय सुखं परम् ॥३४॥

हे प्यारे ! मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीअज (ब्रह्मा)-केपुत्र श्रीनारदजी, महाराजोंमें श्रेष्ठ श्रीअज महाराजके पुत्र (आपके श्रीपिताजी) से यथार्थ रहस्य कहने लगे:—हे राजन्! आप जिनको अपने लालजी मान रहे हैं, उनको सबसे श्रेष्ठ, अविनाशी, परम पुरुष (ब्रह्म) जानिये ॥२९॥

हे महाराजाधिराज ! चन्द्रमाके समान मुखवाले आपके ये तीनों पुत्र ब्रह्मा, शिवसे स्तुति किये हुये, सत्य पराक्रम अंशज ज्ञान बल ऐश्वर्यादिसे युक्त, पवित्र कैङ्कर्यपरायण तथा इनके ही चरण कमलों के आश्रित हैं ॥३०॥

हे राजन् ! सम्पूर्ण शरीर धारियों को ये आपके श्रीलालजी अपनी आत्मासे भी सैकड़ों गुणा अधिक प्रिय हैं, परन्तु अनन्त कालसे जो कभी दर्शन नहीं देते थे, वही आज मङ्गल मय वस्त्र, भूषणोंको धारणकर दर्शन देरहे हैं। ऐसे कल्पनातीत महान् लाभके सुखसे भला किसकी ऐसी पागलदशा न होगी? अर्थात् सभीकी होनी सम्भव है ॥३१॥ आपके श्रीलालजी समस्त साधनोंके मुख्य फल, परम सुख स्वरूप, मायासे परे हैं, इनकी शारीरिक छबिके दर्शनसे कामदेव भी अत्यन्त मूर्च्छित होजाता है, तब अन्य प्राणियोंके लिये कहना ही क्या ? यही सबके मूर्च्छित होने का कारण है ॥३२॥ हे राजन् ! मनको एकाग्र करके जिनका मैंने बहुत काल तक भजन किया परन्तु वे नहीं मिले, आज वही आपके तपःप्रभावसे श्रीलालजी के रूपमें नयनगोचर हैं अतः आज सुखपूर्वक(अनायास)इन्हें हृदयसे लगाकर मैं अपने जन्मको सफल करता हूँ ॥३३॥ श्रीस्नेह-पराजी बोलीं:—हे प्यारे! इस प्रकार मुनिशिरोमणि श्रीनारदजी प्रेम मय बचन कह कर सजलनेत्र हो आपके पिताजी की गोदसे लेकर आपको हृदयसे लगा सर्वोत्तम सुखको प्राप्त हुये ॥३४॥

पुनरसौ भरतं सहलक्ष्मणं रिपुनिषूदनमप्युपगूह्य च ।
असकृदेव मुनिर्मुदितात्मना सुखमवाप भवन्तमनल्पकम् ॥३५॥
आशीर्वादमृषिर्वितीर्य शुभदं सर्वेभ्य एवादरा-
द्भूपेभ्यः प्रणतेभ्य ऊर्जितयशाः पित्रा तवाभ्यर्च्चितः ।
त्वन्मूर्त्तिं सुनिधाय चात्महृदये सम्प्राप्तकामोऽगम-
द्ब्रह्मानन्दपयोधिमग्नहृदयोऽसौ वै कथञ्चित्प्रिय ! ॥३६॥

हे प्यारे ! पुनः वे श्रीनारदजी महाराज अपने मोद भरे हृदयसे श्रीभरतलालजी श्रीलषणलालजी, श्रीशत्रुहणलालजीका तथा आपका बारम्बार आलिङ्गन करके महान सुखको प्राप्त हुये ॥३५॥

हे प्यारे! पुनः वे ब्रह्मानन्द रूपी समुद्रमें डूबे हृदय, महायशस्वी ऋषि, श्रीनारदजी महाराज आपकी मनोहर मूर्त्तिको अपने हृदयमें भली प्रकार रखकर, आपके श्रीपिताजीसे पूजित, पूर्ण काम होकर प्रणाम करने वाले सभी राजाओंको आदर पूर्वक मङ्गल आशीर्वाद वितरण करके किसी प्रकार (बड़ी कठिनता) वहाँसे विदा हुये ॥३६॥

इति सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

श्रीजनकनन्दिन्यैनमः ॥ श्रीनित्यनवबधूवेषायैश्रीस्वामिन्यैममङ्गलम् ॥

अथ श्रीमिथिला (जनक भवन) खण्डम्

अथाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीरामलालजी को सर्वेश्वर जानकर जामातृ रूपमें पाने हेतु श्रीजनकजी द्वारा ऋषियों का मिथिला-आह्वान

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ याते मुनौ तस्मिन् नारदे ब्रह्मसम्भवे । समुत्कण्ठोदिता प्रेष्ठ ! यदृच्छेय पितुर्हृदि ॥१॥
एष धन्यो महाभागश्चक्रवर्ती नराधिपः । राजा दशरथः श्रीमान् कृतकृत्यो न संशयः ॥२॥
अनेनैव नरेन्द्रेण श्रीमता चक्रवर्तिना । नरजन्मफलं प्राप्तं यथेष्टं प्राक्तपो बलात् ॥३॥
अयं तु भगवान् साक्षात्साकेताधिपतिः प्रभुः । परंब्रह्म परंधाम सर्वकारणकारणम् ॥४॥
सर्वावतारमूलं च साक्षी सर्वगतो महान् । कर्ता कारयिता वश्यो, मनोवाचामगोचरः ॥५॥
पुत्रभावेन स प्राप्तो योगिनां परमा गतिः । शरण्यश्च वरेण्यश्च मुनिवर्यानुभावितः ॥६॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! अब मैं आगेका रहस्य आपको सुनाती हूँ । जब वे श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदमुनिराज–सभासे चले गये, तब हमारे पिता (श्रीमिथिलेशजी महाराज) के हृदयमें यह पूर्ण उत्कण्ठा अकस्मात् उदय हुई ॥१॥

ये चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराज ही वास्तवमें श्रीमान् हैं, और धन्यवादके पात्र हैं, यही भाग्यशाली हैं और ये ही कृत कृत्य हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥२॥

अपने पूर्व जन्मके तपो बलसे मनुष्य जीवनका यथेष्ट फल इन्ही श्रीमान् चक्रवर्ती महाराजने प्राप्त किया, जो आज सर्वेश्वर प्रभुको अपनी गोदमें खेलानेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं ॥३॥

ये श्रीरामलालजी ही षडैश्वर्य सम्पन्न, साक्षात् श्रीसाकेतधामके अधिपति (मालिक), सर्व समर्थ, सभी कारणोंके कारण, परमज्योति-स्वरूप, परब्रह्म हैं ॥४॥

ये ही सभी अवतारोंके मूल, अन्तर्यामी रूपसे सभी कर्मोंके साक्षी, निराकार रूपसे सर्व व्यापक ब्रह्म हैं । अपने ही अनेक आकारोंके द्वारा स्वयं विश्वके अनेक प्रकारके कृत्य करने वाले, और परमात्म-रूपसे कराने वाले तथा भक्तोंके ही भावसे सुगमता पूर्वक वशमें होने वाले हैं, अन्यथा ये मन-वाणीसे अगोचर हैं, अर्थात् इनके स्वरूपका न मन मनन और न वाणी कथन ही करनेको समर्थ है ॥५॥

जो योगियोंकी परम गति, प्राणिमात्रकी रक्षा करनेमें समर्थ, सर्वश्रेष्ठ हैं, तथा बड़े-बड़े मुनि जिनकी भावना किया करते हैं, वही श्रीदशरथजी महाराजको पुत्र भावसे प्राप्त हैं, ॥६॥

अनेन देवदेवेन पुत्रत्वमुररीकृते । सर्वे भावा उरीकार्या यथायोगस्य वै ध्रुवम् ॥७॥
तेषु सर्वेषु वात्सल्ये यत्सुखं तदनुत्तमम् । तस्मिन्मुख्याधिकारश्च त्रयाणामेव मे मतिः ॥८॥
ते पिताऽऽचार्यश्वशुराः सभार्याः सानुजादिकाः । श्वशुरस्यैव चैतेषु पदं शेषं हि दृश्यते ॥९॥
तत्प्राप्तिश्च यदि स्यान्मे सफलस्तर्हि मे भवः । अन्यथा मरणं श्रेयो जीवितं पापजीवितम् ॥१०॥
सर्वेश्वरस्य चिन्मूर्त्तेः श्वशुरः स भविष्यति । सर्वेश्वरी हि चिन्मूर्तिर्यस्य पुत्री भविष्यति ॥११॥
अकन्याय कथं त्वस्य मह्यं जामातृरूपिणः । सम्प्राप्तिस्तु भवेदेव यथा तन्नेह साधनम् ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति चिन्तां समापन्नः पिता मे परमधार्मिकः । सदःस्मृत्याप्तधैर्योऽसौ नोदासीनमुखोऽभवत् ॥१३॥
साश्रुनेत्रोऽङ्कतो राज्ञस्त्वामादाय शुभेक्षणम् । आत्मनः क्रोडमारोप्य परमानन्दमाप्तवान् ॥१४॥

इन देवोंके देवजीने जब श्रीदशरथजी महाराजके पुत्र भावको स्वीकार कर लिया है, तब यथा योग्य भाग्यशालियोंके और भी सभी भाव, इन्हें निश्चय ही स्वीकार करने पड़ेंगे ॥७॥

उन सभी भावोंमेंसे वात्सल्य भावमें जो सुख है, वही सबसे उत्तम है, किन्तु उस भावमें भी मेरे विचारसे तीनका ही मुख्य अधिकार है ॥८॥

पिता, आचार्य, श्वशुर ये तीन, अपनी, पत्नियों व भाई आदिकोंके सहित इस वात्सल्य भाव के मुख्य अधिकारी हैं, सो इन तीनों में केवल श्वशुरका पदही मुझे शेष देखनेमें आरहा है, क्योंकि पिता तो दशरथजी हैं ही और आचार्य पदपर श्रीवशिष्ठजी महाराज स्वयं विद्यमान हैं अतः इन दो पदोंकी पूर्ति तो बनी बनाई है, केवल श्वशुरका पदही अभी किसीको नहीं प्राप्त है ॥९॥ यदि इस श्वशुर पदकी प्राप्ति मुझे हो जाय तो, निश्चय ही मेरा जन्म सफल है, नहीं तो मर जानाही मङ्गल-मय है, जीना तो पाप मय है ॥१०॥

परन्तु चिन्मूर्ति (चैतन्यस्वरूप) सर्वेश्वर प्रभुका श्वशुर निश्चय पूर्वक वही हो सकता है जिसकी पुत्री साक्षात् चिन्मूर्ति श्रीसर्वेश्वरीजी होंगी ॥११॥

ऐसी स्थितिमें मुझ कन्या हीनको जमाई रूपसे इन प्रभुकी प्राप्ति कैसे हो सकेगी ? जहाँ इनकी प्राप्तिके लिये मेरे पास सर्वेश्वरी पुत्री रूपी साधन होना आवश्यक था, वहाँ साधारण कन्या रूपी साधन भी तो मेरे पास नही है, तब क्या आशा करूँ ॥१२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! परम धार्मिक मेरे श्रीपिताजी, इस प्रकारकी चिन्तामें पड़गये, परन्तु अपनी उपस्थिति उत्सव सभामें स्मरण करके वे धैर्यको प्राप्त हुए जिससे चिन्तावश उदास मुख देखकर श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अथवा किसी को भी बुरा न लगे ॥१३॥

पुनः मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज, आप मङ्गल दर्शनजीको महाराजकी गोदसे अपनी गोदमें बिठाकर प्रेमाश्रुयुक्त नेत्र होकर, परमानन्दको प्राप्त हुये ॥१४॥

मनोभावं यथार्थेन मनोवाचा निवेद्य ते। कतिघस्राण्युषित्वैवं मिथिलां गन्तुमुद्यतः ॥१५॥
याञ्चयाऽऽसादितानुज्ञस्त्वां निवेश्य निजोरसि। जगाम मिथिलां रम्यां देवर्षिव्रजसङ्कुलाम् ॥१६॥
तत्र रात्रौ जनन्या मे सम्मुखे विदितात्मना। सत्कारस्य प्रशंसा च पितुस्ते भूरिशः कृता ॥१७॥
पुनस्त्वद्रूपमाधुर्यं नारदस्य समागमम्। ऋषिराजेन्द्रसम्वादमुत्कण्ठां च मनोगताम् ॥१८॥
वदतः साश्रुनेत्रस्य पितुर्मे मिथिलापतेः। व्यतीता शर्वरी कृत्स्ना सा क्षणार्द्धमिव प्रिय ! ॥१९॥
प्रातरुत्थाय मे तातः कृतसन्ध्यादिकक्रियः। प्रागात्सभालयं तूर्णं बन्धुमन्त्रिद्विजैर्युतम् ॥२०॥
राजसिंहासनारूढो यथावत्सत्कृतो नृपः। तेभ्य एव च सर्वेभ्यो ह्यनुरक्तेभ्य आदरात् ॥२१॥
कृताञ्जलिपुटः श्रीमान् सर्वज्ञानवतां वरः। कृत्स्नं निवेद्य वृत्तान्तं तूष्णीमास महायशाः ॥२२॥
विस्मितास्तत्समाकर्ण्य सर्व एव सभासदः। ऊचुः करपुटं बद्ध्वा मिथो निश्चित्य सन्मतम् ॥२३॥

सभासद ऊचुः ।

योगिराज ! महाराज ! सम्मतिं भवदाज्ञया। दिक्षुविख्यातसत्कीर्त्ते वयं ब्रूमो यथामति ॥२४॥

तत्पश्चात् वे आपसे अपने मनके भावको मनकी ही वाणीसे यथार्थ रूपमें निवेदन करके, कुछ दिन श्रीअवध में योंही निवास कर, श्रीमिथिलाजी जानेको उद्यत हुये ॥१५॥

बहुत प्रार्थना करने पर आपके श्रीपिताजीसे जानेकी आज्ञा पाकर, वे हमारे पिताजी आपको अपने हृदयमें विराजमान करके, देववृन्द व ऋषिवृन्दोंसे परिपूर्ण परम सुन्दरी श्रीमिथिलाजी पधारे ॥१६॥ आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त मेरे वे श्रीपिता मिथिलेशजी महाराजने श्रीमिथिलाजी पहुँचकर रात्रिके समय हमारी श्रीसुनयना अम्बाजीके सामने आपके श्रीपिताजीके सत्कारकी बहुत प्रशंसा की ॥१७॥ हे प्यारे ! पुनः श्रीअम्बाजीसे आपके स्वरूपका माधुर्य, श्रीनारदजीका आगमन, तथा श्रीनारदजी व महाराजका सम्वाद एवं अपने मनमें प्राप्त हुई उत्कण्ठाका कथन करते-करते अश्रु भरे नेत्र मेरे पिता, श्रीमिथिलापतिजीकी वह सारी रात आधे क्षणके समान शीघ्र ही व्यतीत हो गयी ॥१८॥१९॥

प्रातःकाल उठकर, सन्ध्या आदिक नित्य कृत्यसे निवृत्त हो, वे शीघ्र अपने भाइयों, मन्त्रियों व ब्राह्मणोंसे युक्त सभा-भवनको पधारे ॥२०॥

हे प्यारे ! सभामें पहुँचने पर सभीने उनका यथोचित सत्कार किया, तब वे राजसिंहासन पर विराजमान हो, अपने उन सभी प्रेमियोंसे आदर पूर्वक ॥२१॥

हाथ जोड़कर सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करके समस्त ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, महायशस्वी श्रीमान् मिथिलेशजी महाराज, चुप हो गये ॥२२॥

उस वृत्तान्तको सुनकर सभी सभासद लोग विस्मित हो गये, पुनः परस्पर कर्त्तव्यका निश्चय करके हाथ जोड़कर बोले ॥२३॥ हे दशो दिशाओंमें विख्यात सत्कीर्त्ति सम्पन्न तथा योगियोंमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित, महाराज ! हमलोग आपकी आज्ञासे इस विषयमें यथा बुद्धि अपनी सम्मति निवेदन करते हैं ॥२४॥

श्रूयतां तत्कृपागार ! धर्ममूर्त्ते ! नृपोत्तम ! । यथेष्टं तु विधत्स्वेह स्वयमेव विचार्य च ॥२५॥
आह्वानमृषिमुख्यानां सर्वेषां च महात्मनाम् । क्रियतामविलम्बेन सादरं मुख्यकिङ्करैः ॥२६॥
अपि तेषां सभामध्ये ऋषीणां भावितात्मनाम् । उपायं ज्ञास्यसे युक्तं वर्णितात्ममनोरथः ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स एतद्वचनं तेषां समाकर्ण्य शुभाक्षरम् । बाढमित्यब्रवीद्राजा स्वस्थचित्तो मनोहर ! ॥२८॥
ततस्तेनानवद्येन धर्मज्ञेन महात्मना । विसृष्टाः किङ्करा मुख्या आह्वानाय महात्मनाम् ॥२९॥
ते तु धर्म्याः सदाचारा धर्मज्ञा नयकोविदाः । हृदयज्ञा विनीताश्च सर्वदाऽमृतभाषिणः ॥३०॥
प्रत्येकस्य मुनेर्गत्वाऽऽश्रमं परमपावनम् । नमस्कृत्याब्रुवन्नम्राः प्रार्थनां मिथिलेशितुः ॥३१॥
मिथिलेशेति नामैव श्रुत्वा हर्षसमन्विताः । सत्कारं विधिना चक्रुस्तथेत्याभाष्य वल्लभ ! ॥३२॥
सशिष्याश्च पुनः सर्वे मुनयो वीतकिल्विषाः । अगस्त्यप्रमुखाः प्रेष्ठ! दीप्तानलशिखोपमाः ॥३३॥

हे कृपाके सदन ! धर्म स्वरूप ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! आप उसे श्रवण कीजिये पुनः स्वयं बिचार करके, जैसा उचित समझें, करें ॥२५॥

हम लोगोंकी यह सम्मति है कि आप समस्त मुख्य ऋषियों और महात्माओंको, अपने मुख्य सेवकोंके द्वारा यहाँ शीघ्र आदर पूर्वक बुला लीजिये ॥२६॥

भगवान्का ध्यान करने वाले उन ऋषियोंकी सभामें जब आप अपना मनोरथ निवेदन करेंगे तब उन लोगोंकी कृपासे कोई अवश्य ही अच्छा उपाय ज्ञात होगा ॥२७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे मनहरण सरकार ! सभासदोंके मङ्गलमय अक्षरोंसे युक्त वह वचन सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराज स्वस्थचित होकर बोले—हे सभासदो ! आप लोगोंकी सम्मति मुझे सहर्ष स्वीकार है ॥२८॥ पुनः उस निश्चयानुसार अपने कर्त्तव्योंसे सदा प्रशंसा योग्य, धर्मके रहस्यको भली प्रकार जानने वाले मेरे श्रीपिताजीने हृदयमें आपका स्मरण कर, श्रीभगवानको ही अपने हृदयमें बसाने वाले महर्षियोंको बुलानेके लिये अपने मुख्य सेवकोंको विदा किया ॥२९॥ धर्मपरायण, सदाचारी, धर्मको जानने वाले, नीतिशास्त्र के विद्वान, हृदयका भाव पहचानने वाले, नम्रतासे युक्त, सदा अमृतके समान मधुर वाणी बोलने वाले उन सेवकोंने ॥३०॥

प्रत्येक मुनिके पवित्रता प्रदायक आश्रमोमें जाकर, हर एकको नमस्कार किया और नम्रता पूर्वक, अपने यहाँ पधारनेके लिये, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थना निवेदन की ॥३१॥

हे प्यारे ! मिथिलेश नाम सुनतेही सभी ऋषि परम हर्षित हुए और "हम अवश्य चलेंगे" ऐसा कहकर उन्होंने सेवकोंका विधि पूर्वक सत्कार किया ॥३२॥

हे प्यारे ! पुनः जलती हुई अग्नि शिखाके समान तेजस्वी, पाप रहित, भगवानका मनन करने वाले, श्रीअगस्त्यजी आदि सभी वे महर्षिगण शिष्योंके सहित ॥३३॥

आजग्मुर्मिथिलां पुण्यां कृत्वा पौर्वाह्लिकीः क्रियाः । नामानि तेषु मुख्यानां विश्रुतानि वदामि ते।३४।
मरीचिः कश्यपो धौम्यो नमुचिः प्रमुचिस्तथा । यवक्रीतश्च कण्वश्च गालवश्च महानृषिः ॥३५॥
पुलस्त्यः पुलहो गार्ग्यः कौषेयो गोतमस्तथा । जमदग्निर्भरद्वाजो वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥३६॥
याज्ञवल्क्योऽङ्गिरा चन्द्रो नृषङ्गुः कवषो भृगुः । अत्रिर्मेधातिथिश्चैव विश्वामित्रो महातपाः ॥३७॥
मृकण्डुर्लोमशश्चैव मुनिस्तु बकदालभः । मार्कण्डेयः क्रतुश्चैव च्यवनश्च विभाण्डकः ॥३८॥
अहिर्बुध्न्यः कुरुर्वायुः पिप्पलादश्च भास्करः । संवर्त्तः कपिलो धौम्रो मौद्गल्यश्च कचो मुनिः ॥३९॥
तृणविन्दुश्च माण्डव्यः शङ्खश्च लिखितस्तथा । देवलो देवरातश्च जामदग्न्यपराशरौ ॥४०॥
सर्वेषां कश्च नामानि समर्थो वक्तुमत्र हि । समासेन ततः प्रेष्ठ ! वर्णितानि श्रुतानि मे ॥४१॥
स्वागतं विधिना तेषां सर्वेषां च महात्मनाम् । चकार निमिवंशेनः पिता परमधार्मिकः ॥४२॥
सर्वशर्मनिवासे च वासं दत्वा मुदान्वितः । सेवां चकार वै तेषां जनन्या मम संयुतः ॥४३॥

पूर्व पहरकी क्रियाओंसे निवृत्त होकर वे पुण्य स्वरूपा श्रीमिथिलाजी आ पधारे । उन ऋषियों में भी मुख्य ऋषियोंके सुने हुये नामोंको मैं आपसे वर्णन करती हूँ ३४॥

श्रीमरीचिजी, श्रीकश्यपजी, श्रीधौम्यजी, श्रीनमुचिजी तथा श्रीप्रमुचिजी, श्रीयवक्रीतजी, श्रीकण्वजी, महर्षि श्रीगालवजी ॥३५॥

श्रीपुलस्त्यजी, श्रीपुलहजी, श्रीगार्ग्यजी, श्रीकौषेयजी, तथा श्रीगोतमजी, श्रीजमदग्निजी, श्रीभरद्वाजजी, श्रीभगवानके गुण व चरितोंके मनन करने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीबाल्मीकिजी ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी, श्रीअङ्गिराजी, श्रीचन्द्रजी, श्रीनृषङ्गजी, श्रीकवषजी, श्रीभृगुजी, श्रीअत्रिजी, श्रीमेधातिथिजी और महातपस्वी श्रीविश्वामित्रजी ॥३७॥

श्रीमृकण्डुजी, श्रीलोमशजी, श्रीबकदालभजी, श्रीमार्कण्डेयजी और श्रीक्रतुजी, श्रीच्यवनजी, श्रीविभाण्डकजी ॥३८॥ श्रीअहिर्बुध्न्यजी, श्रीकुरुजी, श्रीवायुजी, श्रीपिप्पलादजी, श्रीभास्करजी, श्रीसंवर्तजी, श्रीकपिलजी, श्रीधौम्रजी, श्रीमौद्गल्यजी, श्रीकचमुनिजी ॥३९॥

श्रीतृणविन्दुजी, श्रीमाण्डव्यजी, श्रीशङ्खजी तथा श्रीलिखितजी, श्रीदेवलजी, श्रीदेवरातजी, श्रीजामदग्न्यजी. श्रीपराशरजी ॥४०॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू! सभी ऋषियोंके नाम वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता हैं ? अतएव मैंने सुने हुये उनके नामोंको संक्षेपसे वर्णन किया है ॥४१॥

निमिवंशमें सूर्यके समान देदीप्यमान, परमधार्मिक, मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन सभी महात्माओंका विधिपूर्वक स्वागत किया ॥४२॥ पुनः जहाँ सब प्रकारका सुख रहे ऐसे स्थलोंमें सभी महर्षियोंको आवास प्रदान करके, प्रसन्न चित हो श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीसुनयना अम्बाजीके सहित उनकी सेवा ग्रहण की ॥४३॥

बहुरात्रिं गतां वीक्ष्य संवेशाय महात्मभिः । अनुज्ञातो महाराजो जगामागारमात्मनः ॥४४॥
पूर्वं सूर्योदयादेव संप्रबुध्य नृपोत्तमः । कृत्यं पौर्वाह्लिकं कृत्वा मुनिवासालयं ययौ ॥४५॥
दर्शनार्थमसौ तत्र महर्षीन् धर्मवित्तमः । ननाम दण्डवद्भूमौ पुलकाञ्चितविग्रहः ॥४६॥
आशीर्भिर्नन्दितः श्रीमान् ब्रह्मविद्भिर्महर्षिभिः । प्रबन्धं भोजनस्याशु चक्रेऽमृतमयस्य हि ॥४७॥
पादप्रक्षालनं मात्रा ज्येष्ठया मे महात्मनाम् । ऊरुभक्त्या कृतं तेषां सर्वेषामथ तत्र वै ॥४८॥
पादसंप्रोञ्छनं पित्रा मम ज्येष्ठेन चैव हि । ऋषीणामेव सर्वेषां कृतं तत्रैव सादरम् ॥४९॥
कुर्वत्सु भोजनं तेषु महत्सु मिथिलेश्वरः । साञ्जलिः सहितो राज्ञा चक्रे तेषां परिक्रमाः ॥५०॥
ते निरीक्ष्येदृशीं श्रद्धां महत्सु मुनिसत्तमाः । तयोरानन्दमग्नास्तौ महद्दर्शनहर्षितौ ॥५१॥
ते तु संतर्पितास्तेन भोजनेनामृताम्भसा । आचमनं ततः कृत्वा समूचुर्मनुजाधिपम् ॥५२॥

ऋषय ऊचुः ।

क्रियतां भोजनं क्षिप्रं गतं यामद्वयं दिनम् । अतिवेलं भवेत्प्रायो ह्यशनं स्वास्थ्यहानिकृत् ॥५३॥

बहुत रात्रि व्यतीत हुई देखकर उन महात्माओंने महाराजको शयन करनेके लिये आज्ञा प्रदान की, तदनुसार वे अपने महलको चले गये ॥४४॥

राजाओंमें श्रेष्ठ (मेरे श्रीपिताजी) सूर्योदयके पूर्व ही जागकर, पूर्व पहरका आवश्यक कृत्य पूरा करके मुनियोंके दर्शनार्थ वासस्थलमें पधारे ॥४५॥

वहाँ धर्मका रहस्य जाननेवालोंमें परम श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजने शरीरसे पुलकायमान होकर भूमि पर ऋषियोंको (साष्टाङ्ग) दण्डवत् प्रणाम किया ॥४६॥

महाराजश्री ब्रह्मवेत्ता महर्षियोंने आशीर्वादके द्वारा श्रीपिताजीका अभिनन्दन किया पुनः उन्होंने वहीं समस्त महात्माओंके लिये तुरन्त अमृतमय भोजनका प्रबन्ध किया ॥४७॥

भोजनकी तैयारी हो जानेपर हमारी बड़ी अम्बा (श्रीसुनयना महारानी) जीने बड़ी श्रद्धा पूर्वक उन सभी महात्माओंके पाँव धोये और मेरे बड़े पिता (श्रीमिथिलेशजी)ने उन सभी महात्माओंके श्रीचरणकमलोंको आदर पूर्वक स्वयं पोंछा ॥४८॥४९॥

जब सभी महात्मा लोग भोजन करने लगे, तब श्रीअम्बाजीके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराज हाथ जोड़े हुए उन महर्षियोंकी परिक्रमा करने लगे ॥५०॥

श्रीअगस्त्यजी आदि श्रेष्ठ मुनि-वृन्द हमारी श्रीअम्बाजी व श्रीपिताजीकी महात्माओंके प्रति इस प्रकारकी श्रद्धा देखकर आनन्दमग्न होगये तथा उन ऋषियोंके दर्शनसे वे दोनों भी हर्षित हो रहे थे ॥५१॥ इस प्रकार श्रीमिथिलेशजीमहाराजके द्वारा भोजन व अमृतमय जलसे तृप्त हुये वे महर्षिगण आचमन करके महाराजसे बोले–॥५२॥

हे राजन् ! अब आप भी शीघ्र भोजन कर लीजिये, क्योंकि दो पहर (६ घण्टा) दिन बीत गया है, समयका अतिक्रमण हो जानेसे भोजन प्रायः स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होजाता है ॥५३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

महाकृपेति संभाष्य नमस्कृत्य पुनः पुनः । समासाद्यात्मनो वेश्म भोजनं तु चकार सः ॥५४॥
पुनश्च नृपशार्दूलो विश्रामं घटिकात्रयम् । विधाय तत उत्थाय मज्जनं स चकार ह ॥५५॥
सभालङ्कारसंयुक्तः पुनश्चैव सभालयम् । अभ्यगात्स महीपालः सेव्यमानः स्वकिङ्करैः ॥५६॥
रथेनातीवभव्येन युतेन श्वेतकुञ्जरैः । आगतं तं धरानाथं सदःस्थाश्चाभ्यपूजयन् ॥५७॥
शब्दो जय-जयेत्युच्चैरभूदानन्दवर्द्धनः । सिंहासने ततस्तस्मिन् महाराजे विराजिते ॥५८॥
सादरं प्रणुतोऽमात्यैर्बन्धुभिश्च महायशाः । वन्दितश्रेष्ठवर्गोऽसौ सिंहासनमधिष्ठितः ॥५९॥
प्रीत्या परमया युक्तो भ्रातरं श्रीकुशध्वजम् । अथोवाच वचः श्लक्ष्णमिदं स परमार्थवित् ॥६०॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

आह्वय स्वकुलाचार्यं शतानन्दं महामुनिम् । दूतैर्विनयसम्पन्नैः सादरं कुलनन्दन ! ॥६१॥
कार्यमेकं महत्तेन कर्त्तव्यं च विपश्चिता । तस्मान्नैव विलम्बस्ते विधेयो मम शासने ॥६२॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा शतानन्दपुरोधसः । सकाशं प्रेषयामास दूतं विजयसंज्ञकम् ॥६३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! ऋषियोंके इस प्रकार समझाने पर महाराजने "बड़ी कृपा है" ऐसा कहकर उन्हें बारम्बार प्रणाम करके अपने महलमें जाकर भोजन किया ॥५४॥

तीन घड़ी विश्राम करनेके बाद नृपश्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजूने उठकर स्नान किया ॥५५॥

पश्चात् सभाके अलङ्कारोंको धारण करके अपने किङ्करोंके द्वारा छत्र चामर आदिसे सेवित हुये सभाभवन पधारे ॥५६॥

श्वेत हाथियोंसे युक्त अत्यन्त सुन्दर रथ द्वारा पधारे हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजका सभामें उपस्थित सभी लोगोंने भली प्रकार पूजन (स्वागत) किया ॥५७॥

तदनन्तर महाराजके सिंहासन पर विराजमान होते ही आनन्दकी वृद्धि करने वाला बड़े ऊँचे स्वरसे उनकी जयकारका शब्द होने लगा ॥५८॥

यशस्वी श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाइयों और मन्त्रियों का प्रणाम स्वीकार करके अपने गुरुजनोंको प्रणामकर राजसिंहासन पर विराजमान हुए ॥५९॥ पुनः परमार्थको जाननेवाले उन महाराजने अपने भैया श्रीकुशध्वज महाराजसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक मधुर शब्दोंमें यह वचन कहा ॥६०॥ हे कुलनन्दन! विनयादि-गुण-युक्त दूतोंके द्वारा ब्रह्मका ही मनन करनेवाले महामुनि अपने कुलगुरु श्रीशतानन्दजी महाराजको बुला भेजिए ॥६१॥

क्योंकि उन कार्य कुशल महानुभाव श्रीशतानन्दजी महाराजको इस समय एक बहुत बड़ा कार्य करना है, अत एव मेरी आज्ञामें बिलम्ब न करेंगे ॥६२॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यह आज्ञा पाकर, श्रीकुशध्वज महाराजने "ऐसा ही होगा" कहकर पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाने के लिये उनके पास विजय नामका दूत भेजा ॥६३॥

स गत्वा प्रार्थितं राज्ञा विनिवेद्य कृताञ्जलिः । प्रणिपत्य मुहुर्भूमौ समीपस्थो बभूव ह ॥६४॥
तूर्णं जगाम विप्रेन्द्रो नृपवाक्येन तोषितः । समज्यां सह दूतेन स्यन्दनेन विशांपतेः ॥६५॥
स्वागतं तस्य विप्रर्षेर्विदेहो मिथिलाधिपः । चकार विधिना प्रेष्ठ! तेन तुष्टः स चाब्रवीत् ॥६६॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

चिरञ्जीव महाराज! वाञ्छितं शीघ्रमाप्नुहि । श्रीमताऽद्य विशेषेणकिमर्थं संस्मृतोऽस्म्यहम् ॥६७॥
तदुच्यतां ममादेशान्नरदेवशिखामणे ! । कारणं भवता स्पष्टं प्रसन्नाय हितेप्सवे ॥६८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

गुरोरादेशमासाद्य नरेन्द्रो नियताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसा प्रह्वो बभाणेदं शुभं वचः ॥६९॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

अगस्त्यप्रमुखा नाथ ! मुनयोऽमोघदर्शनाः । आगताः कृपयाऽऽहूताः प्रधानाः सर्व एव हि ॥७०॥
यदि गच्छाम्यहं तांश्च नानानियमतत्परान् । सर्वकर्णगतं कर्तुमशक्तः स्यां हृदीप्सितम् ॥७१॥

उस दूतने श्रीशतानन्दजी महाराजके पास जाकर, उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अपने दोनों हाथोंको जोड़े हुये उनसे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थना निवेदन करके समीप खड़ा हो गया ॥६४॥ श्रीमिथिलेशजी महाराजके वचनोंसे सन्तुष्ट हो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ श्रीशतानन्दजी महाराज दूतके सहित रथके द्वारा तत्क्षण राजसभा भवनमें पधारे ॥६५॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू! निरन्तर आपका ही चिन्तन करनेके कारण अपनी देहका भान न रखने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने महर्षि श्रीशतानन्दजीका विधिपूर्वक स्वागत किया तथा उनसे प्रसन्न होकर वे बोले ॥६६॥ हे महाराज ! आप बहुत काल तक जीवें, आपका मनोरथ शीघ्र पूर्ण हो । आज श्रीमानजीने मुझे विशेष रूपसे क्यों स्मरण किया है ? ॥६७॥

हे राजाओंके चूड़ामणिजू ! उसका कारण मुझे स्पष्ट बतलाइये, क्योंकि मैं प्रसन्न और आपका हितचिन्तक भी हूँ ॥६८॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! गुरु श्रीशतानन्दजी महाराजकी आज्ञा पाकर, महाराज उनके श्रीचरणकमलोंमें अपना सिर रखकर प्रणाम किये पुन: बड़े विनम्र भावसे हाथ जोड़कर, यह मङ्गल वचन बोले ॥६९॥ हे नाथ! जिनका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता है, वे श्रीअगस्त्यजी आदि प्राय: सभी प्रधान मुनिवृन्द मेरे बुलानेसे यहाँ कृपा करके पधारे हैं ॥७०॥ यदि मैं स्वयं उनके निवास स्थानोंमें जाऊँ, तो भी अपने हृदयका भाव सबके कानों तक पहुँचानेमें वहाँ मैं असमर्थ ही रहूँगा क्योंकि वे मुनिवृन्द पृथक्-पृथक् नियमोंका पालन करने वाले हैं अर्थात् कोई जप, कोई तप, कोई ध्यान, कोई पाठ, कोई यज्ञ, कोई हवन, कोई भगवद् गुणानुवाद आदिका नियम करने वाले होंगे, इसलिए मैं अपने हृदयका भाव किस प्रकार वहाँ जाकर सभीको सुना सकूँगा ? अर्थात् नहीं सुना सकूँगा अत एव इस निमित्त मेरा वहाँ स्वयं जाना व्यर्थ है ॥७१॥

केनोपायेन वै तेषामाह्वानं कार्यमत्र च। महतां नैव वै किञ्चिद्यतः स्यादप्रसन्नता ॥७२॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

तस्य तद्भाषितं वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविदां वरः। प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शतानन्दो महामुनिः ॥७३॥

श्रीशतानन्द उवाच।

येनोपायेन धर्मात्मन् महर्षीणामिहागमः। सहर्षं स्यादुपायं तं स्वयमेव करोम्यहम् ॥७४॥
गच्छत्वद्य मया सार्द्धं भ्राता तव कुशध्वजः। त्वयोक्तं साधयिष्यामि प्रत्ययं गच्छ भूपते ॥७५॥
नानाफलानि दिव्यानि सुधास्वादुमयानि च। सूपायनाय दीयन्तां स्वर्णपात्रधृतान्यरम् ॥७६॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्तो यशःश्लाघ्यो राजा धर्मभृतां वरः। भाजनानि सहस्राणि निर्भराणि सुधाफलैः ॥७७॥
तस्मा उपायनार्थाय गुरवे वह्नितेजसे। स निवेद्य महर्षीणां भ्रातरं पुनरब्रवीत् ॥७८॥

श्रीजनक उवाच।

भ्रातः सुगम्यतां साकं गुरुणा क्षिप्रमेव हि। आवासः परमर्षीणां ज्वलत्पावकतेजसाम् ॥७९॥

किस उपायसे उन महर्षियोंको अपने यहाँ बुलाना उचित है ? जिससे वे लोग यहाँ आ भी जावें और मेरे प्रति उनकी किसी प्रकारकी अप्रसन्नता न हो, वैसे यहाँ बुलानेमें उनकी अप्रसन्नता हो जानेका भय है क्योंकि वे लोग ऐसा विचार कर सकते हैं कि, राजा स्वयं हम लोगोंके पास क्यों नहीं चला आया, हमें क्यों बुला रहा है, क्या हमलोग उसके सेवक हैं जो उसकी आज्ञासे राजसभामें जायँ ? ॥७२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके कहे हुये इस वचनको सुनकर भगवानके सर्वज्ञता आदि दिव्य-गुणोंका मनन करने वालोंमें महान्, वक्ताओंमें श्रेष्ठ. प्रसन्न हृदय श्रीशतानन्दजी महाराज बोले ॥७३॥ हे धर्म बुद्धि सम्पन्न राजन् ! आप चिन्ता न करें, जिस उपायसे वे महर्षिगण हर्षपूर्वक यहाँ पधारेंगे मैं उस उपाय को स्वयं ही करूँगा ॥७४॥

हे राजन् ! मेरे साथ आपके छोटे भैया कुशध्वजजी चलें, मैं आपके कथनानुसार ऋषियों को प्रसन्नतापूर्वक ही यहाँ बुला लाऊँगा, आप विश्वास करें ॥७५॥

महर्षियोंको भेंट करनेके लिये दिव्य और अमृतके समान स्वाद वाले नाना प्रकारके फलोंको सुवर्णके थालोंमें सजाकर हमें शीघ्र दीजिये ॥७६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीशतानन्दजी महाराजकी इस आज्ञाको पाकर अपने यशसे परम-प्रशंसनीय, धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज सुधाके समान स्वादिष्ट फलों से भरे हुये हजारों पात्रोंको ऋषियोंकी भेंटके लिये अग्निके समान तेजवाले कुलगुरु श्रीशतानन्दजी महाराजको निवेदन करके, वे अपने भैया श्रीकुशध्वजजी महाराजसे बोले ॥७७॥७८॥

हे भैया ! तुम श्रीगुरु महाराजके साथ, जलती हुई अग्निके समान तेजवाले उन श्रेष्ठ ऋषियोंके वास–स्थल पर शीघ्र जाओ ॥७९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तथेति सम्भाष्य विनम्रभावः कृताञ्जलिः पूर्वजमार्यसूनो ।
जगाम सानन्दमनिन्दितात्मा समं शतानन्दपुरोधसा सः ॥८०॥

श्रीस्नेहपराजी बोली–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी इस आज्ञाको सुनकर प्रशस्त बुद्धि श्रीकुशध्वज-महाराज पुनः अपने बड़े भाईजीसे विशेष नम्रभावपूर्वक हाथ जोड़कर "ऐसा ही करेंगे" कहकर आनन्द–पूर्वक पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजके साथ चल दिये ॥८०॥

इतिमासापरायणे अष्टमो विश्रामः । ८॥

—❀❀❀—

अथैकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

स्वागत सत्कारानन्तर श्रीअगस्त्यजी की आज्ञासे श्रीजनकजी महाराजका स्वाभीष्ट निवेदन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथैत्य क्षणमात्रेण तदावासं महात्मनाम् । अहल्यायाः सुतः श्रीमान् पितृव्येन समं मम ॥१॥
सुखासीनं महात्मानं दृष्ट्वाऽगस्त्यं तपोनिधिम् । दिक्षु विख्यातसत्कीर्त्ति साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ।२॥
पुनरुत्थाय सर्वेभ्यो मुनिभ्यो गोतमात्मजः । नमश्चक्रे ब्रुवन्साश्रुर्धन्यो वो दर्शनादिति ॥३॥
आस्यतामिति तैरुक्तो निषसाद कृताञ्जलिः । आचार्यो निमिवंश्यानां समीपे कुम्भजन्मनः ॥४॥
धृत्वाऽग्रे सर्ववस्तूनि स्वर्णपात्रगतानि सः । राज्ञार्ऽपितानि चेमानि स्वीकार्याणीत्यथाब्रवीत् ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! इसके बाद मेरे चाचा श्रीकुशध्वज-महाराजके सहित श्रीअहल्या पुत्र श्रीशतानन्दजी-महाराजने थोड़ी देरमें ऋषियोंके निवासस्थान पर पहुँचकर तपस्याके भण्डार, सभीमें भगवद्-बुद्धि रखने वाले, अपनी पावनीकीर्तिसे दशो दिशाओंमें विख्यात, सुखासनसे विराजमान श्रीअगस्त्यजी-महाराजका दर्शन करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥१॥२॥ पुनः श्रीगोतमजी–महाराजके पुत्र श्रीशतानन्दजी–महाराजने उठकर प्रेमाश्रु–युक्त हो "मैं आज आप महानुभावोंके दर्शनों से धन्य होगया" ऐसा कहते हुए भगवद्गुण-रूप-लीला ऐश्वर्य आदिका सतत मनन करने वाले उन सभी महात्माओंको प्रणाम किया ॥३॥

बैठनेके लिये ऋषियोंकी आज्ञा पाकर निमिकुलके गुरु श्रीशतानन्दजी-महाराज श्रीअगस्त्यजी महाराजके समीप हाथ जोड़े बैठ गये ॥४॥

पुनः उन्होंने सुवर्णके पात्रोंमें सजाई हुई सभी वस्तुओंको श्रीअगस्त्यजी-महाराजके आगे रखकर कहा–भगवन् ! इन सब वस्तुओंको श्रीमिथिलेशजी-महाराजने भेंटके रूपमें श्रीचरण-कमलोंमें अर्पण किया है, अतः इन्हें स्वीकार करना ही उचित है ॥५॥

अद्येयं मिथिला धन्या धन्याश्चैव वयं मुने!। दर्शनाद्भवतां सर्व ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥६॥
एकैकदर्शनं येषाममोघं सर्वकामदम् । तांस्तु वै युगपद्दृष्ट्वा किमसाध्यं जगत्त्रये ॥७॥
असौ धन्यो महाराजः श्रीमत्सीरध्वजाह्वयः । अनुगृहीतुमायाता भवन्तः सर्व एव यम् ॥८॥
स एव भूभृतां श्रेष्ठः श्रीमतामेककिङ्करः । धर्मात्मा सत्यसन्धश्च पुण्यश्लोको जगद्धितः ॥९॥
पुनातुं काङ्क्षते नानाऽलङ्कारैः समलङ्कृतम् । मुख्यराजसभागारं भवतां पादपांसुभिः ॥१०॥
तदर्थमागतो भ्राता तन्निदेशात्कुशध्वजः । न भयात्स्वयमाख्याति तद्भवान्ज्ञातुमर्हति ॥११॥
यदि कष्टं न वो नाथ! तर्हि तत्सदनं द्रुतम् । पुनीहि त्वं कृपासिन्धो! सर्वैर्गत्वाऽङ्घ्रिरेणुभिः॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

श्रुत्वेत्यभिहितं वाक्यं गोतमस्य सुतस्य सः । एवमस्त्विति तं प्रोच्य महतः प्रत्यवैक्षत ॥१३॥
ते तु सर्वे महात्मानो वीतरागा जितेन्द्रियाः । वाक्यं सविनयं श्रुत्वा स्वीचक्रुश्च मुदान्विताः ॥१४॥
तदाऽऽह मम पितृव्यः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । इमानि स्यन्दनानीह भवद्भ्यश्चागतानि हि ॥१५॥

हे मुने ! आत्मसाक्षात्कार करने वाले आप सब महर्षियोंके मङ्गलमय दर्शनोंसे आज यह मिथिलापुरी धन्य है तथा हम सभी परम-धन्य हैं ॥६॥ जिन एक-एक ऋषिका दर्शन प्राणियों के सभी मनोरथोंको पूरा करने वाला तथा अमोघ है उन सभीका एक साथ दर्शन करके भला त्रिलोकीमें, किस मनोरथकी सिद्धि नहीं हो सकती ? ॥७॥

वे श्रीमान् सीरध्वज-महाराज धन्य हैं, जिन पर अनुग्रह करनेके लिये आप सभी महर्षिगण यहाँ पधारे हैं ॥८॥ वे श्रीमिथिलेशजी महाराज धर्मबुद्धि, सत्यप्रतिज्ञ, पुण्ययश चर-अचर सभी प्राणियों का हित करने वाले, आप सभी महात्माओं के मुख्य सेवक हैं ॥९॥

अनेक प्रकारकी सजावटसे सजाये हुये अपने राज–सभा–भवनको आप लोगोंके श्रीचरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र करना चाहते हैं ॥१०॥

उसी लिये उनकी आज्ञासे उनके छोटे भाई ये श्रीकुशध्वजजी मेरे साथ आये हैं, किन्तु भयके कारण स्वयं नहीं कह रहे हैं, सो स्वयं आप जान सकते हैं ॥११॥

हे नाथ ! हे कृपासिन्धों ! यदि आपलोगोंको कष्ट न हो तो, सब ऋषियोंके सहित चलकर श्रीमिथिलेशजी-महाराजके सभा-भवनको श्रीचरण-कमलोंकी रजसे पवित्र कीजिये ॥१२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीगोतमजी-महाराराजके पुत्र श्रीशतानन्दजी-महाराजकी इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर श्रीअगस्त्यजी-महाराज "ऐसा ही हो" उनसे कहकर महात्माओं के प्रति देखने लगे ॥१३॥ अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए, आसक्तिरहित उनसभी महात्माओंने श्रीशतानन्दजी महाराजके विनयपूर्वक वचनोंको सुनकर प्रसन्नता वश श्रीमिथिलेश-महाराजके राज-सभा भवनमें पधारना स्वीकार कर लिया ॥१४॥

ऐसा देखकर मेरे चाचा श्रीकुशध्वज-महाराज हाथ जोड़कर प्रणाम करके सभी ऋषियोंसे बोले–हे महाराजो ! ये रथ आप लोगोंके लिये ही आये हैं ॥१५॥

आरात्स्थितानि सर्वाणि मणिभिर्भूषितानि च । काञ्चनानि नृपार्हाणि सज्जितानि विशेषतः ॥१६॥
आरुह्य तानि योगीन्द्र! तपोमूर्त्तिभिरन्वितः । गन्तुं कुरु कृपां दिष्ट्या वृतं चेन्मद्गुरूदितम् ॥१७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भ्रातुः श्रीमिथिलापतेः । बाढमित्यब्रवीद्धृष्टः कुम्भजन्मा कुशध्वजम् ॥१८॥
पुनस्तु मुनिभिः सार्द्धं समारुह्य रथोत्तमम् । तूर्णं जगाम तेनैव शतानन्देन च प्रभुः ॥१६॥
राजमार्गेण भव्येनालङ्कृतेन विशेषतः । सिञ्चितेन शुभैर्गन्धैर्मणिभिर्निर्मितेन च ॥२०॥
अत्युच्छ्रितपताकाभिर्ध्वजैश्चापि मनोहरैः । सवारिप्रज्वलद्दीपघटैरेजे तटद्वयी ॥२१॥
पुष्पितैर्ह्रस्ववृक्षैश्च दर्शनेप्सुजनैस्तथा । सङ्कीर्णोभयपार्श्वौ तौ शुशुभाते तदा भृशम् ॥२२॥
सोऽधिगम्य सभागारं मिथिलेन्द्रस्य भास्वरम् । द्वाःस्थं ददर्श तं भूपं स्वागतार्थमनिन्दितः ॥२३॥
नमस्कृतस्तु साष्टाङ्गं तेन नीराज्य सादरम् । प्रसादितोऽग्र्यया भक्त्या भगवान् कुम्भसम्भवः ॥२४॥

और ये सभी रथ राजाओंके योग्य, सोनेके बने हुये तथा मणियोंसे भूषित, विशेष रूपसे सजाये हुये, पासमें ही खड़े हैं ॥१६॥ हे योगियों में श्रेष्ठ ! यदि सौभाग्यवश आपने मेरे श्रीगुरुदेवजीकी प्रार्थना स्वीकार करली है, तो आप तपोमूर्ति ऋषियोंके सहित उन्हीं रथोंपर विराज कर सभा-भवन पधारनेकी कृपा करें ॥१७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजू महाराजके भैया श्रीकुशध्वजकी उस प्रार्थनाको सुनकर, श्रीअगस्त्यजी महाराज प्रसन्न हुए और उन्होंने "बहुत अच्छा कहकर" उसे स्वीकार किया ॥१८॥ पुनः परम समर्थ वे श्रीअगस्त्यजी महाराज, श्रीशतानन्दजी महाराज और श्रीकुशध्वज चाचाजीके सहित उत्तम रथपर विराजकर समस्त मुनियोंके सहित वहाँ से राज-सभा-भवनके लिये शीघ्र प्रस्थित हुए ॥१६॥

मणियोंसे बने और मङ्गलमय सुगन्धसे सींचे हुए, विशेष सजावट युक्त, परम शोभायमान राज-मार्गसे ॥२०॥ जिसके दोनों किनारों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर बहुत ऊँची झण्डियाँ और मनोहर झण्डे फहरा रहे थे, जलते हुये दीपोंसे युक्त सजल कलशों से जिसके दोनों पार्श्व (किनारे) सुशोभित थे ॥२१॥ फूले हुये छोटे-छोटे वृक्षोंसे तथा सन्तोंका दर्शन करनेके लिये उपस्थित हुई जनताकी महती भीड़से जिसके सुसज्जित दोनों किनारे अत्यन्त शोभाको प्राप्त थे (उस राज-मार्गसे) ॥२२॥

विश्वमें प्रशंसा प्राप्त श्रीअगस्त्यजी महाराजने समस्त ऋषियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके राजभवनमें पहुँच कर स्वागतके लिये उन्हें द्वार पर खड़े देखा ॥२३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने आदरपूर्वक आरती उतारकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपनी परा भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीअगस्त्यजी महाराजको प्रसन्न कर लिया ॥२४॥

ततो राजसभागारे मम पित्रा यशस्विना । बभूवुः प्रार्थिताः प्रीता मुनयो नतिपूर्वकम् ॥२५॥
अगस्त्येन समं सर्वे वेदतत्त्वविदां वराः । आसनेषु यथार्हेषु निषेदुर्वीतकिल्बिषाः ॥२६॥
सुखोपविष्टेष्वेतेषु सर्वेष्वेव महर्षिषु । अनुज्ञातो महाराजो विवेशासनमात्मनः ॥२७॥
तमूचुर्निर्जितस्वान्ता मुनयः पुण्यदर्शनाः । प्रसन्नवदनाः सौम्या वाचा प्रेमरसार्द्रया ॥२८॥

मुनय ऊचुः ।

राजन् ! विवेकसिन्धोस्ते स्मृतिर्नो हृदि सर्वदा । ज्ञानप्रसङ्गसमये समुदेति सुखावहा ॥२९॥
दृष्ट्वा ज्ञानपराकाष्ठां तव योगीन्द्रसत्तम । शक्नुमो नैव तरितुं कथञ्चिद्विस्मयोदधिम् ॥३०॥
कच्चित्ते कुशलं राजन्! सान्तःपुरजनस्य हि । कच्चिद् भ्रातृषु मित्रेषु तव चैवास्त्यनामयः ॥३१॥
कच्चित्पुरजने राष्ट्रे कुशलं तव वर्तते । कच्चिन्न व्यसनं प्राप्तः कच्चिच्चास्ति सुखी भवान् ॥३२॥
उच्यतां भवताऽस्माकमाह्वानस्य प्रयोजनम् । धर्मतत्त्वविदां श्रेष्ठ ! निर्भयेन मुदात्मना ॥३३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

धृत्वेति शिरसाऽऽदेशं पिता मे जनकाभिधः । उत्थाय तान्नमस्कृत्य निजगाद कृताञ्जलिः ॥३४॥

तत्पश्चात् राजसभा-भवनमें मेरे यशस्वी श्रीपिताजीकी नम्रतापूर्वक-प्रार्थनासे मुनिवृन्द प्रसन्न हो गये ॥२५॥ वेदोंका मर्म जानने वालोंमें श्रेष्ठ, पाप व विकार रहित वे सभी मुनिवृन्द श्रीअगस्त्यजी महाराजके सहित यथायोग्य सुसज्जित आसनों पर विराजमान हुये ॥२६॥

उन सभी महर्षियोंके सुखपूर्वक विराजमान हो जानेपर श्रीमिथिलेशजी महाराज भी उनकी आज्ञा पाकर अपने आसन पर सुशोभित हुये ॥२७॥

हे प्यारे ! जिन्होंने अपने मनको पूर्ण रूपसे स्वाधीन कर लिया है तथा जिनके दर्शनोंसे बड़ा पुण्य होता है, वे सौम्य-भावसे युक्त, प्रसन्न-मुख, मुनिवृन्द, अपनी प्रेम-रस-भीनी वाणीद्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले—॥२८॥

हे राजन् ! हम लोगोंमें जब-जब ज्ञानका प्रसङ्ग छिड़ता है, तब अथाह ज्ञानसागर स्वरूप आपका सुखद स्मरण हम लोगोंके हृदयमें सदा हो आता है ॥२९॥

हे योगिराजोंमें श्रेष्ठ! आपके ज्ञानकी पराकाष्ठा देखकर हमलोग किसी प्रकार भी आश्चर्य-सागरको पार करनेमें समर्थ नहीं हो पाते अर्थात् उसीमें डूबते रहते हैं ॥३०॥

हे राजन् ! अन्तः पुरके लोगों सहित आपकी कुशल तो है ? आपके सभी भाई व मित्र नीरोग तो हैं ? ॥३१॥ आपके पुरवासियोंमें तथा राष्ट्रमें कुशल तो है ? कोई व्यसन तो प्राप्त नहीं है ? आप सुखी तो हैं ? ॥३२॥

हे धर्मतत्त्वके जाननेवालांमें श्रेष्ठ ! आप प्रसन्नतापूर्वक निर्भय हृदयसे हम लोगोंको यहाँ एक साथ बुलानेका कारण जो भी हो, निवेदन कीजिये ॥३३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! महर्षियोंकी इस आज्ञाको अपने सिरपर धारण करके मेरे पिता श्रीजनकजी महाराज उठे और मुनियोंको प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—॥३४॥

श्रीमिलिलेश उवाच ।

अनुग्रहेण युष्माकं कुशली सर्वथा ह्यहम् । अग्रेऽपि सर्वदैवाहो भवेयं मुनिपुङ्गवाः ॥३५॥
अयं नाथ स्वभावो हि जीवस्यैव महामुने !। न संस्मरति विश्वेशं तदीयान्निष्प्रयोजनम् ॥३६॥
तत्स्वभावप्रयुक्तेन यदर्थं संस्मृता मया । अभयीकृतेन युष्माभिस्तत्तु सर्वं निगद्यते ॥३७॥
अयोध्याधिपतेः पुत्रशुभजन्ममहोत्सवे । तेनाहूतोऽगमं तत्र दृष्टवानस्मि तत्सुतान् ॥३८॥
नारदेन समागत्य तदानीं ब्रह्मसूनुना । विज्ञापितं समाकर्ण्य चिन्तया संयुत्तोऽभवम् ॥३९॥
एतत्परात्परं ब्रह्म पुत्रभावेन शाश्वतम् । दशरथाय यच्छर्म ददाति योगिदुर्लभम् ॥४०॥
तस्य प्राप्तिः कथं मे स्यादिति चिन्तयतो मुहुः । या हि बुद्धिः समुत्पन्ना वर्ण्यते सा यथातथम् ॥४१॥
अयं वत्सल्यभावाढ्यः श्रीमान्दशरथो नृपः । वात्सल्यजं सुखंचास्य तद्धि लोके परात्परम् ॥४२॥
अस्मिन् भावे त्रयाणां हि समावेशः प्रदृश्यते । श्वशुराचार्यपितृणां नूनं मुख्यतया स्फुटम् ॥४३॥
पितुर्लेभे पदं राजा बशिष्ठश्च गुरोः पदम् । श्वशुरस्य पदं शेषं ममेदं तत्सुखप्रदम् ॥४४॥

हे ब्रह्मतत्त्व मनन करनेवाले श्रेष्ठ मुनियो ! आप सब सन्तोंके अनुग्रहसे मैं सब प्रकारसे कुशलपूर्वक हूँ तथा सदा आगे भी रहूँगा ॥३५॥

हे नाथ ! हे महामुने ! जीवका तो स्वभाव ही है कि बिना कोई प्रयोजन उपस्थित हुये, न यह विश्वपति भगवानका ही ठीक से स्मरण करता है, न उनके भक्तोंका ॥३६॥

जीव होनेके कारण मैं भी उसी स्वभावसे युक्त हूँ अतः जिस प्रयोजनसे मैंने आप सभी महानुभावोंका स्मरण किया है उसको आप लोगोंके द्वारा अभय किया हुआ मैं निवेदन करता हूँ॥३७॥

श्रीअयोध्याधिपति श्रीदशरथजी महाराजके लालजीके शुभ-जन्म-महोत्सवमें, उनके बुलानेसे मैं श्रीअयोध्याजी गया था वहाँ मैंने उनके पुत्रोंका दर्शन किया ॥३८॥

उसी समय श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजी महाराजने वहाँ पधारकर जो चेतावनी दी उसे सुनकर मैं विचार में पड़ गया ॥३९॥ ये शाश्वत (सदा रहने वाले) परात्पर (पञ्च ब्रह्मोंके कारण प्रकृति से परे) ब्रह्म अपनेको पुत्र मानकर जो सुख श्रीदशरथजी महाराजको प्रदान कर रहे हैं वह योगियोंको भी दुर्लभ है ॥४०॥ उस सुखकी प्राप्ति मुझे कैसे हो? इस विषयका बारम्बार चिन्तन करते हुये जो बुद्धि उत्पन्न हुई, उसे यथार्थ रूपसे मैं निवेदन करता हूँ ॥४१॥

ये श्रीमान् दशरथजी महाराज वात्सल्यभावसे युक्त हैं, अतः इन्हें वात्सल्यभाव-जन्य सुख प्रभु द्वारा प्राप्त है, वस्तुतः लोकमें यही सुख सबसे बढ़कर है ॥४२॥ इस वात्सल्य-भावमें पिता, आचार्य, तथा श्वशुर इन्हीं तीनोंका समावेश ही मुख्य रूपसे स्पष्ट दिखाई देता है ॥४३॥

किन्तु पिताका पद तो श्रीदशरथजी-महाराजको मिल ही चुका और गुरुका पद, श्रीवशिष्ठजी-महाराजके लिये कुल परम्परानुसार सुरक्षित है अतः ये दोनों पद तो पूरे हो ही चुके, अब केवल श्वशुरका पद ही शेष है, जो मुझे वात्सल्य-भावका सुख प्रदान कर सकता है ॥४४॥

एतत्पदस्य सम्प्राप्तिस्तस्मा एव भविष्यति । सर्वेश्वरी हि चिन्मूर्त्तिर्यस्य पुत्री भविष्यति ॥४५॥
अकन्याय कथं त्वस्य मह्यं जामातृरूपिणः । भवेल्लाभ इयं चिन्ता प्रजाता दुर्निवारणा ॥४६॥
तन्निवृत्यै सुहृद्वृन्दैश्चोदितः समुपाह्वयम् । दूतैर्विनयसम्पन्नैर्भवतो भूरितेजसः ॥४७॥
आह्वानहेतुर्भवतां किलायं समीरितश्चैव यथातथं मे ।
निशम्य तच्छंसत मे प्रयत्नं कृपालवश्चेन्मयि वोऽनुकम्पा ॥४८॥

किन्तु इस पदकी प्राप्ति भी उसी सौभाग्यशालीको ही होगी, जिसकी पुत्री चिन्मूर्त्ति (अपाञ्चभौतिक शरीरवाली) सर्वेश्वरी (अनन्तब्रह्माण्डनायकजूकी प्राणवल्लभा) जी होंगी ॥४५॥

तब मुझ कन्याहीन को प्रभु जमाई रूपसे कैसे मिलेंगे ? यह ऐसी चिन्ता प्रकट हुई है, जिसका निवारण बहुत ही कठिन है ॥४६॥

इसी महती चिन्ताकी निवृत्तिके लिये अपने सुहृद् लोगोंकी प्रेरणासे, विनयसम्पन्न दूतोंके द्वारा आप सभी महातेजस्वियोंको मैंने अपने यहाँ बुला भेजा था ॥४७॥

हे कृपालु श्रीमहर्षिवृन्द ! आप लोगोंको बुलानेका मुख्य कारण यही था उसे मैंने ज्योंका त्यों पूर्णरूपसे निवेदन कर दिया, यदि आप लोगोंकी मेरे ऊपर कृपा है तो उसे सुनकर वात्सल्य-भावजन्य सुख प्राप्तिके लिये श्वशुर पदकी प्राप्तिका मुझे साधन बतलाइये ॥४८॥

इत्येकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

— ❀❀❀ —

अथ त्रिंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीअगस्त्यजी महाराज की आज्ञा से तप करके श्रीशिवजी से श्रीजनकजी की अभीष्ट वर प्राप्ति ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अभिप्रायं तु विज्ञाय नृपस्य मुनिपुङ्गवाः । क्षणं विलम्ब्य तं प्राहुर्हताशापतितं नृपम् ॥१॥

मुनय ऊचुः ।

गहनोऽयं तव प्रश्नोऽभिलाषश्चातिदुर्लभः । नावलम्ब्या निराशा ते तथापीप्सितसिद्धये ॥२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराजका अभिप्राय समझकर सभी मुनिश्रेष्ठ, थोड़ी देर अवाक् रह गये । उनको मौन देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज हताश हो गिर पड़े, क्योंकि कुछ साधन बतलाने के लिए जिनकी आशा की गयी थी, वे सभी मौन दिखाई पड़े । महाराजको इस प्रकार निराशावश गिरा देखकर वे महर्षि बोले ॥१॥ हे राजन्! आपका प्रश्न बड़ा गूढ़ है और आपकी अभिलाषा भी बड़ी कठिनतासे पूरी होने योग्य है तथापि अपने मनोरथको सिद्ध करनेके लिये आपको निराश भी होना उचित नहीं है ॥२॥

भावात्प्रकटितो यश्च सच्चिदानन्दविग्रहः । पुत्ररूपेण सत्यायां स तेऽभीष्टं विधास्यति ॥३॥
ज्ञातानि यानि यानीह साधनान्यस्मदादिभिः । तानि वै चिरसाध्यानि दुष्कराणीति बुध्यताम्॥४॥
श्रूयतामाशु सिद्धयर्थमभीष्टस्य नृप त्वया । समस्तसाधनाचार्यः शंसता कुम्भजन्मना ॥५॥

श्रीअगस्त्य उवाच ।

ज्ञानिनां योगिनां चैव वरिष्ठः सात्वतामपि । शङ्करो भगवान् राजन्! सर्वेषामाशुसिद्धिदः ॥६॥
तं तोषय महेशानं त्रिकालज्ञं जगद्गुरुम् । न च तुष्टे हि वै तस्मिन्दुर्लभस्ते मनोरथः ॥७॥
अयं हि निश्चयोऽस्माकं सर्वलोकमहेश्वरीम् । पुत्रीभावेन संप्राप्तावञ्जसैवेह चाचिरात् ॥८॥

क्योंकि जो सत्-चित्-आनन्द-विग्रह प्रभु श्रीदशरथजी महाराज के भाववश पुत्ररूपसे श्रीअयोध्याजीमें प्रकट हो गये हैं, वे आपकी इच्छाको भी पूर्ण करेंगे ॥३॥

हमलोग उन सत् चित्-आनन्द-विग्रहा सर्वेश्वरीजीकी प्राप्तिके लिये जो जो साधन जानते हैं, उन सभीको आप अत्यन्त कष्टसाध्य अथवा चिरसाध्य ही समझें, जिससे वे दोनों प्रकारके ही साधन, आपके लिए उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि अत्यन्त कष्ट साध्य साधन करने योग्य आपका यह कोमल शरीर नहीं है और चिरसाध्य साधन आपकी अभीष्ट-सिद्धि न कर सकेगा क्योंकि वे प्रभु राजकुमार ही नहीं चक्रवर्ती कुमार बने हैं, अतः उनका विवाह कुमार अवस्थामें ही हो जावेगा, जिससे उनके श्वसुरका पद जो आपको अभीष्ट है वह और ही कोई ले लेगा तब आपका वह चिरसाध्य साधन सिद्ध होने पर भी क्या लाभ देगा ? और सर्वेश्वरीजी कितने वर्षोंमें प्रसन्न होती हैं इसका कोई निश्चय नहीं । पुनः यहाँ प्रकट होकर कुछ तो बड़ी होंगी तभी तो विवाह होगा क्या वे प्रभु तब तक बिना विवाहके ही रहेंगे? अत एव वे सब साधन बतलाना उचित न समझकर हमलोग कुछ देर के लिये मौन थे ॥४॥

हे राजन् ! अब अपनी शीघ्र अभीष्टकी सिद्धिके लिये आप श्रीअगस्त्यजी महाराजके कथन से समस्त साधनोंके आचार्यको सुनें ॥५॥

श्रीअगस्त्यजी महाराज बोले—हे राजन् ! भगवत् तत्त्वके जानने वालोंमें व अपनी चित्तवृत्तिको भगवानमें तदाकार करनेवालोंमें तथा अनेक भावोंसे परम अनुराग पूर्वक भगवान की उपासना करने वालोंमें भी भगवान् शङ्करजी सबसे श्रेष्ठ हैं और वे अपने भक्तोंके सभी मनोरथों की सिद्धि भी बहुत शीघ्र प्रदान करते हैं ॥६॥

अत एव आप तीनों कालका मर्म जाननेवाले उन जगद्गुरु महेशको प्रसन्न कीजिये, उनके प्रसन्न हो जाने पर आपका मनोरथ, दुर्लभ नहीं रह सकता ॥७॥

हे राजन् ! पुत्रीभावसे श्रीसर्वेश्वरीजीकी शीघ्र और अनायास प्राप्तिके विषयमें हम लोगोंका यही ध्रुव निश्चय है ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्यादिष्टो भगवता साक्षाच्छ्रीकुम्भजन्मना । अनुमत्या च सर्वेषामृषीणां भावितात्मनाम् ॥६॥
नतभालः स धर्मात्मा तदोवाच कृताञ्जलिः । भगवंस्तद्विदां श्रेष्ठ ! शिरोधार्य्यं वचस्तव ॥१०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वा महातेजास्तेजोराशिं घटोद्भवम् । सभा-विसर्जनं चक्रे महर्षीणामनुज्ञया ॥११॥
ऋषयः पञ्चरात्रं ते तत्रोषित्वोरुयाञ्चया । सत्सङ्गसुखलाभाय ययुः स्वं स्वं तपोवनम् ॥१२॥
अथ यातेषु वै तेषु महत्सु मिथिलेश्वरः । त्र्यम्बकस्य सुधीः शम्भोस्तोषणाय मनोदधे ॥१३॥
तपस्तताप तद्घोरमूर्ध्वबाहुरतन्द्रितः । अष्टवर्षाणि युक्तात्मा तदा प्रीतोऽभवद्धरः ॥१४॥
अभ्येत्य दृष्टिमार्गं स पितुर्मे चन्द्रशेखरः । तुष्टोऽस्म्यहं वरं ब्रूहि तमाहेति हसन्निव ॥१५॥
एवमुक्तः पपातासौ त्र्यम्बकस्य पदाब्जयोः । तमुत्थाप्य परिष्वज्य ददौ तस्मै स सान्त्वनाम् ॥१६॥
धैर्यमालम्ब्य योगीन्द्रः पुनस्तं संयताञ्जलिः । प्रार्थयामास धर्मज्ञः पार्वतीवल्लभं विभुम् ॥१७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! आत्माका साक्षात्कार करनेवाले उन सभी ऋषियोंकी अनुमति पूर्वक साक्षात् भगवान् श्रीअगस्त्यजी महाराज द्वारा इस प्रकारका आदेश पाकर धर्मबुद्धि श्रीमिथिलेशजी महाराज हाथ जोड़े, मस्तक झुकाकर बोले—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! षडैश्वर्य-सम्पन्न प्रभो ! आपका वचन शिरोधार्य है अर्थात् मैं तदनुसार ही साधन करूँगा ॥६॥१०॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! महातेजस्वी श्रीमिथिलेशजी महाराजने तेजके पुञ्जस्वरूप श्रीअगस्त्यजी महाराजसे इस प्रकार कहकर महर्षियोंकी आज्ञासे सभाका विसर्जन किया ॥११॥ पुनः श्रीमिथिलेशजी महाराजकी विशेष-याचनासे वे ऋषिवृन्द पांच रात्रि वहाँ सत्सङ्ग सुख लाभके लिये निवास करके अपने-अपने तपोवनको चले गये ॥१२॥ जब वे महात्मावृन्द वहाँसे चले गये, तब सुन्दरबुद्धि सम्पन्न श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपना मन त्रिनेत्रधारी भगवान् श्रीशङ्करजीको प्रसन्न करनेमें लगा दिया ॥१३॥

मनको अपने वशमें रखकर, आलस्य रहित हो बाहें ऊँची करके आठ वर्ष तक जब महाराजने घोर तप किया तब भक्तोंके दुःख हारी भगवान् शिवजी प्रसन्न हुये ॥१४॥

और मेरे श्रीपिताजीको दर्शन देकर उनसे मुस्कराते हुये से बोले—हे राजन् ! मैं प्रसन्न हूँ, आप वर माँगिये ॥१५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! भगवान् श्रीसदाशिवजीकी यह आज्ञा पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराज उनके श्रीचरण-कमलोंमें गिर पड़े, उन्हें श्रीभोलेनाथ बाबाने उठा लिया और हृदयसे लगा कर सान्त्वना प्रदान की ॥१६॥

जिससे धर्म तत्त्वको जानने वाले योगियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजने धैर्य धारण करके श्रीपार्वतीवल्लभजूसे पुनः प्रार्थना की ॥१७॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

यदि तुष्टोऽसि मे नाथ! सर्वाभीष्टफलप्रदः । वाञ्छितं देहि मे शम्भो! यदर्थं त्वं निषेवितः ॥१८॥
सर्वेश्वर्या हि सम्प्राप्तिः पुत्रीरूपेण मे प्रभो !। भवेदाशु यतो ब्रह्म जामाता नृपजो भवेत् ॥१९॥
तत्सम्बन्धप्रदानं हि वरं मे परमं प्रभो ! दीयतां करुणासिन्धो ! वरं दातुं यदीहसे ॥२०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तमुवाच प्रसन्नात्मा शङ्करः प्रहसन्निव । वरं ददामि ते कामं न मोघोऽस्तु मनोरथः ॥२१॥
यं च लेभे दशरथो यां च प्राप्तुं समीहसे । तौ हि सर्वेश्वरौ साक्षात् सीतारामौ परात्परौ ॥२२॥
रामं दशरथः प्राप सीतां प्राप्तुं यतस्व च । तस्याः प्राप्तिप्रयत्नस्तु तन्मन्त्रः सुलभोऽधिकाः ॥२३॥
रहस्यं श्रूयतां गुह्यं त्वदीहासिद्धिसूचकम् । तेन विश्रब्धमनसा कार्यं कर्म समाचार ॥२४॥
एकदा वै परे धाम्नि मुक्तजीवनिषेविते । श्रीसीतारामसंवादः शिवाय जगतोऽभवत् ॥२५॥

हे समस्त अभीष्ट फलको प्रदान करने वाले नाथ ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो हे शम्भो ! जिस अभीष्ट प्राप्ति के लिए मैंने आपकी आराधना की है, उसे प्रदान कीजिये ॥१८॥

हे प्रभो ! मुझे श्रीसर्वेश्वरीजीकी पुत्री रूपमें प्राप्ति हो, जिससे ब्रह्मस्वरूप, श्रीचक्रवर्ती कुमार श्रीरामललाजी, मेरे जमाई (दामाद) बन सकें ॥१९॥

श्रीरामललाजीके इस सम्बन्धका दान ही मेरा सर्वोत्कृष्ट वर है । अतः हे करुणासागर ! यदि आप वर देना चाहते हैं तो मुझे यही वर प्रदान कीजिये ॥२०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! भगवान् शङ्करजी प्रसन्न हृदय होकर हँसते हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोलेः—हे राजन् ! मैंने वरदान दिया, तुम्हारा मनोरथ सफल हो, सफल हो ॥२१॥ आप जिनको प्राप्त करना चाहते हैं और श्रीदशरथजी महाराज जिनको प्राप्त कर चुके हैं वे दोनों साक्षात् परात्पर ब्रह्म सर्वेश्वरी-सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी हैं ॥२२॥

हे निष्पाप राजन् ! सर्वेश्वर श्रीरामजीको तो श्रीदशरथजी महाराजने प्राप्त कर ही लिया अतः अब आप सर्वेश्वरी श्रीसीताजीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न शील हों । उनकी प्राप्तिका अधिक सुलभ साधन, उन्हींका श्रीमन्त्रराज है ॥२३॥

आपका मनोरथ—सिद्धि-सूचक एक गुप्त रहस्य हैं, उसे सुनें और उसके श्रवणसे अपने मनोरथ सिद्धि पर विश्वास करके आवश्वक कर्त्तव्यको भली प्रकार पूर्ण करें ॥२४॥

एक समय मुक्त-जीवोंसे सेवित, सर्वोत्कृष्ट श्रीसाकेत-धाममें, समस्त चर-अचर प्राणियोंको वास्तविक कल्याणकी प्राप्ति करानेके लिये उनकी देहाकार और विषयाकार चित्त वृत्तिको हटाकर भगवदाकार और कर्त्तव्याकार बनानेके लिये श्रीसीतारामजीका संवाद हुआ था ॥२५॥

सिद्धान्तितमिदं तस्मिन्सीतया जगदम्बया । यज्ञवेद्याः समुत्पत्स्ये ततो यज्ञो विधीयताम् ॥२६॥
प्राकट्यसूचकानीह सर्वेश्वर्य्या बहून्यपि । निमित्तानि प्रपश्यामि तानि मे वदतः श्रृणु ॥२७॥
येषां येषां महद्वैरं मिथः शास्त्रेषु वर्णितम् । तेषां तेषां परा प्रीतिर्मिथश्चात्र प्रदृश्यते ॥२८॥
ये विनिश्चितकाले हि सौख्यदाः सर्वदेहिनाम् । ते तु वै साम्प्रतं लोके सर्वकालसुखावहाः ॥२९॥
यश्च वै विषवत्पूर्वमिदानीं स सुधोपमः । ये जडाः कथिताः पूर्वं चेतना अभवन् हि ते ॥३०॥
कृत्स्ना कामदुघा भूमिः पाषाणा मणयोऽभवन् । वृक्षा वै कल्पवृक्षाश्च मर्त्यं स्वर्गमनामयम् ॥३१॥
एवमादीनि चिह्नानि त्वयाऽपूर्वोद्भवानि हि । सन्निरीक्ष्येप्सितप्राप्त्यै यज्ञः शीघ्रं विधीयताम् ।३२।

सिद्धिं परामेष्यसि मत्प्रसादादिष्टां विदेहान्वयपद्मभानो ! ।
कीर्त्तिश्च ते पुण्यमयी प्रशस्या गेया महद्भिर्भविता चिराय ॥३३॥
न चास्ति भूतो भविता न चैव लोकत्रये वै सदृशस्तवैव ।
इतो व्रज त्वं कुरु यज्ञमाद्यं ततो महाभाग ! लभस्व सिद्धिम् ॥३४॥

परस्परके उस संवादमें जगज्जननी श्रीसीताजीने अपना यह सिद्धान्त बताया था कि "मैं यज्ञवेदीसे प्रकट होऊँगी" अतः हे राजन् ! आप उनकी प्राप्तिके लिये पुत्रीष्टि यज्ञ प्रारम्भ करें ॥२६॥ इस समय मैं श्रीसर्वेश्वरीजीके प्राकटच-सूचक बहुतसे शुभ-शकुनोंको देख रहा हूँ, उन्हें मेरे कहते हुये श्रवण करें ॥२७॥

शास्त्रोंमें जिन-जिन प्राणियोंका एक दूसरेके प्रति अत्यन्त वैर वर्णन किया गया हैं, उन-उन प्राणियोंमें इस समय भली प्रकार से अत्यन्त प्रेम दिखायी दे रहा है ॥२८॥

जो अपने निश्चित समय पर ही सभी प्राणियोंको सुखदायी हुआ करते थे, वही इस समय सभी कालमें सुख उपस्थित कर रहे हैं ॥२९॥

जो पहले विषके समान घातक था, वही अब अमृतके समान जीवनदान देने वाला बन गया है और जिनको पहले जड़ कहा जाता था वही इस समय चेतन बन गये हैं ॥३०॥

इस समय लोगोंकी इच्छानुसार सारी भूमि, उपजाऊ हो गयी है, पत्थर, मणियोंका रूप धारण कर रहे हैं और वृक्ष, कल्पवृक्षका प्रभाव दिखा रहे हैं, यह मृत्युलोक, समस्त रोगोंसे रहित स्वर्गके सदृश सुखद हो रहा है ॥३१॥

इस प्रकार पहले कभी प्रकट न होने वाले उत्तमोत्तम शुभ चिह्नोंको सम्यक् प्रकारसे देखकर अपनी अभीष्ट-पूर्त्तिके लिये आप शीघ्र पुत्रीष्टि यज्ञ करें ॥३२॥

हे श्रीविदेहकुलकमलदिवाकर ! मेरी कृपासे आप अपनी सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट-सिद्धिको शीघ्र ही प्राप्त करेंगे जिससे आपकी प्रशंसनीय पुण्य-मयी कीर्त्ति महातमाओंके द्वारा अनन्त काल तक गाने योग्य बन जायेगी ॥३३॥ हे राजन् ! इन तीनों लोकोंमें आपके सदृश सौभाग्यवान् न कोई इस समय है, न कोई पहले हुआ है, और न पीछे कोई होगा ही । अतएव हे महाभाग! अब आप यहाँ से अपने महल जावें और उस उत्तम यज्ञ द्वारा अपनी अभीष्ट-सिद्धिको प्राप्त करें ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतद्वरं प्रीतियुतः प्रदाय श्रीशङ्करो देववरः कृपालुः ।
अन्तर्दधे पश्यत एव तस्य सौदामिनीव प्रिय ! पद्मनेत्र ! ॥३५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! कमलनयन ! देवताओंमें श्रेष्ठ, भक्तों पर कृपा करनेका सहज स्वभाव रखने वाले, श्रीशङ्कर भगवान् श्रीमिथिलेशजी महाराजको प्रीतिपूर्वक यह वरदान देकर उनके देखते ही देखते बिजलीके सदृश अन्तर्धान हो गये ॥३५॥

इति त्रिंशोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथैकत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

वर श्रवणसे हर्षित, श्रीशतानन्दजी की आज्ञा से आमन्त्रित सभी ऋषियों तथा श्रीदशरथजीसे जनकजी का मिलन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ लब्धवरः श्रीमान् निमिवंशप्रभाकरः । समागत्यालयं शम्भोर्वरं लब्धमकीर्त्तयत् ॥१॥
भ्रातरो मन्त्रिणश्चैव पुरोधाश्च द्विजर्षभाः । निशम्यागमनं राज्ञः शीघ्रमेव समागताः ॥२॥
तैरभिनन्दितः श्रीमान् सत्कृतेभ्यो नृपोत्तमः । वरं बभाण सम्प्राप्तं सर्वेभ्यो वरदर्षभात् ॥३॥
तच्छ्रुत्वा हर्षिताः सर्वे शतानन्दमथाब्रुवन् । कारयाशु महायज्ञं सन्मुहूर्तं विचार्य च ॥४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पुनस्तु पूजिताः सर्वे यथाकामं नृपेण ते । निवासं चागमन् स्वं स्वं प्रशंसन्तो महीपतिम् ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! निमिवंशको सूर्यके समान विश्वमें प्रकाशित करने वाले श्रीमान् श्रीमिथिलेशजी महाराज वरदान पाकर अपने महलमें पहुँचे और भगवान् श्रीसदाशिवजीसे पाये हुये वरदानको उन्होंने कह सुनाया ॥१॥ इतने ही में श्रीमिथिलेशजी महाराजका महलमें आगमन सुनकर सभी भाई, मन्त्री, तथा श्रीशतानन्दजी महाराज एवं श्रेष्ठ द्विज (ब्राह्मण) वृन्द शीघ्र ही उनके पास आ गये ॥२॥

नृपोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् मिथिलेशजीने सभीका सत्कार करके उन लोगोंसे यथोचित धन्यवाद प्राप्त कर वरद शिरोमणि श्रीसदाशिवजी महाराजसे प्राप्त हुये अपने वरदानको सभीसे निवेदित किया ॥३॥ भगवान् शिवजीसे वरदानकी प्राप्ति सुनकर सबके सब बड़े हर्षको प्राप्त हो श्रीशतानन्दजी महाराजसे बोले–हे गुरुदेव ! अच्छा मूहूर्त विचार करके भगवान् शिवजीके बतलाये हुये इस महायज्ञको आप शीघ्र आरम्भ करवाइये ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! उसके पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराजसे यथेष्ट पूजित होकर उनकी प्रशंसा करते हुये, वे सभी अपने-अपने भवनोंको पधारे ॥५॥

शतानन्दो महातेजास्तपः संवीतकिल्बिषः । रात्रौ विचार्य दोषज्ञो मुहूर्तं दुर्लभेष्टदम् ॥६॥
प्रत्यूषे राजभवनं समागत्य मुदान्वितः । पूजितो विधिना प्राह राजानं विनयान्वितम् ॥७॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

संभ्रियन्तां च संभारा आनीयन्तां मुनीश्वराः । निमन्त्रयस्व धर्मज्ञान् सर्वभूमण्डलेश्वरान् ॥८॥
पञ्चम्यां हि सिते पक्षे वर्षेऽस्मिन्सुमहामते । अपूर्वयोगलग्नर्क्षमुहूर्ता मासि माधवे ॥९॥
अद्य वै पाश्चिमी यात्रा प्रशस्ता सर्वसिद्धये । अतः श्रीलक्ष्मणातीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१०॥
पृथक् पृथग्धि सर्वेषामावासाश्च मनोहरा । सर्वावश्यसंयुक्ताः कर्त्तव्या बहुविस्तराः ॥११॥
मुनीनां पृथगावासा राज्ञां चैव तथा पृथक् । प्रत्येकवर्गजातीनामावासाश्च पृथक् पृथक् ॥१२॥
शिल्पिदैवज्ञविदुषामागतानां सुदूरतः । नटानां नर्तकानां च भट्टानां कल्पवेदिनाम् ॥१३॥
क्रियन्तां महदावासाः सर्वावश्यकसंयुताः । तथा पौरजनस्यापि विधेया बहुविस्तराः ॥१४॥
देयमावश्यकं सर्वं सादरं न तु लीलया । सर्वेभ्यः पुष्कलं प्रीत्या प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥१५॥

तपसे जिनके समस्त पाप नष्ट हो चुके थे, ऐसे महातेजस्वी, विद्वान् श्रीशतानन्दजी महाराज रातमें अपने निवासस्थानपर दुर्लभ सिद्धि प्रदान करने वाला, सुन्दर मुहूर्त विचार करके प्रातः समय बड़ी प्रसन्नतापूर्वक राज-भवन पधारे, वहाँ महाराज द्वारा विधिवत् पूजित हो, उन विनयशील श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले ॥६॥७॥

हे राजन् ! अब आप यज्ञके लिये सभी सामग्री एकत्रित कराइये और मुनिश्रेष्ठोंको बुलाकर सभी धर्मज्ञ भूमण्डलेश्वरोंको निमन्त्रण भेजिये ॥८॥

हे सुमहाभते ! क्योंकि इसी वर्ष वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें जो शुभयोग, लग्न, नक्षत्र, मुहूर्त एकत्रित हुये हैं वे पूर्वमें कभी नहीं हुये थे ॥९॥

आज पश्चिम दिशाकी यात्रा समस्त सिद्धि-प्राप्तिके लिये अत्यन्त उपयुक्त है, अतः श्रीलक्ष्मणा गङ्गाजीके किनारे ही यज्ञभूमि बनाई जावे ॥१०॥

वहाँ सभीके लिये अलग-२ समस्त आवश्यक वस्तुओंसे पूर्ण बहुत लम्बे चौड़े मनोहर निवास-भवन बनवाये जायँ ॥११॥ वे भवन मुनियोंके लिये अलग, राजाओंके लिये अलग तथा प्रत्येक वर्ण और जातिके लिये अलग–अलग बनवाये जायँ ॥१२॥

दूरसे आये हुये कल्पका भेद जानने वालोंके, भाटोंके, नृत्यकारोंके, नटोंके, ज्योतिषियोंके व कारीगरोंके लिये सभी आवश्यकता निर्वाहक सामग्रियोंसे युक्त, बड़े-२ महल बनवाये जायँ और पुरवासियोंके लिये भी बड़े-बड़े निवासस्थान बनवाना चाहिये ॥१३॥१४॥

सभीके लिये सभी आवश्यक वस्तुयें प्रेमपूर्वक, प्रसन्न हृदयसे पर्याप्त(आवश्यकतासे अधिक) मात्रामें आदर सहित दी जायँ विनोद पूर्वक नहीं॥१५॥

कस्यचिन्नापि चावज्ञा विधेया भूप ! तावकैः । यज्ञकर्मणि सक्तास्तैस्तोषणीया विशेषतः ॥१६॥
हताशा नार्थिनः कार्या देहप्राणधनैरपि । अयाचकाः प्रकर्त्तव्या यज्ञेऽस्मिन्नित्ययाचकाः ॥१७॥
एवं त्वया महायज्ञो दुर्लभार्थाप्तिकाम्यया । कर्त्तव्यो विधिवद्राजन् ! क्षिप्रमेव प्रयत्नतः ॥१८॥
श्रीमान् दशरथो राजा सत्यसन्धः प्रतापवान् । समानेयो यशःश्लाघ्यो विनयेनाद्यमन्त्रिणा ॥१९॥
विकाशाया धवः श्रीमान् भूरिमेधास्तु सानुजः । विष्वक्सेनेन चानेयः श्वशुरः सानुजस्तव ॥२०॥
श्रीधरं परमोदारं राजानं सत्यविक्रमम् । अमात्यो जयमानश्च समानयतु सादरम् ॥२१॥
सुदामा यातु चानेतुं वृद्धं मातामहं तव । वार्हलाधिपतिं शूरं नरेन्द्रं चार्कभास्वरम् ॥२२॥
विश्वकायं समानेतुं सपुत्रं बन्धुभिर्युतम् । सुनीलो यातु धर्मज्ञं वारधानपुरेश्वरम् ॥२३॥
काशिराजं तथाऽऽनेतुं विधिज्ञो यातु धार्मिकम् । कोशलाधिपतिं वृद्धमानयेत्सन्धिवेदनः ॥२४॥

हे राजन् ! आपके कर्मचारियोंको किसीका भी अपमान नहीं करना चाहिये और यज्ञके कार्यमें संलग्न रहने वालोंको विशेष रूपसे सन्तुष्ट रखना अपना कर्तव्य समझना चाहिए ॥१६॥

धन, शरीर, प्राण भी यदि देनेकी आवश्यकता उपस्थित हो जाय तो सहर्ष दे डालें किन्तु याचककी आशाको भङ्ग न करें । जिन्हें नित्य भिक्षा माँगनेका ही व्यसन पड़ गया है उन्हें भी इस यज्ञमें अपनी उदारतासे अयाचक बना दिया जाय अर्थात् उन्हें इतना दान दिया जावे कि लाचार होकर उन्हें अपनी उस वृत्तिको छोड़ना ही पड़े ॥१७॥

हे राजन् ! दुर्लभ मनोरथकी सिद्धिके लिये आपको इसी रीतिसे प्रयत्नपूर्वक शास्त्रविधिके अनुसार उस यज्ञको शीघ्र ही करना चाहिये ॥१८॥

आपके प्रधानमन्त्री (श्रीसुदर्शनजी) अपने यशसे प्रशंसाके पात्र, सत्यप्रतिज्ञ, प्रतापशाली, श्रीयुत दशरथजी-महाराजको बुला लावें ॥१९॥

विवष्वक्सेन मन्त्रीजी आपके श्वशुर, विकाशापुरीके श्रीमान् राजा भूरिमेधाजी महाराजको छोटे भाई श्रीज्ञान मेधाजी सहित बुला लावें ॥२०॥ सत्य-पराक्रमवाले, परम उदार श्रीधर महाराजको आपके मन्त्री श्रीजयमानजी आदर पूर्वक बुला लावें ॥२१॥

श्रीसुदामा मन्त्रीजी आपके वृद्ध नाना, वार्हल देशके राजा, शौर्य-गुण-संयुक्त श्रीअर्क भास्वरजी महाराजको लेनेके लिये जावें ॥२२॥

पुत्र तथा बन्धुओंके सहित धर्मके रहस्यको समझने वाले वारधानपुरके राजा श्रीविश्वकाय-जी महाराजको लेनेके लिये श्रीसुनील मन्त्रीजी पधारें ॥२३॥

धर्मपरायण श्रीकाशीनरेशजीको लेनेके लिये श्रीविधिज्ञ मन्त्रीजी जावें और कोशल देशके वृद्ध राजाको बुलाने के लिए श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीजी जावें ॥२४॥

तथा मगधभूपालं रोमपादं दयापरम् । सुमतो यातु चानेतुं सुदामा केकयेश्वरम् ॥२५॥
अनुक्तान्पार्थिवांश्चापि दूताः कार्यविशारदाः । समानयन्तु शीघ्रेण विनयेनैव तोषितान् ॥२६॥
चतुर्वर्णाश्रमस्थानां सर्वेषामपि सादरम् । निमन्त्रणं च क्रियतां विशेषेण महात्मनाम् ॥२७॥
एवमुक्तो महातेजा योगिनामृषभो नृपः । आदिदेश महामात्यान् यथोक्तं च पुरोधसा ॥२८॥
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे बुद्धिमन्तो नरेश्वरम् । अकारयंस्तदाऽऽवासाञ्छिल्पकर्मविशारदैः ॥२९॥
यथायोग्यांश्च सर्वेषां सर्वावश्यकसंयुतान् । सर्वर्तुसुखदान् रम्यान् नानारचनयान्वितान् ॥३०॥
पुनर्गत्वा नृपादेशाद्देशांस्ते परिकीर्तितान् । नाना यानानि चारुह्य वायुसूर्यजवानि ह ॥३१॥
प्रणता नीतिशास्त्रज्ञाः स्निग्धाः सत्सारवेदिनः । उक्तेभ्यो नृपमुख्येभ्यः प्रददू राजपत्रिकाम् ॥३२॥
वाचयित्वा तु तां प्रेम्णा लिखितां निमिभानुना । प्रहर्षं ते परं लब्ध्वाऽऽश्वाजग्मुर्मिथिलापुरीम्॥३३॥
श्रीमान् सुदर्शनो नाम प्रधानः सर्वमन्त्रिणाम् । अयोध्यां चागमत्तूर्णं समानेतुं महानृपम् ॥३४॥

उसी प्रकार श्रीसुमत मन्त्रीजी, मगध देशके परम दयालु श्रीरोमपादजी महाराजको बुलाने के लिये और श्रीसुदामा मन्त्री, केकय नरेशको बुलाने के लिये पधारें ॥२५॥

जिनका नाम मैंने नहीं लिया हो, उन राजाओंको भी आपके कार्यकुशल दूत अपनी-अपनी प्रार्थना से सन्तुष्ट करके, यहाँ शीघ्र बुला लावें ॥२६॥ चारो वर्ण व आश्रमों में रहने वाले सभी लोगोंका निमन्त्रण कीजिये उनमें भी जिनके हृदयमें भगवान्का हो मुख्य विहार रहता है महात्माओंको विशेष रूपसे निमन्त्रण भेजिये ॥२७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! श्रीशतानन्दजी महाराजकी इस आज्ञाको सुनकर योगियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मतेजयुक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनके आज्ञानुसार अपने महामन्त्रियोंको आदेश दे दिया तब वे बुद्धिमान् सभी मन्त्रीगण-महाराजसे 'ऐसा ही होगा' कहकर परम-चतुर कारीगरोंद्वारा निवास-भवन बनवाने लगे जो सभीके लिये यथा योग्य, समस्त आवश्यक पदार्थों से परिपूर्ण और नाना प्रकारकीरचनासे युक्त, सुन्दर तथा सभी ऋतुओंमें सुखद थे ॥२८॥२९॥३०॥

पुनः श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञासे वे वायु और सूर्यके समान शीघ्र चलने वाली सवारियों पर बैठ कर जिन जिनके नाम कहे गये थे, उन सभीके यहाँ जाकर ॥३१॥

नीतिशास्त्रके ज्ञाता कोमल स्वभाव और जीवनका सच्चा सार जानने वाले उन मन्त्रियोंने उन्हें प्रणाम करके श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पत्रिका प्रदान की ॥३२॥

निमिवंशको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी लिखी हुई पत्रिकाको बाँचकर वे राजा लोग परम हर्षको प्राप्तहो शीघ्र श्रीमिथिलापुरीमें आ पहुँचे ॥३३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रधानमन्त्री श्रीसुदर्शनजी श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको लेनेके लिये शीघ्र श्रीअयोध्याजी पधारे ॥३४॥

गत्वाऽसौ तं नमस्कृत्य राजानं सत्यवादिनम् । संपृष्टकुशलः सौम्यो दत्तवान् राजपत्रिकाम् ॥३५॥
तां तु पङ्क्तिरथः श्रीमान् प्रहृष्टवदनः शुचिः । श्रूयतामिति सम्भाष्य सुमन्त्राय न्यशामयत् ॥३६॥
सिद्धिश्रीः! सकलप्रशस्तगुणधे! राजेन्द्रचूडामणे! मार्तण्डान्वयवारिजातविपिनध्वान्तापह! श्रीमतः।
पादाब्जे मम कोटिशः प्रणतयः स्युः सादरं स्वीकृता आशासे कुशली भवान्कुलयुतो भद्रं हि नः सर्वथा।३७।
पुत्रीष्टिं कर्तुमिच्छामि मुनीनां सम्मतेन तत् । आरम्भः शुक्लपञ्चम्या माधवस्य सुनिश्चितः ॥३८॥
तं निजागमनेनैव समलङ्कर्तुमर्हसि । सपुत्रबन्धुमित्रश्च राज्ञीभिर्मन्त्रिभिः सह ॥३९॥
इमां तु प्रार्थनाशाखां भवता सफलीकृताम् । द्रष्टुमर्होऽस्मि राजेन्द्र ! कृपया ते कृपानिधेः ॥४०॥
अधिकं प्रार्थये किञ्च भवन्तं वाग्विदां वरम् । भवदीयकृपाकाङ्क्षी सीरध्वज इति श्रुतः ॥४१॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तन्निशम्य सुमन्त्रोऽतिहर्षसम्प्लाविताशयः । व्याजहार वचः श्लक्ष्णं राजानं प्रति शोभनम् ॥४२॥

वहाँ सत्यवादी श्रीदशरथजी महाराजके पास पहुँच कर उन्हें नमस्कार किया, पुनः कुशल पूछने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पत्रिका उनको समर्पित की ॥३५॥

उस पत्रिका को पवित्र आचरण सम्पन्न, प्रसन्न मुख, श्रीमान् दशरथजी महाराजने स्वयं पढ़ा और हे सुमन्त्रजी! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पत्रिका श्रवण कीजिये, ऐसा कहकर उनको पढ़कर सुनाने लगे ॥३६॥

हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यप्राप्त तथा समस्त प्रसिद्ध क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, सौलभ्य, सौजन्य, औदार्य, कारुण्यादि गुणोंके निधि ! श्रेष्ठराजाओंके शिरोमणि ! मार्तण्ड (सूर्य) वंश रूपी कमलवनको प्रफुल्लित करने वाले सूर्य ! श्रीमहाराजाधिराज! श्रीमान्‌जीके श्रीचरणकमलोंमें कोटिशः प्रणाम स्वीकृत हों, मैं कुशलसे हूँ और आशा करता हूँ कि आप भी अपने कुलके सहित सब प्रकारसे सकुशल होंगे ॥३७॥

इस समय मैं मुनियोंकी सम्मतिसे पुत्रीष्टि यज्ञ करना चाहता हूँ, उसका आरम्भ वैशाख शुक्ला पञ्चमीसे सुनिश्चित है ॥३८॥ अतः पुत्र, बन्धु, मित्र महारानियां तथा मन्त्रियोंके साथ आप अपने शुभागमनके द्वारा उस यज्ञको सुशोभित करनेकी कृपा करें ॥३९॥

हे राजेन्द्र ! आप तो कृपाकी निधि हैं अत एव आपकी कृपासे मैं अपनी इस प्रार्थना रूपी डालीको सफल देखने के योग्य अर्थात् अधिकारी (पात्र) हूँ ॥४०॥

आप वाणीका अर्थ समझने वालोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः आपसे और मैं क्या अधिक प्रार्थना करूँ? इति आपका कृपाकाङ्क्षी सुना हुआ सीरध्वज ॥४१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी पत्रिकाको सुनकर श्रीसुमन्त्रजी का हृदय अत्यन्त हर्षसे डूब गया, अतः वे महाराजसे बड़े प्रेममय सुहावन वचन बोले–॥४२॥

श्रीसुमन्त्र उवाच ।

अहो राजशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुज ! । स्वीकार्यं प्रार्थनापत्रमिदं श्रीमिथिलेशितुः ॥४३॥
एकवंश्यौ महाराज भवांश्च मिथिलेश्वरः । दिक्षु विख्यातसत्कीर्त्ती युवां मान्यौ जगत्त्रये ॥४४॥
मन्त्रिणोक्तमिदं प्रेष्ठ ! समाकर्ण्य शुभाक्षरम् । साधु साध्विति तद्वाक्यं क्षितिपालोऽन्वपूजयत् ॥४५॥
पुनर्वशिष्ठमाहूय स्वाचार्यं सुहृदां वरम् । तस्मै निवेद्य वृत्तान्तमाज्ञप्तस्तेन संयुतः ॥४६॥
अथो जगाम मद्देशं त्वामादाय शुभेक्षणम् । परीतं बन्धुभिः प्रेष्ठ ! वयसा चाष्टवार्षिकम् ॥४७॥
स यथा मिथिलां प्राप तद्भवाञ्ज्ञातुमर्हति । एवमेव महीपालाः सर्वे श्रीमिथिलां ययुः ॥४८॥
आगतानां क्षितीशानां मन्त्रिणः शुभसूचनाम् । प्रददुर्नरदेवाय बद्धाञ्जलिपुटा नताः ॥४९॥
सर्वेभ्यो युक्तहर्म्याणि यथार्हाणि शुभानि च । प्रायच्छत्क्षितिपालेभ्यः सर्वेभ्यश्च नृपाज्ञया ॥५०॥
आगता ऋषयः सर्वे त्रिषु लोकेषु सन्ति ये । राज्ञा निमन्त्रिताः प्रीताः सर्वज्ञाः पुण्यदर्शनाः ॥५१॥
विश्वामित्रो वशिष्ठश्च विश्वेदेवा च गालवः । विश्वकर्मा तथाऽगस्त्यः शाकल्यस्त्रिशिरा ऋषिः॥५२॥

हे राजाओंके सिरोंमें सुशोभित रत्नोंके स्पर्श-चिह्नोंसे युक्त श्रीचरणकमलवाले महाराज ! अहो श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस प्रार्थना-पत्रको अवश्य आपको स्वीकार करना चाहिये ॥४३॥

हे महाराज! क्योंकि आप और श्रीमिथिलेशजी दोनों ही एक(श्रीइक्ष्वाकुमहाराजके) वंशज हैं दोनों की ही सत्कीर्ति दशो दिशाओंमें विख्यात है और आप दोनों ही त्रिलोकीमें सम्माननीय हैं ॥४४॥ श्रीस्नेहपराजी बोली—हे प्यारे ! श्रीसुमन्त्रजीके सुन्दर अक्षरोंसे ओत-प्रोत कथनको सुनकर श्रीचक्रवर्ती महाराजने, "आपने बहुत अच्छा, कहा, ठीक कहा" इत्यादि कहते हुये उनके वचनों की वारम्बार प्रशंसा की ॥४५॥

पुनः सभी सुहृदोंमें श्रेष्ठ अपने आचार्य श्रीवशिष्ठजी महाराजको बुलाकर, उन्हें सब समाचार निवेदन करके, उनकी आज्ञासे श्रीचक्रवर्त्तीजी महाराज, उनके साथ ॥४६॥

हे प्यारे ! आठ वर्षकी अवस्थासे सम्पन्न, तीनों भाइयोंसे युक्त आप मङ्गल-दर्शन जी को लेकर वे श्रीमिथिलाजी पधारे ॥४७॥

हे प्यारे ! वे जिस प्रकार श्रीमिथिलाजी पहुँचे, यह तो (साथ में होनेके कारण) आप ही जान सकते हैं उसे मैं क्या कहूँ ! इसी प्रकार सभी राजा श्रीमिथिलाजी पधारे ॥४८॥

मन्त्री लोगोंने श्रीमिथिलेशजी महाराज को हाथ जोड़कर विनम्रभावसे वहाँ आये हुये राजाओं की मङ्गल सूचना प्रदान की ॥४९॥ पुनः उन्होंने श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी आज्ञासे सभी राजाओंके लिये यथायोग्य सुन्दर, भवन प्रदान किये ॥५०॥

हे प्यारे ! इसी प्रकार श्रीमिथिलेशजी-महाराजसे निमन्त्रित हुये तीनों लोकोंके सभी त्रिकालदर्शी मङ्गल-दर्शन ऋषिवृन्द भी बड़े प्रेमपूर्वक वहाँ पधारे ॥५१॥ श्रीविश्वामित्रजी श्रीविश्वेदेवाजी, श्रीगालवजी, श्रीविश्वकर्माजी, श्रीशाकल्यजी तथा श्रीत्रिशिरा ऋषिजी ॥५२॥

विवस्वान् दैववातिश्च पावकाग्निस्तथैव च। विश्वमना मयोभूश्च सुमेधा चोशना तथा ॥५३॥
देवलो वामदेवश्च परमेष्ठी प्रजापतिः। पुलहश्च पुलस्त्यश्च गोतमस्त्रित आसुरिः ॥५४॥
आङ्गिरसः सुश्रुतः शंयुर्भरद्वाजस्तु लोमशः। विरूप आडवत्सारो याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः ॥५५॥
वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा सुबन्धुः काश्यपो जयः। देवश्रवो देववातः कण्वश्चित्रः सुतम्भरः ॥५६॥
आपुलवनद्रुमदा रैस्तां गौरीवितिस्तथा। मानवो नाभानेदिष्टः सत्यायिको महानृषिः ॥५७॥
श्रुतबन्धुः प्रबन्धुश्च सिन्धुद्वीपोऽथ सोमकः। प्रस्कण्वः कुत्स उत्कील आत्रि सोमाहुतिस्तथा ॥५८॥
देवश्रवा त्रिशोकश्च भरद्वाजश्च भार्गवः। मेधातिथिस्त्रिदस्युश्च पायुर्गृत्समदो मनुः ॥५९॥
कुक्षिर्दीर्घतमा देवा शुनःशेपोऽथ वारुणिः। श्यावाश्वश्चैव वत्सारो वरुणस्तापसो ध्रुवः ॥६०॥
और्णवाभो मधुच्छन्दा गृत्सो वत्सो मृडीयवः। वैखानः शास आत्रेयो नाभानेदिः पराशरः ॥६१॥
बन्धुर्दीर्घतमोनत्थौ प्रियमेधा भिषक्तथा। सुतजेतृमधुच्छन्दा दधिक्रावश्च मुद्गलः ॥६२॥
नारायणो मधुच्छन्दो नाभानेदिष्ट आत्मवान्। विवृहा च सप्तधृतिर्बार्हस्पत्य शयुर्लुशः ॥६३॥

श्रीविवस्वान्जी, श्रीदैववातिजी, श्रीपावकाग्निजी तथा श्रीविश्वमनाजी, श्रीमयोभूजी, श्रीसुमेधाजी, श्रीउशनाजी ॥५३॥ श्रीदेवलजी, श्रीवामदेवजी, श्रीपरमेष्ठीजी, श्रीप्रजापतिजी, श्रीपुलहजी, श्रीपुलस्त्यजी, श्रीगोतमजी, श्रीत्रितजी, श्रीआसुरिजी ॥५४॥

श्रीअङ्गिराजीके पुत्र सुश्रुतजी, श्रीशंयुजी, श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीप्रजापतिजी, श्रीलोमशजी, अडवत्सारके पुत्र श्रीविरूपजी, श्रीयाज्ञवल्क्यजी, श्रीबृहस्पतिजी ॥५५॥

श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीमधुच्छन्दाजी, श्रीसुबन्धुजी, कश्यपके पुत्र श्रीजयजी, श्रीदेवश्रवजी, श्रीदेववातजी, श्रीकण्वजी, श्रीचित्रजी, श्रीसुतम्भरजी ॥५६॥

श्रीआपुलवनद्रुमदाजी, श्रीरैस्तजी, श्रीगौरीवितजी, श्रीमानवजी, श्रीनाभानेदिष्टजी, महर्षि सत्यायिकजी ॥५७॥ श्रीश्रुतबन्धुजी, श्रीप्रबन्धुजी, श्रीसिन्धुद्वीपजी, श्रीसोमकजी, श्रप्रस्कण्वजी, श्रीकुत्सजी, श्रीउत्कीलजी तथा श्रीअत्रिजीके पुत्र सोमाहुतिजी ॥५८॥

श्रीदेवश्रवाजी, श्रीत्रिलोकजी, श्रीभरद्वाजजी, श्रीभार्गवजी, श्रीमेधातिथिजी, श्रीत्रिदस्युजी, श्रीपायुजी, श्रीगृत्समदजी, श्रीमनुजी ॥५९॥ श्रीकुक्षिजी, श्रीदीर्घतमाजी, श्रीदेवाजी, वरुणके पुत्र शुनःशेपजी, श्रीश्याबाश्वजी, श्रीवत्सारजी, श्रीवरुणजी, श्रीतापसजी, श्रीध्रुवजी ॥६०॥

श्रीऊर्णवाभके पुत्र मधुच्छन्दाजी, श्रीगृत्सजी, श्रीवत्सजी, श्रीमृडीयवजी, श्रीवैखानजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र शासजी, श्रीनाभानेदिजी, श्रीपराशरजी ॥६१॥

श्रीबन्धुजी, श्रीदीर्घतमाजी, श्रीउनतथजी, श्रीप्रियमेधाजी, श्रीभिषक्जी, श्रीसुतजेतृमधुच्छन्दाजी, श्रीदधिक्रावजी, श्रीमुद्गलजी ॥६२॥

श्रीनारायणजी, श्रीमधुच्छन्दजी, श्रीनाभानेदिष्टजी, श्रीविवृहाजी, श्रीसप्तधृतिजी, श्रीवृहस्पतिके पुत्र श्रीशयुजी, श्रीलुशजी ॥६३॥

वत्सपः परमेष्ठी च कुशविन्दुश्च कीर्त्तिमान् । शङ्खः कुमारो हारीतः श्रीविश्वावसुराश्विनौ ॥६४॥
विश्वदेवोदगयनः सविता वसुयुर्ऋषिः । हैमवर्चिर्विभूतिश्च कौण्डिन्यो विधृतिस्तथा ॥६५॥
अरुणत्रसदस्युश्च स्वत्यात्रेयश्च सौभरिः । नृमेधपुरुषमेधौ यामायन ऋषिर्महान् ॥६६॥
लौगाक्षिः प्राडुराक्षिश्च रम्याक्षी च महानृषिः । शम्युरङ्गिरसश्चैव प्रस्ककण्व ऋषीश्वरः ॥६७॥
आश्वतराश्विः श्रीकामो गर्गः कत्सस्तथैव च । विश्ववारा विहव्यश्च नोधा मेधा ऋषीश्वरः ॥६८॥
कूर्मो गृत्समदः कृष्णः कौत्सादिर्ऋषिसत्तमः । बृहदुक्थो वामदेवः सुहोत्रः कुशिकस्तथा ॥६९॥
ऋजिश्वा च प्रतिक्षत्रः प्रगाथो दमनस्तथा । भरद्वाजशिरम्बिष्ठः साङ्काश्योऽथ महानृषिः ॥७०॥
लूशश्च धानको दक्षः कुसुरबिन्बुरेव च । सुकक्षः श्रुतकक्षश्च श्रीनोधागोतमस्तथा ॥७१॥
सुचीको यज्ञपुरुषः पुरमीढ़ ऋषीश्वरः । मेधाकामस्तिरश्चिश्च दध्यङ्णाथर्वणस्तथा ॥७२॥
विभ्राडगस्त्योऽजमीढो गृत्सो देवो बृहद्दिवः । शम्युश्च बार्हस्पत्यश्चोत्तरनारायणस्तथा ॥७३॥
लोपामुद्रा विदर्भश्च स्वयंभूर्ब्रह्म चात्मवान् । परमेष्ठी वाकुत्सश्चाप्रतिरथो महानृषिः ॥७४॥
सुतजेता विश्वकर्मा शिवसङ्कल्प एव च । देववातो नृमेधश्च दत्तात्रेयस्त्वथर्वणः ॥७५॥

श्रीवत्सपजी, श्रीपरमेष्ठीजी, श्रीकुशविन्दुजी, कीर्त्तिमान् श्रीशङ्खजी, श्रीकुमारजी, श्रीहारीतजी, श्रीविश्वावसुजी, श्रीआश्विनजी ॥६४॥

श्रीविश्वदेवजी, श्रीउदगयनजी, श्रीसविताजी, श्रीवसुयुऋषि, श्रीहैमवर्चिजी, श्रीविभूतिजी, श्रीकौण्डिन्यजी, श्रीविधृतिजी ॥६५॥

श्रीअरुणत्रसदस्युजी, श्रीस्वत्यात्रेयजी, श्रीसौभारिजी, नेनृमेधजी, श्रीपुरुषमेधजी, श्रीमहर्षियामायनजी ॥६६॥ श्रीलौगाक्षीजी, श्रीप्रादुराक्षीजी, श्रीरम्याक्षी महर्षिजी, श्रीशम्युजी, श्रीअङ्गिरसजी और श्रीप्रस्ककण्वऋषीश्वरजी ॥६७॥

श्रीआश्वतराश्विजी, श्रीकामजी, श्रीगर्गजी, श्रीकत्सजी तथा श्रीविश्ववाराजी, श्रीबिहव्यजी, श्रीनोधाजी श्रीमेघाजी ॥६८॥ श्रीकूर्मजी, श्रीगृत्समदजी, श्रीकृष्णजी, ऋषिश्रेष्ठ श्रीकौत्सादिजी श्रीवृहदुक्यथजी, श्रीवामदेवजी श्रीसुहोमजी श्रीकुशिकजी ॥६९॥

श्रीऋजिश्वाजी, श्रीप्रतिक्षत्रजी, श्रीप्रगाथजी, श्रीदमनजी, श्रीभरद्वाजशिरम्विष्ठजी, महर्षि-श्रीसाङ्काश्यजी ॥७०॥ श्रीलूशजी, श्रीधानकजी, श्रीदक्षजी, श्रीकुसुरविन्दुजी, श्रीसुकक्षजी, श्रीश्रुतकक्षजी तथा श्रीनोधागोतमजी ॥७१॥

श्रीसुचीकजी, श्रीयज्ञपुरुषजी, श्रीपुरमीढ़जी ऋषीश्वर श्रीमेधाकामजी, श्रीतिरश्चिजी, श्रीदध्यङ्ङाथार्वणजी ॥७२॥ श्रीविभ्राडगस्त्यजी, श्रीअजमील्हजी, श्रीगृत्सजी, श्रीदेवजी, श्रवृहद्दिवजी, श्रीशम्युजी श्रीबार्हस्पत्यजी, श्रीउत्तरनारायणजी ॥७३॥

श्रीलोपामुद्राजी, श्रीविदर्भिजी, श्रीस्वयंभूजी, आत्मवान् श्रीब्रह्मजी, श्रीपरमेष्ठीवाकुत्सजी, महर्षि श्रीअप्रतिरथजी ॥७४॥ श्रीसुतजेता विश्वकर्माजी, श्रीशिवसङ्कल्पजी, श्रीदेवबातजी, श्रीनृमेधजी, श्रीदत्तात्रेयजी, श्रीअथर्वणजी ॥७५॥

प्राजापत्यस्तथा यज्ञो विश्वकर्मा च विश्वभूः । अश्विनी च कुमारश्च सरस्वती महानृषिः ॥७६॥
काण्वायनः कुमारश्च कक्षिवानौशिजस्तथा । कपोलो नैर्ऋतः केतुः कण्वो धौरो महानृषिः ॥७७॥
काण्वायनोऽश्वसूक्ती च काण्व आयुस्तथा कृशः । ऋषि कामायनी श्रद्धा कार्षणी विश्वकस्तथा ॥७८॥
ऋषिः काक्षीवती घोषा काशिराजः प्रतर्दनः । काश्यपौ रेभसूनू च कुत्स आङ्गिरसस्तथा ॥७९॥
आङ्गिरसः कृतयशाः कृष्ण आङ्गिरसस्तथा । काण्वः कुरुसुतिश्चैव केतुराग्नेय एव च ॥८०॥
ऋषिः कुमार आग्नेयः कौशिको गाधिरेव च। कर्णश्रुतश्च वाशिष्ठः कौत्सौ दुर्मित्र आत्मवान् ॥८१॥
काक्षीवतश्च कुशिकः शवरैषीरथी तथा । कविर्भार्गव उत्कीलः कुसीदी कात्य एव च ॥८२॥
ऋषिः काश्यपोऽवत्सारः कलिप्रागाथ एव च । वैश्वामित्रः कतश्चैव वैखानसो महानृषिः ॥८३॥
करिक्रतश्च शैलूषिः कल्मलबर्हिस्तथा । वातरशनो मारीचः कश्यपश्च महानृषिः ॥८४॥
काण्वायनश्च गोसूक्ती गयो गातुर्गविष्ठिरः । वत्सप्रीर्गय आत्रेय सङ्कसुको महानृषिः ॥८५॥
सारवेतः कुरुसुतिर्बन्धुर्गोपायनस्तथा । ऋषिर्गर्गो भारद्वाजो गोपवनो महानृषिः ॥८६॥
गर्भकर्ता तथा त्वष्टा गौतमो नोध एव च । गृहपतिश्च सहसः पुत्रः संकसुकस्तथा ॥८७॥

तथा प्रजापतिके पुत्र श्रीयज्ञजी, श्रीविश्वकर्माजी, श्रीविश्वभूजी, श्रीअश्विनीजी, श्रीकुमारजी महर्षि श्रीसरस्वतीजी ॥७६॥ श्रीकण्वायनके पुत्र कुमारजी, श्रीकक्षिवान्जी, श्रीऔशिजजी, तथा श्रीकपोलजी श्रीनैर्ऋतजी, श्रीकेतुजी, श्रीकण्वजी, श्रीमहर्षिघौरजी ॥७७॥

श्रीकण्वायनके पुत्र श्रीअश्वसूक्तीजी, श्रीकणुके पुत्र आयुजी तथा श्रीकृशजी, ऋषि कामायनीजी, श्रीश्रद्धाजी, श्रीकार्षणीजी, श्रीविश्वकजी ॥७८॥

ऋषि श्रीकाक्षीवतीजी, श्रीघोषाजी, श्रीकाशिराजजी, श्रीप्रतर्दनजी, कश्यपजीके पुत्र श्रीरेभजी, श्रीसूनुजी तथा अङ्गिराजीके पुत्र श्रीकुत्सजी ॥७९॥

श्रीअङ्गिराजीके पुत्र कृतयशाजी, श्रीअङ्गिराजीके पुत्र श्रीकृष्णजी, कणुके पुत्र श्रीकुरुसुतिजी, अग्निके पुत्र श्रीकेतुजी ॥८०॥ श्रीअग्निके पुत्र ऋषिकुमारजी, कुशिकके पुत्र गाधिजी श्रीवशिष्ठजीके पुत्र कर्णश्रुतजी, श्रीकुत्सजी, श्रीकुत्सजीके पुत्र बुद्धिमान् दुर्मित्रजी ॥८१॥

श्रीकक्षवान्के पुत्र श्रीकुशिकजी, श्रीशवरजी, श्रीएषीरथिजी तथा भृगुजीके पुत्र कविजी, श्रीउत्कीलजी, श्रीकुसीदीजी, श्रीकात्यजी ॥२८॥ श्रीकश्यपजीके पुत्र श्रीअवत्सार ऋषि. श्रीकलिप्रगाथजी, श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीकतजी, श्रीमहर्षि वैखानसजी ॥८३॥

श्रीकरिक्रतजी, श्रीशैलूषिजी, श्रीकल्मलबर्हिषजी तथा श्रीवातरशनजी, मरीचिके पुत्र महर्षि श्रीकश्यपजी ॥८४॥ श्रीकण्वायनके पुत्र गोसूक्तीजी, श्रीगयजी, श्रीगातुजी श्रीगविष्ठरजी, श्रीवत्सप्रीजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र गयजी, श्रीमहर्षि सङ्कसुकजी ॥८५॥

श्रीसारवेतजी, श्रीकुरुसुतिजी, श्रीबन्धुजी तथा श्रीगोपायनजी, श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीगर्गजी, महर्षि श्रीगोपवनजी ॥८६॥ श्रीगर्भकर्ताजी, श्रीत्वष्टाजी, श्रीगौतमजी, श्रीनोधजी, श्रीगृहपतिजी, श्रीसहसजी, श्रीपुत्रजी, श्रीसंकसुकजी ॥८७॥

घोरश्च तापसो घर्मो गयप्रातश्च शौनकः । ऋषिः सुहस्त्यो घौषेयश्चक्षुर्मानव एव च ॥८८॥
च्यवनो भार्गवश्चित्रो महावाशिष्ठ आत्मवान् । चाक्षुषोऽग्निर्जमदग्निर्जय ऐन्द्रो महानृषि ॥८९॥
जूतिर्जुहूर्ब्रह्मजाया वातरशन एव च । जामदग्न्यो महर्षिश्च जानवृसस्तथैव च ॥९०॥
माधुच्छन्दसश्च जेता शार्ङ्गी च जरिता तथा । तपूर्मूर्द्धा वार्हस्पत्यस्तापसोऽग्निस्तथैव च ॥९१॥
तान्वःप्रार्थ्यस्तथाशक्तिस्त्रिशोकः काण्व आत्मवान्।अरिष्टनेमिस्ताक्ष्यश्चतिरश्चिस्त्र्यरुणस्तथ॥९२॥
सदस्युः पौरुकत्स्यस्त्रस्त्रित आप्यो महानृषिः । त्रैवृष्णस्तृणपाणिश्च तथा तर्य्यो महानृषिः ॥९३॥
ऋषिस्त्वाष्ट्रश्च त्रिशिरा अनुसूया तपोधना । दार्ढच्युतो मुक्तवाहा लोपामुद्रा द्वितस्तथा ॥९४॥
द्युतानो मारुतो देवातिथिः काण्वस्तथैव च । द्युमनो दमनो यामायनो देवातिथिस्तथ ॥९५॥
दक्षिणा प्राजापत्या च दुर्वासाश्च महानृषि । दाक्षायिण्यदितिश्चैव देवलः काश्यपस्तथा ॥९६॥
ऋषिर्द्युम्नीको वाशिष्ठो देवगन्धर्व एव च । धानाकश्च लुशो धिष्ण्यो धरुणो नारदस्तथा ॥९७॥
नीपातिथिर्निध्रुविश्च तथाऽऽत्रेयो गविष्ठरः । नारमेधः शकपोतो निध्रुविः काश्यपस्तथा ॥९८॥

श्रीघोरजी, श्रीतापसजी, श्रीघर्मजी, श्रीगयप्रातजी, श्रीशौनकजी, ऋषि श्रीसुहस्त्यजी, श्रीघौषेयजी, श्रीचक्षुर्जी, श्रीमानवजी ॥८८॥ श्रीच्यवनजी, श्रीभार्गवजी, श्रीचित्रजी, आत्मवान् श्रीमहावाशिष्ठजी श्रीचक्षुके पुत्र श्रीअग्निजी, श्रीजमदग्निजी इन्द्रके पुत्र महर्षि श्रीजयजी ॥८९॥ श्रीजूतिर्जी, श्रीजुहूजी, श्रीब्रह्मजायाजी, श्रीबातरशनजी, महर्षि श्रीजमदग्निजीके पुत्र परशुरामजी, तथा श्रीजानवृसजी ॥९०॥

श्रीमधुछन्दाजीके पुत्र जेताजी, श्रीशार्ङ्गीजी तथा श्रीजरिताजी, श्रीवृहस्पतिजीके पुत्र तपूमूर्द्धाजी, तपाजीके पुत्र श्रीअग्निजी ॥९१॥ श्रीतान्वजी, श्रीशक्तिजी, श्रीप्रार्थ्यजी, कण्वजीके पुत्र बुद्धिमान् श्रीत्रिशोकजी, श्रीअरिष्टनेमिजी श्रीताक्ष्यंजी, श्रीतिरश्चिजी, श्रीत्र्यरुणजी ॥९२॥

श्रीसदस्युजी, श्रीपौरुकत्यस्त्रजी, श्रीत्रितजी, महर्षि श्रीअपाजीके पुत्र आप्यजी, श्रीत्रिवृष्णजी के पुत्र तृणपाणिजी तथा महर्षि तर्य्यजी ॥९३॥ श्रीत्वष्टाजीके पुत्र श्रीत्रिशिराजी, श्रीतपोधना अनुसूयाजी, श्रीदार्ढच्युतजी, श्रीमुक्तवाहाजी, श्रीलोपामुद्राजी तथा श्रीद्वितजी ॥९४॥

श्रीद्युतानजी, श्रीमारुतजी तथा कण्वके पुत्र श्रीदेवातिथिजी, श्रीद्युमनजी, श्रीदमनजी तथा श्रीयमायनजीके पुत्र देबातिथिजी ॥९५॥ प्रजापतिकी पुत्री श्रीदक्षिणाजी, महर्षि श्रीदुर्वासाजी दक्षकी पुत्री श्रीअदितिजी तथा श्रीकश्यपजीके पुत्र देवलजी ॥९६॥

वशिष्ठजीके पुत्र ऋषि श्रीद्युम्नीकजी, श्रीदेवगन्धर्वजी, श्रीधानाकजी श्रीकुशजी, श्रीधिष्ण्यजी श्रीधरुणजी तथा श्रीनारदजी ॥९७॥ श्रीनीपातिथिजी, श्रीनिध्रुविजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र गविष्ठरजी, श्रीनरमेधजीके पुत्र श्रीशकपोतजी तथा श्रीकश्यपजी के पुत्र श्रीनिध्रुविजी ॥९८॥

निवारी सिकता नेमो गृत्समदश्च भार्गवः । नहुशो मानवश्चैव भारद्वाजो नरस्तथा ॥९९॥
नभ प्रभेदनश्चैव वैरूपश्च महानृषिः । ययातिर्नाहुषः पारुक्षेपी पावक एव च ॥१००॥
दिव्यश्च नारदः काण्व ऐलः पुरुरवस्तथा ! । पर्वतश्च पुनर्वत्सः पृषध्रः पनयोऽसुरः ॥१०१॥
प्रवित्रः पुरुमेधश्च पृश्नियोऽजस्तथैव च । अनानतः पारुक्षेपी प्रतिभानु प्रतिप्रभः ॥१०२॥
प्राजापत्यः पतङ्गश्च पूरु आत्रेय एव च । भारद्वाज ऋषिः पायुः प्रयोगो भार्गवस्तथा ॥१०३॥
आङ्गिरसः पवित्रश्च पूतदक्षो महानृषि । ऋषिः काण्वः पुनर्वत्सः प्रचेता प्रमतिस्तथा ॥१०४॥
ऋषिः पूर्णो वैश्वामित्रः पौर आत्रेय एव च । पौलोमी च शची प्लातो दलहच्युतो महानृषिः ॥१०५॥
प्रजावान्प्राजापत्यश्च प्रथो वाशिष्ठ एव च । वाच्यः प्रजापतिश्चर्षिराङ्गिरसः प्रभूवसुः ॥१०६॥
प्रयस्वन्तस्तथाऽऽत्रेयः प्रतिरथो महानृषिः । प्रैयमेधश्च सिन्धुक्षिद्वर्षागिरो वसूयवः ॥१०७॥
बिन्दुर्वब्रिश्च बभ्रुश्च भर्गो भौमश्च भारतः । भारतो देववातश्च भिक्षुर्नामा महातृषिः ॥१०८॥
भूतांशो भुवनो राजाऽश्वमेधा भारतस्था । वार्षागिरो भयमानो देवश्रवा च भारतः ॥१०९॥

श्रीनिवारीजी, श्रीसिकताजी, श्रीनेमजी, श्रीभृगुजीके पुत्र श्रीगृत्समदजी, श्रीनहुशजी श्रीमानवजी तथा श्रीभरद्वाजजीके पुत्र श्रीनरजी ॥९९॥ महर्षि श्रीविरूपजीके पुत्र श्रीनभः प्रभेदनजी, नहुषके पुत्र ययातिजी, पारुक्षेपीजी, पावकजी ॥१००॥

श्रीदिव्यजी, श्रीकण्वके पुत्र नारदजी इलाके पुत्र श्रीपुरूरवजी, श्रीपर्वतजी, श्रीपुनर्वत्सजी, श्रीपृषध्रजी, श्रीपनयजी, तथा श्रीअसुरजी ॥१०१॥ श्रीप्रवित्रजी, श्रीपुरुमेधजी, श्रीपृश्नियजी, श्रीअजजी, इसी प्रकार श्रीअनानतजी, श्रीपारुक्षेपोजी, श्रीप्रतिभानुजी, तथा श्रीप्रतिप्रप्रजी १०२

श्रीप्रजापतिके पुत्र श्रीपतङ्गजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीपूरुजी, श्रीभरद्वाजके पुत्र श्रीपायुऋषि तथा श्रीभृगुजीके पुत्र श्रीप्रयोगजी ॥१०३॥ श्रीअङ्गिराजीके पुत्र पवित्रजी, महर्षि पूतदक्षजी, कण्वके पुत्र ऋषिपुनर्वत्सजी, श्रीप्रचेताजी, तथा श्रीप्रमतिजी ॥१०४॥

श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीपूर्ण ऋषिजी श्रीअत्रिजोके पुत्र श्रीपौरजी, पुलोमकी पुत्री श्रीशचीजी, श्रीप्लातजी, महर्षि श्रीदलहच्युतजी ॥१०५॥ श्रीप्रजापतिके पुत्र श्रीप्रजावान्जी और श्रीवशिष्ठ-जीके पुत्र श्रीप्रथजी, श्रीवाच्यः प्रजापतिजी, श्रीअङ्गिराजीके पुत्र श्रीप्रभूवसुजी ॥१०६॥

श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीप्रयस्वन्तजी, महर्षि प्रतिरथजी, श्रीप्रियमेधजीके पुत्र श्रीसिन्धुक्षित्जी, श्रीवर्षागिरजी, श्रीवसूयवजी ॥१०७॥ श्रीबिन्दुजी, श्रीबब्रिजी, श्रीवभ्रुजी, श्रीभर्गजी, श्रीभरत के पुत्र भौमजी, श्रीरतजीके पुत्र देववातजी और महर्षि श्रीभिक्षुजी ॥१०८॥

श्रीभूतांशजी, श्रीभुवनजी, श्रीराजाजी श्रीभरतजीके पुत्र श्रीअश्वमेधाजो, वर्षागिरजीके पुत्र श्रीभयमानजी, तथा श्रीभरतजीके पुत्र श्रीदेवश्रवाजी ॥१०९॥

भारद्वाजी तथा रात्रिर्मेध्यातिथिर्महानृषि । माधुच्छन्द ऋषिर्मेध्यो मातरिश्वा च मुष्कवान्॥११०॥
मूर्धन्वान्ययतश्चैव यमो वैवस्तस्तथा । यमी वैवस्वती यज्ञो रातहव्यस्तथैव च ॥१११॥
रेभो राहुगणश्चैव लवो लौपायनस्तथा । वातायनो वातहव्यो वैश्वामित्रो वृहन्मतिः ॥११२॥
बृहदुक्थो वामदेवो बहुवृक्तो वसुश्रुतः । वैरूपो विश्वसामा च वीतहव्यो वरुस्तथा ॥११३॥
वसुक्रो विमदो विष्णुर्लौक्यो बृहस्पतिर्वसः । वैकुण्ठप्रमतिर्वैश्व्यः काण्वो ब्रह्मातिथिस्तथा ॥११४॥
भुवनपुत्री रक्षोहा रोमशा ब्रह्मवादिनी । ब्राह्मस्तथोर्ध्वनाभा च शेन आङ्गिश्च शाक्वरः ॥११५॥
श्यावाक्षी शौनहोत्रश्च शिखण्डीश्रुतवित्तथा । शौचीक शशकर्णश्च शश्वत्याङ्गिरसी शिशुः॥११६॥
शुष्ठिगुः शुनहोत्रश्च सनकाद्या महर्षयः । स्थौरः सहस्रः सौहोत्रः साङ्ख्यः सौर्यः सदापृणः ॥११७॥
संवननः सुदीतिश्च संवर्तः सप्तगुः ससः । सत्यश्रवाः सप्तवध्रिः सुकक्षश्च महानृषिः ॥११८॥
सव्यः सुकीर्त्तिः सध्वंसःसुपर्णः सप्रथस्तथा । देवशुनी च सरमा स्वस्तिः संवरणस्तथा ॥११९॥
सौभरिः सूर्यासावित्री हविर्धानो महानृषि । हर्य्यतो हरिमन्तश्चाकृष्टो माषोऽघमर्यणः ॥१२०॥

श्रीभरद्वाजजी, महाराजकी पुत्री श्रीरात्रिजी महर्षि, श्रीमेध्यातिथिजी, श्रीमधुच्छन्दके पुत्र श्रीमेध्य ऋषिजी, श्रीमातरिश्वाजी और श्रीमुष्कवानजी ॥११०॥

श्रीमूर्धन्वान्जी, श्रीययतजी, श्रीविवस्वान् (सूर्य) के पुत्र श्रीयमराजजी, श्रीविवस्वान्जीकी पुत्री श्रीयमीजी तथा श्रीयज्ञजी और श्रीरातहव्यजी ॥१११॥

श्रीरहूगणके पुत्र श्रीरेभजी, लोपायनजीके पुत्र लवजी, श्रीवातायनजी, श्रीवातहव्यजी तथा श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीबृहन्मतिजी ॥११२॥ श्रीबृहदुक्थजी, श्रीवामदेवजी, श्रीबाहुवृक्तजी, श्रीवसुश्रुतजी, श्रीविरूपजीके पुत्र विश्वसामाजी, श्रीवीतहव्यजी तथा श्रीवरुजी ॥११३॥

श्रीवसुक्रजी, श्रीविमदजी, श्रीविष्णुजी, श्रीलौक्यजी, श्रीवृहस्पतिजी, श्रीवसजी, श्रीवैकुण्ठ-प्रमतिजी, श्रीवैश्व्यजी तथा कण्वजीके पुत्र श्रीब्रह्मातिथिजी ॥११४॥

श्रीभुवनपुत्रीजी, श्रीरक्षोहाजी, ब्रह्मवादिनी श्रीरोमशाजी, श्रीब्रह्माजीके पुत्र ऊर्ध्वनाभाजी, अङ्गके पुत्र श्रीशेनजी और श्रीशाक्वरजी ॥११५॥

श्रीश्यावाक्षीजी, श्रीशौनहोत्रजी, श्रीशिखण्डीजी तथा श्रीश्रुतवित्जी, शीशुचीकके पुत्र शौचीकजी और श्रीशशकर्णजी, श्रीअङ्गिराजीकी पुत्री शश्वतीजी, श्रीशिशुजी ॥११६॥

श्रीशुष्ठिगुजी, श्रीशुनहोत्रजी चारो भाई सनकादिक महर्षि, श्रीस्थौरजी, श्रीसहस्रजी, श्रीसौहोत्रजी श्रीसाङ्ख्यजी श्रीसौर्यजी श्रीसदापृणजी ॥११७॥

श्रीसंवननजी, श्रीसुदितिजी, श्रीसंवर्तजी, श्रीसप्तगुजी, श्रीससजी, श्रीसत्यश्रवाजी श्रीसप्तवध्रिजी महर्षि श्रीसुकक्षजी ॥११८॥

श्रीसव्यजी, श्रीसुकीर्त्तिजी, श्रीसध्वंसजी, श्रीसुपर्णजी, श्रीसप्रथजी, श्रीदेवशुनजी, श्रीसरमाजी श्रीस्वस्तिजी, तथा श्रीसंवरणजी ॥११९॥ श्रीसौभरिजी, जीसूर्यासावित्रीजी, महर्षि श्रीहविर्धानजी श्रीहर्य्यतजी, श्रीहरिमन्तजी, श्रीअकृष्टजी, श्रीमाषजी, श्रीअघमर्षणजी ॥१२०॥

अंहोमुकवामदेवोऽनिलोऽध्रीगुरनानतः । महर्षिरष्टादण्ट्रोऽथाभिवर्तोऽभितपास्तथा ॥१२१॥
अग्नियूपोऽगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचार्यङ्ग औरवः । अम्बरीषोऽर्चनाना चामहीयुरर्बुदोऽपुरा ॥१२२॥
अरुणोऽर्चन्नवत्सारोऽश्वमेधोऽवस्युरष्टकः । अयास्योऽरिष्टनेमिश्चासितोऽत्रिरदिती तथा ॥१२३॥
अष्टावक्रोऽश्वसूक्ती चाक्षोमौजवान्महानृषिः । ऋषिरात्रेय्यपालाश्व्य आजीगर्तिर्महानृषिः ॥१२४॥
अभिवर्तस्तथाग्नेय आत्रेयो बुध एव च । ऋषिर्विवस्वन्नादित्य आप्त्यस्त्रितो महानृषि ॥१२५॥
आप्सवी मनुरासङ्ग प्लायोगी चामहीयवः । ऋषिरार्वुद्यूर्ध्वयाव आम्भृणी वाङ् महानृषिः ।१२६।
आयु. काण्व आङ्गिरसः शौनहोत्रस्तथैव च । देवापिरार्ष्टिषेणश्च सूनुरार्भव एव च ॥१२७॥
सिन्धुद्वीप आम्बरीष इषः काण्व इरिम्बिठिः । इन्द्राणीन्द्र इध्मवाह इष आत्रेय एव च ॥१२८॥
इटो भार्गव ऊरुश्चोतथ्य उरुक्षयस्तथा । उपमन्युर्बाशिष्ठश्चोलोवातायन एव च ॥१२९॥
उपस्तुतो वार्ष्टिहव्य उरूचक्री महानृषिः । महर्षिः कात्य उत्कील उर्वशी ऋषिका तथा ॥१३०॥
आर्बुदिरूर्ध्वग्रावा चोरु आङ्गिरस एव च । ऊर्ध्वसद्मोरुकृशनो उर्ध्वनाभा विधेः सुतः ॥१३१॥

श्रीअंहोमुक वामदेवजी, श्रीअनिलजी, श्रीअध्रोगुजी, श्रीअमानतजी, महर्षि श्रीअष्टादण्ट्रजी, श्रीअभिवर्तजी तथा श्रीअभितपाजी ॥१२१॥

श्रीअग्नियूपजी, श्रीअगस्त्यजी महाराजके शिष्य, श्रीब्रह्मचारीजी, श्रीअङ्गजी, श्रीऔरवजी अम्बरीषजी, श्रीअर्चनानाजी, श्रीअमहीयुजी, श्रीअर्बुदजी, श्रीअसुराजी ॥१२२॥

श्रीअरुणजी, श्रीअर्चन्नवत्सारजी, श्रीअश्वमेधजी, श्रीअवस्युजी, श्रीअष्टकजी, श्रीअयास्यजी, श्रीअरिष्टनेमिजी, श्रीअसितजी, श्रीअत्रिजी तथा श्रीअदितीजी ॥१२३॥

श्रीअष्टावक्रजी, श्रीअश्वसूक्तीजी, महर्षि अक्षोमौजवान्जी, श्रीअत्रिजीकी पुत्रीऋषि अपालाजी अजर्गिर्तजीके पुत्र महर्षि श्रीआश्व्यजी ॥१२४॥

अग्निके पुत्र श्रीअभिवर्तजी श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीवुधजी,अदितिजीके पुत्र श्रीविवस्वान् ऋषि, अप्तिके पुत्र महर्षि त्रितजी ॥१२५॥

श्रीअप्सुजीके पुत्र मनुजी, श्रीअसङ्गजीके पुत्र प्लायोगीजी, श्रीआमहीयवजी, ऋषि आर्वुदी जी, श्रीऊर्ध्वयावजी, महर्षि श्रीआम्भृणीवाक्जी ॥१२६॥

श्रीकण्वजीके पुत्र श्रीआयुजी, श्रीशौनहोत्रजी, श्रीऋष्टिषेणजीके पुत्र देवापिजी, श्रीऋभुजी के पुत्र श्रीसूनुजी ॥१२७॥ श्रीअम्बरीषजीके पुत्र सिन्धुद्वीपजी, कण्वजीके पुत्र श्रीइषजी, श्रीइरिम्बिठिजी, श्रीइन्द्राणीजी, श्रीइन्द्रजी, श्रीइध्मवाहजी, श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीइषजी ॥१२८॥

श्रीभृगुजीके पुत्र इटजी, श्रीऊरुजी, श्रीउतथ्यजी श्रीउरुक्षयजी, श्रीवशिष्ठजीके पुत्र उपमन्यु जी, तथा श्रीउलोवातायनजी ॥१२९॥ श्रीवृष्टिहव्यजीके पुत्र श्रीउपस्तुतजी, महर्षि श्रीऊरूचक्री, महर्षि श्रीकात्य उत्कीलजी तथा श्रीउर्वशीऋषिजी ॥१३०॥

श्रीअर्बुदजीके पुत्र ऊर्ध्वग्रावाजी श्रीअङ्गिराजीके पुत्र ऊरुजी, श्रीऊर्ध्वसद्मजी, श्रीऊरु-कृशनजी, श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीऊर्ध्वनाभाजी ॥१३१॥

वार्षागिरस्तथार्ज्राश्वो वैराज ऋषभस्तथा । ऋषभो वैश्वामित्रश्च श्रीऋषिका ऋणश्चयः ॥१३२॥
श्रीवातरशनश्चर्ष्यश्रृङ्गस्तथा महानृषिः । एरावदो महातेजा ऐश्वर ऐन्द्र एव च ॥१३३॥
एतशो वातरशन एकद्युर्नोधसस्तथा । एलूषः कवषश्चैन्द्रोऽप्रतिरथो महानृषिः ॥१३४॥
एरम्मदो देवमुनिर्जय ऐन्द्रस्तथैव च । ऐरावतो जरत्कर्णा ऐषीरथिर्महानृषिः ॥१३५॥
एवयामरुदङ्गश्चौरव औशीनरः शिविः । औशियो दैर्घतमस इत्याद्या वैदिकर्षयः ॥१३६॥
कश्यपा काश्यपेया च काश्यपेया च काशिका । काश्यः कौशिला काशः कगयः कौलवः कपिः ॥१३७॥
कात्यातनश्च कौशल्य कृत्यः कौल्यश्च कप्सिपः । कुशितः कपिलः कोत्सः कगवः कुशितः किलः १३८
ऋषिः कुत्सात्रसदस्यः कृष्णाजिनो महानृषिः । कर्सामुना च कृष्णात्रिः खते चैव खिलस्तथा ।१३९।
गोभिलो गौतमी गार्गी गुणितो गौरवस्तथा । गाङ्गेयो गालवो गर्गश्चन्द्रगर्गश्चितस्तथा ॥१४०॥
च्यशिलश्च्यवनश्चक्रश्चान्द्रायणो महानृषिः । ऋषिश्चामनदेवश्च जावाहिश्च महानृषिः ॥१४१॥

श्रीवर्षागिरके पुत्र श्रीऋज्राश्वजी, विराट्के पुत्र श्रीऋषभजी, श्रीविश्वामित्रजीके पुत्र श्रीऋषभजी, श्रीऋषिकाजी, तथा श्रीऋणश्चयजी ॥१३२॥

श्रीवातरशनजी तथा महर्षि श्रीऋष्यश्रृङ्गजी, महातेजस्वी श्रीएरावदजी, श्रीऐश्वरजी और ऐन्द्रजी ॥१३३॥ श्रीऐतशोवातरशनजी, श्रीनोधाजीके पुत्र श्रीएकद्युजी, इलूषके पुत्र श्रीकवषजी, तथा इन्द्रजीके पुत्र महर्षि श्रीअप्रतिरथजी ॥१३४॥

इरम्दजीके पुत्र श्रीदेवमुनिजी, श्रीइन्द्रजीके पुत्र श्रीजयजी, इरावान्जीके पुत्र श्रीजरत्कर्ण-जी तथा महर्षि श्रीऐषीरथिजी ॥१३५॥

श्रीउरुजीके पुत्र श्रीएवयामरुदङ्गजी और उशीनरजीके पुत्र श्रीशिविजी, श्रीदीर्घतमाजी के पुत्र श्रीऔशियजी इत्यादि वैदिक ऋषि ॥१३६॥

श्रीकश्यपाजी, श्रीकश्यपाजीकी पुत्री काश्यपेयाजी तथा कश्यपाजीकी पुत्री काशिकाजी, श्रीकाश्यजी, श्रीकौशिलाजी, श्रीकाशजी, श्रीकगयजी, श्रीकौलवजी, श्रीकपिजी ॥१३७॥

श्रीकात्यायनजी, श्रीकौशल्यजी, श्रीकृत्यजी, श्रीकौल्यजी, श्रीकप्सिपजी, श्रीकुशिकजी, श्रीकपिलदेवजी, श्रीकोत्सजी, श्रीकगवजी, श्रीकुशितजी, श्रीकिलजी ॥१३८॥

श्रीकुत्सात्रसदस्यजी, महर्षि श्रीकृष्णाजिनजी, श्रीकर्सामुनाजी और श्रीकृष्णात्रिजी, श्रीखतेजी, तथा श्रीखिलजी ॥१३९॥

श्रीगोभिलजी, श्रीगौतमीजी, श्रीगार्गीजी, श्रीगुणितजी, श्रीगौरवजी, श्रीगाङ्गेयजी, श्रीगालवजी श्रीगर्गजी, श्रीचन्द्रगर्गजी तथा श्रीचितजी ॥१४०॥

श्रीच्यशिलजी, श्रीच्वयनजी, श्रचक्रजीं, श्रीमहर्षि, चान्द्रायणजी ऋषिचामनदेवजी और महर्षि श्रीजवहिजीं ॥१४१॥

तन्नस्त्रेयवशिष्ठश्च तिथेऽग्रोदेवलस्तथा । देवरात्रश्च दालभ्य ऋषिर्दर्भोदवारणः ॥१४२॥
देवराजपौस्मासे च दिवदसो महानृषिः । दनच्यो देवरातश्च देया देवदशा तथा ॥१४३॥
धात्रयो ध्रुवनैनश्च धारणीको धनञ्जयः । धरणीषुश्च धौम्रश्च नमार्दा नैध्रुवस्तथा ॥१४४॥
नितुन्दनः पुलस्त्यश्च पुल्स्तः पाराशरस्तथा । पौष्युतः पौवनाश्चश्च पुलहो विष्णुवर्द्धनः॥ १४५॥
वाच्छिलो वातहव्यश्च वात्सो बोधायनस्तथा । वाशिष्ठो वासिलो वालो वौरुक्षो वेधसो विदः१४६।
वाशिलुर्वसिलो ब्रद्धा विष्णावो वैमलस्तथा । वाल्मीकिश्च वको वैष्णो विष्णुर्वार्हस्पतस्तथा।१४७॥
वन्यो व्याघ्रपतयस्वो वोदासश्च महानृषिः । विहको भद्रशीलश्च भागीरस्य ऋषिस्तथा ॥१४८॥
भावनश्च भलिश्चैव भारद्वासित एव च । मौनसौ मौगिलौ, मानो मध्यायनो महानृषिः ॥१४९॥
मैत्रेतृणश्च मौनस्यो माध्रुवच्छन्दसस्तथा । माण्डकेयो मिहरसो माधुच्छन्दस एव च ॥१५०॥
मौकल्यश्च माण्डव्य ऋषिर्मित्रयुवस्तथा । मध्यामो यजनो यस्को योंयाजज्ञौ महानृषी ॥१५१॥
श्रीयज्ञातपहारी च यदभूश्चर्षिसत्तमः । याज्ञवल्को यमदग्नो रणेजध्रुव एव च ॥१५२॥

श्रीतन्नस्त्रेय वशिष्ठजी, श्रीतिथेऽग्रजी, श्रीदेवलजी, श्रीदेवरात्रजी, श्रीदालभ्य ऋषिजी, श्रीदर्भोदवारणजी ॥१४२॥

श्रीदेवराजपौस्मासेजी, श्रीमहर्षि दिवदसजी, श्रीदनच्यजी, श्रीदेवरातजी, श्रीदेयाजी, श्रीदेवदशाजी ॥१४३॥ श्रीधात्रयजी, श्रीध्रुवनैनजी, श्रीधारणीकजी, श्रीधनञ्जयजी, श्रीधरणीषुजी, श्रीधौम्रजी, श्रीनमार्दाजी तथा श्रीनैध्रुवजी ॥१४४॥

श्रीनितुन्दनजी, श्रीपुलस्त्यजी, श्रीपुल्स्तजी, श्रीपाराशरजी, श्रीपौष्युतजी, श्रीपौवनाश्रजी, श्रीपुलहजी, श्रीविष्णुवर्द्धनजी ॥१४५॥

श्रीवाच्छिलजी, श्रीवातहव्यजी, श्रीवात्सजी, तथा श्रीवोधायनजी, श्रीवशिष्ठजीके पुत्र श्रीवासिलजी. श्रीवालजी, श्रीवौरुक्षजी, श्रीवेधसजी, श्रीविदजी ॥१४६॥

श्रीवाशिलुजी, श्रीवसिलजी, श्रीब्रद्धाजी, श्रीबिष्णावजी तथा श्रीवैमलजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीवकजी, श्रीवैष्णजी तथा श्रीवृहस्पतिजीके पुत्र श्रीविष्णुजी ॥१४७॥

श्रीवन्यजी, श्रीव्याघ्रपतयस्वजी, श्रीवोदासजी महर्षि, श्रीविहकजी, श्रीभद्रशीलजी तथा ऋषि भागीरस्यजी ॥१४८॥ श्रीभावनजी, श्रीभलिजी, श्रीभारद्वासितजी, श्रीमौगिलजी, श्रीमानजी, महर्षि श्रीमध्यायनजी ॥१४९॥

श्रीमैत्रेतृणजी, श्रीमौनस्यजी, श्रीमाध्रुवच्छन्दसजी, श्रीमाण्डकेयजी, श्रीमिहरसजी, श्रीमाधुच्छन्दसजी ॥१५०॥ श्रीमौकल्यजी, श्रीमाण्डव्यजी, तथा ऋषि मित्रयुवजी, श्रीमध्यामजी, श्रीयजनजी, श्रीयस्कजी, श्रीयोंयाजी, श्रीयज्ञजी महर्षि ॥१५१॥ श्रीयज्ञातपहारीजी, ऋषिश्रेष्ठ श्रीयदभूजो, श्रीयाज्ञवल्कजी, श्रीयमदग्नजी, श्रीरणेजध्रुवजी॥१५२॥

लोहितो लोहकाक्षश्च लोमसः शाङ्गकत्यनः । शौनकः शौनकेतश्च शिच्यपर्वा महानृषिः ॥१५३॥
अभ्रवत्सुः शिलश्चैव शुद्धत्तशय एव च । ऋषिः शावैतशश्चैव आवत्सारो महानृषिः ॥१५४॥
साङ्कत्यनश्च सङ्ख्या च सादित्यः सम्भवस्तथा।साङ्कृतः सिंहलश्चैव साङ्ख्यानो महानृषिः।१५५।
सैन्यः सत्यवतीतश्च सप्तसारश्च स्वेतपः । साङ्ख्यालितसारस्वतौ वैश्वानो ब्राह्म एव च ॥१५६॥
सावकानः सत्ववतिः सङ्खलिखित एव च । हरिकर्णस्तथाऽऽत्रेयो हिरण्यस्तूप आत्मवान् ॥१५७॥
असितश्चाप्नुवानश्चानुरुक्तोऽवदलस्तथा । अमिलुरमिलोऽभौह्योऽर्चिसोऽगस्तोऽघमर्षणः ॥१५८॥
अष्टाचक्रोऽच्छिलोऽमानोऽङ्गिरसोऽत्रिसरस्तथा । अत्रसुप्रोऽम्वसारश्चवत्सारश्च महानृषिः ॥१५९॥
आर्चनानस आयास्थ ऋषिराङ्गिरसस्तथा । आयास्व आक्षकर्णश्चार्यश्वावत्सार एव च ॥१६०॥
ऋषिरिन्द्रोदयश्चैवेन्द्रप्रमदा महानृषिः । इन्द्रप्रमद एवाथोपमन्युरुदवारणः ॥१६१॥
ओदर औरसश्चौर्व एकावशिष्ट एव च । एरम्बमैजनश्चैव पौरुश्चैव महानृषिः ॥१६२॥
तिथ्यस्तन्नश्च पार्थश्च शौव साञ्चस्तथैव च । शारद्वम जातुकर्णौ तोपकल्या महानृषिः ॥१६३॥
बार्हस्पतिर्देवदत्तो वैनहव्यादयस्तथा । असंख्याताः सुविख्याताः प्राणनाथ ! महर्षयः ॥१६४॥

श्रीलोहितजीश्रीलोहकाक्षजी, श्रीलोमसजी, श्रीशाङ्गकत्यनजी, श्रीशौनकजी, श्रीशौनकेतजी, महर्षि श्रीशिच्यपर्वाजी ॥१५३॥ श्रीअभ्रवत्सुजी, श्रीशुद्धत्तशयजी, ऋषि शावैतशजी, महर्षि श्रीवत्सारजी ॥१५४॥

श्रीसाङ्कत्यनजी, श्रीसङ्ख्याजी, श्रीसादित्यजी तथा श्रीसम्भवजी श्रीसांकृतजी, श्रीसिंहलजी, महर्षि श्रीसाङ्ख्यायनजी ॥१५५॥ श्रीसैन्यजी, श्रीसत्यवतीतजी, श्रीसप्तसारजी, श्रीस्वेतपजी, श्रीसाङ्ख्यालितजी, श्रीसारस्वतजी, ब्रह्माजी पुत्र श्रीवैश्वानजी ॥१५६॥

श्रीसावकानजी, श्रीसत्वबतिजी, श्रीसङ्खलिखितजी, तथा श्रीअत्रिजीके पुत्र श्रीहरिकर्णजी, बुद्धिमान् श्रीहिरण्यस्तूपजी ॥१५७॥

श्रीअसितजी, श्रीआप्नुवानजी, श्रीअनुरुक्तजी तथा श्रीअवदलजी, श्रीअमिलुजी, श्रीअमिलजी, श्रीअभौह्यजी, श्रीअर्चिसजी, श्रीअगस्तजी, श्रीअघमर्षणजी ॥१५८॥

श्रीअष्टाचक्रजी, श्रीअच्छिलजी, श्रीअमानजी श्रीअङ्गिरसजो तथा श्रीअत्रिसरजी, श्रीअत्र-सुप्रजी श्रीअम्वसारजी, श्रीमहर्षि अवत्सारजी ॥१५९॥

आर्चनानाजोके पुत्र श्रीआर्चनानसजी, श्रीआयास्यजी तथा ऋषि श्रीआङ्गिरसजी, श्रीआया-स्वजी, श्रीआक्षकर्णजी श्रीआर्यश्वावत्सारजी ॥१६०॥ ऋषि श्रीइन्द्रोदयजी, श्रीइन्द्रप्रमदाजी, महर्षि श्रीइन्द्रप्रमदजी, श्रीउपमन्युजी, श्रीउदवारणजो ॥१६१॥

श्रीओदरजी, श्रीऔरसजी, श्रीऔर्वजी, श्रीएकावशिष्टजी श्रीएरम्बमैजनजी, महर्षि पौरुजी ॥१६२॥ श्रीतिथ्यजी, श्रीतन्नजी श्रीपार्थजी, श्रीशौवजी, श्रीसाञ्चजी तथा श्रीशारद्वमजी श्रीजातुकर्णजी, महर्षि श्रीतोपकल्याजो ॥१६३॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे! श्रीबृहस्पतिजी के पुत्र श्रीदेवदत्तजी तथा वैनहव्यादि सुप्रसिद्ध असङ्ख्य महर्षि थे ॥१६४॥

सत्कृतेभ्यो यथायोग्यं शतानन्दो महातपाः । सादरं विनयेनाथ तेभ्यो वासं दिदेश ह ॥१६५॥
समवेता यदा सर्वे ऋषयश्चावनीश्वराः । येऽन्ये निमन्त्रिता राज्ञा नानाकार्यविदां वराः ॥१६६॥
दिदृक्षुस्तांस्तु भूपालो निर्जगाम पुराद्वहिः । प्राच्यां ददर्श चावासान् मुनीनामग्नितेजसाम् ॥१६७॥
नानाकर्मसु दक्षाणामावासान्दिशि दक्षिणे । वैश्यानां च तथा तस्मै शतानन्दो व्यदर्शयत् ॥१६८॥
प्रतीच्यां ब्राह्मणावासान् संददर्श महीपतिः । बाहुजानां तथोदीच्यामागन्तुकमहीक्षिताम् ॥१६९॥
शूद्राणां पृथगावासांश्चातसृष्वेव दिक्षु च । अपश्यन्निमिवंशेनः सेवाचातुर्यशालिनाम् ॥१७०॥
एवमेव समुद्वीक्ष्यागन्तुकानां पिता मम । आवासांश्च यथायोग्यं प्रहृष्टमुखपङ्कजः ॥१७१॥
आजगाम पितुर्वासं तव पङ्कजलोचन ! । दर्शनार्थं ततः श्रीमान् सर्वतः समलङ्कृतम् ॥१७२॥
तमायान्तं समाकर्ण्य सुमन्त्रात् कोशलेश्वरः । तूर्णमेवागतो द्वारि मिलितुं बन्धुभिर्युतः ॥१७३॥
भ्रातृभिः संपरीतं त्वां कोटिकन्दर्पसुन्दरम् । कृत्वा दृष्टिगतं राजा नृपाग्रे जडवत्स्थितः ॥१७४॥

महातपस्वी श्रीशतानन्दजी महाराजने उन सत्कृत महर्षियोंके रहनेके लिये विनयपूर्वक आदर सहित यथायोग्य स्थान प्रदान किये ॥१६५॥

हे प्यारे! जब सभी ऋषि व राजा तथा निमन्त्रित अनेक अन्य कार्यकुशल लोग भी आगये तब उन सभीके दर्शनेच्छुक हो श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने पुरसे बाहर निकले, और पूर्व दिशामें उन्होंने अग्निके समान तेज वाले मुनियोंके स्थानों का दर्शन प्राप्त किया ॥१६६॥१६७॥

दक्षिण दिशामें श्रीशतानन्दजी महाराजने अनेक कार्य कुशल व्यक्तियोंके तथा वैश्योंके निवास स्थानोंका उन्हें दर्शन कराया ॥१६८॥

पश्चिम दिशामें श्रीमिथिलेशजी महाराजने ब्राह्मणोंके स्थानों का दर्शन किया तथा क्षत्रियोंके एवं आये हुये राजाओंके भवनोंका दर्शन उत्तर दिशामें प्राप्त किया ॥१६९॥

उपर्युक्त लोगोंसे पृथक् चारों दिशाओंमें श्रीमिथिलेशजी महाराजने सेवाकार्य में अत्यन्त चतुर शूद्रोंकी स्थान पंक्ति को अवलोकन किया ॥१७०॥

इस प्रकार आये हुये सभी लोगोंके यथा योग्य स्थानोंका दर्शन करके मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजका मुख कमल बड़े हर्षको प्राप्त हुआ ॥१७१॥

हे कमल लोचन श्रीप्राणप्यारेजू ! तत्पश्चात् श्रीमान् श्रीमिथिलेशजी महाराज सब प्रकारसे अलंकृत आपके श्रीपिताजीके महलका दर्शन करनेके लिये पधारे ॥१७२॥

श्रीसुमन्त्रजीसे श्रीजनकजीका आगमन सुनकर श्रीकोशलेन्द्र महाराज अपने भाइयोंके सहित उनसे मिलनेके लिये द्वार पर आगये ॥१७३॥

भाइयोंके सहित करोड़ों कामदेवोंके सदृश आपका सुन्दर दर्शन करके श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीचक्रवर्तीजो महाराजके आगे जड़वत् खड़े रह गये ॥१७४॥

तद्दृष्ट्वा पितुरस्माकं विह्वलत्वं पिता तव । गृहीत्वा पाणिना पाणिं निजगाद दरस्मितः ॥१७५॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

राजन् स्वं कुशलं ब्रूहि सान्तःपुरजनस्य हि।अपि राष्ट्रस्य योगीन्द्र! किमर्थं चासि विह्वलः ॥१७६॥
एवं सम्बोधितः श्रीमान् पिता मे मिथिलेश्वरः । ववन्दे चरणौ तस्य हर्षविस्फारितेक्षणः ॥१७७॥
आलिलिङ्ग तमुर्वीशं रघुवंशप्रभाकरः । तस्मै त्वामथ सङ्केतं नमस्कर्तुं चकार सः ॥१७८॥
प्रणमन्तमथोदीक्ष्य भवन्तं हर्षनिर्भरः । परिष्वज्य हृदा काममन्दानन्दमाप सः ॥१७६॥
पुनश्चित्तं समाधाय कथञ्चिद्योगिसत्तमः । बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा राजानं समभाषत ॥१८०॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

सर्वथा कुशली चाहं कृपया तव भूपते ! । अतीवानुगृहीतोऽस्मि श्रीमताऽऽगमनेन च ॥१८१॥
दिदृक्षैतान्सुतानास्म बहुकालान्ममोरसि । पूरिता साऽद्य भाग्येन भवतश्च प्रसादतः ॥१८२॥
न भवेद्यदि ते कष्टमवकाशो भवेद्यदि । कृपया मखभूमिं मे सपुत्रो द्रष्टुमर्हसि ॥१८३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तथेति प्रतिजग्राह विनयं राजपूजितः । सुसत्कारविधिं तस्य विधाय जगतीपतेः ॥१८४॥

हमारे पिताजीकी उस विह्वलताको देखकर, आपके पिताजी मन्दमुस्कराते हुये अपने हाथसे उनका हाथ पकड़कर बोले ॥१७५॥ हे राजन् ! अन्तः पुर जनोंके सहित अपनी कुशल और राष्ट्रकी कुशल कहें ! हे योगिराज ! आप विह्वल किस कारणसे हैं ? ॥१७६॥

इस प्रकार सम्बोधित होने पर मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आँखे हर्षसे पूर्ण खुल गयी, पुनः उन्होंने आपके श्रीपिताजीके चरणकमलोंको प्रणाम किया ॥१७७॥

रघुकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले आपके श्रीपिताजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया पुनः उन्हें प्रणाम करनेके लिये आपको सङ्केत किया ॥१७८॥

आपको प्रणाम करते हुये देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज हर्षनिर्भर हो गये । पुनः आपको हृदयसे लगाकर अपार (ब्रह्म) आनन्दको प्राप्त हुये ॥१७६॥

पुनः योगियोंमें श्रेष्ठ वे श्रीमिथिलेशजी महाराज बड़ी कठिनतासे अपने चित्तको सावधान करके हाथ जोड़े हुये श्रीचक्रवर्तीजी महाराजसे बोले ॥१८०॥

हे नृपश्रेष्ठ ! मैं आपकी कृपासे सब प्रकार कुशलसे हूँ ! श्रीमान्जूने अपने शुभागमनसे मुझे अत्यन्त अनुगृहीत किया है ॥१८१॥ बहुत दिनोंसे आपके श्रीराजकुमारोंके दर्शनोंकी मेरे हृदयमें प्रबल इच्छा थी, भाग्यवश और आपकी कृपासे वह आज पूरी हुई ॥१८२॥

हे राजन् ! यदि आपको कष्ट न हो और अवकाश का अभाव भी न हो तो, आप अपने श्रीराजकुमारोंके सहित मेरी यज्ञभूमिको अवलोकन कर लीजिये ॥१८३॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! राजाओंसे पूजित श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजने पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराजकी उस विनयको स्वीकार किया पुनः भलीप्रकार उनका सत्कार करके ॥१८४॥

निर्जगामावनीशेन्द्रो यज्ञभूमिदिदृक्षया । मम पित्रा सभं भूपैः संवृतः प्राणवल्लभ ! ॥१८५॥
वशिष्ठं तेजसा राशिं मुनिवन्द्यपदाम्बुजम् । मुनिवासात्समायातं प्रणनाम पिता मम ॥१८६॥
महाप्रसन्नतां प्राप्तो वशिष्ठस्तत्समागमात् । सादरं प्रार्थितो राज्ञा जगाम सह तेन वै ॥१८७॥
रचनां वीक्ष्य वै तस्य यज्ञभूमेर्विलक्षणाम् । प्रशशंसुर्महीपाला ऋषयः सर्व एव तम् ॥१८८॥
दर्शनाद्यज्ञवेद्यास्तु तावकीया प्रसन्नता । सर्वेषां सा विशेषेण बभूवाश्चर्यकारिणी ॥१८९॥

एवं स्वयज्ञावनिमूर्विनाथः प्रदर्श्य भूपालविभूषणाय ।
यथाविधानं रचनासमेतां सर्वर्तुनिर्विघ्नसुखास्पदां सः ॥१९०॥
समाससादात्मन आद्यवेश्म स्मरन्भवन्तं स्मरमोहनाङ्गम् ।
सर्वेभ्य आसादितसन्निदेशः कृतप्रणामः प्रणुतो नरेन्द्रैः ॥१९१॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू ! राजाओंसे घिरे हुये श्रीकोशलेन्द्रजी महाराज मेरे श्रीपिताजीके साथ यज्ञ भूमिका दर्शन करने पधारे ॥१८५॥

उस समय मुनियोंके स्थानसे आये हुये, मुनियोंके द्वारा वन्दनीय श्रीचरण कमल वाले तेजपुञ्ज श्रीवशिष्ठजी महाराजको मेरे श्रीपिताजीने प्रणाम किया ॥१८६॥

श्रीवशिष्ठजी महाराज उनके समागमनसे बड़े प्रसन्न हुये पुनः आदरपूर्वक उनकी प्रार्थनासे उनकी यज्ञभूमि देखने पधारे ॥१८७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञ भूमिकी विलक्षण सजावटको देखकर सभी ऋषि व राजा उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१८८॥ पुनः हे प्यारे ! यज्ञ वेदीके दर्शनसे जो आपको प्रसन्नता हुई, वह सबको ही विशेष रूपसे महान आश्चर्य प्रदायिनी सिद्ध हुई ॥१८९॥

इस प्रकार पृथिवीपति मेरे श्रीपिताजी, भूपालोंके भूषण आपके श्रीपिताजीको शास्त्रके विधानानुसार रचना युक्त, सभी ऋतुओंमें विघ्न रहित, एक मात्र सुखका स्थान, अपनी यज्ञ भूमिका दर्शन कराके ॥१९०॥

आये हुए समस्त अतिथि राजाओंसे परस्पर प्रणामादि होजाने पर उन सभीसे आज्ञा प्राप्तकर कामदेवको भी अपने श्रीअङ्गकी छबिसे मुग्ध करने वाले आप मनहरण सरकारका स्मरण करते हुये वे विश्राम करनेके लिये अपने मुख्य महलको पधारे ॥१९१॥

इत्येकत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

इति मास पारायणे नवमो विश्रामः ॥९॥
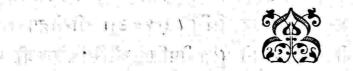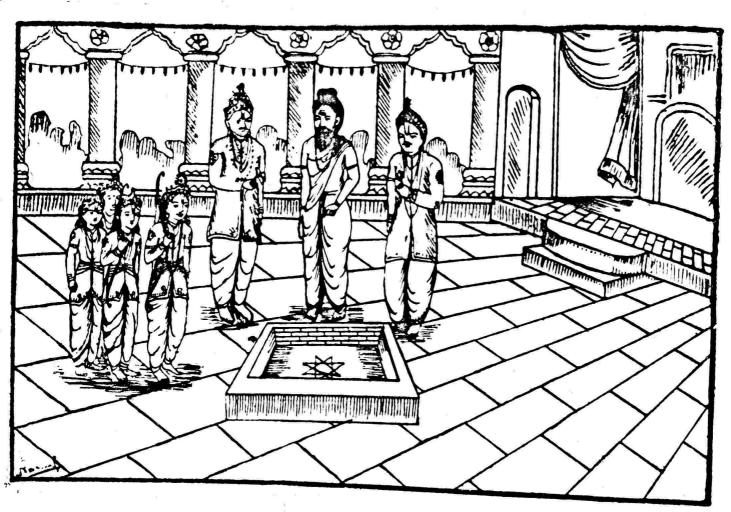
श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीदशरथजी महाराजको अपनी यज्ञ भूमि दिखला रहे हैं।

अथ द्वात्रिंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी सर्वेश्वरी पुत्रीष्टि द्वारा श्रीकिशोरीजी का प्रादुर्भाव एवं मातृगोद सुखास्वादन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ राजा चतुर्थ्यां च सत्तिथौ नियताञ्जलिः । अभिवाद्य शतानन्दं धर्मज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
भगवंस्त्वत्कृपादृष्टया ह्यसाध्याः सिद्धयो मम । अत्यन्तसुलभा भान्ति करस्था इव देहिनाम् ॥२॥
अयं तु माधवो मासः सर्वमासोत्तमः शिवः । साक्षाद्भगवतो रूपं सितपक्षेण संयुतः ॥३॥
तिथिः श्वः पञ्चमी पुण्या सर्वाभीष्टप्रदायिनी । वासरो गुरुवाराख्यः सर्वमङ्गलकारकः ॥४॥
ऋतूनामृतुराजोऽयं सिद्धयोगश्च सिद्धिदः । संदुर्लभो मनुष्याणामीदृशोऽवसरः शुभः ॥५॥
अतः श्व एव वेदज्ञैर्यज्ञारम्भो विधीयताम् । यथाशास्त्रविधानं च समेतो मुनिपुङ्गवैः ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स तथेति समाभाष्य गौतमीसूनुरात्मवान् । पूजितो विधिवद्राज्ञा जगाम पितुरन्तिके ॥७॥
पुनः प्रातः समागत्य राजवेश्म त्वरान्वितः । कारयामास विधिवद्दम्पत्योः समलङ्कृतिम् ॥८॥
ततो मङ्गलवाद्यैश्च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । वेदमन्त्रोच्चरद्भिश्चब्राह्मणैः सह दम्पती ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! इसके पश्चात् वैशाख शुक्ला चौथ तिथिको धर्मके रहस्यको जानने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजी महाराजको प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोले–॥१॥ हे भगवन्! प्राणियोंको किसी भी साधनसे न प्राप्त होने योग्य सिद्धियाँ भी आपकी कृपादृष्टि से मुझे हाथमें रखी हुई सी अत्यन्त सुखलभ्य प्रतीत हो रही हैं ॥२॥

सभी मासोंमें श्रेष्ठ, साक्षात् भगवान्का स्वरूपभूत मङ्गलमय, माधव (वैशाख) मास, शुक्ल पक्षसे युक्त, आरम्भ है ॥३॥ सभी अभीष्ट सिद्धियोंको देने वाली पुण्यमयी कल पञ्चमी तिथि और सकल मङ्गल कारक गुरु (वृहस्पति) वारका दिन है ॥४॥

सिद्धयोग भी कल है, ऋतुओंमें यह ऋतुराज वसन्त ही ठहरा! इस प्रकारका शुभ अवसर मनुष्योंके लिये अतीव दुर्लभ है ॥५॥ अत एव वेदवेत्ता ऋषियों और मुनियोंके सहित आप कल ही शास्त्रके विधानानुसार यज्ञ प्रारम्भ करा दीजिए ॥६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीशतानन्दजी महाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजसे ऐसा "ही होगा," कहकर उनसे पूजित हो, अपने पिता(श्रीगोतमजी महाराज)के पास चले गये ॥७॥

प्रातः काल उन्होंने शीघ्रता पूर्वक राजभवन पधार कर श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजीका विधि पूर्वक शृङ्गार कराया ॥८॥

पश्चात् मङ्गलमय बाजोंके बजते तथा स्वस्ति वाचनपूर्वक, वेद मन्त्रोंको उच्चारण करते हुये ब्राह्मणोंके सहित श्रीसुनयना अम्बाजी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजको ॥९॥

वर्षतां पुष्पवर्षाणि सुराणां पुरवासिनाम् । जयशब्दैः समानीतौ यज्ञभूमिं पुरोधसा ॥१०॥
अभिवाद्य ऋषीन्सर्वान् द्विजान्वृद्धांश्च पार्थिवः । आज्ञाया निषसादाथ सह राज्ञ्या निजासने ॥११॥
अनुमत्या महर्षीणां शतानन्दो महामुनिः । यज्ञं प्रवर्तयामास सात्विकं वेदपारगः ॥१२॥
प्रारम्भिते तदा तस्मिन् यज्ञे वृन्दारकाश्च खात् । मन्दारपुष्पवर्षाणि विदधुर्वै मुहुर्मुहुः ॥१३॥
ह्लादयुक्तानि चेतांसि बभूवुः सर्वदेहिनाम् । ऋद्धयः सिद्धयः सर्वास्तत्र सेवार्थमाययुः ॥१४॥
तत्रत्यानां च सङ्केतं देवा इन्द्रपुरोगमाः । प्रतीक्षमाणा वै तस्थुर्गुप्तरूपेण तत्र च ॥१५॥
ब्राह्मणा नाथवन्तश्च तापसा यतयस्तथा । वृद्धाश्च व्याधिता बाला भुञ्जते सर्व एव हि ॥१६॥
अभिन्नभोजनं तत्र सर्वेषां वै पृथक् पृथक् । कूटवद्दृश्यते नित्यमपूर्वास्वादितं स्म तैः ॥१७॥
प्रत्यहं नूतनस्वादुभोजनं क्रियतेऽखिलैः । जय जयेति सच्छब्दः श्रूयते तत्र चानिशम् ॥१८॥
नार्हितो जनः कश्चिन्नार्थवान्नैव याचकः । दृश्यते मार्गमाणोऽपि नाथतात्मा स्म वल्लभ! ॥१९॥

देवता और पुरवासियोंके जयकार पूर्वक पुष्पोंको वरसाते हुये, पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराज यज्ञ भूमिमें ले आये ॥१०॥ वहाँ श्रीमिथिलेशजी महाराज सभी ऋषियोंको, सभी ब्राह्मणोंको तथा सभी वृद्धोंको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे श्रीसुनयना महारानीके सहित अपने यजमानके आसनपर विराजमान हुये ॥११॥

सभी महर्षियोंकी अनुमतिसे सम्पूर्ण वेदोंके मर्मको जानने वाले, ब्रह्मतत्त्वका मनन करने वाले श्रीशतानन्दजी महाराजने, सत्त्वगुण-विशिष्ट यज्ञ प्रारम्भ कराया ॥१२॥

उस यज्ञके प्रारम्भ होते ही देवताओंने आकाशसे बारबार कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥१३॥ सभी प्राणियोंके चित्त आह्लादसे भर गये तथा सभी ऋद्धियाँ सिद्धियाँ सेवा बजानेके लिये वहाँ आगयीं ॥१४॥

और उस स्थलमें रहने वालोंके सङ्केतकी प्रतीक्षा करते हुये इन्द्रप्रमुख देवगण गुप्त रूपसे वहीं रहने लगे ॥१५॥ ब्राह्मण, सेवक, तपस्वी, तथा सन्यासी, वृद्ध, रोगी, बालक सभी प्रकार के व्यक्ति वहाँ भोजन करते थे ॥१६॥

उन सभीका भोजन अलग अलग था किन्तु भेद रहित एक प्रकारका, अर्थात् जो श्रीचक्रवर्तीजी आदि राजाओंके लिये था, वही एक साधारण व्यक्ति केलिये, वह भी नित्यनूतन (नये) स्वादु युक्त पहाड़की चोटीके समान ढेरके रूपमें दिखाई देता था ॥१७॥

प्रति दिन राजा व रङ्क नवीनस्वादु युक्त भोजन करते थे, कहाँ तक कहा जाय ? उस स्थलमें रात दिन 'जय हो जय हो' बस यही एक सत् शब्द सुनाई देता था ॥१८॥

हे प्यारे! उस यज्ञ स्थलमें खोजने पर भी न कोई दुखी, न कोई किसी प्रकारकी इच्छा वाला न कोई माँगने वाला, और न कोई चञ्चल चित्त स्त्री अथवा पुरुष दिखाई देता था ॥१९॥

न चानिष्कधरः कश्चिन्नासमग्रविभूषणः । नाव्यवस्थितचित्तश्च नाशतानुचरस्तथा ॥२०॥
नाविद्वानग्रजन्मा च नाव्रतो नाबहुश्रुतः । नावादकुशलः कश्चिन्नाषडङ्गविशारदः ॥२१॥
सदस्या भूमिपालस्य सर्वविद्याविशारदाः । नीतिज्ञा प्रीतिमन्तश्च सुहृदो धर्मवित्तमाः ॥२२॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधराः सर्वे ऋत्विजश्च सभासदः । तथैव शोभितग्रीवस्तुलस्या युग्ममालया ॥२३॥
अन्येऽपि बहवस्तत्र भगवच्चिह्नचिह्निताः । तथा सानुचरा रेजुर्देवा इव प्रियोत्तम ! ॥२४॥
प्रत्यहं यज्ञवेद्याश्च एधमाना प्रभा प्रिय ! । सिद्धिं कथयतीवैव दृश्यते स्म सुशोभना ॥२५॥
मन्त्रं च शङ्करेणोक्तं जपन्तौ तौ हि दम्पती । भावयन्तौ परं रूपं विधानं चक्रतुः क्रतोः ॥२६॥
अथ सम्वत्सरे पूर्णे मम मात्रा समन्वितः । शालग्रामशिलायां स प्रेमनिर्भरचेतसा ॥२७॥
सर्वालिभिः परीतायाः पूजनं विधिपूर्वकम् । सर्वेश्वर्याश्चकारास्या आम्नायोक्तविधानतः ॥२८॥
पुनस्तु शेषभागेन सर्वदेवानपूजयत् । नियतात्मा विनीतश्च महाभाग उदारधीः ॥२९॥

एसा भीं कोई नहीं दिखाई देता था जिसके गलेमें सोनेकी कण्ठी न हो, अथवा सम्पूर्ण भूषणोंको जो न धारण किये हो, और जिसका चञ्चल चित्त हो अथवा जिसके सौ सेवक न हो ।२०।

ब्राह्मण कोई भी ऐसा न था जो विद्वान् न हो अथवा अनेक पवित्र ब्रतों को धारण करने वाला व बहुतसे शास्त्रों को श्रवण किये हुये न हो, और ऐसा भी कोई ब्राह्मण न था जो शास्त्रार्थ करनेमें पूर्ण चतुर न हो अथवा षडङ्ग वेदोंको जो पूर्ण रूपसे न जानता हो ॥२१॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके सभी सदस्य सम्पूर्णविद्याओंके पण्डित, नीतिशास्त्र को जानने वाले, प्रेमी, सुहृदय और धर्मशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता (जानने वाले) ॥२२॥ सभी ऋत्विज व सभासद ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी तुलसीकी युगल कण्ठीसे सुशोभित गले वाले थे ॥२३॥

तथा अन्य भी बहुतसे कर्मचारी व सज्जन गण अपने अनुचरों (सेवकों) के सहित वैष्णव सम्बन्धी चिह्नोंसे चिह्नित, देवताओंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥

हे प्यारे ! प्रतिदिन यज्ञवेदीकी बढ़तीहुई मनोहर कान्ति, यज्ञकी सिद्धि को कथन करती हुई सी दिखाई देती थी ॥२५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजी भगवान् शङ्करजीके बतलाये हुये षडक्षर मन्त्रराज (श्रीसीतायै स्वाहा) को जपते और श्रीकिशोरीजीके परात्पर स्वरूपकी भावना करते हुये यज्ञकी विधि सम्पन्न करने लगे ॥२६॥

इस प्रकार वर्ष पूरा हो जाने पर मेरी माता श्रीसुनयना अम्बाजो सहित श्रीपिताजीने श्रीशालग्रामजी की मूर्त्तिमें प्रेम निर्भर चित्तसे ॥२७॥

वेदोक्त विधानानुसार सभी सखियों सहित इन श्रीसर्वेश्वरीजी का पूजन विधिपूर्वक सम्पन्न किया ॥२८॥ उसके बाद जो शेष भाग बचा, उससे महाभाग्यशाली उदार बुद्धि, विनयभाव सम्पन्न मेरे श्रीपिताजीने एकाग्रचित्तहो समस्त देवताओंका पूजन किया ॥२९॥

प्रतीक्षमाणयोस्तस्या दर्शनं च प्रतिक्षणम् । विगतं दिनमत्यन्तमभूच्चिन्ताप्रदं तयोः ॥३०॥
यज्ञवेदीं दुरालोक्यां मानवैर्यज्ञियौजसा । समुद्वीक्ष्य शतानन्दो निजगाद महीपतिम् ॥३१॥
श्रूयतां राजशार्दूल ! महाभाग ! वचो मम । निश्चयं गच्छ तेनैव राजन्! मा धैर्यमुत्सृज ॥३२॥
तदेषा पञ्चमी पुण्या सर्वप्राकृतसिद्धिदा । षष्ठी स्वर्गीयसिद्धिं च वैकुण्ठीयां च सप्तमी ॥३३॥
गोलोकीयां तथा सिद्धिं प्रददात्यष्टमी शुभा । परासिद्धिप्रदा ज्ञेया नवमी च तिथिर्बुध! ॥३४॥
अष्टमीतिथिपर्यन्तं धार्य्यं धैर्यं त्वया नृप! । निष्फला नवमी न स्यादिति मे निश्चिता मतिः॥३५॥
ह्लादधाराप्रवाहे च मनांसि सर्व देहिनाम् । निमग्नानीह दृश्यन्ते विशेषेण नरर्षभ ! ॥३६॥

हे प्यारे! उसके बाद श्रीसर्वेश्वरीजीके दर्शनोंकी प्रतिक्षण बाट जोहते-२ सारा दिन व्यतीत हो गया, पर दर्शन नहीं मिले, अतः मेरी श्रीअम्बाजी को व श्रीपिताजीको बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि श्रीगुरुदेवजोने कहा था, कि इस पञ्चमी को यज्ञ प्रारम्भ करने पर एक वर्ष में ही यज्ञकी सिद्धि प्राप्त होगी सो आज वर्षका अन्तिम दिन समाप्त होगया, परन्तु दर्शन नहीं मिला अतः अब क्या उपाय करना होगा ? ॥३०॥

दोनोंका भाव समझकर, तथा मनुष्योंके द्वारा यज्ञनारायण भगवान् के तेजसे यज्ञ वेदीका दर्शन अत्यन्त दुष्कर अवलोकन करके सहज उपस्थितमहती चिन्ता निवारणके लिये श्रीशतानन्दजी महाराज महीपति श्रीमिथिलेशजी महाराजसे बोले ॥३१॥

हे महाभाग्यशाली ! हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! राजन् ! आप मेरे वचनको सुनें और उससे श्रीसर्वेश्वरीजीकी प्राप्तिके विषयमें विश्वास को प्राप्त हों, धैर्य मत छोड़ें ॥३२॥

सम्यक् ज्ञान सम्पन्न हे राजन् ! जिस तिथिसे यज्ञ प्रारम्भ हुये आज बर्ष पूरा हो रहा है, वह ठीक ही पञ्चमी तिथि थी, अतः मेरे कथनानुसार आज आपके यज्ञकी सिद्धि अवश्य होनी चाहिये थी, फिर भी नहीं हो रही है इसका कारण सुनें । यह पञ्चमी पवित्र तिथि लौकिक सर्वसिद्धियोंको प्रदान करनेवाली है और षष्ठी स्वर्ग लोककी सिद्धियोंको, सप्तमी वैकुण्ठ की सिद्धियोंको ॥३३॥ तथा अष्टमी गौलोककी सिद्धियों को प्रदान करती है, परन्तु सर्वोत्कृष्ट श्रीसाकेत धाम सम्बन्धी सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी श्रीनवमी तिथि जानना चाहिये ॥३४॥

अतः हे राजन् ! आप अष्टमी तिथि तक धैर्यको धारण कीजिये, नवमी तिथि निष्फल नहीं जायेगी अर्थात् उस तिथिको श्रीसर्वेश्वरीजीकी प्राप्ति स्वरूप यज्ञका फल आपको अवश्य मिलेगा ऐसी मेरी निश्चित (अटल) धारणा है ॥३५॥

हे राजन् ! इस समय सभी देहधारियोंके मन आह्लादके धारा प्रवाहमें विशेष डूबे हुये दिखायी दे रहे हैं ॥३६॥
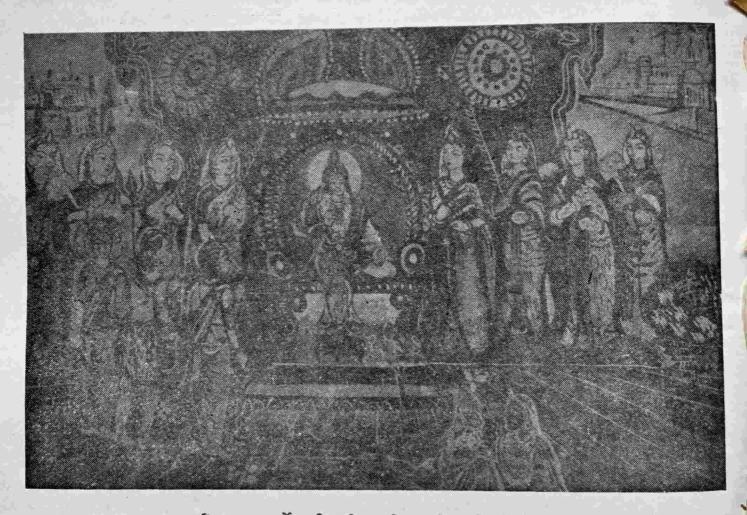
भक्तभावानुग्रहविग्रहा, सर्वेश्वरी श्री साकेत विहारिणी, श्रीमिथिलेशराज किशोरोजीका प्रादुर्भाव दर्शन ।

दिशः प्रफुल्लिताः सर्वाः फलवन्तो महीरुहाः । वायुः सुगन्धमादाय प्रवाति सुखशीतलः ॥३७॥
यज्ञवेद्याः प्रभां दृष्ट्वा दुरालोक्यां नरैस्तु ताम् । सिद्धिमुपगतां विद्धि यज्ञस्यास्य महामते! ॥३८॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमाभाष्य संहृष्टवदनः स महामुनिः । आचार्यकार्यसंलग्नः प्रबभूव महामनाः ॥३९॥
दिदृक्षयाऽऽकुले चास्तां षष्ठ्या एवेक्षणे तयोः । सर्वमेतत्तु वेत्त्येव स्वयमत्र भवान् प्रभो ! ॥४०॥
दर्शनाशावशेनैव समतीत्य दिनत्रयम् । नवम्यां बाष्पपूर्णाक्षौ पूजयामासतुः शुभाम् ॥४१॥
वृजित्वा तावृषीन्वश्च प्रभयाऽलभ्यदर्शना । वेदी बभूव प्राणेश ! तदानीमेव सर्वथा ॥४२॥
दक्षिणायां प्रदत्तायामथ ताभ्यां कृपानिधिः । आविर्बभूव निर्भिद्य यज्ञवेदीमियं तदा ॥४३॥
अष्टयूथेश्वरीभिश्च सेव्यमाना समन्ततः । रत्नसिंहासनारूढा वयसा द्वादशाब्दिका ॥४४॥
पुण्यर्क्षे माधवे मासि कर्कलग्ने शुभावहे । नवम्यां च सिते पक्षे मङ्गले मङ्गलेऽहनि ॥४५॥

सभी दिशायें प्रफुल्लित हो रही हैं, सभी वृक्षोंमें फल लग गये हैं सुखद शीतल वायु सुगन्धको लेकर चल रही है ॥३७॥

हे महामते! प्राकृत मनुष्योंके लिये यज्ञवेदीका प्रकाश अत्यन्त कष्टसे देखने योग्य बढ़ गया है अत एव आप इस यज्ञकी सिद्धिको समीप ही प्राप्त समझिये ॥३८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! इस प्रकार महामुनि श्रीशतानन्दजी महाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजसे कहकर, मनमें आनन्दित होते हुये अत्यन्त प्रसन्न मुख हो, अपने आचार्य-कार्यमें तत्पर हो गये ॥३९॥

हे प्यारे ! षष्ठीसे ही श्रीअम्बाजीके व श्रीपिताजीके नेत्र श्रीकिशोरीजीके दर्शनाभिलाषासे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे, यह तो आप स्वयं जानते ही हैं ॥४०॥

दर्शनोंकी आशासे (षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी) तीन दिन बड़ी ही कठिनतासे व्यतीत किये, नवमीको आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित करते हुये उन दोनोंने मङ्गलस्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीका पूजन प्रारम्भ किया ॥४१॥ हे श्रीप्राणनाथजू ! उस समय दिव्य प्रकाश वृद्धिके कारण यज्ञ वेदीका दर्शन, ऋषियोंको, श्रीमिथिलेशजी महाराजको, श्रीसुनयना अम्बाजीको तथा आप लोगोंको छोड़कर अन्य सभीके लिए सब प्रकारसे अप्राप्य हो गया था ॥४२॥

उस अवस्थामें जब श्रीमिथिलेशजी महाराज व श्रीसुनयना अम्बाजूने दक्षिणा प्रदान की तो ये कृपासागरा मनहरण छबि, श्रीकिशोरीजू, यज्ञवेदीको फाड़ करके प्रकट हो गयीं ॥४३॥

उस समय अष्ट यूथेश्वरी सखियाँ छत्र चाँवर, मोरछल, व्यजन (पङ्खा) आदिसे सेवा कर रही थीं, आप रत्नसिंहासन पर विराजमान, बारह वर्षकी अवस्थासे सम्पन्न थीं ॥४४॥

वैशाख मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि, मङ्गलके दिन शुभकारक कर्क लग्न व पुष्य नक्षत्रमें ॥४५॥

प्रभामाच्छाद्य सूर्यस्य सहजेनात्मतेजसा । मध्याह्नोपगते काले तडिद्वन्निर्गता घनात् ॥४६॥
त्रिदशैः स्तूयमानां तां ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । सर्वशृङ्गारसम्पन्नां स्मयमानमुखाम्बुजाम् ॥४७॥
सन्निरीक्ष्यर्षयः सर्वे सिद्धयोगितपस्विनः । युगपत्स्तोत्रयामासुर्गलसंरुद्धया गिरा ॥४८॥

महर्षिसिद्धयोगितपस्विन ऊचुः ।

ॐ पूर्णपूर्णतमतत्त्वमनोज्ञयेषां सच्चित्सुखैकजलधिं स्वयमात्तदेहाम् ।
हस्तारविन्दधृतनीलसनालपद्मां माङ्गल्यसिन्धुमनिशं प्रणता वयं त्वाम् ॥४९॥
सीरध्वजस्य निमिवंशविभूषणस्यासङ्ख्यैकसौकृतपयोनिधिचारुलक्ष्मीम् ।
मीनाङ्कुशध्वजसरोरुहभूषिताङ्घ्रिं संभावयेम शरणं शरणोज्झितानाम् ॥५०॥
तां पूर्णचन्द्रवदनां मृगपोतनेत्रां मन्दस्मितामसितकुञ्चितकुन्तलां त्वाम् ।
भक्त्या प्रणौमि कृपयाऽस्यधुनाऽऽत्मनो या दृक्चरी विधिहरादिसुरैरगम्या ॥५१॥

अपने स्वाभाविक तेजसे सूर्यके तेजको आच्छादित (ढक) करके मध्याह्न (दोपहर) के समीप समयमें जैसे बिजली मेघसे निकलती है, उसी प्रकार ये श्रीकिशोरीजी तेनोमयी यज्ञवेदीसे प्रकट हो गयीं ॥४६॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंको स्तुति करते हुये सम्पूर्ण शृङ्गारसे युक्त, मन्द मन्द मुस्कानसे सुशोभित मुखकमलवाली इन श्रीकिशोरीजीका ॥४७॥

पूर्ण रूपसे दर्शन करके सभी ऋषि, सिद्ध, योगी, तपस्वी वृन्द गद्गदवाणी से एक साथ स्तुति करने लगे ॥४८॥ जो ओङ्कार (प्रणव) स्वरूपिणी, विषय, कर्ण, सुर मायिक द्रव्यों से पूर्ण, विश्व के पूर्णतम तत्त्व का मनोहर वेष धारण करने वाली तीनों काल में एकरस चैतन्य स्वरूप सुखकी समुद्र अपनी इच्छासे स्वयं मङ्गलमय विग्रहको धारण किये, करकमलमें नाल के सहित श्याम कमलको लिये हुई, मङ्गल समुद्ररूपा हैं, उन आपकी शरणमें हम प्राप्त हैं ॥४९॥

जो, अपनी उज्वल कीर्त्ति आदिके द्वारा निमि वंशको सुशोभित करनेवाली श्रीसीरध्वज महाराजके अपरिमित (अपार) सुकृत समुद्रकी सुन्दर लक्ष्मी हैं, मीन, अंकुश, ध्वज, कमल आदि चिह्नोंसे शोभायमान जिनके श्रीचरण-कमल हैं। जो अशरणों (असहायों, अनाथों) की शरण (रक्षा करने वाली) हैं, उन आपके प्रति हम सभी लोग हृदय में अनेक प्रकारके सेव्य-भाव रखते हैं ॥५०॥ जो आप ब्रह्मा, रुद्र आदिकोंके भी मनसे अगोचर हैं, वही अपनी कृपाके द्वारा इस समय हम लोगोंकी आँखोंके सामने उपस्थित हैं, उन पूर्ण चन्द्रमुखी, मृगशिशुके नेत्रोंके समान नेत्र एवं, मन्द हास्य व श्याम-कुटिल केशवाली आपको हमलोग प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं ॥५१॥

ध्यायेम रूपममलं तव वीतमायं सिंहासनस्थमतुलश्रियमालिजुष्टम् ।
आविष्कृतं करुणया भजतां सुखाय माधुर्यसिन्धुरससारमिदं मनोज्ञम् ॥५२॥

येऽन्ये भजन्ति तव निर्गुणरूपमद्धा तत्ते भजन्तु सुतरां स्वमतानुरूपम् ।
रूपं तवेदमनिशं हृदयेष्वभीष्टं सर्वेश्वरैकदयिते ! किल नश्चकास्तु ॥५३॥

मज्जत्सुपोतचरणाम्बुरुहे ! ऽद्य दृष्ट्या प्राप्तं समस्तविधिदुर्लभदर्शनं ते ।
मोघेतरं परतरं शुभकृच्छुभानामस्माभिरस्ति किमतो गमनीयमन्यत् ॥५४॥

साक्षिण्यशेषजगतां प्रभवादिहेतुः सर्वेश्वरी श्रुतिनुता निखिलान्तरात्मा ।
दृग्गोचरी सकलमङ्गलमोदवृद्ध्यै स्या नोऽद्य या करुणयाऽसि सरोरुहाक्षि ॥५५॥

संसारघोरवडवानलतप्यमानांस्त्वत्पादपद्मभजदङ्घ्रिसमाश्रितान्नः ।
उद्धर्तुमम्ब ! कृपयाऽर्हसि याचमानान्नाम्ह्रियैव यदिवाऽघमचिन्तयन्ती ॥५६॥

हे श्रीसर्वेश्वरीजू ! आपने कृपावश भक्तोंके सुखार्थ अतुलित श्री (शोभा) सम्पन्न, सखियों द्वारा सेवित, माधुर्य सागरके रसका सार स्वरूप, सिंहासन पर विराजमान अपने जिस मनोहर स्वरूप को प्रकट किया है, हम लोग उसी आपके त्रिगुणातीत, मायारहित स्वरूप का ध्यान करते हैं ॥५२॥ हे श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी प्रियतमेजू ! जो अन्य लोग अपने साम्प्रदायिक मतानुसार आपके निर्गुण निराकार रूपका ही भजन करते हैं, वे भले उसीका करें, किन्तु हम लोगोंके हृदय में यही आपका स्वरूप सदा-सर्वदा प्रकाशित रहे ॥५३॥

हे संसार रूपी सागरमें डूबते हुये जीवोंके उद्धारके लिये सुन्दर जहाज रूपी श्रीचरण कमल वाली! श्रीसर्वेश्वरीजी! आज प्रारब्धवश समस्त साधनोंसे दुर्लभ, अमोघ, मङ्गलों का भी मङ्गल करने वाला, परम श्रेष्ठ आपका दर्शन प्राप्त है, अतः अब हम लोगोंके लिये और क्या प्राप्तव्य फल शेष है ? अर्थात् सबकुछ मिल गया, कुछ भी शेष नहीं है ॥५४॥

हे कमलके समान विशाल सुन्दर नेत्रवाली श्रीसर्वेश्वरीजू! अन्तर्यामिनी रूपसे समस्त चर-अचर प्राणियोंके सभी कर्मों की साक्षिणी और जगत्के उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय की कारण स्वरूपा, सभी पर शासन करने वाली वेदोंके द्वारा प्रशंसित एवं सभीके अन्तःकरणमें निवास करने वाली परमात्मा होने पर भी जो आप इस समय अपनी अहैतुकी कृपावश हमलोगोंके सामने प्रकट हैं, वही आप समस्त जीवोंकी मङ्गल तथा आनन्द वृद्धि करनेवाली होइए ॥५५॥

हे अम्ब! संसाररूपी घोर वड़वानलसे तपते हुये हम सबोंके दोषों को चिन्तन न करती हुई अपने श्रीचरणकमलोंके सेवकोंके समाश्रित जानकर अपनी निर्हैतुकी कृपाके द्वारा अथवा अपने नामकी ही लज्जासे हम याचक लोगोंका आप उद्धार कीजिए ॥५६॥

प्रीत्यै न तेऽस्ति किमपीह हि साधनं नः सत्यं वदाम इति ते! नतिमन्तरेण ।
नैर्लज्यसम्पदभियुक्तहृदां जनानां निर्हैतुकी भवतु ते शरणं कृपैव ॥५७॥
तावत्कदाचिदपि नास्ति सुखं न शान्तिः संसारतापविनिवृत्तिरुदारकीर्त्ते ।
यावन्निषेव्यत इहाङ्घ्रिसरोरुहं नो सर्वात्मना सकलमङ्गलमङ्गलं ते ॥५८॥
स्तादाशु सर्वशरणं तदिदं त्वदीयं पादाम्बुजं परमभागवतैकसेव्यम् ।
सौख्याय सर्वजगतः प्रणुतं मुनीन्द्रैः सर्वेशभावितममोघनतिस्तवार्चम् ॥५९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं स्तुवत्सु वै तेषु योगिसिद्धमहर्षिषु । कृपाप्रोत्फुल्लनयना पितरावियमैक्षत ॥६०॥
तौ न द्रष्टुं यदा शक्तौ दम्पती प्रबभूवतुः । तदेयं दयया ताभ्यां दिव्यां दृष्टिमदात्स्वयम् ॥६१॥
ततोऽस्या वीक्ष्य माधुर्यं रूपस्य परमाद्भुतम् । पपात मूर्च्छयाऽऽक्रान्तः पिता मे पश्यतस्तव ॥६२॥

हे दयायुक्ते ! आपको प्रसन्न करनेके लिये यहाँ हमलोगोंके पास एक प्रणामको छोड़कर और कोई भी साधन नहीं है, यह हमलोग सत्य कह रहे हैं, अतः निर्लज्जता रूपी सम्पत्तिसे युक्त हृदयवाले हम भक्तों की, आपकी निर्हैतुकी कृपा ही रक्षक बने ॥५७॥

स्मरण कीर्त्तन आदिसे सब कुछ प्रदान कारिणी कीर्त्तिवाली, हे श्रीसर्वेश्वरीजू ! सम्पूर्ण मङ्गलोंके मङ्गल स्वरूप आपके श्रीचरणकमलोंका जब तक भली प्रकारसे सेवन नही किया जाता है, तब तक पूर्णतया न कभी किसीको सुख है, न शान्ति है, न संसार-जन्य तापों की निवृत्ति ही हो सकती है ॥५८॥

हे श्रीसर्वेश्वरीजू ! परम भागवतों (अनन्य भक्तों) द्वारा एक ही सेवने योग्य, सभीकी रक्षा करनेवाले, मुनीन्द्रोंसे स्तुति किये हुये, सभी ईश (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण) आदिकोंसे आराधित, अमोघ प्रणाम, अमोघ स्तुति, अमोघ पूजनवाले आपके ये श्रीचरणकमल सम्पूर्ण जगत्के सुख सिद्धिके लिये होवें, अर्थात् आपके इन श्रीचरण-कमलोंके प्रणाम, स्तुति, पूजन आदिके द्वारा समस्त चर अचर प्राणी सुखी हो जावें ॥५९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! इस प्रकार उन योगी, सिद्ध महर्षियोंकी स्तुति करनेपर कृपा से विकसित नेत्र हुई, इन श्रीकिशोरीजी ने दोनों (श्रीमाता-पिताओं) की ओर देखा ॥६०॥

जब श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीकिशोरीजीके उस रूपके दर्शन करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ न हो सके, तब इन्हीं श्रीकिशोरीजीने कृपा वश स्वयं उन दोनोंको दिव्य दृष्टि प्रदान की ॥६१॥

उस दिव्य दृष्टिके प्रभावसे श्रीकिशोरीजीके रूपकी परम आश्चर्यमयी माधुरीका दर्शन करके मेरे श्रीपिताजी आपके देखते देखते मूर्छा-वश गिर पड़े ॥६२॥

अम्बा सुनयना चापि तेजसाऽस्याः प्रर्धाषिता। पादयोरपतत्तूर्णं मुनीनां स्तुवतां तदा ॥६३॥
तौ समुत्थाप्य पाणिभ्यां प्रेम्णा चन्द्रनिभानना। इत्युवाच वचः श्लक्ष्णं पिकपोतकलस्वना ॥६४॥

श्रीसर्वेश्वर्य्युवाच।

आत्मनश्च तपःसिद्धिं वित्तं मां समुपस्थिताम्। यज्ञस्यास्य मिषेणैव ब्रह्मविष्ण्वीशदुर्लभाम् ॥६५॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कर्णपीयूषसन्निभम्। आह चन्द्रमुखीं तातः प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥६६॥

श्रीमिथिलेश उवाच।

यदि सत्यमिदं तर्हि सफलं जीवितं मम। अविनीतोऽपि सदये ! श्रीमत्याऽस्म्यनुकम्पितः ॥६७॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

पुनः कटाक्षयन्तीं त्वां त्वां च तां मिथिलेश्वरः। प्रसमीक्ष्य सुविश्रब्धः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥६८॥

श्रीमिलिलेश उवाच।

उपसंहर विश्वेशि ! इदं रूपं परात्परम्। शिशुरूपं समास्थाय सुखं मे देहि वाञ्छितम् ॥६९॥

उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजी भी मुनियोंके स्तुति करते हुये इन (श्रीकिशोरीजी) के तेज से घबराकर तत्क्षण श्रीचरणकमलों में गिर पड़ीं ॥६३॥

उन दोनोंको प्रेमपूर्वक अपने हस्त-कमलोंके द्वारा उठाकर कोयलके बच्चेके समान मधुरभाषिणी तथा चन्द्रके समान मुखवाली श्रीकिशोरीजी, उनसे इस प्रकार मधुर वचन बोलीं—॥६४॥

हे अम्ब ! हे तात ! आप इस यज्ञके बहाने ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकों को भी दुर्लभ, मुझको अपने पूर्व तपकी उपस्थित सिद्धि ही जानिये ॥६५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रवणोंको अमृतके समान सुख देनेवाले श्रीकिशोरीजीके उस वचनको सुनकर मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज ! प्रणाम करके हाथ जोड़कर, श्रीचन्द्रवदनाजूसे बोले—॥६६॥

यदि आप इस यज्ञके बहानेसे मेरे तपकी मूर्त्तिमती सिद्धि ही प्रकट हुई हैं तो, मेरा जीवन सफल है, क्योंकि हे दयायुक्ते ! मैंने आप जगज्जननीजी को अपनी पुत्री बनानेके लिये जो साधन किया, यह मेरी कितनी ढिठाई हुई है, परन्तु आपने फिर भी मेरे पर अनुकम्पा ही की, जो पुत्री बनना स्वीकार कर लिया ॥६७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! आपकी ओर इन्हें और इनकी ओर आपको कटाक्ष करते हुये देख कर श्रीमिथिलेशजी महाराज पूर्ण विश्वासको प्राप्त हो, हाथ जोड़कर बोले:—॥६८॥

हे विश्वका नियमन करने वाली श्रीसर्वेश्वरीजू ! अपने इस परात्पर स्वरूपका उपसंहार (त्याग) कीजिये और शिशु रूपमें स्थित होकर मुझे अभीष्ट वात्सल्य सुख-प्रदान कीजिये ॥६९॥

प्रत्येके रोम्णि वै यस्मिन्ब्रह्माण्डाः परमाणवः । दृश्यन्ते त्वत्स्वरूपं तत्कथं स्याल्लालनाय मे ॥७०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमभ्यर्थितस्तेन श्रीमता करुणार्णवा । दधार बालरूपं सा प्राकृतं सूक्ष्मतेजसम् ॥७१॥
आवृतेऽपि यथा सूर्ये न तेजस्तत्तिरोहति । अस्या अपि तथैवासीत्तेजस्तन्न तिरोहितम् ॥७२॥
स समीक्ष्य महाभागः शिशुरूपं समास्थिताम् । अभिधाव्य समुत्थाप्य क्रोडमारोपयन्मुदा ॥७३॥
दुन्दुभीन्वादयामासुर्देवाः पुष्पाण्यवर्षयन् । एनामङ्कगतां दृष्ट्वा जयघोषसमन्विताः ॥७४॥
वक्षोजाभ्यां तदाम्बायाः प्रसुस्रावामृतं पयः । तस्मादधैर्यमासाद्य नृपाङ्कात्स्वाङ्कमाददे ॥७५॥
मङ्गलावसरं ज्ञात्वा निःसरत्तद्दृशोर्जलम् । युक्त्या रुरोध धर्मज्ञा कथञ्चिद्योगमास्थिता ॥७६॥
मातुरालिङ्गनं प्राप्य प्रागनासादितं प्रिय ! अतिगाढं विवेशाङ्कमियं चन्द्रनिभानना ॥७७॥

क्योंकि जिस रूपके प्रत्येक रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड परमाणुके सदृश अत्यन्त सूक्ष्म दिखाई दे रहे हैं, वह आपका ऐश्वर्यमय यह स्वरूप मेरे लाड-प्यार के योग्य कैसे हो सकता है ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ॥७०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे इस प्रकार श्रीमान् मिथिलेशजी महाराजके प्रार्थना करने पर इन करुणासागरा श्रीकिशोरीजीने सूक्ष्म तेजसे युक्त, अपना लौकिक बालरूप धारण कर लिया ॥७१॥ हे प्यारे ! जैसे मेघ आदिकोंके द्वारा भगवान् भास्कर (सूर्य) के छिप जाने पर भी उनका तेज नहीं छिपता हैं, उसी प्रकार श्रीकिशोरीजीके उस ऐश्वर्यमय स्वरूपके छिपाने पर भी उनका तेज छिप नहीं सका अर्थात् उसकी अलौकिकता बनी ही रही ॥७२॥

इधर श्रीमिथिलेशजी महाराजने शिशु रूपमें स्थित, श्रीकिशोरीजीको देखकर दौड़कर, उन्हें सुखपूर्वक उठाकर गोदमें ले लिया ॥७३॥

उधर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी गोदमें इन श्रीकिशोरीजीको विराजमान देख कर देवगण जयजयकार सहित नगाड़े बजाने और आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥७४॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीके स्तनोंसे अमृतके समान दूध निकलने लगा अतः उन्होंने अधीर होकर श्रीकिशोरीजीको महाराजकी गोदसे अपनी गोदमें ले लिया ॥७५॥

आनन्दकी अधिकतासे आँखोंसे जो आँसू निकल रहे थे उन्हें धर्मको जानने वाली श्रीअम्बाजीने मङ्गलका अवसर जानकर योगमें स्थिर होकर युक्ति पूर्वक बड़ी कठिनतासे रोका ॥७६॥

हे प्यारे ! माताका आलिङ्गन, जो पूर्वमें उन्हें कभी भी प्राप्त न हुआ था (उसे) प्राप्त करके ये श्रीचन्द्रनिभाननाजू उनकी गोदमें अत्यन्त गाढ़ रूपसे लिपट गयीं ॥७७॥

एवं श्रीशरदिन्दुसुन्दरमुखी सर्वेश्वरी सद्गति-
नीलेन्दीवरपत्रचारुनयना विस्मेरविम्बाधरा ।
आनन्दाय शरीरिणां प्रकटिता कारुण्यवारां निधिः
सर्वेषां नयनाद्भुतोत्सववपुः श्रीस्वामिनी नः प्रिय ।।७८।।

हे प्यारे! इस प्रकार शरद ऋतुके चन्द्रमाके समान सुन्दर आह्लाद वर्द्धक मुखवाली, सभी की स्वामिनी, सन्तोंकी रक्षा करनेवाली, श्याम कमल दलके सदृश मनोहर विशाल नेत्रवाली, मुस्कानयुक्त, विम्बाफलके तुल्य लाल अधर वाली, करुणाकी सागर, अपने स्वरूपसे सभीके नेत्रों को आश्चर्य जनक, उत्सवके सदृश सुख प्रदान करने वाली, हमारी श्रीस्वामिनीजू समस्त प्राणियोंको आनन्दित करनेके लिये प्रकट हुईं ।।७८।।

इति द्वात्रिंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ त्रयस्त्रिंशतितमोऽध्यायः ।

भाव विह्वल ऋषियों द्वारा बहुतोंकी भाग्य प्रशंसा, श्रीजनकजीका जनकपुर आगमन तथा सखियोंकी नित्य कामना ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आनन्दाम्बुधिसम्प्लुताः प्रियतम ! व्यस्तस्मृतिप्राणिनः
पश्यन्तश्छबिमाधुरीमतुलितां सर्वे समाधिं गताः ।
अस्या दर्शनसंप्रसक्तहृदयो नाब्दार्द्धकालं गतं
प्राबुध्यद्भगवांस्तदा दिनमणिः खे संस्थितो मूर्त्तिवत् ।।१।।

हे परम प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके दर्शन रूपी आनन्द सिन्धुमें डूबे; बेसुध प्राणी इनकी अनुपम छबिमाधुरी का दर्शन करते हुए सबके सब समाधिको प्राप्त होगये, उस समय आकाश में मूर्त्तिके समान सम्यक् प्रकारमे स्थित हुए भगवान सूर्य, उनके दर्शनमें इस प्रकार परम आसक्त हृदय हुए कि उन्हें छः महीनेका बीता हुआ समय, ज्ञात न हो सका ।।१।।

पश्चात्प्राप्य गतां स्मृतिं च ददृशुः सच्चित्स्वरूपामिमां
प्रोचुर्मोदपरिप्लुतोरुमनसस्ते मुक्तकण्ठा गिरम् ।
धन्योऽयं मिथिलामहानृपवरो धन्या च राज्ञी त्वियं
पुत्रीभावमुरीचकार कृपया सर्वेश्वरीयं ययोः ॥२॥

धन्योऽसौ समयस्तु यत्र परमो यज्ञः समारम्भितो
धन्योऽयं समयस्तु यत्प्रकटितां पश्याम आरात्पराम् ।
धन्येयं मिथिला पुरीषु तिलकं सौन्दर्यरत्नाकरा
यस्या भूमितलं विहर्तुमनया मत्वोत्तमं स्वीकृतम् ॥३॥

धन्याः सर्व इहागताः सुकृतिनश्चीर्णव्रता योगिनो
यैः सर्वं समवेक्षितं सुखमिदं ब्रह्मादिभिर्दुर्लभम् ।
धन्याः श्रीमिथिलानिवासनिरताः स्तुत्याः समर्च्याः सुरै-
रस्या बालविहारवीक्षणसुखं येषां करे स्थापितम् ॥४॥

तत्पश्चात् अपनी खोई हुई सुधिको पुनः पाकर अर्थात् सावधान हो इन सत्-चित् स्वरूपा श्रीकिशोरीजीका दर्शन करने लगे और महामना ऋषि, मुनि, योगि, तपस्वी, सिद्ध आदि आनन्द बिभोर हो मुक्त कण्ठसे यह घोष करने लगे कि इन श्रीसर्वेश्वरीजूने कृपा करके जिनके पुत्री भावको स्वीकार किया है, वही श्रीमिथिलाजीके महानृपश्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजो महाराज और ये श्रीसुनयना महारानीजी धन्य हैं ॥२॥

जिस समय यह यज्ञ प्रारम्भ हुआ, वह समय धन्य था और यह समय भी धन्य हें, जिसमें हम इन श्रीपराशक्तिजीका दर्शन समीपसे कर रहे हैं। समस्त पुरियोंकी तिलक स्वरूपा ये श्रीमिथिलाजी धन्य हैं। इनके समान बडभागी तो कोई है ही नहीं, क्योंकि इन श्रीसर्वेश्वरीजी ने इन्हींके भूमितलको उत्तम मानकर अपने विहारके लिये पसन्द किया है ॥३॥

जिन्होंने ब्रह्माजी आदि देवताओंके लिये भी इस दुर्लभ सुखका भली प्रकारसे दर्शन प्राप्त किया है, वे सभी सुकृत (पुण्य) शाली, विविध प्रकारके व्रतोंको पूरा करने वाले योगी धन्य हैं। श्रीमिथिला निवासी तो सभी धन्य हैं जो देवताओं द्वारा निश्चय ही सब प्रकार (तन, मन, वाणी) से पूजने एवं स्तुति करने योग्य हैं, क्योंकि इन श्रीसर्वेश्वरीजीके बालविहारका दर्शन सुख तो उन्हींके हाथमें रखा गया है ॥४॥

धन्या लग्नमुहूर्तवारघटिकातिथ्यर्क्षयोगादिका
धन्यं पुण्यतमं स्थलं च तदिदं धन्यो विधिर्याज्ञिकः।
धन्यश्चैष पुरोहितो मुनिवरः श्रीगौतमीनन्दनः
सामग्री खलु याज्ञिकी बुधजना! धन्या त्वियं सञ्चिता ॥५॥

धन्यं भाग्यमहो निमेः सुपरमं यस्यान्वयेऽयं नृपः
पुण्यश्लोक उदारधीः सुकृतिनां सम्राडभूद्योगिनाम्।
धन्यौ धन्यतमौ तथाऽस्य पितरौ क्रोडे ययोर्वर्द्धितो
यस्येयं दुहिता परात्परतमा लोकेषु विख्यास्यति ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवं ते कथयन्त उग्रतपसो योगीन्द्रसिद्धर्षयो
वाष्पोत्फुल्लसरोजदीर्घनयनाः प्रापुर्मुदं चाद्भुताम्।
तेषां चित्तषडङ्घ्रयोऽतिसुभगा विश्रामधिष्ण्यं परं
स्वामिन्याश्चरणारविन्दयुगलं लब्ध्वा शमं लेभिरे ॥७॥

भगवानकी महिमा जानने वाले हे बुध जनो! ये श्रीसर्वेश्वरीजी जिस लग्न मुहूर्त, दिन, घड़ी, तिथि, नक्षत्र, योग आदिमें प्रकट हुई हैं, वे सब धन्य हैं। यह स्थल अत्यन्त पवित्र और धन्य है, तथा जिसके द्वारा आप श्रीकृपा रूपाजूका प्राकटच हुआ है वह यज्ञकी विधि धन्य है, जिनके यज्ञ करानेसे आप प्रकट हुई हैं, वे पुरोहित श्रीअहल्यानन्दन श्रीशतानन्दजी महाराज धन्य हैं, जिसके उपयोगसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ, वह यज्ञके लिये इकट्ठाकी हुई सामग्री भी धन्य है ॥५॥

ये परात्परतमा श्रीसर्वेश्वरीजी लोकमें जिनकी पुत्री करके विख्यात होंगी वे पुण्ययश, उदारकीर्त्ति, पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ, योगियोंके सम्राट् श्रीजनकजी महाराज जिनके वंशमें हुए हैं वे श्रीनिमिराजजी महाराज धन्य हैं। और ये जिनकी गोदीमें बढ़ेंगी, इनके वे माता-पिता श्रीसुनयना महारानी तथा श्रीजनकजी महाराज धन्य हैं, परम धन्य हैं ॥६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे! खिले कमलके समान विशाल सजल नयन उग्रतपशाली, वे योगिराज सिद्धराज, ऋषिराज इस प्रकार कहते हुये विलक्षण आनन्दको प्राप्त हुये अतः उनके सुन्दर चित्त रूपी भौंरे अपने परम विश्राम स्थान, श्रीस्वामिनीजूके श्रीचरणरूपी युगल कमलोंको पाकर शान्त-भावको प्राप्त हो गये अर्थात् उन्हीं में तल्लीन हो गये ॥७॥

राजा लब्धमनोरथोऽतिमुदितो द्रव्यप्रदानाय वै
आहूयाखिलमन्त्रिणो गिरमिमां वाचाहसंरुद्धया ।
यूयं यात ममाज्ञया च निखिलान्कोषांश्चिरादर्जितान्
सर्वेभ्यः किल सानुरोधमधुना भक्त्या प्रदत्तादरात् ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

राज्ञस्तस्य विदेहभूपतिमणेराज्ञानुसारं हि ते
नानारत्नमणिप्रवालविलसत्कोषान्समुद्रायितान् ।
प्रेमोन्मत्तधियस्तु तर्हि समदुः सर्वेभ्यः एवेप्सितं
दानैर्वित्तपराङ्मुखाः सुविहितास्तैर्वित्ततृष्णातुराः ॥९॥

निःसङ्कोचमुदारचारुमतयः प्रादुर्धनं पुष्कलं
यल्लब्ध्वाऽखिलयाचकाः समभवन्वित्ते कुबेराधिकाः ।
किन्तु प्रेष्ठ ! न कस्यचिद्धननिधिर्याता त्रुटिं कामपि
दृष्टं चेति कुतूहलं हि परमं सर्वैस्तदानीं नवम् ॥१०॥

अपने मनोरथकी सिद्धि पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराज अत्यन्त मुदित हो अपने समस्त मन्त्रियोंको बुलाकर द्रव्य प्रदान करनेके लिये इस प्रकार गद्गदवाणी द्वारा उनसे बोले-हे समस्त मन्त्रियों ! तुम लोग (नगर) जावो और मेरी आज्ञासे बहुत दिनोंका इकट्ठा किया हुआ सारा खजाना अनुरोध पूर्वक, श्रद्धा सहित, आदरके साथ सभी को अभी दान कर दो ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके दर्शनानन्द से विदेह (देहकी सुधिरहित) अवस्थाको प्राप्त योगियोंके सम्राट् श्रीमिथिलेशजी महाराजके आज्ञानुसार वे प्रेम-बावरे-बुद्धि, मन्त्रीगणभी अनेक प्रकारके रत्न, मणि, मूँगोंसे सुशोभित, समुद्रका रूप धारण किये हुये खजानों को लुटाने लगे, जिसको जो रुचा उसे वही दिया, कहाँ तक कहा जाय ? उन मन्त्रियोंने दानके द्वारा सभी धनतृष्णातुरों अर्थात् धनकी इच्छासे सदा पागल रहनेवाले लोगोंको भी धनसे विमुख कर दिया, यानी धनकी ओर देखनेकी भी उनकी रुचि न रहने दी ॥९॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इस प्रकार उन उदार सुन्दरमति, मन्त्रियोंने सङ्कोचका परित्याग कर बहुत-२ दान दिया, जिसको पाकर सभी नित्य भिक्षा माँगने वाले दरिद्र प्राणी भी, धनमें कुबेरसे अधिक सम्पन्न हो गये, परन्तु किसी भी कोषाध्यक्षके खजाने में किसी प्रकारकी भी कमी नहीं आई, यह उस समय सभीने परम नवीन चमत्कार देखा ॥१०॥

इत्थं चान्नविभूषणाम्बरगवां दानैर्जनास्तर्पिताः
सर्वेषां मुखतो जयेति च मुहुः संश्रूयते स्म ध्वनिः ।
दृश्यन्ते स्म तदाऽर्थिनो न नगरे संमार्गमाणाः क्वचित्
सर्वत्रैव च सर्व एव समुदो दातृत्वबुद्धिं ययुः ॥११॥
कुर्वन्तः सुरपुष्पवृष्टिममरा दृष्ट्वा तु नः स्वामिनी-
मात्मानं खलु मेनिरे प्रतिपलं नूनं कृतार्थीकृतम् ।
ब्रह्मत्र्यम्बकचक्रपाणिसुरराड्वित्तेशपाशयन्तकाः
कृत्वा दर्शनमीप्सितं समवसन् गूढस्वरूपाः पुरे ॥१२॥
नानादेशनराधिपैश्च गुणिभिः सर्वैश्च तत्रागतैः
संदीप्ताग्निशिखोपमैर्मुनिवरैः सद्भिः प्रमोदान्वितैः ।
सम्मत्या महतां पितुश्च भवतो वेश्ममाययौ स्वं तदा
तत्सौख्यं समवेक्षितं हि भवता मन्ये यथेच्छं प्रिय ! ॥१३॥
यज्ञादाय सुधांशुपूर्णवदनां तातो गृहं प्रस्थित-
स्तर्हिस्वर्द्रुमपुष्पवृष्टिभिरियं व्याप्ता मही नाकिनाम् ।
सर्वं स्थावरजङ्गमं जगदिदं सच्चित्सुखं चान्वभूद्
देवर्षिव्रजसङ्कुला च मिथिला शोभां प्रपेदेऽतुलाम् ॥१४॥

इसी प्रकार अन्न, भूषण, वस्त्र, गौ आदिके दानोंसे भी सब लोग तृप्त कर दिये गये, अतः सबके मुखसे सुख-पूर्वक 'जय हो-जय हो' वश यही एक शब्द बार-बार सुननेमें आता था और उस समय भली प्रकार खोजने पर भी कोई किसी भी वस्तुको चाहने वाला नगरमें नहीं मिलता था बल्कि-सबके सब सानन्द दान करनेकी ही भावनाको प्राप्त हो गये अर्थात् सभीदान देने लगे ११ हमारी श्रीस्वामिनीजूका दर्शन करके देववृन्द पल-पलपर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करते हुये अपनेको बिना किसी अन्य साधनके ही कृतार्थ मानने लगे। श्रीब्रह्माजी, श्रीशिवजी, श्रीविष्णु भगवान्, इन्द्र, कुबेर, वरुण, यम श्रीकिशोरीजीका मनचाहा दर्शन करके गुप्त स्वरूपसे नगरमें बस गये॥१२॥ महात्माओंकी और आपके पिताजीकी सम्मतिसे श्रीमिथिलेशजी महाराज यज्ञ-महोत्सवमें पधारे हुये आनन्दयुक्त अनेक देशके राजाओं, गुणियों, प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी मुनिवरों और सन्तगणोंके सहित अपने महलको पधारे। हे प्यारे ! उस समयका आनन्द आपने इच्छानुसार भली प्रकार अवश्य अवलोकन किया होगा, यही मैं निश्चय मानती हूँ ॥१३॥ और जिस समय हमारे पिताजी उस यज्ञस्थलीसे पूर्ण-चन्द्रमुखीजीको लेकर अपने महलको प्रस्थित हुए, उस समय देवताओंके द्वारा कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षासे सारी पृथिवी परिपूर्ण हो गयी, समस्त स्थावर जङ्गममय यह जगत्, सत्, चित्, सुख (भगवदानन्द) का अनुभव करने लगा और देवताओं तथा ऋषिवृन्दोंसे भरी हुई श्रीमिथिलाजी अनुपम शोभाको प्राप्त हुई॥१४॥

एतच्चापि रहस्यमुक्तमधुना मातुर्मया प्राक्श्रुतं
भाषन्त्याः सुभगां प्रति प्रणयतो वाष्पप्रसिक्तास्यतः ।
तत्सत्यं यदि वा न हीति सुभग ! ज्ञाता भवान् सर्वथा
ध्यायन्त्याः श्रुतमेव मे तु हृदयं संयात्यमन्दं सुखम् ॥१५॥

सेयं श्रीनिमिराजमौलितनया साकं प्रिय ! श्रीमता
मच्छोकोन्मथनाय भक्तिवशगा प्रस्वापिता मन्दिरे ।
मत्तोऽग्रे गृहमेत्य दीनसुखदा दास्याः कृपावारिधिः
स्वापाख्ये मम भाविते च भवने शेते सुखं पूर्ववत् ॥१६॥

धन्या हन्त कृपालुता प्रणयता सच्छीलता स्निग्धता
स्वामिन्या मम सर्वलोकशुभदा सद्भावता प्रीतिता ।
प्राणप्रेष्ठ ! यया सुदुर्लभसुखं चेदं मयाऽऽसादितं ।
नो चेत्त्वं हि वदाद्य नाथ ! तदिदं मह्यं सुखं वै कुतः ॥१७॥

हे प्राणप्यारेजू ! श्रीअम्बाजीके प्रणयपूर्वक अश्रुभीगे मुखारविन्दसे यह रहस्य श्रीसुभगाजीके प्रति कहते हुए मैंने सुना था, उसे इस समय मैंने आपसे निवेदन किया, पर यह बात सत्य है अथवा झूठ, (उस समय उपस्थित होनेके कारण) आप भलो प्रकारसे जानते हैं, किन्तु उस सुने हुये ही रहस्यका ध्यान करने मात्रसे मेरा हृदय अपार सुखको प्राप्त हो जाता है, फिर जिन्होंने उसे प्रत्यक्ष देखा होगा उनके आनन्दको कहना ही क्या है ? ॥१५॥

जिनको मैं शयन-भवनमें सुलाकर आई थी, वे ही श्रीनिमिवंशके राजशिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराजकी दुलारीजू प्रेमके वशीभूत होकर मेरे शोकको दूर करनेके लिये दीन जनोंको सुख देने वाली कृपासागराजू मुझसे पूर्व ही, मुझ दासीके शयन-कक्षमें स्वयं पधार कर अपने शयन-भवनकी भाँति आपके सहित सुखपूर्वक सो रही हैं ॥१६॥

हे प्राणप्यारेजू ! हमारी श्रीकिशोरीजीकी कृपालुता, प्रणयशीलता, सुशीलता, भक्तोंपर स्नेहभाव, समस्त प्राणियोंको मङ्गलप्रदान करने वाली सद्भावना और प्रीति धन्य है, जिसके द्वारा मुझे आज यह अलौकिक और परम दिव्य सुख प्राप्त होरहा है, जो अन्य किसीको किसी अवस्थामें भी सुलभ नहीं है । हे नाथ! आपही कहिये यदि श्रीकिशोरीजीमें उपर्युक्त दिव्यगुणोंकी प्रधानता न होती तो यह अत्यन्त दुर्लभसुख मुझ-जैसी साधारणको कैसे सुलभ होता? ॥१७॥

मुह्यन्तीह न च स्त्रियः कथमपि प्रेक्ष्य स्त्रियं कामपि
प्रख्यातेयनुदारपुण्यचरित ! प्राणेश ! लोके कथा ।
सर्वासां हृदयेभ्य एव नितरामञ्जो विमोहप्रदः
प्रत्येकाङ्गतनूरुहस्तु सुदृढनोऽस्याः परं बल्लभ ! ॥१८॥
अस्माभिस्तु निमेषनिर्मितिकृते दुःखाभिभूतात्मभि-
र्दुर्वादः प्रतिदीयते प्रतिपलं वृद्धाय धात्रेऽसकृत् ।
अस्या दर्शनविघ्नदाय कुधिये प्राणेश ! शोभाकर !
त्वं तस्मान्महतो महिष्ठदुरितात्त्रायस्व नः प्रेयसीः ॥१९॥
पूर्णेन्दुप्रतिमाननाऽब्जनयना विस्मेरबिम्बाधरा
वैदेही मिथिलाधिनाथतनया मात्रा सदा लालिता ।
अस्माभिश्च सुजीवताच्चिरमियं संसेव्यमाना मुदा
सर्वासां किल हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२०॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्मितमुखी सर्वास्ववस्थासु वै
खेलन्ती विचरन्त्यथो स्थितवती संसेव्यमाना मुदा ।
भद्राण्येव च सर्वदिक्षु सततं प्राणाधिका पश्यता-
त्सर्वासां किल हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२१॥

हे उदारपुण्यचरित ! श्रीप्राणनाथजू ! "स्त्रियाँ किसीभी स्त्रीको देखकर किसीभी प्रकार मुग्ध नहीं होती" यह कथा लोकमें प्रसिद्ध है, परन्तु हे प्यारे ! इन श्रीकिशोरीजीका प्रत्येक रोम हम सभी सखियोंके हृदयको तत्काल ही मुग्धकर लेता है, अर्थात् हम लोगोंका हृदय इनके एक-एक रोम पर मुग्ध है ॥१८॥

अत एव हे शोभाके राशि श्रीप्राणप्यारेजू ! हम सभी दुखी हृदयसे बूढ़े ब्रह्माको प्रतिपल बहुत-बहुत गाली दिया करती हैं क्योंकि उन्होंने अपनी दुर्बुद्धिके कारण आँखोंमें पलकें बनाकर श्रीकिशोरीजीके दर्शन करनेमें हम लोगोंको विघ्न (बाधा) उत्पन्न कर दिया है, अतः आप इस परम महान् अपराधसे हम सभी प्यारियोंकी रक्षा कीजिये ॥१९॥

हे प्यारे! हम सभीकी एकमात्र यही सदा हार्दिक अभिलाषा रहा करती है कि ये पूर्ण-चन्द्र-तुल्य-मुखी- कमललोचना, मुस्कानयुक्त, बिम्बाफलके सदृश लाल अधर वाली श्रीमिथिलेशदुलारीजू आश्रितोंको सुख प्रदान करनेमें अपनी सुधि भूली हुई, श्रीसुनयना अम्बार्जासे लालित, हम सभी बहिनों द्वारा प्रणयके साथ आनन्दपूर्वक सेवित होती हुई, चिरकाल तक जीवित रहें ॥२०॥

मन्दहास्ययुक्त मुखवाली ये श्रीप्राणाधिकाजू जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी अवस्थाओं में खेलती विचरती, बैठी तथा परिवार द्वारा सेवा ग्रहण करती हुई दशो-दिशाओंमें सदा मङ्गल ही मङ्गल का दर्शन करती रहें, यही हम सभीके हृदयमें रात-दिन कामना बनी रहती है ॥२१॥

मृद्वङ्गी स्मितनन्दिताखिलजना कारुण्यपूर्णेक्षणा
विद्युद्दामसमद्युतिः सुहसिता सौन्दर्यरत्नोदधिः ।
अस्माकं नयनालयेषु वसतादाराध्यमाना मुदा
सर्वासां किल हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२२॥

कारुण्यामृतवर्षिणी शशिमुखी सच्चित्सुखैकाकृति-
र्नेत्रानन्दकरी मनोहरगतिः शोभावधिः सद्गतिः ।
पश्यत्वार्द्रदृशा दयार्द्रहृदया दासीश्च नः स्वर्चिता
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२३॥

अम्बाक्रोडविहारिणी लघुदती मन्दस्मिता शोभना
गौराङ्गी कुटिलालकावृतशरत्पूर्णेन्दुभव्यानना ।
अस्माकं कुरुतात्त्रितापशमनं प्रीता कृपावीक्षणैः
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२४॥

तथा अपनी मन्दमुस्कान मात्रसे समस्त प्राणियों को आनन्दित करने वाली करुणा-रस-पूर्ण चितवन व बिजलीकी माला सदृश प्रकाशमय कान्ति व सुन्दर मुस्कानवाली, ये कोमलाङ्गी, सौन्दर्य-सागरा श्रीकिशोरीजी हम सभी आश्रित-जनोंसे सेवित होती हुई आनन्दपूर्वक हम लोगोंके नेत्ररूपी महलोंमें निवास करती रहें, यही हम सभीके हृदयमें सदा उत्कण्ठा बनी रहती है ॥२२॥

कारुण्य रूपी अमृत की वर्षा करने वाली सत्-चित् (सदा एक रस रहने वाले अमायिक) सुखकी उपमा-रहित मूर्त्ति, नेत्रोंको अपने दर्शनोंसे ही आनन्दित करने वाली तथा अपने मधुर गमनकी शोभासे सभी प्राणीमात्रके मनको हरण करने वाली, शोभाकी सीमा, सन्तोंकी आधार, दयासे द्रवित हृदय वाली ये शशिमुखी (श्रीकिशोरीजू) अच्छी प्रकारसे पूजित होकर हम सब दासियोंको अपनी दयाद्रवित-चितवनसे सदा अवलोकन करती रहें, यही इस जीवनमें हम सभीके हृदयमें नित्य अविचल कामना बनी रहती है ॥२३॥

जिनके छोटे छोटे दाँत हैं, मन्द मुस्कान है, जो सब प्रकारसे सुन्दरी हैं, गौर जिनका अङ्ग कुञ्चित अलकावलीसे शोभायमान शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रके सदृश परम आह्लादवर्द्धक प्रकाशमय जिनका श्रीमुखारविन्द है, ऐसी ये श्रीकिशोरीजी अम्बाजीकी गोदमें बिहार करती हुई प्रसन्न हो अपनी कृपामयी चितवनसे हम सब आश्रितोंके तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंका शमन करती रहें । यही हम सभीकी इस जीवनमें एकरस हार्दिकी कामना है ॥२४॥

स्वामिन्या मम सर्वतापहरणं कल्याणसौख्यप्रदं
राकानाथकरौघमोहजनकं चित्तापकर्षं परम् ।
भूयादात्मतमोघ्नमाशुशुभदं मन्दस्मितं पावनं
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२५॥

खेलन्त्याः कमलापवित्रपुलिने सत्रालिवृन्दैः शुभं
ब्रह्माद्यैश्च शिरोभिरेव नमितं वेदैर्विमृग्यं परम् ।
पादाम्भोजरजः सदाऽस्तु शरणं नश्चोत्पतच्छ्रीश्रियः
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२६॥

शश्वद्विश्वभयापहः सुललितः शोभाकरः शीतलः
स्वामिन्या मम सर्वतापहरणः सत्कङ्कणैः स्वञ्चितः ।
स्निग्धाम्भोरुहशोभनाभयकरः शीर्षेषु नो राजतां
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२७॥

अस्याः सा तनुकान्तिरस्तु चपलापुञ्जोपमा पावनी
तेजोवारिधिसीकरात्प्रकटिता यस्याः शशीनाग्नयः ।
दुष्प्रेक्ष्याः प्रिय ! भासकास्त्रिजगतां मोहान्धकारापहा
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२८॥

समस्त पापोंको हरण करने वाली तथा कल्याण व सुखको प्रदान करने वाली, पूर्णचन्द्रकी किरण समूहोंको भी मुग्ध करने वाली चित्ताकर्षक परम पवित्र, कल्याणको देनेवाली हमारी श्रीस्वामिनीजीकी मन्द मुस्कान, हम आश्रितोंके हृदयके अन्धकार (अज्ञान) को दूरकरे, वस यही इस जीवनमें हम सभीके हृदयमें रात दिन एक उत्कण्ठा अटल बनी रहती है ॥२५॥

श्रीकमलाजीके पवित्र किनारे पर अपने सखीवृन्दोंके सहित खेलती हुई, शोभाकी शोभा स्वरूपा श्रीकिशोरीजीकी ब्रह्मादि देवताओंसे नमस्कार की हुई, वेदों द्वारा परम खोजने योग्य, श्रीचरणकमलकी उड़ती हुई धूलि, हम सभी आश्रितोंकी सदा रक्षा करे, यही हम सभीकी इस जीवनमें अटल कामना है ॥२६॥ विश्वमात्रके भयको नष्टकर देने वाला, अत्यन्त सुन्दर, शोभाकी खानि, शीतल, समस्त तापोंको हरण करने वाला, सत्कङ्कणोंसे भूषित हमारी श्रीस्वामिनीजूका चिक्कण कमलके समान सुहावन अभयहस्त हम लोगोंके सिरपर सदा सुशोभित रहे, वश इस जीवनमें हम सभीके हृदयकी अटल कामना हैं ॥२७॥

जिसके तेजरूपी सागरके सीकर (कण) मात्र तेजसे प्रकट हुये चन्द्र, सूर्य, अग्नि त्रिभुवन को प्रकाशयुक्त करने वाले कठिनतासे देखे जाते हैं, बिजली समूहके समान उन श्रीकिशोरीजीकी श्रीअङ्ग-कान्ति, हम लोगोंके मोह (अज्ञान) रूपी अन्धकारको हरण करे—यही इस जीवनमें हम सभीके हृदयमें सदा ही नित्य-कामना बनी रहती है ॥२८॥

अस्याः श्लाघ्यदयानुरागपरमौदार्यक्षमाशीलता-
वात्सल्यादिगुणा हि सन्तु शरणं दिव्याः पराः पावनाः।
मैथिल्याः सततं मनोहररुचेः शोभावधेः सद्गतेः
सर्वासामिह हार्दिकीयमनिशं नः शाश्वती कामना ॥२६॥

श्रीशिव उवाच।

इत्थं तस्यां तदोक्त्वा रघुकुलमिहिरो बाष्पपूर्णाम्बुजाक्ष्या-
मापन्नायां विसञ्ज्ञां सरसिजनयनस्तां प्रबोध्येत्यथोचे।
तत्कीर्ति श्रावय त्वं हृदयसुनिहितां कर्णपीयूषकल्पां
संस्मृत्यामोघभावां सुविशदहृदये स्वं समाधाय चेतः ॥३०॥

जिनका दर्शन सदाही मनोहर है, जो शोभाकी सीमा और सन्तोंकी रक्षा करने वाली हैं उन्हीं इन श्रीमिथिलेश-दुलारीजीके प्रशंसनीय दया, अनुराग, परम उदारता, क्षमा, शीलता वत्सलता आदि परम पावन दिव्य गुण हम समस्त प्राणियोंकी रक्षा करें—यही इस जीवनमें हम सभीके हृदयकी अहर्निश नित्य उत्कण्ठा बनी रहती है ॥२६॥

इस प्रकार कहकर अश्रुपूर्ण कमललोचना श्रीस्नेहपराजू प्रेममयी मूर्च्छाको प्राप्त हो गयीं अस्तु, कमलनयन श्रीप्राणप्यारेजू उन्हें सावधान करके बोले-हे परम निर्मल(विशुद्ध) हृदयवाली! अरीसखी! तुम अपने चित्तको सावधान करके अमोघभाव सम्पन्ना श्रीकिशोरीजीको सम्यक् प्रकार से स्मरण करके श्रवणोंको अमृतके समान सुख देने वाली मुझे अपने हृदयमें रखी हुई उनकी कीर्त्ति (चरितों) को श्रवण कराइये ॥३०॥

इति त्रयस्त्रिंशतितमोऽध्यायः।

अथ चतुस्त्रिंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीकिशोरीजी का जन्मषष्ठ्युत्सव

श्रीशिव उवाच ।

एवमाभाषिता तेन प्रेयसा प्रेयसी सखी । प्रेयसं तमुवाचेदं प्रेमगद्गदया गिरा ॥१॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आब्रह्मकीटपर्य्यन्ताः शक्तिमन्तः पृथक् पृथक् । यदिच्छाशक्तिमात्रेण कोटिब्रह्माण्डवर्तिनः ॥२॥

क्वचित्कीटायते ब्रह्मा क्वचित्कीटोऽप्यजायते । क्षणार्द्धेनैव नो शक्या यदिच्छा चातिर्वातितुम् ॥३॥

प्राणनाथारविन्दाक्ष ! सच्चिदानन्दविग्रह ! । चरितं श्रूयतां तस्या जन्मोत्सवसमन्वितम् ॥४॥

आगत्य निलयं मुख्यं पिता मे यज्ञवाटतः । ससमाजो नृपैर्विप्रैः सर्वैर्यज्ञ उपागतैः ॥५॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे शैलराजकुमारी ! इस प्रकार श्रीप्रियाजूकी सखी स्नेहपराजी श्रीप्राणप्यारेजूके प्रेमपूर्वक आज्ञा देने पर प्रेमवृद्धिके कारण गद्गद हुई वाणी द्वारा प्यारेसे बोलीं ॥१॥ हे प्यारे ! जिनकी इच्छाशक्तिमात्रसे करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें रहने वाले ब्रह्मासे लेकर कीट पर्यन्त सभी प्राणी पृथक्-पृथक् अल्प-विशेष शक्तिसे सम्पन्न हैं ॥२॥

अतएव कभी वही उनकी अभिमान—निवारिणी इच्छा—शक्ति जगत्कर्ता ब्रह्माको आधे क्षणमात्रमें कीड़ाके समान अल्प—शक्ति बना देती है कभी प्राणियोंको अपने साधनोंका अभिमान नष्ट करके लोकोपकारार्थ उन्हें अपनी अघटित—घटना—पटीयसी शक्तिका अनुभव कराने वाली इच्छा—शक्ति उसी आधे क्षणमात्रमें कीड़ाको ब्रह्माके समान सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेकी सामर्थ्य युक्त बना देती है तथा जिनकी इच्छाका उल्लङ्घन कभी हो ही नहीं सकता अर्थात् जिस समय प्राणीकी जितनी शक्तिको उनकी इच्छा-शक्ति किसी महान अपराधके दण्डमें खीच लेती है तब वह चाहे अल्पसे अल्प शक्तिमान हो, चाहे ब्रह्मा विष्णु महेशके ही समान विश्व विख्यात महाशक्तिमान क्यों न हो, पर करोड़ों प्रयत्न करने पर भी तब तक उस शक्तिसे वह कदापि युक्त नहीं हो सकता, जब तक उन दयामयीजूकी अनुपम उदार इच्छा—शक्ति फिर उसे उस शक्तिको स्वत: देनेकी कृपा नहीं करती और जब तक उनकी इच्छा—शक्ति जिस प्राणीको अपनी किसी प्रकारकी रीझ वश शक्तिसे सम्पन्न रखना चाहती है तब तक त्रिलोकीमें कोई भी शक्ति उसे शक्तिसे रिक्त नहीं कर सकती ॥३॥

हे सदा एक रस रहने वाले अप्राकृत आनन्दके विग्रह श्रीप्राणनाथजू ! उन श्रीकिशोरीजीके जन्मोत्सवसे युक्त चरितोंको आप श्रवण कीजिये ॥४॥

यज्ञमें पधारे हुये सभी राजाओं व ब्राह्मणोंके सहित हमारे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजने समाजके साथ अपनी यज्ञस्थलीसे अपने मुख्य महलमें आकर ॥५॥

महार्हरत्नहर्म्याणि यथायोग्योत्तमानि च। संदिदेश प्रहृष्टात्मा सर्वेभ्यस्तेभ्य आदरात् ॥६॥
भूषणांशुकरत्नानां महावृष्टिरनुक्षणम्। कारिता नरदेवेन प्रेमनिर्भरचेतसा ॥७॥
अम्बा तदा सुनयना पुत्रमेकमजीजनत्। सुतमेकं सुतां चैकामसूत कान्तिमत्यपि ॥८॥
जातकर्मादिकं तेषां कारयित्वा विधानतः। श्रीविदेहो महाराजो महानन्दपरिप्लुतः ॥९॥
तद्गृहं दृश्यते न स्म न यस्मिन्मङ्गलोत्सवः। जन्मनोऽस्या विशालाक्ष्या महानन्दविधायकः ॥१०॥
पताका-केतु-कलश-तोरणै रहितं गृहम्। अन्त्यजस्यापि नार्दशि पुरि तस्यां तदा किल ॥११॥
किं पुनर्ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशां तथा। शक्यते द्रष्टुमागारमृते जन्ममहोत्सवात् ॥१२॥
महानन्देन चैवेत्थमनीत्य दिनपञ्चकम्। अथ षष्ठ्युत्सवं राजा समारेभे विधानतः ॥१३॥
आजग्मुः पुरवासिन्यो रतिरूपमदापहाः। नार्यो भूषितसर्वाङ्ग्यो मङ्गलवस्तुपाणयः ॥१४॥
नर्तका गायका मुख्या सूताश्चैव विदूषकाः। सत्कौतुककलाभिज्ञाः कवयो गणका भटाः ॥१५॥

उन सबोंको आदरपूर्वक यथायोग्यसे भी उत्तम बहुमूल्य रत्नोंके महल, प्रसन्न हृदय से प्रदान किया ॥६॥ पुनः प्रेम-निर्भर-चित्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराजने भूषण, वस्त्र, रत्नोंकी क्षण-क्षणपर भारी वर्षा करवायी ॥७॥

उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजीके एक पुत्र और श्रीकान्तिमती अम्बाजीके एक पुत्र व एक पुत्री का जन्म हुआ ॥८॥ श्रीमिथिलेशजी महाराज उनके जन्मका संस्कार (जातकर्म आदि) विधिपूर्वक कराके महान् आनन्दमें डूब गये अतः उन्हें देहकी सुधि नहीं रही ॥९॥

हे प्यारे ! उस समय वह कोई भी ऐसा गृह नहीं दिखाई देता था, जिसमें इन विशाल-लोचना श्रीकिशोरीजीका महान् आनन्दकारक जन्मका मङ्गलोत्सव न मनाया जारहा हो ॥१०

कहाँ तक कहें ? उस समय शूद्र व अन्त्यजों (भङ्गी, डोम आदिकों) का भी कोई घर ऐसा देखने को सुलभ नहीं था, जिसमें मङ्गल कलशकी स्थापना न की गयी हो, अथवा जिसमें ध्वजा न फहरा रही हो, तथा जिसमें भण्डी व बन्दनवार न लगाये गये हों ॥११॥

फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंका कोई घर श्रीकिशोरीजीके जन्ममहोत्सवसे खाली देखनेको कैसे सुलभ हो सकता था ? ॥१२॥ इस प्रकार पाँच दिन बड़े ही आनन्दसे व्यतीत करके श्रीमिथिलेशजी महाराज ने विधिपूर्वक षष्ठी (छट्ठी) महोत्सव प्रारम्भ किया ॥१३॥

अपने सौन्दर्यसे रतिके रूपका अभिमान दूर करने वाली, सभी अङ्गोंमें शृङ्गार धारण किए हुई, पुर-वासिनी स्त्रियाँ, अनेक प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंको हाथोंमें ले-लेकर आने लगीं ॥१४॥ मुख्य-मुख्य नाचनेवाले, गानेवाले, सूत, विदूषक अच्छी-अच्छी कौतुककी कलाको जाननेवाले, कवि, ज्योतिषी, भट (जोधा) ॥१५॥

वादित्रकुशला मल्लाः सर्वशास्त्रविशारदाः। कोविदाश्चैव सस्त्रीका राजानः ससमाजकाः ॥१६॥
आगताश्च महात्मानो मुनयः सर्व एव हि। भवांश्च भ्रातृभिः साकं सह पित्रा समागतः ॥१७॥
तेन तत्र समादृत्य सत्कृत्य सुविधानतः। महार्हरत्नपीठेषु विनयेन निवेशिताः ॥१८॥
राज्ञ्यः सर्वा नरेन्द्राणां मातृभिस्तव संयुताः। सत्कृत्य स्वासनेष्वन्तःपुरे प्रीत्या निवेशिताः ॥१९॥
ताराधिपमुखीनां तु महामोदान्वितात्मनाम्। सामयिकं तदा गानं संप्रवृत्तं मनोहरम् ॥२०॥
क्वचिन्नृत्यं क्वचिद्गानं क्वचिच्छास्त्रार्थनिर्णयः। क्वचिद्वन्दीजनानां च संस्तवः सुखवर्द्धनः॥२१॥
क्वचिज्ज्योतिर्विदां वादः कवीनां कविता क्वचित्। क्वचिद्विदूषकाणां च समाजो मोदसञ्चयः।२२।
सगानं वाद्यविदुषां क्वचिद्वादित्रवादनम्। नटानां च तथा नाट्यं महाश्चर्यप्रदं नृणाम् ॥२३॥
संप्रवृत्ते तु मे पुर्यां कोणे कोणे महोत्सवे। अभूतपूर्व इत्येव श्रवोनेत्रसुखावहे ॥२४॥
उद्वर्तनादिकविधिं कृत्वौषधियुताम्भसा। स्नापितेयं समं मात्रा नखकर्तनपूर्वकम् ॥२५॥

वाद्य-विद्याके पण्डित, मल्ल (पहलवान) सभी शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वान, स्त्रियों तथा समाज के समेत राजा लोग ॥१६॥ सभी महात्मा, सभी मुनि आगए तथा भाइयोंके सहित पिताजीके साथ आप भी वहाँ पधारे ॥१७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने आदर व बिधिपूर्वक सत्कार करके बहुमूल्य रत्नमयी चौकियों पर विनयपूर्वक सभीको विराजमान किया ॥१८॥

अन्तःपुरमें आपकी माताओंके सहित सभी राजरानियोंका सत्कार करके उन्हें प्रेमपूर्वक सुन्दर आसनों पर विराजमान किया गया ॥१९॥

तत्पश्चात् उपस्थित समयानुसार महान् आनन्द परिपूर्ण हृदयवाली चन्द्रमुखी सखियोंके मनोहर गीतोंका मङ्गल गान प्रारम्भ हुआ ॥२०॥

उधर अन्तःपुर से बाहर कहीं नृत्य कहीं गान कहीं शास्त्रके अर्थका निर्णय (निश्चय) कहीं बन्दीजनोंका सुखवर्द्धक गुणगान आरम्भ हुआ ॥२१॥

कहीं पर ज्योतिष विद्याके विद्वानोंका पारस्परिक विवाद कहीं पर कवियोंकी कविताका आनन्द, कहीं विदूषकोंका समाज आनन्द–पुञ्ज बना ॥२२॥

कहीं अनेक प्रकारके वाद्यों (बाजाओं) के विद्वानोंकी गान-पूर्वक वाद्यध्वनि, कहीं महान् आश्चर्य–प्रद नटोंकी नाट्य–लीला प्रारम्भ हुई ॥२३॥

इस प्रकार मेरी पुरीके कोने–कोनेमें श्रवण व नेत्रोंको सुख देनेवाले अभूतपूर्व महोत्सवके प्रारम्भ हो जाने पर ॥२४॥ नख कटवानेके बाद उबटन आदिकी विधि कराकर अनेक प्रकारकी पौष्टिक माङ्गलिक औषधियोंसे मिश्रित जल द्वारा श्रीअम्बाजीके सहित इन श्रीकिशोरीजीको स्नान कराया गया ॥२५॥

पीतांशुकाभूषणभूषिताङ्गी क्रोडे स्वमातुः सुभृशं रराज ।
ननर्त तद्वीक्ष्य पराऽनुरक्तया रमा सशैलेन्द्रसुता तदानीम् ॥२६॥
चकार गानं च कलस्वरेण तदा विधात्री समयानुकूलम् ।
स्वरूपमाधुर्यरसप्रमत्ता विगाढ़भावेन मुदा समाजे ॥२७॥
एवं विरिञ्च्यादिसुरा दिगीश्वराः सशक्तिका भूमिसुतादिदृक्षया ।
सोपायनाम्भोजकरा हताशुभा आजग्मुरन्येऽप्यनुरागनिर्भराः ॥२८॥
गन्धर्वविद्याधरयक्षचारणास्तथागमन् किन्नरनागगुह्यकाः ।
उपेयतुश्चन्द्रदिवाकरौ तदा द्विजाकृती श्रीमिथिलेश्वरोत्सवे ॥२९॥
तेऽदीर्घपादोरुकरां सुखावहां तनुद्युतिस्पर्द्धितडिच्छतप्रभाम् ।
दृष्ट्वा जगन्मोहनमोहनाकृतिं सुधाकरानन्तमनोहराननाम् ॥३०॥
प्रेमार्णवेऽगाधतरे तदानीं सर्वे ममज्जुः सुचिरं समागताः ।
पुनस्तु सञ्ज्ञां प्रतिलभ्य हर्षितोऽदाद्वेदरत्नस्रजमब्जसम्भवः ॥३१॥

हे प्यारे ! पीत रङ्गके वस्त्रोंको धारण की हुई, भूषणोंसे भूषित अङ्गवाली श्रीकिशोरीजी अपनी श्रीअम्बाजीकी गोदमें अत्यन्त सुशोभित हुई, उस शोभाको देखकर श्रीलक्ष्मीजी परम अनुरागपूर्वक श्रीपार्वतीजीके सहित नृत्य करने लगीं ॥२६॥

श्रीकिशोरीजीके स्वरूपके माधुर्य रसका पान करके मस्त हुई विधात्री (श्रीसरस्वतीजी) अत्यन्त गाढ़-भावसे प्रसन्नता पूर्वक उत्सवानुकूल मङ्गल-गीत गाने लगीं ॥२७॥

इस प्रकार अपनी शक्तियोंके सहित समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाले, ब्रह्मादिदेव, दिग्पाल (इन्द्र, यम, बरुण, कुबेर) तथा अन्य भी देवगण श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे अनुराग पूर्वक अपने करकमलोंमें नानाप्रकारकी भेंट लिये हुये वहाँ आगये ॥२८॥

उसी प्रकार गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष चारण, किन्नर, नाग, गुह्यक गण भगवान् चन्द्र व सूर्य ब्राह्मण रूप धारण किये हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजके उत्सवमें आ पधारे ॥२९॥

वे छोटे-छोटे पाँव, छोटी-छोटी जंघा, व छोटे-छोटे हाथ वाली, अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे अनन्त बिजली प्रभाको स्पर्धा युक्त करनेवाली, स्थावर जंगम प्राणियोंको अपने रूपके वैभवसे मुग्ध करने वाले प्रभु (आप) को भी अपने मङ्गलमय मनोहर विग्रहसे मुग्ध करनेवाली तथा चन्द्रमासे भी अनन्त गुण मनोहर मुखवाली (इन) श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके ॥३०॥

उत्सवमें आये हुये सबके सब अत्यन्त अगाध प्रेमरूपी सागरमें बहुत देरके लिये डूबे रहे पुनः सावधान होने पर श्रीब्रह्माजीने वेद-रूपी रत्नोंकी माला हर्षपूर्वक श्रीकिशोरीजीकी सेवामें अर्पण की ॥३१॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

वाणी तथा गीतविभेदपङ्कजस्रजं ह्यदात्प्रीतिनिमग्नचेतसा ।
तेनेयमम्भोजमुखी व्यशोभत प्रोद्यद्दिनेशाभमुखी मृदुस्मिता ॥३२॥
विष्णुस्तदा समुत्थाय वेदतन्तुमयाम्बरम् ।
प्रादादस्यै महाभागः श्रियै श्रीः श्रीमणिस्रजम् ॥३३॥
सदाशिवो नृत्यविभेदपङ्कजैः संशोभितं हारमदाद्धरित्प्रभम् ।
उमाऽपि देवी महताऽऽदरेण वै वासांसि नित्याभिनवान्यदान्मुदा ॥३४॥
प्रादात्सूर्यस्त्विषामीशः सूर्यकान्तमणिस्रजम् । अस्यै सोमस्तथा प्रीत्या चन्द्रकान्तमणिस्रजम् ॥३५॥
कामधेनुः स्तनं प्रादात्सुधाक्षीरयुतं मुखे । वारिमणिमयी माला वरुणेन तदाऽर्पिता ॥३६॥
आगता ये च ते सर्वे ददुर्देयं स्वशक्तितः । पुनः षष्ठ्युत्सवं द्रष्टुं बभूवुस्ते तदोद्यताः ॥३७॥
तस्मिन्महोत्सवे पुण्ये राजा सीरध्वजाभिधः । जाताह्लादस्तदा दानं विप्रेभ्यः समदापयत् ॥३८॥
तत्समीक्ष्येति भीर्जाता सर्वेषां हृदि दुश्छिदा । विदेहत्वं गतो राजा विदेहोऽथ न संशयः ॥३९॥

तब श्रीसरस्वतीजीने प्रेममें डूबे हुए चित्तसे गीतोंके प्रभेद रूपी कमलके फूलोंकी मालाको श्रीकिशोरीजीको अर्पण की, जिसके धारण कराने पर ये मृदुमुस्कान वाली कमलमुखी श्रीकिशोरी जी उदय कालके सूर्य समान मुखवाली हो विशेष सुशोभित हुईं ॥३२॥

पश्चात् महाभाग्यशाली श्रीभगवान् विष्णुने उठकर इन श्री (किशोरी) जीको वेद-तन्तु-मय वस्त्र (चादर) अर्पण किया और श्रीलक्ष्मीजीने वैभव व शोभारूपी मणियोंकी माला इन श्री (किशोरी) जीको अर्पण की ॥३३॥

भगवान् श्रीसदाशिवजीने नृत्यके प्रभेदरूपी कमलोंसे सुशोभित हरे प्रकाश वाले हारको और देवी श्रीउमाजीने भी मुदित हो श्रीकिशोरीजीको नित्य नवीन रहने वाले वस्त्रोंको परम आदर–पूर्वक समर्पण किया ॥३४॥ भगवान् सूर्यने सूर्यकान्तमणि माला और श्रीचन्द्रदेवजीने चन्द्रकान्तमणिकी माला श्रीकिशोरीजीको प्रेमपूर्वक अर्पण की ॥३५॥

कामधेनु गौने अपना सुधा (अमृत) के समान गुणकारी तथा स्वादिष्ट दुग्धसे युक्त स्तन श्रीकिशोरीजीके मुखमें दिया और वारिमणिकी माला श्रीवरुणजीने समर्पण की ॥३६॥

हे प्यारे ! कहाँ तक कहा जाय ? उस उत्सवमें जो-जो पधारे थे, उन सभीने अपनी-अपनी योग्यतानुसार श्रीकिशोरीजीकी सेवामें सप्रेम भेंट समर्पण की। पुनः छट्ठीका उत्सव देखने लगे ३७

श्रीसीरध्वजजी महाराजने आनन्दित होकर उस पवित्र उत्सवमें ब्राह्मणों को दान देना प्रारम्भ किया ॥३८॥ जिसे देखकर सभीके हृदयमें यह अनिवार्य भय उत्पन्न हो गया कि श्रीविदेहजी महाराज इस समय निःसन्देह विदेह अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं। अतः इस समय इन्हें अपने परायेका कुछभी भान नहीं है ॥३९॥

द्रव्यप्रदानं तु यदैव कर्तुं समुद्यतो राजमणिस्तदानीम् ।
भिया समादाय रमां रमेशः क्षीरोदधिं प्राविशदाशु देवः ॥४०॥

गजप्रदानं समुदीक्ष्य शक्रस्त्रिविष्टपं शीघ्रतया विवेश ।
सैरावतोऽसौ सुरलोकगोप्ता प्रशंसयंश्चापि मुहुर्मुहुस्तम् ॥४१॥

गौरीपतिर्वीक्ष्य गवां प्रदानं कैलाशशृङ्गं सवृषो विवेश ।
दानं समालोक्य विहङ्गमानां ब्रह्मा सहंसोऽगमदात्मधाम ॥४२॥

कोशप्रदानं समुदीक्ष्य तस्याविशत्कुबेरो ह्यलकापुरीं स्वाम् ।
अस्याः क्षमां वीक्ष्य धराऽचलाऽभून्द्विसञ्ज्ञयाऽद्यापि न स प्रबुध्यते ॥४३॥

कदापि यह्यैव तु याति सञ्ज्ञां स्मृत्वा क्षमां सा पुनरात्मजायाः ।
विगाढ़भावेन विकम्पते च तदेव भूकम्प इहोच्यते वै ॥४४॥

अस्याः शरीराङ्गरुचा विलज्जिता सौदामिनीमामभिवीक्ष्य मैथिलीम् ।
संस्थीयतेऽद्यापि तया न वै क्षणं स्वमानगुप्त्यै चपलाभिधानया ॥४५॥

अतः जिस समय उन राजशिरोमणिने द्रव्यका दान प्रारम्भ किया, उसी समय श्रीलक्ष्मीजी के दान भयसे श्रीलक्ष्मीनाथजी श्रीलक्ष्मीजीको लेकर क्षीरसागरमें शीघ्र प्रवेश कर गये ॥४०॥

हाथियोंका दान आरम्भ होने पर देवलोककी रक्षा करने वाले इन्द्रदेव अपने ऐरावत हाथीके दान भयसे, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रशंसा करते हुये उसके सहित अतिशीघ्र देवलोकमें प्रविष्ट हो गये ॥४१॥

भगवान् गौरीपति, श्रीसदाशिवजी गौओंका दान प्रारम्भ किये जाते देखकर अपने वृषभ दान की आशङ्कासे नन्दी सहित उसी समय कैलाश शिखर पर चले गये और पक्षियोंका दान होते देखकर, अपने हंसके दान भयसे हंस समेत तत्क्षण श्रीब्रह्माजी ब्रह्मलोक चले गये ॥४२॥

श्रीमिथिलेशजी-महाराजको कोष (खजाने) का दान करते हुये देखकर कुबेरने अपने कोष के दान भयसे अलका पुरीमें प्रवेश किया, श्रीकिशोरीजीकी क्षमाको देखकर पृथिवी मूर्छा वश अचल हो गयीं, जो आज तक सावधान नहीं हो पाती हैं ॥४३॥

और कभी जब सावधानताको प्राप्त होती हैं, अपनी श्रीललीजीकी क्षमाको स्मरण करके वह पुनः अत्यन्त आनन्दसे कँपने लगती हैं उसीको लोकमें भूकम्प कहा जाता है ॥४४॥

इन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूका दर्शन करके इनके श्रीअङ्गकी कान्तिसे विजली लज्जित हो गयी अतः वह अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये अभीतक क्षण मात्र भी स्थिर नहीं होती, इसी कारण उसका एक नाम चपला भी पड़ गया ॥४५॥
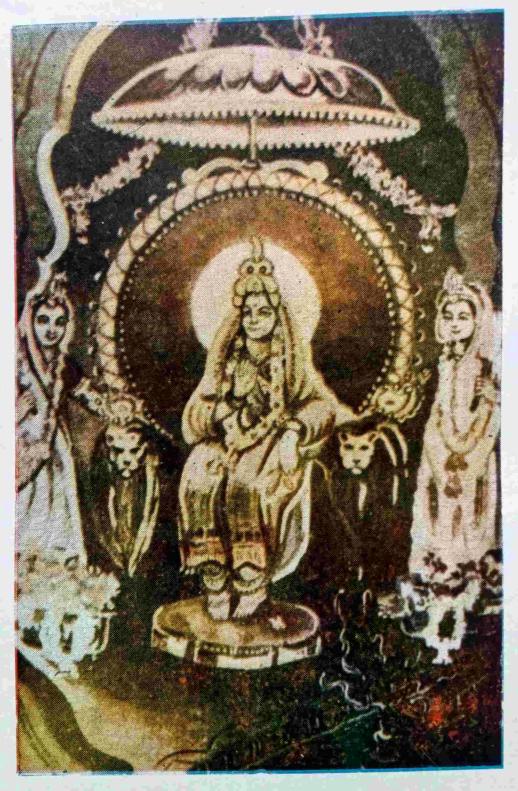
अघटित-घटना-पटीयसी वात्सल्य कारुण्यसिन्धु जगज्जननी
सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी

सुधाकरो वीक्ष्य नखावलिप्रभां श्रीस्वामिनीश्रीचरणारविन्दयोः ।
हतात्मदर्पस्तु स चिन्तया तया क्षयं रुजं प्राप्य कलाक्षयोऽभवत् ॥४६॥

नखाग्ररूपेण हरोरुभाले निजां स्थितिं प्राप्य पुनः प्रहृष्टः ।
मेनेऽक्षिसाफल्यमवेक्ष्य कामं माधुर्यमस्याः परमाद्भुतं तत् ॥४७॥

स्रग्वस्त्रभूषासमलङ्कृतानां प्रारब्धमुद्भोजनमेव यर्हि ।
देवैः सुलुब्धैर्नररूपमेत्य कृतं समं तैरमृताशनं तत् ॥४८॥

शंसन्त एते किल भाग्यगौरवं स्वं स्वं कृपाजं दुहितुर्धरापतेः ।
आनन्दमापुस्त्रिदशा यमक्षयं शक्ष्यन्ति तेषां हृदयानि वेदितुम् ॥४९॥

हरोऽधरोच्छिष्टमथैत्य विह्वलः कथञ्चिदस्या भगवांस्त्रिलोचनः ।
ननर्त चोन्मत्त इवान्तकान्तको दृग्गोचरोऽसौ प्रिय ! सर्वदेहिनाम् ॥५०॥

तस्मात्तु सर्वे चकिता इवाभवन् भक्त्या प्रणेमुः पुनरम्बिकापतिम् ।
नमत्सु तेषु प्रयताञ्जलीष्वसौ तिरोदधे लब्धतनुस्मृतिर्द्रुतम् ॥५१॥

श्रीस्वामिनीजूके श्रीचरणकमलोंकी नख पंक्तिके प्रकाशका दर्शन करके चन्द्रदेवका भी अभिमान नष्ट हो गया, तथापि मान हानिकी महती चिन्तासे क्षय रोग को पाकर वह अपना "कलाक्षय" नाम रखवा लिये ॥४६॥

किन्तु पुनः श्रीकिशोरीजीके नखके अग्र भागके आकारमें भगवान् सदाशिवजीके विशाल भालमें अपनी स्थिति पाकर श्रीकिशोरीजीके उस परम आश्चर्यमय माधुर्यका इच्छानुसार दर्शन करके वह अपने नेत्रोंको सफल मानते हुये बहुत हर्षित हुये ॥४७॥

वस्त्र-भूषण मालाओंसे विभूषित सभी लोगोंका जब भोजन प्रारम्भ हुआ तब लोभी देवगण मनुष्यरूप धारण करके उनके साथ ही अमृतके समान स्वादिष्ट भोजन करने लगे ॥४८॥

पुनः श्रीकिशोरीजीकी कृपालब्ध अपने २ भाग्यकी गुरुताकी प्रशंसा करते हुये वे देव जिस सुखको प्राप्त हुये उसे उनके हृदय ही जान सकते हैं ॥४९॥

हे प्यारे ! भक्त दुख हारी त्रिलोचन सदाशिव भगवान् किसी प्रकार श्रीकिशोरीजीका अधरोच्छिष्ट प्रसाद पाकर विह्वल होगये, अतः कालके भी वे काल उन्मत्त (पागल) के समान अपने प्रधानरूपसे ही सभी प्राणियोंके सामने नृत्य करने लगे ॥५०॥ अतः आश्चर्य युक्त होकर सबके सब श्रद्धा प्रेम-पूर्वक श्रीपार्वतीवल्लभजीको प्रणाम करने लगे । उन सभीके हाथ जोड़कर प्रणाम करते ही भगवान् शिवजी सावधान हो तत्क्षण अन्तर्हित हो गये ॥५१॥

ततः समासाद्य सुभोजनान्ते ताम्बूलवीटीं परमादरेण ।
श्रीमौक्तिकागारगता विरेजुस्त्वां सर्वमध्ये सनृपं निवेश्य ॥५२॥
राजा परानन्दनिमग्नचित्तः श्रीमौक्तिकागारमनुप्रविश्य ।
नृपोपविष्टं ह्यनुजैः परीतं त्वामीक्ष्य कामं कृतकृत्य आस ॥५३॥
पुनस्तु सत्कारविधिं च शेषं विधाय भक्त्या समुपस्थितानाम् ।
सम्प्रार्थितः प्रीतियुतैश्च तेषां विसर्जनं चारुयशाश्चकार ॥५४॥
सहानुजैस्त्वामुरसा निगूह्य मुहुर्मुहुस्तुल्यवयः स्वरूपैः ।
आघ्रातभालो भवतां विदेहो बाष्पेक्षणस्तूर्विपतेर्विसृष्टः ॥५५॥
विवेश हृष्टो भवनं स्वकीयं यत्रेयमम्बाङ्कविभूषणाऽऽसीत् ।
विप्रर्षिभूपादय एवमेव स्वं स्वं निवासं मुदिताश्च जग्मुः ॥५६॥

सुन्दर भोजनके बाद परम आदर पूर्वक पानका बीरा पाकर उपस्थित सभी लोग मौक्तिकागार (मोतीमहल) में प्राप्त हो श्रीचक्रवर्तीजीके सहित आपको सबके मध्यमें विराजमान करके सुशोभित हुये ॥५२॥

परम आनन्दमें डूबे चित्त, श्रीमिथिलेशजी महाराज मौक्तिकागारमें जाकर श्रीदशरथजी महाराजके पास अपने भाइयोंके सहित बैठे हुये आपका इच्छा भर दर्शन करके, कृतकृत्य होगये ५३

पुनः उपस्थित लोगोंका शेष सत्कार प्रेमपूर्वक पूरा करके, सभी प्रेमियोंके प्रार्थना करनेपर सुन्दर यशसे युक्त श्रीमिथिलेशजी महाराजने, उन्हें विदा किया ॥५४॥

अवस्था और रूपमें तुल्य, भाइयोंके सहित आपको हृदयसे लगाकर तथा मस्तक सूँघकर श्रीविदेहजी महाराजके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे लबालब भर गये। पुनः श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके द्वारा विदा किये हुये वे ॥५५॥ अपने भवनमें प्रवेश किये, जहाँ पर श्रीअम्बाजीकी गोदकी भूषण स्वरूपा ये श्रीकिशोरीजी विराजमान थीं। इसी प्रकार वे सभी ब्राह्मण ऋषि, भूपगण आनन्द-पूर्वक अपने अपने निवास स्थानको चले गये ॥५६॥

इति चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे दशमो विश्रामः ॥१०॥

अथ पञ्चत्रिंशतितमो ध्यायः ।

श्रीचन्द्रकला जन्म तथा उनकी अपूर्व शिशु भाव लीला ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

वैशाखस्य चतुर्दश्यां चन्द्रभानुनिवेशने । जज्ञे चन्द्रकला नाम्नी पुत्री परमसुन्दरी ॥१॥

न च सोन्मीलयामास लोचने स्वे कथञ्चन। तदाऽऽसीन्महती चिन्ता किमर्थमिति वीक्ष्य ताम् ॥२॥

शतानन्दो महातेजा ध्यानयोगेन योगिराट् । अनुभूतं तदा भावं व्यञ्जयामास वै शिशोः ॥३॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

सर्वेश्वरी महाभाग ! यज्ञवेदिसमुद्भवा । तस्याः सहचरीयं ते समुत्पन्ना निकेतने ॥४॥

तदादिदर्शनं तस्या इयं राजंश्चिकीर्षति । तदुच्छिष्टपयःपानं हेतुरन्यो न विद्यते ॥५॥

महाराज्ञ्याः समाह्वानमतः कार्यमिह त्वया । शोभिताया धरापुत्र्या सच्चिदानन्दरूपया ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाज्ञापितः श्रीमान् गुरुणा तत्त्वदर्शिना । चन्द्रभानुस्तथेत्युक्तो नृपागारमुपामगमत् ॥७॥

तत्र दृष्ट्वा समासीनं सुप्रसन्नेन्द्रियव्रजम् । मिथिलानायकं भक्त्या प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥८॥

वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको श्रीचन्द्रभानु महाराजके महलमें श्रीचन्द्रकला नामकी परमसुन्दरी पुत्रीने जन्म लिया ॥१॥ किन्तु उसने किसी प्रकार अपने नेत्र नहीं खोले ऐसा देखकर बड़ी भारी चिन्ता उदय हुई कि यह आँखे क्यों नहीं खोलती ? ॥२॥

महातेजस्वी योगिराज श्रीशतानन्दजी-महाराज तब ध्यान योगके द्वारा शिशुका अनुभव किया हुआ भाव प्रकट करते बोले– ॥३॥ हे महाभाग्यशाली ! श्रीसर्वेश्वरीजी यज्ञवेदीसे प्रकट हुई हैं, उन्हीं की इस सहचरीने आपके भवनमें जन्म लिया है ॥४॥

हे राजन्! इसलिए यह प्रथम दर्शन उन्हीं श्रीसर्वेश्वरीजूका करना चाहती है और उन्हींका उच्छिष्ट(प्रसादी किया हुआ)दूध पीनेकी इच्छा कर रही है इसी भावसे यह न आँख खोलती है और न दूध ही पीती है, इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं है ॥५॥

अत एव आपको सत् चित्, आनन्द स्वरूपा भूमिनन्दिनीजूसे सुशोभित श्रीसुनयना महारानी-जीको अपने महलमें बुलाना चाहिए ॥६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं हे प्यारे ! इस प्रकार तत्त्वदर्शी श्रीगुरुदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीमान् चन्द्रभानुजी महाराज उनसे "ऐसा ही होगा" कहकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें गये ॥७॥ वहाँ प्रसन्न इन्द्रिय गणसे युक्त, श्रीमिथिलेशजी महाराजको विराजमान देखकर, उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया ॥८॥

आतुरं तमभिज्ञाय सादरं विनयान्वितम् । पप्रच्छ कुशलं राजा स तदुत्तरमब्रवीत् ॥९॥
अद्य मेऽन्तः पुरे जाता पुत्री परमसुन्दरी । नोन्मीलयति सा नेत्रे गतचेष्टेव दृश्यते ॥१०॥
शतानन्दस्तु भगवानब्रवीदिति मे वचः । आनीयतां महाराज्ञी त्वयाऽयोनिजयाऽन्विता ॥११॥
यावन्नागमनं तस्या महाराज्ञ्या भवेदिह । न तावत्ते सुता नेत्रे राजन्नुन्मीलयिष्यति ॥१२॥
एवमुक्तस्तु वै तेन शतानन्देन धीमता । आगतोऽहं तदाख्यातुमातुरेणान्तरात्मना ॥१३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

चन्द्रभानूदितं श्रुत्वा महाराज्यै व्यसूचयत् । सकलं तत्तु वृत्तान्तं सखीमाहूय दक्षिकाम् ॥१४॥
समाख्यातं दक्षिकया समाचारं निशम्य सा । महाराज्ञी सुनयना प्रससाद भृशं तदा ॥१५॥
अथोवाच सखीं वाच्यश्चन्द्रभानुस्त्वयेत्यसौ । गम्यतां भवताऽऽगारं शीघ्रं राज्ञ्यागमिष्यति ॥१६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता तया प्रोक्तं सखी सा चन्द्रभानवे । श्रावयामास वचनं प्रह्वी मधुरया गिरा ॥१७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज विनयसे युक्त श्रीचन्द्रभानुजीको व्याकुल जानकर आदर-पूर्वक उनसे कुशल समाचार पूछे, श्रीचन्द्रभानुजी बोले ॥९॥

हे राजन् ! आज मेरे अन्तःपुरमें परमसुन्दरी एक ललीका जन्म हुआ है किन्तु वह नेत्र नहीं खोलती, चेष्टा रहित सी दिखायी दे रही है ॥१०॥

भगवान् श्रीशतानन्दजी महाराजने मुझे श्रीअयोनिजाजूके सहित श्रीमहारानीजीको अपने महल ले आने की आज्ञा प्रदानकी है ॥११॥

उन्होंने कहा है, जब तक महारानीजीका शुभागमन यहाँ नहीं होगा, हे राजन् ! तब तक आपकी पुत्री अपने नेत्रोंको नहीं खोलेगी ॥१२॥

बुद्धिमान् श्रीशतानन्दजी महाराजने मुझसे इस प्रकार कहा है, मैं उसीको निवेदन करनेके लिये व्याकुल हृदयसे आपके पास आया हूँ ॥१३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीचन्द्रभानुजीका कहा हुआ समाचार सुनकर पिताजीने दक्षिका सखीको बुलाकर सारा वृत्तान्त श्रीसुनयना अम्बाजीको श्रवण कराया । उस शुभ समाचारको सुनकर श्रीसुनयना महारानीजी बड़ी प्रसन्न हुईं ॥१४॥१५॥

सखीसे बोलीं:—तुम चन्द्रभानुजीसे कह दो कि, आप अपने महल पधारें श्रीमहारानीजी आपके यहाँ शीघ्र ही पधार रही हैं ॥१६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर उस सखीने विनम्र होकर उनके कहे हुये वचनोंको, मधुरवाणी द्वारा श्रीचन्द्रभानुजी महाराजको श्रवण कराया ॥१७॥

ततो भूपतिना साकं चन्द्रभानुर्महामनाः । आजगामालयं तेन नागयानेन मन्त्रिभिः ॥१८॥
ददर्श पुत्रिकां तस्य विदेहकुलभूषणम् । महामाधुर्यसम्पन्नां मीलिताक्षीं मनोहराम् ॥१९॥
आजगाम तदा तत्र राज्ञी सुनयना शुचिः । सेव्यमाना वयस्याभिर्विधायोत्सङ्गगां सुताम् ॥२०॥
तां तु सर्वा नमस्कृत्य स्वागतेनाभिनन्दिताम् । सख्यश्चन्द्रप्रभायाश्च बभूवुर्मुदिताननाः ॥२१॥
चकार सत्कृतिं तस्यश्चन्द्रभानुप्रियोचिताम् । तां प्रणम्योर्विजां वीक्ष्य जगाम कृतकृत्यताम् ॥२२॥
ततः सा दर्शयामास तनयां मीलितेक्षणाम् । चन्द्रप्रभा महाराज्ञ्यै साक्षाल्लक्ष्मीस्वरूपिणीम् ।२३॥
तामुदीक्ष्याङ्कतो मातुर्नतदेहा धरासुता । पस्पर्श पाणिपद्मेन शीतलेन मृदुस्मिता ॥२४॥
तयाऽयोनिजया स्पृष्टा संप्रहृष्टतनूरुहा । चन्द्रभानुसुता सीतां दृष्ट्वाऽभून्नियतेक्षणा ॥२५॥
आरुरुक्षुर्महाराज्ञ्या अथोत्सङ्गमदृश्यत । सखीभिर्लोकयन्तीभिः पश्यन्ती भूमिजाननम् ॥२६॥
तत्समालोक्य ताःसर्वाश्चेष्टितं चकिताः स्थिताः।भूषिताङ्ग्यो विशालाक्ष्यः स्मयमानशुभाननाः।२७।

उसके बाद महामना श्रीचन्द्रभानुजी महाराज मन्त्रियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ गजयान द्वारा अपने महलको गये ॥१८॥

विदेहकुलभूषण श्रीमिथिलेशजी–महाराजने श्रीचन्द्रभानुजीकी महामाधुर्यगुण सम्पन्ना मनोहर पुत्रीको अवलोकन किया जिसकी आँखें बन्द थी ॥१९॥

उसी समय भीतर-बाहरसे परम पवित्र, श्रीसुनयना महारानीजी श्रीकिशोरीजीको अपनी गोदमें लेकर सखियोंके द्वारा छत्र चामर आदिसे सेवित होती हुई, वहाँ आ गयीं ॥२०॥

स्वागतके द्वारा श्रीसुनयना अम्बाजीका अभिनन्दन करके, श्रीचन्द्रप्रभा अम्बाजीकी सभी सखियाँ उन्हें प्रणाम करके प्रसन्नमुखी हो गयीं ॥२१॥

श्रीचन्द्रप्रभाअम्बाजीने प्रणाम करके श्रीसुनयनाअम्बाजीका उचित सत्कार किया, पुनः श्रीअवनिकुमारीजीका दर्शन करके वे कृतकृत्य हो गयीं ॥२२॥

तत्पश्चात् श्रीचन्द्रप्रभाअम्बाजीने श्रीसुनयनाअम्बाजीको लक्ष्मीजीके समान रूपवती बन्द आँखों वाली अपनी पुत्रीको दिखलाया ॥२३॥

श्रीकिशोरीजीने अम्बाजीकी गोदसे शरीरको नीचे झुकाकर चन्द्रकलाजीको देखकर मृदु-मुस्कराती हुई अपने शीतल कर कमल द्वारा उनका स्पर्श किया ॥२४॥

अयोनिजा श्रीकिशोरीजीका कर स्पर्श पाते ही श्रीचन्द्रकलाजीके रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठे और दर्शन करके नेत्र एकटक रह गए अर्थात् पलक गिराना भी छोड़ दियें ॥२५॥

इसके बाद चन्द्रप्रभा अम्बाजीकी सखियोंने देखा कि श्रीचन्द्रकलाजी श्रीकिशोरीजीके मुखारविन्दका दर्शन करती हुई श्रीसुनयना महारानीजीकी गोदमें चढ़नेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रही हैं ॥२६॥ वे शृङ्गार भूषित अङ्गवाली सभी विशाल-लोचना सखियाँ भली-भाँति कन्याकी उस चेष्टा को देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो मुस्कराने लगीं ॥२७॥

महाराज्ञी सुनयना तामुत्थाप्य मुदान्विता । स्वाङ्कमारोपयामास मैथिल्या समलङ्कृतम् ॥२८॥
वामेतरस्तनं तस्या ददौ चन्द्रनिभानने । तन्न जग्राह वक्त्रेण करेणैव न्यवारयत् ॥२९॥
मैथिलीं दक्षिणाङ्के च कृत्वा तां दक्षिणेतरे । आशुपीतं स्तनं तस्याः पुनः प्रादान्मुखाम्बुजे ॥३०॥
तत्प्रहृष्टमुखी दोर्भ्यां गृहीत्वोत्कण्ठिताऽपिबत् । पश्यन्तीनां च नारीणां वर्द्धयन्ती कुतूहलम् ॥३१॥
ततश्चन्द्रप्रभा दोर्भ्यां मैथिलीं मातुरङ्कतः । गृहीत्वा स्थापयामास निजोत्सङ्गे समुत्सुका ॥३२॥
वस्त्रमन्तरतः कृत्वा पयः पानमकारयत् । पश्यन्ती तन्मुखं मुग्धा शरच्चन्द्रमनोहरम् ॥३३॥
सुताभावपरीक्षार्थमङ्कमारोप्य तां पुनः । प्रादान्मुखे स्तनं तस्याः पश्यन्तीनां मृगीदृशाम् ॥३४॥
सा पपौ परया प्रीत्या स्तन्यं चन्द्रनिभानना । तद्विलोक्य गता चिन्ता पुरोत्पन्ना बलीयसी ॥३५॥
महानन्दोत्सवो जातश्चन्द्रभानोर्निवेशने । पिबन्त्यां स्तन्यमौरस्यां सुतायां मातुरात्मदः ॥३६॥
सत्कृता विधिना राज्ञी विनयेन तया मुदा । जगाम स्वालयं भक्त्या वन्दिता चन्द्रभानुना ॥३७॥

श्रीसुनयना अम्बाजीने हर्ष पूर्वक श्रीचन्द्रकलाजी को उठाकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके द्वारा सुशोभित अपनी गोदमें ले लिया ॥२८॥ पुनः अम्बाजीने उनके चन्द्रमाके तुल्य आह्लाद कारक मुखारविन्दमें पीनेके लिये अपना दाहिना स्तन दिया किन्तु श्रीचन्द्रकलाजीने उसे अपने मुखसे नहीं ग्रहण किया, बल्कि हाथसे ही हटा दिया ॥२९॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीने श्रीकिशोरीजीको अपनी दाहिनी गोदमें और चन्द्रकलाजीको बाईं गोदमें लेकर श्रीकिशोरीजीका तुरन्तका पिया हुआ स्तन, उनके मुखारविन्दमें दिया ॥३०॥

उस स्तनको बड़ी प्रसन्न मुखी होकर श्रीचन्द्रकलाजी दोनों हाथोंसे पकड़ करके, सभी देखती हुई सखियोंको कौतूहल (आश्चर्य) बढ़ाती हुई, उत्कण्ठा पूर्वक पीने लगीं ॥३१॥

तब श्रीचन्द्रप्रभा अम्बाजीने उत्सुक होकर अपने दोनों हाथोंसे श्रीमिथिलेशदुलारीजूको श्रीसुनयना अम्बाजीकी गोदसे अपनी गोदमें लेकर बैठा लिया ॥३२॥

पुनः वे शरत् ऋतुके पूर्णचन्द्रके मनको भी हरण करने वाले श्रीकिशोरीजीके मुखारविन्दका दर्शन करती हुई मुग्ध हो, वस्त्र ओट करके उन्हें अपना स्तन पान कराने लगीं ॥३३॥

पश्चात् अपनी पुत्रीके भावकी परीक्षाके लिये उसे अपनी गोदमें लेकर मृगलोचना सखियोंके देखते हुये उन्होंने अपना स्तन उसके मुखमें दिया ॥३४॥

वे चन्द्रके समान मुखवाली श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीकिशोरीजीके द्वारा उच्छिष्ट किया हुआ अपनी अम्बाजीका भी प्रेम पूर्वक स्तन पान करने लगी, यह देखकर पूर्वकी उत्पन्न, अत्यन्त बलवती चिन्ता निवृत्त हो गयी ॥३५॥ अपनी औरसी पुत्री(श्रीचन्द्रकलाजी) के स्तनपान करने पर श्रीचन्द्रभानुजी महाराजके महलमें आत्मदान देनेवाला महान् आनन्दोत्सव होने लगा ॥३६॥

पुनः श्रीचन्द्रप्रभा अम्बाजीके द्वारा सविध विनयपूर्वक सत्कृत होकर तथा श्रीचन्द्रभानु महाराजका प्रणाम स्वीकार करके श्रीसुनयना अम्बाजी अपने महलको विदा हुईं ॥३७॥

लग्ने धने चन्द्रदिनेऽथ चित्रा-भे माधवे मासि च पूर्णिमायाम् ।
श्रीचारुशीलाऽम्बुजपत्रनेत्र ! जाता ततः शत्रुजितो मनोज्ञा ॥३८॥

श्रीलक्ष्मणा भौमदिने प्रजाता ज्येष्ठेऽसिते भे श्रवणे च मेषे ।
लग्ने यशः शालिन इन्दुवक्त्रा तिथौ वसौ शोभनलक्षणाढ्या ॥३९॥

लग्ने च सिंहे शशिवासरेऽथ हेमा सुताऽभूदरिमर्दनस्य ।
विद्याविनीता प्रिय ! रेवतीभे आषाढशुक्लानवमीतिथौ च ॥४०॥

क्षेमा प्रजाता रिपुतापनस्य पुत्री शुभे श्रावणिके सुमासे ।
वसौ तिथौ शुक्लदले विशाखाभे मीनलग्ने विधुवासरे च ॥४१॥

भाद्रेऽसिते भानुदिने नवम्यां रोहा वरादिः क्षितिमङ्गलस्य ।
जज्ञे सुता वल्लभ ! मेषलग्ने सा पूर्वभाद्रस्य पदे शुभे भे ॥४२॥

श्रीपद्मगन्धाऽऽश्विनशुक्लपक्षे तिथावृषौ प्रेष्ठ ! बलाकरस्य ।
जज्ञे गुरौ कामद ! मीनलग्नेऽसौ पूर्वभाद्रस्य पदे शुभर्क्षे ॥४३॥

लग्ने वृषे चन्द्रदिने नवम्यां सा मार्गशीर्षे सितपक्षके च ।
प्रतापनस्य प्रिय ! सिद्धयोगे पुष्ये शुभे भे सुभगा प्रजज्ञे ॥४४॥

हे कमलदललोचन ! वैशाखकी पूर्णिमा तिथि, चित्रा नक्षत्र तथा सोमवारके दिन, धनुलग्नमें श्रीशत्रुजित् महाराजसे मनोहरा पुत्री श्रीचारुशीलाजीने जन्म लिया ॥३८॥

ज्येष्ठकी कृष्णा अष्टमी तिथि मङ्गलके दिन, श्रवण नक्षत्र और मेषलग्नमें श्रीयशःशालीजीसे चन्द्रमाके समान मुखवाली शुभ लक्षणोंसे युक्ता, श्रीलक्ष्मणाजीने जन्म ग्रहण किया ॥३९॥

हे प्यारे! आषाढ़शुक्ला नवमीको सिंह लग्न, सोमवारके दिन, रेवती नक्षत्रमें श्रीअरिमर्दनजी महाराजसे विद्याविनीता, श्रीहेमाजीका जन्म हुआ ॥४०॥

श्रावण मासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको विशाखा नक्षत्र, मीनलग्न, चन्द्रवारके दिन श्रीरिपुतापनजी महाराजकी पुत्री श्रीक्षेमाजीने जन्म लिया ॥४१॥

हे वल्लभजू ! भादों कृष्णानवमी रविवारके दिन पूर्व भाद्रपद नक्षत्र और मेषलग्नमें श्री महीमङ्गलजी महाराजके यहाँ श्रीवरारोहाजीने जन्म लिया ॥४२॥

हे प्रेष्ठ ! हे कामद ! आश्विनशुक्ला सप्तमी तिथिमें मीनलग्न पूर्वभाद्रपद नक्षत्र और बृहस्पतिवारको श्रीबलाकरजीके यहाँ श्रीपद्मगन्धाजीका जन्म हुआ ॥४३॥

हे प्यारे ! अगहनशुक्ला नवमी तिथिको शुभ पुष्य नक्षत्र वृषलग्न और सोमवारके दिन, सिद्धयोगमें श्रीप्रतापनजी महाराजके महलमें सुभगाजीने जन्म लिया ॥४४॥

प्रेमास्पदा त्वपत्यानामविच्छिन्नतया परा ।
बभूव मैथिली नित्यं जन्मतो निमिवंशिनाम् ॥४५॥
मैथिलीजन्मवारे हि श्रीकुशध्वजवेश्मनि ।
माण्डवीसुनिधी जातौ श्रुतिकीर्त्तिनिधानकौ ॥४६॥

दारात्मजाऽमेयविभूतियुक्तो योगेश्वरो ज्ञानविरागराशिः ।
अशेषसिद्धीशपदाधिकारी भूत्वाऽपि मुक्तिर्न कृपां विनाऽस्याः ॥४७॥

जन्मसे ही श्रीमिथिलेशदुलारीजी सभी निमिवंशी पुत्री और पुत्रोंकी तैल धारावत् अटूट, नित्य परम प्रेमास्पदा बन गयी ॥४५॥

श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके जन्मके ही दिन, श्रीकुशध्वज महाराजके महलमें श्रीमाण्डवी व सुनिधिजी और श्रीश्रुतिकीर्त्ति तथा निधानकजी बहिन भाइयोंका जन्म हुआ ॥४६॥

स्त्री, पुत्र आदि अनन्त ऐश्वर्यंसे युक्त, ज्ञान वैराग्यका राशिस्वरूप, योगेश्वर, सम्पूर्ण सिद्धियों के स्वामी पदका अधिकारी, कोई भले ही क्यों न हो जावे, किन्तु बिना इन श्रीकिशोरीजीकी कृपा हुए कभी मुक्ति नहीं मिल सकती ॥४७॥

इति पञ्चत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ षट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीचन्द्रकलाजीको युगल सरकार श्रीसीतारामजीसे सर्वेश्वरी पद प्राप्ति लीला प्रसंग ।

श्रीसूत उवाच ।

इत्थं चन्द्रकलायाश्च भक्तिभावं निशम्य सा । कात्यायनी सपुलकं याज्ञवल्क्यं वचोऽब्रवीत् ॥१॥
सर्वेश्वरीपदं लब्धं तया प्रोक्तं त्वयैकदा । तद्रहस्यमुपाख्याहि भगवन् ! मे दयापरः ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

साधु पृष्ट त्वया देवि ! रहस्यं परमाद्भुतम् । भवत्याः श्रद्धया तुष्टो गुह्यं ते तद्वदाम्यहम् ॥३॥
कैलाशशिखरे रम्ये समासीना शिवैकदा । विरतध्यानयोगस्य शिवस्य मुखपङ्कजात् ॥४॥
सर्वेश्वरी ! चन्द्रकले ! प्रसीदेति शुभं वचः । समाश्रुत्य मुहुर्देवी विस्मयं परमं गता ॥५॥
अपृच्छत्प्रणता देवं पार्वती पतिदेवता । सर्वेश्वरी चन्द्रकला किमर्थं गीयते त्वया ॥६॥
रहस्यं यदि वा गुह्यं किमप्यत्र भवेत्किल । समाख्यातुं हि मे नाथ ! तदिदानीं कृपां कुरु ॥७॥

श्रीशिव उवाच ।

यथा भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणैर्भ्रातृभिस्त्रिभिः । पूर्णं परात्परं ब्रह्म श्रीरामः कथ्यते बुधैः ॥८॥
लक्ष्मणासुभगाचन्द्रकलाभिः स्वसृभिस्त्रिभिः । पूर्णं परात्परं ब्रह्म श्रीसीताऽपि तथोच्यते ॥९॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनक आदि महर्षियों ! इस प्रकार श्रीचन्द्रकलाजीके भक्ति-भावको श्रवण करके श्रीकात्यायनीजी श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजसे पुलकयुक्त (गद्गद) वचन बोलीं ॥१॥

हे दयाप्रधान भगवन् ! एक समय आपने कहा था कि, श्रीचन्द्रकलाजीको सर्वेश्वरी पद प्राप्त है, अतः उस पद प्राप्ति रहस्यको आप कथन कीजिये ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे देवि ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, मैं आपकी श्रद्धासे प्रसन्न हूँ, अतः उस परम आश्चर्यमय गुप्त रहस्यको, आपसे वर्णन करता हूँ ॥३॥

एक समय श्रीपार्वतीजी कैलाशके परम सुन्दर शिखरपर विराजमान थीं, उसी समय ध्यान योगसे निवृत्त हुये, भगवान् शिवजीके मुख कमलसे ॥४॥ हे सर्वेश्वरी ! हे श्रीचन्द्रकले ! मुझपर प्रसन्न हों बारम्बार यह शुभ वचन श्रवण करके देवी पार्वती परम आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥५॥

अतः पतिको ही देवता माननेवाली श्रीगिरिराज कुमारीजीने श्रीभोलेनाथजीको प्रणाम करके पूछा—हे नाथ! आप उन श्रीचन्द्रकलाजीको सर्वेश्वरी क्यों कह रहे हैं?॥६॥ हे नाथ! अथवा यदि इस विषयमें कोई छिपाने योग्य ही रहस्य हो, तो भी इस समय आप मुझसे कहने की कृपा करें ॥७॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! जैसे श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघ्न इन तीन भाइयों से युक्त श्रीरामजी सरकारको बुधजन पूर्णपरात्परब्रह्म कहते हैं ॥८॥

उसी प्रकार श्रीलक्ष्मणाजी, सुभगाजी, श्रीचन्द्रकलाजी इन तीनों बहिनोंसे युक्ता, श्रीकिशोरीजी पूर्ण परात्परब्रह्म कहलाती हैं ॥९॥

निर्गुणं तन्निराकरं निरीहं सच्चिदात्मकम् । अखण्डं नित्यमजडं निराधारं निरञ्जनम् ॥१०॥
इत्थं विशेषणीभूतं श्रीसीतारामविग्रहम् । उभयात्मकं चिद्ब्रह्म नित्यानन्दमयं परम् ॥११॥
स्वाश्रितानन्दसिद्धचर्थं विशेषेण निजांशतः । दिव्यरूपां सखीमेकां जनयामास सुन्दरीम् ॥१२॥
तन्नामकरणं प्रीत्या कर्तुमारभतादरात् । उभाभ्यामेव रूपाभ्यां परब्रह्म सनातनम् ॥१३॥
आदौ श्रीरामचन्द्रोऽसौ स्वनाम्नोऽन्तं पदं जगौ । द्वितीयं मैथिली प्राह कलेति पदमुत्तमम् ॥१४॥
पुनर्निवेशयामास स्वकलां शक्तिरूपिणीम् । तस्याममेयरूपायां रामो ह्लादगुणं च सः ॥१५॥
मदीयेति सखी प्रीत्या प्रवदन्तौ प्रणम्य सा । उवाच स्निग्धया वाचा दम्पती हृदयङ्गमौ ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

अहं निष्पक्षभावेन युवयोरेव किङ्करी । आज्ञानुवर्तिनी दासी सखी सेवापरायणा ॥१७॥
युवयोरंशसम्भूता युवाभ्यां प्रकटीकृता । सङ्कल्पविहितानन्तलोकालयभवाप्ययौ ! ॥१८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा तस्यास्तौ सुषमानिधी । ओमित्यूचतुः प्रेम्णा मन्दस्मेरमुखाम्बुजौ ॥१९॥

वह गुणातीत आकार रहित, चेष्टाशून्य, सदा एक रस रहनेवाला, चैतन्यस्वरूप, खण्ड रहित, नित्य, आधार रहित, मायिक विकारोंसे अछूता, पूर्ण परात्पर ब्रह्म ॥१०॥

इस प्रकारके विशेषणोंसे युक्त, श्रीसीताराम युगल मङ्गलमय विग्रहवान् परम, नित्य, आनन्दमय, चिद्ब्रह्मने ॥११॥ विशेषकर अपने आश्रितोंकी आनन्द सिद्धिके लिये अपने अंशसे, दिव्यरूप सम्पन्ना, एक सुन्दर सखी को उत्पन्न किया ॥१२॥

पुनः उन सनातन परब्रह्मने अपने दोनों रूपोंके द्वारा प्रेमपूर्वक आदर सहित उसका नामकरण करना आरम्भ किया ॥१३॥ प्रथम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने नामका अन्तिमपद "चन्द्र" कहा, पुनः श्रीकिशोरीजीने उसे अपनी कला स्वरूपा मानकर द्वितीय उत्तम "कला" उच्चारण करती हुई ॥१४॥ पुनः उस असीम रूपा सखीमें श्रीकिशोरीजीने अपनी शक्तिरूपा कलाको निवेशित किया और श्रीरामजीने अपने आदि गुणको ॥१५॥

तदनन्तर दोनों सरकार प्रेम पूर्वक विवाद करते हुये कहने लगे कि:–, यह सखी तो हमारी है, नहीं यह तो हमारी है, तब वह सखी श्रीचन्द्रकला बड़ी स्निग्धवाणी द्वारा, हृदयमें विराजमान उन दोनों सरकारसे बोली ॥१६॥ हे श्रीयुगल सरकार ! मैं निष्पक्ष भावसे दोनों ही सरकारकी किङ्करी, आज्ञानुसार चलने वाली दासी और सेवापरायणा सखी हूँ ॥१७॥

क्योंकि सङ्कल्पमात्रसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हे श्रीयुगलसरकार! मैं आप दोनों ही सरकारके अंशसे जायमान और आप दोनों सरकारकी ही तो उत्पन्न की हुई हूँ ॥१८॥ भगवान् शिवजी बोले–हे गिरिराज कुमारी ! उस सखीके इस प्रकार कहे वचनोंको सुनकर उन अत्यन्त असीम शोभाकी राशि श्रीयुगल सरकारका मुखारविन्द, मन्द मुस्कानसे युक्त हो गया, अतः वे प्रेमपूर्वक बोले–अरी सखी ! बात तो ऐसी ही है ॥१९॥

तया तयोः सुखाम्भोधितरङ्गवृद्धिसिद्धये। सख्यस्तिस्रो मनोज्ञाङ्गयोः द्रुतमुत्पादिताः शुभाः॥२०॥
तयोर्लक्षणसम्भूता लक्ष्मणेति प्रभाषिता। सौभगांशसमुद्भूता सुभगेति प्रकीर्त्तिता॥२१॥
तयोः शीलांशसम्भूता चारुशीला सखीवरा। एकैकस्याः समुत्पन्नास्तासां सख्यश्च कोटिशः॥२२॥
ता वै हृदयभावज्ञाः प्रेमाम्भोमीनवृत्तिकाः। शशंसतुः प्रियौ वीक्ष्य प्रह्वीं चन्द्रकलां सखीम्॥२३॥

श्रीसीतारामावूचतुः।

चन्द्रा चन्द्रकला ज्येष्ठा पूज्या ध्येयेष्टदा वरा। आचार्यैका ध्यानगम्या सर्वेश्वरी च देशिका॥२४॥
द्वादशैतानि नामानि तव नित्यं पठन्ति ये। त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यान्ति ते परमं पदम्॥२५॥
आवां परमसन्तुष्टावनेनाद्भुतकर्मणा। भृशं चन्द्रकले! विद्धि त्वयि चन्द्रोपमानने!॥२६॥
सखीनामपि सर्वासां प्रधानानामुरीकुरु। आवयोराज्ञयेदानीं मुदा सर्वेश्वरीपदम्॥२७॥
यतस्त्वमेव सर्वासां कारणं प्रथमं स्मृता। संगृहाणावयोर्दत्तमतः सर्वेश्वरीपदम्॥२८॥

उन श्रीयुगल सरकारके सुख सिन्धुकी तरङ्गोंकी वृद्धिके लिये श्रीचन्द्रकलाजीने तत्क्षण तीन मनोहर सखियोंको प्रकट किया ॥२०॥

जो सखी दोनों सरकारके लक्षणोंसे प्रकटकी गयी, उसका नाम श्रीलक्ष्मणाजी और जो दोनों के सुभगताके अंशसे प्रकट हुई, उसका नाम श्रीसुभगाजी तथा जो दोनोंके शीलांशसे प्रकट हुई उनको श्रीचारुशीलाजी कहा गया ॥२१॥ श्रीलक्ष्मणाजी व सुभगाजी तथा श्रीचारुशीलाजीसे एक-एक से, करोड़ २ सखियाँ उत्पन्न हो गयीं ॥२२॥

हृदयके भावको समझनेवाली, प्रेमरूपी जलके लिये मछलीके समान वृत्तिवाली उन प्रकट की हुई सभी सखियोंको अवलोकन करके श्रीयुगल सरकार विनम्रभाव सम्पन्ना श्रीचन्द्रकला सखीजीसे बोले ॥२३॥

श्रीचन्द्राजी, श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीज्येष्ठाजी, श्रीपूज्याजी, श्रीध्येयाजी, श्रीइष्टदाजी, श्रीवराजी, श्रीसर्वेश्वरीजी, श्रीध्यानगम्याजी, श्रीआचार्याजी, श्रीएकाजी, श्रीदेशिकाजी ॥२४॥

आपके इन द्वादश (१२) नामोंको जो नित्य तीनों सन्ध्याओंमें अथवा एक ही सन्ध्यामें पाठ करते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं ॥२५॥

हे चन्द्र समान मुखवाली श्रीचन्द्रकले! इस आश्चर्य जनक कर्त्तव्यसे आप अपने प्रति हम दोनोंको परम प्रसन्न जानिये ॥२६॥ अतः हम दोनोंकी आज्ञासे आप इस समय प्रसन्नता पूर्वक समस्त मुख्य सखियोंका सर्वेश्वरी पद स्वीकार करें क्योंकि सभी सखियोंकी मुख्य कारण आपही हैं, अतः हम दोनोंके दिये हुये, इस सर्वेश्वरी पदको आप सब प्रकारसे ग्रहण कीजिये ॥२७॥२८॥

निर्विकारान्विता बुद्धिरावयोः प्रीतिसाधनम् । नित्यमस्तु गृहाणेदं मुदा सर्वेश्वरीपदम् ॥२९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं दत्त्वा वरं तस्यै नित्यापारसुखाकृती । अन्तरङ्गां तदा लीलां कुर्वन्तौ ययतुर्मुदम् ॥३०॥

तस्यां दृष्ट्वा न सौलभ्यं सर्वेषामिह देहिनाम् । बहिरङ्गां ततो लीलामपि तौ कर्तुमुद्यतौ ॥३१॥

तयोर्ज्ञात्वा मनोभावं द्रुतं चन्द्रकला स्वयम् । बभूव तर्हि भरतो लक्ष्मणा लक्ष्मणोऽभवत् ॥३२॥

ततः कमलपत्राक्षी शत्रुघ्नः सुभगाऽभवत् । सर्वाः सख्योऽभवन्सद्यः पार्षदा हनुमन्मुखाः ॥३३॥

तैस्तु साकं मुदा सर्वैः सीतारामौ सतां गती । बहिरङ्गा शुभां लीलां चक्रतुः कल्मषापहाम् ॥३४॥

इति माधुर्यलीलां तौ प्रीत्या विदधतुर्द्विधा । उक्तैश्वर्यमयी लीला मया पूर्वं हि ते प्रिये ! ॥३५॥

तस्मादप्यखिलैर्जीवैः सीतारामपरायणैः । तयोः प्रसादसिद्ध्यर्थं सेव्या चन्द्रकला सखी ॥३६॥

सर्वेश्वरि ! चन्द्रकले ! प्रसीदेति पुनः पुनः । ममोक्तेरिदमेवास्ति रहस्यं श्रुतिपावनम् ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं प्राप्तं तया देवि! प्रागिघ सर्वेश्वरीपदम् । तस्मादिह स्वप्राधान्यं व्यञ्जितं नवजातया ॥३८॥

आप यह सर्वेश्वरीपद प्रसन्नताके साथ ग्रहण कीजिए । आपकी अभिमान आदिविकारोंसे रहित बुद्धि हम दोनों की सदा प्रसन्नता कारक रहेगी ॥२९॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार नित्य अपार-सुखस्वरूप, वे श्रीयुगलसरकार श्रीचन्द्रकलाजीको विकार रहित बुद्धि पूर्वक सर्वेश्वरी पदका वरदान प्रदान करके अन्तरङ्ग लीला करते हुये, प्रसन्नताको प्राप्त हुये ॥३०॥ परन्तु उस अन्तरङ्ग लीला में सभी प्राणियों की सुलभता न देखकर बाह्य (बाहरी) लीला भी करने को उद्यत हुए ॥३१॥

श्रीयुगल सरकारके इस मनोभावको जानकर श्रीचन्द्रकलाजी तत्क्षण स्वयं श्रीभरतलालजी बन गयीं, और श्रीलक्ष्मणाजी, लषणलालजी हो गयीं ॥३२॥ तत्पश्चात् कमलदललोचना श्रीसुभगाजी, श्रीशत्रुघ्नजी और श्रीचारुशीलादि सभी सखियाँ श्रीहनुमंतलालजी आदि पार्षद बन गयीं ॥३३॥ सन्तोंके परम आधारस्वरूप वे श्रीसीतारामजी, उन सब पार्षदोंसे संयुक्त होकर समस्त पापोंका विनाश करने वाली बहिरङ्ग लीलाको करने लगे ॥३४॥

हे पार्वती ! इस तरह श्रीयुगलसरकार दो प्रकारकी (अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग) लीला करने लगे । उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाका कथन मैं आपसे पूर्व में ही कर चुका हूँ ॥३५॥

इसलिये सभी श्रीसीतारामजीके उपासकोंको श्रीयुगलसरकारकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिये श्रीचन्द्रकला सखीजीकी आराधना करनी आवश्यक है ॥३६॥

हे सर्वेश्वरि ! हे चन्द्रकलेजू ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, इस तरह मेरे बार-बार कहनेका वही श्रवणोंको पवित्र करने वाला, रहस्य था ॥३७॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे देवि! कात्यायनी! इस प्रकार श्रीचन्द्रकलाजीने पूर्वमें ही सर्वेश्वरी पदको प्राप्त किया था अत एव जन्म लेते ही उन्होंने इस लोकमें, अपनी प्रधानता प्रकट कर दी ॥३८॥

श्रीसूत उवाच ।

निशम्य सा हर्षितमानसा कथां बद्धाञ्जलिश्चन्द्रकलां समानता ।
नत्वा मुनिं वक्तुमुदारकीर्त्तिं प्रचोदयामास यशो महीभुवः ॥३६॥

श्रद्धां स दृष्ट्वा महतीं मुनीन्द्रो विदेहजायाः श्रवणाय कीर्त्तेः ।
निजप्रियायास्तपसि स्थितायाः श्रीयाज्ञवल्क्यो मुदितो जगाद ॥४०॥

श्रीसूतजी बोले—हे श्रीशौनकजो! इस कथाको श्रवण करके हर्षको प्राप्त हो श्रीकात्यायनी-जीने अपने दोनों हाथ जोड़कर श्रीचन्द्रकलाजीको प्रणाम किया। पुनः श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज को नमस्कार करके उन्होंने कीर्त्तन द्वारा लौकिक और पारलौकिक सभी सुख प्राप्ति कारक श्रीकिशोरीजीके चरितोंको कथन करनेके लिये उन्हें प्रेरित किया ॥३६॥

तपस्यामें लगी हुई अपनी प्रिया श्रीकात्यायनीजूकी श्रीकिशोरीजीके चरितोंके श्रवण करने की महती श्रद्धाको अवलोकन करके मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज मुदित हो बोले ॥४०॥

इति षट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ।

इति-नवाह्नपारायणे तृतीयो विश्रामः ॥३॥

—❀❀❀—

अथ सप्तत्रिंशतितमोऽध्यायः ।
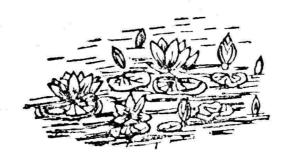
श्रीजनक भवनमें देवर्षि नारद का आगमन तथा उनके द्वारा श्रीकिशोरीजी के अड़तालिस चरण चिह्नों का वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

स्मृत्वाऽऽत्तभूपतनयाद्भुतबालरूपां स्रष्टुः सुतो विमलकीर्त्तिरनल्पतेजाः ।
प्रेमातुरस्त्वरितमेव हि तां दिदृक्षुर्भूपालयं स भगवानृषिराविवेश ॥१॥
दृष्ट्वैव तं तु मिथिलाधिपतिः सुरर्षिं विज्ञातवान् हि सहसा श्रुतलक्षणाभिः ।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनो भुवि सन्निपत्य प्रीत्या ननाम परया महनीयगाथः ॥२॥
आनीय दिव्यनिजसद्मनि रत्नपीठे तुष्टाव चार्च्य मुनिपुङ्गवमासनस्थम् ।
राज्ञी शशाङ्कवदनासमलङ्कृताङ्का प्रेम्णा तदन्तिकमुपेत्य ननाम चाङ्घ्री ॥३॥
पश्चादकारि तमुपेत्य च कान्तिमत्या भक्त्याऽभिवादनविधिर्मुनये शुभाङ्ग्या ।
ते संस्थिते स समुदीक्ष्य नृपेण सार्द्धं चन्द्राननापरमशोभिशुभाङ्क आह ॥४॥

श्रीनारद उवाच ।

धन्योऽसि भूरिमहिमन्मिथिलामहेन्द्र ! किं वर्णयामि तव कीर्त्तिमतोऽत्यगाधाम् ।
लब्धा तु येन तनयेयमुदाररूपा दिव्यानवद्यशुभलक्षणशोभमाना ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! राजपुत्रीका अद्भुत बालरूप धारण की हुई श्रीकिशोरीजीका स्मरण करके ब्रह्माजीके पुत्र, उज्वल कीर्त्ति, महातेजस्वी, ऋषि, भगवान् श्रीनारदजी महाराज प्रेमसे अधीर होकर उनके दर्शनोंके इच्छुक हो तुरन्त श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें पधारे ॥१॥ प्रशंसनीय कीर्त्तिवाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने दर्शन करके श्रवण किए हुए चिह्नों को देखकर देवर्षि श्रीनारदजीको तुरन्त पहचान लिया अतः प्रेमाश्रु पूर्ण नेत्र हो उन्हें पृथ्वी पर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया ॥२॥

पुनः अपने दिव्य भवनमें लाकर सम्यक् प्रकारसे पूजन करके, सुखपूर्वक विराजमान होजाने पर उन्होंने श्रीनारदजीकी स्तुतिकी, उसी समय चन्द्रमुखी श्रीकिशोरीजीके द्वारा अलंकृत गोदवाली श्रीसुनयना अम्बाजीने पासमें आकर उनके श्रीचरण कमलोंमें प्रणाम किया ॥३॥

तत्पश्चात् मङ्गलमय अङ्गवाली श्रीकान्तिमती अम्बाजीने श्रीनारदजी महाराजके समीपमें आकर श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया । श्रीनारदजी महाराज चन्द्रमुखी श्रीकिशोरीजी व उर्मिलाजीसे सुशोभित गोदवाली श्रीसुनयना अम्बाजी तथा श्रीकान्तिमती अम्बाजीको महाराजके सहित उपस्थित अवलोकन कर बोले ॥४॥ हे बड़ीभारी महिमा वाले ! श्रीमिथिलामहेन्द्रजी ! जिन्होंने सुप्रशंसनीय मङ्गलमय लक्षणोंसे शोभायमाना इस उदाररूपा पुत्रीको प्राप्त किया है वे, आप धन्य हैं अतः आपकी अत्यन्त अथाह कीर्त्तिका मैं क्या वर्णन करूँ ? ॥५॥

दृष्टेन्दिराद्रितनया च सरस्वती च रम्भोर्वशी च दयिता त्रिदशाधिपस्य ।
मूर्त्तिर्हरेर्भगवतः खलु मोहिनी सा कामप्रिया वरुणलोकगताः स्त्रियश्च ॥६॥
सत्यं मयोदितमिदं त्वमवेहि राजन् ! नैतादृशी त्रिभुवने भ्रमता कदाचित् ।
कुत्रापि काऽपि विदुषा चिरजीविनाऽपि दृष्टा श्रुता परमसुन्दररूपयुक्ता ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

देवर्षिमूच इदमेव कृताञ्जलिः स श्रुत्वा तदुक्तममृतोपममुर्विनाथः ।
अस्याः शुभाशुभगुणा भवता कृपालो ! वाच्या निरीक्ष्य सरसीरुहहस्तरेखाः ॥८॥
राज्ञी तदा तमुपसृत्य च सव्यहस्तं तद्दर्शनाय निजहस्तगतं चकार ।
श्रीनारदस्तु भगवान् महतां महात्मा तद्वीक्ष्य पूर्णकुशलो नृपमित्युवाच ॥९॥

श्रीनारद उवाच ।

पूर्वं विलोक्य सुमुखीमृदुलाङ्घ्रिरेखा द्रक्ष्यामि हस्तकमलं पुनरेव कामम् ।
भद्रं हि ते विधिरयं मतिमन्निदानीं वक्ष्यामि ते शुभगुणाञ्छृणु दत्तचित्तः ॥१०॥

मैंने श्रीलक्ष्मीजीका दर्शन किया श्रीसरस्वतीजीका किया और श्रीगिरिराजकुमारीजीका दर्शन भी किया । रम्भा, उर्वशी और देवराजवल्लभा श्रीशचीजीको भी देखा, तथा दैत्योंको छलनेके लिये भगवान्ने जो अपना मोहिनीरूप धारण किया था, उसे भी अवलोकन किया है रतिको भी देखा है एवंवरुण लोककी सभी स्त्रियोंको भी अवलोकन किया है ॥६॥

हे राजन्! परन्तु चिरकालीन जीवन व भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल व चौदहो भुवनोंका ज्ञान रखकर, सदा भ्रमण करता हुआ भी, कभी भी मैंने इस प्रकारकी परम सुन्दरी किसीभी कन्या आदिको न त्रिभुवनमें कहीं भी कभी देखा ही है और न श्रवण ही किया है, मेरा यह वचन, आप सत्य जानिये प्रशंसा नहीं ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले हे देवि ! श्रीनारदजी महाराजका अमृतके समान कहा हुआ वचन श्रवण करके हाथ जोड़कर भूमिनाथ (श्रीमिथिलेश) जी महाराज बोलेः- हे कृपालो ! श्रीललीजीके कमलके समान हाथोंकी रेखाओंको देखकर आप इनके शुभ-अशुभ गुणोंका वर्णन कीजिये ॥८॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीने श्रीनारदजी महाराजके पास पहुँचकर श्रीकिशोरीजीका बायाँ हस्तकमल उन्हें दिखानेके लिये अपने हाथ पर रख लिया । या ऐसा देखकर परम चतुर, महात्माओंमें महातमा भगवान् श्रीनारदजी श्रीमिथिलेशजी महाराज से बोले ॥९॥

हे मतिमन् (विचार शील) ! आपका कल्याण हो, पहले श्रीसुमुखी (श्रीकिशोरी) जीके कोमल श्रीचरण-कमलोंकी रेखाओंको देखकर मैं उनके शुभगुणोंका वर्णन करता हूँ आप एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये, पश्चात् हस्तकमलोंको भर इच्छा अवलोकन करूँगा, क्योंकि इस समय कुछ ऐसी ही विधि है ॥१०॥

हे राज्ञी ! तुङ्गमिदमासनमादरेण त्यक्त्वा विचारमखिलं सुखदं गृहाण।
उक्तवेति तां समुपवेश्य महानुभावश्चन्द्राननाब्जमृदुपादतलं ददर्श ॥११॥
वीक्ष्यास मूक इव धैर्यमथो स धृत्वा प्रेमाश्रुपूर्णवदनो हृदि तां प्रणम्य।
पाणौ निधाय मृदुले मृदुपादपद्मं रेखा निरीक्ष्य निजगाद सुतो विधातुः ॥१२॥

श्रीनारद उवाच।

राजंश्चन्द्रमुखीमनोज्ञमृदुलस्निग्धाम्बुजाङ्घ्रेस्तले
रक्ताश्मद्युतिहारिणी सुललिता ज्ञेयोद्ध्वंरेखा त्वियम्।
सर्वामङ्गलवारिणी पदजुषां सर्वार्थसिद्धिप्रदा
ज्ञानाम्भोधिरुदारधीः सुखनिधिर्नूनं भवित्री प्रभो ॥१३॥
मूले स्वस्तिकलाञ्छनं शुभतरं श्रेयःप्रदं कारणं
दीव्यद्धेममणिप्रभं सुरुचिरं सौभाग्यसम्पत्करम्।
एषाऽलौकिसर्वचिह्ननिलया ब्रह्मादिभिर्वन्दिता
सर्वात्मा परमेश्वरी त्रिजगतां भातीति मे ध्यायतः ॥१४॥

हे श्रीमहारानीजी ! आप सब प्रकारका विचार परित्याग करके (मेरी आज्ञामात्रसे) इस सुखद, ऊँचे आसन पर विराजमान हो जाइये। श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! वे महानुभाव (भगवत्तत्त्वका ही अनुभव करने वाले) श्रीनारदजी महाराज इतना कहकर श्रीसुनयनामहारानीजीको उस ऊँचे आसन पर बैठा कर, चन्द्रानना (श्रीकिशोरीजीके) कोमल चरणकमलोंके तलवोंका दर्शन करने लगे ॥११॥

दर्शन करके प्रेमाश्रु पूर्ण मुखारविन्द हो, श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजी महाराज अवाक् (मौन) रह गये, पुनः धैर्य धारण कर, हृदयमें श्रीकिशोरीजी को प्रणाम करके तथा अपने कोमल हाथपर उनके सुकोमल श्रीचरण कमलको रखकर बोले ॥१२॥

हे राजन्! श्रीचन्द्रमुखीजी के मनोहर, कोमल और चिक्कण कमलके समान चरणके तलवों में लालमणिकी कान्तिको हरण करने वाली अत्यन्त सुन्दर, यह जो लम्बी रेखा है उसे आप ऊर्ध्व रेखा जानिये, इस रेखाके प्रभावसे ये श्रीकिशोरीजी अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवा करने वाले भक्तोंके समस्त अमङ्गलोंकी दूर करने वाली और सभी प्रकारके मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाली, ज्ञानकी सिन्धु, उदार बुद्धि, सुखकी भण्डार स्वरूपा होंगी यह ध्रुव(निश्चय)है॥१३॥

इस ऊर्ध्व रेखाके मूल भागसे परमङ्गलमय, समस्त मङ्गलोंका अद्वितीय कारण, सौभाग्यरूपी सम्पत्तिका उत्पन्न करने वाला, परम रमणीक-चमकती हुई सुवर्ण (सोना) रङ्गकी मणिके समान कान्तिवाला यह "स्वस्तिक" चिह्न है। हे राजन् ! ध्यान करनेसे मुझे ये आपकी श्रीललीजी सभी अलौकिक चिह्नोंका मन्दिर, ब्रह्मादि देवताओंसे प्रणामकी हुई, स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंकी आत्मा, त्रिलोकीका सर्वोपरि शासन करने वाली प्रतीत हो रही हैं ॥१४॥

आज्ञा से विवश करके श्रीनारदजी महाराज श्रीसुनयना अम्बाजी को ऊँचे सिंहासन पर विराजमान कर, श्रीललीजीके श्रीचरण चिह्नोंका वर्णन कर रहे हैं।

वामोद्ध्र्वं तु समुज्वलारुणमिदं पश्याष्टकोणं शुभं
रम्यं स्वस्तिकलाञ्छनस्य नृपते ! सिद्धीश्वरत्वप्रदम् ।
सर्वा एव हि सिद्धयश्च निधयः साष्टाङ्गयोगा ध्रुवं
पुत्र्यास्त्वत्परिचारिकाश्चरणयोः शश्वन्ममैतन्मतम् ॥१५॥

स्वस्त्यूद्ध्र्वं हृदयङ्गमं सुललितं लक्ष्म्या इदं लाञ्छनं ।
प्रोद्यद्धामनिधिप्रभं क्षितिपते ! सौभाग्यपूर्णाकरम् ॥
तेनेयं सुषमाऽद्वितीयजलधिर्विख्यातकीर्त्तिः शुभा ।
सम्भाव्याऽखिलसद्गुणैकनिलया सम्पूर्णकामा सुता ॥१६॥

लक्ष्म्या लक्ष्मण ऊद्ध्र्वमुज्वलमिदं चिह्नं हलस्याधिहं
कामक्रोधविदारणं स्मयहरं लोभादिमूलच्छिदम् ।
सद्विज्ञानविरागभक्तिजननं त्वं पश्य चेतोहरं
वेद्म्येनां मिथिलामहेन्द्र! तनयां सच्चिन्मनोहारिणीम्॥१७॥

स्वस्तिक चिह्नसे बायें ऊपरकी ओर उज्वल, तथा अरुण (लाल) रङ्गके मनोहर, सिद्धीश्वर पद प्रदान करने वाले, मङ्गलमय, इस अष्ट कोणके चिह्नको आप अवलोकन कीजिये। इस चिह्नके देखनेसे मेरा तो मत यही है कि अष्टाङ्ग योगके सहित समस्त सिद्धियाँ और सभी निधियाँ आपकी श्रीललीजीके श्रीचरणकमलोंकी सदा सेविका रहेंगी ॥१५॥

स्वस्तिक चिह्नसे ऊपर मनोहरण अतीव सुन्दर, उदय होते हुये सूर्यके समान प्रकाशमान, सौभाग्यका पूर्ण आकर (भण्डार) यह श्रीलक्ष्मीजीका चिह्न है। हे श्रीमिथिलेशजी-महाराज ! इस चिह्नसे इन श्रीललीजीको निरतिशय (सबसे बढ़कर) सुन्दरताकी उपमा रहित समुद्र, प्रसिद्ध कीर्त्ति वाली, मङ्गलमयी, सम्पूर्ण सद्गुणोंकी मन्दिर स्वरूपा, सब प्रकारसे पूर्ण काम वाली विचारना चाहिये ॥१६॥

श्रीलक्ष्मीजीके चिह्नसे ऊपर उज्वल वर्णका मानसिकताप हरण करने वाला काम, क्रोधको फाड़ डालने वाला अभिमानको नष्ट करदेने वाला, लोभादिकी जड़को ही काट डालने वाला और सद्विज्ञान (भगवत्तत्त्व महिमा रहस्यादिका विशेष ज्ञान) वैराग्य एवं भक्तिको उत्पन्न करने वाला यह हलका चित्तहारी चिह्न है, उसे आप अवलोकन कीजिये। हे श्रीमिथिलामहेन्द्रजी ! इस चिह्नसे आपकी श्रीललीजीको सत्-चित् (तीनों कालमें एक रस रहने वाले चैतन्य स्वरूप) ब्रह्मके भी मनको हरण करने वाली, मैं जानता हूँ ॥१७॥

एतद्भाति च धूम्रवर्णमसितं दुर्वासनाध्वंसनं
राजन्मौसललाञ्छनं दुरितहं पापाद्रिपुञ्जाशनिम् ।
पूतेयं मनसा गिरा च वपुषा नित्यं सुता सर्वथा
तेनैवेति मतिर्मम श्रुतिनुता ज्ञेया महद्भाविता ॥१८॥

शेषाङ्कं परिपश्य रम्यमसितं द्वन्द्वच्छिदं शम्प्रदं
चेतोमूलविकारहं सुखकरं वाचस्पतित्वप्रदम् ।
सच्चिह्नोपरि मुसलस्य तदतः सर्वार्थसिद्धामिमां
शीलक्षान्तिदयाऽनुरागसुषमासौभाग्यसीमां ब्रुवे ॥१९॥

नानावर्णमणिप्रभं प्रमथनं ह्यात्माप्तिमार्गद्विषां
शेषोद्ध्वं शरलाञ्छनं नृपमणे ! सर्वाभयप्रापकम् ।
तेनेयं विगताहिता तनुभृतां प्राणैः समा ज्ञायते
पुत्री चारुमृगाङ्कपूर्णवदना संध्यायमाना मया ॥२०॥

हे राजन् ! धुयेंके रङ्गके समान श्याम रङ्गका, दुर्वासनानाशक, दुःखविनाशक, पाप रूपी पर्वत समूहोंको चूर करनेके लिये वज्र स्वरूप यह मूसलका चिह्न प्रतीत हो रहा है, इस चिह्नसे तो मेरे मति के अनुसार आपकी इन श्रीललीजीको मन, वचन, काय (शरीर) से सब प्रकार पवित्र और वेदोंके द्वारा नित्य ही स्तुतिकी हुई, महात्माओंकी भावनाका विषय स्वरूप ही जानना चाहिये ॥१८॥

मूसल चिह्नसे ऊपर आप सुख-दुःख, राग द्वेष आदि समस्त द्वन्द्वोंका विनाश करने वाले, मङ्गलदायक तथा चित्तके मूल विकारको नष्ट करने वाले, श्याम वर्णसे युक्त इस शेषजीके चिह्नका दर्शन कीजिये । हे राजन् ! इस चिह्नसे आपकी इन श्रीललीजीको मैं सभी प्रकारकी सम्पत्तियोंको प्राप्त परिपूर्ण मनोरथ वाली शील, सहनशीलता, दया अनुराग, अनुपम सौन्दर्य, सौभाग्यकी सीमा कह रहा हूँ ॥१९॥

हे नृपमणि श्रीविदेहजी महाराज ! अनेक रङ्गकी मणियोंके समान प्रकाशमान, भगवान्के प्राप्ति-मार्ग विरोधियोंका विनाश करने वाला, तथा सभीसे निर्भयता प्रदान करने वाला, शेष-चिह्नसे ऊपर. यह वाणका चिह्न है । इस चिन्हके द्वारा सुन्दर पूर्णचन्द्रके समान आह्लादप्रद प्रकाश युक्त, हृदय-ताप हारी मुखवाली आपकी श्रीललीजी सम्यक् प्रकारसे ध्यान करने पर मुझे देह धारियोंको प्राणोंके समान प्रिय तथा शत्रुरहित ज्ञात हो रही हैं ॥२०॥

वाणादूद्ध्र्वमिदं प्रपश्य नृपते ! विद्युत्पयोदप्रभं
दिव्यं लाञ्छनमम्बरस्य सुभगं पुण्येक्षणं पावनम् ।
सर्वस्थावरजङ्गमात्मनिगताऽज्ञेयस्वरूपा हि तैः
सर्वज्ञा महनीयपुण्यचरिता लोके भवित्री ध्रुवम् ॥२१॥

राजन्नम्बरलाञ्छनोद्ध्र्वमरुणं नव्यं प्रपश्याम्बुजं
ध्यात्रानन्दविवर्द्धनं शिवकरं शुद्धानुरागप्रदम् ।
अस्माद्भातिसरोजनाभजननं यस्माद्विरिञ्चेर्भवः
किं तुभ्यं कथयाम्यतः शुभगुणानस्याः परा धियः ॥२२॥

तस्मादूद्ध्र्वमिदं हि लक्ष्म जलजाद्यानस्य संशोभितं
श्वेताश्वैः श्रुतिसम्मितैः ससुषमैस्त्रैलोक्यराज्यप्रदम् ।
तस्माद्भाति हि ते सुता दिविषदामाराध्यमाना हृदि
प्रोद्भूता रतिमाशिवा प्रभृतयो यस्याश्छबेः सीकरात् ॥२३॥

हे नृपते ! बाण चिह्नसे ऊपर बिजली और मेघके समान प्रकाश युक्त, दिव्य, रमणीक, पवित्रताकारी, पुण्यप्रद दर्शन वाले, इस अम्बर (वस्त्र) चिह्नको अवलोकन कीजिये इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी सभी स्थावर जङ्गम प्राणियोंके हृदयमें निवास करती हुई भी स्वरूपसे इनके द्वारा न जानने योग्य, सभी देशका पूर्णज्ञान रखने वाली और अपने गुणोंसे लोकमें पूजने योग्य, पुण्यमय चरिता होंगी ॥२१॥

हे राजन् ! अम्बर-चिह्नसे ऊपर ध्यान करने वालेके आनन्दकी वृद्धि करने वाले, मङ्गलकारी, निष्काम प्रेम प्रदान करने वाले इस नवीन कमलके चिह्नका आप भली प्रकारसे दर्शन कीजिये, इस कमलके चिह्नसे पद्मनाभ भगवान्का जन्म प्रतीत हो रहा है, जिससे श्रीब्रह्माजीका जन्म हुआ है अतः बुद्धिसे परे रहने वाली, आपकी इन श्रीललीजीके मङ्गलगुणों का वर्णन मैं आपसे कहाँ तक करूँ ? ॥२२॥

कमल-चिह्नसे ऊपर तीनों लोकका राज्य प्रदान करने वाला, श्वेत रङ्गका अत्यन्त सुन्दर चार घोड़ोंसे युक्त यह रथका चिह्न सब प्रकारसे शोभा देरहा है इस चिह्नसे ऐसा प्रतीत होता है कि जिनकी छबि सीकरसे श्रीलक्ष्मीजी श्रीगिरिजाजी व रति आदि परम सुन्दर शक्तियाँ प्रकट हुईं हैं वे आपकी ये, श्रीललीजी देवताओं के द्वारा हृदयमें आराधित हो रही हैं ॥२३॥

कामक्रोधमदेषणाप्रशमनं सर्वत्र रक्षाकरं
चेतोऽकण्टकराज्यदं विजयदं यानोर्द्ध्वमेतत्पवेः ।
विद्युद्वर्णमिदं सुचिह्नमपरं ज्ञेयमस्मात्त्वया
ब्रह्माद्यैः परिभाव्यमानचरणा शक्तिप्रधानेश्वरी ॥२४॥

अङ्गुष्ठे यवचिह्नमेतदमलं श्वेतारुणं सुन्दरं
सर्वार्थप्रदमात्मदोषहरणं विघ्वाननेयं शुभा ।
ज्ञातव्या नृपसत्तम ! श्रुतिपराऽऽह्लादस्वरूपाऽनघा
सर्वोत्कृष्टविचित्रपुण्ययशसा लोकत्रये विश्रुता ॥२५॥

दक्षे स्वस्तिकलाञ्छनोर्द्ध्वममलं लक्ष्मास्त्यदः स्वस्तरोः
सर्वार्थप्रदचिन्तनं सुहरितं मोक्षप्रदं भक्तिदम् ।
तस्यापीह च यत्फलं कथयतस्तच्छ्रूयतां मे नृप !
नानासादितमिन्दिराङ्कयुतया पुत्र्या मनाक्तेऽनया ॥२६॥

रथ चिह्नसे ऊपर काम, क्रोध, अभिमान, तथा सभी प्रकारकी वासनाओंको नष्ट करने वाला, सर्वत्र रक्षक, चित्तको निष्कण्टक राज्य (भगवान्‌में चित्तवृत्तिकी संलग्नता) प्रदान करने वाला, भीतरी-बाहरी सभी शत्रुओं पर विजय कराने वाला बिजली रङ्गका यह वज्रका चिह्न है । हे नृपश्रेष्ठ ! इस चिह्नसे आप श्रीललीजीको ब्रह्मादि देवताओंसे चिन्त्यमान श्रीचरणकमल वाली तथा शक्तिप्रधान (उमा, रमा, ब्रह्माणी आदिकों) की भी स्वामिनी जानिये ॥२४॥

अंगूठेमें सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाला तथा मनके दोषोंको दूर करने वाला श्वेत और लाल रङ्गका यह सुन्दर स्वच्छ यवका चिह्न है । हे राजाओंमें परम श्रेष्ठ ! इस यव चिह्नसे श्रीललीजीको वेदोंसे परे, आह्लादकी मूर्त्ति, सभी पापोंसे रहित, सबसे श्रेष्ठ और अपने अलौकिक पुण्यमय यशसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध जानना चाहिये ॥२५॥

स्वस्तिक चिह्नसे ऊपर दाहिनी ओर चिन्तनसे सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाला, तथा मोक्ष व भक्तिको देनेवाला, हरे रङ्गका यह स्वच्छ कल्पवृक्षका चिह्न है । इस चिह्नका जो फल श्रीललीजीके लिये है वह मेरे कहते हुये आप श्रवण कीजिये । हे राजन्! श्रीलक्ष्मी चिह्नसे युक्त आपकी इन श्रीललीजीके लिये किञ्चित् वस्तु भी बिना मिली (अर्थात् अप्राप्त) नहीं है ॥२६॥

स्वर्वृक्षोपरि चाङ्कुशाङ्कमतसीपुष्पोपमं पश्यता-
देतल्लोलमनोमतङ्गवशकृच्चिह्नं विकारापहम् ।
एषा नित्यनिवासिनी सुखनिधिः शम्भोर्मनोमन्दिरे
साक्षाद्ब्रह्ममयी विभाति सुमुखी धन्योऽसि राजन्नतः ॥२७॥

एतच्चारुसुलोहितं विजयकृद्वेद्यं ध्वजालक्षणं
सुस्पष्टं नृवराङ्कुशोद्ध्वंममलज्ञानप्रदं भक्तिदम् ।
एषा शाश्वतधामदा त्रिभुवनश्रीसम्पदां कारणं
विज्ञेया श्रुतिगीतपुण्यमहिमा राज्ञ्याः शुभाङ्के स्थिता ॥२८॥

तप्तस्वर्णकिरीटलाञ्छनमिदं भव्यं ध्वजाङ्कोद्ध्र्वगं-
सर्वैर्वन्द्यकरं मनोहरतरं सर्वेश्वरत्वप्रदम् ।
यावन्त्यः खलु शक्तयः परतमा ब्रह्माण्डवृन्देऽखिला
दासीभावमुपाश्रिता हि सधवास्ता विद्धि चास्या ध्रुवम्ः ॥२६॥

कल्पवृक्ष चिह्नसे ऊपर चञ्चल मनरूपी हाथीको वशमें करने वाले तथा काम, क्रोध, वासना आदि विकारोंके नाशक, अलसी (टीसी) पुष्पके समान श्यामरङ्गके इस अंकुश चिह्नको देखिये । इस चिह्नसे सुन्दर मुखवाली आपकी श्रीललीजी भगवान् शिवजीके मनरूपी मन्दिरमें नित्य निवास करने वाली, सुखकी निधि, साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा प्रतीत हो रही हैं, इसलिये हे राजन् ! आप धन्य हैं ॥२७॥

अङ्कुश चिह्नसे ऊपर भक्तिको प्रदान करने वाले अमल (ब्रह्म) ज्ञानको देनेवाले, विजय कारक, लाल वर्णके इस सुस्पष्ट चिह्नको ध्वजाका चिह्न जानना चाहिये । इस चिह्नसे श्रीमहारानीजीकी गोदीमें विराजी हुई इन श्रीललीजीको आप नित्य धाम प्रदान करने वाली तीनों लोकोंकी सम्पूर्ण शोभा तथा सम्पत्ति की कारण स्वरूपा, वेदोंके द्वारा गायी हुई पुण्यमयी महिमा वाली जानिये ॥२८॥

ध्वजा चिह्नसे ऊपर तपाये हुये सोनेके समान परम मनोहर यह किरीटका चिह्न है, जो सबके द्वारा प्रणाम करने योग्य बनाने वाला तथा सर्वेश्वर पदकी योग्यता प्रदान करने वाला है, इस चिह्नके प्रभावसे अपने पतियों सहित ब्रह्माण्ड वृन्दोंमें स्थित, सभी विशिष्ट शक्तियोंको आप निश्चय ही इन श्रीललीजीके दासी भावकी आश्रिता जानिये ॥२६॥

दीव्यत्काञ्चनवर्णमूर्जितयशः! स्पष्टं किरीटोद्ध्र्वगं
चक्राङ्कं परिपश्य धामनिचयं सर्वद्विषां सूदनम् ।
साम्राज्यप्रदमस्ति लाञ्छनमिदं सर्वप्रभुत्वप्रदं
त्रैलोक्यस्य परेशपट्टमहिषीं मन्ये तदेनां ध्रुवम् ।।३०।।

चक्रोद्ध्र्यं बहुमूल्यरत्नरचितं सिंहासनं सुन्दरं
योगज्ञानविरागभक्तिभवनं श्रीमन्निदं वीक्ष्यताम् ।
तेनेमां सुरचिन्त्यमानचरणां सिंहासनस्थां शुभां
श्रीसाकेतविहारिणीमहमिमां मन्ये त्वदीयात्मजाम् ।।३१।।

चिह्नादूद्ध्र्वमतः समुज्ज्वलमिदं सिंहासनस्याद्भुतं
दिव्यं चामरलाञ्छनं शुभतरं मोहादिदोषापहम् ।
एषा सर्वविकारमूलरहिता सच्चिज्जगन्मङ्गला
तेनोर्वीश ! सुभाग्यदा तव सुता ज्ञेयाऽऽत्मदा पश्यताम् ।।३२।।

हे उत्कृष्ट कीर्त्तिशाली राजन् ! किरीट चिह्नसे ऊपर प्रकाश-पुञ्ज, चमकते हुये सोनेके रङ्ग वाले इस स्पष्ट चक्रचिह्नका दर्शन कीजिये। यह चिह्न सभी शत्रुओंका संहार करने वाला, सम्राट् पद देनेवाला तथा सभी प्राणियों पर प्रभुत्व प्रदान करने वाला है। इस चिह्नसे मैं इन श्रीललीजीको निःसन्देह तीनों लोकोंके परम (सर्वश्रेष्ठ) स्वामी (सर्वेश्वर प्रभु) की पटरानी मानता हूँ ।।३०।।

हे श्रीमान्जी ! चक्र चिह्नसे ऊपर योग, ज्ञान, वैराग्य भक्तिके भवन स्वरूप, बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुये इस सुन्दर सिंहासन चिह्नको अवलोकन कीजिये, इस चिह्नसे मैं आपकी श्रीललीजीको सिंहासन पर विराजमान, देवताओंके द्वारा चिन्तन करने योग्य–श्रीचरण कमलों वाली, मङ्गलमूर्त्ति, श्रीसाकेतविहारिणीजी ही मानता हूँ ।।३१।।

इस सिंहासन चिह्नसे ऊपर मोह आदि दोषोंको दूर करने वाला, परम मङ्गलस्वरूप आश्चर्य कारक, दिव्य, अत्यन्त उज्वल यह चँवरका चिह्न है, इससे इन श्रीललीजीको आप समस्त विकारोंके मूल (जड़) से रहित, सदा एक रस रहने वाली, चैतन्य स्वरूप, एवं जगत्‌की मङ्गल स्वरूपा, दर्शन करने वालोंको सौभाग्य एवं बुद्धिको देनेवाली जानिये ।।३२।।

दक्षोर्ध्वं परमोज्ज्वलं क्षितिपते ! सिंहासनस्याङ्कतो
रम्यं छत्रसुलक्ष्म शोभनतरं सर्वाधिपत्यप्रदम् ।
सर्वाराध्यतमारविन्दचरणा राज्ञी त्रिलोकीपतेः
सर्वानन्दविवर्द्धिनी तव सुता तेनेयमाबुध्यते ॥३३॥

छत्रोर्ध्वं जयमाललाञ्छनमिदं भद्रं परं पश्यतां
सर्वेभ्यो विजयप्रदाननिरतं ध्यातुर्मनः शान्तिदम् ।
पुत्रीयं चिदचित्परा विजयते शश्वत्त्रिलोक्यामतः
प्रोत्फुल्लाम्बुजपत्रचारुनयना मन्दस्मिता पावनी ॥३४॥

सव्योर्ध्वं यमदण्डचिह्नमसितं सिंहासनस्याद्भुतं
याम्यत्रासभयापहं सुललितं शुद्धानुरागप्रदम् ।
एषा ब्रह्मविदां वरिष्ठ ! तनया सर्वाभयप्रापिका
ज्ञातव्याऽनुगता पतिं पतिपरा कल्याणमूर्त्तिस्ततः ॥३५॥

हे महीप ! इस सिंहासन-चिह्नके दाहिने ऊपरकी ओर सभीके प्रति परम स्वामित्व प्रदान करने वाला, अत्यन्त सुन्दर, रमणीक, परम उज्वल रङ्गका, छत्र चिह्न है, इस चिह्नसे आपकी श्रीललीजी सभीके द्वारा परम आराधना करने योग्य श्रीचरण कमल वाली, तथा त्रिलोकीनाथ की महारानी एवं सभीके आनन्दको पूर्णरूपसे बढ़ाने वाली ज्ञात हो रही हैं ॥३३॥

छत्र-चिह्नसे ऊपर दर्शन करने वालोंका परम मङ्गलस्वरूप, सभीके लिये विजय प्रदान करनेमें संलग्न, ध्यानकरने वालेके मनको शान्ति देने वाला यह जयमालका चिह्न है, इस चिह्न से पूर्ण खिले हुये कमल दलके समान सुन्दर नेत्र तथा मन्द मुस्कान वाली, चित् (जीव) अचित् (माया) से परे (ब्रह्मस्वरूपा), पवित्र करने वाली, आपकी ये श्रीललीजी तीनों लोकोंमें सर्वोत्कृष्टरूपसे सदा विराज रही हैं ॥३४॥

सिंहासन चिह्नसे बायें ऊपरकी ओर यमयातना का भय दूर करने वाला परम सुन्दर, शुद्ध (निष्काम) अनुराग प्रदान करने वाला, श्याम वर्णका यह अद्भुत यमदण्डका चिह्न है । हे ब्रह्म-वेत्ताओंमें परम श्रेष्ठ! इस चिह्नसे इन श्रीललीजीको सभीको अभय प्राप्ति कराने वाली, पतिकी अनुगामिनी, तथा पतिको ही सर्वस्व मानने वाली, कल्याणकी मूर्त्ति ही जानना चाहिये ॥३५॥

एतच्चामरलाञ्छनोद्‌र्ध्वमरुणश्वेतं नरस्याद्‌भुतं
विज्ञेयं मिथिलामहेन्द्र! भवता यद्‌दृश्यते लक्ष्म तत् ।
सद्विज्ञानविरागभक्तिजननं पापापहोद्वीक्षणं
तेनेयं भजदीप्सितार्थफलदा सद्भावमुख्यास्पदा ।।३६।।

राजन्नेतदुदीक्ष्यते सुधवलं चिह्नं सरय्वाः शुभं
दक्षे चन्द्रनिभाननापदतले निःशेषतीर्थास्पदम् ।
प्रेमाभक्तिविवर्द्धनं नृप ! ततो विद्धयात्मजामात्मदाम्
प्रेमाम्भोनिधिविग्रहां निरुपमक्षान्तिस्वरूपामिमाम् ।।३७।।

मूले पादतलस्य रक्तधवलं गोष्पादसल्लाञ्छनं
गोष्पादेन समेति हन्त समतां ध्यानाद्भवाब्धिर्यतः ।
अन्तर्दृष्टिविकाशनं शुभमिदं तत्तेन सल्लक्ष्मणा
विज्ञेया तमसः पराऽऽदिप्रकृतेर्मूलस्वरूपा त्वियम् ।।३८।।

हे श्रीमिथिलामहेन्द्रजी! चँवर चिह्नसे ऊपर लाल और श्वेत रङ्गका जो यह चिह्न दिखाई दे रहा है, उसे आपको सद् (ब्रह्म) का विशेष ज्ञान, विषयोंसे वैराग्य तथा भक्तिका जन्मदायक, दर्शनसे ही पापोंको हर लेने वाला, नरका यह अद्‌भुत चिह्न जानना चाहिये । इस चिह्नसे आपकी श्रीललीजी भजन करने वालोंके लिये इच्छित फल देनेवाली और समस्त सद्भावों की प्रधान केन्द्र स्वरूपा हैं ।।३६।।

हे राजन् ! श्रीचन्द्रप्रभाननाजूके दाहिने श्रीचरण-कमलके तलवेमें प्रेमा-भक्तिको बढ़ाने वाला, सम्पूर्ण तीर्थोंका स्थान भूत, श्वेत रङ्गका यह श्रीसरयूजीका मङ्गलमय चिह्न देखनेमें आरहा है । हे नरेश! इस चिह्नसे आप अपनी इन श्रीललीजीको प्रेमकी समुद्र-स्वरूपा और क्षमाकी उपमा रहित मूर्त्ति ही जानिये ।।३७।।

दाहिने पाँवके तलवेके मूल (जड़) भागमें, लाल और श्वेत रङ्गका गौके चरणका शुभ चिह्न है, जिसके ध्यानसे भव (संसार) रूपी समुद्र गौके खुरके सदृश अनायास पार करने योग्य हो जाता है । यह मङ्गलमय चिह्न अन्तर्दृष्टिका विकास करने वाला होता है अतः इस चिह्नसे इन श्रीललीजीको अविद्यासे परे, आदि मायाकी भी कारण स्वरूपा जानना चाहिये ।।३८।।

गोष्पादाध इदं सुलक्ष्म सरयूदक्षे सुपीतोज्ज्वलं
भूमेः शान्तिदयादिमङ्गलगुणप्रद्योतनं मुक्तिदम् ।
एषा तेन सुलक्ष्मणा नरवर ! ज्ञेया जगन्मङ्गला
कारुण्यादिगुणालया सुकृतिनां भावास्पदा योगिनाम् ॥३९॥

दीव्यत्स्वर्णघटस्य लाञ्छनमिदं भूमेर्यदूर्ध्वं स्थितं
तेनेयं परिभाव्यते हरिहरब्रह्मादिभिर्वन्दिता ।
शश्वन्मङ्गलविग्रहा शुभगतिर्ध्यातुः सदा शंप्रदा
जाताऽपारपराक्रमा शुभगुणग्रामा सुता तावकी ॥४०॥

कुम्भोर्ध्वं तु विचित्रवर्णललिता ज्ञेया पताका त्वियं
तस्याश्चिह्नमवेहि मङ्गलनिधिं सौभाग्यसद्विग्रहम् ।
अस्याश्चातिपवित्रकीर्त्तिरमला गेया महासूरिभिः
पापघ्नी हृदयान्धकारदहनी लोकत्रये ख्यास्यति ॥४१॥

श्रीसरयूजीके दाहिनी ओर गोपादके नीचे शान्ति, दया आदि मङ्गलमय गुणोंको प्रकाशित तथा अनेक प्रकारके भोगोंको प्रदान करनेवाला, सुन्दर पीत व श्वेत रङ्गका यह भूमिका चिह्न है। हे नरश्रेष्ठ ! इस चिह्नसे आप इन श्रीललीजीको, जगत्की मङ्गल-स्वरूपा, कारुण्यादि गुणोंकी मंदिर, श्रेष्ठकर्मा योगियोंकी भावनाका केन्द्र जानिये ॥३९॥

भूमि चिह्नसे ऊपर यह जो चमकता हुआ सोनेके घड़ेका चिह्न बैठा हुआ है, इस चिह्नसे ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी श्रीललीजी ब्रह्मा विष्णु महेशके द्वारा प्रणाम की हुई, नित्य मङ्गलमय दिव्य शरीर वाली, गजगामिनी, ध्यान करने वालोंको सदा मङ्गल प्रदान करने वाली, अनन्त पराक्रम सम्पन्ना, मङ्गलमय गुणोंकी ग्राम स्वरूपा प्रकट हुई हैं ॥४०॥

घड़ेके ऊपर विचित्र वर्ण मङ्गल निधि, सौभाग्यका उत्तम मूर्त्ति भूत यह "पताका" का चिह्न है। इस चिह्नसे आप श्रीललीजीकी तीनों लोकोंमें अत्यन्त पवित्र, महासूरियों(महात्माओं) के द्वारा गाने योग्य, तथा उज्ज्वल कीर्त्ति सम्पन्ना, पापोंका नाश एवं हृदयके अन्धकारको निकालने वाली विख्यात होंगी ॥४१॥

एतज्जम्बुफलस्य चिह्नमसितं ह्यर्द्धेन्द्वधो दृश्यते
सुस्पष्टं सुषमाकरं सुललितं यद्वै पताकोपरि ।
तद्यस्याङ्घ्रितले भवेद्विधिवशात्सर्वार्थपूर्णो हि सः
सर्वज्ञो महनीयपुण्यमहिमा भूयादुपास्यः सताम् ॥४२॥

जम्बूदूर्ध्वं परमोज्ज्वलं शिवकरं नेत्रप्रमोदाकरं
चेतस्तापहरं तमःप्रशमनं नैरुज्यदं भोगदम् ।
अर्द्धेन्दोः कमनीयलाञ्छनमिदं तस्मादियं बुध्यते
लोकैकं सुखभाजनं शशिमुखी सर्वार्थसिद्धिप्रदा ॥४३॥

तस्योदूर्ध्वं धवलं च किञ्चिदरुणं भव्योज्ज्वलं लाञ्छनं
शङ्खस्यास्ति विदेहवंशमिहिर! श्राव्यं महत्वं हि तत् ।
यस्येदं चरणाम्बुजे मृदुतले चिह्नं भवेच्छोभनं
सर्वज्ञानवतां वरः स भवति श्लाघ्यः सतां चित्सुखी ॥४४॥

"पताका" चिन्हसे ऊपर और अर्द्धचन्द्रसे नीचे परम सुन्दर, उपमा रहित शोभाकी खानि, पूर्ण स्पष्ट, श्याम रङ्गका जो यह चिन्ह देखनेमें आरहा है, वह जामुन फलका चिन्ह है। यह चिन्ह सौभाग्यवश जिसके चरणमें होता है, वह सभी प्रकारके मनोरथोंसे निःसन्देह पूर्ण, सर्वकाल-देशकी परिस्थितिको जानने वाला, पूजने योग्य-पवित्र कीर्त्तिसे युक्त और सन्तोंके द्वारा आराधना करने योग्य होता है, अत एव इस चिन्हसे इन श्रीललीजीको, इन सभी कहे हुये गुणोंसे सम्पन्न जानना चाहिये ॥४२॥

जामुन चिन्हसे ऊपर परम स्वच्छ मंगलकारी, नेत्रोंके सुखकी खानि, चित्तकी तापको हरने वाला, अन्धकारका नाशक, स्वास्थ्य प्रदायक समस्त लौकिक पारलौकिक भोगोंको प्रदान करने वाला यह "अर्द्ध चन्द्र" का चिन्ह है। इस चिन्हसे ये चन्द्रमुखी श्रीललीजी समस्त मनोरथों की सिद्धि प्रदान करनेवाली, विश्वके सुखकी उपमा रहित पात्रही ज्ञात हो रही हैं ॥४३॥

अर्द्धचन्द्रसे ऊपर श्वेत और कुछ लाल रङ्गका यह सुन्दर चिन्ह शङ्खका है। हे विदेह-कुलभास्कर! उसकी महिमाको श्रवण कीजिये। यह सुन्दर चिन्ह जिसके श्रीचरणकमलमें होता है, वह सभी ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, सन्तों द्वारा प्रशंसा पाने योग्य और चित् (ब्रह्म) सुखसे सम्पन्न होता है ॥४४॥

शङ्खोपर्यमितोज्ज्वलं शुभतरं षट्कोणचिह्नं परं
तेनेयं करुणाक्षमाप्रणयताशीलानुरागालया ।
लज्जालुः सुषमापयोधितनया सौभाग्यसंभूषिता
वेदैर्गेयपवित्रचारुचरिता स्यान्नात्र वै संशयः ॥४५॥

सर्वाघौघहरं त्रितापशमनं दोषत्रयोन्मूलनं
षड्वर्गोन्मथनं सुरम्यमरुणं षट्कोणदक्षोद्‌र्ध्वगम् ।
त्रैकोणं कमनीयलाञ्छनमिदं तेनेति वै ज्ञायतां
पुत्री शोभनपूर्णचन्द्रवदना सच्चित्सुखैकाकृतिः ॥४६॥

षट्कोणोद्‌र्ध्वमिदं मनोज्ञमसितं भव्यं गदालाञ्छनं
सद्यो दुष्प्रकृतिप्रणाशनपरं कामाद्रिवज्रं शुभम् ।
सर्वज्ञेयमलौकिकाखिलगुणग्रामाऽग्रगण्याऽनघा
तेनाप्राकृतलक्षणा च सुखदा सच्चिन्मयी बुध्यताम् ॥४७॥

तस्योद्‌र्ध्वं नृपदीप्तवर्णममलं यद्दृश्यते शोभनं
माधुर्याकरमात्मदं गुणपरं साकारजीवस्य तत् ।
तेनेमां खलु वेद्मि निश्चयतया श्रीरङ्गनाथप्रियां
साक्षान्निष्कलमप्रपञ्चममलं ब्रह्मात्तपुत्र्याकृतिम् ॥४८॥

शङ्ख चिन्हसे ऊपर परम मङ्गलमय यह षट्कोणका चिन्ह है, इस चिन्हसे आपकी ये श्रीललीजी करुणा, क्षमा, प्रणय, शील, अनुरागकी मन्दिर, लज्जावती, उपमा रहित सुन्दरता रूपी क्षीर सागरकी पुत्री (लक्ष्मी) जी, सौभाग्यसे भूषित, वेदोंके द्वारा गान करने योग्य सुन्दर पवित्र चरित वाली होंगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥४५॥ षट्कोण से ऊपर दाहिनी ओर परम सुन्दर, लालरङ्गका, समस्त पाप पुन्जोंको हरण तथा दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापों को शमन करनेवाला, तीनों दोषों व षट् विकारोंका नाशक यह "त्रिकोण" का श्रेष्ठ चिन्ह है, इस चिन्हसे आप पूर्णचन्द्रके समान शोभायमान आह्लाद कारक मुखवाली, श्रीललीजी को सत्, चित्(ब्रह्म)सुखकी उपमा रहित मूर्त्ति जानिये ॥४६॥ षट्कोणसे ऊपर दुष्ट स्वभावका विनाश करनेवाला, कामरूपी पर्वतोंका नाश करनेके लिये वज्रके समान, मङ्गलकारी, मनोहर, श्याम-रङ्गका प्रकाशमान यह "गदा" का चिन्ह है, इस चिन्हसे श्रीललीजी को, अप्राकृत लक्षण-सम्पन्न, समस्त गुणोंकी ग्राम, सबसे प्रथम गिनने योग्य, समस्त पापोंसे रहित, सुखप्रदान करनेवाली, सत्, चित् (ब्रह्म) मयी जानिये ॥४७॥ गदा चिन्हसे ऊपर प्रकाशमान वर्णवाला, स्वच्छ, माधुर्य, की खानि, तीनों गुणोंसे परे, शोभामय जो यह चिन्ह देखने में आरहा है, वह साकार "जीव" का चिन्ह है, इस चिन्हसे मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि आपकी ये श्रीललीजी समस्त कलाओंसे परे, मायिक प्रपञ्चसे अछूती श्रीरङ्गनाथ भगवान विष्णुके नाथ श्रीसाकेतविहारीजूकी प्राणवल्लभाजू पुत्रीका आकार धारण की हुई शुद्ध ब्रह्म हैं ॥४८॥

पश्यैनं नवपीतबिन्दुममलं जीवोद्ध्वंसङ्गुष्ठग
त्रैलोक्यैकमनोहरं रतिपतेर्योनिं पराभक्तिदम् ।
यस्येदं शुचिलाञ्छनं पदतले राजन्भवेच्छोभनं
प्रेमाम्भोधिरनङ्गजिन्मतिमतां मान्यो जगत्क्षेमकृत् ॥४९॥

गोष्पादोध्द्र्वमिदं सुलक्ष्म विमलं श्वेतारुणश्यामलं
शक्तेर्भूप ! निरीक्ष्यतामपि यतो मूलप्रकृत्या भवः ।
तस्माद्ब्रह्ममयीयमक्षरपरा वाणी यदीया श्रुति-
र्भव्या धन्यतमोऽस्मि दृष्टिपथगेदानीमियं यस्य सा ॥५०॥

शक्त्यूद्ध्र्वं तु सुधाह्लदस्य धवलं श्वेतारुणं लाञ्छनं
पश्य त्वं नृपते ! ऽमृतत्ववरदं संध्यायतां शाश्वतम् ।
तेनेयं चिदचिद्विलक्षणपरा नित्यस्वरूपाऽनघा
ह्यस्याः सर्वमवेहि नित्यमजडं निर्मायिकं निश्चलम् ॥५१॥

यव चिन्हसे ऊपर अङ्गूठेमें इस नवीन पीतविन्दु, को अवलोकन कीजिए, यह त्रिलोकीमें अनुपम मनोहर, पराभक्ति प्रदान करने वाला, कामदेव का कारण है, हे राजन! यह सुन्दर पवित्र चिन्ह जिसके चरण-तलवे में होता है, वह प्रेमका सिन्धु. कामको विजय करनेवाला, बुद्धिमानों के द्वारा सम्मान करने योग्य, और स्थावर-जंगम-मय समस्त प्राणियोंका कल्याण करने वाला सिद्ध होता है, अतः आपकी श्रीललीजी इन कहे हुये सभी गुणोंसे भी युक्त हैं ॥४९॥

गो-पादसे ऊपर श्वेत-लाल, श्याम रङ्गके स्वच्छ और सुन्दर शक्ति चिन्हका आप दर्शन कीजिये, जिससे मूल प्रकृतिका प्राकटच होता है। इस चिन्हसे आपकी इन श्रीललीजी को परमात्म स्वरूपा, ब्रह्ममयी जानना चाहिये। जिनकी वाणी ही साक्षात् वेद है, वही इस समय मेरी दृष्टि मार्गमें विराज रही हैं अर्थात् दर्शन प्रदानकर रही हैं, अत एव मैं परम धन्य हूँ।५०।

शक्ति-चिन्हसे ऊपर श्वेत और लाल रङ्गवाले अमृतकुण्डके इस स्वच्छ चिन्हका दर्शन कीजिये, यह सतत ध्यान करनेवालेको अमरत्वका वर देनेवाला है, इस चिन्हसे आपकी श्रीललीजी जड-चेतनसे विलक्षण (ईश्वर) से परे, परब्रह्ममयी, सदा एकरस रहने वाली, पाप व दुःखोंसे रहित सुखस्वरूपा हैं। आप इन श्रीललीजीका सब कुछ, नित्य चैतन्य स्वरूप, माया से परे, सदा एकरस रहने वाला जानिये ॥५१॥

राजेन्द्र ! त्रिबलीसुलाञ्छनमिदं पश्य त्रिवेणीप्रभं
श्रीपीयूषसरोऽङ्कतोऽग्रममलं दृष्टेर्विकारापहम् ।
अस्मादेव सुलाञ्छनात्क्षितितले जाता त्रिवेणी सरित्
संजातो भगवांस्त्रिविक्रम इहेत्थं त्वत्सुता राजते ।।५२।।

भातीदं त्रिवली - सुलक्षणपरं मीनस्य रौप्यप्रभं
श्रीश्रेयः शकुनप्रभावनकरं तद्ध्यायतामन्वहम् ।
चेतो मीनदशामुपैति नचिरान्मीनावतारोऽप्यतः
पुत्रीयं धृतमङ्गलाकरतनुर्नैसर्गिकी शम्प्रदा ।।५३।।

मीनाङ्कोद्ध्र्वमिदं नरेन्द्र ! धवलं चेतःस्पृशं सुन्दरं
पूर्णेन्दोः शुचिलाञ्छनं सुखकरं ब्रह्माण्डचन्दाकरम् ।
पूर्णा पूर्णवरप्रदाननिरता पूर्णैः सदाऽऽराधिता
पूर्णब्रह्मसुविग्रहा तव सुता संलक्ष्यतेऽनेन वै ।।५४।।

हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! अमृत कुण्ड चिह्नसे आगे त्रिवेणीके समान प्रकाशमान, दृष्टि दोषको हरण करने वाले, आप इस सुन्दर और स्वच्छ, "त्रिवली" चिह्नका दर्शन कीजिये, इस चिह्नसे पृथिवीतल पर त्रिवेणी नदीका तथा इसी चिह्नसे भगवान् त्रिविक्रम (वामन) जीका अवतार हुआ है, इस प्रकार आपकी ये श्रीललीजी सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराज रही हैं ।।५२।।

त्रिवली चिह्नसे आगे चांदीके समान कान्तिसे युक्त तथा परम-मङ्गलमय शकुनोंकी सृष्टि करनेवाला यह चिह्न "मीन" (मछली) का प्रतीत हो रहा है, उसका सदा ध्यान करनेवालोंका चित्त मीनकी दशाको शीघ्र प्राप्त हो जाता है, अर्थात् अपने प्यारेके वियोगको क्षणभर भी न सहन करके तत्क्षण प्राण-विसर्जन करनेकी स्थितिको ला देता है । इसी मत्स्य चिन्हसे मीन भगवान् का अवतार होता है, अतः आपकी श्रीललीजी समस्त मङ्गलोंकी खानि स्वरूपा स्वाभाविक कल्याण-प्रदायिनी हैं ।।५३।।

हे नरेन्द्र ! मीन चिह्नसे ऊपर सुन्दर, मनहरण, सुखकारी, अनन्त ब्रह्माण्डों के चन्द्रसमूहों की खानि स्वरूप, यह पवित्र चिह्न पूर्णचन्द्रका है, इस चिह्नसे आपकी श्रीललीजी सब प्रकारसे पूर्ण होंगी और आश्रितों के लिये पूर्ण (भगवान्) का वर देनेमें संलग्न, पूर्णकामों (परमहंसों) के द्वारा सदा आराधित पूर्णब्रह्मकी सुन्दर साकार मूर्त्ति सम्यक् प्रकारसे लक्षित हो रही हैं ।।५४।।

वीणालाञ्छनमेतदस्ति विमलं पूर्णेन्दुचिह्नोद्ध्र्वगं
पीतश्वेतसुलोहितं पदतले चन्द्राननायाः शुभे ।
तेनेमां धृतविग्रहा अहरहो रागैः समेताः प्रियै
रागिण्यः परिशीलयन्ति सकलाः प्रेम्णेति मे निश्चयः ॥५५॥
वंशीचिह्नमिदं प्रपश्य ललितं वीणाशुभाङ्कोद्ध्र्वगं
नेत्रानन्दकरं प्रमोदजनकं भव्यं विचित्रप्रभम् ।
अस्मादेव रसाश्च नादसहिताः सप्तस्वरा जज्ञिरे
किं तस्मान्नृप! वर्णयामि कुमतिः पुत्रीं तवालौकिकीम् ॥५६॥
पश्यातीवमनोहरं सुललितं वंशीशुभाङ्कोर्ध्वगं
सच्चिह्नं हरितारुणं सकनकं चापस्य संशोभनम् ।
ध्यानात्सर्वजयप्रदं च सततं सर्वत्र रक्षाकरं
सर्वैश्वर्यकृतालयाब्जचरणा तेनेयमाभाव्यते ॥५७॥
चापस्याद्भुतलाञ्छनोद्ध्र्वममलं तूणीर-लक्ष्माद्भुतं
राजन् ! पश्य मनोहरं प्रियतरं सर्वाघहृद्दर्शनम् ।
शीलक्षान्तिदयादिधर्मसचिवा वाणस्वरूपान्विता
ह्यस्मिन्नेव वसन्ति विद्धि तदिमां धर्मप्रधानाश्रयाम् ॥५८॥

श्रीचन्द्रमुखीजूके मङ्गलमय पाँवके तलवेमें, पूर्णचन्द्र चिह्नसे ऊपर यह पीत-श्वेत-लाल रङ्गका स्वच्छ वीणाका चिह्न है, इस चिह्नके प्रभावसे समस्त रागिनियाँ अपने प्यारे रागोंके सहित मूर्त्तिमती होकर, प्रेम पूर्वक इन श्रीललीजीकी सेवा कर रही हैं, ऐसा मेरा निश्चय है ॥५५॥

वीणाके शुभ–चिह्नसे ऊपर नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाले, सुन्दर, मोद-जनक विचित्र प्रकाशवाले इस श्रेष्ठ "वंशी" चिह्नका दर्शन कीजिये । इस वंशीके चिन्हसे नाद सहित नवो रस और सातो स्वर उत्पन्न होतें हैं । हे नृप ! इसलिये मैं कुमति आपकी इन अलौकिक श्रीललीजीका क्या वर्णन करूँ ? ॥५६॥

वंशी चिह्नसे ऊपर परम सुन्दर, मनहरण, शोभायमान, ध्यानसे सभीको जय देने वाले सदा रक्षाकारी हरे लाल सुवर्ण रङ्गसे युक्त, इस धनुषके चिह्नका दर्शन कीजिये, इस चिह्नके प्रभावसे आपकी श्रीललीजीके श्रीचरणकमल रूपी भवनोंमें समस्त ऐश्वर्य निवास कर रहे हैं, ऐसा मुझे पूर्णरूपसे ज्ञात हो रहा है ॥५७॥

हे राजन्! धनुषके चिह्नसे ऊपर, स्वच्छ मनोहर, परमप्रिय, दर्शनसे समस्त पापोंका नाश करनेवाले आश्चर्यमय इस मनोहर "तूणीर" (तरकस) चिह्न का दर्शन कीजिये, इसी चिह्न में वाण के स्वरूपसे, धर्मके मन्त्री शील, क्षमा, दया आदिक निवास करते हैं, अतः आप इन श्रीललीजीको धर्मकी प्रधान कारण जानिये ॥५८॥

पश्योद्ध्वं नृप ! राजहंससुभगश्वेतारुणं लाञ्छनं
तूणीरस्य सुलक्ष्मणो विरतिदं विज्ञानधामप्रदम् ।
ध्यातृभ्यः प्रददाति चात्मसमतां हंसावताराश्रयं
विज्ञानाम्बुधिसीकरांशलवतोऽस्या ज्ञानिनो ये हि ते ॥५९॥
संसिद्धिप्रदमस्ति लोचनवतां श्रीचन्द्रिकालाञ्छनं
पश्येदं नियतेक्षणः कलरुचिं हंसोद्र्ध्वमात्मप्रदम् ।
ध्यायद्भ्यः सविवेकभक्तिविरतित्रैलोक्यराज्यप्रदं
पुत्री ते चिदचिद्विलक्षणपरप्राणेश्वरी मे मतिः ॥६०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वाऽसौ द्रुहिणतनयो भावमत्तो नरेन्द्रं
स्वामिन्या मे चरणयुगलं लोचनाभ्यां च मूद्ध्र्ना ।
भूयो भूयः सरसहृदयः संस्पृशन्साश्रुनेत्रः
प्रापानन्दं परममिति तद्वर्णितो भक्तिभावः ॥६१॥

तूणीर चिह्नसे ऊपर वैराग्य ज्ञान तथा भक्तिके प्रदाता, हंसावतारके कारण, श्वेत लाल रङ्गवाले राजहंसके सुन्दर चिह्न को देखिये, यह चिह्न ध्यान करनेवालों को अपनी समता प्रदान करता है, अर्थात् अपने समानही केवल सार-ग्रहण करने की सहज वृत्तिवाला बना देता है, अतः इस चिह्नसे मुझे तो यह निश्चय होता है कि सभी ज्ञानी, इन श्रीललीजीके विज्ञान-सागरके सीकर मात्र अंशसे ही ज्ञानवान् कहाते हैं ॥५९॥

हे राजन् ! हंस चिह्नसे ऊपर ध्यान करनेवालेको ज्ञान, भक्ति, वैराग्यके सहित तीनों लोकोंका राज्य प्रदान करनेवाले, मनोहर कान्तिसे युक्त, नेत्रवालोंको संसिद्धि (भगवत्प्राप्ति-स्वरूपा कृतार्थता) प्रदान करनेवाले इस श्रीचन्द्रिका चिह्नका दर्शन एकाग्र दृष्टिसे कीजिये, आपकी ये श्रीललीजी चेतन–मायासे विलक्षण, परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीसाकेताधीश प्रभुकी प्रधान श्रीप्राणवल्लभा हैं, ऐसा मेरा निश्चय है ॥६०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! श्रीब्रह्माजीके पुत्र, श्रीभगवानसे सुशोभित हृदयवाले श्रीनारद भगवान्, श्रीमिथिलेशजी महाराजसे इस प्रकार निवेदन करके अपने भावमें मस्त होकर हमारी श्रीस्वामिनीजूके युगल श्रीचरणकमलोंको अपने नेत्रोंसे, सिरसे बार-बार सम्यक् प्रकारसे स्पर्श करते हुये, सजल नेत्र हो, परम आनन्द (भगवदानन्द) को प्राप्त हुये । हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीनारदजीके भक्तिभावको मैंने आपसे वर्णन किया है ॥६१॥

इति सप्तत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

इतिमास परायणे एकादशो विश्रामः ॥११॥

—❀❀❀—

अथाष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

देवर्षि नारदजी द्वारा श्रीकिशोरीजीकी चौंसठ हस्त रेखाओंका वर्णन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ चित्तं समाधाय सुरर्षिर्लोकपूजितः । हस्तरेखा मुदाऽपश्यत्सुताया मिथिलेशितुः ॥१॥
पुनस्ता दर्शयन् भूपं हस्तरेखा मनोहराः । कृतकृत्य उवाचासौ प्रेमनिर्भरचेतसा ॥२॥

श्रीनारद उवाच ।

ऊद्र्ध्वरेखा त्वियं ज्ञेया सुतायाः सव्यहस्तके । तस्या वामस्थितानां च नामानि वदतः शृणु ॥३॥
मूले चिन्तामणेश्चेदं कामधेनोरिदं तथा । हयस्य कुञ्जरस्येदं घटस्येदं च लक्ष्मणम् ॥४॥
षट्कोणस्य लतायाश्च चक्रस्येदं च लक्षणम् । ध्वजस्येदं शुभं चिह्नमिदं वज्रस्य लक्ष्मणम् ॥५॥
पञ्चकोणस्य पद्मस्य मन्दिरस्य शुभावहम् । इदं चिह्नमदःपश्य महाभाग ! शरस्य च ॥६॥
खड्गस्येदं शुभं चिह्नं त्रिकोणस्य तथैव च । पश्य राजंस्त्रिशूलस्य ततो मीनस्य लक्षणम् ॥७॥
नात ऊद्र्ध्वं मया कोऽपि दृश्यतेऽङ्कः प्रपश्यता।दक्षिणस्योद्र्ध्वरेखायास्ततो लक्ष्माणि वर्णये ॥८॥
राजन्नेतद्रवेश्चिह्नमेतदिन्दोर्मनोहरम् । इदं तु कुण्डलस्यास्ति पश्य भूपशिरोमणे ! ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! उसके बाद समस्त लोकोंसे पूजित, देवर्षि श्रीनारदजी महाराज अपने चित्तको सावधान करके श्रीमिथिलेशललीजूके हस्त रेखाओंका दर्शन करने लगे१

पुनः कृतकृत्य होकर हस्त रेखाओंका दर्शन कराते हुये, वे प्रेम निर्भर चित्तसे श्रीमिथिलेश जी महाराजसे बोले ॥२॥

हे राजन् ! श्रीललीजूके बायें हस्तकमलमें यह "ऊध्र्वरेखा" का चिन्ह जानो, इस रेखाके बाईं ओर स्थित चिन्हों के नामोंको मेरे कथन द्वारा श्रवण कीजिये ॥३॥

इस ऊद्र्ध्वरेखाके मूल भागमें यह चिह्न "चिन्तामणि" का है, यह कामधेनुका, यह घोड़ेका, यह हाथीका तथा यह घड़ेका चिह्न है ॥४॥ यह षट्कोणका यह लताका तथा यह चक्रका, और यह मङ्गलमय चिह्न ध्वजाका तथा यह चिह्न वज्रका है ॥५॥

हे महाभाग ! (परम भाग्यशाली !) यह चिह्न पञ्चकोणका, यह कमलका, और यह मङ्गल पहुँचाने वाला चिह्न मन्दिरका है, इस वाणके चिह्नका दर्शन कीजिये ॥६॥

यह चिह्न खड्गका यह शुभकारी चिह्न त्रिकोणका है । हे राजन् ! तदनन्तर त्रिशूलका और इस मछली चिह्नका दर्शन कीजिये ॥७॥

इस मीन चिह्नसे आगे कोई और चिह्न मेरे देखने में नहीं आ रहा है, अत एव अब ऊद्र्ध्व रेखाके दाहिने भागके चिह्नोंका वर्णन करता हूं ॥८॥

हे भूपशिरोमणे ! हे राजन् ! देखिये यह सूर्यका चिह्न है, यह मनोहर चिह्न चन्द्रमाका और यह कुण्डलका चिह्न है ॥९॥

अष्टकोणस्य वै चेदं प्रसूनस्य ततः शुभम् । तिलस्येदं च रम्भाया इदं पश्य सुलक्षणम् ॥१०॥
ततश्चेदं किरीटस्य स्रजश्चिह्नमतः परम् । संप्रपश्य महाभाग ! फलस्येदं च लक्षणम् ॥११॥
इदं भाति गिरीशस्य ग्रामस्येदं च लक्षणम् । पश्य पश्य शुभं लक्ष्म चन्द्रिकाया मनोहरम् ॥१२॥
मध्यमा शङ्खचिह्नेन चक्रचिह्नेन चापराः । अङ्गुल्यो वामहस्तस्य शोभमाना मनोहराः ॥१३॥
अथ त्वं दिव्यचिह्नानि सुतायाः सुमहामते! । वामतश्चोर्द्ध्वरेखायाः पश्य दक्षकराम्बुजे ॥१४॥
मूले कङ्कणस्येदं कदम्बस्य च लक्ष्मणम् । ततश्चापस्य विज्ञेयमङ्कुशस्य ततः परम् ॥१५॥
मलिन्दस्य तुलायाश्च तथा केशस्य लाञ्छनम् । नृमुण्डस्य ततः पश्य स्यन्दनस्य ततः शुभम् ॥१६॥
घटस्येदं शुभं चिह्नं मणिमाल्यस्य वै ततः । शक्तेस्तोमरस्येदं पयोधेर्भूपशेखर ! ॥१७॥
लाञ्छनं रत्नगर्भायाः शुकस्येदमतः परम् । केतोः शुभमिदं पश्य नलिन्याः पङ्कजस्य च ॥१८॥
दक्षिणे चोर्द्ध्वरेखायाः शुभं शङ्खस्य लक्षणम् । भानुविम्बस्य विज्ञेयमिदं तूर्द्ध्वं दरस्य च ॥१९॥

इस अष्टकोणके चिह्नको अवलोकन कीजिये पुनः मङ्गलमय फूल और रम्भा (केला) चिह्नका दर्शन कीजिये ॥१०॥

हे महाभाग ! उसके बाद इस किरीट चिह्नका, आगे माला चिह्नका पुनः इस फल चिह्नका आप भली प्रकार दर्शन कीजिये ॥११॥

यह गिरिराजका चिह्न और ग्रामका चिह्न प्रतीत हो रहा है । हे राजन् चन्द्रिकाके इस मनोहर मङ्गलकारी चिह्नका दर्शन कीजिये ॥१२॥

श्रीललीजीके इस बायें हाथकी मध्यमा शङ्ख चिह्नसे और शेष चार अङ्गुलियाँ चक्रचिह्न से सुशोभित मनको हरण कर रही हैं ॥॥१३॥ हे सुमहामते ! अब आप श्रीललीजीके दाहिने हाथकी ऊर्ध्वरेखाके बायें भागके दिव्य चिह्नोंका दर्शन कीजिये ॥१४॥

ऊर्ध्वरेखाके मूल भागमें यह कङ्कणका चिह्न और यह कदम्बका चिह्न है तत्पश्चात् धनुष का और उसके आगे अङ्कुशका चिह्न जानना चाहिये ॥१५॥

आगे भौंरेका चिह्न और तुलाका चिह्न है तथा केशका व नर मुण्डका चिह्न है, उसके पश्चात् मङ्गलमय रथके चिह्नका दर्शन कीजिये ॥१६॥

उसके आगे यह घड़ेका शुभ चिह्न है उसके पश्चात् मणिमालाका चिह्न है । हे भूपशेखर (राजशिरोमणे !) यह शक्तिका, यह तोमरका और यह समुद्रका चिह्न है ॥१७॥

यह चिह्न पृथिवीका है इसके आगे यह तोतेका और यह ध्वजाका मङ्गलमय चिह्न है, कमल समूहसे युक्त इस सरोवरका तथा इस कमल चिह्नका आप दर्शन कीजिये ॥१८॥

ऊर्द्ध्व रेखाके दाहिनी ओर यह शङ्खका चिह्न है, और शङ्ख चिह्नसे ऊपरकी ओर इसे सूर्य विम्बका चिह्न जानिये ॥१९॥

पारिजातस्य वै चेदं मञ्जर्या इदमेव च । अशोकस्य मृगस्येदं मीनस्य शुभलाञ्छनम् ॥२०॥
इदं तु मृगराजस्य पश्य लक्ष्म ततः परम् । इदमृच्छस्य निर्झर्याश्चिह्नमेतदुदीक्ष्यताम् ॥२१॥
तत ऊर्ध्वं सुधाकुण्डमिदं पश्य मनोहरम् । बालग्लाव इदं तस्मात्परं चिह्नं न दृश्यते ॥२२॥
अस्या दक्षकराङ्गुल्यश्चतस्रश्चक्रचिह्निताः । मध्यमा शङ्खचिह्नेन यथा वामकरस्य च ॥२३॥
आसां रुचिररेखानां फलं वक्तुं न शक्यते । शेषवाणीविरिञ्च्याद्यैर्यतद्भिः कल्पकोटिभिः ॥२४॥
तदहं किं प्रवक्ष्यामि मुखेनैकेन मूढधीः । कालेनाल्पीयसा राजंस्त्वयैवैतद्विचार्यताम् ॥२५॥
सफलस्तव सङ्कल्पो नात्र कार्या विचारणा । इयं सर्वेश्वरी साक्षात्सुताभावमुपाश्रिता ॥२६॥
सीतेति नाम विख्यातं प्रधानं यच्छ्रुतावपि । इयं तेनैव संस्कार्या नामसंस्कारकर्मणि ॥२७॥
वैदेही जानकी सीता मैथिली जनकात्मजा । भूमिजाऽयोनिजा वीर्यशुल्का सुनयनासुता ॥२८॥
यज्ञवेदिसमुद्भूता सीरध्वजप्रियात्मजा । मिथिलेशकुमारी च श्रीमिथिलेशनन्दिनी ॥२९॥

यह चिह्न कल्पवृक्षका और यह मञ्जरीका चिह्न है, यह मृगका और यह चिह्न अशोकका तथा यह शुभ चिह्न मछलीका है ॥२०॥

देखिए यह सिंह का चिह्न है उसके आगे आप नक्षत्र का और इस नदी चिह्नका दर्शन कीजिये ॥२१॥ नदी चिह्नसे ऊपर मनोहर इस सुधाकुण्डका तथा बालचन्द्र (द्वितीया तिथिका चन्द्रमा)चिह्न का आप दर्शन कीजिये। इससे आगे और कोई चिह्न नहीं दिखाई देता है ॥२२॥

श्रीललीजूके दाहिने हाथकी चारो अँगुलियाँ चक्र चिह्नसे चिह्नित हैं और मध्यमा अँगुली बायें हाथ की मध्यमाके समान शङ्खके चिह्नसे सुशोभित है ॥२३॥

श्रीललीजीके हस्तारविन्दकी इन मनोहर रेखाओंके फलको करोड़ों कल्प तक प्रयत्न-शील रहकर हजारमुखवाले शेषजी, अनन्तमुखवाली सरस्वतीजी तथा चारमुखवाले ब्रह्माजी आदि भी वर्णन नहीं कर सकते ॥२४॥

वह मैं मूढ़ बुद्धि, एक मुखसे स्वल्पकालमें, क्या वर्णन करूँ? हे राजन्! यह आप ही विचार कीजिये ॥२५॥ आपका सङ्कल्प सफल है, इसमें कुछ भी सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। ये आपके "सुताभाव" को ग्रहण किये हुई साक्षात् श्री सर्वेश्वरीजी ही हैं ॥२६॥

एतदर्थ नाम संस्कारके समय इनका जो वेदोमें विख्यात प्रधान "सीता" नाम है वही रखना चाहिये ॥२७॥

श्रीवैदेहीजी, श्रीजानकीजी, श्रीसीताजी, श्रीमैथिलीजी, श्रीजनकात्मजाजी, श्रीभूमिजाजी, श्रीअयोनिजाजी, श्रीवीर्यशुल्काजी, श्रीसुनयनानन्दिनीजी, ॥२८॥ श्रीयज्ञवेदिसमुद्भूताजी, श्रीसीर-ध्वजप्रियात्मजा (श्रीसुनयनात्मजा) जी, श्रीमिथिलेशकुमारीजी, श्रीमिथिलेशनन्दिनीजी ॥२९॥

निमिवंशसमुत्पन्ना विदेहतनया शुभा । पुण्यश्लोका परानन्दाऽऽह्लादिनी श्रीर्विदेहजा ॥३०॥
नामान्येतानि मुख्यानि सुतायास्तव सुव्रत! । ऋषिभिः परिगीतानि भविष्यन्ति न संशयः ॥३१॥
तव कीर्त्तिपताकेयं त्रिलोकीं मूकयिष्यति । प्रशंसां बिद्धि नैवैतां सत्यमेव ब्रवीमि ते ॥३२॥
देवास्तु सर्व एवेह ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । अजस्रमागमिष्यन्ति गुप्तप्रकटरूपिणः ॥३३॥
प्रार्थयिष्यन्ति ते सर्वे त्वां सुदुर्लभदर्शनाः । दर्शनार्थं महाभाग! सुमुख्या भिक्षुका इव ॥३४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां लोका नो रुचयेऽधुना । वरुणेन्द्रकुबेराणां तथा ते पश्यतां पुरीम् ॥३५॥
नोत्सवे व्यग्रता जातैतादृशी रामजन्मनि । यथाऽस्या जनुषेदानीं चिन्मात्रायाः कृपादृशः ॥३६॥

भाग्योदयोऽस्ति नरदेव ! भवत्पुरस्य वृष्टिर्भविव्यनुदिनं खलु तत्सुखस्य ।
ध्यानास्पदं न यदभूद्यततामिदानीमप्यब्जनाभविधिशम्भुफणीश्वराणाम् ॥३७॥

श्रीनिमिवंश समुत्पन्नाजी, श्रीविदेहतनयाजी, श्रीशुभाजी, श्रीपुण्यश्लोकाजी, श्रीपरानन्दाजी, श्रीआह्लादिनी जी, श्रीविदेहजाजी, तथा श्रीजी ॥३०॥

हे सुव्रत (उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले) ! ऋषिवृन्द आपकी श्रीललीजीके इन मुख्य नामों का दशो दिशाओंमें कथन करेंगे, इसमें कुछभी सन्देह नहीं अर्थात् यह ध्रुव सिद्धान्त है ॥३१॥

आपकी यह कीर्त्तिरूपी पताका तीनों लोकोंको अवाक् अर्थात् आश्चर्य मुग्ध कर देगी, यह मैं आपसे सत्यही कह रहा हूँ, इसे आप प्रशंसा मात्र, न जानियेगा । अत एव गुप्त व प्रकट रूपसे ब्रह्मा विष्णु आदि सभी देवगण, आपके यहाँ सदा ही आते रहेंगे ॥३२॥३३॥

हे महाभाग! और वे अत्यन्त दुर्लभ दर्शन(ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि) भिखारियोंके सदृश दीन-भाव पूर्वक आपसे आपकी सुन्दरमुखी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये प्रार्थना करते रहेंगे ॥३४॥

इस समय जिन्हें आपकी पुरीके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त है, उन्हें न ब्रह्म लोक रुचिकर है, न विष्णुलोक, न शिवलोक, न बरुण, न इन्द्र, तथा न कुबेरका लोक ही ॥३५॥

हे राजन्! श्रीरामलालजूके भी जन्मोत्सवमें दर्शनोंके लिये इस प्रकार की छटपटी प्राणियोंमें नहीं हुई थी. जैसी इस समय परब्रह्मस्वरूपा, कृपापूर्ण कटाक्षवाली इन श्रीललीजीके जन्ममें दर्शनोंके लिये प्रेम भक्ति रसोत्पन्ना व्यग्रता अर्थात् छटपटी दृष्टिगोचर हो रही है ॥३६॥

हे नरदेव ! आज तक जो सुख प्रयत्नशील भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव. भगवान् शेषजीके ध्यानका विषय भी न हो सका, उसी सुखकी अत्यधिक महान् वर्षा आपके यहाँ होगी । अतएव इस समय आपके ही पुरका सौभाग्य उदय है ॥३७॥

नूनं कृतार्थमिदमस्ति महीतलं वै त्वत्पुत्रिकापरममङ्गलजन्मनाऽद्य ।
लोका भवन्तु सकलाः ससुखं कृतार्था अस्यैव संस्तवनचिन्तनकीर्त्तनैश्च ॥३८॥

पुत्रो महीप ! सरसीरुहजन्मनोऽहं
न स्यान्मृषा यदुदितं भवते मयैव ।
मन्दस्मिताऽस्तु शरणं मम वारिजाङ्घ्रि-
र्भद्रं हि तेऽस्तु नियताञ्जलये सदैव ॥३९॥

संस्पृश्य पादजलजाततलं स्वमूर्द्ध्ने-
त्युक्त्वा पुनस्तु भगवानृषिनारदोऽसौ ।
कृत्वा विधिं सकलमेव यथावकाशं
ह्यन्तर्दधे प्रिय ! विलोकयतो नृपस्य ॥४०॥

आज आपकी श्रीललीजीके परम मङ्गलमय प्राकटचसे यह पृथिवीतल निःसन्देह कृतकृत्य हो गया है, अब तो आपके इस पुरकी स्तुति, चिन्तन, कीर्त्तनके द्वारा अन्य सभी लोक भी अनायास कृतार्थ हो जावें अर्थात् अपनी कृतार्थता प्राप्तिके लिये आपके इसी पुर (श्रीमिथिलाजी) की वे स्तुति करें, इसीका ध्यान करें, और इसीका गुणगान करें ॥३८॥

हे महीप ! मैं कमलसे प्रकट हुये श्रीब्रह्माजीका पुत्र हूँ, अतः जो आपसे कह चुका हूँ, वह असत्य (झूठा) नहीं हो सकता। जिनके श्रीचरण, कमलके समान सुकोमल हैं और जो मन्द मन्द मुस्करा रही हैं, वे मेरी रक्षा करें तथा आप करबद्धजीके लिये सदा ही मङ्गल हो ॥३९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! वे ऋषि भगवान् नारदजी इस प्रकार (श्रीमिथिलेशजी महाराजसे) कहकर अपने मस्तकसे श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलके तलवोंका सम्यक् प्रकारसे स्पर्श करके तथा अवकाशानुसार परिक्रमा स्तुति आदि सभी विधियोंको पूरी करके, श्रीमिथिलेशजी महाराजके दर्शन करते हुये अन्तर्हित हो गये ॥४०॥

इत्येकत्रिंशतितमोऽध्यायः ।

अथोनचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

तान्त्रिक वेषधारी श्रीभोलेनाथजी पर श्रीकिशोरीजी की कृपा ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पित्रोर्वीक्ष्य मुखाम्भोजं जानकी कुतुकान्वितम् । मन्दं रुरोद भावज्ञा शरच्चन्द्रनिभानना ॥१॥
अम्बा सुनयना तर्हि ध्वस्तैश्वर्यमतिर्द्रुतम् । विह्वला क्रोडमादाय ददौ तस्या मुखे स्तनम् ॥२॥
न पपौ क्षीरमिन्द्वास्या न च तत्याज रोदनम् । चिन्तामाप तदा राज्ञी कार्यमत्रेति किं मया ॥३॥
कान्तिमत्या कृतां युक्तिं निष्फलत्वमुपागताम् । अवलोक्य महाराज्ञी शुचा भूपमुवाच ह ॥४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

शरीरे दृश्यते व्याधिः पुत्रिकाया न मे प्रिय ! रुदत्येषा किमर्थं तु न चैव पिवति स्तनम् ॥५॥
दृष्टिदोषोद्भवो व्याधिर्हेतुरत्रावगम्यते । तत आनीयतां कोऽपि तान्त्रिको व्याधिशान्तये ॥६॥
न विलम्बोऽत्र कर्तव्यो भवता प्राणवल्लभ ! अर्द्धविक्षिप्तबुद्धिर्मे प्रबभूवाधुनैव हि ॥७॥

हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके व श्रीपिताजीके आश्चर्य युक्त मुखचन्द्रको अवलोकन करके उनके भावको समझने वाली शरदऋतुके समान प्रकाशमान जगदाह्लादवर्द्धक मुखवाली(श्रीकिशोरीजी) उनके ऐश्वर्य भावको हरण करनेके लिये मन्द-मन्द रोने लगीं ॥१॥

श्रीकिशोरीजीके रुदन लीला प्रारम्भ करतेही श्रीसुनयना अम्बाजीकी ऐश्वर्यबुद्धि नष्ट हो गयी, अतः विह्वला होकर उन्होंने श्रीकिशोरीजीको तुरंत गोदमें ले, उनके श्रीमुखारविन्दमें अपना स्तन दे दिया ॥२॥

परन्तु श्रीचन्द्रमुखीजीने न दूधका ही पान किया और न रोना ही बन्द किया इस हेतु श्रीसुनयना अम्बाजीको बड़ी चिन्ता हुई, कि श्रीललीजीको दूध पिलाने और हँसानेके लिये मैं क्या कर्त्तव्य करूँ ? ॥३॥

श्रीकान्तिमती अम्बाजीकी युक्तिकोभी निष्फल हुई देखकर श्रीसुनयनाअम्बाजी शोक पूर्वक महाराजसे बोलीं ॥४॥ हे प्यारे ! श्रीललीजीके शरीरमें कोईभी व्याधि नहीं दिखलाई दे रही है, फिर ये किस लिये रो रही हैं, और क्यों स्तनपान नहीं करती हैं ? ॥५॥

इसका कारण दृष्टि दोष (नजर) ही ज्ञात हो रहा है, इस हेतु उसके निवारणके लिये किसी तान्त्रिक (तन्त्र शास्त्रके विद्वान) को बुलाना चाहिए ॥६॥

हे प्राणवल्लभजू ! तान्त्रिकके बुलाने में अब आपको विलम्ब करना उचित नहीं है, क्योंकि इतनी ही देर में मेरी बुद्धि, आधी पागल हो चुकी है ॥७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

विह्वलाक्षस्तथेत्युक्त्वा नरदेवशिखामणिः । आजगाम बहिर्द्वारि तान्त्रिकान्वेषणेच्छया ॥८॥
एतस्मिन्नेव काले तु शङ्करो भगवान् भवः । प्रविवेश पुरं तस्मिन् प्रस्थिते ब्रह्मसम्भवे ॥९॥
दर्शनार्थं ततो देवः सुताया मिथिलेशितुः । विग्रहं वेष्टितं चक्रे कन्थया वार्द्धकेन च ॥१०॥

श्रीशिव उवाच ।

तान्त्रिको बहुकालीनः शिशूनां सर्वकष्टहा । आगतो दैवयोगेन व्रजाम्यद्यैव वै पुनः ॥११॥
अतोऽत्रत्यास्तु वै लोका गुणेनैवादभुतेन मे । कुर्वन्तु शिशून्स्वान्स्वान्सर्वव्याधिविवर्जितान् ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति विज्ञापनं कुर्वन्वीथ्यां वीथ्यां पुरस्य मे । सप्तमावरणस्यैव समीपं विचचार सः ॥१३॥
दर्शितानां शिशूनां च सर्वबाधा व्यशोधयत् । कर्मणा तेन तत्ख्यातिः क्रमादन्तः पुरं गता ॥१४॥
तदाकर्ण्य महाराजः प्रेषयामास दक्षिकाम् । समानेतुं हि तं वृद्धं सखीं कार्यविशारदाम् ॥१५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके इस कथनको सुनकर, उनसे ऐसा ही करेंगे कहकर विह्वल नेत्र हो, राजशिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराज तान्त्रिककी खोज करानेकी इच्छासे बाहर द्वारपर आगये ॥८॥

उसी समय भगवान् श्रीशङ्करजीने श्रीनारदजीके चले जानेपर पुरमें प्रवेश किया ॥९॥

तदनन्तर श्रीभोलेनाथजी श्रीमिथिलेशदुलारीजीके दर्शनोंके लिये गुदड़ीसे ढका हुआ वृद्धावस्था से युक्त अपना रूप बनाया ॥१०॥ भगवान् शिवजी बोलेः—भाइयो ! मैं शिशुओंके समस्त कष्टोंका बिनाश करनेवाला बहुत पुराना सिद्ध तान्त्रिक हूँ, आज दैवयोगसे इस नगर मेंआगया हूँ और आज ही पुनः वापस चला जाऊँगा ॥११॥

अत एव यहाँ के निवासी मेरे इस (तन्त्रज्ञानरूपी) अद्भुत गुणसे अपने २ शिशुओंको समस्त व्याधियोंसे मुक्त करा लें ॥१२॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे! भगवान् सदा शिवजी इस प्रकार मेरे नगरकी गली-गलीमें विज्ञापन करते हुए नगरके सातवें राजावरणके समीपमें विचरने लगे ॥१३॥

तान्त्रिक महाराजकी इस घोषणाको सुन कर अनेक व्याधि पीड़ित शिशुओंके माता पिता अपने अपने शिशुओंको दिखलाने लगे। तान्त्रिक महाराज भी उनकी सभी बाधाओंको तुरन्त हरण करने लगे। इस चमत्कारी प्रभावके द्वारा श्रीतान्त्रिक महाराजकी प्रसिद्धि प्रथम आवरण से दूसरेमें, दूसरेसे तीसरेमें और तीसरेसे क्रमशः बढ़ती हुई सातवें आवरणमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें जा पहुँची ॥१४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने प्रसिद्धि श्रवण करके उन बूढ़े (श्रीतान्त्रिक) महाराजको बुलानेके लिये कार्य-कुशल अपनी दक्षिका सखी को भेजा ॥१५॥

सा तमभ्येत्य पश्यन्ती परितः प्रणता सती । उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं मुदिता नियताञ्जलिः ॥१६॥

श्रीदक्षिकोवाच ।

तान्त्रिकोऽसि यदि ब्रह्मञ्छिशूनां सर्वकष्टहा । पश्य राजसुतां साकं प्रयायान्तः पुरं मया ॥१७॥

समाह्वयति राजा त्वां तदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम् । विलम्बो नात्र कर्तव्यस्त्वया लोकहितैषिणा ॥१८॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

अहमाहूयमानोऽस्मि ? राजपुत्रीक्षणाय चेत् । सत्यमेव त्वया सार्द्धं गम्यते गम्यतां मया ॥१९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वा तान्त्रिको वृद्धो मोदमानमनाः प्रियः ! तूर्णमेव तया साकमाजगाम नृपालयम् ॥२०॥

राजा तं तु नमस्कृत्य कृताञ्जलिपुटः सुधीः । स्वयमेवानयामास यत्र राज्ञी स्म चिन्तया ॥२१॥

सा समुत्थाय तं वृद्धं स्वागतेनाभिनन्द्य च । प्रणम्य शिरसा तस्मै दर्शयामास पुत्रिकाम् ॥२२॥

स तु दृष्ट्वैव तद्रूपं स्वामिन्या मम शैशवम् । तत्क्षणं शङ्करो देवः प्रेममूर्च्छामुपागमत् ॥२३॥

तान्त्रिकस्यापि तद्रूपं दृष्ट्वा मे जननी तदा । समुवाच वचो भूयः पितरं मेऽतिकातरा ॥२४॥

चारो ओर खोजती हुई श्रीदक्षिकाजी श्रीतान्त्रिक महाराजके पास पहुँच कर उन्हें प्रणाम करके मुदित हो गयीं और हाथ जोड़े हुई, प्रेमपूर्वक यह विनीत वचन बोलीं ॥१६॥

हे ब्रह्मन्! यदि आप वास्तवमें शिशुओंके सर्वकष्ट हरने वाले सिद्ध तान्त्रिक हैं तो, मेरे साथ अन्तःपुर पधारकर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजीको देख लीजिये ॥१७॥

उनको देखनेके लियेही आपको महाराज, बुला रहे हैं, इसी लिये हमें उन्होंने आपके पास भेजा हैं, अतः आपको चलनेमें विलम्ब करना उचित नहीं है क्योंकि आप तो समस्त लोकोंका हित चाहने वाले हैं इस हेतु शीघ्र अन्तःपुर पधारकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजका हित सिद्ध कीजिये ॥१८॥

श्रीतान्त्रिक महाराज बोले, अरी सखी ! श्रीमिथिलेश–दुलारीजीको देखनेके लिये क्या मेरा बुलावा हो रहा है? यदि यह सत्य है तो मैं आपके साथ चलता हूँ आप (अन्तःपुर) चलिये ॥१९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! वे बूढ़े तान्त्रिक महाराज उस सखीसे इतना कहकर श्रीकिशोरीजी दर्शनोंकी आशासे मनही मन आनन्दित होते हुये उसके सहित राजभवन पहुँच गए २०

श्रीमिथिलेशजी महाराजने नमस्कार करके श्रीतान्त्रिक महाराजको हाथ जोड़े हुये स्वयं वहाँ ले गये जहाँ श्रीसुनयना अम्बाजी चिन्तासे ग्रस्त विराज रही थीं ॥२१॥

श्रीसुनयना अम्बाजीने उठकर स्वागतके द्वारा उन वृद्ध श्रीतान्त्रिक महाराजका अभिनन्दन करके तथा सिरके द्वारा उन्हें प्रणाम कर श्रीकिशोरीजीको दिखलाया ॥२२॥

भगवान् शङ्कर (तान्त्रिक) जी महाराज मेरी श्रीस्वामिनीजूके उस शिशुरूपका दर्शन करते ही तत्क्षण प्रेममूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥२३॥ श्रीसुनयना अम्बाजी तब श्रीतान्त्रिक महाराजकी उस दशाको देखकर श्रीपिताजीसे अति कातर हो बोलीं ॥२४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

को व्याधिरत्र संजातः मद्गेहे सुमहान् बली । येन युक्ताऽस्ति मे पुत्री प्राणैरपि गरीयसी ॥२५॥
तां चिकित्सितुमायातो योऽधुना तान्त्रिको महान् । सोऽपि नूनं तदाक्रान्तो नष्टसञ्ज्ञ इवेक्ष्यते ॥२६॥
क उपायोऽत्र कर्त्तव्यस्तान्त्रिकव्याधिशान्तये । न म्रियेत यथा चायं ब्राह्मणो मम सद्मनि ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमेव ततस्तस्यां वदन्त्यां कृपणं वचः । लब्धदेहस्मृतिर्देवो बभूवोन्मीलितेक्षणः ॥२८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

तमपृच्छन्महाराज्ञी कच्चित्तान्त्रिकसत्तम ! । सर्वव्याधिहरं व्याधिर्नैवत्वामपि मुञ्चति ॥२९॥
दिष्टच्या व्याधिविमुक्तोऽसि दिष्टच्या पश्यामि जीवितम् ।
दिष्टच्या न च मृतोऽस्यत्र व्याधिपीडाप्रपीडितः ॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तन्निशम्य वचो वृद्धस्तान्त्रिको वाक्यकोविदः । महाराज्ञीमुवाचेदं शृणु मातर्वचो मम ॥३१॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

सर्वव्याधिविमुक्तोऽहं वृद्धः सर्वत्र सर्वदा । तन्त्रमन्त्रप्रभावेण गुरुदेवप्रसादतः ॥३२॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीः–हे नाथ ! यह कौन महाबलवान् व्याधि हमारे महलमें उत्पन्न हो गयी है, जिसने हमारीप्राणोंसे परमप्यारी श्रीललीजीको पकड़ लिया है ॥२५॥

उन श्रीललीजीकी चिकित्सा (दवा) करनेके लिए जो ये महान् प्रसिद्ध तान्त्रिकजी महाराज पधारे, उन्हें भी इस दुष्ट व्याधिने पकड़ लिया, जिससे ये मृतक तुल्य दिखाई दे रहे हैं। जो समस्त व्याधियोंको क्षणमात्रमें स्वयं नष्ट कर देते थे उन्हें भी इस व्याधिने नहीं छोड़ा, यह कितने दुःख की बात है ? ॥२६॥ हे प्यारे ! अब इन श्रीतान्त्रिक महाराजकी व्याधि-निवृत्तिके लिये कौनसा उपाय किया जाये ? जिससे यह ब्राह्मण मेरे महलमें न मरे ॥२७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं– हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके इस प्रकार दुःखपूर्ण वचनोंके कहते ही श्रीभोलेनाथजीको अपने देहकी सुधि आगयी अतः उन्होंने आँखे खोलीं ॥२८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं–हे श्रीतान्त्रिक शिरोमणि महाराज ! क्या सम्पूर्ण व्याधियों को हरनेवाले आपको भी, व्याधि नहीं छोड़ती है ? अर्थात् क्या आपको भी पकड़ लेती है ? ॥२९॥

बड़े सौभाग्य की बात है, जो आपको व्याधिने छोड़ दिया, आज सौभाग्यवश मैं आपको इस समय जीवित देख रही हूँ, मेरे बड़े सौभाग्यकी बात है, जो आप व्याधिकी पीड़ासे पीड़ित होकर यहीं (मेरे महल में) मर नहीं गये ॥३०॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! वाणीका अर्थ समझने में परम चतुर, वृद्ध श्रीतान्त्रिक महाराज महारानी (श्रीसुनयना अम्बा)जी से बोले-अरी मैया! मेरे वचनोंको श्रवण करें ॥३१॥ मैं वृद्ध, गुरुदेवकी कृपा और तन्त्र मन्त्रके प्रभावसे सदा सर्वत्र सम्पूर्ण व्याधियों से मुक्त हूँ, अतः मुझे कोई भी व्याधि पकड़ नहीं सकती ॥३२॥

ध्यानयोगेऽपि मे मातर्व्याधिशङ्का त्वया कृता। धन्यं तवास्ति माधुर्यं महासौभाग्यभूषिते ॥३३॥

श्रीतान्त्रिक उवाच।

दृष्ट्वा त्वत्पुत्रिकाव्याधिं गुरुदेवः स्मृतो मया। तेन यद्दर्शितं तन्त्रं तत्तु मे शिरसि स्थितम् ॥३४॥

तेनेयं व्याधिनिर्मुक्ता क्रियते पश्य तत्क्षणम्। तप्तकाञ्चनवर्णाङ्गी मया तन्त्रविपश्चिता ॥३५॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्युक्त्वा त्रिःपरिक्रम्य सोऽप्यस्या भगवाञ्छिवः। स्वशिरः पादपाथोजतलयोः संन्यवेशयत् ॥३६॥

तन्निरीक्ष्य महाराज्ञी जगादेदं हि तं वचः। किमेतत्क्रियते कर्म त्वया योगिन्नशोभनम् ॥३७॥

त्वं वृद्धस्तान्त्रिको विद्वान् ब्राह्मणो योगिसत्तमः। अहं क्षात्रकुलोत्पन्ना मदीयैषा सुता यतः ॥३८॥

आशीर्वादप्रदानं हि तस्यै परमशोभनम्। त्वादृशां योगिनामस्या न तु पादाभिवादनम् ॥३९॥

श्रीअम्बाजी यह सुनकर उनकी ओर देखने लगीं कि अभी तो व्याधिकी पीड़ासे मर रहे थे और कहते हैं कि हमको कोई भी व्याधि पकड़ नहीं सकती। श्रीअम्बाजीके इस हृदयगत भावको समझकर श्रीतान्त्रिक महाराज (भोलेनाथ) जी बोले-हे महासौभाग्यभूषिते श्रीअम्बाजी! आपके माधुर्य भावको धन्यवाद है, जिसके कारण आप मेरे ध्यान-योगमें भी व्याधिकी शङ्का कर बैठीं। इस पर श्रीअम्बाजी पुनः शङ्का प्रकट करती हैं कि-हे महाराज! मैंने आपको अपनी श्रीललीजीकी व्याधिहरण करनेके लिये बुलाया था न कि ध्यान करनेके लिये? जो यहाँ आप ध्यान करने बैठ गये, अर्थात् इस समय ध्यान करनेका कोई प्रसङ्ग ही न था, इस पर श्रीभोलेनाथजी बोले ॥३३॥

अरी मइया! आपकी श्रीललीजीकी व्याधिको देखकर उसकी निवृत्तिके लिये उपायकी जिज्ञासासे मैंने अपने श्रीगुरुदेवका ध्यान किया था, उन्होंने ध्यानमें जो तन्त्र मुझे दिखलाया है, वह मेरे सिरमें विराजमान है ॥३४॥

मैया! देखिये, तन्त्र-शास्त्रको जानने वाला मैं उसी तन्त्रके प्रभावसे तपाये सुवर्णके समान गौर अङ्ग वाली आपकी श्रीललीजीको अभी तत्क्षण व्याधि मुक्त किये देता हूं ॥३५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे। भगवान् शिव (तान्त्रिक) जी श्रीअम्बाजीसे ऐसा कहकर तथा तीन बार परिक्रमा करके इन श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलके तलवोंमें, अपना सिर रख दिये ॥३६॥ वह देखकर महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी श्रीतान्त्रिक महाराजसे बोलीं-हे योगीजी महाराज! यह क्या आप अयोग्य कर्म कर रहे हैं? ॥३७॥

क्योंकि आप एक तो वृद्ध दूसरे तन्त्र-शास्त्रके विद्वान्, तीसरे ब्राह्मण, चौथे परम योगी हैं हैं और मेरा जन्म क्षत्रिय वंशमें हुआ है अतः मेरी श्रीललीजी क्षत्रिय वंशकी हैं ॥३८॥

एतदर्थ आप सरीखे योगियोंको इन श्रीललीजूके लिये आशीर्वाद प्रदान करनाही परम मङ्गलकारी व उत्तम है किन्तु चरणोंमें प्रणाम करना नहीं ॥३९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तामुवाच ततो योगी मातरेतद्ब्रवीषि किम् । मया तन्त्रविधिश्चायं क्रियते नाभिवादनम् ॥४०॥
प्रत्यवायकरं विद्धि कुर्वाणे तान्त्रिके विधौ । शब्दस्योच्चारणं मातस्ततस्तूष्णीमुपाव्रज ॥४१॥
इदानीमेव संहृष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा । कुलोद्योतकरीयं ते पयःपानं विधास्यति ॥४२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वा ततो मौनी यतचित्तो महेश्वरः । तुष्टुवे मनसैवेनां वृद्धतान्त्रिवेषधृक् ॥४३॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

जय जय शिशुरूपे ! तप्तचामीकराभे ! विमलकमलनेत्रे ! पूर्णशीतांशुवक्त्रे ! ।
निखिलभुवनजीवानन्दिनिःश्रेयसे श्रीजनकनृपतिगेहे राजमाने प्रसीद ॥४४॥
विधिहरिसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं श्रुतिशिरसि सुगीतं नेति नेतीति शब्दैः ।
अहह ! ससुखमाद्यं रूपमेतत्त्वदीयं नृपतिभवनमध्ये लोचनाभ्यामपश्यम् ॥४५॥
परमसभगमेतत्पादपद्मं भवत्या निखिलभुवनतीर्थस्थानमूलस्वरूपम् ।
विबुधतरुकिरीटच्छत्रसिंहासनस्रग्ध्वजरथकुलिशाङ्कैः शोभमानं गतिर्नः ॥४६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीको रुष्ट होते देखकर योगी (श्रीतान्त्रिक) महाराज बोलेः—अरी मइया ! आप यह क्या कह रही हैं? मैं श्रीललीजीके श्रीचरणकमलों को प्रणाम नहीं कर रहा हूँ, मैं तो अपने तन्त्र की विधि कर रहा हूँ ॥४०॥

मैया ! तन्त्रकी विधि करते समय बोलना विघ्नकारी जानिये, इस हेतु आप बोलिये नहीं, इस समय मौन रहें ॥४१॥ मेरे तन्त्रके प्रभावसे वंश उजागरी आपकी ये श्रीललीजी पूर्ण हर्षित हो मुस्कराती हुई इसी समय पयः (दूध) पान करेंगी ॥४२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे! इस प्रकार श्रीअम्बाजीसे कहकर बूढ़े तान्त्रिकका वेषधारी महेश्वर (श्रीभोलेनाथ) जी महाराज मौन व एकाग्रचित्त होकर मन ही मन श्रीकिशोरीजीकी स्तुति करने लगे ॥४३॥ हे शिशु रूपको धारण किये हुई तपाये सोनेके समान गौर कान्ति, विमल कमलके समान नेत्र व पूर्ण चन्द्रके सदृश मुखवाली श्रीकिशोरीजू! आपकी जयहो जयहो। समस्त भुवनके जीवों के आनन्द व परममङ्गल (भगवत्प्राप्ति) के लिये श्रीजनकजी महाराजके महलमें खेलती हुई आप, मुझ पर प्रसन्न हों ॥४४॥

ब्रह्मा, विष्णु, सनकादिकोंके ध्यान करने को भी अत्यन्त दूर, उपनिषदोंके द्वारा नेति नेति अर्थात् ऐसा ही नहीं, इससे भी विलक्षण, इतना ही नहीं, इससे भी परे इत्यादि शब्दों के द्वारा गाये हुये, आपके इस सर्वोत्कृष्ट रूपका दर्शन मुझे श्रीमिथिलेशजी महाराज के भवनमें इन नेत्रोंसे अनायास प्राप्त हुआ ॥४५॥ समस्त भुवनों के तीर्थ समूहोंका कारण स्वरूप कल्प-वृक्ष, किरीट, छत्र, सिंहासन, जयमाल, ध्वज रथ, वज्र, आदि दिव्य चिह्नोंसे शोभायमान आपका यह श्रीचरण-कमल हम आश्रित वर्गकी रक्षा करे ॥४६॥

दरविकसितनेत्रं पूर्णराकेशवक्त्रं ललितसुभगनासं स्मेरविम्बाधरोष्ठम् ।
मुकुरकलकपोलं स्वर्णशुक्त्याभकर्णं रुचिरकरपदाब्जं रूपमिष्टं ममैतत् ॥४७।
मयि नगरमुपेते दर्शनोपायमूढे धियमुरसि विकास्याथानयस्त्वत्सकाशम् ।
अहह ! तव कृपा या युक्तिरूपाऽत्र सा वै भवतु सकललोकश्रेयसे मे यथाऽद्य ॥४८॥
जनकनृपतिकन्ये ! भावगम्ये ! शरण्ये ! विरचितशिशुरूपे ! सच्चिदानन्दमूर्ते !
उरसि मम सदैवानेन रूपेण कामं विहर ससुखमम्बोत्सङ्गसिंहासनस्थे ! ॥४९॥
नखरनिकरकान्तिः पादपाथोजयोस्ते हरतु सकलतापं ध्वान्तराशिं निरस्य ।
हृदयमनुनिविष्टा ध्यायतां पादपद्मं विजितरतिरमोमाभारतीश्रीर्नमस्ते ॥५०॥
सुभगविमलमातुर्मातुरुत्सङ्गगायाश्चरणकमलयोर्मे मस्तकं सन्निविष्टम् ।
किमुत तदधुनाऽहं वच्मि भाग्योदयं स्वं निरतिशयकृपाजं नौमि यस्या मुहुस्ताम् ॥५१॥

सुन्दर मनोहर नासिका, मुस्कान युक्त विम्बाफलके सदृश लाल अधर व ओठ, शीशा के समान सुन्दर प्रतिविम्ब (छाया) ग्रहण शील कपोल (गाल) और सोनेकी सीपीके तुल्य कान व छोटे छोटे कमलवत् सुकोमल हस्तपादों से युक्त, पूर्ण शरदऋतुके चन्द्रमाके समान परम आह्लाद-वर्धक मुखवाला आपका यह शिशु स्वरूप मुझे इष्ट अर्थात् परमप्रिय है ॥४७॥

नगर में प्रवेश करके दर्शनोंके उपाय में मेरे मूढ़ (कर्त्तव्य ज्ञान हीन) हो जानेपर आपकी युक्ति रूपा जिस कृपा ने, हृदय में वृद्ध तान्त्रिकका वेष धारण करने की बुद्धिका विकास किया, इधर महल में आपकी रुदन लीला प्रारम्भ कराके, मुझे आपके पास यहाँ महलमें ले आई है, अहह वही आपकी कृपा जैसे आज मेरे कल्याणके लिये सिद्ध हुई है, उसी प्रकार वह समस्त जीवों का कल्याण सिद्ध करे ॥४८॥

भावसे प्राप्त होने में सुलभ, हे श्रीमिथिलेशदुलारीजू ! प्राणिमात्रकी रक्षा करनेको समर्थ, शिशु रूप बनाये हुई, श्रीअम्बाजीकी गोदरूपी सिंहासनमें विराजमान, हे सत्, चित, आनन्द (ब्रह्म) स्वरूपाजो ! इसी शिशु स्वरूपसे आप अपनी इच्छानुसार मेरे हृदयमें सदैव सुखपूर्वक विहार करती रहें ॥४९॥ अपने सौन्दर्य माधुर्यसे रति, लक्ष्मी, उमा ब्रह्माणियोंकी शोभाको जीतने वाली हे श्रीकिशोरीजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ आपके श्रीचरणकमलोंके नख-समूहोंकी ज्योति, श्रीचरणकमलोंका ध्यान करनेवाले भक्तोंके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके अज्ञान रूपी अन्धकार समूहको नष्ट करके समस्त तापोंका हरण करे ॥५०॥

सुन्दर विमल दिव्य ऐश्वर्यकी स्थान स्वरूप, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजी हुई सर्वेश्वरीजी के श्रीचरणकमलोंमें मेरा मस्तक इस समय सम्यक् प्रकारसे रखा हुआ है, अतः मैं अपने इस सौभाग्योदय की क्या प्रशंसा करूँ ? जिनकी असीम कृपासे ही यह मेरा सौभाग्य उदय हुआ है, मैं उन्हीं श्रीकृपालूजी को बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥५१॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्येवं संस्तवं श्रुत्वा प्रेमसम्प्लावितात्मनः । मैथिली तस्य सन्तुष्टा भावपूर्तिं चकार सा ॥५२॥
ततस्तस्मिन्महादेवे शिवे लब्धे मनोरथे । उत्थिते स्वामिनीयं मे संप्रहृष्टमुखी बभौ ॥५३॥
तदुद्वीक्ष्य महाराज्ञीं तान्त्रिकोत्तमवेषधृक् । पश्यैतां व्याधिनिर्मुक्तां सुतां तन्त्रेण मेऽब्रवीत् ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तन्निशम्य तथा दृष्ट्वा सुप्रसन्नाननात्मजाम् । ददौ स्तनं मुदा राज्ञी पुत्रिकायाः शुभानने ॥५५॥
गृहीत्वा पाणिना तत्तु पपाविन्दुनिभानना । प्रजहर्ष ततो राज्ञी राजा चास्तमनोज्वरः ॥५६॥
महानन्दोत्सवो जातस्तदा भूपतिमन्दिरे । पिबन्त्यां दुग्धमप्यस्यां सुस्मितायामसुप्रिय ! ॥५७॥
ततो राजा च राज्ञी च संप्रहृष्टान्तरात्मना । तं प्रणम्य महात्मानं तान्त्रिकं प्रशशंसतुः ॥५८॥

श्रीदम्पत्यूचतुः ।

आवयोर्भाग्यशीलत्वात्साम्प्रतं ते शुभागमः । नमस्ते योगिनां श्रेष्ठ ! महातान्त्रिकसत्तम ॥५९॥
न मनुष्योऽसि देवोऽसि निश्चयो मे प्रजायते । कर्मणाऽनेन भो ब्रह्मन् ! यदृच्छाऽऽगमनेन च ॥६०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे! इस प्रकार प्रेम निमग्न चित्त(श्रीभोलेनाथ)जी की प्रार्थना सुन कर श्रीमिथिलेशनन्दिनी (श्रीकिशोरी)जी ने पूर्ण प्रसन्न होकर उनके भावकी पूर्त्ति करदी ॥५२॥

प्राप्त-मनोरथ, देवश्रेष्ठ, श्रीभोलेनाथजीके चरणोंसे उठते ही हमारी इन श्रीस्वामिनीजूका मुखारविन्द पूर्ण प्रसन्न हो गया ॥५३॥ ऐसा देखकर उत्तम तान्त्रिक वेष धारण किये हुये मङ्गल स्वरूप(श्रीभोलेनाथ) जी महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीसे बोले:–हे मैया! अपनी इन श्रीललीजी को देख लीजिये मेरे तन्त्रके प्रभावसे सब व्याधि मुक्त हो गयीं ॥५४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! यह सुनकर तथा श्रीललीजीको पूर्ण प्रसन्नमुखी देखकर रानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी ने उनके मुखमें अपना स्तन दे दिया ॥५५॥

उस स्तनको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर श्रीचन्द्रमुखीजी पीने लगीं, श्रीसुनयना अम्बाजी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने मानसिक ज्वरसे रहित हो परम हर्षको प्राप्त हुये ॥५६॥

हे प्राणप्यारे ! श्रीकिशोरीजीके मुस्काने और दूध पीते ही श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें महान् आनन्दोत्सव प्रकट हो गया ॥५७॥

उससे पूर्ण प्रसन्न हृदय श्रीमिथिलेशजी व श्रीसुनयनाअम्बाजी उन तान्त्रिक महात्माजी महाराजको प्रणाम करके उमकी प्रशंसा करने लगे ॥५८॥

हे तन्त्रशास्त्रके सुयोग्य विद्वानों में परम श्रेष्ठ ! योगिराज महाराज ! हमारे भाग्य की विशेषतासे ही इस समय आपका शुभागमन हुआ है, अतः आपको हम दोनों नमस्कार करते हैं ॥५९॥ हे ब्रह्मन् ! तन्त्रविद्या द्वारा श्रीललीजीको व्याधि निर्मुक्त कर देने वाले, आपके इस कर्म द्वारा तथा आवश्यकता पड़ते ही यहाँ अकस्मात् आ जानेसे, हमें पूर्ण निश्चय हो रहा है कि आप मनुष्य नहीं, देवता हैं ॥६०॥

प्रार्थयाव इदं किं ते करवाव समर्चनम् । कृपया तद्भवान्प्रीतो ह्यनुज्ञां दातुमर्हति ॥६१॥
इदं राज्यं पुरं कोषो भवनं हेमनिर्मितम् । यदन्यदपि मे तत्तद् भवतेऽस्ति समर्पितम् ॥६२॥
सोपहासं यदुक्तं स्यादप्रियं च तथैव ते । क्षन्तुमर्हसि योगेश ! तच्छोकातुरचेतसा ॥६३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्तं वचः श्लक्ष्णं दम्पत्योर्गद्गदाक्षरम् । प्रत्युवाच समाश्रुत्य छद्मवृद्धवपुः शिवः ॥६४॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

अहं तु तान्त्रिकः सिद्धो गुरुदेवानुकम्पया । यदृच्छया पुरं प्राप्तस्त्वयाऽऽहूतोऽत्र चागमम् ॥६५॥
प्राप्तया विद्यया पुत्री तावकीयं शुभानना । युवयोः पश्यतोरेव रोगमुक्ता मया कृता ॥६६॥
न काङ्क्षे युवयो राज्यं धनं कोषं पुरं गृहम् । युवाभ्यामर्प्यते कृत्स्नं यद् दत्थः स्म हि मे युवाम् ।६७।

श्रीदम्पत्यूचतुः ।

सन्तोषाय प्रभो ! ग्राह्यं भवता वस्तु किञ्चन । आवयोर्याचतोः पुत्रींशाश्वतायाव्यथांकुरु ॥६८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाशंसितो भूयः पुनस्ताभ्यां कृताञ्जली । उवाच भावसन्तुष्टस्तान्त्रिकोऽसौ सुदम्पती ॥६९॥

हम दोनों आपसे प्रार्थना करते हैं, कि आपकी क्या पूजा करें ? कृपा करके प्रसन्न हो हमें आज्ञा प्रदान कीजिये ॥६१॥

यह राज्य, पुर, कोष, सुवर्णसे बना हुआ भवन तथा और भी जो कुछ है, वह सब हमने आपके लिये समर्पित किया ॥६२॥ हे योगेश ! (योगपर पूर्णाधिकार रखनेवाले) श्रीतान्त्रिकजी महाराज ! शोक व्याकुल चित्तसे उपहास युक्त जो अप्रिय वचन, मेरे कहनेमें आगये हों, उन्हें क्षमा करना ही आपको उचित है ॥६३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! इस प्रकार विनम्रभाव युक्त दोनोंके गद्गद अक्षरोंमें कहे हुये वचनोंको सुनकर, बनावटी वृद्ध शरीरधारी श्रीभोलेनाथजी महाराज बोले:–॥६४॥

श्रीगुरुदेवजी की कृपासे मैं सिद्ध तान्त्रिक हूँ, अकस्मात् आपके पुरमें आया था, पुनः आपके बुलाने पर, यहाँ आ गया और आप दोनोंके देखते हुये, अपनी प्राप्त की हुई तन्त्रविद्याके द्वारा आपकी मङ्गलमुखी श्रीललीजीको मैंने व्याधिमुक्त कर दिया ॥६५॥६६॥

न मैं आपका राज्य चाहता हूँ न आपके धन कोष, पुर, महलकी ही इच्छा करता हूँ अत एव आप दोनोंने मुझे जो कुछ अर्पण किया, वह प्रसादीके रूपमें मैं आप दोनोंको वापसदेता हूँ ॥६७॥ दम्पती बोले:-हे प्रभो! हम दोनों याचकों के सन्तोषार्थ आपको कुछ न कुछ अवश्य स्वीकार करना चाहिये और श्रीललीजीको सदाके लिए सम्पूर्ण बाधाओंसे रहित कर देना चाहिए ॥६८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! इस प्रकार बारं बार दोनोंसे प्रार्थित होनेपर उनके भावसे सन्तुष्टहो,वे श्रीतान्त्रिक महाराज हाथजोड़े हुए उन दोनों(श्रीअम्बाजी व पिताजी)से बोले–॥६९॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

यदि प्रदातुं हृदये स्पृहा वां देयं सुवस्त्रं सुतया धृतं मे ।
त्यक्त्वा विचारं सकलं युवाभ्यां वाग्गौरवेणैव च मत्प्रियाय ॥७०॥

पुत्रीयमम्भोजदलायताक्षी सुकोमलैः पादकराम्बुजैः स्वैः ।
संस्पर्शनान्मे शिरसो नरेन्द्र ! नित्याव्यथा स्यान्मम तन्त्रयोगात् ॥७१॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्तेन तदा नृपेण प्रादायि तस्मै तनयोत्तरीयम् ।
वृद्धाय तेनापि तदूरुभक्त्या नीतं शिरोमङ्गलमण्डनत्वम् ॥७२॥

पुनः स चोत्थाय महानुभावः प्रदीयते तन्त्रमिति प्रभाष्य ।
त्रिःसंपरिक्रम्य शिशुस्वरूपापादाब्जयुग्मे स्वशिरो दधार ॥७३॥

श्रीतान्त्रिक उवाच ।

निधेहि पुत्र्या मृदुपाणिपद्मे मन्मूर्द्ध्नि तन्त्रस्य विधिः किलायम् ।
राज्ञ्या निशम्येति कृतं तथैव श्रेयोऽर्थमस्यास्तदनुग्रहाय ॥७४॥

यदि आप दोनोंके हृदय में मुझे कुछ देने की ही इच्छा है, तो आप दोनों ही अन्य सब विचार छोड़कर, मेरी प्रसन्नताके लिये मेरी वाणीका गौरव मानकर, श्रीललीजीका धारण किया हुआ (प्रसादी) वस्त्र प्रदान कीजिये ॥७०॥

हे राजन्! आपकी ये कमललोचना श्रीललीजी अपने कमलके समान सुकोमल दोनों हाथों तथा पद कमलोंके द्वारा मेरे सिर को स्पर्श मात्र करनेसे तन्त्र योगके प्रभावसे, सदाके लिये सब रोगोंसे मुक्त हो जाएँगी ॥७१॥

श्रीस्नेहपराजीं बोलीं—हे प्यारे! श्रीतान्त्रिक महाराजकी यह आज्ञा पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीललीजीकी ओढ़ी हुई चादर श्रीतान्त्रिक महाराजको दे दी, उन्होंने उस उत्तरीय वस्त्र (चादर) को बड़ी ही श्रद्धापूर्वक अपने सिरका भूषण बना लिया ॥७२॥

पुनः वे महानुभाव (श्रीतान्त्रिक) जी महाराज उठकर "मैं तन्त्र प्रदान कर रहा हूँ" ऐसा कह कर, उन्होंने तीन बारपरिक्रमा करके शिशु स्वरूपा श्रीकिशोरीजीके युगलश्रीचरणकमलोंमें अपना सिर रख दिया ॥७३॥

पुनः बोलेः—मैया ! श्रीललीजीके कोमल हस्त-कमलोंको मेरे सिर पर रख दीजिये, क्योंकि मेरे तन्त्रकी यही विधि है । श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीने यह सुनकर श्रीकिशोरीजीके कल्याण और उन तान्त्रिक महाराजकी कृपा प्राप्तिके लिये श्रीकिशोरीजीके दोनों करारविन्दोंको श्रीतान्त्रिक महाराजके सिर पर रख दिया ॥७४॥

इत्थं स वै तान्त्रिकरूपधारी सम्पूर्णकामो भगवान्पुरारिः ।
संपूजितोऽस्याः शिशुरूपमाद्यं निधाय चित्ते समभूददृश्यः ॥७५॥

इस प्रकार तान्त्रिक रूप धारण किये हुये, वे पुर दैत्यको मारनेवाले भगवान् श्रीभोलेनाथजी महाराज सब प्रकारसे अपने मनोरथको पूर्ण करके, श्रीअम्बाजी व श्रीपिताजीसे सम्यक् प्रकार पूजित होकर श्रीकिशोरीजीके सर्वश्रेष्ठ शिशुरूपको अपने चित्तमें विराजमान करके पूर्ण अदृश्य हो गये ॥७५॥

इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

— ❀❀❀ —

अथचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

भूप-भवनमें श्रीकिशोरीजी का दर्शन करते ही छद्म प्राकृत बाल-रूपधारी श्रीसनकादिकों की ध्यानस्थ तथा अन्तर्धान लीला ।

श्रीशिव उवाच ।

एकदा नारदो योगी ब्रह्मलोकमुपागमत् । दृष्ट्वा जनकजां सीतां सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥१॥
कृतप्रणामं तं वेधाः सादरं विश्ववन्दितम् । संप्रहृष्टाननं दृष्ट्वा पप्रच्छ स्निग्धया गिरा ॥२॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

वत्स! ते कुशलं ब्रूहि स्वाद्भुतानन्दकारणम् । शृण्वतां सनकादीनामेषां त्वत्पूर्वजन्मनाम् ॥३॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तः स्वपित्राऽसौ सुरर्षिः कमलोद्भवम् । प्रत्युवाच मुदा युक्ता प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥४॥

श्रीनारद उवाच ।

अद्याहं गतवानस्मि मिथिलां लोकविश्रुताम् । यस्यां सर्वेश्वरी सीता बालरूपा विराजते ॥५॥

भगवान् शिवजी बोले–हे पार्वती! सत्, चित्, आनन्द(ब्रह्म)स्वरूपा श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके, उनके श्रीचरणकमलोंमें अपनी चित्तवृत्तिको तल्लीन किये हुये श्रीनारदजी महाराज एक समय ब्रह्मलोक पधारे ॥१॥ जब उन्होंने ब्रह्माजीको आदरपूर्वक प्रणाम किया, उस समय उनका मुखमण्डल अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था, ऐसा देखकर श्रीब्रह्माजीने विश्ववन्दित श्रीनारदजीसे बड़ी मधुर वाणीमें पूछा ॥२॥ श्रीब्रह्माजी बोले:–हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, अपने इन बड़े भाई सनकादिकोंके सुनते हुये अपने इस अद्भुत आनन्दका कारण बतलाइए ॥३॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे प्रिये! अपने पिताजी की यह आज्ञा पाकर आनन्द युक्त हो देवर्षि (श्रीनारद) जी महाराज उन कमल-सम्भव (श्रीब्रह्मा) जी को बारंबार प्रणाम करके बोले ॥४॥ हे श्रीपिताजी! आज मैं लोक प्रसिद्ध उस श्रीमिथिलापुरीको गया था, जिसमें सर्वेश्वरी (साकेत विहारिणी) श्रीसीताजी, बालरूपसे विराज रही हैं ॥५॥

जन्मना सा पुरी तस्या महासौभाग्यभूषिता । अनन्तवैभवा भाति तवापि भ्रमदायिका ॥६॥
अवर्ण्या दर्शनीया च सच्चिदानन्दरूपिणी । अवरश्रीहतेन्द्राणीवल्लभैश्वर्यजस्मया ॥७॥
दृष्टा श्रीमैथिली सीता कोटिब्रह्माण्डनायिका । शिशुभावं समाश्रित्य मातुरुत्सङ्गवर्तिनी ॥८॥
महामाधुर्यसम्पन्ना रतिकोटिमदापहा । लोकाभिरामा चिद्रूपा राजते साऽद्भुतेक्षणा ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं कथयतस्तस्य समाधिस्थे स्वयम्भुवि । ब्रह्मपुत्राः समाजग्मुर्मिथिलां दर्शनातुराः ॥१०॥
अवलोक्य पुरीं रम्यां जनकेनाभिपालिताम् । आनन्दं परमं याता वीतरागा जितेन्द्रियाः ॥११॥
मैथिलीं द्रष्टुमिच्छन्तश्चत्वारो ब्रह्मणः सुताः । बालचेष्टामुपालम्ब्य चिक्रीडुः पुरबालकैः ॥१२॥
तेषां गवाक्षमार्गेण जनन्या कान्तदर्शनाः । उदीक्षिता हि ते काममकस्मात्प्रागलक्षिताः ॥१३॥
मुग्धा रूपश्रिया सा च सुतानां परमेष्ठिनः । बहिर्द्वारं समासाद्य ददर्शार्भकचेष्टितम् ॥१४॥

उन श्रीसर्वेश्वरीजी के प्राकट्य से वह श्रीमिथिलापुरी अनन्त ऐश्वर्य युक्त, महासौभाग्य भूषिता आपको भी भ्रम प्रदान करने वाली सुशोभित हो रही है ॥६॥

वह सत्, चित्, आनन्द (ब्रह्म) स्वरूपा, वर्णनशक्तिसे परे, अपने साधारण वैभवसे इन्द्रका ऐश्वर्यजन्य अभिमान नष्ट करने वाली बस दर्शनही करने योग्य है ॥७॥

वहाँ कोटिब्रह्माण्ड नायिका, साकेत विहारिणी श्रीसीताजी का मुझे दर्शन प्राप्त हुआ, वे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी शिशु बनकर अपनी श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजमान थीं ॥८॥

वे महामाधुर्यसे सम्पन्न करोड़ो रतियोंके अभिमानको नष्ट करने वाली, लोक सुन्दरी, चैतन्य-स्वरूपा, अद्भुत दर्शनाजी, सर्वोत्कृष्टरूपसे सुशोभित हैं ॥९॥

श्रीशिवजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीनारदजीके इस प्रकारके कथनसे श्रीब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये । उसी समय चारो भाई श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंके लिये विह्वल हो श्रीमिथिलाजी आगये ॥१०॥ सब प्रकारकी आसक्तिसे रहित, अपनी सभी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुये वे चारो भैया श्रीजनकजी महाराजके द्वारा पाली (रक्षाकी) हुई श्रीमिथिलापुरीका दर्शन करके परम (ब्रह्म) आनन्दको प्राप्त हुये ॥११॥

पुनः चतुरशिरोमणि वे चारो भाई श्रीमिथिलेशदुलारीजीके दर्शनोंकी इच्छासे बाल चेष्टा का अवलम्ब लेकर, नगरके बालकोंके साथ खेलने लगे ॥१२॥

उन बालकोंकी माताने खिड़कीके द्वारा, पूर्वमें कभी न देखे हुये, उन मनोहर दर्शन बालक श्रीसनकादिकोंका भली प्रकार दर्शन किया ॥१३॥

पुनः वे श्रीब्रह्माजीके पुत्रोंकी रूप-लक्ष्मीसे मोहित हो, द्वारके बाहर पहुँचकर, उनकी बाल चेष्टाओंको देखने लगीं ॥१४॥

ततः सा तानुपागत्य लालयन्ती ह्यनेकधा । सादरं परिपप्रच्छ विशदाक्षी द्विजाङ्गना ॥१५॥

श्रीविशदाक्ष्युवाच ।

के यूयं ?तनयाः कस्य ?कुत आगमनं हि वः ?। इति विज्ञातुमिच्छामि भद्रं वो वक्तुमर्हत ॥१६॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा सादरं प्रणयान्वितम् । अपुष्टाक्षरया वाचा सनकाद्या वचोऽब्रुवन् ॥१७॥

श्रीसनकाद्या ऊचुः ।

पद्मासनात्मजानस्मान् विद्धि क्रीडनतत्परान् । विस्मृतागारमार्गांश्च यदृच्छात इहागताः ॥१८॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा कृपणं करुणान्विता । उवाच मधुरां वाचं वात्सल्यरसनिर्भरा ॥१९॥

श्रीविशदाक्ष्युवाच ।

अयं मे समयो वत्सा गन्तुं नृपतिमन्दिरम् । उपस्थितो हि भद्रं वः सुतैरेतैः समं शुभः ॥२०॥
अतो मद्भवनं गत्वा सस्निग्धाः कृतभोजनाः । रोचते यदि वः सार्द्धं मया यात नृपालयम् ॥२१॥
ततोऽहं प्रापयिष्यामि मार्गयित्वा पितुर्गृहम् । मातरं माऽस्तु वश्चिन्ता प्रतिजाने शुभेक्षणाः ॥२२॥

उसके बाद वे ब्राह्मण पत्नी श्रीविशदाक्षीजी, उन कुमारोंके पास जाकर अनेक प्रकारसे दुलार करती हुई, उनसे आदर पूर्वक यह पूछने लगीं ॥१५॥

श्रीविशदाक्षीजी बोलीं:—हे पुत्रो ! आपका कल्याण हो, मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप चारो कौन हैं ? किसके पुत्र हैं ? और कहाँसे आये हैं ? यह बतलाना आप लोगोंको उचित है ॥१६॥ भगवान् श्रीशिवजी बोले:—हे श्रीशैलकुमारीजी ! श्रीविशदाक्षीके आदर पूर्वक प्रणयके साथ पूछे हुये प्रश्नोंको सुनकर चारो भैया श्रीसनकादिक, उनसे अपनी टूटी-फूटी (तोतली) वाणी में बोले ॥१७॥

अरी मैया ! क्रीडा-परायण अर्थात् खेलमें लगे हुये, हम चारोंको आप श्रीपद्मासनजीके पुत्र जानिये । हम लोग अपने घरका मार्ग भूलकर यहाँ अकस्मात् पहुँचे हैं ॥१८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये! उन चारो भाइयोंके इस प्रकार वचनोंको सुनकर श्रीविशदाक्षीजीको करुणा आगयी, अतः वे वात्सल्य रसमें डूबी हुई उनसे यह मधुर वाणी में बोलीं ॥१९॥

हे वत्सो ! आप लोगोंका कल्याण हो, इन बालकोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवन जानेके लिये यह मेरा निश्चित शुभ समय उपस्थित है ॥२०॥

यदि आप लोगोंको स्वीकार हो, तो मेरे महल पधारकर अपने इन सखाओंके साथ भोजन करें, पुनः मेरे साथ श्रीराजभवन पधारिये ॥२१॥

हे मङ्गल दर्शन चारो भैया ! वहाँ से वापस आकर मैं आपके पिताजीका भवन खोजकर आप लोगोंको आपकी माताजीके पास पहुँचा दूंगी, यह मैं प्रतिज्ञा करके कह रही हूँ अतः चिन्ता न करें ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

सानुरागमिदं वाक्यं समाकर्ण्य तयोदितम् । गमिष्यामस्त्वया साकमित्यूचुर्ब्रह्मसूनवः ॥२३॥
स्वालयं तान्समादाय सा सुतैः परिवारितान् । भोजनैस्तर्पयामास स्वादुवद्भिः पृथग्विधैः ॥२४॥
पुनस्तान्भूषयामास सुदिव्यैर्भूषणाम्बरैः । पुत्रानिव महाभागा सौरसान् विमलाशया ॥२५॥
ततस्ते हि तया साकं वार्यमाणा न केनचित् । विविशुर्मन्दिरं दिव्यं विदेहस्य मनोरमम् ॥२६॥
राज्ञी सुनयना तेषां मुग्धा गाम्भीर्यसम्पदा । बहु सत्कारयामास लालयन्ती विलोक्य तान् ॥२७॥
ते तु पद्मपलाशाक्षीं नीलकुञ्चितमूर्द्धजाम् । शरच्चन्द्रमुखीमात्तमनोज्ञशिशुविग्रहाम् ॥२८॥
श्रीसीतां योनिसम्भूतिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् । निरीक्ष्य क्षितिजां कामं मोदमीयुरनुत्तमम् ॥२९॥
प्रेक्ष्य ध्याननिमग्नांस्तान् राज्ञी कौतूहलान्विता । भृशं बभूव देवेशि! कस्यैते बालका इति ॥३०॥

श्रीसुनयनोवाच ।

क एते कस्य पुत्राश्च कुत्रत्याः कुत आगताः । त्वया सार्द्धमिति श्रुत्वा चकिता साऽऽदितोऽब्रवीत्॥३१॥

श्रीशिवजी बोलेः—हे प्रिये! श्रीविशदाक्षीजीके अनुराग पूर्वक कहे हुये वचनोंको श्रवण करके ब्रह्माजीके पुत्र श्रीसनकादिकजी बोलेः—मैया ! हम लोग आपके साथ राजभवन चलेंगे ॥२३॥

वे विशदाक्षीजीने अपने बालकोंके सहित उनको भवनमें लाकर अनेक प्रकारके स्वादु-मय भोजनोंके द्वारा उन्हें तृप्त किया ॥२४॥

पुनः वे शुद्ध भाव वाली महाभागा श्रीविशदाक्षीजी अपने औरस पुत्रोंके सदृश उन ब्रह्म-कुमारोंको, सुन्दर, दिव्य वस्त्र-भूषणोंसे भूषित (शृङ्गारयुक्त) करती हुई ॥२५॥

तत्पश्चात् उन चारो भाइयोंने श्रीविशदाक्षीजीके सहित श्रीविदेह महाराजके दिव्य और मनोहर भवनमें प्रवेश किया उन्हें किसीने नहीं रोका ॥२६॥

श्रीसुनयना अम्बाजी चारो भाइयोंका दर्शन करके, उनकी गम्भीरता रूपी सम्पत् पर मुग्ध हो गयीं, अतः दुलार करती हुई उन्होंने उन कुमारोंका बहुत सत्कार किया ॥२७॥

वे चारो भैया (श्रीसनकादिक) कमल दलके समान सुन्दर विशाल लोचन, काले घुंघराले केश, शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान आह्लादप्रद मुखारविन्द वाली, मनोहर, शिशुरूपको धारण की हुई ॥२८॥ पृथिवीकी पुत्री, उपादान प्रकृतिकी कारण, सत्-चित्-आनन्द (ब्रह्म) स्वरूपा, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजीका इच्छानुसार दर्शन करके, वे भगवदानन्दको प्राप्त हुए ॥२९॥

हे देवेशि ! श्रीअम्बाजी चारोंकी ध्यानवस्थाका दर्शन करके अत्यन्त आश्चर्य युक्त हो गयीं कि, ऐसी स्थिति वाले ये किसके बालक हैं ॥३०॥ श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीविशदाक्षीजी से बोलीं:—ये तुम्हारे साथ आये हुये बालक कौन हैं? और किसके पुत्र हैं ? तथा कहाँसे आये हैं? यह सुन कर वे भी चारो (ब्रह्मकुमारों) की ध्यानावस्थाका दर्शन कर आश्चर्य युक्त हो, उनका आदिसे सब वृत्तान्त निवेदन करने लगी ॥३१॥

श्रीविशदाक्ष्युवाच ।

स्वस्त्यस्तु ते महाभागे! मन्दिरे स्थितया मया । इमे मद्बालकैः साकं क्रीडन्तोहि विलोकिताः ।।३२।।
एषां रूपश्रियाऽऽकृष्टा बहिर्द्वारमुपेत्य च । बालचेष्टाः प्रपश्यन्ती सन्निधिं मोहिताऽगमम् ।।३३।।
अपृच्छं कस्य तनया ? यूयं कुत इहागताः । इदं मद्भाषितं श्रुत्वा तदोचुरिति मामिमे ।।३४।।

कुमारा ऊचुः ।

पद्मासनः पिताऽस्माकं गृहमार्गो हि विस्मृतः । यदृच्छया वयं प्राप्ता द्वारं तेऽम्ब! दयामयि! ।।३५।।

श्रीविशदाक्ष्युवाच ।

एतद्वचनमाकर्ण्य मृदुलं दैन्यसंयुतम् । अहमुक्तवतीत्येतान् कारुण्याप्लुतमानसा ।।३६।।
भद्रं वः समयो ह्येष व्रजितुं दैनिको मम । हे वत्सा! बालकैः साकं महाराजस्य मन्दिरम् ३७।।
अतो मन्मन्दिरं गत्वा मयासार्द्धं कृताशनाः । विदेहभवनं यात युष्मभ्यं यदि रोचते ।।३८।।
तस्माच्च पुनरागत्य जनकस्य तवालयम् । समन्वेष्य जनन्या वः प्रापयिष्यामि सन्निधिम् ।।३९।।
चिन्तां त्यजत भो वत्सा ! विस्मृतेर्हि रतिर्मम । दर्शनादेव संजाता भवत्सु स्वात्मजाधिका ।।४०।।

श्रीविशदाक्षीजी बोलीं:—हे महाभागे ! श्रीमहारानीजी ! आपका मङ्गल हो, अपने महलमें बैठी हुई, बाहरकी ओर बालकोंके सहित खेलते हुए, मैंने इन चारो भाइयोंको देखा ।।३२।।

इनकी रूप लक्ष्मीने मुझे आकर्षित कर लिया, अतः मैं द्वारके बाहर निकल कर इनकी बाल चेष्टाओंको देखती हुई, मुग्धहो, समीपमें जा पहुँची ।।३३।।

मैंने पूछा—आप लोग किसके पुत्र हैं ? और कहाँसे पधारे हैं ? मेरे इस प्रश्नको सुनकर, तब ये मुझसे इस प्रकार बोले: —।।३४।।

हे दयामयी ! अम्बाजी! हमारे पिताजीका नाम श्रीपद्मासनजी है, हमें अपने घरका मार्ग भुला गया है, अत एव संयोगबश हम लोग आपके दरवाजे पर आपहुँचे हैं ।।३५।।

श्रीविशदाक्षीजी बोली—हे श्रीमहारानीजी । इनके दीनता पूर्ण, ये कोमल वचन श्रवण करके मेरा मन करुणामें डूब गया, अतः मैंने इनसे कहा :—।।३६।।

हे वत्सो ! आपका कल्याण हो, हमारा यह समय इन पुत्रोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराज के महल जानेका उपस्थित है ।।३७।।

अतः आप लोग इस समय मेरे महल चलकर भोजन करें तत्पश्चात् यदि आप लोगोंकी रुचि हो तो मेरे साथ श्रीविदेहजी महाराजके महल पधारें ।।३८।।

वहाँ से वापस आकर आपके पिताजीके घरका पता लगाकर मैं निःसन्देह आप लोगोंको आपकी माताजी के पास पहुँचा दूँगी ।।३९।।

हे वत्सो ! इसलिए आप लोग अपने घरका मार्ग भूल जानेकी चिन्ता न करें, क्योंकि दर्शन मात्रसे ही मेरा प्रेम अपने पुत्रोंसे भी अधिक आप चारोंके प्रति हो गया है ।।४०।।

एवमुक्ता मया सार्कं समासाद्य गृहं मम । चक्रुरेतेऽशनं प्रेम्णा लाल्यमाना ह्यनेकधा ॥४१॥
ततश्च भूषयित्वेमे मयानीता इहाधुना । सुतां ते सुषमाराशिं समाधिस्था समीक्ष्य च ॥४२॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्यास्तदीरितं वाक्यं समाकर्ण्य नरेश्वरी । जगाम परमाश्चर्यं लालयन्ती निजात्मजाम् ॥४३॥
आजगाम तदा राजा विदेहःस्वनिवेशनम् । सोऽपि तांश्चिरमालोक्य विस्मयं परमं ययौ ॥४४॥
निशम्य विशदाक्ष्योक्तं महाराज्ञ्या मुखाम्बुजात् । साद्भुतश्चिन्तयामास विदेहो यतमानसः ॥४५॥
बालकाः देहमात्रेण भूषणानि सुयोगिनाम् । एते वृत्त्या प्रतीयन्ते दिष्टचा मे गृहमागताः ॥४६॥
क एते किन्तु नैवैतज्ज्ञायते बालरूपिणः । इति चिन्तासमायुक्तो दध्यो नियतचेतसा ॥४७॥
तस्य ध्यानपथं गत्वा गिरिजे ! ऽहं दयान्वितः । अवोचं स्निग्धया वाचा रहस्यं हर्षयन्निव ॥४८॥
ध्यानयोगसमासक्ताः किलैते बालका नृप ! । अवधार्या महाभाग ! त्वया श्रीसनकादयः ॥४९॥

इस प्रकार मेरे कहने पर, मेरे साथ मेरे महलमें आकर, मेरे द्वारा अनेक प्रकारका दुलार पाते हुये, इन्होंने प्रेम पूर्वक भोजन किया ॥४१॥ तदनन्तर अपनी इच्छानुकूल श्रृङ्गार करके मैं इन्हें यहाँ साथ ले आई थी, यहाँ आकर आपकी उपमा रहित सौन्दर्यकी पुञ्ज स्वरूपा श्रीललीजीका दर्शन करके इस समय ये समाधिस्थ हो गये हैं ॥४२॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! श्रीविशदाक्षीजीके कहे हुये इन वचनोंको सुनकर महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जी अपनी श्रीललीजीको दुलार करती हुई परम आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥४३॥ उसी समय श्रीमिथि-वंशी राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीजनकजी महाराज अपने महल आ पहुँचे, वे भी बहुत देर तक उन चारोंका दर्शन करके परम विस्मयको प्राप्त हुये ॥४४॥

पुनः उन्होंने श्रीमहारानीजीसे जब उनका परिचय पूछा तो उन्होंने विशदाक्षीजीका कहा हुआ सब वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया, उसे सुनकर आश्चर्ययुक्त हो वे देहकी सुधि-बुधि भूल गये पुनः मनको एकाग्र करके विचार करने लगे ॥४५॥

देह मात्रसे तो ये चारो ही वास्तवमें बालक हैं, परन्तु अपनी इस वृत्तिसे तो श्रेष्ठ योगियोंके भूषण प्रतीत हो रहे हैं, अतः बड़े सौभाग्यसे ही मेरे यहाँ इनका पदार्पण हुआ है ॥४६॥ किन्तु बालकोंका रूप बनाये हुए ये वास्तवमें हैं कौन ? यह समझमें नहीं आता, इस चिन्तासे युक्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराज ध्यान करने लगे ॥४७॥

भगवान् शिवजी बोले-हे गिरिराज कुमारीजी! मुझे दया आगयी, अतः उनके ध्यान मार्गमें प्राप्त होकर श्रीमिथिलेशजी महाराजको हर्षित करता हुआ सा, मैंने अपनी वाणी द्वारा सब रहस्य (गुप्त बात) कह सुनाया ॥४८॥ हे महाभाग्यशालीराजन् ! ध्यान योगमें आसक्त इन बालकोंको आप चारो भाई श्रीसनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार जानिये ॥४९॥

दर्शनार्थं सुतायास्ते सङ्गता ब्राह्मणार्भकैः। खेलन्तस्तैः समं दृष्टा द्विजपत्न्या गवाक्षतः ॥५०॥
एषां स्वरूपलावण्यविमुग्धा मृदुलाशया। बहिर्द्वारं समासाद्य ददर्शार्भकचेष्टितम् ॥५१॥
पुनः शनैः शनैर्गत्वा सकामं प्रेमनिर्भरा। लालयन्ती च पप्रच्छ कस्य यूयं सुता इति ॥५२॥
एतैर्निवेदितं सर्वं समाकर्ण्य प्रहर्षिता। समानीयात्मनो वेश्म भोजनैश्चावर्तपर्यत् ॥५३॥
भूषयित्वा यथाकामं महाभागा त्वदालयम्। आनयामास सा प्रीत्या स्वात्मजैः परिवारितान् ॥५४॥
सत्कृता विधिना राज्ञ्या लालयन्त्याऽशनादिभिः। अजानन्त्याऽनयैवैते वृत्तिगाम्भीर्यमुग्धया ॥५५॥
दर्शनादिन्दुवक्त्रायाः पुत्रिकायास्तवाधुना। अमन्दानन्दमासाद्य ध्यानस्था अभवन्नमी ॥५६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

एवमाभाष्य गौरीशो विदेहं ध्यानतत्परम्। अभूदन्तर्हितः शीघ्रं ततो ध्यानं नृपोऽत्यजत् ॥५७॥
एते विधिसुता बोध्या ध्यानस्था हि तवालये। इत्याशंसति देवेशे चत्वारोऽपि तिरोहिताः ॥५८॥

आपकी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये वे ब्राह्मण पुत्रोंमें मिल गये थे, तब खिड़कीके मार्गसे बालकोंके साथ खेलते हुये इन्हें ब्राह्मण पत्नी ने देखा ॥५०॥

वह कोमल हृदया ब्राह्मणी इनके स्वरूपकी सुन्दरता पर विशेष मुग्ध होकर अपने घरके द्वारसे बाहर निकली और इनकी बालचेष्टा देखने लगी ॥५१॥

प्रेमकी अधिकताके कारण पुनः धीरे-धीरे वह पास जाकर लाड़ करती हुई उनसे इसप्रकार पूछने लगीः–हे बत्सो! आप किसके पुत्र हैं? और कहाँ से आये हैं ? ॥५२॥

कुमारोंने सब निवेदन किया, उसे सुनकर वह बड़े ही हर्षको प्राप्त हुई पुनः उसने अपने महलके भीतर लेजाकर इन्हें भोजनके द्वारा बड़ी सुन्दर रीतिसे तृप्त किया ॥५३॥

तत्पश्चात् वह बड़ भागिनी द्विजपत्नी मैया अपनी इच्छानुसार वस्त्र-भूषण पहना कर अपने बालकोंके साथ इनको प्रेमपूर्वक आपके, महल ले आई ॥५४॥

यहाँ श्रीमहारानीजी इन्हें न पहचानती हुई भी, इनकी वृत्तिकी गम्भीरता पर मुग्ध हो दुलार करती हुई, भोजन आदिके द्वारा विधि पूर्वक इनका सत्कार कर चुकी हैं ॥५५॥

इस समय ये चारो भैया आपकी चन्द्रमुखी श्रीललीजीका दर्शन करके अपार आनन्दको प्राप्त हो, ध्यानस्थ हो गये हैं ॥५६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः–हे प्रिये! ध्यान परायण श्रीविदेहजी महाराजसे गौरीपति श्रीभोलेनाथजी इसप्रकार कहकर अन्तर्धान होगये, तब महाराजने ध्यान छोड़ा ॥५७॥

हे राजन्! आपके महलमें जो बालक ध्यानस्थ हैं, उन्हें आप श्रीब्रह्माजीके पुत्र (सनकादिक) चारो भाई जानिये, इस प्रकार देवताओंके स्वामी श्रीभोलेनाथजीके कहते ही, चारो भाई अन्तर्हित हो गये ॥५८॥

मुक्तध्यानो महीपालस्तानुदीक्ष्य न कुत्रचित् । क्व यातास्ते महाराज्ञीमिति पप्रच्छ विह्वलः ॥५९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

इदानीं ध्यानमग्नास्ते मया दृष्टा अदृश्यताम् । प्रयाताः पद्मपत्राक्षाः कुमाराः प्रियदर्शनाः ॥६०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

महाराज्ञ्योदितं श्रुत्वा विदेहाधिपतिः प्रभुः । उवाच विस्मयाविष्टस्तामिदं गद्गदाक्षरम् ॥६१॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

सनकाद्या हि चत्वारो ब्रह्मपुत्रा न बालकाः । दर्शनार्थं सुतायाा मे पितुर्लोकात्समागताः ॥६२॥
अभवन्ध्यानमग्नास्ते तदुपेत्य मनोहरम् । एतदाह महादेवो मम ध्यानपथिस्थितः ॥६३॥
सत्कर्तुं कृतसङ्कल्पोऽत्यजं ध्यानमहं द्रुतम् । सर्वज्ञा विगतेहास्ते पूर्वमेव तिरोहिताः ॥६४॥
प्रिये ! त्वमेव धन्याऽसि यया ते चारुसत्कृताः । आगता बालरूपेण सर्वेषामेव पूर्वजाः ॥६५॥
न जाने केन पापेन सत्कृतिं मुनिसत्तमाः । अङ्गीकर्तुमनिच्छन्तोऽभवनन्तर्हिता मम ॥६६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसनकादिकोंका आगमन सुनते ही जब ध्यानसे निवृत्त हुये, तब कहीं भी उनका दर्शन न पाकर विह्वल हो महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीसे महाराजने पूछा:—वे बालक कहाँ गए ? ॥५९॥

श्रीसुनयना महारानीजी बोलीं:—हे प्यारे! उन प्रिय दर्शन, कमलदल लोचन चारों बालकों को मैंने अभी ध्यान मग्नही देखा था, किन्तु अब वे अदृश्य हैं ॥६०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे वल्लभे ! श्रीमहारानीजीका यह कथन सुनकर परम समर्थ विदेह कुलके स्वामी श्रीमिथिलेशजी महाराज आश्चर्यमग्न हो, श्रीसुनयना महारानीजीसे गद्गद अक्षर युक्त यह वाणी बोले ॥६१॥

हे प्रिये ! वे चारो ही सबसे वृद्ध श्रीब्रह्माजीके श्रीसनकादिक पुत्र थे, बालक नहीं । हमारी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये वे अपने पिताजीके लोकसे आये थे ॥६२॥

श्रीललीजीका मनोहर दर्शन पाकर वे ध्यान मग्न हो गये थे, मेरे ध्यान-मार्गमें आकर श्रीभोलेनाथजी यह कह गये हैं ॥६३॥

चारो भाइयोंका सत्कार करनेका सङ्कल्प (विचार) करके मैंने तुरंत अपना ध्यान परित्याग किया, परन्तु सबके भीतर बाहरकी जाननेवाले वे, सर्वज्ञ चारो भाई उसके पूर्वही अन्तर्धान होगये ॥६४॥ हे प्रिये! अतः आप ही धन्य हैं, जो बालक रूपमें आये हुये उन सभीके पूर्वजोंका आपने भली प्रकारसे सत्कार तो करही लिया ॥६५॥

मैं नहीं जानता, मेरे किस पापके कारण मुनियोंमें परम, श्रेष्ठ वे श्रीसनकादिक चारो भैया मेरे द्वारा अपना सत्कार स्वीकार न करनेकी इच्छासे अन्तर्धान ही हो गये ॥६६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

व्याहरन्नेवमेवासौ बभूवातीवविह्वलः । भूसुतायाः प्रपश्यन्त्या विदेहो धर्मवित्तमः ॥६७॥
विज्ञाय तन्मनोभावं सनकाद्या मुदान्विताः । ऊचुर्नभस्तले स्थित्वा मेघगम्भीरया गिरा ॥६८॥

श्रीसनकादय ऊचुः ।

धृतबालस्वरूपायाः स्वामिन्या नः पिता भवान् । सर्वेश्वर्याः सुविख्यातस्त्रिलोक्यां जगतीपते! ॥६९॥
त्वत्तः कथं समिच्छेम पूजां स्वीकर्तुमात्मनः । स्वामिन्याः पुरतः स्थित्वा वयं सद्धर्मकोविद! ॥७०॥
तस्माद्विज्ञाय सङ्कल्पं भवतश्च मनोगतम् । अभूनान्तर्हितास्तूर्णं स्वभावमभिरक्षितुम् ॥७१॥
चिन्तां मा स्म गमस्तात ! सर्वेषामस्ति वै भवान् । पूजाभाजनमेवेह समर्च्यैका सुता तव ॥७२॥
अस्यां प्रपूजितायां हि पूजितं भुवनत्रयम् । पत्रपुष्पादिकं सर्वं सिच्यते मूलसिञ्चनात् ॥७३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं नरेन्द्रं सनकादयस्ते माध्व्या गिरा ब्रह्मसुतप्रधानाः ।
प्रबोध्य भूयः क्षितिजामुदीक्ष्य प्रमोदपूर्णा विधिलोकमीयुः ॥७४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः–हे प्रिये ! धर्मवेत्ताओंमें शिरोमणि, श्रीविदेहजी महाराज श्रीभूमिनन्दिनीजूके देखते हुये इस प्रकार कहते-कहते अत्यन्त विह्वल हो गये ॥६७॥ श्रीमिथिलेशजी महाराजके मनोभावको जानकर श्रीसनकादिक चारो भैया, आकाशतलमें स्थित हो कर मेघके समान गम्भीरवाणीसे बोलेः–॥६८॥ हे जगती (पृथिवी) पते ! बालस्वरूपको धारण की हुई हमारी सर्वेश्वरी श्रीस्वामिनीजूके आप तीनों लोकोंमें पिता विख्यात हैं ॥६९॥

हे धर्मका रहस्य जानने वाले महाराज! अतः आपसे, उसमें भी श्रीस्वामिनीजूके समक्ष स्थित होकर भला किस प्रकार हम लोग अपनी पूजा स्वीकार करने की इच्छा करते ? ॥७०॥

इस हेतु आपका मानसी सङ्कल्प जानकर, अपने भावकी सुरक्षाके लिये हम लोग तुरन्त अन्तर्धान हो गये ॥७१॥ हे तात! आप चिन्ता न करें, क्योंकि आप तो विश्वमें सभीके पूजापात्र स्वयं ही हैं, और आपकी श्रीललीजी सभीके द्वारा अद्वितीय पूजने योग्य हैं ॥७२॥

जैसे जड़को सींचनेसे पत्र-पुष्प आदि सब सिञ्चित हो जाते हैं उसी प्रकार इन श्रीललीजीके पूजित होजाने पर तीनों लोकोंकी पूजा हो जाती है ॥७३॥

श्रीयाज्ञवल्क्जी बोले :–हे प्रिये ! इस प्रकार वे श्रीब्रह्माजीके ज्येष्ठपुत्र श्रीसनकादिकजी मीठी वाणीद्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजको सान्त्वना प्रदान करके तथा बारंबार श्रीकिशोरीजी का दर्शन करके आनन्द निर्भर हो ब्रह्मलोक चले गये ॥७४॥

इति चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

इति मासपरायणे द्वादशो विश्रामः ॥१२॥

—❀❀❀—

अथैकचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

सर्वेश्वरी श्रीजनकराज किशोरीजी का नामकरण महोत्सव ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुप्रसन्नहृदयोऽवनीश्वरो द्वादशाहपरमोत्सवोत्सुकः ।
दूतमानयनकर्मणे गुरोर्व्यादिदेश परमार्थवित्तमः ॥१॥
आजगाम स तु गौतमीसुतस्तेन साकमविलम्बमालयम् ।
ह्लादपूर्णमनसो विलोकयन् सर्वशः पथि मुदा पुरौकसः ॥२॥
षोडशेन विधिना समर्चितो द्वादशाहविधिमप्यकारयत् ।
गायतीषु किल मङ्गलात्मकं गीतमब्जनयनासु कालवित् ॥३॥
स्नापिता सुनयना सुतान्विता पीत वस्त्रभृद्राज्ञ्यलङ्कृता ।
देशवंशसमयोचितं विधिं हर्षिता कुलगुरूदितं व्यधात् ॥४॥
मातरस्तु जननीमुपस्थिता नैकटे मम पितुर्हि वः पिता ।
पद्मयोनितनयेन संयुतोऽसौ भवद्भिरभिराजते भृशम् ॥५॥
सम्प्रवृत्त इति मङ्गलोत्सवे नृत्यगानकलवाद्यसङ्कुले ।
वालवृद्धतरुणस्त्रियो नरा निर्ययुर्निजगृहान्मुदातुराः ॥६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः–हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके बारहवें दिनका उत्कृष्ट उत्सव मनानेके लिये उत्सुक हो पूर्ण प्रसन्न हृदय, परमार्थ वेत्ताओंमें शिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराजने गुरुदेवजीको अपने महलमें बुलानेके लिये दूत भेजा ॥१॥

अहल्यानन्दन श्रीशतानन्दजी महाराज आनन्द पूर्वक तुरन्त उस दूतके साथ आह्लाद पूर्ण मन हुये सभी पुरवासियोंको मार्गमें देखते २ महलमें पधारे ॥२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा षोडशोपचारसे पूजित होकर समयका ज्ञान रखने वाले श्रीशतानन्दजी महाराज, कमललोचना सखियोंके मङ्गल गीत गाते हुये जन्मके बारहवें दिनका महोत्सव करवाने लगे ॥३॥

श्रीललीजीके सहित श्रीसुनयना अम्बाजीको स्नान कराके पीतवस्त्र पहिनाकर उनका श्रृंगार किया गया, तब वे हर्षयुक्तहो श्रीकुलगुरु शतानन्दजी महाराजके आदेशानुसार देश, वंश और समयके योग्य सभी विधियोंको सम्पन्न करने लगीं ॥४॥ हे प्यारे! आपकी मातायें मेरी श्रीसुनयना अम्बाजीके पास और आपके श्रीपिताजी श्रीवशिष्ठजी महाराज तथा आप चारो भाइयोंके सहित मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास अत्यन्त सुशोभित हुये ॥५॥

हे प्यारे ! इस प्रकार नृत्य गान व सुन्दर बाजोंसे युक्त मङ्गलोत्सवके प्रारम्भ हो जाने पर आनन्दसे उतावले हो बालक, वृद्ध, तरुण, स्त्रियाँ, पुरुष प्रत्येक घरसे निकलने लगे ॥६॥

राजवेश्मगमनस्पृहालुभिः संवृताः पुरपथास्तु कृत्स्नशः ।
स्वर्चिचताः शुशुभिरे भृशं तदा निम्नगा इव जलैः प्रपूरिताः ॥७॥
स्वागताय बहुशो नियोजिता मन्त्रिणो नृपवरेण सानुजाः ।
श्रद्धयाऽभिचलतां निवेशनं क्षीणदर्पसदसद्विवेकिनः ॥८॥
सोऽथ नामकरणातिशोभने पुण्यपुञ्जसमये गुरुस्मृतः ।
अन्तरालयमगात्क्षितीश्वरः श्रीमतां समुदयेन संयुतः ॥९॥
सन्निवेश्य वसुधाधिपोचितेष्वासनेषु महताऽऽदरेण वः ।
कोशलाधिपतिना नृपैर्युतः स्वासने समविशद्गुरून्नमन् ॥१०॥
भ्रातरस्तदुभयोर्हि पार्श्वयोर्मोदमानमनसो व्यवस्थिताः ।
उत्तराभिमुख आस्थितो गुरुः प्राङ्मुखो सुनयना सुतान्विता ॥११॥
पाणिपादतलदर्शनाद्भुतानन्दतृप्त इदमुक्तवाञ्छिशोः ।
ब्रह्मसूनुतनयः सुमङ्गलं नाम भूप ! शृणु शोधितं मया ॥१२॥

उस समय राजमहल जानेके इच्छुक जनोंके द्वारा नगरके सभी सजावट किये हुये मार्ग इस प्रकार सम्यक् ढके हुये अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे, जैसे जलसे पूर्ण नदियाँ बहती हुई सुशोभित होती हैं अर्थात् जैसे चातुर्मास्यमें वेगसे बहती हुई नदियाँ शोभाको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार श्रीकिशोरीजीके बारहवें दिनका उत्सव देखनेकी इच्छासे शीघ्रता पूर्वक चलते हुये जन समुदायसे पूर्ण ढकी हुई, नगरकी सभी सड़कें अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं ॥७॥

महलमें आने वालोंका श्रद्धा पूर्वक स्वागत करनेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने भाइयोंके सहित अभिमान रहित सत्-असत् विवेकी मन्त्रियोंको नियुक्त किया ॥८॥

नाम करणके अति सुन्दर, पुण्य-पुन्जमय अवसर पर वे श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजीके स्मरण करने पर आप श्रीमानोंके समूहके साथ भीतर पधारे ॥९॥

वहाँ राजाओंके योग्य आसनों पर आप लोगोंको महान् आदरके साथ बैठाकर, अन्य राजाओंके सहित श्रीकोशलेन्द्र-महाराजके साथ गुरुवर्गोंको प्रणाम करते हुये पिताजी अपने आसन पर विराजमान हुये ॥१०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके दोनों बगलमें मुदितमनसे सब भाई विराजमान हुये। उत्तर मुख होकर श्रीशतानन्दजी महाराज और पूर्वमुख हो श्रीकिशोरीजी व श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाके सहित श्रीसुनयना अम्बाजी विराजमान हुईं ॥११॥

हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके हस्त व चरण कमलोंके तलवोंके दर्शनजन्य अद्भुत आनन्दसे तृप्त (कृतकृत्य) हो, श्रीब्रह्माजीके पौत्र (श्रीगोतमजीके पुत्र) श्रीशतानन्दजी महाराज बोले:-हे भूप! मेरे द्वारा शोधा हुआ श्रीललीजीका मङ्गलमय नाम श्रवण कीजिये ॥१२॥

पुत्रिकेयमवनीश ! लक्षणैर्ज्ञायते किल मयेति पश्यता ! ।
सर्वदुःखभवभीतिहारिणी दुःस्वभावदुरदिष्टवारिणी ॥१३॥
सर्वलोकपरमाश्रयः श्रियः श्रीरशेषसुखशंविभूतिदा ।
स्यादितान्तयुगवर्णसंयुतं नामरत्नमत एव शोभनम् ॥१४॥
श्रीर्द्वितीयमपि नाम ते शिशोः सर्वकामफलदं शुभावहम् ।
पूर्वमेतदुपसृत्य मुख्यकं तत्तृतीयमभवत्त्रिवर्णकम् ॥१५॥
भूमितः प्रकटिता यतस्त्वियं भूमिजेति परिकथ्यते ततः ।
यज्ञवेदित इयं विनिर्गता यज्ञवेदिप्रभवाऽत उच्यते ॥१६॥
योनिजा न च यतस्त्वियं ततो ऽयोनिजेति परिगीयते मया ।
त्वन्मनोरथफलाकृतिर्यतो जानकीति तदियं मयोच्यते ॥१७॥
लालनं च परिपालनं यतोऽस्या भवेद्दयितया तवानया ।
मङ्गलं सुनयनासुतेत्यतः कीर्त्यते नृवर ! नाम ते शिशोः ॥१८॥
मैथिलीति मिथिवंशपावनश्लाघ्यकीर्त्तिपरमप्रकाशनात् ।
प्रोच्यते परमशोभनं शुभं नाम सर्वदुरितौघवारणम् ॥१९॥

हे अवनीश! लक्षणोंके द्वारा मुझे ज्ञात हो रहा है कि आपकी ये श्रीललीजी आश्रितोंके सभी दुःख, तथा जन्म मरणका भय हरण करनेवाली, खोटे स्वभाव और दुर्भाग्य को हटाने वाली, समस्त लोकोंकी आधार स्वरूपा, श्रीकी भी श्री, सम्पूर्ण सुख, मङ्गल व ऐश्वर्यको प्रदान करने वाली हैं अतएव इनका आदिमें "सी" और अन्तमें "ता" यह दो वर्णका सुन्रद नाम रत्न "सीता" हुआ ॥१३॥१४॥

आपकी श्रीललीजीका समस्त कामनाओंका फल देने वाला मङ्गलवाहक दूसरा नाम "श्रीजी" हुआ और यह नाम उस पूर्व नाम (सीता) में मिलकर तीसरा तीन वर्णका नाम श्रीसीता हुआ ॥१५॥ श्रीललीजी भूमिसे प्रकट हुई हैं अतः मैं इनका नाम भूमिजा कह रहा हूँ । पुनः ये यज्ञवेदीसे प्रकट हुई हैं, अतः इनका नाम "यज्ञवेदिप्रभवा" कह रहा हूँ ॥१६॥

श्रीललीजी प्राकटच किसी योनिसे नहीं हुआ, अतः मैं इनका अयोनिजा नाम कह रहा हूँ और आपके मनोरथकी फलस्वरूपा होनेसे इनका नाम "जानकी" कहता हूँ ॥१७॥

इनका लालन-पालन आपकी इन श्रीसुनयना महारानीजीके द्वारा होगा, अतः हे नर श्रेष्ठ! आपकी श्रीललीजीका मैं मङ्गलमय नाम "सुनयनासुता" कहता हूँ ॥१८॥

इनके द्वारा श्रीमिथि महाराजके वंशकी पावन व प्रशंसनीय कीर्तिका परम प्रकाश होगा अतः सकल आपत्तियोंको रोकने वाला इनका सुन्दर परम मङ्गलमय नाम "मैथिली" कह रहा हूँ ॥१९॥

एवमेव गुणसूचकैः शुभैः कोटिशोह्यवनिनाथ ! नामभिः ।
ब्रह्मविष्णुगिरिशादिनाकिनां सत्सभासु कथयिष्यते त्वियम् ॥२०॥
श्रीनिधिः स तनयोऽयमूर्विजा यस्य पूर्वमुदितोच्यते गुणैः ।
उर्मिलेति तनया तवौरसी ख्यातकीर्त्तिरियमत्र सद्गुणैः ॥२१॥
उर्मिलानुज उदारविक्रमः सञ्ज्ञयाऽयमपि वै गुणाकरः ।
भण्यतेऽवनिप ! भाग्यभाजनं त्वत्समस्त्वमिह नात्र संशयः ॥२२॥
भूमिजाङ्घ्रिजलजार्चनोत्सुकाः शक्तयस्तु परमाः प्रजज्ञिरे ।
त्वत्कुले च पुर इत्यृतं वचो योगिराज ! हृदयेऽवधार्यताम् ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तवति गोतमात्मजे शृण्वतां च भवतां सुतिष्ठताम् ।
संनिशम्य जयशब्दमुच्चकैः सादरं क्षितिपतिर्ननाम तम् ॥२४॥
सोऽथ तेन निमिवंशिनां गुरुः पूजितः सविधि तत्र भूभृता ।
भूयसीं समधिगम्य दक्षिणामाशिषा तमभिनन्द्य निर्ययौ ॥२५॥

हे अवनिनाथ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंकी सत्सभाओंमें इस प्रकारके गुण सूचक करोड़ों शुभ नामोंके द्वारा इन श्रीललीजीका कथन हुआ करेगा ॥२०॥

श्रीअवनिजा जिनकी बड़ी बहिन हैं, गुणोंके अनुसार मैं आपके उन लालजीका नाम "लक्ष्मीनिधि" कहता हूँ और आपकी यह औरसी पुत्री जो अपने सद्गुणोंसे लोकमें विख्यात कीर्त्तिवाली होगी, इसका नाम मैं उर्मिला कह रहा हूँ ॥२१॥

उर्मिलाजीके छोटे उदार-पराक्रम भैया का नाम मैं "गुणाकर" कहता हूँ। हे अवनि पाल ! इस जगत्में आपके समान भाग्य-भाजन बस आपही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥२२॥

हे श्रीयोगिराजजी ! श्रीभूमिजाजीके श्रीचरणकमलोंकी पूजा करनेको उत्सुक उमा, रमा, ब्रह्माणी, आदि सभी उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) शक्तियाँ आपके कुल एवं नगरमें जन्म ले चुकी हैं, आप यह मेरा वचन सत्य जानिये ॥२३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! आप सभीके श्रवण करते हुये श्रीशतानन्दजी महाराजके इस प्रकार कहने पर उपस्थित लोगोंका उच्च स्वरसे जयकारका शब्द सुनकर, पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजी महाराजको सादर प्रणाम किये ॥२४॥

निमिवंशियोंके कुलगुरु श्रीशतानन्दजी महाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजसे विधि पूर्वक पूजित हो पर्याप्त दक्षिणा पाकर, उन्हें आशीर्वादके द्वारा अभिनन्दित करके विदा हुये ॥२५॥

सर्व एवमवनीशतर्पिता भोजनांशुकविभूषणादिभिः ।
वैष्णवाश्च मुनयो द्विजातयो न्यासिनश्च मुदिताः प्रशंसिरे ॥२६॥
भोजनं च सह चक्रवर्तिना श्रीमता सकललोकभूभृताम् ।
शोभितेन भवदादिभिः सुखं चित्तहारिभिरभून्महानसे ॥२७॥
एवमेव सह मातृभिस्तवाशेषराजकुलयोषितां प्रिय ! ।
मोदमानहृदयाभिरप्यभूद्भोजनं सुनयनानिकेतने ॥२८॥
बालवृद्धतरुणाः स्त्रियो नराः सर्व एव पुरवासिनो मुदा ।
सार्द्धमन्यपुरवासिभिस्तदा पङ्क्तितो बुभुजिरे विभाजिताः ॥२९॥
स्वर्णतन्तुपटरत्नभूषणस्त्रग्भिरीड्यमहिमा विभूष्य तान् ।
संविभूषितरथेभवाजिनां दानतश्च सकलानतोषयत् ॥३०॥
कोऽस्ति भूप उत कोऽस्ति निर्धनस्तर्हि नान्तरमिति स्म लक्ष्यते ।
द्रव्यमेत्य बहुपुष्कलं हि ते निर्धना अपि गता धनेशताम् ॥३१॥
राजपट्टमहिषीनरेशयोः सर्व एव विधिना सुसत्कृतेः ।
तर्पिता ह्यतिशयेन तेऽगमन् प्रार्थ्य वाससदनानि दम्पती ॥३२॥

भोजन, वस्त्र, भूषण आदिसे श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा तृप्त किये गये सभी ब्राह्मण, मुनि, वैष्णव, सन्यासी वृन्द मुदित हो उनकी प्रशंसा करने लगे ॥२६॥

अपने दर्शन, चितवन, मुस्कान, कोकिल भाषण आदिके द्वारा चित्तको हरण करनेवाले आप चारो भाइयोंके सहित श्रीमान् चक्रवर्तीजी महाराजके साथ समस्त राजाओंका भोजन भोजनालय में हुआ ॥२७॥ हे प्यारे ! इसी प्रकार आपकी माताओंके सहित, मुदित हृदया सभी राजकुल की स्त्रियोंका भोजन, श्रीसुनयना अम्बाजीके महलमें हुआ ॥२८॥

तब सभी पुरवासी बालक, वृद्ध, युवक, स्त्री-पुरुष अन्य पुरवासी बाल, बृद्ध, तरुण स्त्री-पुरुषोंके सहित अपनी अपनी पंक्तिमें विभक्त होकर आनन्द पूर्वक भोजन करने लगे ॥२९॥

भोजनके पश्चात् स्तुति करने योग्य महिमा वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने सोनेके धागोंसे बने हुये वस्त्र व रत्नोंके भूषण, मालाओंके द्वारा सभीको भूषित करके शृङ्गार किये हुये रथ, हाथी, घोड़ा आदिके दानसे सभी लोगोंको सन्तुष्ट किया ॥३०॥

बहुत पर्याप्त द्रव्यको पाकर निर्धन भी कुबेरके समान धनके स्वामी बन गये, अतः उस समय कौन राजा है ? और कौन निर्धन ? यह भेद ही नहीं लक्षित होता था ॥३१॥

सभी श्रीसुनयना अम्बाजी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजके विधिपूर्वक किये हुये सत्कार द्वारा अतिशय तृप्त होकर, दोनों (महाराज व महारानीजी) से प्रार्थना करके अपने-अपने निवास महलों को विदा हुए ॥३२॥

एवमेव निजवाससद्मनो भूपतिर्जिगमिषां न्यवेदयत् ।
पित्र एव मम तेन सूचनाऽन्तः पुराय खलु सा समर्पिता ॥३३॥

मातरस्तु परिरभ्य भूयशो मैथिलीमुपगताः कृतार्थताम् ।
तामवाप्य गमनोद्यता हि वो मातरं समभिभाष्य मेऽभवन् ॥३४॥

भ्रातृभिस्तु समलङ्कृतं मुहुर्गन्तुकाममुरसोपगूह्य सा ।
व्यादिदेश गमनाय मातृभिस्त्वां सहैव जननी कथञ्चन् ॥३५॥

प्राप्य चाशु डयनैर्नृपान्तिकं ता भवद्भिरभिसंयुताः प्रिय ! ।
संस्थिता निमिध्वेन वन्दिताः सानुजोऽथ परिरम्भितो भवान् ॥३६॥

भानुवंशगुरुमात्मजं विधेः श्रीवशिष्ठमभिसृत्य सत्कृतम् ।
आननाम नृपतिस्तदाज्ञया भूपमश्रुनयनो व्यसर्जयत् ॥३७॥

उन सभीके चले जाने पर श्रीचक्रवर्तीने भी मेरे पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजसे अपने वास-भवन जानेकी इच्छा निवेदन की, और उन्होंने वह सूचना अन्तः पुरमें श्रीसुनयना अम्बाजी को भेजी ॥३३॥ हे प्यारे ! उस सूचनाको पाकर आपकी सभी मातायें श्रीमैथिलीजीको बारम्बार हृदयसे लगा कर कृतकृत्य हो, हमारी श्रीसुनयना अम्बाजीसे आज्ञा माँगकर वास-भवन जानेके लिये उद्यत हुई ॥३४॥

पुनः भाइयों सहित सम्पूर्ण शृङ्गार धारण किये हुये, जब आपने बिदा होनेकी इच्छा की तब, श्रीसुनयना अम्बाजीने बारम्बार हृदयसे लगाकर बड़ीही कठिनाईसे अपनी माताओंके साथ आपको वास-भवन जानेके लिये आज्ञा प्रदान की ॥३५॥

हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीसे विदा होकर आप चारो भाइयोंके सहित, आपकी सभी मातायें पालकियोंके द्वारा श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजके पास शीघ्र पहुँचकर विराजमान हुईं, उन्हें श्रीनिमिवंशियोंके स्वामी (श्रीमिथिलेशजी) ने प्रणाम किया और भाइयोंके सहित आपको श्रीमिथिलेशजी महाराजने हृदयसे लगा लिया ॥३६॥

पुनः सूर्यवंशके गुरु, श्रीब्रह्माजीके पुत्र श्रीवशिष्ठजी महाराजके पास आकर श्रीजनकजी महाराजने उन्हें प्रणाम किया, पश्चात् उनकी आज्ञासे श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको साश्रुनेत्रहो कर निवास-भवन जानेके लिये बिदा किया ॥३७॥

इत्थं सर्व उपागताः प्रमुदिताः सम्बन्धिनो भूपतेः
स्वामिन्या मम शोभनं शिशुवपुः सञ्चिन्तयन्तो नृपाः ।
केचिद्दैनिकमुत्सवं तदपरे युष्माकमेव च्छबिं
ध्यायन्तस्तमथाभिभाष्य च ययुः स्वं स्वं निवासालयम् ॥३८॥

हे प्यारे ! इस प्रकार सभी आये हुये सम्बन्धी राजा मोद युक्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराजसे आज्ञा लेकर हमारी श्रीस्वामिनीजीके सुन्दर शिशु रूपका चिन्तन तथा कोई उस दिनके नाम करणादि उत्सवका स्मरण और कोई आप लोगोंकी छबिका ध्यान करते हुये अपने-अपने निवास-भवनोंको गये ॥३८॥

इत्येकचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथद्विचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

श्रीजनक भवनमें चक्रवर्ती कुमारों का सस्नेह आह्वान तथा सपरिवार श्रीसुनयना अम्बाजी द्वारा उनका यथेष्ट सत्कार ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ तु प्रीतिरीतिज्ञा राज्ञी सुनयना रहः । संविमृश्य महत्कार्यं प्रसन्नवदना बभौ ॥१॥
सखीपाणिं करे धृत्वाः पुनः प्रोवाच सादरम् । श्रूयतामिति मे भद्रे ! मनसा यद्विचारितम् ॥२॥
यस्य रूपसुधाम्भोधौ मग्नचित्ताः पुरौकसः। त्यक्तकृत्या इवाभान्ति विह्वलाः पद्मलोचने ! ॥३॥
यस्य वै मोहिनी मूर्त्तिर्हृदयान्नापसर्पति । विना दृष्ट्वा सुतां हन्त सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके नामकरण आदि उत्सवोंके हो जानेपर प्रीति की रीति जाननेवाली, रानी श्रीसुनयना अम्बाजी एकान्त में सम्यक् प्रकार से एक महान् आवश्यक कार्यको विचार करके, प्रसन्नमुख हो गयीं ॥१॥

अतः अपनी सखीका हाथ निज हाथमें रखकर आदर पूर्वक बोलीं:—हे भद्रे (कल्याण स्वरूपे) ! मैंने जो मनमें विचार किया है, तुम उसे सुनो ॥२॥

हे कमललोचने ! जिनके रूप सुधा-समुद्रमें डूबे चित्त पुरवासी लोग, समस्त आवश्यक कर्मों का भी त्याग किये हुये, विह्वलसे प्रतीत हो रहे हैं ॥३॥

अहह ! जिनकी मोहिनी मूर्त्ति सत्, चित्, आनन्द-स्वरूपा श्रीललीजीके दर्शनोंके बिना कभी मेरे हृदयसे हटती ही नहीं ॥४॥

गजगामीन्दुपूर्णास्यो मृदुभाषी स्मिताधरः । चक्रवर्तिकुमारोऽसौ रामो राजीवलोचनः ॥५॥
आगतस्तु समं पित्रा मातृभिर्भ्रातृभिर्युतः । प्राणैरप्यधिको राज्ञः प्रेष्ठो निखिलदेहिनाम् ॥६॥
तस्य कोऽपि न सत्कार इदानीमप्यभूदिह । विशेषेण महाप्राज्ञे ! बहिरन्तर्निवासिनः ॥७॥
स अनीयात्र शोभाढचो रघुवंशप्रभाकरः । विशेषेणैव सत्कार्य्य इति मे निश्चला मतिः ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मनोवाञ्छितसिद्धिदम् । आहेति चन्द्रभद्राली संप्रहृष्टतनूरुहा ॥९॥

चन्द्रभद्रोवाच ।

जय जय महाराज्ञि ! महाभागे! महामते !। चिरञ्जीवतु ते पुत्री श्रीमत्या साधु चिन्तितम् ॥१०॥
यदि तस्यैव सत्कारो न विशेषतया भवेत् । सत्कारार्हस्य कोऽन्यस्तु सुसत्कर्त्तव्यतां व्रजेत् ॥११॥
अवश्यमेव सत्कार्यो भवत्याऽऽहूय मन्दिरम् । चक्रवर्तिकुमारोऽसौ रामो मदनमोहनः ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अनुमोदितमालोक्य सख्याऽपि स्वविचारितम् । प्रशस्य तमिदं भूयो व्याजहार शुभं वचः ॥१३॥

वे हाथीके सदृश मस्त चलने वाले, पूर्ण चन्द्रमाके समान मनमोहन मुखारविन्द, कोमल शब्दोंको बोलने वाले, मुस्कान-युक्त अधर, कमलके समान सुन्दर व विशाल लोचन, चक्रवर्ती कुमार श्रीरामलालजी ॥५॥

जो श्रीचक्रवर्तीजीके तथा सभी शरीर-धारियोंके प्राणोंसे भी अत्यन्ताधिक प्यारे अपने पिता, माता, बन्धुओंके सहित यहाँ पधारे हुये हैं ॥६॥

हे महाप्राज्ञे ! बाहर भीतर निवास करने वाले उन श्रीलालजीका आजतक यहाँ कोई भी विशेष सत्कार, नहीं हो सका ॥७॥

रघुवंशको सूर्य, के समान प्रकाशित करने वाले उन श्रीचक्रवर्ती कुमारजीको अपने महलमें बुलाकर अवश्य विशेष सत्कार करना चाहिये, मेरा यह अटल विचार है ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! अपने मनोरथकी सिद्धि प्रदान करने वाले श्रीअम्बाजीके उन वचनोंको श्रवण करके चन्द्रप्रभा सखी रोमाञ्चित हो, बोली ॥९॥

हे महाभागे ! हे महामते ! श्रीमहारानीजी ! आपकी जयहो जयहो, आपकी श्रीललीजी चिरकालतक जीवें, श्रीमतीजीने बहुतही अच्छा विचार किया है ॥१०॥

सत्कारके सर्वथा योग्य श्रीरामलालजीका ही यदि विशेष रूपसे सत्कार न हुआ, तो फिर और कौन सत्कारका विशेष पात्र हो सकता है ? ॥११॥

अत एव कामदेवको भी अपने छवि-सौन्दर्यसे मुग्ध करलेने वाले चक्रवर्तीकुमार श्रीराम-लालजो को अपने महल बुलाकर उनका अवश्यमेव विशेष सत्कार करना चाहिये ॥१२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! सखीके द्वारा अपने विचारका अनुमोदन प्राप्तकर श्रीअम्बाजी उस सखीकी प्रशंसा करके पुनः यह मङ्गल वचन बोली ॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

यदि त्वयाऽपि सिद्धान्तो मम चोरीकृतः शुभे !। प्रयायायमभिप्रायो निवेद्यो निमिभानवे ॥१४॥
इदानीमेव कर्त्तव्यः प्रयत्नस्तद्विधोऽनघे ! । रामभद्र इहागत्य दर्शनानन्ददो भवेत् ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञ्या तथेत्याभाष्य साञ्जलिः । प्रणता निर्ययौ हृष्टा महीपाय निवेदितुम् ॥१६॥
आससाद तमुर्वीशं ध्यानावस्थितचेतसम् । गृहमाजगवस्यैत्य नत्वा बद्धाञ्जलिः स्थिता ॥१७॥
तत उन्मीलिताक्षेन नृपेण सहसाऽऽगता । कस्माद्द्रुतमिहायाता वीक्ष्य सा समपृच्छ्यत ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सा प्रणम्य मुदा पादौ नरदेवशिखामणेः । हेतोरागमनस्याङ्ग कथनायोपचक्रमे ॥१९॥

श्रीचन्द्रभद्रोवाच ।

महाराज ! महाराज्ञ्या यदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम् । तन्निशम्य यथायोग्यं विधत्तां भगवंस्तथा ॥२०॥

श्रीमहाराज्ञ्युवाच ।

आगताः सहिताः पित्रा मातृभिर्मोहनेक्षणाः । चक्रवर्तिकुमारा ये समाहूता महाक्रतौ ॥२१॥

हे शुभे ! यदि आप मेरे सिद्धान्तको स्वीकार करती हैं, तो मेरे इस अभिप्रायको निमिवंश के सूर्य (श्रीमिथिलेशजी) महाराजसे जाकर निवेदन करें ॥१४॥

हे निष्पापे ! इस समय उसी प्रकारका प्रयत्न करना चाहिये, जिससे श्रीरामभद्रजू यहाँ (महल में) आकर अपने दर्शनोंका आनन्द प्रदान करें ॥१५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके इस प्रकार कहने पर श्रीचन्द्रभद्रा सखी हर्षित हो दोनों हाथ जोड़कर उनसे "ऐसा ही करूँगी" कहकर नतमस्तक हो श्रीअम्बाजीका निश्चित विचार निवेदन करनेके लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास चल पड़ी ॥१६॥ उसने धनुषके स्थान (धनुर्भवन) में जाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजको ध्यान करते हुये पाया, अतः उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़ी रही ॥१७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने नेत्र खोलकर सखीको सहसा आई हुई देखकर पूछा:-अरी सखी ! तुम इतना शीघ्र यहाँ किस लिये आई हो ? ॥१८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे अङ्ग! वह सखी नृपतिचूड़ामणि श्रीमिथिलेशजी महाराजके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम करके प्रसन्नता पूर्वक अपने अकस्मात् आनेका कारण कहने लगी ।१९॥

श्रीचन्द्रभद्राजी बोलीं:-हे महाराज ! श्रीमहारानीजीने हमें जिस लिये आपके पास भेजा है, उसे श्रवण करके आप जैसा उचित समझें, कीजिये ॥२०॥

श्रीमहारानीजीने कहा है:-कि इस महायज्ञमें निमन्त्रित हुये जो, मनमोहन-दर्शन श्रीचक्रवर्ती-कुमार श्रीरामभद्रजू अपनी माताओंके सहित यहाँ पिताजीके साथ आये हुये हैं ॥२१॥

अद्यापि निवसन्तस्ते नो विशेषेण सत्कृताः । गन्तारः स्वपुरं शीघ्रं सह पित्रा च मातृभिः ॥२२॥
स्यान्नयुक्तं कुलस्यास्य तत्तु हन्त कथञ्चन । इतो यदि गतास्ते स्युरविशेषेण सत्कृताः ॥२३॥
अतस्ते वै समानीय राजपुत्रा मनोहराः । सत्कारविधिभिर्नैकैः सत्कर्त्तव्या विशेषताः ॥२४॥
अन्यथा गमनं तेषामयोध्यायां भविष्यति । पश्चात्तापाय वै राजन्नावयोः स्मरतोः सदा ॥२५॥

श्रीसख्युवाच ।

एतदर्थं महाराज्ञ्या प्रेषिताऽहमुपस्थिता । भवतः स्मारणायैव यथा योग्यं तथा कुरु ॥२६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्यास्तदुदितं वाक्यं समाकर्ण्य शुभाक्षरम् । मोदमानमना राजा तामिदं समभाषत ॥२७॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

परमावश्यकं कार्यमिदं राज्ञ्या विचारितम् । शीघ्रमेव प्रकर्त्तव्यं सयत्नमविलम्बतः ॥२८॥
यतो जिगमिषां भूयः स्वपुर्यां चक्रवर्तिना । मह्यं निवेदिता भद्रे ! प्रीतेर्नाङ्गीकृता मया ॥२९॥

उन्हें एक वर्षसे भी अधिक यहाँ निवास करते हुये हो गया है और अब अपने पिताजी और माताओंके सहित अपनी पुरीको शीघ्र जानेवाले भी हैं, परन्तु आज तक उनका कोई विशेष सत्कार नहीं किया जा सका ॥२२॥

यदि ये श्रीचक्रवर्तीकुमार बिना विशेष सत्कार पाये ही, यहाँ से चले गये तो यह बात इस कुलके लिये किसी प्रकार अनुरुप न होगी ॥२३॥

अतः उन मनोहर राजकुमारोंको अपने महलमें बुलाकर अनेक प्रकारकी सत्कार विधियों द्वारा उनका अवश्यही विशेष सत्कार करना कर्त्तव्य है ॥२४॥

अन्यथा, बिना विशेष सत्कार हुये ही उनका अयोध्याजी चले जाना हम लोगोंके लिये सदा स्मरण करने पर केवल पश्चात्ताप करनेका ही विषय होगा अर्थात् जब कभी स्मरण आयेगा कि श्रीचक्रवर्तीकुमारजी हमारे यहाँ इतने दिन रहकरके अपनी पुरीको चले गये, परन्तु हमसे उनका कोई भी विशेष सत्कार न बन सका तो, उस समय सदा ही केवल पछिताना ही हाथ रहेगा ॥२५॥

सखी बोली:—हे महाराज ! आपको इसी बातका स्मरण दिलाने हेतु श्रीमहारानीजोकी भेजी हुई मैं आपके पास उपस्थित हूँ, अब जैसा उचित हो, कीजिये ॥२६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! उस सखीके मङ्गल अक्षरोंसे युक्त कहे हुये वचनोंको श्रवण करके श्रीमिथिलेशजी महाराजने मुदित मन होते हुये, उससे बोले ॥२७॥

हे सखी ! श्रीमहारानीजीने यह परम आवश्यक कार्य विचारा है, अतः विलम्ब न करके इसे शीघ्रता पूर्वक ही पूर्ण कर लेना उचित है क्योंकि श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अपने पुरको जानेकी इच्छा मुझसे कई बार निवेदन कर चुके हैं, केवल मैंने ही अपने प्रेमके कारण उसे स्वीकार नहीं किया है ॥२८॥२९॥

तस्मादहं समानेतुमिदानीमेव बालकान् । नृपावासालयं क्षिप्रमभिगच्छामि शोभने ! ॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्त्वा सखीं राजा तां बिसृज्याङ्ग सादरम् । आजगामान्तिकं श्रीमत्पितुस्ते मन्त्रिभिर्युतः ॥३१॥
तमायान्तं समालोक्य प्रातरेव पिता तव । अभ्युत्थानादिभिस्तस्य चकार स्वागतं स्वयम् ॥३२॥
तयोः समागमस्तर्हि बभूवाद्भुतदर्शनः । पश्यतां प्रमदापुंसां सूर्यचन्द्रमसोरिव ॥३३॥
पुना रघुकुलाचार्यं प्रणनाम स दण्डवत् । तेन गाढं समुत्थाप्यालिङ्गितः परया मुदा ।३४॥
कोशलेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां मिथिलेन्द्रं वरासने । उपवेश्य स्वकीयेऽथ तस्थिवान्प्रार्थितः स्वयम् ॥३५॥
उवाच परया प्रीत्या पिता ते पितरं मम । कच्चित्कुशलवानस्ति भवान् सान्तः पुरादिकः ॥३६॥
इदानीमुच्यतां प्रातरागतेराद्यकारणम् । श्रीमता निकटेऽस्माकं स्वकीयं व्यक्तया गिरा ॥३७॥
तदहं श्रवणाकाङ्क्षाव्यग्रचित्तो नराधिप ! । यतः श्रीमान्मया नूनमद्य प्रार्थीव लक्ष्यते ॥३८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तो महीपालो महीपालेन सादरम् । बद्धाञ्जलिरुवाचेदं प्रेमसंरुद्धया गिरा ॥३९॥

हे शोभने ! इस हेतु मैं अभी शीघ्र ही श्रीचक्रवर्तीजीके बालकोंको लानेके लिये उनके निवास महलको जा रहा हूँ ॥३०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी महाराज सखीसे यह कहकर उसे आदर पूर्वक वापस करके, मन्त्रियोंके साथ आपके श्रीमान् पिताजीके पास पधारे ॥३१॥

आपके पिताजीने उन्हें प्रातःकाल ही आते हुये देखकर अभ्युत्थान (उठने) आदिके द्वारा उनका स्वयं स्वागत किया ॥३२॥ उस समय देखनेवाले स्त्री पुरुषोंको उन दोनों महाराजोंके मिलनेका दर्शन चन्द्र-सूर्यके समान अद्भुत (आश्चर्यमय) प्रतीत हुआ ॥३३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने रघुकुलके गुरु श्रीवशिष्ठजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम किया, श्रीवशिष्ठजी महाराजने उन्हें उठाकर बड़े ही हर्ष पूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥३४॥

श्रीकोशलेन्द्रजी महाराज दोनों हाथों से श्रीमिथिलेशजी महाराजको अपने श्रेष्ठ आसन पर बैठाकर, उनकी प्रार्थनासे वे स्वयं भी विराज गये ॥३५॥

आपके पिताजी बड़े प्रेम पूर्वक हमारे श्रीपिताजीसे बोले–हे राजन् ! आप अन्तःपुर सहित कुशलसे तो हैं ? ॥३६॥ श्रीमान्जी ! मेरे पास अपने प्रातःकाल आनेका मुख्य कारण अब स्पष्ट वाणीमें कथन करें ॥३७॥

हे नराधिप ! उसे सुनने की इच्छासे मेरा चित्त चञ्चल हो रहा है, क्योंकि श्रीमान्जी आज मुझसे कुछ प्रार्थना करनेके लिये इच्छुक जैसे प्रतीत हो रहे हैं ॥३८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीचक्रवर्तीजीके इस प्रकार कहने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज, आदर पूर्वक प्रेम गद्गदवाणीसे हाथ जोड़ कर बोले–॥३९॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

सार्वभौम ! महाराज ! कुमारांस्तव सुव्रत ! समाहूयाद्य संद्रष्टुं ममान्तः पुरमिच्छति ॥४०॥
एतदर्थमहं प्राप्तः पिनाकागारतः स्वयम् । विचार्य्य मनसा युक्तं रोचते यत्तदुच्यताम् ॥४१॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

इत्थमाभाषितं वाक्यं वशिष्ठो भगवान्मुदा । अभ्यभाषत संश्रूय पितुर्मे कोशलेश्वरम् ॥४२॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

एतत्प्रयोजनायैव दूतेऽप्यत्रागते सति । सत्वरं भवता प्रेष्या अविचारयता सुताः ॥४३॥
किं पुनर्नृपशार्दूल ! स्वयमेवागते सति । आनेतुं नरदेवेऽस्मिन् कुमारान्प्रेषयाशवतः ॥४४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं वदति विध्वास्यो भवान् मोहनविग्रहः । इनवंशगुरावाद्येऽगमत्तत्र यदृच्छया ॥४५॥
कृतप्रणाममाशीर्भिरभिनन्द्य प्रियोत्तम ! सुषमामाधुरीं सर्वे दृक्पुटाभ्यां च ते पपुः ॥४६॥
तत आदृत्य हृष्टात्मा त्वां परिष्वज्य भूपतिः । यदाह मधुरं वाक्यं जनन्यास्तच्छ्रुतं ब्रुवे ॥४७॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्रं ते परीतस्यानुजैर्नृपः । आगतोऽयं महाराज्ञ्या प्रेरितस्ते निनीषया ॥४८॥

हे सुन्दर ब्रतोंको धारण करनेवाले सार्वभौम (श्रीचक्रवर्तीजी) महाराज ! आज मेरा अन्तः-पुर आपके राजकुमारोंको बुलाकर देखने की इच्छा कर रहा है ॥४०॥ इसी अभिप्रायसे मैं इस समय धनुष भवनसे स्वयं आया हूँ अतः इस विषयमें मनसे उचित विचार करके जैसा आपकी रुचिहो, कह दीजिये ॥४१॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! हमारे पिताजीके इस बचनको श्रवण करके भगवान् श्रीबशिष्ठजी हर्ष पूर्वक, श्रीकोशलेन्द्र महाराजसे बोले ॥४२॥

हे राजन् ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके अन्तःपुर ले जानेके लिये, इनके दूतके भी यहाँ आ जाने पर विना कुछ विचार किये ही आपको तत्क्षण राजकुमारोंको वहाँ भेज देनाही उचित होता ॥४३॥ फिर स्वयं श्रीमिथिलेशजी महाराजके लेने हेतु आने पर विचारही क्या करना है? अत एव आप शीघ्र राजकुमारोंको महल भेज दीजिये ॥४४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! सूर्यवंशके श्रीगुरुदेवजीके इस प्रकार कहते ही अपने स्वरूपसे सभीको मोहित करने वाले, चन्द्रवदन, आप वहाँ अकस्मात् जा पहुँचे ॥४५॥

हे प्रियोत्तम ! प्रणाम करने पर अनेक शुभाशीर्वादोंके द्वारा आपका अभिनन्दन करके सभी लोग अपने नेत्र रूपी दोनोंसे आपकी अतुलित छबिरूपी-माधुरीका रस पीने लगे ॥४६॥

तत्पश्चात् श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने प्रसन्न चित्त हो आपको हृदय लगाकर आदर पूर्वक जो आपसे मधुर वचन कहा था, उसे श्रीसुनयना अम्बाजीके मुखसे श्रवण करके मैं आपको सुना रही हूँ ॥४७॥ श्रीचक्रवर्तीजी महाराज बोले:—हे वत्स ! हे श्रीरामभद्रजू ! आपका कल्याण हो, ये श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीमहारानीजीकी प्रेरणासे भाइयोंके सहित आपको अपने महल ले जानेकी इच्छासे आये हैं ॥४८॥

अतोऽभिभाष्य जननीं गम्यतां त्वरया त्वया । महाराजालयस्तात ! राज्ञीसन्तोषहेतवे ॥४६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं ! वशिष्ठानुमतं तदा । प्रणिपत्यागमस्तूर्णं मातरं तन्निवेदितुम् ॥५०॥
सा परिज्ञाय मे मातुरभिप्रायं मुदान्विता । संविभूष्य समालिङ्ग्य गन्तुमाज्ञापयत्सुधीः ॥५१॥
ततोऽभिवाद्य जननीं परीतो बन्धुभिः प्रिय! । समीपं स्वपितुः प्राप भवान् कञ्जविलोचनः ॥५२॥
स त्वामुपगतं दृष्ट्वा लालयित्वोपगूह्य च । आघ्राय मस्तकं ह्याज्ञां गमनाय प्रदत्तवान् ॥५३॥
गुरुपित्रोः पदाब्जेषु तदा कृत्वाऽभिवादनम् । भ्रातृभिः सहितो हृष्टो गमनायाकरोर्मतिम् ॥५४॥
चलच्छैलप्रतीकाशमैरावतकुलोद्भवम् । समारुह्य महानागं सर्वालङ्कारशोभितम् ॥५५॥
पितुरङ्कगतोऽस्माकं जगन्मोहनविग्रहः । अतीवशुशुभे तर्हि भवान् राजपथे व्रजन् ॥५६॥
परमानन्दसन्दोह ! पश्यतां पुरवासिनाम् । वर्षतां पुष्पवर्षाणि वदतां च जयेत्यपि ॥५७॥
पश्यन्तीनां गवाक्षेभ्यो मनोरत्नानि योषिताम् । षष्ठमावरणं प्राप गृह्णन्प्राभृतानि च ॥५८॥

अत एव आप अपनी अम्बाजीसे कहकर शीघ्र श्रीसुनयना महारानीजीके सन्तोषके लिये महाराजके महल पधारिये ॥४६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीवशिष्ठजी महाराजकी अनुमति पूर्वक अपने पिताजीके वचनको श्रवण करके उन्हें प्रणामकर आप तुरन्त श्रीकौशल्या अम्बाजीके पास पधारे ॥५०॥ आपकी श्रीअम्बाजीने मेरी सुनयना अम्बाजीके अभिप्रायको जानकर परम आनन्दित हो, नखसे शिखा पर्यन्तका सब श्रृङ्गार धारण कराके आपको हृदयसे लगा, उनके यहाँ जानेकी आज्ञा प्रदान की ॥५१॥ श्रीअम्बाजीकी आज्ञा मिल जाने पर उन्हें प्रणाम करके, आप कमललोचन सरकार अपने भाइयोंके सहित अपने श्रीपिताजीके पास पहुँचे ॥५२॥

अपने पासमें आये देखकर लाड़ (प्यार) करके, आपको उन्होंने हृदयसे लगाया और आपके मस्तकको सूंघकर (श्रीमिथिलेशजी महाराजके महल) जानेके लिये आज्ञा प्रदान की ॥५३॥

तब श्रीवशिष्ठजी महाराज व अपने श्रीपिताजीके चरण कमलोंमें प्रणाम करके भाइयोंके सहित हर्षपूर्वक गमन करनेकी आपने इच्छा की ॥५४॥

अतः समस्त शृंगारसे शोभायमान ऐरावतके वंशमें जन्म लिये हुये, चलते हुये पहाड़के सदृश ऊँचे तथा विशालकाय श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर ॥५५॥

उस समय हमारे श्रीपिताजीकी गोदमें विराजमान हो, राजमार्ग द्वारा महल जाते हुए, अपने मङ्गलमय स्वरूपसे सभी चर-अचर प्राणियोंको मुग्ध करने वाले आपकी, बड़ी ही शोभा हो रही थी ॥५६॥ हे परमानन्द (ब्रह्मानन्द) सन्दोह ! पुनः फूलोंकी वर्षा बरसाते और जय जय कार बोलते हुए पुरवासियोंको दर्शन देते तथा झरोखोंसे दर्शन करती स्त्रियोंके मन रूपी बहुमूल्य रत्नों की भेंट ग्रहण करते हुए आप छठें आवरणमें जा पहुँचे ॥५७॥५८॥

तस्मादपि विनिष्क्रम्य सप्तमावरणे शुभे । रम्यमन्तःपुरं प्राप्तो मनोज्ञं मिथिलेशितुः ॥५९॥
पञ्चमावरणं यावद् गजेनाभ्येत्य वै भवान् । ततोऽवतारितः प्रागात् षष्ठमालिरथेन सः ॥६०॥
पञ्चमावरणं यावद् गजेनाभ्येत्य वै भवान् । सस्वागतं समायान्तं मम माता यशस्विनी ॥६१॥
नीलेन्दीवरभव्याङ्गं राकाशशिनिभाननम् । शतपत्रपलाशाक्षं बिम्बोष्ठं मोहनस्मितम् ॥६२॥
कम्बुग्रीवं महोरस्कं गूढजत्रुं सुनासिकम् । सुभ्रुवं स्वीक्षणं सुष्ठुकपोलं दीर्घमस्तकम् ॥६३॥
आजानुबाहुमालोक्य सर्वाङ्गप्रियदर्शनम् । किरीटहारकेयूरनूपुरादिविभूषितम् ॥६४॥
भवन्तं श्रुतिसिद्धान्तसारं बन्धुभिरन्वितम् । आलिलिङ्ग महाभागा माता सुनयना मुदा ॥६५॥
अवाप्य परमानन्दं गृहीत्वा त्वत्कराङ्गुलीम् । समानीयात्मनो वेश्म रत्नपीठे न्यवेशयत् ॥६६॥
ततो नीराज्य सा शीघ्रं स्वर्णपात्रनिवेशितम् । घृतपक्वं पयःपक्वं मिष्टान्नं विविधं ह्यदात् ॥६७॥
भोजनार्थं महाराज्ञी हर्षविस्फारितेक्षणा । दत्वा दधिचिपटान्नं सादरं पुनरब्रवीत् ॥६८॥

उस छठें आवरणसे भी निकलकर आपने नगरके सातवें शुभ आवरणमें स्थित, श्रीमिथिलेशजी महाराजके मनोहर, रमणीय अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥५९॥

उस अन्तः पुरमें पाँच आवरण तक हाथीसे जाकर, आपको उससे उतार कर सखीयानमें बैठाया गया, उस यान द्वारा आप छठे आवरणमें पहुँचे ॥६०॥

तब मेरी यशस्विनी, वात्सल्यवती (श्रीसुनयना) अम्बाजी, आपको आते हुये सुनकर, स्वागत पूर्वक अपने महलमें ले जानेके लिये, आपके पास उपस्थित हुईं ॥६१॥ नील-कमलके समान सुन्दर श्याम अङ्ग, शरद् पूर्णिमाके चन्द्र सदृश मनोहर, आह्लाद-वर्द्धक मुखारविन्द, कमल-दलके समान विशाल नेत्र, कुन्दुरू फलके तुल्य लाल ओठ, मोहन मुस्कान ॥६२॥

शङ्खके सदृश कण्ठ, विशाल हृदय, छिपी हुई कन्धेसे गले पर्यन्तकी हड्डी, सुन्दर नासिका, भौंह, सुन्दर चितवन, सुन्दर गाल विशालमस्तक ॥६३॥

घुटने तक लम्बी भुजाएं, सर्वाङ्ग प्रिय दर्शन अर्थात् जिनके सभी अङ्गोंका दर्शन प्रिय लगता है उन्हें किरीट, हार, बाजूबन्द, नूपुर आदि भूषणोंसे विभूषित (शृङ्गार किये हुये) देखकर ॥६४॥

बन्धुओंसे युक्त वेदोंके सिद्धान्तके सारस्वरूप आपको बड़भागिनी श्रीसुनयनाअम्बाजीने आनन्द पूर्वक हृदयसे लगाया ॥६५॥ श्रीअम्बाजीने आपको हृदयसे लगाकर भगवदानन्द को प्राप्त हो, आपके कर कमलकी अङ्गुली पकड़कर आपको अपने महलमें लाकर, रत्नमय सिंहासन पर विराजमान किया ॥६६॥

पश्चात् आरती करके घी तथा दूधके द्वारा बनाई हुई अनेक प्रकारकी मिठाइयों को सुवर्णके थालमें सजाकर, आप लोगोंको देती हुईं ॥६७॥ हर्षसे फैले हुये नेत्रवाली महारानी (श्रीसुनयना अम्बाजी) पुनः भोजनके लिये दही चिउड़ा देकर आदर पूर्वक बोलीं:—॥६८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

भुज्यतां वत्स ! श्रीराम! कौशल्यानन्दवर्द्धन!। हे श्रीभरत ! सौमित्री! भद्रं वः परमोदतः ॥६९॥
न सङ्कोचो मनाक्कार्य इदं वो हि निकेतनम् । अंशुकावरणं चेद्वो रोचते करवाण्यहम् ॥७०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतन्मे जननीवाक्यं पितृव्या सर्व एव हि । सम्बोध्य त्वां ततः प्रीता हर्षिताः समपूजयन् ॥७१॥

श्रीराम उवाच ।

अंशुकावरणस्यास्ति किमम्बेह प्रयोजनम् । स्थितिरावरणोपेता मह्यमन्यत्र रोचते ॥७२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्तं वचः प्रेष्ठ ! त्वदीयममृतोपमम् । पीत्वा श्रुतिपुटाभ्यां ते परां शान्तिमुपागमन् ॥७३॥
अथोचुर्हर्षपूर्णाक्षा वत्स ! राम ! वचस्तव । युक्तं निरुपमं जीव सुखेन शरदां शतम् ॥७४॥
तस्मिन्नेव शुभे काले हेमादीनां च मातरः । आगता दर्शनार्थाय श्रुत्वा त्वां गृहमागतम् ॥७५॥

हे श्रीकौशल्यानन्दवर्धन! वत्स ! श्रीराम! हे श्रीभरतलालजी! हे श्रीसुमित्रानन्दन श्रीलषण-लाल व श्रीरिपुसूदनजी! आप चारो भाइयोंका कल्याण हो । आप लोग परमआनन्द पूर्वक भोजन कीजिये ॥६९॥ भोजन करनेमें किञ्चित् भी सङ्कोच न करेंगे, क्योंकि यह भवन आपही लोगोंका है । हाँ यदि आप लोगोंकी रुचि हो, तो मैं कपड़ेका पर्दा कर दूँ ॥७०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे! आपको सम्बोधित करके कुशध्वज आदि सभी चाचा लोगोंने मेरी श्रीसुनयना अम्बाजीके इस वचनका अनुमोदन किया । अर्थात् वे बोले–हे वत्स श्रीरामजू! सङ्कोच निवारणके लिये श्रीमहारानीजूके विचारानुसार कपड़ेका पर्दा हो जाना ठीक ही है ॥७१॥

हे प्यारे! यह सुनकर आप बोले:–हे श्रीअम्बाजी! यहाँ कपड़ाके पर्दाकी क्या आवश्यकता है? परदा से रहना मुझे अन्यत्र ही विशेष रुचिकर है । अर्थात् जिनका प्रेम मेरे प्रति न होकर सांसारिक विषय भोगोंमें ही है, उनके बीचमें मायाका पर्दा डालकर रहना मुझे स्वाभाविक प्रिय है, परन्तु इस प्रेमी भक्त-नगरमें जब मैं उस मायाका ही पर्दा रखना नहीं स्वीकार करता तब, किसी कपड़ेके पर्देकी क्या आवश्यकता है ? सारांश यह है कि जगद्विषयोन्मुख अभक्त–संसारमें तो मैं माया रूपी पर्दाके भीतर रहने वाला हूँ, परन्तु भक्त-संसारके लिये नहीं । अत एव कपड़े आदि के पर्देकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है ॥७२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! अमृतके समान मृतकको जीवन दान देनेवाले आपके इस वचनको श्रवण (कान) रूपी दोनोंसे पीकर वे (हमारे सभी चाचा)परम शान्तिको प्राप्त हुये ॥७३॥

पुनः हर्ष पूर्ण नेत्रहो हमारे (वे चाचा) बोले :– हे वत्स ! श्रीराम ! आपकी यह वाणी बहुत ही युक्त और उपमा रहित है अतः आप सैकड़ों (अनन्त) वर्षों तक जीवित रहें ॥७४॥

हे प्यारे ! उसी समय महलमें आये हुये आपको श्रवण करके, श्रीहेमाजी आदिकी मातायें भी आपका दर्शन करनेके लिये वहाँ आगयीं ॥७५॥

ताः प्रणम्य महाराज्ञीं सुनयनां सुसत्कृताः । महार्घ्यविस्तरे रेजुर्दर्शनोत्सुकलोचनाः ॥७६॥
सवत्साः पद्मपत्राक्ष्यो हिमांशुप्रतिमाननाः । वात्सल्यरससम्पूर्णहृदयेन सुशोभिता ॥७७॥
तदा धात्री समाहूता विरहाकुलचित्तया । आनिन्ये कृत्रिमागारान्निमिवंशविभूषणाम् ॥७८॥
रुदन्तीमिन्दुपुञ्जाभां प्रभालज्जितदामिनीम् । ददावङ्क इमां राज्ञ्यास्ततः सा विरहं जहौ ॥७९॥
वस्त्रमन्तरतः कृत्वा पाययामास वै पयः । भोजयन्ती च सम्प्रीत्या त्वामिमामतुलच्छविम् ॥८०॥
पुनः क्रोडे समारोप्य शरच्चन्द्रनिभाननाम् । लालनैर्बहुधा मात्रा तया संभोजितो भवान् ॥८१॥
भगिन्यो मम वै सर्वास्त्यक्ताम्बाङ्कनिकेतनाः । उपगम्य विशालाक्षीमिमां तस्थुः समानताः ॥८२॥
प्रीत्या चेष्टास्तदा तासां शैशवीर्हृदयङ्गमाः । भ्रातृभिर्भवता कान्त! कृतं संपश्यताऽशनम् ॥८३॥
प्रदायाचमनं तुभ्यं पाययित्वाऽमृतं पयः । ताम्बूलबीटिका दत्ताश्चातिवत्सलयाऽमुया ॥८४॥

वे सभी माताएं श्रीसुनयना अम्बाजीको प्रणाम करके उनके द्वारा समयानुसार सत्कृत हो आपके दर्शनों के लिये उत्सुक नेत्रोंसे बहुमूल्य बिछावन पर विराज गयीं ॥७६॥

वे सभी अपने शिशुओंसे युक्त, कमल पत्रके समान विशाललोचना, चन्द्रमाके सदृश सुन्दर उज्वलमुख वाली माताएं वात्सल्य रस परिपूर्ण हृदयसे सुशोभित थीं ॥७७॥

सभी देवरानियोंकी गोदमें शिशुओंको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीकिशोरीजीके विरह से व्याकुल चित्त हो धाईको बुला भेजा, तब वह निमिवंशकी विशिष्ट भूषण स्वरूपा श्रीकिशोरीजीको कृत्रिमागारसे ले आयी ॥७८॥

चन्द्र समूहके सदृश कान्ति मयी, अपने अङ्गोंकी प्रभासे बिजलीको लज्जित करने वाली, रुदन करती हुई इन श्रीकिशोरीजीको अम्बाजीकी गोदमें दे दिया । श्रीकिशोरीजीके गोदमें बैठ जाते ही श्रीअम्बाजीने अपने विरहका परित्याग किया ॥७९॥

अतिशय प्रेम पूर्वक आपको भोजन कराती हुई, वे श्रीअम्बाजी उपमा रहित छबि-सम्पन्ना इन श्रीकिशोरीजीको वस्त्र ओट करके दुग्धपान कराने लगीं ॥८०॥

पुनः शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, आह्लादवर्द्धक प्रकाश-मय मुखवाली (इन) श्रीकिशोरीजीको अपनी गोदमें लेकर श्रीअम्बाजीने बहुत प्रकार दुलार के सहित आपको भोजन कराया ॥८१॥ मेरी सभी बहिनें अपनी-अपनी अम्बाजीके गोदरूपी भवनका परित्याग कर इन विशाल–लोचना (श्रीकिशोरी) जीको प्रणाम करके बैठ गयीं ॥८२॥

हे कान्त! उन हमारी सभी बहनों की मनोहर शिशु-चेष्टाओंको देखते हुये आपने भाइयोंके सहित प्रेम-पूर्वक भोजन किया ॥८३॥ तत्पश्चात् अत्यन्त वात्सल्यवती श्रीअम्बाजीने आचमन कराया तथा दूध पिला कर आपको पानका वीरा प्रदान किया ॥८४॥

मोहिनी सच्चिदानन्दमयी मूर्त्तिर्हि तावकी । चेतसां हन्त सर्वासां मातृणां प्रबभूव नः ॥८५॥
पटमन्तरतः कृत्वा पुरुषाणां विशेषतः । सुखोपविष्टमासाद्य लालयामासुरेव ताः ॥८६॥
यथा कामं तु ताः सर्वा लालयित्वा च मातरः । प्रीतिनिर्भरपद्माक्ष्यो हर्षमापुरनुत्तमम् ॥८७॥
अनुज्ञाप्य महाराज्ञीं नत्वा चोरसि ते छबिम् । विनिवेश्य ययुः स्वं स्वं भवनं ता मनोहरम् ॥८८॥

हे प्यारे ! सत्-चित्-आनन्दमयी आपकी मूर्त्ति हमारी सभी माताओंके चित्तको मुग्ध कर लेनेवाली हुई अर्थात् उसने सभीके चित्तको मुग्ध कर लिया ॥८५॥

पुरुषोंके बीचमें वस्त्रका पर्दा करके सुखपूर्वक बैठे हुये आपके पास आकर वे सभी आपका दुलार करने लगीं ॥८६॥ अपनी-अपनी इच्छानुसार वे सभी अम्बाजी, आप लोगोंका लाड़ (प्यार) करके प्रीतिसे लबालब नेत्र-कमल होकर अपार हर्षको प्राप्त हुईं ॥८७॥

पुनः अपने हृदयमें आपकी मनोहर छबिको बिठा करके वे सभी, श्रीअम्बाजीसे आज्ञा लेकर, अपने-अपने भवनोंको विदा हुईं ॥८८॥

इति द्विचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ त्रिचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

कौतुक-स्नान गृह होकर भोजनालयमें श्रीसुनयना अम्बाजी द्वारा कुमारोंके प्रति सभी के लिये भाव-पूर्ति अवसर प्रदान ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ततस्त्वां सा समानीय दक्षिणस्यां गृहाद् दिशि । कौतुकागारमम्बा मे प्रयाता भूरिभागिनी ॥१॥
यत्र नद्यब्धिदेशानां दर्शनं कौतुकान्वितम् । चलच्छैलवनादीनामञ्जसा जायते नृणाम् ॥२॥
सवाद्यगानरासश्च निकुञ्जे पुष्पमण्डपे । कृत्रिमालिसमूहानां दृश्यते चित्तमोहनः ॥३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! हमारी सभी माताओंके अपने-अपने महल चले जाने पर बड़भागिनी मेरी श्रीसुनयना अम्बाजी आपको लेकर अपने उस शयन भवनसे दक्षिण दिशामें स्थित श्रीकौतुकागारमें पधारीं ॥१॥

जिसमें मनुष्योंको अनायास नदी, समुद्र, देश और चलते हुये पहाड़ आदिकोंका दर्शन आश्चर्यमय प्राप्त होता है ॥२॥ तथा जिस निकुञ्जके पुष्पमण्डपमें नकली सखी-समूहोंका गान वाद्य सहित रास चित्तको मुग्ध करलेने वाला दीखता है ॥३॥

क्रीडतां वनजन्तूनां सानुरागं परस्परम् । दर्शनं कारितं तुभ्यं कान्तिमत्या महाद्भुतम् ॥४॥
दोलद्बालनिकुञ्जश्च प्रसूनफलमण्डितः । दर्शितो ज्येष्ठया मात्रा मनोनेत्रसुखावहः ॥५॥
उत्पतत्पशुमर्त्यानां क्रीडतां स्वर्निवासिनाम् । दर्शनं कारितं तुभ्यं यत्र श्रीचन्द्रभद्रया ॥६॥
घनानां गर्जनं वृष्टिश्चपलायाः प्रकाशनम् । दृश्यते सर्वदा यस्मिन् परं विस्मयकारकम् ॥७॥
तस्मिन् क्रोडात्समुत्तार्य दोलनेऽतुलितप्रभे । चिन्तामणिमये रम्ये पुत्रिकां स्वां न्यवेशयत् ॥८॥
याम्यां भरतशत्रुघ्नावुदीच्यां लक्ष्मणस्तथा । सम्मुखे रत्नदोलायां त्वं तया सुनिवेशितः ॥९॥
ह्लादपूर्णान्तरात्माऽभूत्पश्यन्ती तत्कुतूहलम् । चतुर्दिक्षु महानन्दरसवृष्टिसमन्वितम् ॥१०॥
अष्टवर्षोपमः श्रीमान् दृश्यते स्म तया भवान् । षट्वार्षिकीयमिन्द्वास्या सर्वाभरणभूषिता ॥११॥
एकस्मिन्दोलने दृष्ट्वा त्वामिमां चात्मपुत्रिकाम् । साश्चर्यहृदया राज्ञी प्रतीचीं प्रत्यवैक्षत ॥१२॥
तस्यामपि तया दृष्टा प्रफुल्लकमलेक्षणा । परीतेयं त्वया प्रेष्ठ ! यथा प्राच्यां पुरेक्षिता ॥१३॥

जिसमें परस्पर अनुरागपूर्वक क्रीडा करते हुये बन–जन्तुओंका परम आश्चर्यमय दर्शन श्रीकान्तिमती अम्बाजीने आपको कराया था ॥४॥ तथा जहाँपर मन व नेत्रों को सुख पहुँचाने वाले पुष्पफलोंसे सुशोभित, झूलते हुये बालकोंकी कुञ्जका दर्शन बड़ी श्रीअम्बाजीने कराया था ॥५॥जहाँ आपको उड़ते हुये पशु और मनुष्योंका तथा क्रीडा करते हुये देववृन्दोंका दर्शन श्रीचन्द्रभद्रा अम्बाजीने कराया था ॥६॥

जिसमें महान् आश्चर्य–कारक मेघोंकी गर्जना, वर्षा तथा बिजलीकी चमक सदाही दिखाई देती है ॥७॥ वहाँ उन्होंने अपनी गोदसे उतारकर अतुलित प्रकाश युक्त, सुन्दर, चिन्तामणिमय झूले पर अपनी लाड़िली श्रीकिशोरीजीको बैठाया ॥८॥

दक्षिण दिशामें श्रीभरतलाल व श्रीशत्रुघ्नलालजीको, उत्तरमें श्रीलषणलालजीको और पूर्व भागमें सम्मुख रत्नमय झूले पर श्रीअम्बाजीने आपको बैठाया ॥९॥

पुनः चारो दिशाओंमें महान् आनन्द रसकी वर्षाकारी कौतूहल देखती हुई वे आह्लाद परिपूर्ण अन्तरात्मा हो गयीं अर्थात् उनकी अन्तरात्मा आह्लादसे परिपूर्ण हो गयी ॥१०॥

हे प्यारे ! उस समय आप श्रीअम्बाजीको आठ वर्षके समान और ये श्रीकिशोरीजी सम्पूर्ण भूषणोंके शृङ्गारसे युक्त ६ वर्ष सदृश दिखलाई देने लगीं ॥११॥

पूर्व भागके एक ही झूलेपर आपका और अपनी इन श्रीललीजीका दर्शन करके आश्चर्य युक्त हृदय हो रानी श्रीसुनयना अम्बाजीने पश्चिमकी ओर देखा, उधर देखनेका भाव यह हुआ कि श्रीलालजी तो इधर श्रीललीके ही झूलन पर आगये हैं अतः पश्चिमकी ओर उनका सामने वाला झूला सूना ही लगता होगा ॥१२॥ हे प्यारे ! उस पश्चिम दिशामें भी श्रीअम्बाजीने उसी प्रकार झूले पर आपके सहित खिले कमलके समान नेत्रवाली अपनी लाडिली श्रीकिशोरीजीका दर्शन प्राप्त किया जैसा पूर्व दिशामें किया था ॥१३॥

युवां प्राच्यां प्रतीच्यां च पश्यन्ती सा मुहुर्मुहुः । एकरूपौ विशालाक्षौ शमं सा नाभ्यपद्यत ।।१४।।
पुनरेकामिनामेव यथा संस्थापितां किल । प्राच्यां दिशि समुद्वीक्ष्य प्रतीच्यां त्वामुदैक्षत ।।१५।।
एतत्तु कौतुकं दृष्ट्वा युवाभ्यां विहितं प्रिय ! आश्चर्यसागरं तर्तुं कथञ्चित्सा न चाशकत् ।।१६।।
दर्शयित्वेति वः काम कौतुकागारमद्भुतम् । मज्जनागारमागच्छत्कौतुकासक्तमानसा ।।१७।।
सत्कृता सादरं राज्ञी मुख्यया तद्वयस्यया । अन्तः प्रविश्य वस्त्राणि भूषणानि समत्यजत् ।।१८।।
उद्वर्तनविधिं कृत्वा स्नापयित्वा ततो हि वः । सस्नावागतास्वप्सु कमलाया मृगेक्षणा ।।१९।।
पुनः प्राकृतशृङ्गारालङ्कृता वो विभूष्य च । मण्डनाख्यं महद्वेश्म प्रायात्सुकृतविग्रहा ।।२०।।
यत्र गत्वैव देवानां लोभश्चित्तेषु जायते । तद्वर्णनं कृतं किं स्यान्मादृशीभिरबुद्धिभिः ।।२१।।
अलङ्कृतास्तया यूयं स्वर्णसिंहासने पुनः । वेष्टिते मृदुवासोभिः सादरं सन्निवेशिताः ।।२२।।
ततश्चालङ्कृता सा तु त्वामवेक्ष्य मनोहरम् । प्रीत्या नीराजयामास स्वानन्दोत्फुल्ललोचना ।।२३।।

श्रीअम्बाजी पूर्व और पश्चिम दिशामें जिधर भी दृष्टि डालती, उधर विशाल लोचन आप दोनों सरकारका ज्योंका त्यों, एक स्वरूपसे बारंबार दर्शन होता था। अतः वे मनकी स्थिरताको प्राप्त न हो सकीं ।।१४।।

पुनः श्रीअम्बाजीने पूर्व दिशामें जिस प्रकार श्रीकिशोरीजीको पहले एकाकी विराजमान किया था. उसी प्रकार इनका दर्शन प्राप्त करके, पश्चिमकी ओर पूर्वमें आपका दर्शन प्राप्त किया ।।१५।। हे प्यारे! आप युगलसरकार द्वारा की हुई इस कौतुक लीलाको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजी अपने आश्चर्यरूपी सागरको पार करनेमें समर्थ न हो सकीं अर्थात् असमर्थ ही रहगयीं ।।१६।।

इस प्रकार आप चारो भाइयोंको उस अद्भुत कौतुकागारका दर्शन कराके श्रीअम्बाजी आप दोनों द्वाराकी हुई कौतुक (खेल) लीला का मनन करती हुई स्नान-भवनमें पधारीं ।।१७।।

वहाँकी मुख्य सखी द्वारा आदर पूर्वक सत्कृत हो, भीतर प्रवेश करके उन्होंने वस्त्र व भूषणोंको उतारा ।।१८।।

पुनः मृगके समान विशाल नयन वाली श्रीअम्बाजी ने उबटन लगाकर श्रीकमलाजीसे आये हुये जलमें आप लोगोंको स्नान कराके स्वयं ने स्नान किया ।।१९।।

पुनः सुकृतकी साक्षात् मूर्त्ति श्रीअम्बाजी आप लोगोंका शृङ्गार करके स्वयं भी साधारण शृङ्गारसे अलङ्कृत हो श्रेष्ठ शृङ्गार भवनमें पधारीं ।।२०।।

जहाँ जाते ही देवताओंके चित्तमें भी लोभ उत्पन्न हो जाता है, मेरी जैसी बुद्धि हीन बालिकाके द्वारा उस शृङ्गार-भवनका भला क्या वर्णन हो सकता है ? ।।२१।।

उस कुञ्जमें श्रीअम्बाजीने अपने हाथोंसे पूर्ण शृङ्गार धारण कराके कोमल बिछावन से सुसज्जित सिंहासन पर आप लोगोंको आदर पूर्वक विराजमान किया ।।२२।।

तदनन्तर अलंकृत आप मनहरण सरकारका दर्शन करके आनन्द पूर्ण खिले नेत्रों वाली श्रीसुनयना अम्बाजीने प्रेम पूर्वक आरती की ।।२३।।

आजगामालयं मुख्यं भोजनाख्यं मनोहरम् । सखीभिः प्रार्थिता प्रीत्या भवद्भिश्चानयाऽन्विता ॥२४॥
पूर्वमेवागतास्तत्र सर्वासां नो हि मातरः । भवतां दर्शनार्थाय महाभागाः सुतान्विताः ॥२५॥
तास्तु वै स्वागतं चक्रुर्भवतां प्रीतिपूर्वकम् । प्रणिपत्य महाराज्ञीं तयैव पुनरादृताः ॥२६॥
अधिष्ठात्र्या निकेतस्य कृत्वा नीराजनं पुनः । सेव्यमाना गृहं नीता सर्वाभिर्मम मातृभिः ॥२७॥
क्षालयित्वाङ्घ्रियुगलं तासां तु भवतां तथा । यथायोग्येषु पीठेषु पुनः सर्वा निवेशिताः ॥२८॥
आज्ञप्ता विपुलाः सख्यः षड्रसं च चतुर्विधम् । भोजनं स्वर्णपात्रेषु धृत्वा चक्रुरथार्पितम् ॥२९॥
अम्बा सुनयना तत्तु भोजनं हरये यदा । कर्तुं समर्पितं दध्यौ तदा त्वं हि तयेक्षितः ॥३०॥
पुनस्तं चिन्तयामास श्रीपतिं यतमानसा । ततस्त्वमनया साकमभवो दृष्टिगोचरः ॥३१॥
न ध्यानविषयो यर्हि बभूवासौ रमापतिः ! । कयाचिदपि वै युक्त्या जहौ ध्यानं सुवत्सला ॥३२॥
नैतद्रहस्यं कस्यैचिद्भाषितं कौतुकान्वितम् । भोजनायानुरक्त्यैव समाज्ञप्तस्तया भवान् ॥३३॥

तदनन्तर दासियोंके प्रार्थना करने पर इन श्रीकिशोरीजीके तथा आप चारों भाइयोंके सहित वे मनोहर भोजन भवनमें आगयीं ॥२४॥

हमारी सभी बहिनोंकी बड़भागिनी मातायें भी अपनी पुत्र-पुत्रियोंके सहित आप लोगोंके दर्शनोंके लिये उस सदनमें पहले ही आचुकी थीं ॥२५॥

महारानी(श्रीसुनयना अम्बा)जीको प्रणाम करके, तथा उनके द्वारा आदर पाकर, प्रेमपूर्वक, उन सभी माताओंने आप चारो भाइयोंका स्वागत किया ॥२६॥

उस भोजन सदनकी स्वामिनी सखीजी आरती करके, मेरी सभी माताओंसे सेवित श्रीसुनयना अम्बाजीको अपने सदनमें ले गयीं ॥२७॥

वहाँ सखीजीने आप लोगोंके तथा सभी माताओंके चरण-कमलोंको धोकर यथायोग्य सुन्दर पीढ़ों पर विराजमान किया ॥२८॥

पुनः उस सखीकी आज्ञासे बहुत सी सखियाँ सोनेके थालोंमें चार प्रकारके षट् रस भोजन सजा, सजा कर अर्पण करने लगीं ॥२९॥

श्रीसुनयना अम्बाजी जब उस भोजनको भगवान्को समर्पित करनेके लिये उनका ध्यान करने लगीं तो ध्यानमें उन्हें आपही दिखाई पड़े ॥३०॥

अपने मनको एकाग्र करके श्रीअम्बाजी जब पुनः श्रीलक्ष्मीपति भगवान्का ध्यान करने लगीं तब आप उन्हें ध्यानावस्थामें इन (श्रीकिशोरीजी) के सहित दर्शन देने लगे ॥३१॥

जब किसी भी युक्तिसे श्रीलक्ष्मीपति भगवान् उनके ध्यानमें नहीं आये तब, अत्यन्त वात्सल्य रस भीनी श्रीअम्बाजीने ध्यान को स्थगित कर दिया ॥३२॥

परन्तु इस आश्चर्यमय रहस्यको उन्होंने किसीसे भी नहीं कहा, विवश होकर बिना भोग लगाए ही आपको अनुराग पूर्वक भोजन करनेके लिये आज्ञा देदी ॥३३॥

तानुवाच पुना राज्ञी प्रेमगद्गदया गिरा । क्रियतां भोजनं वत्सा ! भवद्भी रुचिपूर्वकम् ॥३४॥
प्रत्यहं जननीहस्तात्क्रियतेऽप्येव भोजनम् । अद्य भुक्त्वा तु मे हस्ताद्भवतानन्दवर्द्धनाः ॥३५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाभाष्य मे माता प्रणयोत्फुल्ललोचना । तदेमां भगिनीनां तु सम्मुखे संन्यवेशयत् ॥३६॥
अस्यां क्रीडाप्रसक्तायां कमनीयतमद्युतौ । प्रीत्याऽथ भोजयामास कवलानि विरच्य च ॥३७॥
अम्बा सुनयना त्वां च भरतं श्रीसुदर्शना । शत्रुघ्नं श्रीसुभद्राम्बा लक्ष्मणं कान्तिमत्यपि ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

पुनर्ज्येष्ठा तु मे माता भरतं त्वां सुदर्शना । शत्रुघ्नं कान्तिमत्येवं सुभद्रा लक्ष्मणं तथा ॥३९॥
पश्चात्तु लक्ष्मणं ज्येष्ठा शत्रुघ्नं च सुदर्शना । ततस्त्वां कान्तिमत्यम्बा सुभद्रा भरतं तथा ॥४०॥
पुनर्ज्येष्ठा तु शत्रुघ्नं सुभद्रा त्वां प्रियोत्तम ! । भरतं कान्तिमत्यम्बा लक्ष्मणं च सुदर्शना ॥४१॥
एवं प्रीत्या हि ताः सर्वा जनन्यो भावपूर्वकम् । क्रमशो भोजयामासुरानन्दापहतत्रपाः ॥४२॥

पुनः महारानी (श्रीसुनयना अम्बाजी) प्रेममयी गद्गद वाणीसे बोलीं:–हे वत्सो ! आप लोग भोजन रुचि पूर्वक कीजिये ॥३४॥

आप लोग प्रतिदिन अपनी श्रीअम्बाजीके हाथसे तो भोजन करते ही हैं, आज मेरे हाथसे पाकर, मेरे आनन्द को बढ़ाएं ॥३५॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीः– हे प्यारे ! इस प्रकार प्रणयसे पूर्ण खिले नेत्र वाली हमारी श्रीसुनयनाअम्बाजीने आप सभीसे कहकर इन श्रीकिशोरीजीको बहिनोंके बीचमें सम्मुख विराजमान कर दिया ॥३६॥

हे प्यारे ! अत्यन्त सुन्दर कान्तिवाली इन श्रीकिशोरीजीके खेलमें लग जाने पर श्रीअम्बाजी आप सभीको प्रेम पूर्वक ग्रास बना बना कर भोजन कराने लगीं ॥३७॥

पहले श्रीसुनयना अम्बाजीने आपको, श्री सुदर्शना अम्बाजीने श्रीभरत लालजीको, श्रीसुभद्रा अम्बाजीने श्रीशत्रुघ्नलालजीको और श्रीकान्तिमती अम्बाजीने श्रीलषणलालजीको भोजन कराना प्रारम्भ किया ॥३८॥

पुनः श्रीसुनयना अम्बाजी भरतलालजीको, श्रीसुदर्शना अम्बाजी आपको, शत्रुघ्न लालजीको श्रीकान्तिमती अम्बाजी तथा श्रीलषणलालजीको, श्रीसुभद्रा अम्बाजी भोजन कराने लगीं ॥३९॥

उसके पश्चात् श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीलषणलालजीको, श्रीसुदर्शना अम्बाजी श्रीशत्रुघ्नलालजीको और आपको श्रींकान्तिमती अम्बाजी तथा श्रीभरतलालजीको श्रीसुभद्रा अम्बाजी भोजन पवाने लगीं ॥४०॥ हे प्रियवर ! पुनः श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीशत्रुघ्नलालजीको, आपको श्रीसुभद्रा अम्बाजी, श्रीकान्तिमती अम्बार्जा श्रीभरतलालजीको, श्रीसुदर्शना अम्बाजी श्रीलषणलालजीको भोजन कराने में प्रवृत्त हुईं ॥४१॥

इस प्रकार भावपूर्वक–आनन्दसे सङ्कोचरहित हो, हमारी वे सभी अम्बाजी, पारी–पारीसे आप चारो भाइयोंको प्रेम पूर्वक भोजन कराया ॥४२॥

भगिन्यश्चापि वै सर्वाः प्राप्य ज्येष्ठामिमां शुभाम् । सानन्दावेशहृदया मातृणां स्मरणं जहुः ॥४३॥
पश्यन्त्यो हि यथाकामं युष्मान् सौन्दर्यशालिनः । ज्येष्ठारूपसुधातृप्ता नेयुरातुरतां भृशम् ॥४४॥
तास्तु पूर्णेन्दुसङ्काशवदनाः पद्मलोचनाः । श्रीअयोनिजयोपेतास्तडिद्दामसमप्रभाः ॥४५॥
पश्यतामतिमृद्वङ्गीर्निमिवंशिसुबालिकाः । भवतां चित्तरत्नानि ह्यञ्जसाऽपहृतानिः ह ॥४६॥
ज्ञात्वेयं तृप्तिमापन्नान्सुधाकल्पाशनेन वः । रुरोद जननीचन्द्रवक्त्रमालोक्य निर्मलम् ॥४७॥
तेन देहस्मृतिं लब्ध्वा भवद्भिर्जननी मम । संयताञ्जलिभिः प्रोक्ता श्लक्ष्णं पूर्णा वयं त्विति ॥४८॥
सम्प्रदाय तदाचम्यं मुखपद्मानि वाससा । पीतपीयूषतोयेभ्यः प्रोञ्छयामास वो हि सा ॥४९॥
प्रदाय वीटिकाः प्रीत्या नागवल्याः स्वनिर्मिताः । अपूर्वस्वादुसंपृक्ता भवद्भ्यो मिथिलेश्वरी ॥५०॥
तूर्णमुत्थाप्य पाणिभ्यामियं कातरचित्तया । जमन्या वाष्पपूर्णाक्षी गाढमालिङ्गितोरसा ॥५१॥
मातुरङ्कगतां दृष्ट्वा तदेमां स्वसृवत्सलाम् । रुदन्त्यो मे भगिन्यस्ताः स्वाम्बा एत्य शमं ययुः ॥५२॥

उधर श्रीकिशोरीजीको पाकर हमारी सभी बहनोंका हृदय आनन्दके आवेशसे भर गया, अतः वे अपनी–अपनी अम्बाजीका स्मरण ही भूल गयीं ॥४३॥

हे प्यारे ! श्रीकिशोरीजीके स्वरूपामृतपानसे तृप्त हुई वे बहिनें रूपशाली आप चारो भाइयों का यथेष्ट दर्शन करती हुई भी विशेष बेभान नहीं हुई अर्थात् सावधान बनी रहीं ॥४४॥

किन्तु अयोनिजा (श्रीकिशोरी) जीसे युक्त पूर्णचन्द्रके समान मुख, कमलके समान नेत्र, बिजली मालाके समान प्रकाशवती अत्यन्त कोमल अङ्गोंवाली सुन्दर निमिवंशी बालिकाओंके क्रीडा दर्शनसे आप लोगोंके चित्तरूपी रत्नोंका हरण, अनायास हो गया ॥४५॥४६॥

आप लोगोंको अमृतके समान स्वादिष्ट, गुणकारी, भोजनसे तृप्त हुये जानकर, ये श्रीकिशोरी जी अपमी श्रीअम्बाजीका निर्मल मुख–चन्द्र देखकर रोने लगीं ॥४७॥

श्रीकिशोरीजीके रुदनलीला प्रारम्भ करतेही आप लोग अपने देहकी सुधि प्राप्त करके हाथ जोड़कर हमारी श्रीसुनयनाअम्बाजीसे बोलेः–अम्बाजी ! अब हम लोग भोजनसे पूर्ण हो गये, पूर्ण हो गये, परिपूर्ण हो गये ॥४८॥

अमृतके समान जल पी लेने पर श्रीअम्बाजीने आचमन करने योग्य जल प्रदान करके झीनी साफीसे आप लोगोंके मुख कमलोंको पोंछा ॥४९॥

तत्पश्चात् मिथिलेश्वरी श्रीसुनयना अम्बाजी ने प्रीति पूर्वक अपूर्व स्वाद युक्त अपने हाथसे बनाई हुई पानकी बीरियां आप सभी को प्रदान कीं ॥५०॥

कातर(उतावल) चित्तवाली श्रीअम्बाजीने शीघ्रता पूर्वक इन अश्रुपूर्ण लोचना श्रीकिशोरीजी को दोनों हाथोंसे उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया ॥५१॥ बहिनों पर अत्यन्त वात्सल्य रखने वाली इन श्रीकिशोरीजीको अपनी अम्बाजीकी गोदमें विराजमान देखकर, हमारी सभी बहिनें भी रोती हुई, अपनी–अपनी अम्बाजीको पाकर शान्तिको प्राप्त हुईं ॥५२॥

लालयित्वा पुनः सर्वे पितृव्या मम कामतः । स्वं स्वं निकेतनं जग्मुस्त्वां मुदा कृतभोजनम् ॥५३॥
ततौ राज्ञी महाभागा ययौ संवेशमन्दिरम् । शिविकां सा समारुह्य भवद्भिः स्त्रीजनैर्वृता ॥५४॥

राज्ञी　तदागारमनुप्रविश्य　मुदान्विता　देवरसुन्दरीभिः ।
सुस्वाप्य सा वो मृदुलांशुकाढ्ये तल्पे प्रवृत्ता सुषमेक्षणाय ॥५५॥
कपोलदेशेऽञ्जनलाञ्छनं सा व्यधाद्दृशेर्दोषभिया तदानीम् ।
अतीववात्सल्यनिमग्नचित्ता सुताश्रिताङ्का भवतां शनैश्च ॥५६॥

पुनः मेरे सभी चाचा लोग भोजनसे, निवृत्त हुए आपका इच्छानुसार दुलार करके अपने-अपने महलोंको चले गये ॥५३॥ तत्पश्चात् बड़भागिनी श्रीसुनयना अम्बाजी आप लोगोंके सहित, स्त्रीजनोंसे घिरी हुई पालकी में बैठकर, 'दिवा-शयन भवनमें' पधारीं ॥५४॥

अपनी देवरानियोंके सहित श्रीअम्बाजी उस दिवा–शयन–भवनमें जाकर कोमल वस्त्रोंसे सुशोभित पलङ्ग पर, आनन्द पूर्वक आप चारो भाइयोंको शयन कराके आप लोगोंकी उपमा रहित छबिका दर्शन करने लगीं ॥५५॥ श्रीकिशोरीजीसे सुशोभित गोद वाली श्रीसुनयना अम्बाजीका चित्त वात्सल्य रसमें अत्यन्त डूबा हुआ होनेसे उन्होंने दृष्टि–दोष (नजर लगनेके) भयसे आप सभीके गालोंमें अञ्जनका चिह्न धीरेसे लगा दिया ॥५६॥

इति चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे त्रयोदशो विश्रामः ॥१३॥

अथचतुश्चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

बिहार कुण्डमें नौका विहार कराके हाटक भवन की छतसे दृश्यमान सभी पूछे स्थानों का अम्बाजी द्वारा श्रीरामजी से वर्णन ।

श्रीशिव उवाच ।

विसृष्टनिद्रः श्रीरामो भ्रातृभिः परिवारितः । ददर्श राज्ञीमव्यग्रां चलद्व्यजनपाणिकाम् ॥१॥
सा तु राजकुमारांस्तांस्त्यक्तनिद्रालसाञ्छुभान् । लालयामास विविधैर्लालनैर्मोदवृद्धये ॥२॥
कल्पयित्वाऽशनं तेभ्यो यथेच्छं स्वादुशीतलम् । विहारकुण्डमनयदर्द्धयामे स्थिते दिने ॥३॥
तच्चतुर्दिक्षु वेश्मानि कुमारेभ्यो महान्ति च । दर्शयित्वा सरःशोभावर्द्धकान्यद्भुतानि सा ॥४॥
धात्रीरम्भारसालैश्च पनसैर्विल्वजम्बुकैः । केतकीयूथिकामल्लीचम्पकैरुपशोभिते ॥५॥
तस्मिन् सरोवरे स्नात्वा नौर्विहारमकारयत् । राज्ञी राजकुमाराणां विनोदाय मनस्विनी ॥६॥
ततः परं जगामाशु हाटकाह्वयमद्भुतम् । प्रोद्यद्दिनमणिद्योतं षष्ठिखण्डोच्चमन्दिरम् ॥७॥
कुम्भध्वजपताकाभिः शोभमानं नभःस्पृशम् । दर्शयामास सूनुभ्यो राज्ञो दशरथस्य तत् ॥८॥
दोलायां पुनरारोप्य निविश्याथ स्वयं हि तान् । क्षण्णार्द्धेनाप तत्क्षौमं यन्त्रेण विपुलायतम् ॥९॥

भगवान् शिवजी श्रीगिरिराज कुमारीजीसे बोलेः-हे प्रिये! अपने भाइयोंके सहित श्रीरामभद्रजूने निद्राका परित्याग करके, देखा कि अपने कर-कमलमें पङ्खेको डुलाती हुई श्रीसुनयना महारानी ज्यों की त्यों सावधान बैठी हैं ॥१॥

श्रीसुनयना महारानीजी निद्रा तथा आलस्यका परित्याग किये हुये, मङ्गलमय, राजकुमारोंकी आनन्द वृद्धिके लिये उनका अनेक प्रकार से दुलार करने लगीं ॥२॥

पुनः शीतल स्वादिष्ट यथेच्छ भोजन कराके आधे पहर दिनके शेष रहने पर उन कुमारों को लेकर वे विहार कुण्ड गयीं ॥३॥ सरोवरकी शोभा बढ़ाने वाले उस कुण्डके चारो ओर के अद्भुत व विशाल महलोंका दर्शन कुमारोंको कराया ॥४॥

आँवला, केला, आम, कटहल, बेल, जामुन, केतकी, जूही, मालती, चम्पा आदि वृक्षोंसे सुशोभित उस सरोवर में स्नान करके श्रीसुनयना महारानीजीने, राजकुमारोंके विनोदके लिये नौका-विहार करवाया ॥५॥६॥

उसके बाद उदय कालीन सूर्यके समान कान्तिवाले, साठ खण्ड ऊँचे, अद्भुत हाटक भवन में पधारीं ॥७॥ वहाँ उन्होंने कलश ध्वज, पताकासे शोभायमान आकाशको छूने वाले उस महलका, दर्शन उन्होंने दशरथजी महाराजके राजकुमारोंको कराया ॥८॥

पुनः चारो भाइयोंको झूलेपर विराजमान करके उस पर आपभी बैठ कर, आधे क्षणमात्र में यन्त्रके द्वारा उस हाटकभवनकी अन्तिम, बड़ी लम्बी-चौड़ी छत पर पहुँच गयीं ॥९॥

तत्र मध्ये समासीना दिव्यसिंहासने शुभे । तान् पार्श्वयोश्च संस्थाप्य सवत्सोत्सङ्गशोभिता ॥१०॥
सेव्यमाना वयस्याभिः परीता ताभिरादरात् । आगताभिर्महाराज्ञी देवरस्त्रीभिरब्रवीत् ॥११॥

श्रीसुनयनोवाच ।

रामभद्र! महाप्राज्ञ! भरत ! प्रीतिनिर्भर!। सौमित्रे! भावगम्भीर ! शत्रुघ्न ! चपलेक्षण! ॥१२॥
अस्मादट्टात्तु वै सर्वं पुरदृश्यमुदीक्ष्यताम् । विना श्रमेण भद्रं वो दिदृक्षा यदि वर्तते ॥१३॥

श्रीरामउवाच ।

पश्यामोऽम्ब! वयं सर्वं दृश्यमत्यन्तसुन्दरम् । मनोनेत्रसमाकर्षि प्रसभं निर्जितात्मनाम् ॥१४॥
अद्वितीयः परिस्पन्दः पुरस्यास्ति मतिर्मम । विजिज्ञासामहे मातर्मुख्यस्थानानि साम्प्रतम् ॥१५
मन्दं गन्धवहो वाति सुरभिस्पर्शशीतलः । इदानीं सुखवेलेयमृतावस्मिन्विशेषतः ॥१६॥
वर्तते दृश्यमानानां प्रधानानां हि पश्यताम् । पुरोगतानां स्थानानां जिज्ञासा हृदयेषु नः ॥१७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

चिरञ्जीवत भो वत्सा! भद्रं वोऽस्तु समन्ततः।शृणुतावस्थितात्मानो यत्स्पृहा श्रवणाय वः ॥१८॥

श्रीललीजी से सुशोभित गोदवाली श्रीअम्बाजी अपने दोनों बगलमें श्रीराजकुमारों को बैठाकर उस छत के मध्य भाग में विराजमान हुईं ॥१०॥

पुनः वहाँ आई हुईं देवरानियों सहित, अपनी सखियोंके द्वारा छत्र चँवर, पंखा आदि से सेवित होती हुई, श्रीमहारानीजी कुमारों से सादर बोलीः–॥११॥

हे महाप्राज्ञ श्रीरामभद्रजू! हे प्रेम निर्भर श्रीभरतलालजी! हे गम्भीर भाव वाले श्रीलखन लालजी ! तथा हे चञ्चलनयन श्रीशत्रुघ्नलालजी आप सबोंका कल्याण हो, यदि मेरे पुरका दृश्य देखने की आप लोगोंकी इच्छा है, तो इस अटारी परसे बैठे–बैठे बिना किसी परिश्रमके ही, देख लीजिये ॥१२॥१३॥

श्रीराम भद्रजी बोले–हे अम्ब! मनको अपने वशमें कर लेनेवाले महात्माओं के भी मन तथा नेत्रोंको बलात् खींच लेनेवाला, अत्यन्त सुन्दर पुरका दृश्य तो हम लोग देख ही रहे हैं ॥१४॥

मेरे विचार से नगरकी सजावट अद्वितीय है, इस छतसे पुर के मुख्य २ स्थानों को जानने के लिए हमारी विशेष इच्छा है ॥१५॥ हे अम्बाजी ! इस समय सुगन्धसे युक्त स्पर्शमें शीतल, मन्द २ पवन भी बह रहा है, यह समय प्रायः सभी ऋतुओं में सुखकर होता है, पर इस ग्रीष्म ऋतुमें तो यह विशेष ही सुखप्रद प्रतीत होताहै ॥१६॥

हे अम्ब ! इसलिये इस सुखद बेला में दिखाई देनेवाले प्रधान २ स्थानोंके जानने के लिए हम सभी के हृदयों में बड़ी ही अभिलाषा है ॥१७॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीः–हे बत्सो ! आप लोगोंका सब प्रकार दशो दिशाओंमें मङ्गलहो तथा आप सब अनन्त कालतक जीवित रहें, आप लोगोंकी जो सुननेकी इच्छा है उसे एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये ॥१८॥

एषा वृन्दारकैर्वन्द्या कमला लोकपावनी । परमानन्दचिद्रूपा पूर्वस्यां दिशि दृश्यते ॥१९॥
कल्याणेश्वर आग्नेये नैर्ऋत्यां च जलेश्वरः । सोमेश्वरस्तु वायव्य ऐशान्यां मिथिलेश्वरः ॥२०॥
इदं तु वाटिकामध्ये महोच्चध्वजमन्दिरम् । विनायकस्य जानीत सर्वविघ्नघ्नदर्शनम् ॥२१॥
एतन्मनोहरं रम्यं सुविशालं महत्प्रभम् । सदनं सुन्दराख्यं च दृश्यते स्म शुकध्वजम् ॥२२॥
जयमानस्य सदनं मन्त्रिणस्तस्य दक्षिणे । सुदर्शनस्य विज्ञेयमिदं मुख्यस्य मन्त्रिणाम् ॥२३॥
एतत्तु दक्षिणे भागे कुञ्जपुञ्जसमावृतम् । गिरिजागृहमाख्यातं सद्भक्तिप्रददर्शनम् ॥२४॥
इदं ज्ञेयमनल्पाभं केकिध्वजमनुत्तमम् । सौमनागारमाख्यातं दर्शनीयं दिवौकसाम् ॥२५॥
इमे हर्म्ये पुनर्ज्ञेये मन्त्रिणोश्चारुदर्शने । विष्वक्सेनस्य पूर्वे तु सुदाम्नस्तस्य पश्चिमे ॥२६॥
दृश्यतां पश्चिमे भागे सरस्वत्या निकेतनम् । इदं परम शोभाढ्यं वाचस्पत्यप्रदायकम् ॥२७॥
तस्मात्पूर्वे महद्धर्म्यं मरालध्वजमुच्छ्रितम् । सौफलागारमाख्यातं साफल्यप्रददर्शनम् ॥२८॥

पूर्व दिशामें जो यह नदी देखनेमें आरही हैं वह परम आनन्द और चैतन्य स्वरूपा, देवताओं के द्वारा प्रणाम करने योग्य तथा सभी प्राणियोंको पवित्र करनेवाली "श्रीकमलाजी" हैं ॥१९॥

नगर के पूर्वदक्षिण कोणमें श्रीकल्याणेश्वर महादेव, दक्षिण पश्चिम कोणमें श्रीजलेश्वर महादेव, पश्चिम उत्तरकोणमें श्रीसोमेश्वर महादेव और उत्तर पूर्वके कोणमें श्रीमिथिलेश्वर महादेवजीके ये मन्दिर दिखाई दे रहे हैं ॥२०॥

वाटिकाके बीचमें बड़ी ऊँची ध्वजासे युक्त, दर्शनसे ही सभी प्रकारके विघ्नोंको नष्ट करने वाला यह श्रीगणेशजीका मन्दिर है ॥२१॥

यह परम प्रकाशमान, विशाल, तोताकी ध्वजा वाला मनहरण जो महल दिखाई दे रहा है, यह सुन्दर सदन नामका भवन है ॥२२॥

यह महल जयमान मंत्रीका है और उससे दक्षिण भाग वाले इस भवन को, आप मुख्य मन्त्री श्रीसुदर्शनजीका महल जानिये ॥२३॥

दक्षिण दिशामें कुञ्जपुञ्जोंसे घिरा हुआ यह भवन दर्शनसे ही भगवद्भक्ति प्रदान करने वाला श्रीगिरिराजकुमारीका मन्दिर है ॥२४॥

अत्यन्त प्रकाश युक्त मोरकी ध्वजावाले, देवताओंके भी दर्शन करने योग्य प्रसिद्ध इस महलको सौमन सदन जानिये ॥२५॥ ये सुन्दर दर्शन वाले दोनों भवन मन्त्रियोंके हैं, पूर्व भागमें श्रीविष्वकसेनजीका और उनसे पश्चिममें श्रीसुदामा मन्त्रीका महल है ॥२६॥

नगर के पश्चिम भागमें दर्शनसे ही बुद्धि में श्रीवृहस्पतिजीकी योग्यता प्रदान करने वाले, परम शोभा-सम्पन्न इस सरस्वती मन्दिरका दर्शन कीजिये ॥२७॥

उस सरस्वती भवनसे पूर्वमें हंसकी ध्वजासे सुशोभित, दर्शनसे ही सफलता अर्थात् जीवनकी सार्थकता प्रदान करनेवाला यह ऊँचा "सौफल" नामका प्रसिद्ध महल है ॥२८॥

दृश्यमानमिदं वेद्यं सुनीलस्य निवेशनम् । विधिज्ञस्योत्तरे तस्य बुध्यतामयमालयः ॥२६॥
एवं दिशि तथोदीच्यां प्रथमं श्रीनिकेतनम् । अवधार्यमिदं रम्यं श्रीधामप्रददर्शनम् ॥३०॥
एतच्छ्रीसद्मनो दक्षे गरुड़ध्वजमुच्यते । सौरभाख्यं महासद्म परधामददर्शनम् ॥३१॥
सुमतस्येदमागारमिदं तस्य तु पूर्वके । श्रीसन्धिवेदनागारं दृश्यमानं निबोधत ॥३२॥
अस्यावरणधिष्ण्यानां किञ्चित्परिचयो मया । दीयते सुप्रसिद्धानां मुदे वः शृणुतानघाः ! ॥३३॥
इमौ शत्रुजितश्चैव यशःशालिन आलयौ । नैर्ऋत्यां तत एवेदं श्रीयशोध्वजमन्दिरम् ॥३४॥
इदं तत्पश्चिमे ज्ञेयं वीरध्वजनिकेतनम् । इदं तु पश्चिमे तस्माद्रिपुतापनमन्दिरम् ॥३५॥
ततो हंसध्वजस्यायं पश्चिमे निलयः शुभः । तस्माच्च पश्चिमे ज्ञेयं केकिध्वजनिवेशनम् ॥३६॥
दिशीदं तस्य वायव्यां श्रीबलाकरमन्दिरम् । तस्मादथोत्तरे बोध्यं चन्द्रभानुनिवेशनम् ॥३७॥
ऐशान्यां तन्निकेतस्य महीमङ्गलमन्दिरम् । तस्मात्पूर्वे ततो वेद्यं श्रीप्रतापनसद्म च ॥३८॥

यह जो महल दिखाई दे रहा है, वह श्रीसुनील मन्त्रीजीका है, उनसे उत्तर भागके महलको श्रीविधिज्ञ मन्त्रीजीका भवन जानिये ॥२६॥

इसी प्रकार उत्तर दिशामें प्रथम, परम रमणीक, दर्शनसे ही श्रीधाम अर्थात् साकेतको प्रदान करने वाले इस भवनका नाम श्रीनिकेतन, जानिये ॥३०॥

श्रीनिकेतनसे दक्षिणमें, दर्शनसे ही परम धामको प्रदान करने वाला, गरुडकी ध्वजासे युक्त यह सौरभ नामका सदन है ॥३१॥ सुमत मन्त्रीसे पूर्व जो यह भवन दीख रहा है उसे आप श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीका महल जानिये ॥३२॥

हे अघ रहित वत्सो ! अब मैं आप लोगोंके सुखार्थ इस आवरणके सुप्रसिद्ध स्थानोंका कुछ परिचय दे रही हूँ (उसे) श्रवण कीजिये ॥३३॥

यह श्रीशत्रुजितका और उनसे दक्षिणमें पूर्वकी दिशामें यह श्रीयशःशालीजी महाराजका महल है । उनसे दक्षिण-पश्चिम दिशामें यह श्रीयशोध्वज महाराजका भवन है ॥३४॥

श्रीयशध्वज महाराजसे पश्चिमवाले इस महलको श्रीवीरध्वज महाराजका महल जानिये और उससे पश्चिम वाला यह भवन श्रीरिपुतापन महाराजजीका है ॥३५॥

उनसेभी पश्चिममें यह भवन श्रीहंसध्वज महाराजका, पुनः उनसे भी पश्चिम वाले इस महलको श्रीकेकिध्वज महाराजका महल जानिये ॥३६॥

श्रीकेकिध्वज महाराजके उत्तर–पश्चिम दिशामें श्रीबलाकरजीका तथा उनसे उत्तरमें श्रीचन्द्रभानुजी महाराजका महल जानिये ॥३७॥

श्रीचन्द्रभानु महाराजसे उत्तर–पूर्व की दिशामें श्रीमहीमङ्गलजीका और उनसे पूर्व में श्रीप्रतापनजी महाराजका यह महल जानना चाहिए ॥३८॥

इदं पूर्वे ततो वेद्यं विजयध्वजमन्दिरम् । तस्मात्पूर्वं इदं वत्सा ! अरिमर्दनमन्दिरम् ॥३९॥
इदं पूर्वे ततो रम्यं भवनं दृश्यते तु यत् । वायव्यां शत्रुजिद्गेहात्तेजःशालिन एव तत् ॥४०॥
श्रीअरिमर्दनागारादाप्रतापनमन्दिरम् । राज्ञीहट्टमिदं वत्साः समीपे मन्दिरस्य मे ॥४१॥
इदं तु पश्चिमे हर्म्यं सुविशालं यदीक्ष्यते । ज्ञायतां परमं रम्यं कुशकेताः श्रुतं हि तत् ॥४२॥
अथेदं मन्निकेते च पूर्वभागे यदीक्ष्यते । गङ्गासागरमाख्यातं तत्तु पुण्यतमं सरः ॥४३॥
तस्मात्पूर्वे शतानन्दो भगवान्कृतकेतनः । शिष्यैः परिवृतो नित्यं निवसत्यत्र वै मुनिः ॥४४॥
धनुर्गृहमिदं ज्ञेयं गङ्गासागरपश्चिमे । स्यामन्तकमुदीच्यां तन्मदिरं परमोच्चकम् ॥४५॥
अथ मारकतं हर्म्यं बोध्यमेतत्तु दक्षिणे । पश्चिमे दृश्यते यत्तद्विज्ञेयः स्फाटिकालयः ॥४६॥
इदं तु हाटकाख्यं हि यत्तले सम्प्रति स्थितिः । अस्माकं सह युष्माभिर्यतः स्थानानि वच्मि वः ॥४७॥
एतद्यद्दृश्यये वेश्म तन्महानससञ्ज्ञकम् । आग्नेय्यां परमं रम्यं तप्तचामीकरप्रभम् ॥४८॥

हे वत्सो ! श्रीप्रतापनजीके महलसे पूर्ववाले इस महलको श्रीविजयध्वज महाराजका और उनसे पूर्वके इस महलको श्रीअरिमर्दनजी महाराजका भवन जानिये ॥३९॥

श्रीअरिमर्दनजीसे पूर्व में और श्रीशत्रुजितजी महाराजके उत्तर–पश्चिम दिशामें यह जो मनोहर महल देख रहे हैं, वह श्रीतेजःशालीजी महाराजका भवन है ॥४०॥

हे वत्सो ! श्रीअरिमर्दनजीके महलसे लेकर श्रीप्रतापनजीके महल पर्यन्त विस्तृत मेरे महल के समीपमें, यह रानीबाजार है ॥४१॥

पश्चिममें विशाल एवं परम सुन्दर जो यह महल दिखाई देता है, उसे श्रीकुशध्वज महाराज का महल जानिये ॥४२॥ अब मेरे महलमें पूर्वकी ओर जो सर (तालाब) दिखाई देता है, वह गङ्गासागर नामका परमपवित्र सरोवर है ॥४३॥

गङ्गासागरसे पूर्व भागमें अपने शिष्योंके सहित भगवान् श्रीशतानन्द मुनि आश्रम बनाकर यहाँ निवास करते हैं ॥४४॥ गङ्गासागरके पश्चिममें इस भवनको धुनुर्भवन जानिए, उससे उत्तरमें अत्यन्त ऊँचा यह स्यमन्तकभवन है ॥४५॥

दक्षिणमें, परम विशाल व अत्यन्त ऊँचे इस महलको आप मरकतभवन जानिये और पश्चिममें जो यह सबसे ऊँचा तथा विशाल महल दिखाई दे रहा है, उसे स्फटिक-भवन जानिये ॥४६॥ इस समय जिसकी छत पर मैं आप प्रिय पुत्रोंके सहित विराज रही हूँ तथा जहाँसे मैं, आप लोगोंसे अपने पुरके मुख्य २ स्थानोंका वर्णन कर रही हूँ, वह अत्यन्त ऊँचा तथा विशाल यह हाटक भवन है ॥४७॥

पूर्वदक्षिण दिशामें तपाये सोनेके समान प्रकाशमान, परम सुन्दर यह जो महल दिखाई दे रहा है, वह भोजन भवन है ॥४८॥

नैर्ऋत्यामिदमेवास्ति कोशागारमनुत्तमम् । वायव्यां पुत्रका ! ज्ञेयो गृहारामोऽयमद्भुतः ॥४६॥
ऐशान्यां दिशि वै चेदं सभागारमुदीक्ष्यते । तस्माज्ज्ञेयं हि नैर्ऋत्यां कृत्रिमागारमद्भुतम् ॥५०॥
तस्मात्तु कृत्रिमागाराद्दक्षिणे स्वस्तिकालयः । आग्नेय्यां कौतुकागारमिदं यद्वो विलोकितम् ॥५१॥
तत्पश्चिमे परिज्ञेयं दन्तधावनमन्दिरम् । इदं तु मज्जनागारं दृश्यते सुमनोहरम् ॥५२॥
तदुत्तरे विभातीदं कुड्मलाख्यनिकेतनम् । इदं तु कौशलागारं तत्पूर्वे मण्डनालयः ॥५३॥
समीपे पश्चिमे तस्य ह्यङ्गरागाभिधं सरः । निमित्तं निमिवंश्यानां निर्मितं विश्वकर्मणा ॥५४॥
दक्षिणे वह्निकुण्डाच्च विहाराख्यात्तु पश्चिमे । महाविद्यालयो ज्ञेयो ज्ञानपीठ इति श्रुतः ॥५५॥
बह्निकुण्डादिदं पूर्वे रत्नसागरकं सरः । प्रजानामर्थसिद्ध्यर्थं खानितं निमिभानुना ॥५६॥

श्रीसौमित्रिरुवाच ।

पितुर्मे कुत्र संवासः क्व चेहागतभूभृताम् । तन्नो हि संशयं छिन्धि कृपया हेऽम्ब! ते नमः ॥५७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

पञ्चमावरणे त्वस्य पुरः सर्वमहीभृताम् । आगतानां निवासाय निलयाश्च पृथक्पृथक् ॥५८॥

दक्षिण-पश्चिम कोणमें यह परम श्रेष्ठ कोशागार नामका महल है। हे पुत्रो ! पश्चिम-उत्तर दिशामें आश्चर्यमय यह गृहबाग है ॥४६॥

उत्तर पूर्व कोणमें यह सभा भवन दिखाई दे रहा है, उससे दक्षिण पश्चिममें यह कृत्रिम नामका अद्भुत भवन है ॥५०॥ उस कृत्रिमागारसे दक्षिणकी ओर स्वस्तिक नामका भवन है और पूर्वदक्षिण कोणमें यह कौतुकभवन है, जिसका दर्शन आपलोग कर ही चुके हैं ॥५१॥

उससे पश्चिममें इसे दन्तधावन नामका महल जानना चाहिये और यह अत्यन्त मनोहर स्नान-भवन दिखाई दे रहा है ॥५२॥ स्नान-भवनके उत्तर में यह कुड्मल नामका महल सुशोभित हो रहा है और यह कौशल नामका भवन है तथा उसके पूर्व में शृङ्गार-गृह है ॥५३॥

शृङ्गार सदनके समीप पश्चिम दिशामें अङ्गराग नामका सर है, जिसे निमिवंशियोंके अङ्गराग आदिकी सुविधाके लिये विश्वकर्माजीने निर्माण किया था ॥५४॥ अग्निकुण्डसे दक्षिण और बिहारकुण्डसे पश्चिममें ज्ञानपीठ नामसे प्रसिद्ध यह महाविद्यालय है ॥५५॥

अग्निकुण्डसे पूर्वमें यह रत्नसागर नामका सरोवर है, इसे निमिकुलमें सूर्यके समान परमप्रकाशमान, श्रीमिथिलेशजीने अपनी प्रजाकी यथेष्ट धन प्राप्ति सुविधाके लिये खनाया है ॥५६॥

इतनी कथा सुनकर श्रीलषनलालजी बोले:–हे अम्ब ! मेरे पिताजीका वास किस महलमें है ? और यहाँ उत्सव में आये हुये देश-देशान्तरोंके सभी राजाओंका निवास किधर है ? आप कृपया मेरी इस शङ्काका छेदन कीजिये, एतदर्थ मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥५७॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्स! इस नगरके पाँचवें आवरणमें सभी आगन्तुक राजाओंके निवास महल पृथक्–पृथक् बने हैं ॥५८॥

पूर्वभागे शुभागाराज्जयमानस्य मन्त्रिरणः । इदं यद्दृश्यते भव्यं सुविशालं निवेशनम् ॥५६॥
तत्पितुर्वो निवासाय कल्पितं परमोत्तमम् । भवनं रत्नखचितं सर्वभोगसमन्वितम् ॥६०॥

श्रीराम उवाच ।

इदं किं दृश्यते मातः ! सभागारात्तु पूर्वके । मन्दिरं चारुशोभाढ्यं तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥६१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्रं ते कौशल्यानन्दवर्द्धन । मौक्तिकागारमित्युक्तं यदभिज्ञातुमिच्छसि ॥६२॥
चन्द्रसूर्यमणीनां च प्रकाशैर्भासितं पुरम् । पश्य तात ! प्रतीच्यां च रवावस्ताचलं गते ॥६३॥
दूत्योऽप्यत्रागता एता निशाशननिकेतनात् । नेतुं वो भोजनार्थाय मत्सकाशं त्वराऽन्विताः ॥६४॥
गम्यतां वत्स ! मे साकमितो नैशाशनालयः । सर्वासां रुचिरेवैषा तव नात्र रुचिं विना ॥६५॥

श्रीराम उवाच ।

इदानीमत्र किं मार्तविलम्बेन प्रयोजनम् । गम्यतां शीघ्रमेवातो भवत्या भूरिवत्सले ! ॥६६॥

श्रीशिव उवाच ।

तन्निशम्य महाराज्ञी दोलामारोप्य तांस्ततः । सर्वाभिः सा समारुह्य यन्त्रेणाप पुनर्महीम् ॥६७॥

जयमान मन्त्रीजीके महलसे पूर्वमें यह जो विशाल और भव्य महल दिखाई देरहा है वह रत्न–खचित, समस्त भोग सामग्रियोंसे युक्त, परमश्रेष्ठ भवन आपके श्रीपिताजीका निवास महल है ॥५६॥६०॥ श्रीरामजी बोले:–हे श्रीअम्बाजी! सभा भवनसे पूर्वमें यह कौन परम सुन्दर महल दिखाई दे रहा है ? उसे हम लोगोंके प्रति आप कहनेकी कृपा करें ॥६१॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-श्रीकौशल्या महारानीजीके आनन्दको बढ़ाने वाले ! हे वत्स ! श्रीरामजू! आपका कल्याण हो, आप जिस महलको जाननेकी इच्छा करते हैं, उसे मौक्तिकागार (मोतीमहल) कहा जाता है ॥६२॥ हे तात ! देखिये पश्चिमकी ओर सूर्यभगवानके अस्ताचल पधारते ही, चन्द्र, सूर्य मणियोंके प्रकाशसे समस्तपुर प्रकाशित हो गया है ॥६३॥

व्यारू सदनकी ये दूतियाँ भी आप लोगोंको अपने यहाँ शीघ्र ले जाने के हेतु मेरे पास आ चुकी हैं ॥६४॥ हे वत्स ! अत एव इस हाटक–भवनसे अब आप व्यारू भवन पधारें, यह सभीकी रुचि है, परन्तु आपकी रुचिके बिना नहीं ॥६५॥

श्रीरामभद्रजी बोले:–हे परम वात्सल्यवती श्रीअम्बाजी! अब यहाँ विलम्ब करनेका प्रयोजन ही क्या है ? अत एव अब आप व्यारू सदनको शीघ्र प्रस्थान करें ॥६६॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वती ! श्रीरामभद्रजूके इस वचनको श्रवण करके महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी उन राजकुमारोंको हिंडोलेमें बैठाकर सभी देवरानी व सखियोंके सहित स्वयं उसमें बैठकर, यन्त्रके द्वारा छतसे पुनः पृथ्वी पर आगयीं ॥६७॥

पुनः स्यन्दनमास्थाय सखीभिः परिवारिता । निशाशननिकेतं सा समवाप शुचिस्मिता ॥६८॥

तस्मिंस्तु रत्नाञ्चितहेमपीठकेष्वाभूषितेषूज्ज्वलकोमलांशुकैः
वहत्सुगन्धाञ्चितशीतलानिले सुखेन गेहे तनयान्न्यवेशयत् ॥६९॥
तदाऽगमद्भ्रातृभिरुन्नतश्रीस्तदालयं श्रीमिथिलामहेन्द्रः ।
कृतप्रणामाञ्छुभयाऽऽशिषा तान्नियोज्य भोक्तुं प्रददौ निदेशम् ॥७०॥
उवाच रामो विहिताञ्जलिः सन् विनम्रगात्रो नृपमार्द्रवाचा ।
साकं भवद्भिर्ह्यशनं विधातुं हे तात ! वाञ्छोरसि वर्तते नः ॥७१॥
इत्येवमुक्तो मुदिताननोऽसौ रामेण राजा मधुरस्मितेन ।
सर्वानुजैर्भोजनसंचिकीर्षुः समाविशत्पीठमुदीक्ष्य तच्च ॥७२॥
पीयूषकल्पाशनमीप्सितं ते चक्रुर्महाप्रेमवशं प्रपन्नाः ।
राजाऽनुजैः साकमवेक्ष्य हृष्टो राज्यश्च सर्वा अभवन् कृतार्थाः ॥७३॥
एवं च भुक्तामृतभोजनेषु पुत्रेषु तेष्वेव नृपोत्तमस्य ।
समादृतोऽशेषजनोऽहिवल्लीपलाशवीटीभिरगात्स्ववेश्म ॥७४॥
साकं तया राजकुलस्त्रियश्च नृपेन्द्रपुत्रैर्युतयाऽनुजग्मुः ।
नृपोऽनुजैः साकमथाचिरेण जगाम संवेशनिकेतनं स्वम् ॥७५॥

इसके बाद वे पवित्र मुस्कान वाली श्रीसुनयना अम्बाजी सखियोंके सहित रथमें बैठकर व्यारू भवन पहुँच गयीं ॥६८॥ सुगन्धसे युक्त, बहते हुये शीतल पवनसे सुशोभित, उस व्यारू भवनमें उज्वल, कोमल वस्त्रोंसे भूषित, रत्नखचित सुवर्णकी चौकियों पर उन चारो श्रीचक्रवर्ती राजकुमारोंको सुखपूर्वक विराजमान किये ॥६९॥ उसी समय श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाइयोंके सहित उस महलमें पधारे पुनः प्रणामकारी उन चारों भाइयोंको शुभ आशीर्वाद पूर्वक भोजन पानेकी आज्ञा प्रदानकी ॥७०॥ श्रीरामभद्रजू बड़ी ही सरस वाणी द्वारा उनसे बोलेः-हे तात ! आप लोगोंके साथ ही भोजन करनेकी, मेरे हृदयमें अभिलाषा है ॥७१॥

मधुर मुस्कान वाले श्रीरामभद्रजूके इस प्रकार कहने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज प्रसन्न हो अपने सभी भाइयोंके साथ-साथ भोजन करनेके लिये चौकी पर बैठ गये, यह देखकर चारो भइया अतीव प्रेम वशहो अमृतके समान इच्छानुकुल भोजन पाने लगे । यह देखकर भाइयोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराज बड़े हर्षको प्राप्त हुये तथा सभी महारानियां कृतार्थ हो गयीं ॥७२॥७३॥

इस प्रकार उन श्रीचक्रवर्तीकुमारोंके अमृतमय भोजन कर लेनेपर, सभी लोग पानके वीरोंसे सत्कृत हो अपने महलोंको विदा हुये ॥७४॥ तब श्रीचक्रवर्ती कुमारोंके सहित श्रीसुनयना अम्बाजी के साथ, राजकुलकी सभी स्त्रियाँ शयन भवनमें पधारीं तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज भाइयोंके सहित शीघ्र अपने शयन महलको गये ॥७५॥

ततस्तु संवेशगृहे कुमारान् प्रस्वाप्य नत्वा नृपतिं च राज्ञीम् ।
जग्मुर्निकेताननुजा नृपस्य कलत्रवन्तः शयनाय हृष्टाः ॥७६॥
राज्ञी तदाऽऽदाय सुतां निजाङ्के तेषां समीपे ह्यसुभूतरूपाम् ।
सुष्वाप शीतांशुमणिप्रकाशेऽनिलैस्त्रिधाढ्ये निलये समन्तात् ॥७७॥

तत्पश्चात् शयनभवनमें राजकुमारोंको शयन कराके, श्रीमिथिलेशजी व श्रीसुनयना महारानी को प्रणाम करके, हर्षको प्राप्त हुये वे राजभ्राता श्रीकुशध्वज आदि अपनी रानियोंके सहित शयन करने के लिये अपने-अपने महलको चले गये ॥७६॥

तब श्रीसुनयना अम्बाजीने अपनी गोदमें प्राणस्वरूपा श्रीललीजीको लेकर चन्द्रमणिके प्रकाशसे युक्त, सब ओरसे शीतल, मन्द, सुगन्धमय वायुसे पूर्ण, उस शयन भवनमें राजकुमारोंके समीपमें सो गयीं ॥७७॥

इति चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

सुनयना अम्बाजी द्वारा राजश्रृङ्गारालङ्कृत चक्रवर्ती कुमारोंको कलेऊ कराके श्रीजन सभा भेजना ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ रात्रौ व्यतीतायामुत्थाय महिषी मुदा । बोधिता कलघोषैश्च वाद्यानां स्वालिभिर्जगौ ॥१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

उत्तिष्ठताशु याता कृत्स्ना हि शर्वरीयम् । रक्तांशुकावृताङ्गी नक्षत्रमालिनीयम् ॥२॥
लोकश्रमापहर्त्री तेजोऽनुवृद्धिकर्त्री । निःशेषदेहभाजां प्रेम्णा प्रपोषयित्री ॥३॥
वेलोदयस्य भानोः प्राप्ता मनोज्ञरूपाः ! । द्रष्टुं हि मुनीन्द्राः स्तुन्वन्ति पक्षिरूपाः ॥४॥

रात्रि समाप्त हो जाने पर श्रीसुनयना अम्बाजी बाजोंके मनोहर शब्दोंसे सावधान हो, अपनी सखियोंके सहित मङ्गल गाने लगीं ॥१॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे चारो वत्स! प्रेम पूर्वक समस्त प्राणियोंका पोषण और उनके तेजकी वृद्धि करने वाली तथा लोगोंके श्रम(थकावट)को हरनेवाली, नक्षत्रोंकी माला धारण किये, लाल वस्त्र पहिने हुई भगवती रात्रि पूर्ण रूपसे चलीगयीं, अतः अब आप लोग शीघ्र उठें ॥२॥३॥

हे मनोहर रूपवाले वत्सो! सूर्य उदय होनेकी बेला उपस्थित है, मुनीन्द्रगण पक्षियोंका रूप धारण करके आपका दर्शन करनेके लिये स्तुति कर रहे हैं ॥४॥

श्रीमत्कुलादियोनिर्भगवान्भगो दिनेशः । आयाति द्रष्टुकामश्छायाधवो ग्रहेशः ॥५॥
तद्वन्दनाय तन्द्रा तूर्णं विसर्जनीया । भद्रं हि वोऽस्तु वत्सा ! मन्मुद्विवर्द्धनीया ॥६॥
माङ्गल्यवस्तुपूर्णान्यादाय भाजनानि । सख्यः स्थिताः सकाशं संपश्यताशु तानि ॥७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं प्रबोधितो रामस्त्यक्तनिद्रोऽनुजैः सह । उत्थाय चरणौ स्पृष्ट्वा तस्याश्चक्रेऽभिवादनम् ॥८॥
माङ्गल्यवस्तुपात्राणि दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा यथारुचि।राज्ञ्याः सकाशमिन्द्वास्यो न्यषीदद्रुचिरासने ॥९॥
जलार्द्रकोमलस्निग्धसुचीमामलवाससा । मुखसंप्रोक्षणं कृत्वा मधुपर्कं समादिशत् ॥१०॥
दर्पणं दर्शयित्वा सा विहिताचमनेष्वथ । प्रीत्या नीराजयामास महानन्दपरिप्लुता ॥११॥
उन्मील्य नयनाम्भोजे दृष्ट्वाऽथेतस्ततस्तदा । मन्दं रुरोद तल्पस्था क्षिपत्यङ्घ्रिकरद्वयम् ॥१२॥
परमानन्दचिन्मूर्त्तिर्व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी । अयोनिजा सुता राज्ञःशिशुरूपा महद्युतिः ॥१३॥
तां तदोत्थाप्य वात्सल्यपीयूषाम्बुधिसम्प्लुता । त्वरया विह्वला राज्ञी सुमुखीं क्रोड आददे ॥१४॥

आपके कुलके प्रधान कारण, षड्ऐश्वर्य-पूर्ण, ग्रहोंके स्वामी, छाया पति, भगवान् सूर्य आपके दर्शनोंके लिये पधार रहे हैं ॥५॥

हे वत्सो ! आपका कल्याण हो, उन भगवान् भास्कर (सूर्य) को प्रणाम करनेके लिये आलस्यका परित्याग तथा मेरे आनन्दकी वृद्धि करनाही आप लोगोंको उचित है ॥६॥

माङ्गलिक द्रव्योंसे पूर्ण पात्रोंको लिये सखियाँ पासमें खड़ी हैं, उन द्रव्योंका दर्शन कीजिये ॥७॥

भगवान् श्रीशिवजी बोलेः—हे पार्वती ! इस प्रकार अपने भाइयोंके सहित जगाये हुये श्रीरामभद्रजू, निद्राका परित्याग करके उठे और चरणोंका स्पर्श करके श्रीअम्बाजीको प्रणाम किये ॥८॥ पुनः माङ्गलिक वस्तुओंके पात्रोंको यथा रुचि दर्शन, करके श्रीअम्बाजीके पास उत्तम आसन पर बैठ गये ॥९॥

तब श्रीअम्बाजीने जलसे गीले, कोमल, चिकने, झीने, स्वच्छ वस्त्रसे उनके मुखारबिन्दोंको पोंछकर उन्हें मधुपर्क (घी, मधु मिला हुआ दही) प्रदान किया ॥१०॥

आचमन कर लेने पर आनन्दमें डूबी हुई पुनः वे दर्पण (आयना) दिखला कर प्रेमपूर्वक आरती उतारने लगीं ॥११॥ उस समय शिशुरूपको धारण किये हुई अयोनिसम्भवा, ब्रह्म तेज सम्पन्ना साकार-निराकार रूप वाली, आनन्दकी श्रेष्ठ चैतन्यमयी मूर्त्ति, श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी पलङ्ग पर विराजमान हुई अपने नेत्रकमलोंको खोलकर इधर-उधर देखकर हस्त, पाद कमलोंको पटकती हुई, मन्द २ रोने लगीं ॥१२।१३॥

वात्सल्यरूपी अमृतके समुद्रमें डूबी हुई श्रीसुनयना अम्बाजीने विह्वल होकर तब शीघ्रताके साथ उन श्रीसुमुखीजीको उठाकर अपनी गोलमें ले लिया ॥१४॥

साऽपि पीत्वा स्तने मातुः संप्रहृष्टमुखी बभौ । भासयन्ती रुचा वेश्म ह्लादयन्त्यखिलं जगत् ॥१५॥
एतस्मिन्नेव काले तु सख्यः सर्वा उपागताः । वैकाश्योऽन्यवयस्याभिः सह माङ्गल्यपाणयः ॥१६॥
ताः प्रणेमुर्महाराज्ञीं कुमारान्वीक्ष्य हर्षिताः । परमानन्दमापन्ना दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम् ॥१७॥
अथानीतानि पात्राणि माङ्गल्यानि यथाविधि । दर्शयित्वा महाराज्ञ्यै कुमारेभ्यस्तथैव च ॥१८॥
अङ्गालङ्कारमाशोध्य मुदा नीराजनं कृतम् । ताभिः परमहृष्टाभिः प्रार्थनेति निवेदिता ॥१९॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

सौभाग्यमस्तु ते नित्यं प्रजाकोषकुलादिभिः । चिरञ्जीवतु ते पुत्री सर्वदैव निरामया ॥२०॥
एते कमलपत्राक्षा राजपुत्रा मनोहराः । निरामयाः प्रपद्यन्तां चिराय भविकं मुदा ॥२१॥
सर्वदा सर्वकालेषु सर्वर्तुषु तथैव च । सर्वावस्थासु सर्वत्र भद्राण्येव प्रयान्त्वमी ॥२२॥
इदानीं स्वस्तिकागारसमयः समुपस्थितः । तत्कृतार्थयितुं राज्ञि ! कुमारैः सहगम्यतां त्वया ॥२३॥

श्रीशिव उवाच ।

तासां वचनमाकर्ण्य भृशमाप मुदं ततः । राजपुत्रैः समं तस्मात्स्वस्तिकागारमभ्यगात् ॥२४॥

वे श्रीमिथिलेशदुलारीजीभी श्रीअम्बाजीका स्तन पान करके अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे महलको प्रकाशित और सारे जगत्को ह्लादित करती हुई सम्यक् प्रकारसे पूर्ण प्रसन्न मुखी हो गयीं ॥१५॥ उसी समय अन्य सखियोंके सहित बिकाशापुरकी सभी सखियाँ मङ्गल थाल हाथमें लिये हुई वहाँ आगयीं ॥१६॥

उन्होंने श्रीचक्रवर्तीकुमारोंका दर्शन करके हर्षको प्राप्त हो महारानी (श्रीसुनयना अम्बा) जीको प्रणाम किया । पुनः श्रीजनक लडैतीजू का दर्शन करके भगवदानन्दको प्राप्त हो गयीं ।१७॥

तदनन्तर लाये हुये मङ्गल थालोंको बिधि पूर्वक श्रीसुनयना महारानीजीको तथा राजकुमारोंको दर्शन कराके ॥१८॥ अङ्गोंके शृङ्गारको सुधार करके परम हर्षको प्राप्त हुई सखियों ने आनन्दपूर्वक आरती करके महारानी श्रीसुनयनाजीसे यह प्रार्थना निवेदन की ॥१९॥

हे श्रीमहारानीजी ! आप प्रजा, कोश कुलके सहित नित्य सौभाग्यवती होवें और आपकी श्रीललीजी सदाही समस्त रोगोंसे मुक्त रहकर चिर जीवन को प्राप्त हों ॥२०॥

और ये कमलदलके सदृश विशाल नयन मनहरण--राजकुमार, रोगोंसे सब प्रकार मुक्त रहते हुये आनन्द पूर्वक चिरजीवनको प्राप्त हों । तथा सभी काल सभी ऋतुओंमें, एवं जाग्रत्—स्वप्नादि सभी अवस्थाओंमें, सभी ओरसे ये मङ्गलको ही प्राप्त हों ॥२१॥२२॥

हे श्रीमहारानीजी ! यह समय स्वस्तिक भवन पधारनेका पूर्ण रूपसे उपस्थित है इस हेतु स्वस्तिक भवनको कृतार्थ करनेके लिये इन राजकुमारोंके सहित, आप शीघ्र उसमें पधारिये ॥२३॥ भगवान् शिवजी बोलेः-हे प्रिये! उन सखियोंकी प्रार्थना श्रवण करके श्रीसुनयना अम्बाजी बड़े आनन्दको प्राप्त हुईं, पुनः उनकी प्रार्थनानुसार श्रीचक्रवर्ती कुमारोंके सहित वे स्वस्तिक भवन पधारीं ॥२४॥

तत्र स्वस्त्यासने रम्ये क्षालिताङ्घ्रिकराम्बुजा । निवेशिता वयस्याभी राजपुत्रैः समन्विता ॥२५॥
मधुपर्कादिविधिभी राज्ञी नीराजिता मुदा । गीतैर्वाद्यैस्तथा नृत्यैर्वत्सोत्सङ्गा व्यराजत ॥२६॥
तस्मात्तु स्वस्तिकागाराद्दन्तधावनमन्दिरम् । विहाय कौतुकागारमाससाद हरित्प्रभम् ॥२७॥
द्वाःस्थिताभिः समादृत्य भक्तिपूर्वाभिवन्दनैः । गृहान्तरालमानीता त्रिविधाऽनिलपूरितम् ॥२८॥
तत्रारोप्य सुपीठेषु महति स्फटिकमण्डपे । बन्धूकजातिनिर्गुण्डीहेमपुष्पिद्रुमान्विते ॥२९॥
राज्ञ्या सुनेत्रया प्रीत्या दान्तधावनको विधिः। कारितो राजपुत्रैस्तैस्तयाऽपि विहिता स्वयम् ॥३०॥
प्रक्षालितकराङ्घ्रिभ्यः कुमारेभ्यो निवेदितम् । महिष्योरीकृतं तस्याः फलपात्रशतं तया ॥३१॥
अथोत्सृज्य तदागारमभ्ययान्मज्जनालयम् । स्नानार्थं च महाराज्ञी साकमुर्वीश्वरात्मजैः ॥३२॥
ममज्ज सरसि प्रीत्या तस्मिंस्तु विमलाम्भसि । स्नपयन्ती नृपसुतान्कृतोद्वर्तनसद्विधीन् ॥३३॥
चक्रवर्तिकुमारास्ते जलक्रीडापरायणाः । नैवाययुः समाहूता बालभावं समाश्रिताः ॥३४॥
उवाच प्रश्रयेणेदं राज्ञी दृष्ट्वा मुदान्विता । रामं कमलपत्राक्षं ज्येष्ठं सुमुखि ! बन्धुषु ॥३५॥

वहाँकी सखियोंने हाथ, पैर रूपी कमलोंको धोकर राजपुत्रोंके सहित उन्हें स्वस्तिक आसन पर विराजमान किया ॥२५॥

पुनः मधुपर्क प्रदान बिधि करके गीत, वाद्य, नृत्यके सहित उन सखियोंके आरती कर लेनेपर श्रीअम्बाजी गोदमें श्रीललीजीको लिये सुशोभित हुई ॥२६॥ पुनः वे उस स्वस्तिक भवनसे आगे बीचमें कौतुक भवनको छोड़कर हरे प्रकाशसे युक्त, दन्तधावन नामके भवनमें पहुँची ॥२७॥

द्वार पालिका सखियोंने भक्तिपूर्वक प्रणाम आदिके द्वारा सत्कार करके, उन्हें शीतल, मन्द, सुगन्ध युक्त वायुसे पूर्ण भीतर महलमें ले गयीं ॥२८॥

वहाँ नेबारी, पीली जूही, चमेली, दुपहरियाके पेड़ोंसे युक्त, विशाल स्फटिक मणिमय मण्डपमें सुन्दर चौकियों पर बैठाकर श्रीसुनयना अम्बाजीने प्रेमपूर्वक उन राजकुमारोंको दन्तधावन कराया तथा स्वयं भी किया ॥२९॥३०॥

हाथ पाँव धोकर राजकुमारोंके भोजनके लिये वहाँकी मुख्य सखीजीके समर्पण किये हुये सैंकड़ों फलपात्रोंको श्रीअम्बाजीने स्वीकार किया ॥३१॥

उसके पश्चात् उस भवनको छोड़कर श्रीचक्रवर्तीकुमारोंके सहित, स्नान करनेके लिये मज्जन भवनमें पधारीं और ॥३२॥ वहाँ उबटन लगाये हुये राजकुमारोंको श्रीसुनयना अम्बाजीने स्वच्छ जलमय सरोवरमें स्नान कराया तथा स्वयं भी किया ॥३३॥

जब वे श्रीचक्रवर्तीकुमार बालभावमें प्राप्त हो जल-क्रीडामें ऐसा तन्मय हो गये कि बुलाने पर भी नहीं आये ॥३४॥ हे सुन्दर मुखवाली श्रीगिरिराज-कुमारीजी ! रानी श्रीसुनयना अम्बा यह देखकर मुदित हो बड़े प्रेम पूर्वक भाइयोंमें श्रेष्ठ, कमलदललोचन श्रीरामभद्रजूसे बोलीं ॥३५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

एहि मे वत्स! श्रीराम! वस्त्राण्याधत्स्व बन्धुभिः । अलम्भोविहारेण कच्चित्क्षुद्वो न बाधते ॥३६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तस्तया देवि ! रामः सहजसुन्दरः । पार्श्वस्थसूनुसुभगः प्राज्ञो राज्ञीमुपागमभत् ॥३७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

विहायार्द्राणि वस्त्राणि धृताल्पांशुकभूषणः । सरस्तीरोपभवने समानीतस्ततस्तया ॥३८॥
उपवेश्यासने दिव्ये तत्र केशप्रसाधनम् । विधाय विहितं भाले तिलकं केसरादिना ॥३९॥
प्रातराशाय मिष्टान्नं सद्मसख्या निवेदितम् । भोक्तुमाज्ञापिता राज्ञ्या कुमारास्तदभुञ्जत ॥४०॥
पुनस्ते लब्धताम्बूलवीटिका हरिदम्बराः । नीराजिताः समानीतास्तस्माच्छ्रीमण्डनालयम् ॥४१॥
रुक्मतन्तुमणिव्रातरचितैर्वस्त्रभूषणैः । अलञ्चकार सा प्रेम्णा तत्र राज्ञी मुदा स्वयम् ॥४२॥
पुनर्नीराज्य तान् सर्वान् कृतस्वल्पामृताशनान् । आशु सा प्रापयामास सभागारं महीपतेः ॥४३॥

हे मेरे वत्स ! श्रीरामभद्रजू ! अब बहुत जलविहार होगया, अतः आइये बन्धुओंके सहित सूखे वस्त्र धारण कीजिये, क्या अभी तक भूख नही लगी है ? ॥३६॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे देवि ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीके कहने पर, बगलमें अपने दोनों भाइयोंसे सुशोभित, सहजसुन्दर श्रीरामभद्रजू महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके पास आगये और गीले वस्त्रोंको उतारकर सूखे स्वल्प वस्त्र भूषणोंको धारणकर लिया तब उन्हें श्रीअम्बाजी सरोवर किनारेके भवनमें ले गयीं वहाँ चारों भाइयोंको दिव्य आसन पर बैठा करके, बाल सँवारके केशर आदिसे तिलक लगाया ॥३७॥३८॥३९॥

पुनः वहाँकी सखीजी द्वारा कलेऊके निमित्त अर्पण किये हुये मिष्टान्नको, वे श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर आरोगने (पाने) लगे ॥४०॥

उसके पश्चात् पानका वीरा देकर तथा हरेवस्त्र धारण कराके जब सभी आरती कर चुकी तब उन श्रीकोशलेन्द्र कुमारोंको श्रीअम्बाजी, उस महलसे शृङ्गार—सदनमें ले गयीं ॥४१॥

वहाँ सुवर्णके धागोंसे तथा मणि-समूहोंसे बने हुये वस्त्र-भूषणोंके द्वारा, महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी प्रेम-पूर्वक आनन्दके सहित, चारो श्रीचक्रवर्तीकुमारोंका शृङ्गार स्वयं किया ॥४२॥

तत्पश्चात् अमृतके समान स्वादिष्ट स्वल्प नैवेद्य पाये हुये उन चारो राजकुमारोंकी आरती करके श्रीअम्बाजीने उन्हें शीघ्र श्रीमिथिलेशजी महाराजके सभाभवनमें भेज दिया ॥४३॥

इति पञ्चचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

अथ षट्चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

अपनी छवि माधुरी से सभा को मुग्ध करके महाराज सहित भोजन भवन आकर कुमारों द्वारा सभी रानियों की भावपूर्त्ति ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्रेषयित्वा सकाशे तान् सभायां मिथिलापतेः । कुमारान् राजराजस्य ययावम्बाऽशनालयम् ॥१॥
सुप्रबन्धं समुद्वीक्ष्य भोजनस्य सविस्तरम् । तुतोष विहितं राज्ञी सखीभिर्भावपेशला ॥२॥
दृष्ट्वैवागमनं तेषां परीतानां दिदृक्षुभिः । सहसैवोत्थिताः सर्वे नरेन्द्रेण सभासदः ॥३॥
प्रेमाश्रुलोचनः श्रीमाँस्तान्समालिङ्ग्य चोरसा । सिंहासने निवेश्याथ तेषां मध्य उपाविशत् ॥४॥

श्रीसभासदऊचुः ।

कृतार्थाऽद्य समज्येयं सर्वथा नात्र संशयः । उपस्थित्या कुमाराणां पञ्चबाणमदच्छिदाम् ॥५॥
जयत्यद्य दिनं भूरि मुहूर्तो घटिका पलम् । उपस्थित्या कुमाराणां कुसुमेषुस्मयच्छिदाम् ॥६॥
पूर्णशीतांशुरम्यास्याः स्निग्धकुञ्चितकुन्तलाः। पुण्डरीकविशालाक्षाः कम्बुग्रीवाः सुनासिकाः ॥७॥
सुभ्रुवः कान्तकर्णाश्च पक्वविम्बफलाधराः । मनोज्ञचिबुकाः श्रीलाः सुकपोलाः कलस्मिताः ॥८॥

उन श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास, सभाभवनमें भेजकर श्रीसुनयना अम्बाजी भोजन–सदनमें पधारीं ॥१॥

वहाँ सखियोंके द्वारा भोजनका विस्तारपूर्वक भली प्रकारसे सम्यक् प्रकारसे किया हुआ सुन्दर प्रबन्ध अवलोकन करके भाव विषयका ज्ञान रखने वाली श्रीअम्बाजी बड़ी ही प्रसन्नताको प्राप्त हुईं ॥२॥ उधर दर्शनाभिलाषी बड़भागियोंके सहित चारों श्रीराजकुमारोंका आगमन देखकर सभामें बैठे हुये सभी सौभाग्यशाली लोग श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित उठकर खड़े हो गये ॥३॥ श्रीमान् (मिथिलेशजी) महाराज चारो भाइयोंको हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रुयुक्त नेत्र हो राजसिंहासन पर उन्हें विराजमान करके उनके बीचमें विराज गये ॥४॥

सभासद बोलेः–अपनी छवि-सौन्दर्यसे कामदेवके अभिमानको दूर करने वाले इन श्रीराजकुमारोंकी उपस्थितिसे आज यह सभा निःसन्देह कृत-कृत्य हो गयी ॥५॥

कामदेवके मानको चूर करनेवाले इन श्रीचक्रवर्तीकुमारोंकी उपस्थितिसे इस सभा-भवनके लिये आजका यह दिन, मुहूर्त, घड़ी, पल अत्यन्त उत्कर्षको प्राप्त है ॥६॥

पूर्णचन्द्रमाके सदृश आह्लादवर्द्धक सुन्दरमुख, स्निग्ध घुंघुराले केश, कमलके समान विशाल लोचन, शङ्खके समान तीन रेखा युक्त कण्ठ, सुन्दर नासिका ॥७॥

सुन्दर भृकुटि, मनोहरकान, पके विम्बाफलके सदृश लाल अधर, मनोहर ठोड़ी श्रीसम्पन्न, सुन्दर कपोल, मनोहर मुस्कान ॥८॥

निगूढजत्रवः पीनवक्षसो दीर्घबाहवः । तनुमध्याः सूरवश्च कोमलाम्बुरुहाङ्घ्रयः ॥६॥
नीलाश्महेमवर्णाङ्गाः सुप्रभा वल्गुदर्शनाः । सुचारुकुन्ददशनाः सुकटाक्षाः सुभाषिणः ॥१०॥
सर्वाभरणवस्त्राढ्या सुभगाः पुष्पमालिनः । सर्वसद्गुणसम्पन्नाः सर्वसल्लक्षणान्विताः ॥११॥
सर्वे मनोहरा दिव्यास्त्रिलोक्यामसमाधिकाः । एतैरेते हि सदृशा महामाधुर्यसिन्धवः ॥१२॥
परमानन्दसन्दोहाः श्रुतितत्त्वैकविग्रहाः । कुमाराः परिदृश्यन्ते परब्रह्मस्वरूपिणः ॥१३॥
सुता दशरथस्यैते विश्रुताश्चक्रवर्तिनः । चत्वारो रामभरतौ लक्ष्मणारिनिषूदनौ ॥१४॥
लक्ष्मणो रामभद्रेण रिपुघ्नो भरतेन च । सङ्गत्या राजते नित्यमतीवप्रियदर्शनः ॥१५॥
धन्योऽसौ श्रीमहाराजो धन्या ह्येषां च मातरः। धन्याऽयोध्यापुरी नूनं धन्या च सरयूःसरित् ॥१६॥
धन्यं वनं प्रमोदाख्यं धन्याः सत्यानिवासिनः । धन्यास्ते सर्व एवेह पश्यन्त्येतानहर्निशम् ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं पुलकितोरस्काः कथयन्तः परस्परम् । पूर्णानन्दाम्बुधौ मग्ना उपयाताः कृतार्थताम् ॥१८॥

छिपी हँसुली, पुष्टवक्षःस्थल, लम्बी बाहु, पतली कमर, सुन्दर जङ्घे, कमलके समान कोमल श्रीचरण ॥६॥ नीलमणि व सुवर्णके समान श्याम गौर अङ्ग, सुन्दर कान्ति, मनहरणदर्शन, सुन्दर कुन्दरू की पुष्पकलीके समान दन्तपंक्ति, सुन्दरकटाक्ष, सुन्दरवाणी बोलने वाले ॥१०॥

सम्पूर्ण भूषण-वस्त्रोंसे युक्त, फूलोंकी मालायें धारण किये, शोभायमान, समस्त उत्तम गुण सम्पन्न, सभी शुभलक्षणोंसे युक्त ॥११॥

सभीके मनको हरण करने वाले, त्रिलोकीमें समता व अधिकतासे रहित, ये इन्हींके सदृश, महामाधुर्य सिन्धु, अलौकिक गुणरूप-सम्पन्न ॥१२॥ परमानन्दकी राशि, वेदके तत्त्वकी उपमा रहित मूर्त्ति और परब्रह्मके स्वरूप ही ज्ञात होते हैं ॥१३॥

परन्तु लोकमें श्रीरामजी, श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीशत्रुघ्नजी नामोंसे विख्यात, चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराजके ये चारो पुत्र हैं ॥१४॥

श्रीरामभद्रजूके साथ श्रीलक्ष्मणजी तथा श्रीभरतजीके साथ श्रीशत्रुघ्नजी प्रिय दर्शन लगते हुये नित्य सुशोभित रहते हैं ॥१५॥ धन्य वे (इनके पिता श्रीदशरथजी) महाराज, धन्य इनकी (श्रीकौशल्यादि) मातायें, धन्य (इनकी जन्मभूमि) श्रीअयोध्यापुरी, और जिसमें ये स्नान आदि करते हैं वह श्रीसरयू नदी धन्य है ॥१६॥

धन्य प्रमोदवन, जिसमें ये नित्य विहार किया करते हैं, श्रीअयोध्या निवासी धन्य हैं जिन्हें इनकी बालक्रीडा देखनेका सौभाग्य सदा प्राप्त हुआ करता है, कहाँ तक कहें ? वे सभी धन्य हैं, जिन्हें इनका दर्शन सतत प्राप्त होता है ॥१७॥

भगवान् शिवजी बोलेः—इस प्रकार कथन करते हुये, पुलकायमान हृदय होकर वे, सभासद् पूर्णआनन्द समुद्रमें डूबकर कृतार्थ हो गये ॥१८॥

तदा पुत्रौ समायातौ विसृष्टौ भोजनालयात् । नेतुकामौ महाराज्ञ्या राजपुत्रान्मनोहरान् ॥१९॥
तयोर्विज्ञापनं श्रुत्वा युक्तमावश्यकं नृपः । सान्त्वयित्वा जनान्सर्वाञ्जगामाशनवेश्म सः ॥२०॥
तेषु गच्छत्सु पुत्रेषु भूपतेश्चक्रवर्तिनः । दर्शनातुरचित्तानां सङ्गमोऽभून्महान्पथि ॥२१॥
तेषामुत्फुल्लचक्षूंषि कुर्वाणाः सफलानि ते । आहृत्य चित्तरत्नानि गजयानेन संययुः ॥२२॥
निकेतानां गवाक्षेषु तत्पथः पार्श्ववर्तिनः । शिवे ! सर्वैरदृश्यन्त तदानीमिन्दुपङ्क्तयः ॥२३॥
माल्यैर्लाजैः प्रसूनैश्च पूज्यमानाः समन्ततः । एवमेवासदन्वेश्म सभूपास्ते महानसम् ॥२४॥
प्रत्युद्गम्यानयद्राज्ञी कृत्वाऽऽत्तिक्यविधिं हि तान् । अन्तर्गृहं सखीवृन्दैर्नरेन्द्रेण सहागतान् ॥२५॥
क्षालिताङ्घ्रिकरास्यांस्तान् विनीतान्भूरिवत्सला।पीठेष्वास्थाप्य संत्यक्तसभाभूषानभोजयत् ॥२६॥
श्रीसुभद्रा विशालाक्षी तथा चन्द्रप्रभा प्रिये !। सुचित्रा सुव्रताऽशोका मोदिनी क्षेमवर्द्धिनी ॥२७॥
इमाश्चाष्टौ समादाय व्यजनानि चकाशिरे । अम्बा सुदर्शना तर्हि निजगाद मुदे कथाम् ॥२८॥

तब भोजन-सदनसे महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके भेजे हुये दोनों पुत्र मनहरण राजकुमारोंको भोजनभवन ले जानेके लिये, वहाँ जा पहुँचे ॥१९॥

उन दोनोंका आवश्यक निवेदन श्रवण करके श्रीमिथिलेशजी महाराज सभी सभासद् आदि लोगोंको आश्वासन प्रदान करके भोजन सदनको पधारे ॥२०॥

उन श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके राजकुमारोंके सभाभवनसे गमन करतेही मार्गमें उनके दर्शनोंके लिये विह्वल चित्तवाले सज्जनोंकी महती भीड़का समागम हुआ ॥२१॥

उन दर्शनाभिलाषियोंके पूर्ण खिले नेत्रोंको, अपने दर्शनोंके द्वारा सफल करते हुये तथा उनके चित्त रूपी रत्नोंकी चोरी करके वे राजकुमार गजयान द्वारा भोजन सदन पधारे ॥२२॥

हे शिवे ! उस मार्गके दोनों बगलके महलोंके झरोखोंमें सभी लोगोंको केवल चन्द्र-पंक्तियोंका ही दर्शन होता था अर्थात् माताओंके मुखचन्द्र ही दिखाई पड़ते थे ॥२३॥

इस प्रकार माला, लावा, फलोंके द्वारा पूजित होते हुये वे श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित भोजन भवन पहुँच गये ॥२४॥

रानी श्रीसुनयना अम्बाजी आगे पधारकर, आरती करके, श्रीमिथिलेशजीके साथ पधारे हुये उन राजकुमारोंको, अपनी सखियोंके सहित भीतर महलमें ले गयीं ॥२५॥

पुनः हाथ, पाँव, मुखारविन्द, धो सभाका शृङ्गार उतार कर उन विनीत श्रीराजकुमारोंको सुन्दर चौकियों पर बैठा कर वे भोजन कराने लगीं ॥२६॥

हे प्रिये ! श्रीसुभद्राजी श्रीविशालाक्षीजी श्रीचन्द्रप्रभाजी, श्रीसुचित्राजी, श्रीसुव्रताजी, श्रीक्षेमवर्द्धिनीजी ॥२७॥ ये आठो रानियाँ पङ्खे लेकर सुशोभित हुईं तब श्रीसुदर्शना अम्बाजी आनन्दके लिये एक कथा कहने लगीं-॥२८॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

भद्रं वोऽस्तु सदा पुत्राः कथैका श्रूयतां शुभा । कुर्वद्भिर्भोजनं प्रीत्या भवद्भिः कौतुकान्विता ॥२९॥
वसति स्म पुरा कश्चिन्महात्मा निर्जने वने । कृत्वोटजं कृपामूर्त्तिः सपुत्रोऽग्निनिभद्युतिः ॥३०॥
स एकस्मिन्दिने प्रागात्फलान्याहर्तुकाम्यया । किञ्चिद्दूरं निजावासात्पुत्रमुत्सृज्य चोटजे ॥३१॥
एतस्मिन्नेव काले तु वेश्या नृपहिते रताः । एकाकिनं तमाबुध्य पुत्रमापुस्तदाश्रमम् ॥३२॥
अदृष्टस्त्रीस्वरूपोऽसौ दृष्ट्वा ताश्च वराङ्गनाः । अपूर्वर्षिवरान्मत्वा स्वागतायोपचक्रमे ॥३३॥

ऋषिपुत्र उवाच ।

इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदमाचमनीयकम् । फलानीमानि मिष्टानि नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥३४॥
आस्यतामचिरेणैव गुरोरागमनं हि मे । भवेत्तेन मिलित्वा वै पुनः कामं प्रयास्यथ ॥३५॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

तास्तथेति तमाभाष्य पूजनं प्रतिगृह्य च । मोदकांश्च तदा तस्मै समर्प्येदं बभाषिरे ॥३६॥

वेश्या ऊचुः ।

ऊरीकृतानि सर्वाणि फलान्यस्माभिरेव ते । अस्मद्वनफलानि त्वं भुङ्क्ष्व नः प्रीतिवृद्धये ॥३७॥

श्रीसुदर्शनाअम्बाजी बोलीं—हे पुत्रो ! आप लोगोंका कल्याण हो । आप लोग प्रेम-पूर्वक भोजन करते हुये कौतुकमयी एक शुभ-कथा श्रवण कीजिये ॥२९॥

पूर्वकालमें एक कोई तपोमूर्त्ति, अग्निके समान कान्तिवाले महात्मा निर्जन वनमें कुटी बना कर, अपने पुत्रके सहित निवास करते थे ॥३०॥

किसी समय वे अकेले कुटीमें अपने पुत्रको छोड़कर आश्रमसे कुछ दूर फल लानेके लिये चले गये ॥३१॥ उसी अवसर पर अपने राजाका हित करनेमें कटिबद्ध वेश्यायें, मुनिपुत्रको अकेले जानकर आश्रममें आगयीं ॥३२॥

पूर्वमें कभी स्त्रीका स्वरूप न देखे हुये वे ऋषि-कुमार उन वेश्याओंको देखकर उन्हें अपूर्व ऋषि-शिरोमणि मानकर उनका स्वागत करने लगे ॥३३॥

ऋषिपुत्र बोले—हे पूज्य महर्षियो ! यह अर्घ्य, यह पाद्य, यह आचमनीय, तथा मीठे फलों का यह नैवेद्य स्वीकार कीजिये ॥३४॥

आप लोग विराजिये, अब शीघ्र ही मेरे पिताजीका आगमन होनेवाला है उनसे मिलकर आप लोग इच्छानुसार पुनः चले जाइयेगा ॥३५॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजीबोलीं—हे वत्सो ! वे वेश्यायें ऋषि-पुत्रसे ऐसा ही होगा कहकर उनके द्वारा किया हुआ पूजन स्वीकार करके, अपने साथ लाये हुये लड्डुओंको उन्हें अर्पण करके बोलीं—॥३६॥ हे ऋषिकुमार ! आपके फलोंको हम सभीने स्वीकार किया । अब आप हमारी प्रसन्नता बढ़ाने के लिये हमारे वनके इन फलोंको खा लीजिये ॥३७॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

एवमुक्तस्तु वै ताभिर्मुनिपुत्रः स्वधर्मवित् । फलमत्योद्यतो भोक्तुं मोदकांश्च मनोहराः ! ॥३८॥

तांस्तु जग्ध्वा महातेजाः पप्रच्छ विनयान्वितः । भवतां कुत्र संवासः क्व चेहागमनं किल ॥३९॥

वेश्या ऊचुः ।

वने फलानि युष्माकं यथा स्वादुमयानि च । न सन्त्यस्मद्वने चात्र सत्यं वच्मि तपस्विनः ॥४०॥

वसामो वै वनादस्मात्किञ्चिद्दूरं शुचिव्रत! । दिदृक्षया वनं प्राप्ताः सुखितास्ते समागमात् ॥४१॥

अस्माकं तु वने सन्ति फलान्यत्युत्तमानि वै । इदानीं गम्यतेऽस्माभिः स्वाश्रमो भद्रमस्तु ते ॥४२॥

ऋषिपुत्र उवाच ।

अनुकम्पेदृशी कार्या भवद्भिर्मुनिसत्तमाः ! । दर्शनं भवतां पुण्यं मनोज्ञं दुर्लभं हि मे ॥४३॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

तथेत्युक्त्वा ऋषेर्भीताः समालिङ्गय पुनः पुनः । अगमन् स्वाश्रमं तस्य चोरयित्वा मनोमणिम् ॥४४॥

तेन विह्वलतां प्राप्तः कथञ्चित्स्वास्थ्यमाययौ । पितरि प्रस्थिते प्रातः पुनश्चिन्तापरोऽभवत् ॥४५॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं:-हे मनहरण पुत्रो ! उन वेश्याओंके इस प्रकार कहने पर, अपने धर्मको समझने वाले वे मुनिपुत्र फलबुद्धिसे उन लड्डुओंको पाने (खाने) लगे ॥३८॥

लड्डुओंको पाकर महातेजस्वी ऋषिकुमारने विनयपूर्वक पूछा, हे अपूर्व महर्षियो ! आप लोग किस वनमें निवास करते हैं ? और यहाँ कहाँ पधारे हैं ? ॥३९॥

हे तपस्वियो ! जैसे आपके वनमें स्वादिष्ट फल होते हैं, उस प्रकार मेरे इस वनमें नहीं होते, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥४०॥ वेश्यायें बोलीं:-हे पवित्रव्रतधारी मुनिपुत्र ! इस वनसे थोड़ी ही दूरके वनमें हमलोग निवास करते हैं, यहां केवल दर्शनकी इच्छासे आगये थे । आपके समागमसे हम लोगोंको बड़ाही सुख प्राप्त हुआ ॥४१॥

हमारे वनमें अत्युत्तम फल हैं इसमें कोई सन्देह नहीं । हे ऋषिकुमार ! आपका कल्याण हो, इस समय हम लोग अपने आश्रमको जा रहे हैं ॥४२॥

ऋषिपुत्र बोले:-हे परम श्रेष्ठ मुनियो ! आपलोग इसी प्रकारकी कृपा सदा मेरे प्रति करते रहियेगा क्योंकि आप लोगोंका मनोहर, पवित्र, दर्शन मेरे लिये निश्चय दुर्लभ है ॥४३॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्सो ! ऋषिकुमारकी इस प्रार्थनाको श्रवण करके वे वेश्यायें उनसे ऐसा ही होगा कहकर, उन्हें बार-बार भली प्रकारसे हृदय लगाकर उनके पिताके भयसे घबराई हुई ऋषिकुमारकी मनरूपी मणिको चुराकर, अपने आश्रमको चली गयीं ॥४४॥

उस मनोमणिकी चोरी होजानेसे ऋषिपुत्र विह्वल होगये, पुनः बड़ी कठिनतासे धैर्यको प्राप्त हुये, प्रातः पिताजीके बाहर चले जानेपर वे पुनः उन वेश्याओंका चिन्तन करने लगे ॥४५॥

आगता वै पुनर्ज्ञात्वा स्वाश्रमान्निर्गतं मुनिम् । ऋषिपुत्रहृदिस्थास्ता वारमुख्यस्तदाश्रमम् ॥४६॥
सन्तोषं परमं लब्ध्वा स तु मोहवशं गतः । दर्शनान्मृदुलस्तासां पूर्ववत्सत्कृतिं व्यधात् ॥४७॥
तास्तु तं पूजितास्तेन गच्छन्त्यः स्वानुयायिनम् । द्रष्टुमर्हसि नो ब्रह्मन्नाश्रमं प्राहुरित्यपि ॥४८॥

ऋषिपुत्र उवाच ।

शिरोधार्यं हि वो वाक्यं सर्वदा मुनिसत्तमाः ! ।एवमाज्ञापितः पित्रा पूर्वकाले यतोऽस्म्यहम् ॥४९॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

इत्युदीरितमाकर्ण्य वारमुख्यो मनोहराः । आदरेणानयामासुः स्वाश्रमं तमृषेः सुतम् ॥५०॥
तत्र संपूजितस्ताभिः सादरं तनयो मुनेः । विसृष्टः शीघ्रमेवाप स्वाश्रमं भयसंयुतः ॥५१॥
एवं रूपप्रसक्तात्मा वेश्यासु बद्धसौहृदः । यातायातात्मसम्बन्धं ताभिः सोऽपि दृढं व्यधात् ॥५२॥
अथ लब्धान्तरास्ताश्च वारमुख्यो विशारदाः । आश्रमागतमालोक्य तमूचुः सत्कृतं मुदा ॥५३॥

श्रीवेश्या ऊचुः ।

एहि पश्य फलानि त्वमस्मद्वनभवानि ह । यानि भुक्त्वा वयं प्राप्ता इदं तेजो दुरासदम् ॥५४॥

मुनिजीको आश्रमसे बाहर चलेगये जानकर ऋषिपुत्रके हृदयमें विराजी हुई वे वेश्यायें पुनः उस आश्रममें आगयीं ॥४६॥ मृदुल स्वभाव वे ऋषिपुत्र, उनके दर्शनोंसे परम सन्तोषको प्राप्त हो, मोहवश पहले सरीखे ही उन (वेश्याओं) का सत्कार करने लगे ॥४७॥

ऋषिकुमारसे पूजित हो अपने आश्रमको वापस पधारती हुई वे अपने पीछे-पीछे आते हुये उन ऋषिपुत्रसे बोलीं:-हे ब्रह्मन् ! आपको भी हमारा आश्रम देखना चाहिये ॥४८॥

ऋषि पुत्र बोले:–हे परम श्रेष्ठ मुनियो ! आपका वचन मेरे लिये शिरोधार्य है क्योंकि पूर्व कालमें मुझे श्रीपिताजीने महर्षियोंका आज्ञाकारी रहनेकी ही आज्ञा प्रदानकी थी ॥४९॥

हे प्रियवत्सो ! ऋषि–पुत्रका यह वचन सुनकर वे मनहरण वेश्यायें आदर पूर्वक उन ऋषि पुत्रको अपने आश्रममें ले आईं ॥५०॥

उन वेश्याओंके द्वारा आदर-पूर्वक पूजित होकर उनके द्वारा विदा किये हुये, पिताके भयसे युक्त, वे मुनिपुत्र अपने आश्रममें शीघ्र वापस चले आये ॥५१॥

इस प्रकार उन वेश्याओंके रूपमें आसक्त मन होकर, उन्हींमें अपनी सुहृदताका भाव बान्ध कर ऋषि कुमारने, उनके यहाँ आने जानेका दृढ़ अभ्यास कर लिया ॥५२॥

इसके बाद अवसर पाकर कार्य-कुशल वे वेश्यायें, अपने आश्रममें पधारे हुये ऋषि-कुमार को देखकर उनका सत्कार करके हर्ष पूर्वक बोलीं:–॥५३॥

हे ऋषि-कुमार ! जिन फलोंको खाकर हम लोग इस दुर्लभ तेजको प्राप्त हैं, आइये हमारे वनमें उत्पन्न होने वाले, उन फलोंको देखिये ॥५४॥

श्रीसुदर्शनोवाच ।

एवमुक्त्वा विशालाक्ष्यो दर्शयन्त्यश्च सादरम् । विविधान्मोदकान्वत्सास्तन्तुबद्धांश्च शाखिषु ॥५५॥
नावा स्वदेशमानिन्युश्छद्मना तमृषे सुतम् । ववर्ष भूरिपर्जन्यो यदर्थमयमुद्यमः ॥५६॥
राजा दुहितरं तस्मै परिभूतरतिच्छविम् । समर्प्य विधिना वृत्तं सर्वमेव न्यवेदयत् ॥५७॥
तत्तातक्रोधभीतात्मा तस्य नाम प्रतिद्रुमम् । अङ्कयामास शान्त्यर्थमालयादाश्रमावधि ॥५८॥
फलान्याहृत्य तेजस्वी समासाद्याश्रमं निजम् । आत्मजं नावलोक्यैवखिन्नो दध्यौ विलम्ब्य सः॥५९॥
ध्यानयोगेन तं दृष्ट्वा नृपागारे सभार्यकम् । तूर्णमेवागमत्क्रुद्धः सकाशं तन्महीपतेः ॥६०॥
पुत्रनामान्वितं देशं दृष्ट्वा श्रुत्वा शशाम ह । तस्य कोपाग्निरात्मस्थः शान्तचित्तोऽभवत्ततः ॥६१॥
प्रणम्य शिरसा राजा प्रत्युद्गमनपूर्वकम् । सभार्यमग्रतः कृत्वा तत्सुतं शरणं ययौ ॥६२॥
त्राहि त्राहीति जल्पन्तं पतितं पादपद्मयोः । भूयसाऽभयदानेन महर्षिस्तमनन्दयत् ॥६३॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी बोलीं:-हे वत्सो! इतना कहकर वे विशाललोचना (वेश्यायें) वृक्षों में धागोंसे बँधे हुये अनेक प्रकारके लड्डुओंको दिखलाती हुई छलसे उन ऋषि-पुत्रको नौकाके द्वारा अपने अङ्ग देशमें ले गयीं । ऋषि-पुत्रके देशमेंपहुँचते ही बड़ी भारी वर्षा हुई, जिसके निमित्त ही ऋषिकुमारको लानेके लिये यह छल-पूर्वक सब प्रयत्न किया गया था ॥५५॥५६॥

वहाँके राजा श्रीरोमपादजीने, छबिसे रतिका तिरस्कार करने वाली अपनी राजकुमारी को, विधि पूर्वक ऋषिकुमारको समर्पण करके अपने यहाँ छल-पूर्वक बुलानेका समस्त वृत्तान्त उनको निवेदन किया ॥५७॥

ऋषि पुत्रके पिताजीके क्रोध-भयसे घबराकर उनके क्रोध की शान्तिके लिये, राजमहल से उनके आश्रम-पर्यन्तके प्रत्येक वृक्षोंमें ऋषिकुमारका नामलिखवा दिया ॥५८॥ वे तेजस्वी ऋषि, उधर जब फलोंको लेकर अपने आश्रममें लौटे तो, अपने पुत्रसे उसे सूना देखकर दुखी हो गये, पुनः कुछ देरके बाद कहीं भी पता न पाकर ध्यान करने लगे ॥५९॥

ध्यान योगके द्वारा अपने पुत्रको राजमहलमें पत्नी (राजकुमारी) के सहित देखकर, क्रुद्ध हो तत्क्षण राजाके पास चल दिये ॥६०॥

मार्ग में वृक्ष-वृक्षपर अपने पुत्रका नाम देखकर तथा लोगोंसे भी अपने पुत्रका ही सर्वत्र राज्य श्रवण करके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त होगयी, जिससे राजाको शाप देनेके लिये उनकी भावना ही बदल गयी ॥६१॥

वे महाराज राजकुमारीके सहित ऋषिकुमारको आगे करके, महर्षिजीका स्वागत करनेके लिये आगे जाकर, तथा सिरके द्वारा प्रणाम करके उनके शरणमें आ गये ॥६२॥

चरणोंमें पड़कर हे नाथ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये कहते हुये, चरणों में पड़गये उन राजा रोमपाद को महान् अभयदानके द्वारा महर्षि विभाण्डकजीने आनन्दित कर दिया ॥६३॥

इयमानन्दसन्दोहाः ! कथा हि परमाद्भुता । ऋषिपुत्रस्य विख्याता विनोदाय मयोदिता ।।६४।।
भुज्यतां परया प्रीत्या भोजनं यद्धि रोचते । न ह्येतद्भवतां योग्यं यद्यप्यस्ति कथञ्चन ।।६५।।

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा तस्याः प्रणयपूर्वकम् । सर्वं एवोचुरम्बेति तां सम्बोध्य मुदान्विताः ।।६६।।

श्रीराजकुमारा ऊचुः ।

यद्यदास्वाद्यते वस्तु दुस्त्यजं तद्धि जायते । न सूक्ष्मोऽप्यवकाशोऽस्ति ह्यश्नतामुदरेषु नः ।।६७।।

श्रीसुनयनोवाच ।

चिरञ्जीवत भो वत्साः सुखिनो वाक्यकोविदाः । मयि चेद्भवतां प्रीतिर्ग्रास एकोऽपि भुज्यताम्।६८।

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तास्ते तथा चक्रुरादरेणादरप्रियाः । सूनवो राजराजस्य विनीता मधुरस्मिताः ।।६९।।
ततः सर्वाः क्रमात्प्रीत्या प्रणयोत्फुल्ललोचनाः । कुमारांस्तर्पयामासुर्ग्रासेनैकेन भूपतेः ।।७०।।
प्रदाय पुनराचम्यं ददौ ताम्बूलवीटिकाः । राज्ञी सुनयना तेभ्यः पाययित्वाऽमृतं पयः ।।७१।।

हे आनन्द-राशि, प्रियपुत्रो! यह परम विख्यात आश्चर्यमयी ऋषिपुत्र की कथा आप लोगोंके विनोदके लिये मैंने कही है ।।६४।।

यद्यपि यह भोजन आप लोगोंके योग्य किसी प्रकार भी नहीं है, तथापि जो भी रुचे उसे आप लोग प्रेम पूर्वक पा लीजिये ।।६५।।

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती! श्रीसुदर्शना अम्बाजीके कहे हुये, इस वचनको श्रवणकर के चारो राजकुमार मुदित हो प्रणय पूर्वक बोलेः—हे श्रीअम्बाजी! हम लोग जिस-जिस वस्तुका आस्वादन, करने लगते हैं, उसको छोड़ना, अत्यन्त कठिन हो जाता है, परन्तु करें क्या ? भोजन करते हुये हम लोगोंके पेटमें किञ्चित् अवकाश (जगह) ही नहीं रह गयीं है।।६६।।६७।।

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलींः—हे वाक्यकोविद(बोलनेमें परम चतुर)वत्सो! आप लोग सदा सुखी रहते हुये अनन्तकालीन जीवनको प्राप्त हों, यदि मेरे प्रति आपलोगों का प्रेम है तो, एक ग्रास अवश्य पा लीजिये ।।६८।। भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! इस प्रकार श्रीसुनयना अम्बाजीके आदर पूर्वक कहने पर आदर-प्रिय वे चारो विनीत, मधुर मुस्कान वाले श्रीचक्रवर्त्ती-कुमारोंने एक २ ग्रास और पाया ।।६९।।

उसके बाद प्रणयसे खिले हुये नेत्रवाली सभी माताओंने भी क्रमशः एक २ ग्रास पवा-पवाकर राजकुमारोंको तृप्त किया ।।७०।।

श्रीसुनयना अम्बाजीने उन्हें दूध पिलाकर पुनः आचमन करा पानका वीरा प्रदान किया ।।७१।।

पुनः सिंहासनस्थांस्तान् महामाधुर्यमण्डितान् । स्वयं नीराजयामास मुखचन्द्रार्पितेक्षणा ॥७२॥

आससाद तदोर्वीशो द्रष्टुमिच्छन्नृपात्मजान् । परीतो बन्धुभिस्तत्र सताम्बूलमुखाम्बुजः ॥७३॥

तं दाशरथयो नत्वा समुत्थाय नृपर्षभम् । प्रणेमुः सादरं सर्वान् राज्ञा साकमुपागतान् ॥७४॥

तैः समालिङ्गिता भूयः प्रेषिताः स्वापमन्दिरम् । संवेशाय समंराज्ञ्या शीतलानिलपूरिते ॥७५॥

तत्रास्वपन्पद्मपलाशनेत्राः श्रीहंसवंशाम्बुजवृन्दहंसाः ।
नीलाश्महेमद्युतिकान्तवर्णास्तल्पे पयःफेननिभांशुकाढ्ये ॥७६॥

पुनः सिंहासन पर विराजमान हुये, महामाधुर्य सम्पन्न उनके मुखचन्द्रपर दृष्टि दिये हुई श्रीसुनयना अम्बाजी ने राजकुमारोंकी आरती, स्वयं की ॥७२॥

उसी समय श्रीमिथिलेशजी महाराज राजकुमारोंके दर्शनकी इच्छासे, अपने भाइयोंके सहित पानका वीरा पाते हुये वहाँ आगये ॥७३॥

नृपश्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज को उठकर चारो श्रीदशरथकुमारोंने प्रणाम करके साथमें आये हुये उनके सभी भाइयोंको प्रणाम किया ॥७४॥

उन सभीके बार बार हृदयसे लगालेने पर चारो भाइयोंको शयन करने के लिये महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीके साथ, शीतल वायुसे पूर्ण, शयन-भवनमें भेजा ॥७५॥

उस शयन-भवनमें दूधके फेनके सदृश कोमल व उज्ज्वल बिछावन युक्त पलङ्गपर नीलमणि तथा सुवर्ण मणिके समान प्रकाशमान सुन्दर श्याम गौर वर्ण, सूर्यवंश रूपी कमल-समूहको प्रफुल्लित करनेके लिये भगवान् सूर्यके समान, श्रीकमलदललोचन उन चारो राजकुमारोंने शयन किया ॥७६॥

इति षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे चतुर्दशो विश्रामः ॥१४॥

—❀❀❀—

अथ सप्तचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

स्यमन्तक भवनकी छत पर कुमारोंके पूछने पर अम्बाजी द्वारा अपने यहाँके सावरण गिरि-वन भवनादि वर्णन ।

श्रीशिव उवाच ।

अपराह्णे मुदा राज्ञी कुमारान् विगतालसान् । समादायालिभिः प्रायात्कमलां स्नानहेतवे ॥१॥

तस्यां स्नात्वा चिरं साऽपि स्नपयन्ती रघूद्वहान् । तैरुपेता वयस्याभी रराज समलङ्कृता ॥२॥

विधायारामसदने सुतामुत्सङ्गगां पुनः । जग्ध्वा फलानि काकुत्स्थैर्ययौ स्यामन्तकालयम् ॥३॥

मुख्यया तन्निकेतस्य सत्कृता चारु पद्मया । राजपुत्रः समं नीता क्षौममत्युच्चकं परम् ॥४॥

तत्र सिंहासने रम्ये तप्तचामीकरप्रभे । निवेशिता महाराज्ञ्या कुमारास्तामथाब्रुवन् ॥५॥

राजकुमारा ऊचुः ।

य एते परिदृश्यन्ते चतुर्दिक्षु धराधराः । नामभिः कैस्त उच्यन्ते ब्रूहि तन्नो वनैर्युताः ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

श्रूयतामीप्सितं यद्वो वदन्त्या मम साम्प्रतम् । सावधानात्माना पुत्राः ! पद्मपत्रविलोचनाः! ॥७॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे प्रिये! तीसरे पहर आलस रहित हुए राजकुमारोंको लेकर रानी श्रीसुनयना अम्बाजी अपनी सखियोंके सहित स्नान करनेके लिये श्रीकमलाजी पधारीं ॥१॥

उन श्रीकमलाजीमें रघुकुल श्रेष्ठ चारो भाइयोंको विशेष देर तक स्नान कराती हुई श्रीसुनयना अम्बाजी स्वयं स्नान करके, अपनी सखियोंके द्वारा पूर्ण शृङ्गार सम्पन्न होकर राजपुत्रोंके साथ, सुशोभित हुईं ॥२॥

पुनः बागके भवनमें फल भोजन करके अपनी श्रीललीजीको गोदमें लेकर वे ककुत्स्थ वंशी चारो भाइयोंके सहित स्यमन्तकभवनमें पधारीं ॥३॥

वहाँकी मुख्य सखी श्रीपद्माजी, राजपुत्रोंके सहित श्रीअम्बाजीका उचित सत्कार करके उन्हें स्यमन्तक-भवनकी अत्यन्त ऊँची छत पर ले गयीं ॥४॥

वहाँ श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा तपाये सुवर्णके सदृश प्रकाशमय सुन्दर सिंहासन पर बिराजमान किये हुये, वे राजकुमार बोले ॥५॥

हे अम्ब ! चारो दिशाओंमें वनोंसे युक्त जो ये पहाड़ दिखलाई दे रहे हैं, वे किस नामसे पुकारे जाते हैं ? वह आप हमें बतलाइये ॥६॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे कमलदललोचन पुत्रो ! मेरे कहते हुये, जो आप लोगोंको सुनना अभीष्ट है, उस विषय को आप लोग एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये ॥७॥

सन्तानाशोकयोर्मध्ये पटीरविपिने शुभे । विद्रुमाद्रिरयं वत्साः पूर्वस्यां विद्रुमप्रभः ॥८॥
विल्वाम्रवनयोर्मध्ये वने पुन्नागसञ्ज्ञके । वैडूर्याद्रिरयं ख्यातो वैडूर्यमणिकान्तिमान् ॥९॥
अयं नीलाचलोरम्यो याम्यां वृन्दाबने शुभे । समानो नीलमणिना मध्ये प्लक्षार्जुनाख्ययोः ॥१०॥
रजताद्रिरयं मध्ये वकुलादिपलाशयोः । कदम्बविपिने भाति रौप्याख्यमणिनिर्मितः ॥११॥
पारिजातोत्तरे भागे मालतीवनदक्षिणे । श्रीशृङ्गाराचलो नीलः शृङ्गारविपिने त्वयम् ॥१२॥
मधुनाम्नि वसन्ताद्रिर्वने कार्तस्वरप्रभः । प्रतीच्यां भ्राजते मध्ये केतकीमाधवीकयोः ॥१३॥
सञ्जीवनगिरिस्त्वेष कोविदारतमालयोः । सुरम्ये काञ्चनारण्ये चन्द्रकान्तमयोज्ज्वलः ॥१४॥
अश्वत्थवटयोर्मध्ये पद्माद्रिः पुनरुत्तरे । पद्मारण्ये विभात्येष पद्मरागमणिप्रभः ॥१५॥
भवद्भिः काङ्क्षितं यत्तन्मया संपृष्टयोदितम्।चिरञ्जीवत भो वत्साः! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥१६॥

श्रीराम उवाच ।

नगरावरणं त्वेतद् रङ्गोद्यानसमावृतम् । यद्भवत्योदितं बाह्यमिदानीं परिपृष्टया ॥१७॥

हे वत्सो ! सन्तान व अशोक वनके बीच, चन्दन वनमें विद्रुममणिके समान प्रकाश वाला पूर्व दिशामें यह विद्रुममणि, नामका पर्वत है ॥८॥

बेल और आम्र वनके बीच, पुन्नागके नाम(नागकेशर)वनमें वैडूर्यमणिके समान कान्तिसेयुक्त इस पर्वतको वैडूर्याद्रि, कहा जाता है ॥९॥ दक्षिण दिशामें पाकड़ और अर्जुन वनके मध्य श्रीवृन्दावन में यह नीलमणिके समान प्रकाशमान नीलाचल, नामका पर्वत है ॥१०॥

मौलसरी और पलाश वनके बीच कदम्ब वनमें चाँदीसे बना हुआ यह रजताद्रि नामका पहाड़ है ॥११॥ पारिजात वनके उत्तर और मालती वनके दक्षिण भागमें श्रीशृङ्गार वनमें नीलमणि का बना हुआ यह शृङ्गाराद्रि, नामका पर्वत है ॥१२॥

पश्चिम दिशामें केतकी और माधवीक वनके मध्यवाले मधुवनमें, तपाये सुवर्णके समान प्रकाशमान यह वसन्ताद्रि, नामका पहाड़ चमक रहा है ॥१३॥

तमाल और कोविदार (कचनार) वनके मध्यवाले श्रीकञ्चनवनमें, चन्द्रकान्त मणिके सदृश अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल प्रकाश मय, यह सञ्जीवनाद्रि, नामका पहाड़ है ॥१४॥

पीपल और बरगद वनके मध्य वाले पद्मवनमें, पद्मराग मणिके सदृश प्रकाशमान उत्तर दिशामें यह पद्माद्रि, नामका पहाड़ सुशोभित है ॥१५॥

हे वत्सो ! आप लोग अनन्तकाल तक जीवें । आप लोगोंने जो कुछ जाननेकी इच्छाकी, मैंने पूछने पर वह सब वर्णन किया । अब आप लोग क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥१६॥

श्रीरामजी बोले:–हे श्रीअम्बाजी ! मेरे पूछने पर आपने जिस आवरणका वर्णन किया है वह रङ्गोद्यान (विहार वाटिकाओं) से घिरा हुआ नगरका बाहरी आवरण है ॥१७॥

के कस्मिन्निवसन्त्यत्र मातरावरणे शुभे । इति विज्ञातुमिच्छामि सप्तावरणवासिनाम् ॥१८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अत्रादौ सैनिकानां च निवासः प्रथमावृतौ । सान्त्यजानां सशूद्राणां निवासः क्रमतोऽनघ! ॥१९॥

अस्मिन् पूर्वे गणेशस्तु दक्षिणे गिरिनन्दिनी । उत्तरे श्रीरमादेवी पश्चिमे श्रीसरस्वती ॥२०॥

वाटिकास्वतिरम्यासु तत्तन्नाम्ना श्रुतासु च । राजन्ते देव्य एवैताः स्फाटिकावरणे शुभे ॥२१॥

वैश्यादीनां द्वितीये तु संवासोऽत्र तथैव च । गोवाजिनागमहिषीशस्त्रास्त्रगृहपङ्क्तयः ॥२२॥

सुन्दरं सदनं प्रोक्तं पूर्वेऽस्मिन्दक्षिणे तथा । सौमनं सदनं त्वेवं पश्चिमे सौफलालयः ॥२३॥

सौरभं सदनं नाम राजते दिशि चोत्तरे । नीलाश्मनिर्मिते दुर्गे द्वितीयावरणेऽनघ ! ॥२४॥

तृतीये क्षत्रियाणां च निवासागारराजयः । दिक्ष्वखिलासु राजन्ते वज्राख्यमणिशोभिते ॥२५॥

चतुर्थे ब्राह्मणावासाः सर्वकालसुखावहाः । विद्यालयाश्च शोभन्ते वंशच्छदमणिप्रभे ॥२६॥

शतानन्दो महातेजा आचार्यो निमिवंशिनाम् । ऐशान्यां शिष्यवर्गैश्च वसत्यत्र कृतालयः ॥२७॥

हे अम्ब ! यहाँ (इस श्रीजनकपुरीमें) सातो आवरण-निवासियोंमें कौन किस आवरणमें निवास करते हैं ! यह मैं जानना चाहता हूँ ॥१८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे वत्स ! यहाँ प्रथम आवरणमें अन्त्यज (चाण्डाल, भङ्गी आदि) शूद्र जातियोंके सहित सैनिकोंका निवास क्रम पूर्वक है ॥१९॥

इसी प्रथम आवरणमें पूर्वकी ओर श्रीगणेशजी, दक्षिणमें श्रीगिरिराजकुमारीजी, पश्चिममें श्रीसरस्वतीजी, उत्तरमें श्रीरमा (लक्ष्मीजी) उन्हीं-उन्हीं नामोंसे विख्यात, परम सुन्दर वाटिकाओं में ये देवियाँ, स्फटिक आवरणमें विराज रही हैं ॥२०॥२१॥

हे अनघ! इस नीलमणि निर्मित दूसरे आवरणमें वैश्योंका निवास है तथा गौशाला, अश्वशाला गजशाला, महिषी (भैंस) शाला, शस्त्रास्त्र शालाओंकी पङ्क्तियाँ हैं । इसमें पूर्वकी ओर सुन्दर-सदन, दक्षिणमें सौमन—सदन (फूलोंका महल) पश्चिममें सौफल (फलोंका महल) उत्तर में सौरभ, सदन (समस्त सुगन्धियों वाला महल) है ॥२२॥२३॥२४॥

बज्रमणिसे सुशोभित, तीसरे आवरणमें क्षत्रियोंके निवास—महलोंकी पंक्तियाँ सुशोभित हैं ॥२५॥ चौथे वंशच्छद (बांसकी पत्तीके समान हरित) मणिके सदृश प्रकाशमान आवरणमें सब समय सुखदायक ब्राह्मणोंके महल और विद्यालय शोभा दे रहे हैं ॥२६॥

इसमें निमि वंशियोंके आचार्य, महान् तेजस्वी श्रीशतानन्दजी महाराज, अपने शिष्यवर्गोके सहित पूर्व—उत्तर कोणमें निवास कर रहे हैं ॥२७॥

आगन्तुकमहीपानां निवासाय गृहाणि च । विशालानि कृतान्यस्मिन् पञ्चमे हेमनिर्मिते ॥२८॥
षष्ठे तु मन्त्रिणां वासः प्रवालमणिशोभिते । तथैवान्यगृहाणि स्युः परेषां कर्मचारिणाम् ॥२९॥
अस्मिन्पूर्वे विराजेते जयमानसुदर्शनौ । विष्वक्सेनः सुदामा च राजेते दिशि दक्षिणे ॥३०॥
सुनीलश्च विधिज्ञश्च पश्चिमायां दिशि स्थितौ । उत्तरे परिराजेते सुमतः सन्धिवेदनः ॥३१॥
सप्तमे निमिवंश्यानां पद्मरागमणिप्रभे । सन्ति हर्म्याणि रम्याणि भ्रातॄणां मिथिलेशितुः ॥३२॥
शत्रुजिच्च यशःशाली दिशि पूर्वे कृतालयौ । पश्चिमे परिराजेते चन्द्रभानुबलाकरौ ॥३३॥
राजा यशोध्वजो वीरध्वजश्च रिपुतापनः । हंसध्वजो महातेजा केकिध्वज उदारधीः ॥३४॥
पञ्चैते दक्षिणे भागे सप्तमावरणस्य तु । भ्रातरो हि विराजन्ते कृतपुण्या मनोहर ! ॥३५॥
तेजःशाली महाभागस्तथा श्रीविजयध्वजः । राजारिमर्दनश्चापि तथैव श्रीप्रतापनः ॥३६॥
श्रीमहीमङ्गलश्चैव राजते भाग उत्तरे । एष क्रमो मया प्रोक्तः क्षितीशानुजसद्मनाम् ॥३७॥
अथास्य मन्निकेतस्य सप्तावरणवासिनाम् । विज्ञापनं क्रमादेव शृणु भानुमणिद्युतेः ॥३८॥

इस सुवर्णमय पाँचवें आवरणमें, बाहरसे आने वाले राजाओंके विशाल भवन हैं ॥२८॥

प्रवाल (मूँगा) मणियोंसे सुशोभित छठें आवरणमें मन्त्रियोंके तथा अन्य कर्मचारियोंके महल हैं ॥२९॥ इस आवरणमें पूर्वकी ओर मन्त्री श्रीजयमान व श्रीसुदर्शनजी, दक्षिणमें श्रीविष्वक्सेनजी व श्रीसुदामाजी विराजते हैं ॥३०॥

श्रीसुनीलजी व श्रीविधिज्ञजी, पश्चिम दिशामें उत्तरमें श्रीसुमतजी तथा श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीजी विराजते हैं ॥३१॥ पद्मराग मणिके प्रकाश वाले इस सातवें आवरणमें अन्य निमिवंशियों के सहित श्रीमिथिलेशजी महाराज के भाइयोंके मनोहर भवन हैं ॥३२॥

इसमें पूर्वकी ओर श्रीशत्रुजित्जी व श्रीयशःशालीजी, पश्चिमकी ओर श्रीचन्द्रभानुजी व श्रीबलाकारजीके महल हैं ॥३३॥

हे श्रीमनहरणजी ! श्रीयशध्वजजी, श्रीवीरध्वजजी, श्रीरिपुतापनजी, श्रीहंसध्वजजी, श्रीकेकिध्वजजी ये पुण्यशाली पांचों भाई सातवें आवरणके दक्षिण भागमें, विराजते हैं॥३४॥३५॥

उत्तर दिशामें श्रीतेजःशालीजी, श्रीअरिमर्दनजी, श्रीविजयध्वजजी श्रीप्रतापनजी तथा श्रीमहीमङ्गलजी विराजते हैं। यह श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयों के महलोंका क्रम, मैंने वर्णन किया है ॥३६॥३७॥

इसके पश्चात् अब क्रम पूर्वक सूर्यमणिकी कान्ति वाले मेरे इस महलके सातो आवरण निवासियोंका विज्ञापन श्रवण कीजिये ॥३८॥

महारथप्रधानानां द्वाःस्थानां प्रथमावृतौ । निवासः कल्पितो राज्ञा तेषां नामानि मे शृणु ॥३९॥
प्रज्ञकः प्राज्ञको धीरो धराधार्मिक एव च । पूर्वद्वाःस्थाधिपतय इमे तु मम सद्मनः ॥४०॥
दक्षिणे प्रकरः प्राशी नवानीकस्तु शीलकः । पश्चिमे भद्रको भव्यो भानुर्भाद्रिक एव च ॥४१॥
उत्तरे उद्वलश्चैव तथैव च घनाघनः । मेऽन्तःपुरस्य द्वाःस्थेशा वलायत्तावलोत्तरौ ॥४२॥
दासा अपि नृदेवस्य परितो हि कृतालयाः । प्रथमावरणे नित्यं निवसन्ति मुदान्विताः ॥४३॥
प्राक्केतकीवनं प्रोक्तं दक्षिणे चाम्पकं वनम् । पश्चिमे मालतीसञ्ज्ञमुत्तरे यूथिकावनम् ॥४४॥
विषहरोत्तरे चैव केतकीवनदक्षिणे । महालक्ष्म्यालयो ज्ञेयो मनोज्ञः पुण्यदर्शनः ॥४५॥
श्रीचम्पकवनात्पूर्वे विख्यातं मुरलीसरः । मालत्या उत्तरे वह्नेर्दक्षिणे द्रुमसङ्कुलः ॥४६॥
एष यो दृश्यते वत्स! पश्चिमे निमिवंशिनाम् । स विशालः कुमारीणां महाविद्यालयः स्मृतः॥४७॥
रत्नसागरतः पूर्वे विख्यातं यूथिकावनम् । निकुञ्जैश्च सरोभिश्च शोभमानमनुत्तमम् ॥४८॥
द्वितीये द्वाःस्थका वृद्धाः सर्वविद्याविशारदाः । तस्मिन् नृदेवकन्यानां विहारागारपङ्क्तयः ॥४९॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने, प्रथम आवरण में श्रेष्ठ महारथियोंका निवास निश्चित किया है, उनके नामोंको श्रवण करें ॥३९॥ प्रज्ञक, प्राज्ञक, धीर, धराधार्मिकजी ये चार महारथी हमारे महलके पूर्वद्वारपालोंके स्वामी हैं ॥४०॥

दक्षिण द्वारपालों पर नियमन करने वाले प्रकर, प्राशी, नवानीक, शीलजी और पश्चिमके भद्रक, भव्य, भानु, भाद्रकजी महारथी द्वारपालोंके शासक हैं ॥४१॥

मेरे महलके उत्तर द्वारपालोंके नियामक श्रीउद्वल, घनाघन, अवलोत्तर, वलायत्तजी, ये चार महारथी हैं ॥४२॥ श्रीमिथिलेशजी महाराजके दासवृन्द भी इसी प्रथम आवरणके महलों में चारो ओर आनन्दपूर्वक निवास करते हैं ॥४३॥

इस आवरणमें पूर्वकी ओर केतकी-वन, दक्षिणमें चम्पक वन, पश्चिममें मालतीवन उत्तरमें जूहीका वन है ॥४४॥ विषहर-सरके उत्तरमें और केतकी वनके दक्षिणमें मनोहर पुण्यमय दर्शन वाला यह मन्दिर महालक्ष्मीजीका जानिये ॥४५॥

हे वत्स ! श्रीचम्पक-वनसे पूर्वमें मुरलीसर विख्यात है और मालती-वनके उत्तर व अग्नि कुण्डके दक्षिणमें पश्चिमकी ओर जो द्रुमोंसे परिपूर्ण यह महल दिखलाई देता है वह निमिवंशी कुमारियोंका महाविद्यालय है ॥४६॥४७॥

रत्नसागरसे पूर्वमें निकुञ्ज व सरोवरोंसे शोभायमान जूहीका विख्यात उत्तम वन है ॥४८॥

दूसरे आवरणमें सभी विद्याओंके जानने वाले वृद्ध द्वारपाल विराजते हैं, उसमें राजकुमारियों के विहार करने (खेलने) योग्य भवनोंकी पङ्क्तियाँ बनी हैं ॥४९॥

गङ्गासागर एवास्मिन् पूर्वके मुख्यकं सरः। पश्चिमे श्रीविहाराख्यं सर्वचित्तहरं सरः ॥५०॥
अस्ति मोदस्त्रवागारं श्रीगङ्गासागरोत्तरे। कुञ्जो ललितकेलिश्च कोणे दक्षिणपूर्वके ॥५१॥
विहारसरसो दक्षे प्रावृट् कुञ्जस्तथोच्यते। निदाघाख्यो निकुञ्जश्च वायव्यां परिकीर्तितः ॥५२॥
तृतीयो वालकैर्गुप्तो द्वाःस्थकैः कामविग्रहैः। सेविकानां निवासाय मम पुत्र ! प्रकल्पितः ॥५३॥
तत्पूर्वे तु महाशम्भोर्धनुरत्रावतिष्ठते। दक्षे मारकतं वेश्म पश्चिमे स्फटिकालयः ॥५४॥
उत्तरे हाटकाख्यश्च स्यमन्ताख्योऽयमालयः। पूर्वे मरकतागाराराद्वसनागार उच्यते ॥५५॥
स्फटिकागारतो दक्षे क्रीडोपकरणालयः। पूर्वे श्रीहाटकागारान्मुकुराख्यं निवेशनम् ॥५६॥
चतुर्थे योषितो वृद्धा द्वाःस्थका वामलोचनाः। अनेकविद्या कुशला रुक्मवेत्रधराः स्थिताः ॥५७॥
नृत्यशाला तथैवास्मिन् स्यमन्तात् किल पश्चिमे। नववादित्रशालेयमुत्तरे वस्त्रवेश्मनः ॥५८॥
देवशाला तथा पूर्वे क्रीडोपकरणालयात्। दक्षिणेऽदृश्यशाला च विज्ञेया हाटकालयात् ॥५९॥

इसमें पूर्वकी ओर गङ्गासागर नामका मुख्य सरोवर है, पश्चिममें सभीके चित्तको हरण करने वाला विहार कुण्ड नामका सरोवर है ॥५०॥ इसमें गङ्गासागरके उत्तरमें-मोदस्त्रवागार और दक्षिण पूर्वके कोणमें ललितकेलिकुञ्ज है ॥५१॥

विहार सरसे दाहिनी ओर प्रावृट् (वर्षाऋतुकी) कुञ्ज कही जाती है और विहार सरके उत्तर-पश्चिम कोणमें निदाघ (ग्रीष्मऋतुकी) कुञ्ज है ॥५२॥

तीसरे आवरणमें कामदेवके समान सुन्दर-शरीर वाले बालक लोग, द्वारपाली करते हैं। हे पुत्र! यह आवरण, मेरी दासियोंके निवासके लिए नियत है ॥५३॥

इस आवरणमें पूर्वकी ओर भगवान् शिवजीका धनुष रखा है। दक्षिणकी ओर मरकत-भवन तथा पश्चिममें स्फटिक भवन है ॥५४॥

उत्तरमें हाटक नामका यह महल है और पूर्वकी ओर यह स्यमन्तक नामक भवन है। मरकत भवनके पूर्ववाले इस महलको वस्त्रागार कहते हैं ॥५५॥

स्फटिक-भवनसे दक्षिणमें क्रीडोपकरण (खेलने की वस्तुओं का) महल हैं, हाटक भवनसे पूर्वमें ग्यारहखण्ड ऊँचा विचित्र रचनासे युक्त यह शीश महल है। यह तीसरा आवरण हुआ, अब चौथेको कहती हूँ ॥५६॥

चौथे आवरणमें अनेक विद्याओंको जानने वाली, सोनेका वेंत हाथमें लिये हुई वृद्ध स्त्रियाँ द्वारपालिका हैं ॥५७॥ इस अवरणमें स्यमन्तक–भवनसे पश्चिममें नृत्यशाला और वस्त्रशालासे उत्तरमें वादित्रशाला है ॥५८॥ क्रीडोपकरणागारके पूर्वमें देवशाला है, तथा हाटक भवनसे दक्षिणमें अदृश्यशाला जानिये ॥५९॥

तत्पश्चिमे युवत्यश्च द्वाःस्थरूपधराः स्थिताः । अनेकशिल्पकुशलास्तथैवास्मिन् स्त्रियो वराः॥६०॥
पूर्वेऽस्मिन् यन्त्रशाला च चित्रशाला तु दक्षिणे । पश्चिमे रत्नशाला च सत्रशाला तथोत्तरे ॥६१॥
पश्चिमे नृत्यशालायाः सभागारात्तु पूर्वके मौक्तिकागारमाख्यातं लोकखण्डसमुच्छ्रितम् ॥६२॥
षष्ठे तु सन्ति मैथिल्यो वयस्या द्वाःस्थकाः शुभाः ।
अथागाराणि यान्यास्मिञ्छ्रंसन्त्याः शृणु तानि मे ॥६३॥
महानसाख्यमाग्नेये नैर्ऋत्यां कोषमन्दिरम् । वायव्ये तु गृहारामः सभैशान्यां प्रकीर्त्तिता ॥६४॥
कौशलादुत्तरे गेहाद्यथोपाशनमन्दिरम् । दन्तधावनतो दक्षे दिवास्वापनिकेतनम् ॥६५॥
सप्तमे द्वाःस्थकाः सख्यो दैकाश्यः पद्मलोचनाः । सर्वासुदिक्षु ता एव निवसन्ति कृतालयाः ॥६६॥
पूर्वेऽस्मिन् स्वस्तिकागारं दक्षिणे दन्तधावनम् । पश्चिमे मज्जनागारमुत्तरे मण्डनालयः ॥६७॥
स्वस्तिकादुत्तरे भाति कौतुकागारमद्भुतम् । दन्तधावनतः पूर्वे कृत्रिमागारमुच्यते ॥६८॥
मज्जनाद्दक्षिणे गेहात्कुड्मलाख्यनिकेतनम् । मण्डनात्पश्चिमे ज्ञेयं कौशलाख्यनिवेशनम् ॥६९॥
मध्ये मच्छयनागारं षोडशावरणोच्छ्रितम् । विहितो यत्र ते स्वापो रजन्यां वत्स! बन्धुभिः ॥७०॥

महलके पाँचवें आवरणमें, अनेक प्रकारकी शिल्पकारी जानने वाली, द्वारपालिकाका रूप धारण किये हुई युवा–अवस्था वाली श्रेष्ठ स्त्रियाँ निवास करती हैं ॥६०॥

इसमें पूर्वकी ओर यन्त्रशाला, दक्षिणकी ओर चित्रशाला, पश्चिमकी ओर रत्नशाला और उत्तरकी ओर यज्ञशाला है ॥६१॥ नृत्यशालासे पश्चिम और सभाभवनसे पूर्वमें १४ खण्ड ऊँचा मौक्तिकागार (मोतीमहल) विख्यात है ॥६२॥

छठे आवरणमें द्वार रक्षिका मिथिलाजीकी सखियाँ हैं। हे वत्स ! इस आवरणमें जो महल हैं, उन्हें मैं कहती हूँ आप श्रवण कीजिये ॥६३॥

पूर्वदक्षिणकोणमें भोजनभवन दक्षिण–पश्चिममें कोषागार, पश्चिम–उत्तरमें गृहोद्यान तथा उत्तर पूर्वकोणमें सभाभवन है ॥६४॥ कौशलभवनसे उत्तरमें जैसे कलेऊ भवन है, उसी प्रकार दन्तधावन सदनसे दक्षिणमें दिनमें विश्राम करनेका महल है ॥६५॥

सातवें आवरणमें विकाशापुरीकी कमल–लोचना सखियाँ द्वारपालिका हैं, और वे सभी ओर महलोंमें निवास करती हैं ॥६६॥ इसमें पूर्वकी ओर मङ्गल भवन, दक्षिणमें दन्तधावन, पश्चिममें स्नान तथा उत्तरमें शृङ्गार भवन है ॥६७॥

स्वस्तिकभवनसे उत्तरमें अद्भुत कौतुकभवन है और दन्तधावनसे पूर्वमें कृत्रिमागार कहा जाता है ॥६८॥ स्नान भवनसे दक्षिणमें कुड्मल सदन और शृङ्गार भवनसे पश्चिममें कौशल नामका महल जानना चाहिये ॥६९॥

हे वत्स ! मध्यमें सोलह खण्ड ऊँचा मेरा शयन भवन है, जिसमें अपने भाइयोंके सहित आपने, रात्रिमें शयन किया था ॥७०॥

यद्विजिज्ञासितं पुत्र ! त्वया तद्वर्णितं मया । स्नेहात्त्वत्प्रीतयेऽनेकजन्मप्रोदितपुण्यया ।।७१।।
त्वत्प्रीतिकरी चेत्प्राप्तमुखराकेशदर्शना । न काङ्क्षे जगतां वत्स ! प्रभुत्वं गतकण्टकम् ।।७२।।
निशाशनस्य वेलेयं गच्छ वत्स ! मया सह । भ्रातृभिर्नेतुमायाते वयस्ये मोहनेक्षण ! ।।७३।।

हे पुत्र! आपने मुझसे जो कुछ विशेष जाननेकी इच्छा की, उसे आपकी प्रसन्नताके लिये अनेक जन्मोंके पूर्ण पुण्योदय सौभाग्य वाली स्नेहवश, मैंने वर्णन किया ।।७१।।

हे वत्स ! यदि आपके मुखचन्द्र दर्शनकी प्राप्ति-पूर्वक मुझसे आपकी प्रसन्नताका साधन बनता रहे, तो मुझे त्रिलोकीकी निष्कण्टक प्रभुता भी नहीं चाहिये ।।७२।।

हे मोहनदर्शन वत्स! यह व्यारू करनेकी बेला उपस्थित हो गयी है, अत एव अब आप मेरे सहित व्यारूभवन पधारिये । क्योंकि यहाँसे ले जानेके लिये वहाँकी दो सखियाँ आगयीं हैं ।।७३।।

इति सप्तचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

अथाष्टचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ।

नीचे खण्डमें समक्ष व्यारू करते हुये देखकर ऊपरी खण्डमें विराजमान श्रीअम्बाजीका देवरानियोंके प्रति श्रीरामलालजीसे श्रीललीजीका सादृश्य वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेत्युक्त्वा महाराज्ञीं रामो राजीवलोचनः । आसाद्य भूतलं क्षौमाद्भोजनायागमत्तया ।।१।।
चत्वारस्ते समं राज्ञ्या स्वागतेनाभिनन्द्य च । सिंहासने समासीनाः कान्त्या नीराजिता मुदा ।।२।।
तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्तो मिथिलेन्द्रोऽनुजैर्वृतः । दत्ताशीः सादरं राजा प्रेयसस्तानलालयत् ।।३।।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये! राजीव लोचन श्रीरामभद्रजी महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीसे ऐसा ही हो, कहकर, अटारीसे भूमितलमें आकर, व्यारू करनेके लिये उनके सहित व्यारू भवन को विदा हुये ।।१।।

व्यारूभवनकी सखी श्रीकान्तिजीने स्वागतके द्वारा अभिनन्दित करके रानी श्रीसुनयना अम्बाजीके सहित चारो भाइयोंको सिंहासन पर बैठाकर आनन्द पूर्वक उनकी आरती की ।।२।।

उसी क्षण अपने भाइयोंसे घिरे हुये श्रीमिथिलेशजी महाराज वहाँ आ पधारे । चारो भाइयोंने उन्हें प्रणाम किया । वे महाराज आशीर्वाद देरक उन परम प्यारोंका दुलार करने लगे ।।३।।

भोजनाय पुना राजा प्रार्थितो गृहमुख्यया । उवाच मधुरं वाक्यं राघवं प्रति सादरम् ॥४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

वत्स ! राम! समुत्तिष्ठ भोजनं क्रियतां त्वया । प्राणप्रियतरैः साकं स्वानुजैर्ममसन्निधौ ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तः समुत्थायाशनशालामुपागमत् । स क्षालिताब्जहस्ताङ्घ्रिः पुनः पीठे निवेशितः ॥६॥
ततो भूपाज्ञया रामो मन्दस्मेरमुखाम्बुजः । भ्रातृभिः सह पद्माक्षो भोजनं कर्तुमुद्यतः ॥७॥
समाजग्मुस्तदा राज्ञ्यो भ्रातृणां मिथिलेशितुः। द्रष्टुकामा विशालाक्ष्यः कुमारान् सुभगाः शुभाः ॥८॥
महाराज्ञीं नमस्कृत्य द्वितीयं खण्डमास्थिताः । दर्शनं राजपुत्राणां गवाक्षेभ्यो हि चक्रिरे ॥९॥
आजगाम तदा तत्र राज्ञी सुनयना स्वयम् । विधायोत्सङ्गगां पुत्रीं शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥१०॥
तस्याः क्रोडाद्विशालाक्षी निजे क्रोडे समाददे । जानकीं सुकुमाराङ्गीं बालिकां सुषमाकरीम् ॥११॥
प्रेरिता सा महाराज्ञ्या वामपार्श्वमुपागमत् । सर्वाग्रपङ्क्तौ स्थितया भद्रया श्रीसुभद्रया ॥१२॥
तामुवाच महाराज्ञी प्रेमगद्गदया गिरा । निरीक्ष्य तनयावक्त्रं श्रीतेजःशालिनः प्रियाम् ॥१३॥

पुनः व्यारूभवनकी मुख्य सखी श्रीकान्तिजीके द्वारा प्रार्थना करनेपर श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीरामभद्रजूसे भोजन करनेके लिये आदर पूर्वक यह मधुर वचन बोले ॥४॥

हे श्रीरामवत्सजू ! अब उठिये और प्राणोंके समान परम प्रिय बन्धुओंके सहित, मेरे समीपमें भोजन कीजिये ॥५॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस प्रकार कहने पर श्रीरामभद्रजी वहाँसे उठकर व्यारू शालामें पधारे, वहाँकी सखीने हस्त चरण-कमलोंको धोकर उन्हें चौकी पर बिठाया ॥६॥

पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञासे भाइयों समेत कमललोचन, मन्द मुस्कान युक्त मुखारविन्द वाले श्रीरामभद्रजू भोजन करनेको उद्यत हुये ॥७॥

उसी समय श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी विशाललोचना परमसुन्दरी मङ्गलस्वरूपा रानियाँ (चारो भाइयोंका) दर्शन करनेके लिये वहाँ आ गयीं ॥८॥

वे महारानियाँ श्रीसुनयना अम्बाजीको नमस्कार करके महलके दूसरे खण्डमें स्थित हो खिड़कियोंके द्वारा राजपुत्रोंका दर्शन करने लगीं ॥९॥ तब श्रीसुनयना अम्बाजी शरद्ऋतुके चन्द्रमाके समान मुखवाली श्रीललीजीको गोदमें लिये हुई वहाँ स्वयं पधारीं ॥१०॥

उनकी गोदसे श्रीविशालाक्षीजीने अनुपम सौन्दर्यकी राशि स्वरूपा, शिशुविग्रहा सुकुमार अङ्गवाली श्रीललीजीको अपनी गोदमें ले लिया ॥११॥

पुनः वे श्रीविशालाक्षीजी, बैठी हुई मङ्गल-स्वरूपा श्रीसुभद्राअम्बाजीकी प्रेरणासे रानियोंकी सबसे आगे वाली पङ्क्तिमें श्रीसुनयना अम्बाजीके बायें भागमें जा विराजीं ॥१२॥

अपनी श्रीललीजीके मुखारविन्दका दर्शन करके, महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीतेजः शालीजी महाराजकी प्रिया (श्रीविशालाक्षीजी) से प्रेम-पूर्ण गद्गदवाणीसे बोलीं ॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सर्वाङ्गसुन्दरीयं मे यथा पुत्री विलक्षणा । तथैव पश्य रामोऽपि भाति सर्वाङ्गसुन्दरः ॥१४॥
न चास्या दर्शनाच्चेतो न रामस्येह दर्शनात् । उपरमति वै जातु नव्यान्नव्यादनुक्षणम् ॥१५॥
अयं कोशलसम्राज्ञीहृदयानन्दवर्द्धनः । इयं मद्धृदयानन्दसिन्धुराकाधवानना ॥१६॥
अयं नीलोत्पलश्यामो रामो राजीवलोचनः । इयं बालार्कवर्णाङ्गी नीलेन्दीवरलोचना ॥१७॥
अयं नवाब्दको बालः शिशुर्विशाह्निकी त्वियम् । परमानन्दचिद्रूपा यथा रामश्चिदात्मकः ॥१८॥
इयं तुष्यति तं दृष्ट्वा स दृष्ट्वैनां च तुष्यति । वयं दृष्ट्वा तु तं चेमां प्रतुष्यामोऽनघे! भृशम् ॥१९॥
कटाक्षयंस्तु सौमित्रिं रामोऽश्नाति निरीक्ष्य माम् । पश्य मन्दस्मितो भद्रे! भूय एव मनोहरः ॥२०॥
अस्य मन्दस्मितं श्लक्ष्णं भाषितं चारुवीक्षणम् । समालोक्य हि कस्याश्चिन्मनो नापहृतं भवेत् ॥२१॥

हे श्रीविशालाक्षीजी ! देखिये जैसी मेरी श्रीललीजी सर्वाङ्ग सुन्दरी और विलक्षण हैं, उसी प्रकार श्रीरामभद्रजू भी सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं ॥१४॥

न श्रीललीजीके दर्शनसे ही चित्त कभी उपरामताको प्राप्त होता है और न श्रीरामलालजी के दर्शनोंसे कभी ऊबता है क्योंकि इन दोनोंका दर्शन क्षण–क्षण नवीन से नवीन बना रहता है ॥१५॥

ये श्रीरामलालजी श्रीकोशलनरेशकी पटरानी(श्रीकौशल्या महारानीजी) के हृदयका आनन्द बढ़ानेवाले हैं, और ये श्रीललीजी मेरे हृदयके आनन्द–सिन्धुको बढ़ानेके लिये पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली हैं ॥१६॥

ये कमलनयन श्रीरामलालजी, नीलमणिके समान प्रकाशमान, श्यामवर्ण अङ्गवाले और हमारी ये श्रीललीजी, नीलकमलके समान श्याम नेत्र तथा उदयकालके सूर्य समान प्रकाशमान गौर वर्ण अङ्गवाली हैं ॥१७॥

जैसे श्रीरामलालजी इस समय नववर्षकी अवस्थासे सम्पन्न चैतन्य विग्रह हैं उसी प्रकार हमारी श्रीललीजी परमानन्द चैतन्य स्वरूपा आज २० दिन की हुई हैं ॥१८॥

हे अनघे (पापरहिते) ! ये श्रीललीजी श्रीरामलालजीके दर्शनोंसे और श्रीरामलालजी इन श्रीललीजीके दर्शनोंसे सन्तुष्ट हो रहे हैं। और हम सब इन दोनोंका दर्शन करके अतिशय सन्तोषको प्राप्त हो रही हैं ॥१९॥

हे कल्याणस्वरूये ! देखिये मनहरण, मन्दमुस्कान श्रीरामलालजी बारम्बार मेरी ओर देख कर श्रीसुमित्रानन्दन (श्रीलषणलालजी) की ओर कटाक्ष करते हुये, भोजन कर रहे हैं ॥२०॥

अरी सखी! श्रीरामलालजीकी मन्दमुस्कान, मधुरभाषण, सुन्दरचितवनको अवलोकन करके भला ऐसा कौन होगा? जिसका मन हरण न हो जावे? ॥२१॥

यथा रामस्तु रूपेण गुणैश्चैव विराजते । तथैव भ्रातरस्तस्य गुणरूपविभूषिताः ॥२२॥
स्वर्णवर्णौ च सौमित्री श्रीरामभरतावुभौ । नीलेन्दीवरवर्णाङ्गौ चत्वारोऽपि मनोहराः ॥२३॥
प्रीतिमन्तो मिथः सर्वे सर्वे राममनुव्रताः । सर्वे कुमारवयसः सर्वे नित्यसुखोचिताः ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

कथयन्त्या तयेत्येवं महावात्सल्यरूपया । निवृत्तभोजना दृष्टाः प्रोञ्छनांशुकपाणयः ॥२५॥
महीपेन तदाऽऽज्ञप्ताः संवेशाय महात्मना । राज्ञ्याः सकाशमागत्य ताम्बूलादिभिरादृताः ॥२६॥
भ्रातृभिः सहिते तस्मिन्प्रस्थिते मिथिलाधिपे । ततः स्वापालयं नीतास्तया ते रघुवल्लभाः ॥२७॥
सर्वर्तुसुखसंवेशे सर्वभोगसमन्विते । सर्वालङ्कारसंयुक्ते तस्मिंस्तु भवने शुभे ॥२८॥
लालिता राजपुत्रास्ते सर्वाभिश्च यथासुखम् । मणितल्पगता रेजुर्भूमिजादर्शनोत्सुकाः ॥२९॥
तदा सुनयना राज्ञी पाययित्वा पयः सुताम् । मुदा महीपतनयान् पयःपानमकारयत् ॥३०॥

जैसे श्रीरामलालजी रूप और गुणोंके द्वारा सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित हो रहे हैं, उसी प्रकार इनके शेष तीनों भाई भी रूप और गुणोंसे भूषित, सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित हैं ॥२२॥

नीलकमलके समान श्यामवर्ण अङ्गवाले श्रीरामलालजी व श्रीभरतलालजी और सुवर्ण (सोना) के समान गौर अङ्ग वाले श्रीलषणलाल व श्रीशत्रुघ्नलालजी, ये चारो ही अत्यन्त मनहरण हैं ॥२३॥ ये सभी आपसमें प्रीतिमान, सभी श्रीरामलालजीके अनुयायी, सभी कुमार-अवस्था वाले और सभी नित्य सुखके योग्य हैं ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :—हे प्रिये ! इस प्रकार कथन करती २ महावात्सल्यरस रूपिणी श्रीसुनयना अम्बाजीने देखा, कि चारो राजकुमार भोजनसे निवृत्त हुये, रूमाल हाथमें लिये हैं अर्थात् कुल्ला आदि करके मुख भी पोंछ चुके हैं ॥२५॥

तब शयन करनेके लिये महात्मा श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञा पाकर चारो भाई श्रीसुनयना अम्बाजीके पास आकर पान आदिके द्वारा आदरको प्राप्त हुये ॥२६॥

वन्धुओं सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके चले जाने पर श्रीसुनयना अम्बाजी उन रघुवंश दुलारोंको, शयन-भवनमें ले गयीं ॥२७॥

सभी ऋतुओंमें जिसमें शयन सुखद रहता है, तथा जो समस्त आवश्यक भोग्य वस्तुओं से युक्त, पूर्ण सजावट सम्पन्न था उस उत्तम शयनभवनमें सभी रानियोंके द्वारा स्वेच्छानुसार दुलार किए हुये वे राजकुमार अवनिनन्दिनी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये उत्सुक हो, मणिमय पलङ्ग पर जाकर सुशोभित हुये ॥२८॥२९॥

तब श्रीसुनयना महारानीजीने श्रीललीजीको दूध पिलाकर राजकुमारोंको बड़े मोदसे दूध-पान कराया ॥३०॥

प्रदाय पुनराचम्यं प्रोञ्छ्यास्यानि सुवाससा । स्वल्पभूषांशुकोपेतान् लब्धताम्बूलवीटिकान् ॥३१॥
सुगन्धिभिः समासिच्य लालयन्ती मुहुर्मुहुः । प्रस्वाप्य तान्मृगाङ्कास्यान्सादरं स्वयमस्वपत् ॥३२॥
तस्मिञ्छयानेषु नृपार्भकेषु स्वापालये राजकुलाङ्गनाश्च ।
राज्ञीं प्रणम्योरसि सन्निवेश्य श्रीजानकीं तां स्वगृहाणि जग्मुः ॥३३॥

पुनः आचमन देकर सुन्दर वस्त्रसे (उनके) मुखोंको पोंछकर, पानका वीरा पवाकर स्वल्प भूषण वस्त्रोंसे युक्त ॥३१॥

चन्द्रमाके समान प्रकाशमान, आह्लादकारक मुखों वाले उन श्रीराजकुमारों को अनेक प्रकारकी सुगन्धियोंसे सींचकर, बारम्बार दुलार करती हुई, उन्हें आदर पूर्वक शयन कराके श्रीअम्बाजीने स्वयं शयन किया ॥३२॥ उस शयन-भवनमें राजकुमारोंके शयन कर जाने पर वे सभी रानियाँ श्रीसुनयना अम्बाजीको प्रणाम करके, श्रीजनकनन्दिनीजीको अपने हृदयमें विराजमान कर, अपने २ महलको चली गईं ॥३३॥

इत्यष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

इति-नवाह्नपारायणे चतुर्थो विश्रामः ॥४॥

— ❀❀❀ —

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रजाताप-सन्तप्त श्रीचक्रवर्तीजीके पास देवरानियों सहित अम्बाजी
द्वारा सत्कार पूर्वक कुमारों की कथञ्चित् विदाई ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथ रामे गृहं प्राप्ते जनकस्य सहानुजैः । अयोध्यातः समायातः सुमन्त्रो मन्त्रिसत्तमः ॥१॥
उपेत्य तं स राजानं नत्वा दशरथं ततः । वृत्तान्तं कथयामास पृष्टः सत्यानिवासिनाम् ॥२॥

श्रीसुमन्त्र उवाच ।

स्वस्त्यस्तु ते महाराज ! सर्वदा धर्मशालिने । सपुत्रदारवंशाय महाभागोत्तमाय च ॥३॥

बन्धुओं सहित श्रीरामभद्रजूके श्रीमिथिलेशजी महाराजके महल में आजानेपर उधर मन्त्रियों में शिरोमणि श्रीसुमन्त्रजी महाराज श्रीअयोध्याजीसे मिथिला पधारे ॥१॥

पुनः श्रीदशरथजी महाराजको प्रणाम करके वे उनके पास बैठकर पूछनेपर अयोध्यावासियों का समाचार कहने लगे ॥२॥ श्रीसुमन्त्रजी महाराज बोलेः—हे महाराज ! पुत्र-कलत्र (रानी) कुलके सहित धर्मशाली महासौभाग्यवान-शिरोमणि आपका सदाही मङ्गल हो ॥३॥

सभद्रा अप्यभद्रास्ते सर्वेऽयोध्यानिवासिनः । मृतप्राया विना रामदर्शनेन मयेक्षिताः ॥४॥
तेषां व्याकुलताऽवाच्या सर्वथा वर्त्ततेऽधुना । इति ज्ञात्वा महाराज! यथेच्छसि तथा कुरु ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तन्निशम्य महीपालः प्रजादुःखेन दुःखितः । कथञ्चिद्द्विदिनं धीरो व्यतीत्याचार्यमुक्तवान् ॥६॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

सुमन्त्रेण समाख्यातः समाचारः पुरौकसाम् । अतिदुःखप्रदो मह्यं बभूवेह प्रतिक्षणम् ॥७॥
यस्य राज्ये प्रजादुःखं स याति नरकं ध्रुवम् । तद्रहस्यविदो दुःखं कृपया मेऽपसारय ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तो नरेन्द्रेण बशिष्ठो भगवान्नृपम् । समुत्थाप्य वचोभिश्चाशमयत्तन्मनोज्वरम् ॥९॥
पुनः श्रीमिथिलानाथमभिगम्य महामुनिः । विधिवत्पूजितस्तेन सादरं तमथाब्रवीत् ॥१०॥

श्रीबशिष्ठ उवाच ।

शृणु योगीन्द्रशार्दूल ! सर्वबुद्धिमतां वर! । सुमन्त्रः कोशलात्प्राप्तः परश्वो हि नृपान्तिकम् ॥११॥

यद्यपि सभी अयोध्या निवासी सब प्रकारसे कुशल से हैं तथापि श्रीरामभद्रजूके वियोगके कारण मुझे वे कुशल रहित मृतकके समान चेष्टा रहित, से अत्यन्त दुःखी ही दिखाई दिये हैं ॥४॥

हे महाराज! श्रीरामलालजूके दर्शनोंके बिना श्रीअयोध्यावासियोंकी व्याकुलता कैसी है ? यह इस समय कही नहीं जा सकती । ऐसा जानकर आपकी जैसी इच्छा हो, कीजिये ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजीमहाराज बोलेः—हे प्रिये! श्रीसुमन्त्रजीके द्वारा श्रीअयोध्या नगर-वासियोंका समाचार श्रवण करके अपनी प्रजाके, दुःख से दुखी हो, श्रीदशरथजी महाराज किसी प्रकार दो दिन बिताकर, अपने गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी महाराजसे बोले :— ॥६॥

हे गुरुदेव ! सुमन्त्रजीके द्वारा पुरवासियोंका कहा हुआ वियोग समाचार मुझे इस समय प्रतिक्षण अत्यन्त दुःखप्रद प्रतीत हो रहा है ॥७॥

जिसके राज्यमें प्रजाको दुःख होता है, वह राजा अवश्य नरकमें जाता है । इस रहस्यका ज्ञान मुझे है, अतः कृपा करके (नरक प्राप्ति शङ्का जनित) मेरे इस दुःखको आप दूर कीजिये ॥८॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! महाराजा श्रीदशरथजी महाराजके ऐसा कहने पर भगवान् श्रीवशिष्ठजी महाराजने विह्वलताको प्राप्त हुये श्रीचक्रवर्तीजीको उठाकर अपने वचनोंके द्वारा उनके मानसिक ज्वरको शान्त किया अर्थात् उन्हें सान्त्वना प्रदान की ॥९॥ उसके बाद भगवत्तत्त्वके मनन करनेवाले वे श्रीवशिष्ठजीमहाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास जाकर उनसे पूजित हो, आदर पूर्वक बोले ॥१०॥

हे योगिराजोंके शिरोमणि ! तथा सभी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! श्रीमिथिलेशजी महाराज ! परसों सुमन्त्रजी, श्रीचक्रवर्तीजीके पास अयोध्यासे आये हैं ॥११॥

स पृष्टो नरदेवेन समाचारं यमुक्तवान् । तमाकर्ण्य महीपालो न शान्तिमधिगच्छति ॥१२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवच।

इति गूढं वचः श्रुत्वा महर्षेर्व्यथितेन्द्रियः । क उक्तः पुर वृत्तान्तो मन्त्रिणेति स पृष्टवान् ॥१३॥

समाश्वास्य स राजानं वशिष्ठो नियताञ्जलिम् । सुमन्त्रेणावदद्वृत्तं यदुक्तं तन्नृपान्तिके ॥१४॥

श्रीबशिष्ठ उवाच ।

कल्याणिनोऽप्यकुशलाः सर्वेऽयोध्यानिवासिनः । दर्शनेन विना राजन्! रामभद्रस्य सोन्मदाः ॥१५॥

तेषां व्याकुलतेदानीमवाच्यैवेह वर्तते । इति ज्ञात्वा महाराज ! यथेच्छसि तथा कुरु ॥१६॥

श्रीबशिष्ठ उवाच ।

एतदेव वचस्तस्य सुमन्त्रस्य नराधिपः । अवधार्य महावीर्यो न शान्तिमधिगच्छति ॥१७॥

त्वदीयप्रेमवद्धोऽसौ प्रजापालनतत्परः । मूढकृत्य इवाभाति निश्चयं नाधिगच्छति ॥१८॥

अत एव महाराज ! प्रजातापोपशान्तये । कुमारैः सह राजानं पुरं गन्तुं मुदाऽऽदिश ॥१६॥

सुमन्त्रजी श्रीचक्रवर्तीके पूछने पर वहाँका जो समाचार वर्णन किये हैं, उसे श्रवण करके महाराजको अब चैन नहीं पड़ रही है ॥१२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः-हे प्रिये ! महर्षि श्रीवशिष्ठजीके इन गूढ़ वचनोंको सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजका मन बड़ा ही दुखी हुआ, अतः वे बोलेः–हे प्रभो ! सुमन्त्रजीने पुरका समाचार क्या निवेदन किया है ? ॥१३॥

हाथ जोड़े हुये श्रीमिथिलेशजीको आश्वासन देकर, सुमन्त्रजीके द्वारा श्रीदशरथजी महाराज के पास कहे हुये वृत्तान्तको श्रीवशिष्ठजी महाराज वर्णन करने लगे ॥१४॥

हे राजन् ! श्रीचक्रवर्तीजीके पूछनेपर श्रीसुमन्त्रजीने नगरका जो समाचार निवेदन किया, वह यह हैः–हे राजन् ! आपके श्रीअयोध्या निवासी सबप्रकार कुशल पूर्वक होनेपर भी, कुशल रहित हैं क्योंकि श्रीरामलालजीके दर्शनोंके बिना उन्हें विरह रूपी उन्माद हो गया है ॥१५॥ हे महाराज ! इस समय उनकी व्याकुलता वर्णन शक्तिकी सीमाको पारकर गयी है। ऐसा जानकरके, अब आप जैसा उचित समझें, वैसाही करें ॥१६॥

श्रीवशिष्ठजी महाराज बोलेः–हे राजन् ! सुमन्त्रजीके इस वचन पर विचार करके महाशक्तिशाली श्रीअयोध्या नरेशजी, शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं क्योंकि वे प्रजा–पालनमें तत्पर होनेपर भी आपके प्रेममें बँधे हैं, अतः मुझे अब क्या करना उचित है ? यह वे निश्चय नहीं कर पा रहे हैं ॥१७॥१८॥

इस हेतु प्रजाकी श्रीराम-विरहरूपी ताप–निवृत्तिके लिये राजकुमारोंके सहित, महाराजको श्रीअयोध्याजी जानेके लिये अब आप हर्षपूर्वक आज्ञा प्रदान कीजिये ॥१६॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

आज्ञा तव शिरोधार्य्या लोकपालैरपि प्रभो ! । तामनादृत्य शं नेह प्रपश्यामि कदाचन ॥२०॥
प्रजातापोपशान्तिश्च यथा स्याद्रोचते तथा । प्रेममार्गो न कस्यास्ति दुर्गमः कष्टदायकः ॥२१॥
हितहानिं य आलोक्य न स्यात्परहिते रतः । तं न सन्तः प्रशंसन्ति दुर्धियं स्वार्थलम्पटम् ॥२२॥
पालयेत्स्वप्रजा राजा पुत्रबुद्धया निरन्तरम् । प्रजासुखेन सुखितः प्रजादुःखेन दुःखितः ॥२३॥
प्रजापालनधर्मोऽयं नरेन्द्राणां मनूदितः । सर्वसिद्धिकरो लोके भगवद्धर्मसंयुतः ॥२४॥
मिथिलावासिनोऽस्माकं यथाऽयोध्यानिवासिनः । पालनीयाः सदा नाथ! प्राणैरपि कृतात्मना॥२५॥
गम्यतेऽन्तःपुरं शीघ्रं समाचारंनिवेदितुम् । विसर्जनं द्रुतं तत्स्यादनुसारं परिस्थितेः ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तमित्युक्त्वा विसृष्टश्च मुनिनाऽन्तःपुरं ययौ । तत्र श्रीभोजनागारे प्रियादर्शनमाप्तवान् ॥२७॥
सा तु पुत्रैर्नरेन्द्रस्य परीता पङ्कजेक्षणा । चकार स्वागतं भर्तुस्तूर्णमुत्थाय धीमती ॥२८॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले:-हे प्रभो! आपकी आज्ञा इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि लोकपालों के लिये भी सिरपर धारण करने योग्य है, उसका निरादर करके मैं कभी भी, जगत्में किसीका कल्याण नहीं देखता ॥२०॥ जिस साधनसे प्रजाकी ताप मिटे, मुझे वही रुचिकर है । भला प्रेम-मार्ग किसको कष्ट-साध्य और कष्टदायक नहीं होता ? किन्तु जो अपने हितकी हानि देखकर दूसरेके हितमें तत्पर नहीं होता है, उस स्वार्थ, लम्पट, दुर्बुद्धि की सन्तजन, कभी भी प्रशंसा नहीं करते ॥२१॥२२॥

राजाको चाहिये, कि वह पुत्र बुद्धिसे अपनी प्रजाका निरन्तर पालन करता रहे तथा सदा प्रजाके सुखसे सुखी और दुःखसे दुखी रहे ॥२३॥

यह भगवद्-धर्म (भक्ति) से युक्त, मनु महाराजका कहा हुआ प्रजापालन रूप धर्म, लोकमें राजाओंको सर्वसिद्धि अर्थात् भोग-मोक्ष दोनोंका प्रदान करने वाला है ॥२४॥

जैसे मेरे लिये, प्राणोंके द्वारा भी श्रीमिथिला वासियोंका पालन करना नितान्त आवश्यक कर्त्तव्य है, उसी प्रकार अयोध्या निवासियोंका । अस्तु यदि प्रजाका सुख प्राणदेनेसे भी सिद्ध होता हो तो प्राण देना भी आवश्यक है ॥२५॥ एतदर्थ मैं अभी यह सब समाचार महारानीजी से निवेदन करनेके लिये शीघ्रही अन्तःपुर जा रहा हूँ, परिस्थिति के अनुसार श्रीराजकुमारोंके सहित श्रीकोशलेन्द्र-महाराजकी विदाई अब यहाँसे शीघ्रही हो जायेगी ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! मुनि श्रीवशिष्ठजी महाराजसे इस प्रकार कहकर उनके द्वारा विदा किये हुये श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने अन्तःपुर पधारे, उन्हें वहाँ भोजनभवनमें प्रिया (श्रीसुनयना अम्बा) जीका दर्शन प्राप्त हुआ ॥२७॥

वे कमल-लोचना, बुद्धिमती श्रीसुनयना अम्बाजीने राज-पुत्रोंके सहित तुरन्त उठकर पतिदेवका स्वागत किया ॥२८॥

भोजनाय पुनस्तं सा त्वरयामास पार्थिवम् । अभिवाद्य मुदा राज्ञी प्रेमगद्गदया गिरा ॥२९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

क्षुधिताः पुत्रका ह्येते तव नाथ! प्रतीक्षया । रुचिं न चक्रिरे कर्तुं प्रेरिता अपि भोजने ॥३०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

तथेत्युक्त्वा महीपालः रोमाञ्चितशरीरकः । आत्मजादर्शनानन्द ऊचे दशरथात्मजान् ॥३१॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

पुत्रकाः क्रियतां शीघ्रं भोजनं भद्रमस्तु वः । संप्रयाय मया साकं पाकस्य स्थानमीप्सितम् ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यउवाच ।

एतदाकर्ण्य तद्वाक्यं तथेत्युक्त्वा समुत्थिताः । त आनीयाशनस्थाने भोक्तुं राज्ञा प्रचोदिताः ॥३३॥

अकुर्वन् भोजनं तत्र यथाकामं यथारुचि । उपविष्टा नरेन्द्रस्य मनोज्ञाः सर्वसम्मताः ॥३४॥

समाजग्मुः पुनः सर्वे लब्धताम्बूलवीटिकाः । स्वापवेश्म विशालाक्षा दम्पतीभ्यां हि ते मुदा ॥३५॥

राममातुः समाज्ञप्ते सख्यौ तर्हि समागते । नत्वा गद्गदया वाचा पृष्टे प्रोचतुरादरात् ॥३६॥

पुनः महाराजको प्रणाम करके रानीश्रीसुनयनाजी प्रेममयी गद्गदवाणीसे हर्षपूर्वक भोजन करनेके लिये उन्हें शीघ्रता कराने लगीं ॥२९॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे नाथ ! इन बालकोंको क्षुधा (भूख) तो लगी है पर आपकी प्रतीक्षासे, मेरे आज्ञा करने पर भी अभीतक ये भोजनकी ओर रुचिही नहीं कर रहे हैं ॥३०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराज, अपनी श्रीललीजीके दर्शनानन्द को प्राप्त हो ऐसाही होगा, अर्थात् अभीही हम भोजन करेंगे कहकर, पुलकायमान होते हुये श्रीदशरथ कुमारोंसे बोले:–हे पुत्रो ! आप लोगोंका कल्याण हो । मेरे सहित रसोई–भवनमें पधारकर अब शीघ्र इच्छित भोजन कीजिये ॥३१॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजका यह वचन श्रवण करके तथा ऐसा ही हो, कहकर चारो श्रीराजकुमारजू उठ पड़े, तब उन्हें भोजन सदनमें लाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनसे भोजन करनेके लिये आग्रह किया ॥३३॥

मनहरण वे चारो भैया, उस भोजन–भवनमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके समीपमें बैठ कर अपनी रुचि तथा इच्छाके अनुसार भोजन करने लगे ॥३४॥

भोजन के पश्चात्, पानका वीरा पाकर वे चारो विशालनयन राजकुमार आनन्दपूर्वक श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी-महाराजके सहित शयन-भवनको पधारे ॥३५॥

उसी समय, श्रीरामलालजीकी अम्बाजीकी भेजी हुई दो सखियाँ वहाँ जा पहुँची और वे प्रणामकरके श्रीसुनयनाअम्बाजीके द्वारा आदर पूर्वक उनके पूछनेपर गद्गदवाणीसे बोलीं ॥३६॥

श्रीसख्यावूचतुः ।

सौभाग्यमस्तु ते नित्यं जीयात्पुत्री शतं समाः । राममाताऽऽह ते प्रीत्या यत्तदेवोच्यतेऽधुना ॥३७॥

श्रीकौशल्योवाच ।

स्वस्ति भूयान्महाराज्ञि! सदा ते भाग्यभूषणे! । सात्मजायै सकान्तायै सान्वयायै हरीच्छया ॥३८॥

कुमारानसमालोक्य नरेन्द्रो विरहाकुलः । निश्चेष्टोऽस्ति गतोत्साहः सुमन्त्रोक्तं निशम्य च ॥३९॥

सुमन्त्रोक्तः समाचारो वशिष्ठेन महात्मना । श्रावितो निमिराजाय भवतीं स प्रवक्ष्यति ॥४०॥

तदुपाकर्ण्य यत्कार्यं तद्भवत्या विधीयताम् । हिताय सर्वलोकानां महाभागे ! महाशये ! ॥४१॥

सख्यावूचतुः ।

ममापि त्वरते चित्तं तं द्रष्टुं कमलेक्षणम् । अद्यैतैः कारणैः प्रेष्ये प्रेष्येते च मया त्विमे ॥४२॥

एतदुक्त्वा महाराज्ञी वत्स! वत्सेति वादिनी । राममाता पपातोर्व्यां तां सुमित्रा व्यबोधयत् ॥४३॥

पुनर्नौ चातिशीघ्रेणागन्तुमाज्ञां दिदेश सा । सकाशं ते महाराज्ञि ! तत आवामुपस्थिते ॥४४॥

हे श्रीमहारानीजी ! आपका सौभाग्य अचल रहे, आपकी श्रीललीजी हजारों वर्ष जीवें । श्रीरामललाजीकी माता (श्रीकौशल्या–महारानी) जीने प्रेम–पूर्वक आपके लिये इस समय जो समाचार कहा है, उसे मैं निवेदन करती हूँ ॥३७॥

श्रीकौशल्या-महारानीजीने कहा है कि:-हे सौभाग्यकी भूषणस्वरूपा श्रीमहारानीजी! श्रीहरि भगवान्की कृपा दृष्टिसे पतिदेव, श्रीललीजी तथा वंशके सहित आपका सदाही मङ्गल हो ॥३८॥

सुमन्त्रजीका कहा हुआ समाचार श्रवण करके महाराज (श्रीचक्रवर्तीजी) कुमारोंका, दर्शन न पाकर विरह व्याकुल हो चेष्टा-रहित, उत्साहहीन हो गये हैं ॥३९॥

सुमन्त्रजीका कहा हुआ समाचार, श्रीवशिष्ठजीके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजको श्रवण करा दिया गया है, उसको वे आपसे स्पष्ट कहेंगे ॥४०॥

हे महासौभाग्यशालिनी, विशाल उद्देश्य-सम्पन्ना श्रीमहारानीजी ! उस समाचारको सुनकर सभी लोगोंके हितके लिये आप जैसा उचित समझें, करें ॥४१॥

मेरा भी चित्त कमललोचन श्रीरामलालजीको देखने के लिये अब शीघ्रता कर रहा है । आज इन सब कारणोंसे मैं, आपके पास इन दूतियोंको भेज रही हूँ ॥४२॥

सखियाँ बोलीं:-हे महारानीजू आपसे निवेदन करनेके लिये हम लोगोंसे इतना समाचार कहकर श्रीकौशल्या महारानीजी, हे वत्स ! हे वत्स ! कहती हुई विह्वलहो भूमि पर गिर पड़ीं, तब उन्हें श्रीसुमित्रा महारानीजीने सावधान किया है ॥४३॥

पुनः हम दोनोंको आपके पास अति शीघ्र आनेके लिये उन्होंने आज्ञा प्रदानकी । हे श्रीमहारानीजी ! इसी हेतु हम दोनों, आपके पास उपस्थित हुई हैं ॥४४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच।

प्रिये ! वृत्तस्य तेऽस्यैव श्रावणाय महामते। प्रेरितः श्रीवशिष्ठेन त्वरयैवाहमागतः ॥४५॥
प्रिये ! किमत्र कर्त्तव्यं ब्रूहि सम्यग्विमृश्य मे। सावधानात्मना भद्रे ! सर्वश्रेयस्करं परम् ॥४६॥

श्रीसुनयनोवाच।

विधातुः कीदृशी बुद्धिर्नाथ ! न ज्ञायते मया। संयोगसुखसक्तानां भवत्याशुवियोजकः ॥४७॥
निजानन्दक्षयेणापि परेषां चेत्सुखं भवेत्। अवश्यमेव कर्त्तव्यं तत्तु कर्म यतात्मना ॥४८॥
यावच्च जीवनं लोके कुर्यात्परहितं सदा। अध्रुवेण ध्रुवं विद्वान् साधयेदिह निर्ममः ॥४९॥
किमुक्तं श्रीवशिष्ठेन भवते ब्रह्मयोनिना। तत्समाख्याहि योगीन्द्र ! ततो युक्तं समाचर ॥५०॥

श्रीमिथिलेश उवाच।

वशिष्ठो भगवानाह शृणु राजन्! वचो मम। अयोध्यातः समायातः सुमन्त्रो मन्त्रिसत्तमः ॥५१॥
स पृष्टः कोशलेन्द्रेण समाचारं पुरौकसाम्। यथा निवेदयामास तथा ते प्रवदाम्यहम् ॥५२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोलेः-हे महामते ! इसी समाचारको श्रीवशिष्ठजी महाराजकी प्रेरणासे आपको श्रवण करानेके लिये मैं यहाँ शीघ्रता पूर्वक आया था ॥४५॥

हे प्रिये ! इस समाचारके विषयमें, सभीके परम कल्याणके लिये, अब क्या करना उचित है? यह आप एकाग्रचित्तसे भली प्रकार विचार करके मुझसे कहें ॥४६॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे नाथ! विधाताकी कैसी बुद्धि है ? कुछ समझमें नहीं आता, क्योंकि संयोग-सुखमें आसक्त-प्राणियोंको वे शीघ्र ही वियोग करादेते हैं, संयोगकी पूर्णसुखानुभूति भी नहीं करने देते। यदि संयोग सुख देना उन्हें अभीष्ट नहीं रहता है, तो फिर ऐसा सुखद अवसर ही क्यों आने देते ? और जब अवसर उपस्थित करते हैं तो, फिर स्थायी सुख क्यों नहीं लेने देते, अतः समझमें नहीं आता कि, उनकी यह कैसी बुद्धि है ॥४७॥

यदि अपने सुखके नष्ट होजाने पर भी औरोंका सुख सिद्ध होता हो तो, मनो विजयी मनुष्यको वह कार्य अवश्य करना चाहिए ॥४८॥

जब तक लोकमें जीवन है, मनुष्य दूसरेका हित साधन सदा अवश्य करता रहे, सारासार विवेकी को चाहिये कि वह अपने स्वार्थकी ममताको छोड़कर, अपनी परोपकार शीलता द्वारा इस क्षणभङ्गुर शरीरसे ही अविनाशी पद प्राप्त करले ॥४९॥

हे श्रीयोगिराज ! ब्रह्माजीके पुत्र श्रीवशिष्ठजी महाराजने आपसे क्या समाचार कहा है? उसे मुझसे कह दीजिये, पश्चात् जो उचित है, वही करना है ॥५०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! भगवान् श्रीवशिष्ठजीने मुझसे कहा हे राजन् ! मन्त्रियोंमें परम-श्रेष्ठ, श्रीसुमन्त्रजी श्रीअयोध्याजीसे आये हैं ॥५१॥

श्रीदशरथजी महाराजके पूछने पर उन्होंने पुरवासियोंका समाचार जिस प्रकार वर्णन किया है, मैं उसी प्रकार वर्णन करता हूँ ॥५२॥

श्रीसूत उवाच ।

राजन्नकुशलाः सर्वे क्षेमिणोऽपि पुरौकसः । रामभद्रमनालोक्य सोन्मदा इव लक्षिताः ॥५३॥
अवाच्यं वर्तते तेषां व्याकुलत्वं नृपर्षभ ! । इति ज्ञात्वा महाराज ! यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

सुमन्त्रोक्तं वचः श्रुत्वा राजा दशरथो वशी । मामद्य कथयामास प्रजादुःखेन दुःखितः ॥५५॥
दुःसहं हि प्रजादुःखं तव स्नेहोऽतिदुस्त्यजः । मैथिलेन्द्रेति जानीहि नृपस्य मम पश्यतः ॥५६॥
इदानीं यत्तु कर्त्तव्यं भवता तद्विधीयताम् । एतदर्थमहं प्राप्तः सकाशं ते महात्मनः ॥५७॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

एवमुक्तस्तमाभाष्य विसृष्टस्तेन सत्वरम् । भोजनागारमागच्छं तन्निवेदयितुं प्रिये ! ॥५८॥
तत्रालब्धावकाशेन न तुभ्यं श्रावितं मया । निवेदयितुमायाते स्वयं सख्यौ हि सत्वरम् ॥५९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

श्रीरामदर्शनानन्दा धन्याः सत्यानिवासिनः । राजा दशरथो धन्यः सुशीलो धर्मकोविदः ॥६०॥

श्रीसुमन्त्रजी ने कहाः—हे राजन् ! आपके श्रीअयोध्यावासी सब प्रकार कुशलयुक्त होने पर भी विना श्रीरामलालजीका दर्शन पाये कुशल रहित, पागलसे प्रतीत हो रहे हैं ॥५३॥

नृपोंमें श्रेष्ठ हे महाराज ! पुर वासियोंकी व्याकुलता वर्णन करने योग्य नहीं है, ऐसा जान कर आपकी जैसी इच्छा हो, कीजिये ॥५४॥

श्रीबशिष्ठजी-महाराज बोले :—हे श्रीमिथिलेशजी-महाराज ! श्रीसुमन्त्रजीका कथन सुनकर प्रजाके दुःखसे दुःखी होकर श्रीदशरथजी महाराजने आज वह समाचार मुझसे कहा हैं ॥५५॥

मेरे देखनेसे श्रीचक्रवर्तीजीके लिये प्रजाका यह दुःख सहन करना कठिन है और आपका स्नेह छोड़ना अत्यन्त ही कठिन है, आप ऐसा निश्चित जानिये ॥५६॥

हे राजन्! आप महात्मा हैं क्योंकि आपकी बुद्धिमें केवल परब्रह्मपरमात्मा ही विहार करते हैं अत एव इस समय जो उचित है, आप वही कीजिये! मैं इसी निमित्त आपके पास आया हूँ ॥५७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले—हे प्रिये ! ऐसा कहकर श्रीवशिष्ठजी महाराजके द्वारा विदा किया हुआ मैं, उनकी आज्ञासे, श्रीसुमन्त्रजीका कहा हुआ समाचार आपसे निवेदन करनेके लिये ही, मैं भोजन-भवनमें आया था ॥५८॥ किन्तु वहाँ अवकाश न मिलनेके कारण आपको वह दुःखद समाचार मैं नहीं सुना सका । अब यहाँ उसी समाचारको निवेदन करनेके लिये, श्रीकौशल्या महारानीजीकी ये सखियाँ स्वयं आगयीं ॥५९॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे प्यारे ! जिन्हें श्रीरामलालजीके ही दर्शनों का आनन्द है, वे श्रीअयोध्यानिवासी धन्य हैं, श्रीदशरथजी महाराजके लिये धन्यवाद है, जो इस प्रकार धर्मके रहस्यको जानने वाले परम शीलवान् हैं, जो कि प्रजा के दुःखसे दुखी होने पर भी आपके स्नेह को छोड़कर सहसा नहीं जाना चाहते बल्कि आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥६०॥

धन्या राज्ञी च कौशल्या यस्याःसुकृतिसम्भवः । लोकाभिरामः श्रीरामः सर्वभूतमनोहरः ॥६१॥
धन्या राज्ञी सुमित्रा च यस्याः पुत्राविमौ शुभौ । तप्तहाटकवर्णाङ्गौ लक्ष्मणारिनिषूदनौ ॥६२॥
धन्या राज्ञी च कैकेयी यस्यास्तु भरतः सुतः । अतसीपुष्पसङ्काशः सुमतिः साधुसम्मतः ॥६३॥
धन्या राज्ञ्यस्तथा सर्वा राज्ञो दशरथस्य हि । श्रीरामदर्शनस्यास्ति यासां चानुत्तमो विधिः ॥६४॥
प्रजानां च तथा राज्ञो महिषीणां तथैव च । सुखाय प्रियपुत्राणामितः प्रस्थापनं वरम् ॥६५॥
वत्स ! राम! चिरञ्जीव भद्रं भरत ! ते सदा । अनामयं तु सौमित्री! युवाभ्यामस्तु सर्वदा ॥६६॥
भवतां दर्शनं लब्धं मया पुण्येन केनचित् । तदभाग्योदयेनैव दुर्लभं मे भविष्यति ॥६७॥
सख्यो! गत्वा महाराज्ञीं समाश्वासयतं शुभम् । अद्यैवासादितं रामं न चिराद्द्रक्ष्यसीति वै ॥६८॥
श्व एवेतो यथाकाममनिच्छन्त्याऽपि वै मया । प्रस्थापनं तु सर्वेषां कृतं स्यान्नात्र संशयः ॥६९॥
मदर्थे मर्षितं कष्टं विविधं यत्कृपानिधे ! । क्षमापयेऽहं तत्सर्वं मन्दात्मा संयताञ्जलिः ॥७०॥

जिनके पुण्य-प्रतापसे त्रिभुवनसुन्दर, समस्त प्राणियोंके मनको हरण करनेवाले श्रीरामलाल जी प्रकट हुये हैं, वे श्रीकौशल्या महारानीजी धन्य हैं ॥६१॥

तपाये सुवर्णके समान गौर अङ्गवाले श्रीलषणलाल व श्रीशत्रुघ्नलालजी जिनके दोनों ही पुत्र हैं, वे श्रीसुमित्रा महारानीजी धन्य हैं ॥६२॥

और श्रीकैकेयी महारानीजी धन्य हैं, जिनके पुत्र तीसी पुष्पके समान श्यामरङ्ग, सुन्दर-मति सन्तोंसे सम्मानित श्रीभरतलालजी हैं ॥६३॥ तथा श्रीदशरथजी महाराजकी सभी महारानियाँ धन्य हैं जिन्हें श्रीरामलालजीके दर्शनोंका सर्वोत्तम सौभाग्य प्राप्त है ॥६४॥

प्रजाओंके, श्रीचक्रवर्तीजीके तथा श्रीकौशल्या आदि महारानियोंके सुखके लिये, अब यहाँ से इन प्यारे पुत्रोंको बिदाकर देना ही, उत्तम है ॥६५॥

हे वत्स ! हे श्रीरामजू! आप अनन्तवर्ष तक जीवें । हे भरतलालजू! आपका मङ्गल हो । हे श्रीसुमित्रानन्दन श्रीलषणलाल व श्रीरिपुसूदनलालजी आप दोनों भइया सदा ही निरोग रहें ॥६६॥

हे वत्सो ! किसी अचिन्त्य पुण्यके प्रतापसे मुझे आप लोगोंका दर्शन प्राप्त हुआ था वह मेरे अभाग्यके उदयसे अब दुर्लभ हो जायगा ॥६७॥

अरी सखियो ! जाओ, मङ्गलमयी श्रीकौशल्या महारानीजीको यह आश्वासन दो कि, आज शीघ्रही श्रीरामलालजीको, आप अवश्य देखेंगी और कल ही न चाहती हुई भी मैं यहाँ से सभी लोगोंकी इच्छानुसार बिदाई कर दूंगी, इस में किसी प्रकारका भी सन्देह म करेंगी ॥६८॥६९॥

हे श्रीकृपानिधेजू ! मेरे लिये आपको अनेक प्रकार का जो कष्ट सहन करना पड़ा है, उसके लिये मैं मन्दबुद्धि, हाथ जोड़कर आपसे क्षमा मांगती हूँ ॥७०॥

एवं वाच्या महाराज्ञी कौशल्या श्लक्ष्णया गिरा।प्रणम्य बहुशः सख्यौ! युवाभ्यां भद्रमस्तु वाम् ॥७१॥

सख्यावूचतुः ।

यथोक्तं नौ महाराज्ञि ! करवाव तथा द्रुतम् । इतो गत्वा तवागाराद्राममातुर्निकेतमम् ॥७२॥

साविनयं त उक्तं चेदावाभ्यामल्पया धिया । किञ्चनापि महोदारे ! कृपया तत्क्षमस्व नौ ॥७३॥

सुमुखीं क्रोड आदातुं महोत्कण्ठाऽद्य वर्तते । आवयोर्हृदि सा शीघ्रं सफला कृपयाऽस्तु ते ॥७४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

युवां सख्यौ महाराज्ञ्याः कौशल्याया महामतेः । ज्येष्ठायाः पङ्क्तियानस्याविनयो वां कथं स्पृशेत् ७५

यथैषामिन्दुवक्त्राणां पुत्रिकायास्तथा मम । लालने पालने काममधिकारोऽस्ति वां ध्रुवम् ॥७६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्ते प्रेमपूर्णाक्ष्यो मैथिलीं स्वाङ्कगां मुदा । विधाय ययतुर्भूयो लालयन्त्यौ कृतार्थताम् ॥७७॥

प्रणम्य दम्पती भूयः कृतकृत्ये पुनर्द्रुतम् । सकाशमीयतुर्हृष्टे कौशल्यायाः कृताञ्जली ॥७८॥

सख्यावूचतुः ।

द्रक्ष्यसीत्यद्य वै पुत्रं महाराज्ञि ! शुचिव्रते ! । श्व एव स्यात्तु सर्वेषामितः प्रस्थानं ध्रुवम् ॥७९॥

हे सखियो! आप दोनोंका कल्याण हो, आप लोग श्रीकौशल्या-महारानीजीको बारंबार प्रणाम करके, स्नेहमयी वाणीसे मेरी प्रार्थनाको इसी प्रकार निवेदन करना ॥७१॥

सखियाँ बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी ! आपने हमें जिस प्रकार कहनेके लिये आज्ञा प्रदान की है उसी प्रकार श्रीरामलालजीकी माताजीके पास जाकर हम शीघ्र अवश्य निवेदन करेंगी ॥७२॥

हे उदार-शिरोमणे! अल्प बुद्धिके कारण हम लोगोंसे, जो कुछ ढिठाई पूर्वक कहनेमें आगया हो, उसे आप, कृपा करके क्षमा करेंगी ॥७३॥ हम दोनोंके हृदयमें श्रीसुमुखी (श्रीलली) जी को अपनी गोदमें लेनेकी बड़ी अभिलाषा है, वह आपकी कृपासे पूर्ण हो ॥७४॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं :—आप लोग तो श्रीदशरथजी महाराजकी विशालमति-सम्पन्ना बड़ी महारानी (श्रीकौशल्या) जूकी सखी हैं, अतः आप लोगोंको ढिठाई कैसे स्पर्श कर सकती है ? ॥७५॥ जैसे इन चन्द्रमुख राजपुत्रों के लालन, पालन करनेका आप लोगोंको इच्छानुसार अधिकार प्राप्त है, उसी प्रकार मेरी श्रीललीजीके लिये भी आप लोगोंका अचल स्वतन्त्र अधिकार है ॥७६॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! श्रीसुनयनाअम्बाजीके इस प्रकार कहने पर प्रेम-पूर्णनेत्रा वे दोनों सखियाँ श्रीमिथिलेश—दुलारीजीको बारं बार आनन्द—पूर्वक अपनी गोदमें लेकर, उनको प्यार करती हुई, कृतार्थ हो गयीं अर्थात् अपने जीवनकी सफलताका अनुभव करने लगीं ॥७७॥ पुनः वे सखियाँ कृतकृत्य हो, बारं बार श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी-महाराजको हाथ जोड़कर प्रणाम करके, हर्ष-पूर्वक शीघ्रही श्रीकौशल्या महारानीके पास आयीं॥७८॥ सखियाँ बोलीं:-हे पवित्र व्रतोंके करनेमें सदा तत्पर रहने वाली श्रीमहारानीजी ! आज आप निःसन्देह अपने श्रीलालजीका दर्शन करेंगी और कल यहाँ से सभीकी विदाई भी हो जायेगी ॥७९॥

मदर्थे मर्षितं कष्टं विविधं यत्कृपानिधे ! । क्षामयेऽहं च सत्सर्वं मन्दात्मा संयताञ्जलिः ॥८०॥
एवं वाच्या महाराज्ञी! कौशल्या श्लक्ष्णया गिरा । प्रणम्य बहुशः सख्यौ युवाभ्यां भद्रमस्तु वाम् ।८१।
एवमाह तु नौ राज्ञी वाक्यं सुनयना स्वयम् । तयाऽऽदिष्टे मुदा नत्वा पुनरावामिहागते ॥८२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्ताऽऽह ते सख्यौ कौशल्या पुत्रवत्सला । निवेदयतमखिलं वृत्तमेतन्नृपाय वै ॥८३॥
तथेत्युक्त्वा च तां नत्वा कोशलेन्द्राय सत्वरम् । वृत्तान्तमूचतुः कृत्स्नं स निशम्य शमं ययौ ॥८४॥
राज्ञी सुनयना तल्पे स्वापयित्वा नृपात्मजाम् । न तृप्तिं याति सा तेषां पिबन्ती रूपमाधुरीम् ॥८५॥
देवरस्त्रीसमाह्वानं कारयित्वा शुभेक्षणा । कथयामास वृत्तान्तं सखीभ्यामुदितं यथा ॥८६॥
ततो वीतालसान् राज्ञी नवपङ्कजलोचनान् । चिरमालोक्य चक्षुर्भ्यां कार्यमन्यदचिन्तयत् ॥८७॥
मज्जनं कारयित्वा सा तेभ्यः स्वादुमयं परम् । मिष्टान्नभोजनं प्रादात्स्वर्णपात्रनिवेशितम् ॥८८॥

हे श्रीकृपानिधेजू! मेरे लिये जो अनेक प्रकारका कष्ट आपको, सहन करना पड़ा है, उसके लिये मैं मन्दबुद्धि, हाथ जोड़कर आपसे क्षमा माँगती हूँ ॥८०॥

हे सखियो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम दोनों श्रीकौशल्या महारानीजीको बारं वार प्रणाम करके मेरी इस प्रार्थनाको उन्हें इसी प्रकार स्नेहमयी वाणीसे निवेदन करना ॥८१॥

हे श्रीमहारानीजी ! इस प्रकार श्रीसुनयना महारानीजीने हम दोनोंसे स्वयं कहा है, उनकी आज्ञा पाकर तथा उन्हें प्रणाम करके हम लोग यहाँ पुनः सानन्द आई हैं ॥८२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :–हे प्रिये ! सखियोंके इस प्रकार कहने पर पुत्रवत्सला श्रीकौशल्या अम्बाजी, उन सखियोंसे बोलीं :–हे सखियो । तुम दोनों जाकर यह पूरा समाचार श्रीअवधपतिजीसे निवेदन करें ॥८३॥

श्रीकौशल्या महारानीजीसे "ऐसाही होगा" कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके दोनों सखियोंने तुरन्त जाकर श्रीदशरथजी महाराजको वह समस्त समाचार श्रवण कराया, उसे सुनकर वे शान्तिको प्राप्त हुये ॥८४॥ श्रीसुनयना महारानीजी, पलङ्ग पर श्रीराजकुमारोंको शयन कराके उनके स्वरूप-माधुरीका पान करती हुई तृप्त नहीं हो रही थीं ॥८५॥

पुनः श्रीसुनयनाअम्बाजीने अपने यहाँ देवरानियोंको बुलाकर श्रीकौशल्यामहारानीजीकी सखियों का कहा हुआ सब समाचार, उन्हें श्रवण कराया ॥८६॥

तत्पश्चात् आलस्यसे निवृत्त, नवीन कमलके समान नेत्र वाले उन राजकुमारोंका बहुत देर तक दर्शन करके वे अपने दूसरे कर्त्तव्यका चिन्तन करने लगीं ॥८७॥

उन्होंने चारो भैयोंको मज्जन कराके, सोनेके थालोंमें रखे हुये स्वादुमय अनेक प्रकार मिष्ठान्नों का भोजन प्रदान किया ॥८८॥

श्रीशिव उवाच ।

राज्ञ्यः सर्वास्तयाऽऽज्ञाप्ताः क्रमशः प्रेमनिर्भराः। भोजयन्त्यो विशालाक्ष्यःपूर्णकामाः कृताः शिवे! ८६

महिषी निमिराजस्य मैथिलेन्द्रस्य शोभना । स्नेहेन येन तान्कामं तर्पयामास भोजनैः ॥६०॥

अवाच्यः स तु सर्वेषां ज्ञायतां भूधरात्मजे ! येन मुग्धाः कुमारास्तु मुमुचुर्नेत्रजं जलम् ॥६१॥

पुनर्दत्वा च ताम्बूलं तेभ्यः कमललोचना । वैदेहीजननी सर्वान् यथाकामं व्यभूषयत् ॥६२॥

तांस्तु नीराजयामास कुमारान्दिव्यमालिनः। वस्त्राभूषादिभी राज्ञी दृष्ट्वा सा समलङ्कृतान् ॥६३॥

लालयित्वा यथा भावं समालिङ्ग्य पुनः पुनः । कथञ्चित्ते समाज्ञाप्ता गन्तुमावासमन्दिरम् ॥६४॥

ते तु सर्वाः प्रणम्याथ राज्ञीश्चै व नृपानुजान्। विलोक्यायोनिजां कामं लालिताः परिरम्भिताः ॥६५॥

आशीर्भिर्नन्दिता जग्मुः सह राज्ञा मनोहराः । सेनया रक्षिता नाग-यानेन पितुरन्तिकम् ॥६६॥

समर्प्य पुत्रान्मिथिलामहेन्द्रः श्रीपङ्क्तियानाय तदादृतस्तान् ।
पुनस्तमाभाष्य रघुप्रबीरं समागमत्तूर्णमसौ स्ववेश्म ॥६७॥

भगवान् शङ्करजी बोले:—हे कल्याणस्वरूपे ! पुनः श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, देवरोंकी प्रेमविह्वला विशाललोचना सभी रानियोंने क्रमशः उन श्रीराजकुमारोंको भोजन कराके अपने मनोरथको पूर्ण किया ॥८६॥

श्रीनिमिमहाराजके वंशमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराजने वाले, श्रीमिथिमहाराजके वंशजोंमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने, जिस स्नेहसे उन श्रीराज-कुमारोंको भोजनसे तृप्त किया तथा जिस स्नेहसे मुग्ध होकर चारो भाइयोंकेनेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा था उसका वर्णन सभीके लिए असम्भव जानिये ॥६०॥६१॥

श्रीविदेहराजकुमारीजूकी कमललोचना श्रीअम्बाजी श्रीराजकुमारोंको पानका वीरा देकर इच्छानुसार, उनका शृङ्गार करने लगीं ॥६२॥

हे श्रीगिरिराजकुमारीजी! पुनः वस्त्र भूषणोंसे सब प्रकार अलंकृत दिव्यमालाओंको धारण किये हुये श्री कोशलेन्द्रकुमारोंको देखकर महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने उनकी आरती की॥६३॥

तत्पश्चात् अपने भावानुसार उनका दुलारकरके, तथा बारंबार हृदयसे लगा कर, बड़ी कठिनतासे उन्हें आवास-भवन जाने की आज्ञा प्रदान की ॥६४॥

वे चारो भैया सभी महारानियोंको तथा श्रीमिथिलेशजी-महाराजके सभी भाइयोंको प्रणाम करके, सभीके द्वारा हृदय लगा कर दुलार पाये हुये, श्रीअयोनिजा (श्रीलली) जीका इच्छानुसार दर्शन करके वे मनको हरलेने वाले, चारों रघुवंशी श्रीराजकुमारजू आशीर्वादके द्वारा सभीसे अभिनन्दित होकर, सेनासे सुरक्षित, गजरथके द्वारा श्रीमिथिलेशजी-महाराजके साथ अपने श्रीपिताजीके पास पधारे ॥६५॥६६॥ वहाँ श्रीमिथिलेशजी-महाराज उन श्रीराजकुमारोंको रघुकुलमें श्रेष्ठ वीर चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराजको समर्पित करके, उनके द्वारा आदर पाकर, तथा उनसे आज्ञा लेकर वे तुरन्त अपने महलको वापस गये ॥६७॥

निरीक्ष्य रामस्य मनोहरास्यं प्रफुल्लकञ्जायतपत्रनेत्रम् ।
वियुक्ततापः प्रबभूव राजा तथा जनन्योऽप्यनुजैर्युतस्य ॥६८॥

अपने छोटे भाइयोंसे युक्त श्रीरामलालजूके खिले कमलके समान विशालनयन वाले मनोहर श्रीमुखारविन्दका दर्शन करके राजा (श्रीदशरथजी-महाराज) तथा श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि सभी रानियोंका विरह रूपी ताप दूर हो गया ॥६८॥

इत्येकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे पञ्चदशो विश्रामः ॥१५॥

---❀❀❀---

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अपने भवन बुलाकर सुसत्कृत्य श्रीविदेहजी महाराज द्वारा आगत राजाओं सहित सपुत्र-कलत्र श्रीचक्रवर्तीजी महाराज की करुण विदाई ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ प्रभाते विमले नरेन्द्रो विसर्जने दत्तमतिर्महात्मा ।
चकार सत्कारविधिं समग्रं विशेष रूपेण चिरागतानाम् ॥१॥
पुनः समाहूय स कोशलेन्द्रं सदारपुत्रान्वयपूज्यवर्गम् ।
समस्तसम्बन्धिनृपानमात्यैः समाह्वयद्भोजयितुं निकेते ॥२॥
उपस्थितेष्वङ्ग नृपेषु तेषु प्रणम्य सत्कारविधिं विधाय ।
अन्तःपुरे पंक्तित एव तेषां प्रारब्धवान् भोजनमालिभिः सः ॥३॥

इसके बाद निर्मल प्रभात समयमें, महात्मा श्रीमिथिलेशजी महाराज, अपने यहाँ बहुत दिनोंसे पधारे हुये सभी लोगोंकी विदाई की विशेष रूपसे सत्कार विधि सम्पन्न करने लगे ॥१॥पुनः महारानियों, राजपुत्रों तथा वंशके पूज्य लोगोंके सहित मंत्रियोंके समेत श्रीदशरथजी महाराजको तथा समस्त सम्बन्धी राजाओंको अपने महलमें भोजन करनेके लिये उन्होंने बुलाया ॥२॥ उन सब राजाओंके उपस्थित हो जाने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजने प्रणाम पूर्वक सत्कार-विधि करके सखियोंके द्वारा उन सभीका भोजन पङ्क्ति-पूर्वक अपने अन्त पुरमें कराना प्रारम्भ किया ॥३॥

नृपाङ्गनानां विधिनाऽर्चितानां समन्वितानां दशयानपत्न्या ।
बभूव मातुर्जनकात्मजायाः सुधाशनं प्रीतितया समक्षम् ॥४॥
तत्रात्मजानां रघुपप्रियाणामशेषविश्वैकमनोहराणाम् ।
अत्यद्भुता भोजनचारुलीला सुखप्रदा नेत्रवतां बभूव ॥५॥
संतर्पिताभ्योऽमृतभोजनैश्च ताम्बूलवीटीः प्रददौ सुनेत्रा ।
राज्ञी स्वयं प्रेमपरायणा सा निवेश्य चामीकरचारुपीठे ॥६॥
ततो महार्हाम्बरभूषणैश्च मुख्यालिभिः साऽलमकारयत्ताः ।
सुगन्धिनाऽऽसिच्य महोरुकीर्त्तिर्मनोहरैर्नित्यनवैः सुभक्त्या ॥७॥
तया कुमाराः स्वयमेव राज्ञ्या श्रीकोशलेन्द्रस्य मनोज्ञरूपाः ।
अपूर्वया प्रीततया विरेजुः सुस्रग्विणस्ते समलङ्कृता वै ॥८॥
श्रीजानकीं पद्मपलाशनेत्रां शिशुस्वरूपां ललना नृपाणाम् ।
आनन्दवारांनिधिमग्नचित्तास्ता लालयन्त्यः क्रमशो बभूवुः ॥९॥
रामस्य माता यदवाप शर्म प्राप्तं तया तन्न कदापि पूर्वम् ।
सुलालयन्ती नयनाभिरामामयोनिजां ह्लादतया कृतार्था ॥१०॥

उधर श्रीसुनयना महारानीजीके समक्ष श्रीकौशल्या महारानीजीके सहित समस्त राजकुल स्त्रियोंका अमृतमय भोजन प्रेमपूर्वक होना प्रारम्भ हुआ ॥४॥

अन्तःपुरमें समस्त विश्वके उपमा रहित, मनहरण, श्रीदशरथजी महाराजके चारों राजदुलारोंकी अत्यन्त सुन्दर आश्चर्य-मयी भोजन लीला सभी नयनवालोंके लिये विशेष सुखप्रद सिद्ध हुई ॥५॥ अमृतमय भोजनोंके द्वारा तृप्त किये हुये, चारों श्रीराजकुमारोंको स्वयं प्रेम-परायणा रानी श्रीसुनयना अम्बाजीने सुवर्णके सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर पानके बीरों को प्रदान किया ॥६॥

उसके पश्चात् महाविशालकीर्त्ति सम्पन्ना, श्रीसुनयना महारानीजीने सुगन्धिसे सींचे अतीव योग्य, नित्यनवीन रहने वाले, मनोहर वस्त्र व भूषणोंसे अपनी प्रधान सखियोंके द्वारा नृप कुलकी सभी स्त्रियोंका श्रद्धा-पूर्वक पूर्ण-रूपसे शृङ्गार कराया ॥७॥

स्वयं श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा अपूर्व प्रीति पूर्वक पूर्णशृङ्गार किये हुये, सुन्दर मालायें पहिने वे श्रीकोशलेन्द्रजीके मनहरण श्रीराजकुमार सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराजमान हुये ॥८॥ सभी राजाओंकी महारानियाँ अवसर पाकर शिशु रूपवाली, कमलपत्रके समान सुन्दर विशाल लोचना, श्रीजनकदुलारीजीका, पारी–पारी से दुलार करती हुई आनन्दसागरमें डूब गयीं ॥९॥ श्रीरामलालजीकी माता श्रीकौशल्या अम्बाजी श्रीअयोनिसम्भवा श्रीकिशोरीजी का भली प्रकारसे प्यार करती हुई आह्लाद पूर्वक, जिस अद्भुत सुखको प्राप्त हुईं वह अपूर्व ही था, अतः वे कृतार्थ हो गयीं ॥१०॥

अथाखिलोर्वीशगणेन सार्द्धं श्रीकोशलेन्द्रो मिथिलाधिपेन ।
सिंहासने रत्नमये सुतिष्ठन् सुतर्पितोऽपश्यदजात्मजास्यम् ॥११॥

ज्ञात्वाऽऽशयंतस्य गुरुर्वसिष्ठो जगाद सप्रेमवचो विदेहम् ।
निधाय पाणाविदमेव पाणिं संश्लक्ष्णया चारुगिरा प्रबोध्य ॥१२॥

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

उपस्थितेयं शुभदा सुवेला प्रास्थानिकी योगिवर ! क्षितीश !
अतः प्रदेया शुभदाऽऽशु गन्तुं त्वयाऽखिलेभ्योऽनुमतिः सहर्षम् ॥१३॥

वाच्येति राज्ञी भवता प्रिया ते राज्ञीः कुमारानचिरान्निकेतात् ।
प्रस्थापयस्वाशु मुदा सहर्षं विधाय धैर्यं हृदि योगमूर्त्ते ॥१४॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति चोक्त्वा प्रणतो महर्षेर्बभाण राज्ञीं नियतस्तदाज्ञाम् ।
उदासचित्तो निमिवंशमौलिः संश्लक्ष्णया दीनगिरा महीपः ॥१५॥

उधर श्रीमिथिलेशजी-महाराजके द्वारा भोजन आदिसे तृप्त हो, भूप वृन्दोंके सहित अयोध्यानाथ श्रीदशरथजी महाराजने रत्नमय सिंहासनपर विराजे हुये, श्रीगुरुदेव महाराजके मुखकी ओर देखा ॥११॥

श्रीदशरथजी महाराजका अभिप्राय जानकर, श्रीगुरुवशिष्ठजी महाराज देहकी सुधि बिसारे हुये उन श्रीमिथिलेशजी महाराजका हाथ अपने हाथमें रखकर, सुन्दर स्नेहमयी वाणी द्वारा सावधान करके प्रेम पूर्वक बोले ॥१२॥

हे योगियोंमें श्रेष्ठ ! पृथ्वीनाथ ! मङ्गल प्रदान करने वाली, प्रस्थानकी सुन्दर बेला उपस्थित होगयी है, अत एव अब आपको सभीके लिये विदा होने की अनुमति अति शीघ्र प्रदान कर देनी चाहिये और अपनी प्रिया श्रीसुनयना महारानीजीसे आपको ऐसा कहना चाहिये कि-हे योगमूर्त्ते ! आप हृदयमें धैर्य धारण करके अब आनन्दके सहित, हर्षपूर्वक समस्त रानियोंको तथा श्रीराजकुमारोंको भी अपने महलसे शीघ्र बिदा कर दीजिये ॥१३॥१४॥

भगवान् श्रीशङ्करजी बोलेः-हे प्रिये ! श्रीवशिष्ठजी महाराजसे "ऐसाही होगा" कहकर, श्रीनिमिवंशरूपी शरीरमें मस्तकके समान श्रेष्ठ, पृथ्वीका पालन करनेवाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने उदास चित्त होकर सम्यक् प्रकारसे स्नेहमयी दीनवाणी द्वारा, महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीसे भगवान् श्रीवशिष्ठजीकी आज्ञा कथन की ॥१५॥

संश्रूय तां शोकसमाकुलाऽपि कथञ्चिदालम्बितधैर्ययष्टिः ।
अलङ्घनीयां च विचार्य राज्ञी तथेति सम्भाष्य तमाह सर्वाः ॥१६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे सर्वभूमण्डलभूपपत्न्यः ! कृताञ्जलिर्वः शिरसा नमामि ।
यदत्र कष्टं भवतीभिराप्तं । तत्क्षन्तुमेवार्हत मे कृपातः ॥१७॥
हे भानुवंशाम्बुजभास्करस्य प्राणप्रिया ! लोकपगीयमानाः ।
उदारकीर्त्तिप्रथितप्रभावाः किं स्तौमि वो मन्दमतिः सुभागाः ॥१८॥
मदर्थमुत्सृज्य पुरं प्रजाश्च ह्यङ्गीकृतं नैकविधं च दुःखम् ।
युष्माभिरत्रैव चिरेण राज्ञा प्रियात्मजैर्मन्त्रिभिरेव साकम् ॥१९॥
अहं न तत्प्रत्युपकर्तुमर्हा प्रयत्नशीला बहुजन्मभिर्वः ।
नताऽस्मि मूर्द्ध्ना कृपयाऽत एव न मेऽपराधान्कुरुतात्मसंस्थान् ॥२०॥
प्रस्थानवेलासमुपागतेति श्रुत्वाऽस्मि भूपेन विमूढ़कृत्या ।
इतः प्रयातेषु सुतेषु धैर्यं कथं ममैतेषु भवेत्स्वधाम ॥२१॥

श्रीवशिष्ठजी महाराजकी उस आज्ञाको सुनकर और उसे उल्लङ्घन करने योग्य न विचार कर, शोकसे व्याकुल हुई श्रीसुनयना अम्बाजी, किसी प्रकार धैर्य रूपी छड़ीका अवलम्ब ले कर श्रीमिथिलेशजी महाराजसे 'ऐसाही होगा'' कहकर, निमन्त्रणमें पधारी हुई समस्त महारानियों से बोलीं ॥१६॥

हे समस्त भूमण्डल राजाओंकी प्यारियो ! मैं हाथ जोड़कर आप लोगोंको नमस्कार करती हूं । आप लोगोंको यहाँ आने व रहनेसे जो कुछ कष्ट प्राप्त हुआ हो, उसे कृपा करके आप लोग क्षमा कीजियेगा ॥१७॥ हे सूर्य वंश रूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले श्रीकोशलेन्द्र-महाराजकी प्राण-प्यारियो ! आप लोगोंका प्रभाव अपनी उदार कीर्त्तिसे ही प्रसिद्ध है, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि लोकपाल सब आप लोगोंका यश गा रहे हैं । अतः हे सुन्दर भाग्य-सम्पन्नाओ! मैं तुच्छ मति आप लोगोंकी क्या प्रशंसा करूँ ? ॥१८॥

हा, आप लोगोंने, मेरे लिये अपने नगर व प्रजाको छोड़कर, मन्त्रियों तथा प्यारे पुत्रोंके सहित, बहुत दिनों तक यहाँ महाराजके साथ-साथ, अनेक प्रकारका कष्ट सहन किया है ॥१९॥

उस उपकारका बदला पूर्ण यत्न रखने पर भी मैं बहुत-जन्मोंमें नहीं चुका सकूँगी, इस लिये सिर झुका कर मैं आप लोगोंको प्रणाम करती हूँ, आप लोग मेरे अपराधोंको कृपया मनमें न रखियेगा ॥२०॥ यहाँ से आप लोगोंके प्रस्थान करनेकी शुभ घड़ी उपस्थित है, महाराज के द्वारा इस बात को सुनकर ही मैं, अपने कर्त्तव्यको विशेष रूपसे भूली जारही हूँ, तब यहाँ से इन चारो प्रिय पुत्रोंके अपने श्रीअवध धाम चले जाने पर, मुझे कैसे धैर्य होगा! ॥२१॥

नृपाङ्गना ऊचुः ।

न राज्ञि ! शोकाम्बुधिमग्नचित्तं विधेहि योगेश्वरपट्टकान्ते! ।
सुता तवेयं सकलेष्टदात्री शोकापहाऽऽह्लादवरैकमूर्त्तिः ॥२२॥
वक्तुं न पाद्मोऽप्यपराधयुक्तां त्वामर्हति ख्यातपवित्रकीर्त्ते ! ।
सिद्धाऽसि पुण्याऽसि शुचिव्रताऽसि सौभाग्यरत्नाम्बुधिविग्रहाऽसि ॥२३॥
दिनानि चैतानि गतानि येन सुखेन नित्योत्सवसंयुतेन ।
विस्मर्तुमर्हा न वयं कदाचित् तदित्यृतं विद्धि न च प्रशंसाम् ॥२४॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं गदन्त्यः सकलाः प्रजग्मुर्मिथो मिलित्वा पुनरेव भूयः ।
सुतान्नरेन्द्रस्य तदा सुनेत्रा समालिलिङ्गाश्रुमुखी सधैर्यम् ॥२५॥
पश्यन्त्यथो गात्ररुचिं मनोज्ञामुत्सङ्ग आरोप्य सुलालयन्ती ।
वात्सल्यपूर्णेन हृदेदमूचे रामं प्रियं तच्चिकुरान्स्पृशन्ती ॥२६॥

रानियाँ बोलीं:-हे योगविद्या पर पूर्ण अधिकार प्राप्त (श्रीमिथिलेशजी महाराज) की पटरानीजू ! आपकी ये श्रीललीजी सम्पूर्ण वाञ्छित मनोरथोंको देने वाली, समस्त शोकोंको छीन लेनेवाली और आल्हादकी उपमा रहित मूर्त्ति हैं, हे श्रीमहारानीजू ! इस लिये आप अपना चित्त शोक रूपी सागरमें न डुबाइये ॥२२॥

अपनी पवित्र कीर्त्तिसे त्रिभुवनमें विख्यात हे श्रीमहारानीजू! भगवान् विष्णुकी नाभि-कमलसे प्रकट हुये श्रीब्रह्माजी भी आपको अपराध युक्त कहनेको समर्थ नहीं हैं, तब हम लोगोंमें क्या शक्ति है ? जो आपको अपराधिनी मानकर क्षमाप्रदान करनेका साहस करें ? आप सम्पूर्ण साधनोंकी सिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं, पुण्य-स्वरूपा हैं, पवित्र ब्रत वाली हैं और सौभाग्य रूपी रत्न सागर की साक्षात् मूर्त्ति हैं ॥२३॥

हम लोगोंको यहाँ इतने दिवस जिस नित्योत्सव जन्य सुखसे व्यतीत हुये हैं, उसको हम कभी भी भुलानेको समर्थ नहीं हो सकतीं, यह आप सत्य जानिये, प्रशंसा नहीं ॥२४॥

भगवान शिवजी बोले:- हे प्रिये ! इस प्रकार प्रेमपूर्वक कथन करती हुई वे सभी रानियाँ परस्पर पुनःपुनः बार बार मिलकर प्रस्थित हुईं तब अश्रुपूर्णमुखी श्रीसुनयना अम्बाजीने धैर्य-पूर्वक श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको हृदयसे लगाया ॥२५॥

गोदमें लेकर, भली प्रकारसे लाड़ लड़ाती हुई, उनके श्रीअङ्गकी मनोहर छबिका दर्शन करती तथा वात्सल्य पूर्ण हृदयसे उनके केशोंको स्पर्श करती हुई वे प्यारे श्रीराम भद्रसे बोलीं ॥२६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

जानाम्यहं वत्स ! भवत्प्रसादात्त्वं योऽसि सच्चित्सुखराशिरूपः ।
श्रीरामभद्राम्बुजपत्रनेत्र ! स्वस्त्यस्तु ते गच्छ न विस्मरेर्माम् ॥२७॥
स्वस्त्यस्तु ते श्रीभरतोरुकीर्त्ते! स्वस्त्यस्तु ते लक्ष्मण! दीर्घबाहो! ।
स्वस्त्यस्तु शत्रुघ्न ! च ते सदैव स्मृतिं न मुञ्चेत ममापि वत्साः ॥२८॥

श्रीराम उवाच ।

नेयं हि शङ्का हृदये विधेया श्रद्धत्स्व भावानुगता वयं तत् ।
अस्मासु गूढं सततं ममत्वं कार्यं नमो वो भवतीभिरम्ब ! ॥२९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

त इत्थमाश्वास्य कुमारवर्या मुहुर्मुहुस्तामभिवाद्य ताश्च ।
नृपान्तिकं मातृभिरीयुरङ्गाप्रमेयकृच्छ्रेण तया विसृष्टाः ॥३०॥
तेष्वागतेष्वम्बुजलोचनेषु प्रियेषु सार्द्धं जननीभिरेव ।
श्रीकोशलेन्द्रस्तु गुरोर्निदेशादुत्थाय योगीश्वरमालिलिङ्ग ॥३१॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे कमलनयन ! श्रीरामभद्रजू ! आप जो हैं, आपकी कृपासे मैं जानती हूँ । आप सत् चित् सुखराशि (भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें एक रस रहने वाले, सब कुछ चैतन्यवान्, आनन्द भण्डार) स्वरूप ब्रह्म हैं आपका मङ्गल हो । आप जाइये पर मुझे भूलियेगा नहीं अर्थात् कृपा बनाये रखिएगा ॥२७॥

हे विशाल कीर्त्ति श्रीभरत लालजी ! आपका मङ्गल हो । हे बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले श्रीलखन लालजी! आपका मङ्गल हो । हे श्रीशत्रुघ्नलालजी ! आपका सदा ही मङ्गल हो । हे वत्सो ! मेरा स्मरण अवश्य रखियेगा भूलियेगा नहीं ॥२८॥

श्रीरामभद्रजी बोले:–हे श्रीअम्बाजी ! आपको अपने हृदयमें यह शङ्का कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि हम लोग सदा भावका ही अनुगमन करते हैं अर्थात् जो जिस भावसे हमारा भजन करता है, उसीके अनुकूल भावसे हम भी, उसका भजन करते हैं, यह आप विश्वास करें । और सदैव हम लोगोंके प्रति गुप्त ममता बनाये रखें, इस हेतु आप सभी माताओंको हमारा नमस्कार है ॥२९॥ चारो भैया, श्रीसुनयना अम्बाजीको इसी प्रकार आश्वासन प्रदान करके बारं बार उन्हें और उन निमि(राजपत्नियों)को प्रणाम करके, श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा अनन्त कष्ट पूर्वक विदा किये हुये वे, अपनी माताओंके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके पास आये ॥३०॥

माताओं सहित उन प्यारे कमललोचन राजकुमारोंके आजाने पर, श्रीवशिष्ठजी महाराज की आज्ञासे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज उठकर योगियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजसे हृदय लगाकर मिले ॥३१॥

आश्वासयन्नूच इदं वचस्तं विदेहवंशाधिपतिं नृपेन्द्रः ।
श्रीजानकीतातमुदारकीर्त्ति सुरेशसम्पूजितदीर्घबाहुः ॥३२॥

श्रीकोशलेन्द्र उवाच ।

प्रदीयतां मे भवता निदेशो गन्तुं ह्ययोध्यां निमिवंशभानो !
त्वं मा शुचो धर्मविदां बरिष्ठ ! प्रजापतीनां सुखमस्थिरं हि ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेति सम्भाष्य पुनर्यतात्मा तमब्रवीत्कोशलपालमुख्यम् ।
कृताञ्जलिः सन् प्रणिपत्य भूयो विवेकपाथोनिधिपूर्णचन्द्रः ॥३४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

प्रजेश्वराणां च विचार्य धर्मं न वारणायास्मि तवाहमर्हः ।
क्षमां प्रयाचे तदभूत्तु कष्टं यदत्र वासेन समं सुहृद्भिः ॥३५॥

श्रीकौशलेन्द्र उवाच ।

सुखं यदाप्तं वसता मयाऽत्र प्राप्तं न तच्चेन्द्रपुरं गतेन ।
अत्यद्भुताऽयोनिभवा सुपुत्री शं ते विधास्यत्यपि लाल्यमाना ॥३६॥

पुनः देवराज इन्द्रसे पूजनकी हुई जिनकी लम्बी भुजायें हैं, वे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज सर्वाभीष्ट प्रदायिनी कीर्त्तिवाले श्रीजनकनन्दिनीजूके पिता, विदेह वंशियोंके स्वामी, श्रीमिथिलेशजी महाराजसे आश्वासन प्रदान करते हुये बोले ॥३२॥

श्रीकोशलेन्द्र (दशरथजी-महाराज) बोले :–हे निमिवंशियोंमें सूर्यके समान चमकने वाले राजन्! आप हमें श्रीअयोध्याजी जानेके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये, शोक न कीजिये क्योंकि आप धर्मका रहस्य जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं, अत एव आप स्वयं जानते ही हैं कि, प्रजापतियों (राजाओं) का सुख स्थिर नहीं रहता ॥३३॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे प्रिये ! श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके इन वचनोंको सुनकर, ज्ञान रूपी समुद्रको पूर्ण चन्द्रके समान बढ़ाने वाले, श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने मनको रोककर श्रीकोशलेन्द्रजी महाराजसे "ऐसा ही होगा" कहकर पुनः प्रणाम करके, हाथ जोड़े हुये बोले ॥३४॥

हे राजन् ! प्रजापतियों के धर्मको विचारकर मुझे अब आपको रोकना उचित नहीं है, अत एव सुहृत्जनोंके सहित, यहाँ निवास करनेपर आपको जो कुछ कष्ट हुआ हो, उसके लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ ॥३५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस दीनता पूर्ण प्रार्थनाको सुनकर श्रीदशरथजी महाराज बोले हे राजन्! आप यह क्या कह रहे हैं ? मैंने यहाँ रहते हुये जो सुख प्राप्त किया है वह इन्द्रलोक जाने पर भी मुझे नहीं मिला था, अन्यत्रके लिये कहना ही क्या ? आपकी अयोनिसम्भवा (जो किसीके शरीरसे उत्पन्न नहीं हुई हैं वे) अद्भुत से परे परब्रह्म स्वरूपा श्रीललीजी, प्यार मात्र करनेसे निश्चयही आपका कल्याण करेंगी ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्येवमुक्तो मिथिलाधिराजः सत्याधिराजेन च सानुरागम् ।
प्रणम्य तं दाशरथीनुपेत्य प्राहेति संश्लिष्य मुहुर्मुहुस्तान् ॥३७॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

भद्रं हि वो भानुकुलप्रदीपा लोकाभिरामाद्भुतदिव्यदेहाः ! ।
वत्साः सुखं गच्छत चाप्ययोध्यां सुखप्रदाः स्यात पुरौकसां वै ॥३८॥
धन्यास्त एव श्रितपुण्यपुञ्जा येषां च वो दर्शनमन्वहं स्यात् ।
सुखं प्रदत्तं यदिहात्र मह्यं मनस्तदासक्तमथास्तु नित्यम् ॥३९॥

श्रीराजकुमारा ऊचुः ।

मा तात ! शोकं व्रज सूक्ष्मदृष्टे ! न विस्मृता ते कृपया भवेम ।
चिन्तामणिर्यो भवतोपलब्धः स सर्वचिन्तापहरोऽवधार्यः ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रीमैथिलेन्द्रो नृपसूनुभिश्च प्रोक्तस्तदैवं प्रणुतश्च भक्त्या ।
विष्टभ्य चात्मानममोघभावः प्रीत्याऽऽलिलिङ्गाथ पुनः पुनस्तान् ॥४१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे सुमते ! श्रीअयोध्यानाथजीके इस प्रकार अनुराग पूर्वक सान्त्वना देने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज उन्हें प्रणाम करके, चारो राजकुमारोंके पास जाकर बारम्बार हृदय लगाकर उनसे बोले ॥३७॥

हे सूर्यवंशरूपी भवनको विशाल दीपकके समान प्रकाशित करने वाले ! हे आश्चर्यमय अप्राकृत, समस्त भुवन–सुन्दर सुखद, शरीरधारी वत्सो ! आप लोगोंका मङ्गल हो । आप लोग सुखपूर्वक श्रीअयोध्याजी पधारिये, और वहाँके पुरवासियोंको सुख प्रदान कीजिये ॥३८॥

जिन्हें आपका दर्शन नित्यप्रति प्राप्त होगा, वे श्रीअयोध्यानिवासी बड़ेही धन्य और पुण्यकी राशि हैं । आप लोगोंने यहाँ रहकर जो मुझे सुखप्रदान किया है, मेरा मन उसीमें सदा आसक्त बना रहे ॥३९॥ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस प्रार्थनाको सुनकर चारो श्रीराजकुमारजी बोले–हे तात ! आप तो सूक्ष्म (ज्ञान) दृष्टि वाले हैं इस लिये दुखी न हों । कृपया हम लोगोंको बिसारियेगा नहीं । आपको जो चिन्तामणि प्राप्त हुई है उसे आप सब चिन्ताओंकी हरने वाली समझिये ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज इतनी कथा सुनाकर बोले–हे प्रिये ! जब श्रीचक्रवर्ती कुमारोंने इस प्रकार समझाया, पुनः प्रेम पूर्वक प्रणाम किया, तब जिनके सभी भाव सफल हैं, ऐसे अमोघ भाव श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने हृदयको सम्हाल कर उन्हें बार–बार प्रेमपूर्वक हृदय लगाया ॥४१॥

प्रणम्य भूयो नृपतिर्बशिष्ठं द्विजांश्च वृद्धानपि मन्त्रिणश्च ।
सत्कृत्य सर्वान् विधिना स्तवैश्च प्रसाद्य पूर्णां स कृपां ययाचे ॥४२॥

तदा वशिष्ठेन महर्षिणाऽसौ नतः शतानन्द उदारतेजाः ।
वियोगतापापहरो नृपस्य भवेरिति प्रोक्त उवाच नम्रः ॥४३॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

आज्ञानुकूलो भगवन् ! सदा ते मुदाऽऽचरेयं भवतः प्रसादात् ।
कृपा विधेया नृपतौ च राज्ञ्यां पुत्र्यां सदा ते च विदेहवंशे ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

यै राधिताऽऽराध्यतमा परेषां कस्यानुकम्पाऽसुलभेह तेषाम् ।
स बाढ़मुक्त्वा परिरभ्य भूपमालिङ्गयामास च तस्य बन्धून् ॥४५॥

पुनर्विदेहः सह बन्धुभिर्वै श्रीकोशलेन्द्रं प्रणनाम भक्त्या ।
श्रीराजपुत्रानुरसा निगूह्य प्रेमातुरोऽभूत्पुनरेव राजा ॥४६॥

तदनन्तर श्रीवशिष्ठजी महाराजको तथा श्रीअयोध्याजीके सभी ब्राह्मण, वृद्ध व मन्त्रियोंको श्रीमिथिलेशजी महाराज प्रणाम करके, सभीका विधिपूर्वक सत्कार कर, अपने प्रशंसा युक्त वाक्योंसे उन्हें प्रसन्न करके सभीसे पूर्ण कृपाकी याचना की ॥४२॥

पुनः उदार तेज युक्त, श्रीशतानन्दजी महाराजके नमस्कार करने पर महर्षि श्रीवशिष्ठजी महाराज बोलेः-आप "श्रीमिथिलेशजी महाराजकी वियोग जनित तापको हरण करते रहियेगा" तब उन्होंने प्रणाम करके श्रीवशिष्ठजीसे यह नम्र प्रार्थना की ॥४३॥

हे भगवन् ! मैं आपकी कृपासे प्रसन्नता पूर्वक सदा, आपके अनुकुल ही आचरणशील रहूँगा, पर आपभी श्रीमिथिलेशजी, श्रीसुनयना महारानीजो व श्रीललीजी तथा इस विदेहवंशके ऊपर अपनी कृपा सदा बनाये रहियेगा ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—अहह ! जिनके ऊपर ब्रह्मादि देवताओंकी परम आराधनीया श्रीसर्वेश्वरीजी ही प्रसन्न हैं, उन निमि वंशियोंके लिये भला इस लोकमें किसकी कृपा दुर्लभ रहेगी ? उनकी इस प्रकारकी प्रार्थना सुनकर श्रीवशिष्ठजो महाराजने श्रीशतानन्दजी महाराज से "ऐसा ही होगा" कहकर तथा श्रीमिथिलेशजोको बारम्बार हृदयसे लगाकर उनके भाइयोंको भी, आलिङ्गन प्रदान किया ॥४५॥

बारम्बार पृथ्वीपति श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने भाइयोंके सहित श्रीदशरथजी महाराज को बड़े प्रेम पूर्वक प्रणाम किया । पुनः श्रीराजकुमारोंको हृदयसे लगाकर प्रेम विह्वल होगये॥४६॥

सम्बन्धिनो लब्धधृतिः समर्च्य श्रीरामरूपाम्बुधिमग्नचित्तः ।
सभार्यकान् भूमिपतीनशेषान् प्रगन्तुकामान् समतोषयत्सः ॥४७॥
उपायनं नैकविधं प्रदाय श्रुतीडितः प्रीतितया ऽखिलेभ्यः ।
सुपुष्कलं देवि च सानुरोधं ददर्श रामं समुपेत्य शीघ्रम् ॥४८॥
पुनः पुनः प्रार्थनयोरुभक्त्या स मन्त्रिभिर्भूमिपतिः किलोक्तः ।
प्रचोदितस्तर्हि महामुनिभ्यां कथञ्चिदाज्ञां प्रददौ हि गन्तुम् ॥४९॥
प्रबोध्य रामेण तदा नृपेन्द्रः पुरात्सुदूरं समुपागतोऽसौ ।
निवारितस्तं हृदि सन्निधाय सह प्रजाभिः पुरमाविवेश ॥५०॥
आश्वास्य तैस्तैर्मधुरैर्वचोभिस्तं वै महायोगिनमात्मनिष्ठम् ।
समर्चितास्ते मुनयोऽपि सर्वे ह्यस्ताविषुः श्रीमिथिलां प्रणम्य ॥५१॥

ऋषय ऊचुः

जय जनकात्मजासुभगजन्मधरे ! मिथिले ! तव महिमानमीशहरिपद्मभवादिसुराः ।
यतमनसा गृणन्ति नितरामनुरागभरा न त इह पारमीयुरमरास्तु कदापि शुभे ! ॥५२॥

कुछ देर बाद जब उनके हृदयमें धैर्यकी प्राप्ति हुई, तब श्रीरामभद्रजूके रूप-समुद्रमें मग्न चित्त श्रीमिथिलेशजी महाराज, प्रस्थानके लिये उद्यत अपने सम्बन्धी सभी महारानियोंके सहित राजाओंको विधिपूर्वक सन्तुष्ट करने लगे ॥४७॥

जिनकी वेद भगवान् भी प्रशंसा करते हैं, वे श्रीमिथिलेशजी महाराज सभीको बड़ी प्रसन्नता के साथ हठपूर्वक पर्याप्त मात्रामें अनेक प्रकारकी भेट प्रदान करके शीघ्र श्रीरामभद्रजूके पास जाकर उनका दर्शन करने लगे ॥४८॥ जब मन्त्रियोंने बारम्बार भक्तिपूर्वक प्रार्थनाकी, तब महामुनि श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीशतानन्दजी महाराजकी प्रेरणासे विवश होकर उन्होंने किसी प्रकार (बड़े कष्ट पूर्वक) प्रस्थान करनेकी आज्ञा प्रदान की ॥४९॥

प्रजाके सहित श्रीमिथिलेशजी-महाराज जब अपने पुरसे बहुत दूर आगये, तब श्रीराम-भद्रजूने आश्वासन प्रदान करके उन्हें वापस लौटाया तब वे अपने हृदयमें उन्हें भली प्रकार से विराजमान करके, पुरमें प्रवेश किये ॥५०॥

ब्रह्मनिष्ठ, महायोगी श्रीमिथिलेशजी-महाराजको मधुर वचनोंके द्वारा आश्वासन प्रदान करके वे उपस्थित भगवत्तत्त्व-मनन शील महर्षिवृन्द भी, उनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजित हो, श्रीमिथिलाजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥५१॥

ऋषि बोले:—हे श्रीजनकनन्दिनीजूकी सुन्दर जन्म-भूमे, श्रीमिथिलाजी ! आपकी महिमाको अनुराग-पूर्वक श्रीभोलेनाथजी, श्रीविष्णुभगवान्, श्रीब्रह्माजी आदि देव-वृन्द, एकाग्र मनसे सतत गाते हैं, तथापि कभी वे पार (अन्त) नहीं पाते, अतः हे मङ्गल स्वरूपे ! आपकी जय हो ॥५२॥

तव महिमानमीश इह को मिथिले ! गदितुं तव जठरं यतोऽभिलषितं हि परात्परया ।
सुरनृपयोषितामनवलोक्य दृशाऽपि मुदा गिरितनयारमाप्रभृतिपूज्यपदाम्बुजया ॥५३॥

प्रतिपलमप्ययं हि विनयस्त्वयि चास्ति परो दिश जनकात्मजाचरणपङ्कजयोः सुरतिम् ।
त्रिभुवन ईदृशं न सुखमम्ब ! कदापि जनैः समयितमस्ति कर्णगतमेव न नो ह्यभवत् ॥५४॥

न हि तव यावदेव करुणा समुदेति परा कथमपि तावदेव नहि राजसुताप्तिरिह ।
तव करुणैषिणो द्रुहिणविष्णुहरादिसुरा अतिकुशला नमन्ति निवसन्ति गृणन्ति यशः ॥५५॥

निमिकुलनन्दिनी यमनुपश्यति सार्द्रदृशा स हि तव लब्धिमेति मिथिलेऽर्जितपुण्यचयः ।
असि जनकात्मजाप्रियतमा त्वममोधनुते ! मुहुरिह ते नमः सुखय नः सदये ! जननि ! ॥५६॥

हे श्रीमिथिलाजू! श्रीपार्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियाँ ही वस्तुतः जिनके श्रीचरण-कमलोंकी पूजा करनेको समर्थ हैं, वे सर्वेश्वरी श्रीसाकेतविहारिणी श्रीकिशोरीजीने, देवताओं व राजाओंकी स्त्रियोंके जठर (पेट या गर्भ) को दृष्टि मात्रसे भी अपने ग्रहण करने योग्य न देख कर आपके उदरको ही योग्य समझकर प्रसन्नता पूर्वक उसी से प्रकट होना स्वीकार किया है, अत एव भला इस जगत्में आपकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है?॥५३॥

हे अम्ब ! आप, श्रीमिथिलेश नन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंमें हमें सुन्दर, अनुराग प्रदान कीजिये, यही प्रतिपल आपसे हम लोगोंकी मुख्य प्रार्थना है, जैसा सुख आपके यहाँ स्वाभाविक प्राप्त है वैसा सुख–सौभाग्य तीनों लोकोंमें कभी न किसीने पाया है, न हम लोगोंने कभी, कानोंसे सुना है ॥५४॥

जब तक आपकी महती कृपाका उदय नहीं होता, तब तक किसी प्रकारसे भी इस लोकमें श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजीकी प्राप्ति नहीं होती। इसी लिये परम चतुर ब्रह्मा, विष्णु महेशादि, देवगण, आपकी कृपाकी अभिलाषासे सदैव आपको नमस्कार करते हैं, तथा आपमें निवास करते हैं। और सदा ही आपकी महिमा का गान करते हैं ॥५५॥

हे श्रीमिथिलाजी! निमि-कुलको आनन्द प्रदान करने वाली सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी, जिसको दयापूर्ण दृष्टिसे अवलोकन कर लेती हैं, उसी सञ्चित पुण्य राशि, सौभाग्यशाली को ही आपकी प्राप्ति होती है, क्योंकि आप श्रीजनकनन्दिनीजूकी परम प्यारी हैं! हे दयालो! माँ! आपके लिये बारंबार नमस्कार है। आपकी स्तुति व्यर्थ नहीं जाती, अतएव(पूर्वोक्त प्रार्थनानुसार श्रीकिशोरीजी के चरणकमलोंमें प्रेम प्रदान करके) हम लोगोंको सुखी कीजिये ॥५६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवं स्तुत्वा समुखमगमन्यज्ञसंवीक्षणाय प्राहूता ये परममुनयो ब्राह्मणा धर्मनिष्ठाः । राजानोऽन्ये विमलचरिताः शिल्पिनस्तद्वदेव प्रागच्छंस्ते मुदितमनसः सत्कृता भावपूर्वम् ॥५७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीमिथिलाजीकी स्तुति करके भगवत्तत्व मननशील वे महर्षि वृन्द सुखपूर्वक विदा हुये । इसी प्रकार श्रीमिथिलेशजी महाराज कीं पुत्रीष्टि-यज्ञ दर्शनार्थ निमन्त्रणमें आये हुये, अन्य ब्राह्मण, शुद्धाचरणशील धर्मात्मा राजा, शिल्पकारी आदि सभी लोग, श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा भाव पूर्वक सत्कार पाकर प्रसन्न, मनसे बिदा हो, अपने-अपने देशोंको पधारे ॥५७॥

इति पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अन्नप्राशनोत्सव पर विदुषी रूपमें आकर ब्रह्माजी द्वारा श्रीकिशोरीजीका समङ्गलानुशासन तथा गुण-प्रभाव वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

प्रस्थितेषु च सर्वेषु विदेहनृपनन्दिनी । वियोगतापतप्तानां संबभूव परागतिः ॥१॥
मासि मासि नवम्यां च तस्या जन्ममहोत्सवम् । कुर्वन्ती श्रद्धयोपेता न राज्ञी तृप्तिमृच्छति ॥२॥
पञ्चमे मासि संप्राप्ते तदन्नप्राशनोत्सवः । विहितः सर्वलोकानां परमानन्ददायकः ॥३॥
आजगाम तदा ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । अशक्तः संस्तदा स्थातुं पुरीं श्रुत्वा जयध्वनिम् ॥४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये सपरिवार श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके सहित सब लोगोंके विदा हो जाने पर श्रीरामभद्रजूके वियोगतापसे तप्त लोगोंके लिये, श्रीकिशोरीजी परम आधार हुईं ॥१॥ श्रीसुनयना अम्बाजी प्रति मास शुक्ल नवमीके दिन परम श्रद्धापूर्वक अपनी श्रीललीजीका जन्मोत्सव मनाती हुई कभी तृप्त नहीं होतीं । अर्थात् मैंने कुछ भी उत्सव नहीं मनाया, इसी अतृप्तिकी भावना उनके हृदयमें सदा बनी रहती ॥२॥

पाँचवें मासमें, सभी लोकोंका परम-आनन्द-प्रदायक, श्रीललीजीका अन्न-प्राशन-महोत्सव मनाया गया ॥३॥ सभी लोगोंके बाबा श्रीब्रह्माजीभी जयघोषको सुनकर आनन्दातिरेकके कारण ब्रह्म लोकमें विराजमान रहनेमें असमर्थ हो, उसी समय श्रीमिथिला पुरीमें आ पधारे ॥४॥

विदुषीरूपमास्थाय मनोज्ञं परमाद्भुतम् । प्रविवेश नृपागारं शतस्त्रीभिः समाकुलम् ॥५॥
द्रष्टुमिच्छन् महाप्राज्ञो मैथिलीं शिशुविग्रहाम् । योषिद्रूपधरैर्देवैर्महाराज्ञ्या व्यदृश्यत ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

तस्यास्तेजोऽभिभूता सा सुचित्रामिदमब्रवीत् । केयं देवि ! प्रपश्याराद‍ानयात्र च मेऽन्तिकम् ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्याज्ञप्तैत्य तां नत्वा सा पप्रच्छ कृताञ्जलिः । काऽसि त्वं कुत आयाता ह्यभिप्रायेण केन च ॥८॥
इति मां ज्ञातुमिच्छन्ती महाराज्ञी व्यसर्जयत् । तत्त्वं त्वं वद मे प्रीता कृपया त्वां नमाम्यहम् ॥९॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

नाभिपद्मभवेत्युक्ता दैवज्ञा कामरूपिणी । दर्शनार्थमहं प्राप्ता महाराज्ञ्या निजालयात् ॥१०॥
इमाः शिष्यास्तु मे विद्धि मन्निदेशानुवर्तिनीः । गच्छ तां सुभगे! पृष्ट्वा कुरु नेतुं कृपां हि माम् ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

राज्ञी श्रुत्वेप्सितं तस्याः सुप्रीता फुल्ललोचना । आनेतुं सा मुदाऽऽदेशं ददौ तामविलम्बतः ॥१२॥
सुचित्रा तां पुनर्गत्वा महातेजःस्वरूपिणीम् । इदमाह वचो नत्वा सादरं सुषमाञ्चिता ॥१३॥

परम आश्चर्यमय ज्योतिषिनी पण्डितानी का मनोहर वेष धारण करके, सैकड़ों स्त्रियों से भरे हुये राजभवनमें जा घुसे ॥५॥ स्त्रियोंका रूप बनाये हुये, देवताओंके समेत, शिशु रूपमें विराजमान श्रीमिथिलेश ललीजूके दर्शनोंकी इच्छा वाले उन महाबुद्धिमान् श्रीब्रह्माजी को श्रीसुनयना महारानीजीने देखा ॥६॥

ब्रह्माजीके उस स्वरूपके तेजसे प्रभावित हो श्रीसुनयना महारानीजी, रानी श्रीसुचित्राजीसे बोलीं:—हे देवि ! पाससे देखिये, यह कौन है ? पुनः इसे यहाँ मेरे समीपमें ले आइये ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—इस प्रकारकी आज्ञा पाकर श्रीसुचित्रारानीजीने ज्योतिषिनीजीके पास जाकर, प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर पूछा-आप कौन हैं ? यहाँ कहाँसे और किस प्रयोजनसे पधारी हैं ? यही जाननेके लिये हमें श्रीमहाराणीजीने आपके पास भेजा है । मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आप प्रसन्न होकर कृपा पूर्वक मेरे पूछे इस रहस्यका वर्णन कीजिये ॥८॥९॥

श्रीब्रह्माजी बोले:—मैं कामरूपिणी ज्योतिःशास्त्रको, जानने वाली, "नाभिपद्मभवा" नामसे पुकारी जाती हूँ, श्रीमहाराणीका दर्शन करनेके लिये ही मैं अपने घरसे यहाँ आई हूँ ॥१०॥

और आज्ञानुसार चलनेवाली, इन सभीको मेरी शिष्यायें जानिये। हे सुन्दरी ! जाइये, श्रीमहारानीजी से पूछकर, उनके पास हमें ले चलने की कृपा कीजिए ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! श्रीसुनयना-महारानीजी, उन ज्योतिषिनीजीके अभिप्रायको जानकर बड़ी प्रसन्न हुईं, उनके नेत्र खिल गये, अतः उन्हें शीघ्र ही अपने पास लानेके लिये उन्होंने आनन्द-पूर्वक आज्ञा प्रदान की ॥१२॥

उन परम सौन्दर्य सम्पन्ना, रानी श्रीसुचित्राजी, श्रीसुनयना-महारानीकी आज्ञा पाकर, महातेजस्वरूपिणी नाभिपद्मभवाजीके पास पुनः जाकर, आदर-पूर्वक यह बोलीं ॥१३॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

एहि देवि! मया सार्द्धं गच्छ सा त्वां दिदृक्षते । तयाऽऽज्ञप्ताऽस्मि संप्राप्ता भवती यां दिदृक्षते ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

महाकृपेति तामुक्त्वा दैवज्ञा सा प्रहर्षिता । शिष्याभिरावृता राज्ञीमुपागच्छत्तया सह ॥१५॥
तां समुत्थाय धर्मज्ञा राज्ञी सुनयनाऽनघे ! । विधाय स्वागतं तस्याः स्वासने संन्यवेशयत् ॥१६॥
विधिवत्पूजनं कृत्वा लालयन्ती पुनः सुताम् । उवाच परमोदारा विनीतेति च तां प्रति ॥१७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

इदं तेजस्तवाख्याति महत्वं ते दुरासदम् । स्वयमेव हि दैवज्ञे ! नापेक्षा श्रवणाय तत् ॥१८॥
मम भाग्योदयेनैव समाकृष्टा त्वमागता । अन्यथा मन्निकेते ते किमागन्तुं प्रयोजनम् ॥१९॥
पश्य मे पुत्रिकां देवि ! भविष्यं वक्तुमर्हसि । त्वयि मे महती श्रद्धा सञ्जाता दर्शनेन हि ॥२०॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

भद्रं तेऽस्तु महाभागे ! करवाणीप्सितं तव । प्राङ्मुखी भव विस्तार्य सुतापादसरोरुहे ॥२१॥

हे देवि! आइये मेरे साथ चलिये, आप जिनका दर्शन करना चाहती हैं, वे भी आपके दर्शनों की इच्छा कर रही हैं, एतदर्थ उनकी आज्ञासे मैं आपके पास (बुलाने) आई हूँ ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे प्रिये! श्रीदैवज्ञाजी, श्रीसुचित्रारानीके बचनोंको सुनकर उनसे "बड़ी कृपा है" ऐसा कहकर, महान् हर्ष को प्राप्त हो, शिष्याओंसे घिरी हुई, वे उनके सहित श्रीसुनयना महारानीजीके पास पधारीं ॥१५॥

धर्मके रहस्यको जानने वाली श्रीसुनयना महारानीजीने उठकर, भली प्रकारसे स्वागत करके उन्हें अपने आसन पर, बिठा लिया पुनः विधि-पूर्वक उनका पूजन करके, अपनी श्रीललीजीका दुलार करती हुई, वे परम-उदार स्वभाव सम्पन्ना, श्रीमहारानीजी, उनसे विनय पूर्वक बोलीं –॥१६॥१७॥

हे श्रीदैवज्ञाजी! आपका यह महान् तेज ही, आपकी महिमाका स्वयं वर्णन कर रहा है, इस लिये उसे सुननेकी हमें आवश्यकता ही नहीं है ॥१८॥

आप मेरे भाग्यके उदित प्रभावसे ही खिचकर यहाँ स्वयं पधारी हैं, अन्यथा आपको मेरे भवनमें आनेका प्रयोजन ही क्या ? ॥१९॥

हे देवि! दर्शनमात्रसे ही आपके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा हो गयी है, इस लिये आप श्रीललीजी को देखिये और इनका भविष्य कथन कीजिये ॥२०॥

श्रीसुनयना महारानीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीदैवज्ञाजी बोलीं:–हे महाभागे ! आपका कल्याण हो । मैं अवश्व आपकीइच्छा को पूरी करूँगी । आप अपनो श्रीललीजीके चरणकमलों को फैला कर (उन्हें गोदमें लिये हुई) अपना मुख पूर्वकी ओर कर लीजिये ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमाशंसितं वाक्यं वैकाशी सा निशम्य तत् । बभूव प्राङ्मुखी हृष्टा प्रफुल्लकमलेक्षणा ॥२२॥

चिरमालोक्य शिश्वङ्गीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् । मातुरङ्कगतां दिव्यां दैवज्ञाऽऽसीत्सुविह्वला ॥२३॥

संस्तभ्य पुनरात्मानं प्रेमसंरुद्धया गिरा । दत्तश्रीपादपाथोजतलदृष्टिस्तु सा ऽब्रवीत् ॥२४॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

वन्दे समस्तजगतां जननीं वरेण्यां सर्वेश्वरी श्रुतिशिरोभिरुदीर्यमाणाम् ।
कारुण्यपूर्णसरसीरुहपत्रनेत्रां रामप्रियां प्रथितकीर्त्तिमतर्क्यरूपाम् ॥२५॥
नाहं हरिर्न गिरिशो न सहस्रवक्त्रो वाणीगणेशगुरुशुक्रमहर्षयोऽपि ।
यस्याः प्रभावमनिशं कथयन्त आपुःपारं न तीव्रमतयो नम एव तस्यै ॥२६॥
यस्याः कलांशकलया किल माययेदं सञ्चाल्यते प्रबलसंसृतिचक्रमञ्जः ।
यन्नामसाररसिका भुवि भूरिभागा गच्छन्त्यनामयपदं प्रणता वयं ताम् ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये! श्रीदैवज्ञाजी द्वारा इस प्रकारके कहे हुये बचनोंको सुनकर, विकाशा पुरीमें जन्मी हुई श्रीसुनयना महारानीजीके कमलके समान दोनों नेत्र पूर्ण खिल गये, और उन्होंने हर्ष युक्त हो, अपना मुख पूर्वकी ओर कर लिया ॥२२॥

श्रीअम्बाजीकी गोदमें, दिव्य शिशु अङ्गों वाली, सत्-चित्-आनन्दस्वरूपा, अनन्त ब्रह्माण्ड-नायिका, सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी का दर्शन करके श्रीदैवज्ञाजी बहुत देर तक विह्वल रहीं पुनः अपने हृदयको सम्हालकर, श्रीललीजीके कमलवत्-चरण-तलवोंमें दृष्टि रखकर वे प्रेम-रुद्ध (रुकी) वाणीसे बोलीं :–॥२३॥२४॥

जो समस्त चर-अचर प्राणियोंकी माता, सभीसे श्रेष्ठ, सभीपर शासन करनेवाली, करुणा रससे पूर्ण कमलदलके समान विशाल लोचना हैं, जिनकी कीर्त्ति, सर्वत्र प्रसिद्ध है, स्वरूप तर्क शक्तिसे परे हैं, वेदान्त जिनका वर्णन कर रहे हैं, उन श्रीरामवल्लभाजीको मैं प्रणाम करती हूँ ॥२५॥ जिनकी महिमाको रात्रिदिवा वर्णन करते-करते न मैं, न भगवान् श्रीहरि, न शिवजी, न सहस्र मुख(शेष)जी न सरस्वतीजी, न गणेशजी, और न(देवाचार्य)श्रीवृहस्पतिजी, न(दैत्याचार्य) श्रीशुक्रजी न महर्षिवृन्द कभी पार पासके, उन श्रीरामप्रियाजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥२६॥

जिनकी कला (शक्ति) की अंशमात्र शक्ति रूपी माया, इस संसार रूपी प्रबल चक्रको अनायास चलाया करती है तथा जिनके नाम रूपी सारके रसास्वादन करने वाले, बड़भागी लोग सर्वव्याधि रहित, भगवद्धाम (श्रीसाकेत) को अनायास प्राप्त होते हैं, उन सर्वेश्वरी श्रीरामवल्लभाजूको हम प्रणाम करते हैं ॥२७॥

यस्या विना करुणया करुणाब्धिमूर्त्तेः प्राप्तिः कथञ्चिदिह दाशरथेर्न हि स्यात् ।
सा सर्वदाऽनुपमनित्यपवित्रकेलिः सच्चिन्मयी सुखनिधिः शरणं ममास्तु ॥२८॥
या चोदयाय जगतां मनसाऽप्यगम्या योगीश्वरक्रतुभिषात्तशिशुस्वरूपा ।
दृष्टिगता समभवत्कृपया ममाद्य प्रीता निसर्गसदया मयि साऽस्तु नित्यम् ॥२९॥
नवनीतमृदुस्निग्धतनुध्येयाम्बुजाङ्घ्रये । स्वस्ति स्याच्च शशिश्रेणिविलसन्नखपङ्क्तये ॥३०॥
मङ्गलं दिव्यचिह्नायै मङ्गलं पद्मपाणये । कम्बुकण्ठ्यै सुकर्णायै मङ्गलं शिशुमूर्त्तये ॥३१॥
पद्मपत्रपलाशाक्ष्यै तनुदत्यै च मङ्गलम् । मङ्गलं चारुविम्बोष्ठ्यै सुनासायै च मङ्गलम् ॥३२॥
मुकुराभकपोलायै सुस्मितायै च मङ्गलम् । दीर्घोन्नतसुभालायै सूक्ष्मकेश्यै सुमङ्गलम् ॥३३॥
स्वस्ति वै मिथिलानाथगूढप्रेमैकमूर्त्तये । श्रीमत्सुनयनोत्सङ्गभूषणाय सुमङ्गलम् ॥३४॥

जिनकी कृपाके बिना करुणामूर्त्ति श्रीदशरथनन्दनजूकी प्राप्ति, किसीको किसी प्रकार भी नहीं होती । जिनकी क्रीडा सदा ही उपमा रहित, एक रस रहनेवाली व पवित्र है, वे सत् चित्-मयी सुखोंकी निधि (भण्डार) सर्वेश्वरी श्रीरामवल्लभाजू मेरी रक्षा करें ॥२८॥

जिनका मन भी मनन नहीं कर सकता, अन्य इन्द्रियोंकी बात ही क्या ? ऐसी होकर भी जिन्होंने जगत्के कल्याणके लिये योगीश्वर (योगियोंमें सर्वोत्तम) श्रीमिथिलेशजी महाराजके यज्ञके बहाने शिशु रूपको धारण किया है, और आज कृपाकरके मेरी आँखोंके सामने विराज रही हैं, वे कारण, रहित, दयामयी, श्रीरामवल्लभाजू मेरे प्रति सदा प्रसन्न रहें ॥२९॥

मक्खनके समान कोमल, चिकने, ध्यान करने योग्य, कमलके समान जिनके सुकोमल-मनोहर छोटे श्रीचरण हैं, चन्द्र पङ्क्तिके शदृश शोभायमान जिनके नखोंकी पङ्क्ति है, उन शिशु-स्वरूपा श्रीरामवल्लभाजूका मङ्गल हो ॥३०॥

जिनके सभी चिह्न दिव्य हैं उन श्रीललीजीका मङ्गल हो । कमलके समान सुन्दर सुकोमल जिनके हाथ हैं उन श्रीललीजूका मङ्गल हो, शङ्खके सदृश तीन रेखाओं युक्त कण्ठ व सुन्दर कानवाली शिशुविग्रह धारिणी श्रीलाडिलीजी का मङ्गल हो ॥३१॥

कमलदलके समान विशाल नेत्र व छोटी–छोटी दन्त पंक्तिवाली श्रीजनकदुलारीजूका मङ्गल हो । सुन्दर विम्बाफलके समान अरुण(लाल)ओष्ठ व सुन्दर नासिका वाली श्रीविदेहकुमारीजीका सदा मङ्गल हो ॥३२॥

शीशाके समान प्रतिविम्ब ग्रहण करने वाले सचिक्कण (गोल) कपोल और सुन्दर मुस्कान वाली श्रीलाडिलीजूका मङ्गल हो । विशाल व ऊँचे सुन्दर मस्तक तथा महीन कुंचित केशवाली श्रीसुनयना हृदय नन्दिनीजूका मङ्गल हो ॥३३॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके गुप्त प्रेमकी उपमा रहित मूर्त्ति तथा श्रीसुनयनामहारानीजी के गोदकी भूषण, स्वरूपा श्रीसाकेतविहारिणी श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३४॥

मङ्गलं मृदुसर्वाङ्ग्यै स्वीक्षणायै सुमङ्गलम् । मङ्गलं कलहास्यायै मङ्गलं विधिपूर्त्तये ॥३५॥
मङ्गलं रसरूपिण्यै भूमिजायै सुमङ्गलम् । मङ्गलं नृपनन्दिन्यै मङ्गलं मङ्गलाब्धये ॥३६॥
स्वस्ति वै मोदवर्षिण्यै जितमाधुर्यमूर्त्तये । स्वस्ति स्यान्महनीयानां गुणानामेकराशये ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्येवं मङ्गलं कृत्वा कृतार्थेनान्तरात्मना । दैवज्ञा श्रुतिसारज्ञा जगादेदं शुभं वचः ॥३८॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

इयं सर्वगुणोपेता सच्चिदानन्दविग्रहा । सुता तव महाभागे ! सर्वमङ्गललक्षणा ॥३९॥
कर्त्री च कारयित्री च नियन्त्री परमाश्रयः । ब्रह्माण्डानामनन्तानामविज्ञातगतिः परा ॥४०॥
सर्वसौभाग्यसम्पन्ना सर्वसौभाग्यदायिनी । सर्वमङ्गलमाङ्गल्या सर्वदेवनमस्कृता ॥४१॥
शरण्या सर्वलोकानां पुण्यश्लोका परावरा । भूतादिमध्यनिधना मुनिध्येयपदाम्बुजा ॥४२॥

सभी अङ्ग सुकोमल, तथा मनोहर चितवन वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो । सुन्दर मनोहर मुस्कान वाली श्रीआह्लादिनीजूका सदा मङ्गल हो । समस्त विधियोंकी पूर्त्ति स्वरूपा अवनि कुमारीजूका मङ्गल हो ॥३५।

रसस्वरूपिणी श्रीलाडलीजूका मङ्गल हो, श्रीभूमिसुताजीका सुन्दर मङ्गल हो । नृपति नन्दिनीजूका मङ्गल हो । श्रीमङ्गलसागराजूका सदाही मङ्गल हो ॥३६॥

अपनी छबि-माधुरीसे माधुर्यमूर्त्तिको पराजित करने वाली श्रीमोदवर्षिणीजूका सदा मङ्गल हो। पूजनीय गुणोंकी उपमा रहित सर्वोत्तम राशि स्वरूपा श्रीकिशोरीजीका सदा मङ्गल हो ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे प्रिये! इस प्रकार वेदतत्त्वको जानने वाली श्रीदैवज्ञाजीने प्रसन्न अन्तः करणसे, श्रीमिथिलेश दुलारीजीका मङ्गल वाचन करके श्रीसुनयना अम्बाजीसे बोलीं ॥३८॥ हे महासौभाग्य शालिनी श्रीमहारानीजी ! आपकी ये श्रीललीजी सब गुणोंसे युक्त सत्, चित् आनन्दस्वरूपा हैं; इनके सभी लक्षण मङ्गलमय हैं ॥३९॥

ये ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि रूपोंसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, पालन व संहार करने वाली तथा अन्तर्यामिनी (ब्रह्म) स्वरूपसे स्वयं कराने वाली एवं सभीको विविध प्रकारके कार्योंमें नियन्त्रित रखने वाली, सभीकी परम आधार स्वरूपा, सबसे परे हैं, तथा इनकी महिमाको आज तक कोई भी नहीं जान पाया ॥४०॥

ये सभी प्रकारके सौभाग्योंसे युक्त तथा सभी प्रकारका सौभाग्य-प्रदान करनेवाली, सब मङ्गलोंकी मङ्गलस्वरूपा, तथा सभी देवताओंसे नमस्कार की हुई हैं ॥४१॥

ये श्रीललीजी सभी प्राणियोंकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ, पुण्यचरित वाली, ब्रह्मस्वरूपा हैं इनका वास्तवमें न कहीं आदि है, न मध्य है, और न कहीं अन्त ही है, इनके श्रीचरण-कमल तो मुनियों द्वारा सदा ध्यान करने योग्य हैं ॥४२॥

अनन्तैश्वर्यसंयुक्ता जगदानन्दकारिणी । यज्ञवेदिसमुद्भूता सुतेयं कुलदीपिका ॥४३॥
श्रुतिगीतयशोगाथा सर्वलोकेषु विश्रुता । सात्वतां परमाराध्या सर्वज्ञा सर्वसिद्धिदा ॥४४॥
सर्वभूतहिता नम्रा सर्वजीवानुकम्पिनी । शरच्चन्द्रमुखी चेयं परिभूतमहाच्छबिः ॥४५॥
अप्रमेयक्षमाम्भोधिरप्रमेयगुणाम्बुधिः । अप्रमेयाद्भुताशक्तिरविलक्षणवैभवा ॥४६॥
भविष्यति सुतेयं तेऽप्रमेयानन्दवर्षिणी । ह्लादिनी जगतां नित्यमनवद्या यशस्करी ॥४७॥
नित्यनूतनचित्केलिः स्वसृभिः परिवारिता । वाटिकोपवनारामसरिच्छैलविहारिणी ॥४८॥
जनसम्मानदात्री च जनसम्मानतोषिता । रामस्य लोकरामस्य वल्लभेयं भविष्यति ॥४९॥

यैस्तोषिता न विधिना विविधोपचारैर्मोघक्रियास्त इह कोविदमानिनो वै ।
सेयं सदा कृपणभावपरप्रसन्ना येषां त एव खलु धन्यतमाः कृतार्थाः ॥५०॥

यज्ञवेदीसे प्रकट हुई, निमिवंशको दीपके समान (अपनी महिमाके द्वारा) प्रकाश युक्त करने वाली, आपकी ये श्रीललीजी, चर-अचर मय समस्त प्राणियोंके लिये आनन्द करानेवाली, अनन्तऐश्वर्यसे युक्त हैं ॥४३॥ आपकी श्रीललीजी सभी लोकोंमें प्रसिद्ध, वैष्णवोंके आराधना करने योग्य परम देवता, सर्वकाल व सर्व देशकी सभी बातोंको जानने वाली, तथा समस्त सिद्धियोंको प्रदान करने वाली हैं, इनके यश रूपी गाथाको भगवान् वेदोंने गाया है ॥४४॥

आपकी ये श्रीललीजी सभी प्राणियोंका वास्तविक हित करने वाली, परम सौशील्य-स्वभाव से युक्त, सभी जीवों पर दया करने वाली, अपनी सुन्दरतासे महाछविको लजावनहारी, तथा शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान मुखारविन्द वाली हैं ॥४५॥

इनकी क्षमा असीम समुद्रके समान अथाह है, ये गुणोंकी अनन्त सागर और असीम आश्चर्य मयी शक्ति स्वरूपा, सभीसे विलक्षण ऐश्वर्य वाली हैं ॥४६॥

आपकी श्रीललीजी उपमा रहित अपार आनन्दकी वर्षा करने वाली, स्थावर-जङ्गम-मय सभी प्राणियोंको नित्य आह्लाद प्रदान करनेवाली सर्वथा प्रशंसा योग्य, आश्रितोंका यश करने वाली होंगी ॥४७॥ इनकी क्रीड़ा सदैव एक रस, नवीन, चैतन्य मयी होगी, ये अपनी बहिनोंसे घिरी हुई, वाटिका, उपवन, बगीचा नदी, पर्वतों पर बिहार करने वाली होंगी ॥४८॥

आपकी श्रीललीजी भक्तोंको सम्मान देने वाली, और भक्तोंके सम्मानसे प्रसन्न होने वाली तथा ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके सहित समस्त लोकको आनन्दित करने वाले प्रभु श्रीरामजीकी वल्लभा (प्यारी) होंगी ॥४९॥ जिनके विधि पूर्वक अनेक प्रकारकी पूजन सामग्री रूप साधनोंसे आपकी श्रीललीजी प्रसन्न न हुईं, तो उनके पण्डित बननेका अभिमान व्यर्थही है, क्योंकि उनका क्रिया रूपी साधन निष्फल है, इससे यह निश्चित है कि अपने साधनमें वे कुछ त्रुटि अवश्य कर रहे हैं, अतः ज्ञानी अथवा चतुर कैसे? जिनके दीन भावसे ये श्रीललीजी परम प्रसन्न हैं, वास्तवमें वे ही इस लोकमें धन्य और परम कृतकृत्य हैं ॥५०॥

वहुना किमिहोक्तेन भूरिभागा त्वमप्यसि । ययेदृशी सुता लब्धा लोकोत्तरगुणैर्युता ॥५१॥
धन्यमद्य दिनं राज्ञि ! धन्येयं घटिका शुभा । पावनं दर्शनं लब्धं मया तव सुदुर्लभम् ॥५२॥
धन्यमस्ति हि मे भाग्यं शिशोस्ते चिरवाञ्छितम् । दर्शनं लभ्यते कामं यदिदानीं मया शुभम् ॥५३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

समाश्वास्य महाराज्ञी विदुषीं स्निग्धया गिरा । अमूल्यद्रव्यदानेन तस्यास्तुष्टयै मनोदधे ॥५४॥
तन्निरीक्ष्याञ्जलिं बद्ध्वा प्राह सा गद्गदाक्षरम् । विदुषी विनयश्लाघ्या द्योतयन्ती नृपालयम् ॥५५॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

न चैतत्कामये राज्ञि ! प्राप्तमेव यदीप्सितम् । भद्रं ते परमोदारे ! सत्यमेतन्मयोच्यते ॥५६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

तथाऽपि मम तोषाय भवत्या पूर्णकामया । प्रणतायाः कृपागारे ! काऽप्यनुज्ञा प्रदीयताम् ॥५७॥

श्रीदैवज्ञोवाच ।

अश्नन्तीमहमिच्छामि द्रष्टुमेव तवात्मजाम् । सुमुखीं पद्मपत्राक्षीं किमन्यत्कथयामि ते ॥५८॥

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? आप निश्चयही बड़भागिनी हैं, जिन्हें इस प्रकारकी अलौकिक गुणसम्पन्ना ये पुत्री प्राप्त हैं ॥५१॥

आजका दिन धन्य है, मङ्गलमयी यह घड़ी धन्य है जिसके प्रभावसे मुझे आपका अत्यन्त दुर्लभ एवं पावन दर्शन प्राप्त हुआ है ॥५२॥ मेरा भाग्य धन्य है, जो बहुत दिनोंसे अभीष्ट, आपकी शिशुरूपा श्रीललीजीके मङ्गलमय दर्शनोंका लाभ मैं इस समय अपनी इच्छानुसार प्राप्त कर रही हूँ ॥५३॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये ! श्रीदैवज्ञाजीके इन प्रेम भरे वचनोंको सुनकर, श्रीसुनयना महारानीजीने अपनी सरस वाणी द्वारा आश्वासन प्रदान करके, बहुमूल्य द्रव्योंके दान द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेके लिये मनमें, विचार किया ॥५४॥

उनकी इस प्रवृत्तिको देखकर, प्रशंसाके योग्य विनय वाली, श्रीविदुषीजी निज तेजसे राजभवनको प्रकाशित करती हुई हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें बोलीं ॥५५॥

हे परम उदार-स्वभाव वाली श्रीमहाराणीजू ! आपका कल्याण हो, हमें इस द्रव्यकी इच्छा नहीं है और जिसकी इच्छा थी, वह हमें मिल चुका है । मैं यह सत्य कह रही हूँ ॥५६॥

दैवज्ञाजीकी इस लोभ रहित वाणीको सुनकर श्रीसुनयना महारानीजी बोलीं:—हे कृपाकी भवन स्वरूपा श्रीदैवज्ञाजी ! यद्यपि आप पूर्ण काम हैं, तथापि मेरे सन्तोषके लिये कुछ तो अवश्य आज्ञा प्रदान कीजिये ॥५७॥ श्रीदैवज्ञाजी बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी! कमलदलके समान विशाल, मनोहर जिनके नेत्र व सुन्दर मुखारविन्द है, आपकी उन श्रीललीजी का दर्शन मैं भोजन करते हुये करना चाहती हूँ, आपसे और दूसरी बात क्या कहूँ ॥५८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञी सुनेत्रा संप्रहर्षिता । नानाविधं च मिष्टान्नं तत्क्षणं तत्र साऽऽनयत् ॥५६॥
विरच्यातिलघून् ग्रासान्दिशन्तीन्दुनिभानने । दैवज्ञायाः प्रपश्यन्त्याः सुताया विह्वलाऽभवत् ॥६०॥
समाधायात्मनाऽऽत्मानं पुनर्द्राक् पद्मनेत्रया । तृप्ताया निमिभूषाया मुखप्रक्षालनं कृतम् ॥६१॥
नाभिपद्मभवा तर्हि वाचा प्रेमनिरुद्धया । उवाच मधुरं वाक्यं महाराज्ञीं कृताञ्जलिः ॥६२॥

श्रीनाभिपद्मभवोवाच ।

अस्मिन् पात्रस्थमिष्टान्ने लोभो मे जायते महान् । अनेन पुण्यदानेन सत्कृता स्यां यथोचितम् ॥६३॥
न विचारोऽत्र कर्त्तव्यः कोऽपि मे ऽभीष्टसिद्धये । भवत्या प्रेमतत्त्वज्ञे ! प्रार्थयेहं पुनः पुनः ॥६४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

दृष्टवाऽनुरोधमुत्फुल्लनवपङ्कजलोचना । प्रादिशत्तत्तु मिष्टान्नं विदुष्यै प्रेमनिर्भरा ॥६५॥
मिश्रणेन तदखिलं विधायैकविधं हि सा । शिरःस्पृष्टं स्वशिष्याभ्यः प्रायच्छत्परया मुदा ॥६६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! यह सुनकर श्रीसुनयना महारानीने बड़े हर्षको प्राप्त हो वहाँ क्षणमात्र में अनेक प्रकारका मिष्ठान्न मँगवा लिया ॥५६॥

पुनः वे अत्यन्त छोटे-छोटे कवल बना-बनाकर, श्रीदैवज्ञाजीके दर्शन करते हुये, अपनी श्रीललीजीके चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखारविन्दमें देती हुई, विह्वल हो गयीं ॥६०॥

तत्पश्चात् अपने आपको शीघ्र ही सम्हाल कर, कमललोचना श्रीसुनयना महारानीजीने भोजनसे तृप्त हुई, निमिवंशको भूषणके समान सुशोभित करने वाली श्रीललीजीके मुखारविन्द को धोया ॥६१॥ उस समय श्रीनाभिपद्यभवाजी श्रीमहाराणीसे हाथ जोड़कर प्रेमसे लड़खड़ाती हुई वाणी द्वारा यह मधुर (मीठे) वचन बोलीं ॥६२॥

हे श्रीमहाराणीजी ! थालमें रखे हुये इस मिष्टान्नके प्रति मेरे हृदयमें बहुत लोभ उत्पन्न हो गया है, अत एव यदि आप मेरा सत्कार ही करना चाहती हैं तो, इस शेष मिष्टान्नको हमें प्रदान कीजिये ! इस अभीष्ट पुण्य दानके द्वारा मेरा समुचित सत्कार होगा ॥६३॥

हे प्रेम तत्त्वको जानने वाली श्रीमहाराणीजी ! मैं बारम्बार आपसे प्रार्थना करती हूँ, मेरी अभिलाषा पूर्तिके लिये "मैं श्रीललीजीका उच्छिष्ट इन्हें कैसे दूं ?" इस प्रकारका सब तर्क वितर्क छोड़कर मेरी भावनाकी पूर्त्तिके लिये आप श्रीललीजीका प्रसाद हमें अवश्य प्रदान कीजिये ॥६४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये! श्रीदैवज्ञाजीके इस अनुरोधको देखकर, श्रीसुनयना अम्बाजीके नेत्र रूपी नवीन कमल पूर्ण खिल गये, प्रेम निर्भर हो उन्होंने श्रीललीजीके थालका वह शेष (प्रसाद भूत) मिष्टान्न श्रीदैवज्ञाजीको प्रदान कर दिया ॥६५॥

श्रीदैवज्ञाजीने उस प्रसादको मस्तकसे लगाकर तथा उसे एक प्रकारका बनाकर अपनी शिष्याओं को बड़ेही आनन्द पूर्वक प्रदान किया ॥६६॥

पुनस्तु शेषनैवेद्यं सुप्रणम्य पुनः पुनः। तदाऽऽश परया प्रीत्या नृत्यन्ती नृपमन्दिरे ॥६७॥
अथ चित्तं समाधाय राज्ञीमुपगता तु सा। मैथिलीपादपाथोजतलरेखा न्यवैक्षत ॥६८॥
दर्शयन्ती निजाः शिष्याः कथयन्ती मनोहराः। कृतार्थाऽऽसीच्च नेत्राभ्यां स्पृशन्ती तां मुहुर्मुहुः॥६९॥
कृपाकटाक्षमासाद्य वाचयित्वा च मङ्गलम्। सत्कृता विधिना राज्ञ्या गमनायोद्यताऽभवत् ॥७०॥

राज्ञी तर्हि महामतिःसुनयना सौभाग्यसंभूषिता
देवज्ञां प्रणिपत्य दीनवचसा प्रीता स्तुतां सादरम् ॥
कृच्छ्रेणापि विसृज्य चन्द्रवदनासंशोभानाऽऽलिभि-
स्तस्थौ सा ससुचित्रया चकितधीः सौवर्णसिंहासने ॥७१॥

पुनः वितरणसे बचे हुए नैवेद्यको वे बारम्बार प्रणाम करके राजभवनमें नाचती हुई बड़े प्रेम–पूर्वक स्वयं सेवन करने लगीं ॥६७॥

तत्पश्चात् अपने चित्तको सावधान करके, श्रीसुनयना अम्बाजीके समीपमें जाकर श्रीललीजी के चरण-कमलोंकी रेखाओंका दर्शन करने लगीं ॥६८॥

पुनः अपनी शिष्याओंको उन मनोहर रेखाओंका दर्शन कराती तथा उनका वर्णन करती हुई वे अपने नेत्रोंसे बारम्बार उन्हें स्पर्श करके कृतकृत्य हो गयीं ॥६९॥

श्रीललीजीका मङ्गल-वाचन करके, तथा श्रीसुनयना अम्बाजीके द्वारा विधिपूर्वक सत्कार, पाकर एवं श्रीललीजीकी कृपाकटाक्षको प्राप्त हो, श्रीदैवज्ञाजो चलनेको उद्यत हुईं ॥७०॥

तब सौभाग्यरूपी भूषणोंसे सुसज्जित, महामति, श्रीसुनयना महारानीजी, प्रसन्न हो दीन-वचनोंद्वारा स्तुति करके, श्रीदैवज्ञाजीको आदर सहित प्रणाम पूर्वक बड़ी कठिनतासे विदा किया, पुनः अपनी चन्द्र वदना श्रीललीजीके द्वारा सुशोभित, श्रीसुचित्रा महारानी के साथ, अपनी सखियोंके सहित, सोनेके सुन्दर सिंहासन पर विराजमान हुईं, परन्तु श्रीललीजीकी महिमा व दैवज्ञाजीके प्रेमको स्मरण करके उनकी बुद्धि आश्चर्य चकित रह गयी ॥७१॥

इत्येकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

—❀❀❀—

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

ब्राह्मण दम्पती वेष में राजभवन आकर श्रीकिशोरीजीका दर्शन स्तवन करके श्रीलक्ष्मीनारायण भगवानकी तिरोधान लीला ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ सर्वेश्वरी सीता शुक्लपक्षशशाङ्कवत् । ववृधे सर्वलोकानां परश्रेयोऽर्थसिद्धये ॥१॥
जानुभ्यां करपद्माभ्यां रिङ्गमाणा नृपाजिरे । क्रीडन्ती शुशुभे सा वै स्वसृणामधिकं गणे ॥२॥
माता सुनयना तस्या पश्यन्ती बालचेष्टितम् । महानन्दार्णवे मग्ना दिवारात्रं न बुध्यते ॥३॥
अदृष्ट्वा ऽयोनिजां कामं प्रत्यहं निमिवंशजाः । कथञ्चिन्नाधिगच्छन्ति शमं विस्फारितेक्षणाः॥४॥
तस्मादागमनं नित्यं विदेहकुलयोषिताम् । नृपागारे भवत्येव परमानन्दसिद्धये ॥५॥
तृतीयाब्द उपायाते कर्णवेधविधिं व्यधात् । राज्ञी सुनयना पुत्र्या महोत्सवसमन्वितम् ॥६॥
आससाद ततो विष्णुः सकान्तः कमलेक्षणः । विप्ररूपधरो देवो जनकेनाभिवादितः ॥७॥
सत्कृतो विधिना तेन विधिज्ञेन यथोचितम् । आह बद्धाञ्जलिं भूपं विनीतं तं स देवराट् ॥८॥

तदनन्तर भक्तोंके सब दुःख व पापोंको हरण करनेवाली, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके नियामक भगवान् श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा, श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, समस्त लोकोंके परम कल्याण रूपी प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये इसप्रकार बढ़ने लगीं, जैसे शुक्ल पक्षका चन्द्रमा, दिनानुदिन वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१॥ अपनी बहिनोंके झुण्डमें, दोनों घुटनों और हाथोंके सहारे राजभवनमें, धीरे-धीरे चलती हुई, बहुतही शोभाको प्राप्त होने लगीं ॥२॥

श्रीललीजूकी बालचेष्टाओंको देखती हुई, महान् आनन्दमें निमग्न रहनेके कारण, श्रीसुनयना अम्बाजीने रात दिनकी सुधि भुलादी अर्थात् उन्हें दिन रातका भान ही जाता रहा ॥३॥

निमिवंशकी बालिकायें प्रति-दिन श्रीअयोनिजा (श्रीमिथिलेशलली) जीका बिना इच्छानुसार दर्शन किये किसी प्रकार भी शान्तिको प्राप्त नहीं होतीं, उनके नेत्र दर्शनोंके लिये फैले ही रहते ॥४॥ इस हेतु श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें, श्रीकिशोरीजीके दिव्य आनन्द सिद्धिके लिये विदेहवंशकी सभी स्त्रियोंका आगमन नित्य ही होने लगा ॥५॥

श्रीसुनयना महारानीजीने प्राकट्यके तीसरे वर्षमें, महान् उत्सवके साथ, अपनी श्रीललीजी के कर्णवेध (कान छेदन) नामका महोत्सव सविधि सम्पन्न किया ॥६॥

तदनन्तर अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीके सहित, कमलनयन श्रीविष्णु भगवान् ब्राह्मण का रूप धारण करके पधारे। श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन्हें प्रणाम किया ॥७॥ सर्वविधि जानने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज, जब उनका विधि पूर्वक उचित सत्कार करके हाथ जोड़े हुये विनम्र भावसे उपस्थित हुये तब वे देवोंके सम्राट् प्रभु श्रीमिथिलेशजी महाराजसे, बोले ॥८॥

ब्राह्मणोऽस्मि महाभाग ! पत्नीयं मम शोभना । चिरसंदर्शनाकाङ्क्षी पुत्र्यास्तव समागतः ॥९॥
तदहं प्राप्तुमिच्छामि भद्रं ते नृपसत्तम ! । विलम्बं न क्षमः सोढुं तद्भवान् कुरुतात्कृपाम् ॥१०॥

श्रीजनक उवाच ।

देवतुल्य ! दयासिन्धो ! भक्तानुग्रहकारक ! प्रविश्यान्तः पुरं शीघ्रं पुत्रीं मे द्रष्टुमर्हसि ॥११॥
प्रपुनीहि गृहं नाथ ! मदीयं पादपांसुभिः । देव्या सहाशिषं दातुं मम पुत्र्यै कृपां कुरु ॥१२॥
त्वां समालोक्य विप्रेन्द्र ! हृदयं मे प्रतुष्यति । महतीं ते कृपां दृष्ट्वा सत्यमेतन्मयोच्यते ॥१३॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा तमादाय स्वावरोधं समाविशत् । पूज्यमानः सखीभिश्च द्वाःस्थिताभिर्मुदान्वितः ॥१४॥
आगतं क्षितिपालेन परीतं भार्यया द्विजम् । स्वयं तु स्वागतं चक्रे राज्ञी सुनयनाऽऽदरात् ॥१५॥
सम्पूज्य विधिना भक्त्या श्रद्धया शोभमानया । तौ वयस्याभिरिन्द्वास्याऽऽजुहाव स्वयमात्मजाम् ।१६।
आजगाम तदा तत्र स्वसृभिः परिवारिता । सा जनन्या समाहूता मैथिली पद्मलोचना ॥१७॥

हे महाभाग ! मैं ब्राह्मण हूँ और ये सुन्दरी मेरी धर्म पत्नी हैं, बहुत दिनोंसे आपकी श्रीललीजीके दर्शनोंका अभिलाषी मैं, इस समय आया हूँ ॥९॥

हे नृपोंमें परम श्रेष्ठ ! श्रीमिथिलेशजी महाराज ! आपका कल्याण हो, वही (श्रीललीजी का दर्शन) मैं प्राप्त करना चाहता हूं, दर्शनोंका विलम्ब सहन करनेके लिये अब मैं असमर्थ, हूँ अतः आप कृपा कीजिये अर्थात् हमें श्रीललीजीका दर्शन शीघ्र करा दीजिये ॥१०॥

श्रीजनकजी महाराज बोलेः—हे देवोंके समान ! दयाके समुद्र, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले श्रीब्राह्मण देव! आप रनिवासमें पधारकर, मेरी श्रीललीजीका दर्शन कीजिये और हे नाथ! अपने चरण-कमलोंकी धूलिसे राज-भवनको पूर्ण पवित्र कीजिये तथा श्रीदेवीजीके सहित आप हमारी श्रीललीजीको आशीष देनेकी कृपा करें ॥११॥१२॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आपका दर्शन करके तथा आपकी महती कृपाको देखकर, मेरा हृदय बहुत ही सन्तोषको प्राप्त हो रहा है, यह मैं आपसे सत्यही कह रहा हूँ, केवल प्रशंसा नहीं करता ॥१३॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे श्रीपार्वतीजी! ऐसा कह कर श्रीमिथिलेशजी महाराज, ब्राह्मण वेषधारी भगवानको साथ लेकर, द्वार पाली करने वाली सखियों द्वारा पूजित होते हुये, हर्ष पूर्वक अपने महलमें पधारे ॥१४॥ महाराजके साथ स्त्री-सहित ब्राह्मण देवको आये हुये देखकर श्रीसुनयना अम्बाजीने आदर पूर्वक उनका स्वयं स्वागत किया ॥१५॥

श्रद्धासे शोभायमान भक्ति पूर्वक, चन्द्रमुखी श्रीसुननयना अम्बाजीने अपनी सखियोंके समेत विधिपूर्वक, उन दोनों ब्राह्मणी-ब्राह्मण देवका पूजन करके श्रीललीजीको स्वयं बुलाया ॥१६॥ श्रीअम्बाजीके बुलाने पर, कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली, श्रीमिथिलेशललीजी अपनी बहिनोंसे घिरी हुई, वहाँ आपधारीं ॥१७॥

तां परिष्वज्य विम्बोष्ठीं चलत्कुञ्चितकुन्तलाम् । प्रणामं कारयामास दम्पत्योः पादपद्मयोः ॥१८॥
तस्या दृष्ट्वैव तौ रूपं नेति नेतीति कीर्तितम् । वाष्पपूर्णविशालाक्षौ निसञ्ज्ञं तौ बभूवतुः ॥१९॥
अत्यन्तचकिता राज्ञी तदुद्वीक्ष्य नृपान्विता । बभूव तनयामङ्के उपवेश्य स्मिताननाम् ॥२०॥
पुनरुन्मील्य नयने यतचित्तौ नृपात्मजाम् । अपश्यतां महोदारां दम्पती पूजितावुभौ ॥२१॥
शरदिन्दुमुखीं नित्यमरालमृदुकुन्तलाम् । नीलपद्मपलाशाक्षीं सुभ्रुवं कीरनासिकाम् ॥२२॥
सुकपोलां सुदशनामरुणोष्ठाधरश्रियम् । अनिम्नचारुचिबुकां सुकर्णामूरुमस्तकाम् ॥२३॥
महोदारकराम्भोजां कम्बुकण्ठीं कलस्मिताम् । सुसूक्ष्ममध्यमां सीतां गूढगुल्फपदाम्बुजाम् ॥२४॥
चन्द्रिकांशूल्लसद्भालां कज्जलाञ्चितलोचनाम् । ताटङ्कविलसत्कर्णां मौक्तिकाञ्चितनासिकाम् ॥२५॥
निष्ककण्ठीमुरोभूषासंदीप्तहृदयस्थलीम् । कङ्कणाञ्चितहस्ताब्जां मेखलाद्युतिमत्कटिम् ॥२६॥
नूपुराञ्चितपादाब्जां नीलशाटीसुशोभिताम् । जनन्यङ्कसमासीनां मैथिलीं पुष्पमालिनीम् ॥२७॥

विम्बाफलके समान लाल ओष्ठ और चलायमान घुंघुराले केश वाली, श्रीललीको हृदयसे लगाकर श्रीअम्बाजीने उनसे दम्पती(ब्राह्मणी-ब्राह्मण)जीके चरणकमलोंमें प्रणाम कराया ॥१८॥

श्रीललीजीके ऐसाही नहीं, इतना ही नहीं अर्थात् इससेभी विलक्षण, असीम कहे हुये स्वरूप का दर्शन करके उन दोनोंके नेत्रोंमें जलभर आया और क्षणमात्रमें वे मूर्छित हो गये ॥१९॥

मन्द मुस्काती श्रीललीजीको गोदमें बैठाकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहित श्रीसुनयना अम्बाजी दोनोंकी उस प्रेम-मयी अवस्थाको देखकर अत्यन्त चकित हुईं ॥२०॥

पुनः वे दोनों ब्राह्मणी-ब्राह्मण दम्पती अपने नेत्रोंको खोलकर, तथा चित्तको वशमें लाकर, महान् उदार स्वभावा श्रीललीजीका दर्शन करने लगे ॥२१॥

शरदृतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका मनोहर मुखारविन्द, घुंघराले कोमल केश, नीलकमलदलके समान विशाल नेत्र, सुन्दर भौंह, सुग्गाके समान जिनकी नासिका (नाक) थी। जो सदा एक रस बनी रहती हैं ॥२२॥ जिनके सुन्दर कपोल, मनोहर दाँत, लाल कान्तिसे युक्त अधर-ओष्ठ, ऊँची सुन्दर ठोढ़ी, मनोहर कान तथा विशाल मस्तक था ॥२३॥

जिनके अत्यन्त उदार हस्तकमल, शङ्खके आकारका कण्ठ, मनोहर मुस्कान, सुन्दर पतली कमर, छिपी हुई गाँठों वाले, कमलके समान सुकोमल चरण थे ॥२४॥

चन्द्रिकाकी किरणोंसे, जिनका मस्तक सुशोभित था, काजल लगे हुये नेत्र, कर्णफूलोंसे सुशोभित कान, और नासामणिके शृङ्गारसे युक्त जिनकी नासिका थी ॥२५॥

जिनके गलेमें सोनेकी कण्ठी थी, तथा जिनका हृदयस्थल विविध प्रकारके हार आदि भूषणों द्वारा पूर्ण रूपसे प्रकाशमान था, जिनके हस्त-कमल कङ्कणों (कँगना) से विभूषित थे, जिनकी कमर करधनीसे प्रकाश युक्त थी ॥२६॥ चरण कमल नूपुरोंके शृंङ्गारसे युक्त थे, नीली साड़ीसे जो शोभायमान, कमलोंकी माला, धारण किये हुई श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजमान थीं उन 'श्रीमिथिलेशजी का' ॥२७॥ ललो

भूयो भूयः समालोक्य तौ मुदान्वितचेतसौ । ऊचतुर्हर्षपूर्णाक्षौ कण्ठसंरुद्धया गिरा ॥२८॥

श्रीद्विजदम्पतीऊचतुः ।

सदेयं हेमाङ्गी विमलविधुसम्मोहिवदना सुकेशी विम्बोष्ठी तडिदमलकुन्दाभदशना ।
वयस्याभिः साकं नृपतिनिलये रिङ्गणपरा विभाव्या नौ कामं भवतु निमिवंशेनतनया ॥२९॥
धरापुत्री प्रीता प्रणयवशगा प्रीतिजलधिः कृपापारावारा स्वसृगणपरीता स्मितमुखी ।
जनन्याः क्रोडस्था निखिलशुभलक्ष्माङ्कितपदा मुदा नौ ध्येयाङ्घ्रिर्भवतु निमिवंशेननया ॥३०॥
चलत्सूक्ष्मस्निग्धभ्रमरसघनारालचिकुरा विशालाक्षी सुभ्रूः सुभगतरभाला सुचिबुका ।
सुनासा सुग्रीवा सरसिजकराम्भोजचरणा मदीये सच्चित्ते वसतु निमिवंशेनतनया ॥३१॥
सखीभिः क्रीडन्ती विविधमणिखेलोपकरणैर्गृहे रम्ये मातुः परमकमनीयेन्दुवदना ।
प्रवर्षन्मुद्रूपा ननु सुनयनाप्राणनिलया सुखाराध्या ऽजस्रं भवतु निमिवंशेनतनया ॥३२॥

बारम्बार दर्शन करके वे दोनों आनन्द युक्त चित्त, व हर्ष पूर्ण नेत्र होकर गद्‌गदवाणीसे बोले :–॥२८॥ जिनका श्रीअङ्ग, सोनेके समान गौर वर्ण है, निर्मल (स्वच्छ) चन्द्रमाको मुग्ध करनेवाला श्रीमुखारविन्द है, सुन्दर जिनके केश हैं, बिम्बाफल (कुन्दरू) के समान लाल ओष्ठ और बिजलीके सदृश चमकते हुये स्वच्छ जिनके कुन्दके समान दाँत हैं, वही निमिवंश को सूर्यके सदृश प्रकाशमान करनेवाले श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी ये श्रीललीजी, अपनी सखियोंके सहित, राज-भवनमें बिहार करती हुई, इच्छानुसार भावना करनेके लिये हम दोनोंको सदा सुलभ बनी रहें ॥२९॥ भक्त लोग प्रणय (नम्रतायुक्त प्रेम) के द्वारा जिन्हें अपने वशमें कर लेते हैं, जिनकी प्रीति समुद्रके समान अथाह है, कृपाकी जो सागर हैं, मुस्कान-युक्त जिनका श्रीमुखारविन्द है, जिनके श्रीचरणकमल, सम्पूर्ण मङ्गलमय चिह्नोंसे सुशोभित हैं, वे भूमि देवीकी पुत्री, निमिवंशको सूर्य के समान प्रकाश युक्त करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी, प्रसन्न होकर हम दोनोंके ध्यानके लिये आनन्द पूर्वक सुलभ श्रीचरणकमल वाली होवें अर्थात् उनके श्रीचरणकमलों का ध्यान हम दोनोंके लिये सदा सुलभ बना रहे ॥३०॥

जिनके डोलते हुये महीन, चिकने, भौरोंके समान काले, सघन व घुंघुराले केश हैं, बड़े-बड़े जिनके नेत्र हैं, सुन्दर भौंहें है और जिनका मस्तक परम सुन्दरतासे युक्त है सुन्दर जिनकी ठोढ़ी है, जिनकी नासिका व ग्रीवा (कण्ठ) बड़ी सुहावनी है, कमलके समान जिनके हाथ व पैर हैं, वे निमिवंशको सूर्यके समान प्रकाश पूर्ण करने वाले श्रीमिथिलेश महाराजकी श्रीललीजी, मेरे चित्तमें सदा निवास करें ॥३१॥ जिनका चन्द्रमाके समान परम सुन्दर मुखारविन्द है, बरसते हुये आनन्दकी जो स्वरूप और श्रीसुनयना अम्बाजीके प्राणोंकी निवास भवन हैं, वे निमिवंशको सूर्यके सदृश प्रकाशित करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीलाडिलीजू, मणियोंके अनेक प्रकार खिलौनोंके द्वारा श्रीअम्बाजीके सुन्दर महलमें, सखियोंके साथ खेलती हुई, हम दोनोंके लिये सदा सुख-पूर्वक आराधना करनेको सुलभ रहें ॥३२॥

सदा ऽस्यै स्वस्त्यस्तु प्रथितचरितायै सुमतये परश्रेयोदात्र्यै जगदखिलमाङ्गल्यनिधये ।
सुतायै ते राजन्नशिशुशशिमुख्यै सुरुचये महाराज्ञ्युत्सङ्गे विहरणपरायै सुनतये ॥३३॥
चिरं जीयादेषा सकलसुखसन्दोहचरणा निराधिर्निर्व्याधी रचितजनकल्याणनिचया ।
शरत्पूर्णेन्द्वास्या विमलजलजाक्षी जितरतिः प्रपश्यन्ती कामं सततमिह भद्राणि परितः ॥३४॥
अयोगी वा योगी द्रविणनिधिपो वा गतधनः सुधीर्वा मूर्खो वा कथमपि कदाचिद्दरमपि ।
अनिच्छन्तीच्छन्ती सपदि यमियं पश्यति दृशा कृतार्थोऽसौ नूनं परमसुदृढेयं मम मतिः ॥३५॥
महाभागानां वै विशदचरितानां शुभधियामनन्या संप्रीतिर्निगमगदिताऽपीह भविता ।
सुतायां ते राजन्निरतिशयमाधुर्यजलधौ न चान्येषामस्यामकृतसुकृतानामघवताम् ॥३६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा शुभां वाचं लक्ष्मीनारायणौ प्रभू । मैथिलीपादपाथोजसक्तदृष्टी बभूवतुः ॥३७॥

हे राजन्! जिनके चरित प्रसिद्ध हैं, सुन्दर जिनकी मति है, जो भक्तोंके लिये परम कल्याण को प्रदान करने वाली एवं जगत्‌के सम्पूर्ण मङ्गलोंकी भण्डार हैं। जिनकी सुहावनी कान्ति है,मङ्गल व सुखमय जिनका नमस्कार है, पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका आह्लादवर्द्धक, श्रीमुखारविन्द है, श्रीसुनयना अम्बाजीकी गोदमें बिहार करनेवाली आपकी उन श्रीललीजीका सदाही मंगल हो॥३३। जिनके श्रीचरणकमल समस्त सुखोंके पुन्ज हैं, जो भक्तोंके लिये कल्याण समूहोंकी रचना करने वाली, शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान परम आह्लाद कारी प्रकाशमय श्रीमुख व स्वच्छ कमलके समान नेत्रवाली हैं, जिनके सौन्दर्यसे रतिभी हार मानती है, वही ये श्रीललीजी मानसिक-शारीरिक सभी रोगोंसे रहित होकर अपनी इच्छानुसार सदा चारो ओर मङ्गलही मङ्गल देखती हुई अनन्तकाल तक जीवें ॥३४॥ चाहे योगी हो, चाहे भोगी हो, चाहे धनके खजानेका स्वामी (कुबेर) हो अथवा निर्धन (रङ्क) हो, बुद्धिमान हो, या मूर्ख, जिसको ये ललीजी इच्छा पूर्वक चाहे बिना इच्छाके, किसी प्रकारसे भी कभी भी थोड़ासा भी अपनी दृष्टिसे अव-लोकन कर लेती हैं, वह निश्चयही अविलम्ब कृतार्थ हो जाता है अर्थात् उसे जीवनकी सफलता निश्चयही प्राप्त हो जाती है, यह मेरा परम अटल विश्वास है ॥३५॥

हे राजन्! इस लोकमें जिनके चरित उज्ज्वल (विकार रहित निष्पाप) हैं, बुद्धि पवित्र है, उन्हीं महाभाग्यशालियोंकी वेदोंमें कही हुई अनूठी (अनन्य) पूर्ण प्रीति, समुद्रके समान, अथाह-माधुर्यगुण वाली आपकी श्रीललीमें होती है, पुण्यसञ्चय विहीन पापियोंको नहीं ॥३६॥

भगवान शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! इस प्रकार मङ्गलमयी वाणी बोलकर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रभूमे श्रीमिथिलेशललीजीके श्रीचरण कमलोंमें अपनी दृष्टिको आसक्त कर दिया ॥३७॥

गन्तुं कृतधियौ दृष्ट्वा पाणिभ्यां परया मुदा । उपायनानि भूरीणि पुत्र्या राज्ञी व्यदापयत् ॥३८॥
ब्राह्मणी तां निधायाङ्के ऽधीरा मिष्टान्नभाजनम् । प्रदाय हस्तयो पत्युर्भोजयामास जानकीम् ।३९।
परित्यक्तं तथा भुक्त्वा तदन्नममृतोपमम् । धृत्वा रत्नमये पीठे चकार मुखधावनम् ॥४०॥
चुम्बयित्वा दृशाऽऽलिङ्ग्य लालयन्ती पदाम्बुजे । शिरोदेशे प्रतिष्ठाप्य जग्मतुस्तौ कृतार्थताम् ।४१।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

कथञ्चिद्धैर्यमालम्ब्य पुनस्तौ श्रीविदेहजाम् । अर्पयामासतुर्मात्रे प्रिय ! पङ्कजलोचन ! ॥४२॥
प्राश्य तौ परया प्रीत्या प्रसादं पश्यतोस्तयोः । भावविह्वलतां यातौ रत्नपीठे निवेशितम् ॥४३॥

द्विजदम्पत्यूचतुः ।

कृतार्थौ भृशमद्यावामावयोः सफलं जनुः । कृपाकटाक्षमासाद्य देवैरपि सुदुर्लभम् ॥४४॥
आवां विद्वः सतां वेद्यां किञ्चिदेनां समाश्रितौ । अतोऽत्र साम्प्रतं प्राप्तौ दर्शनार्थं महामते! ॥४५॥

जब श्रीसुनयना महारानीजीने देखा, कि अब ये दोनों (दम्पती) यहाँसे चलनेका निश्चय कर लिये है, तब उन्होंने बड़े आनन्द पूर्वक, श्रीललीजीके कर कमलों द्वारा उन्हें बहुतसी भेंट दिलाई ॥३८॥ तब प्रेमसे अधीर हुई वे श्रीब्राह्मणीजी, श्रीललीजीको अपनी गोदमें ले करके, मिठाईके थालको अपने पति (ब्राह्मण) देवके हाथोंमें देकर, श्रीललीजी को भोजन कराने लगीं ॥३९॥

भोजन करके, श्रीललीजीके छोड़े हुये अमृतके समान, उस प्रसाद भूत मिष्ठान्नको, रत्नोंकी चौकीपर रखकर उनका मुखचन्द्र धोया ॥४०॥

पुनः वे दोनों श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलोंका दुलार करते हुये चुम्बन करके, उन्हें अपने नेत्रोंसे लगाकर तथा सिर पर रखकर कृतार्थ हो गये ॥४१॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :– हे कमलनयन ! प्यारे ! इस प्रकार श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलोंके स्पर्श आदि सुखसे विह्वल होकर, जब वे पुनः कुछ सावधान हुये, तब किसी प्रकार धैर्यका सहारा लेकर, श्रीविदेहमहाराजकी श्रीललीजीको उनकी श्रीअम्बाजीको अर्पण कर दिये ॥४२॥

पुनः श्रीमिथिलेशजी व श्रीअम्बाजी दोनोंके देखते हुये रत्नमयी चौकीके ऊपर रखे हुये प्रसादका बड़े प्रेम-पूर्वक सेवन करके हमारा(आज परम सौभाग्य है इस)भावनासे विह्वल हो गये ॥४३॥ वे दोनों ब्राह्मणी–ब्राह्मणरूपधारी, श्रीलक्ष्मीनारायण-भगवान बोले:–देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ आपकी श्रीललीजीके कृपा कटाक्षको पाकर, आज हम दोनोंही पूर्ण कृतार्थ हो गये तथा आज हम दोनोंका जन्म सफल हुआ ॥४४॥

जिनका ज्ञान सन्तोंको ही कुछ सम्भव है, आपकी उन श्रीललीजीको हम दोनों प्राणी, इनके सब प्रकारसे शरणमें होनेके कारण, कुछ थोड़ा सा जानते हैं। हे महामते ! अर्थात् अपनी मतिको ब्रह्ममय बनाने वाले ! उसी ज्ञानके कारण हम दोनों ही, इस समय इनका दर्शन करनेके लिये आपके यहाँ आये हैं ॥४५॥

ये नृपैनां विजानन्ति सुतां ते सुरसत्तमाः । तेषामागमनं भूतं भविष्यत्यधुनाऽस्ति च ॥४६॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा नृपं देवः परिक्रम्य मुदान्वितः । दम्पत्योः पश्यतोरेव तत्रैवान्तरधीयत ॥४७॥

राजा राज्ञी तथा सर्वा वयस्याः कौतुकान्विताः । शतानन्दं समाहूयाकारयन्स्वस्तिवाचनम् ॥४८॥

ज्ञात्वा नारायणं देवं सह देव्या समागतम् । अतीवमुदितो राजा चक्रे तदभिवादनम् ॥४९॥

समालिङ्ग्य सुतां भूयो मोदमानान्तरात्मना । जगाम मन्त्रिभिः सार्द्धं दर्शनार्थं महात्मनाम् ॥५०॥

हे राजन्! जो देवश्रेष्ठ आपकी श्रीललीजी (की महिमा) को भली प्रकार जानते हैं, उनका आगमन हो भी चुका है और आगे भी होगा तथा इस समय भी है ॥४६॥

भगवान् शिवजी बोले–हे श्रीपार्वतीजी! इस प्रकार भगवान् श्रीहरि श्रीमिथिलेशजी महाराज से सब रहस्य कह कर, अपनी प्रिया श्रीलक्ष्मीजीके सहित श्रीललीजीकी परिक्रमा करके, दोनों महाराज-महारानीके देखते, वहीं अन्तर्धान हो गये ॥४७॥

इस लीलाको देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज, श्रीसुनयना महारानीजी व सभी सखियाँ बड़े आश्चर्यसे युक्त हो, श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलवाकर स्वस्तिवाचन (मङ्गलानुशासन) कराने लगीं ॥४८॥ श्रीशतानन्दजी महाराज द्वारा श्रीलक्ष्मीजीके समेत श्रीनारायण भगवान् को ब्राह्मणी-ब्राह्मणवेषमें आये हुये जानकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजने महान् आनन्दको प्राप्त हो, उन श्रीहरिको प्रणाम किया ॥४९॥

तदनन्तर, श्रीमिथिलेशजी महाराज परम हर्षित अन्तस्करणसे श्रीललीजीको हृदयसे बारम्बार लगाकर, मन्त्रियोंके सहित महात्माओंका दर्शन करने पधारे ॥५०॥

इति द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे षोडशो विश्रामः ॥१६॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

श्रीकिशोरीजी की चन्द्रखिलौना-लीला

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एकदा मे विनोदाय रुदन्त्या बालभावतः । अवादील्लालयन्ती मामम्बा मधुरया गिरा ॥१॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

शृणु वत्से ! प्रवक्ष्यामि चरित्रं परमाद्भुतम् । सुनेत्रायाः सुतायाश्च तव प्रीतिकरं महत् ॥२॥
शुक्लपक्षचतुर्दश्यां गताऽहं राजमन्दिरम् । समीयुर्दर्शनार्थाय तदानीं कुलयोषितः ॥३॥
तासां मध्यगता राज्ञी महामाधुर्यमण्डिता । निधायाङ्के च बिम्बोष्ठीं रराज तनयां मुदा ॥४॥
पश्यन्तीषु शुभं रूपं रतिमानविमर्दनम् । तासु तुष्टेन मनसा मैथिली चन्द्रमैक्षत ॥५॥
सा पुनर्मृदुसर्वाङ्गी सर्वचित्तविमोहिनी । भुजमालां गले मातुर्निधाय श्लक्ष्णमब्रवीत् ॥६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

दृश्यते किमिदं मातर्नयनानन्दवर्द्धनम् । आकाशे वर्तुलाकारं मे तदाख्यातुमर्हसि ॥७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अहो पुत्रि ! शशाङ्कोऽयं दृश्यते विमलप्रभः । नक्षत्रगणमध्यस्थः शर्वरीशः सुधाकरः ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! एक दिन बाल-स्वभावसे मैं रो रही थी अतः अम्बाजी दुलार करती हुई मेरे विनोदार्थ मुझसे मीठी वाणी में बोलीं :–॥१॥

हे वत्से ! सुनो, मैं तुम्हें श्रीसुनयनानन्दिनीजूका वह परम आश्चर्यमय चरित सुनाती हूँ, जो तुम्हारा बड़ा ही प्रसन्नता कारक होगा ॥२॥

शुक्लपक्ष चतुर्दशी की रातमें मैं राजभवन गयी थी, उसी समय श्रीकिशोरीजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ और भी कुलकी स्त्रियाँ आगयीं ॥३॥ उन सभीके बीचमें महामाधुर्य भूषिता श्रीसुनयना महारानीजी, बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ वाली अपनी श्रीललीजीको गोदमें लिये हुई आनन्द पूर्वक बैठी बड़ी शोभाको प्राप्त हो रहीं थीं ॥४॥

उधर वे सभी स्त्रियाँ, रतिके अभिमानको चूर-चूर करने वाले श्रीललीजीके मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन करनेमें तल्लीनहो रही थीं, इधर श्रीललीजीने प्रसन्न मनसे चन्द्रदेवको देखा ॥५॥

जिनके सभी अङ्ग कोमल हैं तथा जो सभीके चित्तको मुग्धकर लेती हैं, वे श्रीललीजी अपनी भुजारूपी मालाको अम्बाजीके गलेमें डालकर, बड़ी मधुरतासे बोलीं ॥६॥

हे श्रीअम्बाजी ! नेत्रोंके आनन्दको बढ़ाने वाला आकाशमें गोल आकारका, यह क्या दिखाई दे रहा है ? उसे हमको बता दें ॥७॥ श्रीललीजीकी इस तोतली वाणीको सुनकर, श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे श्रीललीजी! नक्षत्रोंके झुण्डमें विराजमान, उज्ज्वल प्रकाश वाला अमृतकी खानि स्वरूप, रात्रिका स्वामी यह चन्दा दीखता है ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

खेलोपकरणं चन्द्रमिमं मह्यं प्रदीयताम् । महत्यस्मिन्स्पृहा जाता सत्यमम्ब ! वदामि ते ॥९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अलभ्यं विद्धि तद्वत्से ! मर्त्यलोकनिवासिनाम् । औषधीशो मनोरम्यः स्वर्गलोकविभूषणः ॥१०॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

न तल्लाभं विना तुष्टिः कथञ्चिन्मेऽम्ब! बुध्यताम् । देहि मह्यमतः शीघ्रं समानीय दिवि स्थितम् ।११।

न यावत्प्राप्यते चन्द्रो मया मातरयं खलु । न पास्यामि तव स्तन्यं तावदेव कथञ्चन ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति दृष्टवा हठं तस्याः स्वपुत्र्या दुर्निवारणम् । महाचिन्तामुपागच्छद्राज्ञी कार्यमिहेति किम् ॥१३॥

सुदर्शना तदा माता चन्द्रं चायोनिजाननम् । पश्यन्ती तामुपायज्ञा राज्ञीं प्रत्यवैक्षत ॥१४॥

बुद्ध्वा सुनयना राज्ञी तस्याः करतलेङ्गितम् । दर्पणं सम्मुखे कृत्वा जगादेन्दुर्हिवीक्ष्यताम् ॥१५॥

सा तस्मिन् कोटिशीतांशुमोहनं वल्गुदर्शनम् । पद्मपत्रपलाशाक्षं सुभ्रुवं स्निग्धवीक्षणम् ॥१६॥

श्रीजनकललीजी बोलीं:हे श्रीअम्बाजी ! मुझे यह चन्द्र खिलौना देदे, क्योंकि इसको पाने के लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है यह मैं आपसे सत्य कह रही हूँ ॥९॥

यह सुनकर श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे वत्से ! मनुष्यलोकमें निवास करने वालोंके लिये उस चन्द्र खिलौनाको आप अलभ्य जानिये, क्योंकि यह औषधियोंका स्वामी, मनको आह्लादित करनेवाला, स्वर्गलोकका भूषण है, अत एव यह नहीं मिल सकता ॥१०॥

श्रीअम्बाजीके वचनोंको सुनकर श्रीललीजी बोलीं:–हे अम्ब ! जान लीजिये बिना चन्द्र खिलौना पाये, मेरेको किसी प्रकार भी सन्तोष नहीं है, इसलिये स्वर्गलोकमें विराजमान इस चन्द्र खिलौनाको, हमें शीघ्रही मंगा दें ॥११॥

हे श्रीअम्बाजी ! जब तक हमें यह चन्द्र लिखौना नहीं मिलेगा, तब तक किसी प्रकारभी मैं तेरा स्तन-पान नहीं करूँगी ॥१२॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! निवारण करनेमें अति कठिन अपनी श्रीललीजीके इस हठको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजी बड़ी चिन्ताको प्राप्त हुईं, कि श्रीललीजीके इस कठिन हठके विषयमें, मुझे अब क्या करना चाहिये ॥१३॥

तब श्रीसुदर्शना अम्बाजी, श्रीललीजीके मुखारविन्द व चन्द्रदेवकी ओर अवलोकन करती हुई श्रीललीजीको मनानेका उपाय निश्चय करके, श्रीसुनयना अम्बाजीकी ओर देखने लगीं ॥१४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी, उनके हथेलीके सङ्केतको समझकर श्रीललीजीके सामने दर्पण(शीशा) करके, आनन्दपूर्वक बोलीं–हे श्रीललीजी ! लीजिये, चन्दाको देखिये ॥१५॥

श्रीअम्बाजीके ऐसा कहने पर, श्रीललीजी उस शीशेमें, अपनी छटासे करोड़ो चन्द्रमाओंको मुग्ध करने वाले, सुन्दरदर्शन, कमलपत्रके समान विशाल सुन्दर नेत्र, सुन्दर भौंह रसीली चितवन ॥१६॥

सुनासं चारुचिबुकं बिम्बोष्ठमरुणाधरम् । वर्तुलाकारमुकुरकपोलयुगशोभितम् ॥१७॥
पृथुभालं सुदशनं नीलकुञ्चितमूर्द्धजम् । सुकर्णं वर्णनातीतं सुषमासारमीप्सितम् ॥१८॥
अनवद्यं सुधावर्षि सुस्मितं ह्लादकारणम् । मनोज्ञं सर्वलोकानां ध्यायतामाशुपावनम् ॥१९॥
महामाधुर्यसम्पन्नमुज्ज्वलं समलङ्कृतम् । मुखचन्द्रं समालोक्य परां तृप्तिमुपागमत् ॥२०॥
मत्वा स्वर्गादुपानीतं तं स्पृशन्त्यमृतत्विषम् । उवाच मधुरं वाक्यं प्रपश्यन्ती हृदिस्पृशम् ॥२१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो परमरम्योऽसि दर्शनीयोऽसि सुव्रत ! त्वां दृष्ट्वा खलु शीतांशो ! हृदयं मे प्रसीदति ॥२२॥
क्रीडन्नत्र मया साकं क्रीडा बहुविधाः सुखम् । निवस त्वं मया जातु न भविष्यस्यनादृतः ॥२३॥
त्वया तुल्यं न पश्यामि सुभगं पद्मलोचन ! । धन्यास्ते दर्शनप्राप्तविधयः पार्श्ववर्तिनः ॥२४॥
स्वीकृतं मे वचो नोरीकृतं वेति त्वयोच्यताम् । निर्भयेनास्तशङ्केन सत्यमेव यथेप्सितम् ॥२५॥
न ददासि ददासीव विधो ! प्रत्युत्तरं हि मे । पृच्छन्त्यै सादर कस्मात्किमप्यानन्दमन्दिर! ॥२६॥

सुन्दर नासिका, सोहावनी ठोढ़ी, बिम्बाफलके सदृश लाल-ओष्ठ व लाल अधर, गोल शीशे के समान (छाया ग्रहण करने वाले) दोनों कपोलोंसे शोभायमान ॥१७॥

विशाल मस्तक, सुन्दर दाँत, काले घुंघुराले केश, सुन्दरकान, वर्णनसे परे, अतिशय सुन्दरता के सार, सभीके दर्शनोंके इच्छा पात्र, प्रशंसाके योग्य, अमृतकी वर्षा करने वाले, सुन्दर मुस्कान युक्त, आह्लादके उत्पत्ति स्थान, सभीके मनको हरण करनेवाले तथा ध्यान करने वालों को तुरन्त पवित्र करने वाले महामाधुर्यसे युक्त, स्वच्छ, शृंगार किये हुये, मुख चन्द्रका दर्शन करके वे पूर्ण तृप्त हो गयीं ॥१८॥१९॥२०॥

पुनः स्वर्ग लोकसे मँगाया हुआ मानकर, हृदय-लुभावन उस मुखचन्द्र की छायाका स्पर्श करती, एवं भली प्रकार देखती हुई उससे मीठे वचन बोलीं ॥२१॥

हे चन्द्र ! तुम्हारा व्रत बहुत अच्छा है, तुम बड़े सुन्दर, देखने ही योग्य हो। तुम्हारा दर्शन करके मेरा हृदय बहुत ही प्रसन्नताको प्राप्त हो रहा है ॥२२॥

अब तुम मेरे साथ अनेक प्रकारके खेलोंको खेलते हुये सुखपूर्वक यहीं निवास करो। मैं तुम्हारा कभी भी निरादर नहीं करूँगी ॥२३॥

हे कमलनयन ! तेरे समान मैं किसीको भी सुन्दर नहीं देखती, अत एव जिन्हे तुम्हारा दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त है, वे तुम्हारे पास रहने वाले धन्य हैं ॥२४॥

अच्छा अब भय तथा सन्देहको छोड़कर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, सत्य-सत्य बताओः-मेरे वचन तुम्हें स्वीकार हैं अथवा नहीं ? ॥२५॥

हे आनन्द मन्दिर ! चन्द्र ! मैं आदर पूर्वक पूछती हूँ पर उत्तर देते हुये प्रतीत होने पर भी आप कुछ उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं ? ॥२६॥
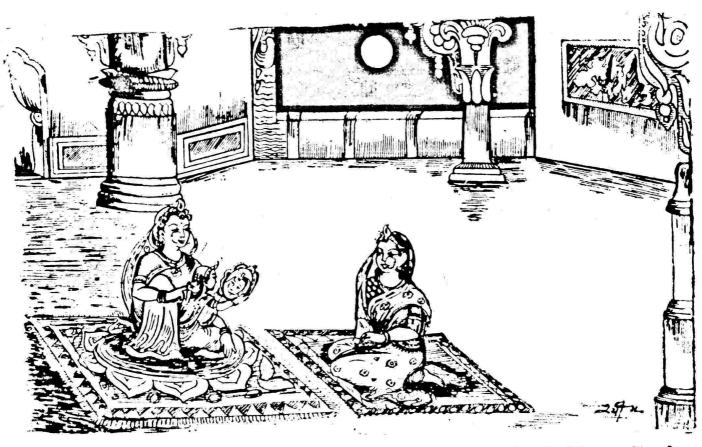
चन्द्र खिलौनाके निमित्त हठ करने पर श्रीसुनयना अम्बाजीने श्रीललीजीके हाथमें दर्पण (आइना) दिया है, उसमें अपने श्रीमुखारविन्दके प्रतिबिम्बको ही चन्द्र खिलौना मानकर वे उससे वार्तालाप कर रही हैं।

परमाह्लादरूपोऽसि त्वं मूकोऽपि मनोहर । अतुल्यं त्रिषु लोकेषु दृष्ट्वा त्वां चकिताऽस्म्यहम्॥२७॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

विह्वलन्तीं तमुक्त्वैवं सुतां प्राणगरीयसीम् । जननी तर्हि हेतुज्ञा परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥२८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे वत्से! दीयतां चन्द्र इदानीं भद्रमस्तु ते । मञ्जूषायां प्रयत्नेन स्थापयिष्याम्यहन्तु तम् ॥२९॥

यदा ते द्रष्टु मिच्छा स्यात्तदा द्रक्ष्यसि तं पुनः । पलायिता स्वभावेन नोचेदेष हि कथ्यते ॥३०॥

श्री सुचित्रोवाच ।

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं जनन्या स्निग्धया गिरा । आदर्शस्तत्करांभोजाद्धृत्वा न्यस्तः समुद्गके ।३१।

ततो लब्धधृतिर्वत्से! मातरं मैथिली मुदा । दृष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोक्य सुखं चेतांसि नोऽहरत् ॥३२॥

माता सुनयना तस्यै पाययामास वै पयः । मुखचन्द्रं समाचुम्ब्य लालयन्ती मुहुर्मुहुः ॥३३॥

ततः सर्वाः प्रमुदिता राज्ञ्यः श्रीमिथिलेश्वरीम् । प्रणिपत्य स्मरन्त्यस्तां भगिनीं ते गृहं ययुः ॥३४॥

हे चन्द्र ! तुम्हारी उपमाके लिये त्रिलोकीमें कोई है नहीं । तुम्हें देखकर मैं चकित हो रही हूँ । तुम आह्लादके स्वरूप हो, अतः गूंगे होने पर भी मनको हरणकर रहे हो ॥२७॥

श्रीसुचित्राअम्बाजी बोलीं:-इस प्रकार जब श्रीललीजी अपने श्रीमुखके प्रतिबिम्ब रूपी चन्द्रसे प्रेमपूर्ण वचनोंको कहकर, विभोरताको प्राप्त होने लगीं, तब उस (विह्वलता) का कारण समझने वाली श्रीसुनयना-महारानीजी, प्राणोंसे अधिक प्यारी अपनी श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर (उनसे) बोलीं:-हे वत्से ! तुम्हारा कल्याण हो, अब चन्दा दे दीजिये । मैं इसको प्रयत्न-पूर्वक सन्दूकमें रख देती हूँ ॥२८॥२९॥

जब तुम्हारी पुनः देखनेकी इच्छा हो तब इसे देख लेना, अभी रख दें नहीं तो यह स्वभावसे ही भागने वाला है, अत एव भाग जायेगा ॥३०॥

श्रीसुचित्राअम्बाजी बोलीं:-इस प्रकार श्रीसुनयना महारानीजीने श्रीललीजीको अपनी सरस वाणी द्वारा समझाकर, उनके हस्तकमलसे उस दर्पण (शीशा) को लेकर सन्दूकमें रख दिया ।३१॥ हे वत्से ! जब श्रीललीजीके हाथोंसे वह शीशा ले लिया गया, तब धैर्यको प्राप्त हुई श्रीललीजीने, प्रसन्नतापूर्वक, श्रीअम्बाजीको देखकर पुनः हम सभीके चित्तोंको हर लिया ॥३२॥

श्रीललीजीकी माता श्रीसुनयना महारानीजी, बारम्बार मुख रूपी चन्द्रको चूमकर, दुलार करती हुई, उन्हें दूध पिलाने लगीं ॥३३॥

तत्पश्चात्पूर्ण प्रसन्नताको प्राप्त, सभी रानियाँ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी महारानीजीको प्रणाम करके, तुम्हारी बहिन (श्रीलली) जी का स्मरण करती हुई, घर गयीं ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

लीलामिमां मञ्जुलमङ्गलप्रदां श्रुत्वा ऽत्यजं रोदनमञ्जसा प्रिय ! ।
उक्तां जनन्या सुखिता मनोहरामासादितश्रीमिथिलेशजास्मृतिः ॥३५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! अपनी सुचित्रा अम्बाजीके द्वारा कही हुई, श्रीमिथिलेश नन्दिनीजूकी सुन्दर मङ्गलोंको प्रदान करनेवाली, इसमनोहर लीलाको सुनकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू का स्मरण प्राप्त करके मुझे बड़ा सुख हुआ अत एव मैंने अनायासही रोना छोड़ दिया ॥३५॥

इति त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

गायिका रूप धारिणी श्रीसरस्वतीजी द्वारा श्रीअम्बाजी की प्रेम परीक्षा एवं गान मिष श्रीकिशोरीजी का माधुर्य वर्णन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

संस्थितया सभागारे योषिदेका ह्यदृश्यत । आव्रजन्ती जनन्या मे स्वसुरस्या मनोरमा ॥१॥
दिव्यरूपा ऽनवद्याङ्गी वीणावादनतत्परा । बालकैर्बालिकाभिश्च लोकदुर्लभदर्शना ॥२॥
विधाय स्वागतं पृष्टा वाण्या विनयपूर्वया । आगमार्थप्रबोधाय विनीता साऽऽह तामिति ॥३॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

समाख्याता ऽस्मि वाग्देवी सदा स्वच्छन्दचारिणी । सङ्गीतशास्त्रकुशला दर्शनार्थं तवागता ॥४॥
अनुज्ञां प्राप्नुयां चेत्ते दर्शयामि स्वकं गुणम् । गुणज्ञायै सुविज्ञायै धर्मोत्तमप्रवृत्तये ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी, प्यारे श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:-हे प्यारे ! सभामें विराजती हुई हमारी बहिन (श्रीलली) जूकी माता, श्रीसुनयनाअम्बाजीने देखा, एक मनोहर महिला आरही है ॥१॥

उसका रूप अलौकिक है, सभी अङ्ग प्रशंसनीय हैं, कुछ बालक-बालिकायें साथमें हैं, वह वीणाको बजा रही है, उसका दर्शन लोगोंको दुर्लभ है ॥२॥

आने पर स्वागत करके श्रीसुनयना अम्बाजीने उसके आनेका कारण जाननेके हेतु जब विनय युक्त वाणीसे पूछा, तबवे बड़ी नम्रता-पूर्वक उनसे इस प्रकार बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी, मेरा नाम वाग्देवी है, मैं सङ्गीतशास्त्र में चतुर स्वतन्त्र विचरने वाली, आपके दर्शनोंके हेतु आई हूँ ॥३॥४॥

हे श्रीमहारानीजी ! आप गुणोंको समझने वाली परम विज्ञ हैं । आपकी धर्ममें उत्तम प्रवृत्ति है, इसलिये यदि आज्ञा पाऊँ तो मैं आपको अपना गुण दिखाऊँ ॥५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

आज्ञापयामि सन्तुष्टमनसा त्वां शुभेक्षणे !। आत्मनो दर्शय प्रीत्या सुभगे ! गुणकौशलम् ॥६॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्ता सा महाराज्ञ्या सभामध्यगता सती । गानं प्रवर्तयामास वादयन्ती स्वकच्छपीम् ॥७॥
विभिन्नरागान् बालास्ते रागिणीर्बालिकास्तथा । यथारूपं तु विधिना व्यञ्जयामासुरुत्सुकाः ॥८॥
रागिणीं यां च यं रागं श्रोतुमैच्छद्यशस्विनी । श्रावयामास वाग्देवी तां च तं विधिपूर्वकम् ॥९॥
तस्या गानेन तालेन संमुग्धा मिथिलेश्वरी । आगताभिः सहान्याभी राज्ञीभिश्चतदालयम् ॥१०॥
तां प्रशस्य प्रशंसार्हां प्रसन्नेनान्तरात्मना । अयुतामूल्यरत्नानि ददौ तत्प्रीतिहेतवे ॥११॥
प्रणम्य शिरसा तानि प्रत्युवाच प्रजेश्वरीम् । नेमानि मम तोषाय प्रदत्तानि शिवोऽस्तु ते ॥१२॥
अन्यद्रत्नमहं काङ्क्षे तत्प्रदातुं कृपा यदि । तव स्यात्परमोदारे ! कृतार्था स्यामहं तदा ॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

इमान्यपि गृहाण त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम् । ध्रुवं ददामि संप्रीता गानेनास्मि भृशं तव ॥१४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे मङ्गल दर्शन वाली ! हे सुन्दरी ! मैं तुम्हें संतुष्ट मनसे आज्ञा प्रदान करती हूँ, आप प्रेम पूर्वक अपनी गुण चतुराई दिखाइए ॥६॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे श्रीपार्वतीजी ! श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, सभीके बीचमें विराजमान हो, वे अपनी कच्छपी नामकी वीणा बजाने लगीं ॥७॥

तब उनके साथके उत्सुक बालकोंने अनेक प्रकारके राग और उत्सुक बालिकाओंने, विविध प्रकारकी रागिनियोंको, जैसा जिनका स्वरूप है, उसी प्रकार विधिपूर्वक (गाकर) उन्हें प्रकट कर दिखाया ॥८॥

यशस्विनी श्रीसुनयना महारानीजीने जिस-जिस राग और रागिनीके सुननेकी इच्छा की, उन-उन राग और रागिनियोंको श्रीवाग्देवीजीने उन्हें विधिपूर्वक श्रवण कराया ॥९॥

सभा-भवनमें पधारी हुई उन सभी रानियोंके सहित, मिथिलेश्वरी श्रीसुनयना महारानीजी, उन वाग्देवीजीके गान तथा तालके श्रवणसे पूर्ण मुग्ध हो गयीं अत एव प्रशंसा योग्य, उन वाग्देवीजीकी प्रशंसा करके, उन्हें संतुष्ट करनेके लिये श्रीसुनयना अम्बाजीने प्रसन्न हृदयसे उन्हें, अमूल्य(जिनका मूल्य निर्धारित न किया जासके ऐसे)दश सहस्र रत्नोंको प्रदान किया ॥१०॥११॥

श्रीवाग्देवीजी उन रत्नोंको सिरसे प्रणाम करके, श्रीअम्बाजीसे बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी ! आपका कल्याण हो । इन रत्नोंसे मुझे सन्तोष नहीं हो सकता ॥१२॥

मैं और ही रत्न पाना चाहती हूँ, हे परम-उदारे ! यदि उसे प्रदान करनेके लिये आपकी कृपा हो, तो मेरा मनोरथ अवश्य सफल हो सकता है ॥१३॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:—अच्छा इन रत्नोंको लो, पुनः आपके मनमें और जिस रत्नके पानेकी इच्छा हो उसे भी कथन कीजिये । मैं तुम्हारे गानसे प्रसन्न हूँ, अत एव उसे भी अवश्य प्रदान करूँगी ॥१४॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

अप्रकाश्यं भवत्या तद्रत्नमुक्तमनुत्तमम् । अप्रदाय विशेषज्ञे ! याचेऽस्तूरीकृतं यदि ॥१५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

मयि शङ्कान्विता मा भूः प्रतिजाने तदर्पितम् । यत्त्वया काङ्क्षितं भद्रे! कथ्यतां पृष्टया मया ॥१६॥

नाहं प्रकाशयिष्यामि त्वया रत्नमभीप्सितम् । अप्रदाय महाप्राज्ञे ! तुभ्यं याहीति निश्चयम् ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञ्या संशुद्धमृदुलात्मना । असौम्यं सौम्यवदना वचो वक्तुं प्रचक्रमे ॥१८॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

दातॄणां यद्यपि क्लेशो याचद्भिर्नानुभूयते । वदान्यैरापदि गतैः स्वभावो नातिवर्त्यते ॥१९॥

भवती धर्मविन्मान्या सर्वलोकेषु विश्रुता । कुलीना पट्टमहिषी जनकस्य महात्मनः ॥२०॥

किमदेयं त्वया राज्ञि ! महासौभाग्यभूषिते! । बिभ्यतया याच्यतेऽभीष्टं महाकार्पण्यशीलया ॥२१॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी की इस प्रतिज्ञाको सुनकर वाग्देवीजी बोलीं:–हे विशेष (रहस्योंको) समझने वाली श्रीमहारानीजी ! मेरे माँगे हुये सबसे उत्तम रत्नको, बिना हमें प्रदान किये, किसीसे भी प्रकट न करनेकी यदि आपको शर्त स्वीकार हो, तो मैं माँगू ॥१५॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:–हे कल्याण स्वरूपे! आप मेरे प्रति सन्देह मत कीजिये, में प्रतिज्ञा करती हूँ, आप जिस रत्नको चाहती हैं, मैंने उसे प्रदान किया अतः मेरे पूछने पर उसे कह दीजिए ॥१६॥ आप जिस रत्नको लेना चाहती हैं, बिना प्रदान किये मैं, उसे किसीसे भी नहीं प्रकट करूँगी, ऐसा विश्वास करें ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे श्रीकात्यायिनीजी! जिनका हृदय पूर्ण शुद्ध और कोमल है, उन श्रीसुनयना महारानीजीसे ऐसा बचन पाकर, वे सौम्य-मुख वाली वाग्देवीने असौम्य (टेढ़े, अति दुःखद) वचनों को बोलना प्रारम्भ किया ॥१८॥

वाग्देवी बोलीं–हे श्रीमहारानीजी! यद्यपि याचक (माँगने वाले) लोग, देने वालोंके कष्टका अनुभव नही रखते हैं, फिर भी दाता आपत्ति कालमें भी कभी अपने दान करनेके स्वभावका त्याग नहीं करते, अर्थात् चाहे उनपर बारम्बार कितनी भी, आपत्तियाँ क्यों न आती रहें फिर भी माँगने वालेको बिना दिये, उनसे रहा ही नहीं जाता ॥१९॥

आपतो धर्मका रहस्य जाननेवालोंके द्वारा भी सम्मान पाने योग्य, सभी लोकोंमें प्रसिद्ध, उत्तम कुलमें उत्पन्न, महातमा श्रीजनकजी-महाराजकी महारानी हो ठहरीं ॥२०॥

इस हेतु भला आपको किस रत्नके प्रदान करनेमें सङ्कोच हो सकता है ? हे महासौभाग्यसे सुशोभित श्रीमहारानीजी ! तथापि दरिद्र होनेके कारण डरती हुई मैं आपसे अपने अभीष्ट रत्नको माँग रही हूँ ॥२१॥

यदि दित्ससि मे रत्नं सुतारत्नमिदं खलु। अभागिन्या ममोत्सङ्गभूषणाय प्रदीयताम् ॥२२॥
एतदुक्तं वचः श्रुत्वा राज्ञी परमदारुणम्। विह्वलन्ती गतोत्साहा विललापातिदुःखिता ॥२३॥

श्रीसुनयनोवाच।

हा विधातरिदमेव किं कृतं बालिशेन भवता धियाऽधुना।
वञ्चिताऽस्मि धृतदिव्यरूपया धूर्त्तया यदनया नृशंसया ॥२४॥
हा नृपेण किमशोभनं कृतं योऽधिगम्य तनयां श्रियोपमाम्।
मोघकाम इह कृच्छ्रसाधनैर्मां निशम्य मुषितां मरिष्यति ॥२५॥
भ्रातृभिः सभगिनीभिरादृतैर्हा विनाऽनया स्नेहरूपया।
श्रीविदेहशुचिवंशजैः कथं जीवितं च वत धारयिष्यते ॥२६॥
हन्त ये च खलु दर्शनाशया सन्त्यपेतगृहकृत्यसञ्चयाः।
तैर्विना परमरम्ययाऽनया का दशा पुरजनैरुपैष्यते ॥२७॥
अद्य हन्त मिथिलापुरी मया दुर्धिया विरहिता श्रिया कृता।
अञ्जसा सरसगानमुग्धया मां धिगस्ति सहसा पणोद्यताम् ॥२८॥

यदि आप निश्चय ही मुझे रत्न देना चाहती हैं, तो मुझ अभागिनीकी गोद शृङ्गारके लिये अपना पुत्री (श्रीललीजी) रूपी रत्न हमें प्रदान कीजिये ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले :–हे प्रिये ! वाग्देवीके कहे हुये दारुण वचनोंको सुनकर अत्यन्त दुखी तथा उत्साहहीन हो महारानी श्रीसुनयनाजी विह्वलताको प्राप्त हो विलाप करने लगीं ॥२३॥ श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे विधाता ! बुद्धिमें सर्वथा अबोध (नासमझ) बालकसे बनकर हाय आपने यह क्या किया ? जो दिव्य रूपको धारण किये हुई, दयारहित इस ठगिनीने हमें ठग लिया ॥२४॥

हाय श्रीमिथिलेशजी महाराजने ऐसा कौन खोटा कर्म किया था। जो बड़े कष्टपूर्ण साधनों द्वारा श्रीलक्ष्मीजीके समान सुन्दरी श्रीललीजीको पाकर भी, अपने मनोरथकी बिना सफलता पाये ही, मुझे इस प्रकार ठगी हुई सुनकर शरीर ही छोड़ देंगे ॥२५॥

स्नेहस्वरूपा श्रीललीजीके द्वारा आदर प्राप्त बहनो सहित सभी भाई, तथा श्रीविदेह महाराजके पवित्रवंशमें उत्पन्न सभी स्त्री-पुरुष लोग भी इनके बिना हाय क्षणमात्र भी, कैसे जीवित रहेंगे ? अर्थात् ये सब भी अपने-अपने प्राण छोड़ देंगे ॥२६॥ केवल श्रीललीजीके दर्शनोंकी आशासे, जिन्होंने अपने-अपने घरोंके कार्यसमूहोंका परित्याग ही कर दिया है, हाय वे पुरवासी लोग, इन परम मनोहर स्वरूपा श्रीललीजीके बिना किस दशाको प्राप्त होंगे? ॥२७॥

हाय, रसीले गानसे मुग्धहोकर मुझ दुर्बुद्धिने आज अनायास ही श्रीमिथिलापुरीको श्रीहीन कर डाला, अत एव बिना सोचे विचारे मुझ प्रतिज्ञा करने वालीको बारंबार धिक्कार है ॥२८॥

जीवितेन दुरदृष्टकेन वैस्यादलंहि विपुलार्त्तिदायिना ।
तत्क्षणं हि मरणं शिवप्रदं संभवेन्मम हितं नचान्यथा ॥२६॥

हे त्रिदेव ! विबुधा ! महर्षयः ! पूज्यपादकमलाः शरीरिणाम् ।
सर्व एव मिथिलानिवासिनामापदो हरत मच्छिरोनताः ॥३०॥

हे समस्तमिथिलापुरौकसो मानवाद्यखिलवर्गयोनयः ! ।
संनिपात्य विपदाकरेऽद्य वो जीवितुं न च पलं मयेष्यते ॥३१॥

क्षम्यतां च तदभद्रया मया निन्दितं कृतमशोभनं परम् ।
दुष्कृतं सकलघातकारणं नौमि वो मुहुरतो यदृच्छया ॥३२॥

दीयतेऽसुदयितेयमुर्विजा न प्रतिश्रुतमहो विसृज्यते ।
पान्तु सर्व इह लोकपालका मत्सुताविरहदग्धचेतसः ॥३३॥

नोत्सहे सुमुखि ! कर्तुमन्यथा प्रोदितं स्वनिगमं कथञ्चन ।
दत्तमेव निगृहाण हर्षिता रत्नमीप्सितमिमां मदङ्कतः ॥३४॥

हाय ऐसा दुर्भागी, महान् कष्टदायक मेरा जीवन व्यर्थ है, अब तो मेरी तत्क्षण मृत्युही कल्याणप्रद होगी, जीवित रहनेमें मेरी भलाई नहीं है ॥२६॥

हे शरीरधारियोंके पूजने योग्य श्रीचरणकमल वाले, तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) देवताओं! हे तैंतीस करोड़ देवो! हे अट्ठासी हजार महर्षियों! मैं आप लोगोंको, सिरके द्वारा प्रणाम करती हूँ, आप सभी लोग! मिथिला-निवासियोंकी इस उपस्थित महान् आपत्तिको हरण कीजिये ॥३०॥

मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी आदि सभी वर्गमें उत्पन्न हुये, हे समस्त श्रीमिथिलावासियों ! आप लोगोंको महान् दुःख रूपी समुद्रमें गिराकर अब मैं पलभर भी नहीं जीवित रहना चाहती ॥३१॥

हाय मुझ अमङ्गल-स्वरूपाने दैव संयोगसे बिना विचारे सर्वनाशक, निन्दित, परम अकल्याण-कारी जो यह प्रतिज्ञा रूपी पाप कर लिया है, उसे आपलोग क्षमा करें, एतदर्थ मैं आप लोगोंको बारम्बार प्रणाम करती हूँ ॥३२॥

अहो! मैं भूमिसे प्रकट हुई अपनी प्राण-प्यारी, इन-श्रीललीजी को प्रदान कर रही हूँ, क्योंकि प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकती अतः अब सभी लोकपाल, मेरी श्रीललीजीके विरहसे जले चित्त वाले मेरे मिथिला-निवासियोंकी रक्षा करें ॥३३॥

हे सुन्दरमुखवाली वाग्देवि ! अपनी की हुई प्रतिज्ञाको मैं किसी प्रकार भी नहीं टाल सकती, इस लिये अब आप मेरी गोदसे अपने इच्छित इन श्रीललीजी रूपी रत्नको हर्ष पूर्वक ग्रहण करें, क्योंकि प्रतिज्ञानुसार मैं तुम्हें दे चुकी हूँ ॥३४॥

वञ्चिकेति विदितं पुरा न मे गायिके ! त्वमसि चेदृशी खलु ।
निर्मलेन हृदयेन ते वचो दातुमुक्तमविमृश्य याचितम् ॥३५॥

श्रीवाग्देव्युवाच ।

राज्ञि ! धैर्यमुपयाहि मा शुचः कृच्छ्रमेव महतां विभूषणम् ।
नेयमस्ति तव नेयमस्ति मे केवलंसकलदेहिनां निधिः ॥३६॥
नानया विरहितो हि शक्यते कोऽप्यणुः कथमपीह भाषितुम् ।
तत्कथं तदनुरागरञ्जिता ब्रूहि कर्तुमिति बोधवारिधे ॥३७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सैवमेव परिबोधिता तया प्राणनाथ ! तनयामयोनिजाम् ।
चुम्बितां च परिरभ्य भूयशो विह्वलाऽप्यथ तदङ्कगां व्यधात् ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

उद्यतां च गमनाय निर्दयां तां समं सजलकञ्जनेत्रया ।
संनिरीक्ष्य निजबालकन्यया श्रीमती सुनयना रुरोद ह ॥३९॥

हे गायिके! माँगनेके पहिले मैं नहीं जानती थी, कि तुम इस प्रकार सर्वस्व-ठगने वाली हो, इसी लिये अपने शुद्ध हृदयके कारण, बिना कुछ सोच विचार किये ही मैंने तुम्हें मुख-माँगे हुये रत्नको देनेका वचन दे दिया ॥३५॥

श्रीसुनयना महारानीजीके अधैर्यमय इन वचनोंको सुनकर, श्रीवाग्देवीजी बोलीं:—हे श्रीमहारानीजी ! आप खेद न करें, धैर्यको प्राप्त हों, दु:सहकष्ट ही महापुरुषोंको भूषणके समान सुशोभित करनेवाला है । ये श्रीललीजी न तो एक आपकी ही हैं, और न केवल मेरी ही, बल्कि ये तो सम्पूर्ण देहधारियोंकी सम्पत्ति भण्डार हैं ॥३६॥

हे समुद्रके समान अथाह ज्ञान वाली श्रीमहाराणीजी! इस लोकमें जब किसी अणुको भी इन श्रीललीजीसे कभी कोई विलग कहने को भी समर्थ नहीं हो सकता तब इनके अनुरागमें रँगी हुई आपको अथवा अन्य प्रेमियोंको इन श्रीललीजीसे भला वियोग कराने के लिये कौन समर्थ हो सकता है ? ऐसा आप ही कहिए, (जिस चिन्तासे आप इतनी अधीर हो रही हैं) अत एव आप अपने ज्ञान सागर स्वरूप का स्मरण करके धैर्यको प्राप्त हों, खेद न करें ॥३७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे श्रीप्राणनाथजू ! इस प्रकार वाग्देवीजीके द्वारा श्रीकिशोरीजीके स्वरूप ज्ञानको प्राप्त कराई हुई श्रीसुनयनाअम्बाजीने, स्वेच्छासे प्रकट हुई, अपनी श्रीललीजीका चुम्बन करके तथा बारम्बार हृदयसे लगाकर, विह्वल होती हुई भी उन्हें वाग्देवीकी गोदमें दे दिया ॥३८॥ भगवान् शङ्करजी बोले-हे श्रीपार्वती! पुन: सजललोचना अपनी श्रीललीजीको साथ लेकर दया हीन उन वाग्देवीको चलनेके लिये उद्यत देखकर, श्रीमती सुनयना महारानीजी अधीर हो रोने लगीं ॥३९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हा प्रिये ! निमिकुलप्रदीपिके वारिजाक्षि ! मृगलाञ्छनानने ! ।
ह्लादिनि! प्रकृतिमोहनस्मिते! त्वां विना धिगसुधारिणीं हि माम् ॥४०॥

श्रीशिव उवाच ।

एतदाशु वचनं निगद्य सा कृत्तमूलकदलीद्रुमोपमा ।
संपपात पृथिवीतलेऽसुखं निर्गतासुरिव राज्यदृश्यत ॥४१॥

गायिका त्वरितमेव मैथिलीं संविधाय तदनिन्दिताङ्कगाम् ।
प्राब्रवीत्सुनयनां प्रबोधितां संप्रशस्य खलु हंसबाहना ॥४२॥

श्रीसरस्वत्युवाच ।

क्षम्यतां त्वदनुरागमीक्षितुं धृष्टता सुविहिता मयाऽधुना ।
भूमिजाम्ब ! मिथिलेशवल्लभे ! स्यात्तु भद्रमनिशं यशोधने ! ॥४३॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमेव नतया तयोदिता प्राप्तभूमितनयास्यदर्शना ।
शारदेयमवधार्य लक्षणैः सोत्थिता च सहसा ननाम ताम् ॥४४॥

श्रीसुनयना महारानीजी बोलीं–हे निमिकुलको दीपकके समान सुशोभित करने वाली ! हे कमलके सदृश नेत्र वाली! हे चन्द्रमाके समान सुन्दर प्रकाश युक्त मुखवाली ! हे आह्लाद प्रदान कारिणी तथा स्वाभाविक मोहक मुस्कान वाली प्यारी, हे श्रीललीजी ! आपके बिना मुझ जीवनधारिणी को धिक्कार है ॥४०॥

भगवान् शिवजी बोले–हे प्रिये ! इतना कहकर श्रीसुनयना महारानीजी, दुःख-पूर्वक जड़ कटे हुये केलेके वृक्षके समान पृथिवी तलपर तुरन्त गिर पड़ी और प्राणरहितसी दिखाई पड़ने लगीं ॥४१॥ इस लिए गायिकाजीने तत्क्षण उनकी प्रशंसाप्राप्त गोदमें श्रीमिथिलेशललीजी को विराजमान करके, श्रीललीजीके स्पर्श द्वारा सावधान की हुई श्रीसुनयना अम्बाजीकी भली प्रकारसे प्रशंसा करके हंसके ऊपर विराजमान हो बोलीं:–॥४२॥

हे यशरूपी धन सम्पन्ना! श्रीमिथिलेश महाराजकी प्यारी! हे श्रीभूमिनन्दिनीजूकी अम्बाजी! आपका सदाही कल्याण हो । आपके प्रेमको देखनेके लिये इस समय मैंने जो आपके साथ ढिठाईकी है, उसे क्षमा करें ॥४३॥ भगवान् शिवजी बोले–हे प्रिये ! इस प्रकार नमस्कार करके श्रीसरस्वतीजीके प्रार्थना करने पर, श्रीललीजीके मुखारविन्दका दर्शन प्राप्त करती हुई, श्रीसुनयना महारानीजीने, हंस-वीणादि लक्षणोंके द्वारा उन्हें "ये भगवती शारदा(श्रीसरस्वती)जी हैं" ऐसा निश्चय करके उठकर उन्हें सहसा प्रणाम किया ॥४४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

जाड्यघोरतिमिरप्रणाशिनीं पुण्यशीलशुचिबुद्धिदायिनीम् ।
ब्रह्मविष्णुगिरिशादिवन्दितां त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥४५॥
अज्ञराजमपि बोधभास्करं कर्तुमेव सबलां विपश्चिताम् ।
आभुजादिकटिसक्तकच्छपीं त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥४६॥
सीति तेति खलु रेति मेत्यथो हृद्यवर्णरसनाग्रशोभिताम् ।
भावनीयकमनीयविग्रहां त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥४७॥
पूर्णचन्द्रवदनां तडित्प्रभां सुस्मितां सरसिजायतेक्षणाम् ।
स्फाटिकस्रगभियुक्तहस्तकां त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥४८॥
देवकार्यकटिबद्धमेखलां ध्यायतामशुभमूलहारिणीम् ।
वाञ्छितप्रदनतिस्मृतिस्तुतिं त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥४९॥
या च मामनुगृहीतुमागता तुष्टिदाऽऽस निजगानविद्यया ।
भर्त्सिताऽप्यकुपितेक्षणप्रदा त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥५०॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-जो जड़ता(अज्ञान)रूपी घोर अन्धकारका पूर्णनाश करनेवाली, पवित्र स्वभाव वालोंको शुचि(भगवद्)-बुद्धिप्रदान करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु महेश आदिकोंसे प्रणाम की हुई, हे श्रीसरस्वती महारानी! मैं आपको शतशः सहस्रोंबार नमस्कार करती हूँ ॥४५॥

हे श्रीसरस्वती महारानीजी ! जो मूर्ख राजको भी विद्वानोंमें सूर्यके समान ज्ञानका प्रकाशक बनानेकी सामर्थ्य वाली तथा भुजासे लेकर कमर तक अपनी कच्छपी नामकी बीणाको सटाये हुई हैं, ऐसी आपको, मैं सैकड़ों वार प्रणाम करती हूं ॥४६॥ हे सरस्वती महारानी! जिनकी जिह्वा का अग्रभाग सी, ता, रा, म इन चार मनोहर वर्णोंसे सुशोभित है, जिनका सुन्दर शरीर ध्यान करने योग्य है, उन आपको मैं सैकड़ो वार प्रणाम करती हूँ ॥४७॥

हे सरस्वती महारानी! जिनका मुख चन्द्रमाके समान प्रकाशमान है, जिनकी कान्ति बिजली के समान है, सुन्दर जिनकी मुस्कान है तथा जिनके विशाल नेत्र, कमलके समान सुन्दर हैं, हाथ में स्फटिकमणिकी माला है, उन आपको मैं सैकड़ों बार नमस्कार करती हूँ ॥४८॥

हे सरस्वती महारानी ! जो देवताओंका कार्य-सिद्ध करनेके लिये, सदा ही कमरमें करधनी कसे रहती हैं और ध्यान करने वालोंके अमङ्गलोंकी जड़को ही हरण कर लेती हैं तथा जिनका नमस्कार, स्मरण व गुणगान सभी मनोरथोंको पूरा करनेवाला है, उन आपको मैं अनन्त बार प्रणाम करती हूं ॥४९॥ हे माँ सरस्वतीजी ! जो मुझपर दया करनेके लिये आई और अपनी गानविद्याके द्वारा मुझे प्रसन्न कर लिया, पुनः प्रेमपरीक्षा करते समय मेरे बुरा, भला कहने पर भी, जिन्होंने कोप न करके मुझे अपने वास्तविक स्वरूपका दर्शन प्रदान किया, उन आपको मैं अनन्तबार प्रणाम करती हूँ ॥५०॥

संप्रसीद मयि संयताञ्जलौ क्षम्यतां मदपराधसञ्चयः ।
मत्सुतां गमय भद्रयाऽऽशिषा त्वां नताऽस्मि शतशः सरस्वति ! ॥५१॥

श्रीसरस्वत्युवाच ।

न क्षमाऽस्मि तव भाग्यवर्णने न क्षमा हरिविरिञ्चिशङ्कराः ।
नो सहस्रवदनः षडाननश्चेतरः क इह वै प्रभुर्भवेत् ॥५२॥
दुर्धिया कृतमशोभनं मया निदयेन हृदयेन युक्तया ।
श्रीविदेहकुलकीर्तिमण्डने ! तत्क्षमस्व कृपया सतां मते ! ॥५३॥
कर्तुमेव निजवाक्कृतार्थतां गानमेकमनघे विधीयते ।
श्रीविदेहकुलनन्दिनीपुरः श्रूयतां तदधुनाऽऽत्मना त्वया ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदेव वचनं निगद्य सा मैथिलीचरणकञ्जयोर्नता ।
संयताञ्जलिपुटा प्रचक्रमे गातुमङ्ग रसपूर्णया गिरा ॥५५॥

श्रीशारदोवाच ।

चिकुराः कुटिलाः सघना मधुराः श्रवणे मधुरे मणिपुष्पयुते ।
अलिकं मधुरं शशिविन्दुयुतं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५६॥

हे श्रीसरस्वतीजी महारानी ! मैं हाथ जोड़ती हूँ, आप मुझपर पूर्ण-प्रसन्नहो मेरे अपराध समूहोंको क्षमा कीजिये, एतदर्थ मैं आपको अनन्तबार प्रणाम करती हूँ ॥५१॥

श्रीसरस्वतीजी बोलीं:-हे श्रीमहारानीजी! आपके सौभाग्यका वर्णन करनेके लिये न मैं समर्थ हूँ, न ब्रह्मा, विष्णु, महेश समर्थ हैं, न हजार मुखवाले शेषजी और न षट् (छः) मुखवाले श्रीकार्तिकेयजी ही समर्थ हैं, फिर इनसे इतर इस लोकमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥५२॥

सन्तोंके द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त, श्रीविदेह महाराजके कुलकी कीर्त्ति (यश) को भूषणके समान सुशोभित करनेवाली हे श्रीमहारानीजी ! दयारहित हृदयसे युक्त होकर जो मैंने दुर्बुद्धिके कारण आपके साथ अनुचित व्यवहार किया है, उसे आप कृपा करके क्षमा करें ॥५३॥

हे पापरहिते ! अपनी वाणीको कृतार्थ करनेके लिये ! अब मैं श्रीविदेहकुलको आनन्द-प्रदान करने वाली श्रीललीजीके सामने, एक गाना गारही हूँ, उसे आप मनसे श्रवण कीजिये ॥५४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे ! श्रीसरस्वतीजी श्रीसुनयना अम्बाजीसे यह कहकर श्रीललीजीके चरण-कमलोंमें मस्तक झुकाकर, दोनों हाथोंको जोड़े हुई अपनी रसमयी वाणी द्वारा गान प्रारम्भ किया ॥५५॥ श्रीसरस्वतीजी बोलीं:-हे श्रीमहारानीजी ! श्रीललीजीके सघन घुंघुराले केश, रेशमसे भी कोमल हैं, मणियोंके कर्णफूलोंसे युक्त सुन्दर कान हैं, अष्टमीके चन्द्रमासे भी श्रेष्ठ चन्द्रविन्दुसे युक्त विशाल मस्तक है, कमलसे भी अधिक सुन्दर विशाल नेत्र हैं, यही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशललीजूका सभी कुछ आनन्द प्रद है ॥५६॥

भृकुटी मधुरे स्मरचापनिभे सुनसा शुकतुण्डपरा मधुरा ।
पृथुनेत्रयुगं सदयं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५७॥
ललितं मुकुरप्रतिमं मधुरं सुकपोलयुगं दशना मधुराः ।
अधरो मधुरश्चिबुकं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५८॥
कलकम्बुगलो मधुरोंऽसयुगं मधुरं करपद्मयुगं मधुरम् ।
करजं मधुरं हृदयं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥५९॥
उदरं मधुरं त्रिवली मधुरा मधुरा सुकटी रशनोल्लसिता ।
मधुरे जघने घुटिके मधुरे मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६०॥
चरणाम्बुरुहं युगलं मधुरं शुकवृन्दगतं प्रपदं मधुरम् ।
पदजं तिमिरैकहरं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६१॥

श्रीललीजीकी दोनों भौंहे, कामदेवके समान सुन्दर हैं, आपके दयापूर्ण दोनों विशाल नेत्र, हरिणके बच्चे व कमलसे भी मनोहर हैं। आपकी सुन्दर नासिका, उत्तम तोतेकी नासिकासे भी अधिक आनन्द प्रद है, यही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सभी कुछ परम आनन्द प्रदान करनेवाला है ॥५७॥

श्रीललीजीके दोनों गोलकपोल, (गाल) दर्पणके समान उत्तम छाया ग्रहण करने वाले हैं। आपके दाँत, कुन्दकली तथा अनारके दानोंसे भी अधिक सुन्दर हैं ! आपका अधर, पके हुये विम्बाफलसे भी लालिमामें अधिक मोहक है, आपकी गोल ठोढ़ी भी विशेष आनन्द प्रदायक है, इतना नहीं, श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजूका सब कुछ आनन्द प्रदान करने वाला है ॥५८॥

श्रीललीजीका कण्ठ सुन्दर शङ्खके समान मनोहर है, आपके दोनों कन्धे भी मधुर हैं ! आपके हाथोंके नख भी हृदयाकर्षक हैं, आपका मक्खनसे भी कोमल हृदय है, यही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सभी कुछ आनन्द प्रद है ॥५९॥

श्रीललीजूका छोटासा उदर (पेट) मनोहर है। आपकी त्रिवली रेखा त्रिवेणी, (गंगा, यमुना सरस्वतीजी) नदियोंसे मधुर है, करधनीसे शोभायमान आपकी पतली कमर सिंहसेभी बढ़कर सुन्दर है, तथा आपके दोनों जङ्घे सुडौल, चिकने, गोल, बिना रोवोंके केलेके खम्भोंसे मनोहर हैं और आपके दोनों घुटने भी बड़े सुन्दर हैं इतनाही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजू का सभी कुछ अतीव आनन्द प्रदायक है ॥६०॥

श्रीललीजीके कमलसे भी सुकोमल श्रीचरण हैं, शुक (जीव) वृन्दोंसे सेवित आपके मनोहर पैरोंके पञ्जे हैं, और चन्द्रमाकी कान्तिसे बढ़कर अज्ञानरूपी घोर अन्धकारको दूर करने वाले आपके श्रीचरण–कमलोंके नख हैं, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशललीजूका सभी कुछ अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाला है ॥६१॥

विमलं मृदुलं वसनं मधुरं मधुरं मधुरं सकलाभरणम् ।
कमनं शिशुसंहननं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६२॥
मधुरं मधुरं गमनं मधुरं मधुरं मधुरं स्खलनं मधुरम् ।
मधुरं भ्रमणं कलनं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६३॥
अयनं मधुरं चयनं मधुरं शयनं मधुरं श्रयणं मधुरम् ।
अशनं मधुरं हसनं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६४॥
स्वनितं मधुरं श्वसितं मधुरं विहितं मधुरं निहितं मधुरम् ।
प्रथितं मधुरं क्वणितं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥६५॥

श्रीललीजूके वस्त्र, कोमल, स्वच्छ तथा बिजलीकी कान्तिसे बढ़कर चमकीले हैं, मधुर-मधुर छोटे–छोटे प्रकाशमान आपके सभी भूषण हैं, रति सौन्दर्यसे बढ़कर परम सुन्दर आपका शिशु स्वरूप है, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजीका सभी कुछ आनन्द वर्धन करता है॥६२॥

श्रीललीजूका मधु-विद्या यानी उपासना द्वारा प्राप्त होने योग्य जो रहस्य है वह भी सब तत्त्वोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, आपकी चाल मतवाले हाथीसे भी उत्कृष्ट है, आपका मधुविद्या (उपासना) प्रदान करनेवाला जो नाम है; वह भी सब साधनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, आपका फिसलना, भी आनन्द प्रद है, आपका टहलना हँसियोंसे भी अधिक मनमोहक है तथा आपका स्वर, वीणा व कोयल आदिसे भी मीठा है, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका सभी कुछ मधुर परम आनन्ददायक है ॥६३॥

श्रीललीजीका स्थान जो श्रीसाकेतधाम है, वह सभी धामोंसे विशेष आनन्द प्रद है, योगी लोग अपनी मनोवृत्तियोंका निरोध करके आपके जिस तेजको एकत्रित करते हैं वह विश्वके सब तेजोंसे उत्कृष्ट है । आपकी शय्या दुग्धफेनसे भी कोमल है, सभी जीवोंका रक्षास्थान-स्वरूप आपका श्रीचरणकमल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि रक्षकोंसे भी उत्कृष्ट है । भाव प्रधान होनेके कारण आपका भोजन भी अमृतसे श्रेष्ठ परम स्वादिष्ट है । चन्द्रमाकी किरणोंसे भी अधिक मनमोहक आपका मुस्कराना है, यही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ परम आनन्द प्रदायक है ॥६४॥

श्रीललीजीका श्रीचरणकमल, वेदोंका उत्तम निवास स्थान है । आपकी श्वास (प्राणवायु) शीतल, मन्द, सुगन्ध इन तीनों वायुओंसे विशेष आनन्द प्रद है । आपके किये हुये चरित, सभी से श्रेष्ठ हैं, आपमें स्थित जो यह जगत् है, वह भी आनन्द प्रद है और आपका यश भी सभीकी अपेक्षा विशेष उत्कृष्ट है । आपके नूपुर आदि भूषणोंका शब्द, अनहद नादसे भी अधिक आनन्द प्रदायक है, इतना ही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सब कुछ अतीव आनन्द प्रदान करने वाला है ॥६५॥

मृगितं मधुरं विदितं मधुरं गलितं मधुरं वलितं मधुरम् ।
श्रुतिगं मधुरं मुखगं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ।।६६।।

मधुरं मधुरं चरितं मधुरं मधुरं मधुरं भणितं मधुरं ।
मधुरं मधुरं मिलनं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ।।६७।।

श्रवणं मधुरं स्मरणं मधुरं कथनं मधुरं मननं मधुरम् ।
वरणं मधुरं भरणं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ।।६८।।

प्रणता मधुराः प्रणतिर्मधुरा प्रणयो मधुरः करुणा मधुरा ।
सरणिर्मधुरा ग्रहणं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ।।६९।।

श्रीललीजीका ऋषियों द्वारा खोजा हुआ रहस्य सबसे श्रेष्ठ है । आपका ज्ञान भी सर्वापेक्षा विशेष है, प्रकृतिके, तीनों गुण सत्व, रज, तमसे रहित आपका दिव्यसाकेत धामभी सबसे अधिक आनन्द प्रदायक है, भक्तोंके द्वारा सेवन किया हुआ आपका नाम भी सबसे अधिक आनन्द प्रद है, आपका ऐश्वर्य-चरित, जो वेदोंके द्वारा जानने योग्य है, वह भी सब शक्तियोंके चरितोंसे अधिक श्रेष्ठ है तथा आपका माधुर्य-चरित जो कृपा प्राप्त परमहंस महाभागवतोंके द्वारा ही जानने योग्य है वह भी सबसे अधिक आनन्द प्रदायक है, इतना ही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ सर्वाधिक आनन्द प्रदान करने वाला है ।।६६।।

श्रीललीजीका जीवोंके योगक्षेमके लिये जो कर्म है वह भी तीनों कालमें श्रेष्ठ है आपका जीवोंके लिये जो उपदेश है वह भी भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें आनन्द प्रद है तथा मधुविद्या यानी उपासनाके द्वारा जीवोंका जो आपसे मिलन है, वह भी उत्तम-आनन्द-प्रद है, इतना ही नहीं अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ भगवदानन्द प्रदान करनेवाला है ।।६७।।

श्रीललीजीकी लीलाओंका श्रवण भी आनन्द प्रद है, आपके स्वरूप, गुण, महिमा आदिका स्मरण मधुविद्या (प्रेम भक्ति) को प्रदान करने वाला है, जीवोंके प्रति आपके जो वाक्य-प्रबन्ध हैं, वे भी सबसे उत्तम हैं, भक्तोंके लिये जो आपके विचार हैं, वे भी सबसे श्रेष्ठ हैं, उपासकोंके द्वारा स्तुति किये हुये जो आपके गुण समूह हैं, वे भी आनन्द प्रदायक हैं । जो आपका जीव मात्रके लिये पोषण कर्म है, वह भी सर्वश्रेष्ठ है, यही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ दिव्यानन्द प्रदान करने वाला है ।।६८।।

श्रीललीजूके जो भक्त हैं वे भी सबकी अपेक्षा विशेष आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, आपका प्रणाम भी सबयज्ञों की अपेक्षा अतिश्रेष्ठ है, आपके श्रीचरण कमलोंका प्रेम भी सब फलोंसे विशेष महत्वका है, आपकी दयालुता भी प्रेमाभक्ति प्रदान करने वाली सबसे श्रेष्ठ है । आपका उपासना मार्ग ज्ञान-कर्मादिकोंसे भी विशेष आनन्द प्रद है, जीवोंको अङ्गीकार करके उन्हें भगवान् श्रीरामजी द्वारा अङ्गीकार करानेका जो आपका कर्म है वह भी सबसे श्रेष्ठ है, यही नहीं अपितु आप श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ भगवदानन्द प्रदान करनेवाला है ।।६९।।

निगमो मधुरः प्रकृतिर्मधुरा जयनं मधुरं रटनं मधुरम् ।
महितं मधुरं रसितं मधुर मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥७०॥

जनको मधुरो जननी मधुरा मधुरा अनुजा अनुगा मधुराः ।
सुकुल मधुरं नगरं मधुरं मिथिलेशसुतासकलं मधुरम् ॥७१॥

श्रीमैथिलीमधुरमोदकषोडशीं यो भक्त्या त्विमां पठति वै विमलान्तरात्मा ।
ध्यायन् हृदि प्रतिदिनं मम तुष्टिहेतुं सोऽभ्येति भक्तिममलां मुनिभिर्विमृग्याम् ॥७२॥
धन्याऽसि राज्ञि ! जननीं जगतोऽखिलस्य क्रोडे निधाय ससुखं परिपश्यसि त्वम् ।
यां न स्पृशन्ति मुनिमानसराजहंसा यां नात्मनि स्थितवतीं खलु वेद चात्मा ॥७३॥

श्रीललीजी की सर्वव्यापकता भी सबसे श्रेष्ठ है, आपका वात्सल्यमय स्वभाव श्रीरामभद्रजू से भी बढ़कर है, आपकी जयशीलता भी सबसे कोमल एवं उत्कृष्ट है, आपके नामकी रटन आनन्दस्वरूप श्रीरामलालजीको ही प्रदान कर देनेवाली है, ब्रह्मादिकोंके द्वारा आपका पूजित-स्वरूप, सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है । कृपा प्राप्त, सौभाग्यशाली, परम हंसोंके द्वारा आस्वादन किया हुआ आपका युगल चरणारविन्द भी उपासक जीवोंके योगक्षेमका विधान करने वाला है, इतना ही नहीं, अपितु श्रीमिथिलेशदुलारीजूका सभी कुछ लोकोत्तर आनन्द प्रदान करनेवाला है ॥७०॥

श्रीललीजूके पिताजी, सब ज्ञान योगियोंसे श्रेष्ठ हैं, आपकी श्रीअम्बाजी, सौभाग्यमें सभी माताओंसे विशेष हैं, आपकी बहिनें, मधुविद्या यानी उपासना प्रदान करने वाली हैं और आपकी अनुचरियां, देव, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर-कुमारियोंसे भी सौभाग्य में परम श्रेष्ठ हैं, आपका सुन्दर कुल सबसे उत्तम है, आपका श्रीमिथिला नामका यह नगर भी सबसे अधिक सौभाग्य-शाली है, कहाँ तक कहें श्रीमिथिलेशललीजूका सभी कुछ भगवदानन्द प्रदान करनेवाला है ॥७१॥

हे श्रीमहारानीजी! श्रीमिथिलेशललीजूकी उपासना प्रदान करने वालोंको भी मोदक(लड्डू) के समान प्रिय लगने वाली मेरी प्रसन्नता कारक इस षोडशी (सोलह श्लोकों वाली) को श्रद्धा-पूर्वक, जो श्रीललीजीका हृदयमें ध्यान करते हुये नित्यप्रति पाठ करता है, उसका अन्तस्करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) विकारोंसे रहित हो जाता है और वह मुनि वृन्दोंके भी विशेष खोजनेके योग्य सकलवासनाओंसे रहित परा भक्तिको प्राप्त होता है ॥७२॥

हे श्रीमहारानीजी ! जिन श्रीललीजीका स्पर्श, मुनियोंके मन रूपी राजहंसोंको भी प्राप्त नहीं होता तथा जिन्हें अपने भीतर विराजती हुई को भी आत्मा नहीं जानती है, उन समस्त चर-अचर प्राणियोंकी माताजीको, आप अपनी गोदमें विराजमान करके इच्छानुसार सुखपूर्वक, दर्शन करती हैं, अत एव आप धन्य है ॥७३॥

श्रीशिव उवाच ।

बद्धाञ्जलिः प्रणयतः परिगीयमाना देव्या गिरेति निजगाद विदेहराज्ञी ।
भक्त्या प्रणम्य वचनं मृदुलस्वभावा भाग्याभिभूतसकलामरपट्टकान्ता ।।७४।।

श्रीसुनयनोवाच ।

दिष्टयाऽऽगताऽसि वरदेऽखिललोकवन्द्ये मां वै कृतार्थयितुमेव नमोऽस्तु तुभ्यम् ।
त्वत्सत्क्रिया न मम बुद्धिचरी विभाति स्यां त्वां प्रसादयितुमद्य यया समर्था ।।७५।।
तस्मात्त्वमेव कृपया वद मे प्रसन्ना कर्त्तव्यतां मदुचितामधुनाऽऽशु पृष्टा ।
तुष्टिर्हि ते भवतु पूर्णतया मयीशे ! कामं यथा भगवति ! प्रणताऽस्म्यहं त्वाम् ।।७६।।

श्रीवाग्देव्युवाच ।

पूज्ये ! नताऽस्मि खलु ते चरणारविन्दं मैवं ह्रिया च परिपूरयितुं यत त्वम् ।
मामम्ब ! चेत्करुणया वरदाऽसि मह्यं भुक्तावशिष्टमनघे ! दुहितुः प्रपच्छ ।।७७।।

भगवान् शिवजी बोले:-हे श्रीपार्वतीजी ! अपने सौभाग्यसे समस्त देव पटरानियों पर विजयको प्राप्त, श्रीसरस्वतीदेवीके द्वारा इस प्रकार प्रेमपूर्वक पूर्णरूपसे वर्णनकी जाती हुई कोमल स्वभाव वाली श्रीसुनयना महारानीजी उन्हें श्रद्धा-पूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथोंको जोड़े हुई यह वचन बोलीं ।।७४।।

हे समस्त देवताओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य श्रीसरस्वती महाराणीजू ! मेरे बड़े सौभाग्य से मुझे कृतार्थ करनेके लिये आपका शुभागमन हुआ है, अतः इस कृपाके लिये मैं आपको नमस्कार करती हूँ । जिसके द्वारा मैं निश्चय ही आपको प्रसन्न कर सकूं, वह आपका कोई सत्कार मेरी समझमें नहीं आता ।।७५।।

हेभगवती ! हे ईशे ! इसलिये आपही अपनी निर्हेतुकी कृपासे मेरे प्रति प्रसन्न होकर, मेरे पूछने पर, इस समय मुझे वह कर्त्तव्य शीघ्र बतलाइये, जिसके द्वारा मेरे प्रति आपकी पूर्ण रूपसे इच्छानुसार प्रसन्नता हो जावे, एतदर्थ मैं आपको प्रणाम करती हूँ आप मुझे अपनी पूर्ण प्रसन्नता का साधन बतला जीजिये ।।७६।।

श्रीसरस्वतीजी बोलीं ! हे पूज्ये ! अर्थात् पूजनीयगुणसौभाग्यादियुक्ते श्रीमहारानीजी ! मैं आपके चरणकमलों को नमस्कार करती हूँ, इस प्रकार लज्जाके द्वारा हमें आप सब प्रकारसे पूर्ण करनेके लिये प्रयत्न न कीजिये । हे पापरहिते श्रीअम्बाजी ! यदि आप अपनी कृपावश मेरी प्रसन्नताके लिये कुछ देना ही चाहती हैं, तो श्रीललीजीका भोजन करके छोड़ा हुआ प्रसाद, मुझे प्रदान कीजिये, इस साधनसे मेरी पूर्ण सन्तुष्टि होगी ।।७७।।

श्रीशिव उवाच ।

वाण्या निशम्य वचनं चकिताऽपि राज्ञी तस्यै दिदेश तनयापरिभुक्तशेषम् ।
लब्ध्वा ननर्त तदुमे ! पुलकाञ्चिताङ्गी वागीश्वरी परमभाग्यवती कृतार्था ॥७८॥
संचुम्ब्य पादकमले जनकात्मजायाः प्रेमोन्मदान्धहृदया नयनाम्बुजाभ्याम् ।
नत्वाऽभितश्च सुषमानिधिनिर्मिताङ्गीमन्तर्दधे स्मितमुखीं परिदृश्यमानाम् ॥७९॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वतीजी ! श्रीसुनयना महारानीजी श्रीसरस्वतीजी महारानीके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर उनकी भावपूर्ण याचना पर आश्चर्य युक्त हो गयीं, पुनः उन्होंने श्रीसरस्वती महारानीकी प्रसन्नताके लिये श्रीललीजीका भोजन करके छोड़ा हुआ (उच्छिष्ट) प्रसाद उन्हें प्रदान कर दिया । हे पार्वती ! उस अभीष्ट प्रसादको प्राप्त करके परम सौभाग्यवती श्रीसरस्वती महारानीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया अतः आनन्द मग्न हो वे नाचने लगीं ॥७८॥

पुनः प्रेमके उन्मादसे अन्धी (लौकिक मर्यादा भावसे रहित) हुई, वे श्रीसरस्वती महारानी श्रीजनकललीजूके श्रीचरणकमलोंको अपने नयन कमलों द्वारा सम्यक् प्रकारसे चूमकर, मुस्कान युक्त मुखचन्द्र तथा उपमा रहित सौन्दर्य भण्डार द्वारा रचे हुए सभी अङ्गोंवाली उन श्रीललीजी को चारो ओरसे प्रणाम करके अन्तर्धान (गुप्त) हो गयीं ॥७९॥

इति चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

स्वर्णकारिणी रूपमें श्रीपार्वतीजी का आगमन तथा श्रीअम्बाजी द्वारा उनकी भाव पूर्ति ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

ततः पञ्चदिनेऽतीते पार्वती पतिदेवता । आजगाम महाभागा नृपद्वारमनावृतम् ॥१॥
द्वारपालानुवाचेदं हे महाराजकिङ्कराः ! । प्रार्थनां कृपया राज्ञ्यै निवेदयितुमर्हत ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे बोले:–हे प्रिये ! श्रीसरस्वती महाराणीके जानेके पाँच दिन व्यतीत होने पर (छठे दिन) पतिको ही अपना इष्टदेव माननेवाली बड़-भागिनी श्रीपार्वतीजी श्रीमिथिलेशजी महाराजके खुले द्वारपर पधारीं ॥१॥

पुनः द्वारपालोंसे बोलीं:–हे श्रीमिथिलेशजी महाराजके सेवको ! आप लोग मेरी प्रार्थना श्रीमहारानीजीसे निवेदन कर देने को सक्षम हैं ॥२॥

श्रूयतां सावधानेन चेतसा सूक्ष्मदर्शिनः ! । उच्यमाना मयेदानीं सा भवद्भिः कृपालुभिः ॥३॥
अमूल्याभूषणादीनि विशालानि लघूनि च । दूरदेशादहं प्राप्ता समादाय पुरं तव ॥४॥
सङ्क्रेता प्राप्यते नैषां धनाढ्यः कोऽपि मोहितः । श्रुत्वा मूल्यं मया प्रोक्तं नृपार्हाणामुदीक्ष्य च ।५।
तान्यभीष्टानि चेत्ते स्युः समालोक्याहृतानि मे । क्रेतुमर्हसि सर्वाणि यदि वा स्वेप्सितानि हि ।६।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति विज्ञापितं तस्याः श्रावयामासुरालिभिः । द्वारपाः श्रीमहाराज्ञीं तन्निशम्याह सा च ताः ॥७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सा न कस्मात्समानीता भवतीभिर्ममान्तिकम् सादरं तामिहादाय तूर्णमागच्छताधुना ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अनुज्ञप्ताभिरित्येवं तथेत्युत्वा प्रणम्य च । दर्शिताऽऽनीय शर्वाणी छद्मना स्वर्णकारिणी ॥९॥
धरण्यां न्यस्तमञ्जूषा प्रणता परया मुदा । पृष्टा सा सादरं राज्ञ्या विनयानतलोचना ॥१०॥

श्रीसुनयनोवाच ।

केन नाम्ना त्वमाख्याता कुत्रत्या पितरौ च कौ । इति मह्यं समाख्याहि विश्रम्य विहिताशना ।११।

हे ज्ञानदृष्टि वाले कृपालु द्वारपालो ! अब मैं अपनी प्रार्थना निवेदन करती हूँ, आप लोग स्थिर चित्त से उसे श्रवण कीजिये ॥३॥ हे श्रीमहाराणीजी ! मैं छोटे बड़े सभी प्रकारके अमूल्य भूषणादिकोंको लेकर दूर देशसे आपके पुरमें आई हूँ ॥४॥

इन राजाओं के योग्य भूषणों को देखकर सभी लोग लालायित हो जाते हैं, परन्तु मेरे बतलाये हुये मूल्यको सुनकर कोई भी धनवान् खरीदने वाला नहीं मिलता ॥५॥

मेरे लाये हुये भूषणोंको देखकर, यदि वे पसन्द आवें तो चाहे आप सभी खरीदलें अथवा अपनी इच्छानुसार लेवें ॥६॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! द्वारपालोंने उनकी इस प्रार्थनाको सखियोंके द्वारा श्रीसुनयना महारानीजीको श्रवण कराया, उसे सुनकर श्रीसुनयना महारानीजी सखियोंसे बोलीं आप लोग उसे मेरे पास क्यों नहीं ले आईं ? अच्छा जाओ अब उसे आदर पूर्वक शीघ्र ले आओ ॥७॥८॥

श्रीस्नेहपराजी श्रीरघुनन्दन प्यारेजूसे बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीसुनयना अम्बाजीकी इस प्रकार की आज्ञा पाकर उन सखियोंने "ऐसा ही करेंगी" कहकर उन्हें प्रणाम करके, छलसे स्वर्णकारिणी (सोनारिनी) बनी हुई उन श्रीपार्वतीजीको लाकर श्रीअम्बाजीको दिखाया ॥९॥

श्रीपार्वतीजी अपने वेषानुकूल, भूषणोंकी पेटी भूमिपर रखकर श्रीसुनयना अम्बाजीको प्रणाम करके, अपने नेत्रोंको नम्रतावश नीचेकर लेतीं हुईं, तब श्रीअम्बाजीने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उनसे आदरके साथ पूछा ॥१०॥

आप किस नामसे विख्यात हैं ? आपका निवास कहाँ है ? आपके माता—पिता कौन हैं ? ये सभी बातें आप भोजन करके विश्रामके पश्चात् मुझे बतलाइयेगा ॥११॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

जयतास्त्वं कृपागारे ! भोजनं विहितं मया । विक्रयादेव भूषाणां विश्रामो मे ऽवधार्यताम् ॥१२॥
अपर्णा नामविख्याता मेनकातनया ऽस्म्यहम् । पिता गिरीन्द्रदेवो मे यत्र कुत्र निवासिनी ॥१३॥
गङ्गाधरस्य मां पत्नीं विद्धि वै स्वर्णकारिणीम् । विक्रयो भूषणादीनां वृत्तिर्मे जीवनस्य वै ॥१४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

कामं दर्शय मे भद्रे ! भूषणानि पृथक्पृथक् । लघूनि च विशालानि यदर्थं त्वमिहागता ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाशंसिता राज्ञ्या मोदमानेन चेतसा । मञ्जूषां तामपावृत्य भूषणानि व्यदर्शयत् ॥१६॥

श्रीअपर्णोवाच ।

दृश्यन्तां चन्द्रिका एता निन्दितेन्दुचयप्रभाः । कुमारीणां शिरोदेशभूषणानि मनोहराः ॥१७॥
शिरोरत्नानि चेमानि बालपाश्या इमास्तथा । एताश्च कर्णिकाः पश्य पत्रपाश्यास्तथैव च ॥१८॥
ग्रैवेयकाणि चेमानि पश्य चैव ललन्तिकाः । इमाः प्रालम्बिकाः पश्य तथोरःसूत्रिका इमाः ॥१९॥
एते हाराः प्रदृश्यन्तां देवच्छन्दा मनोहराः । गुच्छास्तथैव गुच्छार्द्धा गोस्तना दिव्यरश्मयः ॥२०॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:-हे कृपाकी निवास स्वरूपा श्रीमहारानीजी ! आपकी जयहो ! जय हो! मैं भोजन कर चुकी हूँ भूषणोंके बिक जानेपर ही आप मेरा विश्राम जानिये ॥१२॥

मैं अपर्णा नामसे विख्यात श्रीमेनका मइयाकी पुत्री हूँ, मेरे पिता श्रीगिरीन्द्रदेवजी हैं और मेरा निवास जहाँ-तहाँ रहता है ॥१३॥ मुझ स्वर्णकारिणी (सोनारिनी) को आप श्रीगङ्गाधरजी की पत्नी जानिये, भूषणोंको बेचना ही मेरी जीविका है ॥१४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे कल्याणि ! अच्छा तुम यहाँ जिसलिये आई हो, अपने छोटे बड़े भूषणोंको मुझे अलग—अलग दिखलाइये ॥१५॥

हे प्यारे ! श्रीसुनयना अम्बाजीके इस प्रकार कहने पर वे श्रीअपर्णाजी चित्तसे प्रसन्न होती हुई सन्दूक खोलकर भूषणोंको दिखाने लगीं ॥१६॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं:-हे श्रीमहाराणीर्जी! अपनी प्रभाके द्वारा चन्द्रसमूहके प्रकाशको निन्दित करने वाली, कुमारियोंके सिरके इन चन्द्रिका नामके मनोहर भूषणोंको अवलोकन कीजिये ॥१७॥

चूड़ामणियों को तथा चोटीमें गूथने की इन मोती लड़ियोंको देखिये। सोने की इन बालियों व माथेके भूषणोंको आप अवलोकन कीजिये ॥१८॥

इन कण्ठोंको देखिये, लम्बी मालाओं व इन सोनेके हारों तथा वक्षःस्थल तक आने वाले इन मोतियोंके हारोंको देखिये ॥१९॥ हे श्रीमहारानीजी इन मनोहर सौलड़े हारोंको तथा ३२, २४, ४ एवं इन ५६ लड़वाले मोतीके हारोंको देखिये ॥२०॥

पश्य चैकावलीमाला ऋक्षमाला इमास्तथा । वलयानङ्गदानित्थं कङ्कणानि विलोकय ॥२१॥
काञ्च्यश्च मेखला एते कलापा रशना इमाः । पादाङ्गदानि चैतानि दृश्यन्तां हि त्वया शुभे! ॥२२॥
पश्यैताः किङ्किणी रम्याः पश्य चैवोर्मिका इमाः । साक्षराङ्गुलिमुद्राश्च महाराज्ञि! विलोकय ॥२३॥
किरीटांश्च प्रपश्यैतांस्तरुणार्कसमप्रभान् । कुण्डलान् विविधान् दृष्ट्वापश्य नासामणीनिमान् ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तेषां सा रोचिषा सर्वं भवनं सुप्रकाशितम् । भूषणानां समालोक्य परं विस्मयमाययौ ॥२५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

अपूर्वाण्येव ते भद्रे ! भूषणानि विभान्ति मे । एषां क्रेता कथं लभ्यो विशेषश्रममन्तरा ॥२६॥
क्रेष्याम्येतानि सर्वाणि मा शुचो मुदमावह । दत्त्वा मूल्यं त्वया प्रोक्तं पुरस्कारसमन्वितम् ॥२७॥

श्रीअपर्णोवाच ।

भूषयाणि विशालाक्षीं विदेहकुलनन्दिनीम् । स्वसृभिर्बन्धुभिः साकं पुरा क्रेतुं यदीच्छसि ॥२८॥

१ लड़ २७, लड़वाली इन मोतियोंकी मालाओंको देखिये तथा इन कड़ाओं और बाजू-बन्दोंको निहारिये, इसी प्रकार इन कँगनो को अवलोकन कीजिये ॥२१॥

हे श्रीमहारानीजी! इस प्रकार घुंघुरू लगी हुई एक लरकी, ८ लरकी, २५ लड़ व १६ लड़ वाली इन अनेक प्रकारकी करधनियों तथा नूपुरोंको देखिये ॥२२॥

इन मनोहर घुंघुरुओं और अंगूठियोंको अवलोकन कीजिये । हे महारानीजी ! अक्षर खुदी हुई इन अंगूठियोंको देखिये ॥२३॥

मध्याह्न समयके सूर्यके समान प्रकाशमान इन किरीटोंको देखिये, अनेक प्रकारके इन कुण्डलों को देखकर इन सुन्दर नासामणियोंको अवलोकन कीजिये ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! श्रीसुनयना अम्बाजी उन भूषणोंके प्रकाशसे अपने समस्त भवनको पूर्ण प्रकाश युक्त देखकर, बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुईं ॥२५॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—हे कल्याणि! आपके ये भूषण मुझे अपूर्व, ही प्रतीत हो रहे हैं, अतः बिना विशेष परिश्रम किये हुये, इन भूषणों को मोल लेने वाला भला कैसे मिल सकता है ? ॥२६॥ किन्तु आप अपने हृदयमें चिन्ता न करें, प्रसन्नता लावें । इन भूषणों के लिये आपजो मूल्य मागेंगी उसे पुरस्कार पूर्वक आपको प्रदान करके एक दो ही नहीं, अपितु मैं सभी भूषणोंको खरीद लूंगी ॥२७॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं—हे श्रीमहारानीजी ! यदि आप मेरे भूषणोंको मोल लेनेकी इच्छा कर रही हैं तो पहिले मैं इन भूषणोंके द्वारा भाई-बहिनोंके सहित, श्रीविदेहकुलको आनन्द प्रदान करने वाली, विशाललोचना श्रीललीजीका शृङ्गार करलूँ ॥२८॥

दृष्ट्वा मूल्यं प्रवक्ष्यामि तदनुज्ञातुमर्हसि । एतदर्थं शिरोभृङ्गः पतितस्त्वत्पदाब्जयोः ॥२९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

युक्तमेवानया प्रोक्तं कान्तिमत्येति चोदिता । व्यादिदेश मुदाऽसौ तां संविभूषयितुं सुताम् ॥३०॥
अनुज्ञां सा तदा लब्ध्वा महाराज्ञ्या विधेर्वशात् । प्रेम्णा विभूषयाञ्चक्रे जन्मनां पुण्यजन्मना ॥३१॥
मैथिलीं सा तु मृद्वङ्गीमसिताम्भोजलोचनाम् । भूषयित्वा ततः प्रेष्ठ! लक्ष्मीनिधिमभूषयत् ॥३२॥
उर्मिलां माण्डवीं चैव श्रुतिकीर्त्ति सुलोचनाम् । चन्द्रकलां विभूष्याथ चारुशीलां व्यभूषयत् ॥३३॥
ततो हेमां वरारोहां क्षेमां कमललोचन ! । सुभगां पद्मगन्धां च भूषयामास पद्मिनीम् ॥३४॥
एवमेव तया सर्वाः कुमार्यो निमिवंशजाः । भूषिता रेजिरे साकं भ्रातृभिः संविभूषितैः ॥३५॥
मातुरङ्कगतांस्तांस्ताः कुमारांश्च कुमारिकाः । दृष्ट्वा नीराजनं चक्रे नृत्यमाना नृपाजिरे ॥३६॥
वद मूल्यमिति श्रुत्वा भाषितं श्रीसुभद्रया । अञ्जलिं मस्तके कृत्वा सा ऽऽह गद्गदया गिरा ॥३७॥

दर्शन करने के पश्चात्, आपको इनका मूल्य बतलाऊँगी, इस लिए आप श्रीललीजीका श्रृङ्गार करने के लिये मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, इस मनोरथकी सिद्धिके लिये मेरा यह सिर-रूपीभौंरा आपके श्रीचरण कमलोंमें पड़ा है ॥२९॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! तब श्रीकान्तिमती अम्बाजी श्रीसुनयना अम्बाजीसे बोलीं:-हे श्रीमहाराणीजी! ये ठीक ही तो कह रही हैं इस वचन द्वारा उनकी भी सम्मति देखकर श्रीसुनयना अम्बाजोने प्रसन्नता पूवक, श्रीललीजी का श्रृङ्गार करनेके लिये श्रीअपर्णाजीको आज्ञा प्रदान कर दी ॥३०॥

सौभाग्यवश श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, श्रीअपर्णाजी अपने अनेक जन्मोंके पुण्यसे उत्पन्न प्रेम पूर्वक, श्रीललीजी का श्रृङ्गार करने लगीं ॥३१॥

श्याम कमलके समान जिनके नेत्र तथा सभी अङ्ग कोमल हैं, उन श्रीमिथिलेशदुलारीजीका श्रृङ्गार करके उन्होंने श्रीलक्ष्मीनिधि भैया का श्रृङ्गार किया ॥३२॥

श्रीउर्मिलाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीश्रुतिकीर्तिजी, श्रीसुलोचनाजी तथा श्रीचन्द्रकलाजीका श्रृङ्गार करके श्रीचारुशीलाजीका विविध प्रकारसे श्रृङ्गार किया ॥३३॥

हे श्रीकमललोचन प्यारे! श्रीचारुशीलाजीके पश्चात् श्रीहेमाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, तथा श्रीपद्मिनीजीको श्रृङ्गार सेविभूषित किया ॥३४॥

इसी प्रकार श्रीअपर्णाजीके द्वारा अपने पूर्ण श्रृङ्गार सम्पन्न भाइयोंके सहित सभी श्रृंगार विभूषिता निमिवंश कुमारियाँ सुशोभित हुईं ॥३५॥

सभी कुमार-कुमारियोंको अपनी-अपनी अम्बाजीकी गोदमें विराजमान देखकर, श्रीअपर्णाजी श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रांगणमें नाचती हुई, उनकी आरती करने लगीं ॥३६॥ तब श्रीसुभद्राजीने कहा—'अच्छा अब तो इन भूषणोंका मूल्य बतलाइये" यह सुनकर श्रीअपर्णा जी दोनों हाथोंकी बँधी हुई अंजुरीको अपने मस्तक पर रखकर, गद्गदवाणोसे बोलीं ॥३७॥

श्रीअपर्णोवाच ।

लब्धं मूल्याधिकं मूल्यं महाराज्ञ्यधुना मया । दर्शनादधिकं मूल्यं भूषणानां न विद्यते ॥३८॥
अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफला गुणाः । अद्य मे फलवान्सम्यग्जन्मनां पुण्यसञ्चयः ॥३९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्त्वा वचोऽपर्णा निपपात महीतले । प्रेमावेशाद्विशुद्धात्मा पश्यन्त्यवनिजाननम् ॥४०॥
तां तदोत्थापयामास महाराज्ञी विशुद्धधीः । बोधयित्वा गिरा माध्व्या सादरं प्रत्यभाषत ॥४१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हेऽपर्णे! सुप्रसन्नाऽस्मि वरं ब्रूहि हृदीप्सितम् । कृतार्थमद्य भवतीमकृत्वा नास्ति मे सुखम् ॥४२॥

श्रीअपर्णोवाच ।

देहि पादोदकं प्रीत्या तदुच्छिष्टं च भोजनम् । भूषणं नूपुरं देहि नान्यदेवेप्सितं वरम् ॥४३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सुभगे ! काङ्क्षितं यत्तत्प्रदास्यामि न संशयः । उच्यतां तत्त्वयेदानीं मया श्रोतुं यदिष्यते ॥४४॥

हे श्रीमहाराणीजी! इस समय मुझे भूषणोंके मूल्यसे अधिक मूल्य मिल चुका है, कारण इन भूषणोंकी न्योछावर श्रीललीजीके दर्शनोंसे अधिक न थी अर्थात् कम ही थी सो दर्शनकी कौन कहे? श्रृंगारके बहाने, मैंने इनका स्पर्श-सुखभी भली प्रकारसे प्राप्तकर लिया तथा आरती करती हुई श्रृंगार-युक्त किए भाई-बहिनों सहित श्रीललीजीकी अनुपम छटाका दर्शन भी कर लिया॥३८॥

आज श्रीललीजीका दर्शन करके मेरा जन्भ सफल हुआ और आज मेरे सभी गुण सफल हो गये तथा आज अनेक जन्मोंका मेरा पुण्यका सञ्चय (ढेर) भी आज पूर्ण सफल हो गया ॥३९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! शुद्ध हृदय वाली श्रीअपर्णाजी श्रीअम्बाजीसे यह कहकर, भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजीके मुखारविन्दका दर्शन करती हुई, प्रेमावेशसे पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥४०॥ तब छल-कपट-रहित बुद्धि वाली श्रीसुनयना अम्बाजी ने उन्हें उठा लिया, पुनः सावधान करके आदर-पूर्वक उनसे बड़ी मीठी वाणीसे बोलीं ॥४१॥

हे श्रीअपर्णाजी! मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः आप अपना हृदय चाहा वर माँग लें, आज आपको बिना कृतार्थ (पूर्ण मनोरथ) किये, मुझे सन्तोष नहीं है ॥४२॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं:–हे श्रीमहाराणीजी! यदि आप मेरे हृदयकी इच्छित वस्तु देना चाहती हैं, तो एक तो श्रीललीजीका चरणामृत, दूसरे पूर्ण भोजन कर लेनेपर, उनके थालका बचा हुआ प्रसाद तीसरे श्रीललीजीके श्रीचरणकमलका एक नूपुर हमें प्रेम-पूर्वक प्रदान कीजिये । इन तीन वरोंको छोड़कर मैं और कुछ भी नहीं चाहती हूँ ॥४३॥

यह सुनकर श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे सुन्दरी ! जो आप प्राप्त करना चाहती हैं, उसे मैं अवश्य आपको प्रदान करूँगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, परन्तु इस समय(अपने सन्तोषार्थ)जो मैं आपसे सुनना चाहती हूँ, उसे आप कथन कीजिये ॥४४॥

किममूल्यान्यमूल्येन भूषणानि प्रदाय मे। अपूर्वाणि महाभागे! स्वभर्तारं प्रवक्ष्यसि ॥४५॥

श्रीअपर्णोवाच ।

हस्तसाफल्यसंप्राप्तिर्मूल्यमेषां विनिश्चितम्। भूषणानाममूल्यानां तन्मया समुपार्जितम् ॥४६॥

विश्वासार्थं च मे पत्युः प्रमाणं नूपुरं भवेत्। याचितं मृगशावाक्ष्यास्तव पुत्र्यास्ततो मया ॥४७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता तया राज्ञी महाश्चर्यसमन्विता। अनुज्ञां प्रददौ तस्यै ह्यादातुं चरणोदकम् ॥४८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सुताया मम कल्याणि! गृहाण चरणोदकम्। क्षालयित्वाङ्घ्रियुगलं भव पूर्णमनोरथा ॥४९॥

अधरोच्छिष्टमन्नं ते तनया मे प्रदास्यति। प्रसन्नेयं तव प्रेम्णा नूपुरं तदनन्तरम् ॥५०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता मुदा राज्ञ्या बाढमित्यभिभाष्य ताम्। मैथिलीपादपाथोजक्षालनाय मनोदधे ॥५१॥

हे महाभागे! पूर्वमें अप्राप्त तथा मूल्य न देसकने योग्य इन भूषणोंको विना मूल्य हमें देकर, जब आप अपने पतिदेव के पास पहुँचेंगी तो उनसे क्या कहेंगी? ॥४५॥

श्रीअपर्णाजी बोलीं:-हे श्रीमहारानीजी! हमारे पतिदेव जीने इन अमूल्य भूषणोंका मूल्य हाथोंकी सफलता-प्राप्ति ही, निश्चित की थी, वह मुझे सम्यक् प्रकारसे प्राप्त हो गयी है ॥४६॥

यदि आप शङ्का करें, कि आपके पतिदेवको यह कैसे विश्वास होगा कि आपने अपने हाथों की सफलता प्राप्तकर ली है? उनके विश्वासके लिये ही मैंने मृग छौनेके समान सुन्दर व विशाल नेत्र वाली आपकी श्रीललीजीका नूपुर माँगा है, वही इस विषयमें प्रमाण(साक्षी)होगा, अतः इस नूपुरका दर्शन करा देनेपर, हमें उनसे कुछभी कहने की आवश्यता ही नहीं पड़ेगी ॥४७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्राण-प्यारे! जब अपर्णाजीने श्रीअम्बाजीसे इस प्रकारका रहस्य निवेदन किया, तब उन्होंने परम आश्चर्ययुक्त होकर, उन (श्रीअपर्णाजी) को श्रीललीजीका चरणामृत लेने की आज्ञा प्रदान करदी ॥४८॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:-हे कल्याणस्वरूपे! हमारी श्रीललीजीके दोनों चरणकमलोंको धोकर चरणामृत लें, और अपना मनोरथ पूर्ण करें ॥४९॥

हमारी श्रीललीजी, आपको अपने अधरका उच्छिष्ट (प्रसाद) प्रदान करेंगी, तत्पश्चात् नूपुर भी प्रदान कर देंगी, क्योंकि ये आपके प्रेमसे प्रसन्न हैं ॥५०॥ इस प्रकार श्रीसुनयना अम्बाजीके आश्वासन देनेपर, श्रीअपर्णाजी हर्षपूर्वक उनसे बहुत अच्छा कहकर, श्रीमिथिलेशललीजीके चरणकमलोंको धोनेके लिये मनोयोग देती हुई उद्यत हो गयीं ॥५१॥

सरोजवज्रध्वजशङ्खचक्रगदेन्दुमाछत्रकिरीटहंसैः ।
चापेषुशेषामृतकुण्डयानस्वस्त्यष्टकोणाम्बरचन्द्रिकाढ्यम् ॥५२॥

त्रिकोणषट्कोणहलार्द्धचन्द्रस्रग्भूमिदेवद्रुमशक्तिजीवैः ।
वंशीत्रिवल्यादिमनोज्ञचिह्नैस्तथेतरैरप्युपशोभमानम् ॥५३॥

निरीक्ष्य सा पादसरोजयुग्मं मुनीन्द्रचेतोभ्रमराभिजुष्टम् ।
सुकोमलं पद्मविलोचनाभ्यां स्पृष्ट्वाऽऽलिलिङ्गोदितसद्विपाका ॥५४॥

पुनः समाधाय मनः कथञ्चित् तत्क्षालयामास परानुरक्त्या ।
निपीय पादामृतमम्बुजाक्ष्या राज्ञीमुखं चैक्षत रुद्धकण्ठा ॥५५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे पुत्रि ! मिष्टान्नमिदं च भुक्त्वा शेषं किलास्यै कृपया प्रयच्छ ।
सरोजकल्पेन मनोहरेण करेण शोभामयि ! भद्रमस्तु ॥५६॥

वत्से ! त्वयीयं परमानुरक्ता हृद्वाग्वपुर्भिः सहजस्वभावात् ।
अनेकरत्नाञ्चितनूपुरस्य प्रदानमात्रेण कृतार्थयैनाम् ॥५७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्ता ऽवनिनाथपुत्री प्रेम्णा जनन्या स्मितमित्युवाच ।
तां सादरं मङ्गलपुञ्जमूर्त्तिः प्रकाशयन्ती भवनं स्वदीप्त्या ॥५८॥

कमल, वज्र, ध्वजा, शङ्ख चक्र, गदा, चन्द्र लक्ष्मी, छत्र, किरीट हंस व धनुष, बाण, शेष अमृत–कुण्ड, रथ, स्वस्तिक, अष्टकोण, अम्बर, चन्द्रिका चिह्नसे युक्त त्रिकोण, षट्कोण, हल, अर्धचन्द्र, जयमाल, पृथिवी, कल्पवृक्ष, शक्ति, जीव चिह्नोंके सहित वंशी, त्रिवली तथा और भी मनोहर चिह्नोंसे शोभायमान मुनियोंके चित्तरूपी भौंरोसे सेवित, सुकोमल, श्रीललीजीके श्रीचरणकमलोंका दर्शन करके उन्हें अपने नेत्र कमलोंसे स्पर्श करके हृदयसे लगाया क्योंकि उनके शुभ कर्मोंका भोग फल उदय था ॥५२॥५३॥५४॥

उन्होंने किसी प्रकार अपने मनको एकाग्र करके, बड़े अनुरागपूर्वक उन श्रीचरणकमलोंको धोया पुनः कमललोचना (श्रीलली) जीका चरणामृत पीकर श्रीसुनयना अम्बाजीके मुखकी ओर देखने लगीं क्योंकि उनका कण्ठ अवरुद्ध था तब श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे शोभामयि ! श्रीललीजी! आपका मङ्गल हो, आप इस मिष्टान्न का सेवन करके जो बचे उसे कृपा पूर्वक अपने कमलके समान मनोहर हाथों द्वारा इन अपर्णाजी को प्रदान कीजिये क्योंकि इन अपर्णाजीका आपके प्रति सहज स्वभावसे हृदयसे वाणीसे, शरीरसे बड़ा ही प्रेम है, अतएव अनेक रत्नोंसे सुशोभित अपना एक नूपुर (पायजेब) प्रदान करके इन्हें कृतार्थ कीजिये ॥५५॥५६॥५७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! जब श्रीअम्बाजीने प्रेमपूर्वक अपना भाव इस प्रकार प्रकट किया, तब अपनी कान्तिसे सारे भवनको प्रकाश युक्त करती हुई, मङ्गल समूहोंकी विग्रह स्वरूपा श्रीललीजी श्रीअम्बाजीसे आदर पूर्वक मन्द मुस्कराती हुई बोलीं ॥५८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उच्छिष्टमस्यै च किमर्थमेव प्रदातुमाज्ञां प्रददासि मह्यम् ।
दानेन किं केवलनूपुरस्य कस्मान्न सर्वाभरणानि दद्याम् ॥५९

श्रीसुनयनोवाच ।

स्वस्त्यस्तु ते सौम्यमुखारविन्दे! विना त्वदुच्छिष्टमियं न किञ्चित् ।
स्वीकर्तुमिच्छां हृदये करोति न नूपुराद्भूषणमन्यदेव ॥६०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

संश्रूय चैतद्वचनं जनन्याः सौवर्णपात्रे विनिवेशितं तत् ।
मिष्टान्नमाश्नाद् विविधं यथेच्छं ह्यपर्णया तर्ह्यनुलाल्यमाना ॥६१॥
निपीय तोयं च पुनस्तदन्नं जलं च तस्यै करपङ्कजाभ्याम् ।
पीतावशिष्टं प्रददौ प्रसन्ना स्वनूपुरं चाशु पदाद्विसृष्टम् ॥६२॥
कृत्वा शिरोभूषणमाप्तकामा तन्नूपुरं सत्वरमम्बुजाक्ष्याः ।
तया प्रदत्तं मुदिताऽऽश साऽन्नं पपौ सुधास्वादधिकं जलं च ॥६३॥
उवाच राज्ञीं परयाऽनुरक्तचा बद्धाञ्जलिः सा पुलकान्विताङ्गीः ।
सगद्गदं वाक्यमिदं ह्यपर्णा प्रणम्य भूयो मुदितान्तरात्मा ॥६४॥

हे श्रीअम्बाजी ! आप इन अपर्णाजीको उच्छिष्ट ही देनेके लिये हमें क्यों आज्ञा कर रही हैं? केवल एक नूपुरके ही दानसे क्या प्रयोजन है? इन्हें मैं अपने सभी भूषण क्यों न दे दूँ ॥५९॥

श्रीललीजीके उदारता पूर्ण इन वचनों को सुनकर श्रीअम्बाजी बोलीं:—हे सुमनके समान प्रफुल्लित मुखकमल वाली ललीजी! आपका मङ्गल हो। ये अपर्णाजी आपके उच्छिष्टके अतिरिक्त और कुछ भी स्वीकार करनेकी इच्छा हृदयमें नहीं कर रही हैं, और न एक नूपुरके अतिरिक्त कोई अन्य भूषण ही ग्रहण करना चाहती हैं, अत एव इन्हें प्रसाद तथा नूपुर प्रदान करना आवश्यक है ॥६०॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीअपर्णाजीके प्यार करते हुये, श्रीललीजीने सुवर्णके थालमें रखी हुई अनेक प्रकारकी मिठाइयों को इच्छा भर पाया, पुनः जल पीकर थालका वह प्रसाद तथा पीनेसे बचे हुये जलको प्रसन्न हुई श्रीललीजीने अपने चरण कमलसे तत्क्षण निकाले हुये नूपुरको, अपने कर कमलों द्वारा श्रीअपर्णाजीको प्रदान कर दिया ॥६१॥६२॥

श्रीललीजीके प्रदान किये हुये अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट प्रसादी मिष्टान्नको श्रीअपर्णाजी ने आनन्दमग्न हो पाया तथा जलको पी लिया और उन कमललोचना श्रीललीजीके प्रसादी नूपुरको तत्क्षण अपने सिरका भूषण बनाकर वे कृत-कृत्य हो गयीं ॥६३॥

पुनः श्रीअपर्णाजी मुदित हृदयसे रोमाञ्चयुक्त शरीर होकर परम अनुराग, पूर्वक बारम्बार प्रणाम करके श्रीअम्बाजीसे हाथ जोड़े बोलीं ॥६४॥

श्रीअपर्णोवाच ।

कृतार्थिताऽहं खलु ते प्रसादान्न जातु तत्प्रत्युपकर्तुमीशा ।
नमामि भूयस्तव पादपद्मं कृपेदृशी मय्यनिशं विधेया ॥६५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ततः परिक्रम्य मुहुर्नताङ्गी सुतां विदेहस्य मनोऽभिरामाम् ।
आनन्दवाष्पाश्रितपङ्कजाक्षी तिरोदधे तामवलोकयन्ती ॥६६॥

हे श्रीमहारानीजी ! आपकी कृपासे मैं निश्चय ही कृतार्थ होगयी, आपके इस उपकारका बदला चुकानेके लिये मैं कभीभी समर्थ नहीं हूँ, अत एव आपके श्रीचरणकमलोंको मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ, आप सदा मेरे प्रति ऐसीही कृपा करती रहें ॥६५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! श्रीअम्बाजीसे इस प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् श्रीअपर्णाजी परिक्रमा करके, मनको सब प्रकार आनन्द प्रदान करनेवाली श्रीविदेह राजदुलारीजीको बारंबार प्रणाम करके, आनन्दके अश्रुओंसे पूर्ण, कमलके समान नेत्रवाली वे श्रीललीजीका दर्शन करती हुई अन्तर्धान हो गयीं ॥६६॥

इति पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

कपाट बन्द भवनमें श्रीसुवृता अम्बाजीकी गोदमें प्रकट हो श्रीकिशोरीजी द्वारा उन्हें अभीष्ट अपनी सर्वव्यापकता प्रदर्शन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुनयनागृहमेत्य मनोरमं स्वसृगणैरनया सह खेलनम् ।
कृतवती तु कदाचिदशैशवे पुनरगामरिमर्दनमन्दिरम् ॥१॥
तदविलोकयमब्जविलोचन ! सुदृढबद्धकपाटमतिप्रभम् ।
इदमशङ्कि कपाटवृतं कथं पुनरदर्शि सुरन्ध्रतयेप्सितम् ॥२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-जब मेरी शिशु अवस्था व्यतीत हो गयी तब एक समय श्रीसुनयना अम्बाजीके मनोहर भवनमें जाकर मैं अन्य बहिनोंके सहित श्रीललीजीके साथ खेलती हुई पुनः श्रीअरिमर्दनजी-महाराजके महलको गयीं ॥१॥ हे कमल-नयन श्रीप्राणप्यारेजू ! जब मैं उनके भवन पहुँची, तो क्या देखती हूँ कि उस भवनके कपाट (किवाड़) बड़े पक्कीतौरसे बन्द हैं और भवन अत्यन्त प्रकाशसे युक्त है, यह देखकर मुझे सन्देह हुआ कि इस समय ये किवाड़ किस लिये बन्द हैं ? इस आशङ्कासे बाल-स्वभावके कारण, भीतरकी बात जाननेके उपायमें लग जानेपर, मैंने एक छोटे छिद्रसे इच्छानुसार सब कुछ देख लिया ॥२॥

जनकजाननचन्द्रदिदृक्षया मुनिसमाहितमानसमानसा ।
रहसिगा तु कुरङ्गविलोचना प्रिय ! मया सुवृताऽप्यवलोकिता ॥३॥

विधिमयाचत बद्धकराञ्जलिः सुनयनातनया मम सन्निधौ ।
मम निकेतमसावयतां विधे ! द्युतिविलज्जितकोटिरतिच्छबिः ॥४॥

प्रलपतीति नराधिपनन्दिनि ! प्रणयशीलसुखैकसुविग्रहे ! ।
स्मितमुखि ! प्रिय! कोकिलभाषिणि द्रुतमिहैत्य मदङ्कमुपाविश ॥५॥

सफलतां च मनोरथवल्लरी व्रजतु चेन्मम चाद्य यदृच्छया ।
मम तु जीवनमस्ति सुजीवनं न तु वृथेदमिदं गतमन्यथा ॥६॥

विधिसुतेन भविष्यविपश्चिता सुमुखि ! सर्वगता चिदचित्परा ।
सकलदेहभृतां हृदयेशया निखिलशक्तिशिरोमणिनायिका ॥७॥

त्रिजगतां जननी परमा गतिः परम कारुणिका जगदीश्वरी ।
निगदिताऽस्यखिलेप्सितवर्षिणी सुखविधित्सतया धृतचित्तनुः ॥८॥

हे प्यारे ! श्रीजनकललीजूके मुखचन्द्रकी दर्शनाभिलाषासे मुनियोंके एकाग्र मनके समान शान्त मन तथा हरिणके समान विशाल नेत्रवाली श्रीसुवृता अम्बाजी मुझे एकान्तमें बैठी दिखाई पड़ीं ॥३॥

पुनः वे दोनों हाथ जोड़कर याचना करने लगीं—हे विधाता! अपनी कान्तिसे करोड़ों रतियों की छबिको लज्जित करनेवाली श्रीसुनयनाललीजू मेरे पास भवनमें आजावें ॥४॥

हे प्यारे! वे प्रेम विभोर होकर इस प्रकार प्रलाप करने लगीं—हे श्रीमिथिलेशजी महाराजको आनन्द प्रदान करनेवाली! हे प्रणय, शील, सुखकी उपमा रहित मूर्त्ति! हे मुस्कान युक्त मुखवाली! तथा कोयलके समान सुरीले कण्ठवाली हे श्रीललीजी ! आप शीघ्र भवनमें आकर मेरी गोदमें विराज जाइये ॥५॥ दैवयोगसे यदि आज यह मेरी मनोरथ रूपी लता (बेल) फलवाली हो गयी तब तो मेरा जीवन, सुन्दर जीवन है, नहीं तो मेरा यह जीवन व्यर्थ ही गया ॥६॥

हे सुन्दर मुखी श्रीललीजी ! भविष्यके जानने वाले ब्रह्माजीके पुत्र, श्रीनारदजी महाराजने आपको सर्वत्र व्याप्त, जड़ चेतनसे परे, (परब्रह्म स्वरूपा) समस्त देहधारियोंके हृदयमें शयन करने वाली, (आत्मा)तथा सम्पूर्ण शक्तियोंकी सबसे श्रेष्ठ नियन्त्रण करने वाली ॥७॥

तीनों लोकोंकी माता, जीवोंकी सबसे श्रेष्ठ रक्षास्थान, सबसे अधिक करुणा-वाली, चर-अचर सभी प्राणियों की स्वामिनी, सम्पूर्ण मनोऽभिलषित सिद्धियोंकी वर्षा करने वाली, समस्त बिश्वके सुख प्रदानकी इच्छासे चैतन्यमय विग्रह धारण करने वाली बतलाया है ॥८॥

सुगणकैस्त्वमसीत्थमपीरिता सकलदेहभृतां सुखदा त्वियम् ।
भुवि भवित्र्यसमा समदर्शिनी निखिलभावगणास्पदविग्रहा ॥९॥
तदिदमस्ति यथार्थमिहेरितं यदि समाव्रजताद्द्रुतमत्र सा ।
जनकराजसुता विपुलेक्षणा कनकदामतडिद्द्युतिभृत्तनुः ॥१०॥
अयि नराधिपनन्दिनि ! जानकि ! प्रणयतोषित ! आर्त्तजनप्रिये ।
सुनयनातनये कुलदीपिके ! सपदि नन्दय मां मुखदर्शनात् ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति निगद्य रुरोद शनैः शनैर्जनकजापरिरम्भणकातरा ।
तदजिरे परमं किल कौतुकं दयित ! दृष्टमदः शृणु यन्मया ॥१२॥
अविदितात्पथ एव समागमन्मदनमोहनहेमनिभद्युतिः ।
स्मितलसच्छरदिन्दुनिभानना द्रुतमभूत्सुवृताङ्कगता प्रिय ॥१३॥

इसी प्रकार सुयोग्य ज्योतिषियोंने भी आपके लिए कहा है, कि ये श्रीलली सम्पूर्ण देहधारियों को सुखप्रदान करनेवाली, सभी भाव-समूहोंकी केन्द्र स्थानस्वरूपा, सभी प्राणियों पर समान कृपा दृष्टि रखने वाली, पृथिवी पर अपनी समानतासे रहित होंगी ॥९॥

यदि श्रीललीजीके परत्व सम्बन्ध में यह सब उन सभीका कहा हुआ सत्य है, तो विशाल लोचना, सुवर्णकी माला समान गौरवर्ण, व विजली की कान्तिको धारण किये श्रीअङ्गवाली, श्रीजनकराजदुलारीजी मेरे पास यहाँ शीघ्र आजावें ॥१०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजको आनन्द-प्रदान करने वाली हे श्रीजनकदुलारीजू ! हे प्रणय (विनीतप्रेम) से प्रसन्न होने वाली । हे आर्त्तभक्तोंसे प्रेम करने वाली ! हे श्रीसुनयनाललीजू ! हे कुलको दीपकके समान प्रकाशयुक्त करने वाली हे श्रीललीजू ! अपने मुखचन्द्रका दर्शन कराके मुझे शीघ्र आनन्दित कीजिये ॥११॥ हे प्यारे ! इतना कहकर श्रीसुवृता-अम्बाजी श्रीललीजीको हृदयसे लगानेके लिये अधीर हो धीरे-धीरे रोने लगीं, उस समय उनके आङ्गनमें जो परम आश्चर्य मैंने देखा उसे, आप श्रवण कीजिये ॥१२॥

हे प्यारे! कामदेवको भी मुग्ध करने वाली, सुवर्णके समान गौर कान्ति, मुस्कान युक्त शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रके सदृश प्रकाशमान मुख वाली श्रीललीजी, वहाँ अज्ञात मार्गसे तुरन्त आपहुँची और श्रीसुवृता अम्बाजीकी गोदमें विराज गयीं । अज्ञात मार्ग इस लिये कहा गया है कि श्रीसुवृता अम्बाजी श्रीललीजीकी सर्वव्यापकताकी परीक्षाके लिये अपने महलके सभी मार्ग बन्द करके बैठी थीं फिरभी श्रीकिशोरीजी उनके पास पहुँच गयीं, पर किस मार्गसे पहुँचीं, यह बुद्धिके परेकी बात थी, अतएव अज्ञात मार्गसे पधारना कहा जाना युक्त है ॥१३॥

समधिगम्य दुरापमभीप्सितं जनकजातनुसङ्गमलौकिकम् ।
सुखदशीतलमाप्ततनुस्मृतिर्द्रुतमवैक्षत साऽङ्कगताभिमाम् ॥१४॥
सघनकुञ्चितचिक्कणकुन्तलां कनकसुक्तिसुकुण्डलसुश्रवाम् ।
विमलफुल्लसरोजदलेक्षणां स्मितसमुल्लसदिन्दुनिभाननाम् ॥१५॥
मुकुरसूक्ष्मकपोलमनोहरां शुकविमोहविधायकनासिकाम् ।
लघुदतीं नवबिम्बफलाधराभसितविन्दुलसच्चिबुकोत्तमाम् ॥१६॥
स्मितविलज्जितचन्द्रकरव्रजां करिकराभभुजां करपङ्कजाम् ।
दरवराभगलां तनुमध्यमां सुजघनां ललिताङ्घ्रिनखप्रभाम् ॥१७॥
कुलिशचक्रयवाङ्कुशपङ्कजध्वजसुरद्रुमशक्तिशरादिभिः ।
वहुभिरुत्तमलक्ष्मभिरुल्लसत्पदसरोजयुगां समलङ्कृताम् ॥१८॥
मुदमवाच्यमवाप्य निरीक्ष्य तां प्रणयतः परिरभ्य चुचुम्ब सा ।
विधुमुखं नयनोत्सवविग्रहं तदमलं जगदेकविमोहनम् ॥१९॥

अतः वे श्रीसुवृता अम्बाजी श्रीललीजीके शरीरका दुर्लभ, मनोभिलषित दिव्य, सुखद शीतल स्पर्शको प्राप्त करके सावधान हो, अपनी गोदमें विराजी हुई इन श्रीललीजीका दर्शन करने लगीं ॥१४॥ जिनके घने, घुंघुराले चिकने सुन्दर केश, सुवर्णकी शुक्तिके सदृश कुण्डलोंसे युक्त सुन्दर कान, खिले हुये निर्मल कमल दलके समान नेत्र व मुस्कानसे पूर्ण शोभायमान चन्द्रमाके तुल्य आह्लाद कारी श्रीमुखारविन्द है ॥१५॥

जिनके शीशाके समान सूक्ष्म, छाया ग्रहण करने वाले मनोहर कपोल (गाल), सुग्गाको मुग्ध करनेवाली सुन्दर नासिका, छोटे-छोटे दाँत, नवीन पके हुये विम्बाफलके समान लाल अधर तथा मसि विन्दुसे सुशोभित उत्तम चिबुक (ठोढ़ी) है ॥१६॥

मुस्कानसे पूर्णचन्द्रमाकी किरण समूहोंको जो लज्जित कर रही हैं, जिनकी भुजायें हाथीकी सूँड़के समान गोल व क्रमशः पतली हैं जिनके कमलके समान सुकोमल हाथ, श्रेष्ठ शङ्खके सदृश रेखाओंसे युक्त कण्ठ व कदली (केला) खम्भेके समान गोल, रोम रहित सुन्दर जङ्घे, और जिनके कमलके समान चरणोंकी नख प्रभा अति मनोहर है ? ॥१७॥

जिनके दोनों कमलके समान अत्यन्त कोमल अरुण चरणों में बज्र, चक्र, यव, अंकुश कमल ध्वजा कल्पवृक्ष, शक्ति, वाण आदि बहुतसे उत्तम चिह्न शोभायमान हैं ॥१८॥

श्रीसुवृता अम्बाजी ऐसी इन श्रीललीजीका दर्शन करके अकथनीय आनन्दको प्राप्त होकर, इन्हें हृदयसे लगाकर चन्द्रमाके समान आह्लादकारी, उत्सवके सदृश नेत्रोंको नूतन आनन्द प्रदान करने वाले, स्थावर जङ्गम सभी प्राणियोंको उपमा रहित मुग्ध करने वाले इन श्रीललीजीके स्वच्छ, मुखारविन्दको चूमती हुई ॥१९॥

मुहुरजिघ्रदसावलिकं पुनः स्तनमदाद्वदने स्मितशोभिते ।
प्रिय इति ब्रुवती प्रणयान्मुहुश्चिकुरमस्पृशदम्बुजपाणिना ॥२०॥

वहुश एवमलालयदादरादवनिनाथसुतां निजभावतः ।
सुमृदुलांशुकवेष्टितपीठके मणिमये सुनिवेश्य ततो हि सा ॥२१॥

अमृतभोज्यमथार्प्य चतुर्विधं रचितमात्मकरेण ससौरभम् ।
निजशुभाङ्कगतां तु विधाय तां सुखमभोजयदिन्दुनिभाननाम् ॥२२॥

कमपि केन सुधौतमुखाम्बुजे क्षितिभुवः प्रदिदेश सुबीटिके ।
रुचिरगन्धमलेपयदंशुके कुसुमहारमुरस्यभिभूष्य च ॥२३॥

छबिमुदीक्ष्य तदा कृतकृत्यतामगमदम्बुजपत्रनिभेक्षणा ! ।
स्पृशति गूहति धत्त उदीक्षते वदति चुम्बति लालयति स्म ताम् ॥२४॥

तदनन्तर, बारम्बार उन्होंने श्रीललीजीके मस्तकको सूंघा पुनः मुस्कानसे शोभायमान उनके श्रीमुखारविन्दमें अपना स्तन दिया और हे प्यारी ! हे प्यारी । ऐसा बारम्बार कहती हुई प्रेम पूर्वक कमलवत् हाथों से केशोंका स्पर्श किया ॥२०॥

इस प्रकार भूमि माताके पति श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजीका श्रीसुवृता अम्बाजीने अपने भावानुसार बहुत प्रकारसे दुलार किया तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त कोमल वस्त्रोंसे ढकी हुई मणिमय चौकी पर श्रीललीजीको भली प्रकारसे बिठाया ॥२१॥

पुनः अपने हाथसे बनाये हुये सुगन्ध युक्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य चोष्य चारो प्रकारके अमृत तुल्य स्वादिष्ट भोजनोंको अर्पण करके, चन्द्रमाके समान प्रकाशयुक्त आह्लादकारक मुखारविन्द वाली इन श्रीललीजीको अपनी गोदमें विराजमान करके उन्हें सुखपूर्वक भोजन कराने लगीं॥२२॥

पुनः श्रीसुवृता अम्बाजीने पृथ्वीसे उत्पन्न हुई श्रीललीजीको जल पिला कर, जलसे धोये हुये मुखकमलमें पानके दो वीरोंको प्रदान किया, और पुष्पहारको हृदयस्थल पर अलंकृत करके सुन्दर गन्ध उनके कपड़ोंमें लगाया ॥२३॥

तब वे कमलदलके समान नेत्रवाली श्रीसुवृता अम्बाजी श्रीललीजीकी मनोहर छबिका दर्शन करके पूर्ण कृतकृत्य हो गयीं, पुनः उन्हें कभी अपनी गोदमें लेतीं कभी उनकी मनोहर छबिका दर्शन करतीं, कभी उनके मुखका चुम्बन करतीं, कभी हे प्यारी! हेश्रीललीजी! हे वत्से ! हे कमललोचने ! हे चन्द्रमुखी! आदिक सम्बोधक शब्द, उनसे बोलतीं, कभी उनके पीठ व सिर आदिका स्पर्श करतीं, कभी हृदय लगातीं और कभी उनका दुलार करतीं ॥२४॥

मृदुगिराऽथ जगाद विधुस्मिते ! ममहिते ! ऽक्षिहिमे! महिमेडिते!।
सघनवारिदशोभिनभस्तलं सुखकरं प्रियवत्स ! उदीक्ष्यताम् ॥२५॥
वहति वायुरतीव्रसुशीतलः सुरभिसंवलितात्मसुखप्रदः।
छबिनिधे ! नवदोलमहोत्सवो निजगृहे क्रियतां यदि रोचते ॥२६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति वचस्तु निशम्य विदेहजा शिवविरिञ्चिदुरूहपदाम्बुजा।
जनकजा जनवाञ्छितसिद्धिदा सुखयती सुवृताहृदयं शुभम् ॥२७॥
धृतगलाम्बुजमञ्जुकरद्वयी विपुलहर्षयुताऽऽह पिकस्वना।
अनुपमं भवने तव दोलनं परमशोभनमस्ति मया श्रुतम् ॥२८॥
तदनुदर्शय मे ऽम्ब ! दयानिधे ! यदवलोकितुमागमनं हि मे।
वच इदं च निशम्य तयेप्सितं दयित ! दर्शितमद्भुतदोलनम् ॥२९॥
तमदधिवेश्य प्रसन्नमुखाम्बुजा पुनरियेष च दोलयितुं हि ताम्।
सुखमदोलदियं नृपनन्दिनी चलदरालकवालयुतामना ॥३०॥

पुनः वे अपनी मधुरवाणीसे बोलीं:-हे चन्द्रमाके समान मुस्कानवाली ! हे मेरा हित करने वाली ! हे मेरे नेत्रोंको शीतलता-प्रदान करने वाली ! प्रभावशाली ब्रह्मादिकोंसे स्तुतिकी हुई! हे प्यारी वत्से ! हे श्रीललीजी ! देखिये आकाश सघन मेघोंसे सुशोभित हो रहा है ॥२५॥

छबिकी भण्डार स्वरूपा हे श्रीललीजी ! इस समय शीतल, मन्द, सुगन्ध मय सुखद वायु बह रही है अत एव यदि आपकी रुचिहो तो, अपने महलमें ही हृदय सुख प्रदायक नव झूलन महोत्सव कीजिये ॥२६॥

शिव ब्रह्मादिकोंके द्वाराभी जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन कठिन है, वे भक्तोंकी भावना को पूर्ण करने वाली, विदेहकुलमें प्रकट हुई श्रीजनकदुलारीजू श्रीसुवृता अम्बाजीके पवित्र हृदय को सुखी करती हुई कोयलके समान श्रवणसुखद वाणी बोलने वाली श्रीललीजी, बड़े हर्ष पूर्वक अपने दोनों मनोहर कर-कमलोंको उनके गलेमें डालकर बोलीं-हे श्रीअम्बाजी मैंने सुना है आपके भवनमें बड़ा ही सुन्दर, अनुपम झूला है ॥२७॥२८॥

हे दयानिधे ! श्रीअम्बाजी ! हमें उस झूलेको दिखा दीजिये, क्योंकि उसीको देखनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ। श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! श्रीसुवृता अम्बाजीने अपने इच्छानुकूल श्रीललीजीके इन वचनोंको श्रवण करके, उन्हें अपने यहाँका सुसज्जित आश्चर्य-जनक झूला दिखाया ॥२९॥ पुनः उस झूलेपर श्रीललीजीको विराजमान करके प्रसन्न मुखी श्रीसुवृता अम्बाजीने उनको झुलानेकी इच्छाकी। इस भावको समझकर हिलते हुये सुन्दर घुंघुराले केशोंसे युक्त मुखचन्द्रवाली, श्रीविदेह महाराजको आनन्द प्रदान करनेवाली, श्रीललीजो सुखपूर्वक झूलने लगीं ॥३०॥

प्रमदमेत्य न वाच्यमपीहया सजलकञ्जदृशा समवेक्षती ।
दयित ! दोलयती वदनश्रियं ह्यसुधनं तदवारयदञ्जसा ॥३१॥

रसिकशेखर ! चैतदवेक्षितं चरितमद्भुतमल्पकरन्ध्रतः ।
निगदितं भवते खलु पृच्छते पुनरुपासदमार्यनिकेतनम् ॥३२॥

कुत इयं च कथं समुपागता रहसि वै सुवृताङ्कमुदारधीः ।
स्थितवतीव मनोहरदर्शना न तु रहस्यमिदं मतिगोचरम् ॥३३॥

हे प्यारे ! झूलती हुई श्रीललीजीके मुखारविन्द की शोभाका दर्शन करती हुई, उनकी बालचेष्टासे अवर्णनीय सुखको प्राप्त हो श्रीसुवृता अम्बाजीने, अनायास अपने प्राणरूपी धनको न्यौछावर कर दिया अर्थात् उनके लिये अपनेको समर्पित समझने लगीं ॥३१॥

हे रसिक-शेखर (भक्तोंको अपने सिरका भूषण मानने वाले) प्यारे ! इस आश्चर्य मय चरितको मैंने, एक छोटेसे छिद्र द्वारा स्वयं देखा, पुनः अपने पिताजीके भवनको चली गयी, आपके पूछने पर मैंने आपसे उस चरितका वर्णन किया है ॥३२॥

वहीं विराजमान हुई सी, मनोहरदर्शना, उदारबुद्धि, ये श्रीललीजी, किस मार्गसे और किस प्रकार, पूर्ण एकान्त स्थलमें आकर श्रीसुवृता अम्बाजीकी गोदमें बैठ गयीं ? यह रहस्य मेरी बुद्धिका विषय नहीं है अर्थात् समझसे बाहर है ॥३३॥

इति षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे सप्तदशो विश्रामः ॥१७॥
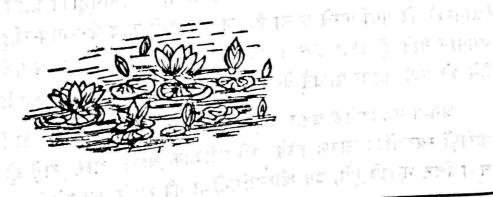
अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

कञ्चन वनमें अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवों द्वारा श्रीकिशोरीजी की स्तुति एवं सखियोंकी झूलनोत्सव प्रार्थना ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्राणनाथ ! मिथिलेशनिकेतं क्रीडितुं समगमं तु कदाचित् ।
काञ्चनाख्यविपिनं च तदानीं स्वामिनी मम गता हि विहर्तुम् ॥१॥

दिव्यहेमतरुपङ्क्तिभिराढ्यं हाटकाभधरयाऽद्भुतशोभम् ।
कुञ्जपुञ्जमलिकोकिलजुष्टं क्रौञ्चहंसशुकबर्हिसुघुष्टम् ॥२॥

पुष्पभारनतपादपशाखं सर्वकालसुखदं मुनिवन्द्यम् ।
आलिपुञ्जरतिदं रसवर्षं जन्तुवैररहितं श्रुतिगीतम् ॥३॥

तद्वनं च सहसा प्रमुदाऽहं प्राव्रजं दयित ! तत्र तदानीम् ।
कौतुकं यदवलोकितमारात्तद्ब्रुवन्तमनुवच्मि समग्रम् ॥४॥

ब्रह्मविष्णुहरषङ्मुखदेवा भिन्नभिन्नधृतकोटिकरूपाः ।
संस्तुवन्ति परिवृत्य च भक्त्या बद्धपाणिपुटका नतभालाः ॥५॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! किसी समय मैं श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें खेलनेके लिये गयी थी, उस समय मेरी श्रीस्वामिनीजू भी कञ्चन-वनमें विहार करने के लिये पधारी थीं ॥१॥

जो अप्राकृत सुवर्णके समान वृक्षोंकी पङ्क्तियोंसे युक्त, मणियोंकी चित्रकारी मय, देवसुवर्ण की भूमिसे शोभायमान है, जिसमें बहुत सी कुञ्जें बनी हुई हैं, कोयल और भौरोंसे जो सेवित है, तथा जिसमें क्रौञ्च हंस, तोता, तथा मोरों का सुन्दर शब्द होता है ॥२॥

जहाँ पुष्पोंके भारसे वृक्षोंकी डालियाँ पृथ्वीकी ओर लटक रही हैं, जो सदा सुख प्रदान करने वाला, मुनियों द्वारा प्रणाम करने योग्य, सखी-समूहोंको प्रीति प्रदान करने वाला और रस (आनन्द) की वर्षा करने वाला है, जहाँके सभी जीव वैर-भाव-रहित हैं, जिसकी महिमाको वेद भगवान गाते हैं ॥३॥ उस कञ्चन वनमें मैं हर्षपूर्वक सहसा जा पहुँची । हे प्यारे ! उस समय मैंने जो वहाँ सहसा आश्चर्य देखा था, उसे मैं पूर्णतया आपसे कहती हूं ॥४॥

अनन्त ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तथा कार्तिकेयजी आदि अनेक देवता पृथक्-पृथक्, करोड़ों स्वरूपोंको धारण करके श्रीललीजीके चारो ओर खड़े होकर, श्रद्धा पूर्वक हाथ जोड़े तथा सिर झुकाये हुये, इन श्रीस्वामिनीजी की स्तुति कर रहे थे ॥५॥

कोटिचन्द्रसमसस्मितवक्त्रामङ्गकान्तिपरिभूतसुवर्णाम् ।
विद्युदोघशतसन्निभदेहां फुल्लपङ्करुहशोभननेत्राम् ॥६॥
दर्पणाभपरिसूक्ष्मकपोलां नासिकाग्रगजमौक्तिकशोभाम् ।
स्निग्धनीलमृदुकुञ्चितकेशीं न्यस्तपाणितलनीरजगुच्छाम् ॥७॥
नित्यदिव्यनवभूषणवस्त्रां शर्मभर्ममणिचम्पकवर्णाम् ।
पद्मपादनखजिन्मणिचन्द्रां मीनकेतुदयितामितभव्याम् ॥८॥
पुष्पवर्षमनुनेमुरभिज्ञाः प्रेमवारिपरिपूर्णशुभाक्षाः ।
शीघ्रमेत्य हृदयेप्सितकामान् निर्ययुश्च निजपालितलोकान् ॥९॥
निर्गतेषु किल तेषु समीपं क्षीणभीतिरगमं दयितास्याः ।
न त्वपृच्छमपि सस्मितमुग्धा कौतुकं च तदहं प्रविवक्षुः ॥१०॥
निष्प्रफुल्लकुसुमाम्बरभूषाभिःसुसज्य दयितां हि तदानीम् ।
आल्य ऊचुरयि जीवनरूपे ! श्रूयतां च कृपया विनयोऽयम् ॥११॥

उस समय इनका श्रीमुखारविन्द करोड़ों चन्द्रमाओंके समान मुस्कान-युक्त था, अपने अङ्गकी कान्तिसे ये सुवर्णको लज्जित कर रही थीं, सैकड़ों विजली राशियोंके समान इनके शरीरको तेज था, तथा विकसित कमलके समान सुन्दर नेत्र थे ॥६॥

दर्पण (शीशा) के समान अत्यन्त सूक्ष्म छाया ग्रहण करने वाले इनके कपोल तथा नासिकाके अग्रभागमें गजमुक्ता (गजमोती) की शोभा थी चिकने काले, कोमल, घुंघुराले केश थे कमलके फूलोंका गुच्छा श्रीकिशोरीजीकी हथेलीमें था ॥७॥

नित्य (सदा) एक रस रहने वाले दिव्य (प्रकाशयुक्त) वस्त्र व भूषणोंको धारण किये हुये इनका उत्तमोत्तम सुवर्ण-मणि तथा चम्पाके पुष्पके समान गौर वर्ण शरीर था, अपने श्रीचरण कमलके नखोंकी कान्तिसे ये मणि व चन्द्रमाको तुच्छ कर रही थीं, रतिसे अनन्त गुण सौन्दर्यसे सम्पन्ना इन श्रीकिशोरीजीको ॥८॥ प्रेम-जल-भरे हुये शुभ नेत्रोंसे युक्त इनकी महिमाको जाननेवाले देववृन्द फूलोंकी बर्षा करते हुए अनेकानेक, वार नमस्कार किये पुनः मन इच्छित वरोंको प्राप्त करके अपने द्वारा पालित लोकोंको चले गये ॥९॥

हे प्यारे ! जब वे देव वृन्द वहाँसे चले गये तब मैं निडर होकर इन श्रीललीजीके पास पहुँची परन्तु उस कौतुकके विषयमें इनसे पूछनेकी इच्छा रखती हुई भी, मैं सुन्दर मुस्कानसे मुग्ध हो गयी, अतः पूछ न सकी ॥१०॥

उस समय सखियाँ बिना खिले हुये फूलोंकी कलियोंके बनाये हुये शोभायमान वस्त्र एवं भूषणोंके द्वारा श्रीकिशोरीजीका शृङ्गार करके इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं—हे हमारी जीवन स्वरूपा श्रीललीजू ! कृपा करके हम लोगोंकी इस प्रार्थनाको श्रवण कीजिये ॥११॥

तं तु कान्त ! श्रृणु मे कथयन्त्या श्रोतुमस्ति हृदिचेदभिलाषः ।
विश्रुतं न खलु चान्यजनोक्तं वारिजाक्ष मनसा नियतेन ॥१२॥

सख्य ऊचुः ।

सुखस्पर्शो वायुर्वहति शुचिसौगन्ध्यमिलितो, हरिद्दिव्यक्षोणी सहजनयनानन्दजननी ।
पिकादीनां रावः परमललितः कर्णसुखदो, मयूराणां नृत्यं स्पृशति हृदयं प्राणनिलये ! ॥१३॥
लताकुञ्जं दिव्यं परमरमणीयं च सघनं, प्रसूनैः सङ्कीर्णं विविधरचनायुक्तमनघे ।
विशालं पश्योच्चैः शुकपिकमयूरादिलसितं, घनैर्व्याप्तं व्योम प्लवगनिनदं मोदजनकम् ॥१४॥
इदानीमिन्द्वास्ये ! परमसुखदान्दोलसमयो, रुचिश्चेत्त्वत्कार्यो द्रुततरमपीहोत्सववरः ।
तदोमित्युक्त्वा ताः प्रियतम! लताकुञ्जभवनं, समं ताभिर्हृष्टा प्रणतसुखदात्री श्मविशत् ॥१५॥
लताकुञ्जेश्वर्या पुलकितहृदा प्रेमधनया, त्तदा ऽत्यादृत्येयं निजभवनमानीय महिता ।
प्रसूनैः श्रृङ्गारं प्रियवर ! विधायाम्बुजदृशः, परिस्पन्दैर्दोलो बहुभिरचिराद्वै विरचितः ॥१६॥

हे कमल-नयन ! प्यारे ! आपके हृदयमें यदि श्रवण करनेकी इच्छा है तो मेरे कहते हुये उस प्रार्थनाको एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये, यह प्रार्थना किसी दूसरेके द्वारा कही हुई मैंने श्रवण नहीं की थी अर्थात् अपने कानोंसे सुनी थी ॥१२॥

सखियाँ बोलीं:-हे प्राणोंकी निवासस्थान स्वरूपा श्रीललीजी ! इस समय पवित्र सुगन्धसे युक्त, स्पर्शसे सुखदेने वाली वायु बह रही है, सहज (अनायास) आनन्द कराने वाली हरी-हरी दिव्य पृथ्वी हो रही हैं, कोयल आदि पक्षियोंका श्रवण-सुखद परम-सुन्दर शब्द सुनाई पड़ रहा है, तथा मोरों का नृत्य हृदयको अतीव आकर्षित कर रहा है ॥१३॥

अत एव हे सम्पूर्ण दुःख रहित (आनन्द स्वरूपा) श्रीललीजी ! देखिये ऊँची और विशाल, तथा तोता, कोयल, मयूर (मोर) आदि पक्षियोंसे शोभायमान, अनेक प्रकारकी सजावटसे युक्त, फूलोंसे परिपूर्ण, घनी, एवं दिव्य (प्रकाश युक्त) परम रमणीय (विहार करनेके लिये अत्यन्त उपयुक्त) लताकुञ्ज है, आकाश मेघोंसे आच्छादित है, तथा मेढ़कोंका आनन्दकारी शब्द हो रहा है ॥१४॥ हे श्रीपूर्णचन्द्रमुखीजू ! इन सब कारणोंसे अत्यन्त सुखदाई यह झूलनका समय है, अत एव यदि आपकी रुचि हो तो इस श्रेष्ठ उत्सवको शीघ्र मनायें । श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे परमप्यारेजू ! सखियोंकी इस प्रार्थनाको श्रवण करके भावपूर्त्तिके द्वारा सुखप्रदान करने वाली श्रीललीजीने, उन सखियोंसे "ऐसा ही करें" कहकर उनके साथ हर्षपूर्वक लताकुञ्ज में पधारीं ॥१५॥ तब प्रेमधनसे युक्त उस लता-कुञ्जकी मुख्य सखीने अतीव आदर करके श्रीललीजीको अपने उस लताभवनमें लाकर उनका पूजन किया, तत्पश्चात् श्रीकमल लोचनाजी का उसने फूलोंका श्रृङ्गार किया और शीघ्रही अनेक प्रकारकी सजावट पूर्वक झूलनकी तैयारी की ॥१६॥

तमारुह्यान्दोलं परमललितं चन्द्रवदना, सखीयूथे कामं चपलचिकुराऽदोलदनघा।
अवर्षन् पुष्पाणि त्रिदशनिकरा मोदसहितास्तडित्वान्वै मन्दं विधुमुख! ववर्षामृतमयम् ॥१७॥
ततः काश्चित्सख्यश्छबिरसविमुग्धा हि ननृतुस्तथा काश्चिद्बालातरुणपिककण्ठोपमगिरा।
कलं चक्रुर्गानं सुरमुनिमनोहारि सरसं, जयं प्रोचुः प्रेम्णा कुसुममनुवर्षं रसरताः ॥१८॥
सवाद्यं नृत्यन्त्यो विविधगतिभिः स्फारितदृशो, जगुस्ता मल्हारं मुनिहृदयकर्षं रसमयम्।
उपागच्छन्मत्ता मधुपनिवहा गात्रसुरभिं, तदा ऽभ्राम्यन् घ्रात्वा रसिक! शुचिमेतां हि परितः॥१९॥
मृगा गावो नागाः कनकविपिने तर्ह्युपगताः, स्थिता शोभासक्ता अचलगतयो ऽमीलितदृशः।
चकोरा निर्दोषं वदनरजनीशं च चकिता, निरीक्षन्ते प्रीत्या प्रिय! गतनिमेषाः स्म मुदिताः ॥२०॥
नवाम्भोदभ्रान्त्या नवविमलशाटीं सुचपलां, प्रियाङ्गह्लादिन्या सजलजलदाभामुपगताः।
मयूरा मैथिल्याः सुखमचिरमालोक्य ननृतुः, स्वनै रम्यैस्तेषामजनि हृदये हर्षनिवहः ॥२१॥

हे चन्द्रवदन प्यारे! उस अत्यन्त सुन्दर झूलन पर चढ़कर सखियोंके झुण्डमें डोलते केश वाली, सब दोषोंसे रहित, शुद्धब्रह्म स्वरूपा, चन्द्रमुखी ये श्रीललीजी इच्छानुसार झूलने लगीं, उनका दर्शन करके देववृन्द आनन्दसे ओत-प्रोत होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे, मेघ अमृतमय नन्हीं नन्हीं बूंदें बरसाने लगे ॥१७॥

इधर श्रीललीजीके झूलन पर विराजमान हो जानेके बाद, कुछ सखियाँ उनके दर्शन रूपी रससे पगलीहो नाचने लगीं तथा कुछ युवाअवस्थासम्पन्न कोयलसी कण्ठवाली, सखियाँ अमृतमय वाणी द्वारा देवता, मुनियोंके मनको वशमें करने वाले रसपूर्ण सुन्दर अत्यन्त मधुर गान प्रारम्भ करती हुई, कुछ आनन्द-मग्न हो फूलोंको वर्षा करती जय-जयकार करने लगीं ॥१८॥

हे भक्तोंके भाव रूपी रसका आस्वादन करनेवाले श्रीप्राणप्यारेजू! बाजाओंके सहित अनेक प्रकारकी गतियोंसे नृत्य करती, तथा आँखें फाड़कर एकटक दृष्टिवाली वे सखियाँ मुनियोंके हृदयको खींचने वाला आनन्दमय मल्हार-राग गाने लगीं। उस समय इन श्रीकिशोरी-जीके श्रीअङ्गकी पवित्र सुगन्धको सूंघकर भौंरोंके समूह इनके पासमें आगये और सुगन्धसे मस्तहो चारो ओर उड़ने लगे ॥१९॥

हरिण तथा हाथी भी उस समय कञ्चन वनमें आगये और श्रीललीजीकी झूलन-झाँकीकी शोभा पर आसक्त (मुग्ध) हो टकटकी लगाये चित्रसे विल्कुल स्थिरहो गये, टकटकी लगाये चकोर, घटने बढ़ने व विष आदि दोषोंसे रहित मुखचन्द्रका हर्षितहो प्रेमपूर्वक दर्शन करने लगे ॥२०॥ हे प्यारे! श्रीमिथिलेशललीजीके श्रीअङ्गकी कान्ति रूपी बिजलीसे युक्त उनकी स्वच्छ, नूतन, सजल, मेघोंके समान श्याम तथा झूलनेसे अत्यन्त हिलती हुई साड़ीका दर्शन करके नवीन मेघकी भावनासे मोर समीपमें आकर सुखपूर्वक नाचने लगे, उनके सुन्दर शब्दोंसे हृदयमें हर्ष-समूह उत्पन्न हो गया ॥२१॥

तथाऽन्ये कीराद्या द्विजगणवरा नैकविधिभिः, स्वनं चक्रुर्दिव्यं श्रुतिसुखदमाङ्गल्यनिलयम् ।
स्वयं रागं रक्ता निमिकुलसुतानां प्रियतरैं, रभूद्वृष्टिर्भूयः सुरतरुसुमानाञ्च सुखदा ॥२२॥

प्रियेत्थं हेमाङ्गी ससुखमनुजाभिश्च सहिता, लताकुञ्जागारे विशदचरिताऽऽदोल्य सुभगा ।
सखीवृन्दैः साकं विपिनमनुद्रष्टुं पुनरगा, ल्लसद्विध्वास्येयं निजगतिविलज्जीकृतकरिः ॥२३॥

छत्रं ततः काचिदतिप्रकाशं विचित्रचित्रं ससुवर्णदण्डम् ।
काश्चित्पयःफेनसुचामराणि सख्यः समादाय करे प्रयाताः ॥२४॥

काश्चिन्मुदा बर्हिसुपिच्छगुच्छान् वेत्राणि काश्चिद्व्यजनानि काश्चित् ।
पाणौ समादाय सरोजकल्पे दक्षे च वानेऽनुययुःशुभाङ्ग्यः ॥२५॥

धृतासिहस्ता धृतकन्दुकाश्च गृहीतचामीकरवारिपात्राः ।
काश्चित्तथा मङ्गलपात्रहस्ता मिष्ठान्नपात्राब्जकराश्च काश्चित् ॥२६॥

काश्चित्सुरत्नाञ्चितहेमदण्डान् काश्चित्समादाय सुपुष्पगुच्छान् ।
काश्चित्तु चामीकररत्न पात्रे फलानि मिष्ठानि निधाय याताः ॥२७॥

इसी प्रकार तोता आदि उत्तम पक्षी-गण निमिकुलकी कन्याओंके अत्यन्त प्यारे रागोंसे स्वयं आसक्त हो कानोंको सुख देनेवाला, मङ्गल-धाम अनेक प्रकारका शब्द करने लगे। और बारम्बार आकाशसे कल्पवृक्षके फूलोंकी सुखदायिनी वर्षा बारम्बार होने लगी ॥२२॥

हे प्यारे ! इस प्रकार सुवर्णके समान प्रकाशमान गौर अङ्ग तथा उज्बल चरितवाली, चन्द्रमाके समान सुशोभित आह्लादकारी मुखवाली परम सौन्दर्य युक्ता ये श्रीललीजी अपनी बहिनों सहित लताकुञ्ज भवनमें सुखपूर्वक झूलकर, सखी-वृन्दोंके समेत, अपनी चालसे हाथियोंको विशेष लज्जित करती हुई वनको देखने पधारीं ॥२३॥

इसलिये कोई सखी अत्यन्त प्रकाश युक्त, अनेके प्रकारकी चित्रकारी बने हुये सोनेके दण्डा वाले छत्रको लेकर तथा कुछ सखियाँ दुग्धफेनके समान उज्ज्वल चवँरोंको अपने हाथमें लेकर श्रीललीजीके साथ चलीं ॥२४॥ मङ्गलमय अङ्गवाली कुछ सखियाँ आनन्दसे ओत-प्रोत होकर, मोरछल, कुछ बेंत तथा कुछ अपने-अपने कमलवत् कोमल हाथोंमें पङ्खोंको लेकर श्रीललीजीके दाहिने तथा बायें भागमें चलीं ॥२५॥

कुछ सखियाँ हाथमें तलवार लिये हुई, कुछ गेंद और कुछ सुवर्णके बने हुये जलपात्रोंको तथा कुछ मङ्गलथाल और कुछ सखियाँ अपने कर-कमलोंमें मिष्टान्नपात्र कुछ सखियाँ सुन्दर रत्नोंसे जटित सुवर्णकी छड़ी और कुछ फूलोंके गुच्छों(गुलदस्तों)को लेकर तथा कुछ सुवर्णमय रत्न पात्रोंमें अनेक प्रकारके मिष्टान्न रखकर चलीं ॥२६॥२७॥

सर्वा विदुष्यो निमिवंशजाता दिव्यांशुका दिव्यविभूषणाढ्याः ।
स्रग्विण्य इन्दुप्रतिमाननाश्च कलाविदःखञ्जनचञ्चलाक्ष्यः ॥२८॥

अत्यद्भुताः कात्स्न्र्यगुणैरुपेता मनोहराङ्ग्यो नवला वयस्याः ।
प्राणेश ! साङ्केतिकभावविज्ञा मन्दस्मितास्तामनुसंप्रयाताः ॥२९॥

एवं सखीमध्यगता प्रसन्ना प्रफुल्लपङ्केरुहपत्रनेत्रा ।
तारौघमध्ये शुशुभे यथेन्दुरबालताराधिपशोभिवक्त्रा ॥३०॥

स्वरूपमाधुर्य्यमवेक्ष्य कान्त ! सर्वाणि भूतानि सुविस्मितानि ।
गता तु दृष्टिर्न पुनर्निवृत्ता तेषां प्रियायाः सुभगाङ्गदेशात् ॥३१॥

रासस्थलीं मानवदेवपुत्री दृष्ट्वा सुरम्यां प्रससाद भक्त्या ।
तन्मुख्ययाऽथो सत्कृत्य दिव्ये सिंहासने चारु निवेशितेयम् ॥३२॥

विराजमाना मणिमण्डपे च प्रियाः सखीर्वल्लभ ! वीक्षमाणा ।
त्वया विना रासरसप्रपूर्त्ति मत्वा न किञ्चिद्विमना बभूव ॥३३॥

हे श्रीप्राणनाथजू! निमिवंशकी सभी कुमारियाँ, सब विद्याओंको जानने वाली, विनय भाव सम्पन्ना, दिव्य (प्रकाशपूर्ण) वस्त्रोंको धारण किये हुई, दिव्य-भूषणोंसे युक्त, मालाओंसे सुशोभित, चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुख तथा खञ्जन (खिड़रिच) पक्षीके सदृश चञ्चलनेत्र वाली, सभी कलाओंमें निपुणता प्राप्त ॥२८॥ अत्यन्त विलक्षण, सभी गुणोंसे सम्पन्ना, मनोहर अङ्ग तथा मन्द मुस्कानसे युक्त, इशारोंका भाव जानने वाली, नयी अवस्था सम्पन्ना वे सखियाँ श्रीललीजीके पीछे-पीछे चलीं ॥२९॥

खिले कमलके समान विशालनेत्र तथा पूर्ण-चन्द्रके सदृश शोभायमान मुख वाली श्रीललीजी, प्रसन्नता युक्त सखियोंके बीचमें इस प्रकार सुशोभित हुई जैसे नक्षत्रोंके बीचमें स्वच्छ चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३०॥

हे प्यारे ! श्रीप्रियाजूके स्वरूप-माधुर्यका दर्शन करके सभी प्राणी आश्चर्यमें पूर्ण निमग्न हो गये । उन सौभाग्य-शालियोंकी दृष्टि इन (श्रीललीजी) के जिन सुन्दर अङ्गों पर पहुँची, उनसे फिर लौट न सकी अर्थात् सदाके लिये उसीमें तल्लीन हो गयी ॥३१॥

क्रीड़ा सुयोग्य रासस्थली को देखकर श्रीललीजी प्रसन्नहुई, पुनः उस कुञ्जकी मुख्य सखी ने श्रद्धा पूर्वक सत्कार करके इन (श्रीललीजी) को दिव्य सिंहासन पर विराजमान किया ॥३२॥

हे प्यारे ! मणिमय रासमण्डपमें सिंहासन पर विराजमान हुई श्रीललीजी, अपनी प्यारी सखियोंकी ओर देखती हुई, बिना आपके विराजे रास-रस (भगवदानन्द) की पूर्ण पूर्त्ति न मानकर, कुछ उदास हो गयीं ॥३३॥

ज्ञात्वा त्वभिप्रायमुरःस्थितं त्वं युक्त्याऽसि नीतो विहरंस्तदाऽऽल्या ।
इतस्तदाञ्जो मिथिलावनान्तं तत्कौतुकं संस्मर दृष्टिदृष्टम् ॥३४॥

श्रीजानकीबाहुवलाश्रितानां सखीजनानामपि नीरजाक्ष ! ।
नृत्यैश्च गानैर्गतिभिश्च वाद्यैः संमोहितोऽभूः स्मर विस्मृतं किम् ॥३५॥

श्रीशिव उवाच ।

संस्मृत्य रामोऽश्रुजलाकुलाक्षः सखीगिरा तच्चरितं मनोज्ञम् ।
निरीक्ष्य कान्ताननमिन्दु मोहं सनिद्रमम्भोजदलायिताक्षम् ॥३६॥

गाढं हृदाऽऽलिङ्गितुमूरुबाहुस्तदैव कान्तां चकमे सकामम् ।
संवेशभग्नोद्भवकष्टभीत्या मनः समाधाय निवर्तते स्म ॥३७॥

श्रीराम उवाच ।

उवाच पादाम्बुजसक्तहस्तां पयोदगम्भीरगिरा मृगाक्षः ।
प्रीतोऽस्म्यहं ते नलिनायताक्षि ! संस्मारणाद्दिव्ययशः प्रियायाः ॥३८॥

इन श्रीललीजीके भावको जानकर, प्रमोद-बनमें विहार करते समय आपको सखी श्रीचन्द्रकलाजी युक्तिपूर्वक श्रीअयोध्यापुरीसे श्रीमिथिलाजीके श्रीकञ्चन वनमें तुरन्त प्रमोदवन सहित ले गयीं, हे प्यारे! आँखोंसे स्वयं देखे हुये उस कौतुकको स्मरण कीजिये ॥३४॥

हे कमलनयन ! श्रीजनकलड़ेतीजूके बाहु-बलके अवलम्ब पर (सहारे) रहने वाली सखियोंके अनेक प्रकारके गति-पूर्वक नृत्य, गान और बाजाओंसे उस समय आप सम्यक् प्रकार मुग्ध हो गये थे स्मरण कीजिये, क्या उस लीलाको भूल गये ? ॥३५॥

श्रीभोलेनाथजी बोलेः—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजीकी वाणीके द्वारा श्रीरामभद्रजू पूर्वके उस आश्चर्यपूर्ण मनोहर चरितको स्मरण करके अपनी श्रीप्रियाजूके चन्द्र-विमोहन तथा निद्रायुक्त कमलके समान विशालनेत्रवाले मुखारविन्दको भलीभांति देखकर सजल नेत्र हो गये, अर्थात् उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये । ३६॥

विशाल भुजावाले श्रीरामभद्रजू ! भावावेशके कारण श्रीप्रियाजूको उस समय हृदयसे लगानेके लिये आतुर हो उठे परन्तु निद्रा-भङ्ग होनेसे श्रीप्रियाजूको कष्ट होगा, इस भयसे अपने मनको स्थिर करके आलिङ्गन इच्छाका दमन कर लिये ॥३७॥

मृगके समान विशाल-नयन श्रीरामभद्रजू चरणकमलों पर हाथ रखे हुई उन स्नेहपराजीसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोलेः—हे कमलके सदृश विशाल लोचना स्नेहपराजी! श्रीप्रियाजूके दिव्य चरित्रका स्मरण दिलानेसे मैं तुम पर प्रसन्न हूँ ॥३८॥

न खल्विदानीमपि तच्चरित्रं स्मर्तुंहि मे चित्रमुरो जहाति।
संस्मृत्य संस्मृत्य मुहुर्मुहुस्तत्स्वाश्चर्यमग्नोऽस्मि यथा मृगोऽब्धौ ॥३९॥
कथं तया चन्द्रदिनेशपुत्र्या प्रियाहितायेत उदारबुद्ध्या।
नीतोऽस्म्यहं वै सवनाधिराजो निगूढ़रूपेण विहारसक्तः ॥४०॥
समागमं मे प्रियया विधाय वशं विनीतोऽस्मि तया मृगाक्ष्या।
सिन्दूरबिन्दुश्च विशालभाले दत्तस्त्वया रासविहारिणो मे ॥४१॥
गीतं च वाद्यं च तथैव नृत्यमतुल्यमेवास्ति हि वो विचित्रम्।
अन्यूनरूपादिगुणा भवत्यो माधुर्य्यशीला रसिकोत्तमाश्च ॥४२॥
द्विसप्तविद्यानिपुणा विनीता सर्वेङ्गितज्ञा रसलोलुपाश्च।
शचीविधात्रीगिरिजारमाभी रूपेण तुल्या रमणीवरिष्ठाः ॥४३॥
चन्द्रानना बिम्बफलाधरोष्ठचो रासप्रवीणा रतिशास्त्रविज्ञाः।
लब्धा मया भाग्यवशेन यूयं प्राणप्रियायाः कृपया ऽनवद्याः ॥४४॥

अरी सखी ! अभी तक उस चरित्रका स्मरण करने पर मेरा हृदय आश्चर्यका त्याग नहीं कर पाता, बल्कि बारम्बार उसे स्मरण करके वह इस प्रकार आश्चर्यमें पड़कर विवश हो जाता हूँ जैसे मृग समुद्रमें पड़कर ॥३९॥

बड़े आश्चर्यकी बात है, कि किस प्रकार श्रीप्रियाजूकी भाव-पूर्त्तिके लिये उन उदारबुद्धि श्रीचन्द्रभानु कुमारी श्रीचन्द्रकलाजी अत्यन्त गुप्त रूपसे प्रमोद-वनमें विहार करते समय मुझको उस प्रमोदवन सहित यहाँ (श्रीअयोध्याजी) से, अपने वहाँ (श्रीमिथिलाजी)ले गयीं ॥४०॥

वहाँ श्रीप्रियाजूसे मेरा समागम कराके उन्होंने हमें अपने वशमें कर लिया। पुनः जब मैं रास (भगवदानन्द परायण भक्ताओंके साथ क्रीड़ा) करनेमें तत्पर हुआ तब तुमनेभी मेरे विशाल भाल (मस्तक) पर सिन्दूरका बिन्दु लगाया था ॥४१॥

अरी सखी ! आप लोगोंका विचित्र गाना बजाना तथा नाचना आप लोगोंके ही समान है, उसकी तुलनाके लिये कोई अन्य है ही नहीं, आप लोगोंमें न रूपकी कमी है न गुणोंकी। आप लोग, भक्ति प्रदान करने वाली तथा भगवदानन्द प्रेमिकाओंमें उत्तम हैं ॥४२॥

आप लोग चौदहो विद्याओंको जानने वाली, विनयभाव-सम्पन्ना, सब इङ्गितों (इशारों) को समझने वाली रस (आनन्द-स्वरूपा श्रीप्रियाजू) की प्राप्तिके लिये आतुर, सुन्दरतामें इन्द्राणी ब्रह्माणी, रुद्राणी व श्रीलक्ष्मीजीके समान तथा श्रीप्रियाजूके प्रसन्नतार्थ क्रीड़ा करने वालियोंमें परम श्रेष्ठ हैं ॥४३॥

आप लोग चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मुख और बिम्बा फलके समान लाल अधर (ओष्ठ) वाली, भागवतधर्ममें चतुर, प्रेमशास्त्रका विशेष ज्ञान रखने वाली प्रशंसाके योग्य हैं। श्रीप्राण-प्यारीजूकी कृपासे ही मुझे सौभाग्यवश आप लोगोंकी प्राप्ति हुई है ॥४४॥

विलासदक्षा नवनित्ययौवनाः प्रेमाब्धिमीना दयितैकजीवनाः ।
मनोहराः पद्मपलाशलोचना भुजङ्गवेण्यो निमिवंशदीपिकाः ॥४५॥
सर्वाभ्य एवेह विदेहवंश्या यूयं सखीभ्योऽप्यधिकाः प्रिया मे ।
सर्वापराधान्ममरासकेलौ कर्तुं क्षमामर्हत भूरिभागाः ॥४६॥
अहो प्रियाया मम गूढ़भावप्रेमस्मितक्षान्तिसुशीलताश्च ।
वक्रेक्षणं कोकिलभाषणञ्च रासप्रवीणत्वमुदारशक्तिः ॥४७॥
अहो प्रियाया मम रूपमाधुरी दिव्यप्रभावोऽमितनित्यवैभवः ।
उदारभावः सुषमानहङ्कृतिर्वयोमृदुत्वं च विकुण्ठशेमुषी ॥४८॥
गाम्भीर्यसौन्दर्यदयानुरागाशेषप्रियत्वादिगुणा निसर्गः ।
मत्तेभहंसेशबधूगतिश्च दयार्द्रभावः स्मितमोहनत्वम् ॥४९॥

आप लोग कमल-दलके समान सुन्दर बड़े २ नेत्रवाली भुजङ्ग(सर्प)के सदृश (टेढ़ीमेढ़ी)बेणी वाली, निमिवंशको दीपकके समान प्रकाशित करनेवाली, तथा अपने गुण-रूपादिसे मनको हरण करने वाली, श्रीप्रियाजूकी प्रसन्नता कारक-क्रीड़ाओंको जाननेवाली, नित्यनवीन किशोर अवस्था-सम्पन्ना, प्रेम-रूपी समुद्रकी मछली ही हैं अर्थात् श्रीप्रियाजू ही आप लोगोंकी जीवन हैं ॥४५॥

आप सभी विदेह-वंश-कुमारियाँ मुझे अन्य सखियोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय हैं, इस लिये हे श्रीप्रियाजूको सर्वस्व मानने वाली बड़भागिनियों ! भक्ताओंके साथ क्रीड़ा करते समय मुझसे जो भी अपराध हो जावें, उन्हें आप लोग क्षमा करना, क्योंकि-भक्त मेरे आनन्दमें विभोर हो जाते हैं और मैं भक्तोंके आनन्दमें विभोर हो जाता हूँ ॥४६॥

अहो हमारी श्रीप्रियाजूका कैसा सुन्दर गूढ़(गुप्त)भाव, क्या ही प्रेम, कैसी मनोहर मुस्कान क्या ही अनुपम सहनशीलता, कैसी मनोहर तिरछी चितवन, कैसी सुखद कोयलके समान सुरीली मधुर बोली, कैसी भगवद्धर्म (भक्ति) की अद्वितीय जानकारी तथा क्या ही विलक्षण चिन्तनशील (जहाँ तक बुद्धि पहुँच नहीं सकती ऐसी) शक्ति है ? ॥४७॥

अहो श्रीप्रियाजूकी कैसी ही उपमातीत रूप-माधुरी है ? कैसी दिव्य प्रभाव तथा क्या ही अद्भुत अनन्त नित्य वैभव है ? कैसा सुन्दर उदार भाव है ? कैसी उपमा-रहित सुन्दरता है ? कैसी अपूर्व निरभिमानिता है ? कैसी कोमल अवस्था है ? कभी कुण्ठित न होने वाली आपकी क्या ही विचित्र सुन्दर तीक्ष्ण बुद्धि है ? ॥४८॥

अहो श्रीप्रियाजूकी कैसी सुन्दर गम्भीरता है ? क्या ही अनुपम सौन्दर्य है, कैसी विचित्र दया है ? कैसा अथाह प्रेम है ? क्या ही सर्व-प्रियत्व आदि आपके अनुपम गुण हैं ? क्या ही विलक्षण स्वभाव है ? कैसी सुन्दर मस्त हाथी व हंसिनीकी सी गति (चाल) है ? क्याही उपमा रहित आपका दयार्द्रभाव है ? और क्याही अद्वितीय मुस्कानकी मनोहरता है ? ॥४९॥

बाह्लीकसञ्चर्चितचारुभालो मुक्ताप्रसूनोद्ग्रथिताहिवेणी ।
दिव्यप्रसूनाञ्चितचारुचूडः सुकुञ्चितस्निग्धशिरोरुहाश्च ॥५०॥

अहो प्रियाया मम शुक्तिकर्णौं मस्यञ्जिते पद्मविलोचने द्वे ।
मनोजबाणासनशोभनभ्रू सुवर्तुलादर्शसमौ कपोलौ ॥५१॥

सुनासिका कीरविमोहयित्री मुक्ताञ्चिता बिम्बफलाधरोष्ठौ ।
सुदन्तपङ्क्तिः स्मितशोभमाना सश्यामबिन्दुं चिबुकं मनोज्ञम् ॥५२॥

ग्रैवेयकैर्भूषितकम्बुकण्ठो हारावलीशोभिदयामयोरः ।
सकङ्कणस्निग्धफणिप्रकोष्ठौ करारविन्दे वृतजत्रुणी च ॥५३॥

काञ्च्यावृता सूक्ष्मकटिर्मनोज्ञा रम्भोरुयुग्मं सजलाम्बुजाक्षि ! ।
अहो प्रियाया मम गूढगुल्फौ सयावकाभूषितपादपद्मे ॥५४॥

केशरकी रचनासे युक्त क्या ही श्रीप्रियाजू का मस्तक है ? मोतियों तथा पुष्पोंसे गुथी हुई कैसी मनोहर सर्पिणीके समान लम्बी वेणी है ? कैसा सुन्दर फूलोंसे अलंकृत आपका जूड़ा है ? कैसे मनोहर, घुंघुराले, चिकने, श्रीप्रियाजूके केश हें ॥५०॥

अहो श्रीप्रियाजूके दोनों कान सुवर्ण शुक्तिके समान कैसे सुन्दर हैं ? क्याही आनन्दकी वर्षा करने वाले कज्जल लगे हुये कमलके समान विशाल आपके नेत्र हैं? कैसी सुन्दर कामदेवके धनुष के समान भौंहें हैं? कैसे मनोहर दर्पणके सदृश शोभायमान आपके दोनों गोल कपोल हैं ॥५१॥

अहो क्याही सुन्दर नासामणिसे युक्त सुग्गा को मुग्ध करने वाली श्रीप्रियाजूकी नासिका है? क्याही बिम्बा फलके समान अरुण श्रीप्रियाजूके अधर (ओष्ठ) हैं ? मुस्कानसे शोभायमान दाँतोंकी पङ्क्ति कैसी मन लोभावनी है? श्रीप्रियाजूकी श्याम बिन्दुसे युक्त ठोढ़ी कितनी मनोहर है॥५२॥

गलेके भूषणोंसे भूषित श्रीप्रियाजूका, शङ्खके समान कण्ठ कैसा सुन्दर है ? अनेक प्रकारके हारोंसे शोभायमान श्रीप्रियाजूका दयामय हृदय स्थल, क्या ही मनोहर है ? कङ्कणों को धारण किये हुये आपके चिकने पहुँचे क्या ही सुहावने हैं ? लालकमलके समान आपके वरद-हस्त क्या ही सुन्दर हैं ? और क्या ही सुन्दर आपके छिपे हुये जत्रु (भुज मूल व गलेके बीचकी हड्डी) हैं ॥५३॥

हे सजल कमलके समान नेत्रवाली स्नेहपराजी ! श्रीप्रियाजूकी करधनीसे युक्त पतली कमर कैसी मनोहर है ? केलाके खम्भोंके समान श्रीप्रियाजूके क्याही सुन्दर रोम-रहित, चिकने गोल जंघे हैं ? अहो श्रीप्रियाजूके पांवकी छिपी हुई गांठे कैसी मनोहर हैं, महावर लगे हुये नूपुर आदिसे अलंकृत श्रीप्रियाजूके चरणकमल कितने सुन्दर हैं ॥५४॥

अहो प्रियाया मम नीलशाटी वस्त्राणि दिव्यानि च भूषणानि ।
सर्वं वशीभूतकरं तदीयमदृष्टपूर्वं मम किं बहूक्त्या ! ॥५५॥

अम्भोविहारश्च सदा प्रियायाः स्मृतो हरत्यालि ! तनुस्मृतिं मे ।
उरः परिष्वङ्गवियोगतापं सोढुं क्षणार्द्धं न हि रोचते मे ॥५६॥

न कज्जलं मां तु चकार पाद्मो सुखेन नेत्रे दयिता विधत्ते ।
कपोलसंस्पर्शनिबद्धकामं न चादिशत्कर्णविभूषणत्वम् ॥५७॥

कान्ताधरोच्छिष्टनिबद्धभावं नासामणिं मे न चकार वेधाः ।
ग्रैवेयको नास्मि कृतो विधात्रा श्रीवल्लभाकण्ठसुलग्नकामः ॥५८॥

वक्षःप्रदेशाधिनिवासतृष्णं न रत्नहारं व्यदधात्स को माम् ।
न चाङ्गरागं हि चकार वेधा यतोऽङ्गसङ्गाद्भुतशातमीयाम् ॥५९॥

अहं सदा प्राणपरप्रियायाः श्रीयोगिराजेन्द्रविदेहपुत्र्याः ।
अहो न चोलोऽभवमालि ! चास्या उरः समालिङ्गनलोलचित्तः ॥६०॥

अहो हमारी श्रीप्रियाजूकी नीली साड़ी कैसी मनोहर है ? प्रकाशयुक्त, आपके और भी वस्त्र व भूषण क्या ही सुन्दर हैं ? बहुत कहनेसे क्या ? श्रीप्रियाजूका जो कुछ भी है, सभी वशीभूत कर लेने वाला अदृष्टपूर्व (नव दर्शन) ही है ॥५५॥

अरी सखी! श्रीप्रियाजूका जल-बिहार कैसा सुन्दर था कि जिसको स्मरण करनेपर मुझे कभी अपने शरीरका भान नहीं रहता । अपने मनकी दशा क्या कहूँ? श्रीप्रियाजूके हृदयालिङ्गन वियोगके तापको आधाक्षण भी सहन करना मुझे अभीष्ट नहीं है ॥५६॥

हा ! विधाताने मुझे कज्जल नहीं बनाया, जो श्रीप्रियाजू सुखपूर्वक मुझे अपने नेत्रोंमें लगातीं, न वे मुझे कानका भूषण ही बनाये जो श्रीप्रियाजूके कपोलोंका स्पर्श-सुख, सदैव प्राप्त रहता ॥५७॥ अहो श्रीप्रियाजूके अधरोच्छिष्टके मुझ लोभीको विधाताने नासामणि नामका आभूषण भी नहीं बनाया । हा, श्रीप्रियाजूके कण्ठमें सदा लगे रहनेके मुझ अभिलाषीको विधाताने कण्ठका भूषण भी नहीं बनाया ॥५८॥

श्रीप्रियाजूके हृदयस्थल पर निवास करनेकी मेरी सदाही इच्छा बनी रहती है पर क्या करूँ ? उस ब्रह्माने मुझे रत्नोंका हार नहीं बनाया और न उन्होंने मुझे अङ्गराग ही बनाया, जिसके द्वारा हमें श्रीप्रियाजूके अङ्ग-सङ्गका अद्भुत सुख-प्राप्त रहता ॥५९॥

हा सखी ! प्राणोंसे भी परम प्यारी, योगिचक्रवर्ती श्रीविदेह महाराजकी हृदयानन्दिनीजूके हृदयका सदा सम्यक् प्रकारसे आलिङ्गन करनेके लिये चञ्चल चित्त रहने वाला मैं (राम) उनकी (अँगिया) भी न हुआ ॥६०॥

न वालपाश्या न तथा ललाटिका न तालपत्रं तरलो ललन्तिका ।
प्रालम्बिका नाङ्गदमङ्गुलीयकं प्राणप्रियार्थं विधिना कृतोऽस्म्यहम् ॥६१॥

न मेखलां नूपुरमग्रजन्मा न चोपधानं न तथोत्तरीयम् ।
न प्रावृतं नालि ! तथा हि मञ्चं प्राणाधिकार्थं वत मां चकार ॥६२॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं तथेस्टं लपतोऽङ्गकम्पात् प्राणप्रिया प्राणधनेति चोक्त्वा ।
ईषज्जगाराथ शशाङ्कवक्त्राऽऽलिलिङ्ग रामो विरहातुरस्ताम् ॥६३॥

आलिङ्ग्य तामात्मरतैकगम्यः स्वात्मस्वरूपामनुरागमुग्धः ।
भृशं मुमोदाशु यथा दरिद्रो महाधनं प्राप्य विना श्रमेण ॥६४॥

हा विधाताने श्रीप्राणप्रियाजूके लिये मुझे न बालपाश्या (चोटीमे गूथनेकी सोनेकी पट्टी) न ललाटिका (माथेका टीका) न तालपत्र (एरन) न तरल (हारका सुमेरु) न ललन्तिका (गलेसे थोड़ा नीचे लटकने वाला भूषण) न प्रालम्बिका (स्वर्ण हार) बाजूबन्द न अङ्गूठी आदि ही बनाया ॥६१॥ हा विधाताने श्रीप्रियाजूके लिये मुझे न करधनी बनाया, जो मुझको वे अपनी कमरमें धारण करतीं। न नूपुर ही मुझे बनाया जो श्रीप्रियाजूके श्रीचरणकमलोंका मुझे स्पर्श सुख अनायास प्राप्त रहता। उसी प्रकार ब्रह्माजीने मुझे उत्तरी(दुपट्टा)भी नहीं बनाया जो श्रीप्रियाजू अपने ओढ़नेकी ही सेवामें स्वीकार करतीं। अरी सखी ! उन ब्रह्माजीने मुझे चादर भी न बनाया, जो मुझे श्रीप्रियाजूकी कुछ सेवा तो प्राप्त होती। हा विधाताने मुझे पलङ्ग भी नहीं बनाया, जो शयन करनेके समय श्रीप्रियाजू मुझे अपनी सेवामें स्वीकार करतीं ॥६२॥

भगवान्शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार अपनी इच्छानुसार कहते हुये आनन्दातिरेकके कारण श्रीरामभद्रजूके अङ्गमें कम्प हो जानेसे चन्द्रमाके समान प्रकाशमान आह्लादकारी मुख-कमल वाली, उनकी प्राणप्रिया श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजी, हे प्राणधन! इतना सम्बोधित करके थोड़ा सा जगीं, तब उन्हें विरह-व्याकुल श्रीरामभद्रजूने अपने हृदयसे लगालिया ॥६३॥

जिन्हें लौकिक शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि छओं विषयोंसे पूर्ण विरक्त केवल आत्म रत (अपने इष्ट देवके ही शब्द, स्पर्श, रूप, गन्धादि विषयोंमें आसक्त हुए) भक्त ही प्राप्त कर सकते हैं, वे योगेश्वर सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामभद्रजू अपनी आतमस्वरूपा, प्राणप्रिया, श्रीमिथिलेशराज दुलारीजीको उनके अनुरागसे मुग्ध (मोहित) हो जानेके कारण हृदयसे लगाकर इस प्रकार अकथनीय आनन्दको प्राप्त हुये, जैसे एक दरिद्र प्राणी बिना परिश्रम किये ही महती सम्पत्ति को पाकर हो जाता है ॥६४॥

सुखेन सुष्वाप सुखैकमूर्त्तिर्भर्तुः परिष्वङ्गसुलब्धकामा ।
तस्यां स्वपत्यां रघुराजसूनुः सप्रेमवाचोच इदं वचस्ताम् ॥६५॥

श्रीराम उवाच ।

इदमाकर्ण्य वचः श्रुतिप्रियं सखि ! पीयूषनिभं तवाननात् ।
न हि संतृप्यत एव मे मनः सुखदं श्रावय तत्प्रियायशः ॥६६॥
अयमेव हि मे मनोरथः सुलभः स्यात्कृपया तवाधुना ।
न विलम्बय तत्र सुन्दरि ! प्रवदानुग्रहतो दयान्विते ! ॥६७॥

श्रीशिव उवाच ।

इति शंसति साश्रुलोचने परमप्रेयसि दीनया गिरा ।
व्यथिता चकिता निरीक्ष्य सा दयितप्रेमदशां बभूव ह ॥६८॥
एतादृशं सर्वसुखस्वरूपं प्राणप्रियं प्रेमपरैकगम्यम् ।
भजेन्न रामं जनकात्मजां वा नृदेहमासाद्य स वै पशुघ्नः ॥६९॥

प्यारेके आलिङ्गनसे भली प्रकार पूर्ण मनोरथ हुई, सुखकी उपमा रहित मूर्त्ति, श्रीविदेहराज नन्दिनीजू सुखपूर्वक सो गयीं। उनके सो जाने पर रघुवंशको भूषणके समान सुशोभित करने वाले श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजू उन (स्नेहपराजी) से यह वचन प्रेम-पूर्वक बोले—॥६५॥

अरी सखी! तेरे मुखसे श्रवणोंको सुख देनेवाले, अमृतके समान बचनोंको श्रवण करके मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है, अत एव श्रीप्रियाजू का सुखद यश श्रवण कराइये ॥६६॥ इस समय मेरा यह मनोरथ तुम्हारी ही कृपासे सुलभ हो सकता है, अत एव हे दयायुक्ते! सुन्दरी! अनुग्रह (दया)करके श्रीप्रियाजूके चरितोंका वर्णन कीजिये, चरित्र वर्णनमें विलम्ब न कीजिये ॥६७॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे श्रीगिरिराज कुमारीजू ! सजल नेत्र परम प्यारेजूकी दीनता-पूर्ण वाणी द्वारा इस प्रकारकी आज्ञा पाकर, प्यारेकी उस प्रेम-दशाको देखकर श्रीस्नेहपराजी व्याकुल तथा चकित (आश्चर्य युक्त) हो गयीं ? ॥६८॥

हे पार्वती! मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर केवल अनुरागी भक्तोंके लिये सुलभ, समस्त सुखों के स्वरूप, ऐसे प्रेमाधीन, प्राणोंसे प्रिय (आत्मस्वरूप), योगियोंके क्रीडा स्थान, घट-घटमें रमण करने वाले प्यारे श्रीरामभद्रजूका तथा उन्हें (श्रीरामप्रभुको) भी अपने भाव—प्रेमसे अधीन कर लेने वाली उनकी आत्मस्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीजनकराजदुलारीजूका जो भजन नहीं करता वह निश्चय ही पशु, आत्माका हनन करने वाला पशुघ्न (कसाई) है ॥६९॥

इति सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

— ❀❀❀ —

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सखियों द्वारा सप्रमोदवन श्रीरामजीको कञ्चन वन लाना तथा स्वप्नागत ज्योतिषी के द्वारा उनका भविष्य वर्णन ।

श्रीकात्यायन्युवाच ।

कस्मात्कदा कुतः सख्या कथं श्रीमिथिलापुरीम् । आनीतः प्रीतये रामः पुत्र्याः श्रीमिथिलेशितुः ॥१॥
गुह्यं रहस्यमाख्याहि दासीं प्रति कृपाकर । एतदर्थं महाराज ! मयेयं रचिताञ्जलिः ॥२॥

श्रीसूत उवाच ।

श्रुत्वा तस्याः प्रियं वाक्यं याज्ञवल्क्यो महानृषिः । विलोक्य महतीं श्रद्धां कथनायोपचक्रमे ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

शृणु देवि ? महत्पुण्यं रहस्यमिदमद्भुतम् । मुनिना लोमशेनोक्तं पुरा शम्भुमुखाच्छ्रुतम् ॥४॥
एकदा मिथिलानाथहृदयानन्दवर्द्धिनी । सार्द्धं सखीसमूहैश्च जगाम स्वर्णकाननम् ॥५॥
दोलयित्वा लतागारे श्रीकञ्चनवनश्रियम् । वभ्राम सुमुखी द्रष्टुं सेव्यमाना सखीजनैः ॥६॥
सा ऽथ रासस्थलीं गत्वा सत्कृता विधिना तदा । लालिता वहुशः सख्या जनन्या भोजनादिभिः ॥७॥

इस रहस्यको सुनकर श्रीकात्यायिनीजी महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजीसे बोलीं:-हे महात्मन् ! श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी प्रसन्नतार्थ श्रीराम भद्रजीको कब ? किस लिये ? कहाँ से ? तथा किस प्रकार ? सखी (श्रीचन्द्रकलाजी) श्रीमिथिलापुरीमें ले गयीं ॥१॥

हे कृपाखानि ! इस गुप्त रहस्यको आप कृपा करके मुझ दासीके प्रति वर्णन कीजिये ! हे महाराज ! इस हेतु मैं हाथ जोड़ रही हूँ ॥२॥

इतनी कथा सुनाकर श्रीसूतजीमहाराज शौनक आदि महर्षियोंसे बोले-हे महर्षि वृन्द! महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजने श्रीकात्यायनीजी के प्रिय वचनों को श्रवण करके तथा श्रीकिशोरीजीके चरित सुननेमें उनकी महती श्रद्धा देखकर उस गुप्त चरितका कथन प्रारम्भ किया ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज तपस्विनी श्रीकात्यायनीजीसे बोले-हे देवि ! इस आश्चर्यजनक, महान् पुण्यदायक रहस्यको आप श्रवण कीजिये । भगवान् भोलेनाथके मुखसे सुने हुये इस रहस्यको महर्षि श्रीलोमशजीने हमें पूर्वमें श्रवण कराया था ॥४॥

एक समय श्रीमिथिलेशजी महाराजके हृदयका आनन्द बढ़ाने वाली श्रीसुनयनानन्दिनीजू अपने सखी समूहके साथ कञ्चन बन पधारीं ॥५॥

वहाँ लताभवनमें झूला झूलकर, श्रीकञ्चनवनकी शोभा अवलोलन करनेके लिये अपनी सखियोंसे सेवित होती हुई वे विचरने लगीं ॥६॥

तत्पश्चात् वे रासस्थली अर्थात् भगवदानन्द प्राप्ति साधनके लिये नियतकी हुई स्थली पर पधारीं, तब वहाँ पर श्रीसुनयनाअम्बाजीकी सखीने विधिपूर्वक आपका सत्कार किया पुनः भोजन आदिके द्वारा बहुत प्रकारसे श्रीललीजीका दुलार करने लगीं ॥७॥

रासशृङ्गारसम्पन्ना परमाद्भुतदर्शना । शरच्चन्द्रप्रतीकाशमुखमण्डलशोभिता ॥८॥
नीलेन्दीवरपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्द्धजा । नीलवस्त्रधरा श्यामा नीलाम्भोजकराम्बुजा ॥९॥
सर्वाभरणवस्त्राढ्या चन्द्रिकाशोभिमस्तका । तथा विभूषिताभिश्च सखीभिः परिवेष्टिता ॥१०॥
यथा तारागणे चन्द्रो राजते सत्प्रभान्वितः । तथा सखीगणे देवि ! सा च ताराधिपानना ॥११॥
यथा छबिसमूहे तु राजते वै महाछबिः । तथालिगणमध्यस्था सा श्रीजनकनन्दिनी ॥१२॥
यथा देवाङ्गनामध्ये राजते मन्मथप्रिया । तथा सखीगणे ज्ञेया पुत्रिका मिथिलापतेः ॥१३॥
यथैवाप्सरसां मध्य उर्वशी वै विराजते । तथा स्वालिसमूहे तु जनकस्य प्रियात्मजा ॥१४॥
दिव्यसिंहासनारूढा महामाधुर्यमण्डिता । सानुरागकटाक्षेण नोदयामास सा सखीः ॥१५॥
कृतयूथास्तदा सख्यश्चक्रुर्गानमनिन्दिताः । सरसं मोहनं चैव श्रोतॄणां योगिनामपि ॥१६॥
रसाप्लुताशयाः सर्वाः पुनर्नृत्यं प्रचक्रिरे । तुतोष तेन वैदेही सहजानन्दरूपिणी ॥१७॥

तदनन्तर जब उनका उस सखीने रासोचित शृङ्गार किया तब श्रीकिशोरीजीके मुख-मण्डलकी शोभा शरद्-ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान हुई तथा उनका दर्शन परम आश्चर्य-मय हो गया ॥८॥ नीले कमलदलके समान नेत्र व काले, घुंघुराले, केशोंसे युक्त, नीले वस्त्रोंको पहिने हुई, अपने करकमलमें नील-कमलको धारण किये बारह वर्षोचित अवस्था सम्पन्ना ॥९॥

सभी वस्त्र व भूषणोंसे सुसज्जित, चन्द्रिकासे सुशोभित मस्तक वाली, श्रीकिशोरीजी उसी प्रकारका शृङ्गार किये हुई अपनी सखियोंसे घिर गईं ॥१०॥

हे देवि ! उस समय जैसे तारागणोंके बीचमें प्रकाशमान चन्द्रमा सुशोभित होता है, उसी प्रकार सखी-गणोंके बीचमें चन्द्रमुखी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी सुशोभित हुई ॥११॥

जैसे छबिसमूहमें महाछबि प्रकाशमान रहती है, उसी प्रकार सखीगणोंके बीचमें उपस्थित हुई वे श्रीजनकनन्दिनीजू चमक रही थीं ॥१२॥

जैसे देवस्त्रियोंके बीचमें कामदेवकी प्राणवल्लभा(रति)सबसे अधिक उत्कर्षको प्राप्त होती है, उसी प्रकार सखी वृन्दोंके बीचमें श्रीमिथिलेशललीजी सबसे उत्कृष्टतया विराज रही थीं ॥१३॥

जैसे अप्सराओंके बीचमें उर्वशीकी सबसे विलक्षण शोभा रहती है उसी भाँति अपने सखी-समूहमें श्रीजनकजी महाराजकी प्यारी पुत्री श्रीकिशोरीजीकी शोभा सबसे विलक्षण थी ॥१४॥

पुनः दिव्य सिंहासनपर विराजमान होकर महामाधुर्य्य रससे-सुशोभित श्रीजनकराजलड़ैतीजू ने अनुरागपूर्ण कटाक्षके द्वारा सखियोंको नृत्यादिके लिये प्रेरित किया तब वे देवमुनि प्रशंसित सखियाँ यूथ बनाकर, योगी श्रोताओं को भी मुग्ध करलेने वाले सरस (भगवत्सम्बन्धी) पद गाने लगीं ॥१५॥१६॥

पुनः ब्रह्मस्वरूपा श्रीजनकललीजू में अपनी समस्तइच्छाओं को तल्लीन की हुई, सभी सखियाँ नृत्य करने लगीं, उस (नृत्य) से सहज आनन्द-स्वरूपा श्रीविदेहराजकुमारीजी प्रसन्न हो गयीं ॥१७॥

पाणौ पाणिं निधायाथ यदा सख्यः परस्परम् । रासमारम्भयामासुरसिताम्भोजलोचनाः ॥१८॥
दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्तत्सा रासानन्दविवर्द्धिनी । विद्युन्मालेव मे सख्यो नृत्यन्त्यो भान्ति शोभनाः ॥१९॥
किन्त्वासां श्याममेघेन विना वै मध्यवर्तिना । न्यूनत्वं लक्ष्यते हन्त शोभायां दुर्निवारणम् ॥२०॥
श्याममेघप्रतीकाशः कोटिकाममनोहरः । वल्लभो मम विध्वास्यो ह्यासां शोभाप्रपूरकः ॥२१॥
स इदानीमयोध्यायां वर्तते दृष्टिगोचरः । प्राकृतबालवत्प्रेष्ठः मुदा क्रीडन् रसाश्रयः ॥२२॥
विना तेन न वै चेयं रासलीला सुशोभते । असाध्यागमनं मत्वा तस्य सा विमना बभौ ॥२३॥
दृष्ट्वा चिन्ताहिनीदष्टां तामचिन्तां सुखाकृतिम् । विह्वलत्वं निवार्याथ स्वात्मनश्च कथञ्चन॥२४॥
बद्ध्वाञ्जलिपुटं चेदं प्रेमगम्भीरया गिरा । सखी चन्द्रकला प्राह विनयानतकन्धरा ॥२५॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

किं शोचसि वृथैव त्वं कथं च विमना ह्यसि । असाध्यमपि यत्कार्यं करिष्ये त्वत्प्रसादतः ॥२६॥

तत्पश्चात् नीले कमलके समान श्याम नेत्रवाली उन सखियोंने परस्पर हाथमें हाथ रखकर रसस्वरूपा श्रीकिशोरीजीकी प्रसन्नता कारक अपना नृत्य प्रारम्भ किया ॥१८॥

उस नृत्यको देखकर रसस्वरूप ब्रह्म उपासकोंकी आनन्द वृद्धि करने वाली वे श्रीजनकराज-दुलारीजू अपने मनमें विचार करने लगीं, कि मेरी ये नाचती हुई सखियाँ बिजली मालाके समान प्रतीत हो रही हैं ॥१९॥ किन्तु मध्यमें बिना श्याम-घनके बिराजे हुये इनकी शोभामें जो अभाव लक्षित हो रहा है उसका निवारण बहुत कठिन है ॥२०॥

जैसे बीचमें काले बादलोंके होनेसे ही आकाश वाली बिजलीकी शोभा होती है, उसी प्रकार बिजलीके समान कान्ति वाली नाचती हुई सखियों की इस अपूर्ण शोभाको पूर्ण करने वाले, करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर, श्याममेघके सदृश श्रीअङ्ग तथा चन्द्रमा के समान आह्लादकारी मुखारविन्द वाले हमारे श्रीप्यारेजूही हैं ॥२१॥

वे सभी रसोंके कारण स्वरूप (श्रीप्यारेजू) इस समय श्रीअयोध्याजीमें प्राकृत बालकोंके समान प्रत्यक्ष क्रीड़ा कर रहे हैं ॥२२॥ बिना उनके प्रत्यक्ष हुये आनन्दमय ब्रह्मके उपासकोंकी यह नृत्यादि लीला, भली प्रकारसे शोभित नहीं हो सकती । श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः-हे प्रिये ! सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी इतना विचार करके तथा तत्क्षण प्यारेका श्रीअयोध्याजीसे आना असाध्य मानकर कुछ उदास हो गयीं ॥२३॥

समस्त चिन्ताओंसे रहित, सुख विग्रहा उन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूको चिन्ता रूपी सर्पिणीसे डसी हुई देखकर, अपने हृदयकी विह्वलताको किसी प्रकारसे हटाकर श्रीचन्द्रकलाजी अपने दोनों हाथोंको जोड़कर, कन्धे झुकाये हुई गम्भीर वाणीमें प्रेमपूर्वक श्रीकिशोरीजीसे बोलीं ॥२४॥२५॥

हे श्रीललीजू! आप क्या सोच रही हैं? और किस लिये उदास हैं? आपकी चिन्ता-निवारणके लिये जो कार्यसाधनसे परे भी होगा, उसे भी आपकी कृपासे करूँगी ॥२६॥

ब्रूहि मे कृपया शीघ्रमौद्वासीन्यप्रयोजनम् । शापिताऽसि मम प्राणैर्ह्लादिनि ! प्रेमवारिधे ॥२७॥
त्वयि प्रेयसि खिन्नायां खिन्नः सर्वसखीजनः । यतस्त्वमेव सर्वासां प्राणभूताऽसि शोभने ! ॥२८॥
ब्रह्मादयो न जानन्ति प्रभावं ते कुतोऽपरः । बाललीलां करोषि त्वं सर्वशक्तिमहेश्वरी ॥२९॥
तथापि खेदकालोऽयं नात्र रासमहोत्सवे । दूरतोऽपास्य तं ब्रूहि कारणं प्राणवल्लभे ! ॥३०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्ता सा विशालाक्षी कारणं तामभाषत । तच्छ्रुत्वा सहसा साऽऽह गृहीत्वा पादपङ्कजे ॥३१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

इदानीमेव तं युक्त्या ह्यानयिष्ये तवान्तिकम् । पादसेवाप्रभावेण तव नास्त्यत्र संशयः ॥३२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

लब्धवत्या यतेत्याज्ञां शक्तयः प्रकटीकृताः । तयाऽऽदिष्टा यथा प्रेष्ठ तास्तु मत्तस्तथा शृणु ॥३३॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

इतो गच्छत वै सर्वा अयोध्यां लोकविश्रुताम् । गुप्तरूपेण चादाय राममायात सत्वरम् ॥३४॥

अत एव आप मुझे अपनी उदासीनता का कारण कृपया शीघ्र बतलाइये, हे समुद्रके समान अथाह प्रेमवाली श्रीआह्लादिनीजू! आपको मेरे प्राणोंकी शपथ है ॥२७॥

हे श्रीप्यारीजू! आपके खिन्न होनेसे सभी सखीजन खिन्न हुई जारही हैं, क्योंकि हे शोभने! सभीकी प्राणस्वरूपा आप ही हैं ॥२८॥

हे श्रीललीजी ! आपके प्रभावको ब्रह्मादिक देब श्रेष्ठ भी नहीं जानते हैं, फिर और कौन जान सकता है ? आप समस्त शक्तियोंकी परमनियामिका हैं, यह तो आप केवल बाललीला कर रही हैं फिरभी सर्वोपास्य सगुण ब्रह्मानुरागी, भक्तोंके इस तत्सुखप्रधान महोत्सवमें आपके लिये यह खेदका समय नहीं है । हे श्रीप्राणवल्लभेजू ! अत एव उसे आप दूर फेंककर अपनी चिन्ताका कारण बतलाइये ॥२९॥३०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीविदेहराजकुमारीजीने, अपनी चिन्ताका कारण कह सुनाया, उसे सुनकर तुरन्त श्रीचन्द्रकलाजी चरणकमलोंको पकड़कर बोलीं ॥३१॥

हे श्रीप्रियाजू! आपके श्रीचरणकमलोंकी सेवाके प्रभावसे मैं अभी युक्ति-पूर्वक श्रीप्राणप्यारे जीको, तुरन्त आपके पास ले आऊँगी, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥३२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! श्रीचन्द्रकलाजीके इस प्रकार प्रार्थना करने पर, श्रीकिशोरीजीने आज्ञादी-अरी सखी! यदि तुम प्यारेको इस समय ला सकती हो, तो लानेका यतन करो। इस आज्ञाको पाकर उन श्रीचन्द्रकलाजीने अपने अंशसे शक्तियोंको प्रकट किया पुनः उन्हें जिस प्रकारसे आज्ञादी उसका मैं वर्णन करती हूँ, आप श्रवण कीजिये ॥३३॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:—हे शक्तियो ! आप लोग यहाँसे शीघ्र लोक-प्रसिद्ध श्रीअयोध्याजी पधारें और गुप्त रूपसे श्रीरामभद्रजीको लेकर तुरन्त आजावें ॥३४॥

यत्र कुत्र स्थितं रामं काममोहनविग्रहम् । शयानं क्रीड़मानं वाऽऽनयध्वमविलम्बतः ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेत्युक्त्वा तु ता गत्वा मार्गमाणा महापुरीम् । श्रीप्रमोदवने रामं ददृशुस्तं मनोहरम् ॥३६॥
मोहितास्तस्य रूपेण कथञ्चित्स्वस्थतां ययुः । महाचिन्तां समापन्ना इतो नेयः कथन्त्विति ॥३७॥
वनशोभां प्रपश्यन्तं महामत्तेभगामिनम् । लोकाभिरामं श्रीरामं राजराजेन्द्रनन्दनम् ॥३८॥
विनोत्पाटच वनं चैतत्साचलं नैव शक्नुमः । छद्मनाऽपि वयं नेतुं राममित्येत्यनिश्चयम् ॥३९॥
ता ध्यात्वा हृदि कल्याणीं परितश्च वनोत्तमम् । सेलमुत्पाटयामासुः सदृग्जातीरवालुकम् ॥४०॥
न कम्पोऽभूत्तु वृक्षाणां दलानामपि वै दरम् । युक्त्येदृश्या तु वै ताभिर्वनस्योत्पाटनं कृतम् ॥४१॥
सावधानतया क्षिप्रं पुनस्ता मिथिलापुरीम् । आनीय रोपणं चक्रुर्वने कञ्चनसञ्ज्ञके ॥४२॥
न तावदपि वै चैतद्रहस्यं नृपतेः सुतः । ज्ञातवान् वनराजस्य शोभासक्तमृगेक्षणः ॥४३॥
स्वप्नस्मृतिस्ततो जज्ञे हृदि तस्य यदृच्छया । स तयोदासचित्तोऽभून्निषसाद शिलोपरि ॥४४॥

जहाँ कहीं भी हों, चाहे सो रहे हों अथवा खेल ही क्यों न रहे हों पर आप लोग, अपनी छबिसे कामदेवको भी मुग्ध कर लेने वाले, प्यारे श्रीरामलालजीको तुरन्त ही ले आओ ॥३५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये! श्रीचन्द्रकलाजीकी इस आज्ञाको श्रवण करके उन शक्तियोंने, ऐसा ही करेंगी कहकर, ब्रह्मकी पुरी श्रीअयोध्याजी में जाकर, वहाँ खोजती हुई श्रीप्रमोदवनमें उन्होंने मनहरण प्यारे श्रीरामजूका दर्शन प्राप्त किया ॥३६॥

उनके रूपसे मुग्ध हो जाने पर वे किसी प्रकार सावधान हो इस महती चिन्ता में पड़ गयीं, कि इन्हें अपनी श्रीमिथिलाजीमें कैसे ले चलें ? ॥३७॥ क्योंकि ये तो महान् मस्तहाथीके समान चलने वाले, समस्त लोकोंकी सुन्दरताके राशिस्वरूप, श्रीचक्रवर्तीजीको आनन्द-प्रदान करनेवाले श्रीरामभद्रजू इस समय श्रीप्रमोदवनकी शोभा देख रहे हैं ॥३८॥

अत एव पृथिवीके सहित श्रीप्रमोदवनको बिना उखाड़े हुये छलसेभी, इन श्रीरघुवंशी श्रीराम भद्र सरकारको हम लोग श्रीमिथिलापुरीले जानेको समर्थ नहीं है, ऐसा निश्चय करके ॥३९॥

उन सखियोंने कल्याणस्वरूपा श्रीचन्द्रकलाजीका हृदयमें ध्यान करके, श्रीसरयूजीके किनारे की बालुकासे युक्त, पृथिवी सहित, श्रीप्रमोदवनको चारो ओरसे उखाड़ लिया ॥४०॥

और उन्होंने ऐसी युक्तिसे उस (वन) को उखाड़ा, कि वहाँके वृक्षोंके पत्तेभी किञ्चित् न हिल सके ॥४१॥ पुनः उन्होंने बड़ी सावधानी पूर्वक उसे श्रीमिथिलाजीमें लाकर कञ्चन वनमें रख दिया ॥४२॥

श्रीप्रमोदवनकी शोभामें आसक्त, हरिणके समान विशाल नेत्र, वे श्रीचक्रवर्ती कुमार प्यारे श्रीरामभद्रजू, तबतक इस रहस्य को न समझ सके ॥४३॥

तदनन्तर अकस्मात् उनके हृदयमें स्वप्नका स्मरण हो आया, अत एव वे चिन्तासे उदास-चित्त हो एक शिला पर जा विराजे ॥४४॥

श्रीसूत उवाच ।

इति गूढं वचः श्रुत्वा महर्षेर्विदितात्मनः । आत्मशङ्कानिवृत्यर्थं तमुवाच तपस्विनी ॥४५॥

श्रीकात्यायन्युवाच ।

स्वप्नस्तु कीदृशो दृष्टस्तेन राजेन्द्रसूनुना । कस्मिन् काले कदा वा ऽथ कथ्यतां कृपया प्रभो! ॥४६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

यस्मिन्दिने प्रिया पुत्री जनकस्य महीपतेः । खेलनाय वनं प्रागाच्छ्रीमत्कञ्चनकाह्वयम् ॥४७॥
तस्मात्पूर्वक्षपासुप्तः प्राप्तःकाल उपागते । शृणु स्वप्नं यथा ऽपश्यन्नचिरात्सिद्धिदायकम् ४८॥
क्रीडमानं सहात्मानं दृष्ट्वा बालैः स राघवः । ददर्श द्विजमायान्तं शुक्लगन्धानुलेपिनम् ॥४६॥
गृहीतपुस्तिकाहस्तं शुक्लवस्त्रसमावृतम् । वत्स पाणिं तवेक्षेऽहं गणकोऽस्मीति वादिनम् ॥५०॥
स स्मितास्योऽन्तिकं गत्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः । आशीर्भिरभिनन्द्याथ लालयामास तं द्विजः॥५१।
दृष्ट्वाऽप्राकृतलावण्यं प्रत्यङ्गेषु पुनः पुनः । हस्तरेखाः समालोक्य विस्मयं परमं ययौ ॥५२॥
यानि चिह्नानि देवेशे विश्रुतानि रमापतौ । तानि सर्वाणि दृश्यन्ते ह्यस्मिन्नेव नृपार्भके ॥५३॥

श्रीसूतजी बोले:–हे महर्षियो ! आत्मज्ञान–प्राप्त महर्षि श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजके इस प्रकारके गूढ़ वचनोंको सुनकर, अपनी शङ्का-समाधानके लिये तपस्विनी श्रीकात्यायनीजी श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजसे बोलीं ॥४५॥

हे प्रभो ! चक्रवर्तीकुमार श्रीरामजी सरकारने कब ? किस प्रकारका स्वप्न देखा था ? कृपा करके उसे आप कथन कीजिये ॥४६॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे प्रिये ! जिस दिन श्रीजनकजी महाराजकी प्यारी श्रीललीजी खेलनेके लिये कञ्चन वन पधारी थीं ॥४७॥

उस दिनके पूर्वकी रातमें सोये हुये श्रीरामभद्रजूने प्रातः कालकी उपस्थितिमें शीघ्र सिद्धि-प्रदान करने वाला स्वप्न जैसे देखा था, आप श्रवण कीजिये ॥४८॥

रघुवंशियोंमें प्रधान उन श्रीरामभद्रजूने, अपने आपको बालकोंके साथ खेलते हुये देखकर श्वेतचन्दन लगाये एक ब्राह्मणको आते देखा ॥४६॥

वह ब्राह्मण हाथमें पोथीको लिये है और श्वेत वस्त्रोंको धारण कर रखा है तथा हे वत्स! मैं ज्योतिषी हूँ । आओ तुम्हारा हाथ देखूँ, यह कह रहा है ॥५०॥

विप्रदेवकी आज्ञा मानकर मन्द मुस्कान युक्त मुखारविन्द वाले श्रीरामभद्रजूने समीपमें जाकर, हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया । ब्राह्मण देव अनेक आशीर्वादके द्वारा प्रसन्न करके, उनका दुलार करने लगे ॥५१॥ पुनः वे श्रीरामभद्रजूके प्रत्येक अङ्गोंमें दिव्य सौन्दर्यका बारंबार दर्शन करके हस्तकी रेखाओंको भली प्रकार देखकर, परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥

देवताओंके स्वामी, लक्ष्मीपति, श्रीविष्णु भगवान्में जो–जो चिह्न प्रसिद्ध हैं, वे सभी इन श्रीराजपुत्रमें दिखाई दे रहे हैं ॥५३॥

अतोऽयं भगवान् साक्षादिति निश्चित्य हर्षितः । उवाच तद्भविष्यं स निजं भाग्यं प्रशस्य च ॥५४॥

श्रीद्विज उवाच ।

रामभद्रारविन्दाक्ष ! कौशल्यानन्दवर्द्धन ! । आत्मनो यतचित्तेन भविष्यं श्रूयतां त्वया ॥५५॥
विज्वरो निर्जयो जेता सर्वविद्याविशारदः । सर्वज्ञः कुशलो दान्तो गुणज्ञो धर्मवित्तमः ॥५६॥
भावज्ञः सर्वभूतानां सर्वभावप्रपूरकः । शरण्यश्च वरेण्यश्च मितभाषी प्रियंवदः ॥५७॥
अर्चकः साधुविप्राणां सर्वेषां च हिते रतः । सर्वभूतान्तरस्थश्च सर्वगो निरहङ्कृतिः ॥५८॥
रक्षिता सर्वलोकस्य स्वधर्मस्य च रक्षिता । साधुगोद्विजदेवानां विशेषेण च रक्षिता ॥५९॥
ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणयी प्रणयप्रियः । मृदुः सुशीलः कारुण्यवात्सल्यादिगुणाकरः ॥६०॥
क्षमया पृथिवीतुल्यो गाम्भीर्य्ये सागरो यथा । वीर्य्ये चैवाप्रतिद्वन्द्वे यथा नारायणो हरिः ॥६१॥
दयालुर्दयया स्तुत्यो निश्चलो हिमवानिव । महेन्द्र इव भोगेषु योगे च कपिलो यथा ॥६२॥

अत एव ये श्रीरामलालजी, षडैश्वर्य सम्पन्न साक्षात् भगवान् हैं, ऐसा निश्चय करके वह ब्राह्मण अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करके श्रीरामभद्रजूका भविष्य कहने लगा ॥५४॥

श्रीकौशल्या अम्बाजीके आनन्द को बढ़ाने वाले कमलनयन, हे श्रीरामभद्रजू ! एकाग्र चित्तहो आप अपना भविष्य श्रवण कीजिये ॥५५॥

सब प्रकारके ज्वरोंसे रहित, जीतनेमें अशक्य, सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले, समस्त विद्याओंके पूर्ण विद्वान, भूत, भविष्य, वर्तमान तथा सभी की भीतरी बाहरी सभी स्थितियों का पूर्ण ज्ञान रखने वाले, भक्तोंके रक्षण कार्यमें परम चतुर, जितेन्द्रिय, सभीके गुणों को समझने वाले, धर्मका रहस्य जानने वालोंमें परम श्रेष्ठ ॥५६॥

सभी प्राणियोंके भावोंको जानकारी रखने वाले, सभी भक्तोंके भावकी पूर्त्ति करने वाले, सभी चर-अचर प्राणियोंकी रक्षा करनेको पूर्ण समर्थ, सबसे श्रेष्ठ, थोड़ा व प्रिय बोलने वाले ॥५७॥

सन्त व ब्राह्मणके पुजारी, सभी प्राणियोंके हितमें तत्पर, अन्तर्यामी रूपसे सभी जीवोंके अन्तस्करणमें विराजमान रहने वाले, सर्व व्यापक (सभीमें ओत-प्रोत), अभिमानसे रहित॥५८॥

सभी लोकोंकी तथा अपने भागवत–धर्मकी रक्षा करनेवाले और विशेष करके साधु, गौ, ब्राह्मण, देवताओंकी रक्षा करने वाले ॥५९॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके नियामक, भक्तोंसे परम प्रेम करने वाले तथा प्रेमसे ही प्रसन्न होनेवाले, शरीर व स्वभावसे परम-कोमल, सौशील्यगुणयुक्त, समुद्रवत् अथाह करुणा व वात्सल्य आदि गुणोंसे विभूषित ॥६०॥

क्षमामें पृथिवीके समान, गम्भीरतामें समुद्रके सदृश अथाह, अनुपम (बेजोड़) पराक्रममें भक्त दुःखहारी श्रीनारायण भगवान् जैसे ॥६१॥ दया द्वारा प्रशंसनीय दयावान्, हिमालय पर्वतके समान अचल, भोगमें देवराज इन्द्रके सदृश और योगमें भगवान श्रीकपिलजी जैसे ॥६२॥

स्रष्टा च ब्रह्मणा तुल्यः संहारे त्र्यम्बकोपमः । द्रविणे च कुबेरेण शासने यमसन्निभः ॥६३॥
आत्मवत्सर्वभूतानां वल्लभैको भविष्यसि । कतिचिद्दिनानि वासः सर्षिणा त्वद्विलोक्यते ॥६४॥
पुनस्ते मिथिलायात्रा भवित्री सह तेन वै । पथि काचिन्मुनेर्भार्य्या त्वया शापात्तरिष्यति ॥६५॥
मिथिलादर्शनं कृत्वा महानन्दं प्रयास्यसि । तत्र श्रीमिथिलेशेन सङ्गमस्त्वद्भविष्यति ॥६६॥
दर्शनार्थं पुरीं तस्य सानुजस्त्वं प्रयास्यसि । तत्रत्यवासिनां वत्स ! प्रेमपात्रं भविष्यसि ॥६७॥
पुत्रीं जनकराजस्य समुद्रतनयामिव । दृष्ट्वा त्वं वाटिका मध्ये ऽयिष्यसे कृतकृत्यताम् ॥६८॥
उद्वाहोऽपि तया सार्द्धं धनुर्भङ्गे भविष्यति । दर्शनं जामदग्न्यस्य सरोषस्य करिष्यसि ॥६९॥
पुनस्त्वं भ्रातृभिः पित्रा ससैन्यः पुरमेष्यसि । मैथिलीदर्शनं ते ऽद्य लिखितं पद्मयोनिना ॥७०॥
सप्रमोदवनस्यापि मिथिलागमनं ध्रुवम् । दृश्यते भवितव्यं च तवाद्य नृपनन्दन ! ॥७१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं समाभाष्य नरेन्द्रसूनुं ज्योतिर्विदां मान्यतमो द्विजेन्द्रः ।
गाढं तमाश्लिष्य हृदा मनोज्ञं यथेप्सितं मार्गमथार्चितोऽगात् ॥७२॥

सृष्टि करनेमें ब्रह्माजीके समान, संहार करनेमें भगवान रुद्रके सदृश, धनमें कुबेर और शासनमें धर्मराजके समान ॥६३॥ सभी प्राणियोंको आप आत्माके समान सबसे अधिक प्यारे होंगे, आपका कुछ दिनोंका वास एक ऋषिके साथ दिखाई देता है ॥६४॥

पुनः उनके सहित आपकी श्रीमिथिला-यात्रा होगी, उस समय मार्गमें आपके द्वारा एक मुनि-पत्नी का शापसे उद्धार होगा ॥६५॥ श्रीमिथिलाजीका दर्शन करके, आपको महान् आनन्द प्राप्त होगा, वहाँ श्रीमिथिलेशजीमहाराजसे आपका मिलन होगा ॥६६॥

हे वत्स! पुनः अपने छोटे भैयाके सहित आप उनकी पुरीका दर्शन करने पधारेंगे, जिससे उस पुरीनिवासियोंके आप प्रेमपात्र बन जावेंगे ॥६७॥

फुलवारीमें श्रीलक्ष्मीजीके समान सर्वलक्षण-सम्पन्ना श्रीजनकराजकिशोरीजीका दर्शन करके आप कृतकृत्य हो जावेंगे ॥६८॥ धनुष टूट जाने पर उन्हीं श्रीजनकलड़ैतीजूके साथ आपका विवाह भी होगा पुनः क्रुद्ध हुये श्रीपरशुरामजीका आप दर्शन करेंगे ॥६९॥

तत्पश्चात् अपने भाइयोंके सहित, पिताजीके साथ, सेना समेत आप श्रीअवधमें पधारेंगे, विधाताने आपके लिये श्रीमिथिलेशललीजूका दर्शन आज ही लिखा है ॥७०॥

हे श्रीदशरथजी महाराजको आनन्द प्रदान करने वाले श्रीरामभद्रजू ? आज आपके सहित श्रीप्रमोदवनका मिथिलागमन होना भी अवश्य दिखाई, पड़ रहा है ॥७१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार ज्योतिः शास्त्र जानने वालोंमें सम्माननीय उस ब्राह्मण श्रेष्ठने श्रीचक्रवर्तीकुमारजीसे सब भविष्य कहकर तथा उन मनहरण सरकार को भर इच्छा अपने हृदयसे लगाकर, उनसे पूजित हो, इच्छित मार्ग लिया ॥७२॥

इत्यष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---❀❀❀---

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

भावानुसारी भगवान श्रीरामजीकी विरह व्यथा दूर करने हेतु आकाशवाणी द्वारा भविष्योक्ति का त्रिसत्यकथन ।

श्रीरामभद्र उवाच ।

उत्क्षिप्तं कन्दुकं स्निग्धाः! पाणौ रोधयताञ्जसा । इति शंसति वै तस्मिन् कौशल्या तमबोधयत् ।१।

श्रीकौशल्योवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मे वत्स ! प्रातः सन्ध्या प्रवर्तते । कृतकृत्य इहैह्याशु भ्रातृभिर्भोजनं कुरु ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

स विबुध्य महाबाहुर्नीलाम्भोजदलच्छविः । वन्दित्वा चरणौ मातुर्नित्यकृत्ये मनोऽदधत् ॥३॥
सायं सन्ध्योपकालेऽथ सस्मार द्विजभाषितम् । श्रीप्रमोदवनस्यासौ गमनं मिथिलां प्रति ॥४॥
तस्मात्स प्रययौ शीघ्रं वनराजदिदृक्षया । गतं वा नेति निश्चेतुं विस्मयाकृष्टमानसः ॥५॥
विपिनं सुस्थितं दृष्ट्वा प्रजहर्ष रघूद्वहः । असत्यं स्वप्नमाज्ञाय विचचार यथा सुखम् ॥६॥

श्रीरामभद्रजी स्वप्नमें बोलेः—हे सखाओ ! मेरे उछाले गेंदको हाथमें रोको, श्रीरामभद्रजूके ऐसा कहते ही, बहिरङ्गमें उन्हें श्रीकौशलया अम्बाजी जगाने लगीं ॥१॥

श्रीकौशल्या अम्बाजी बोलीं:—हे वत्स ! अब उठो, उठो, प्रातः कालकी सन्ध्या वर्त रही है अतः प्रातः कृत्योंको पूरा करके, शीघ्र भवनमें आकर अपने भाइयोंके साथ भोजन कीजिये ॥२॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीअम्बाजीके जगाने पर नीलकमल-दलके समान श्याम छविसे युक्त, श्रीरामभद्रजू जागकर श्रीअम्बाजीके चरणकमलोंको प्रणाम करके अपने मनको नित्य कृत्यमें लगा दिये ॥३॥

जब सायंकालकी सन्ध्याका समय निकट आया तब, स्वप्नमें "आपके सहित आज प्रमोदवन को श्रीमिथिलाजी जाना होगा" ब्राह्मणके कहे हुये इस वचनको वे स्मरण करने लगे ॥४॥

उनके चित्तको आश्चर्यने खींच लिया, कि आज किस प्रकार प्रमोदवन श्रीमिथिलाजी जायेगा? क्योंकि, इसकी गणना तो स्थावरोंमें है वह चेतनका व्यवहार कैसे करेगा ? अत एव स्वप्नमें जो ब्राह्मणने इस विषयमें कहा था वह झूठही है, क्योंकि उसने मेरे सहित प्रमोदवन को श्रीमिथिलाजी जानेका भविष्य बताया था, सो मैं अपने राजमहलमें ही हूँ परन्तु, कहीं मेरा प्रमोदवन अकेले ही न चला गया हो । ऐसा भाव आने पर श्रीप्रमोदवन श्रीमिथिलाजी गया या नहीं ? निश्चय करनेके लिये श्रीरामभद्रजू प्रमोदवन देखनेकी इच्छासे तुरन्त राज-भवनसे चल दिये ॥५॥

जब वे वहाँ पहुँचे, तो प्रमोदवनको ज्योंका-त्यों भली प्रकारसे स्थित देखकर श्रीरघुनन्दन प्यारेजीको बड़ा हर्ष हुआ और वे स्वप्नको असत्य (मिथ्या) समझकर, सुखपूर्वक टहलने लगे ॥६॥

तस्मिन्नेव क्षणे प्राप्ताः शक्तयस्तन्निनीषया । दृष्ट्वा तं सवनं निन्युः स्वामिन्याः प्रीतिकाम्यया ॥७॥
मिथिलाभूमिसम्पर्काद्वल्लभाया अनुस्मृतिः । तारुण्यं सम्यगासाद्य हृदयं तत्तुतोद ह ॥८॥
तस्माच्चिन्तासमापन्नः स्थित्वा स च शिलोपरि । ध्यायमानः प्रियां चित्ते जगादात्मानमात्मना॥९॥

श्रीराम उवाच ।

चिरकालेन मे तस्या दर्शनं नैव लभ्यते । मिथिलाभूमिजाया हि वल्लभाया महाद्युतेः ॥१०॥
हा विधातर्न वै कश्चिद् दृश्यते यन्त्रतन्त्रकृत् । प्रापयेत्प्रियया यो मां तृषार्त्तमिव वारिणा ११॥
तामदृष्ट्वा मनो मेऽद्य प्रवृत्तिं नाधिगच्छति । कस्मिंश्चिदपि कर्त्तव्ये मुह्यमानं शनैः शनैः ॥१२॥
विलम्बो मे भवत्यत्र न गन्तुं शक्तिरालयम् । शङ्कया प्रेषिता मात्राऽऽश्वागमिष्यन्ति मेऽनुजाः॥१३॥
ईदृशीं च दशां प्राप्तस्तेभ्यः किन्नु वदाम्यहम् । अहो कृच्छ्राम्बुधौ मग्नं समर्थः कोऽपि चोद्धरेत् ॥१४॥
तस्याः समागमः स्यात्ते ह्यद्येति द्विजभाषितम् । असत्यमेव पश्यामि न पश्यामि शुभाननाम्॥१५॥

उसी क्षण श्रीचन्द्रकलाजीकी भेजी हुई शक्तियाँ, श्रीरामभद्रजूको श्रीमिथिलाजी ले जानेकी इच्छासे वहाँ पहुँच गयीं और वहीं टहलते हुये देखकर, श्रीचन्द्रकलाजीकी प्रसन्नताके लिये, श्रीरामलालजीको प्रमोदबन सहित, लेकर चल पड़ीं ॥७॥

श्रीप्रमोदवनकी-भूमिका श्रीमिथिलाजीकी भूमिसे सम्पर्क (मिलन) होते ही श्रीरामभद्रजूको श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूका स्मरण बारम्बार, नवीनताको प्राप्तहो उनके हृदयको व्यथित करने लगा ॥८॥ इस लिये चिन्तित, हो शिला पर विराजमान हो श्रीरामभद्रजू चित्तमें अपनी श्रीप्रियाजूका ध्यान करते हुये अपने आपसे बोले ॥९॥

श्रीमिथिलाजीमें अवतीर्ण हुई ब्रह्ममय कान्तिवाली श्रीप्रियाजूका मुझे बहुत समयसे दर्शन नहीं मिल रहा है ॥१०॥ हे विधाता ! यन्त्र-तन्त्र करने वाला भी मुझे कोई ऐसा नहीं दिखाई देता, जो प्यासेको जलके समान मुझे श्रीप्रियाजूसे मिला दे ॥११॥

आज श्रीप्रियाजूका बिना प्रत्यक्ष दर्शन किये मेरा मन धीरे-धीरे मूर्च्छाको प्राप्त होता हुआ सा किसीभी कार्यमें प्रवृत्त नहीं हो रहा है ॥१२॥

यहाँ-आये मुझे विलम्ब भी होता जारहा है, पर क्या करूँ? भवन जानेकी शक्ति भी तो नहीं है । विलम्ब के कारण शङ्का युक्त हुई श्रीअम्बाजीके भेजे हुये मेरे भैया भी शीघ्र आजावेंगे ॥१३॥ ऐसी व्याकुलताकी अवस्थामें प्राप्त हुआ मैं उनके पूछने पर इसका कारण क्या कहूँगा? अहो महान् कष्ट समुद्रमें मुझ डूबे हुयेको कोई भी सामर्थ्यवान् ऊपर निकाल ले ॥१४॥

स्वप्नमें ब्राह्मणने मुझसे कहा था, कि आजही आपका श्रीमिथिलेशदुलारीजूसे मिलन होगा, परन्तु जब मैं उन मङ्गल मुखी श्रीकिशोरीजूका दर्शन नहीं पा रहा हूँ, तो भविष्य सूचना झूठीही देख रहा हूँ ॥१५॥

प्रतीक्षमाणस्य प्रियासमागमं प्रतिक्षणं मेऽद्य गतश्च वासरः ।
न सा मृगीशावकसाञ्जनेक्षणा परन्तु मे दृष्टिपथं गता विधे ! ॥१६॥

तया विना पूर्णशशाङ्कमुख्या सुखाय मे नो वनराजमेतत् ।
न सार्वभौमत्वसुखं सुखाय न चाप्ययोध्या सुखदायिनी मे ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवं च संस्मृत्य मुहुर्मुहुस्तां भावानुसारी भगवान् स रामः ।
सवाष्पनेत्रो विललाप तत्र प्राणेश्वरीदर्शनकामसक्तः ॥१८॥

आकाशवाणी समभूत्तदानीं हे भानुवंशाम्बुजपद्मबन्धो ! ।
मृषा न वाक्यं द्विजभाषितं यत् सत्यं च सत्यं तदवेहि सत्यम् ॥१९॥

मनोरथस्ते सफलोऽचिरेण स्यान्मा शुचस्त्वं सजलाम्बुजाक्ष ! ।
सत्यं च सत्यं त्वमवेहि सत्यमभीष्टपूर्त्तिः समुपागतेति ॥२०॥

श्रीप्रियाजूके मिलनकी क्षण-क्षण प्रतीक्षा करते हुये आज मुझे सारा दिन व्यतीत हो गया परन्तु हा विधाता ! हरिणीके बच्चेके समान विशाल, कज्जल, अञ्जित श्याम लोचना उन श्रीप्रियाजू का मुझे दर्शन नहीं हुआ ॥१६॥

चन्द्रमाके समान प्रकाशमान, आह्लादकारी मुखवाली उन श्रीप्रियाजूके बिना, न यह वनों का राजा श्रीप्रमोदवनही मुझे सुखदाई है, न चक्रवर्ती पदका सुख ही मेरे लिये सुखकर है, न यह श्रीअयोध्याजी ही मुझे सुख दने वाली है ॥१७॥

योगियोंके अन्तस्करणमें रमण करने वाले, सम्पूर्ण-ऐश्वर्य, समग्रतेज, सकल यश, समस्त शोभा, अशेष ज्ञान व सम्पूर्ण वैराग्यके निधि वे श्रीरामभद्रजू, भावके अनुसार आचरण शील होनेके कारण श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके भावानुसार ही इस प्रकार उनका बारम्बार स्मरण करके तथा उन्हीं प्राणेश्वरी (प्राणप्रिया) जूके दर्शनोंकी इच्छामें आसक्त हो, नेत्रोंसे आँसुओंको बहाते हुये शिलापर बैठकर विलाप करने लगे ॥१८॥

उसी क्षण आकाश वाणी हुई–हे सूर्यवंश रूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले प्रभो ! श्रीरामभद्रजू ! स्वप्नमें जो कुछ ब्राह्मणने आपसे कहा है, उसे आप सत्य जानिये, सत्य जानिये, सत्य जानिये ॥१९॥ हे सजलनेत्र प्रभो! श्रीरामभद्रजू! आपका मनोरथ अतिशीघ्र ही सफल होगा अतः आप चिन्ता न कीजिये आपकी इच्छा पूर्त्ति अत्यन्त पास आ गयी है, यह आप सत्य जानिये, सत्य जानिये, सत्य जानिये ॥२०॥

अरालकेशान्वितचन्द्र वक्त्रं सवारिपङ्केरुहपत्रनेत्रम् ।
बिम्बाधरं नीलसरोजकान्ति सचिन्तमालोक्य न कस्तताप ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

पुस्फोर वामेतरकञ्जनेत्रं भुजश्च तीव्रं प्रियसूचनायै ।
धैर्यं समालभ्य ततः स किञ्चिद्धचप्राप्यमाज्ञाय हताश आस ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी ! महाराज बोलेः–हे प्रिये ! घुंघुराले केशोंसे युक्त, चन्द्रवत् आह्लादकारी मुख, कमलदलके समान विशाल आँसू भरे नेत्र, बिम्बाफलके सदृश सुन्दर लाल अधर, नीले कमलके समान श्रीअङ्गकी कान्ति वाले श्रीरामभद्रजू को चिन्तासे युक्त देखकर, भला किसे दुःख नहीं हुआ ? अर्थात् सभी व्याकुल हो गये ॥२१॥

उसी क्षण प्रियसूचना देनेके लिये उनका दाहिना नेत्र व दाहिनी भुजा वेगसे फड़कने लगी । उस शुभ शकुनसे वे कुछ धैर्यको प्राप्त होकर, श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका दर्शन प्राप्त होनेका योग न समझकर पुनः हताश हो गये अर्थात् उनका दर्शन हमें आज नहीं हो सकता, ऐसी भावना कर लिये क्योंकि वे विचारते हैं–कहाँ श्रीमिथिलाजी और कहाँ श्रीअयोध्याजी ? पहुँचनेमें जहाँ कई दिनोंकी आवश्यकता है वहाँ एक दिन का भी समय नहीं, साम होने जा रही है अत एव मैं तो किसी प्रकारसे भी आज श्रीमिथिलाजी नहीं पहुँच सकता, और श्रीप्रियाजूका यहाँ पधारना तो असम्भव है ही अतएव आशा करना व्यर्थ ही है, यह आकाश वाणी तो केवल मेरी सान्त्वनाके लिये हुई है, पर इसका कोई तथ्य नहीं है ॥२२॥

इत्येकोनषष्टितमोऽध्यायः

––❀❀❀ –

अथ षष्टितमोऽध्यायः ।

श्रीरामचभद्र–चन्द्रकला संवाद ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

शक्तयो ऽपि ततो गत्वा नत्वा चन्द्रकलां सखीम् ।
आनीतो रामभद्रो ऽ सावित्याभाष्य नताः स्थिताः ॥१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः–हे प्रिये ! उधर वे शक्तियाँ भी प्रमोदवनको श्रीकञ्चनवन के पास रखकर श्रीचन्द्रकला सखीजीके पास गयीं और प्रणाम करके तथा "श्रीरामभद्रजीको ले आई" उनसे ऐसा कहकर नम्रता पूर्वक वे खड़ी हो गयीं ॥१॥

स क्वास्ते कथमानीत इत्युक्ता जगदुश्च ताः । विचरन्वनराजे स्वे ह्यानीतः सवनः प्रभुः ॥२॥
नीलेन्दीवरभव्याङ्गो हिमांशुप्रतिमाननः । खञ्जनाक्षो वृहद्वक्षा अरुणोष्ठः स्मिताधरः ॥३॥
सालकादर्शगण्डश्रीः साक्षादिव मनोभवः । सन्निधौ श्रीवनस्यास्य सवनः स विराजते ॥४॥
इत्युक्त्वा तास्तयाऽऽज्ञप्ता अन्तर्धानमगुर्द्रुतम् । प्राप सेन्दुकला शीघ्रं श्रीप्रमोदवनं प्रति ॥५॥
तस्मिन्प्रविश्य चिन्वन्ती प्रतिकुञ्जेषु राघवम् । आससाद शिलापृष्ठे निविष्टमिव योगिनम् ॥६॥
पादन्यासध्वनिं तस्याः श्रुत्वा राघवसुन्दरः । उत्तस्थौ युगपद्धृष्टः प्रेष्ठागमनशङ्कितः ॥७॥
अनिमेषेक्षणौ तौ च क्षणं तत्र बभूवतुः । ततो धैर्यमुपालम्ब्य राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

श्रीराम उवाच ।

काऽसि त्वं श्यामकञ्जाक्षी कस्मात्कुत्रनिवासिनी । संप्राप्ता मत्सकाशं हि रहसीवाभिसारिका ॥९॥

वे प्यारे श्रीरामभद्रजू कहाँ हैं ? उन्हें किस प्रकार यहाँ लाईं ? श्रीचन्द्रकलाजीके इस प्रकार पूछने पर वे बोलीं:—श्रीप्रमोदवनमें विचरते हुये, उन सर्वसमर्थ श्रीरामभद्रजी को वन सहित हम लोग यहाँ ले आई हैं ॥२॥

वे नीले कमलके समान सुन्दर श्याम अङ्ग व चन्द्रमाके सदृश सुन्दर मुखारविन्द, खञ्जन पक्षीके समान चञ्चल नयन, चौड़े वक्षस्थल, लाल ओठ व मुस्कान युक्त अधर, अलकावलीसे युक्त, दर्पणके समान सूक्ष्म कपोलोंकी शोभासे सम्पन्न, साक्षात् कामदेवके समान वे श्रीराम भद्रजू अपने प्रमोदवनके सहित इस कञ्चनवनके समीप विराज रहे हैं ॥३॥४॥

वे शक्तियाँ ऐसा कहकर श्रीचन्द्रकलाजीकी आज्ञा ले तुरन्त अन्तर्धान हो गयीं और श्रीचन्द्र कलाजी शीघ्र श्रीप्रमोदवन पहुँचीं ॥५॥

प्रमोद वनमें प्रवेश करके, वहाँकी प्रत्येक कुञ्जोंमें खोजती हुई, उन्होंने शिलाके ऊपर योग साधन परायणके समान बैठे हुये, श्रीरामभद्रजूका दर्शन किया ॥६॥ श्रीचन्द्रकलाजीके पास पहुँचने पर, उनके चरण रखनेका शब्द सुनकर रघुवंशियोंमें सर्व-सुन्दर श्रीरामभद्रजू, श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके पधारनेकी शङ्कासे हर्षपूर्वक झटपट उठ खड़े हुये ॥७॥

वे दोनों क्षण-मात्रके लिये परस्पर एक दूसरे का एक-टक दर्शन करते रह गये । पुनः जब यह निश्चय हो गया, कि ये वे श्रीविदेहराजनन्दिनीजू नहीं हैं, यह तो कोई और ही सुन्दरी है, तब धैर्य धारण करके श्रीरामभद्रजू, श्रीचन्द्रकलाजीसे बोले:—॥८॥

अरी! सखी श्याम कमलके समान सुन्दरनेत्र वाली आप कौन हैं ? कहाँकी रहने वाली हैं ? और प्रियतम की खोजमें व्याकुल स्त्रीके समान किस कारण एकान्तमें मेरे पास आई हैं ? ॥९॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

त्वमसि कस्तनयो ननु कस्य वै वससि कुत्र कुतोऽत्र समागतः ।
प्रवरराजकुमारवदीक्षया प्रिय ! विभासि सरोजदलेक्षण ! ॥१०॥
न तु नरेन्द्रसुता हि भवादृशा अनुचरै रहिताः परराष्ट्रकम् ।
परिविशन्ति विहारवनं कुतस्तदनवाप्य निदेशमिति प्रथा ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

चकित आह स पङ्क्तिरथात्मजः कमललोचन इन्दुभाननः ।
जनकराजसुताप्रियकाङ्क्षिणीमिनकुलाब्जविभाकरसद्यशाः ॥१२॥

श्रीराम उवाच ।

सुमुखि ! मे किमिदं परिकथ्यते बत समुन्मदयेव वचस्त्वया ।
यत इयं हि पुरी मम वर्तते वनमिदं च प्रमोदसुसञ्ज्ञकम् ॥१३॥
त्वमसिका? मिथिलापुरवासिनी सखि! किमर्थमिहास्य दिदृक्षया ।
त्वमसि कः? प्रिय! पङ्क्तिरथात्मजः क्व नु? प्रमोदवने निज आस्थितः ॥१४॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–हे प्यारे! आप कौन हैं? और किसके पुत्र हैं? तथा कहाँ निवास करते हैं? यहाँ किस लिये पधारे हैं? हे कमलनयन! देखनेसे तो आप कोई बहुत बड़े राज कुमार प्रतीत हो रहे हैं ॥१०॥ परन्तु आपके सरीखे राजकुमार, विना अनुचरोंको साथ लिये और बिना आज्ञा प्राप्त किये दूसरे राजाके राज्यमें भी प्रवेश नहीं करते हैं, फिर बिना आज्ञा, उनके विहारवन में भला कैसे प्रवेश कर सकते हैं? प्रथा तो ऐसी ही है ॥११॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके इन वचनोंको सुनकर चन्द्रमाके समान हृदयाह्लादक मुख व कमलके समान सुन्दर विशालनेत्र, सूर्यवंश रूपी कमलको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य समान पवित्र यशवाले दशरथ-नन्दन श्रीरामभद्रजू श्रीजनकराजदुलारीजूका प्रिय चाहने वाली, श्रीचन्द्रकलाजीसे बोले ॥१२॥ अरी सुन्दरमुख वाली सखी ! तू पूर्ण पागल हुई सी मुझसे यह क्या कह रही है ? क्योंकि यह मेरी श्रीअयोध्यापुरी है और प्रमोद नामका यह वन भी हमारा है तब तू क्यों दूसरेके राज्यमें ही नहीं, अपितु विहार वनमें आनेका हमें मिथ्या कलङ्क लगा रही है, अत एव तू अवश्य पगली हो गयी सी प्रतीत हो रही है ॥१३॥

श्रीरामभद्रजू–अरी सखी ! दूसरे राजाके राज्य व विहार वनमें बिना उसकी आज्ञा लिए आनेका हमें मिथ्या कलङ्क लगाने वाली तू है कौन ?

श्रीचन्द्रकलाजी–मैं श्रीमिथिला निवासिनी हूँ ।

श्रीरामभद्र–यहाँ किस लिये (आई है) ?

श्रीचन्द्रकलाजी–अपने इसकञ्चनवनको देखनेके लिये ।अब बतलाइये-आप कौन हैं ?

श्रीरामभद्र–मैं श्रीदशरथजी महाराजका पुत्र राम हूँ ।

श्रीचन्द्रकलाजी–आप इस समय कहाँ विराज रहे हैं? श्रीरामभद्र-अपने श्रीप्रमोदवनमें ॥१४॥

त्वमसि कुत्र ? वने कनकाह्वये नगरमस्ति तु कस्य ? पितुर्मम ।
नगरनाम च किं मिथिलाभिधं तदहमस्मि च कुत्र ? पुरे मम ॥१५॥

श्रीराम उवाच ।

शशिमुखि ! त्वमसत्यमपीदृशं वदसि हन्त समेत्य पुरं मम ।
जगति नापरपापमिवानृतं व्रज यथेष्टमितो विपिनान्मम ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

नवललाल ! मृषा त्वमपीदृशं भणसि चौरवदेत्य वनं मम ।
तदुचितं न करोषि नृपात्मज ! प्रभुतया परिहासमुपैष्यसि ॥१७॥

श्रीरामभद्र उवाच ।

सुमुखि चौरपदेन तु मां कथं त्वमभिभूषयसे तदनर्थकृत् ।
व्रज मया न तु वै परिदण्डचसे ह्यविनयं न सहे तदतः परम् ॥१८॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

त्वमसि किं मम देशनराधिपो ह्यनुचितं कथितं प्रिय ! मन्यसे ।
यदि वनं खलु चास्ति तवैव तन्निजपुरीमनुदर्शय मे द्रुतम् ॥१९॥

श्रीरामभद्र–अच्छा सखी ! इस समय तुम कहाँ विराज रही हो ?   श्रीचन्द्रकलाजी–अपने श्रीकञ्चनवनमें ।

श्रीरामभद्र–यह नगर किसका है ?   श्रीचन्द्रकलाजी–हमारे श्रीपिताजी का ।

श्रीरामभद्र–इस नगर का नाम क्या है?   श्रीचन्द्रकलाजी–श्रीमिथिलाजी ।

श्रीरामभद्र–तो मैं कहाँ हूँ ?   श्रीचन्द्रकलाजी–मेरी श्रीमिथिलापुरी में ॥१५॥

श्रीरामभद्र–हे चन्द्रमुखी ! बहुत खेदकी बात है, जो आप मेरी श्रीअयोध्यापुरीमें आकर इस प्रकार झूठ बोल रही हैं । जगतमें झूठ बोलनेके समान और कोई भी पाप नहीं है, अत एव तू मेरे प्रमोदवनसे जहाँ चाहे चली जा ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलाजी–हे श्रीनवललालजू ! चोरके समान हमारे विहार वनमें आकर इस प्रकार झूठ बोल रहे हैं । हे श्रीराजपुत्रजू ! यह आप उचित नहीं कर रहे हैं । यदि यहाँ अपनी प्रभुता दिखायेंगे, तो उपहासको ही प्राप्त होगें ॥१७॥

श्रीरामभद्र–अरी सुमुखी तू मुझको चोरके पदसे किसप्रकार विभूषित कर रही है? यह तेरी अनर्थकारी बात है अबभी तू यहाँसे चली जा, नहीं तो दण्ड पाएगी, क्योंकि इससे अधिक ढिठाई अब मैं सहन नहीं कर सकता ॥१८॥

श्रीचन्द्रकलाजी–हे प्यारे ! क्या आप मेरे देशके राजा हैं ? जो मेरे कहेको अनुचित मान रहे हैं, यदि आपका ठीक ही यह श्रीप्रमोदवन है, तो हमें शीघ्र अपनी श्रीअयोध्याजीका दर्शन कराइये ॥१९॥

अपि तवैव पुरी प्रिय ! चेद्भवेदनुसरामि सदा तव दास्यताम् ।
मम पुरी नृपनन्दन ! चेत्तदा मम वशे भवितव्यमिह त्वया ॥२०॥

श्रीशिव उवाच।

वच इदं गिरिजे ! वनजेक्षणः श्रुतिगतं च विधाय रघूद्वहः ।
सकलवादविवादनिकृन्तनं विधुमुखीवदनोद्गलितं जगौ ॥२१॥

श्रीरामभद्र उवाच ।

चल पुरीं मम पश्य मनोहरां कथमियं तव दर्शय शोभने ! ।
यदि तवैव पुरी तव वश्यतामहमुपैमि न चेत्त्वमपीह मे ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निगद्य मिथो वनराजतो बहिरुपेयतुरात्मजिगीषया ।
रघुकुलेनमुवाच मृदुस्मिता तव पुरीयमहो प्रिय ! कथ्यताम् ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

भृशमगात्स तु विस्मयतां स्थितः समवलोक्य तदा मिथिलापुरीम् ।
नतसरोजदलायतलोचनो मम न चेयमिदं समुवाच ताम् ॥२४॥

हे प्यारे! यदि ठीक ही यह आपकी पुरी श्रीअयोध्याजी हुई, तो मैं सदा आपकी दासी होकर रहूँगी और हे श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको आनन्द-प्रदान करने वाले प्यारेजू! यदि यह पुरी कदाचित् मेरी हुई तो, आपको भी सदा मेरे अधीन होकर रहना पड़ेगा ॥२०॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे श्रीपार्वतीजी ! कमल-नयन श्रीरघुनन्दनप्यारेजू चन्द्रमाके समान प्रकाशमान मनोहर मुखवाली श्रीचन्द्रकलाजीके सारा वाद-विवाद खण्डन करनेवाले मुखारविन्द से, निकले हुये इन बचनोंको श्रवण कर बोले :—॥२१॥

अरी सुन्दरी ! चल, देख, मनको हरण करने वाली मेरी पुरी (श्रीअयोध्याजी) को, यह तुम्हारी पुरी(श्रीमिथिलाजी) कैसे है? दिखाओ । यदि कदाचित् यह तुम्हारी ही पुरी श्रीमिथिलाजी हुई, तो मैं तुम्हारे अधीन होकर रहूँगा, नहीं तो तुम्हें सदा मेरी दासी होकर रहना पड़ेगा॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार वे दोनों श्रीरामभद्रजू तथा श्रीचन्द्रकलाजी आपसमें बचन-वद्ध होकर अपनी २ पुरीका दर्शन कराके, विजय पानेकी इच्छासे श्रीप्रमोदवनसे बाहर आये, तब मन्द-मन्द मुस्कराती हुई श्रीचन्द्रकलाजी रघुकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:—हे प्यारे! कहिये-आपकी यह श्रीअयोध्या पुरी है ? ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये! श्रीप्रमोदवनसे बाहर स्थित होकर श्रीमिथिलाजी का भली भाँतिसे दर्शन करके, अपने कमलदलके समान सुन्दर विशाल नेत्रों को नीचे किये वे श्रीचन्द्रकलाजीसे बोले—अरी सखी! यह मेरी पुरी, श्रीअयोध्याजी नहीं है ॥२४॥

"हमारा यह प्रमोद वन है" इस बात का खण्डन करनेके लिये श्रीचन्द्रकलाजी प्यारे श्रीरामभद्रजीको उसकी सीमाके बाहर ले जाकर, उन्हें श्रीमिथिलाजी का दृश्य दिखाकर कह रही हैं-"क्या आपकी यह, श्रीअयोध्यापुरी है ?"

कथमिहागममित्यनुशंस मे सवन आलि ! वने तव चित्रवत् ।
त्वमसि का ननु शंस यथातथं तव चिराय वशं गतवानहम् ॥२५॥
सखि ! यथा मिथिलापुरवासिनां विदितमस्तु ममागमनं न हि ।
सकरुणा मयि बद्धकराञ्जलौ त्वमसि सत्यमुपायविदग्रणीः ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निशम्य मनोहरभाषितं स्मितमुखी तमथेन्दुकलाऽब्रवीत् ।
सकलमेव रहस्यमुदारधीर्वनमवाप्तिविधेः खलु तस्य सा ॥२७॥
पुनरुवाच शृणु प्रिय ! तत्त्वतो यदनुपृच्छसि निश्चलचेतसा ।
दुहितुरस्मि सखी मिथिलापतेरभिधया किल चन्द्रकला स्मृता ॥२८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

स निजगाद यदि त्वमसि ध्रुवं जितरते ! मिथिलेशसुतासखी ।
शरणमस्मि गतः पदपङ्कजं सपदि सुन्दरि ! दर्शय मे हि ताम् ॥२९॥
गमय माममुया सखि ! सत्वरं विरहवह्निसमाकुलचेतसम् ।
त्वरयतो मम लोचन ईक्षितुं नृपसुतामलचन्द्रनिभाननम् ॥३०॥

अरी सखी! आप यह मुझे बतलाइये—मैं चित्र(फोटू)के समान आपके श्रीकञ्चनवनमें श्रीप्रमोद-वन सहित किस प्रकार आया? और यह भी बतलाइये, आप वास्तवमें हैं कौन? (प्रतिज्ञानुसार) मैं सदाके लिये आपके अधीन हो गया ॥२५॥ अरी सखी! आप वास्तवमें सब उपायोंके जानने वालियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, इस लिये मुझ हाथ जोड़े हुये पर आप कृपायुक्त हो ऐसा उपाय करें, जिससे श्रीमिथिला-निवासियों को मेरे यहाँ आने का पता न चले ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले—हे प्रिये ! इस प्रकार मनहरण प्यारे श्रीरामभद्रजूके कहे हुये वचनोंको सुनकर, सुन्दर मुस्कान युक्त मुखवाली, उदारबुद्धि श्रीचन्द्रकलाजीने श्रीरामभद्रजू से उनके कञ्चनवन आनेका सम्पूर्ण रहस्य कह सुनाया ॥२७॥

पुनः बोलीं:—हे प्यारे! आप जो पूछ रहे हैं, उसे एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये, मैं वास्तवमें श्रीमिथिलेशदुलारीजीकी सखी नामसे चन्द्रकला प्रसिद्ध हूँ ॥२८॥

श्रीयाज्ञवल्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये! श्रीचन्द्रकलाजीके मुखसे सम्पूर्ण वृत्तान्त पूर्वक उनका परिचय सुनकर श्रीरामभद्रजू बोले:—अपनी शोभासे रतिको परास्त करनेवाली हे श्रीचन्द्रकलाजी! यदि आप वास्तवमें श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूकी सखी हैं, तो मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण हूँ, अरी सुन्दरी! मुझे उन श्रीकिशोरीजीका शीघ्र दर्शन करादें ॥२९॥ अरी सखी ! मेरे नेत्र उनके स्वच्छ चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखारविन्दके दर्शनोंके लिये बड़ी शीघ्रता कर रहे हैं, इसलिये विरह रूपी-अग्निसे मुझ व्याकुल चित्तको श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे शीघ्र मिलादें ॥३०॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

भुवनसुन्दर ! दास्यसि किं हि मे तदनुशंस हितं करवाणि ते ।
यदपि कार्यमिदं भृशदुष्करं त्वमपि वेद तदम्बुजलोचना ! ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

वच इदं श्रुतिगं स विधाय तां प्रति जगाद रघोः कुल भूषणः ।
सखि ! मनोधनमेव दिशामि ते परमगोप्यमदेयमहं निजम् ॥३२॥

कलुषरूपमपीह तवाश्रितं न हि हिनोमि नयामि निजं पदम् ।
तव कृपाबलहीननरः क्वचित्कथमपीह न चैष्यति यन्मम ॥३३॥

यमनुपश्यसि सार्द्रदृशा सखि ! प्रभविता स च मे परमप्रियः ।
वरमिदं प्रदिशामि च ते सुखं न च मृषा त्वमवेहि मयोदितम् ॥३४॥

चन्द्रकले ! कृपया न विलम्बय दर्शय मे दयिताननचन्द्रं
धैर्यमपेति मनो मम सीदति वीक्ष्य पुरीं मिथिलां निजदृष्टया ।
हा चिरकालगतो जगति स्वदृशाऽनवलोक्य भजत्सुखकामां
भाग्यवशात्कृपया तव सुन्दरि ! दर्शनमाप्तममोघमिदं ते ॥३५॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे भुवनसुन्दर (सारे विश्वकी सुन्दरताके पुञ्ज), कमल-नयन प्यारे! यद्यपि यह आप स्वयं ही जानते हैं, कि यह (श्रीप्रियाजूसे मिलाने का) कार्य बहुत ही दुष्कर है, फिर भी यदि मैं उसे कर दिखाऊँ, तो मुझे आप पुरस्कार क्या देंगे ? उसे कहिये, मैं अवश्य आपका हित करूँगी अर्थात् आपको श्रीकिशोरीजूसे मिला दूंगी ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:–हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजूके इन बचनोंको सुनकर रघुकुल को भूषणके सदृश सुशोभित करने वाले श्रीरामभद्रजू बोले:–अरी सखी ! श्रीप्रियाजूके दर्शन करानेके प्रत्युपकारमें तुम्हें और क्या लौकिक वस्तु दूं ? अत एव अत्यन्त छिपाने और न देने योग्य मैं अपने मन रूपी धनको ही तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥३२॥

अरी सखी! इस जगत्में आपका आश्रित यदि पापकी मूर्त्ति भी होगा, तो भी मैं उसे नहीं त्यागूंगा, बल्कि अपने उस दिव्य धामको ले जाऊँगा जिसे आपकी कृपा रूपी बल रहित प्राणी कभी भी किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता ॥३३॥ अरी सखी ! आप दयापूर्ण दृष्टिसे, जिस जीव को देख भी लेंगी वह मुझे परम प्रिय होगा । यह वरदान, मैं तुम्हें सुखपूर्वक प्रदान कर रहा हूँ, मेरे इस कथनको तुम असत्य न जानना ॥३४॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी ! कृपा करके अब विलम्ब न करें, श्रीकिशोरीजूके मुखचन्द्रका दर्शन हमें शीघ्र कराइये, क्योंकि अपनी आँखोंसे अब श्रीमिथिलाजीका दर्शन करके मेरा मन उनके दर्शनों के लिये व्याकुल हो धैर्यको छोड़ रहा है । हा, केवल भक्तोंके ही सुखकी एक इच्छा रखने वाली श्रीकिशोरीजूका अपने नेत्रोंसे दर्शन किये हुये बहुत समय व्यतीत हो गया । हे सुन्दरी! सौभाग्य वश तथा आपकी कृपासे ही आपका यह अमोघ दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है ॥३५॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

धैर्यमुपेहि किशोर ! शुभेक्षण ! मद्विनयं शृणु चेति शुचो मा
स्यात्तु यथाऽपि करोमि तथा मनसेप्सितपूर्त्तिमहं प्रतिजाने ।
शीघ्रमितो ह्यधिगम्य निवेद्य तवागमनं मिथिलेशसुतायै
त्वां गमयामि तयाऽऽशु मयोदितमेतदृतं प्रिय ! विद्धि सुयुक्त्या ॥३६॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं–हे सुन्दरनयन प्यारे श्रीकिशोरजी ! धैर्य धारण करें, चिन्ता न करें, और मेरी प्रार्थनाको श्रवण करें, मैं प्रतिज्ञा करती हूँ जिस उपायसे आपका मनोरथ सफल होगा, वह मैं अवश्य करूँगी । अब मैं यहाँसे शीघ्र जाकर आपके शुभागमनकी सूचना श्रीमिथिलेशदुलारीजूको देकर, सुन्दर युक्ति-पूर्वक शीघ्र ही उनसे आपका मिलन कराऊँगी, यह मेरा कहा हुआ वचन आप सत्य जानिये ॥३६॥

इतिषष्टितमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे अष्टादशो विश्रामः ॥१८॥

—❀❀❀—

अथैकषष्टितमोऽध्यायः ।

श्रीचन्द्रकलाजी द्वारा श्रीसीतारामजीका पारस्परिक व्यक्त संयोग संगठन तथा सखियों द्वारा दोनों सरकार का वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य त्वरितं वायुवेगतः । आययौ यत्र वैदेही सेव्यमाना सखीजनैः ॥१॥
तां दृष्ट्वा विह्वला प्राह नमस्कृत्य कृताञ्जलिः । समाधायात्मनाऽऽत्मानं प्रश्रयेण क्षितेः सुताम् ।२।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः-हे प्रिये! इस प्रकार श्रीचन्द्रकलाजी श्रीरामभद्रजूसे सान्त्वनामय वचन कहकर, तुरन्त वायुके समान वेगसे वहाँ पहुँची जहाँ सखियोंसे सेवित श्रीविदेहराजनन्दिनीजू देहकी सुधि भुलाये हुई प्यारेके ध्यानमें तल्लीन होकर विराजमान थीं ॥१॥

श्रीचन्द्रकलाजी श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूकी उस विरहपूर्ण अवस्थाको देखकर स्वयं विह्वल हो गयीं, पुनः विचार द्वारा अपने चित्तको सावधान करके, हाथ जोड़कर, बड़ी ही नम्रता-पूर्वक प्रणाम करके श्रीभूमिनन्दिनीजूसे बोलीं ॥२॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

आनीतो रघुवंशेनो मयेन्दुप्रियदर्शनः । त्वद्वियोगाग्निसंतप्तस्त्वामसौ द्रष्टुमर्हति ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

कान्तागमनमाकर्ण्यप्रसन्नमुखपङ्कजा । प्रशशंश विशालाक्षी वहुशस्तां पिकस्वना ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो आलि ! महाबुद्धे ! कृतं ते कर्म दुष्करम् । प्रीताऽस्मि ते भृशं तस्माद्वरं ब्रूहि सुदुर्लभम् ॥५॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

प्रत्युवाच वचस्तस्या निशम्य मधुराक्षरम् । चन्द्रभानुसुता सा ऽऽत्मश्लाघासङ्कुचितेक्षणा ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

दुष्करं किं कृतं कर्म प्रसन्नायां त्वयि प्रिये ! । यस्या भ्रूभङ्गमात्रेण ब्रह्माण्डानां भवाप्ययौ ॥७॥
यदि दित्ससि मे नूनं कृपया वरमीप्सितम् । सदा प्रीतिकरं देहि स्वभावं करुणानिधे ! ॥८॥
नान्यद्वरं च मे किञ्चित्काङ्क्षितं त्वत्प्रसादतः । सत्यं वदामि सर्वज्ञे ! पुनस्त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥९॥

हे श्रीलाडिलीजू ! मैं ले आई चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन श्रीप्राणप्यारे श्रीरामभद्रजूको। इस समयवे रघु महाराजके कुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले प्यारे आपके विरह-रूपी अग्निसे अत्यन्त तपे हुये हैं अत एव उन्हें आपका दर्शन अवश्य प्राप्त होना चाहिये ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः–हे प्रिये ! प्यारेका शुभागमन सुनकर श्रीमिथिलेश नन्दिनीजूका मुख प्रसन्न हो गया और वे अपनी कोयलके समान रसीली वाणीके द्वारा श्रीचन्द्रकलाजूकी बहुत–बहुत प्रशंसा करने लगीं ॥४॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:–हे विशालबुद्धिसम्पन्ने ! सखी ! आपने यह बड़ा ही दुष्कर (कठिन) कार्य किया है अत एव मैं आपके प्रति बहुत प्रसन्न हूँ, आप दुर्लभसे दुर्लभ वर माँग लीलिये ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः–हे प्रिये श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके बड़े मनोहर अक्षरोंसे युक्त इस वचनको सुनकर, अपनी प्रशंसासे सङ्कुचित नेत्रवाली वे श्रीचन्द्रभानु-दुलारी श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं ॥६॥ हे प्रियाजू ! जिनके भौंह मात्र घुमा देनेसे ही अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति व प्रलय होता रहता है, उन आपके प्रसन्न होने पर, भला यह मैंने कौनसा दुष्कर (कठिन) कार्य किया है ॥७॥

हे करुणानिधे ! श्रीकिशोरीजी ! यदि आप अपनी सहज कृपावश मुझे वर निश्चय ही देना चाहती हैं, तो सदैव आप अपनी प्रसन्नताकारक स्वभाव ही मुझे प्रदान कीजिये इसके अतिरिक्त आपकी कृपासे मुझे और कोई वरदान अभीष्ट नहीं है, यह मैं सत्य कहती हूँ पुनः आप सर्वज्ञ हैं, अत एव स्वयं जान सकती हैं ॥८॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आकर्ण्यैतत्सखीवाक्यं प्रससाद सुधेक्षणा । पुत्री जनकराजस्य तामुवाच कृताञ्जलिम् ॥१०॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

मम प्रीतिकरोऽस्त्येव स्वभावस्तव सन्मते ! । तथा मद्वचनाच्चापि सर्वदैव भविष्यति ॥११॥

यावन्त्यो मम सख्यश्च तवैव वशगा हि ताः । भविष्यन्ति न सन्देहो यथा वै मम शोभने! ॥१२॥

त्वयाऽनुकम्पिता एव जन्तवः परमं पदम् । मम यास्यन्ति वै नित्यं योगिनोऽयोगिनस्तथा ॥१३॥

याहि शीघ्रं ममादेशात्प्रापय त्वं प्रियं हि मे । विना तेन क्षणं चापि कोटिकल्पसमं भवेत् ॥१४॥

न विलम्बोऽत्र कर्त्तव्यस्त्वया कार्यविशारदे ! ।

प्रियोऽपि ! सखि मां द्रष्टुं विह्वलोऽस्ति यथा ह्यहम् ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्याज्ञप्ता विशालाक्ष्या श्रीमच्चन्द्रकला सखी ।आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा नमस्कृत्य ततोऽभ्यगात्।१६।

तं समेत्य विशालाक्षं रमणीयकलेवरम् । प्रियाया ध्यानसंसक्तं सुखदं सा वचोऽब्रवीत् ॥१७॥

श्रीयाज्ञयल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये श्रीचन्द्रकलाजीके इन वचनोंको सुनकर अमृत-मय दृष्टिवाली श्रीकिशोरीजी बड़ी प्रसन्न हुईं और उन हाथ जोड़े खड़ी हुई श्रीचन्द्रकलाजीसे बोलीं ॥१०॥ हे पवित्रमति वाली श्रीचन्द्रकलाजी ! आपका स्वभाव तो योंही मेरी प्रसन्नता कारक है तथापि मेरे वरदानसे वह और भी मेरी विशेष प्रसन्नताकारक सदा बना रहेगा ॥११॥

हे शोभने (कल्याणस्परूपे) ! मेरी जितनी सखियाँ हैं, उन सभीपर जैसा मेरा अधिकार है, वैसा ही निःसन्देह आपका रहेगा जिनपर आपकी कृपा होगी, वही जीव मेरे परमपद (श्रीसाकेत-धामान्तर्गत श्रीकनकभवन) को प्राप्त होंगे, चाहे वे योगी (पूर्ण साधन सम्पन्न) हों अथवा अयोगी (साधन रहित) ॥१२॥१३॥

अरी सखी ! मेरी आज्ञासे तुम जाओ, और मुझे शीघ्र श्रीप्यारेजीकी प्राप्ति कराओ। बिना श्रीप्यारेजूके, उनके विरह रूपी अग्निके तापसे एक क्षणभी मुझे करोड़ों कल्पके समान भारी हो रहा है ॥१४॥ हे सखी ! तुम कार्य करनेमें चतुरी हो, अत एव श्रीप्यारेजूसे भेंट करानेमें विलम्ब न करो, क्योंकि जैसे मैं श्रीप्यारेजूके दर्शनोंके लिये व्याकुल हूँ, उसी प्रकार मेरे दर्शनोंके लिये प्यारे भी विह्वल हो रहे हैं ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये! सखी श्रीचन्द्रकलाजी विशाल लोचना श्रीकिशोरीजी की यह आज्ञा पाकर उनसे जो आज्ञा, ऐसा कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके वे वहाँसे चल दीं और वे श्रीचन्द्रकलाजी मनोहर शरीर, विशालनयन, तथा श्रीप्रियाजूके ध्यानमें पूर्ण निमग्न, श्रीरामभद्रजूके पास जाकर उनसे यह सुखदायक वचन बोलीं ॥१६॥१७॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

यां ध्यायसि हृदि श्रेष्ठ! सा त्वामाह्वयति प्रिया । दिदृक्षुराशु वैदेही संस्थिता रासमण्डले ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति तस्या वचः श्रुत्वा मधुरं मधुरादपि । तूर्णमुत्थाय तां दोर्भ्यां परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥१९॥

श्रीराम उवाच ।

यदुक्तं ते वचः सत्यमिदं चन्द्रकले ! द्रुतम् ! । नय मां यत्र मे कान्ता सदा भक्तसुखेरता ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तथेत्युक्त्वाऽऽह सैहीति मया साकमितः प्रिय! । प्रापयिष्यामि ते कान्तां शरच्चन्द्रनिभाननाम् ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तस्तया साकं भावगम्यो वशी प्रभुः । धावन्निव चचालासौ कोटिब्रह्माण्डनायकः ॥२२॥

आयान्तं दूरतो दृष्ट्वा मैथिली रघुनन्दनम् । प्रत्युज्जगाम सा प्रेम्णा सेव्यमाना सखीजनैः ॥२३॥

तौ समीपमथोऽभ्येत्य शरच्चन्द्रनिभाननौ । दामिनीघनसङ्काशावनिमेषमृगेक्षणौ ॥२४॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! जिनका आप हृदयमें ध्यान कर रहे हैं, वे आपके दर्शनोंकी इच्छासे देहकी सुधि-बुधि भुलाकर आप दोनों सरकारको ही सर्वस्व मानने वाले भक्त मण्डलमें सम्यक् प्रकारसे विराजमान हैं ॥१८॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीका यह मधुरसे भी मधुर वचन सुन करके वे तुरन्त, उठकर उन्हें दोनों हाथोंसे हृदय लगाकर बोले ॥१९॥

हे श्रीचन्द्रकलाजू ! सुनिये "श्रीप्रियाजू आपको बुला रही हैं" यह आपकी वाणी यदि सत्य है, तो मुझे वहाँ तुरन्त ले चलो जहाँ पर केवल भक्तोंके सुखसाधनमें सदैव तत्पर रहने वाली हमारी वे श्रीप्रियाजू विराज रही हैं ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये! श्रीचन्द्रकलाजी उनसे ऐसा ही करती हूँ कहकर, पुनः बोलीं–हे प्यारे ! आप यहाँसे मेरे साथ चलें, मैं शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश मान, आह्लादकारी श्रीमुखकमल वाली श्रीप्रियाजीका मिलन आपको कराऊँगी ॥२१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये ! श्रीचन्द्रकलाजीके इस प्रकार कहने पर अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सर्वसमर्थ लोकपालोंके सहित समस्त लोकोंको अपने वशमें रखने वाले श्रीराम-भद्रजू, भक्तोंके भावाधीन होने के कारण, श्रीचन्द्रकलाजूके साथ दौड़ते से चले ॥२२॥

श्रीरघुनन्दन प्यारेको दूरसे ही आते देखकर श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू अपनी सखियोंसे सेवित होती हुई, उनका स्वागत करनेके लिये, आगे बढ़ीं ॥२३॥

समीपमें प्राप्त हो, शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान मुख, विजली तथा मेघके समान गौर श्याम, वर्ण, पलकरहित हरिणके समान विशाल नेत्रों वाले दोनों सरकार ॥२४॥

बाहू प्रसार्य वै तत्र चक्रतुः परिरम्भणम् । मिथो लोकहितायैव भावाधीनत्वव्यक्तये ॥२५॥

संयोगसंन्यस्तवियोगतापौ श्रीमैथिलीश्रीरघुनन्दनौ तौ ।
प्रसन्नपूर्णामलचन्द्रवक्त्रौ प्रजग्मतू रासनिकुञ्जमाद्यम् ॥२६॥

परस्परं तौ च निधाय कण्ठे भुजं तदा रेजतुरालिवृन्दे ।
सिंहासनस्थौ चपलाघनाभौ निरीक्ष्य सख्यो मुदितास्तदोचुः ॥२७॥

सख्य ऊचुः ।

निमिवंशसमुद्भूता सीता सीरध्वजात्मजा । हंसवंशसमुद्भूतो रामो दशरथात्मजः ॥२८॥

इन्दीवरविशालाक्षी कोटिचन्द्रोपमानना । पुण्डरीकविशालाक्षः कोटिराकाधवाननः ॥२९॥

पक्वबिम्बाधरोष्ठीयं विद्युद्दामसमप्रभा । पक्वबिम्बाधरोष्ठोऽयं सान्द्रकन्दनिभप्रभः ॥३०॥

केवल प्राणियोंके प्रोत्साहन रूप हितके लिये एक दूसरेकी भावाधीनता प्रकट करने हेतु दोनोंसरकारने अपनी २ भुजाओंको फैलाकर एक दूसरेको हृदय लगाया। श्रीकिशोरीजी प्यारे को हृदयसे लगाती हुई जीवोंको प्रोत्साहन देती है, कि यदि मेरे समान तुम प्रभुसे प्रेम करोगे, तो तुम भी इसी प्रकार प्रभुको हृदयसे लगा सकते हो, अतः प्रभुसे प्रेम करो। श्रीरामभद्रजू श्रीकिशोरीजीको हृदयसे लगाते हुये जीवोंको यह प्रोत्साहन देते हैं, कि यदि श्रीकिशोरीजीके समान तुम मुझसे अनन्य प्रेम करोगे, तो जैसे विह्वल होकर तथा लौकिक किसी प्रकारकी मर्यादाका स्मरण न रखकर मैं श्रीकिशोरीजीको हृदयसे लगा रहा हूँ, उसी प्रकार तुमको भी हृदय लगा सकता हूँ अतः मुझसे प्रेम करो ॥२५॥

पुनः संयोग द्वारा विरह तापसे रहित हो, पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान प्रसन्न मुख वाले श्रीमिथिलेशनन्दिनी तथा श्रीरघुनन्दनप्यारेजू अपने रसस्वरूप-उपासिका सखियोंकी श्रेष्ठ कुञ्जमें पधारे ॥२६॥ (वहाँ) परस्पर एक दूसरेके गलेमें बाहें डाले हुये, सखियोंके समूहमें सिंहासन पर विराजमान विजली व सघन मेघकी कान्ति वाले, उन युगलसरकारका दर्शन करके सखियाँ हर्षित हो बोलीं ॥२७॥

निमिवंश रूपी कमलसे प्रकट हुई श्रीसीरध्वज महाराजकी लली श्रीसीताजी व सूर्य वंशमें अवतीर्ण हुये दशरथनन्दन श्रीरामभद्रजी ॥२८॥ एवं नीले कमलके समान विशाल नेत्र व करोड़ों चन्द्रमाओंके समान शोभायमान मुखवाली श्रीललीजी तथा श्वेत कमलके सदृश नेत्र व करोड़ों पूर्णचन्द्रमाओंके तुल्य मुखवाले श्रीप्यारेजी ॥२९॥

पके बिम्बाफलके समान ओठ व विजलीकी मालाके समान प्रकाशवाली श्रीप्रियाजी तथा पके बिम्बाफलके सदृश लाल अधर व सजल मेघके सदृश प्रकाशवाले श्रीप्यारेजी हैं ॥३०॥

तप्तहाटकगौराङ्गी लावण्यैकमहोदधिः । नीलाम्भोजदलश्यामः सौन्दर्याद्वयसागरः ॥३१॥
मिथिलाप्राणसंप्राणा सर्वसद्गुणविग्रहा । सर्वसद्गुणसन्दोहः सत्यायाः प्राणवल्लभः ॥३२॥
कोटिकामाङ्गनोत्कृष्टा वेदिगर्भसमुद्भवा । यज्ञपायससम्भूतः कोटिमीनध्वजोपमः ॥३३॥
प्रणिपातैकसन्तुष्टा पद्मालङ्कृतपाणिका । शरणागतसंत्राता कञ्जशोभिकराम्बुजः ॥३४॥
रासकेलिकलाभिज्ञा सर्वलोकमहेश्वरी । सर्वलोकमहेशश्च रासलीलारसाश्रयः ॥३५॥
मैथिली मृदुसर्वाङ्गी निर्व्याजकरुणानिधिः । अहेतुकरुणासिन्धू राघवो मृदुविग्रहः ॥३६॥
महामाधुर्यसम्पन्नौ दिव्यसिंहासनस्थितौ । दिव्याभरणवस्त्रौ द्वौ स्रग्विणौ चन्दनार्चितौ ॥३७॥
सालकौ विधुपूर्णास्यौ मनोदृष्टिधनापहौ । सुकुमारौ यशः पात्रे शुचिसम्मोहनस्मितौ ॥३८॥

तपाये हुये देवसुवर्णके समान गौर अङ्ग व महासागरके समान उपमा-रहित अवर्णनीय सौन्दर्यवाली श्रीललीजी तथा नीले कमलपत्रके तुल्य श्यामस्वरूप सागरके समान उपमा-रहित सौन्दर्य वाले श्रीलालजी हैं ॥३१॥

श्रीमिथिलाजीके प्राणोंकी प्राणस्वरूपा समस्त सद्गुणोंसे युक्त श्रीप्रियाजू तथा समस्त सद्गुणोंके मन्दिर, श्रीअयोध्याजीके प्राणोंसे प्यारे श्रीप्यारे जू ॥३२॥

यज्ञवेदीके मध्यसे उत्पन्न व करोड़ों रतियोंसे अधिक सुन्दरी श्रीललीजी तथा यज्ञकी खीरसे उत्पन्न, करोड़ों कामदेवोंसे बढ़कर श्रीलालजी हैं ॥३३॥ केवल प्रणाम-मात्रसे ही पूर्ण प्रसन्नता को प्राप्त व नीलकमलसे सुशोभित हस्तकमल वाली श्रीप्रियाजी तथा शरणागत जीवों के संरक्षक, कमलसे शोभायमान हस्तकमल वाले श्रीप्यारेजू ॥३४॥

समस्त लोकों पर शासन करने वाली भगवान को ही सर्वस्व मानने वाले भक्तोंकी लीलाके रस (आनन्द) को पूर्णतया समझने वाली श्रीललीजू तथा समस्त लोकोंके नियामकोंके भी नियामक, भगवद्भक्तोंकी लीलाके सुखके कारण स्वरूप श्रीलालजू हैं ॥३५॥

साधनादि कारण अपेक्षा रहित, करुणाकी मूर्त्ति व सभी कोमल-अङ्ग वाली श्रीमिथिलेश-ललीजी तथा साधनादि कारण अपेक्षा रहित करुणा (दया) के स्थान, कोमल शरीर वाले श्रीरघुनन्दनजू हैं ॥३६॥

दोनों सरकार चन्दनकी खौरसे अलङ्कृत, दिव्य भूषण वस्त्रोंको धारण किये, गलेमें पुष्प-माला पहिने, महान् कोमलतापूर्ण-सौन्दर्यसे युक्त, दिव्यसिंहासन पर विराजमान ॥३७॥

दोनों घुंघुराले केशोंसे युक्त, चन्द्रमाके सदृश आह्लादकारी मुखसे सुशोभित, मन व दृष्टि रूपी धनकी चोरी करने वाले, सुकुमार अवस्थामें प्राप्त, सम्पूर्ण यशके पात्र, निर्मल अन्तस्करण वाले महर्षि-वृन्दोंको अपनी मुस्कानसे मुग्ध कर लेने वाले ॥३८॥

अन्योऽन्यसदृशावेतावन्योऽन्यप्रेक्षणोत्सुकौ । जानकीराघवावाल्यः शरण्यावाश्रयामहे ॥३९॥
एतौ न पश्यतो यं च यश्च नैतौ प्रपश्यति । तावबद्यौ त्रिलोकेषु ह्यात्माऽपि तौ विगर्हते ॥४०॥
अद्य पुण्यदिनं चैतत्क्षणं सौभाग्यदायकम् । उभावेतौ प्रपश्यामो दत्तकण्ठकराम्बुजौ ॥४१॥
इमौ हि लोककर्तारौ जननीजनकौ तथा । श्रुतिसारौ सुराधीशौ स्वेच्छयात्तनराकृती ॥४२॥
मैथिलीयं यथाऽस्माकं राघवोऽयं तथाविधः । सुनयनानन्दिनीयं कौशल्यानन्दनस्त्वयम् ॥४३॥
अस्या योग्यः पतिश्चैष प्रियैषा सदृशा ऽस्य च । न ह्यसामान्यमनयोरस्ति केनापि हेतुना ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवं ता वर्णयन्त्यश्च तौ श्रीप्राणप्रियाप्रियौ । प्रहर्षं लेभिरे सख्यो ह्यवाङ्मनसगोचरम् ॥४५॥

दोनों एक दूसरेके सदृश एवं एक दूसरेके दर्शनोंके उत्सुक हैं, अरी सखियो ! अतएव सभी प्रकारसे रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ इन्ही, श्रीयुगलसरकारकी हम लोग शरणमें प्राप्त हैं ॥३९॥

जिस प्राणी पर ये दोनों सरकार अपनी दृष्टि नहीं डालते और जो इन दोनोंका दर्शन नहीं करते वे दोनों ही त्रिलोकीमें निन्दाके पात्र हैं, स्वयं उनकी आत्मा भी उन्हें धिक्कारती है ॥४०॥ आजकादिन बड़ा ही पुण्यमय है तथा यह क्षण भी बड़े सौभाग्यको प्रदान करने वाला है जो हम लोग परस्पर एक दूसरेके गलेमें करकमल दिये हुये, इन श्रीयुगलसरकारका भली प्रकारसे दर्शन प्राप्त कर रही हैं ॥४१॥ ये दोनों सरकार, समस्त लोकोंकी रचना करने वाले माता–पिता, देवताओं (दैवी सम्पद् विशिष्टोंको अपनी इच्छानुसार चलाकर उन) की रक्षा करने वाले, चारो वेदोंके सार, अपनी इच्छासे मनुष्य शरीर धारण किये हुये हैं ॥४२॥

जैसे श्रीमिथि महाराजकेवंशमें प्रकट हुई हमारी श्रीसुनयनानन्दिनीजू सब प्रकारसे सुन्दरी हैं, उसी प्रकार ये श्रीरघुकुलमें अवतीर्ण श्रीकौशल्यानन्दनजू सब प्रकारसे सुन्दर, हैं ॥४३॥

हमारी श्रीललीजूके योग्य ये ही पति हैं और इन श्रीप्यारेजूके योग्य प्रिया ये श्रीललीजू हैं, क्योंकि इन दोनों सरकारमें गुण-रूपादि किसी भी कारण से न्यूनताकी विषमता नहीं है अर्थात् गुण रूप, तेज, यश, श्री ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि सभीके द्वारा परस्पर ये दोनों एक दूसरेके समान हैं ॥४४॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले: -हे प्रिये! इस प्रकार वे सखियाँ, श्रीयुगलसरकार का वर्णन करती हुई, उस अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुईं, जिसको न मन मनन कर सकता है न वाणी कथन ही कर सकती है ॥४५॥

इत्येकषष्टितमोऽध्यायः ।

इति-नवाह्नपारायणे पंचमो विश्रामः ॥५॥

—❀❀❀—

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

भगवान श्रीरामजी द्वारा श्रीचन्द्रकलाजी की अचिन्त्य शक्ति का वर्णन तथा श्रीकिशोरीजीकी आज्ञा से सखियोंका नृत्यगानादि महोत्सव ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथ श्रीप्रेयसोः पूजां चक्रुः सख्यश्च षोडशीम् । दिव्यधामात्मभावस्था हर्षनिर्भरमानसाः ॥१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

स्वागतं ते ऽस्तु प्राणेश! दिष्टचा पश्यामि ते मुखम् । पुण्यपुञ्जप्रभावेण सहचर्य्यनुकम्पया ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्याकर्ण्य प्रियावाक्यं प्रेमगद्गदया गिरा । साश्रुनेत्रो ऽब्रवीत्तस्या संस्पृष्ट्वा चिबुकं प्रियः ॥३॥

श्रीराम उवाच ।

वल्लभे! त्वत्कृपादृष्टचा भवत्या दर्शनं मया । लब्धं स्वभूरिभाग्येन तव सख्याः प्रसादतः ॥४॥
क्व चैव मम संवासः क्व चेयं मिथिलापुरी । तया ऽऽनीतः प्रयत्नेनाचिन्त्यशक्त्याऽहमागतः ॥५॥
सामर्थ्यं तव प्राणेशे ! मयाऽ पि ज्ञायते न हि । अपरः कश्च विज्ञातुं त्रिषु देवेष्वपि क्षमः ॥६॥
यस्याः सख्यामचिन्त्या हि दृश्यते शक्तिरीदृशी । को नु तां वर्णितुं शक्तस्त्रिषु लोकेषु वल्लभे! ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! तत्पश्चात् हर्षनिर्भर चित्त हो, अपने दिव्यधामके भावमें स्थित होकर, उन सखियोंने षोडशोपचारसे श्रीयुगल सरकारका पूजन किया ॥१॥

श्रीजनकनन्दिनीजू श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:-हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आपका आगमन बड़ा ही सुखद होवे, अनेक पुण्य समूहसे तथा श्रीचन्द्रकलाजीकी कृपासे मैं, इस समय परम सौभाग्य वश आपके श्रीमुखारविन्दका दर्शन कर रही हूँ ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! श्रीप्रियाजूके इन वचनोंको श्रवण करके, सजल नेत्र हो, श्रीरघुनन्दनप्यारेजू श्रीप्रियाजूकी ठोढ़ी का स्पर्श करके, गद्गदवाणी से बोले ॥३॥

हे श्रीप्रियाजू ! आज अपने परम सौभाग्यसे, आपकी कृपा दृष्टि द्वारा तथा आपकी सखी श्रीचन्द्रकलाजीकी कृपासे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है क्योंकि कहाँ मेरा निवास श्रीअयोध्याजी में और कहाँ यह श्रीमिथिलापुरी ? तथापि कल्पनासे परे सामर्थ्य वाली उन श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा वहाँसे लाया हुआ मैं, यहाँ आज अनायास ही प्राप्त हूँ ॥४॥५॥

हे श्रीप्रियाजू ! आपकी सामर्थ्य को जब मैं ही नहीं जानता हूँ, तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवोंमें भी, भला कौन जानने के लिये समर्थ है? इतरोंकी बात ही क्या ? ॥६॥

हे श्रीप्रियाजू ! जिनकी सखीमें ही जब इस प्रकारकी कल्पनासे परेकी शक्ति देखनेमें आ रही है, तब भला साक्षात् उन (आप) का, त्रिलोकीमें कौन वर्णन कर सकता है ? ॥७॥

इदानीं तद्धि कर्त्तव्यं यतः सर्वाः सखीजनाः । प्राप्नुवन्तु सुखं कामं दिव्यधामधियाऽन्विताः ॥८॥

श्रीलोमश उवाच ।

प्रेयसोक्तं समाकर्ण्य सर्वासां प्रियकाम्यया । व्यादिदेशानुरागेण सखीर्नृत्यादिहेतवे ॥९॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो सख्यः सर्वा शृणुत सुखदं मे वच इदं, प्रियं पूर्णानन्दं परमरसिकं प्रेमवशगम् ।
मिलित्वा वै यूयं मुदितहृदयाः केलिकुशलाः, स्वकैर्नृत्यैर्वाद्यैरतिसरसगानै रमयत ॥१०॥

श्रीलोमश उवाच ।

इति तस्या वचः श्रुत्वा सख्यः प्रेमपरिप्लुताः । कृतयूथास्तदा सर्वा आदौ वाद्यान्यवादयन् ॥११॥
नृत्यमारम्भयामासुः सवाद्यं कान्तमोहनम् । पुनस्ताः पद्मपत्राक्ष्यो गतितालादिभेदतः ॥१२॥
मूकयन्त्यः पिकान् रावैर्गानं प्रचक्रिरे तदा । गन्धर्व्यो यन्निशम्यैव चित्रमापुः स्वचेतसि ॥१३॥
ह्लादाकृष्टौ तदानीं तौ दत्तांसैकभुजौ मिथः । सिंहासनात्समुत्तीर्य्य सखीमण्डलमीयतुः ॥१४॥

तभ्यां ततः सर्वसखीनिकायो रराज तारागणवच्छशिभ्याम् ।
अत्यन्तहर्षाप्लुतमानसाश्च बभूव तौ मध्यगतौ विलोक्य ॥१५॥

इस समय वही लीला करनी चाहिये–जिसके द्वारा ये सभी सखियाँ अपने दिव्य-धामवाली बुद्धिसे युक्त होकर अपने भावानुसार सुखको प्राप्त हों ॥८॥ श्रीलोमशजी महाराज बोलेः–हे श्रीयाज्ञवल्क्यजी! श्रीप्राणप्यारेजूके इस विचारको श्रवण करके, सभी सखियोंको प्रसन्नता प्रदान करनेकी इच्छासे श्रीकिशोरीजीने उन्हें अनुराग पूर्वक नृत्यादि करनेके लिये आज्ञा प्रदानकी ॥९॥

श्रीजनकराजदुलारीजी बोलीं:–अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओं में परम चतुर हे सभी सखियो ! मेरे सुखद वचनोंको श्रवण करें, आज पूर्ण आनन्द स्वरूप, प्रेम के वशीभूत रसिक अर्थात् अपने उपासक भक्तोंकी सभी चेष्टाओंका रसास्वाद करने वाले इन श्रीप्यारेजीको आप सभी मिलकर अपने नृत्य वाद्य और अति रसीले गानके द्वारा आनन्दित करें ॥१०॥

श्रीलोमशजी महाराज बोलेः-हे मुने! श्रीमिथिलेशदुलारीजूके इन वचनोंको सुनकर, सखियाँ प्रेम निमग्न हो, यूथ बनाकरके प्रथम बाजाओंको बजाने लगीं ॥११॥ पुनः उन कमलदललोचना सखियोंने गति-ताल आदिके भेदसे बाजोंको बजाती हुई प्यारेको मुग्ध कर लेने वाला नृत्य आरम्भ किया ॥१२॥ उस समय वे, अपने मधुर शब्दके द्वारा कोयलोंको मुग्ध करती हुई गान करने लगीं, जिसे सुनकर गन्धर्वकन्यायें भी अपने चित्तमें बड़े विस्मयको प्राप्त हुईं ॥१३॥

आह्लाद प्रवाहसे खिंचे हुये, श्रीयुगलसरकार भी परस्पर एक दूसरेके कन्धे पर अपना एक कर-कमल रखे हुये उस समय सिंहासनसे उतरकर, सखीमण्डलमें आगये ॥१४॥

उन श्रीयुगलसरकारके पधारने पर, वह सम्पूर्ण सखीमण्डल इस प्रकारसे सुशोभित हुआ, जैसे दो चन्द्रमाओंके उदयसे तारा-गण सुशोभित हों। अपने मध्यमें श्रीयुगलसरकारको उपस्थित देखकर सखियोंका मन हर्षमें डूब गया ॥१५॥

पुनश्च हस्ताक्षिपदेङ्गितैश्च स्वलाघवं ताः खलु दर्शयन्त्यः ।
नृत्यं प्रचक्रुर्मृगपोतनेत्रा विसृष्टदेहस्मृतयस्तयोश्च ॥१६॥
तेनापि तौ ह्लादनिमग्नचित्तौ व्यनृत्यतां विश्वविमोहनाङ्गौ ।
वृन्दारका वीक्ष्य सभार्यकाः खान्मन्दारपुष्पाणि मुहुर्व्यवर्षन् ॥१७॥
तयोः प्रसादाय समाप तत्र शरत्सपूर्णेन्दुरपि क्षणेन ।
सुगन्धमादाय मरुच्चचाल नभस्तलं निर्मलमाबभूव ॥१८॥
प्राफुल्लयच्चारुवनं समग्रं सम्भ्रमन्मत्तमधुव्रताश्च ।
खे दुन्दुभीनां तुमुलश्च शब्दो व्यश्रूयताह्लादतरङ्गवृद्ध्यै ॥१९॥
मृगेक्षणानां कलगानवाद्यैः सर्वं ततं विश्वमिदं बभूव ।
सम्पूरितं झङ्कृतिभिर्वनं तत्तासां तदा दिव्यविभूषणानाम् ॥२०॥
मध्ये सखीनां निवहस्य भूयः श्रीजानकीश्रीदशथानसूनू ।
मिथः कराभ्यां स्वकरौ नियोज्य प्रानृत्यतां केलिकलापदक्षौ ॥२१॥
देवाङ्गना देवतरुप्रसूनान्युपेत्य चक्षुष्फलमप्यवर्षन् ।
तयोस्तदानीं जयकारघोषो लोकत्रयाह्लादकरो बभूव ॥२२॥

पुनः अपने शरीरकी सुधि-बुधि भूली हुई, मृगके बच्चेके समान चञ्चल नेत्रवाली वे सखियाँ, श्रीयुगलसरकारके हस्त, नेत्र व पद-कमलोंके सङ्केतोंके साथ-साथ अपनी शीघ्रता (फुर्ती) दिखाती हुई नृत्य करने लगीं ॥१६॥ सखियोंके उस नृत्यके द्वारा आह्लादमग्न-चित्त तथा अपने श्रीअङ्गकी सहज छटासे समस्त विश्वको मुग्ध करनेवाले वे श्रीयुगल-सरकार भी नृत्य करने लगे। उस अवस्थामें दोनों सरकारका दर्शन करके देववृन्दभी अपनी शक्तियोंके सहित आकाशसे, कल्पवृक्षके फूलोंकी बारम्बार वर्षा करने लगे ॥१७॥ श्रीयुगल-सरकारको प्रसन्न करनेके लिये क्षणमात्रमें वहाँ पूर्णचन्द्रमाके सहित शरदऋतुभी आगयी, सुगन्धको लिये पवनदेव मन्द-मन्द चलने लगे तथा आकाश पूर्ण स्वच्छ हो गया ॥१८॥ समग्र कञ्चनबनमें भली प्रकार पुष्प खिल गए, मतवाले भौंरे इतस्ततः भ्रमण करने लगे, और आकाशमें, आह्लादके तरङ्गोंकी वृद्धि करने के लिये देवनगाड़ोंका शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥१९॥ कहाँ तक कहें ? उन मृग-लोचना सखियोंके सुन्दर गान, वाद्यका शब्द समस्त विश्वमें व्याप्त हो गया तथा उन सखियोंके दिव्य भूषणोंकी झङ्कारसे पूर्ण कञ्चनबन गूंज उठा ॥२०॥ पुनः क्रीड़ा समूहोंके ढङ्गको भली प्रकार जानने वाले श्रीजनकनन्दिनी व श्रीदशरथनन्दनजू सखी झुण्डके बीच आकर आपसमें एक दूसरेके हाथोंसे अपने हाथोंको मिलाकर नृत्य करने लगे ॥२१॥ देव स्त्रियाँ अपने नेत्रोंका फल प्राप्त करके कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं, उस समय श्रीयुगल-सरकारकी जयकार घोषने आकाश, पृथ्वी, पाताल तीनों लोकों को आह्लादित कर दिया ॥२२॥

श्यामघन वर्ण श्रीराघवेन्द्र सरकार, सखियोंके बीच-बीचमें उपस्थित होकर, सखीगण रूपी बिजलीकी मालाको नाचती हुई देखकर श्रीकिशोरीजीकी दृष्टिमें पूर्व प्राप्त, शोभाका अभाव दूर करते हुये सखियोंको भगवदानन्द प्रदान कर रहे हैं।

पुनश्च रामो रमणप्रवीणो नैकस्वरूपाणि विधाय तत्र ।
विवेश तास्वात्मन एव तुल्यान्येतद्रहस्यं विदितं न ताभिः ॥२३॥
एकोऽथ भूत्वा विरराज रामो मध्ये सखीनां दयितेङ्गितेन ।
तेनान्वितास्ताश्च तदा विरेजुः सौदामिनीनां स्रगिवाम्बुदेन ॥२४॥
पर्याप्तकामा नवमोहनश्रियश्चक्रुर्महारासमहोत्सवंहि ताः ।
नैकप्रकारै रसकेलिलोलुपा दृष्ट्वा तुतोषावनिनाथकन्यका ॥२५॥
ता वल्गुवाक्यस्मितवीक्षणैश्च श्रीप्रेयसीः प्रेमवशेऽनुनीताः ।
चुम्बन्ति काश्चिच्च कटाक्षयन्त्यः काश्चिद्दधत्येव भुजं निजांसे ॥२६॥
काश्चित्स्म पश्यन्ति तदास्यमाधुरीं निमेषहीना इव हेममूर्त्तयः ।
काश्चित्समाघ्राय तदङ्गसौरभं काश्चित्तमालिङ्गय सुनिर्वृताः स्थिताः ।२७।

पुनः उस स्थल पर भक्तोंको आनन्द प्रदान करने वालोंमें चतुर, योगियोंके अन्त-करणमें विहार करने वाले श्रीरामभद्रजू. अपने समान अनन्त रूपोंको धारण करके उन सखियोंके बीच-बीचमें आगये, परन्तु इस रहस्य(गुप्तलीला)को वे न समझ सकीं अर्थात् उन्हें यही निश्चय रहा कि प्यारे हमारे ही बीचमें हैं, एतदर्थ अपने-अपने प्रति उनकी सर्वोपरि (सबसे अधिक) कृपाकी अनुभूति करके, वे सभी सखियाँ अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुईं, अत एव प्यारेको रमण प्रवीण कहा गया है ॥२३॥

तत्पश्चात् श्रीप्रियाजूका सङ्केत पाकर श्रीप्यारेजू सखियोंके बीचमें निज मुख्य स्वरूपसे सुशोभित हुये । उस समय श्रीप्यारेजूसे युक्त वे सखियाँ इस प्रकार सुशोभित हुईं, मानो-सघन मेघसे युक्त बिजलीकी माला सुशोभित हो ॥२४॥

भगवत्-लीलाओंमें पूर्ण उत्सुक रहने वाली, मुग्धकारी नवीन शोभासे युक्त, परिपूर्णमनोरथ हुई वे सखियाँ अनेक प्रकारसे रासमहोत्सव करती हुई अर्थात् अनेक प्रकार के नृत्य गान, वाद्य आदि के द्वारा आनन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म प्यारे श्रीरामभद्रजूके पधारने का उत्सव करती हुईं जिससे अपने मन वचन, शरीर इन तीनों को ही श्रीप्यारेजू की सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो । ऐसा देखकर अवनिनाथ श्रीमिथिलेशजी महाराज की श्रीललीजी प्रसन्न हो गयीं ॥२५॥

उन सखियोंको श्रीप्यारेजूने अपनी मधुर वाणी, मन्दमुस्कान तथा कटाक्षपूर्ण चितवनसे प्रेम वश कर लिया, अत एव कुछ सखियाँ उनके चरण व हस्त कमलोंका चुम्बन करने लगीं, कुछ उन्हें कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखती हुई उनकी भुजाको अपने कन्धेपर रखने लगीं ॥२६॥

कुछ सखियाँ उनके श्रीमुखारविन्दकी मनोहरताका इस प्रकार एकाग्र दृष्टिसे दर्शन करने लगीं, मानो वे पलकहीन सोनेकी निर्जीव मूर्त्ति ही हों, कुछ सखियाँ श्रीप्यारेजूके श्रीअङ्गकी सुगन्धको सूँघकर और कुछ उन्हें हृदय लगाकर अन्तर्वृत्ति को प्राप्त हो गयीं ॥२७॥

काश्चित्तु कान्तांसधृतैकहस्ता वाणीर्द्विजानामवदन्विचित्राः ।
नीराजयन्त्यः पुनरेव कामं सर्वा ययुर्हर्षमपारपारम् ॥२८॥
एवं रासमुखं दत्त्वा रघुवंशविभूषणः । अतोषयत्प्रियां भक्तभावानुग्रहविग्रहः॥२६॥

कुछ सखियाँ प्यारेजूके कन्धे पर अपना एक हाथ रखे हुई पक्षियोंकी अनेक प्रकारकी विचित्र बोलियाँ बोलने लगीं, पुनः सिंहासन पर श्रीकिशोरीजीके समीपमें श्रीप्यारेजूके विराजमान हो जाने पर, वे सभी अपनी इच्छानुसार दोनों श्रीयुगल सरकारकी आरती करती हुई, असीम सुखको प्राप्त हुई ॥२८॥ इस प्रकार भक्तोंके भावानुसार अनुग्रह-मय दिव्यस्वरूपको धारण करने वाले, रघुवंशको भूषणके समान, सुशोभित करने वाले प्रभु श्रीरामभद्रजूने सखियों को अपने सगुण आनन्द ब्रह्म स्वरूपकी लीलाका सुख प्रदान करके, अपनी प्रिया श्रीमिथिलेश नन्दिनीजूको सन्तुष्ट किया ॥२६॥

इति द्विषष्ठितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ त्रिषष्ठितमोऽध्यायः ।

सखियोंको दिव्यधाम का सुख प्रदान करनेके लिये प्यारेके साथ श्रीकिशोरीजीकी जल तथा नौका बिहार लीला ।

श्रीलोमश उवाच ।

तमुवाच विशालाक्षी प्रेमनिर्भरया गिरा । प्रार्थितं शृणु प्राणेश ! नाहमाज्ञापयामि ते ॥१॥
जलक्रीडाऽपि कर्त्तव्या रोचते यदि ते प्रिय ! । रासानन्दप्रसक्तानां वयस्यानां सुखाय च ॥२॥
यथा क्रीडासु मे चेतः प्रसक्तं भवति प्रिय ! । न तथा मम संवेशे न चैव भोजनादिषु ॥३॥
अत एव रमस्वात्र प्राणनाथ ! यथेप्सितम् । रासकेलिकलाज्ञाभिः सखीभिर्विरजाम्भसि ॥४॥

श्रीलोमशजी महाराज बोलेः—हे मुने ! विशाललोचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजू प्रेम भरी वाणीके द्वारा, श्रीप्यारेजूसे बोलीं:—हे श्रीप्राणनाथजू ! मैं आपको आज्ञा नहीं दे रही हूँ, बल्कि कुछ प्रार्थना करती हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥१॥

हे श्रीप्यारेजू! यदि आपकी रुचि हो तो, आपकेलीला जनित आनन्दमें आसक्त रहने वाली इन सखियोंको और भी सुख-प्रदान करनेके लिये जल-क्रीडा करना उचित है ॥२॥

हे प्यारे ! जैसा मेरा चित्त क्रीड़ाओंमें आसक्त होता है, वैसा न शयन करने में और न भोजनादिकमें ॥३॥ हे श्रीप्राणनाथजू ! इसलिये आपकी लीलाकी कलाओंको जानने वाली इन सखियोंके साथ आप श्रीविरजाजीके जलमें इच्छानुसार क्रीड़ा कीजिये ॥४॥

काश्चित्तु कान्तांसधृतैकहस्ता वाणीर्द्विजानामवदन्विचित्राः ।
नीराजयन्त्यः पुनरेव कामं सर्वा ययुर्हर्षमपारपारम् ॥२८॥
एवं रासमुखं दत्त्वा रघुवंशविभूषणः । अतोषयत्प्रियां भक्तभावानुग्रहविग्रहः ॥२६॥

कुछ सखियाँ प्यारेजूके कन्धे पर अपना एक हाथ रखे हुई पक्षियोंकी अनेक प्रकारकी विचित्र बोलियाँ बोलने लगीं, पुनः सिंहासन पर श्रीकिशोरीजीके समीपमें श्रीप्यारेजूके विराजमान हो जाने पर, वे सभी अपनी इच्छानुसार दोनों श्रीयुगल सरकारकी आरती करती हुई, असीम सुखको प्राप्त हुईं ॥२८॥ इस प्रकार भक्तोंके भावानुसार अनुग्रह-मय दिव्यस्वरूपको धारण करने वाले, रघुवंशको भूषणके समान, सुशोभित करने वाले प्रभु श्रीरामभद्रजूने सखियोंको अपने सगुण आनन्द ब्रह्म स्वरूपकी लीलाका सुख प्रदान करके, अपनी प्रिया श्रीमिथिलेश नन्दिनीजूको सन्तुष्ट किया ॥२६॥

इति द्विषष्ठितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ त्रिषष्ठितमोऽध्यायः ।

सखियोंको दिव्यधाम का सुख प्रदान करनेके लिये प्यारेके साथ श्रीकिशोरीजीकी जल तथा नौका बिहार लीला ।

श्रीलोमश उवाच ।

तमुवाच विशालाक्षी प्रेमनिर्भरया गिरा । प्रार्थितं शृणु प्राणेश ! नाहमाज्ञापयामि ते ॥१॥
जलक्रीडाऽपि कर्त्तव्या रोचते यदि ते प्रिय ! । रासानन्दप्रसक्तानां वयस्यानां सुखाय च ॥२॥
यथा क्रीडासु मे चेतः प्रसक्तं भवति प्रिय ! । न तथा मम संवेशे न चैव भोजनादिषु ॥३॥
अत एव रमस्वात्र प्राणनाथ ! यथेप्सितम् । रासकेलिकलाज्ञाभिः सखीभिर्विरजाम्भसि ॥४॥

श्रीलोमशजी महाराज बोलेः—हे मुने ! विशाललोचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजू प्रेम भरी वाणीके द्वारा, श्रीप्यारेजूसे बोलीं:—हे श्रीप्राणनाथजू ! मैं आपको आज्ञा नहीं दे रही हूँ, बल्कि कुछ प्रार्थना करती हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥१॥

हे श्रीप्यारेजू! यदि आपकी रुचि हो तो, आपकेलीला जनित आनन्दमें आसक्त रहने वाली इन सखियोंको और भी सुख-प्रदान करनेके लिये जल-क्रीडा करना उचित है ॥२॥

हे प्यारे ! जैसा मेरा चित्त क्रीड़ाओंमें आसक्त होता है, वैसा न शयन करने में और न भोजनादिकमें ॥३॥ हे श्रीप्राणनाथजू ! इसलिये आपकी लीलाकी कलाओंको जानने वाली इन सखियोंके साथ आप श्रीविरजाजीके जलमें इच्छानुसार क्रीड़ा कीजिये ॥४॥

श्रीराम उवाच ।

एवं भवतु भावज्ञे! भवत्या साधु चिन्तितम् । त्वद्गाम्भीर्योत्तरं पारं न गन्तुं कोऽपि शक्नुयात् ॥५॥

श्रीलोमश उवाच ।

सिंहासनादथोत्तीर्य गौरश्यामौ महाछवी । दत्तकण्ठैकबाहू तौ भूतले रेजतुर्भृशम् ॥६॥
छत्रचामरहस्ताभिः सेव्यमानौ गती सताम् । कुञ्जात्कुञ्जान्तरं गत्वा विरजातटमीयतुः ॥७॥
नदीं नीलारुणश्वेतपीतपद्मैर्विशोभिताम् । मणिबद्धतटीं रम्यां निष्पङ्कां च सुधाजलाम् ॥८॥
हेमसद्मोल्लसत्कूलां नानाकुञ्जोपशोभिताम् । हंसकारण्डवाकीर्णां जलकुक्कुटसङ्कुलाम् ॥९॥
मितप्रवाहां चिन्मूर्त्तिं दृष्ट्वा पापघ्नदर्शनाम् । अतिप्रसन्नतां यातौ हंसमत्तेभगामिनौ ॥१०॥
दोलयित्वा ततः कुञ्जे किञ्चित्कालं स राघवः । साकं जनकनन्दिन्या पुष्पालङ्कारशोभितः ॥११॥
तासां केलिश्रमोत्सृत्यै सखीनां निकरैर्युतः । विवेशाखिलतापघ्नं विरजायाः सुधाजलम् ॥१२॥

श्रीरामभद्रजू बोलेः—सभीके भावको समझने वाली हे श्रीप्रियाजू ! आपकी गम्भीरताका पार पानेके लिये कोई भी समर्थ नहीं हो सकता, सखियोंके सुखार्थ आपने यह बहुत ही अच्छा विचार किया है ॥५॥ श्रीलोमशजी महाराज बोलेः—हे मुने ! परस्पर इस प्रकारका निश्चय हो जाने पर वे दोनों महान् छवि (सौन्दर्य) सम्पन्न, गौर-श्याम वर्ण, श्रीयुगलसरकार श्रीसीता-रामजी महाराज सिंहासनसे उतरकर पृथ्वीतल पर परस्पर अपनी एक बाँह रखे हुये अतीव शोभा को प्राप्त हुये ॥६॥

पुनः सन्तोंके एकही आधारस्वरूप वे दोनों प्रभू, हाथोंमें छत्र-चँवर आदि लिये हुई सखियोंसे सेवित होते हुये एक कुञ्जसे दूसरी कुञ्जमें जाते हुए श्रीविरजाजीके किनारे पहुँचे ॥७॥

नील, पीत, लाल, श्वेत वर्णके कमल पुष्पोंसे जो नदी सुशोभित है तथा जिसके दोनों किनारे मणियोंसे बँधे हुये हैं, जिसमें कीचका नाम भी नहीं, अमृतके समान जल भरा हुआ है और क्रीड़ा करनेके लिये जो सब प्रकार उपयुक्त है ॥८॥

जिसके दोनों ही किनारे, सुवर्णमय भवनोंसे चमक रहे हैं, जो समीपमें बहुत सी कुञ्जोंसे सुशोभित है, हंस, बत्तख आदि पक्षियोंसे युक्त और जलकुक्कुटोंसे जो पूर्ण है ॥९॥

बहाव जिनका अनुकूल है, दर्शनसे ही जो सभी पापोंका नाश करती हैं, उन नदीस्वरूपा चैतन्यमूर्त्ति श्रीविरजाजीका दर्शन करके हंस व मतवाले हाथीके समान मस्त चलने वाले श्रीयुगलसरकारको बहुत ही प्रसन्नता हुई ॥१०॥

फूलोंका शृङ्गार धारण किये हुये, उन श्रीरघुनन्दनप्यारेजूने श्रीजनकनन्दिनीजूके सहित कुछ देर तक कुञ्जमें झूला झूल कर सखीवृन्दोंके सहित उनके क्रीड़ाजनित श्रमको दूर करनेके लिये तीनों तापोंका नाश करने वाले श्रीविरजाजीके अमृत समान जलमें प्रवेश किया ॥११॥१२॥

तस्मिन्के हंसवंशेनः सत्रा पुत्र्या महीपतेः । रमयन्निमिसुताः सर्वा रेमे रमयतां वरः ॥१३॥
ताडमोत्क्षेपणाकर्षैः प्रससादाम्भसो भृशम् । जलसिञ्चनलीलायां मैथिली विजयं गता ॥१४॥
परिचायकभागं च पुनः कृत्वा सुदम्पती । अर्द्धमर्द्धं समादाय तस्थतुः केलिसस्पृहौ ॥१५॥
अभूद्यूथेश्वरी मुख्या श्रीमच्चन्द्रकला सखी । श्रीमज्जनकनन्दिन्याः प्रेयस्याः प्रेयसः प्रधीः ॥१६॥
चारुशीलापि कान्तस्य दशस्यन्दनजस्य च । अभूद् यूथेश्वरी मुख्या श्यामरूपविमोहिता ॥१७॥
प्रारम्भिता तदा केलिः परमानन्ददायिनी । गुप्तप्रकटभेदेन द्विविधा ध्यानमङ्गला ॥१८॥
न चचालाचलापुत्रीदशस्यन्दनपुत्रयोः । अपि धारा तरङ्गिण्यास्तामुदीक्षितुमुत्सुका ॥१९॥
वारिजानां परागैश्च पानीयमतिशोभनम् । केशप्रसूनगन्धैश्च सखीनां मिश्रितं बभौ ॥२०॥
सीतारामप्रधानानां सखीनां पक्षयोस्तयोः । मिथः क्रीडा समारब्धा स्वं स्वं विजयमिच्छतोः ॥२१॥
ततः कञ्जैर्मृणालैश्च सलिलोत्क्षेपणादिभिः । अभिभूतस्तदा यूथः सखीनां राघवस्य च ॥२२॥

उस जलमें सूर्यके समान सूर्यवंशको प्रकाशित करनेवाले, खिलाड़ियोंमें परम श्रेष्ठ, वे श्रीरामभद्रजू पृथिवीके पति श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके सहित निमिवंश-कुमारियोंको अपनी लीला द्वारा आनन्दित करते हुये उनके सुखसे सुखी हुये ॥१३॥

जल सिञ्चन लीलामें विजयको प्राप्त हुई श्रीमिथिलेश नन्दिनीजू हाथोंसे जलको पीटने, व उछालने तथा खींचने आदिकी क्रीड़ा द्वारा बड़ी प्रसन्न हुई ॥१४॥ श्रीयुगल-सरकार खेलनेकी इच्छासे अपनी अनुचरियोंके दो भाग करके एक-एक भाग लेकर खड़े हो गये ॥१५॥

तब अत्यन्त तीक्ष्ण-बुद्धि श्रीचन्द्रकलाजी, परमप्यारेकी भी परमप्यारी श्रीमिथिलेश-दुलारीजू के सखीयूथकी प्रधान प्रेरिका हुईं और श्रीचारुशीलाजी श्यामरूप पर मुग्ध हो श्रीदशरथनन्दन प्राणप्यारेजूके सखीयूथकी मुख्य प्रेरिका बनीं ॥१६॥१७॥

तब ध्यानसे मङ्गल तथा भगवत्तन्मयता रूपी आनन्द-प्रदान करने वाली, गुप्त-प्रकट भेदसे दो प्रकारकी जल-क्रीड़ा प्रारम्भ हुई ॥१८॥

श्रीभूमिनन्दिनीजू एवं श्रीदशरथनन्दनजूकी उस जल क्रीड़ाका दर्शन करनेके लिये उत्सुक हुई श्रीविरजाजीकी धारा भी, स्थिर हो गयी ॥१९॥

कमलके पुष्पोंके पराग व सखियोंके केशोंमें गुथे हुये फूलोंकी सुगन्धसे मिला हुआ, श्रीविरजाजीका जल अतीव सोहावन हो गया ॥२०॥

अपनी-अपनी जयकी इच्छा वाले श्रीसीतारामजी श्रीयुगलसरकार प्रधाना सखियोंके दोनों पक्ष में परस्पर जल-क्रीड़ा प्रारम्भ हुई ॥२१॥ तत्पश्चात् कमल-पुष्प व कमलके डण्ठल तथा जल उछालने आदिके द्वारा श्रीरामभद्रजूकी सखियोंका यूथ हार गया ॥२२॥
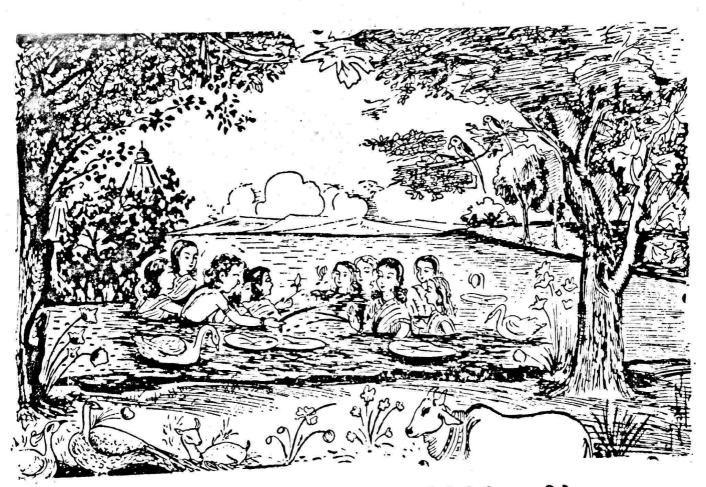
अङ्गभूता बालिका सखियोंके सुखार्थ, श्रीकिशोरीजीकी अनुमतिसे बालक श्रीरामभद्रजू, श्रीविरजाजीमें जल विहार कर रहे हैं।

विमला चारुशीलां च जग्राहावर्तरूपया । स आनीतः स्वके यूथे शशाङ्ककलया प्रियः ॥२३॥
आत्मरूपं समास्थाय स्रजा बद्ध्वा रसेश्वरम् । दर्शयामास सर्वेशं प्रियायै मुक्तमूर्द्धजम् ॥२४॥
प्रियोपस्थं प्रियं प्रेक्ष्य प्रियाजयमघोषयन् । मुदा कटाक्षयन्त्यो हि प्रियाल्यो हास्यपण्डिताः ॥२५॥
उक्तप्रियाजयं रामं सखीभिरथ ! मोचितम् । आज्ञानुवर्तिनं प्रीत्यालिलिङ्गोत्थाय सा स्वयम् ॥२६॥
हर्म्याण्यारुह्य निर्झर्य्यां कूर्दनं च निमज्जनम् । गुप्तप्रकटरूपाभ्यां तरणं चक्रतुः पुनः ॥२७॥
इत्थं नानाविधं कृत्वा श्रीरामः प्रियया‍ऽन्वितः । पाथोविहारमालीनां प्रमोदाय रसात्मकः ॥२८॥
बहिर्निष्क्रम्य सर्वाभिर्दुहित्रा भूपतेः समम् । तटोपरुक्मभवने आर्द्रवस्त्राण्यमुञ्चत ॥२९॥
परिधाय सुवस्त्राणि कोमलानि प्रियाप्रियौ । केशप्रसाधनं तत्र चक्रतुस्तौ परस्परम् ॥३०॥
छबिश्रृङ्गारसङ्काशौ जनदृष्टिमनोहरौ । सर्वाभरणवस्त्राढ्यौ रेजतू रत्नमण्डपे ॥३१॥
सख्यस्तथाविधास्तत्रालङ्कृताः कमकप्रभाः । स्वसेवावस्तुहस्ताश्च विरजापार्श्वयोर्द्वयोः ॥३२॥

श्रीबिमलाजीने श्रीचारुशीलाजीको पकड़ लिया और श्रीचन्द्रकलाजी भँवर रूप द्वारा प्यारे जीको अपने यूथमें ले आईं पुनः उन्होंने अपने श्रीचन्द्रकला स्वरूपमें आकर, समस्त रसोंके कारण स्वरूप सभी नियामकों के नियामक, खुले केशवाले श्रीप्यारेजीको पुष्प मालासे बाँधकर श्रीप्रियाजूको दिखाया ॥२३॥२४॥

श्रीप्रियाजूके समीपमें मालासे बँधे हुये श्रीप्राणप्यारेजूका दर्शन करके, हास्यरसमें तीक्ष्ण-बुद्धिवाली श्रीप्रियाजूके पक्षकी सखियाँ बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक, श्रीप्यारेजूकी ओर कटाक्ष करती हुई, श्रीप्रियाजूका जय-घोष करने लगीं ॥२५॥

सखियोंने योगियोंके हृदयविहारी श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीप्यारेजीको श्रीप्रियाजूकी जय बोलने पर बन्धन मुक्तकर दिया और श्रीप्रियाजूने स्वयं उठकर उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया ॥२६॥

पुनः किनारेके बने हुये महलों पर चढ़कर श्रीविरजाजीमें कूदने, डुबकी लगाने व गुप्त प्रकट रूपोंसे तैरने की लीला करने लगे ॥२७॥

इस प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप प्रभु श्रीरामजी सखियोंके विनोदके लिये, अनेक प्रकार का जल विहार करके सब सखियोंके सहित, श्रीकिशोरीजीके साथ विरजाजीसे बाहर निकलकर उन्होंने किनारेके स्वर्ण भवनमें गीले वस्त्रोंको उतारा ॥२८॥२९॥

पुनः दोनों श्रीप्रियाप्रियतम सरकारने सुन्दर कोमल वस्त्रोंको धारण करके परस्पर केशोंको सजाया ॥३०॥ छबि-श्रृङ्गारके सदृश, अतुलनीय सौन्दर्य युक्त, दर्शन करने वालोंके नेत्र व मनको हरण करने वाले, सभी वस्त्र भूषणोंसे अलङ्कृत हो वे दोनों सरकार रत्नमय मण्डपमें विराजमान हुये ॥३१॥

उसी प्रकार वस्त्र भूषणादिका श्रृङ्गार धारणकी हुई, सुवर्णके समान कान्तिवाली सखियाँभी अपने हाथोंमें सेवाकी वस्तुयें लीहुई श्रीयुगलसरकारके दाहिने-बायें भागमें सुशोभित हुईं ॥३२॥

श्रृङ्गारार्तिक्यमथ ता विधाय परमादरात् । भोज्यं चतुर्विधं ताभ्यामयच्छन् षड्रसैर्युतम् ॥३३॥
मणिपीठे समास्थाय कोमलांशुकवेष्टिते । भोजयामासतुः प्रेम्णा मिथः श्रीदिव्यदम्पती ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

सुषमामाधुरीमाराद्वीक्षमाणास्तयोः सुखम् । महानन्दरसं नेत्रपुटाभ्यां तृषिताः पपुः ॥३५॥
अलभ्यो दर्शनानन्दो ह्येष तत्कृपया विना । प्रतिश्रुत्येत्यहं वच्मि भुजमुत्थाय वल्लभे ! ॥३६॥
चन्द्रकलोपसंस्था तु सव्ये स्नेहपरा द्वयोः । धृत्वा करेण भृङ्गारं पश्यन्त्यमितसौभगम् ॥३७॥
चारुशीला तथा दक्षे पार्श्वके सुमहाद्युतिः । कर्करीं स्वकरे धृत्वा संस्थिताऽऽलिव्रजान्विता ॥३८॥
एवं च भोजनं तत्र कारयित्वा यथेप्सितम् । पाययित्वा सुधातोयं ताभ्यां वीटीरथार्पयन् ॥३९॥
इङ्गितं प्रेक्ष्य मैथिल्याः श्रीमल्लक्ष्मीनिधे स्वसुः । अचिरादानयामासू राजनौकां सुविस्तृताम् ॥४०॥
तां नानारचनोपेतां मणिरत्नविभूषिताम् । मृदुपरिच्छदैः स्निग्धैः शोभमानां ध्वजोच्चकाम् ॥४१॥

तदनन्तर श्रृङ्गार आरती करके उन सखियोंने बड़े ही आदर पूर्वक, श्रीयुगल सरकारको छः रसोंसे युक्त, चारो प्रकारके भोजनोंको अर्पण किया ॥३३॥

कोमल वस्त्र बिछी हुई मणिमय चौकी पर विराजमान होकर दिव्यदम्पती अर्थात् अप्राकृत श्रीसाकेत-धाम-विहारी, अनन्त ब्रह्माण्डनायक युगलसरकार श्रीसीतारामजी महाराज परस्पर एक दूसरेको प्रेमपूर्वक भोजन कराने लगे ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले–हे प्रिये! दर्शनोंकी अत्यन्त प्यासी सखियाँ, श्रीयुगलसरकार की सर्वश्रेष्ठ छबि-माधुरीका दर्शन समीपसे करती हुई अपने नेत्ररूपी दोनोंसे उस महान आनन्द रसका पान करने लगीं ॥३५॥ हे प्रिये ! मैं भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि श्रीयुगल सरकारका यह दर्शन सुख बिना उनकी कृपाके नहीं मिल सकता है ॥३६॥

श्रीचन्द्रकलाजीके समीपमें श्रीस्नेहपराजी दोनों सरकारके बायें भागमें सुवर्णका जलपात्र लिये, उनके असीम सौन्दर्य का दर्शन करती हुई खड़ी हो गयीं ॥३७॥

अत्यन्त कान्ति सम्पन्ना श्रीचारुशीलाजी अपने करकमलमें सुवर्णकी झारी लेकर सखी-वृन्दोंके सहित श्रीयुगलसरकारके दाहिनी ओर विराजमान हुईं ॥३८॥

इस प्रकार सखियोंने अपनी इच्छानुसार श्रीयुगलसरकारको भोजन कराके तथा अमृतके समान लाभकारी सुन्दर जल पिलाकर, उन्हें पानका वीरा अर्पण किया ॥३९॥

श्रीमान् लक्ष्मीनिधिभैयाजूकी बहिन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके संकेतको देखकर दोनों प्रधान सखियोंने शीघ्र पर्याप्त लम्बी चौड़ी राजनौका मंगाई ॥४०॥

अनेक प्रकारकी सजावटोंसे सुसज्जित, मणि व रत्नोंसे अलंकृत, कोमल तथा सचिक्कण वस्त्रों से शोभायमान, ऊँची ध्वजावाली उस नौका पर ॥४१॥

आरुरोहानवद्याङ्गी मैथिली प्रेयसा सह । संवृता स्वसखीवृन्दैरमरीभिर्यथा शची ।।४२।।
छत्रचामरहस्ताश्च काश्चिद्व्यजनपाणयः । मयूरपिच्छगुच्छांश्च रत्नदण्डोपशोभितान् ।।४३।।
आदायाङ्ककरे काश्चिद्दर्पणांस्तावशीलयन् । काश्चिद्राजोपचारांश्च गृहीत्वा सम्मुखे स्थिताः ।।४४।।
नाना गत्या च वाद्यानि काश्चित्ता वादयन्ति हि । अदृष्टपूर्वं विविधं चक्रिरे नृत्यमङ्गनाः ।।४५।।
तयोरेव स्वरूपं च लीलां धाम च नाम च । ननृतुस्ता हि गायन्त्यः पद्यैः स्वरचनात्मकैः ।।४६।।
तत्परास्तद्गतप्राणास्तत्पदाम्भोजषट्पदाः । मिथिलायां समुत्पन्नाः सूरयोऽभीष्टयोनिषु ।।४७।।
द्रष्टुं पुत्र्या विदेहस्य विहारं परमाद्भुतम् । आविर्भूतास्तदानीं ते मृगपक्ष्यादिरूपिणः ।।४८।।
दम्पत्योस्ते विहारं चापश्यन्ननिमिषेक्षणाः । तेषां भाग्योदयं दिव्यं न शेषो वक्तुमर्हति ।।४९।।
येषां प्रिये! विहारोऽयं तयोः स्याद्दृष्टिगोचरः । वाङ्मनोगोचरो यद्वा त एवं पुण्यकृत्तमाः ।।५०।।

जैसे देवाङ्गनाओंके सहित इन्द्राणी (शची) नौकापर चढ़ती हुई उत्कर्षको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार सर्वाङ्गसुन्दरी श्रीमिथिलेशदुलारीजी श्रीप्राणप्यारेजूके समेत, अपनी सखियोंके साथ नौका पर चढ़ते हुये, शोभाको प्राप्त हुईं ।।४२।।

कुछ सखियाँ छत्र-चामर हाथमें ली हुई कुछ पङ्खोंको हाथमें धारणकी हुई, कुछ बहुमूल्य चमकीले रत्नों द्वारा बनी हुई दण्डियोंसे सुशोभित मोरछलोंको ।।४३।।

कुछ सखियाँ दर्पणको अपनी हथेलीमें ली हुई, दोनों सरकारकी सेवा करने लगीं और कुछ राजोचित सेवोपयोगी सामग्रियों को ली हुई उनके सम्मुख विराजीं ।।४४।।

कुछ सखियाँ नाना प्रकारकी गतिसे बाजाओंको बजाने लगीं, और कुछ, पूर्वमें कभी न देखा हुआ अनेक प्रकारका नृत्य करने लगीं, कुछ दोनों सरकारके नाम, रूप, लीला धाम महिमा सम्बन्धी अपने रचे हुये पदोंको गाती हुई नृत्य करने लगीं ।।४५।।४६।।

हृदयमें श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूकी एक प्रधानता रखने वाले, उन्हींमें अपने प्राणोंको अर्पण किये हुये तथा उन्हींके श्रीचरणकमलोंमें भौंरेके समान अपनी चित्तवृत्तिको लगाये हुये, उनकी महिमा जानने वाले, श्रीमिथिलाजीमें अपनी इच्छामयी योनियोंमें उत्पन्न दिव्यधाम-निवासी, भक्तवृन्द, श्रीविदेहनन्दिनीजूके उस परम आश्चर्यमय विहारका दर्शन करनेके लिये, उस समय मृग–पक्षी आदि स्वरूपोंमें प्रकट हो गये और पलक तक मारना छोड़कर, वे श्रीयुगलसरकारके विहारका दर्शन करने लगे । उनके इस दिव्य भाग्योदयका वर्णन दो सहस्र जिह्वावाले शेष भी करनेको समर्थ नहीं हैं ।।४७।।४८।।४९।।

हे प्रिये ! जिन सौभाग्यशालियोंको श्रीयुगलसरकारके इस विहारका प्रत्यक्षमें दर्शन होगया अथवा जिनकी वाणी द्वारा वर्णन करने अथवा मन द्वारा मनन करनेमें सुलभ हो गया, वे निश्चय ही सभी पुण्यवानोंमें परम श्रेष्ठ हैं ।।५०।।

अप्राकृतजनैर्भाव्यो विहारश्चायमद्भुतः । स्वप्नेऽपि च न वै द्रष्टुं शक्यतेऽधमजन्तुभिः ॥५१॥
सोऽयं ते कथितो देवि! यथाशक्ति यथा श्रुतम् । भावयन्ती सदा तं त्वं जीवन्मुक्ता भविष्यसि ॥५२॥

क्योंकि इस विहारका ध्यान भी अप्राकृत (दिव्य साकेतधाम-निवासी भक्त) जन ही कर सकते हैं अधम जीवोंको इस दिव्य विहारका दर्शन स्वप्नमें भी असम्भव है ॥५१॥

हे देवि ! अर्थात् दैवीमति युक्ते ! श्रीयुगलसरकारके इस विहारको मैंने जिस प्रकार श्रीलोमशजी महाराजके मुखारविन्दसे श्रवण किया था, उसी प्रकार तुम्हारे प्रति यथा-शक्ति कथन किया है, उसका सदा ध्यान करती हुई तुम, जीतेजी मुक्त हो जावोगी ॥५२॥

इति त्रिषष्टितमोऽध्यायः

—❀❀❀—

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

श्रीकिशोरीजीकी आज्ञासे लीलादेवी का प्यारेको सवन अयोध्या पहुँचाकर सखियोंको प्राप्त सुख स्वप्नवत् अनुभव कराना ।

श्रीलोमश उवाच ।

बहुरात्रि गतां वीक्ष्य सख्यश्चैव प्रियाप्रियौ । सालसाम्भोजपत्राक्षौ नित्यनूतनदम्पती ॥१॥
सुकुमारौ सुभाङ्गौ च जृम्भमाणौ मुहुर्मुहुः । उभौ तौ प्रार्थयामासुर्बद्धाञ्जलिपुटा नताः ॥२॥

सख्य ऊचः ।

अहो! वल्लभ! रासेश! रसज्ञे! प्राणवल्लभे! । दृश्यतां द्विजराजोऽयं नैऋतीं दिशमास्थितः ॥३॥
विसृज्यतामयं तस्मान्नौविहारो मनोहरः । इदानीमालिभिः सार्द्धं संवेशायाशु गम्यताम् ॥४॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले—हे मुने! सखियाँ अधिक रात्रि व्यतीत हुई देखकर, कमलदलके समान सुन्दर नयन, सदा एकरस नवीन रहनेवाले, युगल सरकारको आलस्य युक्त देखकर ॥१॥

बारम्बार जम्हुआई लेते हुये उन सुकुमार अवस्था युक्त सुन्दर प्रकाशमान सभी अङ्गोंवाले दोनों सरकारको नमस्कार करके, हाथ जोड़े हुये प्रार्थना करने लगीं ॥२॥

सखियाँ बोलीं:—हे रासेश! अर्थात् रसोपासक भक्तोंको अपना स्वामी मानने वाले हे! प्यारे! हे रसज्ञे (श्रीप्यारेजूके स्वरूपको वस्तुतः जानने वाली) श्रीप्राणप्यारीजू! देखिये चन्द्रदेव दक्षिण-पश्चिमकी दिशामें अब पहुँच गये हैं अर्थात् अब अर्द्ध रात्रिसे ऊपर समय जारहा है ॥३॥

अत एव अब इस मनोहर नौका-विहारको विश्राम दीजिये और सखियोंके समेत शयन करनेके लिये शीघ्र पधारनेकी कृपा कीजिये ॥४॥

श्रीलोमश उवाच ।

तथेत्युक्त्वा विशालाक्षौ मुक्तारालशिरोरुहौ । न्यस्तान्योन्यभुजौ नाव आगत्योत्तेरतुस्तटम् ॥५॥
सालिभिर्मौक्तिकागारे पयःपानं विधाय च । पर्यङ्कोपरि भव्याङ्गावशयातामुशच्छवी ॥६॥
शनैराह तदा रामः प्रणयात्प्रणयप्रियाम् । स्पृष्ट्वा चिबुकमब्जाक्षो मुखासक्तविलोचनः ॥७॥

श्रीराम उवाच ।

आवयोर्न हि भेदोऽस्ति न वियोगश्च वस्तुतः । प्राणभूताऽसि मे त्वं च प्राणभूतोऽस्मि ते यतः ॥८॥
आवयोरवतारश्च सुखार्थं सर्वदेहिनाम् । मर्यादाशिक्षणार्थाय चरित्रैर्लोकवेदयोः ॥९॥
तस्मात्प्रत्यक्षरूपेण मयीहस्थे त्वया सह । लोकापवादो भविता मर्यादोल्लङ्घनं तथा ॥१०॥
इतोऽहं यदि गच्छामि वियोगाधिं कथं त्विमाः । सहिष्यन्ते प्रिये! सख्यो रञ्जिता या यथेप्सितम् ॥११॥
पश्य कीदृङ् निरीक्षन्ते शयानौ नौ मृगीक्षणाः । सौकुमार्यं समीक्ष्यास्यां क्लेष्टुमुत्सहते तु कः ॥१२॥
मर्यादोलङ्घनभयात्केवलं गन्तुमिच्छते । कृपयोपायमाचक्ष्व यतो नैताः स्पृशेदघम् ॥१३॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले:—हे मुने! सखियोंकी इस प्रार्थनाको सुनकर, खुले घुंघुराले केश वाले, वे विशाल नयन श्रीयुगलसरकार "ऐसा ही करेंगे" कहकर, एक दूसरेकी भुजाओंको अपने कन्धे पर रखे हुये, किनारे आकर नावसे उतरे ॥५॥

पुनः सब सखियों सहित मोती महलमें पधार कर, दुग्धपान करके ध्यान करने योग्य मनोहर छबिसे युक्त श्रीअङ्गवाले दोनों सरकारोंने पलङ्गपर शयन किया ॥६॥

उस शयनावस्थामें प्रेमपर है प्यार जिनका उन अपनी श्रीप्रियाजीके श्रीमुखारविन्दका टक-टकी लगाकर दर्शनकरते हुये तथा अपने कमलदलके समान हाथकी सुकोमल अङ्गुलियोंसे उनकी ठोढ़ीका स्पर्श करके घट-घटमें रमण करनेवाले प्यारे श्रीरामभद्रजू, बड़े प्रेमपूर्वक धीरेसे बोले ॥७॥

हे श्रीप्रियाजू! हमारे और आपमें कुछ भेद है नहीं, न हमारा और आपका कभी वियोग ही सम्भव है, क्योंकि आपतो मेरी प्राण स्वरूपा हैं और मैं आपका प्राण स्वरूप हूँ ॥८॥

हमारा और आपका अवतार अपने शील-स्वभाव, आचरणादिकोंके द्वारा सभी प्राणियोंको सुख तथा अपने आदर्शमय चरित्रोंके द्वारा लोक और वेदकी मर्यादाकी शिक्षा देनेके लिये है॥९॥

इस लिये आपके सहित प्रत्यक्षरूपमें यहाँ मेरे रह जाने पर, लोक-निन्दा और मर्यादा का उलङ्घन भी होगा ॥१०॥ और यदि मैं यहाँसे चला जाता हूँ तो मेरे द्वारा इस प्रकारका इच्छा-नुसार आनन्द प्राप्त की हुई सखियाँ, वियोगका कष्ट किस प्रकार सहन कर सकेंगी?॥११॥

हे श्रीप्रियाजू! देखिये हरिणीके समान नेत्र वालो, ये सखियाँ शयन किये हुये हम दोनोंका उत्सुकता पूर्ण दृष्टिसे किस प्रकार दर्शन कर रही हैं ? इनकी सुकुमारताको देखकर, भला इन्हें कष्ट देनेका कौन उत्साह करेगा ? ॥१२॥ मेरे यहीं रहजानेसे लोकमर्यादा भङ्ग हो जावेगी, मैं केवल इसी भयसे श्रीअयोध्याजो जाना चाहता हूँ, इस लिये कृपा करके मुझे वह उपाय बतलाइये, जिससे मेरे वियोगका दुःख आपकी इन सखियोंको छू भी न सके ॥१३॥

न परोक्षोऽस्मि ते जातु निमिषार्द्धमपि प्रिये ! । नानारूपैश्च सन्तोषतत्परस्तव चानिशम् ॥१४॥
स्वविचारो मया प्रोक्तो भवत्वित्येव तन्न तु । अत एव यथा योग्यं भवती वक्तुमर्हति ॥१५॥
अहं ते सर्वदा कान्ते ! केवलं कार्यसूचकः । त्वं कर्त्री कारयित्री च नात्र कार्या विचारणा ॥१६॥

श्रीलोमश उवाच ।

श्रुत्वा प्राणप्रियस्यैतद्वाक्यं वाक्यविशारदा । धैर्यमालम्ब्य तं श्लक्ष्णमवोचत्साश्रुलोचना ॥१७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

यदुक्तं भवता प्रेष्ठ! तत्सत्यं कार्यमेव हि । आसां सुखाय कर्त्तव्यमावाभ्यामपि चिन्तनम् ॥१८॥
मम प्राणप्रिया ह्येताः सर्वाः सख्यः सुलक्षणाः । धर्मज्ञा रतिमोहिन्यो विदुष्यः प्रेमविग्रहाः ॥१९॥
सेवानन्दाः स्वभावज्ञा इङ्गितज्ञा मृगीदृशः । श्रेष्ठाः कारुण्यपात्राणां नोपेक्ष्या जातुचित्त्वया ॥२०॥
सुखमासां सुखेनैव दुःखं दुःखेन मे प्रिय ! । एतद्विचार्य कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं विदुषा त्वया ॥२१॥

हे प्रिये ! आपके लिये तो मैं कभी आधे पलके लिये भी दृष्टिसे ओझल नहीं होता, बल्कि अनेक रूपोंसे रात-दिन आपको सन्तुष्ट रखनेमें ही तत्पर रहता हूँ, यह केवल अपना विचार मैंने आपसे निवेदन किया है, परन्तु ऐसाही हो अर्थात् हम यहाँसे चले ही जायें, यह भाव हमारा नहीं है । इसलिये मुझको अब जो उचित हो, वही आप कहनेकी कृपा करें ॥१४॥१५॥

हे श्रीप्रियाजू ! मैं तो सदा आपको केवल कार्यकी सूचना ही देनेवाला हूँ, करने कराने वाली तो आपही हैं, अतएव मेरे कहने पर आप किसी प्रकारका सन्देह न करेंगी, जो उचित हो वही कहें, आप जो कहेंगी मैं वही करूँगा ॥१६॥

श्रीलोमशजी बोले:—हे मुने श्रीप्राणप्यारेजूके इस वचनको सुनकर, शब्दके भावको पूर्ण समझने वाली, श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके नेत्रोंमें आँसू भर आये, तथापि धीरज धारण करके श्रीप्यारेजूसे, बड़ी कोमल वाणीसे बोलीं ॥१७॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! आपने जो कहा है वह सत्य है और वही करना भी उचित है, परन्तु हम और आप दोनों को इन सखियोंके सुखके लिये कुछ विचार भी करना आवश्यक है क्योंकि ये सभी सखियाँ प्रेमकी मूर्त्ति, सब रहस्योंको जानने वाली, अपने सौन्दर्यसे रतिको भी मुग्ध करने वाली और धर्मके रहस्यको भली भाँति जानने वाली, सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं ॥१८॥१९॥

ये मेरी सेवामें ही आनन्द मानने वाली तथा मेरे स्वभाव व इशारों को समझने वाली, सभी कृपा पात्रोंमें श्रेष्ठ हैं, अत एव इनकी आप कभी उपेक्षा न कीजियेगा ॥२०॥

हे प्यारे ! इन सखियोंके सुखसे ही मुझे सुख और दुःखसे दुःख है, ऐसा विचार करके सब उपायों को जानने वाले आप जैसा करनेमें इन सभीको सुख समझें वैसा ही कीजिये ॥२१॥

संयोगसुखमेवासां यथा स्यात्प्राणवल्लभ ! । चिराय नचिरादेव तथा कर्तुं समुद्यताम् ॥२२॥

श्रीलोमश उवाच ।

प्रिययोक्तं निशम्योच इदं रघुकुलोद्वहः । धन्या अहो इमा आल्यो यासु त्वच्चेदृशी कृपा ॥२३॥
मम मान्यतमा ह्येताः सम्बन्धात्तव शोभने ! । आसां प्रियं करिष्यामि यथा शक्ति तु सर्वदा ॥२४॥
शृणु वक्ष्यामि ते स्वप्नं निशान्तेऽद्यावलोकितम् । भविष्यं तेन बुद्ध्वैहि सन्तोषं भक्ततत्परे ॥२५॥
अहं क्रीडासमासक्तः सखिभिर्धृतकन्दुकः । दृष्टो ज्योतिर्विदा तर्हि पथिकेनाग्रजन्मना ॥२६॥
उक्तोऽस्मि तेन विदुषा एहि पश्यामि ते करम् । ब्राह्मणो गणको ह्यस्मि भद्रं ते नृपनन्दन! ॥२७॥
इत्युक्तस्तुमुपागम्य प्रणम्याहं पुरःस्थितः । आशीर्भिरभिनन्द्यासौ हस्तचिह्नान्युदैक्षत ॥२८॥
पुनराह भविष्यं मे शृणु वत्स ! निगद्य सः । साकं महर्षिणा त्वत्स्यादुगमनं परराष्ट्रकम् ॥२९॥
तत्रत्यराजपुत्र्या च तवोद्वाहो भविष्यति । कीर्त्तिस्त्रिष्वेवर्लोकेषु तव वत्स ! तनिष्यति ॥३०॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! इन सखियोंको आपका संयोग-सुख, जिस प्रकार सदाके लिये शीघ्र प्राप्त हो जावे, वैसा ही उपाय करनेके लिये उद्यत होवें ॥२२॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले:—हे मुने! श्रीप्रियाजूके इन वचनोंको सुनकर, श्रीरघुकुलनन्दनजी बोले—हे सर्वगुणसुन्दरी श्रीप्रियाजू! ये सखियाँ धन्य हैं जिनके प्रति आपकी ऐसी असीम कृपा है। आपके सम्बन्धसे ये निश्चय ही, मेरे द्वारा सबसे अधिक सम्मान पानेके योग्य हैं अत एव मैं यथा-शक्ति अवश्य इन सभीका प्रसन्नता कारक-कार्य सदाही करता रहूँगा ॥२३॥२४॥

हे भक्तोंके हित चिन्तनमें सदा तत्पर रहनेवाली श्रीप्रियाजू! आज प्रातः कालके समयमें मैंने जो स्वप्न देखा था, उसे आपके प्रति निवेदन करता हूँ आप श्रवण कीजिये और उस स्वप्नसे भविष्यकी बातोंको समझकर सन्तोषको प्राप्त होइये ॥२५॥

हे श्रीप्रियाजू! अपने हाथोंमें गेन्दको लिये हुये मैं सखाओंके साथ खेलमें लगा था, उस समय एक यात्री, ज्योतिषी, ब्राह्मण पण्डितने हमें देखा ॥२६॥

उन पण्डितजीने मुझसे कहा—हे नृपनन्दन ! आपका कल्याण हो, मैं ब्राह्मण ज्योतिषी हूँ, आओ आपका हाथ देखूं ॥२७॥ ब्राह्मणदेवकी आज्ञा सुनकर मैं उसके पास जाकर प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया, वह ज्योतिषी अनेक प्रकारके आशीर्वादों द्वारा प्रसन्न करके, मेरे हाथोंके चिह्न देखने लगा ॥२८॥

पुनः हे वत्स! सुनिये—ऐसा कहकर वह, मुझे भविष्य बताने लगा कि आप किसी महर्षिजीके साथ दूसरे राजाके राज्यमें पधारेंगे ॥२९॥ वहाँकी श्रीराजपुत्रीजूसे आपका विवाह होगा । हे वत्स! उस विवाहसे आपका यश तीनों लोकोंमें विस्तार को प्राप्त होगा ॥३०॥

अद्यैव मिथिलायात्रा सप्रमोदवनस्य ते । तव राजकुमार्य्या च सङ्गमोऽपि विलोक्यते ॥३१॥

श्रीराम उवाच ।

एवं भविष्यमाभाष्य भविष्यज्ञो द्विजोत्तमः । निर्जगाम बहिर्दृष्ट्यास्तदा मात्राऽस्मि बोधितः॥३२॥
दिनचर्यानिमग्नस्तु सायं स्वप्नमथास्मरम् । सत्यासत्यपरीक्षार्थं प्रमोदवनमाप्तवान् ॥३३॥
तद्दृष्ट्वा निष्फलं मत्वा स्वप्नं तस्मिन्मुदा ऽचरम् । तदानीमेव त्वत्सख्या इहानीतो वनान्वितः॥३४॥
इत्थं प्राणेश्वरि! स्वप्नः सत्यमेव विभाति मे । यतोऽस्मि सवनः प्राप्तो मिथिलामद्य पावनीम्॥३५॥
पुनः समागमोऽप्येव भवत्या साम्प्रतं मम । दुर्लभो मनसा चापि संप्राप्तो रसवर्षिणि ! ॥३६॥
अतो महर्षिणा सार्द्धमायातं मे भविष्यति । वाटिकायां तदा मां त्वं द्रक्ष्यसि स्वालिभिः सह ॥३७॥
तदाप्रभृति संयोग आसां नित्यं भविष्यति । वियोगः प्रेमवृद्ध्यर्थं मनागेव भविष्यति ॥३८॥
मिथिलावासिनामर्थे वियोगाक्षमचेतसाम् । त्वया सार्द्धं सदाऽत्रैव विहरिष्यामि चालिभिः ॥३९॥
यास्याम्यपररूपेण त्वामुद्वाह्य निजां पुरीम् । सन्तोषाय हि सर्वेषामयोध्यापुरवासिनाम् ॥४०॥

हे श्रीलालजी ! आज ही श्रीप्रमोदवन सहित आपकी यात्रा श्रीमिथिलाजी को होगी और आज ही श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे आपका मिलन होगा ॥३१॥

श्रीरामभद्रजू बोले—हे श्रीप्रियाजू ! भविष्य को जानने वाला श्रेष्ठ ब्राह्मण, इस प्रकार मेरे भविष्यको बतलाकर, मेरी आँखोंसे ओझल होगया, उसीसमय श्रीअम्बाजीने मुझे जगा दिया॥३२॥

शयनसे उठकर मैं अपनी दिनचर्या में लग गया । सायंकाल के समय मुझे पुनः स्वप्न का स्मरण हो आया, तब उसके सत्य-झूठकी परीक्षाके लिये मैं प्रमोदवन पहुँचा ॥३३॥

श्रीप्रमोदवन को अपनी श्रीअयोध्याजीमें पाकर, स्वप्न को सर्वथा झूठ मानकर, उसमें आनन्द पूर्वक विचरने लगा । उसी समय आपकी सखी श्रीचन्द्रकलाजी प्रमोदवनके सहित मुझे यहाँ ले आईं ॥३४॥ हे श्रीप्राणेश्वरीजू! इस प्रकार वह स्वप्न मुझे अब सत्यही प्रतीत हो रहा है, क्योंकि तदनुसार ही मैं इस समय श्रीप्रमोदवनके सहित सर्वाङ्गपावनी श्रीमिथिलाजीमें विराजमान हूँ ॥३५॥ हे रस (आनन्द) की वर्षा करनेवाली श्रीप्रियाजू । पुनः आपसे मिलना, जो मुझे मनसे भी दुर्लभ था वह भी इस समय प्राप्त है ॥३६॥

इन दो बातोंके सत्य हो जानेसे मुझे विश्वास है, कि किसी महर्षिजीके साथ मेरा यहाँ अवश्य आगमन होगा, उस समय आप सखियोंके समेत फुलवारीमें मेरा पुनः दर्शन करेंगी ॥३७॥

उस समयसे आपकी सखियोंको मेरा नित्य संयोग सुख प्राप्त होगा और यदि वियोग होगा भी तो प्रेम वृद्धिके लिये स्वल्प ही । जिन मिथिलानिवासियोंका चित्त आपका वियोग सहन करनेमें असमर्थहोगा, उनके लियेमैं सदा सखियोंके सहित आपकेसाथ यहीं विहार करता रहूँगा ॥३८॥३९॥

दूसरे स्वरूपसे श्रीअयोध्यानिवासी तथा अन्य सभीको सन्तोष करानेके लिये मैं आपके साथ विवाह करके अपनी श्रीअयोध्यापुरी जाऊँगा ॥४०॥

एवं कृते हि सर्वेषां भविष्यति हितं सदा । मर्यादा पालनं चापि तथा स्याल्लोकवेदयोः ॥४१॥
मिथिलावासिभिर्जन्मबाललीला तवेक्षिता । चक्षुष्फल प्रपद्यन्तां दृष्ट्वोद्वाहमहोत्सवम् ॥४२॥
अनुमोदस्व मे वाक्यमिदमानन्ददित्सया । अहो प्राणप्रिये ! धैर्यं समालम्ब्य विचक्षणे ! ॥४३॥
उपायं वै विधत्तां तं यतोऽहं सवनः प्रिये! । अयोध्यामभिगच्छामि रहस्यं वेत्तु कोऽपि नो ॥४४॥
स्वप्नवच्च प्रतीयेत ममेहागमनं किल । आसां चित्ते कृपारूपे ! तथोपायो विधीयताम् ॥४५॥

श्रीलोमश उवाच ।

एवमस्त्विति सम्भाष्य दृष्ट्वा सा किङ्करीर्मुहुः । अतृप्ता एव मुदिताः पिबन्तीः सुषमामृतम् ॥४६॥
कृपापूर्णविशालाक्षी भविष्यज्ञानसान्त्विता । प्राणेशमुरसाऽऽलिङ्ग्य तन्मुखेन्दुमवैक्षत ॥४७॥
लीलादेवी स्मृताऽभ्येत्य स्वामिनीप्राणनाथयोः । पुलकाञ्चितगात्रा सा ववन्दे चरणाम्बुजे ॥४८॥
हर्षगद्गदया वाचा प्राह बद्धकराञ्जलिः । धन्याऽहं भूरिभागाऽहं यद्धि वां कृपया स्मृता ॥४९॥

हे श्रीप्रियाजू ! ऐसा करनेसे निःसन्देह सभीका सदा हित होगा तथा लोक वेदकी मर्यादा का पालन भी हो सकेगा । हे श्रीप्रियाजू ! आपके जन्म व बाल्यावस्थाकी लीला दर्शनोंका अपूर्व सौभाग्य श्रीमिथिला निवासियोंने प्राप्त कर लिया ही है, इसलिये वे आपके विवाहोत्सवका भी दर्शन प्राप्त करके अपने नेत्रोंको पूर्ण सफल करलें ॥४१॥४२॥

हिताहितका पूर्ण ज्ञान रखने वाली हे श्रीप्राणप्यारीजू ! श्रीमिथिलानिवासियोंके लिये अपने विवाहके दर्शनानन्दको भी प्रदान करनेकी इच्छासे मेरे कहे हुये इस विचारका अनुमोदन कीजिये ॥४३॥

हे श्रीप्रियाजू ! और वह उपाय करें जिससे मैं श्रीप्रमोदवनके सहित श्रीअयोध्याजी पहुँच जाऊँ, और यहाँ मेरे इस प्रकार आने आदिका रहस्य किसीको ज्ञात न हो सके ॥४४॥

हे कृपारूपे श्रीप्रियाजू ! और जिस प्रकार इन सखियोंके चित्तमें मेरा यहाँ आना स्वप्नके समान ही प्रतीत हो, वैसा उपाय, करनेकी कृपा करें ॥४५॥

श्रीलोमशजी बोले:-हे मुने! श्रीप्यारेजूके इस प्रस्तावको सुनकर, वात्सल्य सिन्धु श्रीमिथिलेश नन्दिनीजू उनसे ऐसा ही होगा कहकर, आनन्द पूर्वक उपमा रहित छबि रूपी अमृतका पान करते हुये भी अपनी किङ्करियोंको अतृप्त ही देखकर उनके कृपापूर्ण विशालनयन सजल हो गये, पर भविष्य ज्ञानसे वे धैर्य को प्राप्त हो, श्रीप्राणनाथजीको हृदयसे लगाकर, उनके मुखचन्द्रका दर्शन करने लगीं ॥४६॥४७॥

श्रीकिशोरीजीके स्मरण करतेही वहाँ तत्क्षण पहुँचकर श्रीलीलादेवीजीने रोमाञ्चित शरीर हो अपनी उन श्रीस्वामिनी व श्रीप्राणनाथजूके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥४८॥

पुनः वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे बोलीं:-हे श्रीयुगल सरकार ! मैं धन्य हूँ और बड़भागिनी हूँ, जो आप दोनों सरकारने कृपा करके मुझे स्मरण तो किया ॥४९॥

उपस्थिताऽस्मि वां दासी सेवायै करुणानिधी ! । क्षमाध्वस्तधरादर्पौ निदेशं दातुमर्हथः ॥५०॥

श्रीलोमश उवाच ।

तस्यास्तु प्रश्रितं वाक्यं श्रुत्वा ताविति भाषितम् । गम्भीरयोचतुर्वाचा सुप्रसन्नारुणाधरौ ॥५१॥

श्रीनित्यदम्पत्यूचतुः ।

स्वप्नदृष्टोपमा लीला क्रियतां ह्यावयोरियम् । आसां वियोगजन्याग्निर्हृदयं न प्रतापयेत् ॥५२॥

श्रीलोमश उवाच ।

तथेत्युक्त्वा ज्वलत्कान्तिरन्तरिक्षस्वरूपिणी । चन्द्रकलां समामन्त्र्य निद्रां तर्ह्याजुहाव सा ॥५३॥
कुर्वन्त्यः प्रेयसोरालयो भव्यं शयनदर्शनम् । निद्रया ग्रसिता आसंस्तया प्रेरितयाऽखिलाः ॥५४॥
आज्ञां चन्द्रकला प्राप्य प्रियाया आलिसत्तमा । प्रापयामास विध्वास्यमयोध्यां प्रति तत्क्षणम् ॥५५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सवनस्त्वं यथाऽऽनीतस्तथैव प्रेषितस्तया । ततोऽपि निद्रा तास्त्यक्त्वा जगाम कृतशासना ॥५६॥
गतनिद्रा न चापश्यंस्त्वां प्रियातल्पशायिनम् । न तं कुञ्जं न तल्पं च न तं कालमृतुं न तम् ॥५७॥

हे करुणाके निधि तथा अपनी क्षमासे पृथिवीके सहन शीलताके अभिमानको नष्ट करनेवाले श्रीप्रियाप्रियतमजू ! मैं दासी आप दोनों सरकारकी सेवा हेतु उपस्थित हूँ, अतः आज्ञा प्रदान कीजिये ॥५०॥ श्रीलोमशजी महाराज बोले:–हे मुने! श्रीलीलादेवीके इस प्रकार नम्रता-पूर्वक कहे हुये वचनोंको श्रवण करके, अत्यन्त प्रसन्न अरुण-अधर वे श्रीयुगलसरकार गम्भीरता पूर्ण वाणी से बोले ॥५१॥ हे लीले ! हम दोनोंकी इस लीलाको तुम स्वप्न देखी के समान कर दो जिससे वियोग जनित आग इन सखियोंके हृदयको विशेष न तपा सके ॥५२॥

श्रीलोमशजी बोले:–हे मुने ! श्रीयुगलसरकारकी इस आज्ञाको सुनकर, जलती हुई कान्ति वाली, उन आकाशस्वरूपा श्रीलीला देवीजीने उनसे "ऐसा ही करूँगी" कहकर श्रीचन्द्रकलाजी से सम्मति लेकर निद्रा देवीको बुलाया ॥५३॥

उस निद्रादेवीने श्रीलीलादेवीकी प्रेरणासे, श्रीयुगलसरकारके शयन-समयका मनोहर दर्शन करती हुई सभी सखियोंको ग्रसित कर लिया ॥५४॥

श्रीलोमशजी महाराज बोले:–हे मुने ! तब श्रीप्रियाजूकी आज्ञा पाकर सभी सखियोंमें श्रेष्ठ श्रीचन्द्रकलाजीने चन्द्रवदन (श्रीप्राणप्यारे)जू को तत्क्षण श्रीअयोध्याजी पहुँचा दिया ॥५५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे! जैसे श्रीप्रमोद वनके सहित आपको यहाँ से श्रीचन्द्रकलाजी ले गयी थीं उसी प्रकार उन्होंने श्रीमिथिलाजीसे पुनः आपको यहाँ पहुँचा दिया। उसके पश्चात् लीला देवीकी आज्ञा पूरी करके, निद्रा देवी भी विदा हो गयीं ॥५६॥ निद्राके चली जाने पर सखियोंने श्रीप्रियाजूके पलङ्ग पर शयन किये हुये न आपको न उस पलङ्गको, न उस कुञ्ज को, और न उस तीसरे पहरकी रातके समयको, न उस शरद् ऋतुको ही देखा ॥५७॥

अपाञ्चवार्षिकीं सीतामेकां सिंहासने स्थिताम् । सायं सन्ध्योपकालं च रासकुञ्जमनुत्तमम् ॥५८॥
नृत्ये प्रवृत्तिमालीनां वर्षर्तुं च सुखावहम् । विस्मिता ददृशुः सर्वा मृगशावकलोचनाः ॥५६॥
तत्सत्यं किमिदं सत्यं शेकुर्निश्चेतुमत्र नो । न प्रवृत्तिं गता वाणी तासां प्रष्टुं परस्परम् ॥६०॥
तदानीमेव सख्यौ द्वे ईयतुर्मातृप्रेषिते । ते प्रणम्योचतुर्वाक्यं जनन्या भाषितं यथा ॥६१॥

मातुः समाकर्ण्य तदा निदेशं सूर्यास्तवेलामभिवीक्ष्य चैव ।
मन्दस्मिता दृष्टिसुधानुवर्षं कृत्वा ययौ तासु गृहं च ताभिः ॥६२॥

मृगछौनेके समान विशाल व चञ्चल नेत्रवाली सभी सखियाँ देखती हैं, कि सायं कालकी सन्ध्या का समय है, उत्तम रास कुञ्ज है, पाँच वर्ष से भी कम अवस्था से युक्त अकेली श्रीललीजी सिंहासन पर विराजमान हैं ॥५८॥ सुखदाई वर्षाकी ऋतु है, और नृत्यके लिये सखियोंकी प्रवृत्ति होरही है अतः यह देखकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गयीं ॥५६॥

अभीजो इतना आनन्द हम देख रही थीं वह सत्य था ? अथवा अब जो देख रही हैं सो सत्य है ? यह वे निश्चय ही नहीं कर सकीं, एक दूसरेसे पूछनेकी इच्छा होने पर भी, पूछनेके लिये उनकी वाणी ही प्रवृत्त नहीं हुई ॥६०॥

उसी समय श्रीसुनयना अम्बाजीकी भेजी हुई दो सखियाँ, वहाँ आगयीं और जिस प्रकार श्रीअम्बाजीने कहा था, प्रणाम करके उन्होंने उसी प्रकार निवेदन किया ॥६१॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञाको श्रवण करके तथा सूर्यास्त का समय देखकर मन्दमुस्कान वाली श्रीललीजीने सब सखियोंके ऊपर अपनी चितवन रूपी अमृतकी वर्षा करके उन सभीके सहित अपने भवनको पधारीं ॥६२॥

इति चतुःषष्ठितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

सखियों सहित पधारी हुई श्रीलाडिलीजूसे, विरह व्याकुला
श्रीसुनयना अम्बाजीका प्रेम-प्रलाप ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आगतेऽत्र त्वयोत्थं प्रिय ! प्रेषिते द्वे वयस्ये तदानीमुपाजग्मतुः ।
मातुरादेशमालोक्य मे स्वामिनीमूचतुस्तां प्रणम्याथ ते सादरम् ॥१॥
तं समाश्रुत्य ता लीलया मोहिता दृष्टिपीयूषवर्षैर्विबोध्याञ्जसा ।
ताभिरम्भोजपत्रार्द्रचार्वीक्षणा मध्यगा सेव्यमाना जगामालयम् ॥२॥
काञ्चनारण्यशोभाप्रसक्तेक्षणा राजहंसार्भगत्या ततः प्रस्थिता ।
लीलयाऽऽह्लादयन्ती हि ता नैकया किञ्चिदस्माद् बिलम्बोऽभवद्वर्त्मनि ॥३॥
तेन मात्रा पुनः शङ्कया प्रेषितामालिमानेतुमेणार्भकालोचना ।
वीक्ष्य दूरात्प्रहर्षान्विता भक्तितः साञ्जलिस्तां प्रणम्य स्थिता सुस्मिता ॥४॥
संगृहीताङ्गुलिः प्रेमपूर्णाशया तां परिष्वज्य चाशीर्भिरानन्द्य सा ।
वाक्यमूचे त्विदं साश्रुनेत्रा प्रिये ! श्रूयतां चेति सम्भाष्य मेऽक्ष्युत्सवे ! ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:– हे प्यारे ! आपके श्रीअवध चले जाने पर, श्रीअम्बाजीकी आज्ञासे उनकी भेजी हुई दो सखियाँ, हमारी श्रीस्वामिनीजूके पास आईं और दर्शन करके उन्होंने आदर पूर्वक उन्हें श्रीअम्बाजीकी आज्ञा कह सुनाई, श्रीअम्बाजीकी उस आज्ञाको सुनकर, श्रीलीलादेवीजीके द्वारा भ्रममें डाली हुई, उन सखियों को अपनी दृष्टि रूपी अमृतकी वर्षासे सावधान करके बीचमें विराजमान हुई, कमलदलके समान दयायुक्त सुन्दर नेत्रोंवाली श्रीललीजू, उन सभीसे सेवित होती हुई, महलको पधारीं ॥१॥२॥

श्रीकञ्चनवनकी शोभामें आसक्त नेत्र किये हुई श्रीमिथिलेशराजदुलारीजू, उन सखियोंको अपनी अनेक प्रकारकी बाल-लीलाओंके द्वारा आह्लाद युक्त करते हुये उस रासकुञ्जसे राजहंस शिशुके समान मस्तचाल द्वारा प्रस्थान कर रही थीं, इसलिये मार्गमें कुछ विलम्ब हो गया उस बिलम्बके कारण सन्देह वश, श्रीसुनयना अम्बाजीने उन्हें बुलानेके लिये अपनी सखीको भेजा। उस सखीको दूरसे ही आते देखकर मृगछौनीके समान सुन्दर नेत्रवाली श्रीललीजी हर्ष युक्त हो, हाथ जोड़े, तथा श्रद्धापूर्वक उसे प्रणाम करके मन्द मुस्काते हुये खड़ी हो गयीं ॥३॥४॥

जब वह सखी समीपमें पहुँची, तो श्रीललीजीने उसकी अङ्गुली पकड़ ली, तब प्रेम पूर्ण हृदय वाली श्रीअम्बाजीकी वह सखी उन्हें हृदय लगा मङ्गलमय आशीर्वाद के द्वारा आनन्दित करके अपने नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरे हुये बोलीं:–हे मेरे नेत्रोंको उत्सवके समान सदा नूतन आनन्द प्रदान करने वाली प्यारी (श्रीललीजी !) सुनिये ॥५॥

सख्युवाच ।

पुत्रिके ! त्वद्दिदृक्षातुरा ते प्रसूर्मार्गमन्वीक्षते प्रेक्ष्य चास्तं रविम् ।
त्वं तु लीलासमासक्तचित्ताऽसि संत्यज्य तस्याः स्मृतिं बाल्यनैसर्गतः ॥६॥
मा बिलम्बं विधत्स्वेन्दुपूर्णानने ! क्रीडयाऽलं द्रुतं गच्छ तां खल्वितः ।
हन्त वत्से ! हि नोचेत्तु माताऽधुना सद्य एवैष्यति प्रान्विता चिन्तया ॥७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युपाकर्ण्य सख्याः स्वमातुर्वचश्चारु विस्मेरबिम्बाधरा ह्यब्रवीत् ।
गच्छ गच्छामि मातर्भवत्या समं मे विलम्बोऽभवद्भूरि विक्रीडने ॥८॥
एतदुक्त्वा वचः शर्वरीशानना राजवीणास्वना ! हृच्चिदानन्ददम् ।
अभ्यगादालयं तद्वनात्सत्वरं मातुरन्तःपुरं सर्वलोकेश्वरी ॥६॥
आससादान्तिकं यर्हि सा वेश्मनो विह्वलाऽम्बा बहिः स्वागतायागता ।
शीघ्रगत्याऽङ्कमारोप्य साम्ब्वीक्षणा संस्थिता मूर्त्तिकल्पेव भूमौ सुताम् ॥१०॥
धैर्यमालम्ब्य राज्ञी गृहीत्वाङ्गुलीमभ्यगान्मदिरं स्वावरोधं पुनः ।
मञ्चमास्थाय तामङ्कमादाय सा वाक्यमूचे त्विदं बाष्पपूर्णेक्षणा ॥११॥

हे पुत्रिके ! सूर्य भगवान्को अस्त हुये देखकर आपके दर्शनोंकी इच्छासे अत्यन्त व्याकुला, आपकी श्रीअम्बाजी बारम्बार आपके मार्गको देख रही हैं, परन्तु बाल्यावस्थाके स्वभावके कारण आप उनकी सुधि भुलाकर अपने चित्तको खेलमें तल्लीन कर रखे हैं ॥६॥

हे पूर्णचन्द्रमाके समान आह्लादकारी प्रकाशमय मुखवाली श्रीललीजी ! अब बहुत खेल हुआ, यहाँसे शीघ्र अम्बाजीके पास पधारिये, विलम्ब न कीजिये । हे वत्से ! नहीं तो आपकी माताजी भी विशेष चिन्तित होकर अभी शीघ्र यहाँ आजायेंगी ॥७॥

अपनी श्रीअम्बाजीकी सखीके इस वचनको सुनकर, सुन्दर मुस्कान युक्त, विम्बाफलके सदृश लाल अधर वाली श्रीललीजी बोलीं-हाँ, मैया खेलनेमें मुझे अवश्य विशेष विलम्ब हो गया है, चलो मैं आपके साथ चलती हूँ ॥८॥

राजवीणाके समान सुन्दर स्वरवाली, समस्त लोकोंकी स्वामिनी वे श्रीचन्द्रमुखी श्रीललीजी श्रीअम्बाजीकी सखीसे भगवदानन्द प्रदान करने वाला यह वचन कहकर, बड़ी शीघ्रता पूर्वक कञ्चनवनसे, श्रीअम्बाजीके अन्तःपुर पधारीं ॥६॥

जब वे श्रीअम्बाजीके महलके समीपमें पहुँचीं, तब विह्वल हुई श्रीअम्बाजी उनका स्वागत करनेके लिये बाहर आगयीं और सजलनेत्र हो दौड़कर, उन्हें गोदीमें लेकर भूमि पर मूर्त्तिके समान खड़ी हो गयीं, पुनः श्रीअम्बाजी धीरज धारण करके, श्रीललीजीकी अङ्गुलीको पकड़कर, अपने अन्तःपुरके भीतर पधारीं, वहाँ उन्हें गोदमें लेकर सिंहासन पर विराजमान हो, नेत्रोंसे आँसू बहाते हुये उनसे बोलीं ॥१०॥११॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे प्रिये ! त्वं तु विस्मृत्य मां सर्वथा केलिसक्ता भवस्यालिभिः संयुता ।
त्वां विना शान्तिमाप्नोति चेतो न मे धैर्यमुत्सृज्य वत्से ! भवत्यार्त्तिगम् ।।१२।।
पूर्णचन्द्रानने ! त्वामदृष्ट्वा हि मे कल्पतुल्यः क्षणो भाति कृच्छ्रप्रदः ।
त्वां समालोक्य शातं यथा जायते तन्न शक्नोमि वक्तुं कथञ्चित्प्रिये ! ।।१३।।
त्वन्मुखाम्भोजसंद्रष्टुमेणेक्षणे ! लोचने सर्वदा स्तः सतृष्णे मम ।
किं करोमि प्रिये ! मोहिता मे मतिस्त्वत्र कस्मै प्रदेयं मया दूषणम् ।।१४।।
पुत्रिके ! त्वं हि तारासि मे नेत्रयोः प्राणभूताऽस्यसूनां धनं मत्प्रियम् ।
त्वं हि सौभाग्यभूषाऽसि वत्से ! मम त्वां विना जीवितं मे क्षणं दुःसहम् ।।१५।।
त्वं ममैवासि न प्रेमदेवालयः किन्तु सर्वस्य विश्वस्य संदृश्यसे ।
आत्मवत्त्वां प्रिये ! सर्व एवेह वै लालयन्त्यूरुभावैर्हि ते जन्मतः ।।१६।।
जन्मना त्वत्पुरं चैतदस्त्युज्ज्वलं सर्वलक्ष्म्या युतं निष्कलं शोभनम् ।
रोगदोषादिसंवर्जितं कीर्त्तिमच्छक्रदर्पापहं तापहीनं परम् ।।१७।।

हे प्यारी ! आप तो सब प्रकारसे मुझे भुलाकर अपनी सखियोंके सहित बाल्य-क्रीड़ामें आसक्त हो जाती हैं, परन्तु हे वत्से ! मेरे चित्तको बिना आपके शान्ति होती नहीं, अतः वह आपके बिना धीरजको छोड़कर बहुत ही दुखी हो जाता है ।।१२।।

हे पूर्णचन्द्रानने ! बिना आपका दर्शन किये, मुझे एक क्षण मात्रका समयभी कल्पके समान भारी दुखदाई हो जाता है । और हे प्रिये ! आपका दर्शन करके जो सुख मुझे होता है, उसे किसी प्रकार भी कहनेको मैं समर्थ नहीं हूँ ।।१३।।

हे हरिणके समान सुन्दर विशाल नेत्रवाली प्यारी श्रीललीजी ! आपके श्रीमुखकमलके दर्शनोंके लिये मेरी ये आँखें सदा ही तरसती रहती हैं, मैं करूँ क्या ? मेरी मति ही इस प्रकार मोहग्रस्त है, अतः इस विषय में भी किसीको क्या दोष दूँ?।।१४।। हे पुत्रिके! आप मेरी आँखोंकी पुतली, मेरे प्राणोंकी प्राण और मेरा परम प्रिय धन हैं । हे वत्से! मेरे सौभाग्यका भूषण भी आपही हैं, अत एव बिना आपके क्षणभर भी मुझे जीवित रहना असह्य (बहुत ही कष्टकर) हो जाता है ।।१५।। हे श्रीललीजी! आप केवल मेरे ही एक प्रेम-रूपी देवताका मन्दिर नहीं हैं, बल्कि सभी विश्वमात्रके सभी प्राणियोंके प्रेम-रूपी देवताका मन्दिर दीखती हैं, हे प्रिये ! क्योंकि सभी चर-अचर प्राणी अपनी आत्माके समान अनेक प्रकारके उच्च भावों द्वारा जन्मसे ही आपका लाड़ करते हैं ।।१६।। हे ललीजी ! जबसे आपका प्राकटच हुआ है, तबसे यह हमारा नगर अत्यन्त शोभामय, सब प्रकारकी लक्ष्मीसे युक्त, रोग-दोषादिकोंसे रहित, कीर्त्तिशाली, इन्द्रके अभिमानको दूर करनेवाला, दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापोंसे पूर्ण रहित, शुद्ध, अखण्ड (ब्रह्मस्वरूप) तथा सर्वोत्कृष्ट है ।।१७।।

ईदृशी नैव शोभा पुरा विश्रुता नेदृगानन्दकालः कदा वा श्रुतः ।
नेदृशी प्रीतिरासीन्मिथो नाभवन् हन्त नोदीक्षिताश्चित्रलीला अपि ॥१८॥
यत्र यत्रानुपश्यामि सर्वत्र हि प्रेमदेवापगा सप्रवाहेक्ष्यते ।
बालिका बालका दिव्यरूपान्विता दर्शनाह्लाददाः सद्गुणैरञ्चिताः ॥१९॥
त्वत्परा जन्मतो निर्ममास्त्वद्धियः सच्चिदानन्दरूपा लसन्ति प्रिये ! ।
त्वत्समालोकनानन्दमत्ता हि ते सन्ति सर्वप्रिया आत्मजा वै यथा ॥२०॥
त्वां जनाः सर्व एवाद्रियन्ते भृशं नाम कीर्त्तिश्च सर्वत्र ते श्रूयते ।
मूर्त्तयो देवतानां नमन्ति प्रिये ! लान्ति मत्वा प्रसादं मुदा तेऽर्पितम् ॥२१॥
शाखिनः पत्रपुष्पादिभिः सत्फलैः स्वागतं ते प्रकुर्वन्ति सर्वर्तुषु ।
क्षीरमेवं गवां प्रस्रवत्यञ्जसा सीति याते श्रुतौ गोपिकाभ्यः श्रुतम् ॥२२॥

हे प्रिये ! जैसी शोभा इस समय मेरे पुरकी है, वैसी कभी भी मैंने नहीं सुनी थी, न ऐसा कभी आनन्दका समय ही सुना था, न ऐसी परस्पर कभी किसी को प्रीति ही हुई थी, जैसी इस समय है । और न ऐसी पहिले कभी आश्चर्यमयी लीलायें ही हुई थीं जैसी इस समय आपके प्राकट्यसे हो रही हैं ॥१८॥ हे श्रीललीजी ! मैं जिधर २ दृष्टि डालती हूँ, उधर-उधर सर्वत्र प्रेमकी गङ्गा ही बहती हुई, दिखाई दे रही है सभी बालक व बालिकायें अपाञ्चभौतिक(पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तत्व से रहित स्वरूपसे युक्त, दर्शनसे ही आह्लाद प्रदान करने वाले सद्गुणोंसे विभूषित हो रहे हैं ॥१९॥

वे जन्मसे ही आपके अनुरागी, सब प्रकारकी ममतासे रहित, केवल आपको जानने वाले, सत–चित्–आनन्द–स्वरूप, आपके दर्शनोंके आनन्दमें मस्त हो शोभायमान हैं तथा वे बालक बालिकाएं सभीको अपने पुत्र-पुत्रियोंके समान अत्यन्त प्रिय लग रहे हैं ॥२०॥

सभी प्राणी आपका अत्यधिक आदर करते हैं तथा सर्वत्र जिधर देखो उधर आपका ही नाम व यश सुनाई पड़ रहा है । मन्दिरों में पधारने पर देवताओंकी मूर्त्तियाँ भी आपको प्रणाम करती हैं और आपके अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादिकोंको आपके करकमलका प्रसाद मानकर वे बड़े हर्ष-पूर्वक स्वीकार करती हैं ॥२१॥

हे श्रीललीजी ! वृक्ष भी पत्र, पुष्प आदिकोंके द्वारा आपका सभी ऋतुमें स्वागत करते हैं अर्थात् जिस वृक्षके समीपमें आप पधारती हैं, वह ऋतुका नियम छोड़कर अपने २ योग्य पत्र, पुष्प फलादिकोंके समर्पण द्वारा आपका सत्कार करते हैं, इसी प्रकार मैंने गोपियोंके भी मुखसे यह सुना है कि गायोंके कानमें "सी" शब्द पड़ते ही वात्सल्याधिक्यके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लग जाती है ॥२२॥

अत्र दिव्याङ्गना भूयशो वल्लभे ! लोकबाह्यस्वरूपा विशालेक्षणाः ।
प्रागदृष्टाः समायान्ति गच्छन्ति चोपायनानीप्सितान्येव संगृह्य ह ॥२३॥
योगिसिद्धर्षयो बह्निकल्पा मुहुर्नारदाद्यास्तथा क्षीणमोहाः प्रिये ! ।
भिक्षुका वै यथा ऽऽयान्ति च प्रत्यहं पुष्पवृष्टिः पतत्यत्र भूयश्च खात् ॥२४॥
चेतनास्त्वां जडत्वं जडा वीक्ष्य वै चेतनत्व व्रजन्तीह चन्द्रानने ! ।
किं बहूक्त्या ममाशेषमेतज्जगत्त्वच्छरीरं त्वमात्माऽस्य भातीति मे ॥२५॥
काऽसि चैतन्न वै तत्त्वतो ज्ञायते स्याद्यदि श्राव्यमेतत्तु मे कथ्यताम् ।
नासि पुत्रीति मन्येऽसि शक्तिः परा यज्ञभूमेः कृपातोऽवतीर्णा स्वयम् ॥२६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सेत्युपाकर्ण्य वाचं जनन्योदितां सस्मितं प्राह बिम्बाधरा सुस्वना ।
किं प्रजल्पस्यहो मेऽम्ब ! नो रोचते त्वं हि माता ममैवास्मि पुत्री तव ॥२७॥

हे प्यारी ! हमारे यहाँ अलौकिक सुन्दरस्वरूप वाली विशाल-लोचना दिव्य स्त्रियाँ, जिनका पहिले कभी दर्शन नहीं हुआ था वे अपने इच्छानुसार अनेक प्रकारकी भेंट लेकर यहाँ बारम्बार आती जाती रहती हैं ॥२३॥

हे प्यारी ! अग्निके समान तेजस्वी, मोहरहित, श्रीनारदजी आदि बड़े-बड़े योगी, सिद्ध, महर्षि वृन्द भी भीख माँगने वालोंके सदृश, बारम्बार प्रति-दिन आते रहते हैं, तथा आकाशसे बारम्बार यहाँ फूलोंकी वर्षा भी होती रहती है ॥२४॥

हे श्रीचन्द्रमुखीजू ! आपका दर्शन करके चेतन, जड़ताको और जड़, चेतनताको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् चेतन पशु, पक्षी, नर, मुनि, योगि, सिद्ध देव आदिक यदि आपका दर्शन करते हैं, तो वे देहकी सुधि-बुधि भुलाकर वृक्ष व पत्थर आदिकी मूर्त्तियोंके समान जड़ प्रतीत होने लगते हैं और जड़ (वृक्ष पत्थर आदि) जब आपका दर्शन करते हैं, तो वे चेतन प्राणियोंके सदृश सेवा परायण हो जाते हैं, अधिक कहाँ तक कहें ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि यह सारा चर–अचर मय जगत् ही आपका शरीर है और आप इस जगत् रूपी शरीर की आत्मा हैं ॥२५॥ हे श्रीललीजी ! मैं तो ऐसा मानती हूँ कि आप मेरी पुत्री तो हैं नहीं । अपितु प्रकृतिसे परे आदि शक्ति कृपा करके मेरी यज्ञभूमिसे स्वयं प्रकट हुई हैं, पर वास्तवमें आप कौन हैं ? यह मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है, यदि यह विषय मेरे सुनने योग्य हो अर्थात् सुननेकी यदि मैं अधिकारिणी हूँ तो कृपा करके आप श्रवण कराइये ॥२६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! बिम्बाफलके समान जिनके अरुण अधर हैं, वे सुन्दरस्वर वाली, श्रीललीजी श्रीअम्बाजीके कहे हुये वचनको सुनकर, मन्द मुस्काती हुई बोलीं:–हे श्रीअम्बाजी ! अहो यह आप क्या कह रही हैं, मुझे अच्छा नहीं लगता । क्योंकि मैं आपकी लली और आप मेरी मां हैं ॥२७॥

अम्ब ! लीलासमासक्तचित्ताऽभवं तेन चात्रागताऽहं विलम्बाद्दरम् ।
त्वं विशेषानुरागिस्वभावाद्भृशं विह्वलत्वं समायास्यदृष्ट्वा हि माम् ॥२८॥

श्रीशिव उवाच ।

संवादो ऽयं धरणितनयाभूमिकन्याजनन्योर्भक्त्या नित्यं सरसहृदयैः पठ्यते श्रूयते वा ।
यैस्तेषां वै एकल सुखदा भक्तिदेवी प्रसन्ना प्रादुर्भूयामलिनहृदये मैथिलीतोषदा स्यात् ॥२९॥

हे श्रीअम्बाजी ! मेरा चित्त खेलमें तल्लीन हो गया था इसी लिये मैं आपके पास कुछ विलम्बसे आई, आप तो अपने विशेष अनुरागी स्वभावके कारण मुझे क्षणमात्र भी न देखकर विह्वलताको प्राप्त हो जाती हैं ॥२८॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे प्रिये श्रीभूमिनन्दिनी तथा भूमिपुत्रीकी माता श्रीसुनयनाअम्बाजीके इस संवादको जो श्रीकिशोरीजीको हृदयमें धारण करके श्रद्धापूर्वक नित्य सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे उनके निर्विकारी हृदयमें लौकिक पारलौकिक सब प्रकार का सुख प्रदान करने वाली प्रसन्न हुई श्रीभक्तिमहारानीजी प्रकट होकर उन साधकोंके प्रति श्रीजनकनन्दिनीजूको भी सन्तुष्टि प्रदान करेंगी ॥२९॥

इति पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ।

इति मासपारायणे एकोनविंशो विश्रामः ॥१९॥

—❀❀❀—

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

बालिकाओं को श्रीकिशोरीजीके साथ खेलनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा
श्रीकिशोरीजी का सर्वभाव पूरक विधि वैचित्र्य ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्मिन्नेव क्षणे प्रेष्ठ ! वयस्ये द्वे समागते । संस्पृश्य चरणौ राज्ञ्या बद्ध्वाञ्जलिमथोचतुः ॥१॥

सख्यावूचतुः ।

उपभोजनवेलेयं महाराज्ञि ! कृपानिधे ! तदर्थं गन्तुमर्हा ऽसि पुत्र्या सह महामते ! ॥२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीललीजीके इस प्रकार कहते ही, दो सखियाँ आगयीं उन्होंने श्रीअम्बाजीके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया पुनः हाथ जोड़कर उनसे बोलीं:—हे कृपानिधे ! श्रीमहारानीजी ! यह व्यारूका समय उपस्थित है, अत एव श्रीललीजूके सहित अब आपको व्यारूके लिये पधारना चाहिये ॥१॥२॥

प्रतीक्षते महाराजः स प्राणप्रियपुत्रिकाम् । बुभुक्षया ऽऽगतः पूर्वं प्रेमपूर्णविलोचनः ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तथेत्युक्त्वा महाराज्ञी क्रोडमारोप्य पुत्रिकाम् । आरुह्य शिविकां रम्यां ययौ निश्यशनालयम् ॥४॥
सर्वाभिश्चैव पुत्रीभिः स्वागतेनाभिनन्दिता । तन्मुख्यया प्रविश्यान्तः सादरं सा पतिं नता ॥५॥
पुत्र्यस्ता अपि सर्वा हि प्रणेमुः पितरं मुदा । तेन तत्रादृताः प्रेम्णा सम्मुखे तस्थुरात्मद ! ॥६॥
भूमिजां स समालोक्य परमानन्दनिर्भरः । सर्वमुख्यासने स्वाग्रे लालयित्वा न्यवेशयत् ॥७॥
पक्त्र्यश्चतुर्विधं भोज्यं षड्रसैश्च समन्वितम् । रत्नपात्रैः शतैर्युक्ते निधाय स्वर्णभाजने ॥८॥
चक्रुर्वितरणं प्रेम्णा ह्यस्मभ्यं प्राणवल्लभ ! । समर्प्य श्रीमते पित्रे स्वामिन्यै मे च भक्तितः ॥९॥
लक्ष्मीनिध्यादयः सर्वे बन्धवो मम तत्र हि । रेजिरे रूपसम्पन्नाः पार्श्वयोर्मे पितुर्द्वयोः ॥१०॥
समर्प्य हरये सर्वं भोक्तुमाज्ञां प्रदाय नः । आचम्यापः स धर्मात्मा स्वयमारभताशितुम् ॥११॥
ग्रासान् विधाय वै भूयो दिशन्नस्या मुखाम्बुजे । महानन्दं प्रयाति स्म रूपशोभानुवीक्षणात् ॥१२॥

क्योंकि आज भूख लग जानेके कारण श्रीमिथिलेशजी महाराज व्यारू-गृहमें पहिले ही पधार चुके हैं और प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे अपनी प्राणोंके समान प्यारी श्रीललीजीकी वे प्रतीक्षा कर रहे हैं॥३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीसुनयनाअम्बाजी उन सखियोंसे, ऐसा ही होगा, कहकर श्रीललीजीको अपनी गोदमें लेकर पालकीमें विराजमान हो, व्यारू भवन पधारीं ॥४॥

उस महलकी मुख्य सखीके स्वागत से प्रसन्न हो श्रीअम्बाजीने सभी पुत्रियोंके साथ भीतर जाकर अपने श्रीपतिदेवको आदर सहित प्रणाम किया ॥५॥

भक्तोंके लिये अपनेको दे डालने वाले हे प्यारेजू! सभी पुत्रियोंने भी बड़े हर्ष-पूर्वक श्रीपिताजी को प्रणाम किया, पुनः उनसे आदर पाकर सभी सन्मुख विराज गयीं ॥६॥

श्रीभूमिकुमारीजूका दर्शन करके श्रीपिताजी ब्रह्मानन्दमें डूब गये, पुनः सावधान होने पर उन्होंने प्यार करके श्रीललीजीको सबसे श्रेष्ठ आसन पर विराजमान किया ॥७॥

रसोई बनाने वाली सखियोंने षट्रसोंसे युक्त, चारों प्रकारके भोजनोंको सैकड़ों रत्नपात्रोंसे युक्त सुवर्णके बड़े थालमें रखकर, हे श्रीप्राणप्यारेजू ! प्रेमपूर्वक श्रीपिताजीको तथा हमारी श्रीस्वामिनीजीको श्रद्धापूर्वक पहिले समर्पण करके, हम सभीमें वितरण किया ॥८॥९॥

श्रीलक्ष्मीनिधिजी आदि हमारे सभी मनोहर भाई भी वहाँ श्रीपिताजीके दोनों बगलमें विराज गये । धर्मात्मा श्रीपिताजी थालमें सजे हुये उस भोजनको प्रथम भगवान् श्रीहरिको समर्पण करके तथा हम सभीको भोजन करनेकी आज्ञा प्रदान करके उन्होंने स्वयं आचमन पूर्वक भोजन प्रारम्भ किया ॥१०॥११॥

श्रीपिताजी बारम्बार कवल (गस्सा) बनाकर, इन श्रीकिशोरीजीके कमलके समान मुखमें देते हुए बारम्बार उनकी रूप सुन्दरताके दर्शनसे महान् आनन्दको प्राप्त हो रहे थे ॥१२॥

अम्बा सुनयना तर्हि समागत्य स्वपाणिना । मुदा नः प्राशयामास नीलशाटीसुशोभिता ॥१३॥
यच्च यच्चेप्सितं वस्तु दिशन्ती विपुलं हि तत् । सस्नेहं सानुरोधं च कारयामास भोजनम् ॥१४॥
पाययित्वा जलं पश्चात्ततः क्षीरमपाययत् । पाचितं वसुयामैश्च सा सपौष्टिकभेषजम् ॥१५॥
प्रदाय पुनराचम्यं नानासौरभमिश्रितम् । पक्वताम्बूल वीटीं च दिव्यस्वादुयुतां ददौ ॥१६॥
एवं संतर्पिताः सर्वा वयं सम्मानपूर्वकम् । निवेशिता महारत्नमण्डपे च तया पुनः ॥१७॥

भ्रमराख्यां शुभां क्रीडां स्वामिन्या त्वनया समम् ।
क्रीडामःस्म मनः कान्त ! पश्यन्त्योऽस्या मनोरुचिम् ॥१८॥
तदा माताऽपि सा भुक्तवा भोजनं च सुधोपमम् ।
वीटीं चर्वन्त्यथोवाच समागत्येति नो वचः ॥१९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

पुत्र्यो यात गृहं स्वं स्वं प्रातरायात सत्वरम् ।
विगताद्याधिका रात्रिः स्वापायास्तु शिवो हि वः ॥२०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तदित्याज्ञां समाकर्ण्य वैह्वल्येनाधिकेन ताः । विसञ्ज्ञकाश्च निष्पेतुः कोमलास्तरणेऽमले ॥२१॥

उसी समय नीली साड़ीसे शोभायमान श्रीसुनयना अम्बाजी आकर, प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथोंसे हम सभीको पवाने लगीं ॥१३॥

जो–जो वस्तु हम लोगों को रुचिकर प्रतीत होती थी, उसे बड़े सम्मान व आग्रहपूर्वक प्रचुर मात्रामें देकर उन्होंने सभीको भोजन कराया ॥१४॥

पीछे जल पिलाकर २४ घण्टे पकाये हुये पुष्टि–कारक, औषधियोंसे युक्त दूधको पिलाया पुन: आचमन देकर अनेक प्रकारकी सुगन्धिसे युक्त दिव्य स्वादुवाला पानका वीरा प्रदान किया ॥१५॥१६॥

हे प्यारे! इस प्रकार सम्मान पूर्वक श्रीअम्बाजीने हम सभीको तृप्त करके विशाल रत्न-मय मण्डपमें विराजमान किया । हे प्यारे ! वहाँ इन श्रीस्वामिनीजूके साथ इनको रुचि देखते हुये हम सभी बहिने भ्रमर (भँवरी) नामका खेल खेलने लगीं ॥१७॥१८॥

उसी समय श्रीसुनयनाअम्बाजी भी अमृतके समान सुन्दर भोजन करके पानका वीरा चबाती हुई आकर, हम लोगोंसे बोलीं:–हे पुत्रियो ! आप लोगोंका कल्याण हो, अब विशेष रात्रि व्यतीत हो गयी है, अतः आप सभी शयन करनेके लिये अपने–अपने महलोंको जाओ, और प्रातः श्रीललीजीके पास शीघ्र आजाना ॥१९॥२०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी इस आज्ञाको सुनकर वे बहिनें अधिक विह्वलताके कारण मूर्च्छित हो, उस कोमल स्वच्छ बिछावन पर गिर पड़ीं ॥२१॥

दृष्ट्वैवं पतिताः सर्वा भगिनीः प्रेमपालिताः । स्वामिनीयमिमां वाचमवोचज्जननीं प्रति ॥२२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

पश्य पश्य त्वमम्बैताः संपतिताः पृथिवीतले । व्यथया वै कयाऽऽक्रान्ता दृष्ट्वा सीदति मे मनः॥२३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

मा खिदः पुत्रि ! भद्रं ते ह्यविमृश्योदितं वचः । आसां खलु व्यथामूलं मया हृद्यवधार्यते ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वाऽऽत्मजामम्बा कौतुकासक्तमानसा । ऊचे मधुरया वाचा वचो ऽस्माकं सगद्गदम् ॥२५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

यूयं खलु महाभागा मम पुत्र्यः सुलक्षणाः । शोकं त्यजत मोहं च दृष्ट्वा सीदति वोऽग्रजा ॥२६॥
अविचार्य हि वः प्रीतिं मयैतदभिभाषितम् । तदपास्य मनोदेशाद्यथेष्टं क्रीडतानया ॥२७॥
अस्याः सुखं सुखं वश्च सुखमस्या हि वः सुखम् । इयं वो यूयमस्या वै काप्यकार्या विचारणा ॥२८॥
स्वातन्त्र्यं वो मया दत्तं यथेष्टं क्रीडतानया । उत्तिष्ठत सुता सर्वा युष्माभिः पावितं कुलम् ॥२९॥

प्रेमसे पाली हुई बहिनोंको इस प्रकार पड़ी हुई देखकर ये श्रीस्वामिनीजू श्रीअम्बाजीसे बोलीं:–हे श्रीअम्बाजी ! देखो, देखो किस व्यथासे ग्रसित हो मेरी ये बहिनें पृथ्वीतल पर पड़ी हैं, इन्हें इस प्रकार पड़ी हुई देखकर मेरा मन बहुत ही दुखी हो रहा है ॥२२॥२३॥

श्रीललीजीके इस वात्सल्य पूर्ण वचनको सुनकर श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं–हे श्रीललीजी! आपका मङ्गल हो । आप खेद न करें, इन सभीकी बीमारीका कारण मैंने हृदयमें जान लिया है अर्थात् बिना, भाव विचारे, इनके प्रति–हे पुत्रियो ! रात बहुत हो गयी है अतः शयन करने के लिये अब, अपने–अपने महलोंको पधारो, यही मेरा कहा हुआ वचन इन सभीकी मूर्छा आदि का कारण है ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! अपनी श्रीललीजीको इस प्रकार समझाकर, मनमें अतीव आश्चर्य करती हुई वे हम सभीके प्रति बड़ी मधुर वाणीसे गद्गद वचन बोलीं ॥२५॥

हे सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मेरी पुत्रियो ! आप सभी बड़भागिनी हो । अपने हृदयके शोक व घबराहट को दूर करो, क्योंकि इस प्रकारसे आप लोगोंको दुखी देखकर आप सभीकी जेठी बहिन श्रीललीजी बहुत ही दुखी हो रही हैं ॥२६॥

आप लोगोंके गूढ़ प्रेमको न विचार करके मैंने जो कुछ आप सभीके लिये आज्ञा दी है, उसे अपने मन-रूपी देशसे निकाल कर इन श्रीललीजीके साथ इच्छानुसार खेलिये ॥२७॥

अब मैंने अनुभव कर लिया कि श्रीललीजीका सुख ही आप लोगोंका सुख है और आप लोगोंका सुख ही श्रीललीजीका सुख है तथा श्रीललीजी आप लोगोंकी और आप श्रीललीजीकी हैं, अत एव किसी प्रकारका भी विचार करना उचित नहीं है ॥२८॥

हे पुत्रियो ! उठो, आप लोगोंने इस कुलको पवित्र कर दिया, अत एव मैंने आप लोगोंको स्वतन्त्रता दे दी, अब आप लोग जिस प्रकारसे चाहें श्रीललीजीके साथ खेलें ॥२९॥

एवं मात्रा समाश्वस्ता प्रेम्णा लब्धमनोरथा । उत्थायास्या मनोज्ञास्यं दृष्ट्वाऽऽसन्विगतज्वराः ॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ततोऽस्या दर्शनस्पर्शभाषितैस्तु यथेप्सितम् । सन्तोषं परमं गत्वा पूर्ववत्सुखिताः स्थिताः ॥३१॥
अनयैवैकया सर्वाः कथं सन्तोषिता वयम् । युगपत्क्षणमात्रेण तदवेद्यं मया प्रिय ! ॥३२॥
निशीथोपगते काले जनन्या स्वापमन्दिरम् । नीताः सर्वा वयं प्रेष्ठानया सार्द्धं हि सादरम् ॥३३॥
तस्मिन्नेकासने सर्वाःस्वापिताः प्राणवल्लभ! मध्यगा सात्मजा साऽऽसीत्पार्श्वयोः पङ्क्तितो वयम्॥३४॥
ज्येष्ठा भगिन्यो दक्षे च कनिष्ठा वामभागके । दक्षे चन्द्रकलायाश्च प्रियेयं सर्ववाञ्छिता ॥३५॥
तस्माच्चन्द्रकलैवैका वाञ्छितं प्राप्य हर्षिता । अन्याः सन्तप्तहृदया भवामः स्म वियोगतः ॥३६॥
अश्रुभिः पूरिते नेत्रे मम यर्हि बभूवतुः । दृष्टा दक्षे त्वियं श्यामा स्मयमानमुखाम्बुजा ॥३७॥
आलिङ्गनं पुनर्दत्वाऽनयाऽहं परितोषिता । कृतार्थत्वं गताऽऽश्लिष्टा ह्यपूर्वानन्दमासदम् ॥३८॥

श्रीअम्बाजीसे इस प्रकार प्रेमपूर्वक आश्वासन पाकर सभी बहनोंका मनोरथ पूर्ण हुआ अतः वे मूर्च्छासे उठकर इन श्रीस्वामिनीजूका दर्शन करके मानसिक ज्वरसे मुक्त हो गयीं ॥३०॥

तत्पश्चात् इन श्रीप्रियाजूके दर्शन, स्पर्श व वाणीके द्वारा सन्तोषको प्राप्त वे सभी पूर्ववत् सुखपूर्वक विराज गयीं ॥३१॥

हे प्यारे ! एक ही साथ क्षणमात्रमें इन श्रीकिशोरीजीने किस प्रकार हम सभीको सन्तुष्ट कर दिया, इस रहस्यको समझनेकी योग्यता मुझमें नहीं है ॥३२॥

हे श्रीप्राणप्यारेजू ! जब अर्द्धरात्रिका समय उपस्थित हुआ, तब श्रीअम्बाजी इन श्रीललीजूके सहित हम सभीको आदरपूर्वक शयन मन्दिर ले गयीं ॥३३॥

हे प्राणप्यारे ! उस शयनभवनमें एक ही आसन पर हम सभीको श्रीअम्बाजीने शयन कराया पुनः श्रीअम्बाजी श्रीललीजूके समेत सभीके बीचमें स्वयं लेट गयीं, उनके दाहिने तथा बायें भागमें पङ्क्ति (कतार) पूर्वक हम सभीने शयन किया ॥३४॥

बड़ी बहिनें श्रीअम्बाजीके दाहिने भागमें और छोटियोंने बायें भागमें शयन किया, यद्यपि सभीकी इच्छा थी कि श्रीललीजी हमारी दाहिनी ओर रहें परन्तु उपयुक्त क्रमानुसार श्रीलाडिलीजी श्रीचन्द्रकलाजीके ही दाहिने भागमें हो सकीं ॥३५॥

इसलिये एक श्रीचन्द्रकलाजी ही अपनी इच्छाकी पूर्त्ति पाकर हर्षयुक्त थीं, किन्तु श्रीकिशोरीजीसे अलग रह जानेके कारण अन्य हम सभी बहिनोंका हृदय जल रहा था ॥३६॥

जब मेरे नेत्र आँसुओंसे लबालब भर गये, तब मन्द मुस्कानयुक्त मुखकमल वाली इन श्रीकिशोरीजीका दर्शन मुझे अपने ही दाहिने भागमें प्राप्त हुआ ॥३७॥

पुनः इन श्रीललीजीने अपने हृदयसे लगाकर मुझे बड़ा ही सुख प्रदान किया । श्रीकिशोरीजीके हृदयसे चिपटनेका सौभाग्य प्राप्त हो जानेसे मैं कृतार्थ हो अपूर्व ही आनन्दको प्राप्त हुई॥३८॥

पार्श्वस्थास्तु तदा दृष्टा भगिन्यो हर्षनिर्भराः । मुक्तशोका विशालाक्ष्यः सर्वा दक्षाङ्गदृष्टयः ।।३९।।
अहं साश्चर्यहृदया लालिताऽथ कटाक्षिता । मृदुस्निग्धकराम्भोजच्छायायां सुखमस्वपम् ।।४०।।
अनुभूतं सुखं तर्हि मया यत्प्राणवल्लभ ! । वाचा वाच्वं न तद्विद्धि कृपयाऽऽसादितं यतः ।।४१।।
एवं सदाऽस्या ह्यनुरागपालिताः सर्वा वयं श्रीरघुवंशनन्दन ! ।
नैसर्गिकी प्रीतिरतो न एव हि श्रीस्वामिनीपादसरोजयोः प्रिय ! ।।४२।।

तब मैंने अपने बगलकी बहिनोंकी ओर जो दृष्टि डाली तो उन्हें भी शोकसे रहित, हर्षमें डूबी हुई पाया, वे सभी विशाल नेत्रवाली मेरी बहिनें दाहिनी ओर दृष्टिकी हुई थीं । यह देख कर मेरे हृदयमें बड़ा आश्चर्य हुआ, कि अभी तो ये सभी रो रही थीं अब ये क्यों इस प्रकार प्रसन्न हैं ? और क्यों अपनी दाहिनी ओर ही दृष्टि जमाये हैं ? क्योंकि श्रीकिशोरीजी तो केवल अब मेरे ही समीपमें दाहिनी ओर विराज रही हैं, अतः ये क्यों मेरे समान ही दाहिनी ओर दृष्टि जमाये हैं और बाईं ओर क्यों नहीं देख रहीं हैं ।।३९।।

जब मेरा हृदय आश्चर्यसे भर गया तब श्रीललीजी मेरे प्रति लाड़ व कृपा-कटाक्ष करने लगीं, अतः मैं इनके कोमल चिकने हस्त-कमल की छायामें सुखपूर्वक सो गयी ।।४०।।

हे श्रीप्राणबल्लभजू ! उस समय मैंने जिस सुखका अनुभव किया था, उसका वर्णन आप, वाणी द्वारा अशक्य ही जानिये अर्थात् उसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती, क्योंकि वह ऐकान्तिक सुख मुझे इन श्रीकिशोरीजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ था ।।४१।।

हे श्रीरघुवंशको आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीप्राणप्यारेजू ! इसी प्रकार हम सभी बहिनें इन श्रीललीजूके अनुराग द्वारा सदा ही पाली हुई हैं, अत एव हम सभी का स्वाभाविक प्रेम श्रीस्वामिनीजूके श्रीचरण-कमलोंमें विशेष है ।।४२।।

इति षट्षष्टितमोऽध्यायः

—❀❀❀—

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः।

श्रीकिशोरीजी की धनुरुत्थापन लीला।

श्रीस्नेहपरोवाच।

भूय एव प्रवक्ष्यामि चरित्रं परमाद्भुतम्। अपि दृष्टचा स्वयं दृष्टं श्रूयतां प्राणवल्लभ! ॥१॥
अहं चन्द्रकला चैव चारुशीला सुधामुखी। हेमा, क्षेमा, वरारोहा, सुभगा, पद्मगन्धिनी ॥२॥
लक्ष्मणा, शोभना, शान्ता सुशीला सुखवर्द्धिनी। श्रीप्रसादा सुविद्याद्याः साकमुर्वीशिकन्यया ॥३॥
क्रीडितुं प्रययुः प्रातर्भगिन्यो राजमन्दिरम्। दर्शनोद्विग्नहृदयाः कथञ्चिद्वीतरात्रिकाः ॥४॥

अत्यादृता महाराज्ञ्या प्रणताः श्लक्ष्णभाषितैः।
दर्शनातुरतां प्राप्ता गताः श्रीमैथिलीं द्रुतम् ॥५॥
भावनिर्भरचेतास्काः सर्वा एव नता वयम्।
अस्याः सुस्निग्धकञ्जातपादयोः प्रीतिपूर्वकम् ॥६॥
प्रीत्या निपात्य हृदयेश! कृपाकटाक्षं चेतोऽपहार्यमितमोदरसैकवर्षम्।
वाण्या वयं मधुरया ह्यनया तदानीमाह्लादिता रसिकशेखर! वीतसञ्ज्ञाः॥७॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू! अब मैं स्वयं अपनी आँखोंसे देखे हुये श्रीललीजीके एक विलक्षण चरित को कहती हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥१॥ मैं, श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीचारुशीलाजी, श्रीसुधामुखीजी, श्रीहेमाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीपद्मगन्धाजी ॥२॥

श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीशोभनाजी, श्रीशान्ताजी, श्रीसुशीलाजी, श्रीसुखवर्द्धिनीजी, श्रीप्रसादाजी, श्रीसुविद्याजी आदि सखियाँ निमिवंशको भूषणके समान अधिक शोभायमान करनेवाली श्रीलली जीके साथ खेलनेके लिये प्रातः काल ही राजमन्दिरमें पधारीं क्योंकि सभीका हृदय दर्शनोंके लिये अत्यन्त व्याकुल था और बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार रात्रि व्यतीतकी थीं ॥३॥४॥

वहाँ सभी बहिनोंने श्रीअम्बाजीको प्रणाम किया, श्रीअम्बाजीने अपने मधुर बचनोंसे सभीका सत्कार किया, तब हम सभी दर्शनार्थ व्याकुल हो तुरन्त श्रीमिथिलेशदुलारीजूके पास पहुँच गयीं ॥५॥ और विविध भाव भरे चित्तवाली हम सभी बहिनोंने इन श्रीललीजूके अत्यन्त चिकने, कमलके समान सुकोमल श्रीचरणोंमें प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥६॥

हे रसिकशेखर (भक्तोंको अपना शिरोमणि माननेवाले) हे हृदयेश! श्रीप्राणप्यारेजू! उस समय इन श्रीकिशोरीजीने प्रेमपूर्वक अमित मोद (भगवदानन्द) रसकी वर्षा करने तथा चित्तको हरण करनेवाली, कृपामयी दृष्टि डालकर अपनी अत्यन्त मीठी वाणीसे हम सभीको आह्लादित किया अतः हम सभी बेभान हो गईं ॥७॥

सा प्राणप्रियानास्ति न सेह यस्याः श्रीस्वामिनीयं मम च प्रकृत्या ।
अस्यास्तु सम्प्राप्तदुरापसङ्गाः किञ्चिन्न रुच्यं मनसः प्रविद्मः ॥८॥
नेयं प्रिया प्राणसमा हि तासां याभिर्न दृष्टा श्रुतिमागता वा ।
ताः पूर्णदुर्भाग्यवशेऽनुनीतास्ताभ्यः परा मन्दविधिर्न लोके ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

वाक्यं तदैतदभिभाष्य सवाष्पनेत्रां प्रेमावरुद्धरसनां समवेक्ष्य रामः ।
श्रीमैथिलीवदनचन्द्रचकोरनेत्रां प्रीत्या जगाद रघुवंशविभूषणश्रीः ॥१०॥

श्रीराम उवाच ।

प्राणप्रिये! विरमसीह किमर्थमेव प्रब्रूहि मे तदधुना करुणापरीते! ।
प्राणप्रियाललितकीर्त्तिसुधैकतर्षं संतर्पयस्व तदतुल्ययशोऽमृतेन ॥११॥

श्रीशिव उवाच ।

प्राणप्रियोक्तं त्विति संनिशम्य साऽभूत्समाधाय मनो विवक्षुः ।
उवाच संश्लक्ष्णगिरा रसज्ञं रहस्यमाकर्णय मे ब्रुवन्त्या ॥१२॥

हे प्यारे ! वह कोई ऐसी है ही नहीं, जिसे सहज-स्वभावसे ये श्रीस्वामिनीजू प्राणोंसे बढ़कर प्यारी न हों, इन श्रीललीजूके दुर्लभ सङ्गको पाकर, ऐसी कोई भी अन्य वस्तु हम लोग नहीं जानती हैं, जिसको पानेके लिये मन लालायित हो सके ॥८॥

हे प्यारे ! ये श्रीकिशोरीजी भलेही उन्हें प्राणोंके समान प्रिय न हों, जिन्होंने या तो इन श्रीविश्वविमोहन-मोहिनीजूका दर्शन ही न किया हो अथवा जिन्हें इनके हृदयहारी मङ्गल-गुणोंके श्रवणका सौभाग्य ही न मिला हो, वे दोनों ही पूर्ण दुर्भाग्यके फन्देमें फँसी हैं, उनसे बढ़कर संसारमें और कोई भी मन्द-भाग्य वाली न होगी ॥९॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीस्नेहपराजी श्रीप्राणप्यारेजूसे यह कहकर सजल-नेत्र हो गयीं, प्रेम वृद्धिसे वाणी रुक गयी, नेत्र श्रीमिथिलेश-नन्दिनीजूके मुख रूपी चन्द्रदेवके दर्शनों के लिये चकोरके समान तल्लीन हो गये, तब अपनी शोभासे रघुवंशको विभूषित करनेवाले प्यारे श्रीरामभद्रजी प्रेमपूर्वक उनसे बोले—॥१०॥

हे करुणायुक्ते ! प्राणप्रिये ! आप श्रीप्रियाजू का श्रवण-सुखद चरित सुनाना क्यों बन्द कर रही हैं ? कृपा करके श्रीप्राणप्रियाजूके मनोहर कीर्त्ति-रूपी अमृतके लिये मुझ प्यासे को, उनके उपमा रहित यशरूपी अमृतके द्वारा सम्यक् प्रकारसे तृप्त कीजिये ॥११॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीप्राणप्यारेजूके प्रेम-भरे वचनोंको सुनकर श्रीस्नेहपराजी मनको स्थिर करके चरित सुनानेकी इच्छुक हो, चरितके रसको जानने वाले प्यारे श्रीरामभद्रजूसे बड़ी मधुर वाणीमें बोलीं—हे प्यारे ! श्रीप्रियाजूके रहस्य चरितको मैं सुनाती हूँ आप श्रवण कीजिये ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पाके विलम्बं समुदीक्ष्य भीता पिनाकसेवावसरेऽभ्युपेते ।
प्रेम्णाऽऽह शारद्यसुधांशुवक्त्रां गाढं समालिङ्ग्य वचांसि माता ॥१३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

भद्रं हि ते चाजगवार्चनाय पितुस्तवैषाऽऽगमनस्य वेला ।
निमग्नकार्याऽस्म्यत एव याहि त्वमेव संमार्जय चापभूमिम् ॥१४॥
सर्वा भगिन्योऽप्यनुयान्तु साकं त्वयोर्मिलाचन्द्रकलादिमुख्याः ।
सेवाविलम्बो न शुभे विधेयो वत्से ! प्रयाह्याशु ममाज्ञयेतः ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्थं समाकर्ण्य तथेति चोक्त्वा प्रसन्नताराधिपतुल्यवक्त्रा ।
अस्माभिरम्भोजदलायताक्षी स्मितानना गन्तुमना समूचे ॥१६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अहो भगिन्यो जननीनिदेशान्माहेशकोदण्डगृहं प्रयात ।
तद्भूमिसम्मार्जनकामयेतो मया समं चापविलोकनाय ॥१७॥

प्यारे ! श्रीललीजीके निमित्त श्रीअम्बाजी कलेऊ बना रही थीं पर उसमें कुछ विलम्ब था । इधर श्रीधनुषजीकी सेवाका समय उपस्थित हो गया, इस लिये श्रीअम्बाजी घबरा गयीं । हृदयमें श्रीललीजीके लिये कलेऊ बनानेकी प्रधानता होनेके कारण उसे न छोड़कर धनुषजीकी सेवा सम्हालनेके लिये शरद् ऋतुके पूर्ण-चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी प्रकाशमय मुखवाली इन श्रीललीजूको भली प्रकार हृदयसे लगाकर, वे श्रीअम्बाजी इस प्रकार प्रेमपूर्वक बोलीं ॥१३॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:–हे श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो । यह समय आपके श्रीपिताजीके शिवधनुष पूजनका उपस्थित है, मैं कार्यमैं निमग्न हूँ, अत एव आज आपही पधारें और श्रीधनुषजीकी भूमिको स्वच्छ कर आवें ॥१४॥ हे कल्याणकारिणी वत्से ! मेरी आज्ञासे यहाँसे आप शीघ्र पधारें । श्रीउर्मिला, चन्द्रकलादि मुख्य बहिनें आपके साथ जावें, पर किसी खेलमें पड़कर आपको सेवामें विलम्ब नहीं करना चाहिये ॥१५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीअम्बाजीकी इस प्रकार आज्ञा सुनकर उनसे "ऐसा ही करूँगी" कहकर, चन्द्रमाके समान प्रसन्न आह्लादकारी मुख, कमल–दलके समान विशाल नेत्रोंवाली ये श्रीललीजी, हम सभीके साथ धनुष–भूमि लीपनेके लिये मनमें चलनेकी भावना लाकर मुस्कराती हुई बोलीं ॥१६॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:–अहो बहनों । मैं इस समय श्रीअम्बाजीकी आज्ञासे धनुष–भूमिकी सफाई करनेकी इच्छासे धनुष मन्दिर जा रही हूँ अतः आपलोग भी धनुष महाराजके दर्शनोंका लाभ लेनेके लिये मेरे साथ पधारें ॥१७॥

श्रीभगिन्य ऊचुः ।

हे मैथिलि ! प्रेमनिधे ! स्मितास्ये ! न नो धनुर्दर्शनलाभतृष्णा ।
त्वत्पादपद्मार्पितशेमुषीणां त्वद्दर्शनासक्तदृशो व्रजामः ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्ताऽवनिनाथपुत्री प्रहर्षितात्मा स्वसृभिःपरीता ।
प्रणम्य सा मातरमम्बुजाक्षी संवीज्यमाना भवनात्प्रतस्थे ॥१९॥
सपुष्पवस्त्रावृतवर्त्मनाऽऽप प्राणेश ! कोदण्डनिकेतनं सा ।
तद्द्वाःस्थकैर्दुन्दुभिशब्द उच्चैः कृतस्तदीयागमनप्रहर्षात् ॥२०॥
सस्वागतं सा परिलालिता तैरन्तर्गता शैवधनुर्निरीक्ष्य ।
महाविशालं महितं स्वपित्रा ननाम साकं सर्वाभिरेव ॥२१॥
पुनस्तु तद्भूमिसुमार्जनादिषु श्रद्धान्विता दत्तमतिर्धरासुता ।
अतीव सुस्निग्धसरोजपाणिना गृहीतचापाऽऽस मनोहरा हि नः ॥२२॥
संमार्जनीपाणिरवेक्ष्य सुद्युतिः संस्थापितं वक्रतया परेश्वरी ।
उत्थाप्य सव्येन सरोजपाणिना ह्यलेपयत्तद्धनुषोऽध उर्वीम् ॥२३॥

बहिनें बोलीं:—हे प्रेमकी भण्डारिनी ! हे मुस्कान युक्त मुखवाली श्रीमिथिलेशदुलारीजू ! आपके श्रीचरणकमलोंमें सम्यक् प्रकारसे अर्पणकी हुई बुद्धिवाली हम सभीको, श्रीधनुषजीके दर्शन लाभकी तृष्णा नहीं है, किन्तु आपके दर्शनोंके लिये हम लोगोंके नेत्रोंकी अत्यन्त आसक्ति है, अत एव आपके दर्शनोंके लोभसे अवश्य चलेंगी ॥१८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! इस प्रकार बहिनोंके द्वारा अपने हृदयका भाव निवेदन करने पर, इन कमललोचना श्रीमिथिलेशदुलारीजीका हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ, पुनः वे श्रीअम्बाजीको प्रणाम करके छत्रचामरादि द्वारा अपनी बहिनोंसे सेवित होती हुई महलसे विदा हुई ॥१९॥

हे श्रीप्राणनाथजू! पुष्पोंके सहित वस्त्र बिछे हुये मार्गके द्वारा श्रीललीजी धनुष-भवन पहुँची उनके आगमनके अत्यन्त हर्षसे द्वारपालोंने नगाड़ेका बहुत ऊँचा शब्द किया ॥२०॥

उन द्वारपालोंके द्वारा स्वागतपूर्वक प्यारकी हुई, उदार अर्थात् सब कुछ प्रदान करनेवाली कीर्त्ति-सम्पन्ना श्रीललीजीने भीतर मन्दिरमें प्रवेश करके श्रीपिताजी द्वारा पूजित भगवान् शङ्कर-जीके विशाल धनुषका दर्शन करके, उन्हें सभी बहिनों सहित प्रणाम किया ॥२१॥

पुनः धनुष भूमि मार्जन कार्यमें श्रद्धा पूर्वक अपनी बुद्धि लगाकर श्रीभूमिनन्दिनीजूने कमलके समान अत्यन्त चिकने कोमल अपने हाथसे धनुषको ग्रहण करके हम सभीके मनको हर लिया ॥२२॥ हे प्यारे! ब्रह्मा, विष्णु, महेश-आदि विश्वनायकोंके ऊपर भी शासन करनेवाली ये श्रीललीजी दाहिने हाथमें झाड़ू लिये धनुषको तिरछा रखा देखकर उसे अपने बायें हस्त-कमल द्वारा उठाकर नीचेकी भूमिको दाहिनेसे लीपने लगीं ॥२३॥

धनुष-भूमि लीपने के लिये श्रीकिशोरीजी अपनी बहिनों के समेत धनुष-भवन पधारी हैं, वहाँ वे धनुषको उनकी कमरसे भी ऊँचा देखकर आश्चर्य-चकित हैं ।

प्रसूनवृष्टिर्विबुधद्रुमाणां कृता निलिम्पैर्जयघोषपूर्वा ।
अस्या उपर्य्यम्बुजपत्रनेत्र ! कृत्वा कलं दुन्दुभिचारुनादम् ॥२४॥

विलोक्य तत्कौतुकमग्नचित्ताः किमेतदित्येव विमर्शवत्यः ।
स्थिताः स्म सर्वा धनुषः समीपे यथा हि चामीकरमूर्त्तयश्च ॥२५॥

क्षणेन संमार्ज्य पिनाकभूमिं संस्थाप्य कोदण्डमजिह्मरेखम् ।
विस्मेरविम्बारुणमोहनौष्ठी जगावियं कोमलया गिरेति ॥२६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

आज्ञाप्रपूर्त्ति विहितां जनन्यै निवेद्य सर्वाः कृतभोजनास्तु ।
अयामहे खेलयितुं स्वगेहाद्द्रुतं भगिन्यो ! मुदिता मतं मे ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतावदुक्त्वेयमथो तदानीमस्माभिरम्बाभवनं प्रतस्थे ।
अनुष्ठिताज्ञा परिरभ्य मात्रा संचुम्बिता मोदपरिप्लुताक्ष्या ॥२८॥

सम्भोजिता मोदभरेण चेतसा पुनर्यथेष्टं प्रणयप्रवीणया ।
साकं तयेयं स्वसृभिः शुभेक्षणा लोकोत्तरानन्दघनस्वरूपिणी ॥२९॥

हे कमललोचन श्रीप्यारेजू ! उस समय देवताओंने नगाड़ोंका मनोहर शब्द करके जयकार पूर्वक श्रीललीजीके ऊपर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा की ॥२४॥

हे प्यारे ! धनुषको उठाकर, भूमि लीपनेकी लीला देखकर चित्त आश्चर्यमें डूब गया "यह क्या देख रही हैं ? इस बात पर विचार करती हुई हम सभी उस धनुषके समीपमें इस प्रकार स्थिर खड़ी हो गयीं, मानों सुवर्णकी बनी हुई मूर्त्तियाँ ही खड़ी हों ॥२५॥ इधर मुस्कान युक्त, बिम्बाफलके समान लाल तथा मुग्धकारी ओठोंवाली ये श्रीललीजी, क्षणमात्रमें भूमिको लीप कर, सीधी रेखामें धनुषको स्थापित करके कोमलवाणीमें इस प्रकार बोलीं-॥२६॥

हे बहिनों ! श्रीअम्बाजीसे उनकी आज्ञा-पालन करनेकी सूचना देकर तथा भोजन करके हम सभी बहनें अपने भवनसे खेलनेके लिये शीघ्र आनन्दपूर्वक चलें, यही मेरा विचार है ॥२७॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे! इतना कहकर हम सभीके सहित ये श्रीललीजी श्रीअम्बाजीके भवनमें पधारीं, वहाँ आज्ञा पालन करके आई हुई इन श्रीललीजीको आनन्द भरे नेत्रों वाली श्रीसुनयनाअम्बाजीने हृदयसे लगाकर मुखचन्द्रको चूमा ॥२८॥

प्रेमके स्वरूपको भली प्रकार समझनेवाली श्रीअम्बाजीने हर्ष-निर्भर चित्तसे बहिनोंके समेत दिव्य आनन्दघन (ब्रह्म) स्वरूपा इन मङ्गलमय दर्शनवाली श्रीललीजीको, इच्छानुसार भोजन कराया ॥२९॥

आसादिताज्ञा पुनरद्भुताकृतिः क्रीडां व्यधाद्यां हि सुखानुदित्सया ।
अस्माभिरम्भोजदलायतेक्षणा सा श्रूयतां प्रेष्ठ ! मयोच्यतेऽधुना ॥३०॥

हे प्यारे ! पुनः आश्चर्यमय स्वरूप तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रवाली इन श्रीललीजीने श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर सभीको सुख प्रदान करनेकी इच्छासे जो क्रीड़ा की, उसे मैं कहती हूँ आप श्रवण कीजिये ॥३०॥

इति सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

आँख मिचौनी लीला में श्रीचन्द्रकलाजीके उपहास व क्रन्दन से
श्रीकिशोरीजी की तिरोधान तथा आविर्भाव लीला

श्रीस्नेहपरोवाच ।

श्रीमच्चन्द्रकलोर्मिला च विमला श्रीचारुशीला वरा
रोहाविश्वविमोहिनी च सुभगा श्रीमाण्डवी सानुजा
हेमा पद्मविलासिनी च सुषमा क्षेमा तथा लक्ष्मणा
भद्रा प्रेष्ठ ! सुधामुखी च रसिका पद्मादिगन्धा श्रुतिः ॥१॥
श्रीचम्पकाङ्गी परमा प्रसादा सुलोचनाद्या-प्रमुखा भगिन्यः ।
साकं सुमुख्या दयितानयेयुर्निकेतनं मारकतं सखीभिः ॥२॥
ताः संस्थिताः प्रेक्ष्य नृपेन्द्रपुत्री प्रोवाच संश्लक्ष्णगिरेति वाक्यम् ।
दृङ्मीलनाख्यां कुरु चारुलीलां ममाज्ञया चन्द्रकले ! मिथो वै ॥३॥
स्थिताऽस्म्यहं त्वं सह चारुशीलया संगम्य दूरं युगपत्सलाघवम् ।
संस्पर्ष्टुकामे निजशक्तितो हि मामागच्छत मे पुनरेव सन्निधिम् ॥४॥

हे प्यारे ! श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीउर्मिलाजी, श्रीविमलाजी, श्रीचारुशीलाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीविश्वविमोहिनीजी, श्रीसुभगाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी, श्रीहेमाजी, श्रीपद्मविलासिनीजी, श्रीसुषमाजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीभद्राजी, श्रीसुधामुखीजी, श्रीरसिकाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीश्रुतिजी ॥१॥ हे प्यारे! श्रीचम्पकाङ्गीजी, श्रीप्रसादाजी श्रीसुलोचनाजी आदि प्रमुख सभी बहनें सखियों सहित इन सुमुखी श्रीलाडिलीजूके साथ मरकत भवन को गयीं ॥२॥

हे प्यारे ! उन सभीको उपस्थित देखकर राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजी बड़ी ही मधुर वाणीमें—हे श्रीचन्द्रकले ! आज मेरी आज्ञासे परस्पर आँखमिचौनी लीला करें । मैं खड़ी हूँ तुम श्रीचारुशीलाजीके सहित दूर तक जाओ पुनः मेरे छूनेके लिये अपनी शक्तिभर, एकही साथ शीघ्रतापूर्वक मेरे पास दौड़कर-आजाओ ॥३॥४॥

पश्चात्तु याऽऽयास्यति मत्सकाशं तयैव दृङ्मीलनमस्ति कार्यम् ।
अदृश्यतां चाभिगतासु सर्वासून्मील्य नेत्रे परिमार्गणं च ॥५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्राणप्रियाचन्द्रमुखाद्विनिःसृतं वचोऽमृतं ताः परिपीय हर्षिताः ।
नत्वोचुरम्भोजदलायतेक्षणां हे बल्लभे ! नो विनयो निशाम्यताम् ॥६॥

स्वसार ऊचुः ।

चिकीर्षितं ते मनसा समीहितं ह्यस्माभिरेणाक्षि ! भवत्यहर्निशम् ।
तदद्भुतं नः परमं प्रतीयते सत्यं वदामो निमिवंशभूषणे ॥७॥
कच्चित्प्रिये! कल्पलताऽसि जाता त्वं वस्तुतो नो मनसेष्टसिद्ध्यै ।
आज्ञा शिरोधार्यतमा भवत्या उक्त्वेति नेमुः पुनरेव सर्वाः ॥८॥
श्रीचारुशीलेन्दुकले मिलित्वा दूरं ततोऽभ्येत्य यथा निदेशम् ।
सार्द्धं पुनर्दुद्रुवतुः स्वशक्त्या संस्पर्ष्टुकामे युगपत्प्रियैनाम् ॥९॥
पस्पर्श वै चन्द्रकला पदाब्जे ह्यस्याश्च पूर्वं त्वरया समेत्य ।
निमीलिताक्ष्यास च चारुशीला सर्वास्तदाऽदृष्टिपथं प्रयाताः ॥१०॥

पीछेसे मेरे पास जो आयेगी, उसको अपनी आँखें मीचनी पड़ेगी और सभीके छिप जाने पर आँखे खोलकर उसीको खोजना होगा ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे! श्रीप्राणप्यारीजूके पूर्णचन्द्र समान आह्लादकारी श्रीमुखारविन्दसे निकले हुये इस वचन रूपी अमृतका पान करके, कमललोचना सभी बहिनें हर्षित हो प्रणाम करके बोलीं:–हे प्यारी श्रीललीजू ! हम लोगोंकी प्रार्थना श्रवण कीजिये ॥६॥

हे श्रीनिमिवंशको भूषणके समान सुशोभित करने वाली मृगलोचना श्रीललीजू ! हम सत्य कहती हैं कि हम लोगोंके मनमें जो-जो भावना उठती है, आप उसीको रात दिन (सदा-सर्वदा) करनेकी इच्छा करती हैं, अत एव हम सभीको इस बातका बड़ा आश्चर्य प्रतीत होता है ॥७॥

हे श्रीप्यारीजू ! हम लोगोंकी मनोभावना पूरी करनेके लिए वास्तवमें क्या आप कल्पलता तो नहीं प्रकट हुई हैं ? आपकी आज्ञा परमशिरोधार्य है अर्थात् उसका पालन करना सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, एतदर्थ आँखमिचौनी लीला प्रारम्भ करती हैं, ऐसा कहकर उन सभीने पुनः श्रीललीजू को प्रणाम किया ॥८॥

हे प्यारे! तब श्रीचारुशीलाजी व श्रीचन्द्रकलाजी श्रीललीजूकी आज्ञानुसार दोनों दूर जाकर अपनी–अपनी शक्तिके अनुसार इन्हें छूनेके लिये पुनः एक साथ दौड़ीं ॥९॥

हे प्यारे ! श्रीचन्द्रकलाजीने शीघ्रता पूर्वक आकर पहिले इन श्रीललीजूके श्रीचरणकमलों का स्पर्श किया, इस लिये पूर्वोक्त आज्ञानुसार श्रीचारुशीलाजीने बिना कहे सुने ही, अपनी आँखे मीच लीं, तब सभी बहिने छिप गयीं ॥१०॥

गतास्वदृष्टिं पुनरेव तासून्मील्येक्षणेऽन्वेषणमाशु चक्रे ।
इतस्ततः सा मृगशावकाक्षी सर्वावकाशेषु विलोकितेषु ॥११॥

दृष्टा तया श्रीविमला च कोणे कोष्ठान्तरे सङ्कुचिताङ्गयष्टिः ।
प्रगृह्यतां शोभन ! चारुशीला व्यघोषयत्स्वात्मजयं मुरल्या ॥१२॥

श्रुत्वा विनिष्क्रम्य पुनः समेताः सर्वा भगिन्यो ललितं हसन्त्यः ।
निमीलिताक्षी विमला यदाऽऽसीद् विनिर्ययुस्ता अपि यत्र तत्र ॥१३॥

सोन्मील्य नेत्रे श्रुतिकीर्त्तिमाप कपाटपृष्ठे घननीलशाटीम् ।
इतस्ततो रत्नगृहे विशाले विचिन्वती सुन्दर ! नीरजाक्षीम् ॥१४॥

एवं तया चन्द्रकलाऽपि लब्धा तयोर्मिला चोर्मिलया च हेमा ।
श्रीमाण्डवी प्रेष्ठ ! तया प्रसादा तया तयाऽनुत्तम ! पद्मगन्धा ॥१५॥

श्रीपद्मगन्धा सुभगां समस्पृशत् स्पृष्टा तया तीव्रधियाऽऽशु लक्ष्मणा ।
सा चास्पृशच्चन्द्रकलां तदोर्विजां जगौ वचश्चन्द्रकलेति सादरम् ॥१६॥

उन सभीके छिप जाने पर मृग छौनाके समान विशाल चञ्चल नेत्रवाली श्रीचारुशीलाजी नेत्रोंको खोलकर, तुरन्त देखे हुये अपने सभी स्थानोंमें उनको खोजने लगीं ॥११॥

एक कमरेके कोनेमें अपने अङ्गरूपी छड़ीको सिकोड़ कर खड़ी हुई श्रीविमलाजी उन्हें दिखाई पड़ीं। हे शोभनजू! उन्होंने उसे पकड़कर मुरली द्वारा अपनी जीतकी घोषणा की ॥१२॥

वंशीका शब्द सुनकर सभी बहिनें मनोहर हँसी करती हुई निकलकर एकत्रित हो गयी, पुनः जब श्रीविमलाजीने नेत्र बन्द किया तब फिर यत्र तत्र जाकर सभी छिप गयीं ॥१३॥

हे सुन्दर ! श्रीविमलाजीने अपने नेत्रोंको खोलकर उस रत्नमय विशाल भवनमें इधर–उधर खोजती हुई मेघके समान नीली साड़ी पहिने नीलकमलके समान नेत्रवाली श्रीश्रुति-कीर्त्तिजीको किवाड़के पीछे खड़ी पाया ॥१४॥

हे परमप्यारेजू ! इसी प्रकार श्रीश्रुतिकीर्त्तिजीने श्रीचन्द्रकलाजीको, श्रीचन्द्रकलाजीने श्रीउर्मिलाजीको, श्रीउर्मिलाजीने श्रीहेमाजीको, श्रीहेमाजीने श्रीमाण्डवीजीको, श्रीमाण्डवीजीने श्रीप्रसादाजीको, श्रीप्रसादाजीने श्रीपद्मगन्धाजीको छुआ ॥१५॥

श्रीपद्मगन्धाजीने सुभगाजीका स्पर्श किया, श्रीसुभगाजीने श्रीलक्ष्मणाजीको छुआ श्रीलक्ष्मणा-जीने श्रीचन्द्रकलाजीको स्पर्शकर लिया, तब श्रीचन्द्रकलाजी आदरपूर्वक श्रीललीजूसे बोलीं ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

हे वल्लभे ! त्वं व्रज सद्म कञ्चिद् गुप्ता भवाहं परिमार्गयामि ।
तथेति सम्भाष्य मृदुस्वभावा तमोवृतं सा सदनं विवेश ॥१७॥

प्रकाशरूपं प्रबभूव तच्च ह्यगात्ततोऽन्यद्गृहमाशु गुप्त्यै ।
तदप्यभूद्वल्लभ ! सुप्रकाशं विहाय तच्चान्यदिथाय हर्म्यम् ॥१८॥

तडित्प्रकाशेन बभूव युक्तं तदप्यदोऽभूत्कुतुकं विचित्रम् ।
निरीक्ष्य तच्चन्द्रकलाऽपि दूराज्जहास साश्चर्यकुशाग्रबुद्धिः ॥१९॥

गृहीतपादाऽऽह पुनः समेत्य तां विदेहजां यासभयेन विह्वला ।
विसृज्यतामेष समुद्यमस्त्वया सूर्य्योऽपि कच्चित्तमसि प्रलीयते ॥२०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सहास्यमुक्ता स्मितपूर्वभाषिणी तयेति तन्मोहनिवृत्तयेऽब्रवीत् ।
तिरोहिता किं प्रभवामि खल्वहं वदेति मे चन्द्रकले ! परिस्फुटम् ॥२१॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे श्रीप्यारीजू ! आप किसी भवनमें जाकर छिपिये और मैं आपको खोजूं । श्रीचन्द्रकलाजीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीललीजी उनसे "ऐसा ही होगा" कहकर, एक अँधेरे भवनमें छिपने गयीं । श्रीललीजूके पधारनेसे वह अँधेरा भवन सुन्दर प्रकाशमय हो गया, अत एव वे छिपनेके लिये पुनः दूसरे अँधेरे गृह में पधारीं ॥१७॥१८॥

उस महलमें भी बिजली सा प्रकाश हो गया, यह सभीके लिये बड़ा विचित्र कौतुक हुआ । कुशके अग्रभागके समान प्रखर बुद्धिवाली श्रीचन्द्रकलाजी, इस लीलाको दूरसे देखकर चकित हो हँसने लगीं ॥१९॥

पुनः उनके परिश्रम भयसे विह्वल हो, श्रीचन्द्रकलाजी, छिपनेके लिये देहकी सुधिबुधि भूली हुई उन श्रीविदेह नन्दिनीजूके पास आकर,उनके श्रीचरणकमलोंको पकड़कर बोलीं:–हे श्रीललीजी! आप छिपने के लिये यह उद्योग छोड़ दीजिये, क्योंकि उसकी सफलता नहीं हो सकती यदि कहें क्यों ? तो मैं आपसे यह पूछती हूँ क्या सूर्यदेव अँधेरेमें छिप सकते हैं ? अर्थात् जैसे सूर्य भगवान् के लिये अँधेरेमें छिपना उनकी शक्तिसे बाहर का विषय है, उसी प्रकार किसी भी अँधेरे घरमें आप भी छिपने को असमर्थ हैं ॥२०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीचन्द्रकलाजीके हास्य पूर्वक ऐसा कहने पर मुस्कान पूर्वक बोलने वाली ये श्रीललीजी, "अन्धकारमें आप छिपने को समर्थ नही हैं" श्रीचन्द्रकलाजीके इस मोहको दूर करनेके लिये बोलीं:–हे श्रीचन्द्रकले ! आप मुझसे यह स्पष्ट बतलाइये, क्या मैं निश्चय ही छिप जाऊँ ? ॥२१॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

इच्छेदृशी मे हृदि संप्रजाता त्वां प्रार्थये यासभिया निवृत्यै ।
किं गोपयामि प्रियदर्शनेऽद्य त्वत्तो मनोभावमतुल्यरूपे ! ॥२२॥
इमामुपाकर्ण्य गिरं कलस्मिता निमीलयोभे नयनेऽब्रवीदिदम् ।
अन्तर्हिता चात्र भवामि मार्गय प्रीतिर्यथा ते करवाणि सत्वरम् ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतन्निगद्याशु निमीलितेक्षणां विलोक्य तामिन्दुकलां हि लीलया ।
अन्तर्दधे तत्र मनोहरद्युतिः प्रेष्ठा स्वसॄणामसुवत्स्वभावतः ॥२४॥
सोन्मील्य नेत्रे समभूत्प्रवृत्ता ह्यन्वेष्टुमेनां परमप्रहृष्टा ।
स्थानानि सर्वाणि विमार्गमाणा प्राणप्रियां नाथ ददर्श नाथ !॥२५॥
जगाम चिन्तां महतीं तदानीमभूदिदं किं कुतुकं विचित्रम् ।
निगूहितुं यैत्य गृहाद्गृहं प्राक्शशाक नैषेति मयाऽनुदृष्टम् ॥२६॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:-हे निरुपम रूप तथा प्रियदर्शनवाली श्रीललीजी ! मैं अपने हृदयके भाव को क्या छिपाऊँ ? मेरे हृदयमें इच्छा तो ऐसीही थी, कि आप छिपें और मैं खोजूं, परन्तु छिपनेमें आपको, वृथा कष्ट होरहा है क्योंकि आप जिस अँधेरे कमरेमें पधारती हैं, वह आपकी स्वाभाविक कान्तिसे प्रकाशित हो जाता है, अत एव छिपनेके लिये आपको इच्छानुकूल न कोई स्थल मिल रहा है और न मिल सकेगा, परन्तु आप अपने श्रीअङ्गके प्रकाश पर ध्यान न देकर केवल अँधेरा खोजनेमें व्यस्त हो इधर उधर दौड़ रही हैं, अत एव आपको यह व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ रहा है, इसलिये मैं प्रार्थना करती हूँ, कि आप छिपनेका विचार छोड़ दीजिये ॥२२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! श्रीचन्द्रकलाजीकी इस प्रार्थनाको सुनकर, मनोहर मुस्कान वाली श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीचन्द्रकले ! अच्छा अब आपकी जिसमें प्रसन्नता है वही मैं तुरन्त करती हूँ, आप अपनी आँखें मीचें, मैं यहीं छिपती हूँ, खोजियेगा ॥२३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! सभी बहिनोंको प्राणोंके समान स्वाभाविक प्यारी, अपने श्रीअङ्ग की कान्तिसे मन को हरणकर लेनेवाली ये श्रीललीजी ऐसा कह कर, श्रीचन्द्रकलाजीको आँखें मीचे हुये देखकर वहीं सहसा छिप गयीं ॥२४॥

हे नाथ! श्रीचन्द्रकलाजीके हृदयमें यह भावना बनी हुई थी कि ये अपने श्रीअङ्गकी बिजली-समान कान्तिके कारण कहीं भी छिप नही सकतीं, मैं तुरन्त खोज लूँगी, इस लिये बड़े हर्ष पूर्वक आँखें खोलीं तो कहीं प्रकाश नहीं दीखा। अतः इन्हें खोजनेके लिये प्रवृत्त हुईं, किन्तु सभी स्थानोंमें खोजती हुई भी जब कहीं श्रीललीजीका दर्शन उन्हें नहीं हुआ ॥२५॥ तब वे बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हुईं, कि यह क्या विचित्र लीला हुई? क्योंकि मैंने अभी देखा था कि ये श्रीलली जी बारम्बार एक गृहसे दूसरे गृहमें जाकर भी, छिपनेको समर्थ नहीं हो रही थीं ॥२६॥

अस्मिन्निकेते क्व नु सा विलीना विपर्यितोऽयं समयो विभाति ।
न सोऽवकाशो न गताऽस्मि यस्मिन् विचेतुमार्यामसिताम्बुजाक्षीम् ॥२७॥
अवाप चेदन्यगृहं च गुप्त्यै दृष्टा मदन्याभिरुतालिभिः स्यात् ।
विचार्य चैतन्मनसि प्रयाय प्रोवाच ता दीनवचो यथार्थम् ॥२८॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

कच्चिद्भगिन्यो भवतीभिरार्या दृष्टा व्रजन्ती वदतान्यगेहम् ।
न दृश्यतेऽस्मिन्नयमाभिरामा विचिन्वती चास्मि गता निराशाम् ॥२९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

निशम्य ताः कौतुकसिन्धुमग्नाः प्रोक्तं तया वाक्यमशातपूर्णम् ।
विष्टभ्य चित्तंद्रुतमूचुरार्या दृष्टा न हर्म्याद्बहिरागतेति ॥३०॥
भयप्रदं किं वचनं ब्रवीषि श्रोतुं न शक्ष्याम इति प्रियोक्त्वा ।
श्रीचारुशीलादिसमस्तसख्यो गता विचेतुं भवनं तदेनाम् ॥३१॥
ताश्चापि सर्वत्र पुनः पुनश्च प्रचक्रुरन्वेषणमिन्दुमुख्याः ।
प्रस्वेदधाराऽनुचचाल तासां गात्रेषु तूद्विग्नतयाऽम्बुजाक्ष ! ॥३२॥

वही श्रीललीजी, इस भवनमें कहाँ छिप गयीं ? हाय कहाँ तो वे स्वयं छिपने में असमर्थ हो रही थीं, कहाँ उलटे मैं ही अब उन्हें नहीं खोज पारही हूँ, अत एव यह समय ही प्रतिकूल दिखाई देरहा है, क्योंकि वह कोई भी स्थान शेष नहीं है, जिसमें उन नील कमलदल लोचनाजीको खोजनेके लिये मैं न गयी हूँगी ॥२७॥

यदि कदाचित् वे दूसरे ही भवनमें छिपनेके लिये पधारी हों, तो मेरेसे अन्य सखियोंने उन्हें अवश्य ही देखा होगा । श्रीचन्द्रकलाजी ऐसा मनमें विचार करके यथार्थ दीन वचन बोलीं ॥२८॥ हे बहिनों ! बतलाइये, क्या आप लोगोंने श्रीललीजीको किसी दूसरे भवनमें जाते हुये देखा है ? क्योंकि नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाली वे श्रीललीजी इस भवनमें कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रही है, मैं खोजते-खोजने निराश हो गयी ॥२९॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीचन्द्रकलाजीके दुःख पूर्ण इन कहे वचनोंको सुनकर सभी बहने आश्चर्य सागरमें डूब गयीं, पुनः अपने चित्तको सावधान करके तुरन्त बोलीं:-"श्रीललीजीको भवनसे बाहर जाते हुए हम लोगोंने नहीं देखा ॥३०॥ हे श्रीचन्द्रकलाजी ! आप क्या भय दायक वचन बोल रही हैं ? हम लोग इन्हें सुननेको समर्थ नहीं हैं । ऐसा कहकर श्रीचारुशीलाजी आदि सभी सखियाँ उस विशाल भवनमें श्रीललीजीको खोजनेके लिये पधारीं ॥३१॥

हे कमललोचन ! वे चन्द्रमुखी सखियाँ भी उन्हें बारम्बार सभी स्थानोंमें खोजने लगीं, घबराहटके कारण उन सभीके अङ्गोंसे पसीनेकी धारा बह चली ॥३२॥

परं न शेकुर्नलिनायताक्षीं विचेतुमेनामपि कोटियत्नैः ।
चक्रुर्विलापं सुदृशो हताशा अस्या गुणान्वल्लभ ! वर्णयन्त्यः ॥३३॥

भगिन्य ऊचुः ।

क्व नु गता प्रिये ! पङ्कजेक्षणे ! वनरुहानने ! नो विहाय ह ।
अनवलोकिता स्वप्रियालिभिर्जनकनन्दिनि ! द्वाःस्थितालिभिः ॥३४॥
सहजमोहिनि ! प्रेमविग्रहे ! गृहमिदं त्वया हीनमीक्ष्यते ।
अहह वर्त्मना केन निर्गता न हि तदद्य नो बुद्धिगोचरम् ॥३५॥
असमयेऽधुना हा प्रिये वयं रसिकवत्सले ! केन चांहसा ।
असितलोचने उज्झिता वयं ह्यसि बहिश्च वा किं तिरोहिता ॥३६॥
इयमधीश्वरी सर्वसाक्षिणां जयति सर्वगाऽमेयविक्रमा ।
इयममोघदृग्भक्ततत्परा भयनिवारिणी सर्वदेहिनाम् ॥३७॥

परन्तु करोड़ों उपाय करनेपर भी इन कमललोचना श्रीललीजीको खोजनेमें वे समर्थ न हुईं, अत एव हताश हो श्रीललीजीके गुणोंका वर्णन करती हुई, वे सभी सुन्दर नेत्रवाली बहिनें बिलख-बिलख कर रोने लगीं ॥३३॥

बहिनें बोलीं:-हा कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली ! हा प्रफुल्लित कमलके सदृश चन्द्रमुखीजू हा प्रिये ! हा श्रीजनकनन्दिनीजू ! द्वारपर उपस्थित अपनी प्रिय सखियोंकी दृष्टि बचाकर, हम सभीको छोड़कर आप कहाँ चली गयीं ॥३४॥

अनायास ही चित्तको मुग्धकर लेने वाली हे प्रेम मूर्त्तिस्वरूपा ! श्रीललीजू ! ऐसा अनुमान हो रहा है कि आप इस भवनमें हैं नहीं । अहह !! परन्तु किस मार्गसे आप निकल गयीं ? यह समझमें नहीं आ रहा है ॥३५॥

हे भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखने वाली ! हे श्याम नेत्रवाली श्रीललीजी ! हाय हमारे किस अपराधसे इस खेलके आनन्दमय समयमें, हमें आपने परित्याग किया है ? अथवा क्या बाहर छिपी हैं ? ॥३६॥

पार न पाने योग्य पराक्रम (शक्ति) से युक्त, सभी साक्षी इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंका नियमन करनेवाली, सर्व व्यापिनी, अमोघ दृष्टिवाली (अर्थात्- जिनकी प्रसन्नतापूर्ण दृष्टि होनेपर प्राणियोंके लिये सभी प्रतिकूल अनुकूल, असम्भव सम्भव और अप्रसन्नता युक्त दृष्टि होने पर सम्भव असम्भव और अनुकूल प्रतिकूल हो जाते हैं ऐसी) भक्तोंको रिझानेमें लगी हुई, तथा सभी प्राणियोंके भयको दूर करनेवाली, ये श्रीललीजी सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराज रही हैं ॥३७॥

इति पुरोदितं ब्रह्मयोनिना ऋतमवेक्षितं साम्प्रतं हि तत् ।
न तु पुरेति नः प्रत्ययो हृदि स्थितिमवाप वै तदृशेदृशी ॥३८॥
सुनयनासुता त्वं किलासि नो जनकतोषिता प्रोदिता ह्यसि ।
अनवधिक्षमावैभवान्विते ! मनस एव नो ऽघं व्यपाकुरु ॥३९॥
प्रकटिता यथा सत्कृपान्विता पिककलस्वने ! ऽस्मिन्नृपान्वये ।
सकलवेदविन्मौलिवन्दिते सकृपमेव नः पाहि भूमिजे ! ॥४०॥
अपि यथा त्वया जन्मतो वयं चपलबुद्धयश्चारुलालिताः ।
सपदि नः कृपानिर्भरेक्षणे कृपणवत्सले ! लालयान्वहम् ॥४१॥
शरणमेव नस्त्वत्पदाम्बुजं धरणिमङ्गलं सर्वतापहम् ।
हरिहरार्चितं मुक्तजीवनं करसरोरुहस्पर्शनाक्षमम् ॥४२॥
शशिनिभाननं कीरनासिकं विशदवारिजस्मेरवीक्षणम् ।
दशनशोभनं चारुणाधरं कुशलभावितं चारु दर्शय ॥४३॥

हे श्रीललीजू ब्रह्मपुत्र श्रीनारदजीने पहिले जो आपकी इस प्रकारकी महिमा कही थी, आज सत्य देखी । पूर्वमें हम लोगोंके हृदयमें उनके कथन पर इस प्रकारका विश्वास नहीं था, इसीलिये आज ऐसी दशा प्राप्त है ॥३८॥ हे श्रीललीजी ! आप केवल श्रीसुनयनाअम्बाजीकी पुत्री तो हैं नहीं, आप तो श्रीजनकजी महाराज पर प्रसन्न होकर प्रकट हुई हैं । हे असीम–वैभव–सम्पन्ना श्रीललीजी! हमलोगोंके अपराध को अपने मनसे दूर हटा दीजिये ॥३९॥

हे कोयलके समान मधुर भाषिणीजू ! हे सम्पूर्ण वेदवेत्ता-प्रमुखोंके द्वारा प्रणाम की हुई श्रीललीजू ! जैसे आप अपनी निर्हैतुकी कृपासे इस विदेहकुल में प्रकट हुई हैं, उसी प्रकार हम लोगोंकी अब रक्षा कीजिये ॥४०॥

हे साधनादि सकल अभिमान रहित प्राणियों पर वात्सल्य भाव रखने वाली! हे कृपापूर्णलोचने श्रीललीजू ! जैसे जन्मसे ही हम चञ्चल-बुद्धियोंका आप अभी तक भली प्रकारसे सदा दुलार करती आई हैं, उसी प्रकार सदा आगे भी करती रहें॥४१॥

पृथिवीके मङ्गल स्वरूप, सर्वतापोंकी हरण करने वाले, विष्णु महेशादिकोंसे पूजित, मुक्तजीवोंके जीवनस्वरूप, करकमलोंका स्पर्श भी न सहन कर सकने योग्य कोमल, आपके श्रीचरणकमल ही अब हम सभीकी बिगड़ी हुई स्थितिको सम्हालने वाले बनें ॥४२॥

हे श्रीलाडलीजू ! तत्त्वदर्शी महानुभाव जिसका ध्यान करते हैं सुग्गाके समान जिसकी नासिका, स्वच्छ कमलके समान विशाल नेत्र और लाल अधर हैं तथा जो दन्तपंक्ति से परम शोभायमान है, अपने उस चन्द्रतुल्य आह्लादकारी मुखारविन्दका सुन्दर दर्शन प्रदान कीजिये॥४३॥

विरहपावकस्त्वद्धि साम्प्रतं परिदहत्युरोमन्दिराणि नः।
कुरु कृपामतो न ह्युपेक्षणं धरणिजे! कृपाक्षान्तिविग्रहे! ॥४४॥
त्वमसि सम्भवा नः सुखाप्तये विमलभाविते! भूयशः श्रुतम्।
भ्रमत एव तन्नो मनो भृशं समवलोक्य हा त्वां तिरोहिताम् ॥४५॥
दयस एव नास्मासु वै कथं भयसमाकुलासु स्मितानने!।
दयित! उर्विजे! दीनवत्सले! वयमुपेक्षिताः सत्यमेव किम् ॥४६॥
यदि नु दुर्विधेरिष्टमित्यृतं वद प्रयोजनं जीवितेन किम्।
पदसरोरुहं किल्बिषौघहं मदनमोहनं तेऽस्तु नो गतिः ॥४७॥
तुदसि नः किमर्थं दयानिधे! तदनुशंस वै स्वास्यगोपनात्।
इदमपीक्ष्यते चाद्भुतं परं न दयिते! स्वभावः सुखत्यजः ॥४८॥

हे कृपा क्षमा स्वरूपे! हे भूमिसे प्रकट होने वाली श्रीललीजी! आपकी वियोगजनित अग्नि इस समय हम लोगोंके हृदयरूपी मन्दिरोंको चारो ओर से जला रही है, अत एव अब आप कृपा ही कीजिये, उपेक्षा नहीं ॥४४॥

हे विशुद्ध-अन्तस्करणवाले महात्माओं द्वारा सदा ध्यान की हुई श्रीललीजी! मैंने बारम्बार सुना हैं, कि आप हम सभीको सुख-प्रदान करनेके लिये ही अवतीर्ण हुई हैं, इस लिये आपको इस प्रकार अन्तर्धान हुये देखकर हम लोगोंका मन भ्रम (सन्देह) में पड़ रहा है, कि यदि लोगों के कथनानुसार आपका अवतार हम लोगोंके सुखार्थ ही हुआ होता, तो आज हमें इस असह्य दुःखका अनुभव क्यों करना पड़ता ॥४५॥

हे प्यारी! आपतो क्षमाशीलोंमें अग्रगण्या श्रीभूमिदेवीको भी अपने इस गुणसे आनन्दित करनेवाली तथा सब साधन रहित प्राणियों पर वात्सल्य भाव रखनेवाली हैं, तथापि आपके द्वारा अपने त्यागभयसे से व्याकुल हुई हम सभी को आप दर्शन देनेकी कृपा कैसे नहीं कर रही हैं? क्या वास्तवमें ही आपने हमारी उपेक्षा कर दी है? ॥४६॥

यदि दुर्भाग्य वश आपको हम लोगोंकी उपेक्षा सत्य ही अभीष्ट है, तो आप ही कहें, हम लोगोंको ऐसे अभागे जीवनसे क्या प्रयोजन है? हे श्रीललीजी! पापपुञ्जोंका विनाश तथा कामदेवको भी मुग्ध कर लेने वाले, आपके श्रीचरणकमल ही अब हमारे सहायक बनें ॥४७॥

हे श्रीदयानिधेजू! बतलाइये—अपने श्रीमुखचन्द्रका दर्शन न देकर हम सभीको क्यों पीड़ित कर रही हैं? हे परमप्रिये! यह बड़ा ही आश्चर्य दीख रहा है, जो हम लोग इस प्रकार आपके दर्शनोंके लिये व्याकुल होकर रो रही हैं और आप उसे सहनकर रही हैं, क्योंकि स्वभावका त्यागना किसीके लिये भी सहज नहीं होता, फिरभी आप अपने अनन्तकरुणा, वात्सल्य, सौशील्यमय स्वभाव को किस प्रकार छोड़कर उसके विपरीत कठोरता धारण करके प्रकट नहीं हो रही हैं ॥४८॥

जलरुहेक्षणे ! चेन्ममागिघ नः कलयसे त्वघं जातुचिद्ध्रुवम् ।
मलहृदां भवेत्तर्हि पादयोर्नलिनकल्पयोर्नार्चनार्हता ॥४९॥
न च मृषोच्यते तद्धृदिस्थिते ! वच इदं हि ते ज्ञातुमर्हति ।
अचिरकालतस्तुष्यतां त्वया विचर चक्षुषोः स्वानुकम्पया ॥५०॥
कमललोचने ! मा विलम्बय समधुरस्मितं दर्शयाधुना ।
विमलशर्वरीवल्लभाननं नम उशच्छबे ! ते मुहुर्मुहुः ॥५१॥
ततमिदं त्वया चाखिलं जगत् त्विति न बोधतो नः प्रयोजनम् ।
सततमेव ते दर्शनोत्सुका जितमहाच्छबे विद्धयृतं वयम् ॥५२॥
तव नवं वयो मञ्जुकुन्तला नवसुधम्मिलो मोहनश्रुती ।
नवकपोलसंशोभिताननं नवसुनासिका कीरमोहिनी ॥५३॥
नवरदा नवप्रारुणाधरो नवकरद्वयं चाभयप्रदम् ।
यवदराब्जवज्रादिलक्ष्ममिस्तव पदाम्बुजे शोभितेऽर्चिते ॥५४॥

हे कमललोचने ! यदि आप हम लोगोंके अपराधों पर किञ्चित् भी ध्यान देंगी, तो निश्चय ही हम मलिन हृदय वालियों को आपके कमल समान सुकोमल श्रीचरणोंकी सेवाका अधिकार कभी भी प्राप्त न होगा ॥४९॥

हे हृदयमें विराजने वाली श्रीललीजी ! यह बात हम आपसे कुछ, असत्य नहीं कह रहीं हैं, फिर आप उसे स्वयं ही जाननेको समर्थ हैं । हे श्रीललीजू ! अब आप अपनी कृपा से ही शीघ्र प्रसन्न होइये और हमारे दोनों नेत्रोंमें विचरण कीजिये ॥५०॥

हे मनोहर कान्तिवाली ! कमललोचने ! श्रीललीजू ! हम सब आपको बारम्बार नमस्कार कर रहीं हैं, अब बिलम्ब न कीजिये अपने मनोहर मुस्कान युक्त, स्वच्छ चन्द्रमाके समान प्रकाश-मय, आह्लादकारी श्रीमुखारविन्दका दर्शन अब शीघ्र कराइये ॥५१॥

हे महाछबिको भी अपनी मनोहरतासे जीत लेने वाली श्रीललीजी ! यद्यपि हम लोग जानती हैं, कि यह सारा विश्व ही आपके द्वारा व्याप्त है अर्थात् आप सर्वत्र सभी स्वरूपोंमें विराजमान हैं परन्तु इस ज्ञानसे हमें कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि हम लोग तो सततकाल आपके दर्शनोंके लिये ही उत्सुक हैं, यह सत्य जानिये ॥५२॥

हे श्रीललीजी ! आपकी यह नवीन अवस्था, व आपके नवीनसुन्दर केश, मनोहर जूड़ा नवीन कान व युगल कपोलोंसे युक्त मुखारविन्द नवीन कमलके समान नेत्र व सुग्गाके सदृश आपकी सुन्दर नासिका ॥५३॥ कुन्दपुष्पकी कलीके समान आपके दाँत, नवीन विशेष अरुण (लाल) अधर, अभयदायक आपके दोनों हस्तकमल, यव, शङ्ख कमल, वज्र आदि चिह्नोंसे शोभायमान, सखियोंसे पूजित आपके दोनों श्रीचरण-कमल ॥५४॥

द्युतिरुरस्तमोराशिहारिणी स्मितमनोहरप्रेमवीक्षणम् ।
रतिसमूहसंमोहनच्छबिर्गतिरिभेन्द्रकन्याविमोहिनी ॥५५॥
सरणिमेत्य नः संस्मृतेर्मुहुर्विरहपावकं दुःसहं परम् ।
कुरुत एधितं ते प्रतिक्षणं हरिणलोचने ! ऽद्यानुकम्पय ॥५६॥
रसनिधे ! त्वया हा समुज्झिता ह्यसुखसागरे पातिता वयम् ।
प्रसभमेव दुर्दिष्टरक्षसा न समुदीक्ष्यते त्वां विना गतिः ॥५७॥
निहतकण्टके ! भूपनन्दिनि ! द्रुहिणमाधवत्र्यक्षभाविते ! ।
अहह तुष्यतां नोऽमृतेक्षणे ! मुहुरनुग्रहादेव ते नमः ॥५८॥
सरलताकृपाक्षान्तिपूजिते ! कुरु कृपां प्रिये ! चोद्धराशु नः ।
करुणया दृशा प्रेक्ष्य किङ्करीर्विरहवेदनामुह्यतीर्भृशम् ॥५९॥
शमितमन्मथप्रेयसीस्मये ! श्रममुपागतास्तावका बहु ।
गमय सत्वरं पङ्कजाङ्घ्रिणा समधिगम्य नः सुप्रसन्नताम् ॥६०॥

हृदयका अन्धकार दूर करनेवाली, आपके श्रीअङ्गकी उपमारहित कान्ति, मुस्कानसे मनको हरण करनेवाली प्रेमपूर्वक चितवन, रतिसमूहोंकी छबिको लज्जित करनेवाली आपकी सुन्दरता गजकन्याके अभिमानको दूर करनेवाली आपकी सुन्दर चाल ॥५५॥

हम लोगोंके स्मरण पथमें, बारम्बार आकर आपके वियोग जनित, परम दुःसह अग्निको क्षण–क्षणमें बढ़ा रही है, इसलिये हे मृगके समान नेत्रवाली श्रीललीजी ! सब अपराधोंको क्षमा करके अब दर्शन देनेकी कृपा कीजिये ॥५६॥

हे समस्त रसोंकी भण्डार स्वरूपा श्रीललीजी ! हा आपके त्याग कर देनेसे हम सभीको दुर्भाग्य रूपी राक्षसने बलात्कार इस दुःख रूपी समुद्रमें पटक दिया है, इसलिये अब आपके बिना और कोई भी इससे रक्षा करने वाला नहीं दीखता ॥५७॥

हे आश्रितोंकी समस्त बाधाओंका हरण तथा श्रीमिथिलेश महाराजको आनन्द-प्रदान करने वाली ब्रह्मा, विष्णु, महेश द्वारा ध्यानकी जाती हुई अमृतमयी चितवन वाली हे श्रीललीजू ! अपनी निर्हेतुकी कृपासे ही हम सभी पर प्रसन्न होइये, आपको नमस्कार है ॥५८॥

हे सरलता, कृपा, सहनशीलता शक्तियोंसे पूजनकी हुई प्यारी श्रीललीजू ! आपके वियोग-जनित पीड़ाके कारण अत्यधिक मूर्च्छित होती हुई हम सभी दासियोंको अपनी करुणा-दृष्टिसे देखकर, अब कृपा कीजिये और हम सभीका अपने इस वियोग-जनित दुःख रूपी सागरसे उद्धार कीजिये अर्थात् दर्शन प्रदान करके कृतार्थ कीजिये ॥५९॥

हे रतिके अभिमानको दूर करनेवाली श्रीललीजी! अब हम आपकी सभी दासियाँ बहुत थक गयी हैं, अत एव अब पूर्ण प्रसन्न हो कर अपने सुकोमल श्रीचरणकमलोंका संयोग हमें शीघ्र प्राप्त कराइये ॥६०॥

यश उदाहृतं नारदादिभिर्ह्यशुभनाशनं पापिपावनम् ।
अशरणात्मनां नोऽस्तु निर्मलं सुशरणं प्रिये ! कामदं गतिः ॥६१॥
हृदयमस्ति नो बज्रसन्निभं मदसमाकुलं दुर्भिदं परम् ।
यदनुदीक्ष्य ते पादपङ्कजं न दयिते ! द्रुतं संस्फुटत्यहो ॥६२॥
दरसुकण्ठि ! तेऽलं परीक्षया करुणयाऽऽर्द्रया पश्य नो दृशा ।
चरणपङ्कजं नूपुरान्वितं शिरसि धेहि नः श्रीमदर्च्चितम् ॥६३॥
यदि न चाधुना सङ्गता प्रिये ! सदयमेव हाऽस्माभिरग्रजे ! ।
गदितमप्यृतं ज्ञायतामिदं तदसुवर्जिता द्रक्ष्यसीह नः ॥६४॥
अधिकमद्य किं त्वां वदाम हा विधिरहो प्रिये ! दुर्निवारणः ।
निधिरुपेक्षसे ऽनुग्रहस्य नो बुधसमर्चिता, स्वात्मकिङ्करीः ॥६५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्थं विलप्य बहुशो रुरुदुर्भृ शार्त्ताः प्राणप्रिये! जनकनन्दिनि ! मैथिलीति ।
हे रूपशीलकरुणासुषमैकसिन्धो स्वं दर्शनं दिश सकृत्प्रणतिप्रसन्ने ॥६६॥

हे प्यारी श्रीललीजी! सम्पूर्ण अमङ्गलोंका नाशक, पापियोंको पवित्र करनेवाला, सभी प्रकार के मनोरथोंकी पूर्त्ति करने वाला, श्रीनारदजी आदि महर्षियोंके द्वारा वर्णित, भलीप्रकारसे रक्षा करने वाला, आपका निर्दोष यश, हम सहाय रहित आत्माओंकी सहायता करे ॥६१॥

अहो प्यारी श्रीललीजी ! हम लोगोंका हृदय अभिमानसे भरा हुआ वज्रके समान तोड़नेमें कठिन है, जो आज आपके श्रीचरणकमलोंका दर्शन न पाकर भी शीघ्र टुकड़े-टुकड़े नहीं हो रहा है ॥६२॥ हे शङ्खके समान सुन्दर कण्ठवाली श्रीललीजी ! बहुत परीक्षा हो गयी अब करुणा द्रवित दृष्टिसे हम सभीको देखिये और नूपुरसे सुशोभित, ब्रह्मादि देवताओंसे पूजित श्रीचरणकमलको हम लोगोंके सिर पर रखने की कृपा कीजिये ॥६३॥

हे हमारी जेठी प्यारी बहिन श्रीललीजी ! यदि दयापूर्वक इस समय आप हम लोगोंको नहीं प्राप्त होंगी तो हम सभीको अब मृतक ही देखेंगी, यह हम लोगोंका कथन आप सत्य ही जानिये ॥६४॥ हे श्रीललीजी ! इससे अधिक और क्या आपसे निवेदन करूँ ? जब दयाकी भण्डारिनी व तत्ववेत्ताओंसे पूजित होकर भी आप अपनी दासियोंकी ओरसे दयादृष्टि हटा रही हैं तो प्रारब्ध ही अनिवार्य है ॥६५॥

हे रूप, शील, करुणा, तथा उपमा रहित सौन्दर्यकी सागर स्वरूपे ! हे प्राणप्यारी ! श्रीजनकनन्दिनीजू ! हे श्रीमैथिलीजू! एक बार प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न होने वाली हे श्रीललीजू अब अपना दर्शन प्रदान कीजिये । इस प्रकार बहुत विलाप करके अत्यधिक व्याकुल हो सभी बहिने रोने लगीं ॥६६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आविरभूत्तु तदा सदया ऽवनिजा निमिवंशविभूषणकीर्त्तिः
स्मेरसुधांशुनिकायमनोहरचारुमुखी सुषमामयमूर्त्तिः ।
वृत्तमनोज्ञकपोलयुगा सुरुचिः सुदती युगपतिप्रिय ! तासां
तीव्रवियोगसुवेदनया परिवर्जितसाधनपङ्क्तिगतीनाम् ॥६७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :- हे प्यारे जब वियोगकी प्रचण्ड पीड़ाके कारण बहनोंने सभी साधनोंका विचार छोड़ दिया तब निमिवंशको अपनी कीर्त्तिसे अलङ्कृत करने वाली उन बहिनोंमें ही, सुन्दरदाँत, मनोहरकान्ति, गोल मनोहर दोनों कपोलों वाली, भूमिनन्दिनी श्रीललीजीको दया आगयी अतः वे सबसे अधिक सुन्दरतासे भरी मूर्त्तिवाली, मुस्कान युक्त, अनन्त चन्द्रमाओंके सदृश मनहरण, सुन्दरमुखीजी प्रगट हो गयीं ॥६७॥

इत्यष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

श्रीजनकनन्दिनीजी-चन्द्रकला संवाद ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तां दृष्ट्वा मृगशावाक्षीं विस्मेरेन्दुनिभाननाम् । उत्तस्थुर्युगपत्सर्वा मृताः प्राण इवागते ॥१॥
काश्चिज्जगृहुरस्याश्च पादौ सरसिजोपमौ । काश्चित्करारविन्दे च भुजौ च काश्चिदातुराः ॥२॥
काश्चित्कराङ्गुलीरस्या जगृहुः प्रीतिनिर्भराः । अपरा सम्मुखे तस्थुर्मुखचन्द्रार्पितेक्षणाः ॥३॥
उवाच मधुरं यच्च तदेयं सस्मितं वचः । श्रूयतां रघुवंशेन ! त्वया तत्संयतात्मना ॥४॥

हे प्यारे ! हरिणके बच्चे समान सुन्दर नेत्रवाली व मुस्काते हुये पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मुखवाली श्रीललीजूका दर्शन करके वे सभी बहने एक साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुईं, जैसे प्राण आ जाने पर मुर्दे ॥१॥ कुछ बहिने इन श्रीललीजूके कमलसमान सुकोमल अरुण श्रीचरणोंको, कुछ दोनों हस्त कमलोंको, कुछ विरहसे पीड़ित बहिनें इनकी भुजाओं को पकड़ लीं ॥२॥ कुछने श्रीललीजूके करकमलोंकी अङ्गुलियोंको प्रेम निर्भर होकर ग्रहण कर लीं तथा अन्य बहनें अपने नेत्रोंको श्रीललीजूके मुखचन्द्र पर समर्पण करके सामने खड़ी हो गयीं ॥३॥
हे रघुवंशको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले श्रीप्यारेजू ! उस समय मुस्कराती हुई ये श्रीललीजी श्रीचन्द्रकलाजीसे जो मधुर वचन बोलीं उसे आप एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उपहासं करोषि स्म नार्हसीति निगूहितुम् । कस्मात्परन्तु गुप्ताऽहं त्वया नासादिताऽनघे ! ॥५॥
वद पृष्टा मया सुभ्रु ! यथार्थं चाधुनोत्तरम् । अयि चन्द्रकले ! कस्माद्दृग्भ्यामश्रूणि मुञ्चसि ॥६॥
त्वया सम्प्रार्थिता गुप्ता त्वन्मनोऽभीष्टसिद्धये । कस्मादधैर्यतां प्राप्ता दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥७॥
उच्यतां कारणं मह्यं विषादस्यात्र सुव्रते ! भूयः प्रियं करिष्यामि तव नास्त्यत्र संशयः ॥८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्ता वीतशोका सा प्राह बद्धकराञ्जलिः । नत्वा मुहुर्मुहुः पादौ प्रश्रयानतलोचना ॥९॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

दुर्विभाव्यं च ते रूपं मनोवाचामगोचरम् । दृष्टोऽप्यचिन्त्यशक्ते सः प्रभावः प्रागदर्शि नो ॥१०॥
मिथिलेयं पुरी धन्या यस्यां जाताऽसि शोभने! धन्या भूमिस्त्वियं नूनं क्रीडाभूमिस्त्वया कृता ॥११॥
धन्यं कुलं तथाऽस्माकं ब्रह्मविष्ण्वादिभिः स्तुतम्। यत्रोद्भवा प्रसिद्धाऽसि परमाह्लादरूपिणि! ॥१२॥

श्रीजनकदुलारी बोलीः-हे अनघे श्रीचन्द्रकले! आप मेरी हँसी करती थीं कि आपको छिपनेकी सामर्थ्य नहीं है, सो मेरे छिप जाने पर आपने मुझे क्यों नहीं पा लिया ? ॥५॥

हे सुन्दर भौंह वाली श्रीचन्द्रकलाजी ! मेरी पूछी हुई बात का उत्तर अब ठीकसे दीजिये। आप नेत्रोंसे आँसू क्यों बहा रही है ? ॥६॥

आपकी प्रार्थनासे ही तो मैं आपका भाव पूरा करनेके लिये छिपी थी, फिर आप अधीर क्यों हो रही हैं ? आपकी इस अवस्थाको देखकर मेरा मन बहुत दुःखी हो रहा है ॥७॥

हे सुन्दर सेवाव्रत लेनेवाली श्रीचन्द्रकलाजी ! अपने दुःख माननेका कारण बतलाइये, मैं आगे भी आपकी प्रसन्नताका ही कार्य करूँगी, इसमें शङ्काकी कोई बात ही नहीं ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! श्रीललीजूके ऐसा कहने पर शोक-रहित हो श्रीचन्द्रकलाजी उनके श्रीचरणकमलोंको बारम्बार प्रणाम करके, नम्रतावश नेत्रोंको नीचे किये हुई हाथ जोड़े बोलीं ॥९॥ हे श्रीललीजो ! आपका स्वरूप समझमें नहीं आ सकता, क्योंकि वह मन तथा वाणीसे परे है अर्थात् न उसे वाणी वर्णन करनेमें समर्थ है न मन मनन करनेमें। हे चिन्तनमें न आसकने योग्य शक्तिवाली श्रीललीजी ! आपका वह प्रभाव जिसे मैंने पूर्वमें कभी नहीं देखा था, खूब देख लिया ॥१०॥

हे शोभने (कल्याणकारिणी) ! श्रीललीजी ! आप जहाँ प्रकट हुई हैं, यह श्रीमिथिलापुरी धन्य है तथा श्रीमिथिलाजीकी यह भूमि धन्य है, जिसको आपने अपनी क्रीड़ा-भूमि बनाई है ॥११॥ हे आह्लादस्वरूपा श्रीललीजी ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिसे प्रशंसा प्राप्त हमारा यह निमिवंश धन्य है, जहाँ प्रकट हुई आप प्रसिद्ध हैं ॥१२॥

नः प्रपितामहो धन्यः स्वर्णरोमा प्रतापवान् । यत्प्रपौत्री त्वमस्माकं भगिनी सद्भिरीर्यसे ॥१३॥
धन्यः पितामहोऽस्माकं ह्रस्वरोमा महोदयः । यस्य पौत्री त्वमाख्याता सर्वलोकमहेश्वरी ॥१४॥
धन्यः खलु पिताऽस्माकं यस्य त्वं गीयसे सुता । अम्बा सुनयना धन्या यस्याश्चाङ्के विवर्द्धिता ॥१५॥
लब्धसेवैकसौभाग्या धन्या निमिसुता वयम् । मिथिलावासिनो धन्यास्त्वद्दर्शनविधिं गताः ॥१६॥
धन्यास्त एव लोकेऽस्मिन्विहिताशेषसाधनाः । येषां त्वदङ्घ्रिकमले सदा भृङ्गायते मनः ॥१७॥
भावानुसारिणी येषां भवत्यच्युतहृत्स्थिता । धन्यधन्यतमास्ते वै विश्ववन्द्यपदाम्बुजाः ॥१८॥
काऽसि त्वं तत्त्वतो ब्रूहि प्रवृत्तिं त्वन्न विद्महे । भवत्या दर्शनानन्दं सर्वस्वं कलयामहे ॥१९॥
असङ्ख्यका विशालाक्षि! समेतास्त्वां दिदृक्षवः । चतुर्मुखाष्टवक्त्राश्च षोडशास्यास्तथा प्रिये! ॥२०॥
अनन्तवदनाश्चापि बहुरूपाः सशक्तिकाः । ब्रह्मविष्ण्वीश्वरा दृष्टा भिन्नब्रह्माण्डवर्तिनः ॥२१॥

हमारे प्रतापी परबाबा श्रीस्वर्णरोमाजी महाराज धन्य है, सन्तोंके द्वारा आप जिनके पौत्रकी पुत्री और हम सभीकी बहिन, कही जाती हैं ॥१३॥

समस्त लोकके स्वामियोंकी स्वामिनी जिनकी आप पौत्री (पुत्रकन्या) कहलाती है वे हमारे उन्नतिशाली बाबा श्रीह्रस्वरोमाजी महाराज धन्य हैं ॥१४॥

हमारे पिता श्रीसीरध्वज महाराज धन्य हैं, जिनकी आप पुत्री कहलाती हैं और जिनकी गोदमें आप इतनी बड़ी हुई हैं, वे हमारी श्रीसुनयनाअम्बाजी परम धन्य हैं ॥१५॥

आपकी सेवाका उपमारहित सौभाग्य-प्राप्त हुई हम सभी निमिवंश कुमारियाँ धन्य हैं तथा श्रीमिथिला निवासी धन्य हैं, जिन्हें आपके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त है ॥१६॥

जिनका मन आपके श्रीचरणकमलोंमें भौंराके समान सदैव आसक्त बना रहता है वे प्राणी धन्य हैं और समस्त साधनोंको कर चुके हैं ॥१७॥

सदा एक रस रहनेवाले, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् प्यारे श्रीरामललाजूके हृदयमें विराजमान रहनेवाली, आप जिनके भावका अनुसरण करती हैं अर्थात् जिनके भावानुसार ही सब व्यवहार करती हैं वे आपके अनुरागी भक्त धन्योंमें भी परम धन्य हैं, उनके श्रीचरणकमल समस्त विश्वके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं ॥१८॥

हे श्रीललीजो ! आप वास्तवमें हैं कौन ? सो बतलाइये ? आपके भावको हम लोग नहीं जानतीं, परन्तु आपके दर्शनानन्द को सर्वस्व समझ रही हैं ॥१९॥

हे विशाललोचने ! हे प्रिये श्रीललीजी ! आपके दर्शनाभिलाषी आये हुये चार मुख, आठ मुख, सोलह मुख तथा शक्तियोंके सहित अलग-अलग ब्रह्माण्डोंमें रहने वाले अनन्त मुखोंसे युक्त बहुत रूपवाले असङ्ख्य ब्रह्मा, विष्णु, महेशोंको मैंने देखा है ॥२०॥२१॥

सर्वे त्वां हि नमस्यन्ति संस्तुवन्ति गृणन्ति च । सर्वे कृपाकटाक्षं ते समीहन्ते सुरेश्वराः ॥२२॥
सा गृहेषु त्वमस्माकं क्रीडसि प्राकृता यथा । सर्वं रसमयं विश्वं कृतं ते जन्ममात्रतः ॥२३॥
नापराधांस्त्वमस्माकं बीक्षसे चेतसाऽप्यहो । लीलया विहितो लोकः स्वर्गाच्छतगुणोऽधिकः ॥२४॥
सुखे सुखं त्वमस्माकं दुःखे दुःखं तथैव च । मन्यसे तद्वयं सर्वा जानीमो दीनवत्सले ! ॥२५॥
इदानीं निश्चयो ऽस्माकं सञ्जातः करुणानिधे! यत्कृतं क्रियते यच्च यत्करिष्यसि तद्धितम् ॥२६॥
अनभिज्ञाः प्रमत्ताश्चाकृतज्ञा बालिका वयम् । कथं त्वां वै विजानीमो मनोवाग्बुद्ध्यगोचराम् ॥२७॥
याऽसि साऽसि किमस्माभिः सर्वदैवं मृदुस्मिते ! रमयास्मान्स्वलीलाभिरेतदेवेप्सितं हि नः ॥२८॥
चिरञ्जीव सुखं भुङ्क्ष्व सर्वदा जयमाप्नुहि। अस्मांस्त्वत्किङ्करीर्विद्धि वारिजाक्षि! दयानिधे! ॥२९॥

सभी आपको नमस्कार करते हैं, सभी स्तुति करते हैं और सभी आपके गुणोंको गाते हैं इतना ही नहीं बल्कि सभी दिव्यदर्शन देववृन्दादि सदा आपकी कृपा कटाक्षकी अभिलाषा करते हैं ॥२२॥ इस प्रकारकी महिमा सम्पन्ना-आप हम लोगोंके महलोंमें साधारण बालिकाओंके समान खेलती रही हैं, विशेष क्या कहें ? जन्म मात्रसे ही आपने इस सम्पूर्ण विश्वको आनन्दमय बना दिया है ॥२३॥

हम लोगोंके अपराधोंको तो आप चित्तसे भी नहीं देखती हैं, अपितु विश्व-सुखविस्मारक मनोहरिणी लीलाओंके द्वारा आपने इस मनुष्य लोकको स्वर्ग (दिव्य धाम) से भी बढ़कर बना दिया है ॥२४॥ हे दीनों अर्थात् साधनाभिमान रहितों पर वात्सल्य भाव रखनेवाली श्रीललीजी! हम तो जानती हैं, कि आप हम लोगोंके सुखमें सुख और दुःखमें दुःख मानती हैं ॥२५॥

हे करुणानिधे श्रीललीजी ! अब हमें निश्चय हो गया, कि आपने जो कुछ किया है, जो कर रही हैं, अथवा आगे भी जो कुछ करेंगी, वह यथार्थमें हितकर (भला) ही होगा ॥२६॥

हे श्रीललीजी ! आपको वस्तुतः न मन मनन कर सकता है, न बुद्धि, निश्चय कर सकती है, न वाणी, कथन कर सकती है, तब ज्ञानरहित, बालक्रीडामें मस्त रहने वाली तथा आपके उपकारोंको न समझने वाली हम बालिकायें, भला आपको किस प्रकार भली-भाँति समझ सकती हैं? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं ॥२७॥

अच्छा आप जो कोई भी हों, हम लोगोंको इससे क्या प्रयोजन ? मन्द मुस्कानवाली श्रीललीजी ! हमें तो आप सदैव इसी प्रकार अपनी मनोहारिणी लीलाओंके द्वारा आनन्द-प्रदान करती रहें, बस हमें तो यही चाहिये ॥२८॥ आप अनन्त काल तक जीवें, सदा सुखी रहें, सदा ही आपकी जय हो ! हे कमलके समान सुन्दर विशाल नेत्रवाली ! हे दयानिधे श्रीललीजी ! हम सभीको आप सदा अपनी दासी जानिये ॥२९॥

वयं धन्यासुधन्याश्च यासां त्वमसि पूर्वजा । न वियोज्या भवत्यास्मो जातुचिच्चरणाम्बुजात् ॥३०॥
यथास्मस्ते हि किङ्कर्य्यस्त्वामेव शरणं गताः । नान्याऽस्ति नो गतिः काऽपि ब्रूमस्त्वां सत्यमेव हि॥३१॥
अभीतिदे कराम्भोजे सुस्निग्धे वरदायिके । सदा दीनहिते भव्ये मनोज्ञे शीर्षिण धेहि नः ॥३२॥
देहि तां शक्तिमस्मभ्यं शक्तीनां परमेश्वरि । यया त्वच्चरणाम्भोजे वासयामो हृदालये ॥३३॥
त्वत्प्रसादो हि सर्वस्वमस्माकं कमलेक्षणे ! । वीक्ष्याः पाल्या नियोज्याश्च वयं दास्य इवानिशम्॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

प्रणतायाः समाकर्ण्य विनयं भावपूर्वकम् । चन्द्रभानुसुतायाश्च मैथिली मुदिता ऽभवत् ॥३५॥
ततः सा जानकी तस्यै करुणावरुणालया । ददावालिङ्गनं प्रेम्णा छिन्नमोहमहारुजे ॥३६॥
उवाच वचनं श्लक्ष्णं गिरा कोकिलतुल्यया । श्रूयतामिति सम्बोध्य श्रीसीरध्वजनन्दिनी ॥३७॥

हम लोग धन्याओंमें भी परम धन्य हैं, जिनकी आप बड़ी बहिन हैं । हे श्रीललीजो ! हम लोग कभी भी आपके द्वारा श्रीचरणकमलोंसे अलग करनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् हमें कभी अपने श्रीचरणकमलोंसे अलग (विमुख) न कीजियेगा ॥३०॥

हे श्रीललीजी ! हम सभी भली-बुरी जैसी भी हैं, आपकी शरणमें आई आपकी दासियाँ हैं, हमलोगों का आपके अतिरिक्त और कोई भी आधार नहीं है, यह हम आपसे सत्य कह रही हैं ॥३१॥ हे श्रीललीजी ! अभयदायक अत्यन्त चिकने, वरदायक, दीनहितकारी, भावना योग्य, मनोहर, अपने दोनों हस्त कमलोंको हम सभीके सिर पर निवेशित कीजिये ॥३२॥

हे समस्त शक्तियोंको अपने वशमें रखने वाली श्रीललीजी ! हमें वह शक्ति प्रदान कीजिये, जिसके द्वारा हम आपके श्रीचरणकमलोंको अपने हृदय रूपी मन्दिरमें बसा लें ॥३३॥

हे कमललोचने ! आपकी प्रसन्नता ही हम सभीके लिये सर्वस्व (सारी सम्पत्ति) है । हे श्रीललीजी ! हम सभीको दासियोंके समान कृपा दृष्टिसे देखिये तथा दासियोंके सदृश सौम्य भावसे पालन कीजिये और दासियोंके समान ही निःसङ्कोच भावसे इच्छानुकूल अपनी सेवामें सदा लगाये रहिये ॥३४॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! अपनी दासी श्रीचन्द्रकलाजीकी भावपूर्ण प्रार्थनाको सुनकर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी प्रसन्न हो गयीं ॥३५॥

तत्पश्चात् करुणा सागरा श्रीजनकराजदुलारीजीने मोहरूपो महारोगसे मुक्त हुई उन श्रीचन्द्रकलाजी को प्रेमपूर्वक अपना आलिङ्गन प्रदान किया ? उन्हें यह मोह हो गया था कि श्रीकिशोरीजी अपने सहज प्रकाशके कारण अँधेरेमें छिप नहीं सकतीं । इसका प्रमाण भी उन्हें तत्काल मिल चुका था, तथापि सर्वशक्तिमती श्रीकिशोरीजी, यह नहीं कर सकतीं, यह मान लेनाही उनका अज्ञान था, उसीकी निवृत्तिके लिये श्रीकिशोरीजीने अपनी तिरोधान लीला की, हे श्रीचन्द्रकलाजी ! "सुनो" इस प्रकार सम्बोधित करके श्रीसीरध्वज महाराजके आनन्द को बढ़ानेवाली श्रीललीजी कोयलके समान सुरीली वाणी द्वारा उनसे आनन्ददायक वचन बोलीं ॥३६॥३७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

यदात्थ मे चन्द्रकले ! यथार्थं तदेव नासत्यमवेहि किञ्चित् ।
परन्तु मे विश्वसिहि ब्रुवन्त्याः श्रद्धत्स्व चेन्मद्वचनेषु भक्तिः ॥३८॥
अधैर्यमुत्सादयताद्य नूनं त्यजामि वो नैव हि जातुचिच्च ।
यूयं यथा प्रेष्ठतमा हि सर्वास्तथाऽसवो नेत्यपि वित्त सत्यम् ॥३९॥
ममाखिलं वोऽर्थममन्दभागा ! ऐश्वर्यमाधुर्यदयादिसञ्ज्ञम् ।
क्रीडासहाया भवतीर्विना मे सुखं क्षणार्द्धं न कथञ्चनैव ॥४०॥
ममांशभूता मयि सक्तचित्ता सुखाय मे पुण्यकुलेऽवतीर्णाः ।
मयैव सार्द्धं सकलं विहारं कृत्वा सदा स्थास्यथ मत्सकाशम् ॥४१॥
मया विना नेह यथा सुखं वो युष्माभिरेवं न विना सुखं मे ।
अन्तर्हिता प्रीतिविवर्द्धनाय पश्यामि चेष्टाः स्म तु वः समग्राः ॥४२॥
तिरोहितायां मयि मीलिताक्षी विमार्गितुं चन्द्रकले ! यथा त्वम् ।
उन्मीलिताक्षी भवनं प्रविष्टा यथा ह्यकार्षीः परिमार्गणं च ॥४३॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी ! आप जो कह रही हैं वह यथार्थ ही है, झूठ किञ्चित् भी नहीं है, परन्तु आपकी यदि मेरे वचनोंमें निष्ठा है, तो मेरे कहनेपर विश्वास कीजिये ॥३८॥

यह सत्य जानिये, आप लोग मुझे जैसी परम प्यारी हैं, वैसे प्राण भी मुझे प्रिय नहीं हैं अत एव मैं कभी भी आप लोगोंको छोड़ नहीं सकती, इस विश्वास पर आप लोग अपने चित्तकी अधीरताका परित्याग कीजिये ॥३९॥ हे बड़भागिनियों! मेरा ऐश्वर्य, माधुर्य, दया आदि नामका जो कुछ भी है, वह सभी आप लोगोंके लिये है । मेरी क्रीड़ाओंमें सहायक होने वाली, आप लोगोंके बिना मुझे किसी प्रकार आधा क्षण भी सुखकर नहीं है, क्योंकि आप लोग मेरीही अंश भूता हैं, मेरे ही में आप लोगोंका चित्त आसक्त है, और मेरे सुखके लिये ही इस पवित्र कुलमें प्रकट हुई हैं, अत एव मेरे ही साथ सब लीलाओंको करके सदा मेरे ही पासमें निवास करेंगी ॥४०॥४१॥

जैसे मेरे विना आप लोगोंको सुख नहीं है, उसी प्रकार आप लोगोंके विना मुझे भी सुख नहीं है । कदाचित् आप लोग यह सन्देह करें, कि यदि ऐसी ही बात होती, तो आप इतनी देर के लिये अन्तर्धान क्यों हो जातीं ? उसका उत्तर है–प्रेम बढ़ानेके लिये । गुप्त होने पर भी मैं आप लोगोंकी सभी चेष्टाओंको देखती थी ॥४२॥

हे श्रीचन्द्रकलाजी आँखें बन्द करके तुम जैसे मेरे छिप जाने पर आँखें खोल कर मुझे खोजने के लिये भवनमें घुसीं, पुनः जैसे-जैसे हमें ढूँढ़ती फिरीं ॥४३॥

यथा त्वनासाद्य पदं मदीयं चिन्ताकुला विह्वलतां प्रयाता ।
यथा च मां पृष्टवती सखीभ्यस्ताभिर्यथोक्ता त्वमुदारबुद्धे ! ॥४४॥

अन्वेषणं मे च कृतं यथा वै सर्वाभिरागारमनुप्रविश्य ।
न मां समासाद्य पुनर्यथैव कृतो विलापो भवतीभिरेव ॥४५॥

पश्यामि सर्वं स्म कृतं ममाग्रे यूयं न मां शोकसमाकुलाश्च ।
द्रष्टुं प्रयत्नावधिमाप्तिहेतोर्युष्माकमेवाक्षिपथं न याता ॥४६॥

ततो निराशां समुपागतानां मदङ्घ्रिलीनैकसुशेमुषीणाम् ।
प्रादर्शयं रूपमिदं प्रियं वो ह्यशेषशोकापहरं सुखाय ॥४७॥

यथा प्रियेयं मिथिलापुरी मे तथा न चान्येति विनिश्चिनु त्वम् ।
ममैव साक्षात्तनुरस्ति रम्या पूज्या महद्भिः श्रुतिवन्दिता च ! ॥४८॥

अस्यास्तु सर्वेऽधमयोनयोऽपि वै मम प्रियाः प्राणसमाः शुचिस्मिते ।
स्वाभाविकानन्दविवर्द्धना यतो ममोरसस्ते मयि सक्तचेतसः ॥४९॥

हे उदार बुद्धिवाली श्रीचन्द्रकलाजी ! पुनः मेरा पता न पाकर जैसे आप चिन्तासे व्याकुल हो विह्वलताको प्राप्त हुईं तथा आप जैसे मुझे सखियोंसे पूछती थीं, जैसा उन सखियोंने आपसे कहा ॥४४॥ जैसे आप सभीने उस भवनमें जाकर मेरी बारम्बार खोज की, पुनः मुझे न पाकर आपलोगों ने जैसे विलाप किया वह सभी मैं देखती थी, क्योंकि वह सब किया गया तो मेरे ही सामने था, पर आप लोग शोकसे व्याकुल होनेके कारण मुझे नहीं देख रही थीं, केवल आप लोग मेरी प्राप्तिके लिये कहाँ तक प्रयत्नकर सकेंगी, यह देखनेके लिये मैं अभीतक आप लोगों की दृष्टिसे ओझल रही ॥४५॥४६॥

जब आपलोग सभी साधन करके निराश हो गयीं और आपलोगों की सुन्दर बुद्धि केवल मेरे ही चरणोंमें लीन हो गयी, तब मैंने आप लोगोंके सुखार्थ समस्त शोकोंको हरण करनेवाले, आप लोगोंके इस प्रिय स्वरूप को दिखाया ॥४७॥

अरी सखी! जैसी मुझे यह श्रीमिथिलापुरी प्यारी है, वैसी प्रिय और कोई भी नहीं है, यह तुम सत्य जानो, क्योंकि यह साक्षात् मेरा ही शरीर है अत एव महात्माओंके द्वारा पूजने योग्य तथा वेदोंसे प्रणामकी हुई है ॥४८॥

हे पवित्र मुस्कानवाली श्रीचन्द्रकलाजी ! इस पुरीके अन्त्यज-चाण्डाल आदि सभी अधम जीवभी मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं, क्योंकि वे स्वाभाविक मेरे हृदयके आनन्दको बढ़ानेवाले हैं उनका चित्त सदा मेरे में ही आसक्त है ॥४९॥

बहिश्चरा मे ह्यसवश्च यूयं भवद्भ्य एवाभ्यधिकं प्रियं किम् ।
अहो प्रिया ! वो न जहामि सत्यं वचो मम ज्ञायत यात शर्म ॥५०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवमुक्त्वा मिथिलेश्वरस्य प्रफुल्लनीलाम्बुजपत्रनेत्रा ।
योगैकसिद्धिः कुलदीपिकेयं सर्वाभ्य आनन्दमदाद्यथेच्छम् ॥५१॥
आलिङ्गनस्पर्शसुभाषितस्मितैः स्रग्रत्नवस्त्राभरणादिदानकैः ।
ताः प्रेक्षणैः प्रेमभरेण चक्षुषा विहीनशोका विहिताः प्रियानया ॥५२॥
पाणौ तदाऽऽदाय च पुष्पकन्दुकं चिक्रीड भूयो नवशातदित्सया ।
सखी न वै काऽप्यवशेषिताऽनया न क्रीडया या सुखिता कृता भवेत् ॥५३॥
धन्या हि ताः पुण्यकृतां वरिष्ठास्तुल्यातु ताभिस्त्रियुगे न जाताः ।
तासां कृपोदेति यदैव यस्मिन् व्रजेत्तदाऽसौ कृतकृत्यतां वै ॥५४॥

आप लोग तो शरीरसे बाहर विचरनेवाले मेरे प्राण ही हैं, अत एव आप सभीसे बढ़कर भला मुझे और कौन प्रिय हो सकता है ? अहो प्यारियो ! मैं आप लोगोंको कभी नहीं छोड़ सकती, मेरा वचन सत्य जानिये और उस निश्चय द्वारा शान्तिको प्राप्त होइये ॥५०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार अपनी बहिनोंको सान्त्वना प्रदान करके श्रीमिथिलेशजी-महाराजके योगकी अद्वितीय सिद्धि-स्वरूपा तथा दीपकके समान कुलकी शोभा बढ़ानेवाली, इन श्रीललीजीने सभी को मनचाहा आनन्द प्रदान किया ॥५१॥

हे प्यारे ! किसीको हृदयसे लगाकर, किसीको स्पर्श करके, किसीको अपने सुन्दर वचनोंके द्वारा, किसीको मन्द मुस्कान से, किसीको माला, किसीको रत्न, किसीको वस्त्र, किसीको भूषण आदिके दान द्वारा, तथा किसीको प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर इन्होंने शोक रहित कर दिया, पुनः नवीन सुख प्रदान करनेकी इच्छासे वे फूलका गेंद हाथमें लेकर खेलने लगीं, उस समय कोई भी सखी ऐसी शेष नहीं रही, जिसे इन्होंने उस लीलाके द्वारा सुखी न किया हो ॥५२॥५३॥

हे प्यारे ! श्रीललीजीकी वे सखियाँ धन्य हैं और पुण्यसञ्चय करने वालोंमें भी परमश्रेष्ठ हैं, उनके समान बड़भागिनी तीनों युगोंमें भी कोई न हुई, न हैं, न होंगी। उनकी कृपा जिस समय जिस प्राणी पर उदय हो जायेगी उसी क्षण निःसन्देह वह कृतार्थ हो जायेगा ॥५४॥

इत्येकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

इति मासपारायणे विंशो विश्रामः ॥२०॥

—❋❋❋—

अथ सप्ततितमोऽध्यायः ।

मरकत भवनमें श्रीकिशोरीजीकी भोजन-लीला ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ सर्वेश्वरी सीता जगन्मङ्गलमङ्गला । आत्मजा मिथिलेन्द्रस्य श्रीमल्लक्ष्मीनिधेः स्वसा ॥१॥
नीलेन्दीवरपत्राक्षी विस्मेरेन्दुनिभानना । विम्बोष्ठी पिकवाणीयं प्राह चन्द्रकलां प्रति ॥२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

विरतिः क्रियतामालि ! क्रीडायाः श्रमशान्तये । प्रारम्भोऽशनलीलाया महानन्दरसप्रदः ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता प्रहृष्टात्मा प्रणता विनयान्विता । महाकृपेति सम्भाष्य प्रेरयामास साऽनुजाः ॥४॥
इङ्गितं प्राप्य ताः सर्वाः प्रसन्नवदनाः शुभाः । क्षणेनाशनसामग्रीरेकस्थीचक्रुरीप्सितम् ॥५॥
नानाविधानि वस्तूनि प्रचुराणि पृथक्पृथक् । प्रत्येकैकरसस्यापि प्रत्येकैकविधेस्तथा ॥६॥
कूटतुल्यानि दृश्यन्ते परितस्तानि पङ्क्तितः । मध्यभागे विशालाक्षी सर्वात्मा ललितच्छबिः ॥७॥
सहस्रदलपाथोजे वनमालाविभूषिता । सर्वशृङ्गारसम्पन्ना श्रीमतीजनकात्मजा ॥८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! तत्पश्चात् जगत्के मङ्गलोंकी मङ्गल-स्वरूपा श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पुत्री व श्रीमान् लक्ष्मीनिधि भैयाकी बहिन सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी, ॥१॥

नीले कमलके समान नेत्र तथा मुस्कान युक्त चन्द्रमाके सदृश मुख, बिम्बाफलके सरीखे लाल होंठ, कोयलके समान वाणी वाली ये श्रीललीजी श्रीचन्द्रकलाजीसे बोलीं ॥२॥

हे सखी ! श्रम दूर करने के लिये अब गेंदकी क्रीड़ाका विश्राम तथा महान् आनन्द रसको प्रदान करने वाली भोजन लीला प्रारम्भ की जाय ॥३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीललीजीकी यह आज्ञा होने पर श्रीचन्द्रकलाजी बड़ी प्रसन्न हुई तथा विनयपूर्वक प्रणाम करके उनसे "बड़ी कृपा है" ऐसा कहकर बहिनोंको भोजन लीलाकी तय्यारी के लिये प्रेरणा दी ॥४॥

श्रीचन्द्रकलाजीका सङ्केत पाकर प्रसन्न हुई उन सखियोंने इच्छानुसार सभी भोजन सामग्रियोंको क्षणमात्रमें एकत्रित कर दिया ॥५॥

प्रत्येक रस तथा प्रत्येक प्रकारकी भोजन-वस्तुओंके सैकड़ों-सैकड़ों अलग-अलग ढेर पङ्क्ति के पङ्क्ति पहाड़के शिखरके समान ऊँचे चारों ओर दिखाई देते थे, बीच भागमें विशाललोचना, मनोहर छबि, सभी प्राणियोंकी आत्म स्वरूपा। ।६॥७॥

सम्पूर्ण शृङ्गारोंसे अलंकृत वनमालासे सुशोभित, श्रीमती जनकराजदुलारीजीको सहस्र (हजार) दल वाले कमल पुष्पके ऊपर ॥८॥

निवेशिताऽऽलिभिर्भक्त्या स्वर्णपात्रधृतानि च । सर्वाभ्यः सर्ववस्तूनि प्रेम्णा ताभ्योऽभ्यदापयत् ॥९॥
ताश्चतुःपार्श्वतस्तस्याः संविष्टा बद्धपङ्क्तयः । पश्यन्त्या रूपमाधुर्यं प्रहर्षं परमं ययुः ॥१०॥
जानक्या दर्शनं स्पष्टं भगिनीभ्यश्च सर्वतः । स्वसॄणाँ मुकुरैस्तस्यै मनोज्ञं सुलभीकृतम् ॥११॥
समागतं तु सर्वासां समीक्ष्याशनभाजनम् । स्वयं समुत्थिता ताभ्यो विशेषानन्ददित्सया ॥१२॥
अपूर्वस्वादुयुक्तानि व्यञ्जनानि प्रियाणि च । आनीय किङ्करीभ्यस्तु स्वयं पङ्कजपाणिना ॥१३॥
सर्वाभ्य एव स्वसृभ्यश्चक्रे वितरणञ्च सा । मुदा प्रचुररूपेण कृपाविस्फारितेक्षणा ॥१४॥
तदभाष्यं सुखं विद्धि सर्वथा नः सुखाकर । अनुभूतं हि नेत्राभ्यां केवलं ते त्वजिह्वके ॥१५॥
कृपासाध्यसुखं तत्तु ह्यसाध्यं साधनैः शतैः । ताभ्यो धन्यतमा काः स्युर्या इदं सुखमाप्नुयुः ॥१६॥
अलं वितरणेनैकं निशम्य वचनं मुदा । सर्वासां मुखतश्चैयं प्रसन्नमुखपङ्कजा ॥१७॥
प्रार्थिता सादरं ताभिः पुनः स्वासनमाविशत् । मुख्ययूथेश्वरीभिश्च सेव्यमाना मयाऽपि सा ॥१८॥

सखियोंने प्रेम-पूर्वक विराजमान किया, तब श्रीकिशोरीजी सुवर्णके पात्रोंमें रखी हुई सभी वस्तुयें सखियोंको प्रदान करवाने लगीं ॥९॥

श्रीललीजीके चारो ओर पङ्क्ति (कतार) बाँध कर विराजमान सभी बहिनें उनके स्वरूपकी हृदयाकर्षक सुन्दरताका दर्शन करती हुई परम हर्ष को प्राप्त हुईं ॥१०॥

शीशोंके द्वारा चारो ओरसे श्रीजनकललीजूके मनोहर तथा स्पष्ट दर्शन बहिनोंके लिये, और बहिनोंका दर्शन श्रीललीजूके लिये सुलभ कर दिया गया ॥११॥

भोजनथाल सभी बहिनोंके पास पहुँचे हुये देखकर उन्हें विशेष आनन्द देनेकी इच्छासे श्रीललीजी स्वयं उठीं ॥१२॥ कृपासे फैले हुये नेत्रों वाली, वे श्रीललीजी अपूर्व स्वादु युक्त प्रिय (अभीष्ट) व्यञ्जनोंको सखियोंसे मँगा, मँगाकर स्वयं अपने कर कमल द्वारा प्रचुर (अत्यधिक) मात्रामें सभी बहिनोंके लिये प्रसन्नता पूर्वक परोसने लगीं ॥१३॥१४॥

हे कृपाके पुञ्जश्रीप्राणप्यारेजू! हम सभीके लिये वह सुख अकथनीय यानी कहनेमें असम्भव ही जानिये, क्योंकि उस सुखका अनुभव तो केवल नेत्रोंको प्राप्त हुआ और उनके जिह्वा है नहीं, जो वे कह सकें ॥१५॥ हे प्यारे ! वह सुख केवल श्रीललीजीकी कृपासे ही प्राप्य है, अन्यथा सैकड़ों साधनोंसे भी नहीं प्राप्त हो सकता । उनसे बढ़कर और कौन परम भाग्य शालिनी होंगी ? जिन्होंने इस दिव्य सुख को प्राप्त किया है ॥१६॥

"हे श्रीललीजी ! अब बहुत वितरण हुआ, बहुत वितरण हुआ" सभीके मुखसे इसी एक शब्दको सुनकर श्रीललीजी का मुखारविन्द आनन्दसे प्रसन्न हो गया ॥१७॥

सभीके आदर-पूर्वक प्रार्थनाकरने पर वे मेरे सहित मुख्य यूथेश्वरी-सखियों द्वारा सेवित होती हुई अपने आसन पर विराजमान हुईं ॥१८॥

चकार भोजनं प्रेम्णा लाल्यमानोरुभावतः । महामाधुर्यसम्पन्ना प्राणभूताऽखिलात्मनाम् ॥१९॥
दृष्ट्वाऽशनन्तीस्तु ताश्चक्रे भोजनं श्रीनृपात्मजा । ताश्चतां सम्मुखेऽशनन्तीमकुर्वन् भोजनं सुखम् ।२०।
अधरोच्छिष्टवृत्तीनां पात्रेषु भोजनस्य सा । निजभोजनपात्राच्च व्यञ्जनानि ददात्यलम् ॥२१॥
ह्लादिनीकरसंस्पर्शादधरामृतयोगतः । अवाच्यस्वादुपृक्तानि बभूवुस्तानि वल्लभ ! ॥२२॥
आस्वाद्यास्वाद्य वै तानि पुलकाङ्कितनूरुहाः । जय मुद्वर्षिणीत्युच्चैः प्रेममत्ता व्यघोषयन् ॥२३॥
व्याप्ति चकार तच्छब्दः सर्वलोकेषु शंप्रदः । ह्लादयन् सर्वचेतांसि चचाल त्रिविधोऽनिलः ॥२४॥
कृपापात्राणि सर्वाणि सर्वयोनिगतान्यपि । त्यक्तधैर्य्याणि चाजग्मुरातुराणि दिदृक्षया ॥२५॥
दृष्ट्वा तं परमानन्दं जानक्याः करुणोद्भवम् । हर्षाप्लुतमनोनेमुः प्रीतियुक्तमनश्च ताम् ॥२६॥
तेषां तु स्वागतं प्रेम्णा गुप्तरूपेण मैथिली । अविज्ञातस्वरूपाणां चकार स्वयमेव हि ॥२७॥
ईदृशी न कृपा दृष्टा न श्रुता जातुचिन्मया । सत्यं वदामि प्राणेश ! स्वयं तज्ज्ञातुमर्हति ॥२८॥

सभी प्राणियोंकी प्राण-स्वरूपा महामाधुर्य्य सम्पन्ना, श्रीललीजी सखियों द्वारा अत्यन्त भाव से लालित होती हुई भोजन करने लगीं ॥१९॥

श्रीमिथिलानृपति-नन्दिनी श्रीललीजी अपनी सखियों को भोजन करती हुई देखकर सुखपूर्वक-भोजन करनेमें प्रवृत्त हुई और वे सखियाँ श्रीललीजीको सम्मुख भोजन करते हुये दर्शन करके आनन्द पूर्वक भोजन करने लगीं ॥२०॥ पुनः श्रीकिशोरीजी अपनी जूठन-जीविका सखियोंके भोजन-पात्रोंमें अपने भोजन थालसे बहुत बहुत व्यञ्जनोंको देने लगीं ॥२१॥

हे प्यारे वे व्यञ्जन आह्लादस्वरूपा श्रीललीजीके हस्तकमलके स्पर्श व उनके अधरामृतके योगसे ऐसे स्वादु युक्त हो गये थे कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता ॥२२॥

उन व्यञ्जनोंका बारम्बार आस्वादन करके पुलकायमान रोम हुई, प्रेममतवाली वे सभी बहिनें, "हे आनन्दकी वर्षा करने वाली श्रीललीजी ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो" इस प्रकार उच्च स्वरसे जय घोष करने लगीं ॥२३॥ वह मङ्गलमय घोष सभी प्राणियोंके चित्तको आह्लाद युक्त करता हुआ स्वर्ग, भूमि, पातालादि सभी लोकोंमें, व्याप गया और शीतल, मन्द, सुगन्ध मय तीनों प्रकारकी वायु (हवा) बहने लगी ॥२४॥

उस समय श्रीललीजूके जयकारका कर्ण-सुखद घोष सुनकर सभी योनियों में प्राप्त, सभी कृपापात्र भक्त, श्रीललीजूके दर्शनोंकी इच्छासे व्याकुल होकर वहाँ आगये ॥२५॥

श्रीललीजूकी कृपासे प्राप्त हुये उस परम आनन्द का दर्शन करके, उनके चित्त हर्षमें डूब गये पुनः सावधान होने पर उन्होंने श्रीललीजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम किया ॥२६॥ छिपे स्वरूप वाले उन कृपापात्र-भक्तोंका स्वागत गुप्त रूपसे प्रेमपूर्वक स्वयं श्रीललीजीने किया ॥२७॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! मैं सत्य कहती हूँ, और आप स्वयं भी जान सकते हैं कि ऐसी विचित्र वात्सल्यपूर्ण, निर्हेतुकी कृपा न कभी मैंने किसीमें देखी और न सुनी ही है ॥२८॥

सर्वाभ्यो वाञ्छितं दत्त्वा भोजयित्वा निजाः सखीः। निवृत्ताशनलीलाऽभूत्पीत्वा वारि सुधोपमम् ।२९।
पद्मगन्धेङ्गितं ज्ञात्वा मयाऽऽचम्यं प्रदाय च । प्रोञ्छितं सूक्ष्मवस्त्रेण प्रीत्या तत्सिन्धुजाननम् ॥३०॥
स्वर्णपत्रावृता वीटयस्ताम्बूलस्य सुपात्रके । अपूर्वस्वादुसंपृक्ता निधायास्यै समर्पिताः ॥३१॥
अथ रक्तांशुकाशोभिमुक्तादामचमत्कृते । श्याममणिगणाकीर्णे पुष्पमालासुशोभिते ॥३२॥
सिंहासने महारम्ये नानाऽलङ्कारसंयुते । निवेशितोरुमानेन मैथिली चारुशीलया ॥३३॥
आज्ञप्तास्तु महासख्यश्चाष्टौ भोजनहेतवे । प्रियोच्छिष्टं प्रसादान्नं विभज्याशुः सुधाधिकम् ॥३४॥
शंसन्त्य आत्मनो भाग्यं कृपां निर्हैतुकीं तथा । पश्यन्त्यो दृष्टिसम्पातमपिवन् रूपमाधुरीम् ॥३५॥
क्षणेन भोजनं कृत्वा पीत्वोच्छिष्ट पयोऽमृतम् । सत्कृता अनुजाभिश्च ताम्बूलादिसमर्पणैः ॥३६॥
स्वसेवातत्पराः सर्वा अभवंस्तुष्टमानसाः । स्पृष्ट्वा श्रीचरणाम्भोजे कोमले कमलेडिते ॥३७॥
छत्रं जग्राह श्रीहेमा नाना चित्रविचित्रितम् । उर्मिला माण्डवी चैव क्षेमा चन्द्रकला तथा ॥३८॥
चारुशीला प्रसादा च लक्ष्मणा विश्वमोहिनी । मयूरपिच्छगुच्छांश्च ललुरेता हि सादरम् ॥३९॥

इच्छानुकूल सभीको सुख प्रदान करके, तथा अपनी सखियोंको भोजन कराके, श्रीललीजी अमृतके समान जलको पीकर भोजन-लीलासे निवृत्त हुई ॥२९॥

श्रीपद्मगन्धाजीका सङ्केत समझकर श्रीललीजीको आचमन प्रदान करके, मैंने अत्यन्त पतले वस्त्रसे प्रेमपूर्वक उनके श्रीमुखारविन्दको पोंछा ॥३०॥ तत्पश्चात् सोनेके पत्रसे ढके हुये अपूर्व-स्वादुयुक्त पानके वीरोंको सुन्दर पात्रमें रखकर इन श्रीललीजीको समर्पण किया ॥३१॥

तत्पश्चात् लालवस्त्रसे सुशोभित, मोतियोंकी मालाओंसे चमकते हुये, पुष्पमालाओंसे शोभायमान नीलमणि जटित अनेक प्रकारकी सजावटसे सब प्रकार अलंकृत, अत्यन्त मनोहर, सिंहासन पर बड़े सम्मानपूर्वक श्रीललीजीको श्रीचारुशीलाजीने विराजमान किया ॥३२॥३३॥

प्रसादसेवन करनेके लिये आज्ञापाकर आठो यूथेश्वरी सखियाँ श्रीललीजीके छोड़े हुए सीथप्रसादको परस्पर वितरण करके, भोजन करने लगीं ॥३४॥

सभी अपने सौभाग्यकी तथा श्रीललीजीकी स्वार्थ रहित कृपाका वर्णन करती हुई उनके कृपा कटाक्षको देखती उनकी रूप माधुरीका पान करने लगीं ॥३५॥ क्षणमात्रमें भोजन करके अमृतके समान, श्रीललीजीका प्रसादी जल पीकर पानादि समर्पण के द्वारा छोटी बहिनोंसे सत्कारको प्राप्त हो प्रसन्न मन हुई वे सखियाँ श्रीललीजूके कोमल श्रीचरणकमलोंको स्पर्श करके अपने-अपने योग्य सेवामें तत्पर हो गयीं ॥३६॥३७॥

श्रीहेमाजी अनेक चित्रोंसे विचित्र प्रतीत होने वाले छत्रको ग्रहण करती हुई, श्रीउर्मिलाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीक्षेमाजी, तथा श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीचारुशीलाजी, श्रीप्रसादाजी, श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीविश्वमोहिनीजी, ये आठो सखियाँ आदर पूर्वक मोरपङ्ख गुच्छों (मोरछलों) को हाथमें लेती हुईं ॥३८॥३९॥

सुभगा श्रुतिकीर्त्तिश्च वरारोहा सुलोचना । पद्मगन्धा मनोज्ञाङ्गी माधुर्य्या च प्रियोत्तम ! ॥४०॥
योगमुद्रा त्विमाश्चाष्टौ चामराञ्चितपाणयः । रूपलावण्यसम्पन्ना गुणरत्नचमत्कृताः ॥४१॥
चित्रा विहारिणी पद्मा ह्लादिनी पद्मलोचना । गौराङ्गी क्षेमदात्री च कर्पूराङ्गी त्विमाः शुभाः ।४२।
अष्टौ पाणौ गृहीत्वा च व्यजनानि चकाशिरे । उभयोः पार्श्वयोरस्याः शरच्चन्द्रनिभाननाः ॥४३॥
विमलोत्कर्षणा भक्तिः क्रियेशाना च पार्वती । ज्ञाना तत्त्वा त्विमाश्चाष्टौ पुष्पवेत्रधराः स्थिताः ॥४४॥
स्वानन्दा माधवी हंसी प्रहंसी चारुलोचना । वागीशा शोभना रम्भा पुष्पगुच्छलसत्कराः ॥४५॥
अहं योगा सुचित्रा च विशदाक्षी हरिप्रिया । हंसी सुदर्शिका धात्रीं धृतताम्बूलभाजनाः ॥४६॥
हेमाङ्गी चम्पकाङ्गी च सन्तोषा मानिनी रतिः । शान्ता सुविद्या विद्या च रत्नदण्डकराम्बुजा ॥४७॥
काञ्चना चित्ररेखा च चन्द्रभद्रा सुधामुखी । अतिशीला सुशीला च कूटरूपा विशारदा ॥४८॥

हे श्रीपरमप्यारेजू ! श्रीसुभगाजी, श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी, श्रीबरारोहाजी, श्रीसुलोचनाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीमनोज्ञाङ्गीजी, श्रीमाधुर्याजी ॥४०॥

श्रीयोगमुद्राजी ये आठो रूपकी मनोहरतासे युक्त, गुणरूपी रत्नोंसे चमकती हुई सखियोंने अपने हाथोंको चवँरसे सुशोभित किया ॥४१॥

श्रीचित्राजी, श्रीविहारिणी, श्रीपद्माजी, श्रीह्लादिनीजी, श्रीपद्मलोचनाजी, श्रीगौराङ्गीजी, श्रीक्षेमदात्रीजी, श्रीकर्पूराङ्गीजी ये आठों शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली, सौभाग्यवती सखियाँ, अपने हाथमें पङ्खोंको लेकर श्रीललीजूके दाहिने व बायें भाग में सुशोभित हुईं ॥४२॥४३॥

श्रीविमलाजी, श्रीउत्कर्षणाजी, श्रीभक्तिजी, श्रीक्रियाजी, श्रीईशानाजो, श्रीपार्वतीजी श्रीज्ञानाजी, श्रीतत्त्वाजी ये आठो सखियाँ फूलोंके वेंत हाथमें धारण करके श्रीललीजीके दोनों बगलमें खड़ी हुईं ॥४४॥

श्रीस्वानन्दाजी, श्रीमाधवीजी, श्रीहंसीजी, श्रीप्रहंसीजी, श्रीचारुलोचनाजी, श्रीवागीशाजी, श्रीशोभनाजी, श्रीरम्भाजी, इन आठो सखियोंके हाथ फूलोंके गुच्छों (गुलदस्तों) से सुशोभित हुये अर्थात् ये आठ गुलदस्तोंको हाथमें लेकर दोनों बगलमें उपस्थित हुईं ॥४५॥

मैं (स्नेहपरा), श्रीयोगाजी, श्रीसुचित्राजी, श्रीविशदाक्षीजी, श्रीहरिप्रियाजी, श्रीहंसीजी, श्रीसुदर्शिकाजी, श्रीधात्रीजी, ये आठो सखियाँ हाथोंमें पानदान पात्रोंको लेकर खड़ी हो गयीं ।४६।

श्रीहेमाङ्गीजी, श्रीचम्पकाङ्गीजी, श्रीसन्तोषाजी, श्रीमानिनीजी, श्रीरतिजी, श्रीशान्ताजी, श्रीसुविद्याजी, श्रीविद्याजो, ये आठो सखियाँ रत्नोंकी बनाई छड़ियोंको हाथमें धारण करती हुईं ॥४७॥ श्रीकाञ्चनाजी, श्रीचित्ररेखाजी, श्रीचन्द्रभद्राजी, श्रीसुधामुखीजी, श्रीअतिशीलाजी, श्रीसुशीलाजी, श्रीकूटरूपाजी, श्रीविशारदाजी ॥४८॥

एताश्चाष्टौ मनोज्ञाङ्ग्यः क्रीडावस्तुसुहस्तकाः । संस्थिताः पार्श्वयोरस्याश्छबिदर्शनलालसाः ॥४६॥

एवं हि सर्वाभिरुदारकीर्त्तिः संसेव्यमाना रतिमोहनश्रीः ।
रराज तत्रातिसुनिष्ककण्ठी मन्दस्मिता विम्बफलाधरोष्ठी ॥५०॥

ये मनोहर अङ्गवाली आठो सखियाँ, इन श्रीललीजूकी छवि–दर्शनोंके लिये अत्यन्त उत्सुकतासे भरी, खेलकी सभी वस्तुओं को सुन्दर हाथोंमें लेकर इनके दोनों बगलमें विराजमान हुईं ॥४६॥हे प्यारे! इस प्रकार उदार(सबकुछ प्रदान करनेवाली)कीर्त्ति व रतिको मुग्ध करनेवाली शोभासे सम्पन्न, कण्ठमें सोनेके भूषणोंको धारणकी हुई, मन्द मुस्कान व विम्बाफलके सदृशलाल अधर व ओष्ठवाली श्रीललीजी, सभी बहिनोंसे सेवित वहाँ सुशोभित हुईं ॥५०॥

इति सप्ततितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

श्रीमिथिलाजी की कभी भी उपेक्षा न करनेके लिये श्रीकिशोरीजीसे सखियोंकी प्रार्थना ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

सुनीराज्य भक्त्याऽऽर्य्य पुष्पाञ्जलिं तास्ततःस्तोत्रयामासुरम्भोरुहाक्षीम् ।
निबद्धयाञ्जलिं प्रेमपीयूषसिन्धुं धरानाथपुत्रीममन्दाभिरामाम् ॥१॥

सख्य ऊचुः ।

प्रफुल्लकञ्जलोचने ! समस्त दुःखमोचने ! निरस्तसर्वदूषणे ! विदेहवंशभूषणे ! ।
महामुनीन्द्रभाविते ! रमाशिवादिसेविते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ॥२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! वे सखियाँ श्रीललीजूकी सुन्दर आरती करके प्रेमपूर्वक उन्हें पुष्पाञ्जलि दे, हाथ जोड़कर समुद्रके समान अथाह प्रेमरूपी अमृतकी खानि, कमललोचना, अपार सौन्दर्य सम्पन्ना श्रीभूमिनन्दिनी श्रीललीजूकी स्तुति करने लगीं ॥१॥

सखियाँ बोलीं:–हे खिले कमलके समान विशाल नेत्रवाली ! आप आश्रितोंको समस्त दुखों से छुड़ाने वाली ! समस्त दोषोंसे रहित, विदेह वंशको भूषणके समान सुशोभित करनेवाली हैं, भगवत्तत्वके महामनन करने वाले मुनि श्रेष्ठ आपकी सदा भावना करते हैं । लक्ष्मी, पार्वती आदिसे सेवित, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजू ! आप सदा मङ्गलों का ही दर्शन करती रहें ॥२॥

जगद्धितार्थसम्भवे ! सुदूषणान्विते भवे सुदिव्यनित्यवैभवे ! परात्परे ! सुगौरवे !।
अनन्तशक्तिसेविते ! ऽविचिन्त्यशक्तिसंयुते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ॥३॥
निरामये ! निरञ्जने ! समग्रलोकरञ्जने !। स्वभावशातविग्रहे ! गुणौघरत्नसङ्ग्रहे।
महाप्रभावसंयुते ! महाप्रभे ! महाद्युते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥४॥
नवीनकेलितत्परे ! सतां महासुखाकरे ! शरत्सुधाकरानने ! महाकृपानिकेतने !।
महाक्षमामृतोदधे ! सुशीलतामहावधे ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥५॥
जगद्विमोहनस्मिते ! सुभूषणैर्विभूषिते ! विभूषणैकभूषणे ! स्वभावशून्यदूषणे।
महामृदुप्रभाषिते ! महामनोहराकृते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥६॥
मृदुस्वभावसंयुते ! ऽनृजुस्वभाववर्जिते ! सुचन्द्रिकाञ्चिमस्तके ! सरोजशोभिहस्तके।
अरालसूक्ष्मकुन्तले ! सुपाविताचलातले ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥७॥

हे चर, अचर समस्त प्राणियोंके हितार्थ इस अत्यन्त दोषमय संसारमें अवतीर्ण होनेवाली! लोकोत्तर अनन्त ऐश्वर्य वाली ! परमात्मस्वरूपे ! सुन्दर गौरव (प्रतिष्ठा) वाली ! हे अनन्त शक्तियोंसे सेवित ! अनुमानसे अति परे शक्तिवाली ! हे विदेहराज नन्दिनी श्रीललीजी ! आपको सदा मङ्गल ही मङ्गल का दर्शन हो ॥३॥

हे सब प्रकारके रोगोंसे रहित, मायिक विकारोंसे परे, समस्त लोकोंको अपने शील स्वभाव, चरितादिके द्वारा प्रसन्न करने वाली, स्वभावसे ही सुखकी मूर्त्ति, गुण समूह रत्नोंकी राशि स्वरूपे, महती महिमासे युक्त ! महा प्रभाव तथा महती कान्ति वाली ! हे विदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी ! आपके लिये सदा मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन हो ॥४॥

हे नवीन-नवीन क्रीड़ाओंमें तत्पर रहने वाली, सन्तोंके महान सुखकी खान-स्वरूपे ! हे शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान मुखवाली, कृपाकी भवन, समुद्रके समान अथाह महती क्षमा वाली, सुशीलताकी महती सीमा स्वरूपा, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी ! आपको मङ्गल ही मङ्गल का निरन्तर दर्शन हो ॥५॥ अपनी मन्द मुस्कानसे सारे चर-अचर प्राणियों को मुग्धकर लेने वाली ! भूषणोंको भी अपने श्रीअङ्गकी प्रभासे भूषित (शोभा युक्त) करने वाली, स्वभावसे ही समस्त दोषोंसे अछूती, अतीव कोमल वचन बोलने वाली, मनकी महती चोरी करनेवाली, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी! आप सदा मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन करती रहें॥६॥

हे अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली ! कुटिल स्वभावसे रहिते, सुन्दर चन्द्रिकासे अलंकृत मस्तक वाली, कमलपुष्पसे शोभायमान हस्त, व घुंघुराले महीन बालों वाली, तथा पृथिवीतल को अपने श्रीचरणकमलोंके स्पर्शसे परम पवित्रकर देनेवाली, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी! आप सतत काल मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन करती रहें ॥७॥

अकारणानुकम्पिनि प्रगुप्तबोधदीपिनि ! तडिन्निकायसुद्यते सदागमश्रुतिस्तुते ! ।
महानुरागपण्डिते ! महार्हहारमण्डिते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥८॥
रतिस्मयापहारिके ! कुभाग्यतानिवारिके ! सकृत्प्रणामतोषिते ! महानुरक्तिपोषिते ।
सतां परात्परा गते ! न आत्मदे महामते ! सदा प्रपश्य मङ्गलं विदेहराजनन्दिनि ! ॥९॥
जय प्रपन्नवत्सले ! मुखावरेन्दुमण्डले ! सुयावकाञ्चिताङ्घ्रिके प्रतप्तकाञ्चनाङ्गिके ! ।
अशेषलोकनायिके ! महत्सुखप्रदायिके ! त्वमेव नः परा गतिः प्रदीयतां परा रतिः ॥१०॥
विना न जानकि! त्वया सुखं सुखस्वरूपया कथञ्चनापि नःक्वचित्प्रविद्धचृतं हि जातुचित् ।
क्षणार्द्धमप्यतः प्रिये ! न नस्त्यजाखिलाश्रय ! त्वमेव नः परा गति प्रदीयतां परा रतिः ॥११॥

तवोदयात्सर्वसुखोपपन्ना पुरीप्रधानातिकलाऽनवद्या ।
पूज्या महद्भिः श्रुतिगीतकीर्त्तिर्नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१२॥

हे बिना किसी साधनादि कारणके ही प्राणियों पर दया करने वाली । छिपे हुये ज्ञानका प्रकाश करने वाली, वेद शास्त्र-सन्तों द्वारा स्तुतिकी हुई, महान् अनुरागके स्वरूपको भली प्रकार समझने वाली, अमूल्य हारोंके शृङ्गारको धारण की हुई, हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजी! आप सब समय मङ्गल ही मङ्गलका दर्शन करती रहें ॥८॥

हे अपने सौन्दर्यसे रतिके अभिमानको पूर्ण रूपसे दूर करने वाली, खोटे भाग्य की निवारिणी, एकबारके प्रणाम मात्रसे ही प्रसन्न हो जाने वाली, महान् अनुराग पूर्वक पोषणकी हुई, सन्तोंकी सर्वोत्तम आधार स्वरूपे, हम लोगोंके लिये अपने आपको भी दे डालने वाली! ब्रह्म की बुद्धि स्वरूपा हे श्रीविदेहराजनन्दिनी श्रीललीजू ! आप सदैव मङ्गलही मंगलका दर्शन करें॥९॥

हे शरणागत भक्तों पर वात्सल्य भाव रखनेवाली, अपने मुखारविन्दकी शोभासे चन्द्रमण्डल को तुच्छ करनेवाली सुन्दर महावरसे अलङ्कृत श्रीचरणकमल, तपाये हुये सुवर्णके समान गौर अङ्गवाली, समस्त लोकों पर शासन करने वाली तथा महात्माओंके सुखको प्रदान करने वाली,हे श्रीललीजी ! आपकी जय हो। हम लोगोंकी रक्षाका स्थान आपही हैं, हमें अपने श्रीचरण-कमलोंमें उत्कृष्ट प्रेम प्रदान कीजिये ॥१०॥

हे श्रीजनकलड़ैतीजू ! आप सत्य जानिये, आप सुखस्वरूपाजीके बिना हम लोगोंको कभी कहीं, किसी प्रकार, आधा क्षणमात्र भी सुख नहीं है । हे प्यारी! हे सभी प्राणी-मात्रकी आधार-स्वरूपा श्रीललीजी! इस हेतु हम लोगोंका त्याग कभीन कीजियेगा क्योंकि हम लोगोंको आश्रय देने वाली एक आपही हैं, अतः अपने श्रीचरणकमलोंमें हमें श्रेष्ठ अनुराग प्रदान कीजिये ॥११॥

हे श्रीललीजी ! आपके जन्मसे यह श्रीमिथिलापुरी सब सुखोंसे युक्त, सभी पुरियोंमें श्रेष्ठा (श्रीअयोध्यापुरी) की तिलक स्वरूपा, प्रशंसाके योग्य महापुरुषोंके द्वारा पूजनीय है, वेद भगवान् भी इसकी कीर्त्ति (यश) को गा रहे हैं, अत एव आप श्रीमिथिलाजीकी ओरसे अपनी दृष्टि कभी न हटाइयेगा ॥१२॥

शक्तिप्रधानाः कमलादयोऽत्र भूत्वाऽऽपगाश्चारु वसन्त्यजस्त्रम् ।
सेवानिमित्तं तव चन्द्रमुख्या नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१३॥

वदालि ! सीता नृपनन्दिनीति श्रीजानकी चन्द्रमुखी प्रियेति ।
द्विजाः सुगायन्त्यधिरुह्य शाखां नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१४॥

अशेषसन्मङ्गलवस्तुपूर्णा सुपावनीभूमिरलौकिकाभा ।
असाधनागम्यपदप्रदात्री नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१५॥

रसालरम्भापनसादिवृक्षैर्विशेषतः सर्वत एव कीर्णा ।
सस्यप्रधानाऽखिललोकवन्द्या नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१६॥

ह्रस्वापगाकूपतडागवाप्यः सुधाम्बुपूर्णा मणिकूलरम्याः ।
क्रीडासहायास्तव चोल्लसन्ति नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१७॥

पादारविन्दाङ्कितसर्वभूमिर्ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च वन्द्या ।
लोकोत्तराशेषगुणाभियुक्ता नोपेक्षणीया मिलिथा भवत्या ॥१८॥

हे श्रीललीजी ! शक्तियोंमें मुख्य श्रीकमला (लक्ष्मी) जी आदि यहाँ पर नदियाँ होकर आप श्रीचन्द्रमुखीजीकी सेवाके लिये अहर्निश (रात-दिन सतत काल) सुख-पूर्वक निवास कर रही हैं, अत एव आप कभी भी इस श्रीमिथिलापुरीजीकी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१३॥

हे श्रीललीजी ! यहाँ(श्रीमिथिलापुरीमें)पक्षी लोग "सखि ! सीता कहो, सखि ! नृपनन्दिनी कहो, सखि ! श्रीजानकी कहो ! सखि ! श्रीचन्द्रमुखी कहो ! सखि ! प्यारी कहो" ऐसा गा रहे हैं, अत एव आप ऐसी श्रीमिथिलाजीकी कभी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१४॥

हे श्रीललीजी ! हमारी यह श्रीमिथिलापुरी समस्त शुभ माङ्गलिक पदार्थोंसे परिपूर्ण है, यहाँकी भूमि अत्यन्त पवित्रता प्रदान करने वाली, दिव्य प्रकाशमयी, बिना किसी जप, तपादि साधनके ही, साधनोंसे भी प्राप्त न हो सकने योग्य पद श्रीसाकेत धामको प्रदान करने वाली है, अतएव ऐसी विलक्षण महिमावाली हमारी इस श्रीमिथिलाजीकी, आप कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा।।१५।।हे श्रीललीजी! आम, केला, कटहल आदि वृक्षोंसे यह श्रीमिथिलापुरी सभी ओर से विशेष परिपूर्ण, सस्यकी प्रधानतासे युक्त, सभी लोकोंसे प्रणाम करने योग्य है, अत एव आप इस श्रीमिथिलापुरीकी कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१६॥

श्रीललीजी! मणिमय किनारोंसे मनोहर, यहाँकी नदियाँ, कूप, तालाब, वापियाँ (बावडियाँ) अमृतके समान जलसे पूर्ण, आपके खेलमें सहायता पहुँचाने वाली सुशोभित हो रही हैं, अत एव आप इस श्रीमिथिलाजीकी कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१७॥

यहाँकी सभी भूमि आपके श्रीचरणकमलके चिह्नोंसे चिह्नित, ब्रह्मादि देवों तथा चारो वेदोंके द्वारा प्रणाम करने योग्य सभी अलौकिक गुणोंसे सब प्रकार पूर्ण है, अत एव आप कभी भी हमारी इस श्रीमिथिलाजीकी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१८॥

निष्कण्टकातीवसुकोमला भूः सुश्यामला पुष्पफलादिवृक्षैः ।
देदीप्यमाना मणिहर्म्यजालैर्नोपेक्षणीया मिथिला भवत्या ॥१९॥
त्वमसि शरणमेका नापरा काऽपि चास्या निगदितमृतमेतद्विद्धि कारुण्यमूर्त्ते ।
इयमिह तव हेतोः सर्वसौभाग्यपूर्णा शशिमुखि! मिथिला ते सच्चिदानन्दरूपा ॥२०॥

हे श्रीललीजी! यहाँकी भूमि काँटोसे सर्वथा रहित, अत्यन्त कोमल, पुष्पफलादि वाले वृक्षों से सुन्दर श्याम रंगकी है, तथा मणिमय भवन समूहोंसे चम-चम कर रही है, अत एव ऐसी हमारी श्रीमिथिलाजी की आप कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥१९॥

हे करुणामूर्त्ति श्रीललीजी ! इस श्रीमिथिलाजीकी सब प्रकारसे रक्षा करने वाली आप ही हैं और कोई नहीं । हे श्रीचन्द्रमुखीजी! कहाँ तक कहें? यह सत्, चित्, आनन्दस्वरूपा श्रीमिथिलाजी आपकी सेवाके लिये सभी प्रकारके सौभाग्यसे युक्त है, मेरा यह निवेदन सत्य जानिये । अत एव हे श्रीललीजी! आप हमारी इस श्रीमिथिलाजीकी कभी भी उपेक्षा न कीजियेगा ॥२०॥

इत्येकसप्ततितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

धनुष पूजन निवृत्त, सचिन्त भवन पधारे हुए श्रीजनकजीसे श्रीसुनयाअम्बाका संवाद ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमभ्यर्थिता पुत्री मिथिलाभूमिभूपतेः । प्रसन्ना ऽभूद्भृशं तासु पूर्णकामाश्चकार ताः ॥१॥
अथ सीरध्वजो राजा विदेहानां शिरोमणिः । निमज्ज्य कमलातोये कृतसन्ध्यादिकक्रियः ॥२॥
माहेशचापपूजायै संवृतो मुख्यकिङ्करैः । दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो योगिराजः सदक्षिणम् ॥३॥
जयजयेति सच्छब्दं घोष्यमाणं जनव्रजैः । शृण्वन्हृष्टमनाः पुष्पैः पूज्यमानः पिता ययौ ॥४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! इस प्रकारकी प्रार्थना निवेदन करने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीललीजीने उन बहिनोंके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो उनके मनोरथको पूर्ण कर दिया॥१॥

इसके पश्चात् विदेह वंशियोंके शिरोमणि (सर्व श्रेष्ठ) श्रीसीरध्वज महाराज श्रीकमलाजीके जलमें स्नान करके प्रातः सन्ध्यादिक कृत्यों को सम्पन्न कर योगिराज श्रीमिथिलेशजी महाराज ब्राह्मणोंको दक्षिणा युक्त दानदेकर, अपने प्रधान सेवकोंके समेत श्रीभोलेनाथजीके धनुष(पिनाक) की पूजा करने के लिये जनसमूहों द्वारा पुष्पोंसे पूजित होते हुये तथा श्रीमिथिलेशजी-महाराजको जय हो जय हो, इस उच्च स्वरसे किये जाते हुये मङ्गल घोषको श्रवण करते हुये प्रसन्न मन हो, धनुष भवन को गये ॥२॥३॥४॥

समासाद्य धनुर्वेश्म लताभिश्च चमत्कृतम् । ददर्श महितं चापं पूर्वजैः संयतेक्षणः ॥५॥
तद्वक्रमृजुतां नीतं मार्जितं चाप्युपर्यधः । अपूर्वप्रभया युक्तं दृष्ट्वाऽऽश्चर्य्याम्बुधिप्लुतः ॥६॥
पुनश्चित्तं समाधाय नियतात्मा कथञ्चन । विधिवत्पूजनं चक्रे कौतुकोद्विग्नमानसः ॥७॥
प्रणम्य शिरसा भक्त्या हरकोदण्डमद्भुतम् । कृतार्चोऽगान्महाराजो महाराज्ञ्या निकेतनम् ॥८॥
सम्भ्रान्तमनसं दृष्ट्वा राज्ञी सम्पुटिताञ्जलिः । प्रत्युज्जगाम चोत्थाय स्वागतार्थमनिन्दिता ॥९॥
सेवाविधिमजानन्त्या मम पुत्र्या त्रुटिः कृता । तस्मात्सम्भ्रान्तचित्तोऽयं धर्मज्ञः सेत्यमन्यत ॥१०॥
पुनः पप्रच्छ राजानं भीता बद्धकराञ्जलिः । कुतस्ते कृतकृत्यस्य चिन्तया ऽभूत्समागमः ॥११॥
तन्नाथ! कारणं मन्ये सेवायां धनुषस्त्रुटिः । क्षन्तुं कृपां करोत्वीशस्तां तु मे बालिकाकृताम् ॥१२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तो महाराजो विस्मयं परमं गतः । राज्ञीं पप्रच्छ वृत्तान्तं बालिकेत्युक्तिकारणम् ॥१३॥

लताओंसे सुशोभित उस धनुष भवनमें प्राप्त हो, पूर्वजोंसे पूजित धनुषको एकाग्र-दृष्टिसे देखने लगे ॥५॥ उस टेढ़े धनुषको सीधा, ऊपर नीचेसे साफ किया हुआ, अपूर्व प्रकाश युक्त, देखकर वे आश्चर्य सागर में डूब गये ॥६॥

कौतुकसे चञ्चल चित्त हुये श्रीमिथिलेशजी-महाराजने अपने चित्तको किसी प्रकार (बड़ी कठिनता) से सावधान करके, एकाग्र-बुद्धि हो श्रीधनुषजीका विधि-पूर्वक पूजन किया ॥७॥

पूजनसे निवृत्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराज धनुष को सिर झुकाकर, तथा प्रेम-पूर्वक प्रणाम करके श्रीसुयनाअम्बाजीके महलको पधारे ॥८॥

उन्हें घबराये मन देखकर देव, मुनि श्रेष्ठों द्वारा स्तुति की हुई श्रीसुनयनाअम्बाजी उठकर उनका स्वागत करनेके लिये हाथ जोड़े हुई आगे पधारीं ॥९॥ उन्होंने यह निश्चय किया, कि सेवा विधि को न जानने वाली हमारी श्रीललीजीने धनुषभूमि लीपनेमें कोई त्रुटि (भूल) कर दी होगी, उसी लिये धर्मका रहस्य समझनेके कारण महाराज चित्तमें भयभीत हो रहे हैं ॥१०॥

पुनः (पतिदेवके भयसे) डरी हुई श्रीसुनयना अम्बाजीने हाथ जोड़कर पूछाः—हे प्यारे ! इस समय आप प्रातः कालीन नित्य नियम रूपी अपने आवश्यक कार्य को पूर्ण करके आ रहे हैं अत एव चिन्तासे भेंट होनेके लिये आपको अवसर कहाँसे मिला ?॥११॥ हे नाथ! धनुषजी महाराज की सेवामें कुछ त्रुटिको ही मैं, आपके चिन्ता का कारण मान रही हूँ, श्रीभोलेनाथजी मेरी श्रीललीजू द्वारा की हुई उस त्रुटि (भूल) को क्षमा करनेकी कृपा करें ॥१२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीसुनयनाअम्बाजीके ऐसा निवेदन करने पर परम आश्चर्यको प्राप्त हो, श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीअम्बाजीसे "श्रीललीजीके किये हुये अपराधको श्रीभोलेनाथजी क्षमा करें" इस कथनका तात्पर्य उनसे पूछा ॥१३॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

मम पुत्र्या कृतञ्चैतद्वचनं तव वल्लभे ! । चकार मम सन्देहं पूर्वादपि शताधिकम् ॥१४॥
तच्छिन्धि संशयग्रन्थि सुदृढां तत्त्ववित्तमे ! । सर्वं निवेद्य वृत्तान्तं निर्भयेनामलात्मना ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पत्याऽऽज्ञप्ता विशालाक्षी राज्ञी सुनयना ऽब्रवीत् । बद्ध्वाञ्जलिपुटं श्लक्ष्णं पुण्यश्लोका जनाधिपम् ।१६।

श्रीसुनयनोवाच ।

मया चन्द्रमुखी प्रातरशनोद्योगसक्तया । आदिष्टा सुकुमारी सा मार्जनाय धनुः क्षितेः ॥१७॥
स्वसृभिश्च सखीभिश्च साकमत्यन्तहर्षिता । यात्वेतः कृतकृत्याऽसौ ततश्चाभ्येत्य मां नता ॥१८॥
गाढ़मालिङ्गच तां दोर्भ्यां कृतकृत्यां विभूषिताम् । संतर्प्य भोजनैराज्ञां क्रीडनायार्थिताऽदिशम्॥१९॥
प्रागादित इदानीं सा गेहं मारकताह्वयम् । का त्रुटिर्विहिता नाथ ! तया सेवानभिज्ञया ॥२०॥
क्षन्तुमर्हसि तत्त्वज्ञ ! ह्यपराधं कृतं मम । तया कृता त्रुटिश्चापि नाशिवायेति निश्चयः ॥२१॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज बोले:-हे प्रिये! श्रीभोलेनाथजी मेरी श्रीललीजीकी की हुई त्रुटिको क्षमा करें" आपका यह वचन मेरे सन्देहको पहिलेसे भी सौ गुणा अधिक कर दिया है ॥१४॥

हे तत्त्ववेत्ताओंमें परम श्रेष्ठे! इस लिये मेरी आज्ञासे निर्भय तथा शुद्ध मनसे सारे वृत्तान्तको निवेदन करके मेरी अत्यन्त दृढ़ संशय रूपी गांठको, आप खोल दीजिये ॥१५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :— हे प्यारे ! श्रीपतिदेवकी आज्ञा होने पर विशाल लोचना, पवित्र कीर्त्ति, महारानी श्रीसुनयनाअम्बाजी हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक महाराजसे बोलीं ॥१६॥

हे प्यारे ! मैं श्रीललीजीके लिये कलेऊ बनानेमें तल्लीन थी, अतः सेवामें विलम्ब न हो जाय, इस भावनासे आज मैंने धनुष की भूमि स्वच्छ करनेके लिये उन श्रीसुकुमारीजीको ही आज्ञा प्रदानकी थी ॥१७॥

तदनुसार वे अपनी बहिनों तथा सखियोंके सहित अतीव हर्षपूर्वक यहाँसे गयीं और वहाँका सब कार्य सम्पन्न करके पुनः आकर मुझे प्रणाम किया ॥१८॥

धनुष-भूमि लीपनेका कार्य पूरा करके आई हुई उन श्रीललीजीको मैंने दोनों भुजाओंसे भली-भाँति अपने हृदयसे लगाकर भोजनसे तृप्त किया, पुनः श्रृङ्गार करके उनकी प्रार्थना पर मैंने उन्हें खेलने की आज्ञा प्रदानकी है ॥१९॥

इस समय यहाँसे श्रीललीजी मरकत-भवन पधारी हैं। हे नाथ! सेवाका ढङ्ग न जानने वाली श्रीललीजूसे क्या भूल हुई है ? ॥२०॥ हे सेवा तत्त्वको समझने वाले श्रीप्राणनाथजू ! आज अपनी अबोध श्रीललीजीको धनुष भूमिकी सफाईके लिये मैंने भेजा था, अतः उनसे जो कुछ त्रुटि हुई हो वह मेरा ही अपराध है, उसे आप क्षमा करनेकी कृपा करें। हे प्यारे ! आप यह निश्चय जानिये कि श्रीललीजीकी की हुई त्रुटि कभी अमंगलकारी नहीं हो सकती ॥२१॥

अत्यन्तविधिना ये च लान्ति देवा न चार्पितम् । हस्तौ प्रसार्य्य गृह्णन्ति तेऽमुयाऽविधिनार्पितम्।२२।
वीतरागा यतीन्द्रा ये परब्रह्मानुचिन्तकाः । त्यक्तकृत्याः समायान्ति भूयशो ऽस्या दिदृक्षया ॥२३॥
अस्याः प्रभावमतुलं मुनिसङ्घमुख्यैः संवर्ण्यते वहुविधं घटसम्भवाद्यैः ।
पारं न लभ्यत उदारमते ! प्रयत्नैर्न स्यात्त्रुटिस्त्रुटिरपि त्वनया कृता या ॥२४॥

क्योंकि जो देवता अत्यन्त विधिपूर्वक अर्पण किये हुये पदार्थोंको भी कभी हाथ पसार कर नहीं ग्रहण करते, वे ही इन श्रीललीजूके अविधि (खेल) पूर्वक अर्पण किये हुये पदार्थोंको हाथ पसार कर सहर्ष ग्रहण करते हैं ॥२२॥ जिन्हें अपने शरीर, प्राणों तकमें आसक्ति नहीं है, जो अपने मनको वशमें रखने वालोंमें श्रेष्ठ, परब्रह्मका ही निरन्तर चिन्तन करनेवाले हैं, वे भी अपने अपने कृत्योंको तिलाञ्जलि देकर, श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये यहाँ बारम्बार आते रहते हैं॥२३॥

हे उदारबुद्धि, श्रीप्राणनाथजू! इन श्रीललीजीके तुलना रहित प्रभावको मुनि-समूहोंमें प्रधान श्रीअगस्त्यजी आदि महामुनि बहुत प्रकारसे वर्णन करते हैं, पर उसका पार (छोर) वे भी नहीं पाते, अत एव यह निश्चय है, कि श्रीललीजी द्वाराकी हुई त्रुटि भी अमंगलकारी नहीं, बल्कि वह कल्याणकारी विधि ही है ॥२४॥

इति द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

धनुष भूमि मार्जनके लिये आज श्रीललीजी पधारी थीं, जानकर
शङ्का समाधानार्थ महाराज का उनके पास प्रस्थान ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

वाक्यमिदं च निशम्य तयोक्तं प्राह वचो मिथिलाधिपमौलिः ।
राज्ञि ! शृणुष्व कुतूहलमाद्यं येन मनोऽन्वितमस्ति ममैतत् ॥१॥
पूजनदत्तमना धनुषोऽहं तद्भवनं मुदितः समगच्छम् ।
तत्तु मया ऽद्भुतकान्तिसुदीप्तं दृष्टमपूर्वसुमार्जितमेव ॥२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे! श्रीसुनयनाअम्बाजीके कहे हुये वृत्तान्तको श्रवण करके सभी मिथिलेशोंमें शिरोमणि श्रीसीरध्वजजी महाराज बोले:—हे रानी ! मेरा यह मन जिस सर्वोपरि आश्चर्यसे युक्त है उसे आप श्रवण कीजिये ॥१॥ मैं श्रीधनुषजीकी पूजाकी ओर मन लगाकर हर्ष पूर्वक धनुष मन्दिरमें पहुँचा, वहाँ भगवान् शिवजीके उस धनुष को विलक्षण कान्तिसे भली भाँति प्रकाशित और अपूर्व स्वच्छ किया देखा ॥२॥

वक्रमवक्रतया समुपेतं प्रेक्ष्य शुभाङ्गि ! महाचकितोऽहम् ।
भ्रान्तिरियं किमु सत्यमपीदं प्रेक्ष्यत एव मया विदितं नो ॥३॥
स्वात्मनि सुष्ठुतया परिपश्यन् शैवधनुः समचिन्तयमद्य ।
यच्छृणु तद्यतनिर्मलचित्ता बोधनिधे ! दयिते ! वदतो मे ॥४॥
यद्भुवनत्रयभारसमेतं केन धनुर्ऋजुतामनुनेयम् ।
कश्च निधाय करे ननु वामे मार्ष्टुमिहार्हति दक्षकरेण ॥५॥
एतदुमाधवचण्डपिनाकं संस्क्रियते प्रियया प्रतिवारम् ।
सा किल सम्प्रति पूरितकृत्या प्रागमदालयमाशु मतिर्मे ॥६॥
नैव परन्तु तया भवचापं चालयितुञ्च कथञ्चिच्छक्यम् ।
केन कृतेयमुताद्भुतलीला हे विध आत्मनि याति न बोधः ॥७॥
एवमतर्क्यमवेक्ष्य कृतं तत्कृत्यमहं चकितोऽकरवं वै ।
अर्च्चनमादिविधानसमेतं त्वां पुनरागत आशु ततोऽत्र ॥८॥
त्वत्त इदं विदितं भवति स्म त्वं न गताऽद्य गता सुकुमारी ।
मार्जयितुं भवचापधरित्रीं कृत्यमिदं तु ततःकिल तस्याः ॥९॥

हे मङ्गलमय अङ्गों वाली प्रिये ! उस तिरछे धनुषको सीधा रखा देखकर मैं चकित हो गया, कि यह जो मैं देख रहा हूँ, वह ज्ञात नहीं, सत्य है अथवा भ्रम मात्र ॥३॥

हे ज्ञाननिधे ! श्रीप्रियाजू! उस धनुष का बारम्बार दर्शन करते हुये अपने हृदयमें जो आज मैंने विचार किया है, उसे मेरे कहनेसे आप एकाग्र तथा निर्मल चित्तसे श्रवण कीजिये ॥४॥

जो तीनों लोकोंके भारसे युक्त भगवान् शिवजीका धनुष है, उसे इस त्रिलोकीमें भला कौन सीधाकर सकता है ? तथा बायें हाथमें उसे धारण करके दाहिने हाथसे मार्जन करने को समर्थ कौन है ? ॥५॥ भगवान् श्रीउमापति(भोलेनाथ)जीके इस कठोर पिनाक धनुषकी सफाईका काम प्रति-दिन श्रीप्रियाजी किया करती हैं, इस समय वे शीघ्र ही अपनी सेवा पूरी करके महल गयी हैं, ऐसी मेरी धारणा है ॥६॥

परन्तु वे किसी प्रकार भी श्रीभोलेनाथजीके इस धनुषको हिलानेके लिये भी समर्थ नहीं हैं फिर उठाने की बात ही क्या ? हे विधाता ! तब किसने यह आश्चर्यमयी लीलाकी है ? इसकी जानकारी नहीं हो रही है ॥७॥ इस प्रकार अनुमानमें भी न आने योग्य उस कृत्यको किया हुआ देखकर मैंने आश्चर्य युक्त हो, मुख्य विधान सहित श्रीधनुषजीकी पूजाकी पुनः शीघ्र ही वहाँसे यहाँ आपके पास आगया ॥८॥ यहाँ आपसे यह ज्ञात हुआ कि आज शिव-धनुषभूमि मार्जन के लिये आप नहीं बल्कि सुकुमारी (श्रीलली) जी पधारीं थीं, इसलिये तिरछे धनुष को उठाकर भूमिकी सफाई करके उसे सीधा रखना निःसन्देह उन्हींका कर्त्तव्य है ॥९॥

सा च कथं लघुकोमलपाणौ न्यस्तवती भुवनत्रयभारम् ।
दक्षकरेण सुमार्ज्य सलीलं स्थापितवत्यृजु तन्नु यथेच्छम् ॥१०॥
सा तु चकार न चेदपि चान्या तच्चरितं कथयिष्यति पृष्टा ।
नूनमसौ परिवेत्ति यथार्थं तामधिगम्य विबोध्यमतः स्यात् ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति निमिकुलकैरवामृतांशुर्निजहृदि निहितं विचारमुक्त्वा ।
त्वरितमभिजगाम कान्तयाऽसौ मरकतभवनं सुतां दिदृक्षुः ॥१२॥

परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, कि श्रीललीजीने किस प्रकार तीनों लोकोंके भार-स्वरूप उस धनुषको खेल पूर्वक अपने छोटेसे कोमल बायें हाथमेंरखकर, दाहिने हाथसे भूमिकी सफाई करके उसे सीधा रखा होगा ॥१०॥

यदि वह कार्य श्रीललीजीने नहीं किसी औरने ही किया है, तो पूछने पर वे उस चरित को कहेंगी तो अवश्य, क्योंकि वे उस चरितको अवश्य ही भली भाँति जानती होंगी, अत एव उनके पास जाकर ही इस रहस्यको समझा जा सकेगा ॥११॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! निमिकुल रूपी कोकावेली (श्वेत कमल) को चन्द्रमाके समान खिलाने वाले वे श्रीसीरध्वजजी महाराज अपने हृदयमें स्थित हुये इस प्रकारके विचारको कहकर श्रीसुनयना अम्बाजीके समेत व श्रीललीजूके दर्शनोंके इच्छुक हो मरकत भवनको पधारे ॥१२॥

इति त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

धनुष किसने उठाया पूछने पर श्रीचारुशीला सखी द्वारा आदिसे सब रहस्य निवेदन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अत यत-बुद्धिर्निमि-कुलभानुः । क्षणमभिलेभे मरकतवेश्म ॥१॥
रसिक ! सुशीला जनकसुताली । परमविदग्धा प्रजनितहर्षा ॥२॥
अवददवाप्ति तदवनिजाताम् । ससुनयनस्य प्रजनितहर्षा ॥३॥
तन्निशम्य मनोज्ञाङ्गी रत्नगर्भासमुद्भवा । प्रहर्षं परमं लेभे पित्रोः सन्दर्शनोत्सुका ॥४॥
सर्वासामपि चेतांसि मार्गसंप्रेक्षणे तदा । तयोरागमनस्यासंस्तत्पराणि प्रियोत्तम ! ॥५॥
तावुभावपि वै तर्हि मण्डपं प्राप्य भास्वरम् । कृतप्रणामां वैदेहीं समालिङ्ग्य चुचुम्बतुः ॥६॥
लालयामासतुः कामं लालनैर्विपुलैः सुताम् । युक्तौ परानुरक्त्या तौ रूपमाधुर्यमोहितौ ॥७॥
अम्बा सुनयना तर्हि क्रोडमारोप्य जानकीम् । चीरान्ते पूर्णचन्द्रास्यां मुदा क्षीरमपाययत् ॥८॥
पुना रेजे विशालाक्षी कन्यां लावण्य-संयुताम् । अङ्कमादाय सा राज्ञी सव्ये श्रीमिथिलेशितुः ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! तत्पश्चात् एकाग्रबुद्धि, निमिकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाली श्रीमिथिलेशजी महाराज क्षणमात्रमें मरकत-भवन पहुँच गये ॥१॥

हे प्यारे ! रतिके सौन्दर्यको जीतने वाली परम चतुरा श्रीललीजूकी सखी श्रीसुशीलाजीने अत्यन्त हर्षित हो श्रीसुनयनाअम्बाजीके समेत, श्रीमिथिलेशजी महाराजके आगमनकी सूचना भूमिनन्दिनी श्रीललीजीको दी ॥२॥३॥

उनका आगमन समाचार सुनकर माता एवं पिताजीके दर्शनोंकी उत्सुकतासे पृथिवीके गर्भसे प्रकट हुई मनोहर अङ्गोंवाली श्रीललीजीको परम हर्ष हुआ ॥४॥

हे श्रीपरमप्यारेजू ! उस समय श्रीसुनयना अम्बाजी व श्रीमिथिलेशजी महाराजका मार्ग (रास्ता) देखनेमें सभी बहिनोंके चित्त तत्पर होगये । उसी समय उन दोनोंने प्रकाशपूर्ण उस मण्डपमें पहुँचकर प्रणात हुई श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर, उनके हाथोंको चूमा ॥५॥६॥

पुनः श्रीललीजूकी रूप सुन्दरतासे मुग्ध हुये दोनों माता-पिताजीने अपने इच्छानुसार अनेक प्रकारसे परम अनुरागपूर्वक उनका प्यार किया ॥७॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीने पूर्ण-चन्द्रमुखी श्रीललीजीको अपनी गोदमें बैठाकर बस्त्र की ओट दूध पिलाने लगीं ॥८॥ पुनः उपमासे परे सौन्दर्य वाली श्रीललीजीको विशाललोचना श्रीसुनयनाअम्बाजी गोदमें लिए, श्रीमिथिलेशजी महाराजके बायें भागमें जा विराजीं ॥९॥

उभौ राज्ञी तथा राजा सर्वभूतमनोहरम् । लोकाभिरामं चिद्रूपं वीक्ष्य-वीक्ष्य जहर्षतुः ॥१०॥
यद्यच्च पश्यतो गात्रं सच्चिदानन्दमोहनम् । तस्मिंस्तस्मिंश्च गात्रे हि तयोर्दृष्टिर्विलीयते ॥११॥
न वक्तुं तौ क्षमौ किञ्चिद्रुद्धकण्ठौ बभूवतुः । चक्षुर्भ्यां प्रेमजं तोयं मुञ्चन्तौ तत्र तस्थतुः ॥१२॥
तद्दृष्ट्वा मृदुसर्वाङ्गी सर्वशक्तिमहेश्वरी । सुकुमारी ददौ धैर्यं चेतोभ्यामुभयोरपि ॥१३॥
नेमुः सर्वास्तदागत्य तयोः श्रीपादपङ्कजम् । आशीर्भिर्नन्दितास्ताभ्यां पुनः स्वासनमाविशन् ॥१४॥
अत्यादृता विशालाक्ष्यः पुत्र्यश्चन्द्रकलादयः । प्रसन्नवदना रेजुः सम्मुखे बद्धपङ्क्तयः ॥१५॥
एवं सुखोपविष्टास्ताः पुत्रीर्वीक्ष्य महीपतिः । सर्वाः प्रति जगादेदं वाक्यं मधुरया गिरा ॥१६॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

पुत्र्यो वदत वै तथ्यं यच्च संपृच्छ्यते मया । भद्रं वो मृगपोताक्ष्यो ! धनुरुत्थापितं कया ॥१७॥
देवासुरमनुष्यैश्च यक्षगन्धर्वकिन्नरैः । यन्नोत्थापयितुं शक्यं हन्त सङ्गत्य कोटिशः ॥१८॥

श्रीपिताजी तथा माताजी दोनों ही समस्त प्राणियोंको मुग्ध करने वाले लोक-सुखदाई, चैतन्य (ब्रह्म) मय श्रीललीजूके रूपको देखकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुये ॥१०॥

वे दोनों सत्-चित्-आनन्दमय (ब्रह्म) को भी मुग्ध करनेवाले श्रीललीजीके जिन-जिन अङ्गों का दर्शन करते, उन्हीं-उन्हींमें उनकी दृष्टि पूर्ण लीन हो जाती थी ॥११॥

प्रेमके उफानसे गद्गद होनेके कारण उनका गला रुक गया अत एव कुछ भी बोलनेको वे समर्थ न हुये, केवल नेत्रोंसे आँसू बहाते हुये वहाँ विराजमान थे ॥१२॥

दोनोंकी उस अवस्थाको देखकर सभी शक्तियोंकी सर्वोत्कृष्ट नियामिका तथा कोमल अङ्गों वाली सुकुमारी श्रीललीजीने दोनोंके ही चित्तको धैर्य प्रदान किया ॥१३॥

सभी बालिकाओंने आकर दोनों पिताजी तथा माताजीके श्रीचरण कमलोंको प्रणाम किया पुनः उनके आशीर्वाद द्वारा आनन्दको प्राप्त हुई वे अपने-अपने आसनों पर विराज गयीं तथा श्रीचन्द्रकलाजी आदि विशाललोचना पुत्रियाँ उन दोनोंसे अत्यन्त आदर पाकर प्रसन्नमुख हो, पङ्क्ति बाँधकर सामने विराज गयीं ॥१४॥१५॥

पुत्रियोंको सुख पूर्वक बैठी देखकर भूमिपति (श्रीमिथिलेशजी-महाराज) उन सभीके प्रति बड़ी कोमल वाणीसे, इस प्रकार बोले—॥१६॥

हे मृग-शिशुके समान सुन्दर विशाल चञ्चल नेत्रोंवाली पुत्रियो ! आप सभीका मङ्गल हो, मैं जो पूछ रहा हूँ, उसे सत्य-सत्य कहो; आज भगवान शिवजीके धनुषको किसने उठाया? ॥१७॥

करोडों देवता, राक्षस, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर सब मिलकर भी जिस शिव-धनुषको उठानेके लिये समर्थ नहीं हैं ॥१८॥

विश्वभारभरं तत्तु धनुरुत्थाप्य मार्जितम् । कया नु सरलीकृत्य लीलयाऽशङ्कि मे मनः ॥१९॥
जिज्ञासा महती पुत्र्यो ! मम चेतसि वर्तते । तन्निगद्य यथातथ्यं मम शङ्का निवार्यताम् ॥२०॥
कच्चित्काऽपि समायाता योषित्प्रागनुदीक्षिता । यया कौतूहलं चैतद्विहितं बुद्ध्यगोचरम् ॥२१॥
वत्से! तत् कथ्यतां मह्यं मार्जयन्त्यां ननु त्वयि । मिलिता त्वामुपागम्य काऽपि पूर्वमलक्षिता॥२२॥
नाद्भुतं विद्यते कार्यं महाशक्तिभिरेव तत् । मुहुरागमनं तासां तासु काऽपि धृताकृतिः ॥२३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति पृष्टा नरेन्द्रेण जनकेन महात्मना । बभूव चारुशीला तत्संविवक्षुः शुभानना ॥२४॥
हे पितस्त्विति सम्बोध्य वीक्ष्य श्रीमुखपङ्कजम् । प्रणमन्ती सहर्षं तं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२५॥

श्रीचारुशीलोवाच ।

अहं चन्द्रकला चैव माण्डवी चोर्मिला तथा । श्रुतिकीर्त्तिर्वरारोहा सुभगा विश्वमोहिनी ॥२६॥

उस विश्वके बोझ-राशि-स्वरूप धनुषको खेल पूर्वक उठाकर किसने सफाई की? और किसने उसे सीधा करके मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न किया है ?॥१९॥ हे पुत्रियो! मेरे चित्तमें इस रहस्यके जाननेकी बड़ी ही इच्छा है, अत एव उसे सत्य-सत्य कहकर मेरी शङ्काको दूर करें ॥२०॥

जिसे तुम लोगोंने कभी पूर्वमें न देखा हो क्या ऐसी कोई स्त्री तो उस समय नहीं आईथी,? जिसने बुद्धिसे परे यह आश्चर्यमयी घटना घटित की हो ॥२१॥ हे वत्से श्रीललीजी ! मुझे बताइये, जिस समय आप धनुष भूमिकी सफाई कर रही थीं उस समय पहिलेकी न देखी (अपरिचित) कोई स्त्री तो आपके पास आकर नहीं मिली थी ? ॥२२॥

यदि कोई अपरिचित स्त्री उस समय आई हो तो निःसन्देह उसीने धनुषको उठाने और सीधा करनेका कार्य किया होगा, तब तो कोई विशेष आश्चर्यकी बात ही नहीं, क्योंकि आपके दर्शनोंके लिये रमा, उमा ब्रह्माणी आदि महाशक्तियों का शुभागमन बाम्बार ही होता रहता है, हो सकता है उन्हीं में से कोई महाशक्ति उस (स्त्री) रूपमें आकर आपकी सहायता की हो । उन लोगोंके लिये यह कोई असम्भव बात नहीं है और यदि उनमेंसे कोई नहीं आई हैं, तब तो आश्चर्य की कमी ही क्या ? ॥२३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! महात्मा, पिता राजा श्रीजनकजी महाराजके इस प्रकार पूछने पर मनोहर मुखवाली श्रीचारुशीलाजीने उस रहस्यको, पूर्णतया कहनेकी इच्छाकी ॥२४॥

हे पिताजो! इस प्रकार सम्बोधित करके भी श्रीललीजीका बिना रुख (सङ्केत) प्राप्त किये उसे कहना अनुचित मानकर उनके श्रीमुखारविन्दको देखा, पुनः उनका सङ्केत समझकर प्रणाम करती हुई हर्ष पूर्वक वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया ॥२५॥

श्रीचारुशीलाजी बोलीं:-हे श्रीपिताजी! मैं तथा श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीउर्मिलाजी, श्रीवरारोहाजी, श्रीसुभगाजी, श्रीविश्वमोहिनीजी ॥२६॥

लक्ष्मणा, पद्मगन्धा च हेमा चम्पकला तथा । विमला ह्लादिनी क्षेमा, रङ्गा मदनवर्द्धिनी ॥२७॥
विहारिणी सुशीलाद्या मातुरेव निदेशतः । सर्वा हर्षाकुलस्वान्ताः सङ्घीभूय च सर्वतः ॥२८॥
श्रीमतीं मैथिलीं प्राप्तास्तया साकं धनुर्गृहम् । शीलयन्त्यो यथाभावं क्षणेनैव सुशोभनम् ॥२९॥
चक्रिरे स्वागतं द्वाःस्था विधिज्ञास्तत्सुखात्मनः । अद्य राजकुमारी हि समियायेति सक्षणाः ॥३०॥
पुनः समादरेणैव द्वारपालैः सहालिभिः । लाल्यमानाऽऽलिभिर्नीता त्वियं पैनाकमन्दिरम् ॥३१॥
तत्र गत्वा विशालाक्षी तात ! सर्वाभिरावृता । सेव्यमाना पराभक्त्या छत्रव्यजनचामरैः ॥३२॥
शरदिन्दुमुखी प्रातरसमग्रविभूषणा । ददर्श शाम्भवं चापं कट्या अप्यधिकोच्छ्रितम् ॥३३॥
देवरातादिभिः सर्वैर्विदेहैः क्रमशोऽर्च्चितम् । ननाम तत्तु बिम्बोष्ठी स्निग्धकुञ्चितकुन्तला ॥३४॥
तत् किञ्चित्कालमेवं तु कौतुकासक्तमानसाः । उपर्य्यधस्तथा पार्श्वे समपश्याम हे पितः ! ॥३५॥
तदा श्रीशम्भुकोदण्डं मार्जनायोपचक्रमे । निमिवंशकुमारीयमुपर्य्यादौ ममार्ज ह ॥३६॥

श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीपद्मगन्धाजी, श्रीहेमाजी, श्रीचम्पकलाजी, श्रीविमलाजी, श्रीह्लादिनीजी, श्रीक्षेमाजी, श्रीरंगाजी, श्रीमदनवर्द्धिनीजी ॥२७॥

श्रीविहारिणीजी, श्रीसुशीलाजी, आदि सभी हर्ष पूर्ण-हृदय हो, श्रीअम्बाजीकी आज्ञा द्वारा सब ओरसे झुण्ड बनाकर ॥२८॥ श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजूके पास पहुँची, पुनः अपने-अपने भावानुसार सेवा करती हुई उनके साथ क्षणमात्रमें अत्यन्त शोभायुक्त श्रीधनुष-भवनमें पहुँच गयीं ॥२९॥ आज श्रीराजदुलारीजी पधारीं हैं, इसलिये परम-हर्षित हो द्वारपालोंने उन सुख स्वरूपा श्रीललीजीका विधिपूर्वक स्वागत किया ॥३०॥

पुनः वे इन सखियोंके सहित श्रीललीजीको पूर्ण आदर पूर्वक प्यार करते हुये शिव-धनुष-मन्दिरमें ले गये ॥३१॥

हे तात ! छत्र, पङ्खा, चवँर आदिके द्वारा बड़े ही प्रेम पूर्वक सेवित होती, सभी सखी बहिनोंसे घिरी हुई विशाल-लोचना श्रीललीजी वहाँ पहुँच कर ॥३२॥

प्रातःकालीन थोड़े भूषणोंको धारण की हुईं शरद् ऋतुके पूर्ण-चन्द्रके सदृश मुखवाली श्रीललीजीने, अपनी कमरसे भी अधिक ऊँचे(मोटे)शिव-धनुषका दर्शन किया ॥३३॥ पुनः बिम्बा-फलके समान लाल ओष्ठ व चिकने घुँघुराले केश वाली श्रीललीजीने श्रीदेवरातजी महाराज आदि सभी मिथिलानरेशों द्वारा क्रमशः पूजन किये हुये उस धनुषको प्रणाम किया ॥३४॥

हे श्रीपिताजी ! धनुषके दर्शनोंसे हम लोगोंका चित्त आश्चर्यमें डूब गया, अत एव कुछ देर तक हम सभी उसके ऊपर, नीचे, इधर-उधर (दहिनें बायें) भागको देखने लगीं ॥३५॥

उसी समय निमिवंशकुमारी इन श्रीललीजीने श्रीशिवजीके धनुषको स्वच्छ करनेके लिये तत्पर होकर, पहिले उसके ऊपरके भागकी शुद्धि (सफाई) की ॥३६॥

पिनाकाधोधरां चापि करपद्मेन मैथिली । मार्जनाय मनश्चक्रे समवेक्ष्य पुनः पुनः ॥३७॥
कथमुत्थापितं क्षिप्रमनायासेन तद्धनुः । अनया तन्न मे दृष्टं यद्दृष्टं तु वदाम्यहम् ॥३८॥
गौरवे शैलसङ्काशं विशालं चाद्भुतं परम् । अस्या नवीननलिनवामहस्ते स्थितं धनुः ॥३९॥
दृष्ट्वा तन्महती शङ्का संजाता हृदयेषु नः । रुष्टमेतद्धतोत्थाय ह्लादिनीं नो जिघांसति ॥४०॥
तस्माद्यदा हि संत्रातुं निर्दोषां वयमुद्यताः । वाष्पनेत्राश्च तातैनां तर्हि कर्णसुखावहम् ॥४१॥
जय श्रीमैथिलीतीमं पुष्पवृष्टिसमन्वितम् । सुघोषं नाकिनां श्रुत्वा मनाग्धैर्य्यं वयं गताः ॥४२॥
एतस्मिन्नेव काले हि चापाधः पृथिवीं मुदा । दक्षहस्तेन संमार्ज्य त्वियं वेदीमलेपयत् ॥४३॥
जलं चन्द्रकला दातुं लेपनीयं तथोर्मिला । क्षेपणीयमपाकर्तुं माण्डवी तत्पराऽभवत् ॥४४॥
पश्यन्तीषु च सर्वासु तदेषा पुनरेव तत् । ऋजु संस्थापयामास मृणालमिव लीलया ॥४५॥

पुनः श्रीललीजीने धनुषके नीचेकी भूमिको बारम्बार भली प्रकारसे देखकर उसे अपने कर-कमल द्वारा स्वच्छ करनेकी इच्छा की ॥३७॥

परन्तु इन्होंने शीघ्रतापूर्वक किस प्रकार विना किसी प्रकारका परिश्रम किये ही (सुखपूर्वक) उस धनुषको, उठा लिया? यह मैं नहीं देख सकी, और जो देख सकी, वह कह रही हूँ ॥३८॥

पहाड़के समान भारी परम आश्चर्य मय वह विशाल धनुष इन श्रीललीजूके नवीन कमलके समान सुन्दर सुकोमल बायें हाथ पर बिराजमान है ॥३९॥

ऐसा देखकर हम लोगोंके हृदयमें बड़ी भारी शङ्का उत्पन्न हो गयी, कि ये धनुषदेवता मानों रुष्ट हो गये हैं, इसी लिये अपनी शक्तिसे उठकर हाय हमारी आह्लादिनी श्रीललीजीको अपने बोझसे दबाकर मार देना चाहते हैं ॥४०॥

अतः नेत्रोंमें जल भरे हुये हम सभी, अपराधरहित इन श्रीललीजीको बचानेके लिये जिस समय उद्यत हुईं, उसी समय श्रवणोंको सुख देनेवाला पुष्प वर्षा पूर्वक "हे श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजू ! आपकी जय हो–जय हो–जय हो" देव-वृन्दोंका यह सुन्दर जयकार घोष सुनकर हम लोगोंको कुछ धैर्य प्राप्त हुआ ॥४१॥४२॥

इसी बीचमें श्रीललीजीने अपने दाहिने कर कमलसे धनुष के नीचेकी भूमिको लीपकर, वेदी लीपने लगीं ॥४३॥

उस समय श्रीचन्द्रकलाजी जल तथा श्रीउर्मिलाजी चन्दनादि देनेमें तथा फेंकने योग्य (अनावश्यक) नीचे दबे हुए पत्र पुष्पादिकों को हटानेमें श्रीमाण्डवीजी तत्पर हुईं॥४४॥

पुनः हम सभीके देखते हुये ही इन श्रीललीजीने खेल पूर्वक कमल-नालके समान उस(धनुष) को भली भाँति सीधे रूपमें स्थापित कर दिया ॥४५॥

न काऽप्युत्थापने चक्रे साहाय्यं च मृगीदृशः। यदि मे नैव विश्वासो ह्यन्याश्च प्रष्टुमर्हसि ॥४६॥

हे श्रीपिताजी! उपर्युक्त बहिनोंने जल आदि देनेमें तो इन श्रीमृगलोचनाजीकी कुछ सहायता अवश्यकी थी, परन्तु धनुषको उठानेमें किसीने भी कुछ सहायता नहीं की। यदि आपको मेरा विश्वास न हो तो अन्योंसे पूछ सकते हैं ॥४६॥

इति चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

—❀❀❀—

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।

साढ़े चार वर्षकी हमारी श्रीललीजीने ही धनुष उठाया जानकर श्रीजनकजी महाराजकी भीषण प्रतिज्ञा।

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवमुक्तो महाराजो निमिवंशप्रभाकरः। अन्वयुङ्क्तादराच्छ्लक्ष्णं सर्वाः प्रति विलोक्य च ॥१॥

श्रीविदेह उवाच।

पुत्र्यः ! श्रुतं मयेदानीं चारुशीलासमीरितम्। यूयं वदत यज्ज्ञातं नानृतं च ममाज्ञया ॥२॥

तन्निशम्य पितुर्वाक्यं प्राहुश्चन्द्रकलादयः। सत्यमेव हि तत्तात ! चारुशीला बभाण यत् ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

अन्वमोदि तु सर्वाभिश्चारुशीलावचो नृपः। यदा प्रेष्ठ ! तदोत्थाय व्याजहार गिरं प्रियाम् ॥४॥

श्रीविदेह उवाच।

लीलयोत्थापितं चापं सव्येनाम्बुजपाणिना। अनयाऽपञ्चवार्षिक्या ह्याश्चर्यं किमतः परम् ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीचारुशीलाजीके इस प्रकार वर्णन करनेपर निमिवंशको सूर्यके सदृश प्रकाशित करनेवाले, महाराज श्रीमिथिलेशजीने सबकी ओर आदरपूर्वक देखकर कोमल वाणीमें पूछा-हे पुत्रियो ! इस समय चारुशीलाजीने जो कहा उसे मैंने श्रवण किया, अब आप लोग जो जानती हों, मेरी आज्ञासे उसे सत्य-सत्य कहो ॥१॥२॥

पिताजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीचन्द्रकलाजी आदि सभी पुत्रियाँ बोलीं:-हे तात ! श्रीचारुशीलाजीने जो कहा है, वही सत्य है ॥३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! जब सभी पुत्रियोंने श्रीचारुशीलाजीके वचनोंका अनुमोदन किया, तब श्रीपिताजी उठकर श्रीअम्बाजीसे बोले-हे प्रिये! श्रीललीजी अभी पाँच वर्षकी भी नहीं हुई हैं, इसी अवस्थामें इन्होंने अपने कमलके समान कोमल बायें हाथसे खेलपूर्वक श्रीशिवजीके धनुषको उठा लिया है, भला इससे बढ़कर और आश्चर्य ही क्या होगा ? ॥४॥५॥

शारीरसौकुमार्यञ्च यस्याः प्रेक्ष्य प्रियेऽतुलम् । बिभेति पादकमले संस्पर्ष्टुं सुकुमारता ॥६॥
पादन्यासप्रवृत्तायां काठिन्यक्लेशसाध्वसात् । यस्यां वज्रमयी भूमिर्नवनीतायते भृशम् ॥७॥
चन्द्रायते दिवानाथो वह्निर्वा शीतलायते । उच्छ्रितं निम्नतां याति कुटिलं सरलायते ॥८॥
सर्वेषां विपरीतानि यानि सर्वाणि बल्लभे । मार्दवं प्रेक्ष्य वै यस्या ब्रजन्त्येवानुकूलताम् ॥९॥
अत्यन्तकोमलौ स्निग्धौ नागपोतकरोपमौ । परिभूतारविन्दाभौ यस्या हन्त लघू करौ ॥१०॥
मुक्तायुक्तशिरोभागशतपत्रदलोपमैः । मृद्वङ्गुल्यः सुशोभाढ्यै र्नखैरत्यन्तशोभनाः ॥११॥
पादौ सुशोभनौ यस्याः पद्माभौ तूलकोमलौ । सुस्निग्धौ हस्तसंस्पर्शाक्षमौ ह्रस्वौ मनोहरौ ॥१२॥
मुखं चन्द्रप्रतीकाशं नीलेन्दीवरलोचने । विम्बाधरः सुविम्बोष्ठं कपोलौ दर्पणोपमौ ॥१३॥
स्वर्णशुक्तिसमौ कर्णौ भ्रमरारालकुन्तलाः । कम्बुग्रीवा सुनासा च चिबुकं चारुदर्शनम् ॥१४॥

हे प्रिये ! जिनके शरीरकी उपमारहित कोमलताको देखकर श्रीकोमलता देवीजी भी श्रीचरणकमलोंका स्पर्श करनेमें भय मानती हैं कि कहीं मेरे कठोर हाथोंका स्पर्श श्रीललीजीको कष्ट-प्रद न होजाय ॥६॥ जिस समय श्रीललीजी अपने श्रीचरणकमलोंको पृथिवीपर रखनेके लिये तैयार होती हैं उस समय अपनी कठोरताके कारण श्रीचरणोंमें कष्ट हो जानेके भयसे हमारे यहाँकी वज्र मणिमयी भूमिभी मक्खनके समान अत्यन्त कोमल हो जाती है ॥७॥

जिनके लिये भगवान् सूर्यभी चन्द्रमाके समान शीतल और अग्नि पालाके समान ठण्ढी हो जाती है । ऊँचे वृक्षादि आवश्यकतानुसार नीचे हो जाते हैं तथा सभी कुटिल स्वभाव वाले जीव भी अनुकूल बन जाते हैं ॥८॥ हे प्रिये ! कहाँ तक कहें ? जो सभीके लिये प्रायः विपरीत माने गये हैं वे भी जिनकी कोमलताको देखकर अनुकूल हो जाते हैं ॥९॥

हाथीके शिशुकी सूंढ़के समान गोल और क्रमशः पतले जिनके अत्यन्त कोमल तथा चिकने कमलकी शोभाको लज्जित करने वाले छोटे–छोटे हाथ हैं ॥१०॥

सिरके भागमें मोतियोंसे अलङ्कृत कमल-दलोंके सदृश नखोंसे सुशोभित कोमल अङ्गुलियाँ हैं, एवं कमलके समान सुन्दर सुगन्धमय रूईके सदृश सुकोमल अत्यन्त चिकने, हाथ का स्पर्श भी न सहन करने योग्य, जिनके छोटे–छोटेसे मनोहर श्रीचरण हैं ॥११॥१२॥

पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लाद-वर्द्धक, जिनका मनोहर प्रकाशमय श्रीमुखारविन्द हैं, नीले कमलके समान सुन्दर विशाल दोनों नेत्र, विम्बाफलके सदृश लाल अधर व ओष्ठ तथा शीशाके समान छाया ग्रहण करने वाले जिनके दोनों कपोल (गाल) हैं ॥१३॥

सोनेकी सीपीके समान जिनके सुन्दर कानोंकी बनावट है, भौरोंके सदृश काले घुंघुराले केश हैं, शङ्खके सदृश कण्ठ व सुग्गाकी चोंचके समान मनोहर दर्शनों वाली, जिनकी नासिका है ॥१४॥

सर्वसच्चिह्नसम्पन्नं विशालं सुष्ठुमस्तकम् । सर्वचित्तहरं हास्यं कमनीयतरच्छबिः ॥१५॥
सर्वतापहरं पुण्यं परमाह्लाददायकम् । सहजैकवशीकारं मन्त्रं यस्याः सुवीक्षणम् ॥१६॥
भाषणं सूनृतं श्लक्ष्णं कोकिलानां विमोहनम् । पीयूषादधिकं मिष्टं मनोज्ञं श्रुतिपावनम् ॥१७॥
हंसमाणवकानां च शिशूनां मत्तहस्तिनाम् । गमनं शोभनं यस्याः सुगतिस्मयवारणम् ॥१८॥
सेयं प्रतप्तहेमाङ्गी मम प्राणाधिकप्रिया । विशुद्धहृदयानन्दसुधासिन्धूडुपानना ॥१९॥
अभूमितलसञ्चारा त्वदुत्सङ्गविहारिणी । दर्पणाङ्गी सुविम्बोष्ठी सर्वानन्दप्रवर्षिणी ॥२०॥
हस्तेनैकेन वामेन लोकत्रयभराधिकम् । धनुरुत्थाप्य दक्षेण सलीलं चक्र ईप्सितम् ॥२१॥
आधुनिकं रहस्यं हि चिन्तया वृणुते मनः । अनया सदृशो लोके वरः कुत्र मिलिष्यति ॥२२॥
स रूपगुणवीर्येषु कन्याया अधिको मतः । नाधिकश्चेत्समोऽपि स्यादभावे नोनको वरः ॥२३॥

सभी शुभसूचक (अच्छे) चिह्नोंसे युक्त, जिनका विशाल व मनोहर मस्तक है तथा जिनकी मुस्कान सभीके चित्तको हरण करनेवाली एवं छवि अत्यन्त ही सुन्दर है ॥१५॥

सभी दैहिक, दैविक, भौतिक तापोंको हरण करनेवाली, आह्लाद प्रदायक, सभी स्त्री-पुरुष, नर, मुनि, हंस-परम हंस, सुर, असुरों तथा जड़-चेतनोंको वशमें करनेका सर्वोपरि मन्त्र, जिनकी सुन्दर चितवन है ॥१६॥ जिनकी सत्य एवं कोमल वाणी कोयलोंकोभी मुग्ध करनेवाली, अमृतसे भी अधिक मीठी व श्रवणों को पवित्र करने वाली है ॥१७॥

जिनकी सुन्दर चाल, हंसके बालकों व मतवाले हाथियोंके बच्चोंकी सुन्दर चालके अभिमान को दूर करने वाली है ॥१८॥ तपाये सुवर्णके समान गौर जिनके अङ्ग हैं, जो मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हैं, तथा विशुद्ध हृदय वालोंके आनन्द रूपो अमृत सागरको चन्द्रमाके समान लहराने वाला जिनका श्रीमुखारविन्द है ॥१९॥

जो भूमि तलपर चरण न रखकर आपकी गोदमें बिहार करने वाली हैं, दर्पण (शीशा) के सदृश प्रतिबिम्ब (छाया) ग्रहण करने वाले जिनके सभी अङ्ग, सुन्दर विम्बाफलके सदृश लाल ओष्ठ हैं एवं जो सभीके आनन्दकी वर्षा करने वाली हैं ॥२०॥

ऐसी उन श्रीललीजीने तीनों लोकोंके भारसे भी अधिक बोझवाले श्रीशिवधनुषको एकही, वह भी बायें हाथसे, खेलपूर्वक उठाकर दाहिने हाथके द्वारा उसके नीचेकी भूमि लीपने-पोतने आदि का कार्य इच्छानुसार सम्पन्न किया है ॥२१॥

हे प्रियाजू ! आजका यह चमत्कार मेरे हृदयको इस प्रकारकी चिन्तासे युक्त कर रहा है कि ऐसी सामर्थ्य सम्पन्ना श्रीललीजूके योग्य वर, कहाँ मिलेगा ? ॥२२॥ क्योंकि वर, कन्याकी अपेक्षा रूप गुण पराक्रममें अधिक ही उत्तम माना गया है, यदि कदाचित् अधिक न भी मिल सके तो अभावमें, समान अवश्य ही होना चाहिये, कन्यासे न्यून तो किसी प्रकार भी नहीं होना चाहिये, सो इनके समान भी कोई कहीं नहीं दीखता, तब अधिक की बात ही क्या?॥२३॥

अत एव प्रिये ! यश्च लोकत्रयनिवासिनाम् । बलीयांस्त्र्यम्बकस्येदं धनुर्भङ्गं करिष्यति ॥२४॥
सुतां मेऽयोनिजां सीतां सत्रैलोक्यजयश्रिया । इमां सर्वगुणोपेतां स एव वरयिष्यति ॥२५॥
नेयं प्रकृतिसम्भूता सच्चिदानन्दविग्रहा । सर्वशक्तीश्वरी राजन् सर्वलोकमहेश्वरी ॥२६॥
इति सत्यं वचो दृष्टं सूनोः पद्मभवस्य वै । अज्ञानादेव वै चास्यां पुत्रीभावो मया कृतः ॥२७॥
हन्त कस्येह पुत्रीयं जननी सर्वदेहिनाम् । क्षम्यतामपराधो मे कृपयाऽतद्विदः कृतः ॥२८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वा पादयोरस्या निपपात सुविह्वलः । श्रीमान्सीरध्वजो राजा महायोगीन्द्रसत्तमः ॥२९॥
समुत्पत्याङ्कतो मातुरियं शम्पेव तत्क्षणम् । भूपमुत्थापयामास कथयित्वा पितस्त्विति ॥३०॥
करपल्लवसंस्पर्शाच्छ्रवणात्तद्वचोऽथ सः । लब्धधैर्यः समुत्तस्थौ वाष्पाकुलितलोचनः ॥३१॥

इसलिये हे प्रिये! तीनों लोक निवासियोंमें जो कोई बलशाली भगवान् त्रिलोचन (शिवजी) के इस धनुषको तोड़ेगा ॥२४॥

वह तीनों लोकोंकी विजय लक्ष्मीके सहित स्वयं प्रकट हुई, सर्व गुण सम्पन्ना, सर्व दु:ख शोकोंको हरनेवाली हमारी इन श्रीललीजीको वरण करेगा, अन्य नहीं ॥२५॥

हे राजन् ! ये श्रीललीजी आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी इन पाँच तत्त्व व सत्व, रज, तम तीन गुण वाली प्रकृतिसे उत्पन्न नहीं है, बल्कि अविद्या जनित सभी विकारोंसे रहित, सदा सदाके लिये एक रस रहनेवाली चैतन्य, आनन्दघनमय शरीर वाली हैं, सभी शक्तियाँ इनके अधीन हैं, ये सभी लोकोंकी सर्वोपरि शासन करने वाली हैं ॥२६॥

हे प्रिये ! श्रीमन्नारायण भगवान्के नाभि-कमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीके पुत्र श्रीनारदजीकी कही हुई इस बातको आज मैंने भली प्रकार सत्य देखा, अपनी नासमझीसे ही मैंने श्रीललीजी में पुत्री–भाव कर रखा है, नहीं तो ये सभी प्राणी मात्रकी माता, इस त्रिलोकीमें भला किसकी पुत्री हो सकती हैं ? इसलिये इस रहस्यका ज्ञान न रखकर इनके प्रति जो मैंने पुत्री-भाव करनेका अपराध किया है उसे ये श्रीजगज्जननीजी क्षमा करनेकी कृपा करें ॥२७॥२८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीसे कहकर योगियोंमें परम श्रेष्ठ पिता श्रीसीरध्वजजी महाराज श्रीललीजूके श्रीचरणकमलोंमें पड़ गये ॥२९॥

उसी समय श्रीअम्बाजीकी गोदसे बिजलीके समान उछलकर श्रीललीजीने, हे पिताजी ! पिताजी ! कहकर उन्हें उठा लिया ॥३०॥

श्रीपिताजी, श्रीललीजूके कर-कमलके स्पर्श तथा उनके कोकिलके समान मनोहर शब्द के श्रवणसे धैर्यको प्राप्त हो, नेत्रोंसे आँसुओंको बहाते हुये खड़े हो गये ॥३१॥

उपतस्थे सुनयना तत्राभ्येत्य कृताञ्जलिः । प्रणम्य सादरं राज्ञी साश्रुपङ्कजलोचना ॥३२॥
तयोः प्रेमदशां दृष्ट्वा करुणावरुणालया । विस्मेरेन्दुमुखी वाचमुवाच कोकिलस्वना ॥३३॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

हे तात! हेऽम्ब भवथोऽद्य किमर्थमेव संविह्वलौ ननु युवां मयि संस्थितायाम् ।
पुत्रीं विचार्य युवयोरिह मां च सर्वे त्यक्त्वा स्वभावमनुकूलया भजन्ति ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतावदेव वचनं विपुलार्थयुक्तं वागीश्वरीमहितयुग्मपदाब्जरेणुः ।
सम्भाष्य चन्द्रवदना स्मितपूर्ववाणी ह्यैश्वर्यभावमहरद्धृदयस्थमाशु ॥३५॥
माधुर्यभाव उदिते सति भूमिनाथः क्रोडे निधाय सुमुखीमविशत्स्वपीठम् ।
सा वै पितुर्ललितबालविहारमङ्के कृत्वा क्षणं स्वजननीं पुनराह मिष्टम् ॥३६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

मातर्विलम्ब इह वै क्रियते किमर्थं क्षुत्संयुताऽस्मि गमनाय मतिं कुरुष्व ।
क्रीडातुरेण मनसा न हि चास्मि पूर्वं पूर्णाशनं कृतवती भगिनीभिरम्ब! ॥३७॥

तब प्रेमाश्रु युक्त नेत्रवाली श्रीसुनयनाअम्बाजी भी, सिंहासनसे नीचे उतरकर श्रीललीजीको आदर-पूर्वक प्रणाम करके, हाथ जोड़कर श्रीमिथिलेशजी महाराजके समीपमें खड़ी हो गयीं ॥३२॥

हे प्यारे ! श्रीपिताजी व श्रीअम्बाजी दोनोंकी उस प्रेम दशाको देखकर, कोयलके समान सुरीले शब्द व मुस्कान युक्त चन्द्रमाके समान आह्लादकारी प्रकाशमान मुखवाली करुणा सागरा श्रीललीजी बोलीं ॥३३॥

हे श्रीपिताजी ! हे श्रीमाताजी ! आप लोग मेरे सामने रहते हुये इस भाँति क्यों विह्वल हो रहे हैं । मुझे आपकी पुत्री विचार कर सभी लता वृक्षादिक अपने स्वभावका नियम छोड़कर मेरी अनुकूलता ग्रहण कर लेते हैं ॥३४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! जिनके श्रीचरण-कमलकी धूलीका श्रीसरस्वतीजी पूजन करती हैं, वे पूर्णचन्द्रमाके समान आह्लाद-वर्द्धक श्रीमुखकमल तथा मुस्कान पूर्वक बोलने वाली श्रीललीजीने उनसे बहुत अर्थ युक्त वचन बोलकर दोनोंके हृदयमें स्थिर हुये ऐश्वर्य भावको तुरन्त हर लिया ॥३५॥ ऐश्वर्य भावके हरण करते ही माधुर्य-भावका उदय हुआ, अत एव पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराज, उन सुमुखी श्रीललीजीको गोदमें लेकर सिंहासन पर विराजमान हुये, तब श्रीललीजी अपने पिताजीकी गोदमें मनोहर बाल-लीला क्षण-मात्र करके, अपनी श्रीअम्बाजीसे यह मधुर वचन बोलीं ॥३६॥

हे श्रीअम्बाजी! यहाँ विलम्ब क्यों कर रही हैं? मुझे भूख लगी है, क्योंकि मेरा चित्ततो खेल में लगा हुआ था अतः अपनी बहिनोंके सहित उस समय मैं पूर्ण भोजन नहीं कर सकी थी इसलिए अब शीघ्र चलनेका विचार करें ॥३७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इति गदितं वचनं शुभं सुमुख्याः श्रुतिसुखमिन्दुमुखीमुखान्मृदूक्तम् ।
निजभवनं त्वरितं निशम्य पत्या निखिलसुतासहिता गृहं प्रतस्थे ॥३८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीसुमुखीजूके चन्द्रमा के समान मुखारविन्दसे इस मङ्गलमय वचनको श्रवण करके पतिदेवके सहित, तथा सभी पुत्रियों के साथ श्रीसुनयना अम्बाजी अपने भवनको पधारीं ॥३८॥

इति पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

इति मासपारायणे एकविंशतितमो विश्रामः ॥२१॥

— ❀❀❀ —

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

प्राकृत शिशु रूपधारी सनकादिकों का नारदजी सहित आगमन तथा अभीष्ट दायिनी श्रीकिशोरीजीकी गूढ़–स्तुति ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

कदाचिदम्बा निजकिङ्करीगणैः संसेव्यमाना मिथिलाधिपेश्वरी ।
स्नातुं गता श्रीकमलां सरिद्वरां श्रुत्वाऽनुजग्मुः क्षितिपानुजस्त्रियः ॥१॥
श्रीरत्नगर्भातनयाजनन्या सस्नुः समं श्रीकमलां प्रविश्य ।
सर्वा भगिन्योऽपि धरादुहित्रा मुदा रमन्त्यः प्रिय ! वै ममज्जुः ॥२॥
पीतारुणश्वेतसुनीलवर्णैःसरोरुहैस्तां परिशोभमानाम् ।
नरेन्द्रपुत्र्याऽप्यवगाहमानां प्रपश्यतां नेत्रयुगं कृतार्थम् ॥३॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! किसी समय श्रीसुनयनाअम्बाजी अपनी सखी वृन्दांसे सेवित, सभी नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीकमलाजीमें स्नान करनेके लिये पधारीं, यह सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी रानियाँ भी उनके पीछे लगीं । वहाँ पहुँचकर वे सभी रानियाँ श्रीअवनिकुमारीजूकीअम्बाजीके सहित श्रीकमलाजीमें प्रवेश करके स्नान करने लगीं, इधर आनन्द-पूर्वक क्रीडा करती हुई सभी बहिनोंने भी श्रीललीजीके साथ श्रीकमलाजीमें जाकर स्नान किया ॥१॥२॥

श्रीललीजूके स्नान करते समय पीले, लाल, श्वेत, नीलवर्णके कमलोंसे अत्यन्त शोभायमान श्रीकमलाजीका जिन्होंने दर्शन प्राप्त किया उनके दोनों ही नेत्र कृतार्थ हो गये ॥३॥

देवर्षिणा ब्रह्मसुताः समेताः श्रीमैथिलीदर्शनलब्धिकामाः ।
तत्रायुः श्रीसनकादयोऽपि प्राणेश ! भक्त्या पुलकायमानाः ॥४॥
तदा तटोपस्थविशालमन्दिरे समं दुहित्रा सुविराजमानया ।
राज्ञ्या ह्यवलोक्यन्त विरिञ्चिसूनवो मनोहरा दर्शनलोलुपेक्षणाः ॥५॥
आहूय भक्त्या महताऽऽदरेण तानपृच्छदानम्य समुज्झितासना ।
के यूयमाख्यात महर्षिपुत्रका! हितं हि वः किं करवाणि चेप्सितम् ॥६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

शेकुर्न वक्तुं परमानुरागिणः श्रीमैथिलीपादविलीनमानसाः ।
एवं समुक्ता अपि ते यदादरात् किञ्चिद्गिरा संयतपाणिपल्लवाः ॥७॥
उपेत्य तानम्बुजपत्रलोचना तदा महाराजसुता मुदाऽन्विता ।
कृतार्थयन्ती स्मितपूर्वया गिरा जगाविदं मातरमित्युदारधीः ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

एते सुशीला मृदुलाः सुबालकाः प्रेमाप्लुताक्षाः कमनीयदर्शनाः ।
संतर्पणीया ज्वलनत्विषोऽधुना सुधाशनैः सादरमम्ब ! ते नमः ॥९॥

उधर श्रीब्रह्माजीके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये चारो भाई श्रीनारदजीके सहित श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके दर्शनोंकी प्राप्ति—कामनासे पुलकायमान होते हुये वहाँ प्रेम-पूर्वक आगये ॥४॥

उस समय श्रीकमलाजीके किनारे पर सुशोभित विशाल मन्दिरमें, श्रीललीजूके सहित विराजी हुई श्रीसुनयना अम्बाजीने, दर्शन लोभी नेत्रोंवाले ब्रह्माजीके उन मनोहर सनकादिक पुत्रोंको देखा ॥५॥ पुनः उन्हें बुलाकर अपना आसन छोड़कर बड़े आदर तथा प्रेम-पूर्वक प्रणाम करके पूछने लगीं:—हे महर्षिपुत्रो ! बतलाइये—आप लोग कौन हैं ? और मैं आप लोगों का क्या अभीष्ट हित करूँ ? ॥६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं :—हे प्यारे! आदर-पूर्वक पूछने पर भी, श्रीललीजूके श्रीचरण-कमलों में मन लीन हो जानेके कारण, कमलके समान कोमल दोनों हाथोंको जोड़े हुये वे परम अनुरागी चारों भाई, जब वाणीसे कुछ भी बोलनेको समर्थ न हुये तब उदारबुद्धि, कमल-दलके समान विशाल नेत्र वाली ये श्रीललीजी आनन्द-पूर्वक उनके समीपमें जाकर, उन्हें कृतार्थ करती हुई अपनी मुस्कान पूर्वक वाणी द्वारा श्रीअम्बाजीसे बोलीं ॥७॥८॥

हे श्रीअम्बाजो ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ. ये चारों भाई सुन्दर स्वभाव, कोमल शरीर, सुन्दर दर्शन, प्रेम भरे नेत्र व अग्निके सदृश कान्तिसे युक्त हैं, इस समय इनको अमृत मय भोजनके द्वारा आदर-पूर्वक तृप्त करना चाहिये ॥९॥

श्रीसुनयनोवाच ।

यथेप्सितं नन्दय चारुदर्शनान् वत्से ! यदृच्छोपगतान्प्रियातिथीन् ।
एतांश्च बालान्महनीयशेमुषि ! स्पृहाममापीत्यनघे! विभाव्यताम् ॥१०॥

इत्येवमुक्ता मृदुले शुभासने निवेश्य दोर्भ्यां नतचारुकन्धरान् ।
भोज्यानि तेभ्यो विविधानि भक्तितः सौवर्णपात्रेषु धृतानि साऽदिशत् ॥११॥

तस्याः समालोक्य कृपामपीदृशीं गता विदेहत्वमरं कुमारकाः ।
उद्बोधिता मैथिलराजकन्यया राज्ञीं निबद्धाञ्जलयो मुदाऽब्रुवन् ॥१२॥

कुमारा ऊचुः ।

अनुग्रहोऽस्मासु कृतस्त्वया महान् बालेषु मातस्त्वयि नो तदद्भुतम् ।
असङ्ख्यविश्वालयलोकमातृसूर्यतस्त्वमेव प्रथितोरुवत्सले ! ॥१३॥

कृपा विधेया त्वधुना त्वयाऽपि सा सत्कर्तुमिच्छा यदि ते प्रवर्तते ।
इयं कृपामूर्त्तिरमोघदर्शना प्रपश्यतां नः कुरुताद्यथाऽशनम् ॥१४॥

नैवान्यथा भोजनमीप्सितं हि नः सत्यं वदामो जननीति ते वचः ।
यथेप्सितं कार्यमतोऽम्ब! शोभनं नमोऽस्तु ते मर्षय बालधृष्टताम् ॥१५॥

श्रीललीजीकी इस प्रार्थना को सुनकर श्रीअम्बाजी बोलीं—हे प्रशंसनीय बुद्धि वाली, समस्त दोष रहिते श्रीललीजी ! दैव-योगसे पधारे हुये सुन्दर दर्शन, इन प्रिय-अतिथि स्वरूप बालकों को आप, अपनी इच्छानुसार सुखी करें, यही मेरी इच्छा है ऐसा जानिये ॥१०॥

श्रीअम्बाजीके ऐसा कहने पर श्रीललीजीने कन्धा झुकाये हुये उन चारो भाइयोंको दोनों हाथों से सुन्दर सुकोमल आसन पर विराजमान करके सोनेके पात्रोंमें सजाये हुये अनेक प्रकारके भोजनोंको उन्हें प्रेमपूर्वक प्रदान किया ॥११॥ श्रीललीजूकी ऐसी महती कृपा देखकर ब्रह्माजी के चारो कुमार देहानुसन्धान शून्य अवस्थाको प्राप्त हो गये, तब श्रीमिथिलेशदुलारीजूके साव-धान करने पर वे हाथ जोड़कर श्रीअम्बाजीसे हर्ष-पूर्वक बोले—॥१२॥

हे महावात्सल्यमयी-श्रीअम्बाजी ! आपने हम बालकोंके प्रति बड़ी दयाकी, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आप अनन्त ब्रह्माण्डोंके अम्बाजीकी भी अम्बा प्रसिद्ध हैं ॥१३॥

हे श्रीअम्बाजी! यदि हम बालकोंका सत्कार करनेकी ही आपकी इच्छा है, तो इस समय आपको हम लोगोंके प्रति वह कृपा करनी चाहिये, जिससे कभी भी जिनका दर्शन निष्फल नहीं होता वही ये कृपा-स्वरूपा, श्रीललीजी हम लोगोंके दर्शन करते हुये स्वयं भी भोजन करें ॥१४॥

हे श्रीअम्बाजी! बिना ऐसा हुये, हम लोगोंको भोजन करनेकी इच्छा नहीं है, यह हम आपसे सत्य कह रहे हैं। हे श्रीअम्बाजी ! अतः आप जैसा उचित समझें, वैसा करें हम लोग आपको नमस्कार करते हैं, आप हम बालकोंकी ढिठाई को क्षमा करेंगी ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इतीरितं बालहठं विचार्य सा निशम्य वाचं प्रणयोदितां मुदा ।
जगाद पुत्रीं क्रियतां त्वयाऽशनं समक्षमेषामभिलाषपूर्त्तये ॥१६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

एते कुमाराः सुधियोऽनुरागिणो जितेन्द्रियार्था मुनयो विभान्ति वै ।
अवश्यमेवाप्तमनोरथास्ततः कार्या ममाम्बेति विनिश्चिता मतिः ॥१७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

विराजमानाः स्मितशोभितानना निशम्य वाक्यं क्षितिपानुजस्त्रियः ।
मुदान्विताश्चन्द्रमुखीमुखोदितं तां साधु साध्वित्यखिलाः समब्रुवन् ॥१८॥

श्रीनिमिकुलाङ्गना ऊचुः ।

सुबालिका त्वं वयसाऽसि पुत्रिके! न बालिका हन्त सरस्वती तव ।
ब्रह्मादयो देववराः सुमङ्गलं कुर्वन्तु ते सर्षिमहर्षिपुङ्गवाः ॥१६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ताभिस्तदानीमभिनन्दिता सती मृदुस्वभावा मिथिलेशनन्दिनी ।
श्लिष्टा जनन्या प्रणयप्रवीणया साऽत्तुं मुदेयेष कुमारकैः सह ॥२०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! सनकादिक चारो भाइयोंकी प्रेम-पूर्वक इस प्रार्थनाको सुनकर तथा उनका बालहठ विचार करके श्रीअम्बाजी बोलीं — हे श्रीललीजी ! इन कुमारोंकी भाव-पूर्त्तिके लिये, आप इनके समक्ष भोजन कीजिये ॥१६॥

श्रीअम्बाजीकी इस आज्ञाको सुनकर श्रीललीजी बोलीं:—हे श्रीअम्बाजी ! ये कुमार सुन्दर बुद्धिवाले, अत्यन्त प्रेमी, इन्द्रियों और उनके विषयोंको जीते हुये निःसन्देह मुनि प्रतीन होते हैं, अत एव इन लोगोंके भावको अवश्य पूरा करना चाहिये, ऐसा मेरा निश्चित विचार है ॥१७॥

चन्द्रमाके समान मुखवाली श्रीललीजीके मुखसे कहे हुये इस वचनको सुनकर वहाँ पर विराजी हुई वे सभी श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी रानियाँ मुस्काती हुई, बोलीं :- हे श्रीललीजी ! आपका विचार बहुत ही उत्तम है, बहुत ही उत्तम है ॥१८॥

हे श्रीललीजी ! अवस्थासे तो आप वास्तवमें पूर्ण बालिका हैं ही, परन्तु आपकी वाणी बालकोंकी नहीं, वृद्धों जैसी है । अत एव देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीब्रह्मादि देवता व सभी श्रेष्ठ ऋषि-महर्षि आपका मङ्गल करें ॥१६॥

सभी माताओंके द्वारा इस प्रकार प्रसन्नकी हुई प्रेमके रहस्यको जानने वाली सुनयना-अम्बाजी द्वारा हृदयसे लगाई हुई, अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली इन श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीने उन कुमारोंके साथ भोजन करनेकी इच्छाकी ॥२०॥

तदैव दृष्ट्वा नलिनीदलेक्षणा माधुर्य्यसाराद्भुतदिव्यविग्रहा ।
तान् विह्वलाक्षानशनासने स्थितान् सग्रासहस्ताम्बुरुहान्दयामयी ॥२१॥
स्वोच्छिष्टमन्नं तु विधाय पात्रगं पीयूषकल्पं सकलान्तरात्मना ।
प्रादायि तेभ्योऽखिलभावविज्ञया विमूढ़कृत्येभ्य उदारशीलया ॥२२॥
कयाऽपि दृष्टं न चरित्रमद्भुतं कृतं तया पद्मपलाशनेत्रया ।
सुगन्धिमात्रेण सुताः स्वयंभुवो बभूवुराज्ञाय तदाप्तवाञ्छिताः ॥२३॥
समाशुरानन्दसुधाब्धिसंप्लुताः समीक्षमाणाश्चरणाम्बुजच्छबिम् ।
सुपुत्रिकाया मिथिलामहीशितुस्तामप्यदन्तीं मुदितां विलोक्य ते ॥२४॥

नृपाङ्गना ऊचुः ।

अहो विचित्रंसुमुखीमहत्त्वं संदृश्यते नित्यमजस्रमेव ।
त्वया तथाऽस्माभिरुदारबुद्धे ! सर्वाभिरासादितदर्शनाभिः ॥२५॥
अज्ञातदेशान्वयपितृसञ्ज्ञा एते समागत्य यदत्र बग्लाः ।
प्रदर्शितप्रेमदर्शकरूपाः सर्वप्रिया नेत्रचरा बभूवुः ॥२६॥

उसी समय सौन्दर्यकी सारभूत, आश्चर्यमयी, दिव्य-मूर्त्ति, कमलदललोचना श्रीललीजी भोजन के आसन पर विराजे हुये, हाथमें कवल लिये, विह्वल नेत्र, उन कुमारोंको देखकर दयाद्रवित हो गयीं ॥२१॥ हें! ! हम क्या करें? (अब तो हमारी प्रार्थनानुसार श्रीललीजी अपनी अम्बाजीकी आज्ञासे हमारे सम्मुख भोजन भी करनेको विराज गयीं हैं, अब बिना पाये भी निर्वाह नहीं है और सुअवसर प्राप्त होजाने पर बिना श्रीललीजीका प्रसाद प्राप्त करके भोजन करें तो कैसे ? ऐसी) चिन्तामें पड़े हुये उन चारो भाइयोंको, देखकर सभीके भावको पूर्णतया समझने वाली, उदार स्वभाव युक्ता, सभीकी आत्मामें निवास करने वाली श्रीललीजी, उनके भावको समझकर, अपने थालका अमृत समान दिव्य भोजनको प्रसादी बनाकर गुप्त रूपसे उन्हें प्रदान कर दिया ॥२२॥ परन्तु कमललोचना श्रीललीजूके किये हुये इस अद्भुत चरितको किसी ने भी नहीं देखा, केवल उन ब्रह्मपुत्रोंने विलक्षण सुगन्ध मात्रसे ही उस (लीला) को समझकर पूर्ण मनोरथ हो गये ॥२३॥ अत एव वे प्रसन्नता पूर्वक श्रीललीजीको पाती हुई देखकर आनन्द रूपी अमृत-सागरमें डूब गये, पुनः श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलकी छबिका दर्शन करते हुये प्रसाद पाने लगे ॥२४॥

रानियाँ बोलीं:-हे उदार बुद्धि वाली श्रीमहारानीजी! सुन्दर मुखी श्रीललीजीके दर्शनों को प्राप्त कर हम, आप तथा सभी, इनकी नित्य-निरन्तर कैसी विचित्र महिमा देख रही हैं? ॥२५॥

हे श्रीमहारानीजी ! क्योंकि देखिये ये बालक जिनके न देशका, न वंशका न पिताका न नामका ही पता है, वे यहाँ आकर प्रेमकी उपमा रहित अवस्थाका भली भाँति दर्शन कराके सभी के प्रिय हो गये हैं ॥२६॥

सर्वे त एते नवनीतमृद्व्याः पादाम्बुजासक्तदृशो विनीताः ।
दासत्वभावं समनुप्रपन्ना अबालबोधा धृतबालरूपाः ॥२७॥
तथेतरे सस्मितवीक्षणाया अस्याः कृपाकामनया जिताशाः ।
उच्छिष्टलुब्धाः सुविशुद्धचित्ता उपागता प्रेमपरा हि दृष्टाः ॥२८॥
प्रीयन्त इन्दुप्रतिमाननायामस्यां निरस्ताखिलरागपाशाः ।
तपस्विनो ब्रह्मपरा यतीन्द्रा महामुनीन्द्राः कवयो महान्तः ॥२६॥
देवाश्च देव्योऽखिलयोनिजाता मूर्खा बुधाः स्थावरजङ्गमाख्याः ।
प्रीतिं प्रकुर्वन्ति समस्तजीवा अस्यां यथैवात्मनि बद्धभावाः ॥३०॥
रतिर्न तेषां खलु जायतेऽस्यां येषां मनोवाग्दृगगोचरीयम् ।
आत्मद्विषां किल्बिषभूधरेन्द्रैः संपिष्यमाणाल्पधियां हि राज्ञि ! ॥३१॥

इन सभी भाइयोंने श्रीललीजीके मक्खनके समान सुकोमल श्रीचरणकमलमें अपनी दृष्टि को आसक्त कर रखा है दासभाव को ग्रहण किये हुए नम्रता युक्त, स्वरूप मात्र से ही ये केवल बालक हैं, पर हैं ज्ञान वृद्ध ॥२७॥

इसी प्रकार समस्त कामनाओं को जीतकर समस्त विकार रहित परब्रह्म परमात्मा को ही अपने चित्तमें स्थान देने वाले जो-जो महापुरुष यहाँ आए हैं, वे सभी मन्द मुस्कान युक्त चितवन वाली श्रीललीजीकी कृपा तथा इनकी उच्छिष्ट प्राप्तिके लोभी एवं इनके प्रति बहुत ही प्रेम परायण दीखने में आये हैं ॥२८॥

हे श्रीमहारानीजी ! ये ही नहीं अपितु अपने हृदयमें केवल एक ब्रह्म को ही सदा अवकाश देनेवाले महात्मा, समस्त आसक्ति रूप बन्धनसे मुक्त तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ अति श्रेष्ठ महामुनिराज कवि, ये चन्द्रमाके समान मुखारविन्दवाली इन श्रीललीजूके प्रति सबके सब प्रेम करते हैं ॥२६॥

हे श्रीमहारानीजी ! इन श्रीललीजीमें अपनी आत्माके समान भाव बांधकर देवता भी प्रेम करते हैं और देवियाँ भी, तथा स्थावर (अचल) एवं जङ्गम (चल) नामकी सभी योनियोंमें उत्पन्न हुये मूर्ख भी प्रेम करते हैं और विद्वान् भी ॥३०॥

हे श्रीमहारानीजी ! श्रीललीजीमें केवल उन्हीं अभागोंकी प्रीति नहीं होती, जिन आत्म द्रोहियोंकी ओछी बुद्धि, पापरूपी भारी पर्वतोंसे पूर्ण पिस रही है । अत एव वाणी द्वारा जिन्हें इनके नाम सङ्कीर्त्तन व यशो गानका अवसर नहीं मिलता, नेत्रोंसे दर्शन नहीं और रूप तथा महिमा मनमें भी लानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता ॥३१॥

अपुण्यशीलस्य कुतः सुबुद्धिः सद्बुद्धिहीनस्य च सत्प्रवृत्तिः।
असत्प्रवृत्तेः क्व च भूमिजायां प्रीतिर्महाराज्ञि! निबोध सत्यम् ॥३२॥
असत्प्रवृत्तेरपि रक्तिरस्यां संजायते प्रीतिरसद्धियोऽपि।
पशुद्रुहश्चापि हि जातु भक्तिर्न जायते वामविधेःकदाचित् ॥३३॥
तदश्मसारं हृदयं बतास्याः परानुरक्त्या रहितं यदेव।
संस्फोटनं तस्य वरं हि विद्मो निरर्थकं येन कृतं सुजन्म ॥३४॥

श्रीस्नेहपरोवाच।

एवं वदन्तीषु शुचिव्रतासु नरेन्द्रकान्तां निमिजाङ्गनासु।
पादाम्बुजश्रीजितकामकान्ता तांस्तर्पयामास विधेः कुमारान् ॥३५॥
पुनस्तु सा स्मरमुखी जनन्या उत्सङ्गसिंहासनमाविवेश।
निरीक्ष्य तत्पूर्णमनोभिलाषा राज्ञीं कुमाराः प्रणतास्त ऊचुः ॥३६॥

हे श्रीमहारानीजी! आप सत्य जानिये, जिसका आचरण पुण्य मय नहीं है, उसे सुन्दर (कर्त्तव्य व अकर्त्तव्यको समझने वाली)बुद्धि कहाँसे प्राप्त हो सकती है? और जिसे ऐसी विवेकवती बुद्धि ही नहीं प्राप्त है, उसे एक रस रहनेवाले सत्(ब्रह्म)के विषयमें प्रवृत्ति कहाँसे होगी? और विना ब्रह्मकी ओर प्रवृत्ति हुये, भला इन भूमिजा श्रीललीजी में प्रीति कहाँसे हो सकती है? ॥३२॥

हे श्रीमहारानीजी! असत् (ब्रह्मसे इतर जगत्) में प्रवृति वाले प्राणियोंकी भी श्रीललीजीमें समय पाकर कदाचित् आसक्ति हो सकती है, जगत्के अनित्य पदार्थों में ही बुद्धि लगानेवाले का भी संयोग पाकर कभी श्रीललीजीमें अनुराग हो सकता है, कहाँ तक कहें? पशु-हत्यारे कसाई की भी श्रीललीजीमें कभी श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है, पर जिससे विधाता विपरीत होता है, उसकी प्रीति श्रीललीजीमें कभी नहीं होती है ॥३३॥

हे श्रीमहारानीजी! जो हृदय इन श्रीललीजीकी उत्कृष्ट प्रीतिसे युक्त नहीं है, वह वज्रके समान कठोर है, जिसके कारण यह सुन्दर (मानव) जन्म ही व्यर्थ गया, उस हृदयका टुकड़े-टुकड़े हो जाना ही हम अच्छा समझती हैं ॥३४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे! इस प्रकार पवित्र ब्रतवाली उन रानियोंके श्रीअम्बाजीके प्रति कहते हुये, अपने चरण-कमलोंकी शोभासे रतिको जीतने वाली श्रीललीजीने, ब्रह्माजीके उन कुमारोंको तृप्त कर दिया पुनः मन्द-मन्द मुस्काती हुई श्रीललीजी, श्रीअम्बाजीके गोद रूपी सिंहासनमें जाकर बैठगयीं, यह देखकर वे कुमार, पूर्णमनोरथ हो प्रणाम करके श्रीसुनयना अम्बाजीसे बोले ॥३५॥३६॥

कुमारा ऊचुः ।

गुरोरधीतां स्तुतिमम्ब ! तुभ्यं संश्रावयेमाप्रतिमप्रभावे ! ।
श्राव्या हि वात्सल्यनिधेऽधुनेयं साऽपुष्टशब्दार्थयुता भवत्या ॥३७॥
यत्कृपाप्तिकामा महर्षयो योगिनश्च सिद्धास्तपस्विनः ।
अप्रमत्तचित्ता जितेन्द्रियास्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥३८॥
यत्कृपा हताशेप्सितार्थदा प्राणिनामिहैकप्रियङ्करी ।
पद्मजादिनित्याभिवाञ्छिता तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥३९॥
या त्र्यधीश्वरस्वामिनी सती वेदवन्दिता भावपण्डिता ।
स्वेच्छयात्तकान्तार्भकाकृतिस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४०॥
सर्वलोकशर्मप्रदेक्षणा पापिपावनानुत्तमस्मिता ।
मातुरङ्कगा या विराजते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४१॥
पूर्णचन्द्रवक्त्रा तडित्प्रभा पद्मलोचना कुञ्चितालका ।
सद्गतिप्रदा या ऽरुणाधरा तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४२॥

हे उपमा रहित प्रभाववाली, वात्सल्य निधे ! श्रीअम्बाजी ! अब हम आपको श्रीगुरुदेवजीसे पढ़ी हुई स्तुति सुनाते हैं, उस तोतली भाषा युक्त स्तुतिको आप श्रवण कीजिये॥३७॥

इन्द्रियोंको वशमें किये हुये, सावधान चित्त योगी, तपस्वी, सिद्ध, महर्षिवृन्द जिनकी कृपाकी प्राप्ति चाहते हैं, हमारा सिर उनके श्रीचरण-कमलोंका भौंरा बन जाय ॥३८॥

जिनकी कृपा ब्रह्मादिदेवोंको भी अभीष्ट, निराशोंके भी मनोरथको पूर्ण करने वाली तथा प्राणी मात्रकी एकही प्रिय करने वाली है, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा सिर भौंराके समान वृत्ति ग्रहण करे अर्थात् जैसे भौंरा कमल पर दौड़-दौड़कर बारम्बार बैठा करता है और अपूर्व सुखकी अनुभूति करता है, उसी प्रकार हमारा सिर बारम्बार उनके श्रीचरण-कमलों पर बैठता रहे और उसके सुकोमल स्पर्शके सुखसे मस्त रहे ॥३९॥

वेद भगवान् जिनकी वन्दना करते हैं, जो प्राणियोंके भावको पूर्णतया समझने वाली तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिकी स्वामिनी होकर भी, अपनी इच्छासे कन्याका मनोहर स्वरूप धारण किये हैं, उनके श्रीचरण-कमलमें हमारा सिर भौंरा हो जाय ॥४०॥

जिनका दर्शन सभी लोकोंको सुख देनेवाला तथा जिनकी उपमा रहित श्रेष्ठ मुस्कान पापियोंको भी पवित्र करने वाली है जो श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराज रही हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा सिर भौंरेके समान आसक्त हो जाय ॥४१॥ पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशमान आह्लादकारी जिनका श्रीमुखारविन्द है, बिजलीके सदृश प्रकाश है कमलके समान जिनके विशाल नेत्र तथा घुंघुराले केश एवं लाल-लाल अधर हैं, सन्तोंकी जो आधार-स्वरूपा हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा सिर भौंरेके समान सदैव आसक्त बना रहे ॥४२॥

मूर्द्धिन चन्द्रिकांशुः सुकुण्डले कर्णयोश्च हारा उरः स्थले ।
नूपुरौ यदम्भोजपादयोस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तु नः ॥४३॥
यत्करारविन्दे भयापहे शीतले जगत्क्षेमतत्परे ।
कङ्कणाञ्चिते सच्छिरोधृते तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तुनः ॥४४॥
यत्कृपामृते शान्तिसाधनं तत्त्वपारगैर्नैव दृश्यते ।
दृष्टिगोचरी हन्त साऽद्य नस्तत्पदाब्जभृङ्गः शिरोऽस्तुनः ॥४५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं हि ते बुद्धिमतां वरिष्ठा मातुस्तदोत्सङ्गविराजमानाम् ।
संस्तूय भक्त्या परया परीताः श्रीजानकीमिन्दुमुखीं प्रणेमुः ॥४६॥
पुनः परिक्रम्य महाश्रियं श्रियः स्वमातुरंसार्पितपाणिपल्लवाम् ।
सबाष्पपङ्केरुहपत्रलोचनाः कथञ्चिदारोप्य हृदि प्रतिस्थिरे ॥४७॥

जिनके मस्तक पर चन्द्रिका की किरणें, कानोंमें सुन्दर कुण्डल, हृदय-स्थल पर हार व श्रीचरण-कमलोंमें नूपुर सुशोभित हैं, उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा सिर भौंरेके समान लोलुप हो जाय ॥४३॥ जिनके कर-कमल सब प्रकारके भयको दूर करनेवाले, शीतल, जगत्का कल्याण करनेमें तत्पर, सन्तोंके सिर पर रखे हुये कङ्कणोंसे विभूषित हैं, उन श्रीचरण-कमलों का रसास्वादन करनेके लिये हमारा सिर सदैव भौंरेके समान लालायित बना रहे ॥४४॥

तत्त्व को भली प्रकार समझने वाले महापुरुषोंको जिनकी कृपाके विना शान्तिका कुछ और साधन दीखता ही नहीं, अहह वे ही आज मेरी दृष्टिके सामने विराज रही हैं, अतः उनके श्रीचरण-कमलोंमें हमारा सिर भौंरेके समान सदा अतृप्त ही बना रहे ॥४५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! बुद्धिमानोंमें परम श्रेष्ठ, ब्रह्माजीके पुत्र श्रीसनकादिकोंने, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजती हुई, चन्द्रमाके सदृश आह्लाद-वर्द्धक प्रकाशमान मुखवाली श्रीजनकराज-दुलारीजूकी इस प्रकार स्तुति करके परम श्रद्धा पूर्वक उन्हें प्रणाम किया ॥४६॥

पुनः परिक्रमा करके अपनी श्रीअम्बाजीके कन्धे पर कर-कमल रखी हुई, लक्ष्मीकी भी बड़ी महालक्ष्मी स्वरूपा, श्रीललीजीको अपने हृदयमें विराजमान करके, नेत्रोंमें जल भरे हुये, बड़ी कठिनतासे सनकादिक चारो भाइयोंने प्रस्थान किया ॥४७॥

इति षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

—❀❀❀—

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

सखी रूपमें सप्त पुरियों सहित श्रीमुक्तिजीको मिथिला आते देखकर
ब्रह्मपुत्रोंका निज-निज भाव निवेदन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

पथि प्रियैकां युवतीमुदीक्ष्य स्त्रीभिः समं पावनदर्शनां ताम् ।
पप्रच्छुरानम्य विधेः कुमारा का कुत्र वै गच्छसि सत्वरं त्वम् ॥१॥

युवत्युवाच ।

अहं तु मुक्तिः खलु भक्तिकिङ्करी पुर्यस्त्विमाः सप्त ममोपलब्धिदाः ।
श्रीधामसेवाभिरता निरन्तरं कामस्वरूपिण्य उदारकीर्त्तनाः ॥२॥
सा गम्यते श्रीमिथिला कुमारा मया सहैताभिरतीवशीघ्रम् ।
निषेवणार्थं श्रिय आद्यधाम्नो निवासिचित्तस्थविशुद्धभक्तेः ॥३॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युच्चरन्त्यां त्वरया गतायां मुक्तौ तदा सप्त वराङ्गनाभिः ।
श्रीनारदं प्रेमपरिप्लुताक्षः शनैरवादीत्सनको महात्मा ॥४॥

श्रीसनक उवाच ।

विरिञ्चिविष्ण्वीशशिरोऽभिवन्दितां ब्रह्मर्षिदेवर्षिवरैरुपासिताम् ।
सिद्धेन्द्रयोगीन्द्रगणैः समाकुलां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! मार्गमें स्त्रियोंसे युक्त, पवित्र दर्शनों वाली एक युवतीका दर्शन करके श्रीब्रह्माजीके उन कुमारोंने प्रणाम करके उससे पूछा—हे देवि! आप कौन हैं ? और शीघ्रता पूर्वक कहाँ जा रही हैं ? ॥१॥

वह युवती बोली:—हे पुत्रो ! मैं श्रीभक्ति महारानीकी सेविका मुक्ति हूँ और ये मेरी प्राप्ति कराने वाली श्रीकिशोरीजीके धाम श्रीमिथिलाजीकी सेवामें तत्पर रहने वाली, कीर्त्तनसे सभी मनोरथोंको प्रदान करनेमें अति उदार, इच्छानुसार स्वरूप धारण करने वाली स्त्री रूपमें मेरे साथ ये सातो पुरी हैं ॥२॥ हे कुमारो ! इन पुरियोके समेत श्रीजीके मुख्य धाम श्रीमिथिला निवासियोंके चित्तमें विराजमान विशुद्ध श्रीभक्तिमहारानीकी सेवाके लिये मैं शीघ्रता पूर्वक श्रीमिथिलाजी जा रही हूँ ॥३॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! इस प्रकार कहती हुई सातो उत्तम ललनाओंके सहित उन श्रीमुक्ति देवीके शीघ्रता पूर्वक चली जाने पर, प्रेम जल भरे नेत्र वाले, महात्मा श्रीसनक कुमारजी श्रीनारदजीके प्रति धीरेसे बोले—॥४॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जिसको सिर नवाकर प्रणाम करते हैं, तथा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, देवर्षि वृन्द जिसकी उपासना करते हैं, बड़े-बड़े सिद्ध व योगियोंसे भरी हुई श्रीजीके धामोंमें मुख्य उस श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

सप्त पुरियों समेत श्रीमिथिलाजी जाती हुई श्रीमुक्ति महारानीसे
सनकादिकों की भेंट तथा परिचय प्राप्ति ।

वैडूर्यशैलादिमनोज्ञदर्शनैः श्रीपारिजातादिवनैः समावृताम् ।
स्वधामदीप्तां कमलोपशोभितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥६॥
अप्राकृताशेषविभूतिभूषितां पुरीं चिदानन्दमयस्वरूपिणीम् ।
नित्यानवद्यां मृदुमेदिनीतलां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥७।
महोच्चसप्तावरणैः परिष्कृतां ध्वजापताकाघटदूरदर्शिताम् ।
अपारविख्यातमहायशस्ततिं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥८॥
मणिप्रवालाञ्चितकाञ्चनालयैर्भव्यैर्विशालैर्गगनस्पृशैर्युताम् ।
महारथैः सर्वत एव रक्षितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥९॥
शरीरसंस्पर्द्धिरतिस्मरव्रजैर्नारीनरैः सङ्कुलराजपद्धतिम् ।
गजाश्वगोस्यन्दनवृन्दनिर्भरां श्रीधाममुख्यां मिथिला नमाम्यहम् ॥१०॥
अदीर्घगम्भीरसरिद्गणाञ्चितां द्रुमैश्चपुष्पावनतैः सुशोभिताम् ।
समस्तमाङ्गल्यपदार्थसंयुतां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥११॥

दर्शनसे मनको हरण करनेवाले श्रीवैडूर्य आदि पर्वत व पारिजातादि के वनोंसे घिरी हुई, अपने प्रकाशसे प्रकाशित श्रीकमलाजीनदीसे शोभायमान, श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥ समस्त दिव्य ऐश्वर्यसे सुसज्जित, चैतन्य आनन्दमय (ब्रह्म) स्वरूपा, नित्यों, (दिव्य-धाम निवासी भक्तों) के द्वारा प्रशंसाके योग्य, अत्यन्त कोमल भूतलवाली श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिलाधामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥

बड़े ऊँचे–ऊँचे सात आवरणोंसे सुशोभित, ध्वजा पताका व कलशके द्वारा बहुत दूरसे दर्शन देनेवाली, अनन्त विख्यात महायश समूहसे युक्त श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

अनेक प्रकारकी मणि व मूंगोसे भूषित आकाशको छूनेवाले सोनेके मनोहर विशाल भवनोंसे युक्त, चारों ओरसे महारथियोंके द्वारा सुरक्षित, श्रीजीके सभी धामोंमें मुख्य श्रीमिथिलाधामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥९॥

अपने शरीरकी सुन्दरतासे अनन्त रति व कामदेवोंको डाह युक्त करनेवाले स्त्री-पुरुषोंसे भरे राजमार्ग वाली, हाथी, घोड़ा, गौ, रथ समूहोंसे पूर्ण श्रीजीके धामोंमें प्रधान, श्रीमिथिला-धामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

छोटी–छोटी व कम गहरी नदी वृन्दोंसे विभूषित, पुष्पोंके भारसे नीचेकी ओर विशेष झुके हुये सुन्दर वृक्षोंसे सुशोभित तथा सभी माङ्गलिक पदार्थोंसे सम्पन्न, श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिला-धामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

श्रीमैथिलीप्रेमपरिप्लुतात्मभिः　संशोभमानामखिलैर्निवासिभिः　।
माधुर्य्यवात्सल्यरसप्रवर्षिणीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१२॥
अनन्तलोकालयलोकपप्रभुप्राणप्रियाया　जनिभूमिमात्मदाम्　।
अयोनिजानुग्रहलभ्यदर्शनां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१३॥
अमुख्यलोकाल्पविभूतिमूर्च्छित　त्रिविष्टपाधीशविभूतिवल्लरीम्　।
पुरीप्रधानातिलकस्वरूपिणीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१४॥
शुभां भजत्संसृतिबन्धनच्छिदां दुरासदां सेव्यतमामभीष्टदाम् ।
श्रीमैथिलीपादसुलाञ्छनाङ्कितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१५॥
विहारभूमिं बहुधाऽभिराजितां श्रीभूमिजाया निगमाभिशंसिताम् ।
संध्यायमानामृषिभिर्यतात्मभिः श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१६॥
श्रीरामसन्तुष्टिकरप्रपत्तिदां　प्रपन्नजीवाखिलभीतिहारिणीम्　।
निजस्वरूपानुभवप्रकाशिनीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१७॥

श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजीके प्रेममें डूबे हृदयवाले सभी पुरवासियोंसे पूर्ण शोभायमान, माधुर्य व वात्सल्यरसकी पर्याप्त वर्षा करने वाली, श्रीकिशोरीजीके सभी धामोंमें प्रधान श्रीमिथिला–धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१२॥ अनन्त लोकालय (ब्रह्माण्डों) के लोकपाल-ब्रह्मादिकोंके प्रभु (श्रीरामभद्रजू) की श्रीप्राणप्यारीजूकी जन्मभूमि, आत्मा(भगवान् श्रीराम) को प्रदान करने वाली, बिना किसी कारण द्वारा(स्वयं)प्रकट हुई श्रीजनक-राजदुलारीजूकी अनुग्रहसे सुलभ-दर्शनों वाली, श्रीजीके धामोंमें मुख्य श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१३॥

अपने यहाँके साधारण लोगोंके अल्प ऐश्वर्यसे इन्द्रके ऐश्वर्य रूपी लताको मूर्छित करने वाली, पुरियोंमें प्रधान मानी हुई श्रीअयोध्याजीका तिलक स्वरूप, श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१४॥

मङ्गलस्वरूपा, सेवन करने वालोंके जन्म-मरणके बन्धनको काट देनेवाली तथा कठिनतासे प्राप्त होने योग्य, परम सेवनीया, इच्छित मनोरथोंको देने वाली, श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी के श्रीचरण-कमलोंके सुन्दर चिह्नोंसे अङ्कित, श्रीजीके धामोंमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिला–धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१५॥ वेदोंके द्वारा वर्णित अनेक प्रकारसे उत्कृष्टताको प्राप्त श्रीभूमिसुताजूके विहार (बालक्रीड़ादि) करनेकी भूमि, एकाग्रमन वाले ऋषियों द्वारा ध्यानकी जाती हुई, श्रीजीके सभी धामोंमें उत्तम श्रीमिथिला–धामको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

श्रीरामभद्रजूकी प्रसन्नता-कारक शरणागति प्रदान करनेवाली तथा शरणागत जीवोंके सभी भयोंको हरण करने वाली, एवं अपने वास्तविक (आत्म) स्वरूपके अनुभवका प्रकाश करनेवाली, श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिला–धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१७॥

योगक्रियाज्ञानविरागभक्तिभिः सर्वप्रधानां जितवादिमण्डलाम् ।
अशेषशंसारनिधिस्वरूपिणीं श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१८॥
निवासमात्रेण कृतार्थकारिणीमयोगिनां स्वार्थधियां दुरात्मनाम् ।
नसर्गिकेलातनयारतिप्रदां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥१९॥
अतुल्यसौभाग्यबलेन संयुतामतुल्यकीर्त्ति हरिदम्बरावृताम् ।
हरेण भक्त्या परितो ऽभिरक्षितां श्रीधाममुख्यां मिथिलां नमाम्यहम् ॥२०॥
इमं ममोक्तं मिथिलास्तवं सदा पठन्ति शृण्वन्ति लिखन्ति ये जनाः ।
प्रसादलाभस्त्वचिरेण जायते तेषां धराया दुहितुः सदीप्सितः ॥२१॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

परिपूतसुपावनमिष्टजलां बहुवर्णसरोजसमुल्लसिताम् ।
मणिबद्धमनोहरयुग्मतटीं प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२२॥
मुनिवृन्दनिषेवितकूलयुगां सुरनायकनाथमनोमहिताम् ।
मिथिलेशसुतापदपद्मरतां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२३॥

योग, क्रिया, ज्ञान वैराग्य, भक्तिके द्वारा सभी धामोंसे श्रेष्ठ, वादी-मण्डलको परास्त करने वाली, समस्त कल्याणोंकी खान–स्वरूपा, श्रीजीके सभी धामोंमें उत्तम, श्रीमिथिला धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१८॥

दुष्ट मन तथा स्वार्थ बुद्धि रखने वाले भोग लोलुप जीवोंको भी, निवास मात्रसे कृतार्थ करने वाली एवं श्रीभूमि-कुमारीजूके प्रति स्वाभाविक प्रीतिको प्रदान करने वाली, श्रीजीके सभी धामोंमें प्रधान श्रीमिथिला-धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१९॥

तौल न सकने योग्य, सौभाग्य रूपी बलसे पूर्णतया युक्त, उपमा रहित कीर्त्तिवाली, हरे वस्त्रोंसे ढकी हुई तथा श्रद्धा-पूर्वक भगवान् श्रीभोलेनाथजीके द्वारा चारों ओरसे सुरक्षित श्रीजीके सभी धामोंमें श्रेष्ठ, श्रीमिथिला–धामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ हे श्रीनारदजी ! मेरे कहे हुये इस श्रीमिथिलाजीके यश-कथनको जो प्राणी सदा पढ़ते सुनते, और लिखते हैं, उन्हें सन्तोंकी अभिलषित, श्रीभूमिसुताजीकी प्रसन्नता शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है ॥२१॥

श्रीसनन्दन कुमारजी बोलेः-हे श्रीनारदजी ! जिनमें अत्यन्त पवित्र, मीठा तथा पापियोंको पवित्र करने वाला जल है, अनेक प्रकारके कमलोंसे पूर्ण शोभायमान, मणियोंसे बँधे हुये दोनों मनोहर किनारों वाली, नदियोंमें परमश्रेष्ठा, श्रीकमलागंगाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२२॥

मुनि-वृन्दोंसे भली भाँति सेवित, दोनों किनारों वाली, देव-नायक इन्द्र, ब्रह्मादिकोंके नाथ भगवान् श्रीरामभद्रजूके मन द्वारा पूजित, श्रीमिथिलेशललीजूके श्रीचरण-कमलोंमें आसक्त सभी नदियोंमें परम श्रेष्ठा श्रीकमलागंगाजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥

कलिकल्मषपुञ्जविनाशकरीमखिलेप्सितदामतिपुण्यतमाम् ।
बहुकुञ्जनिकाययुतां शुभदां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२४॥
यमभीतिहरीं सुखपुञ्जकरीं भवपावनदर्शननामनतिम् ।
रघुवीरविदेहसुतामतिदां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२५॥
परिपूरितभक्तमनोरथकां कलिजह्नुसुतां मिथिलाभिगताम् ।
मिथिलापुरवासिगणैर्महितां प्रणमामि सरित्प्रवरां कमलाम् ॥२६॥
य इमं प्रतिवारमलोलमतिः पठति स्तवमादरतो मनुजः ।
स समेति विदेहसुताङ्घ्रिरतिं मुन एतदृतं मम विद्धि वचः ॥२७॥

श्रीसनातन उवाच ।

सर्वलोकवरमङ्गलप्रदा मङ्गलैकशुचिपात्रमात्मदा ।
मङ्गलैकजननी सतां मता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥२८॥
श्रीविदेहनृपमौलिपालिता क्षालिताघनिचयानघस्मृतिः ।
श्रीपदारविन्दाङ्कलाञ्छिता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥२९॥

कलियुगके कलमष (काम, क्रोध, लोभ, मोहादि) समूहोंको नाश करने वाली, भक्तोंके सभी प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली, अत्यन्त पवित्र, बहुतसे कुन्ज वृन्दोंसे युक्त, मङ्गलोंको देने वाली, सभी नदियोंमें श्रेष्ठा श्रीकमलागंगाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२४॥

यमराज द्वारा प्राप्त होने वाले यातनादि-भयोंको दूर करनेवाली सुख-समूहको देनेवाली, तथा अपने दर्शन, नाम कीर्त्तन व प्रणाम मात्रसे, जन्मको पवित्र करनेवाली एवं रघुवीर श्रीराम भद्रजू तथा श्रीविदेहनन्दिनीजूमयी अर्थात् श्रीसीताराममयी बुद्धिको प्रदान करनेवाली, नदियोंमें परम श्रेष्ठा श्रीकमलागंगाजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥

भक्तोंके मनोरथको परिपूर्ण करने वाली कलियुगकी गङ्गा श्रीमिथिलाजीमें प्राप्त, श्रीमिथिला निवासियोंसे पूजित, नदियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीकमलागंगाजीको मैं प्रणाम करता हूँ॥२६॥

जो निश्चल-बुद्धिवाला प्राणी, श्रीकमलागंगाजीकी इस स्तुतिको आदर-पूर्वक प्रतिदिन पाठ करता है वह श्रीविदेह-नन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंके प्रेमको भली भाँति प्राप्त होता है। हे मुने! मेरे इस वचनको आप सत्य जानिये अर्थात् केवल प्रशंसा मात्र न समझियेगा ॥२७॥

सभी लोगोंको उत्तम मङ्गल प्रदान करने वाली तथा समस्त मङ्गलोंकी सर्व-श्रेष्ठ, पवित्र-पात्र, उपासकोंको आत्मा(भगवान् श्रीरामजी)को ही दे डालने वाली, समस्त मङ्गलोंकी अद्वितीय (उपमा रहित) मङ्गल स्वरूपा श्रीसाकेत-विहारिणीजीको जन्म देने वाली, सन्तों द्वारा बहुमान्य समझी हुई श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२८॥ श्रीविदेह-वंशके नरेशोंमें शिरोमणि श्रीसीरध्वज महाराज द्वारा पालित, पुण्यमय स्मरण मात्रसे ही पाप समूहोंको धो देने वाली, श्री जीके चरणारविन्दके चिह्नोंसे चिह्नित, श्रीमिथिलाजी की भूमिको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

भास्वदद्रिवननिम्नगान्विता कूपवापिसरसां गणैर्युता ।
वाटिकोपवनपङ्क्तिसङ्कुला वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३०॥

पञ्चसप्तनवखण्डमन्दिरश्रेणिभिश्च परितो विराजिता ।
द्योतयन्त्यमलरोचिषा जगद् वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३१॥

कोमला कमलजादिवन्दिता सेविता त्रिदशपुङ्गवैः सदा ।
भाविता परमहंससत्तमैर्वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३२॥

मैथिलीरघुवरस्वरूपिभिर्वासिभिर्भृशमतीवशोभिता ।
चिन्मयी निरुपमा गतक्लमा वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३३॥

श्रीविदेहतनयानुरक्तिदा निश्चला परमपावनाकरी ।
सर्वदिव्यरचनासमन्विता वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३४॥

शंस्मृतिः परमपुण्यदर्शना पापिपुञ्जशरणं श्रुतीडिता ।
स्वर्निवासिमृगणीयधूलिका वन्द्यतेऽद्य मिथिलावनिर्मया ॥३५॥

स्तोत्रमेतदृषिवर्य ! योऽन्वहं श्रद्धया पठति वा शृणोति वै ।
याति श्रीजनकजापदाम्बुजं सोऽञ्जसा मदुदितं शुभावहम् ॥३६॥

प्रकाशमान पर्वत, वन, नदियोंसे विभूषित, कुआँ, बावड़ी, सर(तालाव)वृन्दोंसे युक्त, बाटिका, उपवनोंकी पङ्क्तिसे पूर्ण, श्रीमिथिलाजीकी भूमिको आज मैं प्रणाम करता हूँ ॥३०॥ पाञ्च, सात, नव आदि खण्डों वाले मन्दिरोंकी पङ्क्तियों द्वारा चारो ओरसे सुशोभित, अपनी निर्मल कान्तिसे सारे जगत्‌को प्रकाशित करनेवाली श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं आज प्रणाम करता हूँ ॥३१॥

जो अत्यन्त कोमल ब्रह्मादि देवताओंसे प्रणामकी हुई, देव श्रेष्ठों द्वारा सेवित है तथा परम हंस शिरोमणि जिसका ध्यान करते हैं, उस श्रीमिथिला भूमिको मैं आज प्रणाम करता हूँ॥३२॥

श्रीसीतारामजी स्वरूप-निवासियों द्वारा अत्यन्त सुशोभित, चैतन्य (ब्रह्म) मयी, उपमा व श्रमसे रहित, श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं आज प्रणाम करता हूँ ॥३३॥

श्रीविदेहराजकुमारीजूमें अत्यन्त प्रेम प्रदान करने वाली, सदा अचल, पवित्र करने वालों में सबसे उत्तम कोष स्वरूपा, सभी दिव्य (अमायिक) रचनासे पूर्ण युक्त, श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं आज प्रणाम करता हूँ ॥३४॥ जिसका स्मरण मङ्गलमय, दर्शन परमपुण्यको देने वाला, धूलि देवताओंके द्वारा खोजने योग्य है, पापियोंकी रक्षा करने वाली, तथा वेदों द्वारा प्रशंसित उस श्रीमिथिलाजीकी भूमिको मैं आज प्रणाम करता हूँ ॥३५॥

हे ऋषियोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजी! मेरे कहे हुये मङ्गलदायक इस स्तोत्रको जो कोई प्रति-दिन श्रद्धापूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है वह अनायास ही श्रीजनकललीजूके श्रीचरण-कमलोंको प्राप्त होता है, अर्थात् जो इसे नित्य-प्रति पढ़ेगा या सुनेगा उसे विना परिश्रमके ही श्रीजनक-दुलारीजूके श्रीचरण-कमलोंकी प्राप्ति होगी ॥३६॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

श्रोमादिसीतां जनकप्रसूतां सखीपरीतां त्रिगुणैरतीताम् ।
श्रुत्यन्तगीतां सुमुखीं विनीतां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥३७॥

चन्द्रोपमास्यां शरदिन्दुहास्यां दुरापदास्यां कृपया प्रकाश्याम् ।
सिद्धैरुपास्यां नियमाप्रकाश्यां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥३८॥

भक्तेष्टदात्रीं करुणाविधात्रीं भावानुयात्रीं जनगीतगात्रीम् ।
विश्वैकशास्त्रीं कमलाम्बुपात्रीं श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥३९॥

लोकैकनेत्रीं जनदुःखभेत्त्रीं श्रीखण्डलेप्त्रीं शुचिभावसेक्त्रीम् ।
अन्यायजेत्रीं स्वपथप्रणेत्रीं श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४०॥

लोकाभिरामां परिपूर्णकामां कृपाविरामां जितमारवामाम् ।
गुणैर्ललामां कृतभक्तकामां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४१॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले:—हे श्रीनारदजी ! जो ॐकार स्वरूपा, आदि (साकेतविहारिणी) श्रीसीताजी श्रीजनकजी-महाराजके पुत्रीभावको प्राप्त हो सखियोंसे युक्त तीनों गुणोंसे परे हैं, तथा जो उपनिषदों द्वारा गाई हुई, नम्रता-युक्त, एवं सुन्दर मुखवाली हैं, उन श्रीरामबल्लभाजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥३७॥ चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी जिनका श्रीमुखारविन्द व शरद् ऋतुके पूर्ण-चन्द्रमाके सदृश जिनकी मुस्कान तथा दुर्लभ दास्यभाव है । जो अपनी कृपासे ही प्रकाशमें आने योग्य है । सिद्धोंको भी जिनकी उपासना परम कर्त्तव्य है । जो साधन बल से प्रकाशमें नहीं आसकतीं हैं, उन श्रीरामकान्ताजीकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥३८॥

जो भक्तोंके अभिलषित मनोरथोंको देने तथा प्राणीमात्र पर कृपा करनेवाली हैं जो भक्तों के भावानुसार उनसे व्यवहार करती एवं भक्तोंके स्तोत्रोंको गाती हैं, जो समस्त विश्व की उपमारहित (सर्वश्रेष्ठ एकमात्र) शासन करनेवाली एवं श्रीकमलाजीके जलको पीने वाली हैं उन श्रीरामप्रियाजूकी मैं शरण में हूँ ॥३९॥

जो समस्त लोकोंकी सर्वोत्कृष्ट सञ्चालिका व आश्रित भक्तोंके दुःखोंका नाश करनेवाली, तथा अपने मस्तकादिमें श्रीखण्ड-चन्दनका लेप एवं भक्तोंके पवित्र भावोंका सिंचन, श्रुतिशास्त्र प्रतिकूल अधर्मका पराजय, तथा अपने श्रुतिस्मृति-विहित भागवत धर्मका प्रमुख रूपसे सञ्चालन करने वाली हैं, उन श्रीरामकान्ताजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४०॥ जो समस्त लोकोंको सुख व स्वाश्रित भक्तोंको अपनी कृपाद्वारा जन्म-मरण चक्रसे विश्राम प्रदान करनेवाली हैं, जो अपने सौन्दर्यसे रतिको विजय करनेवाली तथा अपने वात्सल्य सौशील्य, कारुण्यादि दिव्यगुणोंसे जो परमसुन्दरी है,भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाली उन श्रीरामबल्लभाजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ॥४१॥

गतावसानां शरणं जनानां निजाश्रितानां क्षपितोरुमानाम् ।
शक्तिव्रजानां प्रभवाममानां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४२॥
विदेहकन्यां जगदेकधन्यां स्थितां विशन्यां निरतां जनन्याम् ।
नित्यामनन्यां प्रभुणा वरेण्यां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४३॥
दयार्द्रपक्षां कृतभक्तरक्षां प्रेमैकदक्षां शुचिपथ्यशिक्षाम् ।
श्रेयः समीक्षां ग्रहणीयदीक्षां श्रीरामकान्तां शरणं प्रपद्ये ॥४४॥
श्रीरामकान्ताष्टकमेतदन्वहं पठन्ति ये संयतशुद्धचेतसः ।
पापापहं प्रीतिकरं शुभावहं व्रजन्ति कामान् सकलांस्त ईप्सितान् ॥४५॥

श्रीनारद उवाच ।

नतोऽस्मि नित्यं जनकात्मजायाः क्रीडासहायान्निमिवंशिबालान् ।
स्मराभरूपान्नलिनीदलाक्षाच्छ्रीमैथिलीप्रेमरतान् नगर्य्याः ॥४६॥

श्रीसनक उवाच ।

तुच्छीकृतानङ्गसहस्रजाया विध्वानना: पद्मपलाशनेत्राः ।
दास्येऽनुरक्ताः प्रणमामि कन्याः श्रीमैथिलीप्रेमरताः पुरोऽस्याः ॥४७॥

जिनके यहाँ अन्तका ही अन्त है अर्थात् जिनका अन्त नहीं है, जो भक्तोंकी रक्षा तथा अपने आश्रितोंके अभिमानको दूर करनेवाली समस्त शक्तियोंकी जननी, मानकी इच्छासे रहित हैं उन श्रीरामवल्लभाजूकी मैं शरणमें हूँ ॥४२॥

श्रीविदेहमहाराजके पूर्व तपके प्रभावसे उनके पुत्रीभावको प्राप्त, जगत्में सर्वोपरि धन्यवाद के योग्य, कुर्सी पर विराजी हुई, श्रीअम्बाजीकी प्रसन्नतामें सदा तत्पर, निरन्तर एकरस रहने वाली प्रभु श्रीरामजीके साथ अभिन्न सबसे श्रेष्ठ, श्रीरामवल्लभाजीकी मैं शरणमें हूँ ॥४३॥

जिनका पक्ष दयासे पूर्ण है, भक्तोंकी जो रक्षा करनेवाली, प्रेमके रहस्यको समझनेमें तुलना रहित, आचरणमें लाने योग्य पवित्र शिक्षावाली हैं, तथा जिनका विचार व चितवन परम-मङ्गल-स्वरूप और दीक्षा ग्रहण करने ही योग्य है, उन श्रीरामवल्लभाजूकी मैं शरणमें प्राप्त हूँ ॥४४॥

श्रीरामवल्लभाजूके मङ्गलमय, प्रसन्नता-कारक, पापनाशक इस अष्टक का जो नित्य-प्रति पूर्ण एकाग्रता पूर्वक शुद्धचित्त हो पाठ करते हैं वे सभी अभिलषित मनोरथोंको प्राप्त होते हैं।४५।

श्रीनारदजी बोलेः—श्रीजनकललीजूकी बालक्रीडामें सहायता करने वाले, कामदेवके समान सुन्दर, कमल-दलके सदृश नेत्रवाले, श्रीमिथिलेशललीजूके प्रेममें आसक्त श्रीमिथिलापुरीके निमिवंशी बालकोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४६॥

श्रीसनकजी महाराज बोलेः—अपनी शोभासे हजारों रतियोंको तुच्छ करने वाली, चन्द्रमाके समान शोभायमान मुख व कमल-दलके सदृश नेत्रवाली, दास्य-भावमें सदा आसक्त, श्रीमिथि-लेश ललीजूके प्रेममें रत, इस पुरीकी समस्त कन्याओंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

नमामि पुर्य्याः खलुसर्ववर्णाश्रमस्थनारीनरनीरजाङ्घ्रीन् ।
पुण्याकरान्पुण्यचयाभिवीक्ष्याङ्घ्रीमैथिलीभक्तिविभूतिदोहान् ॥४८॥

श्रीसनातन उवाच ।

नमाम्यशेषान् परिदृश्यमानानदृश्यमानन्नगरस्थ जीवान् ।
कृपावतीर्णांस्तु विदेहजायाः सौभाग्यसंस्पर्द्धिसमस्तलोकान् ॥४९॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

विदेहवंशाम्बुरुहोष्णरश्मि श्रीजानकीतातमुदारभावम् ।
विवेकपाथोनिधिपूर्णचन्द्रं नमामि भक्त्या मिथिलामहेन्द्रम् ॥५०॥

श्रीनारद उवाच ।

वात्सल्यवारांनिधिमग्नचित्तां श्रीमैथिलीमातरमम्बुजाक्षीम् ।
देवाङ्गनावन्दितपादपद्मां नमामि सीरध्वजपट्टकान्ताम् ॥५१॥

श्रीसनक वाच ।

अयोनिजाबालविहारसक्ता हताशुभा मङ्गलपुञ्जरूपाः ।
विदेहभूपान्वयसंप्रविष्टा नतो ऽस्मि नित्यं ललना ललामाः ॥५२॥

श्रीसनन्दनजो बोले:—श्रीमिथिलापुरीके सभी वर्ण व आश्रमोंमें रहने वाले स्त्री-पुरुषोंके कमलके समान कोमल, पुण्यकी खानस्वरूप, भक्ति रूपी सम्पत्ति को पूर्ण करने वाले, पुण्यके भण्डार, पुण्य समूहके द्वारा दर्शन पाने योग्य श्रीचरणोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४८॥

दिखाई देने वाले और न दिखाई देनेवाले श्रीविदेहनन्दिनीजूके कृपासे उत्पन्न अपने सौभाग्यसे, सभी लोकोंको ईर्ष्या युक्त करने वाले सभी पुरवासी जीवोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥४९॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले:—श्रीविदेहवंश रूपी कमलको प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्यके समान, श्रीजनकललीजूके पिता, उदार भाव सम्पन्न, ज्ञान रूपी समुद्रको पूर्णचन्द्रमाके सदृश संवर्द्धित करने वाले, मिथिलाजीके सर्वश्रेष्ठ राजा श्रीमिथिलेशजी महाराजको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५०॥

श्रीनारदजी बोले:—वात्सल्य भाव रूपी समुद्रमें डूबे चित्तवाली, कमललोचना, देवताओंसे प्रणाम किये हुये श्रीचरण-कमलोंसे युक्त श्रीमिथिलेशललीजूकी अम्बा, श्रीसीरध्वज महाराजकी पटरानी, श्रीसुनयना महारानीजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५१॥

श्रीसनकजी महाराज बोले:—बिना किसी कारण (स्वयं) प्रकट हुई श्रीललीजीके बाल्यावस्थाकी क्रीडाओंमें आसक्त, नष्ट सभी अशुभों (पापों) वाली, मङ्गल राशि-स्वरूपा श्रीविदेह महाराजके कुलमें प्रवेश की हुई, सभी सौभाग्यवती सुन्दर स्त्रियों (रानियों) को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५२॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

श्रीमैथिलेन्द्रस्य समस्तबन्धून् नमामि वात्सल्यरसप्रधानान् ।
उपार्जितश्रीक्षितिजेक्षर्णार्थान् पुण्यस्तवान् प्राणभृतां वरिष्ठान् ॥५३॥

श्रीसनातन उवाच ।

श्रीजानकीरूपपयोधिमीनान् निकृन्तिताशाद्रुमकृत्स्नमूलान् ।
तन्नामसङ्कीर्त्तनलुब्धजिह्वान् नतोऽस्मि धामैकनिवासिभक्तान् ॥५४॥

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

श्रीमैथिलीदर्शनलब्धितृष्णात्यक्ताखिलेश्वर्यपदाधिकारान् ।
अमानिनो भक्तिविशुद्धचित्तान्नतोऽस्मि तद्भावनया प्रमत्तान् ॥५५॥

श्रीनारद उवाच ।

नतोऽहं सदा श्रीधरानाथपुत्रीं महामोदरूपां प्रपन्नार्त्तगोप्त्रीम् ।
कृपाशीलवात्सल्यगाम्भीर्यमूर्त्ति क्रियाज्ञानवैराग्ययोगादिपूर्त्तिम् ॥५६॥
शरण्यां वरेण्यां त्र्यधीशैरुपास्यामजां निर्विकल्पां निरीहां स्मितास्याम् ।
चिदानन्दरूपां प्रकृष्टां प्रगल्भां भजे मैथिलीं चारुविद्युच्चयाभाम् ॥५७॥

श्रीसनन्दनजी बोले:—जिन्हें श्रीभूमि-सुताजूके दर्शनोंका लाभ प्राप्त है, उन वात्सल्य रस प्रधान, पवित्र स्तुति प्राणधारियोंमें परम श्रेष्ठ, श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयों को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५३॥

श्रीसनातनजी बोले:—जिनकी इच्छा रूपी वृक्षकी सभी जड़ें कट चुकी हैं और जिह्वा नाम सङ्कीर्त्तन करनेके लिये सदा ललचाती रहती है, उन श्रीजनकललीजूके सुन्दरस्वरूप रूपी समुद्रमें मछलीके समान आनन्द मग्न, धाम-निवासी श्रेष्ठ भक्तोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५४॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले:— जिन सौभाग्यशालियोंने श्रीमिथिलेशललीजूके दर्शनोंकी इच्छासे अपने ऐश्वर्यमय पदोंका परित्याग किया है, जिनका चित्त अभिमान रहित, तथा भक्ति प्रभावसे पूर्ण निर्मल हो गया है, एवं श्रीललीजूके प्रति अभीष्ट सम्बन्ध भावनासे जो पूर्ण मतवाले हो रहे हैं, उन भक्तोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥५५॥

श्रीनारदजी बोले:-जो महाआनन्द स्वरूप, शरणागत, आर्त्त-भक्तोंकी रक्षा करने वाली कृपा, शील, वात्सल्य व गम्भीरताकी मूर्त्ति एवं क्रिया, ज्ञान वैराग्य योग आदि विविध प्रकारके साधनोंकी पूर्त्ति स्वरूपा हैं, उन श्रीपृथिवीजीके पति श्रीसीरध्वज महाराजकी श्रीललीजीको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥५६॥ जो अनन्त-ब्रह्माण्डोंके सभी जीवोंकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ, सबसे श्रेष्ठ, ब्रह्मा, विष्णु, महेशके लिये भी उपासना करनेको आवश्यक, जन्मसे रहित, कल्पनासे परे, सम्पूर्ण इच्छाओंसे रहित मुस्कान युक्त मुख तथा चैतन्य व आनन्दमय स्वरूप वाली, सभीसे श्रेष्ठ, अपनी प्रातिज्ञामें अटल, सुन्दर बिजली समूहके समान कान्तिवाली हैं, उन श्रीविदेहराज-नन्दिनीजूका मैं भजन करता हूं ॥५७॥

शरच्चन्द्रवक्त्रां लसत्कञ्जनेत्रां मनोहारिहास्यामुपास्यैरुपास्याम् ।
अमोघानुरक्तिं महापुण्यकीर्त्तिं सदा चिन्तये मैथिलीं चित्रगुप्तिम् ॥५८॥
भवार्थप्रदात्रीं महाशंविधात्रीं मनोज्ञस्वभावां महोदारभावाम् ।
भवस्वप्नहर्त्रीं जगत्क्षेमकर्त्रीं भजे जानकीं ब्रह्म वेदान्तवेत्त्रीम् ॥५९॥
अनुच्छिष्टभक्त्या प्रसन्नां प्रणत्या दुरापां प्रकृत्या सदोच्छिष्टभक्त्या ।
अनाथाश्रयेशां त्र्यधीशां परेशां प्रपद्ये धरानन्दिनीमात्मनेशाम् ॥६०॥
कृतज्ञां गुणज्ञां मनोभावविज्ञां कृपासिन्धुरूपां महाशक्तिभूपाम् ।
अखण्डाममेयामतर्क्यामजेयां भजे जानकीं योगिभिर्नित्यगेयाम् ॥६१॥

जिनका श्रीमुखारविन्द शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान प्रकाश युक्त आह्लादकारी है, कमलके सदृश सुशोभित दोनों आँखें व, मनको हरण करने वाली जिनकी मुस्कान हैं, उपासना-योग्य जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेशादि पञ्चदेव हैं, उन्हें भी जिनकी उपासना करना आवश्यक है, जिनके प्रति अनुराग कभी भी विफल नहीं होता, जीवोंकी रक्षाका उपाय जिनका विलक्षण (आश्चर्य-मय) है उन महापुण्यमयी-कीर्त्तिवाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका मैं निरन्तर चिन्तन करता हूँ ॥५८॥

जो भक्तोंको जन्मका अर्थ परमात्मतत्त्व प्रदान करने व महान् कल्याण करनेवाली मनोहर स्वभावसे युक्त हैं, जिनके प्रति किया हुआ भाव भक्तोंको सभी प्रकारकी इच्छाओंको प्रदान करनेमें अत्यन्त उदार है, जो संसार प्रपञ्चमें मैं, और मेरा इस भावना रूपी स्वप्नको हरण करके चर-अचर सभी प्राणियोंका कल्याण करने वाली हैं, वेदान्तको पूर्णतया समझने वाली ब्रह्म-स्वरूपा उन श्रीजनकनन्दिनीजूका मैं भजन करता हूँ ॥५९॥

जो अनूठी (अनन्य) भक्तिके द्वारा केवल प्रणाम मात्रसे प्रसन्न हो जाती हैं परन्तु जूठी (व्यभिचारिणी)भक्तिसे सदा स्वभावसे ही दुर्लभ रहती हैं, अनाथोंके रक्षा स्थानों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)आदिकोंको अपने शासन में रखनेवाली तीनों लोकोंकी स्वामिनी, सभी उत्कृष्ट शक्तियोंको अपने अधीन रखनेवाली, अन्तर्यामिनी रूपसे चर, अचर सभी प्राणियोंपर शासन करने वाली, तथा पृथिवी देवीको आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, उन श्रीललीजूकी मैं हृदयसे शरणमें प्राप्त हूं ॥६०॥

जो जीवोंके एक भी उपकारको कभी नहीं भूलतीं, तथा गुणोंको समझने व मनके भावोंको भलीप्रकार जाननेवाली, कृपासिन्धु भगवान् श्रीरामजीकी स्वरूप, महाशक्तियोंकी रानी एवं सब प्रकारसे पूर्ण, खण्ड रहित, कल्पनासे परे, जीतनेमें अशक्य, योगियों द्वारा नित्य ही गान करने योग्य हैं, उन श्रीजनकराजदुलारीजूका मैं भजन करता हूं ॥६१॥

सखीवृन्दपृक्तां प्रपन्नानुरक्तां सुवर्णाभवर्णां सताटङ्ककर्णाम् ।
समालोकयन्तीं मनोह्लादयन्तीं भजे भूमिजामम्बुजं भ्रामयन्तीम् ॥६२॥

महाभावगम्यां महद्भिः प्रणम्यां महार्हासनस्थां कृताहेयसंस्थाम् ।
धृताम्भोजमालां मनोहारिभालां भजे भूमिजां भव्यरूपां सुवालाम् ॥६३॥

पठन्तीह ये स्तोत्रमेतन्मयोक्तं नराः श्रद्धया प्रत्यहं युक्तचित्ताः ।
ददाति श्रियं पुत्रपौत्रांस्तथान्ते धरानन्दिनी धाम नित्यञ्च तेभ्यः ॥६४॥

श्रीसनक उवाच ।

कदा वा ऽहं दिव्ये महति मिथिलानाथनगरे समाश्रृण्वन् पुण्यं पथि पथि यशः पावनपरम् ।
मुदा प्रेमोन्मत्तो जनकदुहितुर्लोकगदितं निरस्ताशेषाशः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६५॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

कदा भूत्वा कीरोऽनघसुनयनाङ्के स्थितवतीं जितास्येन्दुव्रातां क्रतुधरणिजातां छबिनिधिम् ।
मुदा भूयो दृष्ट्वा "कथय सखि! सीतेति" निगदन् द्रुमाट्टस्तम्भस्थः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम्।६६।

जो सखियोंसे युक्त, अपने आश्रितों पर अनुराग रखनेवाली, सोनेके समान गौर वर्ण, कानों में कर्णफूल धारण किये हैं, मनको आह्लादित तथा भक्तोंको सम्यक् प्रकारसे अवलोकन करती हुई जो अपने करकमलमें कमलके पुष्पको घुमा रही हैं उन भूमिसुता श्रीललीजूका मैं भजन करता हूं ॥६२॥ जो महाउत्कृष्ट (तदाकार) भावसे प्राप्त होनेमें सुलभ, महात्माओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य तथा बहुमूल्य आसन पर विराजमान हैं जिनकी चलाई (श्री) सम्प्रदाय तथा मर्यादा सदा आदरणीय है । जो कमल पुष्पकी मालाओंको धारण की हुई, मनोहर मस्तक और भावना करने योग्य स्वरूप वाली हैं, वाल्यावस्था-सम्पन्ना उन श्रीललीजीका मैं भजन करता हूं ॥६३॥ मेरे कहे हुये इस स्तोत्रका जो श्रद्धा-पूर्वक नित्य-प्रति एकाग्रचित्तहो पाठ करते हैं उन्हें श्रीभूमिनन्दिनीजी धन, पुत्र, पौत्र तथा अन्तमें नित्य धाम प्रदान करती हैं ॥६४॥

श्रीसनकजी बोले:—कब मैं श्रीमिथिलेशजी महाराजके विशाल नगरमें सम्पूर्ण तृष्णाओंसे रहित हो, पुरवासियोंके द्वारा गाये हुये, श्रीजनकराजदुलारीजूके पवित्रताकारी मङ्गलमय यशको गली—गलीमें आनन्द-पूर्वक भली प्रकारसे श्रवण करता हुआ प्रेमपागल हो सुख—पूर्वक अपने जन्मका फल प्राप्त करूँगा ॥६५॥

श्रीसनन्दनजी बोले ! कब मैं सुग्गा (तोता) होकर श्रीसुनयनाअम्बाजीकी पवित्र गोदमें बैठी, अपने मुख छबिसे चन्द्र समूहोंकी जीतने वाली, यज्ञ भूमिसे प्रकट हुई श्रीजनकदुलारीजूका बारम्बार दर्शन करके वृक्ष, अटारी, खम्भों पर बैठा हुआ "सखि ! सीता कहो, सखि ! सीता कहो" ऐसा बोलता हुआ सुख पूर्वक अपने जीवनकी सफलता प्राप्त करूँगा ॥६६॥

श्रीसनातन उवाच ।

कदा भिक्षावृत्तिर्जनकपुरवीथीषु विचरन् सखीभिः क्रीडन्तीं शुचिमतिरनेकस्थलगताम् ।
प्रपश्यन्निन्द्वास्यां विजितसुषमासारजलधिं धरापुत्रीं मौनी स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६७॥

श्रीसनक उवाच ।

कदा हस्तीभूत्वा जनकतनयाम्भोजपदयोर्मनोज्ञाङ्कैर्युक्ते परमरमणीयेऽवनितले ।
क्षिपन्स्नात्वा धूलिं निजवपुषि तद्ध्याननिरतो रजः संपूताङ्गः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६८॥

श्रीनारद उवाच ।

कदा वैणी भूत्वा जनकनृपगेहस्य कृतिनी तृणाहारा शश्वत्प्रणयनिपुणोद्विग्ननयना ।
बृहन्नेत्रा प्राप्तक्षितिपतिसुतादर्शनविधिस्तदीया तच्चित्ता स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥६९॥

श्रीसनक उवाच ।

कदा हेमारण्ये विमलविरजापुण्यपुलिने चरन्तीं श्रीसीतां स्वसृगणपरीतां स्मितमुखीम् ।
भ्रमद्धस्ताम्भोजां मृदुलतरपाथोजचरणां निरीक्ष्याक्षुद्रात्मा स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ॥७०॥

कब भिक्षावृत्तिको धारण किये श्रीजनकपुरकी गलियोंमें विचरते समय अनेक स्थलोंमें सखियोंके साथ पधारी हुई, अनेक प्रकारकी भक्त-सुखद लीलाएं करती हुई, चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान, आह्लादकारी मुखवाली, निरुपम सौन्दर्य सिन्धुको अपने रूप माधुर्यसे जीतने वाली, श्रीभूमि-नन्दिनीजूका दर्शन करते हुये, मैं सर्वत्र तदाकार बुद्धि सम्पन्न हो आनन्दातिरेकसे मौन-व्रतको धारण किये हुये, सुखपूर्वक अपने जीवनकी सफलता प्राप्त करूँगा ॥६७॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले:—कब हाथी होकर श्रीजनकललीजूके कमल-कोमल श्रीचरणोंके मनोहर चिह्नोंसे युक्त, भूमितलकी धूलिमें नहाकर अपने शरीर पर उसे उछालता हुआ श्रीललीजूके ध्यानमें तन्मय रहकर, श्रीचरण धूलिसे पूर्ण पवित्र सभी अङ्गों वाला मैं, सुखपूर्वक अपने जीवनका फल प्राप्त करूँगा ॥६८॥

श्रीनारदजी बोले :—श्रीजनकजी-महाराजके महलकी सौभाग्यशालिनी हरिनी होकर तृणका आहार करनेवाली, प्रेम परायणा दर्शनोंके लिये चञ्चल हृदय, बड़ी बड़ी आँखोंवाली श्रीललीजूके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त करती हुई उन्हींमें चित्तको लगाकर कब मैं अनायास ही अपने जीवनका फल प्राप्त करूँगा ॥६९॥

श्रीसनकजी महाराज बोले — मन्द मुस्कान युक्त मुख, कमलके समान अतीव कोमल श्रीचरणोंवाली, हाथमें कमल पुष्पको नचाती, अपनी सखियों सहित विचरती हुई, श्रीकञ्चनवनमें श्रीविरजाजीके स्वच्छ पवित्र किनारे पर, श्रीजनकदुलारीजीका दर्शन करके उन्ही मय बुद्धि सम्पन्न होकर कब मैं सुखपूर्वक अपने जीवन की सफलता प्राप्त करूँगा ॥७०॥

श्रीसनन्दन उवाच ।

**कदा नौकारूढां शरदमलपूर्णेन्दुवदनां विशालाक्षीं सीतां निमिजतनुजावृन्दसहिताम् ।
विहाराख्ये रम्ये सरसि मुनिसंजुष्टपुलिने समीक्ष्याप्तानन्दः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ।।७१।।**

श्रीसनातन उवाच ।

**कदा प्रेमोन्मत्तो जनकतनयापादकमले हृदि ध्यायं ध्यायन्तदमृतयशः शोकहरणम् ।
मुदा गायं गायन्निगमगदितं साश्रुनयनो जितात्मा निर्द्वन्द्वः स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ।।७२।।**

श्रीसनत्कुमार उवाच ।

**कदा ब्रह्मेशादित्रिदशवरसंमृग्यरजसा विलिप्ताङ्गो दान्तो जनकनृपकन्याजनिभुवः ।
तदङ्घ्र्यासक्तात्मा समनृपतिरङ्काश्मकनको जपंस्तस्या मन्त्रं स्वजनिफलमेष्यामि ससुखम् ।।७३।।**

श्रीनारद उवाच ।

**कदा वीणावादी जनकपुरवीथीष्वभिसरन् प्रपश्यंश्चित्केलिव्रजमवनिजाया दुरितहम् ।
रटञ्छ्लक्ष्णं नाम श्रुतिनिकरसारं तदमृतं सबाष्पाक्षो मत्तः स्वजनिकलमेष्यामि ससुखम् ।।७४।।**

श्रीसनन्दनजी बोले:—कब मुनियोंसे सेवित श्रीविहार सरोवरमें निमिवंशी कन्याओंके सहित नौका पर विराजी हुई शरद् ऋतुके पूर्ण स्वच्छ चन्द्रमाके समान मुख व विशाल नेत्रों वाली श्रीमिथिलेशदुलारीजीका दर्शन करके आनन्दको प्राप्त हुआ, मैं सुख-पूर्वक, अपने जन्मका फल प्राप्त करूँगा ।।७१।।

श्रीसनातनजी बोले:—कब मनको विजय करके राग, द्वेष्य, सुख-दु:खादि अनेके प्रकारके द्वन्दोंसे रहित, प्रेममें पागल हो, श्रीजनकललीजूके चरण कमलों का ध्यान अपने हृदयमें बारम्बार करता तथा सभी शोकों को हरण करने वाले वेदोंके द्वारा गाये हुये अमृतके समान अमर कर देने वाले उनके यशका गान, सजल नेत्र हो आनन्द पूर्वक बारम्बार करता हुआ मैं अपने जन्मकी सफलता प्राप्त करूँगा ? ।।७२।।

श्रीसनत्कुमारजी बोले:—ब्रह्मा, शिव आदि श्रेष्ठों द्वारा खोजने योग्य श्रीजनकराजदुलारीजू की जन्म भूमिकी रज (धूलि) से शरीरको धूसरित करके उनके श्रीचरणकमलोंमें मनको आसक्त बना, राजा-रङ्क, पत्थर-सोनामें सम भावको प्राप्त हो मैं, श्रीजनकललीजूके मन्त्र-राजको जपता हुआ कब अपने जीवनकी सफलता प्राप्त करूँगा ! ।।७३।।

श्रीनारदजी बोले :—कब श्रीजनकपुरीकी गलियोंमें बीणा बजाते चलते हुये, श्रीभूमिसुताजी के पाप व सङ्कट-नाशक, चैतन्य मयी लीला समूहों का दर्शन करते मस्त हो, सजल नेत्र हुआ उनके अमृतके समान अमरत्वदायक वेदोंके सारभूत "श्रीसीता" इस नामको मधुर स्वरसे रटता हुआ मैं अपने जीवनको सफल करूँगा ।।७४।।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्थं प्रेमपरायणा विधिसुताः सञ्जातकौतूहला
भक्ताः श्रीसनकादयो मुनिवरा देवर्षिणा सङ्गताः ।
दृष्ट्वा श्रीजनकात्मजामवनिजां स्तुत्वा तदीयांश्च तां
प्रागच्छन्हृदयेप्सितार्थमुदितं ते व्यञ्जयन्तो मिथः ॥७५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे! इस प्रकार (मुनियों में) श्रेष्ठ, प्रेमपरायण, ब्रह्माजीके पुत्र श्रीसनकादिक भक्त, देवर्षि श्रीनारदके सहित, भूमिसे प्रकट हुई श्रीजनकराजदुलारीजूका दर्शन करके तथा उनकी और उनके सम्बन्धियोंकी स्तुति करके, अपने हृदयमें उदय हुये भावोंको परस्पर प्रकट करते हुये, आश्चर्यचित हो विदा हुये ॥७५॥

इति सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

—❀❀❀—

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

मोदस्रवागार में भाई-बहिनों सहित श्रीकिशोरीजीकी फाग-लीला ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

ततो दानं द्विजातिभ्यो दत्त्वा सुनयना ऽऽदरात् । सुतापाणितलस्पृष्टं विविधं गृहमाययौ ॥१॥
तस्मिन्दिने तु सर्वासां योषितां निमिवंशिनाम् । महाराज्ञीनिकेतेऽभूद्भोजनं निर्वृतिप्रदम् ॥२॥
पुनः स्वं स्वं गृहं जग्मुर्नत्वा क्षितिपतिप्रियाम् । जानकीरूपपाथोधिमग्नचित्ता वराङ्गनाः ॥३॥
स्वसारो भ्रातरश्चैव मैथिलीं समनुव्रताः । न गत्वा निलयं स्वं स्वं बभूवुर्मोदहेतवः ॥४॥
चारुशीलामुखं दृष्ट्वा लक्ष्मणा लक्षणान्विता । अभिवाद्य भुवः पुत्रीं गिरा माध्व्येदमब्रवीत् ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! श्रीसनकादिकोंके विदा हो जाने पर श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीललीजीकी हथेलीसे स्पर्श कराई हुई अनेक प्रकारकी वस्तुओं का दान, ब्राह्मणों को देकर अपने महलको वापस पधारीं ॥१॥ उस दिन सभी निमिवंशी स्त्रियोंका भोजन, महारानी श्रीसुनयनाअम्बाजीके महलमें ही, परम शान्ति देनेवाला हुआ पुनः श्रीजनकललीजूके रूप-सागरमें डूबी चित्तवाली वे सभी उत्तम(सौभाग्यवती)स्त्रियाँ श्रीमहारानीजीको प्रणाम करके अपने-अपने महलोंको पधारीं परन्तु श्रीमिथिलेशललीजूके अनुयायी बहिन-भाई वृन्दोंने अपने-अपने भवनोंको न जाकर विशेष आनन्दके कारण बने ॥२॥३॥४॥

श्रीचारुशीलाजीके मुखारविन्दकी ओर देखकर सभी लक्षणोंसे युक्त, श्रीलक्ष्मणाजी श्रीराजदुलारीजीसे नम्रता पूर्वक यह बड़ी मधुर वाणीसे बोलीं-॥५॥

श्रीलक्ष्मणोवाच ।

अयि स्वसः कृपाशीले! सर्वशर्मप्रवर्षिणि! । को ऽद्य पूतो भवेत्कुञ्जो भवत्याः पादपांसुभिः ॥६॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

उच्यतामीप्सिता केलिर्भवतीभिः सुखप्रदा । ततो वक्ष्याम्यहं कुञ्जं तदर्हं हृदि निश्चितम् ॥७॥

श्रीस्वसार ऊचुः ।

वासन्तिकी शुभा केलिः सुविमृश्याभिवाञ्छिता । अस्माभिः सुमुखीदानीं मन्यसे चेद्विधीयताम् ॥८॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

यूयं ममेप्सितार्थज्ञाः सर्वदा मत्परायणाः । स्वभावप्रियसङ्कल्पाः सर्वाः शुभगुणालयाः ॥९॥
अद्य मोदसत्रवागारं मया साकमनुत्तमम् । भुक्त्वा विहितविश्रामा व्रजतामन्दबुद्धयः ॥१०॥

स्वसार ऊचुः ।

अनुगाः सर्वदैवास्मो मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः । कल्पद्रुमस्वभावायास्तव श्रीराजनन्दिनि ! ॥११॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वा विनीताङ्ग्यो हर्षविस्फारितेक्षणाः । क्षिप्रं विहितविश्रामास्ततोऽम्बामभ्यवादयन् ।१२।

हे सभी सुखोंकी सुन्दर वर्षा करनेवाली! कृपा मय स्वभाव वाली! श्रीबहिनजी! आज आपके श्रीचरण-कमलोंकी धूलिसे कौन सी कुञ्ज पवित्र होगी ? ॥६॥

श्रीजनक-दुलारीजी बोलीं:—हे बहिनों ! पहिले आप लोग अपने सुख देनेवाली अभीष्ठ लीलाको बताइये, तब मैं हृदयमें निश्चयकी हुई उसके योग्य कुञ्जको बताऊँगीं ॥७॥

बहिनें बोलीं—हे मनहरण मुखवाली श्रीललीजी ! भली भाँति सोच-विचार करके हम लोग आज वसन्त ऋतु महोत्सव (फाग लीला) के लिये उत्सुक हैं, यदि स्वीकार हो, तो वही लीला करनेकी कृपा करें ॥८॥

श्रीललीजी बोलीं:—हे बहिनों ! आप लोग तो मेरे अभिप्रायको जानने वाली, सदा मेरे ही अनुकूल रहने वाली, स्वभावसे ही मेरी प्रसन्नता कारक सङ्कल्पों को करने वाली, शुभलक्षणों की मन्दिर हैं ॥९॥

हे तीव्र बुद्धियो ! इस लिये आज मेरे सहित आप लोग प्रसाद पाकर, विश्राम करके फाग लीला करनेके लिये श्रीमोदसत्रागार नामकी अत्युत्तम कुञ्जमें पधारें ॥१०॥

बहिनें बोलीं:—हे कल्पद्रुमके सदृश स्वभाव वाली श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू ! हम सभी मन, वाणी, बुद्धि तथा शरीरसे सदा ही आपकी अनुगामिनी हैं, अत एव जहाँ आप पधारेंगी वहीं हम चलेंगी ॥११॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीललीजूसे इस प्रकार कहकर उनकी आज्ञानुसार थोड़ी देर विश्राम करके, हर्षसे फैले हुये नेत्रों वाली उन सभी बहिनोंने, श्रीअम्बाजोको प्रणाम किया ॥१२॥

राज्याऽभिनन्द्य ता दृष्ट्वा प्रपश्यन्तीः परस्परम् । पुत्र्यः! किमिच्छथाख्यातुं पृष्टा इति मुदाऽब्रुवन् ॥१३॥

कुमार्य ऊचुः ।

अद्य मोदस्रवागारगमनेच्छान्विता स्वसा । वर्त्तते नस्ततो मातरनुज्ञां दातुमर्हसि ॥१४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

न चेयं दृक्चकोरेन्दुवदना मे तथा सुता । यथा यूयं हि काङ्क्षिण्यो गन्तुं मोदस्रवालयम् ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वा सुतामाह हसन्तो परिरभ्य सा । कच्चिन्मोदस्रवागारंगन्तुमिच्छसि हे प्रिये ! ॥१६॥
अथवैता हि काङ्क्षन्ति भगिन्यः केलिलोलुपाः । तत्तु गन्तुं वदेदानीं वत्से! कुशलमस्तु ते ॥१७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! तद्दर्शनोत्कण्ठा हृदि जाता ममैव हि । मदभिप्रायविज्ञाभिर्विद्धचतः सत्यमीरितम् ॥१८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमाशंसिता माता जगदानन्दरूपया । स्मयमानमुखी राज्ञी गन्तुमाज्ञां दिदेश ह ॥१९॥
मातुराज्ञां समासाद्य स्वसृभिः परिवारिता । जगाम भवनं दिव्यं तन्मोदस्रवसञ्ज्ञकम् ॥२०॥
तदग्निमणिसङ्काशं रुद्रखण्डसमुच्छ्रितम् । विद्युत्पुञ्जाभकलशं बालकैः परिरक्षितम् ॥२१॥

श्रीअम्बाजी सभीकी प्रशंसा करके, उन्हें एक दूसरेकी ओर देखती हुई देखकर, उनसे हे पुत्रियो ! आप लोग क्या कहना चाहती हैं ? इस प्रकार श्रीअम्बाजीके पूछने पर वे, प्रसन्न हो बोलीं :-॥१३॥ हे श्रीअम्बाजी ! आज हमारी श्रीबहिनजी मोदस्रवागार पधारनेकी इच्छा कर रहीं हैं, इस लिये आपको उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा देनी चाहिये ॥१४॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:-अरी पुत्रियो ! मोदस्रवागार जानेके लिये जैसी तुम लोग इच्छा कर रही हो, वैसी मेरे नेत्र रूपी चकोरों का चन्द्रमाके समान, आह्लादवर्द्धक मुखवाली ये श्रीललीजी नहीं ॥१५॥ इस प्रकार उन पुत्रियोंसे कह कर हँसती हुई श्रीअम्बाजी, हृदयसे लगा कर श्रीललीजीसे बोलीं:-हे प्रिये! क्या आपकी मोदस्रवागार पधारनेकी इच्छा ठीक ही है?॥१६॥

हे वत्से ! अथवा क्रीड़ाओंसे कभी तृप्त न होने वाली आपकी ये बहिनें ही वहाँ जानेकी केवल इच्छुक हैं बतलाइए, आपका कल्याण हो ॥१७॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! श्रीमोदस्रवागार देखनेकी इच्छा, मेरेही हृदयमें उत्पन्न हुई है इसलिये मेरे अभिप्रायको जानने वाली इन बहिनोंने जो कुछ आपसे कहा है, उसे सत्य जानिये ॥१८॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार चर-अचर प्राणियोंके आनन्दकी मूर्त्ति श्रीललीजूके समझाने पर रानी सुनयनाअम्बाजीने श्रीललीजीके वात्सल्यभाव पर मुग्ध हो, मन्द मन्द मुस्काती हुई, श्रीललीजीको मोद-स्रवागार पधारनेकी आज्ञा प्रदानकी ॥१९॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर बहिनोंसे घिरी हुई श्रीललीजी, मोदस्रव नामके उस दिव्य भवनमें पधारीं ॥२०॥ अग्नि रङ्गकी मणिके समान प्रकाश युक्त, ग्यारहखण्ड ऊँचे बिजली समूहके समान परम प्रकाशमय कलशवाले, चारों ओर बालकोसे सुरक्षित ॥२१॥

सालिचित्रगृहद्वारं मुक्तादामविभूषितम् । निरीक्ष्य मुमुदे वेश्म पीतपङ्केरुहध्वजम् ॥२२॥
आगतया बहिर्द्वारि भवनात्पुण्यशीलया । नीराज्य स्वालिभिर्नीता प्रीतिमत्या निवेशनम् ॥२३॥
तत्र सिंहासने रम्ये कोमलांशुकशोभिते । तप्तहेमप्रतीकाशे सादरं सन्निवेशिता ॥२४॥
उक्ता मधुरया वाचा स्रवद्गुप्तानुरागया । दिष्टयाऽऽगताऽसि भद्रं ते वत्स! इत्याह मैथिली ॥२५॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अद्य मातररोचन्त भगिन्यः केलिमुत्तमाम् । वासन्तिकीमतः प्राप्ता सहैताभिरहं किल ॥२६॥

श्रीपुण्यशीलोवाच ।

धन्याः कुमारिका एता धन्या पुत्रि! च ते कृपा । महावात्सल्यसंयुक्ता यया त्वं मे प्रदर्शिता ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्युक्त्वा सा समालिङ्ग्य मैथिलीं भुवनेश्वरीम् । तर्पयामास विविधैर्भोजनैः स्वसृभिर्युताम् ॥२८॥
प्रदाय पुनराचम्यं कृतो नीराजनोत्सवः । वादित्रकलघोषैश्च तया वात्सल्यलीनया ॥२९॥

सखियोंके चित्रसे युक्त, तथा मोतियोंकी मालाओंसे सजे हुये द्वार एवं पीत कमलकी ध्वजा वाले उस भवनको देखकर श्रीललीजी प्रसन्न हुईं ॥२२॥

श्रीललीजीका शुभागमन जानकर उस भवनसे श्रीपुण्यशीलाजी बाहर द्वार पर आकर, प्रेमपूर्वक आरती करके, सखियोंके सहित उन्हें भवनमें ले गयीं ॥२३॥

वहाँ कोमल वस्त्रोंसे सुशोभित तपाये सुवर्णके समान प्रकाश वाले, सुन्दर सिंहासन पर उन्हें आदर पूर्वक विराजमान किया ॥२४॥

पुनः बहते गुप्त अनुरागवाली, मधुरी वाणीसे "हे वत्से ! आपका कल्याण हो। मेरे बड़े सौभाग्यसे आप यहाँ पधारीं हैं" ऐसा उन पुण्यशीलाजीके कहने पर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी बोलीं ॥२५॥ हे श्रीमैयाजी ! आज मेरी बहिनें बसन्त ऋतुकी उत्तम (फाग) लीला करनेकी इच्छुक हैं, अत एव इनकी इच्छा पूर्त्तिके लिये मैं यहाँ आई हूँ ॥२६॥

श्रीपुण्यशीलाजी बोलीं:—हे श्रीललीजी ! ये कुमारियाँ धन्य हैं, जिनकी इच्छापूर्त्ति के लिये आपने यहाँ पधारनेकी इच्छा की और महान् वात्सल्य रससे युक्त आपकी उपमा रहित इस कृपाको धन्यवाद है, जिसने मुझे आपका दर्शन कराया ॥२७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे इस प्रकार वे (श्रीपुण्यशीलाजी) कहकर, समस्त लोकोंकी स्वामिनी श्रीमिथिलेशललीजीको हृदयसे लगाकर अनेक प्रकारके भोजनों द्वारा बहिनोंके सहित उन्हें भली प्रकार तृप्त किया ॥२८॥

पुनः आचमन करने योग्य जल प्रदान करके वात्सल्य भावमें लीन हुई उन्होंने अनेक प्रकार के मनोहर बाजाओंके घोष पूर्वक श्रीकिशोरीजीका आरती-उत्सव सम्पन्न किया ॥२९॥

पुनस्तत्केलिसाहित्यमर्पयामास सादरम् । विधिनाऽवश्यकं सर्वं दुहित्रे मिथिलापतेः ॥३०॥
समाज्ञप्ता तया पुण्यशीलया जनकात्मजा । चिक्रीडे स्वसृभिः साकं ह्लादयन्तीजगत्त्रयम् ॥३१॥
स्वसृणां भ्रातृभिः क्रीडां पश्यन्त्यारम्भितां मुदा । मन्दं जहास वैदेही भ्रमत्कञ्जकराम्बुजा ॥३२॥
ताः प्रविश्य महाभागा आनन्दाकृष्टमानसा । सुचिरं क्रीडयामास क्रीडन्ती प्रकृतेः परा ॥३३॥
बुक्कादिपुञ्जसंव्याप्ताः प्राणनाथ ! दिशो दश । शोभां प्रपेदिरेऽत्यर्थं श्रीविदेहसुतेच्छया ॥३४॥
जयेति नाकिनां शब्दध्वनिराकर्णितो मुहुः । बर्द्धयन् हृदयोत्साहं पुष्पवृष्टिपुरः सरः ॥३५॥
प्रससाद भृशं तर्हि मैथिली जनकात्मजा । स्वसृणां क्रीडया मृद्वी सहजानन्दरूपिणी ॥३६॥

सख्या तदा प्रेषितया जनन्या प्रेम्णा समाभाष्य निदेशमुक्तम् ।
सीता गृहं पद्मपलाशनेत्रा समावृता स्वसृभिरिन्दुवक्त्रा ॥३७॥

पुनः उन्होंने श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीको आदर सहित विधिपूर्वक फाग उत्सवकी सभी आवश्यक सामग्रियोंको अर्पण किया ॥३०॥

श्रीपुण्यशीलाजीकी आज्ञासे श्रीललीजी तीनों लोकोंको आह्लादित करती हुई सखियोंके साथ फाग खेलने लगीं ॥३१॥

भाइयोंके सहित बहिनोंकी आरम्भकी हुई उस क्रीड़ाको देखती तथा कमल-पुष्पको अपने कमलवत् कोमल हाथमें घुमाती हुई, श्रीविदेहराजकुमारीजू मन्द-मन्द मुस्काने लगीं ॥३२॥

पुनः प्रकृतिसे परे (परब्रह्मस्वरूपा) श्रीविदेहनन्दिनीजू, आनन्दसे मनका आकर्षण हो जाने पर बड़भागिनी बहिनोंमें प्रवेश करके खेलती हुई उन्हें बहुत देर तक फाग खेलाने लगीं ॥३३॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! उस क्रीड़ाके कारण श्रीविदेहराजकुमारीजूकी इच्छा मात्रसे ही दशो दिशायें अबीर-गुलाल आदिसे व्याप्त हो अत्यधिक शोभाको प्राप्त हुईं ॥३४॥

हृदयके उत्साहको बढ़ाती हुई पुष्प वर्षाके सहित, देवताओंकी जयकार ध्वनि बारम्बार सुनाई पड़ने लगीं ॥३५॥ स्वाभाविक आनन्दकी मूर्त्ति, परम कोमल शरीर व स्वभाव वाली श्रीमिथिलेशललीजी बहिनोंकी क्रीड़ासे उस समय अत्यधिक प्रसन्न हुईं ॥३६॥

श्रीअम्बाजीकी भेजी सखी उनकी आज्ञा सुनाकर बहनोंसे घिरी हुई कमल-पत्रके समान विशाललोचना तथा चन्द्रवत् आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द वाली श्रीमिथिलेशदुलारीजीको श्रीअम्बाजीके भवन ले गयीं ॥३७॥

इत्यष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

—❀❀❀—

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

अपने भवन बुलाकर श्रीसुचित्रा अम्बाजी द्वारा मङ्गलानुशासन पूर्वक श्रीललीजीका यथेष्ट सत्कार

श्रीस्नेहपरोवाच ।

मातुरङ्के समासीना सुषमां नतमस्तकाम् । स्वसृभ्यां सहसा वीक्ष्य जगादेषत्स्मितानना ॥१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अद्य यूयं प्रथमतो मत्सकाशमिहागताः । अभिप्रायेण येनाग्रे मातुः स विनिवेद्यताम् ॥२॥

श्रीसुषमोवाच ।

अद्य मे जननीत्युक्त्वा प्रैषयत् खलु सत्वरम् । पुत्र्यो! राज्ञीं समापृच्छ्य नीयतां जनकात्मजा ॥३॥
एतदर्थं वयं प्राप्ता जनन्याऽम्ब ! प्रचोदिताः । सानुकम्पं भवत्याऽऽशु ततोऽनुज्ञा प्रदीयताम् ॥४॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! तां द्रष्टुमिच्छन्त्या त्वरितं गम्यते मया । मयि तन्महती प्रीतिरेताभ्योऽपि गरीयसी ॥५॥
देह्यनुज्ञां कृपारूपे ! गमनाय तदालयम् । आगमिष्यामि तेऽभ्याशे तामुदीक्ष्योरुवत्सलाम् ॥६॥

श्रीसुनयनोवाच ।

हे वत्से ! गम्यतां कामं सुषमामातृमन्दिरम् । तस्यास्तु दर्शनं कृत्वा पुनरायाहि सत्वरम् ॥७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! दोनों बहिनों सहित श्रीसुषमा सखीको अपने आगे सहसा सिर झुकाकर खड़ी देखकर अम्बाजीकी गोदमें बैठी श्रीललीजी, मन्द मुस्काती हुई बोलीं ॥१॥ श्रीललीजी बोलीं:-हे सुषमाजी ! आज आप लोग सबसे पहिले जिस कारणसे आई हों, श्रीअम्बाजीके सामने उसे निवेदन करें ॥२॥

श्रीसुषमाजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी! आज हमारी माताजीने हम लोगोंको यह कहकर भेजा है कि पुत्रियो! तुम लोग श्रीसुनयना महारानीजीसे कहकर श्रीजनकराजदुलारीजीको अपने यहाँ बुला लाओ ॥३॥ हे श्रीअम्बाजी! इसलिये माताजीकी प्रेरणासे हम तीनों यहाँ आई हैं, अत एव कृपा करके आप श्रीललीजीको, हमारे यहाँ पधारनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥४॥

श्रीललीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! श्रीसुचित्राअम्बाजीको देखनेकी इच्छासे मैं शीघ्र उनके यहाँ जा रही हूँ क्योंकि इन पुत्रियोंसे बढ़कर मेरे प्रति उनका प्रेम है ॥५॥

हे कृपारूपे श्रीअम्बाजी ! अत एव कृपा करके आप उनके यहाँ जानेकी हमें आज्ञा प्रदान कीजिये मैं परम वात्सल्यमयी श्रीसुचित्राअम्बाजी का दर्शन करके आपके पास आजाऊँगी ॥६॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:-हे वत्से ! बहुत अच्छा, आप सुषमाकी माताजीके भवनमें पधारें, परन्तु उनका दर्शन करके वापस शीघ्र ही आजाइयेगा ॥७॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

त्वदाज्ञां प्राप्य गच्छामि सुचित्राम्बानिकेतनम् । तदाज्ञया विना मातः कथमागमनं हि मे ॥८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सत्यमुक्तं त्वया वत्से ! चिरञ्जीव सदा सुखम् । सर्वतः पश्य भद्राणि हृदयानन्दवर्द्धिनि! ॥९॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अभिनन्द्य जनन्यैवं समालिङ्ग्य पुनः पुनः । विसृष्टा ताभिरिन्द्वास्या पूर्णापारसुखाकृतिः ॥१०॥
प्रणम्य मातरं भक्त्या प्रसन्नेनान्तरात्मना । जगाम स्वसृभिः सार्द्धं श्रीयशोध्वजमन्दिरम् ॥११॥
स्वसृभ्रातृगणं दृष्ट्वा समवेतमशेषतः । ह्लादयन्ती बभाणेदं विनतं सस्मितं वचः ॥१२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

भ्रातरो हे भगिन्यो मे श्रूयतां यदिहोच्यते । इदानीं श्रीसुचित्राम्बाऽऽजुहाव स्वालये हि माम् ॥१३॥
अतो गच्छत गच्छन्त्या तन्निकेतं मया सह । नूतनानन्दसन्दोहं तदाज्ञापालनं भवेत् ॥१४॥

श्रीस्वसृभ्रातृगण उवाच ।

वयं तत्रानुगच्छामो यत्र यत्र गमिष्यसि । आरामं वा वनं वेश्म शैलं सरितमम्बुधिम् ॥१५॥

श्रीजनकदुलारीजी बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी ! आपकी आज्ञा पाकर मैं सुचित्रा मैयाजीके यहाँ जारही हूँ, पर वहाँसे बिना उनकी आज्ञा पाये कैसे वापस शीघ्र आऊँगी ? ॥८॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:-हे हृदयका आनन्द बढ़ाने वाली ! हे वत्से ! श्रीललीजो ! आप सभी दिशाओंमें मङ्गल ही मङ्गल का दर्शन करें और सुख-पूर्वक बहुत (अनन्त) काल तक जीवें । आपका कहना बिलकुल ठीक है ॥९॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीने चन्द्रमाके समान मुखवाली पूर्ण अनिर्वचनीय सुखस्वरूपा श्रीललीजीके वचनोंका स्वागत करके तथा बारम्बार हृदय लगाकर, सुषमादि पुत्रियोंके सहित उन्हें विदा किया तब श्रीललीजी प्रसन्न हृदयसे बहिनोंके सहित अम्बाजीको प्रणाम करके, श्रीयशध्वज महाराजके मन्दिरको पधारीं ॥१०॥११॥

पुनः सम्पूर्ण बहिन और भाइयोंके दलको एकत्रितहो प्रणाम किया देखकर, उसे आह्लादित करती हुई श्रीललीजी मुस्कान पूर्वक बोलीं:-हे समस्त भाई, बहिनों ! मैं जो कहती हूँ, श्रवण कीजिये । इस समय श्रीसुचित्राअम्बाजीने हमें अपने भवनमें बुलाया है ॥१२॥१३॥

अत एव आप लोग भी मेरे साथ उनके भवनको पधारें । श्रीसुचित्रा अम्बाजीकी आज्ञा का पालन तो नवीन ही सुख का समूह बनेगा ॥१४॥

श्रीललीजूकी आज्ञा को श्रवण करके भाई और बहिनोंका दल बोला:-हे श्रीललीजी! आप वाटिका, वन, भवन, नदी, समुद्र, जहाँ-जहाँ पधारेंगी वहाँ हम चलेंगे ॥१५॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

वाक्यमेतत्समाकर्ण्य हर्षविस्फारितेक्षणा । कृपादृष्टिनिपातेन बभूवाद्भुतशर्मदा ॥१६॥
आव्रजन्तीं सुतां श्रुत्वा स्वसृभिः परिवारिताम् । जनकस्यावनीशस्य सुचित्रा द्वारमागमत् ॥१७॥
प्रत्युद्गम्य विशालाक्षी सीतां सुनयनासुताम् । प्रणतामुरसाऽऽलिङ्ग्य क्रोडमारोप्य हर्षिता ॥१८॥
ततो राजेन्द्रनन्दिन्या गृहीत्वा मृदुलाङ्गुलीम् । पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं न तृप्तिमुपगच्छति ॥१६॥
पुनश्चित्तं समाधाय स्वसृभ्रातृगणान्विताम् । प्रविवेश समादाय सीतामन्तः पुरं प्रति ॥२०॥
विधिमुद्वर्तनस्याथ कृत्वा सा स्नानवेश्मनि । स्नपयित्वा तया साकं तांश्च तान् हर्षनिर्भराः ॥२१॥
कृतस्नाना स्वयं साऽपि समलङ्कृत्य मैथिलीम् । मम प्राणेश! जननी लेभे सुखमनुत्तमम् ॥२२॥
नवीनवस्त्राभरणैः कुमारांश्च कुमारिकाः । अभूषयत्प्रहृष्टात्मा सीताप्रीतिविवृद्धये ॥२३॥
पुनः सिंहासनस्थां तां विधायेन्दुनिभाननाम् । मुदा नीराजयाञ्चक्रे ह्लादयन्ती जनव्रजम् ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! बहिन भाइयोंके दलका यह निश्चय सुनकर श्रीललीजी के नेत्र-कमल प्रफुल्लित हो उठे अत एव उन्होंने अपनी कृपापूर्ण दृष्टि फेंककर उन्हें विलक्षण सुख प्रदान किया ॥१६॥

श्रीजनकजी महाराजकी श्रीललीजी को बहिनों समेत आती हुई श्रवण करके श्रीसुचित्रा अम्बाजी द्वार पर आगयी ॥१७॥

पुनः आगे बढ़कर वे प्रणाम कर चुकीं श्रीसुनयना-महारानीजीकी विशाल-लोचना ललीजी को हृदयसे लगाकर, गोदमें ले, हर्ष को प्राप्त ईहु ॥१८॥

तत्पश्चात् राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी नन्दिनी श्रीललीजीकी कोमल अंगुली पकड़कर उनके श्रीमुखकमलका दर्शन करती हुई, भी वे तृप्त नहीं हो रही थीं ॥१६॥

अपने प्रेमविह्वल चित्तको सावधान करके, श्रीसुचित्रा अम्बाजीने भाई-बहिनों सहित भूमि-कुमारी श्रीललीजीको लेकर अपने अन्तः पुरमें प्रवेश किया ॥२०॥

स्नान गृहमें उबटन लगाकर श्रीललीजीके सहित सभी भाई-बहिनोंको स्नान कराके वे हर्ष निर्भर हो गयीं ॥२१॥

हे श्रीप्राणनाथजू ! मेरी मैया श्रीसुचित्राजी भी स्नान करके श्रीललीजूका सम्यक् प्रकार से शृङ्गार करके सर्वोत्तम सुखको प्राप्त हुईं ॥२२॥

श्रीललीजीकी विशेष प्रसन्नता बढ़ानेके लिये बड़े हर्ष पूर्वक उन्होंने नवीन वस्त्र भूषणोंके द्वारा सभी बालक तथा बालिकाओंका शृङ्गार किया ॥२३॥

पुनः पूर्णचन्द्रमाके सदृश मुखवाली श्रीललीजीको सिंहासन पर विराजमान करके, उन्होंने उपस्थित जन-समूहको आह्लादित करती हुई, आनन्द पूर्वक उनकी आरती की ॥२४॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

राकापतिवदनायै पद्मपत्राम्बकायै लीलाशिशुचरितायै पक्वविम्बाधरायै ।
मन्दस्मितजितशोभाक्षीरनिध्यात्मजायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२५॥
नित्यापरिमितरूपस्नेहशीलक्षमायै नीलाम्बरवृतगात्र्यै दीप्तिमद्भूषणायै ।
सर्वासुभृदविचिन्त्यप्रेममोदालयायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२६॥
शश्वत्प्रकृतिमनोज्ञाशेषबालक्रियायै योगीन्द्रमुनिसुरेन्द्रैर्मृग्यमाणेक्षणायै ।
दीनोद्धरणरतायै स्वालिभिः सेवितायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२७॥
चामीकरनिभचेतोमोहनाङ्गप्रभायै प्रीत्या परिजनवर्गं कृत्स्नमालोकयन्त्यै ।
दिव्ये जगदभिरामे स्वर्णपीठे स्थितायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२८॥
मत्तुष्टिनिरतमत्यै मन्निदेशे स्थितायै स्वातीवमृदुनिसर्गाशेषभूतार्च्चितायै ।
प्रभ्व्यै गलदनुरागस्निग्धसंवीक्षणायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥२९॥

श्रीसुचित्रा अम्बाजी बोलीं:-पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमान मुख, कमलदलके सदृश विशाल नेत्र, पके विम्बाफलके समान लाल अधर, लीलासे शिशु चरित करने वाली, अपनी मन्द मुस्कानसे शोभा रूपी क्षीरसागरकी पुत्री श्रीलक्ष्मीजीको जीतनेवाली, निमि कुलके स्वामी श्रीसीरध्वज-महाराजकी प्यारी पुत्री, श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२५॥

जिनके सदा एक रस रहने वाले असीम रूप, स्नेह, शील, क्षमा, गुण हैं, श्रीअङ्ग नीली साड़ी से ढँका है तथा जिनके सभी भूषण प्रकाशमय हैं, जो सभी प्राणधारियोंकी चिन्तन शक्तिसे परे प्रेम और आनन्दकी भवन स्वरूपा हैं, उन निमिकुलके नाथ श्रीमिथिलेशजी महाराज की परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२६॥

जिनकी समस्त बाल क्रीड़ायें सहज स्वभावसे सदाही मनको हरण करनेवाली हैं, तथा बड़े-२ योगीन्द्र, मुनीन्द्र, सुरेन्द्र भी जिनके दर्शनोंकी खोजमें रहते हैं, जो अभिमान रहित प्राणियोंके उद्धार करनेके लिये सदैव तत्पर और अपनी सखियों द्वारा सेवित हैं, उन निमिकुल नायक श्रीमिथिलेशजी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२७॥

चित्तको मुग्धकर लेने वाली सुवर्णके सदृश जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति है, जो अपने सम्पूर्ण परिकरको प्रेम-पूर्वक देखती हुई चर-अचर सभी प्राणियोंको आनन्द प्रदान करने वाले दिव्य सुवर्णके सिंहासन पर विराजमान हैं, उन निमिकुलके स्वामी श्रीविदेहजी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२८॥ मेरे प्रसन्नता कारक कार्योंमें जिनकी बुद्धि सदा लगी रहती है, तथा जो मेरी आज्ञामें सदा स्थित, अपने अतीव कोमल स्वभावसे सभी प्राणियों द्वारा पूजित एवं जो अत्यन्त नम्रतायुक्त टपकते अनुरागमयी हृदयाकर्षक चितवन वाली हैं, उननिमिकुल नायक श्रीजनकजी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥२९॥

भद्रं छबिजितरत्यै भद्रमम्भोजमुख्यै भद्रं पदजितमृद्व्यै भद्रमुर्वीशपुत्र्यै ।
भद्रं जनकसुतायै शाश्वतं भूमिजायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥३०॥
भद्रं निमिकुलजायै भद्रमीषत्स्मितायै भद्रं जितसुषमायै भद्रमार्द्रालकायै ।
भद्रं हृतदुरितायै पूरितार्त्तेप्सितायै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥३१॥
भद्रं कलपिकवाण्यै हंसगत्यै सुदत्यै भद्रं च सुनयनाहृन्नीरनाथेन्दुमुख्यै ।
भद्रं सततमिहास्तु प्राणिनां प्राणमूर्त्यै भद्रं निमिकुलनाथस्नेहवत्पुत्रिकायै ॥३२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्येवं सा प्रहृष्टात्मा कृत्वा भद्रानुशासनम् । सस्वजे मैथिलीं दोर्भ्यां स्रवदश्रुमुखाम्बुजा ॥३३॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

अद्य पुत्रि! मया ऽऽहूता त्वं चिराहूतिकामया । दिष्टयाऽऽगतासि भद्रं ते हृदयानन्दवर्द्धिनि! ॥३४॥

अपनी छबि (सौन्दर्य) से रतिको विजय करने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, कमलमुखी श्रीललीजूका मङ्गल हो, अपने चरण-कमलोंसे कोमलताको भी विजय करने वाली श्रीललीजी का मङ्गल हो, भूपति-पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो, जनकसुता श्रीललीजूका मङ्गल हो, भूमि-सुता श्रीजनकदुलारीजूका सदा सर्वदा मङ्गल हो, निमिकुलनायक श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्राणप्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३०॥

निमिकुलमें प्रकट हुई श्रीललीजूका मङ्गल हो, मन्द मुस्कान वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, असीम सौन्दर्य को जीतने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, इत्र आदिसे गीली अलकों वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, समस्त सङ्कटोंको हरण करने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, व्याकुल भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, निमिकुलनायक श्रीविदेहमहाराज की परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३१॥

कोयलके समान मधुर वाणी बोलने वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, हंसके सदृश मनोहर चालवाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, कुन्दके सदृश सुन्दर दाँतों वाली श्रीललीजूका मङ्गल हो, श्रीसुनयनामहारानीजूकी हृदयरूपी समुद्रको उछालनेके लिये पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली श्रीललीजू का मङ्गल हो, समस्त प्राणधारियोंके प्राणोंकी मूर्त्ति स्वरूपा श्रीललीजूका सदा ही मङ्गल हो, निमिकुलके स्वामी श्रीमिथिलेशजी महाराजकी परम प्यारी पुत्री श्रीललीजूका मङ्गल हो ॥३२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! इस प्रकार आँसू बहाते हुये मुखकमल वाली श्रीसुचित्रा-अम्बाजीने मङ्गलानुशासन करके मिथिलेशदुलारी श्रीललीजीको अपनी दोनों भुजाओंसे हृदय लगाया ॥३३॥ श्रीसुचित्राअम्बाजी बोलीं:—हे पुत्रि ! बहुत दिनोंसे बुलानेकी इच्छा रखती हुई आज मेरे बुला सकने पर बड़े सौभाग्यसे आप पधारी हैं, अत एव हृदयके आनन्दकी वृद्धि करने वाली है, श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो ॥३४॥

भुङ्क्ष्व भोज्यानि दिव्यानि भ्रातृभिः स्वसृभिर्युता । चतुर्विधानि चन्द्रास्ये! षड्रसैर्विहितानि हि ॥३५॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

अम्ब ! त्वत्पाणिसंस्पृष्टं भोजनं रोचते यथा । न तथाऽन्यकरस्पृष्टमिति सत्यं वदामि ते ॥३६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ताऽनवद्याङ्गी सुचित्रा हर्षगद्गदा । मैथिलीमुरसाऽऽलिङ्ग्य भोक्तुमाज्ञां मुदाऽदिशत् ॥३७॥
सुप्रणीतैः पुनर्ग्रासैः स्वपङ्केरुहपाणिना । सीरकेतुसुतां सीतां तर्पयामास भोजनैः ॥३८॥
कुमार्य्योऽपि कुमाराश्च निमिवंशसमुद्भवाः । आसन् प्रमुदिताः सीतामुखचन्द्रार्पितेक्षणाः ॥३९॥
पीततोयां धरापुत्रीं फलैः पुनरतर्पयत् । प्रदायाचमनं पश्चात् मुखप्रक्षालनं व्यधात् ॥४०॥
सुगन्धलेपनं कृत्वा ददौ ताम्बूलवीटिकाम् । स्वर्णपत्रावृतां तस्यै स्वयं पङ्कजपाणिना ॥४१॥
स्वसृभिर्भ्रातृभिः साकं तर्पितेत्थं विदेहजा । जगाद श्लक्ष्णया वाचा सुचित्रां प्रणता सती ॥४२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

शीघ्रमायाहि पुत्रीति जनन्याऽहं प्रभाषिता । त्वन्निदेशं समाकर्ण्य भवतीं समुपस्थिता ॥४३॥

हे चन्द्रमुखीजी ! आप अपने सभी भाई-बहिनोंके साथ छः रसोंसे युक्त, चारों प्रकारके दिव्य भोजनोंको पाइये ॥३५॥

श्रीजनकदुलारीजी बोलीं:-हे अम्बाजी ! आपके करकमलोंका स्पर्श किया हुआ भोजन मुझे जैसा रुचिकर प्रतीत होता है, वैसा किसी अन्यके हाथका नहीं । यह मैं आपसे यथार्थ कह रही हूँ केवल बड़ाई ही नहीं करती ॥३६॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्यारे ! श्रीललीके ऐसा कहने पर दोष रहित अङ्गोंवाली श्रीसुचित्राअम्बाजीने श्रीमिथिलेशललीजीको हृदयसे लगाकर भोजन करनेके लिये हर्ष पूर्वक आज्ञा प्रदान की ॥३७॥

पुनः अपने हस्त-कमलोंसे बनाये हुये कवलोंके द्वारा उन्होंने श्रीललीजीको आदर पूर्वक तृप्त किया ॥३८॥ निमिवंशी-कुमार और कुमारिकाओंने अपने-अपने युगल नेत्र रूपी कमलोंको श्रीललीजीके मुख-चन्द्रको अर्पण करके, अतीव आनन्द प्राप्त किया ॥३९॥

भूमिसुता श्रीजनकललीजूके जल पीलेने पर श्रीसुचित्रा अम्बाजीने उन्हें फलोंसे तृप्त कराया तत्पश्चात् आचमन कराके उनका श्रीमुखारविन्द धोया ॥४०॥

पुनः इत्र आदि सुगन्धित द्रव्योंका लेपन करके स्वयं अपने कर-कमल द्वारा सोनेके पत्रसे लपेटी हुई पानकी बीरी श्रीललीजीको समर्पित किया ॥४१॥

इस प्रकार बहिन भाइयोंके सहित तृप्त की हुई विदेह-राजकुमारी श्रीललीजी श्रीसुचित्रा अम्बाजीको प्रणाम करके, बड़ी मीठी वाणीसे बोलीं ॥४२॥

हे श्रीअम्बाजी ! आपकी आज्ञा सुनकर मैं आपके पास आगयी, परन्तु माताजीने मुझसे कह दिया था कि 'हे पुत्रि ! आप शीघ्र ही चली आना ॥४३॥

इदानीं पूरिताज्ञायास्तव प्रीतिवशं गता । मातुरप्यन्तिके गन्तुं जायते नो मतिर्मम ॥४४॥
लालनं पालनं प्रीत्या यथा मे कुरुषे सदा । न तथा निजपुत्रीणां न पुत्राणां कदाचन ॥४५॥
यद्यदेवोत्तमं वस्तु भाति शंदं मनोहरम् । तत्तत्प्रदीयते मह्यमेकस्यै युक्तितस्त्वया ॥४६॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

अयि वत्से! चिरञ्जीव सर्वदा तेऽस्त्वनामयम् । गोचराण्येव भद्राणि सर्वतः सन्त्वहर्निशम् ॥४७॥
अवाच्यं मे सुखं दत्तं त्वया पुत्रि ! स्वभाषितैः तव रक्षाविधानं हि कुर्युः सर्वे सुरेश्वराः ॥४८॥
इदानीं गम्यतां वत्से! मातुरन्तःपुरं त्वया । दिदृक्षयाऽऽकुला राज्ञी यतस्ते शान्तिमाप्नुयात् ॥४९॥
महाराज्ञी महाभागा कृतकृत्या न संशयः । तव मातृपदं लब्ध्वा सर्वलोकनमस्कृतम् ॥५०॥
महोदारस्वभावा सा महावात्सल्यनिर्भरा । सर्वभूतहिते रक्ता सर्वजीवानुकम्पिनी ॥५१॥
सर्वदोत्तानहस्ता च धर्मज्ञा धर्मचारिणी । अपराधिजनप्रीता निर्व्याजकरुणापरा ॥५२॥

यद्यपि इस समय मैं आपकी आज्ञाको पूरी भी कर चुकी हूँ तथापि आपके प्रेमके अधीन होने के कारण श्रीअम्बाजीके पास जानेके लिये मेरा विचार हो नहीं रहा है ॥४४॥

हे श्रीअम्बाजी ! जैसे प्रेमपूर्वक आप मेरा लाड़ (प्यार) और पालन सदा करती रहती हैं, वैसे न अपनी पुत्रियोंका और न पुत्रोंका कभी करती हैं ॥४५॥

और जो जो वस्तु आपको सबसे श्रेष्ठ, कल्याणकारी व मनोहर प्रतीत होती है, उसे युक्तिपूर्वक, केवल हमें ही आप दिया करती हैं ॥४६॥

श्रीसुचित्रा अम्बाजी बोलीं:—हे वत्से ! आप अनन्त काल तक जीवें और सदा ही स्वस्थ बनी रहे तथा आपकी सभी इन्द्रियोंको सभी ओरसे रात-दिन सतत काल मङ्गल ही मङ्गल प्राप्त रहे ॥४७॥ हे श्रीललीजी ! आपने अपने सुन्दर अमृत मय वचनोंके द्वारा मुझे जो सुख प्रदान किया है, उसे मैं वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ, सभी देवताओंके स्वामी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुरेश आदि सदैव आपकी रक्षा करें ॥४८॥

हे वत्से ! अब आप अपनी श्रीअम्बाजीके अन्तःपुर पधारें, जिससे आपके दर्शनोंके लिये व्याकुल हुई श्रीमहारानीजीको शान्ति प्राप्त हो ॥४९॥

हे श्रीललीजी! सभी लोकोंसे नमस्कृत आपकी माताका पद प्राप्त कर, श्रीसुनयनामहारानीजी निःसन्देह परम सौभाग्य सम्पन्ना तथा कृतकृत्य हैं ॥५०॥

वे श्रीमहारानीजी बड़े ही उदार स्वभाव वाली, वात्सल्य भावसे पूर्ण भरी हुई, सभी प्राणियोंके हितमें तत्पर और सभी जीवों पर दया करने वाली हैं ॥५१॥

उनका हस्त कमल दान देनेमें तत्पर रहनेके कारण सदा ही उठा रहता है, वे धर्मके रहस्य को पूर्ण रूपसे समझने वाली तथा धर्मको आचरणमें लाने वाली हैं, वे अपराधी जनों पर भी प्रसन्न रहती हैं, और बिना किसी कारणके ही दया करनेवाली हैं ॥५२॥

तस्यास्त्वं जीवनाधारस्तपोदानक्रियाफलम् । त्वददर्शनजं दुःखं न सोढुं शक्ष्यति क्षरणम् ॥५३॥
यया कान्तिमती चैव सुभद्रा च सुदर्शना । दृश्यन्ते स्निग्धया दृष्टया तया दृश्यामहै वयम् ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वाऽश्रुपूर्णाक्षी समालिङ्ग्य विदेहजाम् । लालनैर्विविधैर्भूयो लालयित्वा व्यसर्जयत् ॥५५॥

श्रीशिव उवाच ।

य इमां नित्यमव्यग्रः कथां परमपावनीम् । पठतीह नरो भक्त्या स याति पदमव्ययम् ॥५६॥

हे श्रीललीजी ! उन श्रीसुनयना महारानीजीकी आप जीवनकी आधार तथा तप, दान, क्रियाओंकी फलस्वरूपा हैं, अत एव वे क्षरण भर भी आपके वियोगजनित दुःखको सहन करनेके योग्य नहीं है ॥५३॥

हे श्रीललीजी! आप जिस स्नेहमयी दृष्टिसे श्रीकान्तिमतीजी, श्रीसुभद्राजी और श्रीसुदर्शनाजी को अवलोकन करती हैं, उसी प्रेम मयी दृष्टिसे हम सभीको अवलोकन करती रहें ॥५४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! इस प्रकार अश्रुपूर्ण नेत्र हुई श्रीसुचित्रा अम्बाजीने अनेक प्रकारसे बारम्बार प्यार करके, भली-भाँति हृदयसे लगाकर श्रीविदेह महाराजकी पुत्री श्रीललीजी को विदा किया ॥५५॥ भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती! जो एकाग्रचित्त होकर इस परम पावनी कथाका प्रेमपूर्वकनित्य पाठ करता है, वह श्रीललीजीके अविनाशी परम पद श्रीसाकेत धामको प्राप्त होता है ॥५६॥

इत्येकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

इति मासपारायणे द्वाविंशतितमो विश्रामः ॥२२॥

इति-नवाह्नपारायणे षष्ठमो विश्रामः ॥६॥

—❀❀❀—

अथाशीतितमोऽध्यायः ।

चम्पक वनमें श्रीकिशोरीजी की कन्दुक लीला तथा मुरली सर उत्पत्ति
सहित तन्माहात्म्य वर्णन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

मैथिली स्वालयं गत्वा विह्वलां निजमातरम् । अभिवाद्य प्रहृष्टात्मा बभूवाद्भुतदर्शना ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

विह्वलां तां समालोक्य मातरं जनकात्मजा । अभिप्रायेण वै केन मुदा चक्रेऽभिवादनम् ॥२॥
एतद्रहस्यमाख्याहि कृपया चन्द्रशेखर ! । दुःखे प्रसन्नताभावः किमर्थं व्यज्यते तया ॥३॥

श्रीशिव उवाच ।

इयमात्मा समाख्याता सर्वेषामेव देहिनाम् । वल्लभः खलु सर्वस्मात्स एव परिकीर्त्तितः ॥४॥
तस्मिंस्तुष्टे ऽखिलं तुष्टं मुखनेत्रादिकं भवेत् । अप्रसन्ने ऽप्रसन्नं हि तस्मिन्नेवात्मनि ध्रुवम् ॥५॥
तस्मात्सा किल सर्वात्मा प्रसन्नमुखपङ्कजा । दृग्गोचरी भवत्यग्रे दुःखितानां विशेषतः ॥६॥
तत्प्रसन्नं समालोक्य मुखचन्द्रं कृपानिधेः । सर्वाणि दुःखजालानि नाशमायन्ति तत्क्षणम् ॥७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी श्रीसुचित्रा अम्बाजीके यहाँसे विदा हो अपने महलको पधारीं और अपनी विह्वला श्रीअम्बाजीको बड़ी प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करके उन्हें अपना आश्चर्यप्रद दर्शन प्रदान किये ॥१॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:-हे प्यारे! अपनी श्रीअम्बाजीको विह्वल देखकर श्रीजनकराजदुलारीजीने उन्हें प्रसन्नता पूर्वक क्यों प्रणाम किया ? ॥२॥

हे श्रीचन्द्रशेखर (चन्द्रमाको अपने सिर पर धारण करने वाले) नाथ ! आप कृपया इस रहस्यको बतलाइये, कि श्रीललीजी दुःखमें प्रसन्नताका भाव क्यों प्रकट करती हैं ? ॥३॥

श्रीशिवजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीललीजी सभी देहधारियोंकी आत्मा कही गयी हैं और आत्मा को ही निश्चय करके सबसे अधिक प्रिय कहा जाता है ॥४॥

आत्माके प्रसन्न होने पर मुख, नेत्र आदि सभी अङ्ग प्रसन्न हो जाते हैं और उसकी अप्रसन्नतामें सभी अङ्ग निश्चय ही दुखी रहते हैं ॥५॥

इस हेतु सभीकी आत्मस्वरूपा वे श्रीललीजी, विशेष करके दुःखी लोगोंको प्रसन्न कमलमुखी होकर ही दर्शन प्रदान करती हैं क्योंकि कृपानिधि श्रीललीजूके प्रसन्न मुख-चन्द्रमाका दर्शन करके, सम्पूर्ण दुःख समूहोंका नाश तत्क्षण हो जाता है ॥६॥७॥

अप्रसन्नं मुखं दृष्ट्वा तस्याश्चन्द्रमनोहरम् । ब्रह्मानन्दो ऽपि विलयं तूर्णमेवाधिगच्छति ॥८॥
एतस्मात्कारणाद्भद्रे ! दुःखितानां विशेषतः । दृग्गोचरी भवत्यग्रे प्रसन्नवदना सती ॥९॥
तां तु सोत्सङ्गमादाय व्यपास्तविरहव्यथा । आचुचुम्ब मुखाम्भोजं परमानन्दनिर्भरा ॥१०॥
सत्कृतिं मम सा मातुर्वर्णयित्वा सविस्तराम् । श्रीचम्पकवनं गन्तुं स्वाभिलाषां न्यवेदयत् ॥११॥
परिरभ्य महाराज्ञ्या सुनयनाख्ययाऽम्बया । श्रीचम्पकवनं सीता समाज्ञप्ता ततो ययौ ॥१२॥
अनुजग्मुस्तदा तां वै स्वसारो भ्रातरस्तथा । इन्द्रियाणि यथा चित्तं यथा छाया शरीरिणम् ॥१३॥
चन्द्रवक्त्रा विशालाक्षी रतिकामस्मयापहाः । अबोधवयसोपेता महामाधुर्यमण्डिताः ॥१४॥
दिव्याभरणवस्त्राढ्या दिव्याङ्गा दिव्यरोचिषः । दिव्यरूपगुणोपेता दिव्यमालाविभूषिताः ॥१५॥
अनवद्याः सुखागाराः सर्वभूतमनोहराः । निमिवंशकुमार्य्यश्च निमिवंशकुमारकाः ॥१६॥
जानकीचरणाम्भोजमत्तचित्तषडङ्घ्रयः । बालक्रीडासमासक्ताः पतितोद्धरणेक्षणाः ॥१७॥

और उनके चन्द्रमाके समान आह्लादकारी, प्रकाशमय मुखारविन्दका अप्रसन्न मुद्रामें दर्शन करके ब्रह्मानन्द भी तत्क्षण लुप्त हो जाता है ॥८॥

हे कल्याण-स्वरूपे ! इसी कारण दुखी लोगोंके सामने प्रायः श्रीललीजी प्रसन्न मुख होकर ही दर्शन प्रदान करती हैं ॥९॥ श्रीसुनयनाअम्बाजी श्रीललीजोके प्रसन्न मुखारविन्द का दर्शन करके, वियोग-जनित पीड़ा से रहित हो, परमानन्द (भगवदानन्द) से परिपूर्ण प्राप्त हो उनके श्रीमुखकमल को चूमने लगीं ॥१०॥

हमारी माता श्रीसुचित्रा अम्बाजीके सत्कारका विस्तार पूर्वक श्रीअम्बाजीसे वर्णन करके श्रीललीजीने चम्पकवन पधारनेकी इच्छा निवेदन की ॥११॥

उन्हें महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने हृदय लगाकर आज्ञा प्रदान की, अस्तुश्रीललीजी वहाँ से चम्पक-वन पधारीं ॥१२॥

जैसे इन्द्रियाँ चित्तका और छाया शरीरका अनुगमन करतीं हैं उसी प्रकार सभी भाई बहिनें श्रीललीजूके पीछे-पीछे प्रस्थित हुईं ॥१३॥

वे सभी चन्द्रमाके समान प्रकाश मय मुख, विशालनेत्र, रति और काम देवके अभिमान को दूर करने वाले, लौकिक ज्ञान-रहित अवस्थासे युक्त, महान् सौन्दर्यसे भूषित ॥१४॥ दिव्य भूषण वस्त्रोंसे युक्त दिव्य शरीर, दिव्यकान्ति, दिव्यरूप-गुणसे संयुक्त, दिव्यमालाओंसे अलंकृत ॥१५॥

सब दोषों (त्रुटियों) से रहित, सुखके मन्दिर, सभी प्राणियोंके मनको मुग्ध कर लेने वाले निमि वंशी कुमारी और कुमार ॥१६॥

श्रीजनकदुलारीजूके श्रीचरण-कमलोंमें भौंरोंके समान मतवाले, बालक्रीड़ामें अत्यन्त आसक्त अपने दर्शन मात्रसे पतित जीवोंका उद्धार करने वाले ॥१७॥

त्रिविधानिलसंजुष्टं कृष्णसारमृगान्वितम् । द्विजैरनेकवर्णैश्च परितः परिकूजितम् ॥१८॥
प्राविशन् चम्पकारण्यं रुक्मप्राकारवेष्टितम् । सद्मश्रेणिभिराकीर्णं वर्तुलाकारचत्वरम् ॥१९॥
तत्रत्ययाऽऽद्यया सख्या सत्कृताः परया मुदा । लालिताः सह जानक्या सहजानन्दरूपया: ॥२०॥
चिन्तामणिमये रम्ये चत्वरे सन्निवेशिताः । सर्वमध्यगता रेजे वैदेही विपुलेक्षणा ॥२१॥
ऊचुः करपुटं बद्ध्वा सादरं श्लक्ष्णया गिरा । पश्यन्तीं स्निग्धया दृष्ट्या सुखराशिमिदं वचः ॥२२॥

कुमारी-कुमारा ऊचुः ।

सरसिजायतलोचने ! चन्द्रविम्बानने! सुनयनाप्रियनन्दिनि ! प्रेमवारांनिधे ! ।
करुणयाऽद्य विधीयतां कोऽपि लीलोत्सवो ह्यभिनवो भवमोचनो मोदपुञ्जस्त्वया ॥२३॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

शृणुत संयतचेतसा भ्रातरश्चानुजा वच इदं मम शोभनं वाञ्छितार्थप्रदम् ।
कुरुत खल्विह साम्प्रतं कन्दुलीलोत्सवो मम मतं यदि रोचते वो मदीहापराः ! ॥२४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदुक्तं वचः श्रुत्वा तनया निमिवंशजाः । हर्षपूरितसर्वाङ्ग्यो मातृदासीर्व्यलोकयन् ॥२५॥

शीतल, मन्द, सुगन्ध तीनों प्रकारकी वायुओंसे पूर्णसेवित, काले रङ्गके मृगोंसे युक्त, अनेक प्रकार के पक्षियों द्वारा चारो ओरसे शब्दायमान ॥१८॥

सुवर्णके कोटसे घिरे हुये, महलोंकी पङ्क्तियोंसे सुशोभित गोल चबूतरे वाले श्रीचम्पक वन पहुँच गये । वहाँकी प्रधान सखीने सहज स्नेह स्वरूपा श्रीजनकराजदुलारीजूके सहित सभीका परमहर्ष पूर्वक सत्कार और प्यार किया, पुनः चिन्तामणि मय चबूतरे पर भली भाँति बैठाया, विशाल लोचना श्रीललीजी सबके मध्यमें सुशोभित हुईं ।१९॥२०॥२१॥

उस समय सभी निमिवंशी राजकुमारी तथा राजकुमार हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बड़ी मधुर वाणीसे, अत्यन्त स्नेहपूर्ण दृष्टिसे अपनी ओर देखने वाली, सुखराशि श्रीललीजीसे यह वचन बोले ॥२२॥

हे कमलके समान विशाल मनोहर नेत्र और चन्द्र विम्बके सदृश प्रकाशमय, उज्ज्वलमुख वाली, प्रेमकी समुद्रस्वरूपा श्रीललीजी ! आज आपको कृपा करके संसाराकार वृत्ति छुड़ा देने वाला, आनन्द पुञ्ज स्वरूप, कोई नवीन ही लीला-उत्सव करना चाहिये ॥२३॥ श्रीजनकराज-दुलारीजी बोलीं:-मेरी इच्छाको प्रधान माननेवाले हे समस्त भाई बहिनों! आप लोग वाञ्छित मनोरथको प्रदान करनेवाले, मेरे शुभ वचनोंको एकाग्रचित्त होकर श्रवण कीजिये, यदि मेरी सम्मति आप लोगोंको स्वीकार हो तो, आज इस चम्पक वनमें गेंद लीला कीजिये ॥२४॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीः-हे प्यारे! श्रीललीजूके कहे हुये इस वचनको श्रवण करके हर्षसे पूर्ण सभी अङ्ग हुये, वे निमिवंशके कुमारी-कुमार श्रीअम्बाजीकी दासियोंकी ओर देखने लगीं ॥२५॥

ताभिश्च कन्दुकान् रम्यान् प्रदाय मुदितात्मना । विशाले चत्वरे नीताः स्फाटिके चारुचित्रिते ।२६।
एकभागे स्वसारश्च द्वितीये भ्रातरः स्थिताः । सम्मुखे मैथिली पीठे रराजेन्दीवरप्रभे ॥२७॥
अनुज्ञाता धरापुत्र्या तास्ते प्रकृतिशोभनाः । विचक्रुः कान्दुकीं लीलां वीक्षमाणास्तदिङ्गितम् ।२८।

श्रीलक्ष्मीनिधिरुवाच ।

एताभिर्निर्जिताः सर्वे वयं कन्दुकलीलया । सोपहासं कृपाशीले ! तन्न सोढ्वा सुखं हि मे ॥२९॥
अत एव समासाद्य पक्षमस्माकमद्य वै । स्वसृपक्षं पराजित्य पूर्णकामान्विधत्स्व नः ॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्तं तदा सीता सुस्मिताऽनुजभाषितम् समाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं सादरं तमथाब्रवीत् ॥३१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

यथेष्टं ते विधास्यामि भ्रातस्त्वं धैर्य्यवान्भव । हसिष्यसि तथैवैता यथेदानीं हसन्ति वः ॥३२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्त्वाऽनवद्याङ्गी श्रीसीता भ्रातृवत्सला । भ्रातॄणां पक्षमाविश्य चिक्रीड स्वसृभिः सह ॥३३॥
क्रीडन्तीं तां समालोक्य विमानस्थाः सुरात्मजाः । गर्हमाणाः स्वमात्मानं शशंसुर्निमिवंशजाः ॥३४॥

श्रीअम्बाजीकी वे दासियाँ उन्हें सुन्दर गेंदोंको प्रदान करके चित्रकारी किये हुये स्फटिक-मणिके मनोहर चबूतरे पर ले गयीं ॥२६॥

एक भागमें बहिनें और दूसरे में भाई खड़े हुये तथा नीलकमलके समान श्याम प्रकाशमय सिंहासन पर सम्मुख श्रीमिथिलेशदुलारी श्रीललीजी विराजमान हुई ॥२७॥

सहज स्वभावसे शोभायमान वे सभी भाई और बहिनें, भूमिपुत्री श्रीललीजूकी आज्ञा पाकर, उनका संकेत देखते हुये गेंद खेलने लगीं ॥२८॥

श्रीलक्ष्मीनिधि भैया बोलेः—हे कृपा मय स्वभाव वाली श्रीललीजी! इन बहिनोंने उपहास-पूर्वक गेंद लीला द्वारा हम सभीको जीत लिया है, अपनी उस हार और इनकी जीतको सहन करके मुझको सुख नहीं है ॥२९॥ अत एव आप आज हमारे पक्षमें आकर, बहिनोंके पक्षको हरा कर हम भाइयोंका मनोरथ पूर्ण कीजिये ॥३०॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं—हे प्यारे ! अपने छोटे भैया श्रीलक्ष्मीनिधिजूके इस वचनको श्रवण करके सुन्दर, मुस्कान वाली श्रीललीजी, आदर पूर्वक उनसे यह मधुर-वचन बोलीं ॥३१॥ हे भैया ! धैर्य को धारण कीजिये, जैसा तुम चाहते हो मैं वैसा ही करूँगी, जैसे इस समय ये बहिनें हरा देनेके कारण तुम्हारी हँसी कर रही हैं, उसी प्रकार इनको हरा देने पर तुम भी हँस लेना ॥३२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—प्यारे ! भाई पर वात्सल्य रखने वाली सर्वाङ्ग सुन्दरी श्रीललीजी इस प्रकार आश्वासन देकर भाइयोंके पक्षमें प्रविष्ट हो बहिनोंके साथ आनन्द पूर्वक गेंद खेलने लगीं ॥३३॥ विमानोंमें बैठी देवकन्यायें निमिवंशकुमारियोंके साथ गेंद खेलती हुई श्रीललीजीका दर्शन करके अपने आपको धिक्कारती हुई निमिवंशकुमारियोंकी प्रशंसा करने लगीं ॥३४॥

पारिजातप्रसूनानां वृष्टिं चक्रुः सुराङ्गनाः । परमाह्लादसंयुक्ता बभूवुः प्राप्तदर्शनाः ॥३५॥
अजयत्स्वसृपक्षं सा बन्धुसन्तोषसिद्धये । क्रीडया कन्दुकस्याथ सर्वभूतात्मसाक्षिणी ॥३६॥
ततः प्रहर्षिताः सर्वे भ्रातरः कामविग्रहाः । वादयन्तः करतालं जहसुस्ता दरस्वनाः ॥३७॥
नृत्यलीलां मुदा चक्रुः पुनस्ते स्वसृभिर्युताः । वादयन्त्यां धरापुत्र्यां मुरलीं विश्वमोहिनीम् ॥३८॥
स्वसृभ्रातृब्रजं दृष्ट्वा पिपासासंप्रपीडितम् । दासीश्च विह्वलाः सर्वास्तर्हि चिन्तासमन्विताः ॥३९॥
किञ्चित्पूर्वं ततो गत्वा प्राक्षिपन्मुरलीं भुवि । नित्याभिनवचित्केलिः स्वहस्ताज्जनकात्मजा ॥४०॥
तन्मुखाच्छिद्रमेवाभूद्धरण्यां चतुरस्त्रकम् । तस्मात्किलोत्थितं तोयं निर्मलं सुधयोपमम् ॥४१॥
पश्यन्तीनां च स्वसॄणां भ्रातॄणां पश्यतां क्षणात् । अम्बुपूर्णं सरो दिव्यं प्रबभूव मनोहरम् ॥४२॥
तज्जलेन पिपासार्त्ति जहुस्ते ता मुदान्विताः । मैथिलीदर्शनानन्दा अनुजाः कौतुकान्विताः ॥४३॥

श्रीशिव उवाच ।

देवा ब्रह्मान्तिकं गत्वा पप्रच्छुर्विनयान्विनाः । किं नाम सरसस्तस्य सीतया यद्विनिर्मितम् ॥४४॥

देव-स्त्रियाँ उनका दर्शन करके परम आह्लादसे पूर्ण हो गयीं अतः कल्प वृक्षके फूलोंकी वर्षा उन पर करने लगीं ॥३५॥ अपने भाइयोंके सन्तोषके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंकी आत्माकी साक्षी (अन्तर्यामिनी)स्वरूपा श्रीललीजीने, गेंद-लीलाके द्वारा बहिनोंकी टोलीको जीत लिया ॥३६॥

तब कामदेवके समान सुन्दर स्वरूप तथा शङ्खके सदृश स्वर वाले, परम हर्षको प्राप्त हुये वे सभी भैया हाथोंकी तालियाँ बजाते हुये बहिनोंकी हँसी उड़ाने लगे ॥३७॥

पुनः भूमि पुत्री श्रीललीजूके विश्वमात्रको मुग्ध कर लेनेवाली मुरली वजाते हुये बहिनों के सहित सभी भैया, नृत्य-लीला करने लगे ॥३८॥

उस समय बहिन-भाइयोंके दलको प्याससे पूर्ण-पीड़ित और दासियोंको चिन्तायुक्त हुई किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ सी देखकर नित्य नवीन चैतन्यमयी लीला करने वाली श्रीजनकजी महाराजके यहाँ पुत्री भावको प्राप्त हुई श्रीललीजीने, वहाँसे कुछ पूर्वकी ओर जाकर अपने हस्त-कमलसे मुरलीको पृथिवी पर छोड़ दी ॥३९॥४०॥ उस मुरलीकी नोकसे भूमिमें चार कोण वाला एक छिद्र हो गया, उससे अमृतके समान प्रभावशाली स्वच्छ जल निकल आया ॥४१॥

बहिन-भाइयोंके देखते-देखते मुरलीकी नोकसे बना हुआ छिद्र क्षण-मात्रमें लोकोत्तर (लोकसे विलक्षण) प्रभाव युक्त, मनोहर, जलपूर्ण सरोवर बन गया ॥४२॥

श्रीमिथिलेशललीजूके दर्शनोंमें ही आनन्द माननेवाले वे सभी भाई-बहिन आश्चर्य युक्त हो, उस सरोवरके जलसे अपनी प्यासकी पीड़ा दूर करने लगे ॥४३॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीललीजूकी मुरली द्वारा उस सरोवरके बन जाने पर देवता श्रीब्रह्माजीके पास जाकर विनयपूर्वक पूछने लगेः—हे श्रीविधाताजी! श्रीजनकदुलारीजूके निर्माण किये हुये उस सर (तालाब) का क्या नाम प्रसिद्ध होगा ? ॥४४॥

किं महत्त्वं च किं धातस्तदाचक्ष्व कृपामय ! एतदर्थं वयं प्राप्ताः सकाशं ते पितामह ! ॥४५॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

मुरल्या सम्भवो यस्मात्तस्मात्तन्मुरलीसरः । नाम्नाऽनेनैव विबुधास्त्रिलोक्यां ख्यातिमेष्यति ॥४६॥
सुपुण्यं दर्शनं तस्य स्पर्शनं पापनाशनम् । मज्जनं हृत्तमोहारि पानं प्रेमप्रभावनम् ॥४७॥
नित्यं निषेवणं तस्य पराभक्तिप्रदायकम् । लब्धायां नेह वै यस्यां दुर्लभं चास्ति किञ्चन ॥४८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं बहुविधं श्रुत्वा माहात्म्यं द्रुहिणोदितम् । त्रिदशास्तस्य सरसो देवलोकमथागमन् ॥४९॥
बह्वादरेण वैदेही पूजिता स्वसृबन्धुभिः । मातृदासीभिरानीता गीयमाना ततो गृहम् ॥५०॥

उसकी महिमा क्या होगी ? उसे आप वर्णन कीजिये । हे कृपामय, श्रीविधाताजी ! इसी रहस्य को जानने के लिये, हम लोग आपके पास आये हैं ॥४५॥

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर श्रीब्रह्माजी बोले:—वह सरोवर श्रीललीजीकी मुरलीसे प्रकट हुआ है, अत एव तीनों लोकोंमें वह "मुरलीसर" के नामसे प्रसिद्ध होगा ॥४६॥

उसके दर्शनोंसे उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होगी, और स्पर्श करनेसे समस्त पापों का नाश होगा, तथा उसमें स्नान करनेसे हृदयका अन्धकार दूर होगा एवं उसका जल पीनेसे भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रेमकी उत्पत्ति होगी ॥४७॥

उस सरोवर का नित्य सेवन पराभक्तिको प्रदान करने वाला होगा, जिसके प्राप्त हो जाने पर त्रिलोकीमें और कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥४८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार उस सरोवरकी अनेक प्रकारकी कही हुई महिमाको सुनकर देवता, देवलोकको पधारे ॥४९॥

इधर बहिन-भाइयोंके द्वारा बहुत ही आदर पूर्वक पूजित हो तथा उनके यशोगान करते हुये श्रीसुनयनाअम्बाजीकी दासियाँ, विदेहराजदुलारी श्रीललीजीको उस चम्पक वनसे महलको ले गयीं ॥५०॥

इत्यशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः ।

श्रीकिशोरीजीके पञ्चवर्षीय जन्मोत्सव में नर्तकी वेषा श्रीशचीजीका आगमन
तथा गान मिष श्रीकिशोरीजीका स्तवन ।

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अथ स्वयं पुण्यमये मुहूर्ते तिथौ शुभायां सुदिने शुभर्क्षे ।
पुरोहितो भूषयितुं कुलस्य समस्तविद्याभिरियेष सीताम् ॥१॥

हूत्यागते सर्वसुहृत्समाजे विप्रर्षिवृन्दे परिमोदमाने ।
मुदा शतानन्द उदारतेजा वाण्यादिपूजां समकारयत्सः ॥२॥

ततोऽक्षरारम्भविधिं विधाय प्रवर्तमाने कलगानवाद्ये ।
गुरुर्गृहीत्वा क्षितिजाकराब्जं जग्राह लक्ष्मीनिधिपाणिपद्मम् ॥३॥

विधिं स तेनापि च कारयित्वा प्रचक्रमे कारयितुं कृतार्थः ।
सुतैः सुताभिश्च महामुनीन्द्रो नृपानुजानां तममोघसेव ! ॥४॥

गृहं समासादितदक्षिणो ऽसौ जगाम तुष्टेन हृदा महात्मा ।
राज्ञ्या समभ्यर्च्चितपादपद्मो गुरुर्विदेहाधिपवंशजानाम् ॥५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! तदनन्तर कुलपुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजने श्रीललीजीको समस्त विद्याओंसे भूषित करनेकी स्वयं इच्छाकी, तदनुसार पुण्य-मय शुभमुहूर्त, शुभ तिथि, शुभ दिन, तथा शुभ नक्षत्रमें आमन्त्रणके द्वारा आये हुये समस्त सुहृद-समाज और ब्राह्मण-ऋषि वृन्दोंके मुदित होते हुये उदारतेज वाले श्रीशतानन्दजी महाराजने हर्षपूर्वक श्रीसरस्वतीजी आदिकी पूजा करवायी ॥१॥२॥

तत्पश्चात् अत्यन्त मनोहर मङ्गलमय गान-वाद्यके प्रारम्भ हो जाने पर गुरु श्रीशतानन्दजी महाराजने सर्व प्रथम भूमि-सुता श्रीललीजूका हस्तकमल पकड़कर उनके द्वारा अक्षरारम्भ विधि कराके श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाका अक्षरारम्भ कराया ॥३॥

कभी निष्फल न जाने वाली सेवा वाले, हे श्रीप्राणनाथजू ! श्रीलक्ष्मीनिधि भैयासे अक्षरारम्भ विधि कराके, कृतार्थताको प्राप्त हुये श्रीशतानन्दजी महाराज श्रीविदेहमहाराजके भाइयोंके पुत्र-पुत्रियोंसे भी अक्षरारम्भ विधि कराने लगे ॥४॥

श्रीसुनयना अम्बाजी द्वारा चरण-कमलों की पूजा होजाने पर, श्रीविदेह महाराजके कुलके सभी उत्पन्न बालक-बालिकाओंके गुरु महात्मा श्रीशतानन्दजी महाराज दक्षिणा प्राप्त करके बड़े प्रसन्न हृदयसे अपने मन्दिर को पधारे ॥५॥

दानेन मानेन समर्च्चनेन स्तवेन भक्त्या ह्यभिवादनेन ।
आबालवृद्धाः पुरुषाः स्त्रियश्च प्रतोषितास्तुर्यविधा नृपेण ॥६॥

जयेति शब्दध्वनिरन्तरिक्षे पाताललोके भुवि संप्रविष्टा ।
तेषां तदाऽऽह्लादकरी जनानामभूद्भृशं स्थावरजङ्गमानाम् ॥७॥

स्वल्पेन कालेन विदेहपुत्र्याः समस्तविद्यास्वतिकौशलं सः ।
निरीक्ष्य पद्मोद्भवसूनुसूनुर्मुग्धोऽपतद्दुस्तर कौतुकाब्धौ ॥८॥

श्रीशिव उवाच ।

न चित्रमेतच्छृणु शैलपुत्रि ! श्रीभूमिजायां जनकात्मजायाम् ।
वेदास्तु निःश्वासमया हि यस्यास्तस्यां परेषां परवल्लभायाम् ॥९॥

वाचस्पतित्वं यदपाङ्गदृष्ट्या संप्राप्यते देवि ! निरक्षरैश्च ।
विडम्बनं तत्पठनं मुनीनां मतेन मर्यादनिबन्धनाय ॥१०॥

अवाच्यमानन्दमवाप राजा नैपुण्यमालोक्य तदात्मजायाः ।
दानं दिशन्ती विपुलं द्विजेभ्यो न हर्षपारं जननी जगाम ॥११॥

बालकसे लेकर वृद्ध-पर्यन्त चारों प्रकारकी (जातियों) और आश्रमोंके स्त्री-पुरुषोंको, दान, मान, पूजन, स्तवन, (स्तुति) अभिवादन (प्रणाम) के द्वारा प्रेम पूर्वक श्रीमिथिलेशजी महाराज ने बहुत ही सन्तुष्ट किया ॥६॥ इस लिये उस समय सभी सन्तुष्टजनोंकी जयकार ध्वनि स्वर्ग भूमि, पातल तीनों लोकोंमें पूर्ण प्रवेश करके वहाँके सभी स्थावर-जङ्गम दोनों प्रकारके प्राणियों के लिये अतिशय आह्लादकारी हुई ॥७॥

श्रीविदेहनन्दिनीजूकी स्वल्पकालमें ही समस्त विद्याओंमें अत्यन्त निपुणता देखकरके श्रीब्रह्माजीके पौत्र श्रीशतानन्दजी महाराज मुग्ध हो ऐसे आश्चर्यरूपी समुद्र में गिर पड़े कि जिसको पार पाना बहुत कठिन हो गया ॥८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे शैलपुत्रि ! जिनके वेद श्वासमय हैं, उन परात्परा प्रभुकी परम प्यारी भूमिसुता, श्रीजनकललीके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥९॥

हे देवि ! जिनके ! कटाक्षमात्रसे ही निरक्षर (मूर्ख) भी श्रीबृहस्पतिजीकी योग्यताको पूर्णतया प्राप्त करलेते हैं, उनका विद्या पढ़ना मुनियोंकी सम्मतिसे नकल करना (अथवा) पढ़नेकी मर्यादा मात्र बाँधनेके लिये है ॥१०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीललीजीकी विद्या—निपुणता देखकर अवर्णनीय सुखको प्राप्त किया, श्रीसुनयनाअम्बाजी ब्राह्मणोंको दान देती हुई हर्षका पार ही नहीं प्राप्त कर सकीं, अर्थात् उसी आनन्दमें डूबी रह गयीं ॥११॥

जन्मोत्सवं वार्षिकमात्मजाया विधातुमिच्छां विधिना चकार ।
हृदा महोत्साहमयेन राज्ञी ततो जगन्मङ्गलमङ्गलायाः ॥१२॥
तद्दर्शनाशापरिलोलचित्ता पुलोमजा वज्रधरस्य जाया ।
दृष्ट्वाऽवकाशं गृहमाजगाम विदेहराजस्य तदाऽप्सरोभिः ॥१३॥
तां नर्तकीवेषधरां सुनेत्रा मनोऽभिरामां बिबुधेन्द्रवामाम् ।
समागतां दिब्यतनुं सखीभिः सकाशमानीय मुदा बभाण ॥१४॥

श्रीसुनयनोवाच ।

का त्वं विनीते ! स्थितिरत्र कुत्र? प्रब्रूहि तत्स्वागतमस्तु तुभ्यम् ।
दिष्टचाऽऽगता त्वं मम पुत्रिकाया जन्मोत्सवे सम्प्रति संप्रवृत्ते ॥१५॥

श्रीशच्युवाच ।

अहं महाभागतमे निशम्य त्वदात्मजाजन्ममहोत्सवं वै ।
समागता शीघ्रतयाऽनुगाभिस्तवालयं नृत्यकलाप्रवीणा ॥१६॥
नास्ति स्थितिः क्वाप्यधुनाऽपि मेऽम्ब! स्यात्सोचिता यत्र तदेव शंस ।
महोत्सवालोकनसस्पृहायास्त्वदङ्घ्रिकञ्जद्वय मागतायाः ॥१७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

संस्थीयतामत्र हि मन्निदेशात्त्वयालये नर्तकि ! मे समोदम् ।
जन्मोत्सवं पश्य ममात्मजाया यथाभिलाषं शुचिभावयुक्ते ! ॥१८॥

तत्पश्चात् श्रीसुनयनाअम्बाजी महान् उत्साह भरे हृदयसे समस्त जगत्‌के मंगलोंकी मंगल-स्वरूपा अपनी श्रीललीजीके वार्षिक-जन्मोत्सवको विधिपूर्वक मनानेको इच्छा करने लगीं ॥१२॥

उस उत्सवको देखनेकी इच्छासे अत्यन्त चञ्चल-चित्त हुई पुलोमजीकी पुत्री शची श्रीइन्द्राणीजी, अप्सराओंके समेत अवसर देखकर श्रीविदेहमहाराजके महलमें आ पधारीं ॥१३॥

श्रीसुनयना अम्बाजी नर्तकी-वेष धारण किये मनको सुख देनेवाली, देवराज इन्द्रकी प्यारी, श्रीशचीजीको आई हुई देखकर, सखियोंके द्वारा उन्हें अपने पास बुलाकर हर्ष पूर्वक बोलीं–॥१४॥ हे नम्र स्वभाववाली ! मैं आपका स्वागत करती हूँ, बतलाइये आप कौन हैं ? और यहाँ कहाँ ठहरी हैं ? बड़े सौभाग्यसे मेरी श्रीललीजीके जन्मोत्सव (वर्षगांठ) मनाये जाते समयमें आपका शुभागमन हुआ है ॥१५॥ श्रीशचीजी बोलीं:–हे बड़भागिनियोंमें परम श्रेष्ठे ! श्रीमहारानीजी! मैं नृत्य कलाको भली भाँति जानती हूँ, अतः आपकी श्रीललीजूके जन्मोत्सवका समाचार श्रवण करके अपनी दासियों सहित आपके महलमें शीघ्रता पूर्वक आई हूँ ॥१६॥

हे श्रीअम्बाजी ! अभी तक मेरा कहीं भी डेरा नही हुआ है, अत एव मैं आपके श्रीयुगल चरण कमलोंको प्रणाम करती हूँ आप मुझ महोत्सव दर्शनाभिलाषिणी के रहने के योग्य जो स्थान उचित समझें बतला दीजिये ॥१७॥ श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं :– हे पवित्रभाव वाली श्रीनर्तकीजी ! मेरी आज्ञासे आप मेरे महल में ही आनन्द पूर्वक डेरा कीजिये और श्रीललीजूके जन्मोत्सवको अपनी इच्छानुसार अवलोकन कीजिये ॥१८॥

श्रीशच्युवाच ।

महाकृपाऽस्त्यम्ब! मयि त्वदीया करोम्यतः किं स्वविधेः प्रशंसाम् ।
अहं कृतार्था प्रभवाम्यसंशयं तव प्रसादात्क्षितिजाङ्घ्रिदर्शनात् ॥१६॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं तयोक्ता सुरनाथपत्न्या प्रहर्षितात्मा मिथिलेशकान्ता ।
कार्येष्वनेकेषु च दत्तचित्ता महोत्सवस्य प्रबभूव भद्रे ! ॥२०॥
कार्यावसाने महिषीसभायां विराजमाना दयिता नृपस्य ।
नृत्याय तस्यै प्रददौ निदेशं नृत्योचितालङ्कृतिशोभितायै ॥२१॥
मुदा निदेशं प्रतिलभ्य राज्ञ्या गातुं प्रवृत्तास्वखिलालिषु द्राक् ।
साऽनृत्यग्रे जनकात्मजाया मातुस्तदोत्सङ्गविराजितायाः ॥२२॥

श्रीशच्युवाच ।

नमामि दीनवत्सलां दयार्णवां सुकोमलां । ललाममङ्गलस्तुतिं पशुघ्नपावनस्मृतिम् ।
प्रपन्नभीतिहारिणीं त्रिधैषणानिवारिणीं । नमामि वेदवन्दितां वरप्रदां शुचिस्मिताम् ॥२३॥

श्रीशचीजी बोली :— हे श्रीअम्बाजी ! आपकी मेरे प्रति बड़ी ही कृपा है, अत एव मैं अपने सौभाग्यकी कहाँ तक प्रशंसा करूँ ? आपकी कृपासे भूमिसुता श्रीललीजूके श्रीचरणकमलोंके दर्शनोंसे मैं निःसन्देह कृतार्थ हो जाऊँगी ॥१६॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे भद्रे ! इन्द्रकी प्राणप्रिया श्रीशचीजीके इस प्रकार कहने पर मिथिलेश्वरी श्रीसुनयनाअम्बाजी अत्यन्त हर्षित मनसे उत्सवके अनेक कार्योंमें दत्त चित्त हो गईं ॥२०।

पुनः उत्सव कार्य सम्पन्न हो जाने पर रानियोंकी सभामें विराजी हुई श्रीसुनयना महारानीजी ने, नृत्योपयोगी शृंगार की हुई श्रीशचीजी को नृत्य करनेके लिये आज्ञा-प्रदान की ॥२१॥

श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञा पाकर, श्रीशचीजी हर्ष-पूर्वक सभी सखियोंके गान करते हुये श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजी हुई, श्रीजनकललीजूके सामने नाचने लगीं ॥२२॥ श्रीशचीजी बोलीं:—जिनका दीन(अभिमान रहित)प्राणियोंके प्रति वात्सल्य भाव रहता है जिनकी दया समुद्र के समान अथाह है, जो अत्यन्त ही कोमल हैं, जिनकी स्तुति सुन्दर मंगलमयी है तथा जिनका सुमिरण पशु-हत्या करनेवाले (कसाइयों) को भी पवित्र कर देने वाला है, मैं उन्हें प्रणाम करती हूँ । जो शरणमें आये हुये प्राणियोंके सभी प्रकारके भयोंको दूर करने वाली तथा स्त्री, पुत्र, धनकी गाढ़ी इच्छाको हटा देनेवाली, पवित्र मुस्कानसे युक्त, वेदोंके द्वारा प्रणामकी हुई, वर अर्थात सर्वश्रेष्ठ भगवान श्रीरामजीको देनेवाली हैं, मैं उन श्रीललीजीको प्रणाम करती हूँ ॥२३॥

कुभाग्यलक्ष्मशोधिनीं स्मरन्मतिप्रबोधिनीं भजज्जनेष्टदायिकां भजे त्रिलोकनायिकाम् ।
दयार्द्रनेत्रपङ्कजां कराम्बुजां पदाम्बुजां श्रये सुधाकराननां गतिं परां महात्ममाम् ॥२४॥
विदेहवंशसम्भवां चिदप्रमेयवैभवां नता निसर्गसुन्दरीं हृदा स्वनेत्रगोचरीम् ।
महामुनीन्द्रभावितां रमाशिवादिसेवितां प्रणौम्यनाथपालिकां विदेहराजबालिकाम् ॥२५॥
स्वरूपनिर्जितश्रियं परात्परां महाधियं प्रपन्नकल्पवल्लरीं भजे त्रिलोकसुन्दरीम् ।
शिशुस्वरूपधारिणीं सतां मनोविहारिणीं स्वमातुरङ्कशोभितां समानताऽस्मि भूसुताम् ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

इमं स्तवं पठन्ति ये नराः स्त्रियश्च भावतो भवन्ति ते सदा शिवे! तदात्मिकाः स्वभावतः ।
अरोगतां च विज्ञतां कृतज्ञतामनन्यतां सुखं तथैत्य मानतां मनोरथैश्च पूर्णताम् ॥२७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इदं सुतास्तोत्रमयं सुगानं तन्नृत्यमुग्धा हि निशम्य राज्ञी ।
अपृच्छदादृत्य शचीं तदानीं तां नर्तकीवेषधरां सभावम् ॥२८॥

जो खोटे भाग्य चिह्नोंका सुधार करनेवाली और स्मरण करने वालोंके ज्ञानको सब प्रकारसे जगाने वाली, तीनों लोकोंकी स्वामिनी हैं, दयासे आर्द्र कमलके समान जिनके नेत्र, कमलके समान हाथ व कमलके सदृश सुकोमल श्रीचरण तथा चन्द्रमाके समान आह्लादकारी प्रकाश युक्त श्रीमुखारविन्द है । अपने हृदयमें एक सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान्का ही स्थान देनेवाले महात्माओं की जो सबसे प्रधान आधारभूता हैं, मैं उन श्रीललीजूकी शरणमें आई हूँ ॥२४॥

श्रीविदेहमहाराजके वंशमें जो प्रकट हुई हैं, जिनका ऐश्वर्य चैतन्यमय और असीम है तथा जो स्वाभाविक सुन्दरी, मेरे नेत्रोंके सामने विराजमान हैं, मैं उनको हृदयसे प्रणाम करती हूँ । बड़े-बड़े मुनि-शिरोमणि जिनकी भावना करते हैं, श्रीलक्ष्मीजी तथा श्रीपार्वतीजी जिनकी सेवामें रहती हैं, जो भगवान्को ही एक अपना रक्षक समझने वालोंका विशेष पालन करने वाली, श्रीविदेह महाराजकी बालिका कहाती हैं, मैं उनको प्रणाम करती हूँ ॥२५॥

जो अपनी सुन्दरतासे श्री (शोभा) को पूर्णतया विजय करने वाली, सबसे बड़ी परात्पर स्वरूपा, ब्रह्मकी बुद्धि स्वरूपा और भक्तोंकी अभीष्ट पूर्त्तिके लिये जो कल्पलता स्वरूपा हैं उन त्रिलोकसुन्दरी श्रीललीजूका, मैं भजन करती हूँ । जो शिशु-स्वरूपको धारण किये हुई, सन्तोंके मनमें विहार करने वाली, अपनी श्रीअम्बाजीकी गोदमें सुशोभित हैं, मैं उन भूमिसुता श्रीललीजू को(तन, मन, वचनसे) सम्यक् प्रकार प्रणाम करती हूँ ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे मङ्गल स्वरूपे ! इस स्तोत्रका जो मनुष्य या स्त्रियाँ भावसे नित्य पाठ करते हैं, वे अरोगता, विज्ञता, कृतज्ञता अनन्यता, सम्मान तथा सुखपूर्वक मनोरथोंकी पूर्णताको प्राप्त करके स्वभावसे ही श्रीललीजूके हो जाते हैं ॥२७॥

श्रीललीजूके स्तोत्र-मय इस गानको श्रवण करके उनके नृत्य पर मुग्ध हुई श्रीअम्बाजीने नर्तकी वेषधारण की हुई शचीजीसे भावपूर्वक यह पूछा ॥२८॥

श्रीसुनयनोवाच ।

भद्रं हि ते नर्तकि ! सर्वदाऽस्तु त्वयोक्तमेतन्मम पुत्रिकायाः ।
स्तोत्रं शुभं गानमिषेण कस्मादत्युक्तिपूर्वं परयाऽनुरक्त्या ॥२९॥

श्रीशच्युवाच ।

नेदं मया स्तोत्रधिया मुदोक्तं गानं महाराज्ञि ! ऋतं यदुक्तम् ।
अत्युक्तियुक्तं कुत एव तच्च तथ्यं न वक्तुं खलु शक्यते यद् ॥३०॥
इमां सुतां दृष्टिचरीं विधाय स्वभावतो रुद्धमनोजवाऽहम् ।
शृणोमि तत्तां च विलोकयामि वदामि तामेव तथा स्मरामि ॥३१॥
मनो मदीयं खलु रूपलीनं मिलिन्दवृत्तिं शिर आससाद ।
त्वदात्मजायाः पदपद्मयुग्मे वाणी यशोवारिधिमीनवृत्तिम् ॥३२॥
हे भूमिजे! स्वामिनि! दीनवत्सले! कृपानिधे! श्रीमिथिलेशनन्दिनि!।
कृपात्तराजेन्द्रसुताद्भुताकृते ! प्रसीद मे त्वां शरणं गताऽस्म्यहम् ॥३३॥

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाभाष्य मनोज्ञदर्शनां पश्यन्त्यसौ राजसुतां शुचिस्मिताम् ।
निरोद्धुमाह्लादजवं न साऽशकत्पपात भूमौ सहसेन्द्रवल्लभा ॥३४॥

हे श्रीनर्तकीजी ! आपका सदा मङ्गल हो, आपने किस कारणसे गानके बहाने अत्युक्ति-पूर्ण हमारी श्रीललीजूके इस सुन्दर स्तोत्रका कथन किया है ? ॥२९॥

श्रीशचीजी बोलीं:–हे श्रीमहारानीजी ! मैंने स्तोत्र बुद्धिसे यह गान नहीं गाया है और जो कुछ गाया है, वह सत्य ही है क्योंकि जिनका कोई यथार्थ भी वर्णन नहीं कर सकता, भला उनका अत्युक्ति पूर्ण कथन कोई कहाँसे कर सकेगा ? ॥३०॥

हे श्रीअम्बाजी ! आपकी श्रीललीजूका दर्शन करके मेरे मनकी गति स्वाभाविक रुक गयी है अत एव मैं चारो ओर उन्हींके नाम वार्तादिका श्रवण और उन्हींके रूपका दर्शन कर रही हूँ, तथा मेरे मुखसे भी उन्हींका नाम-यश स्वाभाविक उच्चरित हो रहा है, एवं स्मरण पथमें भी वही आरही हैं ॥३१॥

मेरा मन श्रीललीजूके रूपमें लीन है, मेरा सिर उनके श्रीचरण-कमलोंमें भौंरेकी वृत्तिको प्राप्त हो रहा है, और वाणी श्रीललीजूके यश रूपी समुद्रकी मछली वृत्तिको ग्रहण कर रहीहै।३२॥

हे भूमिसे प्रकट होने वाली! श्रीस्वामिनीजू! हे सर्व अभिमान रहित प्राणियों पर वात्सल्य-भाव रखने वाली कृपानिधे! श्रीमिथिलेशनन्दिनीजू! अपनी निर्हेतुकी कृपासे अद्भुत राजकुमारी स्वरूप धारण किये हुई, हे श्रीललीजी ! मैं आपकी शरणमें प्राप्त हूँ, मुझपर प्रसन्न होइए ॥३३॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे श्रीपार्वती! इन्द्रवल्लभा श्रीशचीजी, ऐसा कहकर पवित्र मुस्कान और मनोहर दर्शनों वाली श्रीराजकुमारीजूका दर्शन करती हुई आह्लादके वेगको न सम्हाल सकीं, अतः वे सहसा पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥३४॥

तस्या विसञ्ज्ञामपहर्तुकाम्यया कृता उपाया बहुशो यथामति ।
राज्या विदेहस्य महामहात्मनस्तेषां न चैकोऽपि बभूव सार्थकः ॥३५॥
तदा हि संभ्रान्तमतिर्नरेश्वरी गुरुं समाहूय नता कृताञ्जलिः ।
तां दर्शयित्वा चरितं तदादितो निवेद्य तस्मै कुतुकान्विता स्थिता ॥३६॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

अस्या महारोगनिर्वर्तिकौषधिः सीताकराम्भोजतले तिरोहिता ।
त्वं मा शुचो वेद्मि महीसुताम्बिके नान्यः प्रयत्नः सुलभोऽत्र दृश्यते ॥३७॥
चन्द्रानने ! पद्मपलाशलोचने ! विमूढसञ्ज्ञां परिपश्य नर्तकीम् ।
भद्रं हि ते पुत्रि! सरोजपाणिना स्पृष्ट्वा किलैनां कुरु मूर्च्छयोज्झिताम्॥३८॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं तदोक्ता नरनाथनन्दिनी माधुर्य्यपाथोनिधिपूजिताङ्घ्रिका ।
प्रवर्षदानन्दकलस्मितेक्षणा पस्पर्श भार्य्यां कृपयाऽमरेशितुः ॥३९॥

उनकी मूर्च्छा निवारण करने के लिये महात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीविदेह महाराजकी महारानी, श्रीसुनयना अम्बाजीने अपनी जानकारी भर बहुतसे उपायोंको किया, परन्तु एक भी सफल न हुआ ॥३५॥ उस समय पूर्ण चकराई मति श्रीअम्बाजी, गुरु श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाकर प्रणाम किया और शचीजीको दिखाकर तथा उन्हें आदिसे उनका समस्त वृत्तान्त निवेदन करके आश्चर्य युक्त ही हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयीं ॥३६॥

श्रीशतानन्दजी महाराज बोलेः—हे भूमिसुता (श्रीलली) जूकी अम्बाजी ! इन नर्तकीजीके महारोग को दूर करने वाली औषधि श्रीललीजूकी ही कमलके समान सुन्दर सुकोमल हथेली में छिपी है, उसे मैं जानता हूँ । अत एव आप चिन्ता न करें । उस औषधिको छोड़कर इनको सचेत करने के लिये और कोई भी उपाय सक्षम नहीं दीखता ॥३७॥

चन्द्रमाके समान स्वाभाविक आह्लाद प्रदान करने वाले, प्रकाशयुक्त मुख और कमलदलके सदृश मनोहर नेत्रवाली हे श्रीललीजी ! आपका मङ्गल हो । मूर्च्छाको प्राप्त हुई इस नर्तकीको आप भलीभाँति देखिये, और अपने कर-कमलोंका स्पर्श प्रदान करके इसकी मूर्च्छा दूर कीजिये ३८

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीशतानन्दजी-महाराजके इस प्रकार कहने पर, आनन्द की प्रचुर वर्षा कारी मनोहर मुस्कान युक्त चितवन वाली, राजनन्दिनी श्रीललीजीने कृपा करके देवराज इन्द्रकी प्राणप्रिया श्रीशचीजीको, अपने कर-कमलसे स्पर्श किया ॥३९॥

सा लब्धसञ्ज्ञा क्षितिजापदाब्जयोर्धृत्वा शिरः पुण्यतमं मुहुर्मुहुः ।
आनन्दबाष्पाप्लुतपङ्कजेक्षणा स्वकिङ्करीभिः समगाददृश्यताम् ॥४०॥

श्रीराज्ञ्य ऊचुः ।

हे देवि ! केयं समुपागता सती प्रियम्बदा प्रेमदशाप्रदर्शिका ।
अगादविज्ञातगतिः क्व सत्वरं निरीक्षमाणास्वखिलासु सुद्युतिः ॥४१॥

श्रीसुनयनोवाच ।

न वेद्मि तां दृष्टवती न तां पुरा क्व संप्रयातेति च सा न वेद्म्यहम् ।
आश्चर्य्यमग्नाऽस्मि वदामि किं हि वो विलोकयन्ती चरितानि भूभुवः॥४२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

इत्थं निगद्याथ महोत्सवेऽखिलान् समागतान्मोदभरेण चेतसा ।
नृपोचितस्रक्पटभूषणोत्तमैर्विभूष्य राज्ञी सुचकार सत्कृतान् ॥४३॥
द्विजाङ्गनाश्चैव तथा कुलाङ्गनाः सर्वाङ्गनाः प्रीतितया समर्च्चिताः ।
सपुत्रकन्या मिथिलेन्द्रकान्तया ययुर्दिशन्त्यो हि शुभाशिषं तदा ॥४४॥

उस स्पर्शके प्रभावसे श्रीशचीजी सावधान हो, अवनि-कुमारीजूके श्रीचरणकमलोंमें अपना अति पवित्र सिर बारम्बार रखकर, कमलके समान नेत्रोंमें आनन्दमय अश्रुओंको भरे हुई वे अपनी दासियों सहित अन्तर्हित हो गयीं ॥४०॥

रानियाँ बोलीं:–हे देवि ! अज्ञात मार्गवाली प्रियभाषिणी तथा भली भाँति प्रेमकी दशा दिखाने वाली यह कौन आई थी ? और हम सभीके देखते तुरन्त कहाँ चली गयी ? ॥४१॥

श्रीसुनयनाअम्बाजी बोलीं:–हे बहिनों ! न मैं उन नर्तकीजीको जानती ही हूँ न पहिले कभी उन्हें देखा ही था, और वे कहाँ गयीं ? यह भी मैं नहीं जान सकी, आप लोगोंसे अधिक क्या कहूँ ? पृथवीसे प्रकट हुई अपनी श्रीललीजूके चरितोंको देखती–देखती मैं स्वयं आश्चर्यमें डूब रही हूँ ॥४२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! इस प्रकार श्रीअम्बाजीने सभी देवरानियोंसे कहकर श्रीललीजीके जन्म–महोत्सवमें पधारे हुये सभी लोगोंका राजाओंके योग्य उत्तम माला, वस्त्र, भूषणोंके द्वारा हर्षपूर्ण चित्तसे शृङ्गार कराके भली भाँति सत्कार किया ॥४३॥

अत एव ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ और कुलकी स्त्रियाँ तथा सभी स्त्रियाँ पुत्र पुत्रियोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रिया श्रीसुनयनाअम्बाजीके द्वारा प्रेम-पूर्वक भली भाँति पूजित होकर शुभ आशीर्वाद देती हुई, गृहोंको बिदा हुई ॥४४॥

तथा नरेन्द्रेण विदेहमौलिना द्विजातयः सर्व उपस्थिता जनाः ।
सुसत्कृताः प्रेमपरिप्लुतात्मना ययुर्गृहं स्वं स्वमुदाहृताशिषः ॥४५॥

उसी प्रकार श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा उपस्थित ब्राह्मणादि एवं सभी पुरुष वर्ग प्रेम-पूर्ण हृदयसे भली भाँति सत्कारको प्राप्त हो मङ्गलमय आशीर्वाद कहकर अपने-अपने घरोंको विदा हुये ॥४५॥

इत्येकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अथ द्वयशीतितमोऽध्यायः ।

दासी पुत्री श्रीसुशीलाजीको श्रीकिशोरीजीके द्वारा अपना सखी पद प्रदान ।

श्रीशिव उवाच ।

विष्णुदत्त इति ख्यातः क्षत्रियो धनधान्यवान् । वङ्गदेशनिवासी स सतां परमपूजकः ॥१॥
तदन्तःपुरदास्येका सकलेत्यभिधयोच्यते । तस्याः पुत्री सुशीलाऽऽसीद्वयसा पञ्चवार्षिकी ॥२॥
सा कदाचन शुश्राव वैष्णवानां सुसंसदि । सीतायाश्चरितं दिव्यं युतायाः स्वसृबन्धुभिः ॥३॥
मातरं तदुपागम्य प्रहृष्टवदना सती । वाचा संश्लक्ष्णया प्रोचे प्रपश्यन्ती तदाननम् ॥४॥

श्रीसुशीलोवाच ।

अहो मातर्मयेदानीं समज्यायां महात्मनाम् । गतवत्या श्रुतं दिव्यं रहस्यं यदनुत्तमम् ॥५॥
श्रूयतां तत्त्वया पूर्वं गदन्त्या मे मनोहरम् । सावधानेन चित्तेन पुनः कार्यं सुखं चर ॥६॥
मिथिलेति भुवि ख्याता नगर्य्येकाऽतिशोभना । पाल्यते सा नरेन्द्रेण जनकेन महात्मना ॥७॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! विष्णुदत्त नामसे विख्यात एक क्षत्रिय भक्त वङ्ग (बङ्गाल) देशमें निवास करते थे वे धन-धान्यसे युक्त, सन्तोंके परम पुजारी थे ॥१॥

उनके अन्तःपुर(हवेली)में एक दासी थी जो सकला नामसे बोली जाती थी । उसकी पाँचवर्ष अवस्थाकी एक सुशीला नामकी पुत्री थी ॥२॥ उस सुशीलाने वैष्णवोंके श्रेष्ठ समाजमें, बहिन-भाइयोंके सहित श्रीजनकराजदुलारीजूके दिव्य चरितोंको श्रवण किया ॥३॥

इसलिये वह प्रसन्न मुख हो अपनी माँके पास गयी और उसके मुखको देखती हुई, बड़ी मीठी वाणीसे बोलीः—अहो श्रीअम्बाजी ! महात्माओंकी सभामें जाकर जो मैंने आज सर्वश्रेष्ठ दिव्य रहस्यको सुना है ॥४॥५॥ उस मनोहर रहस्यको मेरे कहते हुये तू सावधान चित्तसे पहिले सुनले, पीछे सुखपूर्वक अपना काम कर, पृथिवी पर अत्यन्त सोहावनी मिथिलानामसे प्रसिद्ध एक नगरी है, उसकी रक्षा महात्मा श्रीजनकजी महाराज कर रहे हैं ॥६॥७॥

यज्ञं प्रकुर्वतस्तस्य वेदिगर्भान्महाप्रभा । सुतैका निर्गता मातर्दिव्यसिंहासने स्थिता ॥८॥
महालावण्यसम्पन्ना सेव्यमानाऽऽलिभिः शुभा । द्योतयन्ती दिशः सर्वा स्वरुचा ह्लादरूपिणी ॥९॥
तां तु रूपं समापन्नां शैशवं हृदयङ्गमम् । निधाय जनकेनाङ्के चिदानन्दोऽन्वभूयत ॥१०॥
नवनीतातिमृद्वङ्गी शरच्चन्द्रनिभानना । नीलपद्मपलाशाक्षी कम्बुग्रीवा कलस्मिता ॥११॥
सरोजमृदुहस्ता च जलजातपदद्वया । सुकेशी पक्वविम्बोष्ठी सुभाला तनुमध्यमा ॥१२॥
सुभ्रूः सर्वानवद्याङ्गी सर्वभूतमनोहरा । सर्वलक्षणसम्पन्ना सुदती वल्गुदर्शना ॥१३॥
दिव्याभरणवस्त्राढ्या सुकटाक्षा सुभाषिणी । दृष्टिनिर्धूतसर्वाधिव्याधिरानन्दवर्षिणी ॥१४॥
अकोपा शीलसम्पन्ना दीनपक्षपरायणा । धराधिकक्षमायुक्ता दयाधिकदयापरा ॥१५॥
ऋजुस्वभावा भावज्ञा सर्वभावप्रपूरिका । मानदाऽमानिनी प्रह्वी गाम्भीर्यजितसागरा ॥१६॥

अरी मैया ! उन श्रीजनकजी महाराजके यज्ञ करते हुये, यज्ञवेदीके गर्भसे दिव्य सिंहासन पर विराजी हुई महान् प्रकाश वाली एक पुत्री प्रकट हुई, वह महान् सौन्दर्यसे युक्त, आह्लादकी मूर्त्ति. अपनी कान्तिसे दशो दिशाओंको प्रकाश युक्त करती हुई, मङ्गल स्वरूपा, सखियोंसे सेवित थी ॥८॥९॥

पुनः मनोहर शिशु-रूपमें प्राप्त हुई उन (विलक्षण) पुत्रीजीको गोदमें लेकर श्रीजनकजी महाराज चित् (भगवत्सुख) का अनुभव करने लगे ॥१०॥

वे मक्खनके समान कोमल अङ्ग, शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रमाके सदृश सहजाह्लाद-वर्द्धक मुख, नीले कमलदलके समान सुन्दर नेत्र, शङ्खके सदृश कण्ठ और मुस्कानसे मनको हरण करनेवाली हैं ॥११॥ उनके कमलके समान कोमल हाथ और कमलके सदृश युगल चरण, सुन्दर केश, पके बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ और अधर हैं, सुन्दर मस्तक तथा सिंहके सदृश उनकी पतली कमर है ॥१२।

उनकी भौंहें बड़ी ही सुन्दर हैं, सभी अङ्ग दोषों (त्रुटियों) से रहित हैं। वे सभी प्राणियोंके मनको हरण करने वाली, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सुन्दर दाँत व मनोहर दर्शनों वाली हैं ॥१३॥ उनके भूषण वस्त्र सब दिव्य हैं, उनकी कटाक्ष और वाणी बड़ी ही सुन्दर है, चितवन मात्रसे ही, वे सभी आधि-व्याधियों(मानसिक व शारीरिक बीमारियों)को धो डालने वाली तथा आनन्दकी वर्षा करने वाली हैं ॥१४॥

वे क्रोधसे रहित, शीलगुण युक्त, सदा दीन (अभिमान रहित) प्राणियोंका पक्ष ग्रहण करने वाली, पृथिवीसे भी अधिक क्षमा गुण युक्ता, दयासे भी अधिक दया करनेमें तत्पर रहने वाली हैं ॥१५॥ उनका बड़ाही सरल स्वभाव है, वे सभीके भावोंको समझने वाली तथा भक्तोंके सभी भावोंकी पूर्त्ति करने वाली एवं आश्रितोंको मान (प्रतिष्ठा) प्रदान करने वाली, स्वयं मानकी इच्छासे रहित, नम्रता युक्त, अपनी गम्भीरतासे समुद्रको भी विजय करने वाली ॥१६॥

वात्सल्यादिगुणाम्भोधिः पिकवाणी गतस्मया । परेषामुपकारज्ञा नतिसन्तुष्टमानसा ॥१७॥
क्वचिन्नृत्यति सर्वाभिः क्वचिद् गायति धावति। क्वचिन्मन्दं च हसति क्वचित्प्रेम्णा प्रपश्यति ॥१८॥
क्वचिन्मातुः शुभोत्सङ्गं क्वचित्सिंहासनं पुनः । संविशत्याप्तसर्वेहा क्वचित्सा वल्गुभाषते ॥१९॥
क्वचित्सर्वाभिरालीभिः समेता कुरुते ऽशनम् । क्वचिन्मातुर्गले दत्वा भुजमालां विराजते ॥२०॥
अपूर्वाभिश्च लीलाभिः सुखयन्ती निजानुगाः । सेव्यमाना सदा ताभिः पित्रोरानन्दवर्द्धिनी ॥२१॥
स्वसृभिर्भ्रातृभिश्चेत्थमतीवप्रियदर्शना । क्रीडन्ती राजभवने राजते जनकात्मजा ॥२२॥
क्रीडितुं मे तया साकं जायते महती स्पृहा । सत्यमम्ब ! विजानीहि श्रुतवत्या हि तद्यशः ॥२३॥
कदा तच्चरणाम्भोजे निरीक्षे भृशकोमले । कदा स्यां पद्मपत्राक्ष्या कृपादृष्टया नु वीक्षिता ॥२४॥
कदा तद्दर्शनानन्दा विलुठिष्ये पदाब्जयोः । कदा पास्याम्यहं कर्णपुटाभ्यां तद्वचो ऽमृतम् ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्त्वा सा ययौ मूर्च्छां मातरं प्रेमविह्वला । तां प्रबोध्य सुतां भद्रे ! सकलेदमभाषत ॥२६॥

वात्सल्यादि गुणोंकी वे समुद्र हैं, कोयलके सदृश उनकी सुरीली वाणी है, वे अभिमान रहित, दूसरोंके किये उपकारको सदा स्मरण रखती हैं और प्रणाम मात्रसे प्रसन्न हो जाती हैं ॥१७॥ कभी वे अपनी बहिनोंके समेत नृत्य करती हैं, कभी गान करती हैं, कभी दौड़ती हैं, कभी मन्द–मन्द हँसती हैं, तो कभी प्रेम-पूर्वक देखने लगतीं हैं ॥१८॥

कभी पूर्ण-काम वे श्रीललीजी श्रीअम्बाजीकी गोदमें, कभी सिंहासनमें बैठ जाती हैं, तो कभी मनोहर वाणी बोलने लगती हैं ॥१९॥ कभी वे सब सखियोंके सहित भोजन करती हैं, तो कभी अम्बाजीके गलेमें भुजामाला देकर शोभाको प्राप्त होती हैं ॥२०॥

अपनी अपूर्व लीलाओंके द्वारा अनुचरियोंको सुख प्रदान करती तथा उनसे सेवित होती हुई अपने माता-पिताजीके आनन्दको बढ़ाती हैं ॥२१॥

इस प्रकार वे अतीव प्रिय-दर्शनवाली श्रीजनकराजदुलारीजी अपनी भाई-बहिनोंके सहित खेलती हुई, राजभवनमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे सुशोभित होती हैं ॥२२॥

हे अम्ब ! आप सत्य जानिये, श्रीललीजूके यशको श्रवण करनेसे उनके साथ खेलनेके लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है ॥२३॥

कब मैं उनके अत्यन्त कोमल श्रीचरणकमलोंका दर्शन प्राप्त करूँगी ? कब कमलदलके समान नेत्रोंवाली श्रीललीजी अपनी कृपा दृष्टिसे मुझे अवलोकन करेंगी ? ॥२४॥

कब उनके दर्शनोंका आनन्द प्राप्त करके, मैं उनके श्रीचरणकमलोंमें लोटूंगी ? कब अपने कान रूपी दोनोंसे उनके वचनामृत का पान करूँगी ? ॥२५॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे कल्याण-स्वरूपे ! अपनी अम्बाजीसे ऐसा कहकर वे श्रीसुशीलाजी प्रेम-विह्वल हो मूर्च्छाको प्राप्त हो गयीं, उन्हें सावधान करके सकलाजी बोलीं:–॥२६॥

श्रीसकलोवाच ।

अहो पुत्रि ! महाभागे ! दासीपुत्र्याः कथं तव । श्रीमिथिलेशनन्दिन्या घटते बत सङ्गतिः ॥२७॥

श्रीशिव उवाच ।

तदुपाकर्ण्य सेत्युक्त्वा नान्यथा जीवितं मम । पपात सहसा भूमौ निर्गतासुरिव प्रिये ! ॥२८॥
तच्च वृत्तान्तमाश्रुत्य विष्णुदत्तो महामनाः । सकलामब्रवीद्धर्षपुलकाङ्कतनूरुहः ॥२९॥

श्रीविष्णुदत्त उवाच ।

सकले! भूरिभागाऽसि यया लब्धेयमात्मजा । यस्या विनिश्चला प्रीतिर्भूमिजायां शुभाऽभवत् ॥३०॥
अत एनां समादाय मिथिलां गच्छ शोभने ! दर्शनं राजनन्दिन्याः प्रापयास्यै प्रयत्नतः ॥३१॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापिता तेन विष्णुदत्तेन सा सुताम् । वारिसिक्तमुखाम्भोजां परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥३२॥

श्रीसकलोवाच ।

वत्से! जनकनन्दिन्याः प्रापयिष्यामि दर्शनम् । तुभ्यं भव प्रहृष्टात्मा प्रयाय मिथिलापुरीम् ॥३३॥
तदर्थं विष्णुदत्तेन समादिष्टा दयालुना । त्वां समादाय मिथिलामितोऽहं गन्तुमुद्यता ॥३४॥

हे बड़भागिनी ! पुत्रि ! कहाँ तुम दासी पुत्री, और कहाँ वे श्रीमिथिलेशजी महाराजकी श्रीराजदुलारीजी, अत एव उनसे तुम्हारी सङ्गति कैसे बनेगी ? ॥२७॥

श्रीशिवजी बोले:—हे प्रिये ! इस वचनको सुनकर श्रीसुशीलाजी अपनी मैयाजीसे "यदि उनकी और मेरी सङ्गति नहीं हो सकती तो, मेरा जीवन ही नहीं है" ऐसा कहकर भूमि पर प्राण निकले हुये (मुर्दे) के समान गिर पड़ी ॥२८॥

अपने मनमें एक श्रीभगवान्को ही स्थान देनेवाले श्रीविष्णुदत्तजी श्रीसुशीलाकुमारीके उस समाचारको सुनकर हर्षसे रोमाञ्च को प्राप्त हो वे श्रीसकलाजीसे बोले:—॥२९॥

हे सकले! आप बड़ी भाग्यवाली हैं जो आपको ऐसी पुत्री मिली, जिसकी भूमिजा श्रीजनकललीजीमें अचला मङ्गलमयी प्रीति हो गयी है ॥३०॥

हे सुन्दरी ! तुम इस लिए पुत्रीको लेकर श्रीमिथिलाजी जाओ और पूर्ण यत्नपूर्वक इसे राजनन्दिनी श्रीजनकललीजूका दर्शन कराओ ॥३१॥

भगावान् शिवजी बोले-हे प्रिये! श्रीविष्णुदत्तजीके इसप्रकार आज्ञा देनेपर अपनी मूर्च्छित पुत्रीके मुख कमल पर जल का छींटा देकर तथा उसे हृदय लगाकर सकला मां बोलीं ॥३२॥ हे वत्से! श्रीमिथिलाजी चलकर मैं तुझे श्रीजनकनन्दिनीजूका दर्शन कराऊँगी, अतः प्रसन्न हो जाओ ॥३३॥

तुम्हें श्रीललीजूका दर्शन करानेके लिये मुझे दयालु श्रीविष्णुदत्तजीने मिथिला जानेकी आज्ञा देदी हैं, अत एव तुमको साथ लेकर मैं यहाँसे श्रीमिथिलाजी चलनेको तैयार हूँ ॥३४॥

श्रीशिव उवाच ।

मातुराकर्ण्य तद्वाक्यं सुशीला हर्षनिर्भरा । गम्यतां गम्यतां मातर्मिथिलेति च साऽब्रवीत् ॥३५॥
सकलाऽथ समं पुत्र्या मिथिलां पुण्यदर्शनाम् । गत्वा विवेशावरणं कथञ्चित्सप्तमं प्रिये ! ॥३६॥
तत्र चिन्तामुपागच्छत्सा भृशं श्रीविदेहजा । सुतादृष्टिचरी मे स्यात्कथमित्येव दुस्तराम् ॥३७॥
राज्ञीहट्टाभिगमनं सह मात्रा निशम्य सा । श्रीमज्जनकनन्दिन्या जनेभ्यो मोदमाययौ ॥३८॥
दृष्ट्वा तां राजकिङ्कर्य्यो मलिनाम्बरधारिणीम् । कार्यार्थिनीं परिज्ञाय पप्रच्छुरिदमादरात् ॥३९॥

राजकिङ्कर्य ऊचुः ।

किमर्थमागतास्यत्र ब्रूहि नस्त्वद्धितैषिणीः । निर्भयेनात्मना भद्रे ! साधयामो हितं तव ॥४०॥

सकलोवाच ।

का यूयं धर्मसारज्ञा मनोज्ञाः करुणापराः । सुशीलाः पृच्छिका हेतोः शंसतागमनस्य मे ॥४१॥

राजकिङ्कर्य ऊचुः ।

तव दीनदशां दृष्ट्वा करुणापूर्णमानसाः । श्रीमिथिलानरेन्द्रस्य किङ्करीर्विद्धि नः शुभे! ॥४२॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! अपनी मैयाके इस वचनको सुनकर हर्षसे पूर्ण भरी हुई श्रीसुशीलाजी बोलीं:—हे मां ! चलें ! आप श्रीमिथिलाजीको चलें ॥३५॥

हे शुभे ! श्रीसकलाजी अपनी पुत्रीके सहित पुण्यमय दर्शन वाली, श्रीमिथिलाजी पहुँचकर किसी प्रकार उसके सातवें आवरणमें प्रवेश कर गयीं ॥३६॥ उस सातवें आवरणमें श्रीसकलाजी इस महती दुस्तर चिन्ताको प्राप्त हुईं, कि यहाँ तक आजाने पर भी मेरी पुत्रीको श्रीविदेहराज-दुलारीजूका दर्शन किस प्रकारसे प्राप्त होगा ? क्योंकि इसके आगे अब मेरे बढ़ सकनेकी कोई आशा ही नहीं दीखती, और वे इसके भी आगे सात आवरण वाले श्रीजनकभवनके मध्यभागमें विराजती होंगी अतः उनके दर्शनोंका संयोग लगना असम्भव सा ही प्रतीत होता है ॥३७॥

उसी समय लोगोंके द्वारा यह समाचार सुनने में आया, कि आज श्रीजनकराजदुलारीजी अपनी अम्बाजीके समेत "रानी बाजार" पधारी हैं, इस समाचारको सुनकर सकलाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥३८॥ मैले वस्त्रोंको पहिने हुई सकलाजीको देखकर उन्हें कार्य्यार्थिनी (किसी असाध्यकार्यकी सिद्धि के लिये श्रीसुनयना महारानीजीके पास आई हुई) जानकर, राजमहलकी दासियोंने उससे यह आदर पूर्वक पूछा ॥३९॥

हे कल्याणि ! इस राजावरणमें तुम किस लिये आई हो ? हम हित चाहने वालियोंसे निर्भय मनसे उस प्रयोजनको कह दो, हम लोग अवश्य तुम्हारे कार्यको सिद्ध करायेंगी ॥४०॥

श्रीसकलाजी बोलीं:—धर्मके तत्त्वको समझने और मनको हरण करनेवाली, दया करनेको तत्पर तथा सुन्दर स्वभाव वाली, आप लोग कौन हैं ? ॥४१॥

सकलाजीके इस प्रश्नको सुनकर वे दासियाँ बोलीं:—आपकी दीन दशाको देखकर दया पूर्ण हुई, मन वाली हम लोगोंको आप श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी दासियाँ जानिये ॥४२॥

श्रीसकलोवाच ।

सौभाग्यमस्तु वो नित्यं श्रूयतां यदि रोचते । भवतीभिर्यथातथ्यं मदागमनकारणम् ॥४३॥
सुतेयं मम कल्याणी समज्यायां महात्मनाम् । मैथिलीबालचरितं शृणोति स्म यदृच्छया ॥४४॥
ततो विह्वलतां प्राप्ता जानकीदर्शनाशया । मयाऽऽनीता प्रयत्नेन कथञ्चिद्वो महापुरीम् ॥४५॥
पुनरत्रागता दिष्टया दिष्टया लब्धो हि सङ्गमः । मया वो मृगपोताक्ष्यः कार्यसिद्धिविधायकः ॥४६॥
तदुपायं कृपापूर्णविशुद्धहृदया हि मे । मैथिलीदर्शनस्याप्त्यै कृपणायै प्रशंसत ॥४७॥

राजकिङ्कर्य ऊचुः ।

अनेनैवाशु मार्गेण राज्ञीहट्टमितो द्रुतम् । आगच्छ कन्यया सार्द्धं राजते तत्र साऽधुना ॥४८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा ययुः शीघ्रं तास्तु पद्मदलेक्षणाः । रूपदाक्षिण्यसम्पन्ना विनीतां सकलां प्रति ॥४९॥
सा वै स्वकन्यया सार्द्धं गच्छन्ती तेन वै पथा । वस्तुविक्रयव्याजेन हट्टप्राप्तिमरोचत ॥५०॥
आहृत्य भूतलाज्जम्बु फलानि स्वादुवन्ति च । प्रविवेश शुभं हट्टं सर्वलोकमनोहरम् ॥५१॥

श्रीसकलाजी बोलीं:-हे राजकिङ्करियो ! आप लोगोंका सौभाग्य नित्य (सदा एक रस) बना रहे । यदि आप लोगोंको मेरे यहाँ आनेका वास्तविक कारण जाननेकी रुचि है, तो श्रवण कीजिये ॥४३॥ मेरी इस कल्याणी पुत्रीने दैव-संयोगसे सन्तोंकी समाजमें श्रीमिथिलेशललीजूके बाल-चरित्रोंको श्रवण किया करती थीं ॥४४॥

चरितोंके श्रवण मात्रसेही जब श्रीजनकराजदुलारीजूके दर्शनोंकी इच्छासे यह विह्वल हो गयीं तब मैं बड़े प्रयत्नके साथ इसे किसी प्रकार आप लोगोंकी पुरीमें ले आई ।४५॥

सौभाग्य वश नगरके इस सातवें आवरणमें भी पहुँच गयी, और सौभाग्य वश कार्य सिद्धि कराने वाला, आप लोगोंका समागम भी मुझे प्राप्त हो गया ॥४६॥

हे कृपापूर्ण विशुद्ध (निर्मल) हृदय वालियों ! इस लिये श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके दर्शनोंका प्राप्ति उपाय मुझ दरिद्राको बतादीजिये ॥४७॥

राजकिङ्करियाँ बोलीं:—इसी मार्गसे आप अपनी कन्या सहित रानीबाजार शीघ्र चली आएँ, श्रीललीजी इस समय अपनी अम्बाजी समेत वहीं विराज रही हैं ॥४८॥

श्रीशिवजी बोले:-इस प्रकार कमल-दलके समान विशाल लोचना, नम्रस्वभाव वाली, सौन्दर्य तथा चतुराईसें पूर्ण, वे राज-दासियाँ, श्रीसकलाजीसे कहकर शीघ्रता-पूर्वक चल पड़ीं ॥४९॥

अपनी पुत्री सुशीलाजीके साथ उस मार्गसे जाती हुई श्रीसकलाजीने कोई वस्तु बेचनेके बहानेसे ही उस बाजारमें पहुँचना अच्छा समझा ॥५०॥

अत एव वे भूतलसे जामुनके मीठे स्वादिष्ट फलोंको लेकर समस्त लोगोंको मुग्ध कर लेने वाले उस रानीबाजारमें पहुँची ॥५१॥

वस्तूनां विक्रयागारैरनेकेषां च पङ्क्तितः । सहस्रैः शोभमानं तत्सकला पर्य्यवैक्षत ॥५२॥
तत्र वस्तु जगत्यां वै विधात्रा निर्मितं खलु । अपूर्वं लभ्यते नैव तद्धट्टे गिरिकन्यके ! ॥५३॥
राज्ञीनां राजकन्यानां कुमाराणां महीभृतः । किङ्करीणां हि सर्वत्र दर्शनं तत्र लभ्यते ॥५४॥
नराणां नो गतिस्तत्र न सर्वासां हि योषिताम् । रक्षिकाणां तु साहस्रैः सर्वतः परिरक्षिते ॥५५॥
तदुदीक्ष्य समं पुत्र्या कौतुकासक्तमानसा । गत्वोपहट्टं सकला न्यषीदत्परया भिया ॥५६॥

सुशीलोवाच ।

अम्ब ! हट्टमिदं रम्यं सुविशालं महत्प्रभम् । वाद्यानां कलघोषैश्च नादितं परिदृश्यते ॥५७॥
बद्धयूथा विशालाक्ष्यो राजकन्या मनोहराः । भ्रमन्त्यः परिदृश्यन्ते मातृणां मोदवर्द्धनाः ॥५८॥
किन्तु साऽयोनिजा सीता वैदेही नैव दृश्यते । मया संदृश्यमानानां कुमारीणां प्रयत्नतः ॥५६॥
यथा रूपं श्रुतं तस्याः स्वभावाचरणादिकम् । न तथाऽहं प्रपश्यामि कस्यामपि तु पूर्णतः ॥६०॥

सकलाजीने अनेक वस्तुओंमें भी प्रत्येक वस्तुकी हजारों दुकान पङ्क्तियों द्वारा चारो ओरसे उस बाजार को शोभायमान देखा ॥५२॥

हे गिरिराजकुमारीजू ! विधाताकी बनाई हुई वह कोई भी अपूर्व वस्तु जगत्में नहीं है, जो उस बाजारमें न मिलती हो ॥५३॥ उस बाजारमें केवल रानियोंका, राजकन्याओं का तथा राजदासियोंका ही सर्वत्र दर्शन प्राप्त होता है ॥५४॥

हजारों रक्षा करनेवाली सखियों द्वारा चारो ओरसे सुरक्षित, उस बाजारमें पुरुषोंका प्रवेश नहीं है, और न सभी सामान्य स्त्रियोंका ॥५५॥

वहाँकी उस व्यवस्थाको देखकर आश्चर्य लीन मन हुई श्रीसकलाजी, पुत्री सुशीलाजीके सहित अत्यन्त भयसे उस बाजारके समीप द्वारके, बाहर बैठ गयीं ॥५६॥

श्रीसुशीलाजी बोलीं:–हे अम्बाजी यह बाजार बहुत ही बड़ा, सुन्दर, महान् प्रकाशसे युक्त, बाजाओंकी मनोहर उच्च ध्वनिसे शब्दायमान दिखाई दे रहा है ॥५७॥

इसमें अपनी माताओंके आनन्दको बढ़ाने वाली, विशाल लोचना, मनोहर राजकन्यायें यूथ (झुण्ड) बनाकर चारो ओर घूमती दिखाई दे रही हैं ॥५८॥

किन्तु दिखाई देनेवाली इन राजकुमारियोंमें प्रयत्न करने पर भी मुझे अपनी इच्छासे स्वयं प्रकट हुई, उन श्रीविदेहराजकुमारी श्रीललीजूका दर्शन नहीं प्राप्त हो रहा है, यदि आप सन्देह करें कि जब तुमने उन्हें कभी देखा ही नहीं, तब इतनी राजकन्याओंमें उन्हें कैसे पहिचान सकोगी ? उसका समाधान यही है कि उनका जैसा रूप, जैसा स्वभाव, जैसा आचरण आदि मैंने सुना है, वह सब पूर्णतया जब एक ही में देखूंगी, तब मैं समझ लूंगी कि ये ही श्रीललीजी हैं, अभी तक वे सुने लक्षण, किसीमें भी मुझे नहीं दिखाई दिये, अत एव अभी तक उनका दर्शन अपने लिये मैं अप्राप्तही मानती हूँ ॥५६॥६०॥

अस्मिन्प्रसारिते चीरे फलान्याधत्स्व सत्वरम् । पश्यैको यूथ आयाति कुमारीणां मनोहरः ॥६१॥
अद्य श्रीमैथिलीं मातरवश्यं दृष्टिगोचरीम् । विधाय जन्मसाफल्यं समेष्यामि न संशयः ॥६२॥
प्रपश्यैनं समायान्तं निवहं राजयोषिताम् । नूनमस्मिंस्तु सा भूयाच्छ्रीमज्जनकनन्दिनी ॥६३॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रलपन्ती सुशीलैवमदृष्ट्वा जनकात्मजाम् । मुमूर्च्छ विरहापन्ना श्रीसीतेति वदन्त्यपि ॥६४॥
आजगाम तदा तत्र जानकी दीनवत्सला । पश्यन्ती हट्टमखिलं समं मात्रा यदृच्छया ॥६५॥
तदङ्गसौरभं घ्रात्वा श्रुत्वा नूपुरझङ्कृतिम् । वीतमूर्च्छा समुत्तस्थौ सुशीला संयताञ्जलिः ॥६६॥
निरीक्ष्य जानकीं सीतां यथोक्तैर्लक्षणैर्युताम् । अवधार्य महाभागा ववन्दे तत्पदाम्बुजे ॥६७॥
पुना राज्ञ्याः पदाम्भोजे नमस्कृत्य मुदान्विता । सर्वा ननाम महिषीः किङ्करीः पुनरेव सा ॥६८॥
तामुवाच प्रसन्नात्मा सुशीलां जनकात्मजा । निधाय पाणिकमलं तदंसे स्निग्धया गिरा ॥६९॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

मूल्येन कियता भद्रे ! फलानीमानि दास्यसि । उच्यतां तत्त्वयेदानीं किमर्थं नतलोचना ॥७०॥

अरी मैया ! जल्दीसे मेरे पसारे हुये वस्त्रमें इन फलोंको धर दे, क्योंकि देखिए कुमारियों का एक बड़ा ही मनोहर झुण्ड आ रहा है ॥६१॥

हे मैया ! आज श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका दर्शन करके मैं अवश्य ही अपने जन्मकी पूर्ण सफलता प्राप्त करूँगी इसमें कोई सन्देह नहीं ।६२॥ मैया देख, यह यूथ रानियोंका आ रहा है, इसमें वे श्रीजनकराजनन्दिनीजू अवश्य ही होंगी ॥६३॥

भगवान् श्रीभोलेनाथजी बोले:-हे पार्वती! इस प्रकार प्रलाप करती हुई जब श्रीसुशीलाजीने उस यूथमें भी श्रीललीजूका दर्शन न पाया तब उनके विरहसे युक्त हो, हे श्रीसीते! हे श्रीसीते! ऐसा कहती हुई वे बेहोश हो गयीं । उसी समय दीनों पर वात्सल्य-भाव रखने वाली श्रीजनक राजदुलारीजी अपनी श्रीअम्बाजीके साथ उस समस्त बाजारको देखती हुई, वहाँ अकस्मात् आ पधारीं ॥६४॥६५॥ श्रीललीजूके नूपुरोंकी झङ्कारको सुनकर तथा उनके श्रीअङ्गकी सुगन्धि को सूँघकर मूर्च्छा रहित हो श्रीसुशीलाजी हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं ॥६६॥

पुनः उनमें सन्तोंके द्वारा कहे हुये सभी लक्षणोंको देखकर, उन्हें जनकराजदुलारी श्रीसीताजी निश्चय करके, बड़भागिनी श्रीसुशीलाजीने उनके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥६७॥

तदनन्तर उन्होंने हर्ष-पूर्वक श्रीसुनयना अम्बाजीके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करके सभी रानियोंको नमस्कार किया, उनके पश्चात् सभी दासियोंको प्रणाम किया ॥६८॥

श्रीजनकराजदुलारीजी प्रसन्न मन हो उन श्रीसुशीलाजीके कन्धे पर अपना कर-कमल रखकर बड़ी प्रेम भरी वाणीसे बोलीं:-हे कल्याणी ! तुम इन फलोंको कितने मूल्यमें दोगी ? बताओ । इस समय तुम नेत्रोंको नीचे क्यों किये हो ? ॥६९॥७०॥

रानी बाजार फाटक के बाहर अपनी अकिञ्चना मांके पास, विरह व्याकुला
श्रीसुशीलाजी बैठी हैं, श्रीकिशोरीजी अपनी अम्बाजी के साथ
उनके पास आकर, कुछ पूछ रही हैं ?

श्रीशिव उवाच ।

सैवमुक्तं वचः श्रुत्वा पपात श्रीपदाब्जयोः । देवा जय जयेत्यूचुस्तदुद्वीक्ष्य मुदान्विताः ॥७१॥
सकलाऽऽनम्य ताः सर्वा वाष्पपर्याकुलेक्षणा । उवाच दीनया वाचा मैथिलीं गद्गदाक्षरम् ॥७२॥
आवां धन्ये महाभागे कृतकृत्ये न संशयः । दर्शनादेव ते जाते श्रीमद्राजेन्द्रनन्दिनि ! ॥७३॥

श्रीसकलोवाच ।

फलानां चैव सर्वेषां सुमूल्यं दर्शनं तव । आसादितं कृपारूपे बालया च ममानया ॥७४॥
निशम्य त्वद्यशोगाथां कीर्त्यमानां महात्मभिः । इयं वाल्यस्वभावेन तव ध्यानपराऽभवत् ॥७५॥
क्वचित्सीतेति वदति क्वचिद्गायति नृत्यति । क्वचिद्ध्यानसमासक्ता क्वचिन्मूर्च्छां निगच्छति॥७६॥
ईदृशीं वृत्तिमापन्नामभिवीक्ष्य दयालुना । उक्ताऽस्मि विष्णुदत्तेन स्वामिनेति शुचान्विता ॥७७॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

सकले! याहि मिथिलां त्वमिदानीं हि सत्वरम् । समादाय निजां पुत्रीं सुशीलां वचनान्मम ॥७८॥
प्रापयास्यै प्रयत्नेन मङ्गलानां च मङ्गलम् । श्रीमज्जनकनन्दिन्या दर्शनं शोककर्षणम् ॥७९॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे श्रीपार्वतीजी ! वे श्रीसुशीलाजी अपनी हृदय-विहारिणी अनन्त ब्रह्माण्ड-नायिका, सर्वेश्वरी श्रीललीजूके इस प्रकारके परमसुखद वचनोंको सुनकर उनके श्रीचरण-कमलोंमें गिर पड़ीं, यह देखकर देव-वृन्द हर्ष-युक्त हो जय-जय बोलने लगे ॥७१॥

सभीको प्रणाम करके श्रीसकलाजी आनन्दातिरेकके कारण नेत्रोंमें आँसू भरे हुये दीनतापूर्ण वाणी द्वारा श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूसे गद्गद अक्षरोंसे युक्त यह वचन बोलीं ॥७२॥

हे श्रीजनकजी महाराजको आनन्द-प्रदान करनेवाली श्रीललीजी ! आपके दर्शनोंसे हम दोनों माँ-बेटी बड़भागिनी, धन्यवादके योग्य तथा निःसन्देह कृत-कृत्य हो गयी हैं ॥७३॥

हे कृपारूपे ! इन सभी फलोंका सुन्दर मूल्य आपका दर्शन था, उसको मेरी इस बालकन्याने प्राप्त ही कर लिया, अतः इन फलोंका और क्या मूल्य बताएं ॥७४॥

हे श्रीललीजी ! महात्माओंके द्वारा वर्णन की हुई आपकी यशोगाथाको श्रवण करके मेरी यह कन्या बाल स्वभावके कारण आपके ध्यानमें तत्पर हो गयी ॥७५॥

चरितके श्रवण मात्रसे ही यह आपके दर्शनोंकी इच्छासे विह्वल हो कभी लीलाओंको गाती, और कभी आपकी महिमाको स्मरण करके नाचती तो कभी आपके ध्यानमें तल्लीन होती, तो कभी मूर्च्छित हो जाती ॥७६॥ पुत्री की इस महाभागवती अवस्था को देखकर दयालु स्वामी श्रीविष्णुदत्तजी मुझे चिन्तित देखकर बोले ॥७७॥हे सकले ! इस समय तुम मेरे वचनों (यानी आदेश) से अपनी इस सुशीला पुत्रीको साथ लेकर शीघ्र ही श्रीमिथिलाजी जाओ ॥७८॥

और प्रयत्न पूर्वक श्रीमान् जनकजी महाराजकी श्रीराजदुलारीजूका समस्त मंगलों का भी मङ्गल स्वरूप, तथा सभी दुःखोको नष्ट करदेने वाला दर्शन इसे प्राप्त कराइये ॥७९॥

ऋते तद्दर्शनादस्या जीवितं न भविष्यति । एतद्विचार्य सत्यं त्वं श्रीमिथिलामितो व्रज ॥८०॥

श्रीसकलोवाच ।

तदाज्ञां संपुरस्कृत्यानयाऽहं समुपागता । सप्तमावरणं रम्यं मिथिलायाः कथञ्चन ॥८१॥
भवत्याः श्रीमहाराज्ञ्या निशम्यागमनं पुनः । राज्ञीहट्टे पथि स्त्रीभिर्हर्षचिन्तान्विताऽभवम् ॥८२॥
सुलभं दर्शनं हट्टे विचार्य्यैव मुदान्विता । हट्टप्रवेशमाबुध्य ह्यसाध्यं चिन्तयाऽन्विता ॥८३॥
जम्बूफलानि चेमानि कथञ्चित्सञ्चितानि मे । हट्टप्रवेशनार्थाय -विक्रयस्य मिषेण वै ॥८४॥
साहसं न प्रवेशस्य यदा मेऽभूत्कथञ्चन । विलोक्य परमैश्वर्यं हट्टस्यास्य तव प्रिये ! ॥८५॥
अत्रैव कन्यया सार्द्धमरोचे संस्थितिं स्विकाम् । नेतोऽपसारयेत्काऽपि चिन्तयेति समन्विता ॥८६॥
दिष्टया त्वद्दर्शनं लब्धं मया चन्द्रनिभानने! । राज्ञीनां दीनया पुण्यं भिक्षुक्या हि त्वदात्मनाम् ॥८७॥
इदानीं प्रार्थये पुत्रि! त्वामिति प्रणयप्रियाम् । गृहाणेमां सुतां दीनां पादसेवाभिलाषिणीम् ॥८८॥
तव प्रेमनिमग्नेयं तव ध्यानपरायणा । समर्पिता मया तस्मादियं त्वत्पादपद्मयोः ॥८९॥

बिना उन श्रीराजदुलारीजूके दर्शनोंके अब यह जीवित रह नहीं सकती, ऐसा सत्य विचार करके तुम यहाँसे श्रीमिथिलाजी चली जाओ ॥८०॥

यह वृत्तान्त सुनाकर सकलाजी श्रीललीजीसे बोलीं:—हे श्रीललीजी ! अपने मालिक श्रीविष्णुदत्तजीकी आज्ञाको स्वीकार करके, इस पुत्रीके सहित किसी प्रकार अर्थात् बहुत ही कठिनतासे मैं श्रीमिथिलाजीके इस सातवें आवरणमें आसकी ॥८१॥

मार्गमें कुछ स्त्रियोंके द्वारा आपका श्रीमहारानीजीके समेत रानी बाज़ारमें शुभागमन श्रवण करके मैं हर्ष और चिन्ता, दोनोंसे युक्त हो गयी ॥८२॥

"महलकी अपेक्षा बाज़ारमें आपका दर्शन सुलभ होगा" ऐसा विचार करके तो मैं हर्षसे युक्त हुई, और उस बाज़ारके प्रवेशको भी साधनसे परे जानकर चिन्तित हो गयी ॥८३॥

वेचनेके बहाने बाज़ारमें प्रवेश करनेके लिये मैंने किसी प्रकार इन जामुनके फलोंको इकठ्ठा किया ॥८४॥ हे प्यारी ! श्रीललीजी ! किन्तु जब आपके इस बाज़ारके महान् ऐश्वर्यको देखा, तब मुझे भीतर प्रवेश करनेके लिए किसी भी प्रकार साहस न हुआ अतः द्वारके बाहर बैठ गयीं पर "यहाँसे भी कोई भगा न दे" इस चिन्तासे युक्त होती हुई भी मैंने कन्या सुशीलाके समेत इसी स्थल पर अपना बैठना उचित समझा ॥८५॥८६॥

हे चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी प्रकाशमय मुखवाली श्रीललीजी ! सो बड़े ही सौभाग्यसे मुझ दीन भिखारिनीको आपके तथा आपमें आत्माके समान अनुरक्त रहने वाली इन महारानियों और राज-कुमारियोंका पवित्र दर्शन प्राप्त हो गया ॥८७॥

हे पुत्री श्रीललीजी ! आपको प्रेम ही सर्वाधिक प्यारा है अत एव प्रेम मतवाली आपके श्रीचरणकमलकी सेवाभिलाषिणी मेरी इस दीन पुत्रीको स्वीकार कीजिये, यही मैं इस समय आपसे प्राथना करती हूँ, यह मेरी बेटी आपके प्रेममें डूबी हुई, आपके ही ध्यानमें तल्लीन रहती है, इस हेतु मैं इसे आपके ही श्रीचरणकमलोंमें सम्यक् प्रकारसे अर्पण करती हूँ ॥८८॥८९॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तस्याः समाकर्ण्य विदेहजा । तूर्णमुत्थाप्य तां दोर्भ्यां सस्वजे परया मुदा ॥६०॥
तां समाश्वासयन्ती सा मातरं जनकात्मजा । उवाच मधुरां वाणीं मृतजीवनदायिनीम् ॥६१॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

एनां महार्हवासोभिर्भूषणैश्च विभूषिताम् । कारयाम्ब ! मम प्रीत्यै सखीभावोरुरीकृताम् ॥६२॥
अस्या मात्रेऽपि संवासो दीयतां राजसद्मनि । भूषयित्वा ह्यलङ्कारैर्मम सन्तोषहेतवे ॥६३॥
अदृष्ट्वा मातरं जातु दुःखिताऽस्तु न मे सखी । नादृष्ट्वा पुत्रिकां माता कदाचिद्दुःखमश्नुयात् ।६४।

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्ता महाराज्ञी महानन्दस्वरूपया । वाढमाभाष्य वैदेहीं सखीं पुनरुवाच ह ॥६५॥

श्रीसुनयनोवाच ।

सादरं स्नपयित्वैनां भूषयित्वा विभूषणैः । कन्यया सहितां शीघ्रं नीत्वाऽऽव्रज ममान्तिकम् ॥६६॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेत्युक्त्वा सखी राज्ञीं नीत्वा तां च सरोवरे । स्नपयित्वा विनीताङ्गीं भूषयाञ्चक्र उत्सुका ॥६७॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! श्रीसकलाजीके द्वारा इस प्रकार कहे हुये वचनोंको श्रवण करके श्रीविदेहराजदुलारीजीने उन सुशीलाजीको तुरन्त दोनों हाथोंसे उठाकर बड़े प्रेम-पूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥६०॥

पुनः श्रीललीजी श्रीसुशीलाजीको आश्वासन प्रदान करती हुई अपनी श्रीअम्बाजीसे मृत (मरे हुये) को जीवन दान देनेवाली जैसी मधुर वाणी बोलीं ॥६१॥

अरी मैया ! मैंने इन श्रीसुशीलाजीको सखी भावसे स्वीकार कर लिया है, अत एव इन्हें बहु-मूल्य वस्त्र तथा भूषणोंसे अलङ्कृत कराइये तथा श्रीसुशीलाजीकी इन मैयाको भी वस्त्र-भूषणोंसे अलङ्कृत कराके मेरे सन्तोषार्थ राजभवनमें ही वास प्रदान कीजिये जिससे अपनी मैयाको न देखकर कभी मेरी यह सखी दुखी न होवे, और इसकी मैया भी कभी अपनी इस पुत्रीको न देखकर दुःखको न प्राप्त हो ॥६२॥६३॥६४॥

महान्-आनन्द स्वरूपा ललीजीके इस प्रकार कहने पर महारानी श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीललीजीसे "ऐसा ही होगा" कहकर अपनी सखीसे बोलीं:-अरी सखी ! इन श्रीसकलाजीको सुशीला पुत्री सहित, स्नान कराके भूषणोंसे भूषित करके मेरे पास शीघ्र ले आओ ॥६५॥६६॥

भगवान् श्रीशिवजी बोलेः—हे पार्वती ! उस सखीने श्रीमहारानीजीसे जो आज्ञा कहकर नम्रता युक्त अङ्ग वाली श्रीसकलाजीको श्रीसुशीलाके सहित सरोवरमें ले जाकर स्नान कराके शृङ्गार युक्त किया ॥६७॥

पुनः सा तामुपादाय महाराज्ञ्यै व्यदर्शयत् । सर्वालङ्कारसंयुक्तां दीनभावमुपाश्रिताम् ॥९८॥
गृहीत्वा तु सुशीलाया मुदा सव्यकराङ्गुलीम् । स्वसृबन्धुसखीभ्यस्तां दर्शयन्ती मनोहरा ॥९९॥
ततस्तस्यै कृपामूर्त्तिर्दर्शयन्ती मनोहरम् । हट्टमप्राकृतं मात्रा जगाम सममालयम् ॥१००॥
क्व चासौ किङ्करीपुत्री क्व श्रीजनकनन्दिनी । सा तया स्वीकृता प्रीत्या सखीभावेन सादरम् ।१०१।
धन्या कृपाऽस्ति वै तस्या धन्यं भाग्यमहो खलु । सुशीलाया मुनिश्लाघ्यं याभ्यां लाभोऽयमद्भुतः।१०२।

श्रीशिव उवाच ।

इति ते कथिता देवि! सुशीलायाः शुभा कथा । भक्तिप्रदायिनी नित्यं पठतां ध्यानपूर्वकम् ॥१०३॥

पुनः उस सखीने भली भाँति पूर्ण श्रृङ्गारकी हुई, दीनभावमें प्राप्त उन श्रीसकलाजीको लेजाकर महारानी श्रीसुनयनाजीको दिखाया ॥९८॥

पुनः श्रीललीजी श्रीसुशीलाजीके बायें हाथकी अङ्गुलीको पकड़कर हर्ष पूर्वक उसे अपने बहिन-भाई तथा सखियोंको दिखाती हुई सबके मनको हरण करने लगीं ॥९९॥ तत्पश्चात् कृपाकी मूर्त्ति श्रीजनकराजदुलारीजी उन श्रीसुशीलाजीको उस मनोहर, अप्राकृत (दिव्य) बाजारको दिखाती हुई, अपनी श्रीअम्बाजीके समेत महलको वापस पधारीं ॥१००॥

हे पार्वती ! कहाँ वह सुशीला ! दासीकी पुत्री और कहाँ वे (अनन्त ब्रह्माण्डनायिका सर्वेश्वरी) श्रीजनकराजदुलारीजी ? फिर भी उन्होंने उसे आदर पूर्वक सखी-भावसे प्रेमपूर्वक स्वीकार किया ॥१०१॥

इसलिये श्रीललीजीकी यह निर्हेतुकी विलक्षण कृपा धन्य है तथा मुनियोंसे प्रशंसनीय श्रीसुशीलाजीका निश्चय ही अहोभाग्य है, जिन दोनोंके योगसे यह अद्भुत चरित रूपी लाभ जीवोंको प्राप्त हुआ है ॥१०२॥

भगवान श्रीशिवजी बोले—हे देवि! इस प्रकार नित्य-प्रति ध्यान पूर्वक पाठ करने वालोंको भक्ति-प्रदान करनेवाली श्रीसुशीलाजीकी इस मङ्गलमयी कथाको मैंने आपके प्रति कही है अर्थात् इस कथाको जो ध्यान पूर्वक नित्य-नियमसे पाठ करेंगे, उन्हें अवश्यमेव श्रीजनकराजदुलारीजीके श्रीचरणकमलोंमें भक्ति (अटूट श्रद्धा प्रेम) की प्राप्ति होगी ॥१०३॥

इति द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

इति मासपारायणे त्रयोविंशतितमो विश्रामः ॥२३॥

—❀❀❀—

अथ त्र्योशीतितमोऽध्यायः ।

श्रीश्रुतशीलजी महाराजको श्रीकिशोरीजी की कृपा-प्राप्ति तथा श्रीमिथिलेशजी द्वारा सम्बन्ध स्वीकृति ।

श्रीशिव उवाच ।

दक्षिणस्यां दिशि श्रीमान् कीर्त्तिमान् वीर्यवान्नृपः । विडालिकापुरीभर्ता श्रीधरो नामविश्रुतः ॥१॥
तस्य धर्मात्मनो राज्ञी श्रीसुकान्तिः पतिव्रता । अजायेतां सुतौ तस्याः कान्तिधरयशोधरौ ॥२॥
चतस्रः पुत्रिकाश्चैव गुणरूपविभूषिताः । सिद्धिर्वाणी च नन्दोषा बाला अशिशुदर्शनाः ॥३॥
स वात्सल्यरसक्लिन्नो जानकीं द्रष्टुमुत्सुकः । कदाचित्पुरमागच्छज्जनकेनाभिपालितम् ॥४॥
चकार स्वागतं तस्य विधिना मिथिलेश्वरः । भूमिजादर्शनोत्कण्ठासमतीततनुस्मृतेः ॥५॥
बाष्पसिक्तमुखाम्भोजो व्याहरन्स शनैः शनैः । सीतेति मधुरां वाणीं लब्धसंज्ञस्ततोऽब्रवीत् ॥६॥

श्रीधर उवाच ।

अयि क्षितेः पुत्रि! विदेहनन्दिनि! त्वदङ्घ्रिपङ्केरुहलाञ्छनाङ्कितम् ।
अद्य प्रपश्यामि शुभं महीतलं श्लाघ्यः सतां भाग्यमहोदयो मम ॥७॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः-हे प्रिये ! दक्षिण दिशामें एक विडालिका नामकी पुरी थी, उसके स्वामी बड़े ही यशस्वी, श्रीमान्-तथा पराक्रमी, श्रीधरनामसे विख्यात राजा हुये हैं ॥१॥

उन धर्मातमा-राजा श्रीधरमहाराजकी पतिव्रता महारानी श्रीसुकान्तिजी थीं, उनके श्रीकान्तिधर और श्रीयशोधरनामके दो पुत्र हुये ॥२॥

गुण रूपसे अलङ्कृत (शोभायमान) श्रीसिद्धिजी, श्रीवाणीजी, श्रीनन्दाजी, श्रीउषाजी, ये उनके चार पुत्रियाँ हुईं जो बाल्यावस्थामें ही कुमारियोंसी प्रतीत हो रही थीं ॥३॥

वात्सल्य रसमें डूबे हुये वे महाराज श्रीधरजी एक समय श्रीजनकराजदुलारीजीके दर्शनों की उत्सुकतासे श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा पालित श्रीमिथिलाजीमें पधारे ॥४॥

श्रीभूमिसुताजीके दर्शनकी उत्कण्ठासे जिन्हें अपने शरीरका भान बिल्कुल नहीं रह गया था, श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनश्रीधर महाराजका विधिपूर्वक स्वागत किया ॥५॥ श्रीधरजी महाराज हे सीते ! हे सीते ! इस मधुर (आनन्द-प्रदायिनी) वाणीको बोलते हुये धीरे-धीरे विह्वलताको प्राप्त हो गये, उनका मुखकमल अश्रुओंसे भीग गया पुनः वे सावधान होने पर बोले।६।

हे श्रीपृथ्वीपुत्रि ! हे श्रीविदेहनन्दिनीजू ! आप पृथ्वीके समान क्षमाकी मूर्त्ति और भक्तोंके हित चिन्तनमें अपने पिता श्रीविदेहजी महाराजको भी आनन्दित करने वाली हैं, आज आपके श्रीचरणकमलके चिह्नोंसे सुशोभित इस मङ्गलमय भूमितलका दर्शन मैं भली भाँति प्राप्त कर रहा हूँ अत एव यह मेरा महान भाग्योदय सन्तों द्वारा भी प्रशंसनीय है ॥७॥

त्वयाऽन्वितं कान्तमनन्तवैभवं पितुस्तवाकुण्ठमतेर्निकेतनम् ।
अद्य प्रपश्यामि मर्हाषिभावितं श्लाध्यःसतां भाग्यमहोदयो मम ॥८॥
अद्यात्मभूत्र्यक्षफणीश्वरार्च्चितं बज्रादिशंधामसुलक्षणान्वितम् ।
द्रक्ष्यामि ते पादतलद्वयं सुखं श्लाध्यः सतां भाग्यमहोदयो मम ॥९॥
अद्य त्वदास्यं शरदिन्दुनिर्मलं विशालभालं मृदुजिह्मकुन्तलम् ।
विम्बाधरं पद्मदृशं सुनासिकं विलोक्य साफल्यमियां स्वजन्मनः ॥१०॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्मिन्वदत्येवमुदारदर्शना श्रीजानकी पद्मपलाशलोचना ।
यदृच्छया तत्र पितुर्दिदृक्षया सहानुजैः स्वसृभिराजगाम ह ॥११॥
तामागतामिन्दुमुखीं मृदुस्मितां प्रकाशयन्तीं स्वरुचा दिशो दश ।
वात्सल्यपूर्णेन हृदा स सस्वजे विदेहवंशाधिपतिर्निजात्मजाम् ॥१२॥

जिनकी मति (बुद्धि) कभी भी कुण्ठित नहीं होती, ऐसे आपके श्रीपिताजीके मनोहर, अनन्त वैभव-सम्पन्न, आपसे युक्त, जिस महलका मर्हाष लोग ध्यान करते हैं, उसीका आज मैं प्रत्यक्ष दर्शनकर रहा हूँ अत एव मेरा यह महान् भाग्यका उदय सन्तोंके द्वारा भी प्रशंसाके योग्य है ॥८॥

श्रीब्रह्माजी, श्रीशङ्करजी, श्रीशेषजी जिसका पूजन करते हैं, तथा जो वज्रादि मङ्गलधाम सुन्दर चिह्नोंसे युक्त हैं; आपके उन्हीं श्रीचरण-कमलोंके तलवोंका दर्शन आज मैं सुखपूर्वक करूँगा अत एव यह मेरे भाग्यकी महान् जागृति सन्तोंके द्वारा भी प्रशंसा योग्य है ॥९॥

हे श्रीललीजी ! जिसका मस्तक विशाल (बड़ा) कोमल घुँघुराले केश, बिम्बाफलके समान लाल अधर तथा ओठ, प्रफुल्लित कमलके सदृश बड़े-बड़े नेत्र तथा सुन्दर नासिका है, शरद्ऋतु वाले निर्मल, पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य उज्ज्वल प्रकाशमान, परम-आह्लादकारी आपके उस श्रीमुखारविन्दका दर्शन करके आज मैं अवश्य अपने नर जन्मकी सफलता प्राप्त करूँगा ॥१०॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीधरमहाराजके इस प्रकार कहते हुये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सभी प्रकारका अभीष्ट प्रदान करने वाला जिनका दर्शन है, वे कमलदल-लोचना श्रीजनकराजदुलारीजी दैव-संयोगसे उसी समय अपने बहिन-भाइयोंके सहित पिताजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ पर आ पधारीं ॥११॥

पूर्ण-चन्द्रमाके समान सहजाह्लादकारी श्रीमुखारविन्द और मनोहर मुस्कानसे युक्त अपनी स्वाभाविक कान्तिसे दशो दिशाओंको प्रकाशित करती हुई श्रीललीजीका श्रीमिथिलेशजी-महाराज वात्सल्यपूर्ण हृदयसे आलिङ्गन करके बेसुध हो गये ॥१२॥

उन्मीलिताक्षस्तु विडालिकेश्वरो ददर्श हृत्स्थां निजनेत्रगोचरीम् ।
अयोनिजां रम्यरुचिं दरस्मितां प्रवर्षदानन्दरसाभ्रलोचनाम् ॥१३॥
सहानुजैः स्वसृगणैर्विराजितां तामानतामप्रतिमैकबालिकाम् ।
अतीवमाधुर्यवयःसमाश्रितां वात्सल्यलीनोरुमतिः स्वलालयत् ॥१४॥
स मूकवत्सौख्यमवर्ण्यमद्भुतं ह्यास्वादयन्भूमिसुतेक्षणोद्भवम् ।
अवाप्य मूर्च्छां निपपात भूतले विलोकयन्त्या दुहितुर्धरापतेः ॥१५॥
विदेहराजोऽपि जगाम विस्मयं निरीक्ष्य तत्प्रेमदशां विचक्षणः ।
प्रयत्नशीलोऽपि न तं प्रवोधितुं शशाक यर्हीति तदाह पुत्रिकाम् ॥१६॥

श्रीजनक उवाच ।

वत्से ! त्वयि प्रीतियुतो नराधिपो भृशं किलायं समुदीक्ष्यते मया ।
अतस्त्वमेव स्पृश पद्मपाणिना श्रीखण्डशीतेन मुदेनमात्मदे ! ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तया पद्मपलाशनेत्रया स्पृष्ट्वा कराम्भोजतलेन बोधितः ।
स श्रीधरः प्राप्य धृतिं तदीक्षया कृतार्थमात्मानममन्यत प्रिये ! ॥१८॥

श्रीविडालिका पुरीके स्वामी श्रीधरजी महाराज ज्यों ही आँखें खोलते हैं त्यों ही हृदयमें विराजी हुई मनोहर कान्ति, मन्दमुस्कान, आनन्द रसकीवर्षा करते हुये मेघवत् श्यामनेत्र वाली तथा बिना किसी कारणके प्रकट हुई उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ ॥१३॥ अतीव माधुर्य अवस्थासे युक्त, बहिन भाइयोंसे सुशोभित, नमस्कारार्थ झुकी हुई, उपमारहित उन अद्वितीय बालिका (श्रीजनकराजदुलारी) का वात्सल्यभावमें लीन महामति वाले श्रीधरजी महाराज भली भाँति दुलार करने लगे ॥१४॥

श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंसे प्राप्त तथा वर्णन करनेमें अशक्य उस अद्भुत सुख का गूंगेके समान आस्वादन करते हुये वे श्रीधरजी महाराज श्रीभूमिसुताजीके देखते देखते मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥१५॥ जिन्हें स्वयं ही आनन्द सागरमें लीनताके कारण शरीरकी सुधि बुधि नहीं रहती वे सारासार विवेकी श्रीमिथिलेशजी महाराज भी उनके प्रेमकी उस स्थितिको देखकर चकित रह गये, पुनः प्रयत्न करने पर भी जब किसी प्रकारसे उनको सावधान (बहिर्वृत्ति) करने में समर्थ नहीं हुये तब श्रीललीजीसे बोलेः—॥१६॥ हे वत्से! मैं भली भाँति देख रहा हूँ, कि इन राजा श्रीधर महाराजका आपके प्रति बहुत ही प्रेम है, इस लिये हे बुद्धिप्रदे! श्रीललीजी! आप ही श्रीखण्डचन्दनके समान अपने शीतल करकमलके द्वारा इन्हें प्रसन्नता पूर्वक स्पर्श कीजिये ॥१७॥

भगवान् शङ्करजी बोले—हे प्रिये ! पिताजीके इस प्रकार कहने पर उन कमलदललोचना श्रीकिशोरीजीने, अपने कमलवत् सुकोमल हाथकी हथेलीसे स्पर्श करके श्रीधर महाराजको सावधान कर दिया, तब वे श्रीकिशोरीजीकी दृष्टि-मात्रसे धैर्यको प्राप्त हो अपने आपको कृतार्थ मानने लगे ॥१८॥

लक्ष्मीनिधिं वीक्ष्य तथा गुणाकरं निधानकं श्रीनिधिमङ्ग मोहिताः ।
निश्चित्य सौख्यप्रदकृत्यमात्मना स्वपुत्रिकाणां सुकृतिप्रसिद्धये ॥१६॥
एकाकिनं श्रीमिथिलानरेश्वरं प्रणम्य भूयो विहिताञ्जलिर्नृपः ।
उवाच संश्लक्ष्णगिरा मनोज्ञया श्रीजानकीतातमिदं शुभं वचः ॥२०॥

श्रीधर उवाच ।

हे पुण्यराशे ! मिथिलामहेन्द्र ! हे बोधवारांनिधिपूर्णचन्द्र ! ।
अहं कृतार्थः खलु नात्र संशयस्त्वत्पुत्रिकामङ्गलमूलदर्शनात् ॥२१॥
अत्रत्य यात्रा सफला हि मे ऽभवद्दिष्टचा प्रसादात्परमात्मनो हरेः ।
विशेषतः स्यामनुकम्पितस्त्वया ब्रजामि सम्बन्धिपदं तवात्रचेत् ॥२२॥
पुत्र्यश्चतस्रो मम चारुदर्शना गुणाभिरामा अनवद्यलक्षणाः ।
यथा कुमारा भवतः सुशोभनाः सम्बन्ध एषाममुकाभिरर्हति ॥२३॥
ता मे सुताः कर्णगतं यशोऽमलं विधाय पुत्र्यास्तव विप्रभाषितम् ।
तद्दर्शनाशापरमातुरेक्षणाः सर्वाः कृशाङ्ग्यो ब्रतशुष्कशोणिताः ॥२४॥

पुनः श्रीधरजी महाराज श्रीलक्ष्मीनिधिजी श्रीगुणाकरजी, श्रीनिधानकजी तथा श्रीनिधिजी भाइयोंको देखकर मुग्ध होगये फिर सावधान होनेपर बुद्धिके द्वारा अपनी पुत्रियोंके पुण्यकी पूर्ण सिद्धि प्राप्तकराने वाला सुखप्रद कर्त्तव्य निश्चय करके अकेलेमें श्रीकिशोरीजीके पिता श्रीमिथिलेशजी महाराजको बारम्बार प्रणाम करके हाथ जोड़े हुये वे श्रीधरजी महाराज बड़ी ही कोमल तथा मनोहर वाणी द्वारा यह मङ्गल वचन बोले ॥१६॥२०॥

हे समस्त पुण्योंकी राशिस्वरूप ! हे श्रीमिथिलाजीके सर्वप्रधान स्वामी, हे समुद्रके समान महर्षियोंके अथाह ज्ञानकी, पूर्ण चन्द्रमाके समान सहज वृद्धि करने वाले राजन् ! आज समस्त मङ्गलोंके कारण भूत आपकी श्रीललीजीके दर्शनोंसे मैं कृतार्थ होगया, इसमें कोई सन्देह नहीं॥२१॥

परमात्मा श्रीहरिकी कृपासे सौभाग्यवश मेरी यहाँकी यात्रा सफल हो गयी तथापि यदि मुझे आप सम्बन्धी बनालें, तो और भी मेरे पर आपकी बड़ी कृपा हो ॥२२॥

जैसे आपके ये चारो राजकुमार सब प्रकारसे सुन्दर हैं, उसी प्रकार मेरी भी चारों राजकुमारियां गुण तथा रूपसे परम सुन्दरी, अपने शुभ लक्षणोंसे ही प्रशंसनीय हैं, अत एव इन राजकुमारोंका वैवाहिक सम्बन्ध मेरी उन राजकुमारियोंके साथ होना सब प्रकारसे ठीक है ॥२३॥ ब्राह्मणोंके द्वारा कही हुई आपकी श्रीललीजीकी उज्वल कीर्त्तिको श्रवण करके इनके दर्शनोंकी आशासे मेरी उन पुत्रियोंके नेत्र अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं तथा श्रीललीजीकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके ब्रतोंके कारण उनके शरीरका खून भी सूख गया है, अत एव वे बहुत ही दुर्बल हो गयीं हैं ॥२४॥

तासां मया जीवनगुप्तयेऽधुना सुप्रार्थनेयं भवते समर्प्यते ।
स्वयं समागत्य पुरं हि तावकं यद्रोचते तत्क्रियतां कृपानिधे ! ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

तदुक्तमाकर्ण्य स धर्मवित्तमः प्रसन्नचेतास्तमुवाच सादरम् ।
तथास्तु राजन् भवता यथेप्सितं नास्वीकृतिस्ते वचसो हि रोचते ॥२६॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स एवमुर्वीशवरेण नन्दितो सुधागिरा प्रेष्ठ ! विडालिकेश्वरः ।
दिनानि हृष्टः कतिचित्पुरि प्रिय! तातस्य चोवास ममेनवंशज ! ॥२७॥

ततस्तु संस्मृत्य निजात्मजानां विदेहजादर्शनलालसानाम् ।
दशां दयार्हां जनकात्मजाया उवाच तातं जलजायताक्ष ! ॥२८॥

सुखं विसृज्येदमहं स्वदेशं भवत्सुतादर्शनजं दुरापम् ।
नोत्साहवान् गन्तुमितः कथञ्चन ब्रवीमि सत्यं मिथिलामहेन्द्र ! ॥२९॥

हे कृपानिधे ! इस समय उन पुत्रियोंकी जीवन रक्षाके अभिप्रायसे ही मैं स्वयं आपके नगरमें आकर इस उचित प्रार्थनाको आपसे निवेदन कर रहा हूँ, अब आपकी जैसी रुचि हो करनेकी कृपा करें ॥२५॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! धर्म वेत्ताओंमें परम-श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीश्रीधर-महाराजकी उस प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न चित्तहो उनसे आदर-पूर्वक बोले:-हे राजन्! आपने जैसी इच्छाकी है, वैसा ही हो, क्योंकि 'आपत्काले मर्यादा नास्ति' यह कहावत प्रसिद्ध ही है अत एव अपनी ज्येष्ठ पुत्रीके बिना विवाह किये ही उनके छोटे भाइयोंका, असङ्गत मर्यादा विरुद्ध होने पर भी "प्राण-रक्षा गरीयसी" इस नीतिके अनुसार मैं आपकी इस प्रार्थनाको अस्वीकार करना नहीं चाहता अर्थात् इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ ॥२६॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे सूर्यवंशमें उत्पन्न श्रीप्राणप्यारेजू ! पृथ्वीपतियोंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपनी मीठी वाणी द्वारा जब विडालिका पुरीके स्वामी श्रीधरजी महाराजको आनन्दित किया, तब वे कुछ दिन मेरे पिताजीके पुर (श्रीजनकपुर) में हर्षपूर्वक निवास करते हुये ॥२७॥

हे कमलनयन श्रीप्यारेजू ! श्रीविदेहनन्दिनीजूके दर्शनोंकी लालसा वाली अपनी पुत्रियोंकी दयनीय दशाका सम्यक् प्रकारसे स्मरण करके श्रीधरजी महाराज, श्रीकिशोरीजीके पिताजीसे बोले ॥२८॥ हे श्रीमिथिलाजीके सर्वप्रधान महाराज ! मैं सत्य कहता हूँ, आपकी श्रीललीजीके दर्शन जनित इस दुर्लभ सुखको छोड़कर, मुझे यहाँसे अपने देशको जानेके लिये किसी प्रकार भी उत्साह नहीं हो रहा है ॥२९॥

तथाऽपि संस्मृत्य सुताः स्वकीयाः श्रीजानकीदर्शनतृष्णयार्त्ताः ।
याचे त्वदाज्ञामयितुं स्वदेशं योक्तुं ह्यनेनैव सुखेन ताश्च ॥३०॥
दृष्ट्वाऽधुनाऽहं क्षितिगर्भजातां स्वबन्धुभिः स्वसृगणैः परीताम् ।
तां लालयित्वा पुनरस्तपुण्यो महीप ! गन्तुं स्वपुरं समीहे ॥३१॥

श्रीजनक उवाच ।

त्वं मा शुचोऽवेक्ष्य सुतां हि मामकीं स्वबन्धुभिः स्वसृगणैः समन्विताम् ।
यथास्पृहं सर्वमनोज्ञदर्शनां सुखं स्वदेशं ब्रज ताश्चसान्त्वय ॥३२॥

श्रीशिव उवाच ।

तथास्तु तस्मिन् गदति क्षितीश्वरे श्रीमैथिलेन्द्रस्तनयामयोनिजाम् ।
समावृतां स्वसृगणैश्च बन्धुभिर्देदीप्यमानां स्वरुचाऽऽजुहाव ह ॥३३॥
आहूयमाना क्षितिपेन मैथिली द्रुतेन तत्सन्निधिमभ्यपद्यत ।
उदीक्ष्य तां पद्मदलायतेक्षणां विडालिकेशोऽपि ययौ बिदेहताम् ॥३४॥
मनः समाधाय पुनः कथञ्चन प्रहृष्टरोमा गमनोद्यतो मुहुः ।
हृदा परिष्वज्य सवाष्पलोचनः श्रीजानकीमिन्दुमुखीं नृपं नतः ॥३५॥

फिरभी श्रीललीजीके दर्शनोंकी तृष्णासे व्याकुल हुई अपनी उन पुत्रियोंका स्मरण करके उन्हें इसी अभीष्ट सुखसे युक्त करनेके लिये, अब मैं आपसे अपने देशको जानेके लिये, आज्ञा माँगता हूँ ॥३०॥ हे भूपते ! बहिन-भाई वृन्दोंके सहित भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजीका दर्शन करके उनको लाड़ लड़ाके पुण्य समाप्त हो जानेके कारण अब मैं अपने नगरको जाना चाहता हूँ ॥३१॥

श्रीजनकजी महाराज बोले:—हे राजन् ! आप शोक न करें, जिनका दर्शन चर-अचर प्राणियोंके मनको हरण कर लेता है, बहिन—भाइयोंके समेत उन हमारी श्रीललीजीका अपनी इच्छा भर दर्शन करके सुख-पूर्वक अपने देशको पधारिये और अपनी पुत्रियोंको श्रीललीजीके दर्शनोंका आश्वासन प्रदान करके शान्त कीजिये ॥३२॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीधर महाराजके ऐसा कहते ही श्रीमिथिलेशजी महाराजने बिना किसी कारण से प्रकट हुई, भाई—बहिनोंसे युक्त अपनी कान्तिसे चमकती हुई, उन श्रीललीजीको बुलाया ॥३३॥ महाराजके बुलाने पर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी तुरन्त उनके पास आ पधारीं, उन कमलदलके समान विशाल मनोहर नेत्रवाली श्रीललीजीका दर्शन करके विडालिकापुरीके स्वामी श्रीधरजी महाराज बेसुध हो गये ॥३४॥

पुनः किसी प्रकार अपने मनको सावधान करके हर्षसे रोमाञ्चको प्राप्त, नेत्रोंसे अश्रुबहाते हुये पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशपूर्ण, आह्लाद-प्रदायक मुखवाली श्रीजनकराजदुलारीजीको बारम्बार हृदयसे लगाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजको प्रणाम करके, बड़ीही कठिनतासे वे अपने देशको चलनेके लिये तैयार हुये ॥३५॥

निधाय तां चेतसि सानुजानुजां स भूमिपालः स्वपुरं जगाम ह ।
अभ्येत्य तं वीरभटैः सुरक्षितं विवेश रम्यं निजरङ्गमन्दिरम् ॥३६॥

कृताशनस्तल्पगतो निवेदयाञ्चकार राज्ञ्यै मिथिलापुरस्य यत् ।
वृत्तान्तमम्भोजविलोचनादितो निशामयन्तीषु सुतासु तन्नृपः ॥३७॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

इदं हि भाग्योदयकालसूचकं श्रुतं मया वृत्तमपूर्वसौख्यदम् ।
पुरोधसं प्रेषय भूपसन्निधिं विनिश्चितोद्वाहमुहूर्तलग्नकम् ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

तथेति सम्भाष्य स तां क्षितीश्वरः प्रेम्णा समाहूय समर्च्य सादरम् ।
गुरुं तदाज्ञात उवाच तं नतो वचो निजाभीष्टकरं स्फुटाक्षरम् ॥३९॥

श्रीधर उवाच ।

हे नाथ ! पुत्रा मिथिलेशितुर्मया निरीक्ष्य जामातृपदाय रोचिताः ।
अतस्तदुद्वाहशुभाहभादिकं विचार्य शीघ्रं मिथिलां व्रज प्रभो ! ॥४०॥

पुनः अपने चित्तमें भाई-बहिनों समेत उन श्रीललीजीको विराजमान करके श्रीधर-महाराज अपनी विडालिका पुरीको पधारे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने वीर योद्धाओंसे सुरक्षित अपने मनोहर अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥३६॥

हे कमलदललोचन श्रीप्राणप्यारेजू ! भोजन करनेके पश्चात् जब वे विश्रामार्थ पलङ्ग पर विराजमान हुये, तब अपनी पुत्रियोंके सुनते हुये श्रीमिथिलापुरीका सारा वृत्तान्त आदिसे अन्त तक उन्होंने श्रीसुकान्ति महारानीजीसे निवेदन किया ॥३७॥

श्रीसुकान्तिजी बोलीं:—हे प्यारे ! निश्चय ही भाग्यके उदय समयकी सूचना देने वाला यह अपूर्व सुखदायक वृत्तान्त मैंने श्रवण किया, अब आप विवाहके लग्न मुहूर्तका निश्चय करने वाले श्रीकुलपुरोहितजीको श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास भेज दीजिये ॥३८॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीसुकान्ति महारानीकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीधरजी महाराज (उनसे) ऐसा ही होगा, कहकर श्रीकुलगुरुजीको आदर-पूर्वक बुलवाकर षोडशोपचारसे पूजन करके, उनकी आज्ञाको पाकर प्रणाम-पूर्वक अपना अभीष्ट प्रदान करने वाला वचन स्पष्ट अक्षरोंमें बोले ॥३९॥

हे नाथ ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके राजकुमारोंको देखकर मैंने उन्हें अपना जमाई बनाने की इच्छाकी है, इसलिये हे प्रभो ! उनके विवाहका शुभ दिन, नक्षत्र आदि विचार करके आप शीघ्र ही श्रीमिथिलाको पधारिये ॥४०॥

पुत्र्यो मदीयाः किल भूरिभागाः श्रीमैथिलीदर्शनपूर्णलाभम् ।
गच्छन्तु कामं न चिरेण चैतास्तद्भ्रातृपत्नीपदमभ्युपेत्य ॥४१॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

भद्रं हि ते धर्मभृतं धरापते ! स्वयं समायान्त्यखिलाः सुसम्पदः ।
सर्वं शुभं भूमिसुतास्मृतिप्रदं मासर्क्षतिथ्यादिकमित्यवेहि तत् ॥४२॥
तथाऽपि वैशाखसिते विधौ दिने संवत्सरेऽस्मिन्नपि पञ्चमीतिथौ ।
प्रशस्तयोगो विदुषां विचारतो वैवाहिको मानवदेव ! वर्तते ॥४३॥
प्रदेहि शीघ्रं शुभजन्मपत्रिका निजात्मजानां स्वकराक्षरान्विताः ।
प्रदातुमुर्वीपतये महात्मने श्रीभूमिजाया जनकाय पार्थिव ! ॥४४॥

श्रीशिव उवाच ।

कृपा महत्युक्तवता द्विजोत्तमो विडालिकेशेन निशम्य तद्वचः ।
स प्रेषितः श्रीमिथिलां मनोरमां प्रदाय पत्रीर्महितो यथाविधि ॥४५॥
पुरीं समासाद्य विदेहपालितां पुरोहितोऽसावनुरागनिर्भरः ।
द्रक्ष्ये कदाऽहं नृपजामयोनिजामुत्कण्ठयेत्याकुलमानसोऽभवत् ॥४६॥

जिससे हमारी ये बड़भागिनी पुत्रियाँ श्रीमिथिलेशदुलारीजूके भाइयोंकी पत्नियाँ होकर शीघ्र ही भर इच्छा उनके दर्शनोंका पूर्णलाभ प्राप्त करें ॥४१॥

श्रीश्रुतशीलजी महाराज बोले—हे राजन् ! आपका मङ्गल हो, धर्मपरायण व्यक्तिके पास अपने आपही, सभी प्रकारकी उत्तम तथा हितकर सम्पत्तियाँ आती रहती हैं। जो मास, जो नक्षत्र, जो तिथि आदि भूमिसुता श्रीजनकनन्दिनीजूका स्मरण प्रदान करें वह सभी मङ्गलमय है ॥४२॥

हे नरदेव ! फिर भी इस वर्षमें विद्वानोंके विचारसे वैशाखशुक्ला पञ्चमी सोमवारको विवाहके लिये बहुत ही उत्तम योग है ॥४३॥

हे राजन् ! इस लिये श्रीजनकनन्दिनीजूके महातमा अर्थात् श्रीभगवान्को ही अपनी बुद्धि और मनमें बसानेवाले पिताजीको देनेके लिये अपने हस्ताक्षर सहित राजकुमारियोंकी शुभजन्मपत्रिका मुझे शीघ्र दीजिये ॥४४॥

भगवान् शिवजी बोले—हे पार्वती ! श्रीगुरुदेवके उस वचनको सुनकर विडालिका पुरीके नरेश (श्रीधर) जी महाराजने "बड़ी कृपा है" ऐसा कहकर विधिपूर्वक उनका पूजन करके जन्मपत्रियोंको दे, उन्हें मनोहारिणी श्रीमिथिलाजी भेज दिया ॥४५॥

श्रीविदेहजी महाराज जिस पुरीका पालन कर रहे हैं, उस श्रीमिथिलापुरीमें पहुँचकर वे श्रीधरजी महाराजके पुरोहित श्रीश्रुतशीलजी महाराज अनुरागमें भर गये, कब "मुझे अयोनि सम्भवा बिना कारण अपनी इच्छासे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका दर्शन होगा" इस चिन्तासे उनका चित्त व्याकुल हो उठा ॥४६॥

बज्रादिचिह्नानि धराङ्कितान्यथो निरीक्ष्य पुत्र्या नृपतेः पदाब्जयोः ।
दृशा स्पृशन्विस्मृतसर्वकृत्यको ययौ बिसञ्ज्ञां धुतसर्वकिल्विषः ॥४७॥
तदाऽऽगता सा नरनाथनन्दिनी विहृत्य कामं कमलापगातटात् ।
सीता परीता स्वसृभिः स्वबन्धुभिः प्रसाद्यमाना च जयेति निःस्वनैः॥४८॥
पथि च्युतं तर्हि जनैः समावृतं ददर्श सर्वान्तरभाववित्तमा ।
नेत्राम्बुसिक्ताननकण्ठभूतलं ब्रह्मर्षिमाराच्छ्रुतशीलमार्द्रधीः ॥४९॥
तया स संस्पृष्टपदो महामुनिर्विस्फारिताक्षोऽभिमुखे विराजिताम् ।
दृष्ट्वा जगन्मङ्गलमोदविग्रहां निमेषशून्येक्षण आस विह्वलः ॥५०॥
सम्प्राप्तसञ्ज्ञेऽवनिदेवसत्तमे तस्मिन्पुनः सा मिथिलेश्वरात्मजा ।
जगाम मातुर्भवनं मुदान्विता प्रणम्य सार्द्धं स्वसृबन्धुभिस्तम् ॥५१॥
स चापि संप्राप्तधृतिर्महामनाः प्रसन्नचेता मिथिलेशितुः सभाम् ।
प्रविश्य विप्रर्षिजनैः समाकुलां ददर्श भूपं तमुदारदर्शनम् ॥५२॥

तत्पश्चात् पृथिवीपति श्रीजनकजी महाराजकी श्रीराजनन्दिनीजूके भूमिमें अङ्कित श्रीचरण-कमलके बज्रादि चिह्नोंका दर्शन करके, उनके सब पाप धुल गये, अतः वे उन चिह्नोंको अपने नेत्रोंसे स्पर्श करते हुये सभी प्रकारके कर्त्तव्यकी सुधिबुधि भूलकर, प्रेममूर्च्छाको प्राप्त होगये॥४७॥

उसी समय जयघोषके द्वारा प्रसन्न की जाती हुई राजनन्दिनी श्रीकिशोरीजी, अपने भाई बहिनोंके साथ भर इच्छा विहार करके श्रीकमला नदीके किनारेसे वहाँ आ पधारीं ॥४८॥

चर-अचर मय सभी प्राणियोंके भावको समझने वाली शक्तियोंमें परम-श्रेष्ठा दयामयी श्रीराजदुलारीजीने पाससे देखा कि महर्षि श्रुतशीलजी मार्गमें बेसुध पड़े हुये हैं, लोगोंने आश्चर्य वश उन्हें घेर रखा है । अश्रुओंसे उनका मुख, गीला, और पृथिवी भीग गयी है ॥४९॥

श्रीकिशोरीजीने ज्यों ही उनके चरणोंका स्पर्श किया, त्यों ही महान् (परमात्मतत्त्व-स्वरूपा उन श्रीललीजीका ही) मनन करनेवाले श्रीश्रुतशीलजी-महाराजने अपनी बन्द आँखोंको खोल दिया परन्तु सम्मुख चर-अचर सभी प्राणियोंके मङ्गल तथा सुखकी मूर्त्ति श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूका एकटक दर्शन करके वे व्याकुल हो गये॥५०॥

पुनः जब वे ब्राह्मणशिरोमणि श्रीश्रुतशीलजी महाराज सावधान हुये तब श्रीकिशोरीजी अपने भाई बहिनोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम करके, अपनी माता श्रीसुनयना महारानीके महलको पधारीं और श्रीश्रुतशीलजी महाराजने श्रीकिशोरीजीको अपने मनमें विराजमान किये हुये पूर्णधैर्यको प्राप्त, प्रसन्नचित्त हो ऋषि ब्राह्मणोंसे भरी हुई श्रीमिथिलेशजी महाराजकी सभामें पहुँचकर उन उदार दर्शन वाले श्रीजनकजी महाराजका दर्शन किया ॥५१॥५२॥

राज्ञा समुत्थाय नमस्कृतो द्विजः संस्थाप्य पीठे विधिना समर्चितः।
प्रादात्स पाणौ नृपतेः सुपत्रिकां विडालिकेशस्य कराक्षराङ्किताम् ॥५३॥
श्रीस्नेहपरोवाच ।
प्रशंसयंस्तं निजभाग्यमप्यसौ विदेहराजं मुदितेन चेतसा ।
स ऊचिवान्वाक्यमिदं कृताञ्जलिं सभान्तरस्थैः परिसुष्ठुसत्कृतः ॥५४॥
श्रीश्रुतशील उवाच ।
प्रदर्श्य कन्याशुभजन्मपत्रिका एताः सुतानां च पुरोधसे त्वया ।
विडालिकेशात्मभुवां प्रदीयतां सम्बन्धस्वीकारदलं सहार्भकैः ॥५५॥
श्रीशिव उवाच ।
तथेति सम्भाष्य विदेहभास्करो ददौ शतानन्दकरे सुपत्रिकाः ।
नृपार्भकाणामपि जन्मपत्रिकास्तदा समानीय विनम्रकन्धरः ॥५६॥
स गौतमीसूनुरुदारनिश्चयो विचार्य पत्रीर्वरकन्ययोर्जगौ ।
अयं विवाहस्तु नरेन्द्रसत्तम विचार्यतां स्वस्तिकरी हि सर्वथा ॥५७॥

पुनः जब राजा श्रीजनकजीने खड़े होकर नमस्कार किया और सिंहासन पर बिठाकर उनका विधिपूर्वक पूजन कर लिया, तब श्रीश्रुतशीलजी महाराजने श्रीविडालिका पुरीके नरेश श्रीधरजी महाराजके हस्ताक्षरसे युक्त उनकी पत्रिकाको श्रीमिथिलेशजी महाराजके कर-कमलमें दे दिया ॥५३॥ श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! सभासदोंके द्वारा भली भाँति सत्कारको पाकर श्रीश्रुतशीलजी महाराज मुदितचित्त हो, हाथ जोड़े श्रीविदेहमहाराजसे उनकी तथा अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुये यह वचन बोले ॥५४॥

हे राजन् ! इन कन्याओंकी जन्म पत्रिकाओंको तथा अपने राजकुमारोंकी जन्म पत्रियोंको अपने कुल पुरोहित श्रीशतानन्दजी महाराजको दिखलाकर प्रसन्नता पूर्वक अपने पुत्रोंके साथ श्रीविडालिका नरेशकी राजकुमारियोंका सम्बन्ध स्वीकार पत्र प्रदान कीजिये ॥५५॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! यह सुनकर विदेह कुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजने उनसे "ऐसा ही हो" कहकर उन पत्रिकाओंको तथा अपने राजकुमारोंकी जन्म पत्रियोंको मँगाकर अपने कन्धोंको झुकाते हुये श्रीशतानन्दजी महाराजके हाथमें अर्पण किया ॥५६॥

वे उदार निश्चय अहल्या पुत्र श्रीशतानन्दजी महाराज वरकन्याओंकी जन्म पत्रिकाओंको देखकर बोले-हे राजाओंमें परम श्रेष्ठ! इस विवाहको आप सभी प्रकारसे मङ्गलकारी विचारिये ॥५७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसुनयना महारानी के सहित अपनी श्रीललीजूके साथ खड़े हैं और महर्षि श्रुतशीलजी श्रीकिशोरीजीके ध्यान में मग्न हैं।

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तवत्येव मुनौ सभासदां मतेन दत्तं श्रुतशीलहस्तके ।
स्वीकारपत्रं लिखितं स्वपाणिना राज्ञा विदेहेन नतेन सादरम् ॥५८॥
पुनस्तु तं विप्रवरं नृपोत्तमः सुखप्रदं वासमतीवशोभनम् ।
प्रदाय नानाद्विजवृन्दसेवितं मृगान्वितं प्राप नृपो निजालयम् ॥५६॥
राज्ञ्यै हि तद्वृत्तमसौ यथातथं निवेद्य रात्रौ च तयोपशोभितः ।
अयोनिजोत्सङ्गकया सपुत्रकः प्रातर्मुदाऽगच्छदृषेर्दिदृक्षया ॥६०॥
तं वै महात्मानमनल्पतेजसं निमीलिताक्षं विरहाब्धिसंप्लुतम् ।
सीतेति वाचं मधुरां शनैः शनैः संव्याहरन्तं नृपमौलिरैक्षत ॥६१॥
क्रोडात्समुत्तार्य्य तदा निजात्मजां जगादवाष्पाप्लुतपङ्कजेक्षणः ।
स्पृशाङ्घ्रिपद्मे मम पुत्रि! सादरं महात्मनोऽस्य प्रवरस्य शोभने! ॥६२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

अर्थर्षिपादाम्बुजयोर्नतायां स्वपुत्रिकायां वच एतदूचे ।
यन्नामसङ्कीर्त्तनतत्परोऽसि तां पश्य ते पादयुगं नमन्तीम् ॥६३॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीशतानन्दजी महाराजके इस प्रकार कहने पर सभासदोंकी सम्मतिसे श्रीविदेहजी महाराजने अपने हाथसे सम्बन्ध-स्वीकार पत्र लिखकर आदरपूर्वक प्रणाम करके, उसे श्रीश्रुतशीलजी महाराजके हाथमें अर्पण किया ॥५८॥ तत्पश्चात् राजाओं में उत्तम श्रीजनकजी महाराज, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उन श्रीश्रुतशीलजी महाराजको पक्षी समूहोंसे सेवित, मृगांसे युक्त अत्यन्त सुन्दर, सुखद-निवास प्रदान करके अपने महलको पधारे ॥५६॥

रातमें जैसा का तैसा वह वृत्तान्त श्रीसुनयना महारानीजीसे निवेदन करके प्रातः काल विना किसी कारण अपनी इच्छासे प्रकट हुई श्रीललीजीको गोदमें लिये हुई श्रीसुनयना महारानी जीसे सुशोभित श्रीलक्ष्मीनिधि आदि पुत्रोंके सहित प्रसन्नतापूर्वक श्रीमिथिलेशजी महाराज ऋषि (श्रुतशीलजी महाराज) के दर्शनकी इच्छासे (उनके निवास स्थान पर) पधारे ॥६०॥

राज शिरोमणि श्रीजनकजी महाराजने वहाँ पहुँचकर देखा, कि वे महान् तेजस्वी श्रीश्रुतशीलजी महाराज आँखें बन्द किये विरहसागरमें भली भाँति डूबे हैं और धीरे धीरे हे सीते ! हे सीते, यह मधुर (सुखदायिनी) वाणी बोल रहे हैं तब अश्रुभरे कमलके समान नेत्र श्रीजनकजी महाराज अपनी श्रीललीजीको,अम्बाजीकी गोदसे उतार कर उनसे बोले:-हे सहज सोहावनी हमारी श्रीललीजी! इन महान् श्रेष्ठ महात्माजी के चरणकमलोंका आदर पूर्वक स्पर्श कीजिये ॥६१॥६२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं-हे प्यारे ! आज्ञानुसार श्रीश्रुतशीलजी महाराजके चरणकमलों में श्रीकिशोरीजीके झुकने पर श्रीमिथिलेशजी महाराज उनसे बोले:-महाराज! आप जिनकानाम लेने में तत्पर हैं, वे श्रीललीजी आपके दोनों चरणोंमें प्रणाम कर रही हैं, आप उनका दर्शन कीजिये६३

श्रीस्नेहपरोवाच ।

स एवमुक्तोऽवनिपेन विप्रराडुन्मील्य नेत्रे सुददर्श भूमिजाम् ।
नवीनकञ्जायतपत्रलोचनां निजानुजाभ्यां युगपार्श्वशोभिताम् ॥६४॥

मातापितृभ्यां विहिताञ्जलिभ्यां विराजमानां प्रिय ! पृष्ठतस्ताम् ।
निजानुजाभिः परितः परीतां सीतामतीतां त्रिगुणैर्मुमूर्च्छ ॥६५॥

तं चेतयामास चराचरात्मा चतुर्गतिश्चन्द्रचयोपमास्या ।
स्वपाणिना तापहरेण पूर्णा संहृत्य सा तद्विरहोद्भवाग्निम् ॥६६॥

तदा त्वसौ लब्धधृतिर्महात्मा शुभाशिषा स्वागतमाचकार ।
तस्याः सकान्तेन नृपेण नत्वा सम्प्रार्थितः प्रोच इदं वचस्तम् ॥६७॥

श्रीश्रुतिशील उवाच ।

युवां महाभागतमौ जगत्यां ययोः सुतेयं जननी त्रिलोक्याः ।
बालस्वरूपाऽस्तसमस्तदोषा स्वदर्शनादिप्रमदप्रदा हि ॥६८॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं–हे प्यारे ! श्रीमिथिलेशजी-महाराजके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणोंमें परम-श्रेष्ठ वे श्रीश्रुतशीलजी-महाराज नेत्रोंको खोलकर श्रीलक्ष्मीनिधि और श्रीगुणाकरजी, अपने इन दोनों भाइयोंके द्वारा दाहिने बायें दोनों बगलसे शोभायमान, नवीनकमलदलके समान मनोहर विशाल नेत्रवाली भूमिकुमारी श्रीजनकराजदुलारीजीका भलीभाँति दर्शन करने लगे॥६४॥

पुनः माता श्रीसुनयना महारानी तथा पिता श्रीमिथिलेशजी महाराज हाथ जोड़े हुये जिनके पीछे विराजमान हैं, बहिनें चारो ओरसे घेरे हुई हैं, सत्व, रज, तम तीनों गुणोंसे परे उन श्रीकिशोरीजीका दर्शन करके वे मूर्च्छित होने लगे ॥६५॥

उन्हें सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य इन चार प्रकारकी मुक्तियोंकी उपाय और चर-अचर समस्त प्राणियोंकी आत्मस्वरूपा, अनन्तचन्द्रमाओंके समान परम आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द वाली, परब्रह्मस्वरूपा श्रीकिशोरीजीने उनकी विरहसे उत्पन्न अग्निको सम्यक् प्रकारसे हरण करके दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकारके तापोंको दूर करने वाले अपने श्रीकरकमलसे सावधान किया ॥६६॥ तब महात्मा श्रीश्रुतशीलजी महाराजने धैर्यको प्राप्त कर अपने मङ्गलानुशासनके द्वारा श्रीकिशोरीजीका स्वागत किया, पुनः श्रीसुनयना महारानीजीके समेत श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रणाम पूर्वक प्रार्थना करने पर वे उनसे बोले ॥६७॥

समस्त दोषोंसे रहित तीनों लोकोंकी जननी, पुत्री बनकर बालस्वरूपसे जिनको अपने दर्शन आदिका महान् आनन्द प्रदान कर रही हैं, वे आप दोनों ही पृथ्वी पर निश्चय करके भाग्यशालियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ॥६८॥

पुत्रास्तु सर्वे गुणरूपयुक्तः श्रीभूमिजापादसरोजसक्ताः ।
एते स्वभावाप्तविशेषबोधा मनोहरस्मेरगतीक्षणेहाः ॥६९॥
युवां महाभागवतप्रधानावतुल्यराशी सुकृतिव्रजानाम् ।
सद्गीयमानाप्रतिमोरुकीर्त्ती महर्षिवृन्दैः स्मरणीयसञ्ज्ञौ ॥७०॥
पुरी च धन्या भवतः किलेयं सौभाग्यसंमोहितसर्वलोका ।
यस्यां विहारो जगतां जनन्या ह्यद्योऽस्ति भूतो भविता विचित्रः ॥७१॥
पुरौकसश्चापि तथैव धन्याः पुण्यात्मनां पूज्यतमप्रधानाः ।
येषामियं दृष्टिचरी मुनीनां वाणीमनोबुद्धिभिरप्यगम्या ॥७२॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवं वदत्येव मुनौ च तस्मिन् राजा सकान्तश्च तदीक्षमाणः ।
निगूढभावो निपपात भूमौ श्रीभूमिजापादविलीनदृष्टिः ॥७३॥
तमातुरं वीक्ष्य महामुनीन्द्रो द्रुतं समुत्थाप्य नृपं विदेहम् ।
आश्वसयन् वाचमिमां तदोचे निशामयन्त्या श्रवनैः सुतायाः ॥७४॥

आपके ये पुत्र भी सभी गुण, रूपसे सम्पन्न, भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजीके श्रीचरणकमलों में अटल प्रेम रखने वाले, स्वतः विशेष ज्ञानी तथा मनोहर मुस्कान, मनोहर चाल, मनोहर चितवन एवं मनोहर चेष्टा वाले हैं ॥६९॥

आप दोनों ही प्रभुके महान् भक्तोंमें भी परमश्रेष्ठ, समस्त सत्कर्मोंकी उपमा रहित राशि स्वरूप हैं आप दोनोंकी अनुपम महती कीर्त्तिका सन्त लोग भी गान करते हैं कहाँ तक कहें ? आप दोनोंका नाम महर्षि वृन्दोंके द्वारा भी स्मरण करने योग्य है ॥७०॥

हे राजन् ! अपने सौभाग्यसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि समस्त लोकोंको आश्चर्यमें डालने वाली आपकी यह पुरी भी धन्यवादके योग्य है जिसमें इन जगज्जननी श्रीकिशोरीजीका अनेक प्रकारका विहार हुआ है, हो रहा है और आगे भविष्यमें भी होता रहेगा ॥७१॥

मुनिगण जिनका अपनी वाणीसे वर्णन, मनसे मनन और बुद्धिसे निश्चय नहीं कर पाते हैं, वे आपकी ये श्रीललीजी जिनको प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान कर रही हैं वे आपके पुरवासी परम धन्य हैं तथा सभी पुण्यात्माओंके भी परम पूजनीयोंमें श्रेष्ठ हैं ॥७२॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:—हे प्यारे ! श्रीश्रुतशीलजी महाराजके इस प्रकार वर्णन करने पर अत्यन्त छिपे भाव वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीअम्बाजीके सहित श्रीभूमिसुताजीके चरण-कमलोंमें विलीन दृष्टि हो उनके देखते-देखते भूमि पर गिर पड़े ॥७३॥

देहानुसन्धान भूले हुये, मिथिलेशजी महाराजको अधीर देखकर परमात्मा स्वरूपा श्रीकिशोरीजी के स्वरूपका मनन करने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीश्रुतशीलजी महाराज, उन्हें तुरन्त उठाकर तथा आश्वासन प्रदान करते हुये भूमिसुताजीके श्रवण करते यह वचन बोले ॥७४॥

श्रुतशील उवाच ।

भद्रं हि ते राजमणे ! सदाऽस्तु सापत्यदारक्षितिजादिकाय ।
धर्मात्मनां श्रेणिविभूषणाय ममाज्ञयेतो व्रज भोजनाय ॥७५॥
बुभुक्षुरेषा स्वसृबन्धुभिश्च प्रतीयते साकमपीन्दुवक्त्रा ।
मुहुर्मुहुः पश्यति पद्मनेत्रा मातुर्मुखाम्भोजमुदारभावा ॥७६॥

श्रीजनक उवाच ।

विधीयतां नाथ ! मुदाऽशनं त्वया मयाऽऽहृतं चेदममोघदर्शन ! ।
त्वदाज्ञया सत्वरमालयो मया सापत्यदारावनिजेन गम्यते ॥७७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

कृताशनं प्रेक्ष्य नृपो मुहुर्मुहुः प्रणम्य तं प्राञ्जलिरङ्ग सादरम् ।
निवेशनं स्वं प्रविवेश भास्वरं स भोजनाख्यं परमं मनोहरम् ॥७८॥

स तत्र नृपसत्तमो निजसुतां धरासम्भवां युतामखिलबन्धुभिः स्वसृगणैः समाराधिताम् ।
सुतर्प्य सुधयोपमैर्विविधभोजनैः सादरं चकार स च भोजनं स्वयमपि स्वराज्ञ्या समम् ॥७९॥

हे राजाओंमें मणिके समान चमकने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज ! आपतो धर्मात्माओंकी पङ्क्तिके प्रधान भूषण हैं अतः श्रीमहारानीजी श्रीराजकुमारीजी तथा श्रीभूमिकुमारीजी आदि परिवार के सहित आपका सर्वदा ही मङ्गल हो, मेरी आज्ञासे अब आप यहाँ से भोजन करनेके लिये पधारिये ॥७५॥ क्योंकि उदार (विशाल) भावशाली ये श्रीचन्द्रमुखी, कमललोचना श्रीकिशोरीजी अपनी श्रीअम्बाजीके मुखकमलको बारम्बार अवलोकन कर रही हैं, इससे मुझे ये अपने भाई-बहिनोंके सहित भोजनकी इच्छुक प्रतीत हो रही हैं ॥७६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज उनकी इस आज्ञाको सुनकर बोले:-हे अमोघ (सफलता-प्रदायक) दर्शन ! हे नाथ ! मेरे मँगाये हुये इस भोजनको आप प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कीजिये, आपकी आज्ञासे पुत्र, रानी तथा श्रीभूमिकुमारीजीके सहित मैं शीघ्रही अपने महलको जा रहा हूँ ॥७७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:-हे प्राणप्यारे सरकार ! पुनः हाथ जोड़े हुये श्रीमिथिलेशजी महाराज, महल जानेके लिये उनका सङ्केत देखकर आदर पूर्वक उन्हें बारम्बार प्रणाम करके ते अपने प्रकाशमान, परममनोहर भोजन-भवनमें पधारे ॥७८॥

वहाँ बहिनोंके द्वारा भली भाँति प्रसन्न की हुई अपनी श्रीललीजीको समस्त भाइयोंके साथ अनेक प्रकारके अमृत समान हितकर, स्वादिष्ट भोजनोंके द्वारा भली प्रकार तृप्त करके श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीसुनयना अम्बाजीके सहित भोजन करने लगे ॥७९॥

इति त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

--❀❀❀--

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः ।

श्रीजनकजी महाराज तथा कुशध्वज महाराजके पुत्रोंका विवाह एवं उनकी श्वश्रु पर श्रीकिशोरीजीकी कृपा ।

श्रीशिव उवाच ।

श्रुतशीलो महातेजाः सभामासाद्य भूभृता । सत्कृतो विधिना प्रोचे शृण्वतां तं सभासदाम् ॥१॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

स्वस्त्यस्तु नृपशार्दूल ! विज्ञानाम्भोजभास्कर । सर्वदा ते महाराज ! श्रूयतां यदिहोच्यते ॥२॥
अनुज्ञां देहि मे गन्तुं मत्पुरीमद्य मा चिरम् । कन्याचिन्तानुचिन्तार्त्तः दिदृक्षुः श्रीधरोहि मां ॥३॥
वैशाखस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां नृपतेः सुताः । पुत्रेभ्यो भवता ग्राह्याः प्रयायेतः पुरीं मम ॥४॥
दुर्लभं दर्शनं मह्यं स्वपुरं गन्तुमिच्छते । स्वपुत्र्याः कारयेदानीं ब्राह्मणाय नरर्षभ ! ॥५॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महर्षेर्भावितात्मनः । आजुहाव सुतां राजा स्वसृबन्धुभिरन्विताम् ॥६॥
तां दृष्ट्वा मृगपोताक्षीं महामाधुर्यवर्षिणीम् । प्रणम्य मनसा भूयो मुनिः स्तोतु प्रचक्रमे ॥७॥

भगवान् शङ्करजी बोलेः—हे प्रिये ! श्रीश्रुतशीलजी महाराज श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी सभामें पहुँचे तथा उनके द्वारा विधि-पूर्वक सत्कार को प्राप्त कर, सभी सभासदोंके सुनते हुये उनसे, इस प्रकार बोले ॥१॥ हे महाराज! आप राजाओंमें श्रेष्ठ और विज्ञान रूपी कमलको सूर्य के समान खिलाने वाले हैं, आपका सदा ही मङ्गल हो! इस समय मैं जो कह रहा हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये ॥२॥ अब आप मुझे अपनी पुरीको जानेके लिये शीघ्र आज्ञा प्रदान कीजिये, क्योंकि कन्याओंकी चिन्ताकी अनुचिन्तासे व्याकुल श्रीधरजी महाराज मुझे देखनेकी इच्छा कर रहे हैं।३।

वैशाख शुक्ला पञ्चमी तिथिको आप हमारी विडालिकापुरीमें पहुँचकर श्रीधर महाराजकी कन्याओंको अपने राजकुमारोंके लिये ग्रहण करें ॥४॥

हे नरोत्तम ! इस समय मैं अपने नगरको जानेकी इच्छा कर चुका हूँ अत एव आप मुझ ब्राह्मणको अपनी श्रीललीजीके दुर्लभ दर्शन करा दीजिये ॥५॥

भगवान शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! परमात्म-स्वरूपका चिन्तन करने वाले उन महर्षि श्रुतशीलजी महाराजके स्नेहभीगे बचनको सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने बहिन भाइयोंके सहित अपनी श्रीललीजीको वहाँ बुला लिया ॥६॥

उनके आने पर मनन परायण श्रीश्रुतशीलजी महाराज, अपने महान् सौन्दर्यके आनन्दकी वर्षा करने वाली, मृगशिशुके समान विशाल मनोहर लोचना उन श्रीमिथिलेश राजललीजूका दर्शन प्राप्त कर उन्हें बारम्बार मानसिक प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥७॥

श्रीश्रुतशील उवाच ।

अहो नरेन्द्रनन्दिनि ! प्रपन्नदीनरञ्जिनि ! प्रशस्तवंशसम्भवे ! पदाभिभूतमार्दवे ।
सुबालकेलितत्परे ! श्रुतीड़िते! परात्परे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥८॥
जगद्विमोहनस्मिते ! हृताखिलावभाषिते ! महामनोज्ञदर्शने ! करीन्द्रपोतसर्पणे ! ।
स्वमातृभाग्यभूषणे ! सुविस्मृतार्त्तदूषणे! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥९॥
सुयोगिनामदूरगे ! कुयोगिनां सुदूरगे ! प्रपन्नकल्पपादपासतां गते ! महाकृपे ।
कृपाप्रपूर्णवीक्षणे ! हितप्रदैकशिक्षणे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥१०॥
अरालकान्तकुन्तले ! पवित्रिताचलातले ! विशालसुष्ठुमस्तके ! प्रदीप्तरत्नचन्द्रिके ! ।
धृताब्जपाणिपङ्कजे ! विदेहभूपवंशजे ! कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥११॥

श्रीश्रुतशीलजी महाराज बोले:-हे नरेन्द्र-नन्दिनी श्रीललीजी! जो परात्पर ब्रह्म स्वरूपा हैं, भगवान् वेद जिनकी स्तुति करते हैं, अपने श्रीचरण-कमलोंकी कोमलतासे जो कोमलताको भी लज्जित कर रही हैं, तथा जो साधनाभिमान रहित शरणागत जीवोंको आनन्द प्रदान करने वाली, विख्यात वंशमें प्रकट हुई, सुन्दर बालकेलि कर रही हैं, वे आप मुझे कब अपनी दयासे द्रवित हुई दृष्टिका पात्र बनायेंगीं ॥८॥

जिनकी मुस्कान सभी चर-अचर प्राणियोंको सहजहीमें मुग्ध करनेवाली तथा जिनकी वाणी समस्त दु:खोंको हरण करनेवाली है, जिनकी चाल गजराजके शिशुके समान और दर्शन महा-मनोहर है, जो अपनी श्रीअम्बाजीके भाग्यको भूषणके समान सुशोभित करने वाली तथा अपने आश्रित भक्तोंके सभी दोषोंको सब प्रकारसे भूल जाने वाली हैं, वे आप कब मुझे अपनी दया द्रवित दृष्टिका पात्र बनायेंगीं ॥९॥

अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार आदि जो इन्द्रियोंको हर प्रकारसे आपके श्रीचरणकमलोमें ही लगाते हैं, उन भक्तोंके लिये तो आप बिल्कुल सन्निकट (पासमें) हैं और जो इन्हें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इत्यादि पञ्च विषयोंमें ही लगाते हैं उन आपसे विमुख विषयी प्राणियों के लिये आपकी प्राप्ति बहुत ही दूर है । आप शरणागत जीवोंके सकल मनोरथोंको सिद्ध करनेके लिये कल्पवृक्ष एवं सन्तोंकी परम रक्षा करने वाली, महाकृपास्वरूपा हैं, जिनकी दृष्टि कृपासे परिपूर्ण और शिक्षा उपमा रहित हित प्रदान करने वाली है, वे आप कब मुझे अपनी दया द्रवित दृष्टिका पात्र बनायेंगीं ॥१०॥

जो श्रीविदेह महाराजके वंशमें प्रकट हुई हैं और भक्तोंको कमलके समान सदा खिले रहने का उपदेश देनेके लिये अपने कर-कमलमें प्राय: कमलका पुष्प धारण किये रहती हैं, जिनका ललाट चौड़ा व मनोहर है, जिनकी रत्न जटित चन्द्रिका जगमगा रही है, मनोहर घुंघुराले जिनके केश हैं, जो अपने चरणोंके स्पर्शसे इस पृथ्वीतलको पवित्र कर दिये हैं, वे आप अपनी नूतन दया दृष्टिका मुझे कब उत्तम पात्र बनानेकी कृपा करेंगी ? ॥११॥

इयं मनोहरच्छबिः सदा दृगम्बुजालये वसत्वजस्रमात्मदे ! ममाम्बुजाक्षि ! तावकी ।
तवाप्यदर्शनेन मे न रोचते हि किञ्चन कदा विधास्यसीह मां दयार्द्रदृष्टिभाजनम् ॥१२॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं संस्तूय विप्रेन्द्रः श्रीसीतां स्तुत्यसंस्तुताम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या कथञ्चित्स्वपुरीं ययौ ॥१३॥
तत्र श्रीधरमासाद्य ददौ स्वीकारपत्रकम् । तस्माच्छ्रुतवती राज्ञी सुतानां समुपस्थितौ ॥१४॥
महानन्दोत्सवो जातस्तदानीं नृपमन्दिरे । पुनर्वैवाहिके कृत्ये नियुक्तास्तेन मन्त्रिणः ॥१५॥
तैः कृतं कृत्यमखिलं बिवाहार्हं विचक्षणैः । पर्यवेक्ष्य महाराजः प्रहर्षं परमं ययौ ॥१६॥
अमायां स तिथौ पुण्ये माधवे मासि शोभने । विदेहो वरपक्षेण युतः प्राप विडालिकाम् ॥१७॥
सहस्रैरन्वितो भृत्यैर्ब्राह्मणैश्च सुहृज्जनैः । बन्धुभिर्मन्त्रिभिश्चैव निमिवंश्यैः पुरोधसा ॥१८॥
सपुत्रो निमिवंशेनो विधिना श्रीधरेण सः । स्वागतेनाभिनन्द्याङ्ग भक्त्या परमयार्ऽच्चितः ॥१९॥

इष्टमयी बुद्धिको प्रदान करने वाली हे कमल-लोचना श्रीललीजी ! आपकी यह मनोहर छबि सदा मेरे नयन कमल मन्दिरमें निवास करें, क्योंकि आपके दर्शनोंके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, अत एव कब आप मुझे दया-द्रवित दृष्टिका पात्र बनायेंगी ॥१२॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! स्तुति करने योग्य ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी जिनकी स्तुति करते हैं, शरणागत जीवोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली तथा सभी आपत्तियों से उद्धार करने वाली उन श्रीललीजीकी वे ब्राह्मण श्रेष्ठ श्रीश्रुतशीलजी महाराज इस प्रकार स्तुति करके पुनः श्रद्धा—पूर्वक सिरके द्वारा उन्हें प्रणाम करके बड़ी कठिनतासे अपनी "विडालिका—पुरी" को विदा हुए ॥१३॥

वहाँ वे 'श्रीधर महाराज' के पास पहुँचकर उन्हें श्रीमिथिलेशजी महाराजका दिया हुआ स्वीकार पत्र दिये, उसे महारानी 'श्रीसुकान्तिजी' ने अपनी पुत्रियोंकी उपस्थिति में ही 'श्रीधर-महाराज' के द्वारा श्रवण किया ॥१४॥

उस समय उस समाचारको सुनकर राजमहलमें महान् उत्सव मनाया गया पुनः विवाह सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये श्रीधरमहाराजने अपने मंत्रियोंको नियुक्त किया ॥१५॥

उन बुद्धिमान मन्त्रियों द्वारा आज्ञानुसार विवाहोचित सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न किये देखकर, श्रीधरजी महाराजको अतिशय हर्ष हुआ ॥१६॥

सुन्दर वैशाख मासमें अमावस्याकी पुण्य तिथिमें बरातके सहित श्रीमिथिलेशजी-महाराज विडालिकापुरीमें जा पहुँचे ॥१७॥ श्रीधरजी महाराजने हजारों सेवक, मित्र, ब्राह्मण, बन्धु, मन्त्री, तथा श्रीशतानन्दजी-महाराजके सहित निमिवंशमें सूर्यके समान श्रीमिथिलेशजी महाराजका स्वागत द्वारा विधि-पूर्वक अभिनन्दन करके महती श्रद्धा पूर्वक पूजन किया ॥१८॥१९॥

वासं प्रदाय सर्वेभ्यो लोकरीतौ मनो दधे । विडालिकाप्रजाधीशो मुदितेनान्तरात्मना ॥२०॥
अथाग्निं साक्षिणं कृत्वा कन्यादानं चकार सः । पञ्चम्यां राजपुत्रेभ्यो राज्ञ्या सह विधानतः ॥२१॥
श्रीधर उवाच ।
इमां मम सुतां "सिद्धि" गृहाण कुलनन्दन? । वत्स लक्ष्मीनिधे! हृष्टो दीयमानां मयाऽधुना ॥२२॥
सुतेयं मम कल्याणी वाणी नाम्नेति विश्रुता । गुणाकराद्य ! भवते दीयते गृह्यतां मुदा ॥२३॥
नन्दाख्येयं सुता वत्स! श्रीनिधे! गृह्यतां त्वया । जानक्याः सङ्गलाभाय भवते दीयते मया ॥२४॥
उषेयं तनया तुभ्यं पत्न्यर्थं वामलोचना । दीयमाना मया वत्स! श्रीनिधानक ! गृह्यताम् ॥२५॥
श्रीशिव उवाच ।
एवं समर्प्य ताः पुत्रीर्मैथिलेभ्यो मुदान्वितः । प्रीत्या परमया नत्वा प्राह स मैथिलेश्वरम् ॥२६॥
श्रीधर उवाच ।
अद्याहमृणमुक्तोऽस्मि स्वपुत्रीणां महीपते ! । समर्प्यैताः सुविधिना कुमारेभ्यो न संशयः ॥२७॥
श्रीशिव उवाच ।
एवमुक्त्वा नरपतिं श्रीधरो मिथिलापतिम् । पारिबर्हं बहुबिधं पुष्कलं प्रददौ मुदा ॥२८॥

पुनः श्रीविडालिकापुरीके राजा श्रीधरजीने सभीके लिये निवास स्थान प्रदान करके बड़े प्रसन्न चित्तसे मनको लोक व्यवहारमें लगाया ॥२०॥

तत्पश्चात् वैशाखशुक्ला पञ्चमीको उन्होंने श्रीसुकान्तिमहारानीके सहित शास्त्रोक्त-विधिके अनुसार राजपुत्रोंके लिये कन्या-दान प्रारम्भ किया ॥२१॥

श्रीधरजीमहाराज बोले:—कुलको आनन्द-प्रदान करनेवाले हे वत्स श्रीलक्ष्मीनिधिजी! अब मैं अपनी सिद्धिनामकी यह पुत्री आपको दानकर रहा हूँ, इसे आप हर्षपूर्वक ग्रहण कीजिये ॥२२॥

हे वत्स ! गुणाकरजी! इस वाणी नामकी शुभकन्याको आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कीजिये, मैं आपको अर्पण करता हूँ ॥२३॥ हे वत्स ! श्रीनिधिजी ! श्रीजनकनन्दिनीजी का संग लाभ करानेके लिये नन्दा नामकी पुत्रीको मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ, आप इसे अङ्गीकारकीजिये।॥२४॥

हे वत्स श्रीनिधानकजी ! उषा नामकी यह कन्या पत्नीके लिये मैं आपको दान कर रहा हूँ, इसे आप ग्रहण कीजिये ॥२५॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! इस प्रकार श्रीधरजी महाराज, अपनी चारो पुत्रियाँ श्रमिथिलेशराजदुलारोंको अर्पण करके, हर्षयुक्त, बड़े प्रेमपूर्वक प्रणाम करके श्रीमिथिलेशजी महाराज से बोले :—॥२६॥ आज मैं अपनी ये पुत्रियाँ आपके राजकुमारोंको विधिपूर्वक अर्पण करके, इनके ऋणसे निःसन्देह मुक्त होगया ॥२७॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे प्रिये! इस प्रकार श्रीधरजी महाराजने श्रीमिथिलेशजी महाराज से कहकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें अनेक प्रकारके बहुतसे दहेज दिये ॥२८॥

रहस्यगारतोऽभ्येत्य सुकान्ति पुनरेव तत् । नेमुः परमया भक्त्या पादयोर्निमिवंशजाः ॥२६॥
तांस्तु सा प्राशयामास पीयूषोपमभोजनैः । दिव्यैश्चतुर्विधैश्चैव षड्रसैः सौरभान्वितैः ॥३०॥
प्रादात्तेभ्यश्च ताम्बूलं पीतदुग्धेभ्य आदरात् । जनावासं ततो गन्तुं प्रार्थिताऽऽज्ञां मुदाऽदिशत् ॥३१॥
निर्गतेषु ततस्तेषु सुताः क्रोडे निधाय सा । प्रेमगद्गदया वाचा ता उवाच शुभं वचः ॥३२॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

धन्या यूयं महाभागा भद्रं वो मम पुत्रिकाः । पातिव्रत्यं हि युष्माभिः समासेव्यं निरन्तरम् ॥३३॥
मैथिली भूमिजा सीता सर्वभावेन सर्वदा । समाराध्या प्रयत्नेन मनोवाक्कायकर्मभिः ॥३४॥
सा ध्रुवं जीवितस्यार्थः सत्स्वार्थः पर एव हि । पुंसां प्रयत्नतः प्राप्या मैथिली जनकात्मजा ॥३५॥
दुर्लभं दर्शनं यस्या मनसाऽपि यतात्मनाम् । यूयं तयाऽयतात्मानो यथेच्छं विहरिष्यथ ॥३६॥
भवतीनां तु सम्बन्धान्मां स्मरन्त्यां धराभुवि । तस्यां भवेदवश्यं हि साफल्यं मम जन्मनः ॥३७॥

उधर कोहबर कुंजसे लौटकर श्रीनिमिवंशी राजकुमारोंने बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रीसुकान्ति महारानीजीके पास आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥२६॥

श्रीसुकान्ति महारानीने अपने उन चारों जामाताओं (जमाइयों) को सुगन्ध युक्त षट्रसमय भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य इन चारों प्रकारके अमृततुल्य स्वादिष्ट तथा हितकारी दिव्य भोजन कराया ॥३०॥ दुग्धपान कर लेने पर, उन राजकुमारोंको उन्होंने आदर पूर्वक पानका बीरा दिया, तत्पश्चात् जब उन्होंने जनवास भेजनेके लिये प्रार्थनाकी, तब श्रीसुकान्ति महारानीने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा प्रदान की ॥३१॥

श्रीराजकुमारोंके जनवास चले जाने पर, श्रीसुकान्ति महारानीजी अपनी पुत्रियोंको गोदमें बिठाकर प्रेम गद्गद वाणी द्वारा उनसे यह मङ्गल वचन बोलीं ॥३२॥

हे मेरी पुत्रियो ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम वास्तवमें बड़भागिनी और धन्यवादके योग्य हो, अब तुम पतिव्रता स्त्रियोंके धर्मका ही निरन्तर सेवन करती रहना और मानसिक वाचिक तथा शारीरिक सभी प्रकारके कर्मोंके द्वारा भूमिसे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी श्रीसीताजूकी सभी भावोंसे सब समय, पूर्ण उपाय पूर्वक, भली-भाँति सेवा करना ॥३३॥३४॥

वास्तवमें श्रीमिथिलाजीमें प्रकट हुई श्रीजनकराजदुलारीजी ही मनुष्य जीवनकी उद्देश्य स्वरूपा हैं तथा वही अपनी वास्तविक सर्वोत्तम धन हैं अत एव इस मनुष्य शरीरको पाकर अपने उस सर्वश्रेष्ठ धनकी प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिये ॥३५॥

हे पुत्रियो ! जिनका दर्शन मनको एकाग्र करने वाले महात्माओंको भी दुर्लभ है, उन्हींके साथ मनका संयम न करने वाली तुम लोग, अपनी इच्छाके अनुसार बिहार करोगी ॥३६॥

आप लोगोंके सम्बन्धसे यदि भूमिसे प्रकट हुई श्रीललीजी, मुझको कभी क्षणमात्रभी स्मरण कर लेंगी तो, मेरा भी जन्म अवश्य सफल हो जायेगा ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

निशम्यागमनं राज्ञी जामातृणां तदा द्रुतम् । स्वागतार्थं च सा तेषां बहिर्द्वारमुपागमत् ॥३८॥
ततो नीराज्य भवनमानयामास सादरम् । मिथिलेशकुमारांस्तानतीवप्रियदर्शनान् ॥३९॥
सत्कृता विधिना प्रीत्या सुकान्त्या प्रीतिरूपया । सिंहासनसमासीनास्त ऊचुरतां नतेक्षणाः ॥४०॥

राजकुमारा ऊचुः ।

अम्ब ! संप्रेषिताः पित्रा वयं त्वां समुपस्थिताः । मिथिलागमनादेशप्राप्तयेऽनुमतेर्गुरोः ॥४१॥
अनुजानीहि नः प्रीत्या पितुराज्ञानुवर्तिनः । इयं नः प्रार्थना तस्मात्स्वीकार्य्या ऽम्ब ! त्वया द्रुतम् ।४२।

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तेषां निशम्य विरहातुरा । श्वश्रूर्धैर्य्यं समालम्ब्य कुमारान्प्रत्यवोचत ॥४३॥

श्रीसुचित्रोवाच ।

क्षणं तिष्ठत भो वत्साः ! श्रूयतां विनयो मम । आज्ञापयामि त्वरया सर्वदा भद्रमस्तु वः ॥४४॥
सुता एता महाभागा मयि जाताः सुलक्षणाः । न जाने केन पुण्येन दिष्ट्या मत्कुलदीपिकाः॥४५॥
आसां तु शैशवादेव प्रीतिरासीदनुत्तमा । शृण्वन्तीनां यशः पुण्यं धरापुत्र्यां विधेर्वशात् ॥४६॥

भगवान् शङ्करजी बोले:-हे प्रिये ! उसी समय श्रीसुकान्ति महारानीजी जामाताओंको अपने यहाँ आते हुये सुनकर, उनका स्वागत करनेके लिये तुरन्त बाहर द्वार पर पहुँची ॥३८॥

अत्यन्त प्रिय-दर्शन श्रीमिथिलेशजी महाराजके उन राजकुमारोंकी आरती करके बड़े सत्कार पूर्वक उन्हें वे द्वारसे अपने महलके भीतर ले आईं ॥३९॥

वहाँ प्रीतिस्वरूपा श्रीसुकान्ति महारानीने प्रेमपूर्वक पूर्ण विधिसे सत्कार करके जब उन्हें सिंहासन पर बिठाया तब दृष्टि नीचे किये हुये वे राजकुमार बोले ॥४०॥

हे अम्ब ! गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीपिताजीने हमें श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये आपके पास भेजा है ॥४१॥ हमलोग श्रीपिताजीके आज्ञाकारी हैं इसलिये आप प्रसन्नता पूर्वक, श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये । हे माताजी ! इस हेतु हम लोगोंकी प्रार्थनाको आप शीघ्रही स्वीकार कीजिये ॥४२॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वतीजी! वरोंकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीसुकान्ति महारानी विरहसे व्याकुल हो गयीं पुनः धैर्यका सहारा लेकर उनसे बोलीं ॥४३॥

हे वत्सो ! आप लोगोंका सदाही मङ्गल हो, मैं शीघ्र ही आज्ञा दूंगी, क्षणभर ठहरिये, और मेरी प्रार्थनाको सुन लीजिये ॥४४॥

कुलको दीपकके समान प्रकाशमें लानेवाली, सुन्दर लक्षण सम्पन्ना, महासौभाग्यशालिनी ये पुत्रियाँ दैव-योगसे न जाने किस पुण्यके प्रभावसे मेरे गर्भसे प्रकट हुई हैं ॥४५॥

सौभाग्यवश पृथिवीसे प्रकट हुई श्रीललीजीके पवित्र यशको सुनती हुई इन पुत्रियोंकी उनके प्रति बहुत ही प्रीति हो गयी है ॥४६॥

अतो मयाऽपि सुप्रीत्या श्रद्धया परया त्विमाः। पालिता धन्यमात्मानं निश्चिन्वत्या सकान्तया ।४७।
जीवितं त्यक्तु मिच्छन्तीरनासाद्यावनेः सुताम्। विमृश्य प्राणरक्षार्थं सम्बन्धोऽयं विनिश्चितः ॥४८॥
तदेता वो हि सम्बन्धात्समेष्यन्ति ध्रुवं हि ताम्। पूर्णकामा भविष्यन्ति विहरन्त्यस्तया समम् ।४९।
न तद्दर्शनसौभाग्यं मातुरासां धिगस्तु माम्। दर्शनेनापि पुण्येन यद्बन्धूनां हि नो बत ॥५०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एतदाभाष्य वचनं सुकान्तिर्गद्गदाक्षरम्। जगाम तत्क्षणं मूर्च्छां पुरस्तेषां हि तिष्ठताम् ॥५१॥
तदानीमेव सर्वज्ञा प्रियेयं जनकात्मजा। नीलपद्मपलाशाक्षी शरच्चन्द्रनिभानना ॥५२॥
रोमनिर्जितशोभाब्धिर्जगत्संमोहनस्मिता। श्रियः श्रीस्तप्तहेमाङ्गी नीलकुञ्चितकुन्तला ॥५३॥
सर्वाभरणवस्त्राढ्या नित्यापारसुखाकृतिः। प्रादुरासीद्धरापुत्री द्योतयन्ती रुचा गृहम् ॥५४॥

इसलिये अपनेको धन्यवादके योग्य निश्चय करती हुई मैंने भी पतिदेव सहित बड़ी श्रद्धा और प्रीतिके साथ इनका पालन किया है ॥४७॥

श्रीकिशोरीजीका दर्शन न मिलनेके कारण जब इन पुत्रियोंने अपना जीवन त्याग कर देने की इच्छा करली, तब इनकी प्राणरक्षाके लिये इस सम्बन्धका निश्चय हुआ ॥४८॥

सो ये पुत्रियाँ आप लोगोंके सम्बन्धसे अब निश्चय ही श्रीललीजीको सब प्रकारसे प्राप्त होंगी और उनके साथ बिबिध प्रकारके खेल खेलती हुई अपने सभी मनोरथोंको पूर्ण करके लोकमें पूर्णकामताको प्राप्त करेंगी ॥४९॥

मैं इनकी माता हूँ और आप लोग श्रीललीजूके भैया हैं, फिर भी आश्चर्य है कि आप लोगोंके दर्शन जनित पुण्यके प्रतापसे भी मुझे श्रीललीजीके दर्शनोंका सौभाग्य नहीं, अत एव मुझको धिक्कार है ! ॥५०॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे! श्रीसुकान्ति अम्बाजी श्रीकिशोरीजीके श्रीलक्ष्मीनिधि आदि भाइयोंसे यह गद्गद वचन कहकर उनके देखते-देखते गहरी मूर्च्छाको प्राप्त हो गयीं ॥५१॥

हे प्यारे ! उसी समय सबके हृदयके सभी भावोंको जानने वाली, कमलदल–लोचना, शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशमय आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द वाली ये श्रीजनकराज-किशोरीजी ॥५२॥ जिनके एक रोमकी छविसे, सौन्दर्य-सागर भी हार मानता है, जिनकी मुस्कान चर-अचर सभी प्राणियोंको पूर्ण मुग्ध कर लेती है, जो शोभाकी शोभा, सुवर्णके समान गौर अङ्ग तथा नीले घुंघुराले केश वाली हैं ॥५३॥

जो सदा एक रस रहनेवाले अनन्त-सुख(भगवदानन्द)की मूर्त्ति पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं, वे श्रीललीजी, सभी वस्त्र भूषणोंका शृङ्गार धारण किये हुई, अपनी दिव्य कान्तिसे राजमहलको प्रकाशित करती हुई, वहाँ प्रकट हो गयीं ॥५४॥

तां समुत्थापयामास सुकान्ति श्रीधरप्रियाम् । कराभ्यां कञ्जकल्पाभ्यां वरदाभ्यामयोनिजा ॥५५॥
लब्धसञ्ज्ञा च सा राज्ञी दृष्ट्वा सुनयनासुताम् । अम्बाम्बेति वदन्तीं तां निजोत्सङ्गे समाददे ॥५६॥
चुचुम्ब तन्मुखाम्भोजमुपाघ्राय च मस्तकम् । सा वात्सल्यरसासक्ता स्रवत्क्षीरपयोधरा ॥५७॥
पुनरालिङ्ग्य तां प्रेम्णा साश्रुपङ्कजलोचना । आनन्दार्णवसंमग्ना बभूवास्ततनुस्मृतिः ॥५८॥
ततो विष्टभ्य चात्मानं राज्ञी कौतूहलान्विता । उवाच स्निग्धया वाचा तामिदं मधुरं बचः ॥५९॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

पुत्रि! धन्याऽस्मि लोकेऽस्मिन्नलब्धं ते कान्तदर्शनम् । अलभ्यं योगिमुख्यानामनायासेन यन्मया॥६०॥
कथं त्वं मे गृहं प्राप्ता कुतः काऽसि च वस्तुतः । तन्मे कथय हे वत्से ! सहजानन्दरूपिणि!॥६१॥
कच्चित्त्वमसि कल्याणि! मिथिलाधीशनन्दिनी । अयोनिजा धरापुत्री सीता सुनयनासुता ॥६२॥
लक्षणैर्भासि सा त्वं मे सर्वैः श्रवणगोचरैः । मद्वियोगव्यथाशान्त्यै प्रादुर्भूता ध्रुवं यतः ॥६३॥

बिना किसी कारण अपनी इच्छा शक्तिसे प्रकट हुई, श्रीकिशोरीजीने श्रीधर महाराजकी महारानी श्रीसुकान्तिजीको अपने वरद (अभीष्ट प्रदायक) कमलवत् सुकोमल तथा सुगन्धि युक्त हाथोंसे उठा लिया ॥५५॥

जब श्रीसुकान्ति महारानी सावधान हुई, तब उन्होंने अम्बाजी ! अम्बाजी! ऐसा कहती हुई श्रीसुनयनानन्दिनी श्रीललीजूका दर्शन करके उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया ॥५६॥
वात्सल्य भावमें आसक्त हो, अपने दोनों स्तनोंसे दूध बहाती हुई, उन्होंने श्रीललीजीके सुन्दर मस्तकको सूंघकर उनके मुखकमलका चुम्बन किया ॥५७॥

पुन: अपने कमलवत् नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंको बहाती हुई, प्रेमपूर्वक श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर देहकी सुधि भूलकर वे आनन्द सागरमें डूब गयीं तत्पश्चात् अपने मनको सावधान करके, आश्चर्य वश अपनी कोमल वाणी द्वारा वे श्रीकिशोरी जी से यह मधुर वचन बोलीं:-हे पुत्री ! आज मैं लोकमें धन्य हूँ जो श्रेष्ठ योगियोंके लिये भी आपका यह अलभ्य मनोहर दर्शन, मुझे बिना किसी यत्नके ही प्राप्त है ॥५८॥५९॥६०॥

हे सहज-आनन्द-मूर्त्ति ! श्रीललीजी ! मुझे यह तो बताइये, कि आप वास्तवमें हैं कौन ? कहाँसे ? किस प्रकार, मेरे महलमें पधारी हैं ? ॥६१॥

हे कल्याणी ! क्या आप बिना किसी कारण (अपनी मात्र इच्छासे) प्रकट हुई भूमिपुत्री, श्रीसुनयना महारानीजीकी लली, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी श्रीसीताजी तो नहीं हैं? ॥६२॥

जो-जो लक्षण मैंने उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूमें श्रवण किये हैं, उन सभी लक्षणोंसे मुझे तो आप वे ही प्रतीत हो रही हैं, क्योंकि इस समय मेरे हृदयमें उन्हींकी विरह-जनित व्यथा बढ़ी थी उसीकी शान्तिके लिये नि:सन्देह आप प्रकट हुई हैं इससे मुझे प्रतीत होता है, कि आप वे ही श्रीमिथिलेशदुलारीजी हैं ॥६३॥

वत्से ! निवार्यतां शङ्का यदि मे साधु मन्यसे । अद्य दर्शनदानेन भवत्याऽहं कृतार्थिता ॥६४॥
श्रीसीतोवाच ।
अम्ब यद्विरहाम्भोधौ निमग्ना मूर्च्छिताऽभवः । साहमेव समानीता प्रीतिदेव्या तवान्तिकम् ॥६५॥
तस्यामपारसामर्थ्यमनुभूतं महात्मभिः । अजस्रं वाङ्मनःकायैः सा भवत्या निषेव्यते ॥६६॥
पुत्र्योऽपि तव तामेवाराधयन्ति हि नित्यशः । अतस्तया समानीता प्रीतिदेव्याऽस्मि ते गृहे ॥६७॥
श्रीस्नेहपरोवाच ।
इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा तस्या लोमप्रहर्षणम् । निपेतुः पादयोस्तूर्णं सिद्धयाद्याः श्रीधरात्मजाः ॥६८॥
गतत्रपा विशालाक्ष्यो दासीभावमनुव्रताः । भृश विह्वलतां प्राप्तां वयं का इति विस्मृताः ॥६९॥
ताः समुत्थाप्य सा तूर्णमालिलिङ्गोरसा मुदा । कृपानिर्भरया दृष्ट्या प्रपश्यन्ती स्मितानना ॥७०॥
विधूयाधीरतां तासां हृदिस्थां योगमायया । पुनरूचे सुधावाणी ह्लादयन्ती चराचरम् ॥७१॥

हे वत्से ! यदि आप उचित समझें, तो मेरी इस शङ्काको दूर कर दीजिये ! वैसे तो आपने आज अपने दर्शनोंका दान देकर हमें कृथार्थ कर ही दिया है ॥६४॥

श्रीजनकराजदुलारीजी बोलीं:–हे अम्ब ! आप जिनके विरह-सागरमें डूबकर मूर्च्छित हो गयी थीं, मैं वही हूँ, मुझे श्रीप्रीतिदेवीजी इस समय आपके पास ले आई हैं ॥६५॥

इस पर यदि आप यह शङ्का करें, कि कहाँ श्रीमिथिलाजी और कहाँ मेरी विडालिकापुरी? यहाँ इतनी दूर वह किस प्रकार ला सकीं ? और जिस रीझसे वे प्रसन्न होकर लाईं, उसका कारण क्या है? उसका समाधान यह है, कि उस प्रीति देवीमें अनन्त सामर्थ्य है, उसका अनुभव महात्माओंने किया है, इसलिये यदि वे श्रीमिथिलाजीसे मुझे यहाँ आपके पास ले आईं, तो कौन आश्चर्यकी बात हुई ? अर्थात् कुछ भी नहीं । उस प्रीति देवीकी ही तो आप वाणीसे मनसे और शरीरसे निरन्तर सेवा करती हैं, इसी रीझसे वह आपको मेरे विरहमें अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीमिथिलाजीसे मुझे यहाँ ले आई है ॥६६॥

आपकी पुत्रियाँ भी केवल उसी प्रीति देवीकी नित्य उपासना करती हैं, इसी रीझके कारण उस प्रीति देवीने मुझे यहाँ आपके महलमें लाकर उपस्थित किया है ॥६७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे श्रीप्राणप्यारेजू ! श्रीललीजूके रोमाञ्चकारी इन वचनोंको श्रवण करके श्रीधर महाराजकी श्रीसिद्धिजी आदि चारो राजपुत्रियाँ श्रीकिशोरीजीके श्रीचरणकमलोंमें गिर पड़ीं ॥६८॥ उन विशाललोचनाओंकी लज्जा चली गयी, दासी भावमें स्थित हुई, वे इस प्रकार विह्वलताको प्राप्त कर गयीं, कि उन्हें यह भी भान न रहा कि हम कौन हैं ? बालिका या बधू? ॥६९॥ मन्द-मन्द मुस्कान जिनकी है, उन श्रीकिशोरीजीने सिद्धि आदि पुत्रियोंको उठाकर कृपा परिपूर्ण दृष्टिसे अवलोकन करती हुई, उन्हें अपने श्रीअङ्गका आलिङ्गन-प्रदान करनेकी कृपाकी ॥७०॥ पुनः उनके हृदयमें वैठी हुई अधीरताको अपनी योगमायाके द्वारा दूर करके चर-अचर (स्थावर-जङ्गम) सभी प्राणियोंको आह्लादित करती हुई, अमृतके तुल्य प्रभावशालिनी, हितकर वाणी वाली, श्रीकिशोरीजी बोलीं ॥७१॥

श्रीसीतोवाच ।

भवत्यो धैर्यमायान्तु वाञ्छितं वो भविष्यति । प्रीत्या संतोषिता प्रादुर्भूताऽहं दृष्टिगोचरी ॥७२॥
अनुजानीहि मामम्ब ! माता मे विरहाकुला । इदानीं वर्तते गेहे मामदृष्ट्वोरुचिन्तया ॥७३॥

सुकान्तिरुवाच ।

यदि गन्तुं कृता बुद्धिरितो मातुर्निकेतनम् । प्रेषयाम्यसुभिः सार्द्धं नैकां तिष्ठ क्षणं ततः ॥७४॥
यत वै त्वामपश्यन्त्या विधाय स्वाक्षिगोचरीम् । पुनः प्रयोजनं किं स्याज्जीवितेनाधमेन मे ॥७५॥

श्रीसीतोवाच ।

अम्ब! त्वयि प्रसन्नाऽस्मि प्रीत्या परमया तव । न चाव्यक्ता भविष्यामि त्वया ऽहं जातु संस्मृता॥७६॥
प्रत्ययः क्रियतां मातर्मम वाचि दृढस्त्वया । अनुज्ञा दीयतां गन्तुं प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥७७॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सुकान्तिर्धैर्यमाययौ । भावपूर्त्ति विधायाह मैथिलीं सा पुरःस्थिताम् ॥७८॥

आप लोग धैर्यको धारण करें, जो इच्छाकी है उसे प्राप्त होंगी; क्योंकि आप लोगोंकी प्रीतिसे ही सन्तुष्ट होकर मैं यहाँ दर्शन दे रही हूँ ॥७२॥

हे श्रीअम्बाजी ! अब मुझे आज्ञादें, क्योंकि इस समय हमारी माताजी हमको न देखकर विरहसे व्याकुल हो महलमें बड़ी ही चिन्ता कर रही हैं ॥७३॥

श्रीसुकान्ति अम्बाजी बोलीं:–हे वत्से! यदि आपने यहाँ से अपनी माताजीके महलको जाने का निश्चय ही कर लिया है, तो मैं आपको अभी अपने पाँचों प्राणोंके साथ भेजती हूँ पर अकेले नहीं, इस लिये आप क्षणभर और ठहर जाइये ॥७४॥

क्योंकि आपका इन नेत्रोंसे दर्शन करके आपके दर्शनोंके अभाव में मुझे इस अधम जीवनसे लाभ ही क्या ? ॥७५॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:– हे अम्बाजी ! आपकी प्रगाढ़ प्रीतिसे मैं आपके प्रति प्रसन्न हूँ "अब मुझे श्रीललीजीका दर्शन नही होगा इस लिये मैं प्राण छोड़ दूँ" आप यह विचार छोड़ दें, आप जब जिस समय स्मरण करेंगी, तभी मैं प्रकटहो जाऊँगी, स्मरण करने पर कभी आपको मेरे दर्शनोंका अभाव नहीं रहेगा ॥७६॥

हे श्रीअम्बाजी ! आप मेरी वाणी पर पूर्ण विश्वास करें और उसी विश्वासके आधार पर मुझे प्रसन्नता पूर्वक श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये ॥७७॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीललीजीके अभीष्ट प्रदायक उन बचनोंको सुनकर श्रीसुकान्ति महारानीको धीरज बंधा, तब वे यथोचित स्वागत का अपना भाव पूरा करके श्रीमिथिलेशराजदुलारीजू से बोलीं ॥७८॥

श्रीसुकान्तिरुवाच ।

वत्से याचे भवत्येदं दत्तवाचा कृतार्थिता । अकुमार्य इमाः पुत्र्यस्त्वय्यासक्तमनोधियः ॥७९॥
समर्पिता मया सर्वा अनुजेभ्यस्त्वदाप्तये । तासु ते करुणादृष्टिः सदा स्यात्किङ्करीष्विव ॥८०॥

श्रीसीतोवाच ।

त्वदाज्ञां पालयिष्यामि नानृतं बिद्धि मे वचः । इदानीं प्रार्थ्यते यत्तच्छ्रूयतां यतचेतसा ॥८१॥
आवयोः सङ्गमो जातः प्रीतिदेव्याः प्रसादतः । गोपनीयः प्रयत्नेन न प्रकाश्यः कदाचन ॥८२॥
भ्रातृणामयमज्ञातः पुरतो मम तिष्ठताम् । अनिच्छया हि मे मातः कुतोऽन्येषामतिष्ठताम् ॥८३॥

श्रीशिव उवाच ।

व्याहरन्ती हि तामित्थं स्मयमानशुभानना । तस्या एव प्रपश्यन्त्यास्तत्रैवालक्षिताऽभवत् ॥८४॥

कुमारा ऊचुः ।

अम्ब! धारय धैर्य्यं त्वं वाञ्छितं ते भविष्यति । वयमासाद्य मिथिलां जनन्यै ते मनोव्यथाम् ॥८५॥

हे वत्से ! आपने अपनी इस प्रतिज्ञा की हुई वाणी द्वारा मुझे पूर्ण कृतार्थ कर दिया, इस लिये अब कोई भी अर्थ मेरा शेष नहीं रहा, फिर भी अपना कर्त्तव्य विचार कर यह एक याचना और करती हूँ, कि ये मेरी पुत्रियाँ अभी बालिका हैं फिर भी इनका मन और बुद्धि आपमें ही आसक्त है ॥७९॥

इस लिये इनके प्राणरक्षार्थ आपकी प्राप्ति करानेके लिये ही मैंने इन्हें आपके छोटे भाइयोंको अर्पण किया है, इस हेतु आप जैसी अपनी "करुणादृष्टि" निज दासियोंके प्रति रखती हैं, उसी प्रकार इनपर भी सदा बनाये रहेंगी ॥८०॥

श्रीकिशोरीजी बोलीं:—हे अम्बाजी ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी अर्थात् इनके प्रति अपनी कृपा दृष्टि अवश्य बनाये रहूँगी, मेरी वाणीको सत्य जानिये, अब मैं जो प्रार्थना कर रही हूँ उसे आप एकाग्रचित्तसे श्रवण कीजिये ॥८१॥

हमारा और आपका यह मिलन प्रीति देवीकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है इसे पूर्ण यत्नके साथ छिपाये रहें, कभी भी प्रकट न कीजियेगा ॥८२॥

हे अम्बाजी ! देखो मेरे भाई सम्मुख विराज रहे हैं, पर मेरी इच्छा न होनेसे उन्हें भी हमारे आपके इस मिलनका ज्ञान नहीं हो रहा है, फिर जो मुझसे विमुख हैं वे इस रहस्यको क्या जान सकेंगे ? ॥८३॥ भगवान् शंकरजी बोले:— हे पार्वती ! मुस्कान युक्त मनोहर मुख वाली श्रीललीजी श्रीसुकान्ति महारानीसे इस प्रकार कहती हुई, उनके देखते देखते वहीं पर अदृश्य हो गयीं ॥८४॥ श्रीसुकान्ति महारानीको मूर्च्छासे सावधान हुई समझकर, उन्हें सान्त्वना प्रदान करने के लिये श्रीनिमिवंशी राजकुमार बोले:—हे श्रीअम्बाजी ! आपकी इच्छा पूरी अवश्य होगी, धीरज रखें, हम मिथिलाजी पहुँच कर अपनी श्रीअम्बाजीसे आपकी इस मानसिक व्यथाको ॥८५॥

निवेदयामो रहसि श्रुत्वा सा सदया ध्रुवम् । अम्बाऽभीष्टकरीं युक्तिं प्रीतिज्ञा संविधास्यति॥८६॥
अस्माकं पूर्वजां मातर्ध्रुवं त्वं लालयिष्यसि । नात्र ते संशयः कार्यो यतः सा भावसिद्धिदा ॥८७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्ता सुतास्तेभ्यो वरेभ्यो विरहान्विताः । राज्ञी समर्पयाञ्चक्रे सर्वालङ्कारसंयुताः ॥८८॥
भूयो भूयः समालिङ्ग्य रुदतीः साश्रुलोचना । शिबिकासु समारोप्य चक्रे प्रास्थानिकं विधिम् ।८९।
पारिबर्हेण महता राज्ञा ते वरसत्तमाः । पितुः सकाशमागच्छन्नतीवपरितोषिताः ॥९०॥
पुत्रान्सभार्यकान् दृष्ट्वा मिथिलेन्द्रः समागतान् । श्रीधरं नृपमाश्वास्य प्रस्थानमकरोत्ततः ॥९१॥

वाद्यप्रघोषः सुमहान्प्रजातः संप्रस्थिते श्रीमिथिलामहीपे ।
वेदध्वनिः कर्णसुखो मुनीनामजायतास्येभ्य उरोमलघ्नः ॥९२॥
सुताः समाश्वास्य स लालयँस्ताः प्रादादनुज्ञां मिथिलां प्रयातुम् ।
प्रणम्य भूयो मिथिलामहेन्द्रं पुरोधसं विप्रगणं सवृद्धम् ॥९३॥

एकान्तमें निवेदन करेंगे अम्बा दयालु हैं और प्रीतिके रहस्यको भी भली प्रकार समझती हैं, इस लिये वे निश्चय ही सब प्रकारसे वह युक्ति करेंगी जो आपके इस मनोरथ को पूर्णकर सकेगी ॥८६॥

हे अम्बाजी ! निश्चय ही आप हमारी श्रीबहिनजीका लाड़ करेंगी, इसमें कुछ भी सन्देह न कीजिये, क्योंकि वे श्रीललीजी दृढ़ भावनाकी सिद्धि अवश्य प्रदान करती हैं ॥८७॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे प्रिये ! श्रीलक्ष्मीनिधि आदि वरोंने अपनी ओरसे आश्वासन देनेके लिए जब यह कहा, तब वे श्रीसुकान्ति महारानीने सर्वश्रृङ्गार सम्पन्ना अपनी विरह-युक्त पुत्रियोंको उन्हें अर्पण कर दिया ॥८८॥

पुनः रोती हुई उन पुत्रियोंको बारँबार हृदयसे लगाकर, सजल नेत्र हो, श्रीसुकान्ति महारानी उन्हें पालकियोंमें बिठाकर, बिदाईकी विधि करने लगीं ॥८९॥

श्रीश्रीधर महाराजके द्वारा बहुत बड़े दहेज द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट किये हुये, वे श्रीलक्ष्मीनिधि आदि उत्तम चारों दूलह अपने पिताजी के पास गये ॥९०॥

बधुओंके सहित अपने पुत्रोंको आये हुये देखकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीधरमहाराज को आश्वासन देकर वहाँ से प्रस्थान किया ॥९१॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रस्थान करते समय बाजाओंका बहुत बड़ा शोर मच गया और मुनियोंके मुखसे श्रवण सुखद, हृदयके विकारोंको नष्ट करने वाली वेदध्वनि प्रकट हो गयी ॥९२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीशतानन्दजी महाराज तथा वृद्धोंके समेत ब्राह्मण समाजको बारम्बार प्रणाम करके श्रीधरजी महाराजने अपनी उन पुत्रियोंको प्यार करते हुये उन्हें सम्यक् प्रकारसे आश्वासन देकर श्रीमिथिलाजी जानेकी आज्ञा प्रदान की ॥९३॥

कृतार्थितोऽहं भवता कृपालो न जातु ते प्रत्युपकर्तुमर्हः ।
अलं बहूक्त्या त्रुटिमाक्षमस्व विदेहमाहेति गतः पुरस्तात् ॥६४॥

श्रीमिथिलेन्द्र उवाच ।

कर्त्तव्यमेवाचरतोपकारः कृतो मया को वदसेति तस्य ।
आश्वस्त आलिङ्ग्य वरान् प्रतुष्टेः सर्वैर्नुतोऽगात्स गृहं निवृत्तः ॥६५॥
महर्षयः शास्त्रविदो द्विजातयो महीभुजश्चोरुभवाः पदोद्भवाः ।
विदेहराजेन समं समागता विडालिकाभूमिभृता समर्चिताः ॥६६॥
आश्वासयन्तो जयमुद्गृणन्तः शुभं वदन्तो ह्यभिवाद्यमानाः ।
प्रशंसयन्तः किल मुक्तकण्ठाः सर्वे तमीयुर्मिथिलां नृपेण ॥६७॥

पुनः श्रीमिथिलेशजी महाराजके सामने जाकर बोलेः—हे कृपालो ! आपने अपनी अभूत पूर्व कृपाके द्वारा मुझे कृतार्थ कर दिया, आपने मेरे प्रति जो अनुपम उपकार किया है, उसका बदला मैं कभी भी चुकानेको समर्थ नहीं हूँ, बहुत कहनेसे क्या, भूल क्षमा करेंगे? ॥६४॥

यह सुनकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने कहा—मैंने तो केवल अपने कर्त्तव्यका पालन किया है, इसमें आपका उपकार क्या किया ? उनकी इस वाणीके द्वारा आश्वासन पाकर श्रीलक्ष्मीनिधि आदि वरोंको हृदयसे लगाकर पूर्ण सन्तोषको, प्राप्त हो श्रीधरजी महाराज श्रीमिथिला निवासियोंकी प्रार्थनासे लौटकर अपने महलको गये ॥६५॥

श्रीविडालिकापुरी नरेश श्रीधरजी महाराजके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ आये हुये महर्षि, शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र समुचित सत्कारको पाकर सभी गला खोलकर (उच्च स्वरसे) उनको आश्वासन देते हुये महर्षि मङ्गल उच्चारण करते हुये शास्त्रवेत्ता ब्राह्मण, जयकारका घोष करते हुये क्षत्रिय, प्रणाम करते हुये वैश्य, प्रशंसा करते हुये शूद्र श्रीमिथिलेशजी महाराजके साथ श्रीमिथिलाजी गये ॥६६॥६७॥

इति चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

प्राप्त मनोरथा सिद्धयादि नव बधुओंका श्रीकिशोरीजी से सस्तुति संवाद ।

श्रीशिव उवाच ।

सस्नुषाणां स्वपुत्राणां श्रुत्वाऽऽगतिं च मातरः । गृहप्रवेशनार्थाय चक्रिरे मङ्गलोत्सवम् ॥१॥
गायन्तीभिश्च योषिद्भिर्देवरस्त्रीभिरन्विताः । श्रीसुनयनादिराज्ञ्यो द्रुतं द्वारमुपाययुः ॥२॥
ततो नीराजितान्पुत्रान् बधूभिः परिशोभितान् । सादरं गृहमानीय सुपीठेषु न्यवेशयन् ॥३॥
लौकिकेन विधानेन पटग्रन्थिं विमोच्य च । प्रणता लालयन्त्यस्ता बधू राज्ञ्यो मुदं ययुः ॥४॥
सिद्धयाद्या मीनखञ्जाक्ष्यो मैथिलीं समुपागताम् । विलोक्य स्वसृभिः साकं निपेतुः पादपद्मयोः ॥५॥
सा मुदा ताः समुत्थाप्य सान्त्वयामास वीक्षणैः । कृपापूर्णविशालाक्षी मनोहारिमृदुस्मिता ॥६॥
अनुरक्तिं समालोक्य भूमिजायां स्वभावजाम् । बधूनां चकिता राज्ञ्यो बभूवुर्मोदनिर्भराः ॥७॥
दानं वहुविधं दत्त्वा ब्राह्मणान्समतोषयत् । महाराज्ञी सुनयना प्रजा अर्थेन चैव हि ॥८॥

पुत्र बहुओंके समेत अपने पुत्रोंके आनेका समाचार सुनकर सुनयना अम्बाजी आदि मातायें उनके गृह प्रवेशका मङ्गलोत्सव करने लगीं ॥१॥

अपनी देवरानियोंके सहित मङ्गल गीत गाती हुई सौभागिनी स्त्रियोंके साथ श्रीसुनयना महारानीजी आदि रानियाँ तुरन्त द्वार पर आ गयीं ॥२॥

तत्पश्चात् आरती करके बधुओंसे पूर्ण शोभायमान अपने पुत्रोंको आदर पूर्वक द्वारसे महलके भीतर लेजाकर सिंहासनों पर बिठाया ॥३॥

पुनः लौकिक रीति पूर्वक बर-बधुओंके पटकी गाँठ खोलकर, प्रणाम करती बहुओंको प्यार करती हुई, सभी रानियोंने आनन्द प्राप्त किया ॥४॥

श्रीसिद्धिजी आदि चारो बहिनें श्रीकिशोरीजीके दर्शनोंके लिये मछली और खञ्जन पक्षीके समान अपने नेत्र चञ्चल कर रखे थे, उनके इस भावसे प्रसन्न हो श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी अपनी बहिनोंके साथ वहाँ पहुँच गयीं, उन्हें पासमें आई देखकर श्रीसिद्धिजी आदि चारों बहिने उनके श्रीचरणकमलोंमें पड़ गयीं ॥५॥

जिनके विशाल नेत्रोंमें पूर्ण कृपा भरी हुई है, उन मनोहर मुस्कान वाली श्रीललीजीने चारोंको अपनी चितवनके द्वारा आश्वासन प्रदान किया ॥६॥

श्रीसुनयना अम्बाजी आदि महारानियाँ श्रीललीजूके प्रति बहुओंका स्वाभाविक अनुराग देखकर आश्चर्य युक्त हो गयीं और उनके हृदयसे आनन्द उछलने लगा ॥७॥

श्रीसुनयना महारानीने ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारका दान देकर, प्रजाको धनके द्वारा पूर्ण सन्तुष्ट किया ॥८॥

दास्यो दासा वयस्याश्च पुरनार्यः कुलाङ्गनाः । सर्वाः सर्वेऽनुगा राज्ञ्या सान्वयाः परितोषिताः ॥९॥
अभिवाद्य च तां सीतां बध्वः सविधिसत्कृताः । सुखमेकान्त आसीनां सिद्धयाद्याः परितुष्टुवुः ॥१०॥

सिद्धयाद्या ऊचुः ।

जय भूमिसुते ! सुरसिद्धनुते ! मुनिहंसनिषेवितपादयुगे ! ।
मिथिलावनिमण्डनपद्मपदे ! जय विश्वविमोहिनि ! शीलनिधे ॥११॥
प्रणताः स्म वयं वपुषा मनसा वचसा तव पावनपद्मपदम् ।
दुरितौघहरं शरणं भजतां जलजासनविष्णुमहेशनुतम् ॥१२॥
जनभूतिकरी भवतापहरी पतितैकगतिः शुचिभावजनिः ।
द्रुहिणादिसुरैर्दुरवाप्यकणा क्रियतां करुणा सकृपे ! सततम् ॥१३॥
परिदेहि धियं न उदारमते ! पदपङ्करुहद्वयभक्तिरताम् ।
विमलामखिलाघचयै रहितामनिशं तव तुष्टिविधानकरीम् ॥१४॥

पुनः परिवार सहित सभी दासी, सभी दास, सभी सखा, सभी सखी, सभी नगरकी स्त्री, सभी निमिवंशकी स्त्री, सभी अनुचरी, सभी अनुचर वर्गको उन्होंने पूर्ण सन्तुष्ट किया ॥९॥

सासुओंसे विधि-पूर्वक सत्कार पाकर, श्रीसिद्धिजी आदि चारो बहुएँ एकान्तमें सुखपूर्वक विराजीं हुईं श्रीजनकराजदुलारीजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं ॥१०॥

श्रीसिद्धिजी आदि बहिनें बोलीं:-हे पृथ्वी माताकी पुत्री श्रीललीजी! जिनकी देवता, सिद्ध स्तुति करते हैं, हंसके समान-सारग्राही केवल भगवत्तत्त्वका मनन करनेवाले मुनि लोग जिनके श्रीचरण कमलोंका सम्यक् प्रकारसे सेवन करते हैं, उन आपकी जय हो । जिनके कमलवत् सुकोमल श्रीचरण-श्रीमिथिला भूमिके भूषण हैं, तथा जो अपनी लीलासे समस्त विश्वको मुग्धकर लेने वाली अर्थात् आश्चर्यमें डाल देनेवाली, सौन्दर्यकी खान हैं, उन आपकी सदा जय हो ॥११॥

हे श्रीललीजी ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिनकी स्तुति करते हैं; जो विपत्तियोंके ढेरकी चोरी करने वाले और भक्तोंके रक्षक हैं, आपके उन श्रीचरणकमलोंको हम प्रणाम करती हैं ॥१२॥

हे कृपालु श्रीललीजी ! हम सभी पर अपनी सदैव वह कृपा कीजिये, जो भक्तोंको सम्यक् प्रकारसे उन्नतिकारी और संसारके तापोंको हरण करने वाली तथा पवित्र (अज्ञानकी उपाधिसे रहित भगवान् श्रीरामजीमें) भाव (अनुराग) पैदा करने वाली है, एवं जो अपने कर्मोंसे पतित प्राणियोंके कल्याणका एक मात्र ही अवलम्ब है तथा जिसका एक कण भी ब्रह्मादि देव-वृन्दोंके लिये दुर्लभ है ॥१३॥

हे उदारमते अर्थात् सर्वोत्कृष्ट विशाल भाव वाली श्रीललीजी! हम सभीको वह शुद्ध बुद्धि प्रदान कीजिये, जो आपके श्रीयुगलचरणकमलोंमें आसक्त, समस्त पापोंसे रहित रहकर आपकी प्रसन्नता का उपाय करने वाली बने ॥१४॥

भवती जगदुद्धरणाय महीतलतोऽभ्युदिता श्रुतिमृग्यपदा ।
भुवनालययूथपतेर्दयिता श्रुतवत्य इति स्म वयं च मुहुः ॥१५॥
अत एव दयामयि ! दीनहिते ! तव दर्शनकामविमत्तधियः ।
तव लब्धय आर्यसुताब्जकरार्पितपाणय एव वयं सकलाः ॥१६॥
विधियोगत एव न ते कृपया तव दर्शनमाप्तममोघमिदम् ।
मुनिसिद्धसुरेशदुरापतरं नयनैकफलप्रदमीड्यतमम् ॥१७॥
विनयोऽयमनुग्रहपूर्णदृशा भवती परिपश्यतु नः सततम् ।
पतिता भवभीममहाजलधौ शरणागतिमाप्तवतीः पदयोः ॥१८॥

श्रीसीतोवाच ।

एवं भवतु कल्याण्यो ! मय्यनुरक्तचेतसः । अनुधावति मे नित्यं कृपा गौः स्वात्मजं यथा ॥१९॥
युष्मास्वतीवसंसक्ता प्रसभं तुष्टये हि वः । अनयत्सन्निधौ मां सा युष्माकं दूरदेशतः ॥२०॥
तच्च किं विस्मृतं ब्रूत भवतीभिः शुभाननाः । कस्यामपीदृशी शक्तिरपरस्यामवेक्षिता ॥२१॥

वेदोंके द्वारा जिनकी महिमा खोजने योग्य है, वे आप ब्रह्माण्ड समूहोंके स्वामी श्रीरामभद्रजू की प्राणवल्लभाजी, स्थावर जङ्गम मय समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेके लिये पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं, इस बातको हम लोगोंने बारम्बार श्रवण किया था ॥१५॥

सभी अभिमान रहित प्राणियोंका हित करने वाली हे दयामयी श्रीललीजी ! इस लिये जब आपके दर्शनोंकी इच्छासे हम लोगोंकी बुद्धि पागल हो उठी, तब आपकी प्राप्तिके लिये ही हम लोगोंका पाणिग्रहण आपके भाइयोंके साथ कर दिया गया ॥१६॥

वह कभी भी निष्फल न जाने वाला, मुनि सिद्ध ही क्या देव नायकोंके लिये भी परम दुर्लभ, नेत्रोंकी उपमा रहित सफलता प्रदान करने वाला, परम प्रशंसा योग्य, आपका दर्शन हमें सौभाग्यसे नहीं, बल्कि आपकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है ॥१७॥

हे श्रीकिशोरीजी ! अब आपसे यही विनय है कि आप संसार रूपी भयङ्कर महासागरमें पड़ी, तथा आपके श्रीचरण कमलोंकी शरणागतिको प्राप्त हुई, हम सभी को अपनी कृपा पूर्ण दृष्टिसे सदा अवलोकन करती रहें ॥१८॥

श्रीललीजी बोलीं–हे कल्याणियो ! ऐसा ही होगा । जिनका चित्त मुझमें अनुरक्त रहता है उनके पीछे मेरी कृपा इस प्रकार दौड़ती है, जैसे अपने नवजात बछड़ेके पीछे गाय ॥१९॥

वह मेरी कृपा आप लोगोंके प्रति अत्यन्त आसक्त है, अत एव आप लोगोंके सन्तोषके लिये वह, दूर देशसे मुझे बलात् आप लोगोंके पास विडालिकापुरी ले गयी थी ॥२०॥

हे मङ्गल मुखियो! सो क्या आप लोग भूल गयीं ? क्या ऐसी विलक्षण शक्ति और किसीमें भी आप लोगोंने देखी है ? ॥२१॥

सा यामनुगता नित्यं प्रीतिः सा हि निषेव्यताम् । कायेन मनसा वाचा भवतीभिरभीष्टदा ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्त्वा ताः समालिङ्ग्य सान्त्वयन्ती नृपात्मजाः । विशेषानन्दवृद्ध्यर्थं जहारैश्वर्यशेमुषीम् ॥२३॥
तया पद्मपलाशाक्ष्या स्नुषाभिः सेव्यमानया । सह राज्ञी सुनयना कमलामेकदा ययौ ॥२४॥
अर्द्धयोजनविस्तीर्णे नदीतोये मनोरमे । अंशुकावरणै रम्यैः सर्वतो ऽलभ्यदर्शने ॥२५॥
कृतस्नानविधौ राज्ञी सखीभिः समलङ्कृता । ददर्श दुहितू रम्यां जलकेलिमनुत्तमाम् ॥२६॥
मैथिलीं स्वसृभिः साकं दृष्ट्वा मज्जनतत्पराम् । निमज्ज्य दूरतस्तस्याः सिद्धिर्नूपुरमाहरत् ॥२७॥
तत्परिज्ञाय चातुर्य्यं सिद्धेर्जनकनन्दिनी । जहार कुण्डले तस्या निमज्जन्त्याः सलाघवम् ॥२८॥
तद्वीक्ष्य स्वसृभिः सिद्धिर्विस्मयं परमं गता । प्रदाय नूपुरं प्रीत्या सीतायै तामभाषत ॥२९॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

दर्शयन्त्या स्वचातुर्य्यं दृष्टं ते पाटवं परम् । अद्भुतं मनसाऽतीतं सुकुमारि ! कलानिधे ! ॥३०॥

वह मेरी कृपा जिसके पीछे-पीछे चलती है, उस अभीष्ट प्रदायिनी प्रीतिका आप लोग तन, मन, वचनसे सदैव सेवन करती रहें ॥२२॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये! इस प्रकार कहकर अश्वासन देती हुई श्रीकिशोरीजीने उन राजकुमारियोंको हृदयसे लगाकर विशेष आनन्द वृद्धिके लिये उनकी ऐश्वर्य बुद्धि हरण करली ॥२३॥ एक समय श्रीसिद्धिजी आदि पुत्रबधुओंसे सेवित होती हुई, कमलदल-लोचना उन श्रीललीजीके साथ श्रीसुनयना महारानीजी श्रीकमलाजी पधारीं ॥२४॥

सुन्दर वस्त्रोंके परदोंके द्वारा चारों ओरसे दो कोसके विस्तारमें, दर्शन न मिलने योग्य नदीके सुन्दर जलमें स्नान करके सखियोंके द्वारा शृङ्गार धारण कर श्रीमहारानीजी श्रीललीजीकी मनोहर जल क्रीड़ाका दर्शन करने लगीं ॥२५॥२६॥

सखियोंके साथ श्रीमिथिलेशनन्दिनीजीको स्नानमें तत्पर हुई देखकर श्रीसिद्धिजीने दूरसे डुबकी लगाकर उनका नूपुर चुरा लिया ॥२७॥

सिद्धिजीकी इस चातुरीको जानकर, उनके डुबकी लगाते ही श्रीजनकराजदुलारीजीने शीघ्रताके साथ उनके दोनों कुण्डलोंको हरण कर लिया ॥२८॥

अपनी वाणी, उषा आदि बहिनोंके समेत श्रीसिद्धिजी श्रीललीजीकी उस लीलाको देखकर बहुत ही आश्चर्यको प्राप्तहो प्रेमपूर्वक नूपुर अर्पण करके श्रीकिशोरीजीसे बोलीं:—हे समस्त कलाओंकी निधि श्रीसुकुमारीजू ! आपको अपनी चतुराई दिखानेके लिये तो मैं उद्यत हुई किन्तु आपका सर्वोत्कृष्ट, अद्भुत, वह चातुर्य देखा, जिसका मन कल्पना भी नहीं कर सकता है ॥२९॥३०॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

एवमुक्ता तु वैदेही तया चन्द्रनिभानना । चकार विधिना ध्येयां जलकेलिमनुत्तमाम् ॥३१॥
तां तु राज्ञी गवाक्षेभ्यः पश्यन्ती संप्रहर्षिता । बभूवोत्फुल्लनयना स्नुषाभिर्दुहितुः सह ॥३२॥
निवृत्तजलकेलिं तामागतां पुनरन्तिके । समालोक्यातिहर्षेण सस्वजे जनकात्मजाम् ॥३३॥
ताः स्नुषा लालयित्वा ऽथ सादरं परया मुदा । दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो राज्ञी स्वालयमाययौ ॥३४॥

एवं तया पूर्णशशाङ्कवक्त्रया विडालिकानाथसुता महीभुवा ।
क्रीडां दधानाः सुखमन्तरात्मना न तृप्तिमीयुः सुधियो हि जातुचित् ॥३५॥

श्रीस्नेहपराजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीसिद्धिजीके इस प्रकार कहने पर पूर्णचन्द्र तुल्य परमाह्लादकारी मुखारविन्द वाली, श्रीविदेहराजनन्दिनीजूने विधिपूर्वक ऐसी उत्तम जल क्रीडा की, जो ध्यान करने ही योग्य थी ॥३१॥ अपनी पुत्र–बधुओंके साथ श्रीललीजूकी उस जलकेलिको जालदानोंसे अवलोकन करती हुई महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने परम हर्षको प्राप्त किया उनके नेत्र–कमल खिल उठे ॥३२॥

जलकेलिसे निवृत्त होकर जब श्रीललीजी श्रीअम्बाजीके पास आईं तब वे भली भाँति श्रीजनकराजनन्दिनीजूका दर्शन करके उन्हें अत्यन्त हर्ष पूर्वक, अपने हृदयसे लगा लिया ॥३३॥

अपनी पतोहुओंका श्रीसुनयना अम्बाजी आदरके साथ प्यार करके, बड़ी प्रसन्नता पूर्वक ब्राह्मणोंको दान देकर वापस महल पधारीं ॥३४॥

इस प्रकार परमातम स्वरूपा उन पूर्ण चन्द्रमुखी भूमि-कुमारी श्रीललीजीके साथ सदा विहार करती हुई, वे विडालिका नरेशकी बुद्धिमती राजकुमारियाँ, कभी भी तृप्तिको न प्राप्त हुईं अर्थात् सदा लालायित ही बनी रहीं ॥३५॥

इति पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

—❀❀❀—

अथ षडशीतितमोऽध्यायः ।

धनुष यज्ञ करनेके लिये श्रीजनकजी महाराज को भगवान शिवजीका स्वप्नादेश तथा नवयोगेश्वर आगमन ।

श्रीशिव उवाच ।

द्वितीये मासि सम्प्राप्ते लक्ष्मीनिधिविवाहतः । आजग्मुर्ऋषयो देवि ! मिथिलां कुम्भजादयः ॥१॥
पूजिता विधिना राज्ञा मिथिलेन्द्रेण सादरम् । तोषिता परया भक्त्या तत्रोषुस्ते मुदान्विताः ॥२॥
चातुर्मास्यव्रतं चक्रुः सर्व एव यथेप्सितम् । लब्ध्वा सुखप्रदं स्थानं सर्वबाधाविवर्जितम् ॥३॥
अतीते श्रावणे मासि शयानं मिथिलेश्वरम् । अहमासाद्य तं देवि ! सम्बोध्येति बचोऽब्रुवम् ॥४॥
धनुर्यज्ञेन संसिद्धिं यतस्वाप्तुमभीप्सिताम् । तस्यामेव हि साफल्यं दृशां सर्वासुधारिणाम् ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तस्ततस्तेन जनको योगभास्करः । त्यक्तनिद्रो महाराज्यै सकलं तन्न्यवेदयत् ॥६॥
साऽपि कौतुकयुक्तात्मा हरिध्यानपरायणा । निशान्तसमयं बुद्ध्वा नित्यकृत्यपराऽभवत् ॥७॥
तदेव कथितं राज्ञा कुम्भजाय महात्मने । रहस्यं रहसि स्थित्वाऽभिवाद्य मुदितात्मने ॥८॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती! श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाके विवाहके दूसरे मासमें श्रीअगस्त्यजी महाराज आदि महर्षिगण श्रीमिथिलाजी पधारे ॥१॥

उन सभीका श्रीमिथिलेशजी महाराजने आदर पूर्वक षोडशोपचारसे पूजन किया, महाराज की श्रद्धासे सन्तुष्ट होकर वे महर्षि वृन्द बड़ी प्रसन्नता पूर्वक वहीं निवास करने लगे ॥२॥

सभी प्रकारकी बाधाओंसे रहित, सुखप्रदायक, उस स्थानको पाकर उन्होंने अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार चार महीनोंका नियम ले लिया ॥३॥

हे देवि! जब श्रावण मास व्यतीत हुआ, तब शयनकी अवस्थामें श्रीमिथिलेशजी महाराजके पास पहुँचकर उन्हें सम्बोधित करके मैंने यह बात कही ॥४॥ हे राजन् ! आप धनुष यज्ञके द्वारा अपनी इष्ट-सिद्धि प्राप्तिके लिये उपाय कीजिये, क्योंकि उसीमें सभी प्राणधारियोंके नेत्रोंकी सफलता है ॥५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज श्रीकात्यायनीजीसे कहते हैं कि हे प्रिये ! भगवान् शिवजीके इस प्रकार आदेश करने पर योगको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले श्रीजनकजी महाराजने जागकर श्रीसुनयना महारानीजीसे उस वृत्तान्तको सूचित किया ॥६॥

श्रीसुनयना महारानीजी भी मनमें आश्चर्य युक्त हो, भगवान् श्रीहरिका ध्यान करने लगीं, पुनः प्रातःकाल हुआ जानकर वे अपने दैनिक कर्त्तव्यमें लग गयीं ॥७॥

उस रहस्यको श्रीमिथिलेशजी महाराजने प्रणाम करके महात्मा श्रीअगस्त्यजी महाराजसे एकान्तमें बैठकर प्रसन्न चित्तसे निवेदन किया ॥८॥

चिन्तया ग्रस्तमालोक्य किं कर्त्तव्यं मयेति सः । उवाच नृपतिं प्रह्वं कुम्भजन्मा तमादरात् ॥९॥
श्रीअगस्त्य उवाच ।
धनुर्यज्ञेन संसिद्धिं यतस्वाप्तुमभीप्सिताम् । तस्यामेव हि साफल्यं दृशां सर्वासुधारिणाम् ॥१०॥
अस्यार्थः श्रूयतां राजन्! हरवाक्यस्य संस्फुटम् । कथ्यमानो मया सम्यग्विमृश्य स्थितचेतसा ॥११॥
यदर्थं भवता पूर्वं समाहूता महर्षयः । सर्वेश्वर्य्याश्च संप्राप्तिः सुतारूपेण वै कृता ॥१२॥
रामो भवतु जामाता मम सर्वेश्वरः प्रभुः । चक्रवर्तिकुमारोऽसाविति सिद्धिस्तवेप्सिता ॥१३॥
तन्निमित्तं धनुर्यज्ञं कुरु भूपालपुङ्गव ! । धनुर्भङ्गाद्विवाहस्ते यतः पुत्र्या विनिश्चितः ॥१४॥
सर्वेषां प्राणिनामेव लोचनानां नृपोत्तम ! । स्यादवश्यं हि साफल्यं तस्या उद्वाहदर्शनात् ॥१५॥
विधीयते धनुर्यज्ञो मयेदानीं हरीच्छया । बिवाहार्थं स्वदुहितुः कृपयाऽऽयान्तु भूमिपाः ॥१६॥
वीर्याभिमानिनः सर्वे भवन्तो मे निमन्त्रिताः । साम्प्रतं समुपागम्य दातुमर्हन्तु दर्शनम् ॥१७॥

मुझे इस शिव आज्ञाका पालन किस प्रकार करना चाहिये इस चिन्तायुक्त, नम्रता विभूषित श्रीमिथिलेशजी महाराजको देखकर श्रीअगस्त्यजी महाराज उनसे आदर पूर्वक बोले ॥९॥ हेराजन् ! "धनुष यज्ञ द्वारा आप अपनी अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये उपाय कीजिये, क्योंकि उसीमें सभी प्राणियोंके नेत्रोंकी सफलता है ?" ॥१०॥

हे राजन् ! श्रीभोलेनाथजीके इस वाक्यका स्पष्ट अर्थ भली भाँति विचार कर मेरे कहते हुये आप एकाग्र चित्तसे श्रवण कीजिये ॥११॥

आपने पूर्वमें जिस कारणसे सभी महर्षियोंको अपने यहाँ बुलाया था, तथा जिस कारणसे आपने पुत्री रूपमें श्रीसर्वेश्वरीजूकी प्राप्तिकी थी ॥१२॥

श्रीचक्रवर्तीकुमार सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामभद्रजू हमारे जमाई बनें यही तो आपकी अभीष्ट सिद्धि है ? ॥१३॥ हे राजाओंमें श्रेष्ठ ! उन श्रीरामभद्रजीको अपना जमाई (दामाद) बनानेके लिये अब आप धनुष यज्ञ कीजिये, क्योंकि आपने प्रतिज्ञाकी है, जो इस शिव धनुषको तोड़ेगा उसीके साथ हमारी श्रीललीजीका विवाह होगा ॥१४॥

हे नृपोत्तम ! आपकी श्रीललीजीके विवाह-दर्शनोंसे ही समस्त प्राणियोंके नेत्रोंकी अवश्य सफलता होगी, यह निश्चय है, इस लिये ॥१५॥

हे राजाओ ! भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे मैं, इस समय अपनी श्रीराजदुलारीजीके विवाह हेतु धनुषयज्ञ कर रहा हूँ, आप लोग उसमें पधारनेकी कृपा करें ॥१६॥

अपने अपने पराक्रम का अभिमान रखने वाले, हे शूर वीरो ! मेरे द्वारा निमन्त्रण पाकर आप सभी लोग इस समय श्रीमिथिला आकर दर्शन प्रदान कीजिये ॥१७॥

इति पत्रं त्वयाऽऽलिख्य प्रेष्यतां स्तुतिसंयुतम् । सर्वदेशेषु भूपालान् प्रति विश्रुतविक्रमान् ॥१८॥
निमन्त्र्यन्तां महात्मानो मुनयश्चर्षिसत्तमाः । सर्व इन्द्रादयो देवा राक्षसोरगकिन्नराः ॥१९॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षाः सत्यधर्मपरायणाः । दर्शनार्थं त्वयेज्यायाः श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥२०॥
आगतेभ्यो यथायोग्यं प्रदायावासमन्दिरम् । सर्वभोगयुतं रम्यं भव कार्यपरायणः ॥२१॥

श्रीश्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तस्य महर्षेः सन्निशम्य सः । सर्वदेशमहीपेभ्यः प्रेषयामास पत्रिकाम् ॥२२॥
समाजग्मुस्ततो भूपा बलिनः श्रुतविक्रमाः । अनेकलाभलाभाय सोत्साहाः शतभृत्यकाः ॥२३॥
नाजगाम महाराजो मिथिलां कोशलेश्वरः । निमन्त्रितोऽप्यसौ राजा पुत्रयोर्विरहातुरः ॥२४॥
तेषां स स्वागतं कृत्वा निलयांश्च पृथक्पृथक् । प्रदाय परया प्रीत्या ऋषिवाटमुपागमत् ॥२५॥
यदृच्छया तदा तत्र सिद्धा दीप्तानलोपमाः । प्रादुर्बभूवुः सदया नवयोगेश्वराः श्रुताः ॥२६॥
तेषां नामानि भूपाल शृणु त्वं कथयाम्यहम् । शृण्वतां पठतां नित्यमन्तदृष्टिप्रदानि वै ॥२७॥

इस प्रकार प्रार्थना युक्त निमन्त्रण-पत्र लिखकर आप प्रत्येक देशके राजाओं तथा प्रसिद्ध पराक्रमियोंके पास भेजिये ॥१८॥

पुनः सत्य एवं धर्मका पालन करने वाले सभी महात्मा, मुनि, ऋषि इन्द्रादिदेव, राक्षस, सर्प, किन्नर, गन्धर्व, गुह्यक, यक्षोंको इस धनुषका दर्शन करनेके लिये आप श्रद्धा और प्रेमके साथ निमन्त्रित कीजिये ॥१९॥२०॥

निमन्त्रित आगन्तुकोंको यथायोग्य सभी आवश्यक वस्तुओंसे युक्त सुन्दर निवासस्थान देकर अपना आवश्यक कार्य करें ॥२१॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले हे प्रिये! महर्षि श्रीअगस्त्यजी महाराजके इस प्रकारके कहे हुये वचनोंको सुनकर श्रीमिथिलेशजीमहाराजने सभी देशोंके राजाओंके पास निमन्त्रण-पत्र भेजे ॥२२॥

उस निमन्त्रण पत्रको पाकर बड़े-बड़े विख्यात पराक्रमी बलवान् राजा, उत्साह-पूर्वक अनेक प्रकारका लाभ लेनेकी इच्छासे सैकड़ों सेवकोंके साथ आगये किन्तु श्रीदशरथजी महाराज, अपने दोनों पुत्र (श्रीराम, लक्षमण) के विरहसे व्याकुल होने के कारण निमन्त्रित होने पर भी, श्रीमिथिलाजी नहीं पधारे ॥२३॥२४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज उन सभीका सम्यक् प्रकारसे स्वागत करके, सबको बड़े प्रेमके साथ अलग-अलग महल प्रदान करके ऋषियोंके घेरेमें पधारे ॥२५॥

उसी समय दैव-संयोगसे कृपालु श्रीकविजी, श्रीहरिजी, श्रीअन्तरिक्षजी, श्रीद्रुमिलजी, श्रीचमसजी, श्रीकरभाजनजी आदि प्रसिद्ध नव योगेश्वर वहाँ प्रकट हो गये ॥२६॥

हे राजन्! उन योगेश्वरोंके नामोंको वर्णन कर रहा हूँ आप श्रवण कीजिए । उनके "नाम" श्रवण तथा पाठ करने वालों को निश्चय ही अन्तर्दृष्टि प्रदानकारी हैं ॥२७॥

आविर्होत्रोऽन्तरिक्षश्च चमसः करभाजनः । कविर्हरिः प्रबुद्धश्च द्रुमिलः पिप्पलायनः ॥२८॥
उत्तस्थुस्तान्समालोक्य सर्वं एव महर्षयः । राजा ननाम साष्टाङ्गं भूमौ सञ्जातसम्भ्रमः ॥२९॥
विधिवत्पूजनं कृत्वा निवेश्य परमासने । पुनस्तान्स्तोत्रयामास वाण्या कण्ठनिरुद्धया ॥३०॥
ततस्तैः करुणादृष्ट्या दृश्यमानो महीपतिः । पप्रच्छ प्रणतो भूत्वाऽनुमत्या कुम्भजन्मनः ॥३१॥

श्रीजनक उवाच ।

का सेव्या संविभाव्या च समाराध्या मुमुक्षुभिः । मानुषं देहमासाद्य भवद्भिः कृपयोच्यताम्॥३२॥
भवन्तः सर्वधर्मज्ञा महाभागवतोत्तमाः । अतो रहस्यं पृच्छामि चित्ते भागवतैर्धृतम् ॥३३॥

योगेश्वरा ऊचुः ।

चक्षुषी ते सुतां द्रष्टुं वर्तेते भृशचञ्चले । कुतो वाच्यं रहस्यं नस्ताभ्यां सञ्चालितात्मनः ॥३४॥
अत एव महाराज कारयादौ शुभं हि नः । दर्शनं पावनं तस्या भूमिजायाश्चिरेप्सितम् ॥३५॥
अस्मत्तस्तु ततः सर्वं शृणु यद्यद्धृदीप्सितम् । अदृष्ट्वा तां न शक्ष्यामो वक्तुं किमपि मानद!॥३६॥

श्रीआविर्होत्रजी, श्रीअन्तरिक्षजी, श्रीचमसजी, श्रीकरभाजनजी, श्रीकबिजी, श्रीहरिजी, श्रीप्रबुद्धजी, श्रीद्रुमिलजी, श्रीपिप्पलायनजी ॥२८॥

उनका दर्शन करके सभी महर्षिवृन्द उठकर खड़े हो गये, श्रीमिथिलेशजी महाराजने बड़ी उत्सुकताके साथ भूमिपर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥२९॥

पुनः सुन्दर आसनोंपर विराजमान करके, विधि-पूर्वक पूजन कर, कण्ठमें रुकी (गद्गद) वाणीसे उनकी स्तुति की ॥३०॥

जब उन योगेश्वरोंने, उन्हें अपनी कृपापूर्ण दृष्टिसे देखना प्रारम्भ किया तब, श्रीअगस्त्यजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीमिथिलेशजी महाराजने प्रणाम करके उनसे पूछा ॥३१॥

मनुष्य देहको पाकर मोक्षाभिलाषियोंको किसकी सेवा ? किसका ध्यान ? और किसकी उपासना करनी चाहिये ? उसे आप लोग बतलाने की कृपा कीजिये क्योंकि आप सभी धर्मोंके जानने वाले और प्रधान भक्तोंमें भी उत्तम हैं, अत एव जिस रहस्यको आप लोगोंने हृदयमें धारण किया है, मैं उसीको पूछ रहा हूँ ॥३२॥३३॥

नवयोगेश्वर बोले:—हे राजन्! हम लोगोंके नेत्र आपकी श्रीललीजीके दर्शनोंके लिये अत्यन्त चञ्चल हो रहे हैं और उन दोनोंने हमारे मनको भी पूर्ण चञ्चल बना दिया है, इस अवस्थामें इस रहस्यको भला किस प्रकार हम लोग, वर्णन करनेको समर्थ हो सकते हैं ? ॥३४॥

हे महाराज ! इस लिये आप पहिले हमें बहुत समयसे चाहे हुये, भूमिसे प्रकट हुई अपनी श्रीललीजीके पावन मङ्गलकारी, दर्शन करा दीजिये ॥३५॥ सभीको मान देने वाले हे राजन् ! दर्शनोंके बाद हम लोगोंसे आप जो जो चाहें श्रवण कीजिये, किन्तु बिना उनका दर्शन किये, हम लोग, कुछ भी कथन करने में असमर्थ हैं ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तो विदेहेन्द्रो मैथिलीं त्वरया मुदा । आजुहाव महाराज्ञ्या स्वसृभिर्भ्रातृभिर्युताम् ॥३७॥
सा च पित्रा समाहूता सहाम्बास्वसृबन्धुभिः । आजगामाविलम्बेन मुनिवाटमयोनिजा ॥३८॥
कृताभिवादनां सीतां विद्युद्दामसमप्रभाम् । कृपापूर्णविशालाक्षीमरालमृदुकुन्तलाम् ॥३९॥
नृपपार्श्व स्थितां साकं स्वमात्रा स्वसृबन्धुभिः । कृतार्थास्तां समालोक्य नव योगेश्वरा हि ते ॥४०॥
अमूर्च्छंस्तेऽङ्घ्रिगन्धेन हृष्टलोमान एव ते । पुनर्धैर्यं समालम्ब्य कथञ्चित्स्वस्थतां ययुः ॥४१॥

कविरुवाच ।

साधु पृष्टं त्वया राजन् जानताऽपि हरीच्छया । हितायैव मुमुक्षूणां भवव्याकुलचेतसाम् ॥४२॥
गुह्यानां परमं गुह्यं रहस्यं महतां धनम् । श्रूयतां वाञ्छितं श्रोतुं यत्तदेवोच्यते मया ॥४३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे कात्यायनी! जब उन योगेश्वरोंने श्रीमिथिलेशजी महाराजसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक श्रीसुनयना महारानीजीके साथ भाई-बहिनों सहित श्रीललीजीको वहाँ शीघ्र बुला भेजा ॥३७॥

अपने पिताजीके बुलाने पर वे बिना कारण भक्त-सुखदायिनी निज इच्छासे प्रकट हुई, श्रीललीजी तुरन्त भाई-बहिनोंके सहित अपनी अम्बाजीके साथ मुनियोंके उस वाड़ेमें पधारीं ॥३८॥

जब वे प्रणाम कर चुकीं, तब बिजलीकी माला (समूह) के समान प्रकाशसे युक्त, कृपासे परिपूर्ण विशाल नेत्र एवं घुँघुराले कोमल, केश वाली ॥३९॥

अपनी श्रीअम्बाजीके साथ भाई बहिनोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके बगलमें विराजमान, भक्तोंके सुख एवं प्रेमका विस्तार तथा पाप-तापोंका निवारण करने वाली उन श्रीललीजूका दर्शन करके वे नव योगेश्वर कृतार्थ हो गये ॥४०॥

आनन्दकी अधिकतासे उन योगेश्वरोंके रोंगटे खड़े हो गये, श्रीललीजीके श्रीचरण-कमलोंकी सुगन्धिसे उन्हें प्रेम मूर्छा आगयी, पुनः धैर्यका अवलम्बन लेकर, वे किसी प्रकार सावधान हुये ॥४१॥

योगेश्वर श्रीकवि बोलेः—हे राजन् ! आप जानते हुये भी भक्त दुखहारी श्रीभगवान्‌की इच्छासे, संसार-तापसे व्याकुल चित्त, मोक्षाभिलाषियोंके हितार्थ यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है ॥४२॥

हे राजन् ! आप जिस रहस्यको श्रवण करना चाहते हैं वह, सभी छिपाने योग्य रहस्योंमें भी अतिशय छिपाने योग्य, महात्माओंका परम धन है, उसे आप श्रवण करें मैं वर्णन करता हूँ ॥४३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं समाभाष्य कविर्महात्मा श्रीमैथिलेन्द्रं विदितात्मतत्त्वम् ।
प्रणम्य भूयो मनसा धरित्री- सुतामथोवाच वचो विचार्य ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:-हे प्रिये ! भगवानमें ही अपनी बुद्धिको तन्मय किये हुये श्रीकविजी महाराज इस प्रकार आत्म-तत्त्व अर्थात् भगवान्के वास्तविक स्वरूप के जानने वाले श्रीमिथिलेशजी महाराजसे कहकर, धरणि-कुमारी श्रीललीजीको बारम्बार प्रणाम करके, भली भाँतिसे विचार कर बोले ॥४४॥

इति षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

इति मासपारायणे चतुर्विंशतितमो विश्रामः ॥२४॥

--❀❀❀—

मुमुक्षुओंके लिये सर्वध्येय तथा सर्वोपास्य कौन है ? श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये योगेश्वर कविजी श्रीकिशोरीजीके सहस्त्रनामका वर्णन कर रहे हैं और वे श्रीसुनयना अम्बाजी की गोदमें विराजमान हैं।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।

सर्वाराध्या सर्वोपास्या का परिचय देने हेतु कवि योगेश्वर द्वारा श्रीजनकजी के प्रति श्रीजानकी—सहस्रनामवर्णन ।

श्रीजानकी-सहस्रनाम

श्रीकबिरुवाच ।

नीलेन्दीवरलोचनां जनकजां विस्मेरविम्बाधरां
बेधोविष्णुमहेशसेव्यचरणां दीव्यत्सुवर्णप्रभाम् ।
सव्ये श्रीमिथिलेशितुः सुनयनाक्रोडे मुदा राजितां
वन्दे बन्धुगणान्वितामनुचरीवृन्दैः समाराधिताम् ॥१॥

अकल्पाऽकल्मषाऽकामा अकायाऽकारर्चिता । अकारणाऽकोपपूज्या अक्रूरैकाऽक्षणाऽक्षरा ॥२॥

नील कमलके समान जिनके विशाल नेत्र, एवं पूर्णचन्द्रके समान जिनका आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द है, मुस्कान युक्त बिम्बाफलके सदृश जिनके लाल अधर और ओठ हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेशोंको भी जिनकी सेवा करना कर्त्तव्य है, प्रकाश युक्त सुवर्णके समान जिनकी गौर कान्ति है, जो श्रीमिथिलेशजी महाराजके बायें भागमें श्रीसुनयनाअम्बाजीकी गोदीमें प्रसन्नता-पूर्वक विराज रही हैं, अनुचरियाँ(बहिने)अपनी-अपनी सेवाके द्वारा जिन्हें प्रसन्न करनेमें तत्पर हैं, उन श्रीलक्ष्मीनिधिजी आदि भाइयोंसे युक्त श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

१ **अकल्पा**—जिनकी तुलना नहीं की जा सकती तथा 'अ' सर्वव्यापक प्रभु श्रीरामजी ही जिनके समान हैं ।

२ **अकल्मषा**—जो अविद्या (माया) रूपी मलसे रहित हैं ।

३ **अकामा**—जिन्हें केवल एक भगवान् श्रीरामजीकी ही कामना है ।

४ **अकाया**—जो ब्रह्मकी साकार स्वरूपा हैं ।

५ **अकारर्चिता**—भगवान् श्रीरामजी जिनके मस्तक पर चन्दन आदिसे खौर करते हैं ।

६ **अकारणा**—जो स्वयं कारणस्वरूपा हैं अथवा जिनका कारण कोई नहीं है ।

७ **अकोपपूज्या**—जो अपराधी जनों पर भी क्षमा गुणकी विशेषताके कारण सम्पूर्ण त्रिलोकीमें पूजित हैं ।

८ **अक्रूरैका**—जो समस्त प्राणियोंके प्रति मधुर व्यवहार कारिणी शक्तियोंमें सर्वोपरि हैं ।

९ **अक्षणा**—जो भगवान् श्रीरामजीके आनन्दकी साकार मूर्त्ति हैं ।

१० **अक्षरा**—जिनका सब कुछ सदा एक रस बना रहता है, कभी क्षीण नहीं होता ॥२॥

अगदाऽगुणाऽग्रगण्या अचलापुत्रिकाऽचला । अच्युताऽजाऽजेयबुद्धिरज्ञातगतिसत्तमा ॥३॥
अणोरणीयस्यतर्क्या अतीन्द्रियचयाऽतुला । अदभ्रमहिमाऽदृश्या अद्वितीयक्षमानिधिः ॥४॥

११ **अगदा**–जो आश्रित-जीवोंको प्रभु-प्राप्ति कारक भागवत-धर्म (नवधा भक्ति) को प्रदान करती हैं अथवा जो समस्त रोगोंसे अछूती सञ्जीविनी बूटी-स्वरूपा हैं।

१२ **अगुणा**–जो सत्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे परे हैं, अथवा जो भगवान श्रीरामजीकी समस्त गुण स्वरूपा हैं।

१३ **अग्रगण्या**–जो लक्ष्मी, सरस्वती, गिरिजादि सभी शक्तियोंमें प्रधान मानने योग्य है।

१४ **अचलापुत्रिका**–जो भूमिसे प्रकट होनेके कारण भूमि पुत्री कहाती हैं।

१५ **अचला**–जो ब्रह्म श्रीरामजीमें पूर्ण स्थिर हैं तथा जो अपनी सुन्दर उक्तियोंके द्वारा पतित जीवोंको कर्मानुसार दण्ड देनेके विपरीत उनपर कृपा करनेके लिए सरकारके चित्तको चलायमान (उद्यत) कर देती हैं।

१६ **अच्युता**–जो अपने दयालु स्वभावसे कभी नहीं डिगती।

१७ **अजा**–जिनका जन्म कभी होता ही नहीं।

१८ **अजेयबुद्धि**–जो अपनी बुद्धिसे भगवान् श्रीरामजीको जीत लेती हैं अथवा जिनकी बुद्धि को कोई जीत नहीं सकता।

१९ **अज्ञातगतिसत्तमा**–जिनके सर्वोत्तम विचारोंको भगवान् श्रीरामजी ही समझते हैं तथा जो भगवान् श्रीरामजीके विचारोंको समझने वाली शक्तियोंमें सर्वोत्कृष्टा अर्थात् सबसे बढ़कर हैं ॥३॥

२० **अणोरणीयसी**–जो आँखोंसे न देखने योग्य अणुसे भी सहस्रों गुणा अधिक सूक्ष्म हैं।

२१ **अतर्क्या**–जिनके गुण, रूप, लीला, स्वभाव, आदि अनुमान या वाद-विवादके द्वारा समझे नहीं जा सकते।

२२ **अतीन्द्रियचया**–जो वाणी, मन, बुद्धि चित्त आदि इन्द्रिय समूहसे परे हैं।

२३ **अतुला**–जो सब प्रकार ब्रह्मके समान हैं अर्थात् जिनकी तुलना एक ब्रह्मसे ही की जा सकती हैं, दूसरे से नहीं।

२४ **अदभ्रमहिमा**-जिनकी महिमा बहुत बड़ी है।

२५ **अदृश्या**–जिनके वास्तविक सर्वव्यापक स्वरूपका दर्शन किसी इन्द्रियके द्वारा नहीं किया जा सकता और जिनके देखनेके विषय एक प्रभु श्रीराम ही हैं।

२६ **अद्वितीयक्षमानिधिः**–जो ब्रह्म भगवान् श्रीरामकी क्षमागुणकी भण्डार-स्वरूपा हैं ॥४॥

अद्वितीयदयामूर्त्तिरद्वितीयानहङ्कृतिः । अदीनबुद्धिरद्वैता अधृताऽधोक्षजाऽनघा ॥५॥
अनन्तविग्रहाऽनन्ता अनन्तैश्वर्यसंयुता । अनन्यभावसन्तुष्टा अनर्थौघनिवारिणी ॥६॥
अनवद्याऽनामरूपा अनिर्देश्यस्वरूपिणी । अनिर्वाच्यसुखाम्भोधिरनिर्वाच्याङ्घ्रिमार्दवा ॥७॥
अनिर्विण्णाऽनुकूलैका अनुकम्पैकविग्रहा । अनुत्तमाऽनुत्तमात्मा अनुरागभराञ्चिता ॥८॥

२७ **अद्वितीयदयामूर्त्ति**–जो ब्रह्मकी दयास्वरूपा हैं अथवा जिनके समान कोई दयालु नहीं है ।
२८ **अद्वितीयानहङ्कृतिः**–जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी परम अमानिताकी मूर्त्ति हैं ।
२९ **अदीनबुद्धि**–किसी भी विषयके निर्णय में जिनकी बुद्धि शिथिल नहीं होती ।
३० **अद्वैता**–जिनमें किसीके भी प्रति भेद भाव नहीं है ।
३१ **अधृता**–भगवान् श्रीरामजी श्रीवत्सरूपसे जिन्हें सदैव अपने बक्षः स्थल पर धारणरखते है ।
३२ **अधोक्षजा**–जो अपने स्वभावसे कभी भी क्षीण नहीं होती अथवा जो इन्द्रियोंको अपने वशमें रखने वाले भक्तोंके ही हृदय में प्रत्यक्ष होती हैं ।
३३ **अनघा**–जो समस्त दुःखों तथा पापों से रहित हैं ॥५॥
३४ **अनन्तविग्रहा**–जो ब्रह्मकी साकार मूर्त्ति हैं अथवा जो समस्त चर-अचर प्राणिस्वरूपा हैं ।
३५ **अनन्ता**–जिनके रूप व गुणोंका कोई अन्त (पार) नहीं है ।
३६ **अनन्तैश्वर्यसंयुक्ता**–जो अपार ऐश्वर्य वाली हैं ।
३७ **अनन्यभावसन्तुष्टा**–जो अनन्य भावसे ही पूर्ण प्रसन्न होती हैं ।
३८ **अनर्थौघनिवारिणी**–जो आश्रितोंकी प्रारब्ध जनित आपत्तियों को दूर कर देती हैं ॥६॥
३९ **अनवद्या**–जो समस्त दोषों से अछूती हैं ।
४० **अनामरूपा**–वस्तुतः जिनका कोई एक नाम या रूप नहीं है ।
४१ **अनिर्देश्यस्वरूपिणी**–जिनका स्वरूप कैसा है यथार्थ वर्णित नहीं हो सकता ।
४२ **अनिर्वाच्यसुखाम्भोधिः**–जिसको वर्णन करना वाणी शक्तिसे परे (बाहर) है, उस ब्रह्मके सुखकी जो समुद्र-स्वरूपा हैं ।
४३ **अनिर्वाच्याङ्घ्रिमार्दवा**–जिनके श्रीचरणकमलोंकी कोमलता वर्णन शक्तिसे बाहर है ॥७॥
४४ **अनिर्विण्णा**–जो पूर्ण काम होनेके कारण सदा प्रसन्न रहती हैं ।
४५ **अनुकूलैका**–जो सभी प्राणियोंके प्रति अनुपम अनुकूल रहती हैं ।
४६ **अनुकम्पैक विग्रहा**–जिनका स्वरूप अनुपम दयासे परिपूर्ण है ।
४७ **अनुत्तमा**–जिनसे बढ़कर कोई भी शक्ति नहीं है ।
४८ **अनुत्तमात्मा**–जिनसे बढ़कर किसीकी बुद्धि नहीं है ।
४९ **अनुरागभराञ्चिता**–जो अनुरागके भार (अतिशयता) से सदैव सुशोभित हैं ॥८॥

अपारमहिमाऽपारभववारिधितारिणी । अपूर्वचरिताऽपूर्वसिद्धान्ताऽपूर्वसौभगा ॥९॥
अप्रकृष्टाऽप्रतिद्वन्द्वविक्रमाऽप्रतिमद्युतिः । अप्रतिमाऽप्रमत्तात्मा अप्रमेयसुखाकृतिः ॥१०॥
अप्राकृतगुणैश्वर्यविश्वमोहनविग्रहा । अभिवाद्याऽमलाऽमाना अमिताऽमृतरूपिणी ॥११॥

५० **अपारमहिमा**—दुष्टप्राणियोंके प्रति दया-भावकी विशेषता की दृष्टिसे जिनकी महिमा भगवान् श्रीरामजीसे भी बढ़कर है ।

५१ **अपारभववारिधितारिणी**—जो अपने आश्रितोंको अपार संसार-सागरसे पार उतार देती हैं अर्थात् दिव्य धाम-वासी बना लेती हैं ।

५२ **अपूर्वचरिता**—जिनके सभी चरित अनोखे हैं ।

५३ **अपूर्वसिद्धान्ता**—जिनका सिद्धान्त (हार्दिकनिश्चय) ऐसा है जैसा कि आज तक कभी किसी का हुआ ही नहीं, यथा "पापानां वा शुभानां वा बधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति" । अर्थ :- चाहे पापी वा बध (प्राणदण्ड) के योग्य ही अपराधी क्यों न हो, पर श्रेष्ठ पुरुष को उसपर भी कृपा ही करनी चाहिये अर्थात् उसका हित ही सोचना चाहिये अहितकर दण्ड नहीं, क्योंकि त्रिलोकीमें कोई ऐसा न है, और न होगा, जो अपराधोंसे सदा अछूता ही रहे ।

५४ **अपूर्वसौभगा**—जिनके समान आज तक किसीका सौभाग्य हुआ ही नहीं ॥९॥

५५ **अप्रकृष्टा**—जो अपने निरुपम दयापूर्ण सिद्धान्तमें भगवान् श्रीरामजीसे भी बढ़कर हैं ।

५६ **अप्रतिद्वन्द्वविक्रमा**—जिनके पराक्रममें कोई बाधक नहीं बन सकता तथा जो पराक्रममें भगवान् श्रीरामजीके ही समान हैं ।

५७ **अप्रतिमद्युतिः**—जिनके समान और अधिक किसीका तेज है ही नहीं, अर्थात् जो ब्रह्मके तेजवाली हैं ।

५८ **अप्रतिमा**—जो ब्रह्मस्वरूपा हैं अथवा जिनकी समता करने वाला कोई है ही नहीं ।

५९ **अप्रमेयसुखाकृतिः**—जिसे वाणी वर्णन, मन मनन और बुद्धि निश्चय नहीं कर सकती, उस ब्रह्मकी जो सुख स्वरूपा हैं ॥१०॥

६० **अप्राकृतगुणैश्वर्यविश्वमोहनविग्रहा**—जिनका श्रीविग्रह दिव्य गुण और दिव्य ऐश्वर्यके द्वारा समस्त विश्वको मुग्ध करलेने वाला है ।

६१ **अभिवद्या**—जो सभी प्रकारसे सभीके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं ।

६२ **अमला**—जो अविद्या (माया) रूपी मलसे रहित शुद्ध ब्रह्म स्वरूपा हैं ।

६३ **अमाना**—जो ब्रह्मके समान महिमा वाली, अथवा जो गुण रूप, ऐश्वर्य, शक्ति आदि सभी प्रकार के अभिमान से अछूती हैं ।

६४ **अमिता**—जो सब प्रकारसे असीम हैं ।

६५ **अमृतरूपिणी**—जिनका स्वरूप कभी भी नष्ट नहीं होता तथा जो अमृत स्वरूपा हैं ॥११॥

अमृताऽमृतदृष्टिश्च अमृताशाऽमृतोद्भवा । अयोनिसम्भवाऽरौद्रा अलोलाऽवनिपुत्रिका ॥१२॥
अवराऽवर्ण्यमाधुर्य्या अवर्ण्यकरुणावधिः । अविचिन्त्याऽविशिष्टात्मा अव्यक्ताऽव्ययशेमुषी ॥१३॥
अव्याजकरुणामूर्त्तिरशोकाऽसङ्ख्यकाऽसमा । असम्मिताऽऽप्तसङ्कल्पा आत्मज्ञानविभाकरी ॥१४॥

६६ **अमृता**—जिनकी कभी मृत्यु नही होती ।

६७ **अमृतदृष्टि**-जिनकी चितवन अमृतके समान समस्त दुःखोंको हरण करके आश्रितोंको अमर बना देने वाली हैं अथवा जो सभी रूपोंमें एक भगवान् श्रीरामजीकाही दर्शन करती हैं ।

६८ **अमृताशा**—जिनके प्रति की हुई सभी प्रकारकी आशाएँ जीवको अमर बना देती हैं ।

६९ **अमृतोद्भवा**—जो अमृतकी कारण हैं ।

७० **अयोनिसम्भवा**—जो बिना कारण केवल अपनी भक्तभावपूरिणी इच्छामात्रसे प्रकट होती है।

७१ **अरौद्रा**—जिनका स्वरूप भयानक न होकर समुद्रके समान अपरिमित माधुर्य सम्पन्न है ।

७२ **अलोला**—जो कभी अपने सिद्धान्तसे चलायमान नहीं होतीं ।

७३ **अवनिपुत्रिका**—जो पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं ॥१२॥

७४ **अवरा**-जिनके दूलहसरकार पूर्णब्रह्म भगवान्श्रीरामजी हैं अथवा जिनसे बढ़कर कोईहैनहीं।

७५ **अवर्ण्यमाधुर्य्या**—जिनकी हृदयमोहिनी सुन्दरता, पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीरामजीके द्वारा भी प्रशंसा करने योग्य है अथवा जिनके स्वरूप माधुर्यका कोई वर्णन नहीं कर सकता ।

७६ **अवर्ण्यकरुणावधि**—जिनकी दयाकी सीमा वर्णन शक्तिसे परे हैं ।

७७ **अविचिन्त्या**—भगवान् श्रीरामजीके द्वारा अथवा उनकी कृपासे ही जिनका विशेष चिन्तन सुलभ है ।

७८ **अविशिष्टात्मा**—जिनकी बुद्धि भगवान् श्रीरामजीसे बढ़कर है अथवा जिनकी बुद्धि एक प्रभु श्रीराघवेन्द्र सरकारकी ही प्रधानता स्वीकार करती है ।

७९ **अव्यक्ता**—जो नास्तिक तथा अभक्तोंके लिये सदा परोक्ष (अप्रकट) रहती हैं ।

८० **अव्ययशेमुषी**—जिनकी बुद्धि कभी क्षीणताको नहीं प्राप्त होती ॥१३॥

८१ **अव्याजकरुणामूर्त्ति**—जो स्वार्थ रहित कृपाकी स्वरूपा हैं ।

८२ **अशोका**—जो अविद्या-जनित समस्त शोकोंसे रहित आनन्द-धन-स्वरूपा हैं ।

८३ **असङ्ख्यका**—जिनके दया, सौशील्यादि दिव्य गुणोंकी कोई संख्या नहीं कर सकता ।

८४ **असमा**—जो ब्रह्मके समान सम्पूर्ण महिमा वाली हैं जिनकी समता कोई नहीं कर सकता ।

८५ **असम्मिता**—जिनके पास सेवकोंको देनेके लिये सेवाके फल गिनतीके नहींहैं अर्थात्अनन्त हैं ।

८६ **आप्तसङ्कल्पा**—जिनका कोई भी सङ्कल्प अपूर्ण नही रहता ।

८७ **आत्मज्ञान विभाकारी**—जो परमात्मा भगवान् श्रीरामजीके स्वरूपकी पहिचान कराने वाले दिव्य ज्ञानको हृदयमें प्रकाशित करने वाली हैं ॥१४॥

आत्मोद्भवाऽऽत्ममर्मज्ञा आत्मलाभप्रदायिनी । आत्मवत्यादिकर्त्र्यादिराधारपरमालया ॥१५॥
आध्येयाङ्घ्रिसरोजाङ्का आनन्दामृतवर्षिणी । आम्नायवेद्यचरणा आश्रितत्राणतत्परा ॥१६॥
आसक्त्यपहृतासक्तिरास्यस्पर्द्धिविधुव्रजा । आह्लादसुषमासिन्धुरिनवंश्यपरप्रिया ॥१७॥
इन्दुपूर्णोल्लसद्वक्त्रा इभराजसुतागतिः । इयत्त्वरहितेर्वाल्वी प्रपन्नसकलापदाम् ॥१८॥

८८ **आत्मोद्भवा**—जो ब्रह्मसे उत्पन्न होने वाली उनकी इच्छाशक्ति हैं ।

८९ **आत्ममर्मज्ञा**—जो भगवान् श्रीरामजीके सभी प्रकारके रहस्योंको भली-भाँति जानती हैं।

९० **आत्मलाभ-प्रदायिनी**—जो अपने आश्रितोंको भगवत्-प्राप्तिका लाभ प्रदान करनेवाली हैं।

९१ **आत्मवती**—जो अपने मनको अपने इच्छानुसार चलानेमें पूर्ण समर्थ हैं तथा जो सर्वश्रेष्ठ बुद्धि-स्वरूपा हैं ।

९२ **आदिकर्त्री**—जो महत्तत्व और तन्मात्रादिकोंकी उत्पत्ति करने वाली हैं ।

९३ **आदिः**—जो आदि कालकी तथा सभीकी आदि कारण स्वरूपा हैं ।

९४ **आधारपरमालया**—जो विश्वके समस्त आधारोंके रहनेकी सबसे बड़ी गृह स्वरूपा हैं, अर्थात् जिनमें सभी प्रकारके सम्पूर्ण आधारोंका निवास रहता है ॥१५॥

९५ **आध्येयाङ्घ्रिसरोजाङ्का**-जिनके श्रीचरणकमलोंके चिह्न सभी सकाम, निष्काम प्राणियों के द्वारा ध्यान करने योग्य हैं ।

९६ **आनन्दामृतवर्षिणी**—जो भक्तोंके लिये आनन्द रूपी अमृतकी वर्षा करने वाली हैं ।

९७ **आम्नायवेद्यचरणा**—वेदोंके द्वारा जिनकी महिमा जानने योग्य है ।

९८ **आश्रितत्राणतत्परा**—जो आश्रितोंकी रक्षामें सदा लगी रहती हैं ॥१६॥

९९ **आसक्त्यपहृतासक्तिः**—जिनमें प्राप्त हुई आसक्ति, लौकिक, सभी प्रकारकी आसक्तियोंको हरण कर लेती है ।

१०० **आस्यस्पर्द्धिविधुव्रजा**—जो अपने श्रीमुखारविन्दकी कान्ति तथा आह्लादक गुणसे चन्द्र समूहोंको लज्जित करती हैं ।

१०१ **आह्लादसुषमासिन्धुः**—जिनमें आह्लाद तथा निरतिशय सौन्दर्य, समुद्रके समान अथाह है।

१०२ **इनवंश्यपरप्रिया**—जो सूर्य वंशमें सर्वोत्कृष्ट श्रीचक्रवर्तीकुमार, श्रीरघुनन्दन-प्यारेकी प्राणवल्लभा हैं ॥१७॥

१०३ **इन्दुपूर्णोल्लसद्वक्त्रा**—जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश युक्त तथा आह्लाद-प्रदायक है ।

१०४ **इभराजसुतागतिः**—ऐरावत हाथीकी बालिकाके समान जिनकी अत्यन्त मनोहर चाल है।

१०५ **इयत्त्वरहिता**—जो सभी प्रकारसे असीम हैं ।

१०६ **ईर्वाल्वी प्रपन्नसकलापदाम्**—जो शरणागत चेतनोंकी (सभी प्रकारकी) आपत्तियोंका नाश करती हैं ॥१८॥

**इष्टा समस्तदेवानामीप्सितार्थप्रदायिनी । ईश्वरी सर्वलोकानामुच्छिन्नाश्रितसंशया ॥१९॥
उज्ज्वलैकसमाराध्या उत्फुल्लेन्दीवरेक्षणा । उत्तरोत्तानहस्ताब्जा उत्तमोत्सङ्गभूषणा ॥२०॥
उदारकीर्त्तनोदारचरितोदारवन्दना । उदारजपपाठेज्या उदारध्यानसंस्तवा ॥२१॥
उदारवल्लभोदारवीक्षणस्मितभाषिता । उदारश्रीनामरूपलीलाधामगुणव्रजा ॥२२॥**

१०७ **इष्टा समस्तदेवानां**—जो ब्रह्मादि सभी देवताओंकी इष्ट देवता हैं ।

१०८ **ईप्सितार्थप्रदायिनी**—जो आश्रितोंके सभी मनोरथोंको पूर्ण करने वाली हैं ।

१०९ **ईश्वरी सर्वलोकानां**—जो चर-अचर समस्त प्राणियोंके सहित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि विश्वके सभी शासकों पर शासन करने वाली हैं ।

११० **उच्छिन्नाश्रितसंशया**—जो आश्रितोंकी सम्पूर्णशङ्काओंको जड़से नष्ट कर देती हैं ॥१९॥

१११ **उज्ज्वलैकसमाराध्या**—जिन्हें केवल एक अनुरागसे ही प्रसन्न किया जा सकता है ।

११२ **उत्फुल्लन्दीवरेक्षणा**—पूर्णखिले नीले कमलके समान मनोहर जिनके विशाल नेत्र हैं ।

११३ **उत्तरा**—जो सभी शक्तियोंमें उत्तम हैं तथा अपने कर्त्तव्य-सागरको जो भली-भाँति पार कर चुकी हैं ।

११४ **उत्तानहस्ताब्जा**—जिनका हस्तकमल उदारता तथा आश्रित वत्सलताके कारण सदा ऊँचा उठा रहता है ।

११५ **उत्तमा**—जो सबसे उत्तम हैं ।

११६ **उत्सङ्गभूषणा**—जो श्रीसुनयना अम्बाजीकी गोदको भूषणके समान सुशोभित करने वाली हैं ॥२०॥

११७ **उदारकीर्त्तना**—जिनका कीर्त्तन, (सभी सिद्धियोंको देने वाला) है ।

११८ **उदारचरिता**—जिनके चरित हृदयको आदर्श प्रदान करनेमें सर्वोत्तम हैं ।

११९ **उदारवन्दना**—जिनका प्रणाम दिव्य धामको प्रदान करने वाला है ।

१२० **उदारजपपाठेज्या**—जिनका जप, पाठ, यज्ञ सब सर्वाभीष्ट प्रदायक है ।

१२१ **उदारध्यानसंस्तवा**—जिनका ध्यान तथा स्तोत्र चारो पदार्थोंको प्रदान करने वाला है ॥२१॥

१२२ **उदारवल्लभा**—जिनके प्राणप्यारे अनुपम उदार हैं ।

१२३ **उदारवीक्षणस्मितभाषिता**—जिनकी चितवन, मन्द मुस्कान तथा कोकिल वाणी मनो-मुग्धकारी, जीवनकी सफलता प्रदान करने वाली हैं ।

१२४ **उदारश्रीनामरूपलीलाधामगुणव्रजा**—जिनकी कान्ति नाम, रूप, लीला, धाम एवं अन्य गुण समूह, सबके सब उदार अर्थात् परमप्रिय, अनन्त फल-दायक तथा परम हितकारी हैं ॥२२॥

उदारालिगणोदारोपासका ऋतरूपिणी । ऋभुवन्द्याङ्घ्रिरॄकारा लृपुत्री लॄस्वरूपिणी ॥२३॥
एकैकशरणंपुंसामैक्यभावप्रसादिता । ओक:प्रधानिकौजोऽब्धिरौदार्यौत्कर्ष्यविश्रुता ॥२४॥

१२५ **उदारालिगणा**—जिनकी सखियाँ भी अत्यन्त उदार अर्थात् अपने सेव्य युगल प्रभुसे मिला देने वाली हैं।

१२६ **उदारोपासका**—जिनके उपासक आश्रितोंको अपने उपास्यके पास पहुँचा देनेकी भावना रखते हैं।

१२७ **ऋतरूपिणी**—जो ज्ञानस्वरूपा हैं।

१२८ **ऋभुवन्द्याङ्घ्रिः**—जिनके श्रीचरणकमल ब्रह्मादि देवताओंसे भी प्रणाम करने योग्य हैं।

१२९ **ॠकारा**—जो दया तथा स्मृति-स्वरूपा हैं।

१३० **लृपुत्री**—जो सरस्वतीजीकी कारण स्वरूपा अथवा जिनका प्राकट्य पृथ्वीसे हुआ है।

१३१ **लॄस्वरूपिणी**—जो देवमाता अदितिस्वरूपा हैं ॥२३॥

१३२ **एका**—जो अपने समान आप ही हैं।

१३३ **एकशरणंपुंसां**—जिनसे बढ़कर न कोई प्राणियोंका हित करने वाला है न रक्षा करनेमें समर्थ हैं, तथा जो समस्त प्राणियोंकी पूर्ण शान्ति-प्रदायक मुख्य निवासस्थ स्वरूपा हैं।

१३४ **ऐक्यभावप्रसादिता**—जो समस्त प्राणियोंमें भगवद्-भाव करनेसे प्रसन्न होती हैं अथवा जिनकी प्रसन्नता केवल अनन्य भावसे होती है।

१३५ **ओक:प्रधानिका**—जो समस्त प्राणियोंकी प्रमुख निवासस्थान स्वरूपा हैं अत एव जिस प्रकार प्राणी जब तक अपने मुख्य घरमें नहीं पहुँचता, तब तक वह पूर्ण निश्चिन्त नहीं हो पाता, उसी प्रकार जिनको बिना प्राप्त हुये जीव कभी भी पूर्ण शान्ति को नहीं प्राप्त कर सकता।

१३६ **ओजोऽब्धिः**—जिनकी सामर्थ्य, सभी शक्तियोंके सामने समुद्रके समान अथाह है।

१३७ **औदार्यौत्कर्ष्यविश्रुता**—जो अपनी सर्वोत्तम उदारतासे विश्वमें विख्यात हैं, इसमें इन्द्रके पुत्र जयन्तकी कथा ज्वलन्त प्रमाण है। जहाँ भगवान् श्रीरामजी उसे कर्मका उचित फल देने के लिये बाणका प्रयोग कर चुके और पिता इन्द्र तथा ब्रह्मादि देव वृन्दने भी जिसका बहिष्कार कर दिया, वहाँ प्यारेके सामने पैर करके पड़े हुये तुरन्त वध करदेने योग्य अपने अक्षम्य अपराधी उसी जयन्तके चरणोंको, अपने करकमलोंके द्वारा सामनेसे हटा कर उसका सिर चरणोंमें रख कर, विनय पूर्वक प्रार्थना करती हैं, हेप्यारे! इसकी रक्षा करो रक्षा करो। भला इससे बढ़कर और दयालुताकी पराकाष्ठा क्या हो सकतीहै? (पद्मपुराण)! ॥२४॥

कमला कमलाराध्या करणं कलभाषिणी । कलाधारा कलाभिज्ञा कलामूर्त्तिः कलावधिः ॥२५॥
कल्पवृक्षाश्रया कल्प्या कल्मषौघनिवारिणी । कल्याणदात्री कल्याणप्रकृतिः कामचारिणी ॥२६॥
कामदा काम्यसंसक्तिः कारणाद्वयकारणम् । कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कालचक्रप्रवर्तिका ॥२७॥

१३८ **कमला**—जो श्रीलक्ष्मी स्वरूपा हैं अर्थात् जो समस्त सुख और ऐश्वर्यसे परिपूर्ण हैं ।

१३९ **कमलाराध्या**—जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्रादिके आराधना करने योग्य हैं, अथवा श्रीकमलाजी जिन्हें प्रसन्न करनेमें समर्थ हैं क्योंकि वे सखी व नदी आदि अनेक रूपोंसे सेवामें विराजमान हैं ।

१४० **करणं**—जो जगत् की कारण स्वरूपा हैं ।

१४१ **कलभाषिणी**—जिनकी वाणी स्पष्ट, मधुर, और श्रवणसुखद हैं ।

१४२ **कलाधारा**—जो समस्त कला (विद्या) ओंकी आधार-स्वरूपा हैं अर्थात् जिनसे सभी विद्याओं का प्राकटच है ।

१४३ **कलाभिज्ञा**—जो समस्त कलाओंको भली भाँति जानती हैं ।

१४४ **कलामूर्तिः**—जो सम्पूर्ण कलाओंकी स्वरूप ही हैं ।

१४५ **कलावधिः**—जो सभी विद्याओंकी सीमा हैं ॥२५॥

१४६ **कल्पवृक्षाश्रया**—जो कल्प वृक्षकी कारण स्वरूपा हैं, अर्थात् जो कल्पवृक्षमें सभी सङ्कल्पों को पूर्ण करनेकी शक्ति प्रदान करती हैं ।

१४७ **कल्प्या**—जो सम्भवको असम्भव और असम्भवको सम्भव करनेमें पूर्ण समर्थ हैं ।

१४८ **कल्मषौघनिवारिणी**—जो पाप समूहोंको पूर्ण रूपसे भगा देने वाली हैं ।

१४९ **कल्याणदात्री**—जो प्राणीमात्रको मङ्गल प्रदान करनेवाली हैं !

१५० **कल्याणप्रकृतिः**—जो प्राणियोंके दोषों (अपराधोंका) विचार छोड़कर उनके केवल हित चिन्तक स्वभाव वाली हैं ।

१५१ **कामचारिणी**—जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशोंको सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार कर्त्तव्योंमें नियुक्त करने वाली हैं ॥२६॥

१५२ **कामदा**—जो आश्रितोंके सभी अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करने वाली हैं ।

१५३ **काम्यसंसक्तिः**—जिनके प्रति पूर्ण आसक्ति चाहना, प्राणीमात्रका कर्त्तव्य है ।

१५४ **कारणाद्वयकारणम्**—जो समस्त कारणोंकी सर्वोत्कृष्ट कारण स्वरूपा हैं ।

१५५ **कारुण्यार्द्रविशालाक्षी**—जिनके कमलके समान मनोहर विशाल नेत्र करुणासे भरे हैं ।

१५६ **कालचक्रप्रवर्तिका**—जो सत्य, त्रेता द्वापर, कलि, इन चारो युगोंको चक्रमें जड़के समान क्रमशः चलाती रहती हैं ॥२७॥

**कीनाशभयमूलघ्नी कुञ्जकेलिसुखप्रदा । कुञ्जराधीशगतिका कृतज्ञार्च्या कृतागमा ।।२८।।
कृपापीयूषजलधिः कोमलार्च्यपदाम्बुजा । कौशल्याप्रतिमाम्भोधिः कौशल्यासुतवल्लभा ।।२९।।
खरारिहृदयातुल्यपरमोत्सवरूपिणी । खलेतरशेमुषी दात्री खवासीशादिवन्दिता ।।३०।।
खेलमात्रजगत्सृष्टिर्गणनाथार्च्चिता गतिः । गतैश्वर्यस्मयश्रेष्ठा गभीरा गम्यभावना ।।३१।।**

१५७ **कीनाशभयमूलघ्नी**–जो यमराजके द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त भोग भयोंके कारण स्वरूप पापोंका नाश कर देती हैं ।

१५८ **कुञ्जकेलिसुखप्रदा**–जो अपने अनन्य-भक्तोंको दिव्यधाम कुञ्जोंकी रहस्यमयी क्रीडाओं का सुख प्रदान करती हैं ।

१५९ **कुञ्जराधीशगतिका**–जो ऐरावत हाथीके समान मस्त चाल वाली हैं ।

१६० **कृतज्ञार्च्या**–जो समस्त प्राणियोंके किये हुये शुभाशुभ कर्मोंके जानने वाले इन्द्रिय देवताओं द्वारा भी पूजने योग्य हैं, अथवा जो अपने निमित्त की हुई सेवाका उपकार मानने वालोंमें सर्वोत्कृष्टा हैं ।

१६१ **कृतागमा**–जो सभी वेद और शास्त्रोंकी रचना करने वाली हैं ।।२८।।

१६२ **कृपापीयूषजलधिः**–जिनकी कृपा, अमृतके समान असम्भवको सम्भव करने वाली समुद्र के सदृश अथाह है ।

१६३ **कोमलार्च्यपदाम्बुजा**–जिनके दोनों श्रीचरण, कमलके समान कोमल, सुगन्धमय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र द्वारा पूजने योग्य हैं ।

१६४ **कौशल्याप्रतिमाम्भोधिः**–जो चतुराईकी उपमा रहित सागर स्वरूपा हैं ।

१६५ **कौशल्यासुतवल्लभा**–जो कौशल्यानन्दन श्रीरामभद्रजूकी प्राण प्यारी हैं ।।२९।।

१६६ **खरारिहृदयातुल्यपरमोत्सवरूपिणी**–जो भगवान् श्रीरामजीके हृदयको अनुपम महान उत्सवके समान सुख देनेवाली हैं ।

१६७ **खलेतरशेमुषी**–जो अपने आश्रितोंको वास्तविक हित करने वाली सन्तजनोंकी बुद्धि प्रदान करती हैं ।

१६८ **खवासीशादिवन्दिता**–जिन्हें देवराज इन्द्र आदिक प्रणाम करते हैं ।।३०।।

१६९ **खेलमात्रजगत्सृष्टिः**–अनन्त ब्रह्माण्डोंके समस्त चर-अचर मय प्राणियोंकी सृष्टि करना जिनका एक खेल मात्र है ।

१७० **गणनाथार्च्चिता**–जिनकी पूजा श्रीगणेशजी करते हैं ।

१७१ **गतिः**–जो सभी प्राणियोंकी प्राप्य स्थान स्वरूपा, सभीकी रक्षा करनेवाली, और सभीके कल्याणका उपाय सोचने वाली हैं ।

१७२ **गतैश्वर्यस्मयश्रेष्ठा**–अपनी प्रभुताके अभिमानशून्योंमें जो सबसे बढ़कर हैं ।

१७३ **गभीरा**–जिनका स्वभाव और हृदय अत्यन्त गम्भीर हैं ।

१७४ **गम्यभावना**–जिनके श्रीचरणकमलोंकी भक्ति प्राप्त करना मनुष्य मात्रके जीवनका चरम लक्ष्य है ।।३१।।

गहनाग्रचा गीर्गीर्वाणहितसाधनतत्परा । गुप्ता गुहेशया गुह्या गेयोदारयशस्ततिः ॥३२॥
गोपनीयपदासक्तिर्गोप्त्री गोविदनुत्तमा । ग्रहणीयशुभादर्शा ग्लौपुञ्जाभनखच्छबिः ॥३३॥
घनश्यामात्मनिलया घर्मद्युतिकुलस्नुषा । घृणालुका ङस्वरूपा चतुरात्मा चतुर्गतिः ॥३४॥

१७५ **गहनाग्रचा**—अत्यन्त विलक्षण स्वरूप, सामर्थ्य और लीलाओंके कारण जिन्हें पहिचानना सबसे अधिक असम्भव है ।

१७६ **गीः** — जो श्रीसरस्वती स्वरूपा हैं ।

१७७ **गीर्वाणहितसाधनतत्परा** — जो देवताओंका हित साधन करनेमें सदैव तत्पर रहती हैं ।

१७८ **गुप्ता**—जो स्वयं अपनी शक्तिसे सुरक्षित हैं अथवा जो भक्तोंके हृदयमें छिपी रहती हैं ।

१७९ **गुहेशया**—जो समस्त प्राणियोंकी हृदय रूपी गुफामें सदैव परमात्मरूपसे निवास करती हैं ।

१८० **गुह्या** — उपासक भक्तोंको जिन्हें अपने हृदय-मन्दिरमें सदा छिपाकर रखना चाहिये ।

१८१ **गेयोदारयशस्ततिः** — जिनका उदार यश समूह सदा ही गान करने योग्य है ॥३२॥

१८२ **गोपनीयपदासक्तिः**—उपासकोंको, जिनके श्रीचरण-कमलोंमें प्राप्त आसक्तिको, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष, मान-प्रतिष्ठा आदि लुटेरोंसे छिपाकर, सदा सुरक्षित रखना उचित है ।

१८३ **गोप्त्री** — जो भक्तोंको सभी प्रकारकी आपत्तियोंसे सुरक्षित रखती हैं ।

१८४ **गोविदनुत्तमा**—जो अन्तर्यामिनी होनेके कारण समस्त इन्द्रियोंकी सभी क्रियाओंका ज्ञान, सबसे अधिक रखती हैं ।

१८५ **ग्रहणीयशुभादर्शा** —जिनका हितकर मङ्गलमय आदर्श, सभी मनुष्योंको, अपने जीवनकी सफलताके लिये, ग्रहण करने योग्य है ।

१८६ **ग्लौपुञ्जाभनखच्छबिः**—चन्द्र समूहोंके समान प्रकाशमय जिनके श्रीचरण-कमलोंकी नख सुन्दरता है ॥३३॥

१८७ **घनश्यामात्मनिलया** — जो सजल मेघोंके समान श्याम वर्ण श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके हृदय में विराजतीं हैं ।

१८८ **घर्मद्युतिकुलस्नुषा** — जो सूर्य बंशकी पतोहू हैं ।

१८९ **घृणालुका** — जो दयाकी मूर्त्ति हैं ।

१९० **ङस्वरूपा** — जो ङ कार स्वरूपा हैं ।

१९१ **चतुरात्मा** — जो श्रीसीताजी श्रीउर्मिलाजी श्रीमाण्डवीजी श्रीश्रुतिकीर्त्तिजी, अथवा मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार इन चार स्वरूपों वाली हैं ।

१९२ **चतुर्गतिः**—जो सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य रूपी चार परम गतिस्वरूपा है ॥३४॥

चतुर्भावा चतुर्व्यूहा चतुर्वर्गप्रदायिनी । चतुर्वेदविदां श्रेष्ठा चपलासत्कृतद्युतिः ॥३५॥
चन्द्रकलासमाराध्या चन्द्रबिम्बोपमानना । चारुशीलादिभिः सेव्या चारुसंपावनस्मिता ॥३६॥
चारुरूपगुणोपेता चारुस्मरणमङ्गला । चार्वङ्गी चिदलङ्कारा चिदानन्दस्वरूपिणी ॥३७॥
छबिक्षुब्धरतिः छिन्नप्रणताशेषसंशया । जगत्क्षेमविधानज्ञा जगत्सेतुनिबन्धिनी ॥३८॥

१९३ **चतुर्भावा** — धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारो पुरुषार्थोंकी जो कारण स्वरूपा हैं ।

१९४ **चतुर्व्यूहा** — श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, इन तीनों भाइयों सहित चार शरीर वाले भगवान श्रीरामजीकी जो प्राण वल्लभा हैं ।

१९५ **चतुर्वर्गप्रदायिनी**—जो अपने आश्रितोंको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं।

१९६ **चतुर्वेदविदां श्रेष्ठा** — जो चारो वेदोंका मर्म समझने वालियोंमें सबसे बढ़कर हैं।

१९७ **चपलासत्कृतद्युतिः**—जिनके श्रीअङ्गकी कान्तिका सत्कार विजली भी करती है॥३५॥

१९८ **चन्द्रकलासमाराध्या** — जिन्हे चन्द्रकलाजी ही पूर्ण रूपसे प्रसन्न कर सकती हैं अथवा श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा जिनकी पूर्ण प्रसन्नता प्राप्ति सम्भव है ।

१९९ **चन्द्रबिम्बोपमानना** – जिनके प्रकाशमान, परमाह्लादकारी श्रीमुखारविन्दके उपमा योग्य, एक चन्द्रबिम्ब ही है ।

२०० **चारुशीलादिभिः सेव्या** — श्रीचारुशीलाजी आदि अष्ट सखियाँ ही जिनकी पूर्ण सेवाकर सकती हैं अथवा श्रीचारुशीलादि सखियोंकी कृपासे ही जिनकी सेवा प्राप्ति सम्भव है।

२०१ **चारुसंपावनस्मिता** — जिनकी मुस्कान सुन्दर और सब प्रकारसे पवित्रता प्रदान करने वाली है ॥३६॥

२०२ **चारुरूपगुणोपेता**–जो विश्वविमोहनस्वरूपा और दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, औदार्य आदि समस्त दिव्य मङ्गल गुणोंसे युक्त हैं ।

२०३ **चारुस्मरणमङ्गला** – जिनका चिन्तन सुन्दर और मङ्गल कारी है ।

२०४ **चार्वङ्गी** – जिनके सभी अङ्ग परममनोहर हैं ।

२०५ **चिदलङ्कारा** — जिनके सभी भूषण चैतन्य मय हैं ।

२०६ **चिदानन्दस्वरूपिणी** — जो चैतन्य एवम् आनन्द-धन(ब्रह्म)की साकार स्वरूप हैं ॥३७॥

२०७ **छबिक्षुब्धरतिः** — जिनकी सहज-सुन्दरतासे रति क्षोभको प्राप्त है ।

२०८ **छिन्नप्रणताशेषसंशया** — जो अपने भक्तोंकी समस्त शङ्काओंको दूर करने वाली हैं ।

२०९ **जगत्क्षेमविधानज्ञा**—जो चर-अचर समस्त प्राणियोंके कल्याणका पूर्ण उपाय जानती हैं।

२१० **जगत्सेतुनिबन्धिनी** – जो जगत्की मर्यादा बाँधने वाली हैं अर्थात् जो प्राणियोंकी हित-सिद्धि के लिये, उन्हें यथोचित नियमोंमें आबद्ध करने वाली हैं ॥३८॥

जगदादिर्जगदात्मप्रेयसी जगदात्मिका । जगदालयवृन्देशी जगदालयसङ्घसूः ॥३९॥
जगदुद्भवादिकर्त्री जगदेकपरायणम् । जगन्नेत्री जगन्माता जगन्माङ्गल्यमङ्गला ॥४०॥
जगन्मोहनमाधुर्यमनोमोहनविग्रहा । जतुशोभिपदाम्भोजा जनकानन्दवर्द्धिनी ॥४१॥
जनकल्याणसक्तात्मा जननी सर्वदेहिनाम् । जननीहृदयानन्दा जनबाधानिवारिणी ॥४२॥

२११ **जगदादिः** – जो जगत्‌की कारण स्वरूपा हैं ।

२१२ **जगदात्मप्रेयसी** – जो चर-अचर समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप भगवान् श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा हैं ।

२१३ **जगदात्मिका** – जो समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके रूपमें सर्वत्र प्रकट हैं ।

२१४ **जगदालयवृन्देशी** – जो अनन्त ब्रह्माण्डों पर शासन करती हैं ।

२१५ **जगदालयसङ्घसूः** – जो अपने सङ्कल्प मात्रसे चर-अचर चेतन मय अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करने वाली हैं ॥३९॥

२१६ **जगदुद्भवादिकर्त्री** – जो जगत्‌की उत्पत्ति, पालन, संहार करने वाली हैं ।

२१७ **जगदेकपरायणम्** – जो सभी चर-अचर प्राणियोंकी अनुपम निवासस्थान रूपा हैं ।

२१८ **जगन्नेत्री** – जो समस्त चर-अचर प्राणियोंको उन्हींके कर्मानुसार चलाती हैं ।

२१९ **जगन्माता** – जो सभी चर-अचर प्राणियोंकी वास्तविक (असली) माता है ।

२२० **जगन्माङ्गल्यमङ्गला** – जो जगत्‌के सभी मङ्गलवाचक शब्द, नाम, रूपादि पदार्थों का मङ्गल करने वाली हैं ॥४०॥

२२१ **जगन्मोहनमाधुर्यमनोमोहनविग्रहा** – जो अपने माधुर्यसे समस्त चर-अचर प्राणियोंको मुग्ध कर लेते हैं, उन विश्वमोहन, कन्दर्पदर्प दलन पटीयान् भगवान् श्रीरामजीके मन को भीमुग्ध कर लेने वाला जिनका श्रीविग्रह अर्थात् दिव्य स्वरूप है ।

२२२ **जतुशोभिपदाम्भोजा** – जिनके श्रीचरण-कमल महावरके शृङ्गारसे सुशोभित हैं ।

२२३ **जनकानन्दवर्द्धिनी** – जो वात्सल्य सुख-प्रदान करके श्रीजनकजी महाराजके आनन्दको बढ़ाती हैं ॥४१॥

२२४ **जनकल्याणसक्तात्मा** – जिनका चित आश्रितोंका हित चिन्तन करनेमें सदैवआसक्त बना रहता है ।

२२५ **जननीसर्वदेहिनाम्** – जो समस्त देहधारियोंकी पालन-पोषण पूर्वक सुरक्षा करने वाली माता हैं ।

२२६ **जननीहृदयानन्दा** – जो विश्वमोहन शिशुरूपको धारण करके अपनी मनोहर लीला, मनोहर तोतली वाणी, मनोहर मुस्कान, तथा मनोहर चितवन, मनहरण चाल, परम आह्लादकारी स्पर्श आदिके द्वारा अपनी श्रीअम्बाजीके हृदयकी आनन्द स्वरूपा हैं ।

२२७ **जनबाधानिवारिणी** – जो वास्तविक हितकर कर्त्तव्यमें तत्पर रहने वाले अपने आश्रितों के सभी उपस्थित विघ्नोंको दूर करने वाली हैं ॥४२॥

जनसन्तापशमनी जनित्री सुखसम्पदाम् । जनेश्वरेड्या जन्मान्तत्रासनिर्णाशचिन्तना ॥४३॥
जपनीया जयघोषाराध्यमाना जयप्रदा । जया जयावहा जन्मजरामृत्युभयातिगा ॥४४॥
जलकेलिमहाप्राज्ञा जलजासनवन्दिता । जलजारुणहस्ताङ्घ्रिर्जलजायतलोचना ॥४५॥

२२८ **जनसन्तापशमनी** — जो शरणागत भक्तोंके दैहिक (बीमारीके कारण) दैविक (देवताओंके कोपसे) आध्यात्मिक (मनकी चिन्तासे) प्राप्त होने वाले तीनों प्रकारके तापोंको पूर्णरूपसे नष्ट कर देती हैं ।

२२९ **जनित्री सुख-सम्पदाम्** — जो भक्तोंके हृदयमें सुखस्वरूप भगवान् श्रीरामजीकी सम्पत्ति ज्ञान, वैराग्य, अनुराग आदि उत्पन्न कर देने वाली हैं ।

२३० **जनेश्वरेड्या** — जो भक्तोंके शासन (आज्ञा) में रहने वाले प्रभु श्रीरामजीके द्वारा भी क्षमा गुणमें प्रशंसा योग्य हैं ।

२३१ **जन्मान्तत्रासनिर्णाशचिन्तना** — जिनका सुमिरण प्राणियोंके जन्म-मरण कष्टको पूर्ण नष्ट कर देता है ॥४३॥

२३२ **जपनीया** — जो जन्म (प्राकट्य काल) से ही प्रशंसाके योग्य हैं तथा विष्णु भगवानको भी जिनकी स्तुति करना कर्त्तव्य है, अथवा प्राणियोंको अपने लौकिक, पारलौकिक हित साधनके लिये जिनके मन्त्र-राजका जप सदैव करना उचित है ।

२३३ **जयघोषाराध्यमाना** — जयकार घोषके द्वारा जो सदा ही प्रसन्नकी जा रही हैं अर्थात् जिनको प्रसन्न करनेके लिये, सब समय किसी न किसीके द्वारा, कहीं न कहीं जयकार बोला ही जाता है ।

२३४ **जयप्रदा** — जो अपने आश्रितोंको समस्त बाधाओंसे जय प्रदान करती हैं ।

२३५ **जया**—जो साक्षात् जय स्वरूपा हैं ।

२३६ **जयावहा** — जो भक्तोंके पास विजय विभूतिको स्वयं ढोकर पहुँचाने वाली हैं ।

२३७ **जन्मजरामृत्युभयातिगा** — जिन्हें जन्म, बुढ़ापा व मृत्यु आदि शारीरिक परिवर्तनका भय कभी नहीं है ॥४४॥

२३८ **जलकेलिमहाप्राज्ञा** — जो जल-क्रीडा कला जानने वाली श्रीचन्द्रकलाजी श्रीचारुशीलाजी आदि सखियोंमें सबसे बढ़कर हैं । अथवा जो जगत्की उत्पत्ति और प्रलयकी लीला करनेमें सबसे अधिक बुद्धिमती हैं ।

२३९ **जलजासनवन्दिता** — जिन्हें जगत्पितामह श्रीब्रह्माजी भी प्रणाम करते हैं ।

२४० **जलजारुणहस्ताङ्घ्रि** — लाल कमलके समान जिनके लालिमा युक्त दोनों श्रीहस्त एवं पद–कमल हैं ।

२४१ **जलजायतलोचना** — जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और मनोहर हैं ॥४५॥

जवानतमनोवेगा जाड्यध्वान्तनिवारिणी। जानकी जितमायैका जितामित्रा जितच्छविः ॥४६॥
जितद्वन्द्वा जितामर्षा जीवमुक्तिप्रदायिनी। जीवानां परमाराध्या जीवेशी जेतृसद्गतिः ॥४७॥

२४२ **जवानतमनोवेगा** — सर्वत्र व्यापक होनेके कारण जो अपनी शीघ्रगामितासे मनकी तीव्र गमन-शक्तिको लज्जित कर देती हैं।

२४३ **जाड्यध्वान्तनिवारिणी** — जो जप-परायण भक्तोंके हृदयकी जड़ता रूपी अन्धकारको दूर कर देती हैं।

२४४ **जानकी** — ब्रह्मा पर्यन्त समस्त जीव जिनकी स्तुति करते हैं, उन भगवान् श्रीरामजीके ही परत्वका जो अपने मन, वचन, कायसे सदैव प्रतिपादन (सिद्धि) करती हैं अथवा श्रीजनकजी महाराजकी जो सुपुत्री हैं।

२४५ **जितमायैका** — जो अपने आश्रितोंकी अज्ञान शक्ति तथा दुष्टोंके इन्द्रजाल (जादूगरी) का विनाश करने वाली सभी शक्तियोंमें अनुपम हैं।

२४६ **जितामित्रा** — सभी प्राणिमात्रका पालन-पोषण तथा रक्षण करने वाली होनेके कारण जिनका, कोई शत्रु नहीं है, तथा सर्वशक्तिमती होनेके कारण जो अपने आश्रितोंके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली हैं।

२४७ **जितच्छविः** — जो उमा, रमा, ब्रह्माणी, रति आदि समस्त शोभानिधि शक्तियोंकी शोभाको विजय करने वाली अपरिमित शोभाकी खान हैं ॥४६॥

२४८ **जितद्वन्द्वा** — जो राग-द्वेष आदि सभी द्वन्द्वोंसे रहित हैं।

२४९ **जितामर्षा** — जो जगज्जननी होनेके कारण जीवोंके हजारों अपराधोंको जानती हुई भी उन पर अहितकर क्रोध नहीं करतीं, बल्कि उनका हित करनेके लिये दया करना ही अपना कर्त्तव्य समझती हैं, यथा श्रीवाल्मीकीयरामयणे "पापानां व शुभानां वा बधार्हाणां प्लवङ्गम कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।"

२५० **जीवमुक्तिप्रदायिनी** — जो आश्रित जीवोंको मोक्ष प्रदान करने वाली हैं।

२५१ **जीवानां परमाराध्या** — जीवोंको अपनी अखण्ड सुख-शान्तिके लिये, जिनकी आराधना सबसे श्रेष्ठ है।

२५२ **जीवेशी** — जो समस्त जीवोंके प्राणोंको अपने वशमें रखने वाली हैं अथवा सभी जीवों को कर्मानुसार अनेक प्रकारका जो फल प्रदान करती हैं।

२५३ **जेतृसद्गतिः** — समस्त शक्ति सञ्चारिका होनेके कारण लौकिक-पारलौकिक विजय चाहने वाले सभी प्राणियोंकी जो विजय प्राप्तिका उपाय तथा उसकी सर्वोत्तम फल-स्वरूपा हैं ॥४७॥

**जेत्री ज्ञानदा ज्ञानपाथोधिर्ज्ञानिनां गतिः। ज्ञेयाऽऽत्महितकामानां ज्येष्ठा ज्योत्स्नाधिपानना ।४८।
ज्वरातिगा ज्वलत्कान्तिर्ज्वालामालासमाकुला। झणन्नूपुरपादाब्जा झम्पाकेशप्रसादिता ।।४९।।
झषकेतुप्रियायूथसञ्चितच्छविमोहिनी । झाटवाटोत्सवाधारा ञरूपा टुण्टुकेतरा ।।५०।।**

२५४ **जेत्री** – जो सभी पर विजय प्राप्त करने वाली हैं।

२५५ **ज्ञानदा** — जो सभी प्राणियोंके अन्तः करणमें कर्म करते समय निर्भयताके रूपमें हित-कर और भयके रूपमें अहितकर कर्मका ज्ञान, प्रदान करती हैं अथवा जो अपने आश्रित भक्तोंको स्वस्वरूप, परस्वरूप जगत्स्वरूप, प्राप्य-स्वरूप और प्राप्य-प्राप्ति-साधक तथा प्राप्ति-बाधक स्वरूपका ज्ञान प्रदान करती हैं।

२५६ **ज्ञानपाथोधिः** — जिनका ज्ञान समुद्रके समान अथाह है।

२५७ **ज्ञानिनां गतिः** – जो आत्मतत्त्वको जान लेने वालों की परम प्राप्य स्थान स्वरूपा हैं अर्थात् जिन्हें अपने तथा उनके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो गया है, उन्हें अपने मन, बुद्धि, चित्तको ठहरानेके लिये, एक जिनको छोड़कर और कोई आधार ही नहीं है।

२५८ **ज्ञेयाऽऽत्महितकामानां** —अपना कल्याण चाहने वालोंको जिनके स्वरूप, गुण और ऐश्वर्य आदिका ज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है।

२५९ **ज्येष्ठा** – जो सभी शक्तियोंमें सभी दृष्टिसे बड़ी है।

२६० **ज्योत्स्नाधिपानना** – जिनका श्रीमुखारविन्द शरद्-ऋतुके चन्द्रके समान परम आह्लाद-कारी तथा प्रकाशपुञ्ज है ।।४८।।

२६१ **ज्वरातिगा** – जो भक्तोंके शारीरिक और मानसिक सभी प्रकारके ज्वरोंको दूर करनेमें समर्थ हैं।

२६२ **ज्वलत्कान्तिः** — जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति सदा प्रकाशयुक्त रहती है।

२६३ **ज्वालामालासमाकुला** — जो प्रकाशपुञ्जसे सदा परिपूर्ण हैं।

२६४ **झणन्नूपुरपादाब्जा** – झङ्कार करते हुए नूपुर जिनके श्रीचरणकमलोंमें सुशोभित हैं।

२६५ **झम्पाकेशप्रसादिता** — वानरराज श्रीहनुमानजीने जिन्हें पूर्ण प्रसन्न कर लिया है ।।४९।।

२६६ **झषकेतुप्रियायूथसञ्चितच्छबिमोहिनी** – जो अपने सहज-सौन्दर्यसे रतिसमूहोंकी छबिराशि को मुग्ध कर लेनेकी विशेषता रखती हैं।

२६७ **झाटवाटोत्सवाधारा** – जो कुञ्जस्थलियोंके विविध प्रकारके उत्सवोंकी आधार-स्वरूपा हैं अर्थात् जिनकी कृपासे ही सखियोंको कुञ्जकी क्रीडाओंका सुख प्राप्त होता है।

२६८ **ञरूपा** — जो गानविद्या स्वरूपा हैं।

२६९ **टुण्टुकेतरा** — जो सबसे बड़ी और परमदयालु हृदय वाली हैं ।।५०।।

ठात्मिका डम्बरोत्कृष्टा ढ़ामराधीशगामिनी ।
ढुण्ढ़ीष्टदेवता ढक्कामञ्जुनादप्रहर्षिता ॥५१॥
णकारा तडिदोघाभदीप्ताङ्गी तत्त्वरूपिणी ।
तत्त्वकुशला तत्त्वात्मा तत्त्वादिस्तनुमध्यमा ॥५२॥
तन्तुप्रवर्द्धिनी तन्वी तपनीयनिभद्युतिः ।
तपोमूर्त्तिस्तपोवासा तमसः परतः परा ॥५३॥

२७० **ठात्मिका** — जो सूर्य-चन्द्र मण्डल स्वरूपा हैं ।

२७१ **डम्बरोत्कृष्टा** — जो उमा, रमा, ब्रह्माणी रति आदि सभी विश्वविख्यात महाशक्तियोंमें सबसे बढ़कर हैं ।

२७२ **ढ़ामराधीशगामिनी** — जिनकी मनोहर चाल राजहंसके समान है ।

२७३ **ढ़ुण्ढ़ीष्टदेवता** — जो श्रीगणेशजीकी आराध्य देवता हैं ।

२७४ **ढ़क्कामञ्जुनादप्रहर्षिता**—जो बड़ी ढोलके मनोहर नादसे विशेष हर्षको प्राप्त होतीहैं।५१॥

२७५ **णकारा** — जो सर्वरूपा हैं ।

२७६ **तडिदोघाभदीप्ताङ्गी** – विजली राशिके समान चमकते हुये जिनके श्रीअङ्ग हैं ।

२७७ **तत्त्वरूपिणी** — जो(दश इन्द्रिय, चतुष्टय अन्तःकरण पञ्च, प्राण, पञ्च तन्मात्रा)२४हैं।

२७८ **तत्त्वकुशला** — जो तत्त्व(सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके स्वरूपको भली-भाँति जानती हैं ।

२७९ **तत्त्वात्मा** – जिनकी बुद्धिमें एक पूर्ण तत्त्व भगवान श्रीरामजी ही सदा निवास करते हैं ।

२८० **तत्त्वादिः** – जो समस्त तत्वोंकी आदि कारण हैं ।

२८१ **तनुमध्यमा** — जिनकी कमर सिंहके समान सुन्दर और पतली है ॥५२॥

२८२ **तन्तुप्रवर्द्धिनी** – जो अपने उपासकोंके वंशकी वृद्धि करती हैं ।

२८३ **तन्वी** — जिनका शरीर अत्यन्त कोमल है ।

२८४ **तपनीयनिभद्युतिः** — जिनकी कान्ति तपाये सुवर्णके समान गौर है ।

२८५ **तपोमूर्त्तिः** – जो सर्व तपस्यास्वरूपा हैं ।

२८६ **तपोवासा** — जो सभी प्रकारके तपोंकी भण्डार हैं अथवा जो तपमें निवास करती हैं ।

२८७ **तमसः परतः परा** — जो पूर्ण सत् स्वरूपा हैं ॥५३॥

तमोघ्नी तापशमनी तारिणी तुष्टमानसा । तुष्टिप्रदायिका तृप्ता तृप्तिस्तृप्त्येककारिणी ॥५४॥
तेजः स्वरूपिणी तेजोवृषा तोयभवार्च्चिता । त्रिकालज्ञा त्रिलोकेशी थै थै शब्दप्रमोदिनी ॥५५॥
दक्षा दनुजदर्पघ्नी दमिताश्रितकण्टका । दम्भादिमलमूलघ्नी दयार्द्राक्षी दयामयी ॥५६॥

२८८ **तमोघ्नी** — जो आश्रितोंके मैं, मेरा रूप अज्ञान दूर करने वाली हैं ।

२८९ **तापशमनी** — जो अपने भक्तोंकी दैहिक, दैविक तथा मानसिक तीनों प्रकारकी तापोंको नष्ट कर देती हैं ।

२९० **तारिणी** — जो अपने शरणागत भक्तोंको अनायास ही संसार रूपी सागरसे पार उतार कर दिव्य धाम पहुँचा देती हैं ।

२९१ **तुष्टमानसा** — जिनका मन सदा प्रसन्न रहता है ।

२९२ **तुष्टिप्रदायिका** — जो अपने भक्तोंको पूर्ण सन्तोष प्रदान करने वाली हैं ।

२९३ **तृप्ता** — जो पूर्ण काम हैं ।

२९४ **तृप्ति** — जो तृप्ति स्वरूपा है ।

२९५ **तृप्त्येककारिणी** — जो आश्रितोंको अपनी छबि-माधुरीके रसास्वादन द्वारा सदैव छकाये रहती हैं अर्थात् पूर्ण निष्काम बना देती हैं ॥५४॥

२९६ **तेजः स्वरूपिणी** — जो सम्पूर्ण तेजसमूहकी मूर्त्ति हैं ।

२९७ **तेजोवृषा** — जो सर्वत्र अपने तेजकी वर्षा करती हैं ।

२९८ **तोयभवार्च्चिता** — जिनकी श्रीकमला (लक्ष्मी) जी सदैव पूजा करती हैं ।

२९९ **त्रिकालज्ञा** — जो सभी प्राणियोंके भूत, भविष्य वर्तमान तीनों कालके कायिक वाचिक, मानसिक प्रत्येक क्रियाओंको जानती हैं ।

३०० **त्रिलोकेशी** — जो तीनों लोकों पर शासन करती हैं ।

३०१ **थै थै शब्दप्रमोदिनी** — जो रासादि लीला समयके थै थै शब्दसे विशेष प्रसन्नताको प्राप्त होती हैं ॥५५॥

३०२ **दक्षा**—जो भक्तोंकी सुरक्षा करनेमें परम चतुर हैं ।

३०३ **दनुजदर्पघ्नी**—जो दानव अर्थात् परहित हनन-कारियोंके अभिमानको नष्ट करनेवाली हैं।

३०४ **दमिताश्रितकण्टका**—जो अपने आश्रितोंके काँटा रूपी सभी बाधाओंको शान्त करदेतीहैं।

३०५ **दम्भादिमलमूलघ्नी**—जो आश्रितोंके छल, कपट, काम-क्रोध लोभ मोहादि विकारोंके मूलरूपी अज्ञान को नष्ट कर देती हैं ।

३०६ **दयार्द्राक्षी** — जिनके दोनों नेत्र रूपी कमल दयासे सदैव तर रहते हैं ।

३०७ **दयामयी** — जो दयाकी स्वरूप ही हैं ॥५६॥

दशस्यन्दनजप्रेष्ठा दाक्षिण्याखिलपूजिता । दान्ता दारिद्रयशमनी दिव्यध्येयशुभाकृतिः ॥५७॥
दिव्यात्मा दिव्यचरिता दिव्योदारगुणान्विता । दिव्या दिव्यात्मविभवा दीनोद्धरणतत्परा ॥५८॥
दीप्ताङ्गी दीप्तमहिमा दीप्यमानमुखाम्बुजा । दुरासदा दुराराध्या दुरितघ्नी दुर्मर्षणा ॥५९॥

३०८ **दशस्यन्दनजप्रेष्ठा** — जो दशरथनन्दन श्रीरामभद्रजूकी प्राणप्रियतमा हैं ।

३०९ **दाक्षिण्याखिलपूजिता** – जो सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, संहार कार्य चतुराईकी विशेषता से सभी शक्तियों द्वारा पूजित हैं ।

३१० **दान्ता** — जो मनके समेत सभी इन्द्रियोंको अपनी इच्छानुसार चलाती हैं ।

३११ **दारिद्रयशमनी** — जो आश्रितोंकी सकामता रूपी दरिद्रताका नाश कर देती हैं ।

३१२ **दिव्यध्येयशुभाकृतिः** – जिनके मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान शब्द, स्पर्श, रूपादि विषयों की, आसक्तिसे रहित दिव्य भक्त जन ही कर सकते हैं ॥५७॥

३१३ **दिव्यात्मा** – जिनकी बुद्धि लोकसे परे हैं ।

३१४ **दिव्यचरिता** – जिनकी सभी लीलायें अप्राकृत अर्थात् मायिक सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे परे हैं ।

३१५ **दिव्योदारगुणान्विता** – जो भक्तोंको इच्छासे अधिक फल प्रदान करने वाले अप्राकृत दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्यादि दिव्य गुणोंसे युक्त हैं ।

३१६ **दिव्या** – जो शब्द, स्पर्श, रूप-रसादिक विषयोंके सहित आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पञ्च तत्वोंसे रहित सच्चिदानन्दघन शरीर वाली हैं ।

३१७ **दिव्यात्मविभवा** – जिनकी ज्ञान-शक्ति लोकसे परे हैं ।

३१८ **दीनोद्धरणतत्परा** – जो अभिमान-रहित प्राणियोंका उद्धार करनेमें सदा तत्पर हैं ॥५८॥

३१९ **दीप्ताङ्गी** – जिनके सभी अङ्ग परम प्रकाशमय हैं ।

३२० **दीप्तमहिमा** – इस दृश्य जगत् रूपमें जिनकी महिमा चमक रही है ।

३२१ **दीप्यमानमुखाम्बुजा** -- जिनका श्रीमुखारविन्द अनन्त चन्द्रमाओंके सदृश आह्लादकारी एवं प्रकाशयुक्त है ।

३२२ **दुरासदा** — जो अभक्तोंको महान् कष्टसे भी नहीं प्राप्त होतीं ।

३२३ **दुराराध्या** — अनन्य प्रेमसे साध्या होनेके कारण जिन्हें योग, यज्ञ, तप आदि विशेष कष्ट कर साधनोंके द्वारा कोई प्रसन्न नहीं कर सकता ।

३२४ **दुरितघ्नी** — जो भक्तोंके समस्त पापजनित दुःखोंका नाश करने वाली हैं ।

३२५ **दुर्मर्षणा** — जो भक्तोंके प्रति किसीके किये हुये अपराधको दुःखसे भी सहन नहीं कर पातीं अर्थात् उसे अपने सर्वेश्वरी रूपानुसार अवश्य उचित दण्ड प्रदान करती हैं ॥५९॥

दुर्ज्ञेया दुष्प्रकृतिघ्नी दुःस्वप्नादिप्रणाशिनी । द्युतिर्द्युतिमती देवचूडामणिप्रभुप्रिया ॥६०॥
देवताहितदा दैन्यभावाचिरसुतोषिता । धराकन्या धरानन्दा धरामोदविवर्धिनी ॥६१॥
धरारत्नं धर्मनिधिर्धर्म सेतुनिबन्धिनी । धर्मशास्त्रानुगा धामपरिभूततडिद्द्युतिः ॥६२॥

३२६ **दुर्ज्ञेया** — जो असीम होनेके कारण अत्यन्त सीमित बुद्धि वाले प्राणियोंकी समझमें कभी नहीं आतीं ।

३२७ **दुष्प्रकृतिघ्नी** — जो आश्रितोंके खोटे स्वभावको नष्ट कर देती हैं ।

३२८ **दुःस्वप्नादिप्रणाशिनी** — जो भक्तोंके स्वप्नमें देखे हुये, अनिष्ट कारक स्वप्नोंके फलको भली-भाँतिसे नष्ट कर देती हैं ।

३२९ **द्युतिः** — जो प्रकाश-स्वरूपा हैं ।

३३० **द्युतिमती** — जो अपने आप सहज प्रकाश युक्त हैं ।

३३१ **देवचूडामणिप्रभुप्रिया** — जो समस्त देवताओंमें शिरोमणि भगवान् विष्णुके नियामक श्रीराघवेन्द्र-सरकारकी प्राण वल्लभा हैं ॥६०॥

३३२ **देवताहितदा** — जो दैवी सम्पत्ति युक्त अपने भक्तोंको हित प्रदान करती हैं ।

३३३ **दैन्यभावाचिरसुतोषिता** — जो अभिमान रहित भावसे शीघ्र प्रसन्न हो जाती हैं ।

३३४ **धराकन्या** — भूमिसे प्रकट होनेके कारण जो भूमिकन्या कहाती हैं ।

३३५ **धरानन्दा** — जो पृथ्वी देवीको आनन्द प्रदान करती हैं ।

३३६ **धरामोदविवर्द्धिनी** — जो अपने क्षमा गुणकी सर्वोत्कृष्टताके द्वारा श्रीपृथ्वीदेवीके आनन्दकी विशेष वृद्धि करने वाली हैं ॥६१॥

३३७ **धरारत्नं** — जो पृथ्वीमें रत्न स्वरूपा हैं ।

३३८ **धर्मनिधिः** — जो सम्पूर्ण धर्मोंकी भण्डार स्वरूपा हैं ।

३३९ **धर्म-सेतुनिबन्धिनी** — जो धर्मकी मर्यादा बाँधने वाली हैं ।

३४० **धर्मशास्त्रानुगा** — जो लोकमें श्रीमनुमहाराज आदिके रचित धर्मशास्त्रोंके अनुसार आचरण करने कराने वाली हैं ।

३४१ **धामपरिभूततडिद्द्युतिः** — जो अपने श्रीअङ्गकी चमकसे बिजलीकी चमकको तुच्छ कर रही हैं ॥६२॥

धृतिर्ध्रुवा नतिप्रीता नयशास्त्रविशारदा । नामनिर्धूतनिरया निगमान्तप्रतिष्ठिता ॥६३॥
निगमैर्गीतचरिता नित्यमुक्तनिषेविता । निधिर्निमिकुलोत्तंसा निमित्तज्ञानिसत्तमा ॥६४॥
नियतेन्द्रियसम्भाव्या नियतात्मा निरञ्जना । निराकारा निरातङ्का निराधारा निरामया ॥६५॥

३४२ **धृतिः** — जो सात्विक धारणाशक्ति स्वरूपा हैं ।

३४३ **ध्रुवा** – जिनका नाम, रूप, लीला, धाम, सुमिरण, भजन सब अटल (अविनाशी) है ।

३४४ **नतिप्रीता** – जो पूर्ण काम होनेके कारण केवल प्रणाम मात्रसे प्रसन्न हो जाती हैं यथा श्रीबाल्मीकीयरामायणे सुन्दरकाण्डे "प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा" ।

३४५ **नयशास्त्रविशारदा** —जो नीतिशास्त्रको भली-भाँति जानती हैं ।

३४६ **नामनिर्धूतनिरया** – जिनका नाम लेते ही नरककी यातना(दण्ड)समाप्त हो जाती है ।

३४७ **निगमान्तप्रतिष्ठिता** – जिन्हें वेदान्तशास्त्रने प्रतिष्ठा प्रदानकी है अर्थात् जिनकी महिमा का गान उपनिषदोंमें किया गया है ॥६३॥

३४८ **निगमैर्गीतचरिता** – जिनके आदर्श पूर्ण, समस्त विश्वहितकर चरितोंका गान चारोवेद करते हैं ।

३४९ **नित्यमुक्तनिषेविता** – जो नित्य मुक्त जीवोंके द्वारा सदा सेवित हैं ।

३५० **निधिः** – जो सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण यशकी भण्डार स्वरूपा हैं ।

३५१ **निमिकुलोत्तंसा** – जो निमिकुलको भूषणके समान सुशोभित करने वाली हैं ।

३५२ **निमित्तज्ञानिसत्तमा** — जो समस्त प्राणियोंके तन, मन, वचन द्वारा किये हुये प्रत्येक कर्मके उद्देश्य (प्रयोजन) को समझनेवाली सम्पूर्ण शक्तियोंमें सर्वोत्तमा हैं ॥६४॥

३५३ **नियतेन्द्रियसम्भाव्या** – जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये साधकोंके ही ध्यानमें भली-भाँति आने योग्य हैं ।

३५४ **नियतात्मा** — जिनका मन पूर्ण रूपसे अपने वशमें रहता है अथवा भगवान् श्रीरामजी में सदा लीन है ।

३५५ **निरञ्जना** – जो सभी प्रकारके विकारोंसे अछूती हैं ।

३५६ **निराकारा** — जो सर्वस्वरूपा होनेके कारण किसी एक सीमित आकार वाली नहीं हैं ।

३५७ **निरातङ्का** – जिन्हें जन्म मृत्यु, जरा, व्याधि आदि किसीभी बातका भय नहीं है ।

३५८ **निराधारा** — जिनका आधार कोई नहीं है तथा जो समस्त आधारोंकी परम आधार-स्वरूपा हैं ।

३५९ **निरामया** – जिन्हें शारीरिक या मानसिक कोई रोग होता ही नहीं ॥६५॥

निर्व्याजकरुणामूर्त्तिर्नीतिः पङ्करुहेक्षणा । पतितोद्धारिणी पद्मगन्धेष्टा पद्मजार्च्चिता ॥६६॥
पद्मपादा पद्मवक्त्रा पद्मिनी परमेश्वरी । परब्रह्म परस्पष्टा पराशक्तिः परिग्रहा ॥६७॥
परित्रात्री परिश्लाघ्या परेष्टा पर्यवस्थिता । पवित्रं पाटवाधारा पातिब्रत्यधुरन्धरा ॥६८॥

३६० **निर्व्याजकरुणमूर्त्तिः**—जोकिसी प्रकारके साधनोंकी अपेक्षा न रखने वाली कृपास्वरूपा हैं।
३६१ **नीतिः** — जो नीति स्वरूपा हैं ।
३६२ **पङ्करुहेक्षणा** — जिनके नेत्र-कमलके समान विशाल तथा मनोहर हैं ।
३६३ **पतितोद्धारिणी**—जो अभिमान रहित, लोक दृष्टिमें गिरेहुये प्राणियोंकाउद्धार करनेवालीहैं।
३६४ **पद्मगन्धेष्टा** — जो श्रीपद्मगन्धासखीजीकी इष्ट हैं ।
३६५ **पद्मजार्च्चिता** – जो श्रीब्रह्माजीके द्वारा पूजित हैं ॥६६॥
३६६ **पद्मपादा** – जिनके दोनों चरण-कमलके समान सुकोमल तथा मधुर सुगन्धवाले हैं।
३६७ **पद्मवक्त्रा** — जिनका श्रीमुखचन्द्र-कमलके समान प्रफुल्लित तथा सुगन्धमय है ।
३६८ **पद्मिनी** — जिनके सर्वाङ्ग कमलवत् सुकोमल हैं तथा जो पवित्रता और साम्राज्ञी चिह्नों से युक्त हैं ।
३६९ **परमेश्वरी** – जो हरिहरादि सभी प्रमुख शासकों परभी शासन करती हैं, अर्थात् जिनके शासनानुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शेष, इन्द्र, यम, कुबेर वरुण, वायु, चन्द्र, सूर्य मृत्यु, आदि सब पूर्ण सावधानता पूर्वक अपने अपने कर्त्तव्य पालनमें सदैव तत्पर बने रहते हैं।
३७० **परब्रह्म** — जो सबसे बड़ी और सूक्ष्म होनेके कारण सभीको अपनेमें बढ़नेका अवकाश (स्थान) देने वाले आकाशादि सभी पञ्च महातत्त्वोंसे उत्कृष्टा हैं ।
३७१ **परस्पष्टा** – जो अपने अनन्य प्रेमी भक्तोंके लिये सदैव प्रत्यक्ष रहती हैं ।
३७२ **पराशक्तिः** — जो सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने वाली ब्रह्माणी, रमा उमा आदि शक्तियोंसे श्रेष्ठ हैं अथवा उनको भी अपनी इच्छासे प्रकट करने वाली हैं ।
३७३ **परिग्रहा** – जो सभी ओरसे भक्तोंके भावोंको ग्रहण करती हैं ॥६७॥
३७४ **परित्रात्री** – जो अपने आश्रितोंकी सब ओर से सुरक्षा करती हैं ।
३७५ **परिश्लाघ्या** – जो सब प्रकारसे प्रशंसा करने योग्य हैं ।
३७६ **परेष्टा** – जो ब्रह्मादि देवोंकी भी इष्ट (उपास्य) देवता हैं ।
३७७ **पर्यवस्थिता** – जो सर्वव्यापिका होनेके कारण सभी ओर सर्वत्र विराजमान हैं ।
३७८ **पवित्रं** – जिनका नाम-सङ्कीर्त्तन वज्रादि अमोघ अस्त्रोंसे भी रक्षा करने वाला है ।
३७९ **पाटवाधारा** — जो सम्पूर्ण चतुराईकी आधार (केन्द्र) स्वरूपा हैं ।
३८० **पातिब्रत्यधुरन्धरा** – जो पतिब्रताओंके धर्मका पालन करनेवाली स्त्रियोंमें अग्रगण्या हैं ६८

पापिपापौघसंहर्त्री पारिजातसुमार्च्चिता । पावनानुत्तमादर्शा पावनी पुण्यदर्शना ॥६९॥
पुण्यश्रवणचरिता पुण्यश्लोकवरीयसी । पुष्पालङ्कारसम्पन्ना पुष्टिः पुष्टिप्रदायिनी ॥७०॥
पूतात्मा पूतसर्वेहा पूज्यपादाम्बुजद्वया । पूर्णा पूर्णेन्दुवदना प्रकृतिः प्रकृतेः परा ॥७१॥

३८१ **पापिपापौघसंहर्त्री** – जो शरणागत पापियोंके पापसमूहोंको सबप्रकारसे हरणकर लेती हैं ।

३८२ **पारिजातसुमार्च्चिता** – कल्पवृक्ष पुष्पोंके द्वारा इन्द्रादि देव जिनकी पूजा करते हैं ।

३८३ **पावनानुत्तमादर्शा** – जिनका आदर्श सर्वोत्तम अथवा प्राणियोंको स्वाभाविक पवित्र बनाने वाला है ।

३८४ **पावनी** – जो अपने नाम, रूप, लीला, धाम द्वारा प्राणियोंके काम, क्रोध, लोभादि विकार रूपी अपवित्रताको दूरकरके निर्विकारिता रूपी पवित्रता प्रदान करनेवाली हैं ।

३८५ **पुण्यदर्शना** — जिनका दर्शन हृदयमें अत्यन्त पवित्रता प्रदान करने वाला अथवा पुण्यके उदयसे ही प्राप्त होता है ॥६९॥

३८६ **पुण्यश्रवणचरिता** — जिनके मङ्गलमय चरितोंका श्रवण करनेसे अन्तःकरणमें स्वाभाविक पवित्रता उदय होती है ।

३८७ **पुण्यश्लोकवरीयसी** – जो पवित्रतम यशवाली सभी महाशक्तियोंमें सबसे उत्कृष्ट हैं ।

३८८ **पुष्पालङ्कारसम्पन्ना** – जो फूलोंके शृङ्गारसे युक्त हैं ।

३८९ **पुष्टिः** – जिनकी कृपासे ही प्राणियोंको सभी प्रकारकी पुष्टि-प्राप्ति होती है ।

३९० **पुष्टिप्रदायिनी** – जो भक्तोंको शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकारकी पुष्टि प्रदान करती हैं ॥७०॥

३९१ **पूतात्मा** – जिनकी बुद्धि परम-पवित्र हैं ।

३९२ **पूतसर्वेहा** – जिनकी समस्त चेष्टायें परम-पवित्र हैं ।

३९३ **पूज्यपादाम्बुजद्वया** – जिनके कमलवत् सुकोमल दोनों श्रीचरण सभीके पूजने योग्य हैं ।

३९४ **पूर्णा** – जिन्हें अपनी किसी भी इच्छाकी पूर्त्ति करना शेष नहीं है तथा जो भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालमें सर्वत्र पूर्ण रूपसे विराजमान हैं ।

३९५ **पूर्णेन्दुवदना** – जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्ण चन्द्रमाके सदृश शीतल प्रकाशमय तथा परम आह्लादकारी है ।

३९६ **प्रकृतिः** – जो ब्रह्मकी इच्छा स्वरूपा हैं ।

३९७ **प्रकृतेः परा** – जो विद्या-अविद्या रूपी मायासे परे हैं ॥७१॥

प्रकृष्टात्मा प्रणम्याङ्घ्रिः प्रणयातिशयप्रिया । प्रणतातुल्यवात्सल्या प्रणतध्वस्तसंसृतिः ॥७२॥
प्रणविनी प्रतिष्ठात्री प्रथमा प्रथिता प्रधीः । प्रपन्नरक्षणोद्योगा प्रवित्तं प्रविशारदा ॥७३॥
प्रह्वी प्राणदा प्राणनिलया प्राणवल्लभा । प्राणात्मिका प्रार्थनीया प्रियमोहनदर्शना ॥७४॥

३९८ **प्रकृष्टात्मा** – जिनकी बुद्धि सबसे बढ़कर है ।

३९९ **प्रणम्याङ्घ्रिः** – जिनके श्रीचरणकमल सदा सभीके प्रणाम करने योग्य हैं ।

४०० **प्रणयातिशयप्रिया** – जिन्हें प्रेम सबसे अधिक प्रिय है ।

४०१ **प्रणतातुल्यवात्सल्या** – भक्तोंके प्रति जिनके वात्सल्यकी उपमा नहीं दी जासकती ।

४०२ **प्रणतध्वस्तसंसृतिः** – जो अपने आश्रितोंके जन्म-मरणरूपी आवागमनको नष्ट कर देती हैं ॥७२॥

४०३ **प्रणविनी** – जो ॐ कार वाच्य भगवान् श्रीरामजीकी प्राणप्यारी हैं ।

४०४ **प्रतिष्ठात्री** — जो वात्सल्यभावकी पराकाष्ठाके कारण अपने भक्तोंको विशेष प्रतिष्ठा देती हैं ।

४०५ **प्रथमा** — जो सबसे आदिकी हैं ।

४०६ **प्रथिता** — जो अपनी महिमाके द्वारा सर्वत्र तीनों कालमें प्रसिद्ध हैं ।

४०७ **प्रधीः** — जिनकी ज्ञान शक्ति सबसे उत्कृष्ट है ।

४०८ **प्रपन्नरक्षणोद्योगा** – शरणागत जीवोंकी रक्षा करना ही जिनका मुख्य धंधा है ।

४०९ **प्रवित्तं** — जो भक्तोंकी सबसे बढ़कर सम्पत्ति (धन) हैं ।

४१० **प्रविशारदा** – जो भक्तोंकी रक्षा करनेमें सबसे अधिक चतुरा हैं ॥७३॥

४११ **प्रह्वी** — जिनका स्वभाव अत्यन्त नम्र है ।

४१२ **प्राणदा** — जो समस्त शरीरोंमें पञ्च प्राणोंको प्रदान करती हैं ।

४१३ **प्राणनिलया** — जो समस्त प्राणोंकी निवास स्थान स्वरूपा है ।

४१४ **प्राणवल्लभा** — जो प्राणोंको अत्यन्त प्रिय हैं ।

४१५ **प्राणात्मिका** – जो पञ्च-प्राणोंमें विराज रही हैं अथवा जो पञ्च प्राणस्वरूपा हैं ।

४१६ **प्रार्थनीया** — ब्रह्मादि सभी देवताओंको भी जिनसे प्रार्थना करना उचित है ।

४१७ **प्रियमोहनदर्शना** – जो क्षमा तथा सौशील्य की पराकाष्ठासे अपने प्यारे भगवान् श्रीरामजीको भी मुग्ध किये रहती हैं ॥७४॥

प्रियार्हा प्रीतितत्त्वज्ञा प्रीतिदा प्रीतिर्वद्धिनी । प्रेज्या प्रेमरता प्रेमवल्लभातीववल्लभा ॥७५॥
प्रेमवारां निधिः प्रेमविग्रहा प्रेमवैभवा । प्रेमशक्त्येकविवशा प्रेमसंसाध्यदर्शना ॥७६॥
प्रेमैकहाटकागारा प्रेमैकाद्भुतविग्रहा । फणीन्द्रावर्ण्यविभवा फलरूपा सुकर्मणाम् ॥७७॥

४१८ **प्रियार्हा** — जो गुण, रूप, ऐश्वर्य आदिकी दृष्टिसे प्यारे श्रीरामभद्रजूके योग्य दुलहिन तथा श्रीराघवेन्द्र सरकारजी सब प्रकारसे जिनके दूलह होनेके योग्य हैं, अथवा जो संसारकी प्यारीसे प्यारी वस्तुयें अर्पण करनेके योग्य पात्र स्वरूपा हैं ।

४१९ **प्रीतितत्त्वज्ञा** — जो प्रेमके रहस्यको पूर्णरूप से समझती हैं ।

४२० **प्रीतिदा** — जो अपने आश्रितोंको संसारके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पाँचो विषयोंसे वैराग्य करानेके लिये भगवान्‌के श्रीचरण-कमलोंमें अनुराग प्रदान करती हैं ।

४२१ **प्रीतिर्वद्धिमी** — जो भगवदानन्दकी अनुभूति करानेके लिये भक्तोंके हृदयमें उत्तरोत्तर अनुरागकी वृद्धि करती रहती हैं ।

४२२ **प्रेज्या** — जो सभी देव, मुनि, सिद्ध, परमहंसोंके द्वारा भी सबसे बढ़कर पूजने योग्य हैं ।

४२३ **प्रेमरता** — जो भक्तोंके सहित भगवान् श्रीराघवेन्द्रसरकारके प्रेममें सदैव आसक्त बनी रहती हैं ।

४२४ **प्रेमवल्लभातीववल्लभा** — जिन्हें गुण, रूप, वैभव आदिकी अपेक्षा एक प्रेम ही प्रिय है, उन श्रीरघुनन्दनप्यारेजूकी जो अत्यन्त प्यारी हैं ॥७५॥

४२५ **प्रेमवारां निधिः** — जो प्रेमकी समुद्र हैं अर्थात् जिनमें समुद्रके समान अथाह प्रेम भरा हुआ है ।

४२६ **प्रेमविग्रहा** — जो प्रेमकी स्वरूप हैं ।

४२७ **प्रेमवैभवा** – प्रेम ही जिनका मुख्य ऐश्वर्य है ।

४२८ **प्रेमशक्त्येकविवशा** – जो अनुपम प्रेम शक्ति-सम्पन्न प्रभु श्रीरामजीके ही अधीन हैं ।

४२९ **प्रेमसंसाध्यदर्शना** — जिनके दर्शनोंका अमोघ साधन एक प्रेम ही है ॥७६॥

४३० **प्रेमैकहाटकागारा** — जिनके निवासके लिये प्रेम ही मुख्य श्रीकनक-भवन है ।

४३१ **प्रेमैकाद्भुतविग्रहा** — जो प्रेमकी आश्चर्यमयी अनुपम मूर्त्ति हैं ।

४३२ **फणीन्द्रावर्ण्यविभवा**—सहस्र मुख वाले शेषजी भी जिनके ऐश्वर्यका वर्णन करनेमें असमर्थहैं।

४३३ **फलरूपा सुकर्मणाम्** — जो समस्त हितकर कर्मोंकी फलस्वरूपा हैं ॥७७॥

बुद्धिदा बुधमृग्याङ्घ्रिकमला बोधवारिधिः । ब्रह्मलेखातिगा ब्रह्मवेत्त्री ब्रह्माण्डवृन्दसूः ॥७८॥
भक्तत्राणविधानज्ञा भक्तिसंसाध्यदर्शना । भजनीयगुणोपेता भयघ्नी भवतारिणी ॥७९॥
भवपूज्या भवाराध्या भवोत्पत्त्यादिकारिणी । भाग्यैकसंशोधयित्री भावैकपरितोषिता ॥८०॥

४३४ **बुद्धिदा** — जो प्रत्येक भले बुरे कर्ममें तत्पर होनेके प्रारम्भमें सभी प्राणियोंको निर्भयता, प्रसन्नता और भयचिन्ताके रूपमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान प्रदान करती हैं ।

४३५ **बुधमृग्याङ्घ्रिकमला** — ज्ञानियों के खोजने योग्य जिनके एक श्रीचरणकमल हैं ।

४३६ **बोधवारिधिः** — जिनमें ज्ञान-शक्ति समुद्रके समान अथाह है ।

४३७ **ब्रह्मलेखातिगा** — जो भक्तोंके मस्तकमें श्रीब्रह्माजीकी लिखी हुई दुर्भाग्य रेखाओंको भी बदल देती हैं ।

४३८ **ब्रह्मवेत्त्री** — जो ब्रह्म भगवान् श्रीरामजी तथा वेदोंके रहस्यको भली प्रकार जानती हैं ।

४३९ **ब्रह्माण्डवृन्दसूः** — जो अनन्त ब्रह्माण्डोंकी जन्म दात्री हैं ॥७८॥

४४० **भक्तत्राणविधानज्ञा** — जो भक्तोंकी रक्षाका उपाय भली भाँति जानती हैं ।

४४१ **भक्तिसंसाध्यदर्शना** — जिनका दर्शन केवल प्रेमाभक्तिसे पूर्ण सुलभ है ।

४४२ **भजनीयगुणोपेता** — जो उपासनार्थ वरण करने योग्य सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता तथा भगवत्ता, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य, कारुण्य, उदारता आदि अनेक सभी दिव्य मङ्गल गुणोंसे परिपूर्ण हैं ।

४४३ **भयघ्नी** — जो अपनी महिमा पर विश्वास दिलाकर भक्तोंके सम्पूर्ण भयोंको नष्ट कर देती हैं ।

४४४ **भवतारिणी** — जो अपने श्रीचरणकमलोंकी आसक्ति रूपी जहाजके द्वारा आश्रित भक्तोंको संसारसागरसे अनायास पार कर देती ही नहीं, दिव्य-धाम पहुँचा देती हैं ॥७९॥

४४५ **भवपूज्या** — श्रीभोलेनाथजीको भी जिनकी पूजा कर्त्तव्य है ।

४४६ **भवाराध्या** — जिनकी आराधना वास्तवमें भली-भाँति, भगवान् श्रीशङ्करजी ही कर पाते हैं ।

४४७ **भवोत्पत्त्यादिकारिणी** — जो अपने सत्व, रज, तम त्रिगुणमय आकारोंसे जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करने वाली हैं ।

४४८ **भाग्यैकसंशोधयित्री** — जो अपने आश्रितोंके बिगड़े हुये भाग्यका संशोधन करने वाली शक्तियोंमें उपमा रहित हैं ।

४४९ **भावैकपरितोषिता** — अनन्य भावही जिन्हें पूर्ण सन्तुष्ट कर सकता है ॥८०॥

भूतप्रसूतिर्भूतात्मा भूतादिर्भूतिदायिनी । भूतिमत्समुपास्याङ्घ्रिर्भूसुता भ्रान्तिहारिणी ॥८१॥
मङ्गलाद्वयमाङ्गल्या मङ्गलैकमहानिधिः । मधुरा मधुराकारा मननीयगुणावलिः ॥८२॥
मनोजवा मनोज्ञाङ्गी मनोरमगुणान्विता । मनः स्वरूपा महती महनीयगुणाम्बुधिः ॥८३॥

४५० **भूतप्रसूतिः** — जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति करने वाली हैं ।

४५१ **भूतात्मा** — सम्पूर्ण चर-अचर प्राणी ही जिनके शरीर हैं अथवा जो समस्त प्राणियोंकी आत्मस्वरूपा हैं ।

४५२ **भूतादिः** — जो आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी आदि कारण स्वरूपा हैं ।

४५३ **भूतिदायिनी** — जो आश्रितोंको सभी प्रकारका वैभव प्रदान करती हैं ।

४५४ **भूतिमत्समुपास्याङ्घ्रिः** — भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्तिके लिये ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंको भी जिनके श्रीचरणकमलोंकी आराधना करना परम आवश्यक कर्त्तव्य है ।

४५५ **भूसुता** — जो पृथ्वीसे प्रकट होनेके कारण भूमि पुत्री कहाती हैं ।

४५६ **भ्रान्तिहारिणी** — जो आश्रितोंकी सभी प्रकारकी शङ्काओंको दूर कर देती हैं ॥८१॥

४५७ **मङ्गलाद्वयमाङ्गल्या** — जो सम्पूर्ण मङ्गलोंकी अनुपम मङ्गल स्वरूपा हैं ।

४५८ **मङ्गलैकमहानिधि;** — जो समस्त मङ्गलोंकी सबसे बड़ी भण्डार स्वरूपा हैं ।

४५९ **मधुरा** — जो अपने आश्रित चेतनोंको भगवदानन्द प्रदान करती रहती हैं ।

४६० **मधुराकारा** — जिनका मङ्गलमय विग्रह महान् आनन्द दायक है ।

४६१ **मननीयगुणावलिः** — जिनके क्षान्ति, वात्सल्य सौशील्य, कारुण्यादि गुणसमूह सतत, मनन करने योग्य हैं ॥८२॥

४६२ **मनोजवा** — जिनकी सर्वत्र पहुँचने की शक्ति, मनसे भी अधिक तीव्र है ।

४६३ **मनोज्ञाङ्गी** — जिनके श्रीचरण-कमल आदि, सभी अङ्ग, बड़े ही मनोहर हैं ।

४६४ **मनोरमगुणान्विता** — जो सभी मनोहर गुण-समूहोंसे परिपूर्ण हैं ।

४६५ **मनःस्वरूपा** — जो सम्पूर्ण इन्द्रियांमें मन स्वरूपा हैं ।

४६६ **महती** — जो शक्तियोंमें सबसे बड़ी महिमा वाली हैं ।

४६७ **महनीयगुणाम्बुधिः** — जो पूजने योग्य क्षमा, वात्सल्य उदारता आदि सभी गुणोंकी समुद्र-स्वरूपा हैं ॥८३॥

महद्धर्चिका महाकीर्त्तिर्महाकोषा महाक्रतुः । महाक्रमा महागर्ता महाच्छविर्महाद्युतिः ॥८४॥
महादृष्टिर्महाधाम्नी महानन्दस्वरूपिणी । महानायकसम्मान्या महानैपुण्यवारिधिः ॥८५॥
महापूज्या महाप्राज्ञा महाप्रेज्या महाफला । महाभागा महाभोगा महामतिमतां वरा ॥८६॥

४६८ **महद्धर्चिका** — जो अनुपम महान् ऐश्वर्यवाली हैं ।

४६९ **महाकीर्त्तिः** — जो ब्रह्मकी कीर्त्तिस्वरूपा हैं अथवा जिनसे बढ़कर किसीकी कीर्ति है ही नहीं ।

४७० **महाकोषा** — जो ब्रह्मके सभी गुण, शक्ति, सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदिकी भण्डार हैं ।

४७१ **महाक्रतुः** — जो महान् यज्ञस्वरूपा हैं ।

४७२ **महाक्रमा** — जिनकी गमन शक्ति सबसे अधिक तीव्र है ।

४७३ **महागर्ता** — जो माया रूपी महान् गर्त वाली हैं ।

४७४ **महाच्छविः** – जिनसे बढ़कर किसी का सौन्दर्य है ही नहीं अर्थात् जो ब्रह्मके सौन्दर्यकी मूर्त्ति हैं ।

४७५ **महाद्युतिः** — जो ब्रह्मकी कान्तिस्वरूपा हैं अथवा जिनसे बढ़कर किसीकी कान्ति है ही नहीं ॥८४॥

४७६ **महादृष्टिः** — जिनकी दृष्टि ब्रह्मके समान सर्वव्यापक है अथवा जो सर्वत्र एक श्रीराघवेन्द्र सरकार को ही देखती हैं ।

४७७ **महाधाम्नी** – जिनका श्रीमिथिला धाम सर्वोत्कृष्ट है अथवा जो ब्रह्मकी तेजःस्वरूपा हैं ।

४७८ **महानन्दस्वरूपिणी** — जो ब्रह्मके आनन्दकी मूर्त्ति हैं अथवा जिनका स्वरूप महान् आनन्द प्रदायक है ।

४७९ **महानायकसम्मान्या** — जो सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजीके द्वारा भी सम्मान पाने योग्य हैं ।

४८० **महानैपुण्यवारिधिः** — जो महान् चतुराई की सागर स्वरूपा हैं ॥८५॥

४८१ **महापूज्या** – जिनसे बढ़कर कोई भी शक्ति पूजने योग्य नहीं है ।

४८२ **महाप्राज्ञा** – जो अत्यन्त बुद्धिमती हैं ।

४८३ **महाप्रेज्या** – जो सबसे बढ़कर उपासनाके योग्य हैं ।

४८४ **महाफला** – जिनकी प्राप्ति ही समस्त सत्कर्मोंका सबसे उत्कृष्ट फल है ।

४८५ **महाभागा** – जिनसे बढ़कर किसीका सौभाग्य है ही नहीं ।

४८६ **महाभोगा** – जिनका सुख भोग सबसे बढ़कर है ।

४८७ **महामतिमतां वरा** – जो समस्त महान् बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठा हैं ॥८६॥

महामाधुर्यसम्पन्ना महामायास्वरूपिणी । महायोगप्रसाध्यैका महायोगेश्वरप्रिया ॥८७॥
महारतिर्महालक्ष्मीर्महाविद्यास्वरूपिणी । महाशक्तिर्महाश्रेष्ठा महाश्लाघ्ययशोऽन्विता ॥८८॥
महासिद्धिर्महासेव्या महासौभाग्यदायिनी । महाहबिर्महार्हार्हा महिष्ठात्मा महीयसी ॥८९॥

४८८ **महामाधुर्यसम्पन्ना** — जो महान् मनो मुग्धकारी सौन्दर्यसे परिपूर्ण हैं ।

४८९ **महामायास्वरूपिणी** — जो महामायाकी कारण स्वरूपा हैं ।

४९० **महायोगप्रसाध्यैका** — जो चित्तवृतिके महान् निरोध द्वारा प्राप्त होने वाली सभी सिद्धियोंमें मुख्य हैं ।

४९१ **महायोगेश्वरप्रिया** — जो महायोगेश्वर भगवान् श्रीरामजीकी प्राणवल्लभा हैं ॥८७॥

४९२ **महारतिः** — जो अनन्त रतियोंकी कारण स्वरूपा हैं ।

४९३ **महालक्ष्मी** — जो अपने अंशसे अनन्त लक्ष्मियोंको प्रकट करती हैं ।

४९४ **महाविद्यास्वरूपिणी** — जो समस्त विद्याओंकी आधार भूता हैं ।

४९५ **महाशक्तिः** — जो समस्त शक्तियोंकी कारण-स्वरूपा हैं ।

४९६ **महाश्रेष्ठा** — जो सभी श्रेष्ठ पुरुषोंकी श्रेष्ठताकी आधार स्वरूपा हैं ।

४९७ **महाश्लाघ्ययशोऽन्विता** — जो भगवान् श्रीरामजीके द्वारा प्रशंसनीय यशसे युक्त हैं॥८८॥

४९८ **महासिद्धिः** — जिनकी प्राप्तिसे वढ़कर कोई सिद्धि नहीं है अर्थात् जो सर्वोत्कृष्ट सिद्धि-स्वरूपा हैं ।

४९९ **महासेव्या** — जिनसे बढ़कर कोई भी, आराधना पात्र नहीं है ।

५०० **महासौभाग्यदायिनी** — जो भक्तोंको नित्य असीम-सौभाग्य स्वरूप सच्चिदानन्दघन विग्रह प्रभु श्रीरामजीको भी, दे डालती हैं ।

५०१ **महाहबिः** — जो यज्ञमें भगवान के लिये दी जाती हुई आहुति स्वरूपा हैं ।

५०२ **महार्हार्हा** — जो परम पूजनीया उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंके द्वारा भी पूजने योग्य हैं ।

५०३ **महिष्ठात्मा** — जो अत्यन्तभक्त वत्सलताके कारण, भक्तोंके विभिन्न प्रकारके भावोंकी पूर्त्तिके लिये अपने मङ्गलमय विग्रहसे पृथ्वी तल पर विराजमान होती हैं ।

५०४ **महीयसी** — जो जगत् में सबसे बड़े पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पञ्च तत्वों से भी वहुत बड़ी हैं ॥८९॥

महीशजा महोत्कर्षा महोत्साहा महोदया । महोदारा महेशादिसमालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥६०॥
माता समस्त जगतां माधुरीजितमाधुरी । मान्यपरमसम्मान्या मा मितकोकिलस्वना ॥६१॥
मिथिलेशक्रतूद्भूता मिथिलेश्वरनन्दिनी । मीनाक्षी मुक्तिवरदा मुनिसेव्यपदाम्बुजा ॥६२॥

५०५ **महीशजा** -- जो पृथ्वीपति श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञ भूमिसे प्रकट होनेके नाते उनकी पुत्री कहाती हैं ।

५०६ **महोत्कर्षा** -- जिनकी महिमा सबसे बढ़कर है ।

५०७ **महोत्साहा** -- आश्रित रक्षणमें जिनका उत्साह महान् है ।

५०८ **महोदया** -- जिनके हृदयमें परात्पर प्रभु श्रीरामजी सदा उदय रहते हैं अथवा जिनकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि है ।

५०९ **महोदारा** -- जिनके समान कोई भी उदार नहीं है ।

५१० **महेशादिसमालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा** -- भगवत् प्राप्तिके लिये जिनके श्रीचरण-कमलोंका अवलम्बन लेना भगवान् शङ्करजी आदि महायोगियोंके लियेभी परम आवश्यक है ॥६०॥

५११ **माता समस्तजगतां** -- जो समस्त चर-अचर प्राणियोंकी वास्तविक (असली) माता हैं।

५१२ **माधुरीजितमाधुरी** -- जो अपने सौन्दर्यसे सुन्दरताको भी लज्जित करती हैं ।

५१३ **मान्यपरमसम्मान्या** -- मान्य देव, ऋषि, योगि, सिद्ध आदिकोंसे उत्कृष्ट, इन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा भी जो परम सम्मान पानेके योग्य हैं ।

५१४ **मा** -- जो लक्ष्मी स्वरूपा हैं ।

५१५ **मितकोकिलस्वना** -- जिनकी बोली कोयलके समान सुरीली और प्रयोजन मात्र है ॥६१॥

५१६ **मिथिलेशक्रतूद्भूता** -- जो मिथिलेशजी महाराजके यज्ञसे प्रकट हुई हैं ।

५१७ **मिथिलेश्वरनन्दिनी** -- जो अपनी बाललीलाओंके द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजको परम आनन्द देने वाली हैं ।

५१८ **मीनाक्षी** -- जिनके विशाल नेत्र भक्तोंकी भावपूर्ण चेष्टाओंको देखनेके लिये मछलीके नेत्रोंके समान चञ्चल बने रहते हैं ।

५१९ **मुक्तिवरदा** -- जो अपने आश्रित चेतनोंको पञ्च (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) विषयोंसे निवृत्तिरूपा मुक्तिका वर देने वाली हैं ।

५२० **मुनिसेव्यपदाम्बुजा** -- जिनके श्रीचरण-कमलोंकी सेवा करना मुनियोंका भी प्रधान कर्त्तव्य है ॥६२॥

**मुनीन्द्रावर्ण्यमहिमा मूलप्रकृतिसञ्ज्ञिता । मृगनेत्रा मृगाङ्काभवदना मृदुभाषिणी ॥६३॥
मृदुला मृदुलाचारा मृदुसंमोहनेक्षणा । मृदुस्वभावसम्पन्ना मृद्वी मेधसमुद्भवा ॥६४॥
मेधेशी मैथिली मोदवर्षिणी मौढ्यभञ्जिका । यतचित्तेन्द्रियग्रामा युक्ता युक्तात्मभाविता ॥६५॥**

५२१ **मुनीन्द्रावर्ण्यमहिमा** -- जिनकी महिमाको भगवान् श्रीव्यासजी, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीअगस्त्यजी, श्रीलोमशजी, श्रीनारदजी आदि बड़े-बड़े मुनिराज भी वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं ।

५२२ **मूलप्रकृतिसञ्ज्ञिता** -- जिनका एक नाम मूलप्रकृति भी है ।

५२३ **मृगनेत्रा** -- जिनके नेत्र हरिणके नेत्रोंके समान विशाल और हृदयाकर्षक हैं ।

५२४ **मृगाङ्काभवदना** -- जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश पुञ्ज एवं परम आह्लादकारी है ।

५२५ **मृदुभाषिणी** -- जो बड़ी ही कोमल वाणी बोलती हैं ॥६३॥

५२६ **मृदुला** -- जो अपने उपासकोंमें भी कोमलता भर देती हैं ।

५२७ **मृदुलाचारा** -- जिनके सभी आचरण (व्यवहार) अत्यन्त कोमल हैं ।

५२८ **मृदुसंमोहनेक्षणा** -- जिनके दर्शनोंसे कोमलता भी प्रेममुग्ध हो जाती है ।

५२९ **मृदुस्वभावसम्पन्ना** -- जो आश्रितोंके अपराधोंको नही देखती अर्थात् जिनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है ।

५३० **मृद्वी** -- जिनका सब कुछ अत्यन्त कोमल है अर्थात् जो कोमलताका स्वरूप ही हैं ।

५३१ **मेधसमुद्भवा** -- जो श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई हैं अथवा जो समस्त यज्ञोंकी कारण स्वरूपा हैं ॥६४॥

५३२ **मेधेशी** – जो समस्त यज्ञोंकी स्वामिनी हैं ।

५३३ **मैथिली** – जो मिथिवंश उजागरी तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजकी राजदुलारी हैं ।

५३४ **मोदवर्षिणी** – जो भक्तोंके लिये निरन्तर आनन्दकी वर्षा करने वाली हैं ।

५३५ **मौढ्यभञ्जिका** — जो आश्रितोंकी मूढ़ताको नष्टकर देती हैं ।

५३६ **यतचित्तेन्द्रियग्रामा** — जो भक्तोंके भरण, पोषण, तथा संरक्षणके लिये चित्त और इन्द्रियोंको सदैव अपने अधीन रखती हैं ।

५३७ **युक्ता** — जो परम निपुण और सब प्रकारसे सम्पन्न हैं ।

५३८ **युक्तात्मभाविता** — मनको पूर्ण स्वाधीन रखने वाले योगिजन जिनका ध्यान करते हैं ॥६५॥

योगदा योगनिलया योगस्था योगिनां गतिः । योगिनां समुपालम्ब्या योगिराजप्रियात्मजा ॥९६॥
रक्तोत्पललसद्धस्ता रघुनन्दनवल्लभा । रघुनाथस्वभावज्ञा रघुवीरसुखेरता ॥९७॥
रतिसौन्दर्यदर्पघ्नी रतीशेहाहरस्मृतिः । रविमण्डलमध्यस्था रविवंशेन्दुहृत्स्थिता ॥९८॥

५३९ **योगदा** — जो आश्रित जीवोंको अपनी निर्हेतुकी कृपा द्वारा प्रभुसे मिलन करा देती हैं।

५४० **योगनिलया** — जो सम्पूर्ण योगोंकी आधार-स्वरुपा हैं।

५४१ **योगस्था** — जो जीवोंको भगवत् प्राप्ति कराने के लिए उनके साधन में विराजमान रहती हैं।

५४२ **योगिनां गतिः** — जो भगवत् प्राप्ति साधक चेतनोंके लिए परम आधार स्वरुपा हैं।

५४३ **योगिनां समुपालम्ब्या** — भगवत्-प्राप्ति चाहने वाले चेतनोंको जिनकी कृपाका आश्रय लेना नितान्त आवश्यक हैं।

५४४ **योजिराजप्रियात्मजा** – जो योगिराज श्रीमिथिलेशजी महाराज की प्राणप्यारी पुत्री हैं ॥९६॥

५४५ **रक्तोत्पललसद्धस्ता** – जिनके हस्तारविन्दमें लालकमल सुशोभित है अर्थात् जो प्रफुल्लित कमल को अपने हस्त कमलमें लेकर, उसीके समान प्रत्येक अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितिमें भक्तोंको, सदा खिले रहनेका मौन-उपदेश प्रदान कर रही हैं।

५४६ **रघुनन्दनबल्लभा** — जो रघुबंशियों को वात्सल्य जनित विशेषआनन्द प्रदान करने वाले प्राणप्यारे श्रीराघवेन्द्र सरकार की प्राणप्रियतमा हैं।

५४७ **रघुनाथस्वभावज्ञा** — जो समस्त जीवोंके स्वामी श्रीरामभद्रजूके स्वभाव को भली भाँति जानती हैं।

५४८ **रघुबीरसुखेरता** – जो प्राणप्यारे रघुकुलवीर श्रीरामभद्रजूको सुख पहुँचाने में सदैव संलग्न रहती हैं ॥९७॥

५४९ **रतिसौन्दर्यदर्पघ्नी** – जो अपने सौन्दर्यविन्दुसे रतिके सुन्दरता-जनित महान् अभिमान को दूर करती है।

५५० **रतीशेहाहरस्मृतिः** — जिनके स्मरण मात्रसे कामचेष्टा लुट जाती है।

५५१ **रविमण्डलमध्यस्था** — जो सूर्यमण्डलमें भगवान् श्रीरामजीके सहित सदा विराजती हैं।

५५२ **रविवंशेन्दुहृत्स्थिता** – जो सूर्यवंश को पूर्ण चन्द्रके समान परमआह्लादित करने वाले प्रभु श्रीरामजीके हृदयकमलमें विराज रही हैं ॥९८॥

रसज्ञा रसभावज्ञा रसानन्दविवर्द्धिनी । रमणीयगुणग्राता रमाराध्या रमालया ॥९९॥
रम्यरम्यनिधी रम्याशेषा रसमयाकृतिः । रसापुत्री रसासक्ता रसिकानां परागतिः ॥१००॥
रसिकेन्द्रप्रिया राकाधिपपुञ्जनिभानना । राघवेन्द्रप्रभावज्ञा राधा रासरसेश्वरी ॥१०१॥

५५३ **रसज्ञा** — जो सभी रसोंकी पूर्ण जानकारी रखती हैं अथवा सभी भक्त अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार जिनका अनेक प्रकारसे आस्वादन करते हैं, उन रस स्वरूप सच्चिदानन्दघन ब्रह्म श्रीरामजीको जो हर प्रकारसे जानती हैं ।

५५४ **रसभावज्ञा** — जो रसरूप भगवान् श्रीरामजी की सभी चेष्टाओंका भाव भली प्रकार जानती हैं ।

५५५ **रसानन्दविवर्द्धिनी** — जो अपने श्रीचरणस्पर्श, बाललीला, तथा क्षमादि लोकोत्तर गुणों के द्वारा पृथ्वीके आनन्दको विशेष बढ़ाती रहती हैं ।

५५६ **रमणीयगुणग्रामा** — जिनके सभी गुण समूह अत्यन्त मनोहर हैं ।

५५७ **रमाराध्या** — श्रीलक्ष्मीजीको भी जिनकी उपासना करना कर्त्तव्य है ।

५५८ **रमालया** — जिनमें अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सभी लक्ष्मियाँ निवास करती हैं ॥९९॥

५५९ **रम्यरम्यनिधिः** — जो मनोहरसे मनोहर, सुन्दरसे सुन्दर सभी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि की भण्डार हैं ।

५६० **रम्याशेषा** — जिनका नाम, रूप, लीला, धाम तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध सब कुछ अत्यन्त मनोहर है ।

५६१ **रसमयाकृतिः** — जिनका श्रीविग्रह रस (सच्चिदानन्दघन ब्रह्म) मय है अथवा सभी रसोंकी जो साकार विग्रह हैं ।

५६२ **रसापुत्री** — जो पृथ्वीसे प्रकट होनेके नाते उसकी पुत्री कही जाती हैं ।

५६३ **रसासक्ता** — जो रसस्वरूप भगवान् श्रीरामजीमें परम आसक्त हैं अथवा जिनके प्रति भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार परम आसक्ति रखते हैं ।

५६४ **रसिकानां परागतिः** — जो रसस्वरूप भगवान् श्रीरामजीके उपासकोंकी परम आधार स्वरूपा हैं ॥१००॥

५६५ **रसिकेन्द्रप्रिया** — जो भक्तोंको अपना स्वामी माननेवाले भगवान् श्रीरामजीकी प्राणप्यारीहैं

५६६ **राकाधिपपुञ्जनिभानना** — जिनका श्रीमुखारविन्द शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रसमूहोंके समान प्रकाशमय, परम आह्लादकारी है ।

५६७ **राघवेन्द्रप्रभावज्ञा** — जो श्रीराघवेन्द्र सरकारकी महिमाको पूर्णतया जानती हैं ।

५६८ **राधा** — जो आश्रितोंके लौकिक तथा पारलौकिक सभी प्रकारके हितकर मनोरथोंकी पूर्त्ति करती हैं ।

५६९ **रासरसेश्वरी** — जो भगवान् श्रीरामजीके आनन्द-भण्डारकी स्वामिनी हैं अर्थात् जिनकी कृपा से ही प्राणियोंको भगवत्-चिन्तन, मनन, श्रवण, कीर्त्तन, सेवादि-जनित आनन्दकी अनुभूति प्राप्त होती है ॥१०१॥

रासलीलाकलापज्ञा रासानन्दप्रदायिनी । रासेशी रूपदाक्षिण्यमण्डिता लक्ष्मणार्च्चिता ॥१०२॥
ललनादर्शचरिता ललनाधर्मदीपिका । ललामैकनामरूपलीलाधामगुणादिका ॥१०३॥
ललिताम्भोजपत्राक्षी ललिताशेषचेष्टिता । लावण्यजितपाथोधिर्लाकृतिर्लीनरक्षिका ॥१०४॥
लीलाभूमाधवप्रेष्ठा लोककल्याणतत्परा । लोकत्रयमहाराज्ञीलोकमृग्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥१०५॥

५७० **रासलीला कलापज्ञा** -- जो भगवान् श्रीरामजीकी सभी लीलाओं को जानती हैं ।

५७१ **रासानन्दप्रदायिनी** -- जो अपने अश्रितोंको रसस्वरूप भगवान् श्रीरामजीके दिव्य धाम-निवासी भक्तोंका आनन्द प्रदान करती हैं ।

५७२ **रासेशी** -- जो वात्सल्यभाव की पराकाष्ठाके कारण भक्तोंके शासनमें रहती हैं ।

५७३ **रूपदाक्षिण्यमण्डिता** -- जो निरतिशय (सबसे बढ़कर) सौन्दर्य तथा चतुराईसे विभूषित हैं ।

५७४ **लक्ष्मणार्च्चिता** -- जो यूथेश्वरी सखी श्रीलक्ष्मणाजीसे पूजित हैं । अथवा श्रीलखन-लालजी जिनका नित्यपूजन करते हैं ॥१०२॥

५७५ **ललनादर्शचरिता** -- जिनके चरित, पतिव्रता स्त्रियोंके लिये आदर्श रूप हैं ।

५७६ **ललनाधर्मदीपिका** -- जो स्त्रियोंके (पातिव्रत्य) धर्मपर दीपकके समान प्रकाश डालने वाली हैं ।

५७७ **ललामैकनामरूपलीलाधामगुणादिका** -- जिनका नाम रूप, लीला, धाम, गुण समूहादि सब कुछ निरुपम सुन्दर है ॥१०३॥

५७८ **ललिताम्भोजपत्राक्षी** -- कमलदलके समान जिनके विशालनेत्र अत्यन्त सुन्दर हैं ।

५७९ **ललिताशेषचेष्टिता** -- जिनकी सभी चेष्टायें अत्यन्त मनोहर हैं ।

५८० **लावण्यजितपाथोधिः** -- जो अपनी सुन्दरताकी अगाधतासे समुद्रको जीत लिये हैं ।

५८१ **लाकृतिः** -- जो समस्त ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीरामकी लक्ष्मी स्वरूपा हैं ।

५८२ **लीनरक्षिका** -- जो भावमग्न-भक्तोंकी सदा रक्षा करती हैं ॥१०४॥

५८३ **लीलाभूमाधवप्रेष्ठा** -- जो श्री, भू, लीलादेवीके पति भगवान् श्रीरामजीकी परमप्यारी हैं ।

५८४ **लोककल्याणतत्परा** -- जो प्राणियोंके वास्तविक कल्याण साधनमें सदा तत्पर रहती हैं ।

५८५ **लोकत्रयमहाराज्ञी** -- जो तीनों लोकोंकी महारानी हैं ।

५८६ **लोकमृग्याङ्घ्रिपङ्कजा** -- ब्रह्मा, विष्णु, महेशोंको भी जिनके श्रीचरणकमलोंकी खोज करना कर्त्तव्य है ॥१०५॥

लोकज्ञा लोकशरणं लोकपावनपावनी । लोकप्रगीतमहिमा लोकानुत्तमदर्शना ॥१०६॥
लोकालयकलापाम्बा लोकोत्पत्त्यादिकारिणी । लोकेशकान्ता लोकेशी लोकैकप्रियकाङ्क्षणी१०७
लोचनादीन्द्रियव्रातशक्तिसञ्चारकारिणी । लोपयित्री लोभहरा लोमशादिकभाविता ॥१०८॥
वत्सरा वत्सलोत्कृष्टा वदान्या वनजेक्षणा । वनमालाञ्चिता बभ्री वरणीयपदाश्रया ॥१०९॥

५८७ **लोकज्ञा** -- जो तीनों लोकोंका ज्ञान रखती हैं ।

५८८ **लोकशरणम्** -- जो सभी लोगोंकी वास्तविक रक्षा करने वाली हैं ।

५८९ **लोकपावनपावनी** -- जो लोकोंको पवित्र करने वाले तीर्थोंको भी अपने भक्तोंके चरण स्पर्शसे पवित्र बनाने वाली हैं ।

५९० **लोकप्रगीतमहिमा** -- ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनकी महिमाका गान करते हैं ।

५९१ **लोकानुत्तमदर्शना** -- प्राणियोंके लिये जिनका दर्शन सबसे बढ़कर है ॥१०६॥

५९२ **लोकालयकलापाम्बा** -- जो ब्रह्माण्ड-समूहोंकी माता हैं ।

५९३ **लोकोत्पत्त्यादिकारिणी** -- जो समस्तलोकोंकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली हैं ।

५९४ **लोकेशकान्ता** -- जो ब्रह्मा, विष्णु, महेशके नियामक भगवान् श्रीरामजीकी प्राणप्यारी हैं ।

५९५ **लोकेशी** -- जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा तीनों लोकों पर शासन करने वाली हैं ।

५९६ **लोकैकप्रियकाङ्क्षणी** -- जो प्राणियोंका सबसे बढ़कर भला चाहती हैं ॥१०७॥

५९७ **लोचनादीन्द्रियव्रातशक्तिसञ्चारकारिणी** -- जो नेत्रादि सभी इन्द्रियोंमें शक्तिका सञ्चार करती हैं अर्थात् जिनके शक्तिसञ्चार करनेसे ही नेत्रोंमें देखनेकी, श्रवणोंमें सुननेकी, मनमें मनन करनेकी, बुद्धिमें निश्चय करनेकी शक्ति प्राप्ति होती है ।

५९८ **लोपयित्री** -- जो आश्रितोंके सभी पाप और दुःखों को लोप (गायब) कर देती हैं ।

५९९ **लोभहरा** -- जो भक्तोंके हृदयसे सार्वभौम (चक्रवर्ती) इन्द्र, ब्रह्मा आदिके पदका तथा अष्ट सिद्धि, नव निधियों की प्राप्तिका भी लोभ हरण कर लेती हैं ।

६०० **लोमशादिकभाविता**--चिरञ्जीवी श्रीलोमशजीआदि महर्षिगण जिनका ध्यान करतेहैं१०८

६०१ **वत्सरा** -- जिनमें सभी चर-अचर प्राणियोंका निवास है ।

६०२ **वत्सलोत्कृष्टा** -- जो अपराधोंको हृदयमें न रखकर, अपराधीका केवल परम हितचाहने वाली शक्तियोंमें, सबसे बढ़कर हैं ।

६०३ **वदान्या** -- जिनके समान कोई उदार नहीं है ।

६०४ **वनजेक्षणा** -- जिनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल तथा मनोहर हैं ।

६०५ **वनमालाञ्चिता** -- जो वनके पुष्पोंसे गुथी हुई मालाको धारण करती हैं ।

६०६ **बभ्री** -- जो समस्त जीवोंका भरण पोषण करने वाली हैं ।

६०७ **वरणीयपदाश्रया** -- अपनी वास्तविक हित सिद्धिके लिये जिनके श्रीचरणारविन्दोंका आधार ग्रहण करना ही समस्त देहधारियोंके लिये परम कर्त्तव्य है ॥१०९॥

वरदाधिराजकान्ता वरदा वरवर्णिनी । वरबोधा वरारोहाराधिता वर्णनातिगा ॥११०॥
वर्णभावा वर्णश्रेष्ठा वर्णाश्रमविधायिनी । वर्ण्यानवद्यचित्केलिर्वर्द्धिनी सुखसम्पदाम् ॥१११॥
वशकृद्वशगश्रेष्ठा वश्या वसुप्रदायिनी । बहुश्रुता वाच्यकीर्त्तिर्वारिजासनवन्दिता ॥११२॥

६०८ **वरदाधिराजकान्ता** -- जो अभीष्ट प्रदायक सभी देवोंके सम्राट् (शाहंशाह) भगवान् श्रीरामजी की पटरानी हैं ।

६०९ **वरदा** -- जो आश्रितोंको हितकर सभी अभीष्ट प्रदान करती हैं ।

६१० **वरवर्णिनी** -- जो स्त्रियोंमें लक्ष्मी स्वरूपा हैं ।

६११ **वरबोधा** -- जिनका ज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है ।

६१२ **वरारोहाराधिता** -- यूथेश्वरी श्रीवरारोहाजी जिनको प्रसन्न कर चुकी हैं ।

६१३ **वर्णनातिगा** -- जो वर्णनसे परे हैं अर्थात् चाहे कितना भी वर्णन किया जाय पर जो उससे भी परे ही रहती हैं ॥११०॥

६१४ **वर्णभावा** -- जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चारो वर्णोंकी कारणस्वरूपा हैं ।

६१५ **वर्णश्रेष्ठा** -- जो चारो वर्णोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण (ब्रह्मोपासक) स्वरूपा है ।

६१६ **वर्णाश्रमविधायिनी** — जिन्होंने लोक व्यवहारकी सुलभताके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र इन चार आश्रमोंको वनाया है ।

६१७ **वर्ण्यानवद्यचित्केलिः** — जिनकी सभी दोषोंसे रहित प्रशंसा योग्य, चित् लीलाएं वर्णन करने योग्य हैं ।

६१८ **वर्द्धिनी सुखसम्पदाम्** — जो भक्तोंके वास्तविक सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाली हैं।१११॥

६१९ **वशकृत्** — जिनकी अगाध प्रेम तथा अनुपम निर्हेतुकी कृपादि दिव्यगुण गण प्यारे श्रीरामजीको वशमें करने वाले हैं ।

६२० **वशगश्रेष्ठा** — जो निष्कपट भावके द्वारा भक्तोंके वशमें हो जाने वाली सभी शक्तियों में श्रेष्ठ हैं ।

६२१ **वश्या** — जिन्हें केवल भावसे ही वशमें किया जा सकता है ।

६२२ **वसुप्रदायिनी** — जो भक्तोंको सब प्रकारकी हित कर सम्पत्ति प्रदान करती हैं ।

६२३ **बहुश्रुता** — जो अपनी स्वाभाविक महिमाके कारण पूर्ण विख्यात हैं ।

६२४ **वाच्यकीर्त्तिः** - अन्तःकरण शुद्धिके लिये जिनका सुन्दर यश ही वर्णन करने योग्य है ।

६२५ **वारिजासनवन्दिता** - जिन्हें श्रीब्रह्माजी भी प्रणाम करते हैं ॥११२॥

विकल्मषा विक्षरात्मा विगतेहा विजेतृका । विज्ञानदात्री विज्ञानमयाप्राकृतविग्रहा ॥११३॥
विज्ञा विज्वरा विदिता विदिशा विद्ययाऽन्विता । विद्यावत्पुङ्गवोत्कृष्टा विधात्री विधिकेतना ११४
विधिदुर्ज्ञेयमहिमा विधुपूर्णमुखाम्बुजा । विनयार्हा विनीतात्मा विपक्वात्मा विपद्धरा ॥११५॥

६२६ **विकल्मषा** — जो सब प्रकारके पापोंसे अछूती हैं ।

६२७ **विक्षरात्मा** – जिनकी बुद्धि कभी भी क्षीण नहीं होती ।

६२८ **विगतेहा** – पूर्ण काम होनेके कारण जो सब प्रकारकी प्राकृत चेष्टाओंसे रहित हैं ।

६२९ **विजेतृका** – जिन्हें अपने बल बुद्धिसे कोई जीत नहीं सकता । अथवा जो सभी पर विजय पाने वाली हैं ।

६३० **विज्ञानदात्री** — जो आश्रित-चेतनोंको भगवत्-सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान प्रदान करती हैं ।

६३१ **विज्ञानमयाप्राकृतविग्रहा** – जिनका सुन्दर स्वरूप पञ्चभूतोंसे न बना हुआ दिव्य ज्ञान-मय है ॥११३॥

६३२ **विज्ञा** — जो समस्त प्राणियोंके मन, बुद्धि, चित्तकी क्रियाओंका विशेष ज्ञानरखती हैं ।

६३३ **विज्वरा** – जो दैहिक, दैविक तथा मानसिक ज्वरोंसे परे हैं ।

६३४ **विदिता** – जो अपनी शक्ति, स्वरूप कीर्तिके द्वारा सर्वत्र विख्यात हैं ।

६३५ **विदिशा** – जो प्राणियोंको उनके कर्मानुसार नाना प्रकारका फल देने वाली हैं ।

६३६ **विद्ययाऽन्विता** – जो ब्रह्म विद्यासे परिपूर्ण हैं ।

६३७ **विद्यावत्पुङ्गवोत्कृष्टा** – जो श्रेष्ठ विद्वानोंमें भी सबसे बढ़कर हैं ।

६३८ **विधात्री** — जो सम्पूर्ण सृष्टिका नियम बनाने वाली हैं ।

६३९ **विधिकेतना** – जो समस्त हितकर विधियोंमें और सम्पूर्ण विधियाँ जिनमें निवास-करती हैं ॥११४॥

६४० **विधिदूर्ज्ञेयमहिमा** – जिनकी महिमाको चारो वेदोंके द्वारा भी समझना कठिन है अथवा पितामह ब्रह्माको भी जिनकी महिमाका ज्ञान प्राप्त होना कठिन है ।

६४१ **विधुपूर्णमुखाम्बुजा** – जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रसमूहके समान, हृदयताप-निवारक परम आह्लादकारी है ।

६४२ **विनयार्हा** – जो सभी देव, मुनि, सिद्ध तथा साधकोंके द्वारा विनय ही करने योग्य हैं ।

६४३ **विनीतात्मा** — जिनका स्वभाव बहुत ही नम्र है ।

६४४ **विपक्वात्मा** – जिनका ज्ञान पूर्ण परिपक्व है ।

६४५ **विपद्धरा** – जो आश्रितोंकी सम्पूर्ण आपत्तियोंको हरण कर लेती हैं ॥११५॥

विमत्सरा विमलार्च्या विमुक्तात्मा विमुक्तिदा। विमोहिनी वियन्मूर्त्तिर्विरतिप्रदचिन्तना ॥११६॥
विरामा विलसत्क्षान्तिर्विबुधर्षिगणार्चिता । विवेकपरमाधारा विवेकवदुपासिता ॥११७॥
विशदश्लोकसम्पूज्या विशालेन्दीवरेक्षणा। विशिष्टात्मा विशेषज्ञा विश्वलीलाप्रसारिणी ॥११८॥
विश्वतः पाणिपादास्या विश्वमात्रैकधारिणी । विश्वभरणी विश्वात्मा विश्वालयब्रजेश्वरी ११९

६४६ **विमत्सरा** — जिन्हें किसीकी उन्नतिको देखकर ईर्ष्या (डाह) नहीं होती ।
६४७ **विमलार्च्या** – जो यूथेश्वरी सखी श्रीविमलाजीके द्वारा पूजने योग्य हैं ।
६४८ **विमुक्तात्मा** – जिनका हृदय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि पञ्चविषयोंसे रहित है।
६४९ **विमुक्तिदा** – जो अपने आश्रितोंको पञ्च विषयोंसे निवृत्ति प्रदान करती हैं ।
६५० **विमोहिनी** – जो अनायास ही अपने शील-स्वभावसे चेतनोंको पूर्ण मुग्ध कर लेती हैं।
६५१ **वियन्मूर्त्तिः** — जिनका मङ्गलमय विग्रह आकाशतत्त्वके समान सर्वत्र व्यापक है ।
६५२ **विरतिप्रदचिन्तना** -- जिनका चिन्तन (स्मरण) वैराग्यको प्रदान करता है ॥११६॥
६५३ **विरामा** -- जो समस्त प्राणियोंका विश्रामस्थान हैं अर्थात् जिनको प्राप्त करके प्राणी सब प्रकारसे निश्चिन्त हो जाता है और जबतक नहीं प्राप्त होता, भटकताही रहता है।
६५४ **विलसत्क्षान्तिः** – जिनकी क्षमा समस्त ब्रह्माण्डमें लहलहा रही है ।
६५५ **विबुधर्षिगणार्चिता** – देवता तथा ऋषि वृन्द जिनकी पूजा करते हैं ।
६५६ **विवेकपरमाधारा** – जो ज्ञानकी सबसे श्रेष्ठ (मुख्य) आधारस्वरूपा हैं ।
६५७ **विवेकवदुपासिता** – वास्तविक ज्ञानी जन जिनकी उपासना करते हैं ॥११७॥
६५८ **विशदश्लोकसम्पूज्या**–जो अपने पवित्रयश की विशेषताकेकारण सब प्रकारसे पूजनीय हैं।
६५९ **विशालेन्दीवरेक्षणा** — श्याम कमल दलके समान जिनके विशाल एवं मनोहर नेत्र हैं।
६६० **विशिष्टात्मा** – जिनके मन बुद्धि और चित्तमें एक भगवान् श्रीरामभद्रजू ही सदा निवास करते हैं अथवा जिनकी बुद्धि सबसे बढ़कर है ।
६६१ **विशेषज्ञा** – जिनका ज्ञान सबसे विशेष है ।
६६२ **विश्वलीलाप्रसारिणी** — जो विश्वरूपी लीलाको फैलाने वाली हैं ॥११८॥
६६३ **विश्वतः पाणिपादास्या** – जिनके अप्राकृत हाथ, पैर, मुख श्रवण आदि इन्द्रियाँ चारो ओर हैं अर्थात् जो सब ओर भक्तोंकी रक्षा, भरण-पोषण करती हैं, उनके भक्ति-पूर्वक समर्पणकिये हुये पदार्थोंको सभी ओरसे ग्रहण करती हैं तथाउनकी भावपूर्त्तिके लिए पूजा तथा प्रणामादि स्वीकार करती हैं, और प्रार्थनाको जो सभी ओरसे श्रवण करती हैं।
६६४ **विश्वमात्रैकधारिणी** – जो शेष रूपसे विश्वको एक मात्र धारण करने वाली हैं ।
६६५ **विश्वभरणी** – जो विश्वके समस्त प्राणियोंका भरण-पोषण करती हैं ।
६६६ **विश्वात्मा** – जो समस्त विश्वकी आत्मा हैं अथवा सारा विश्वही जिनका शरीर है ।
६६७ **विश्वालयब्रजेश्वरी** – जो ब्रह्माण्ड समूहों पर शासन करने वाली हैं ॥११९॥

विश्वासरूपा विश्वेषां साक्षिणी विस्तृतोत्तमा ।
वीणावाणी वीतभ्रान्ति र्वीतरागस्मयादिका ॥१२०॥
वीतशङ्कसमाराध्या वीतसम्पूर्णसाध्वसा ।
बुधाराध्याङ्घ्रिकमला वृषपा वेदविश्रुता ॥१२१॥
वेदगा वेदनिःश्वासा वेदप्रणुतसद्गुणा ।
वेदप्रतिपाद्यतत्त्वा वेदवेदान्तकोविदा ॥१२२॥

६६८ **विश्वासरूपा** — जो विश्वास स्वरूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रकट होकर पूर्ण निर्भयता प्रदान करती हैं ।

६६९ **विश्वेषां साक्षिणी** – जो समस्त प्राणियोंके कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मोंकी साक्षिणी (गवाह) स्वरूपा है ।

६७० **विस्तृतोत्तमा** — जो सभी आकाश, वायु आदि व्यापक तत्वोंसे उत्तम है ।

६७१ **वीणावाणी** – जिनकी बोली वीणा स्वरके समान सुमधुर है ।

६७२ **वीतभ्रान्तिः** – जिन्हें कभी भी किसी प्रकार का धोखा नहीं होता ।

६७३ **वीतरागस्मयादिका** — जिनमें किसी प्रकारकी आसक्ति और अभिमान आदि का कोई विकार नहीं आता ॥१२०॥

६७४ **वीतशङ्कसमाराध्या** — समस्त शङ्काओं से रहित साधकों द्वारा ही जिनकी आराधना सम्भव है ।

६७५ **वीतसम्पूर्णसाध्वसा** -- सर्व हितपरायणा तथा पूर्णकाम होनेके कारण जिन्हें किसीसे किसी प्रकारका कोई भय नहीं होता ।

६७६ **बुधाराध्याङ्घ्रिकमला** — आत्मज्ञानियोंके लिये जिनके श्रीचरण-कमल ही एक उपासनाके योग्य हैं ।

६७७ **वृषपा** – जो सानतन धर्म की रक्षा करने वाली हैं ।

६७८ **वेदविश्रुता** – जो चारो वेदोंमें प्रसिद्ध हैं ॥१२१॥

६७९ **वेदगा** – जो सम्पूर्ण वेदोंमें व्याप्त हैं अथवा जो सामवेद का गान करने वाली हैं ।

६८० **वेदनिःश्वासा** — वेद जिनके श्वास स्वरूप हैं ।

६८१ **वेदप्रणुतसद्गुणा** – वेद भगवान् जिनके सद्गुणोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।

६८२ **वेदप्रतिपाद्यतत्त्वा** – जिनके तत्त्वका वर्णन करनेमें वेद भगवान् ही कुछ समर्थ हैं ।

६८३ **वेदवेदान्तकोविदा** – जो वेद और वेदान्त (उपनिषदों) के तात्पर्य को भली-भाँति जानती हैं ॥१२२॥

वेदरक्षाविधानज्ञा वेदसारमयाकृतिः । वेदान्तवेद्या वेदान्ता वैदेही वैभवार्णवा ॥१२३॥
वङ्कचिकुरा वङ्कभ्रूर्वङ्काकर्षणवीक्षणा । शक्तिव्रजेश्वरी शक्तिः शतमूर्त्तिः शतोदिता ॥१२४॥
शब्दब्रह्मातिगा शब्दविग्रहा शमदायिनी । शमिताश्रितसंक्लेशा शमिभक्त्याशुतोषिता ॥१२५॥

६८४ **वेदरक्षाविधानज्ञा** – जो वेदों की रक्षा का उपाय स्वयं जानती हैं।

६८५ **वेदसारमयाकृतिः** – जो वेदसार (ब्रह्मविद्या) स्वरूपा है।

६८६ **वेदान्तवेद्या** – जिन्हें वेदान्त के द्वारा ही कुछ समझा जा सकता है।

६८७ **वेदान्ता** – जो वेदान्त स्वरूपा हैं।

६८८ **वैदेही** – ब्रह्मलीनताके कारण देहकी सुधि-बुधि रहित श्रीविदेह महाराजके वंशमें जिनका प्राकट्य है।

६८९ **वैभवार्णवा** – जिनका ऐश्वर्य समुद्रके समान अथाह है ॥१२३॥

६९० **वङ्कचिकुरा** — जिनके मनोहर घुंघुराले केश हैं।

६९१ **वङ्कभ्रूः** — जिनकी भौहें काम धनुषके समान मनोहर और टेढ़ी हैं।

६९२ **वङ्काकर्षणवीक्षणा** — जिनकीकृपापूर्ण कटाक्ष सभी प्राणियोंके हृदयको सहजहीमें आकर्षित कर लेती है।

६९३ **शक्तिव्रजेश्वरी** — जो अपने इच्छानुसार शक्ति-समूहोंको विभिन्न प्रकारके कर्त्तव्योंमें नियुक्त करने वाली हैं।

६९४ **शक्तिः** — जो ब्रह्मकी पूर्ण शक्ति-स्वरूपा हैं।

६९५ **शतमूर्त्तिः** — जो चर-अचर प्राणियोंके अनन्त आकारों वाली हैं।

६९६ **शतोदिता** — असङ्ख्यों भक्त जिनकी महिमाका निरन्तर वर्णन करते हैं ॥१२४॥

६९७ **शब्दब्रह्मातिगा** — जो वेदोंसे परे हैं अर्थात् जिनका यथार्थ वर्णन भगवान् वेद भी नहीं कर सकते।

६९८ **शब्दविग्रहा** — जो सम्पूर्ण शब्द स्वरूपा हैं।

६९९ **शमदायिनी** – जो आश्रितोंके मनको शान्ति (स्थिरता) प्रदान करने वाली हैं।

७०० **शमिताश्रितसंक्लेशा** — जो आश्रितोंके समस्त कष्टोंको निवृत्त कर देती हैं।

७०१ **शमिभक्त्याशुतोषिता** — जो एकाग्र चित्तवाले भक्तोंकी आसक्तिसे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाती हैं ॥१२५॥

शम्पादामोल्लसत्कान्तिः शम्प्रदध्यानसंस्तवा ।
शम्मयाशेषकैङ्कर्या शरणं सर्वदेहिनाम् ॥१२६॥
शरणागतसंत्रात्री शरण्यैकाऽसुधारिणाम् ।
शवरीमानदप्रेष्ठा शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥१२७॥
शाश्वतचिन्तनीयाङ्घ्रिकमला शाश्वतस्थिरा ।
शाश्वती शासिकोत्कृष्टा शिरोधार्यकराम्बुजा ॥१२८॥

७०२ **शम्पादामोल्लसत्कान्तिः** — बिजलीकी मालाके समान चमकती हुई जिनके श्रीअङ्गकी कान्ति है ।

७०३ **शम्प्रदध्यानसंस्तवा** — जिनका ध्यान तथा स्तोत्र दोनोंही परम मङ्गलदायी हैं ।

७०४ **शम्मयाशेषकैङ्कर्या** — जिनकी सभी प्रकारकी सेवा मङ्गलमयी है ।

७०५ **शरणं सर्वदेहिनाम्** — जो समस्त देहधारियोंकी रक्षा करनेको समर्थ हैं तथा जो सबकी मुख्य निवास स्थान हैं ॥१२६॥

७०६ **शरणागतसंत्रात्री** – जो शरणमें आये हुये प्राणियोंकी पूर्ण रक्षा करने वाली हैं ।

७०७ **शरण्यैकाऽसुधारिणाम्** -- जो प्राणियोंकी सबसे बढ़कर रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं ।

७०८ **शवरीमानदप्रेष्ठा** — जो शवरी मैयाको प्रतिष्ठा देने वाले प्रभु श्रीरामजीकी परम-प्यारी हैं ।

७०९ **शान्ता** — जो परम शान्ति-स्वरूपा हैं ।

७१० **शान्तिप्रदायिनी** — जो उपासकोंको निष्कामता प्रदान करके परम शान्ति प्रदान करती हैं ॥१२७॥

७११ **शाश्वतचिन्तनीयाङ्घ्रिकमला** – प्राणियोंको अपने वास्तविक कल्याणके लिए, जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन, निरन्तर करना चाहिये ।

७१२ **शाश्वतस्थिरा** – जो अपने वास्तविक (ब्रह्म) स्वरूपसे सदा ही स्थिर रहती हैं अर्थात् कभी परिवर्त्तनको नहीं प्राप्त होतीं ।

७१३ **शाश्वती** — जो सदा ही एकरस बनी रहने वाली हैं ।

७१४ **शासिकोत्कृष्टा** – जो शासन करने वाली सभी शक्तियोंमें परमश्रेष्ठा हैं ।

७१५ **शिरोधार्यकराम्बुजा** – मनुष्य जीवनकी सफलताके लिये, जिनके हस्त-कमलोंको सिर पर धारण करनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेना परम आवश्यक कर्त्तव्य है ॥१२८॥

शिशिरा शीलसम्पन्ना शुचिगम्याङ्घ्रिचिन्तना । शुचिप्राप्यपदासक्तिः शुद्धान्तःकरणालया ॥१२९॥
शुद्धा शुद्धिप्रदध्याना शूलत्रयनिवारिणी । शैलराजसुतादीष्टा शोभासागरसत्कृता ॥१३०॥
शौर्यपाथोनिधिः श्यामा श्रयणीयपदाम्बुजा । श्रवणीययशोगाथा श्रीकरी श्रीप्रदायिनी ॥१३१॥

७१६ **शिशिरा** – जो भक्तोंके दैहिक, दैविक तथा मानसिक तापोंको हरण करनेके लिये शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन) के समान हैं ।

७१७ **शीलसम्पन्ना** – जिनका स्वभाव अत्यन्त उदार तथा विनम्र है ।

७१८ **शुचिगम्याङ्घ्रिचिन्तना** – जिनके श्रीचरणकमलोंका चिन्तन, विकार रहित साधकोंके लिये ही सुलभ है ।

७१९ **शुचिप्राप्यपदासक्तिः** – जिनके श्रीचरण-कमलोंकी आसक्ति विकार रहित साधकको ही प्राप्त होती है ।

७२० **शुद्धान्तःकरणालया** – जो शुद्ध (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी आसक्ति रूपी मलिनता से रहित भाग्यशालियों) के अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में सदा निवास करती हैं ॥१२९॥

७२१ **शुद्धा** – जो माया (अज्ञान) रूपी मलसे रहित हैं ।

७२२ **शुद्धिप्रदध्याना** – जिनका ध्यान समस्त लौकिक वासना रूपी विकारोंसे निवृत्ति प्रदान करता है ।

७२३ **शूलत्रयनिवारिणी** – जो दैहिक दैविक तथा मानसिक तीनों प्रकारकी शूल(पीड़ाओंको) भगा देती हैं ।

७२४ **शैलराजसुतादीष्टा** — जो भगवती श्रीपार्वतीजी आदि महाशक्तियोंकी इष्ट देवता हैं ।

७२५ **शोभासागरसत्कृता** — श्रीअङ्गकी असीम, अकथनीय सुन्दरतासे मुग्ध हो शोभासागर भगवान् श्रीरामजी भी जिनका पूर्ण सत्कार करते हैं ॥१३०॥

७२६ **शौर्यपाथोनिधिः** — जिनका बल-पराक्रम समुद्रके समान अथाह है ।

७२७ **श्यामा** — जो भक्तोंके सुखार्थ सदैव बारह वर्षकी अवस्थामें रहती हैं ।

७२८ **श्रयणीयपदाम्बुजा** — अपने पूर्ण कल्याण साधनके लिये जिनके श्रीचरणकमलोंका सहारा लेना ही प्राणियों का परम कर्त्तव्य है ।

७२९ **श्रवणीययशोगाथा** — इष्ट प्राप्ति निमित्त त्याग का आदर्श लेनेके लिये जिनके चरित श्रवण करने योग्य हैं ।

७३० **श्रीकरी** — जो भक्तों की समृद्धि (उन्नति) करने वाली हैं ।

७३१ **श्रीप्रदायिनी** – जो उपासकों को सात्विक सम्पत्ति प्रदान करती हैं ॥१३१॥

श्रीमदुत्तंसमहिता श्रीमयी श्रीमहानिधिः । श्रीलक्ष्म्यादिभिः सेव्या श्रीवासा श्रीसमुद्भवा ॥१३२॥
श्रीः श्रुतिगीतचरिता श्रुत्यन्तप्रतिपादिता । श्रेयोगुणेरणा श्रेयोनिधिः श्रेयोमयस्मृतिः ॥१३३॥
श्रौत्रियैकसमाराध्या श्लक्ष्णसूनृतभाषिणी । श्लाघनीयमहाकीर्त्तिः श्लीलचारित्र्यविश्रुता ॥१३४॥
श्लोकलब्धप्रतिष्ठाग्र्या श्वसनाधीशसत्कृता । श्वेतधामोल्लसद्वक्त्रा षट्चतुर्वस्विलोदिता ॥१३५॥

७३२ **श्रीमदुत्तंसमहिता** — जो ऐश्वर्यवानोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, हरि, हरादिकोंके द्वारा पूजित हैं ।

७३३ **श्रीमयी** — जो सम्पूर्ण शोभा मयी हैं ।

७३४ **श्रीमहानिधिः** — जो ऐश्वर्य तथा सम्पत्तिकी सबसे बड़ी भण्डार हैं ।

७३५ **श्रीलक्ष्म्यादिभिःसेव्या**—श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियोंको भी जिनकी उपासना कर्त्तव्य है ।

७३६ **श्रीवासा** — जिनमें सम्पूर्ण सुन्दरता निवास करती है ।

७३७ **श्रीसमुद्भवा** — जिनके अंशसे सम्पूर्ण शोभा, सम्पत्ति और गौरव आदिकी उत्पत्ति होती है ॥१३२॥

७३८ **श्री** — जो ब्रह्मकी साकार शोभा, सम्पत् स्वरूपा हैं ।

७३९ **श्रुतिगीतचरिता** — भगवान् वेद जिनके चरितोंका गान करते हैं ।

७४० **श्रुत्यन्तप्रतिपादिता** — जिनके परत्वका प्रतिपादन उपनिषदों ने किया है ।

७४१ **श्रेयोगुणेरणा** — जिनका गुण-गान मङ्गलमय है ।

७४२ **श्रेयोनिधिः** – जो सम्पूर्ण कल्याणोंकी भण्डार हैं ।

७४३ **श्रेयोमयस्मृतिः** — जिनका सुमिरण परम मङ्गलमय है ॥१३३॥

७४४ **श्रौत्रियैकसमाराध्या** — जो वैदिक पथगामियोंके लिये, सबसे बढ़कर उपासना योग्य हैं ।

७४५ **श्लक्ष्णसूनृतभाषिणी** — जो मधुर और यथार्थ बोलती हैं।

७४६ **श्लाघनीयमहाकीर्त्तिः** — जिनकी महाकीर्त्ति सबसे अधिक प्रशंसाके योग्य है ।

७४७ **श्लीलचारित्र्यविश्रुता** — जो अपने मङ्गलकारी चरितोंकी विशेषतासे त्रिलोकीमें विख्यात हैं ॥१३४॥

७४८ **श्लोकलब्धप्रतिष्ठाग्र्या** — अपने पावन उच्चतम आदर्श चरितोंकी विशेषतासे जिनकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि है ।

७४९ **श्वसनाधीशसत्कृता** — जो उन्चासों वायुओंके पति देवराज इन्द्रके द्वारा सत्कारको प्राप्त हैं ।

७५० **श्वेतधामोल्लसद्वक्त्रा** – जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रमाके समान परमाह्लादकारी तथा मनोहर है ।

७५१ **षट्चतुर्वस्विलोदिता** – जिनका वर्णन छः शास्त्र, चारो वेद और अठारह पुराणों द्वारा किया गया है ॥१३५॥

षडतीता षडाधारा षडर्द्धाक्षहृदिस्थिता । सखीमण्डलमध्यस्था सगुणा संक्षयोज्झिता ॥१३६॥
सङ्ख्यातीतगुणा सङ्गमुक्ता सङ्गीतकोविदा । सङ्गीर्णप्रणतत्राणा सङ्ग्रहोत्सर्जनेरता ॥१३७॥
सख्यशीघ्रसमासाद्या सज्जनोपासिताङ्घ्रिका । सतताराध्यचरणा सतीत्वादर्शदायिनी ॥१३८॥

७५२ **षडतीता** — जो षट् (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) विकारोंसे रहित हैं।

७५३ **षडाधारा** — जो सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण तेज सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य सम्पूर्ण यशको भली-भांति धारण करने वाली हैं।

७५४ **षडर्द्धाक्षहृदिस्थिता** – जो त्रिनेत्रधारी भगवान् श्रीभोलेनाथजीके हृदयमें इष्ट रूपसे सदा विराज रही हैं।

७५५ **सखीमण्डलमध्यस्था** – जो अपनी सखियोंके मण्डलमें मध्यस्थ (निष्पक्ष) रूपसे सदा विराजती हैं।

७५६ **सगुणा** — जो भक्त सुखार्थ अपनी परम-पावनी कीर्त्तिका विस्तार करनेके लिये सम्पूर्ण गुणोंको ग्रहण करती हैं।

७५७ **संक्षयोज्झिता** – जिनके रूप, गुण, शक्ति, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि कभी भी क्षीणताको प्राप्त नहीं होते अर्थात् सदैव एक रस अखण्ड बने रहते हैं ॥१३६॥

७५८ **सङ्ख्यातीतगुणा** – जिनके गुण असङ्ख्य अर्थात् गणना सेपरे हैं।

७५९ **सङ्गमुक्ता** – जिनकी किसी विषयमें आसक्ति नहीं है।

७६० **सङ्गीतकोविदा** – जो सङ्गीतशास्त्रको भली प्रकारसे जानती हैं।

७६१ **सङ्गीर्णप्रणतत्राणा** – प्रणाम मात्र करने वाले भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये जिनकी प्रतिज्ञा है।

७६२ **सङ्ग्रहोत्सर्जनेरता** – जो कर्मानुसार प्राणियोंको दण्ड तथा अनुग्रह रूपी पुरस्कार प्रदान करनेमें तत्पर रहती हैं ॥१३७॥

७६३ **सख्यशीघ्रसमासाद्या** — जो मित्रताके भाव द्वारा शीघ्र प्रसन्न होनेमें सुलभ हैं।

७६४ **सज्जनोपासिताङ्घ्रिका** – सन्त जन जिनके श्रीचरण-कमलोंकी उपासना करते हैं।

७६५ **सतताराध्यचरणा** – अपने क्षणभङ्गुर जीवनकी सार्थकताके लिये जिनके श्रीचरण-कमलोंकी उपासना निरन्तर ही करनी चाहिये।

७६६ **सतीत्वादर्शदायिनी** – जो पतिव्रताओंके आचरणका आदर्श प्रदान करती हैं ॥१३८॥

सतीवृन्दशिरोरत्नं सतीशाजस्रभाविता । सत्तमा सत्यधर्मैकपालिका सत्यरूपिणी ॥१३९॥
सत्यसञ्चिन्तना सत्यसन्धा सत्यापतिस्नुषा । सत्या सत्रधरागर्भोद्भूता सत्ववदग्रणीः ॥१४०॥
सदाचारा सदासेव्या सदृशातीतशेमुषी । सनातनी सनानम्या सन्तोषैकप्रदायिनी ॥१४१॥
सन्देहापहरा सन्धिः सन्निषेव्यसमाश्रिता । सन्नुत्याशेषचरिता सभ्यलोकसभाजिता ॥१४२॥

७६७ **सतीवृन्दशिरोरत्नं** – जो सभी पतिव्रताओंमें सबसे मुख्य हैं ।

७६८ **सतीशाजस्रभाविता** – भगवान् श्रीभोलेनाथजी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं ।

७६९ **सत्तमा** – जिनसे बढ़कर कोई है ही नहीं ।

७७० **सत्यधर्मैकपालिका** — जो सत्य तथा धर्म पालन करनेवाली शक्तियोंमें सबसे बढ़कर हैं ।

७७१ **सत्यरूपिणी** — जो सत्य (ब्रह्म) का स्वरूप ही हैं ॥१३९॥

७७२ **सत्यसञ्चिन्तना** – जिनका ध्यान ही वस्तुतः सत्य (सार) है और सब असार ।

७७३ **सत्यसन्धा** — जिनकी प्रतिज्ञा कभी झूठी नहीं होती ।

७७४ **सत्यापतिस्नुषा** – जो अयोध्या नरेश श्रीदशरथजी महाराजकी पुत्रवधू (पतोहू) हैं ।

७७५ **सत्या** — जो भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालमें सत्य हैं ।

७७६ **सत्रधरागर्भोद्भूता** — जो श्रीमिथिलेशजी महाराजकी यज्ञभूमिके गर्भसे प्रकट हैं ।

७७७ **सत्ववदग्रणीः** — जो पराक्रमियोंमें सबसे बढ़कर हैं ॥१४०॥

७७८ **सदाचारा** – जिनके सभी आचरण सत् हैं ।

७७९ **सदासेव्या** — जिनकी निरन्तर सेवा करना ही प्राणियोंका कर्त्तव्य है तथा जो सन्तों द्वारा ही पूर्ण रूपसे सेवित होने योग्य हैं ।

७८० **सदृशातीतशेमुषी** – जिनकी बुद्धिके समान किसीकी भी बुद्धि विशाल नहीं है ।

७८१ **सनातनी** – जो आदि-काल से हैं ।

७८२ **सनानम्या** — जो निरन्तर प्रणाम करने योग्य हैं ।

७८३ **सन्तोषैकप्रदायिनी** — जो अपने दर्शनादिके द्वारा आश्रितोंको सबसे बढ़कर सन्तोष प्रदान करती हैं ॥१४१॥

७८४ **सन्देहापहरा** – जो आश्रितोंके हृदयमें उदित हुई सभी शङ्काओंको हरण कर लेती हैं ।

७८५ **सन्धिः** – जो सन्धि (अवकाश) स्वरूपा हैं ।

७८६ **सन्निषेव्यसमाश्रिता** – जिनके आश्रितजनों की सेवा तन, मन, धन आदि सभी प्रकारसे करनी आवश्यक है ।

७८७ **सन्नुत्याशेषचरिता** – जिनके सम्पूर्ण चरित सन्तोंके द्वारा प्रशंसा योग्य हैं ।

७८८ **सभ्यलोकसभाजिता** — सज्जनवृन्द जिनका सदैव पूजा-सम्मान करते हैं ॥१४२॥

समग्रज्ञानवैराग्यधर्मश्रीर्यशोनिधिः । समग्रैश्वर्यसम्पन्ना समतीतगुणोपमा ॥१४३॥
समदृष्टिः समच्यैंका समर्थाग्र्या समर्धका । समविश्वमनोज्ञाङ्गी समवेक्ष्याङ्घ्रिलाञ्छना ॥१४४॥
समाकर्ण्यंयशःपङ्क्तिः समाहर्त्री समाहिता । समानात्मा समाराध्या समालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ।१४५।

७८९ **समग्रज्ञानवैराग्यधर्मश्रीर्यशोनिधिः** – जो सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण श्रीः (सुन्दरता-तेज), सम्पूर्ण यशकी भण्डार हैं ।

७९० **समग्रैश्वर्यसम्पन्ना** — जो सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी भण्डार हैं ।

७९१ **समतीतगुणोपमा** — जिनके गुणोंकी उपमा नहीं है ॥१४३॥

७९२ **समदृष्टिः** — जिनकी दृष्टिमें सदैव प्राणप्यारे ही विराजते हैं अथवा समस्त प्राणियोंके प्रति जिनकी समान हितकर दृष्टि है ।

७९३ **समच्यैंका** – जिनसे बढ़कर कोई पूजने योग्य है ही नहीं ।

७९४ **समर्थाग्र्या** — जिनसे बढ़कर किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है ।

७९५ **समर्धका** – जिनसे बढ़कर कोई अभीष्ट पूर्ण करने वाला नहीं है ।

७९६ **समविश्वमनोज्ञाङ्गी**– जिनके सभी अङ्ग विश्वभरमें सबसे अधिक मनोहर और सुडौल हैं।

७९७ **समवेक्ष्याङ्घ्रिलाञ्छना** – जिनके श्रीचरण-कमलोंके स्वस्तिक, ऊर्ध्व रेखा, कमल, वज्र कुलिश छत्र, चामर, हल, मूसल सिंहासन, त्रिवली अमृत कुण्ड, सरयू लक्ष्मी, पृथ्वी आदि सभी चिह्न वश दर्शन ही करने योग्य हैं ॥१४४॥

७९८ **समाकर्ण्यंयशःपङ्क्तिः** – (मनुष्य जीवनकी सफलताके लिये जिनके यशकी एक पंक्तिभी भली-भाँति सुनने योग्य है ।

७९९ **समाहर्त्री** – जो भक्तोंके सम्पूर्ण कष्टोंको पूर्ण रूपसे हरण कर लेती हैं अथवा महाप्रलय में सारी सृष्टि को समेटकर जो अपने आपमें लीन कर लेती हैं ।

८०० **समाहिता** – हित-साधन पूर्वक भक्तोंकी सुरक्षा के लिये जो सदैव सावधान रहती हैं ।

८०१ **समानात्मा** — जो निराकार ब्रह्मस्वरूप से सभी भले बुरे, चर-अचर प्राणियोंके लिये समान विचार की हैं ।

८०२ **समाराध्या** — प्राणियोंको पूर्ण सुख-शान्तिके लिये भली भाँति जिनकी उपासना करना ही अमोघ-साधन है ।

८०३ **समालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा** – संसार रूपी अथाह सागरसे पार होनेके लिये जिनके श्रीचरण-कमलोंका सहारा लेना ही कर्त्तव्य है ॥१४५॥

समावर्ता समासेव्या समार्हा समितिञ्जया । समीक्ष्याव्याजकरुणा संविभाव्यसुविग्रहा ।।१४६।।
सरयूपुलिनाक्रीडा सरला सरसेक्षणा । सर्गस्थित्यन्तप्रभवा सर्वकामप्रदायिनी ।।१४७।।
सर्वकार्यबुधा सर्वच्छद्मज्ञा सर्वजन्मदा । सर्वजीवहिता सर्वज्ञानिनां ज्ञेयसत्तमा ।।१४८।।
सर्वज्ञाननिधिः सर्वज्ञानवद्भिरुपासिता । सर्वज्ञा सर्वज्येष्ठादिः सर्वतीर्थमयस्मृतिः ।।१४९।।

८०४ **समावर्ता** – जो संसार रूपी चक्रको भली भाँति घुमाती रहती हैं ।

८०५ **समासेव्या** — जो जगज्जनी और परमहितकारिणी होनेके कारण, प्राणियोंके लिये सम्यक् प्रकारसे उपासना करने योग्य हैं ।

८०६ **समार्हा** – जो अन्तर्यामिनी रूपसे सभीके लिये समान हैं तथा भगवान श्रीरामजी ही जिनके योग्य वर और जो उनके योग्य दुलहिन हैं ।

८०७ **समितिञ्जया** – जिन्हें सर्वत्र विजय प्राप्त है ।

८०८ **समीक्ष्याव्याजकरुणा** – भगवदानन्द-सागरमें गोता लगानेके लिये, सभी प्रकारकी प्रिय-अप्रिय, उपस्थित परिस्थितियों (हालत) में जिनकी अहैतुकीकृपाका ही सम्यक् प्रकार से प्रतिक्षण दर्शन करते रहना चाहिये ।

८०९ **संविभाव्यसुविग्रहा**–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-इन पाँचों विषयों पर विजय पानेके लिये जिनके मङ्गलमय सुन्दर श्रीविग्रहका ही भली भाँति सदैव ध्यान करना कर्त्तव्य है।।१४६।।

८१० **सरयूपुलिनाक्रीडा** — जो श्रीसरयूजीके किनारे भक्त-सुखद लीला करती रहती हैं ।

८११ **सरला**–जिनमें किसी प्रकारकीभी कुटिलता नहीं अर्थात् जो अत्यन्त सरल स्वभाव कोहैं ।

८१२ **सरसेक्षणा** – जिनके कमलवत् नेत्र दयालुता रूपी रससे रसीले हैं ।

८१३ **सर्गस्थित्यन्तप्रभवा** – जो जगत्की उत्पत्ति, तथा संहारकी सबसे मुख्य कारण हैं ।

८१४ **सर्वकामप्रदायिनी**–जो अपने आश्रितोंकी सभी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करतीहैं ।।१४७।।

८१५ **सर्वकार्यबुधा** – जो सभी प्रकारके कर्त्तव्यों का ज्ञान रखती हैं ।

८१६ **सर्वच्छद्मज्ञा** – जो सबके कपटको भली भाँति जान लेती हैं ।

८१७ **सर्वजन्मदा** – जो सभी जीवोंको जन्म देने वाली हैं ।

८१८ **सर्वजीवहिता** – जो सभी जीवमात्र का हित करने वाली हैं ।

८१९ **सर्वज्ञानिनां ज्ञेयसत्तभा** – समस्त ज्ञानियोंकेलिये, जिनकारहस्य समझना आवश्यक है ।

८२० **सर्वज्ञाननिधिः** – जो सम्पूर्ण ज्ञानकी निधि (भण्डार) हैं

८२१ **सर्वज्ञानवद्भिरुपासिता** — समस्त ज्ञानी जन जिनका भजन करते हैं ।

८२२ **सर्वज्ञा** – जो सभी प्राणियोंके भूत, भविष्य, वर्तमान के कायिक, वाचिक मानसिक कर्म तथा उनके अनिवार्य फल सुख-दुख रूप पुरस्कार एवं दण्ड को भली भाँति जानती हैं ।

८२३ **सर्वज्येष्ठादिः** – जिनसे बड़ा कोई है ही नहीं ।

८२४ **सर्वतीर्थमयस्मृतिः**–जिनका सुमिरण साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंसे अधिक पुण्यदायक है।।१४९।।

सर्वतोऽक्ष्यास्यहस्ताङ्घ्रिकमला सर्वदर्शना । सर्वदिव्यगुणोपेता सर्वदुःखहरस्मिता ॥१५०॥
सर्वदेवनुता सर्वधर्मतत्त्वविदां वरा । सर्वधर्मनिधिः सर्वनायकोत्तमनायिका ॥१५१॥
सर्वनीतिरहस्यज्ञा सर्वनैपुण्यमण्डिता । सर्वपापहरध्याना सर्वपावनपावनी ॥१५२॥
सर्वभक्तावनाभिज्ञा सर्वभक्तिमतां गतिः । सर्वभावपदातीता सर्वभावप्रपूरिका ॥१५३॥
सर्वभुक्तिप्रदोत्कृष्टा सर्वभूतहिते रता । सर्वभूताशयाभिज्ञा सर्वभूतासुधारिणी ॥१५४॥

८२५ **सर्वतोऽक्ष्यास्यहस्ताङ्घ्रिकमला** – विराट् रूप होनेके कारण जिनके नेत्र, मुख, हस्त, चरणकमल आदि सभी ओर हैं ।

८२६ **सर्वदर्शना** – जो सब जीवोंकी सभी चेष्टाओंको प्रत्येक समय देखती रहती हैं ।

८२७ **सर्वदिव्यगुणोपेता** — जो सम्पूर्ण दया, क्षमा, सौशील्य, वात्सल्य, गाम्भीर्य, औदार्य, आदि दिव्य (अप्राकृत) गुणोंसे युक्त हैं ।

८२८ **सर्वदुःखहरस्मिता** – जिनकी मन्द मुस्कान सम्पूर्ण दुःखोंको हरण कर लेती है ॥१५०॥

८२९ **सर्वदेवनुता** — जिनकी सभी देवता स्तुति करते हैं ।

८३० **सर्वधर्मतत्त्वविदां वरा** – जो सम्पूर्ण धर्मोंकारहस्य समझनेवाली सभी शक्तियोंमें श्रेष्ठहैं।

८३१ **सर्वधर्मनिधिः** — जो सम्पूर्ण धर्मोंकी भण्डार हैं ।

८३२ **सर्वनायकोत्तमनायिका** — जो सम्पूर्ण नायकों (नेताओं) में सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीरामभद्रजूकी पटरानी हैं ॥१५१॥

८३३ **सर्वनीतिरहस्यज्ञा** – जो सब प्रकारकी नीतियोंका रहस्य(तात्पर्य)भली-भाँति जानती हैं।

८३४ **सर्वनैपुण्यमण्डिता** – जो सब प्रकारकी चतुराईसे अलंकृत हैं ।

८३५ **सर्वपापहरध्याना** – जिनका ध्यान सम्पूर्ण पापोंको छीन लेता है ।

८३६ **सर्वपावनपावनी** – जो पवित्रकारी तीर्थोंको भी, अपने भक्तोंके चरण-स्पर्श द्वारा पवित्र कर देती हैं ॥१५२॥

८३७ **सर्वभक्तावनाभिज्ञा** — जो सभी भक्तोंकी रक्षाका उपाय, भली-भाँति जानती हैं ।

८३८ **सर्वभक्तिमतां गतिः** – जो समस्त भक्तोंकी रक्षा करने वाली एवं आधार है ।

८३९ **सर्वभाव-पदातीता** — जो सभी भावों से परे हैं ।

८४० **सर्वभाव-प्रपूरिका** — जो आश्रितोंके सभी भावोंकी पूर्त्ति करती हैं ॥१५३॥

८४१ **सर्वभुक्तिप्रदोत्कृष्टा**–हितकर सम्पूर्ण भोगोंकी प्रदानकारी शक्तियोंमें, जो सबसे बढ़करहैं।

८४२ **सर्वभूतहिते रता**–जो समस्त प्राणियोंके वास्तविक हितकर साधनमें सदैव तत्पररहती हैं।

८४३ **सर्वभूताशयाभिज्ञा** – जो सभी देह-धारियोंकी समस्त चेष्टाओंका अभिप्राय (मतलब) भली-भाँतिसे जानती हैं ।

८४४ **सर्वभूतासुधारिणी** — जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणोंको धारण करने वाली हैं ॥१५४॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्या सर्वमण्डनमण्डना । सर्वमेधाविनां श्रेष्ठा सर्वमोदमयेक्षणा ॥१५५॥
सर्वमोहच्छिदासक्तिः सर्वमोहनमोहिनी । सर्वमौलिमणिप्रेष्ठा सर्वयज्ञफलप्रदा ॥१५६॥
सर्वयज्ञव्रतस्नाता सर्वयोगविनिःसृता । सर्वरम्यगुणागारा सर्वलक्षणलक्षिता ॥१५७॥
सर्वलावण्यजलधिः सर्वलीलाप्रसारिणी । सर्वलोकनमस्कार्या सर्वलोकेश्वरप्रिया ॥१५८॥

८४५ **सर्वमङ्गलमाङ्गल्या** — जो सम्पूर्ण मङ्गलोंकी मङ्गल-स्वरूपा हैं ।

८४६ **सर्वमण्डनमण्डना** — जो सम्पूर्ण सजावटको सुसज्जित करने वाली हैं ।

८४७ **सर्वमेधाविमां श्रेष्ठा** — जो बुद्धिमानोंमें सबसे बढ़कर है ।

८४८ **सर्वमोदमयेक्षणा** — सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जिनकी चितवन आनन्द-मयहै ॥१५५॥

८४९ **सर्वमोहच्छिदासक्तिः** – जिनके श्रीचरणोंकी आसक्ति-सम्पूर्ण आसक्तियोंको समाप्त कर देती है अर्थात् जिनके प्रति आसक्ति प्राप्त करलेने पर, संसारके किसी भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी आसक्ति हृदयमें रह ही नहीं जाती ।

८५० **सर्वमोहनमोहिनी** – सभी जड़-चेतनोंको मुग्ध कर लेने वाले, भगवान् श्रीरामजीको भी जो अपने दयालु स्वभावकी पराकाष्ठासे मुग्ध कर लेती हैं ।

८५१ **सर्वमौलिमणिप्रेष्ठा**–जो सबके सिरमौर भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारकी प्राणप्यारी हैं ।

८५२ **सर्वयज्ञफलप्रदा** – जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करने वाली हैं ॥१५६॥

८५३ **सर्वयज्ञव्रतस्नाता** – जो सम्पूर्ण यज्ञोंको कर चुकी हैं ।

८५४ **सर्वयोगविनिःसृता** – शास्त्रोक्त नाना प्रकारके साधनों द्वारा ही जिन्हें समझा जा सकता है अथवा जिनसे समस्त योगोंका प्राकट्य है ।

८५५ **सर्वरम्यगुणागारा** – सम्पूर्ण सुन्दर गुण-समूह जिनमें निवास करते हैं ।

८५६ **सर्वलक्षणलक्षिता** — जो समस्त दिव्य (अलौकिक) लक्षणोंसे लक्षित होती हैं ॥१५७॥

८५७ **सर्वलावण्यजलधिः** — जो सम्पूर्ण सुन्दरताकी समुद्र हैं ।

८५८ **सर्वलीलाप्रसारिणी** – जो जगत् की सम्पूर्ण लीलाओं को फैलाने वाली हैं ।

८५९ **सर्वलोकनमस्कार्या** – जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके सभी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिकोंके द्वारा नमस्कार करने योग्य हैं ।

८६० **सर्वलोकेश्वरप्रिया** – जो समस्त ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके नियामक श्रीसाकेताधीश प्रभु श्रीरामकी प्यारी हैं ॥१५८॥

सर्वलोकेश्वरी सर्वलौकिकेतरवैभवा । सर्व विद्याव्रतस्नाता सर्ववैभवकारणम् ॥१५६॥
सर्वशक्तिमतामिष्टा सर्वशक्तिमहेश्वरी । सर्वशत्रुहरा सर्वशरणं सर्वशर्मदा ॥१६०॥
सर्वश्रेयस्करी सर्वसहा सर्वसदर्च्चिता । सर्वसद्भावनाधारा सर्वसद्भावपोषिणी ॥१६१॥
सर्वसौख्यप्रदा सर्वसौभाग्यैकप्रदायिनी । साकेतपरमस्थाना साकेतपरमोत्सवा ॥१६२॥
साकेताधिपतिप्रेष्ठा साकेतानन्दवर्षिणी । साक्षाच्छ्रीः साक्षिणी सर्वदेहिनां सर्वकर्मणाम् ॥१६३॥

८६१ **सर्वलोकेश्वरी** – जो सम्पूर्ण लोकोंकी स्वामिनी हैं ।

८६२ **सर्वलौकिकेतरवैभवा** — जिनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य अलौकिक (दिव्य) है ।

८६३ **सर्वविद्याव्रतस्नाता** — जो विधिपूर्वक सम्पूर्ण विद्याओंको पढ़ चुकी हैं ।

८६४ **सर्ववैभवकारणम्** – जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पत्तिकी कारण-स्वरूपा हैं ॥१५६॥

८६५ **सर्वशक्तिमतामिष्टा** – जो सर्वशक्तिमान-ब्रह्मा, शिवादिकोंकी इष्टदेवता हैं ।

८६६ **सर्वशक्तिमहेश्वरी** — जो सम्पूर्ण शक्तियोंकी सबसे मुख्य स्वामिनी हैं ।

८६७ **सर्वशत्रुहरा**–जो आश्रितोंके बाहरी भीतरी(काम,क्रोधादि)सभी शत्रुओंको गुमकर देती हैं।

८६८ **सर्वशरणम्** — जो चर-अचर सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा करने वाली हैं ।

८६९ **सर्वशर्मदा** — जो भक्तोंको सब प्रकारका हितकर-सुख प्रदान करती हैं ॥१६०॥

८७० **सर्वश्रेयस्करी** — जो भक्तोंका सभी प्रकार कल्याण करती हैं ।

८७१ **सर्वसहा** – जो प्राणियोंके किये हुये सभी प्रकारके अपराधोंको सहन करती हैं ।

८७२ **सर्वसदर्च्चिता** – सभी सन्त जिनका पूजन करते हैं ।

८७३ **सर्वसद्भावनाधारा**– जो सम्पूर्ण सद्भावनाओंकी आधार अर्थात् उन्हें धारण करने योग्य केन्द्र-स्वरूपा हैं ।

८७४ **सर्वसद्भावपोषिणी** – जो प्राणियोंके सभी सद्भावोंकी पुष्टि करती हैं ॥१६१॥

८७५ **सर्वसौख्यप्रदा** — जो सभी चर-अचर प्राणियोंको स्वाभाविक सुख प्रदान करनेवाली हैं।

८७६ **सर्वसौभाग्यैकप्रदायिनी**-जो आश्रितोंको सब प्रकारका हितकर सौभाग्यप्रदान करनेवालीहैं।

८७७ **साकेतपरमस्थाना** — श्रीसाकेत धाम जिनका सबसे उत्कृष्ट स्थान है ।

८७८ **साकेतपरमोत्सवा** — जो श्रीसाकेतधाम निवासी भक्तोंको महान् उत्सवके सदृश आनन्द प्रदान करने वाली हैं ॥१६२॥

८७९ **साकेताधिपतिप्रेष्ठा** — जो साकेताधीश भगवान् श्रीरामजीकी परम प्यारी हैं ।

८८० **साकेतानन्दवर्षिणी** — जो श्रीसाकेतधाममें आनन्दकी वर्षा करती रहती हैं ।

८८१ **साक्षाच्छ्रीः** – जो सच्चिदानदघन ब्रह्मकी साक्षात् श्री (सुन्दरता, तेज और सम्पति इत्यादि) रूपा हैं ।

८८२ **साक्षिणी सर्वदेहिनां सर्वकर्मणाम्** — जो समस्त प्राणियोंके सभी कर्मोंकी साक्षिणी स्वरूपा है ॥१६३॥

साघप्राणिजनारुष्टा सातपत्रोत्तमासना । साधनातीतसम्प्राप्तिः साध्या साध्वीजनप्रिया ।।१६४।।
सामगा सामगोद्गीता साफल्यैकप्रदायिनी । सामर्थ्यजगदाधारमोहिनी साम्यदायिनी ।।१६५।।
सारज्ञा सिद्धसङ्कल्पा सिद्धसेव्यपदाम्बुजा । सिद्धार्था सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी सिद्धिसाधनम् ।।१६६।।

८८३ **साघप्राणिजनारुष्टा** – जो अपराधी जीवों पर भी कभी अहित कर क्रोध नहीं करती ।

८८४ **सातपत्रोत्तमासना** – जिनका उत्तम सिंहासन मनोहर छत्रसे सुशोभित है ।

८८५ **साधनातीतसम्प्राप्तिः** — जिनकी प्राप्ति सब साधनोंसे परे हैं अर्थात् जो केवल कृपा साध्य हैं इतर साधन साध्य नहीं ।

८८६ **साध्या** — जो अनन्य आसक्तिसे प्राप्त होने योग्य हैं ।

८८७ **साध्वीजनप्रिया** – जिन्हें सती स्त्रियाँ प्रिय हैं ।।१६४।।

८८८ **सामगा** — जो सामवेदका गान करने वाली हैं ।

८८९ **सामगोद्गीता** — सामवेदका गान करने वाले जिनकी महिमाका विशेष रूपसे गान करते हैं ।

८९० **साफल्यैकप्रदायिनी** — आश्रितोंको जीवनकी सफलता दान करनेमें जो सर्वोत्कृष्टा है ।

८९१ **सामर्थ्यजगदाधारमोहिनी** – जो अपने पराक्रमके द्वारा समस्त जगत्के आधार भगवान् श्रीरामजी को भी मुग्ध कर लेती हैं ।

८९२ **साम्यदायिनी** – जो अपनी अद्भुत, अनुपम उदारतासे आश्रितोंको अपनी समता प्रदान कर देती हैं अर्थात् अपने समान ही पूज्य बना देती हैं ।।१६५।।

८९३ **सारज्ञा** – जो समस्त विश्वके सारस्वरूप भगवान् श्रीरामजीकी महिमाको भली-भाँतिसे जानती हैं ।

८९४ **सिद्धसङ्कल्पा** – जिनका सङ्कल्प सिद्ध है अर्थात् इच्छा करते ही तत्क्षण सब कुछ उपस्थित हो जाता है ।

८९५ **सिद्धसेव्यपदाम्बुजा** — जिनके श्रीचरण-कमल, भगवत्प्राप्ति सिद्ध भक्तोंके द्वारा भी सेवन करने योग्य हैं ।

८९६ **सिद्धार्था** – जो पूर्ण काम हैं ।

८९७ **सिद्धिदा** – जो आश्रितोंको भगवत्प्राप्ति रूपी सिद्धि प्रदान करती हैं ।

८९८ **सिद्धिरूपिणी** – जो भगवत्-प्राप्तिका स्वरूप ही हैं ।

८९९ **सिद्धिसाधनम्** — जो भगवत्-प्राप्तिकी साधन स्वरूपा हैं ।।१६६।।

सीता सीमन्तिनीश्रेष्ठा सीरध्वजनृपात्मजा । सुकटाक्षा सुकीर्त्तीड्या सुकृतीनां महाफला ॥१६७॥
सुकेशीसुखमूलैका सुखसन्दोहदर्शना । सुगमा सुघनज्ञाना सुचार्वी सुजवोत्तमा ॥१६८॥
सुज्ञा सुतन्वी सुदती, सुदाननिरताश्रया । सुधावाणी सुधीरात्मा सुधीश्रेष्ठा सुधेक्षणा ॥१६९॥

९०० सीता – जो भक्तोंके समस्त दुःख और पापोंको नष्ट करके सुख-शान्ति रूपी सम्पत्तिका विस्तार करती हैं ।

९०१ सीमन्तिनीश्रेष्ठा — जो सौभाग्यवती माताओंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ।

९०२ सीरध्वजनृपात्मजा – जो श्रीसीरध्वज महाराजकी राजदुलारी हैं ।

९०३ सुकटाक्षा — जिनकी चितवन परम मङ्गल कारिणी तथा मनोहर है ।

९०४ सुकीर्त्तीड्या — जो अपनी सुन्दर (आदर्श) कीर्त्तिके द्वारा तीनों लोकोंमें प्रशंसा पाने योग्य हैं ।

९०५ सुकृतीनां महाफला — जो समस्त जप, तप, यज्ञ, दानादि सत्कर्मोंका सर्वोत्कृष्ट फल (भगवत्प्राप्ति) स्वरूपा हैं ॥१६७॥

९०६ सुकेशी – जिनके केश अत्यन्त कोमल सघन, सूक्ष्म, तथा काले घुँघुराले हैं ।

९०७ सुखमूलैका – जो सम्पूर्ण सुखोंकी सर्वोत्तम कारण-स्वरूपा हैं ।

९०८ सुखसन्दोहदर्शना – जिनके दर्शनोंसे ही समस्त सुख प्राप्त होते हैं ।

९०९ सुगमा – जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयोंसे रहित अपने अनन्य उपासकोंके लिये सुलभ हैं ।

९१० सुघनज्ञाना – जिनका ज्ञान सुन्दर एवं घनवत् ठोस है ।

९११ सूचार्वी – जो अत्यन्त सुन्दरी हैं ।

९१२ सुजवोत्तमा — आश्रितोंकी सुरक्षाके लिये जिनका वेग सबसे बढ़कर है ॥१६८॥

९१३ सुज्ञा — जिनका ज्ञान सबसे सुन्दर है ।

९१४ सुतन्वी – जो आकाशादि महात्त्तवोंसे भी अत्यन्त सूक्ष्म है ।

९१५ सुदती – जिनकी दन्तपङ्क्ति अनारके दानोंके समान सुन्दर है ।

९१६ सुदाननिरताश्रया -- जो वास्तविक हितकर दान (भगवच्चरणानुरागिणी बुद्धिको प्रदान) करने वालोंकी आधार-स्वरूपा हैं ।

९१७ सुधावाणी – जिनकी बोली अमृतके समान मृतक जियावनी अर्थात् सम्पूर्ण दुःखोंको हरण कर लेने वाली है ।

९१८ सुधीरात्मा — जिनकी बुद्धि अतिशय धैर्यवती है ।

९१९ सुधीश्रेष्ठा — जो उत्तम बुद्धिमानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं ।

९२० सुधेक्षणा– जिनकी चितवन अमृतके समान समस्त दुःखोंको हरण कर लेती हैं ॥१६९॥

सुनयनाक्रोडरत्नं सुनयनाप्रपोषिता । सुनयनामहाराज्ञीहृदयानन्दवर्द्धिनी ॥१७०॥
सुनासा सुनिदिध्यास्या सुनीतिः सुप्रतिष्ठिता । सुप्रसादा सुभगायाः करपल्लवचर्चिचता ॥१७१॥
सुभगा सुभुजा सुभ्रूः सुमुखी सुरपूजिता । सुराध्यक्षा सुरानम्या सुराधीशजरक्षिका ॥१७२॥
सुरेश्वरी च सुलभा सुवर्णाभाङ्गशोभना । सुवेद्यैका सुशरणं सुश्रीः सुश्लोकसत्तमा ॥१७३॥

९२१ **सुनयनाक्रोडरत्नम्**–जो श्रीसुनयनाअम्बाजीकी गोदको रत्नके समान सुशोभित करनेवाली हैं

९२२ **सुनयनाप्रपोषिता** — महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीने जिनका पालन पोषण किया है ।

९२३ **सुनयनामहाराज्ञीहृदयानन्दवर्द्धिनी**–जो अपनी शिशु लीलाके द्वारा श्रीसुनयना महारानीजी के हृदय का आनन्द बढ़ाने वाली हैं ॥१७०॥

९२४ **सुनासा** — जिनकी नासिका अत्यन्त सुन्दर है ।

९२५ **सुनिदिध्यास्या** – जिनका भली भाँति एकाग्रतापूर्वक बारंबार ध्यान करना चाहिये ।

९२६ **सुनीतिः** — जिनकी नीति सबसे सुन्दर है ।

९२७ **सुप्रतिष्ठिता** – जो अपनी महिमामें हर प्रकारसे स्थित हैं ।

९२८ **सुप्रसादा** — जिनकी प्रसन्नता सबसे बढ़कर सुखद एवं मङ्गलकारिणी है ।

९२९ **सुभगायाः करपल्लवचर्चिचता** — यूथेश्वरी श्रीसुभगाजी अपने कर कमलोंके द्वारा जिनके मस्तक आदिमें चन्दनकी खौर इत्यादि करती हैं ॥१७१॥

९३० **सुभगा** — जिनके समान कोई सौभाग्यवती एवं सुन्दरी नही ।

९३१ **सुभुजा**-जिनकी भुजायें ऊपरसे नीचेकीओर हाथी सूढ़के समान पतली,चिकनीतथागोलहैं ।

९३२ **सुभ्रूः** — काम-धनुषके समान जिनकी मनोहर भौंहे हैं ।

९३३ **सुमुखी** — जिनका परममनोहर तथा मङ्गलमय श्रीमुखारविन्द है ।

९३४ **सुरपूजिता** — समस्त देवता जिनका पूजन करते हैं ।

९३५ **सुराध्यक्षा** — जो सभी देवताओंकी देख-रेख करने वाली हैं ।

९३६ **सुरानम्या** — जो सभी देवताओंके द्वारा प्रणाम करने योग्य हैं ।

९३७ **सुराधीशजरक्षिका** – जो अपने साथ महान अपराध करने वाले, बध योग्य, देवराज इन्द्रके पुत्र जयन्तकी भगवान श्रीरामजीके अग्नि बाणसे रक्षा करने वाली हैं ॥१७२॥

९३८ **सुरेश्वरी च** — जो समस्त देवताओं की स्वामिनी हैं ।

९३९ **सुलभा** – जो विशुद्ध हृदय और अनन्यभाव वाले भक्तोंको सुलभतासे प्राप्तहो जाती हैं।

९४० **सुवर्णाभाङ्गशोभना** — जिनके सुवर्णके समान गौर वर्णमय अङ्ग परम सुहावने हैं ।

९४१ **सुवेद्यैका**–-प्राणियोंको अपने कल्याणके लिये भली भाँति जिनका जानना परमावश्यक है।

९४२ **सुशरणम्** — जो समस्त विश्व की भली भाँतिसे सुरक्षा करने वाली हैं ।

९४३ **सुश्रीः** — जिनकी सम्पत्ति, सुन्दरता तथा कान्ति सब सुन्दर एवं असीम है ।

९४४ **सुश्लोकसत्तमा** — जो सबसे बढ़कर सुन्दर और पवित्र यश वाली हैं ॥१७३॥

सृष्टदीनहितोपाया सृष्टिजन्मादिकारिणी । सेव्या सैरध्वजीज्येष्ठा सोमवत्प्रियदर्शना ॥१७४॥
सौभाग्यजननी सौम्या स्थानं सर्वासुधारिणाम् । स्थिरा स्थूलदया चैव स्थूलसूक्ष्मविलक्षणा ॥१७५॥
स्रष्टृपात्रन्तकर्तृणामीश्वरी स्वगतिप्रदा । स्वङ्घ्रिका स्वच्छहृदया स्वच्छन्दा स्वजनप्रिया ॥१७६॥
स्वजनानन्दनिवहा स्वतर्क्या स्वधरस्मिता । स्वधर्माचरणाख्याता स्वधर्मावनपण्डिता ॥१७७॥

९४५ **सृष्टदीनहितोपाया**—जो अभिमान रहित शरणागत प्राणियोंके हितका उपाय रच लेतीहैं।
९४६ **सृष्टिजन्मादिकारिणी** — जो सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली हैं।
९४७ **सेव्या** — भगवत् प्राप्तिके लिये जिनकी आराधना करना आवश्यक है।
९४८ **सैरध्वजीज्येष्ठा** -- जो श्रीसीरध्वज महाराजकी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई बड़ी पुत्री हैं।
९४९ **सोमवत्प्रियदर्शना**--जिनका दर्शन शरद्ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान परम प्रिय हैं।१७४।
९५० **सौभाग्यजननी** -- जो सभी प्रकारका सौभाग्य उदय करनेवाली हैं।
९५१ **सौम्या** -- जो परम शान्त तथा मनोहर दर्शनवाली हैं।
९५२ **स्थानं सर्वासुधारिणाम्** -- जिनमें चर-अचर सम्पूर्ण प्राणी निवास करते हैं।
९५३ **स्थिरा** -- जो सदा से हैं और सदा रहेंगी(कभी स्व-स्वरूपसे विचलित नहीं होनेवाली)।
९५४ **स्थूलदया चैव** -- जिनकी दया मोटी तगड़ी है ! (कमजोर नहीं !)
९५५ **स्थूलसूक्ष्मविलक्षणा** -- जो स्थूल, सूक्ष्मसे परे कारण स्वरूपा हैं ॥१७५॥
९५६ **स्रष्टृपात्रन्तकर्तृणामीश्वरी** — जो उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेशों को भी तत्तत् कार्योंमें नियुक्त करने वाली हैं।
९५७ **स्वगतिप्रदा** — जो आश्रितोंको अपना निवासस्थान साक्षात् श्रीसाकेतधाम प्रदान करने वाली हैं।
९५८ **स्वङ्घ्रिका** — जिनके श्रीचरणकमल बड़े ही सुन्दर मङ्गलमय हैं।
९५९ **स्वच्छहृदया** — जिनका हृदय अत्यन्त पवित्र है अथवा जो भगवान् श्रीरामजी की साक्षात् हृदय स्वरूपा हैं।
९६० **स्वच्छन्दा** — जो केवल एक भगवान् श्रीरामजीके अधीन रहती हैं।
९६१ **स्वजनप्रिया** — जिनको अपने भक्त विशेष प्रिय हैं ॥१७६॥
९६२ **स्वजनानन्दनिवहा** — जो अपने आश्रितों के आनन्द की पुञ्ज हैं।
९६३ **स्वतर्क्या** – जिनके विषयमें किसी प्रकारका भी तर्क (अनुमान) नहीं किया जासकता।
९६४ **स्वधरस्मिता**—जिनके अधरों(होठों)की मन्द मुस्कान बड़ीही मनोहर तथा मङ्गलकारीहैं।
९६५ **स्वधर्माचरणाख्याता** – जो अपने धर्म मय आचरणोंके द्वारा त्रिलोकीमें बिख्यात हैं।
९६६ **स्वधर्मावनपण्डिता** — जो अपने भागवत धर्मकी रक्षा करनेमें बड़ी चतुर हैं ॥१७७॥

स्वधास्वरूपा स्वधृता स्वभावाघहरस्मिता । स्वभावापास्तनार्शस्या स्वभावावर्ण्यमार्दवा ॥१७८॥
स्वभावावाच्यवात्सल्या स्ववशा स्वस्तिदक्षिणा ।
स्वस्तिदा स्वस्तिरूपा च स्वामिनीसर्वदेहिनाम् ॥१७९॥
स्वास्या स्वाश्रितसर्वेष्टदायिनी स्विष्टदेवता । स्वेच्छाचारेणरहिता हरिणोत्फुल्ललोचना ॥१८०॥
हारसम्भूषिता हास्यस्पर्द्धिचन्द्रकरव्रजा । हितैका सर्वजगतां हृदयानन्दवर्द्धिनी ॥१८१॥

९६७ **स्वधास्वरूपा** — जो स्वधा स्वरूपा हैं ।

९६८ **स्वधृता** — जिन्हें भगवान् श्रीरामजी कौस्तुभमणिके रूपमें सदा अपने वक्षःस्थलपर धारण करते हैं ।

९६९ **स्वभावाघहरस्मिता** — जिनकी मन्द मुस्कान स्वाभाविक समस्त पाप व दुःखोंको हरण करने वाली है ।

९७० **स्वभावापास्तनार्शस्या** — जो स्वाभाविक कठोरतासे रहित (परम दयामयी) हैं ।

९७१ **स्वभावावर्ण्यमार्दवा** — जिनके अङ्गकी स्वाभाविक कोमलता वर्णनसे परे है ॥१७८॥

९७२ **स्वभावावाच्यवात्सल्या** – जिनका स्वाभाविक वात्सल्य कथन शक्तिसे परे है ।

९७३ **स्ववशा** – जो भगवान् श्रीरामजीके ही एक वशमें रहती हैं ।

९७४ **स्वस्तिदक्षिणा** – जिन्हें यज्ञमें अर्पणकी हुई दक्षिणा मङ्गलमय होती है ।

९७५ **स्वस्तिदा** — जो आश्रितोंको मङ्गल प्रदान करती हैं ।

९७६ **स्वस्तिरूपा च** — जो सम्पूर्ण मङ्गल स्वरूपा हैं ।

९७७ **स्वामिनी सर्वदेहिनाम्**—जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्वामिनी(शासन करनेवाली)हैं ॥१७९॥

९७८ **स्वास्या** — जिनका मुखारविन्द परम मनोहर मङ्गलकारी है ।

९७९ **स्वाश्रितसर्वेष्टदायिनी** – जो अपने आश्रितोंकी सभी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करती हैं ।

९८० **स्विष्टदेवता** – जो सम्पूर्ण ब्रह्मण्डकी सबसे श्रेष्ठ इष्ट देवता है ।

९८१ **स्वेच्छाचारेणरहिता** – जिनके सभी आचरण शास्त्र मर्यादानुकूल हैं, मनमाने नहीं ! ...

९८२ **हरिणोत्फुल्लोचना** – हरिणके नेत्रोंके समान खिले हुये जिनके नेत्र कमल हैं ॥१८०॥

९८३ **हारसम्भूषिता** — जो विविध प्रकारके हारोंका श्रृङ्गार धारण किये हुई हैं ।

९८४ **हास्यस्पर्द्धिचन्द्रकरव्रजा** – जो अपनी मन्द मुस्कानसे चन्द्रमाके किरण समूहोंको लज्जित कर रही हैं ।

९८५ **हितैका सर्वजगतां** – जो सम्पूर्ण जगत् (चर-अचर) प्राणियों का सबसे अधिक हित करने वाली हैं ।

९८६ **हृदयानन्दवर्द्धिनी** – जो अपने अनुपम गुण, स्वभाव एवं कीर्तिसे समस्त प्राणियोंके हृदय में आनन्द बढ़ाती रहती हैं ॥१८१॥

हृदयेशा च हृद्यैका हेमागारनिवासिनी ।
हेमासेव्यपदाम्भोजा हेयपादाब्जविस्मृतिः ॥१८२॥

ह्लादिनी ह्रीमतां श्रेष्ठा क्षमाध्वस्तधरास्मया ।
क्षमास्वरूपा क्षमिणां क्षमेशी क्षान्तिविग्रहा ॥१८३॥

क्षितीशतनया क्षेमदायिनी क्षेमयाऽर्च्चिता ।
सुता तवैषा कल्याणी सर्वोपास्येति मे मतम् ॥१८४॥

इयं हि राजन् ! मृगपोतलोचना वागीश्वरीशैलसुतारमादिभिः ।
निषेव्यमाणाङ्घ्रिसरोरुहद्वया विराजते पूर्णसुधाकरानना ॥१८५॥

९८७ **हृदयेशा च** -- जो मन बुद्धि चित्त, अहङ्कार रूपी समस्त इन्द्रियों पर शासन करती हैं।

९८८ **हृद्यैका** -- जो सबसे बढ़कर मनोहर हैं ।

९८९ **हेमागारनिवासिनी** -- जो दिव्य(अपाञ्चभौतिक)श्रीसाकेतधामके श्रीकनकभवनमें निवास करती हैं ।

९९० **हेमासेव्यपदाम्भोजा** -- जिनके श्रीचरणकमल यूथेश्वरी श्रीहेमाजीके द्वारा सेवा योग्य हैं।

९९१ **हेयपादाब्जविस्मृतिः** -- जिनके श्रीचरण-कमलोंका विस्मरण(भूलजाना)ही संसारमें सबसे अधिक त्याग करने योग्य है ॥१८२॥

९९२ **ह्लादिनी** -- जो सभी प्राणियोंके हृदय में आह्लाद रूपसे विराजती हैं ।

९९३ **ह्रीमतां श्रेष्ठा**--जो शास्त्र-मर्यादा विरुद्ध कर्मोंको करनेमें सबसे अधिक लज्जा रखती हैं।

९९४ **क्षमाध्वस्तधरास्मया** -- जो अपने क्षमागुणसे पृथिवी देवीके अभिमानको दूर करती हैं।

९९५ **क्षमास्वरूपाक्षमिणाम्** -- जो क्षमा शीलोंमें क्षमा (सहनशीलता) रूपमें विराजती हैं।

९९६ **क्षमेशी** -- जिनके शासनानुसार क्षमा सर्वत्र प्रकट होती है ।

९९७ **क्षान्तिविग्रहा** -- जो क्षमाकी साक्षात् मूर्त्ति हैं ॥१८३॥

९९८ **क्षितीशतनया** -- जो पृथ्वी पति श्रीमिथिलेशजी महाराजकी राजदुलारी हैं ।

९९९ **क्षेमदायिनी** -- जो भक्तोंके लिये सब प्रकार का मङ्गल प्रदान करती हैं ।

१००० **क्षेमयाऽर्च्चिता** -- जो यूथेश्वरी श्रीक्षेमा सखीके द्वारा पूजित हैं ।

हे राजन् ! आपकी (वेही) कल्याणस्वरूपा श्रीललीजी सभी (देहधारियों)के लिये उपासना करने योग्य हैं ॥१८४॥

हे राजन् ! आपकी मृग शिशुके समान सुन्दर नेत्रवाली चन्द्रमुखी श्रीललीजी के चरण-कमल श्रीसरस्वतीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियोंके द्वारा पूजित हैं अतः वे सर्वोत्कर्षको प्राप्त हैं ॥१८५॥

महामुनीनां यतिपुङ्गवानां योगेश्वराणां सुरसत्तमानाम् ।
सिद्धीश्वराणां विगतैषणानां भोगार्थिनां मोक्षपदेच्छुकानाम् ॥१८६॥
हानीतरौत्सुक्यसमन्वितानां स्वजन्मनो भूमिपतेऽखिलानाम् ।
सम्भावनीया समुपासनीया ज्ञेयाऽनुगेया तनया तवेयम् ॥१८७॥
अनन्तनामानि तवात्मजायाः सन्ति क्षितीशप्रवराद्य तेषाम् ।
मया सहस्रेण मुदा प्रगीता तनोतु शं सेयमयोनिजा नः ॥१८८॥
भक्त्याऽनुरक्त्या पठतामजस्रं ध्यानाण्वितानां तनया धरण्याः ।
दृग्गोचरी वाञ्छितसिद्धिदात्री भूयाद्द्रुतं नाम सहस्रमेतत् ॥१८९॥

श्रीशिव उवाच ।

नृणां चतुर्वर्गविलोलचेतसां पाठ्यं ससङ्कल्पमिदं शुभावहम् ।
गिरीन्द्रकन्ये ! मधुराक्षरान्वितं श्रीजानकीनामसहस्रमन्वहम् ॥१९०॥

हे राजन् ! कहाँ तक कहें? अपने मानव-जीवनकी सफलता चाहने वाले जितने भी सकाम, निष्काम, मोक्षाभिलाषी महामुनि, यतिशिरोमणि, योगीराज, देवश्रेष्ठ, सिद्धप्रवर हैं, उन सभीके लिये सब प्रकारसे भावना करने योग्य, उपासना करने योग्य, तथा ज्ञान प्राप्त करने योग्य और बारम्बार गान करने योग्य आपकी ये यही श्रीललीजी हैं ॥१८६॥१८७॥

हे भूमिनाथोंमें परमश्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज! आपकी श्रीललीजीके असङ्ख्यों नाम हैं उनमें मैंने जिनका इस समय केवल सहस्र नामसे वर्णन किया है, वे अयोनिसम्भवा अर्थात् अपनी मात्र इच्छासे प्रकट हुई आपकी ये श्रीललीजी हम सभीका कल्याण करें ॥१८८॥

इस सहस्र नामको ध्यान पूर्वक अनुरागके साथ, नित्य पाठ करने वालोंको, अभीष्ट-सिद्धि प्रदान करने वाली ये श्रीललीजी, शीघ्र ही नेत्रोंका विषय बनेंगी ॥१८९॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिके लिये जिनका चित्त चञ्चल हो रहा है उन्हें, मधुर अक्षरोंसे युक्त, मङ्गलकारी इस श्रीजानकीसहस्रनामका पाठ सङ्कल्प-पूर्वक प्रति दिन करना चाहिये ॥१९०॥

इति सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

इति मासपारायणे पञ्चविंशतितमो विश्रामः ॥२५॥

इति-नवाह्नपारायणे सप्तमो विश्रामः ॥७॥

—❀❀❀—

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

सहस्रादि नाम तथा भक्तिस्वरूप श्रवण द्वारा महिमा का पूर्ण परिचय पाकर
श्रीजनकजी महाराजकी श्रीकिशोरीजी से प्रार्थना ।

श्रीजनक उवाच ।

अष्टोत्तरशतं नाम्नामपीदानीं तदुच्यताम् । भवद्भिः सानुकम्पं मे सर्वज्ञाः श्रुतिमङ्गलम् ॥१॥

श्रीहरिरुवाच ।

साधु पृष्टं त्वया राजन् श्रव्यमेकाग्रचेतसा । अष्टोत्तरशतं वक्ष्ये नाम्नां परमपावनम् ॥२॥
सीरध्वजसुता सीता स्वाश्रिताभीष्टदायिनी । सहजानन्दिनी स्तव्या सर्वभूताशयस्थिता ॥३॥
ह्लादिनी क्षेमदा क्षान्तिः षडर्द्धाक्षहृदिस्थिता । श्रीनिधिः श्रीसमाराध्या श्रियः श्रीः श्रीमदर्चिता॥४॥

श्रीजनकजी महाराज बोले:-हे सर्वज्ञ महर्षियों ! अब आप लोग श्रवण मात्रसे मङ्गल करनेवाले, श्रीललीजीके अष्टोत्तरशतनामोंको भी मुझे बतलाने की कृपा करें ॥१॥

श्रीहरिनामके योगेश्वर बोले:-हे राजन्! आपका प्रश्न बहुत अच्छा है, अतएव मैं श्रीललीजीके परम-पावन अष्टोत्तरशतनामोंका वर्णन करता हूँ आप एकाग्रचित्तसे उन्हें श्रवण कीजिये ॥२॥

१ **सीरध्वजसुता** — श्रीसीरध्वज महाराजके सुखका विस्तार करने वाली ।

२ **सीता** — अपने आश्रित चेतनोंके समस्त दुःख शोकोंकी मूल आसुरी सम्पत्तिका विनाश करके दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य आदि दैवी सम्पत्तिके विस्तार द्वारा अनायास संसार-सागरसे पार उतारने वाली ।

३ **स्वाश्रिताभीष्टदायिनी** — अपने आश्रितोंकी हितकर इच्छाओंको पूर्ण करने वाली ।

४ **सहजानन्दिनी** — अपने शीलस्वभाव और गुणरूप आदिसे सभी जड़ चेतनोंको स्वाभाविक आनन्द प्रदान करने वाली ।

५ **स्तव्या** — सभीके द्वारा सब प्रकारसे स्तुति करने योग्या ।

६ **सर्वभूताशयस्थिता** – सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करने वाली ॥३॥

७ **ह्लादिनी** — सम्पूर्ण चेतनोंके हृदयमें आह्लाद प्रदान करने वाली ।

८ **क्षेमदा** — कल्याण प्रदान करने वाली ।

९ **क्षान्ति** – सहनशीलता स्वरूपा ।

१० **षडर्द्धाक्षहृदिस्थिता** – त्रिनेत्रधारी (भगवान् शिवजी) के हृदयमें निवास करने वाली ।

११ **श्रीनिधिः** – सम्पूर्ण शोभा कान्ति तथा धनकी भण्डार स्वरूपा ।

१२ **श्रीसमाराध्या** — श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा सम्यक् प्रकारसे सेवित होने योग्य ।

१३ **श्रियः श्रीः** — कान्तिकी कान्ति और शोभाकी शोभा स्वरूपा ।

१४ **श्रीमदर्चिता** — तेज और सम्पत्तिशाली ब्रह्मादि देव वृन्दोंसे पूजित ॥४॥

शरण्या वेदनिःश्वासा वैदेही विबुधेश्वरी । लोकोत्तराम्बा लोकादी रघुनन्दनबल्लभा ॥५॥
रम्यरम्यनिधी रामा योगेश्वरप्रियात्मजा । यज्ञस्वरूपा यज्ञेशी योगिनां परमा गतिः ॥६॥
मृदुस्वभावा मृदुला मैथिली मधुराकृतिः । मनोरूपा महेज्येज्या महासौभाग्यदायिनी ॥७॥

१५ **शरण्या** — सभी प्राणियोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ ।

१६ **वेदनिःश्वासा** — वेदमय श्वास वाली ।

१७ **वैदेही** — श्रीविदेहकुलकी सर्वोत्कृष्ट राजदुलारी ।

१८ **विबुधेश्वरी** — ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, सूर्य, पवन, यम, कुबेर, इन्द्रादि सभी देवताओं पर शासन करने वाली ।

१९ **लोकोत्तराम्बा** — सम्पूर्ण प्राणियोंकी अपाञ्चभौतिक (दिव्य) माता ।

२० **लोकादिः** — समस्त लोकोंकी कारण स्वरूपा ।

२१ **रघुनन्दनबल्लभा** — रघुकुलको वात्सल्य जनित आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् श्रीरामजीकी परम प्यारी ॥५॥

२२ **रम्यरम्यनिधिः** — सभी सुन्दरोंमें सुन्दर (भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार) की निधि स्वरूपा ।

२३ **रामा** — आकाश तत्त्वसे सहस्रों गुणा अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी गोदमें खेलाने वाली और स्वयं विविध प्रकारके स्थूल सूक्ष्मादि रूपोंके द्वारा सबके साथ खेलने वाली भगवान् श्रीरामजी की प्राणवल्लभा ।

२४ **योगेश्वरप्रियात्मजा** — योगिराज श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्यारी पुत्री ।

२५ **यज्ञस्वरूपा** — यज्ञ स्वरूप वाली ।

२६ **यज्ञेशी** — समस्त यज्ञोंकी रक्षा करने वाली ।

२७ **योगिनां परमा गतिः** —भगवत्-प्राप्ति साधकोंका सब प्रकारसे सम्हाल करनेवाली ॥६॥

२८ **मृदुस्वभावा** — अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली ।

२९ **मृदुला** — कोमल स्वभाव तथा अति कोमल अङ्गों वाली ।

३० **मैथिली** — मिथिवंशमें सबसे अधिक प्रख्यात श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी ।

३१ **मधुराकृतिः** — अत्यन्त मनोहर तथा सर्वानन्दप्रदायक सुन्दर स्वरूप वाली ।

३२ **मनोरूपा** — मनके स्वरूप वाली ।

३३ **महेज्येज्या** — महान् पूजनीय श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देव तथा उमा, रमा ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंके द्वारा पूजने योग्य ।

३४ **महासौभाग्यदायिनी** — भक्तोंको सर्वोत्तम सौभाग्य प्रदान करने वाली ॥७॥

भूमिजा बुधमृग्याङ्घ्रिकमला बोधवारिधिः । फलस्वरूपा तपसां फणीन्द्रावर्ण्यवैभवा ॥८॥
नमस्या प्रियदृष्टिश्च धरारत्नं धरासुता । दिव्यातमा दीप्तमहिमा तत्त्वात्मा जनकात्मजा ॥९॥
जगदीशपरप्रेष्ठा ज्ञानिनां परमायनम् । जगन्मङ्गलमाङ्गल्या जरामृत्युभयातिगा ॥१०॥
चन्द्रकलासुखासाद्या चारुशीलार्च्चनप्रिया । चतुरात्मा चतुर्व्यूहा चन्द्रबिम्बोपमानना ॥११॥

३५ **भूमिजा** – पृथ्वी से प्रकट होने वाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी ।

३६ **बुधमृग्याङ्घ्रिकमला** – ज्ञानियोंके खोजने योग्य जिनके एक श्रीचरण-कमल ही हैं ।

३७ **बोधवारिधिः** समुद्रके समान अथाह ज्ञान वाली ।

३८ **फलस्वरूपा तपसाम्** – सम्पूर्ण तपोंका फल (भगवत्प्राप्ति) स्वरूप वाली ।

३९ **फणीन्द्रावर्ण्यवैभवा** – सहस्त्रमुख, (दो हजार जिह्वा) वाले श्रीशेषजी द्वारा भी जिनका ऐश्वर्य वर्णन करसकना असम्भव है ॥८॥

४० **नमस्या** – जो समस्त प्राणियोंके लिये एकमात्र नमस्कार भाजन हैं ।

४१ **प्रियदृष्टिः** — जिनकी चितवन सबको प्यारी है ।

४२ **धरारत्नम्** — जो पृथ्वीकी सर्वोत्कृष्ट रत्न स्वरूपा हैं ।

४३ **धरासुता** – पृथिवी माताके सुखसमूह का विस्तार करने वाली ।

४४ **दिव्यात्मा** – जिनकी बुद्धि अलौकिक है ।

४५ **दीप्तमहिमा** — जिनका प्रभाव विख्यात है ।

४६ **तत्त्वात्मा** — तत्त्व (ब्रह्म) स्वरूप वाली ।

४७ **जनकात्मजा** — श्रीजनक वंशमें सर्वोत्तम महिमा वाली श्रीललीजी ॥९॥

४८ **जगदीशपरप्रेष्ठा** — सचराचर प्राणियों पर शासन करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम आदि से उत्कृष्ट दिव्यधामाधिप भगवान् श्रीरामजीकी परम प्यारी ।

४९ **ज्ञानिनां परमायनम्** – ज्ञानियोंकी चित्त वृत्तिकी सर्वोत्तम केन्द्र स्वरूपा ।

५० **जगन्मङ्गलमाङ्गल्या** — चर-अचर प्राणियोंके समस्त मङ्गलकी मङ्गल स्वरूपा ।

५१ **जरामृत्युभयातिगा** — बुढ़ापा और मृत्युके भयसे अछूती ॥१०॥

५२ **चन्द्रकलासुखासाद्या** — यूथेश्वरी श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा सुखपूर्वक प्राप्त होने योग्य ।

५३ **चारुशीलार्च्चनप्रिया** — यूथेश्वरी श्रीचारुशीलाजी का पूजा पाठ जिन्हें प्रिय है ।

५४ **चतुरात्मा** – मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार, चार स्वरूपों वाली ।

५५ **चतुर्व्यूहा** — श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इन तीनों भाइयोंके समेत चार शरीर वाले श्रीराघवेन्द्र सरकारकी पटरानीजी ।

५६ **चन्द्रबिम्बोपमानना** — शरद् ऋतुके पूर्ण-चन्द्रके बिम्बके समान उज्ज्वल प्रकाशमय, परम आह्लादकारी श्रीमुख-छटावाली ॥११॥

घनश्यामात्मनिलया गोप्त्री गुप्ता गुहेशया ।
गेयोदारयशःपङ्क्तिर्गतैश्वर्यकृतस्मया ॥१२॥
गमनीयपदासक्तिः खलभावनिवारिणी ।
कृपापीयूषजलधिः कृतज्ञा कृतिसाधनम् ॥१३॥
कल्याणप्रकृतिः काम्या कल्याणी कामवर्षिणी ।
कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कम्बुकण्ठी कलानिधिः ॥१४॥

५७ **घनश्यामात्मनिलया** — जो सजल मेघोंके सदृश श्यामवर्ण श्रीराघवेन्द्र सरकारके हृदयमें निवास करती हैं ।

५८ **गोप्त्री** — जो समस्त चर-अचर प्राणियोंकी रक्षा करने वाली हैं ।

५९ **गुप्ता** — जो भक्तोंके हृदय रूपी कुञ्जमें छिपी रहती हैं ।

६० **गुहेशया** — जो प्राणियोंके हृदय रूपी गुफामें परमात्मस्वरूपसे शयन करती हैं ।

६१ **गेयोदारयशःपङ्क्तिः** — जिनका यश-समूह गान करने योग्य है ।

६२ **गतैश्वर्यकृतस्मया** — अपने अनुपम ऐश्वर्यके अभिमानसे जो सदा अछूती हैं ॥१२॥

६३ **गमनीयपदासक्तिः** — जिनके श्रीचरण कमल आसक्ति प्राप्त करने योग्य हैं ।

६४ **खलभावनिवारिणी** — जो अहितकर भावनाको भगा देती हैं ।

६५ **कृपापीयूषजलधिः** — जिनका कृपा रूपी अमृत समुद्रके समान अथाह है ।

६६ **कृतज्ञा** — जीवोंके कभी किसी भी जन्म के किञ्चित् किये हुये पूजन, वन्दन, स्मरण तथा अर्पण आदि कर्म को, जो कभी नहीं भूलती हैं ।

६७ **कृतिसाधनम्** — भगवत् प्राप्तिके पुरुषार्थकी जो साधनस्वरूपा हैं ॥१३॥

६८ **कल्याणप्रकृतिः** — जिनका स्वभाव परम मङ्गलकारी है ।

६९ **काम्या** — पूर्ण कामोंके लिये भी, जिनकी प्राप्ति-इच्छा करने योग्य है ।

७० **कल्याणी** — जो कल्याण-स्वरूपा हैं ।

७१ **कामवर्षिणी** — जो भक्तोंके लिए हितकर इच्छापूर्तिकी वर्षा करती रहती हैं ।

७२ **कारुण्यार्द्रविशालाक्षी** — दया-भावसे द्रवित कमलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं ।

७३ **कम्बुकण्ठी** — शङ्खके समान रेखाओंसे युक्त जिनका मनोहर कण्ठ है ।

७४ **कलानिधिः** — जो समस्त विद्याओंकी भण्डार-स्वरूपा हैं ॥१४॥

केलिप्रिया कलाधारा कल्मषौघनिवारिणी ।
ॐ शब्दवाच्या ह्योजोऽब्धिरुदितश्रीरुदारधीः ॥१५॥
उदारकीर्त्तिरुदिता उदारातुल्यदर्शना ।
इष्टप्रदेभगमना आदिजाऽऽह्लादिनी परा ॥१६॥
आश्रितवत्सला ऽऽराध्या अनिर्देश्यस्वरूपिणी ।
अद्वितीयसुखाम्भोधिरव्याजकरुणापरा ॥१७॥

७५ **केलिप्रिया** – जो भक्त-सुखद लीलाओंमें प्रेम रखती हैं ।

७६ **कलाधारा** – जो समस्त कलाओंकी आधार-स्वरूपा हैं ।

७७ **कल्मषौघनिवारिणी** – जो स्मरण करने वालोंके पापसमूहोंको भगा देती हैं ।

७८ **ॐ शब्दवाच्या** – ॐ शब्दसे वर्णन करने योग्य ।

७९ **ओजोऽब्धिः** — जो समुद्रके समान अथाह बल पराक्रम वाली हैं ।

८० **उदितश्रीः** – जो वेदशास्त्रोंके द्वारा गाई हुई हैं एवं कण-कण, पत्ती-पत्तीसे जिनकी स्वयं शोभा कान्ति तथा ऐश्वर्य प्रकट है ।

८१ **उदारधीः** – जिनकी बुद्धि, किसी भी असम्भवको सम्भव करनेमें कभी सङ्कोचको प्राप्त नहीं होती ॥१५॥

८२ **उदारकीर्त्ति** — जिनका यश सर्वाभीष्टदायक हैं ।

८३ **उदिता** — सभी वेद शास्त्र, पुराण संहिताओंके द्वारा जिनका वर्णन किया गया है ।

८४ **उदारातुल्यदर्शना** — जिनका दर्शन धर्म, अर्थ, काम, मोक्षदायक अनुपम मनोहर हैं ।

८५ **इष्टप्रदा** — जो भक्तोंको मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करती हैं ।

८६ **इभगमना** — जो गजराजके समान मनोहर चालसे चलने वाली हैं ।

८७ **आदिजा** — जो सबसे पहिले प्रकट होने वाली हैं ।

८८ **आह्लादिनीपरा** — जो आह्लाद प्रदायिका सभी शक्तियों में सर्वोत्तमा हैं ॥१६॥

८९ **आश्रितवत्सला**–जो अपने आश्रितोंके अपराधोंपर कभी ध्यान न देकर उनके हितमें सदैव तत्पर रहती हैं ।

९० **आराध्या** – जो सब प्रकारसे, सभीके उपासना करने योग्य हैं ।

९१ **अनिर्देश्यस्वरूपिणी**–जोइदमित्थं(ऐसा ही है यह)निश्चय न करसकने योग्य स्वरूपवाली हैं।

९२ **अद्वितीयसुखाम्भोधि** — जिनका सुख समुद्रके समान अनुपम, असीम तथा अथाह हैं ।

९३ **अव्याजकरुणापरा**—जो प्रत्येक प्राणीके प्रति बिनाकिसी स्वार्थ भावनाके ही कृपा करनेमें सदा तत्पर रहने वाली हैं ॥१७॥

अनवद्याऽप्रमत्तात्मा अनन्तैश्वर्यमण्डिता । अमानाऽयोनिजाऽकोपा अविचिन्त्याऽनघस्मृतिः ॥१८॥
अनीहाऽनियमाऽनादिमध्यान्ताऽद्भुतदर्शना । अजेयाऽकल्मषाऽकारवाच्येत्यवनिपोत्तम ! ॥१९॥
अष्टोत्तरशतं नाम प्रोच्यतेऽस्या महर्षिभिः । पठतां प्रत्यहं भक्त्या काऽपि सिद्धिर्न दुर्लभा ॥२०॥

श्रीजनक उवाच ।

श्रुतं नाम सहस्रं मे ह्यष्टोत्तरशतं तथा । इदानीं श्रोतुमिच्छामि द्वादशं लोकविश्रुतम् ॥२१॥
यदि श्रोतुं तदर्होऽस्मि भवद्भिः कृपयोच्यताम् । अक्लेशं परमोदाराः सिद्धाः! कृपणवत्सलाः ॥२२॥

९४ **अनवद्या** — जो सब प्रकार प्रशंसा योग्य हैं ।

९५ **अप्रमत्तात्मा** — जिनका मन भक्तोंकी सुरक्षामें सदा पूर्ण सावधान रहता है ।

९६ **अनन्तैश्वर्यमण्डिता** – जो असीम (ब्रह्मके) ऐश्वर्यसे विभूषित हैं ।

९७ **अमाना** – जो आदि, अन्त मध्य आदि नाप-तोलसे रहित हैं ।

९८ **अयोनिजा**–जो बिना किसीकारण अपनी भक्त-भावपूरिणी इच्छामात्रसे प्रकट होतीहैं ।

९९ **अकोपा** – जो वध योग्य अपराधीजीवों पर भी कभी क्रोध नहीं करतीं ।

१०० **अविचिन्त्या** – जो भगवान् श्रीरामजी द्वारा सदा सुमिरण करने योग्य हैं ॥१८॥

१०१ **अनघस्मृतिः** — जिनका सुमिरण परम पुण्यकारक है ।

१०२ **अनीहा** – पूर्णकाम होनेके कारण जो सभी प्रकारकी इच्छाओंसे रहित हैं ।

१०३ **अनियमा**– जो भाव-गम्य होनेके कारण किसीभी जप, तप, आदि साधनसे प्राप्त न होने वाली तथा भगवत्-प्राप्तिकारक साधन स्वरूपा हैं ।

१०४ **अनादिमध्यान्ता** — जो आदि, मध्य, अन्तसे रहित पूर्ण ब्रह्म-स्वरूपा हैं ।

१०५ **अद्भुतदर्शना** — जो परम आश्चर्यमय दर्शन वाली हैं ।

१०६ **अजेया** – जो कभी भी किसीके द्वारा जीती नहीं जासकतीं ।

१०७ **अकल्मषा** – जो समस्त पाप दोषों से रहित हैं ।

१०८ **अकारवाच्या** — जो भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके ही वर्णन करने योग्य हैं ।

हे राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीमिथिलेशजी महाराज! इस प्रकार महर्षियोंने इन श्रीललीजीके १०८ नामोंका वर्णन किया है, जिनका नित्य प्रति श्रद्धा पूर्वक पाठ करने वालोंके लिये इस त्रिलोकीमें कोई भी सिद्धि, दुर्लभ नहीं है ॥१९॥२०॥

श्रीजनकजी महाराज बोले हे महर्षियो! आप लोगोंकी कृपासे मैंने श्रीललीजीके हजार तथा १०८ नामोंका श्रवणकर लिया, अब लोक प्रसिद्ध १२ नामोंको भी श्रवण करना चाहता हूँ॥२१॥

हे परम उदार, दीनवत्सल, सिद्ध महात्माओ ! यदि मैं उन्हें सुखपूर्वक सुननेका अधिकारी होऊँ, तो आप लोग उन्हें भी सुनानेकी कृपा करें ॥२२॥

श्रीअन्तरिक्ष उवाच।

मैथिली जानकी सीता वैदेही जनकात्मजा। कृपापीयूषजलधिः प्रियार्हा रामवल्लभा ॥२३॥
सुनयनासुता वीर्यशुल्काऽयोनी रसोद्भवा। द्वादशैतानि नामानि वाञ्छितार्थप्रदानि हि ॥२४॥

श्रीजनक उवाच।

काभक्तिः साधनैःकैश्च सिद्ध्यति प्रेमलक्षणा। यां प्रशंसन्ति लोकेऽस्मिन्महाभागवतोत्तमाः ॥२५॥

श्रीअन्तरिक्ष-योगेश्वरजी महाराज बोले:-

१ **मैथिली** — जो श्रीमिथिवंशमें सर्वोत्कृष्ट रूपसे विराजने वाली श्रीसीरध्वजराजदुलारी हैं।

२ **जानकी** — जो श्रीजनकजी महाराजके भावकी पूर्त्तिके लिये उनकी यज्ञवेदीसे प्रकट हुई हैं।

३ **सीता** — जो आश्रितोंके हृदयसे सम्पूर्ण दुःखोंकी मूलभूता दुर्भावनाको नष्ट करके सद्भावना का विस्तार करती हैं।

४ **वैदेही** — जो भगवान् श्रीरामजीके चिन्तनकी तल्लीनतासे देहकी सुधि भूल जाती हैं।

५ **जनकात्मजा**— जो श्रीसीरध्वज नामसे प्रसिद्ध श्रीजनकजी महाराजके पुत्री भावको स्वीकार किये हैं।

६ **कृपापीयूषजलधिः** — जो समुद्रके समान अथाह एवम् अमृतके सदृश असम्भवको सम्भव कर देने वाली कृपासे युक्त हैं।

७ **प्रियार्हा**—जोप्यारेके सर्वथायोग्य प्रियतमा और श्रीरामभद्रजू जिनकेसर्वथा योग्य प्रियतमहैं।

८ **रामवल्लभा** — जो राघवेन्द्र सरकारकी परम प्यारी हैं ॥२३॥

९ **सुनयनासुता** — जो श्रीसुनयना महारानीके वात्सल्यभाव-जनित सुखका भली भाँति विस्तार करने वाली हैं।

१० **वीर्यशुल्का** — शिवधनुष तोड़ने की शक्ति रूपी न्यौछावर ही बधू रूपमें जिनकी प्राप्तिका साधन है अर्थात् जो भगवान् शिवजीके धनुष तोड़ने की शक्ति रूपी न्यौछावर अर्पण कर सकेगा उसीके साथ जिनका विवाह होगा।

११ **अयोनिः** — जो किसी कारण विशेषसे प्रकट न होकर केवल भक्तोंका भावपूर्ण करनेके लिये अपनी इच्छानुसार प्रकट हुई हैं।

१२ **रसोद्भवा** — जो जन्मसे ही अपनी अलौकिकता व्यक्त करनेके लिये किसी प्राकृत शरीरसे प्रकट न होकर पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं।

हे राजन् श्रीललीजीके ये बारह नाम मनोवाञ्छित (मन चाही) सिद्धिको प्रदान करने वाले हैं। यह सुनकर गद्गद हो श्रीजनकजी महाराज बोले ॥२४॥

भगवान्के अत्यन्त प्रेमी भक्त इस लोकमें जिस भक्तिकी प्रशंसा करते हैं, वह प्रेम लक्षणा भक्ति क्या है ? और किन साधनोंसे प्राप्त होती है ? ॥२५॥

श्रीअन्त्रिक्ष उवाच ।

भवत्यासाद्य यां तृप्तोऽमृतः सिद्धः पुमान्ध्रुवम् । यां ज्ञात्वा भवति स्तब्धोन्मत्त आत्मरतिस्तथा॥२६॥
यामुपेत्य नरः कश्चिन्नैव द्वेष्टि न हृष्यति । नोत्साही भवति प्राप्ते रमते न कदाचन ॥२७॥
कर्मज्ञानादियोगेभ्यो वरिष्टा शान्तिरूपिणी । परमानन्दसन्दोहा फलरूपा ऽनपायिनी ॥२८॥
इष्टविस्मरणे ऽनल्पव्याकुलता स्वरूपिणी । इष्टार्पिताऽखिलाचारा सा भक्तिः प्रेमलक्षणा ॥२९॥
प्रेमामृतस्वरूपेष्टमाहात्म्यज्ञानसंयुता । सा न कामयमाना हि ग्रहणीया हरिप्रियैः ॥३०॥
विषयासक्तिसंत्यागादमानित्वादवञ्चनात् । ग्रहणादानुकूल्यस्य प्रातिकूल्यविवर्जनात् ॥३१॥
इष्टेऽनन्यतयाऽन्येषु चौदासीन्यनिषेवया । गुणमाहात्म्यश्रवणस्मरणालापनादिभिः ॥३२॥
इष्टो ममेति विश्वासात्सर्वगः सर्वशक्तिमान् । सर्वेश्वरश्च सर्वज्ञः सर्वदा हिततत्परः ॥३३॥

श्रीअन्तरिक्षजी बोलेः—जिस भक्तिको प्राप्त कर मनुष्य सभी प्रकारकी वासनाओंसे तृप्त हो अमरत्वको प्राप्त कर लेता है । सम्पूर्ण सिद्धियां उसे प्राप्त हो जाती हैं अतः वह केवल श्रीभगवान्के प्रति प्रेम करता हुआ स्तब्ध (सब विचार रहित) तथा पागल के समान मेरा-तेरा ज्ञान शून्य हो जाता है ॥२६॥

जिसको प्राप्त कर कोई भी भाग्यशाली साधक, न अपने प्रतिकूल वस्तु, व्यक्ति तथा परिस्थितिकी प्राप्तिसे द्वेष ही करता है और न अनुकूलकी प्राप्तिसे हर्षित ही होता है, न किसी लौकिक वस्तु-व्यक्तिकी प्राप्तिके लिए उत्साहवान ही होता है और न प्राप्त अनुकूलमें आनन्द ही मानता है ॥२७॥

जो कर्म ज्ञानादि योगोंकी अपेक्षा परम श्रेष्ठा, शान्ति स्वरूपा, भगवदानन्दकी राशि, समस्त साधनोंकी फलस्वरूपा है, उसमें कभी भी कमी नहीं आती अर्थात् एक रस अखण्ड बनी रहती है ॥२८॥ जिस भक्तिके प्राप्त हो जाने पर अपने इष्टकी क्षणिक विस्मृति महाव्याकुलताका स्वरूप धारण कर लेती है तथा जिस भक्तिकी प्राप्ति होने पर समस्त आचरण सदा अपने इष्टको ही समर्पित रहते हैं, वही प्रेम लक्षणा भक्ति है ॥२९॥

हे राजन् ! वह प्रेम लक्षणा भक्ति प्रेम तथा अमृतका स्वरूप है । उस भक्तिमें इष्टकी महिमाका पूर्ण ज्ञान बना रहता है अतः उसके उदय हो जाने पर हृदयमें कोई कामना रहती ही नहीं । भगवत्प्रेमियोंको यही प्रेम लक्षणा भक्ति ग्रहण करनी चाहिये ॥३०॥

कवि योगेश्वर बोलेः—सांसारिक सभी प्रकारके शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषयों के त्याग, सब प्रकार का अभिमान त्याग, कपट, छलत्याग, इष्टकी अनुकूलता ग्रहण तथा प्रतिकूलताके त्याग ॥३१॥ इष्टके प्रति अनन्य निष्ठा तथा अन्योंके प्रति उदासीनता, इष्टके गुण महिमा श्रवण, कथनादि द्वारा ॥३२॥ हमारे इष्ट सभी के स्वामी सबके भीतर-बाहरकी जानने वाले, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान तथा सदा ही हित करनेमें तत्पर हैं ॥३३॥

नैश्चिन्त्यादभीतेश्च सर्वकामसमर्पणात् । अव्यावृतभजनाच्च भागवतानुकम्पया ॥३४॥
लभ्यते मुख्यतः साऽस्याः कृपालेशान्महीभुवः । साध्यसाधनरूपेयं नात्र कार्या विचारणा ॥३५॥

श्रीशिव उवाच ।

सहस्राष्टोत्तरशतद्वादशादिकनामभिः । उक्तं विज्ञाय महात्म्यं स्वपुत्र्या जनकोऽब्रवीत् ॥३६॥
अहोऽहं परमो धन्यो धन्यधन्यो धरातले । सुताभावेन मां नित्यं नन्दयत्यखिलेश्वरी ॥३७॥
यस्याः सम्बन्धमात्रेण त्रिलोक्यां सर्वभूभृताम् । यतीनां योगिवर्याणां सिद्धानां सुमहात्मनाम्॥३८॥
महाभागवतानां च मुनीनां त्रिदिवौकसाम् । पूज्यपूज्यप्रपूज्यानां ब्रह्मविष्णुपिनाकिनाम् ॥३९॥
सर्वेषां दुर्लभाप्तीनामादरेक्षणभाजनम् । अहमस्मि विशेषेण स्वल्पभूमिपतिः पुमान् ॥४०॥
इत्युक्त्वा प्रेमसंरुद्धगलो विस्फारितेक्षणः । विसञ्ज्ञां तत्क्षणं प्राप महासौभाग्यभूषितः ॥४१॥
भूपं तथाविधं दृष्ट्वा सभायां प्रेमविह्वलम् । आविर्होत्रो महातेजास्तमुत्थाप्येदमब्रवीत् ॥४२॥

इस विश्वासके आधार पर सदा निर्भय, निश्चिन्त रहने तथा उन्हींको सभी प्रकारके मनोरथ समर्पित कर देने एवं तैलधारावत् अखण्ड भजन करनेसे अथवा प्रभुके प्यारे भक्तोंकी कृपासे वह प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है ॥३४॥

उक्त सब साधनोंकी अपेक्षा मुख्य तो इन श्रीभूमिनन्दिनीजूकी लेशमात्र कृपासे ही वह प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है, कारण आपकी श्रीलाडिलीजू स्वयं ही साध्य और साधन स्वरूपा हैं, इस विषयमें आप किञ्चित् भी सन्देह न करेंगें ॥३५॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! एक हजार, एकसौ आठ तथा द्वादश (बारह) कहे हुये नामोंके श्रवण द्वारा अपनी श्रीलाडिलीजूकी महिमाको भली प्रकार जानकर श्रीजनकजी महाराज बोले ॥३६॥ हे नव योगेश्वर महाराज ! इस पृथ्वीतल पर मैं धन्योंमें धन्य, सबसे बढ़कर सौभाग्यशाली हूँ जो ये श्रीसर्वेश्वरीजी पुत्री भावसे मुझे नित्य आनन्द प्रदान कर रही हैं ॥३७॥

मैं छोटा सा मनुष्य राजा, जिनके सम्बन्ध मात्रसे ही त्रिलोकीमें सभी राजा, यति, योगि, सिद्ध, बड़े बड़े महातमा ॥३८॥ बड़े-बड़े भक्त, मुनि, देवता, पूज्योंके भी पूज्योंके महान् पूजनीय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ॥३९॥ कहाँ तक कहें जिनकी प्राप्ति महान् दुर्लभ है उन सभीका तो मैं विशेष रूपसे आदर दृष्टि भाजन हो रहा हूँ ॥४०॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:-हे पार्वती ! महासौभाग्यभूषित श्रीमिथिलेशजी महाराज इस प्रकार गद्गद कण्ठ हो कहकर श्रीललीजीके दर्शनार्थ नेत्रोंको फैलाये हुये उसी क्षण मूर्छाको प्राप्त कर गये ॥४१॥

सभीके बीचमें उस प्रकार श्रीमिथिलेशजी महाराजको प्रेम विह्वल देखकर महातेजस्वी योगेश्वर श्रीआविर्होत्रजी महाराज उठकर उनसे बोले ॥४२॥

**सहजानन्दिनी यस्य सुताभावमनुव्रता । परं ब्रह्म परं धाम ततः को भाग्यवत्तमः ॥४३॥
यस्या अंशसमुद्भुता ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सशक्तिका अनन्ताश्च ब्रह्माण्डानां परेश्वराः ॥४४॥
देवासुरसमर्च्याया भाव्यायाः परमर्षिभिः । तस्या लब्धप्रतिष्ठो यः पराशक्तेर्यदृच्छया ॥४५॥
स केषांचिन्न सम्मान्य आदरदृष्टिभाजनम् । सर्वार्हगुणहीनोऽपि ब्रह्मादीनां भवेदिह ॥४६॥**

श्रीप्रबुद्ध उवाच ।

**किं पुनर्योगिमुख्यानामृषभो ज्ञानिनामपि । श्रीमान् विदेहनृपतिर्जनको मिथिलेश्वरः ॥४७॥
भवान् सर्वगुणैर्युक्तः पूजनीयैर्महात्मभिः । तत्राप्यवाप्तसम्बन्धो जगन्मातामहस्य सन् ॥४८॥**

श्रीपिप्पलायन उवाच ।

**ईक्षया सर्वलोकानामुत्पत्यादिलयान्तकम् । नाट्यं विरचितं यस्या मायया कल्पनातिगम् ॥४९॥
तदिच्छामतिवर्तेत को नु ज्ञानमहोदधे ! । स्वयं विचार्य भूपेन्द्र ! भव सुस्थिरमानसः ॥५०॥**

जो परब्रह्म, अर्थात् सबसे बड़ी और आकाश महातत्वसे भी अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण सभीको अपने में बढ़नेका पूर्ण अवकाश देनेवाली हैं, जिनका तेज सबसे बढ़कर है वे श्रीललीजी जिनके पुत्री भावमें वर्त रही हैं, भला उन आपसे बढ़कर और अधिक सौभाग्यशाली कौन हो सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥४३॥

जिनके अंशसे उमा, रमा, ब्रह्माणी आदि महाशक्तियोंके समेत ब्रह्माण्ड समूहोंके सर्वश्रेष्ठ शासन करने वाले अनन्त ब्रह्मा, अनन्त विष्णु, अनन्त महेश्वरादिकोंका प्राकट्य होता है ॥४४॥

देवता, असुर सभी जिनका भली-भाँतिसे पूजन करते हैं और बड़े-बड़े महर्षिगण जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, वे सर्वोत्तम महाशक्तिजीने दैवसंयोग अथवा अपनी निर्हेतुकी कृपा वश, जिनको प्रतिष्ठा प्रदान की है ॥४५॥

वह पूजने योग्य सभी गुणोंसे हीन होने पर भी भला इस लोकमें ब्रह्मादिकोंमें भी किसके द्वारा सम्मान पाने योग्य और किसकी आदर दृष्टिका पात्र न बनेगा ? ॥४६॥

श्रीप्रवुद्धयोगेश्वरजी बोले:–फिर मुख्य योगियों तथा ज्ञानियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ, श्रीयुक्त, विदेह-राज, श्रीमिथिलानरेश श्रीजनकजी ॥४७॥ जो महात्माओंके द्वाराभी पूजने योग्य सभी गुणोंसे युक्त, उस पर भी जगज्जननीजूके पिताजीका सम्बन्ध प्राप्तहैं, वे आप सभीके आदर और सम्मान भाजन भला क्यों न होंगे ? अर्थात् अवश्य होना ही चाहिये ॥४८॥

श्रीपिप्पलायनजी बोले:–जिनकी कृपाकटाक्ष मात्रसे श्रीमायादेवी समस्त लोकोंकी उत्पत्तिसे लेकर महाप्रलय-पर्यन्तकी वह नाटक लीला कर रही हैं, जिसको कोई समझ भी नहीं सकता ॥४९॥ हे महासागरके समान अथाह ज्ञान वाले श्रीमिथिलेशजी महाराज ! भला उनकी इच्छाको कौन टाल सकता है ? अर्थात् जब वे स्वयं आपको आदर देना चाहती हैं, तो उनकी इच्छाके प्रतिकूल भला कौन कर सकता है ? यह विचार कर आप अपने चित्तको पूर्ण सावधान कर लीजिये ॥५०॥

श्रीकरभाजन उवाच ।

बालेयं रूपमात्रेण शक्त्या वाग्धीमनोऽतिगा । दीप्तनूपुरपादाब्जा मातुरुत्सङ्गवर्तिनी ॥५१॥
देवर्षिपितृभूताप्तनृणां नासावृणी नरः । न किङ्करो महाभाग ! य एनां समुपाश्रितः ॥५२॥

श्रीद्रुमिल उवाच ।

अस्या विक्रीडितं राजन् भावयन्हृदि सर्वदा । न बध्यते कर्मपाशैर्नरो याति परां गतिम् ॥५३॥
गुणाननन्तानस्या यो गणनेच्छुः स बालिशः । कालेन महता कामं कलयेत्पार्थिवान्कणान् ॥५४॥

श्रीचमस उवाच ।

य एनां न भजन्तीह च्युताः स्थानात्पतन्ति ते । पण्डितमानिनो मूर्खा लोलुपा आत्मघातिनः॥५५॥

श्रीशिव उवाच ।

पुनर्भागवतान्धर्माञ्छ्रावयित्वा सविस्तरम् । राज्ञाऽनुपृष्टा मुनयो बभूवुस्ते तिरोहिताः ॥५६॥
गतेष्वदृश्यतां तेषु स राजा कौतुकान्वितः । पूज्यवर्येषु मुनिषु तान् प्रणम्य महीयसः ॥५७॥
सदारः श्रीधरापुत्र्या पुत्रीपुत्रगणान्वितः । जगाम भवनं रम्यमात्मनो गगनस्पृशम् ॥५८॥

श्रीकरभाजनजी बोले:—अपने श्रीचरणकमलोंमें प्रकाशमान नूपुरोंको धारण किये हुई, श्रीअम्बाजीकी गोदमें विराजमान, ये श्रीललीजी केवल रूप मात्रसे ही बालिका हैं, किन्तु शक्ति के द्वारा वाणी, मन, बुद्धिसे भी परे हैं अर्थात् रूपसे तो मांकी गोदीमें विराजमान है ही, किन्तु इनकी शक्तिका न वाणी वर्णन कर सकती है, न मन मनन और न बुद्धि निश्चय ही कर सकती है।।५१।। हे महाभाग! अतएव जो कोई इनके आश्रित हो जाता है वह देव ऋषि पितर, भूत आदि अपने किसीभी कुटुम्बीका न ऋणी रहता है न सेवक, बल्कि सभीका पूज्य बन जाता है ॥५२॥

श्रीद्रुमिलजी बोले:—हे राजन् ! इन श्रीललीजीकी बालक्रीड़ाओंका हृदयमें सदा ध्यान करते रहनेसे, मनुष्य अपने कर्मोके रस्सेमें नहीं बँधता, बल्कि प्राणियोंकी सबसे उत्कृष्ट रक्षा करने वाली इन श्रीललीजीको ही प्राप्त हो जाता है ॥५३॥

बहुत कालमें पृथवीके कण कोई भले ही गिनले, किन्तु जो इन श्रीललीजीके अनन्त गुणोंके गिननेकी इच्छा करता है, वह निपट मूर्ख है ॥५४॥

श्रीचमसजी बोले:— जो अपनी पण्डिताईके अभिमानमें पड़कर इन श्रीललीजीका भजन नहीं करते वे अपने पदसे गिर जाते हैं अत एव वे अनेक विषय लोलुप, आत्मघाती हैं ॥५५॥

भगवान् शिवजी बोले:— हे पार्वती ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके पूछने पर भगवत्-तत्व मनन-शील वे योगेश्वर उन्हें विस्तार-पूर्वक भगवद् भक्तोंका धर्म श्रवण कराकर पुनः सभी गुप्त हो गये ॥५६॥

उन महाभागवतोंके गुप्त हो जानेके पश्चात् आश्चर्ययुक्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराज, मुनिवरोंको प्रणाम करके ॥५७॥ पुत्री-पुत्र गणोंसे युक्त श्रीभूमिकुमारीजीके साथ श्रीमहारानीजीके सहित आकाशको स्पर्श करने वाले अपने मनोहर भवनको गये ॥५८॥

तत्रोडुराजाभमनोहराननां सिन्दूरविन्दूल्लसितोरुमस्तकाम् ।
स्निग्धालकालङ्कृतगण्डयुग्मकामिन्दीवरोत्फुल्लविशाललोचनाम् ॥५९॥
नासाग्रमुक्तामणिशोभनाधरां ताराधिनाथांशुमनोहरस्मिताम् ।
विम्बारुणोष्ठीं नवनीतकोमलां स्मरप्रियालङ्कृतदिव्यविग्रहाम् ॥६०॥
विष्णुप्रियाकञ्जकरैः समर्च्चितां नाकेश्वरीचामरलोलकुन्तलाम् ।
हारैः समुद्योतितहृच्छुभस्थलीं समाश्रितत्राणकराब्जपाणिकाम् ॥६१॥
शैलेन्द्रजासेवितपादपङ्कजां नामास्तसर्वाघचयामनिन्दिताम् ।
सखीजनैश्चन्द्रमुखैर्विराजितामुदीक्ष्य संप्राप्तधृतिर्विदेहराट् ॥६२॥
निशामयन्तीषु सुतासु सादरं रसस्वरूपां सरसं निजात्मजाम् ।
जगाद राजामृततुल्यया गिरा रम्भोर्वशीड्यालिगणामिदं वचः ॥६३॥

श्रीजनक उवाच ।

वदन्ति सन्तः कवयो मुनीन्द्रा रसात्मिकां त्वां प्रकृतेः परामजाम् ।
जगत्समुत्पत्तिलयादिकारिणीं निराकृतिं विश्वविमोहनाकृतिम् ॥६४॥

वहाँ पूर्ण चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी जिनका मनोहर श्रीमुखारविन्द है, सिन्दूरका विन्दु जिनके विशाल मस्तक पर चमक रहा है, इत्रोंसे सींची हुई घुंघुराली अलकें जिनके कपोलोंकी शोभा बढ़ा रही हैं, नीले कमलके समान जिनके विशाल नेत्र हैं ॥५९॥

नासामणि जिनके अधरों पर सुशोभित हो रही हैं, चन्द्र-किरणोंके समान जिनकी मनोहर मुस्कान है, कुन्दुरूके फलके सदृश लाल-लाल जिनके ओष्ठ हैं तथा जो मक्खनके समान कोमल हैं, श्रीरतिजीने जिनके दिव्य अङ्गोंका शृङ्गार किया है ॥६०॥ विष्णुवल्लभा भगवती श्रीलक्ष्मीजीके करकमलों द्वारा षोडशोपचारसे जो पूजित हैं, जिनकी अलकावली श्रीइन्द्राणीजीकी चँवर सेवासे हिल रही हैं तथा जिनकी मनोहर हृदयस्थली मणिमय हारोंसे जगमगा रही है, जिनके हस्तकमल आश्रितोंकी सदा रक्षा करने वाले हैं ॥६१॥

श्रीगिरिराजकुमारी भगवती पार्वतीजी जिनके श्रीचरणकमलोंकी सेवा कर रही हैं तथा अपनी चन्द्रमुखी सखियोंके साथ जो विराज रही हैं, उन श्रीललीजीका दर्शन करके श्रीविदेहजी महाराज अपनी देहकी सुधि बुधि भूल गये, पुन धैर्यको प्राप्त हो ॥६२॥

पुत्रियोंके श्रवण करते हुये अपनी अमृत तुल्य मीठी वाणी द्वारा आदरपूर्वक परम सुन्दरी रम्भा, उर्वशी आदि अप्सराओंके स्तुति करने योग्य सखियों वाली, आनन्द-घन (ब्रह्म) स्वरूपा अपनी श्रीललीजीसे वे यह सरस वचन बोले ॥६३॥ हे विश्व-विमोहन स्वरूप वाली श्रीललीजी! सन्त, कवि तथा मुनीन्द्र आपको प्रकृतिसे परे जन्मसे रहित, जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करने वाली, आकार रहित ब्रह्मस्वरूपा बतलाते हैं ॥६४॥

सहस्रनामानि निगद्य ते ऽधुना गौणानि मुख्यानि समीड्यविक्रमे!।
विज्ञापिता त्व महतां महीयसामुपासनीया निखिलाण्डवासिनाम् ॥६५॥
सा त्वं कृपातः क्रतुवेदिसम्भवा ममासि लोकत्रयसृष्टिकारिणी।
अहो विचित्रं तव चारु चेष्टितं कृतार्थितोऽहं जगति त्वया ध्रुवम् ॥६६॥
रूपं तवेदं मम दृष्टिगोचरं हृदिस्थितं चास्तु मनोज्ञमन्वहम्।
वात्सल्यभावान्वितचित्तवृत्तयस्त्वय्यस्तमायान्त्वखिलेश्वरप्रिये ! ॥६७॥
यदा कदा वा खलु यासु कासु वा ममोद्भवो योनिषु जायते यदि।
न त्वद्वियोगोऽस्तु कदापि मे प्रिये! वरं प्रयाचे त्विदमेव वाञ्छितम् ॥६८॥

श्रीशिव उवाच।

इति संस्तुतयाऽऽश्वस्तः सभार्यो जनकस्तया।
मोहिन्या माययाऽऽच्छन्नमतिः स सुस्थिरोऽभवत् ॥६९॥

हे सब प्रकार स्तुति करने योग्य पराक्रम वाली श्रीललीजी ! ऋषियोंने आपके मुख्य-मुख्य गुणसूचक सहस्र नामोंका वर्णन करके मुझे इस समय वह ज्ञान करा दिया है, कि आप समस्त ब्रह्माण्ड निवासी महान्से महान् चेतनोंके लिये भी उपासना करने योग्य हैं, फिर साधारणोंकी बात ही क्या ? ॥६५॥

सो आप तीनों लोकोंकी सृष्टि करने वाली, मेरी यज्ञ-वेदीसे प्रकट हुईं, अहो ! आपकी लीला बड़ी ही विचित्र है। आपने मुझे इस जगत्में निश्चय ही कृतार्थ कर दिया ॥६६॥

हे सर्वेश्वरप्राणवल्लभा श्रीललीजी ! मेरी आँखोंके सामने विराजमान यह आपका मनोहर बालस्वरूप मेरे हृदयमें सदा अटल रहे और मेरे चित्तकी वात्सल्यभाव मयी सम्पूर्ण वृत्तियाँ भी आपमें ही विलीन हो जावें ॥६७॥

जब कभी, जिस किसी भी योनिमें मेरा जन्म हो, तो आपका वियोग मुझे कभी भी प्राप्त न हो, यह अपना अभीष्ट वर मैं आपसे मांगता हूँ ॥६८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये! इस प्रकारकी स्तुति करने पर श्रीकिशोरीजीने श्रीसुनयना महारानीके समेत उन्हें आश्वासन देकर, जब अपनी मोहिनी मायासे उनके उस ज्ञानको ढक दिया, तब वे श्रीजनकजी-महाराज शान्त भावको प्राप्त हो गये ॥६९॥

इत्यष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

—❀❀❀—

अथैकोननवतितमोऽध्यायः ।

श्रीविश्वामित्रजीका अहल्योपाख्यान कथन तथा सानुज श्रीरामका नगर-दर्शन व स्वरूप मुग्धा सखियोंकी विविध भावना ।

श्रीशिव उवाच ।

विश्वामित्रो महातेजाः सुबाहौ निहते रणे । प्रक्षिप्ते चैव मारीचे रामेणाम्बुधिरोधसि ॥१॥
मुनिभिः स्तूयमानाभ्यां लब्धकामैः समन्ततः । श्रीरामलक्ष्मणाभ्यां स युतोरेजेमुदाप्लुतः ॥२॥
अथ श्रीमिथिलेन्द्रस्य पत्रं प्राप्य सुखप्रदम् । उवाचेदं वचः श्लक्ष्णं श्रीरामं लक्ष्मणाग्रजम् ॥३॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वत्स ! राम ! नरेन्द्रस्य जनकस्य कराङ्कितम् । प्रतिहारसमानीतमिदं पत्रं हि वीक्ष्यताम् ॥४॥
धनुर्यज्ञप्रवृत्तेन स्वपुत्र्युद्वाहहेतवे । निमन्त्रितोऽस्मि भूपेन मिथिलाया महात्मना ॥५॥
अतो मया हि गन्तव्या मिथिला तात ! सत्वरम् । पालिता नरदेवेन विदेहेन महात्मना ॥६॥
तद्गृहे शाम्भवं चापमद्भुतं लोकविश्रुतम् । प्रदत्तं देवराताय पुरा त्र्यक्षेण वर्तते ॥७॥
तद्दृष्ट्वा शम्भुकोदण्डमयोध्यां गन्तुमर्हसि । सानुजस्त्वं मया साकमिदानीं मिथिलां व्रज ॥८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! जब भगवान् श्रीरामभद्रजूने युद्धमें सुबाहुको मारा और विना नोकके बाणसे मारीचको समुद्रके किनारे फेंक दिया, तब महातेजस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराज ॥१॥

अपने मनोरथको प्राप्त हुये मुनियोंके द्वारा सब ओरसे प्रशंसा कियेजाते श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयोंसे, युक्त श्रीविश्वामित्रजी महाराज आनन्द निर्भर हो परम शोभाको प्राप्त हुये ॥२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजका सुखद पत्र पाकर श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीलषनलालजीके वड़े भ्राता श्रीरामभद्रजूसे, यह मधुर बचन बोले:—॥३॥

हे वत्स श्रीरामभद्रजू ! दूतके लाये हुये इस पत्रको अवलोकन कीजिये, यह श्रीमिथिलेशजी महाराजका हस्तलिखित पत्र है ॥४॥

अपनी पुत्रीका विवाह करनेके लिये धनुषयज्ञमें प्रवृत्त, महात्मा श्रीमिथिलेशजी-महाराजने हमें निमन्त्रण भेजा है ॥५॥ हे तात ! इस लिये हमें शीघ्रही महात्मा श्रीविदेहजी-महाराजसे पालित श्रीमिथिलाजी चलना है ॥६॥

उनके घर पर प्राचीन कालमें भगवान् शङ्करजीके द्वारा, श्रीदेवरातजीको दिया हुआ लोक-विख्यात अद्भुत शिव-धनुष है ॥७॥

उस शिव-धनुषका दर्शन करके आप श्रीअवध पधारेंगे, अभी अपने भैया श्रीलषनलालजीके के साथ मेरे सङ्ग श्रीमिथिलाजी चलें ॥८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तं वचस्तस्य समाकर्ण्य स राघवः । आज्ञा प्रमाणमाभाष्य कुशिकात्मजमन्वगात् ॥९॥
साकं श्रीरामभद्रेण सानुजेन महामुनिः । अतीव शुशुभे गच्छन् मोदमानमनाः पथि ॥१०॥
गङ्गायाः पारमासाद्य गोतमस्याश्रमं शुभम् । स प्रविश्य कुमाराभ्यामहल्यान्तिकमाययौ ॥११॥
आश्रमं तं समालोक्य सर्वजन्तुविवर्जितम् । फलपुष्पभराक्रान्तैर्द्रुमैरत्यन्तशोभितम् ॥१२॥
रामः पप्रच्छ गाधेयं स्वामिन्! कस्य महात्मनः । रम्याश्रमोऽयमाख्याहि सर्वजन्तुविवर्जितः ॥१३॥
कीदृशीयं शिला नाथ ! दृश्यते मानुषाकृतिः । कथ्यतां कृपयेदानीं भवता सा महामुने ! ॥१४॥

श्रीशिव उवाच ।

रामस्य वचनं श्रुत्वा अहल्योद्धारसस्पृहः । उवाच कौशिको वाक्यं मुदितेनान्तरात्मना ॥१५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

रामभद्र ! महाबाहो ! कौशल्यानन्दवर्द्धन ! । गोतमस्याश्रमं विद्धि महर्षेरिममुत्तमम् ॥१६॥
गोतमर्षेस्तु पत्नीयमहल्या लोकविश्रुता । शिलारूपमनुप्राप्ता भर्तृशापेन राघव ! ॥१७॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! अपने गुरुदेवकी इस आज्ञाको सुनकर श्रीरामभद्रजू "मुझे तो आपकी आज्ञा ही प्रमाण है" ऐसा कहकर वे कुशिक महाराजके पुत्र श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पीछे चल पड़े ॥९॥

भाई श्रीलक्ष्मणके सहित श्रीरामभद्रजूके साथ-साथ प्रसन्न चित्त हो, मार्गमें चलते हुये महामुनि श्रीविश्वामित्रजी महाराज बड़ी ही शोभाको प्राप्त हो रहे थे ॥१०॥

वे श्रीगङ्गाजीको पार करके दोनों श्रीराजकुमारोंके सहित महर्षि श्रीगोतमजीके पवित्र आश्रममें प्रविष्ट हो, श्रीअहल्याजीके समीप गये ॥११॥ फलपुष्पोंके भारसे झुके हुये वृक्षोंसे अत्यन्त सुशोभित, उस आश्रमको सभी प्रकारके जीवों से रहित देखकर श्रीरामभद्रजूने गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीसे पूछा, स्वामिन् ! बतलाइये सब-जीवोंसे रहित यह किस महात्माका रमणीय आश्रम है ? ॥१२॥१३॥

हे नाथ ! यह शिला कैसी है ? जो मनुष्यके आकारकी दिखाई दे रही है, हे महामुने ! अब आप कृपा करके इस रहस्यको भी वर्णन कीजिये ॥१४॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीअहल्याजीका उद्धार चाहने वाले महर्षि श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीरामभद्रजूके इस बचनको सुनकर, बड़े ही प्रसन्न चित्तसे बोले ॥१५॥

हे श्रीकौशल्या महारानीजीके आनन्दको बढ़ानेवाले बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त श्रीरामभद्रजू! आप इसे महर्षि श्रीगोतमजीका उत्तम आश्रम जानिये ॥१६॥

हे श्रीराघवजी ! ये लोक-विख्यात महर्षि श्रीगोतमजीकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजी हैं जो अपने पतिदेवके शापके कारण शिला हो गयी हैं ॥१७॥

आश्रमोऽयं मुनेर्वाक्यात्सर्वजन्तुविवर्जितः । तपोवत्समतेरस्या निवासायाभवत्किल ॥१८॥
इमां सौन्दर्यसाराढ्यां सर्वसल्लक्षणान्विताम् । विश्वैकसुन्दरीं पुत्रीं निर्ममे नीरजोद्भवः ॥१९॥
हल्यं न विद्यते यस्यामहल्येति जगाद ताम् । पुनः कस्मै प्रदेयेयं चिन्तयित्वा मुहुर्मुहुः ॥२०॥
ब्रह्मणो बुद्धिरुत्पन्ना ध्रुवा तस्य यदृच्छया । प्रदेयेयं प्रयत्नेन मया दान्ताय योगिने ॥२१॥
एनामनिच्छते कन्यामाबालब्रह्मचारिणे । प्रशान्तेन्द्रियचित्ताय तत्त्वविच्चक्रवर्तिने ॥२२॥
इति निश्चित्य मनसा ब्रह्मा लोकपितामहः । आश्रमांश्च मुनीनां स सकन्यो विचचार ह ॥२३॥
जातकामान् दुहितरि विहाय मुनिसत्तमान् । आजगामाश्रमं पुण्यं गोतमस्य महात्मनः ॥२४॥
दृष्ट्वा पितामहः प्राह तं व्यवस्थितचेतसम् । तद्वृत्तिसंपरीक्षार्थं विधिवत्तेन पूजितः ॥२५॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

वत्स गोतम ! भद्रं ते यावदागमनं मम । तावदेनामहल्यां त्वं न्यासभावेन पालय ॥२६॥
एवमुक्त्वा समर्प्याङ्ग स सुतां लोकसुन्दरीम् । तस्मै महर्षिवर्याय पश्यतस्तत्तिरोदधे ॥२७॥

यह आश्रम तपस्यामें लगी बुद्धि वाली इन श्रीअहल्याजीके निवासके लिये है, जो श्रीगोतमजी के वचनानुसार समस्त जीवोंसे रहित हो गया है ॥१८॥

भगवान् की नाभि-कमलसे उत्पन्न श्रीब्रह्माजीने सौन्दर्यके सारसे युक्त सभी, शुभ लक्षणों वाली तथा विश्वमें अनुपम सौन्दर्य सम्पन्ना अपनी इस पुत्रीको बनाया ॥१९॥ जब देखा कि इस पुत्रीके शरीर-निर्माणमें किसी प्रकारकी भी कोई त्रुटि नहीं है, तो उन्होंने इसका नाम अहल्या कहा, "पुनः" यह पुत्री किसको प्रदान करना चाहिये, यह बारम्बार चिन्तन करने पर ॥२०॥

श्रीब्रह्माजीके हृदयमें अकस्मात् यह अटल-विचार उत्पन्न हुआ, कि अपनी इस पुत्रीको मैं यत्न पूर्वक किसी उस जितेन्द्रिय योगी को दूँ जिसे इस कन्याकी प्राप्तिकी इच्छा भी न जागृति हो और जो पूर्ण बालब्रह्मचारी पूर्णशान्त चित्त तथा इन्द्रिय वाला, तत्त्ववेत्ताओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हो ॥२१॥२२॥

समस्त लोकोंके बाबा श्रीब्रह्माजी ऐसा मनमें निश्चय करके इस पुत्रीके सहित मुनियोंके आश्रमोंमें विचरने लगे ॥२३॥

अपनी पुत्रीकी प्राप्ति चाहने वाले बड़े-बड़े मुनियोंको छोड़कर, वे महात्माश्रीगोतमजीके इस पवित्र आश्रममें पधारे ॥२४॥

श्रीगोतमजीका चित्तपूर्ण अटल देखकर, उनसे विधिपूर्वक पूजित हो, उनकी चित्त-वृत्तिकी परीक्षा लेनेके लिये श्रीब्रह्माजी बोले ॥२५॥

हे वत्स ! गोतम ! तुम्हारा कल्याण हो, जब तक मैं पुनः वापस नहीं आता हूँ, तब तक इस अहल्याकी तुम धरोहरके भावसे रक्षा करो ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोले हे पार्वती! इतना कहकर ब्रह्माजी महर्षियोंमें श्रेष्ठ उन श्रीगोतमजी को लोक सुन्दरी पुत्री, अहल्या सौंप कर उनके देखते ही अन्तर्हित (गुप्त) हो गये ॥२७॥

श्रीशिव उवाच ।

दिव्यवर्षसहस्राणि व्यतीतानि यदाऽभवन् । धर्मतो रक्षतोऽहल्यां महर्षेर्विदितात्मनः ॥२८॥
तदाऽऽश्रमं पुनस्तस्य स्वयंभूराजगाम ह । प्रणिपत्यासनासीनं कृत्वा ऽसौ तमपूजयत् ॥२९॥
ततोऽहल्यां प्रहृष्टात्मा सत्कृतां चिरपालिताम् । सादरं लोकगुरवे द्रुहिणाय समार्पयत् ॥३०॥
दृष्ट्वा तस्येदृशीं बुद्धिं निर्मलां तपसार्ऽजिताम् । वेधाः परमसन्तुष्टो गोतमं वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते वृत्त्या दुर्लभयाऽनया । रक्षतोऽपि रहस्येनां मालिन्यं नागमन्मनः ॥३२॥
अतो मदाज्ञया वत्स ! गृहाणेमां शुभेक्षणाम् । पत्नीभावेन सेवायामिदानीं हृष्टचेतसा ॥३३॥
एवमाश्वास्य तं वेधा ब्रह्मलोकमुपागमत् । समर्प्य विधिना पुत्रीं तस्मै परमसुन्दरीम् ॥३४॥
कदाचिन्नारदो लोकान्पर्यटन् वासवालयम् । आससाद मुनिश्रेष्ठो ब्रह्मपुत्रो हरिं स्मरन् ॥३५॥
तमभ्यर्च्येति विधिना महेन्द्रः पाकशासनः । प्रणम्य दण्डवद् भक्त्या परिपप्रच्छ सादरम् ॥३६॥

पुनः आत्मज्ञान-सम्पन्न महर्षि श्रीगोतमजी को धर्मपूर्वक श्रीअहल्याजी की रक्षा करते हुये जब देवताओंके कई हजार वर्ष व्यतीत हो गये ॥२८॥

तब पुनः श्रीब्रह्माजी उनके आश्रम पर पधारे, श्रीगोतमजीने प्रणाम करके आसन पर विराजमान कर उनका पूजन किया ॥२९॥

तत्पश्चात् उन्होंने बहुत दिनों से पाली हुई श्रीअहल्याजी को परमहर्ष पूर्वक, आदर-समन्वित लोकगुरु श्रीब्रह्माजी को अर्पण किया ॥३०॥

तपसे प्राप्त उनकी इस प्रकारकी निर्मल (आसक्ति रहित)बुद्धिको देखकर श्रीब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हो, उनसे बोले :-॥३१॥

हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारी इस दुर्लभ वृत्तिसे बहुत ही सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि एकान्तमें इतने दिनों तक इस लोक सुन्दरी अहल्याकी रक्षा करते हुये भी आपका मन विकार को नहीं प्राप्त हुआ ॥३२॥

हे वत्स ! इसलिये आप मेरी आज्ञासे इस मनोहर नेत्रवाली अहल्याको अब पत्नी (स्त्री) भावसे अपनी सेवामें हर्षित चित्तसे ग्रहण करो ॥३३॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वती ! इस प्रकार श्रीब्रह्माजी श्रीगोतमजीको आश्वासन प्रदान करके विधि पूर्वक अपनी परम सुन्दरी पुत्री उन्हें समर्पण कर, ब्रह्मलोकको चले गये ॥३४॥

किसी समय मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीब्रह्माजीके पुत्र, देवर्षि श्रीनारदजी कीर्त्तन द्वारा भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हुये, अनेक लोकोंमें भ्रमण करते २ देवराज इन्द्रके महलमें पधारे॥३५॥

पर्वतों पर शासन करने वाले देवराज इन्द्रने प्रेम-समन्वित आदर पूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके, विधि पूर्वक पूजन कर, उनसे इस प्रकार पूछा–॥३६॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

भगवंश्चित्रमाचक्ष्व यच्च किञ्चिद्विलोकितम् । भवता भ्रमतेदानीं लोकेषु प्रणताय मे ॥३७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तो मघवता सुरर्षिर्लोकपूजितः । प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा तमिदं कौतुकप्रियः ॥३८॥

श्रीनारद उवाच ।

साम्प्रतं गोतमस्याहं वल्लभां तच्छुभाश्रमे । दृष्टवानस्मि देवेन्द्र ! परमाश्चर्यरूपिणीम् ॥३९॥
तादृशी नैव गन्धर्वी न यक्षी न च पन्नगी । न ते प्राणप्रिया शक्र ! नो रती रूपसम्पदा ॥४०॥
इदं हि परमाश्चर्यं मयेदानीं विलोकितम् । स्वरूपदर्पनाशाय सर्वासां साऽजनिर्मिता ॥४१॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाभाष्य देवर्षौ स तस्मिन्प्रस्थिते सति । रूपश्रवणमात्रेणाहल्यासक्तमना अभूत् ॥४२॥
ततः कामविमूढात्मा शक्रस्त्रिदशपुङ्गवः । साकं चन्द्रमसा प्रागाद् गोतमस्याश्रमं निशि ॥४३॥
तेजसा तस्य भीतात्मा न प्रविश्य बहिः स्थितः । निशीथे शशिनं प्राह लम्पटः स्वानुयायिनम् ।४४।

श्रीइन्द्र उवाच ।

चन्द्रारुणशिखो भूत्वा कुरु शब्दं परिस्फुटम् । तेनासौ तपसां राशिरिदानीमेव सत्वरम् ॥४५॥

हे भगवन् ! तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हुये आपने जो कुछ आश्चर्यकी बात देखी हो उसे कृपा करके इस समय, मुझ सेवकको बताइये ॥३७॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे प्रिये ! इन्द्रके इस प्रकार पूछने पर प्रसन्न चित्त हो, सभी लोकों से पूजित, कौतुकप्रिय, देवर्षि श्रीनारदजी महाराज उनसे बोले:–॥३८॥

हे देवराज ! इस समय सबसे बढ़कर आश्चर्यकी स्वरूप, गोतमपत्नी श्रीअहल्याजीको मैंने उनके आश्रम पर देखा है ॥३९॥ सौन्दर्य-सम्पत्तिमें उन अहल्याजीके समान न कोई गन्धर्वी है, न यक्षी है, न कोई नागकन्या न आपकी प्रिया शची, और न रति ही है ॥४०॥

इस समय सबसे बड़ा आश्चर्य मैंने यही देखा है, मेरा अनुमान तो यह है कि सभी स्त्रियोंका सौन्दर्य-जनित अभिमान नष्ट करनेके लिये ही विधाताने, उन श्रीअहल्याजीको बनाया है ॥४१॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे प्रिये ! इतना कहकर जब वे देवर्षि श्रीनारदजी महाराज चले गये, तब इन्द्रका मन सुन्दरता सुनने मात्रसे ही श्रीअहल्याजीके प्रति आसक्त हो गया ॥४२॥

इस लिये देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र, काम वासनासे ज्ञान नष्ट हो जानेके कारण चन्द्रमाके साथ रात्रि में श्रीगोतमजीके आश्रम पर गया ॥४३॥

किन्तु महर्षि गोतमजीके तेजसे भयभीत-मन होकर, वह पर-स्त्रीलम्पट (इन्द्र) भीतर न जाकर बाहरही रहा और जब अर्द्धरात्रिका समय आया, तब अपने अनुयायी चन्द्रमासे बोला:-हे चन्द्रदेव ! तुम मुर्गा बनकर अपनी स्पष्ट बोली बोलो जिससे तपोराशि श्रीगोतमजी इस समय शीघ्रता पूर्वक ॥४४॥४५॥

ब्राह्ममुहूर्त्तमाज्ञाय गङ्गां स्नातुमितो व्रजेत् । मुनौ यातेऽन्तरं लब्ध्वा तत्स्वरूपो व्रजानि ताम् ॥४६॥
छद्मना वञ्चयित्वा तामहल्यां लोकसुन्दरीम् । अहं स्वं रूपमास्थाय करिष्यामि तव प्रियम् ॥४७॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्यादिष्टो महेन्द्रेण शब्दं चक्रे पुनः पुनः । भूत्वा स कुक्कुटस्तेन त्यक्तनिद्रोऽभवन्मुनिः ॥४८॥
ब्राह्ममुहूर्त्तसंभ्रान्त्या हरिध्यानसमन्वितः । मज्जनार्थं ययौ गङ्गां महेन्द्रस्तत्स्वरूपधृक् ॥४९॥
संप्रविश्याश्रमं तस्य न्यस्तचीरकमण्डलुः । उवाचाहल्यया पृष्टस्तां परिष्वज्य देवराट् ॥५०॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

नास्ति ब्राह्ममुहूर्तोऽयं निशीथसमयः प्रिये । मन्मथाग्निप्रशान्त्यर्थं त्वामहं समुपेयिवान् ॥५१॥

श्रीशिव उवाच ।

अथ तामुद्यतो भोक्तुं मुनेर्भीत्या वहिर्ययौ । यदृच्छयाऽऽश्रमद्वारं गोतमोऽपि तदाऽऽगमत् ॥५२॥
दृष्ट्वाऽन्यं गोतमं सोऽपि चित्रं दध्यौ ततोऽञ्जसा । शशाप वृत्तमाज्ञाय सर्वं तस्य महामुनिः ॥५३॥

ब्राह्ममुहूर्तको जानकर स्नान करनेके लिये गंगाजी चले जावें, उनके आश्रमसे चले जाने पर अवकाश पाकर मैं गोतमजीका स्वरूप धारण करके उस अहल्याके पास जाऊँगा ॥४६॥

मुनिवेषके द्वारा लोकसुन्दरी उस अहल्याको ठगकर अपने इन्द्र रूपमें स्थित हो मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा ॥४७॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वती ! इन्द्रकी इस आज्ञाको पाकर वह चन्द्रमा मुर्गा वनकर बारंवार शब्द करने लगा, उस शब्दसे श्रीगोतमजी महाराजकी निद्रा भङ्ग हो गयी ॥४८॥

और ब्राह्म मुहूर्तके धोखेसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करते हुये उधर वे स्नानके लिये श्रीगङ्गाजी पधारे और इधर इन्द्रने उनका स्वरूप धारण कर उनके आश्रम में जाकर अपना चीर कमण्डलु रख दिया, जब श्रीअहल्याजीने तुरन्त वापस आनेका कारण पूछा, तब वह गोतम रूपसे उनका आलिङ्गन करके बोला ॥४९॥५०॥

हे प्रिये ! यह अर्द्धरात्रिका समय है, ब्राह्म मुहूर्त नहीं, अतः कामाग्निको शान्त करनेके लिये मैं तुम्हारे पास वापस आया हूँ ॥५१॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वती ! इतना कहकर वह उनका भोग करनेके लिये उद्यत हुआ किन्तु महात्मा श्रीगोतमजीके भयसे बाहर निकल आया । दैवसंयोगसे उसी समय अपने आश्रमके द्वार पर श्रीगोतमजी भी आ पहुँचे ॥५२॥

महामुनि श्रीगोतमजीने उन दूसरे गोतमको देखकर आश्चर्य युक्त हो ध्यान किया, उससे अनायास ही सारी करतूतें समझकर इन्द्रको शाप दिया ॥५३॥

श्रीगोतम उवाच ।

योनिलम्पट ! दुष्टात्मन् ! धिक्त्वां श्रीमदोद्धतम् । मम शापप्रभावेण सहस्रभगवान्भव ॥५४॥
विवाहवेषं श्रीरामं दृष्ट्वा विगतकल्मषः । सहस्राक्षः प्रभविता तमित्युक्त्वाऽब्रवीत्प्रियाम् ॥५५॥
शिलामयी तपोयुक्ता तिष्ठ पापे ! शतं समाः । दुष्कृतेः फलमेवेदं रामस्त्वामुद्धरिष्यति ॥५६॥
विधुं कम्पितसर्वाङ्गं ताडितं मृगचर्मणा । संस्तुवन्तं मुनिः प्राह नीच ! कर्मफलं ब्रज ॥५७॥
ताडितोऽसि मया यस्माद्रुषा त्वं मृगचर्मणा । चिरं लोक प्रमाणार्थं भव त्वं मृगलाञ्छनः ॥५८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमिन्द्रं सचन्द्रं तं तथाऽहल्यां निजप्रियाम् । कृत्वा शापपरिक्लिष्टां महेन्द्राचलमभ्यगात् ॥५९॥
नीचकर्मरता बुद्धिर्यस्य नीचः स उच्यते । महत्यासक्तबुद्धिर्हि महात्मेति निगद्यते ॥६०॥
पदेनेन्द्रः सुराधीशस्तथा चन्द्रः सुधाकरः । कीदृशं तु फलं लब्धमुभाभ्यां नीचकर्मणा ॥६१॥
अतः सर्वैः प्रयत्नेन बहिष्कार्या दुरेषणा । यया मलिनतां याता बुद्धिः सर्वविनाशिनी ॥६२॥

श्रीगोतमजी बोले:—हे योनिलम्पट ! (व्यभिचारी) नीच बुद्धे ! इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यके अभिमानसे बहुत ही उद्दण्ड हो गये हो । अत एव तुझे धिक्कार है, मेरी शापसे तू हजार योनि वाला हो जा ॥५४॥ त्रेता युगमें विवाह वेषधारी भगवान् श्रीरामका जब तुझे दर्शन होगा, तब मेरे इस शापसे मुक्त होकर तू हजार नेत्रवाला हो जायगा, इस प्रकार इन्द्रको शाप देकर वे अपनी प्रिया श्रीअहल्याजीसे बोले ॥५५॥

हे पापे ! तू शिला रूप होकर तपस्या करती हुई सैकड़ों वर्षो तक यहीं पड़ी रह, यही कुकर्म का फल है । तेरा उद्धार भगवान् श्रीरामजी करेंगे ॥५६॥

चन्द्रमाको मृगचर्मसे मारने पर जब वह सभी अङ्गोंसे काँपता हुआ उनकी स्तुति करने लगा, तब वे मुनि बोले:—हे नीच ! अपने कर्मका फल भोग ॥५७॥

मैंने क्रुद्ध होकर जो तुझे मृगचर्मसे मारा है अत एव लोक प्रमाणार्थ सदाके लिये तेरे शरीरमें मृगका चिन्ह रहेगा ॥५८॥

इस प्रकार श्रीगोतमजी महाराज चन्द्रमाके सहित उस इन्द्रको तथा अपनी प्रिया अहल्याको शाप पीड़ित करके महेन्द्राचल नामके पर्वत पर चले गये ॥५९॥

हे पार्वती ! जिसकी बुद्धि नीच कर्मोंमें आसक्त है, वस्तुतः उसीको नीच कहा गया है, और जिसकी बुद्धि परब्रह्म परमात्मा भगवान्में आसक्त होती है, उसे ही महात्मा कहते हैं ॥६०॥

पदमें इन्द्रको देवताओंका राजा और चन्द्रमा अमृतकी खान कहा गया है, किन्तु उन दोनों ने अपने नीच कर्मका फल किस प्रकार प्राप्त किया ? ॥६१॥

इसलिये सभी साधकोंको पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने हृदयसे दुर्वासनाको बाहर निकाल देना चाहिये, क्योंकि उस संसर्गसे बुद्धि मलिनताको प्राप्त हो सर्व विनाशिनी बन जाती है ॥६२॥

दण्डो लोकोपकारार्थं सत्प्रदत्तो हरीच्छया । परेशार्पितचित्तानां तमःस्थानं कुतो हृदि ॥६३॥
अतस्तु गोतमस्यायं दण्डो लोकोपकारकः । महामहात्मनो देवि ! भगवत्प्रेरितात्मना ॥६४॥
कारणं भर्तृशापस्य प्रोच्येत्थं गाधिनन्दनः । रामेण सादरं पृष्टः कौतुकासक्तचेतसा ॥६५॥
रामं कमलपत्राक्षं लक्ष्मणेनोपशोभितम् । पुनः संश्लक्ष्णया वाचा सप्रमोदमवोचत ॥६६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्रं ते भर्तृशापप्रपीडिताम् । इमां स्वपादपद्मेन संस्पृश्योद्धर्तुमर्हसि ॥६७॥
नान्यथाऽस्या विमोक्षः स्यान्मुनिवाक्यप्रमाणतः । अतः स्वपादरजसा कृपयैनां समुद्धर ॥६८॥
ऋषिपत्नीति विज्ञाय पादसंस्पर्शपातकात् । नास्तु ते साध्वसं किञ्चित्तात! मद्वाक्यगौरवात् ॥६९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तो राजराजेन्द्रसूनुर्भुवनसुन्दरः । रामो राजीवपत्राक्षस्तं ननाम मुनीश्वरम् ॥७०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततः स रघुवल्लभः । पस्पर्श पादपद्मेन मुनिभार्यां शिलामयीम् ॥७१॥

हे पार्वती ! महात्माओंका दिया हुआ दण्ड भगवान्की इच्छासे लोकोपकारके लिये होता है अन्यथा जिनका चित्त त्रिगुणातीत अपार सुखसिन्धु भगवान् श्रीहरिमें आसक्त है, उनके हृदयमें फिर भला तमोगुणके लिये अवकाश कहाँ ? जिससे क्रोध उत्पन्न हो ॥६३॥

हे देवि ! इसलिये महात्माओंमें श्रेष्ठ उन श्रीगोतमजीकी भगवत्प्रेरित बुद्धिसे दिया हुआ यह दण्ड, लोक-कल्याण-कारक ही है ॥६४॥

कौतुकासक्त चित्त भगवान् श्रीरामजीके आदर-पूर्वक पूछने पर गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजी ने इस प्रकार श्रीअहल्याजीके पतिशाप का कारण बतलाकर पुनः मीठी वाणी द्वारा श्रीलक्ष्मण भाईसे सुशोभित कमल दललोचन श्रीरामभद्रजूसे बोले ॥६५॥६६॥

हे वत्स श्रीरामभद्रजू ! आपका मङ्गल हो, अपने श्रीचरण-चमल द्वारा स्पर्श करके पति-शापसे पीडित इस अहल्या का उद्धार कीजिये ॥६७॥

श्रीगोतमजीकी बाणीके प्रमाणके कारण इसका और किसी अन्य साधन द्वारा, उस शापसे छुटकारा हो ही नहीं सकता, इस हेतु आप अपनी चरण-धूलिके द्वारा कृपा करके इस अहल्याका पूर्ण उद्धार कीजिये ॥६८॥

मेरी आज्ञा प्रधान होनेके कारण "यह ऋषि पत्नी है ऐसा समझ कर" आप अपने श्रीचरण-कमल द्वारा इसके स्पर्श जनित अपराधसे न डरें; क्योंकि मेरी आज्ञा परम मान्य होने के कारण आपको अपराध नहीं लगेगा ॥६९॥

श्रीविश्वामित्र महाराज द्वारा इस प्रकार आज्ञा मिलने पर, भुवनसुन्दर कमलदललोचन, चक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजूने उन्हें प्रणाम किया ॥७०॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़े हुये वे रघुकुलके परम प्यारे श्रीराघवेन्द्र सरकारजूने उस शिलामयी मुनिपत्नी श्रीअहल्याजीका, अपने कमलवत् सुकोमल चरणसे स्पर्श किया ॥७१॥

तस्य सा स्पर्शमात्रेण निर्धूताऽशेषकिल्विषा । श्रीरामं स्तोत्रयामास समुत्थाय कृताञ्जलिः ॥७२॥
तस्यै तु वाञ्छितं प्रादात्कृपार्द्रनयनो हरिः । पूजितः परया भक्त्या वन्द्यमानो मुहुर्मुहुः ॥७३॥
रामं सलक्ष्मणं नत्वा विश्वामित्रं मुहुर्मुहुः । रामात्मा साश्रुनेत्रा सा लब्धाज्ञा पतिमभ्यगात् ॥७४॥
ततो विदेहनगरं प्रविवेश महामुनिः । कृतार्थयन् पथिगतान् दर्शनेन कुमारयोः ॥७५॥
रम्यमाराममालोक्य सर्वकालसुखावहम् । तत्रोवास महातेजा उभाभ्यां परिशोभितः ॥७६॥
जनेभ्यस्तत्समाश्रुत्य मिथिलेशो द्विजैर्वृतः । वासं जगाम तत्तूर्णं स्वागतार्थमनिन्दितः ॥७७॥
ननाम दण्डवद्भूमौ गाधेयं तपसां निधिम् । कुमारौ पुनरालोक्य दशयानस्य मोहितः ॥७८॥
प्रतिलब्धधृती राजा पप्रच्छ जनको मुनिम् । हर्षगद्गदया वाचा कौतूहलसमन्वितः ॥७९॥

उस (श्रीचरण-कमलके) स्पर्श मात्रसे ही श्रीअहल्याजीके सब पाप नष्ट हो गये अतः वह ऋषि पत्नी रूपको प्राप्त हो उठी और अपने दोनों हाथ जोड़े हुई भगवान् श्रीरामभद्रजूकी स्तुति करने लगी ॥७२॥

पुनः बड़ी श्रद्धा-पूर्वक उसने प्रभु श्रीरामजीका पूजन और बारम्बार प्रणाम किया जिससे भक्त दुःखापहारी प्रभु श्रीरामभद्रजूने कृपावश सजल नेत्र हो, उन श्रीअहल्याजीको मनोभिलषित वर प्रदान किया ॥७३॥

श्रीलखनलालजीके समेत श्रीरामभद्रजू तथा श्रीविश्वामित्रजी-महाराजको बारम्बार प्रणाम करके प्रभु श्रीरामको हृदयमें विराजमान किये हुई, उनकी आज्ञा लेकर सजल नेत्र हो वे श्रीअहल्याजी अपने पतिदेव श्रीगोतमजीके पास पधारीं ॥७४॥

श्रीअहल्याजीका उद्धार हो जानेके बाद महामुनि श्रीविश्वामित्रजी, दोनों श्रीराजकुमारोंके दर्शनों द्वारा मार्गमें आये हुये समस्त सौभाग्यशाली प्राणियोंको कृतार्थ करते हुये विदेहपुरी श्रीमिथिलाजी पहुँचे ॥७५॥

सब कालमें सुख पहुँचानेवाले एक मनोहर बगीचेको देखकर महातेजस्वी, तपोधन श्रीविश्वामित्रजी महाराजने दोनों राजकुमारोंसे शोभायमान हो उसीमें निवास किया ॥७६॥

जब लोगोंके द्वारा यह समाचार श्रीमिथिलेशजी महाराजने सुना, तब ब्राह्मण समाजसे घिर कर सर्वलोकोंमें प्रशंसित, श्रीजनकजी महाराज उनका स्वागत करने के लिये तुरंत उस बाटिका में गये ॥७७॥

सम्पूर्ण तपोंकी निधि, गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीको भूमि पर दण्डवत् प्रणाम कर, श्रीदशरथजी महाराजकेराजकुमारों का दर्शन करके वे बेसुध, हो गये ॥७८॥

जब कुछ सावधान हुये तब आश्चर्य युक्त हो, राजा श्रीजनकजी महाराजने हर्षसे गद्गद हुई वाणी द्वारा पूछा ॥७९॥

हास्यस्पर्द्धितसोमांशू दीप्तकोदण्डधारिणौ । काकपक्षधरौ वीरौ माधुर्य्याम्बुधिसत्कृतौ ॥८०॥
इमौ कौ मुनिशार्दूल ! नीलपीतमणिप्रभौ । कुमारौ पद्मपत्राक्षौ राकापतिनिभाननौ ॥८१॥
भासयन्तौ दिशः सर्वा ह्लादयन्तौ चराचरम् । राजतः कोटिकामाभौ सहजानन्दविग्रहौ ॥८२॥
मुनिपुत्रौ च वा कच्चिद्राजवंशविभूषणौ । द्विधा कृत्वाऽथवाऽऽत्मानं साक्षाद्ब्रह्म विराजते ॥८३॥
यस्मात्सहजवैराग्यस्वरूपं मे मनः प्रभो ! । आसक्ति परमां प्राप प्रेक्ष्य चन्द्रं चकोरवत् ॥८४॥
इमां मे संशयग्रन्थिं सुदृढां छेत्तुमर्हसि । मुनिवर्य ! कृपासिन्धो ! सर्वदा दीनवत्सल ! ॥८५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

अमृषैव विमर्शस्ते योगिन्द्रकुलभूषण । ख्यातौ दशरथस्यैतौ तनयौ रामलक्ष्मणौ ॥८६॥
क्रतुरक्षार्थमानीतौ याचयित्वा महानृपम् । अयोध्यातो महाभाग ! स्वाश्रमं मुनिसङ्कुलम् ॥८७॥

जिनकी मुस्कानसे चन्द्रकिरणें डाह कर रही हैं, जो प्रकाशमान धनुषको धारण किये हुये है और जिनके सिरपर काकपक्षके समान सुन्दर पीछेकी ओर घुमाये हुये केशोंकी शोभा है, जिनकी सुन्दरताका सत्कार अथाह समुद्र करता है क्योंकि वह अपनेको इतना बड़ा और अथाह नहीं मानता, जितनी उनकी सुन्दरताको, फिर भी जो वीर हैं ॥८०॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! नील, पीत-मणिके समान श्यामगौर प्रकाश युक्त, कमलदल-लोचन एवं चन्द्रमाके समान आह्लादकारी मनोहर मुख वाले ये दोनों राजकुमार कौन हैं ? ॥८१॥

जो करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, स्वाभाविक आनन्दस्वरूप अपने सहज प्रकाशसे दशो दिशाओंको प्रकाशित और सम्पूर्ण चर-अचर प्राणियोंको आह्लादित करते हुये विराजमानहैं॥८२॥

क्या ये दोनों बालक मुनि पुत्र हैं ? अथवा राज-कुलभूषण ? अथवा साक्षात् ब्रह्महो तो नहीं श्याम-गौरमय अपने दो रूप बनाकर स्वयं विराजमान है ? ॥८३॥

हे प्रभो ! क्योंकि मेरा मन तो स्वाभाविक वैराग्यस्वरूप है, वह भी इनका दर्शन करके इस प्रकार आसक्त हो गया है, जैसे चन्द्रको देखकर चकोर हो जाता है ॥८४॥

हे दीनों पर सदैव वात्सल्य भाव रखने वाले ! मुनियोंमें श्रेष्ठ ! हे कृपा सागर ! मेरे हृदयकी इस शङ्का रूपी पक्की गाँठ को आप ही काटने को समर्थ हैं ॥८५॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः हे योगीन्द्र कुलभूषण श्रीमिथिलेशजी महाराज ! आपका अनुसन्धान ठीक ही है किन्तु ये श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाई श्रीदशरथजी महाराज के पुत्र कहाते हैं ॥८६॥

हे महासौभाग्यशाली राजन् ! इन्हें मैं यज्ञ की रक्षाके लिये श्रीचक्रवर्ती (दशरथ) जीसे माँग कर श्रीअयोध्याजीसे ही मुनियोंसे भरे हुये अपने आश्रममें लाया था ॥८७॥

यज्ञं प्रकुर्वतःसार्द्धं मुनिभिर्मम रक्षसाम् । क्रतुद्विषां कुबुद्धीनां संहारो लीलया कृतः ॥८८॥
सानुजेन क्षणार्द्धेन रामेणानेन भूपते । सुबाहौ निहते युद्धे मारीचस्तदनन्तरम् ॥८९॥
तीरे महोदधेः क्षिप्तस्तस्य मृत्युमनिच्छता । बाणेनैकेन रामेण कौतुकं तदभूत्परम् ॥९०॥
अथायं सानुजो रामः पूज्यमानो महात्मभिः । तत्कर्ममुदितैः साकं मयाऽऽपद्गोतमाश्रमम् ॥९१॥
भर्तृशापविनिर्मुक्तामहल्यां मदनुज्ञया । स्वपादस्पर्शमात्रेण कृतवान् रघुनन्दनः ॥९२॥
धनुर्दर्शनलाभाय मदाज्ञां परिपालयन् । आगतो मिथिलाधीश ! सानुजो भवतः पुरीम् ॥९३॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तो नराधीशो जनको गाधिजन्मना । प्रहर्षं परमं लेभे लालयन् बहुशो हि तौ ॥९४॥
आसनाशनसंवेशप्रबन्धं समयोचितम् । कारयित्वा नृपस्तेषामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥९५॥
रामो बन्धोरभिप्रायं विज्ञाय भ्रातृवत्सलः । गाधिजं निजगादेदं प्रणिपत्य शुभं वचः ॥९६॥

वहाँ मुनियोंके सहित जब मैं यज्ञ करने लगा, तब यज्ञ विध्वंसक, दुष्टबुद्धि, राक्षसोंने आक्रमण किया, उन्हें अपने छोटे भाई श्रीलखनजीके सहित इन्हीं श्रीरामभद्रजूने खेल-पूर्वक मार डाला । पुनः युद्धमें सुबाहु राक्षसके मारे जाने पर मुनियोंकी हिंसा करनेवाले मारीचकी मृत्यु न चाहनेके कारण इन श्रीरामभद्रजूने अनायास ही अपने बिना नोकके बाणसे उसे महोदधि(महासागर) के किनारे फेंक दिया, सो बड़ी ही अद्भुत लीला हुई ॥८८॥८९॥९०॥

यज्ञपूर्ण करादेनेसे प्रसन्न हुये महात्माओंसे पूजित होते हुये अपने छोटे भैयाके सहित ये श्रीरामभद्रजू मेरे साथ श्रीगोतमजीके आश्रममें गये ॥९१॥

वहाँ भी इन श्रीरघुनन्दनजूने मेरी आज्ञासे अपने श्रीचरणकमलके स्पर्श मात्रसे ही अहल्या को, पति (महर्षि श्रीगोतमजी) की शापसे मुक्त किया है ॥९२॥

हे श्रीमिथिलामहीपतिजू ! अब ये मेरी आज्ञाका पालन करते हुये अपने लघु भ्राताजूके सहित धनुष-दर्शनका लाभ लेनेके लिये आपकी पुरीमें आये हैं ॥९३॥

भगवान् श्रीशिवजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजके इस प्रकार परिचय देने पर श्रीजनकजी महाराजने दोनों श्रीराजकुमारोंका बहुत प्रकारसे लाड़ करते हुये महान् हर्षको प्राप्त किया ॥९४॥

पुनः उनके आसन, भोजन, शयनका समयोचित इच्छानुसार प्रबन्ध कराके श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीविश्वामित्र मुनिकी आज्ञा पाकर, अपने महलमें प्रवेश किया ॥९५॥

अपने भाइयों पर वात्सल्य भाव रखने वाले श्रीरामभद्रजू अपने भैया श्रीलखनलालजीके हृदयकी उत्कण्ठा समझकर प्रणाम करके, गाधिपुत्र श्रीविश्वामित्रजी से यह शुभ वचन बोले ॥९६॥

श्रीराम उवाच ।

इदानीं द्रष्टुमिच्छाऽस्ति नगर्य्यां लक्ष्मणोरसि । स्वयं भियाऽयमाख्यातुं भवन्तं नैव वाञ्छति ॥९७॥
अनुज्ञां प्राप्नुयां स्वामिंस्तव चेदविलम्बतः । नगरीं दर्शयित्वेमां शीघ्रमागम्यते मया ॥९८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

गच्छ वत्स ! पुरं रम्यं सानुजः पूर्निवासिनाम् । दर्शनेनात्मनोऽवश्यं लोचनानि कृतार्थय ॥९९॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्युक्तं वचनं तस्य सन्निशम्य तमानतः । लक्ष्मणानुचरो रामः प्रविवेशोत्तमां पुरीम् ॥१००॥
रामं तद्द्भुताकारं दृष्ट्वा नगरबालकाः । अन्वीयुः परमानन्दनिर्भरा रघुनन्दनम् ॥१०१॥
कुत्रत्यौ कस्य वंशेनौ भवन्तौ कुत आगतौ । काभ्यां मङ्गलनामभ्यां कुमारौ! लोकविश्रुतौ ॥१०२॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्यादिकाञ्छुभान्प्रश्नान् रामस्य मधुरं वचः । जनः संश्रोतुमिच्छन्तः कुर्वन्तोऽनुययुर्मुदा ॥१०३॥
बालका आदृतास्ताभ्यां भाषणस्मितवीक्षणैः । ऊचुः प्रेमार्द्रया वाचा दर्शयन्तोऽङ्गुलीङ्गितम्॥१०४॥

श्रीबालकाऊचुः ।

इदं गजाननागारमिदं तु गिरिजागृहम् । पश्यतं शारदावेश्म रमागेहमिमं शुभम् ॥१०५॥

श्रीरामभद्रजू बोले:—हे नाथ ! इस समय श्रीलखनलालजीके हृदयमें श्रीजनकपुरको देखने की इच्छा है, किन्तु भयके कारण उसे, ये आपसे स्वयं नहीं कहना चाहते ॥९७॥

हे स्वामिन् ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं लखनलालजीको नगरका दर्शन कराके शीघ्र वापस चला आऊँ ॥९८॥ श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले:—हे वत्स ! अपने अनुजके सहित आप इस मनोहर नगरमें पधारें और अपना सुन्दर स्वरूप दिखलाकर पुरवासियोंके नेत्रोंको अवश्य कृथार्थ करें ॥९९॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजके कहे हुये इस वचनको सुनकर श्रीरामभद्रजूने गुरुदेवको प्रणाम करके श्रीलखनलालजीके आगे चलकर उस उत्तम नगरमें प्रवेश किया ॥१००॥ विलक्षण सुन्दर स्वरूपवान् श्रीरामभद्रजीका दर्शन करके, नगर के बालक ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हो श्रीरघुनन्दनप्यारेजूके पीछे लग गये ॥१०१॥

आप कहाँके रहने वाले हैं ? किस वंशको सूर्यके समान आप जगत्में विख्यात कर रहे हैं? आप आये कहाँसे हैं ? हे युगलकुमार ! आप दोनोंको किन मङ्गलमय नामोंसे पुकारा जाता है ॥१०२॥ भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीरामलालजूकी मधुर वाणी सुननेकी इच्छासे पुरवासी लोग, इस प्रकार अनेक प्रश्न करते हुये उनके पीछे लगे ॥१०३॥

श्रीमिथिलानिवासी बालकवृन्द, दोनों राजकुमारोंसे वाणी मुस्कान और चितवनके द्वारा आदर पाकर अपनी प्रेम भीनी वाणीसे अङ्गुलीका सङ्केत करते हुये बोले ॥१०४॥

यह श्रीगणेशजीका मन्दिर है, यह मन्दिर श्रीपार्वतीजीका, देखिये यह श्रीसरस्वतीजीका और यह मनोहर मन्दिर श्रीलक्ष्मीजीका है ॥१०५॥

परमोच्छ्रिते ॥१०६॥
धेनुशालातती पुण्ये पश्यतं वाजिनामिमे । कुञ्जराणामिमे पङ्क्ती दृश्येते परमोच्छ्रिते ॥१०६॥
महिषीणामिमे राजी विद्यालयतती शुभे । आगन्तुकमहीपानामिमे पङ्क्ती सुसद्मनाम् ॥१०७॥
सुमतस्येदमागारं पश्यतं दिशि पश्चिमे । श्रीसन्धिवेदनस्येदं मन्त्रिणो भवनं शुभम् ॥१०८॥
जयमानस्य सदनं सुदर्शनगृहं तथा । विष्वक्सेनस्य निलयः सुदाम्नोऽयं शुभालयः ॥१०९॥
पश्यतं पद्मपत्राक्षौ सुनीलस्य निवेशनम् । इदं वेश्म विधिज्ञस्य वसुखण्डसमुच्छ्रितम् ॥११०॥
इदं तु पश्चिमे रम्यं श्रीवलाकरमन्दिरम् । चन्द्रभानोरिदं सद्म पश्यतं स्मितमोहनौ ॥१११॥
अयं प्रतापनावासो ह्यसौ जयपताकिनः । अरिमर्दनवेश्मेदं युवाभ्यां समुदीक्ष्यताम् ॥११२॥
श्रीतेजःशालिनो वेश्म विशालमिदमुच्छ्रितम् । राज्ञीहट्टमिदं रम्यं दृश्यते वहुविस्तृतम् ॥११३॥
इदं शत्रुजिदागारं श्रीयशः शालिनस्त्विदम् । अस्तीदमुत्तरद्वारं श्रीयशोध्वजमन्दिरम् ॥११४॥
इदं वीरध्वजस्यास्ति भवनं मोहनेक्षणौ ! । पश्यतं भूरिशोभाढ्यं रिपुतापनमन्दिरम् ॥११५॥

ये दोनों पवित्र पंक्तियाँ गौशालाकी हैं, ये देखिये दोनों अश्वशाला की पंक्तियाँ हैं, ये दोनों परम ऊँची पङ्क्तियाँ गजशालाओं की दिखाई देती हैं ॥१०६॥

ये दोनों पङ्क्तियाँ भैंसीशालाकी और ये दोनों मनोहर पङ्क्तियाँ विद्यालयोंकी हैं, ये सुन्दर महलोंकी पङ्क्तियाँ आगन्तुक राजाओंकी हैं ॥१०७॥

देखिये पश्चिम दिशामें यह महल श्रीसुमतमन्त्रीजीका और और यह श्रीसन्धिवेदन मन्त्रीका उत्तम महल है ॥१०८॥

यह श्रीजयमानमन्त्रीका महल है, यह महल श्रीसुदर्शन मन्त्रीजीका है, यह विष्वक्सेन मन्त्रीजीका महल है, यह उत्तम महल श्रीसुदामा मन्त्रीजीका है ॥१०९॥

हे कमलदललोचन ! देखिये यह सुनील मन्त्रीका महल है, यह आठ खण्ड ऊँचा महल विधिज्ञ मन्त्रीजीका है ॥११०॥

हे मनोहर मुस्कान वाले सरकार ! पश्चिममें यह मनोहर मन्दिर श्रीवलाकरजीका है, और देखिये यह श्रीचन्द्रभानु महाराजका भवन है ॥१११॥

यह सदन श्रीप्रतापन महाराजका है, यह श्रीविजयध्वज महाराजका भवन है, देखिये यह महल श्रीअरिमर्दनजी महाराजका है ॥११२॥

यह विशाल और ऊँचा भवन श्रीतेजःशालीजी महाराजका है, यह बहुत विस्तारमें जो दिखाई दे रहा है, वह रानी बाजार है ॥११३॥

यह शत्रुजित् महाराजका महल है, यह महल श्रीयशःशालीजी महाराजका है, उत्तर द्वार वाला यह महल श्रीयशध्वज महाराजका है ॥११४॥

दर्शन मात्रसे मुग्ध कर लेनेवाले हे दोनों सरकार ! यह श्रीवीरध्वजमहाराजका महल हैं, देखिये—यह बहुत ही शोभा युक्त भवन श्रीरिपुतापनजी महाराजका है॥११५॥

हंसध्वजस्य निलयो मनोज्ञो दृश्यतामयम् । इदं केकिध्वजस्यास्ति दर्शनीयं निकेतनम् ॥११६॥
इदं तु परमं रम्यं श्रीकुशध्वजमन्दिरम् । भ्रातुः सहोदरस्यास्ति मिथिलाया महीपतेः ॥११७॥
इदं परमशोभाढ्यं दर्शनीयं दिवौकसाम् । सुप्रभं भवनं दिव्यं मिथिलाधिपतेः शुभम् ॥११८॥
अस्मिन्पूर्वे स्यमन्ताख्यः स्फाटिकाख्यश्च पश्चिमे । उत्तरे हाटकाख्योऽयं याम्यां मारकतालयः॥११९॥
चत्वारोऽपि महाबाहू ! षष्टिखण्डोन्नता गृहाः । विशालाः परिदृश्यन्ते दशयोजनदूरतः ॥१२०॥

श्रीशिव उवाच ।

नार्यस्तु स्वालयद्वारं काश्चित्तौ द्रष्टुमागमन् । काश्चिद्वातायनैश्चक्रुर्दर्शनं राजपुत्रयोः ॥१२१॥
काश्चिद्धर्म्यं समारूढ़ा युवत्यो वामलोचनाः । ददृशू रूपसम्पन्नौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥१२२॥
रामं कमलपत्राक्षं चन्द्रबिम्बोपमाननम् । नवदूर्वादलश्यामं कैशोरे वयसिस्थितम् ॥१२३॥
कोटिकन्दर्पसदृशमतीवप्रियदर्शनम् । लक्ष्मणेन समं भ्रात्रा सहस्रैः पूर्निवासिभिः ॥१२४॥
आवृतं छबिसंमुग्धैर्व्रजन्तं राजवर्त्मना । ऊचुः परस्परं नार्यो निरीक्ष्य रघुनन्दनम् ॥१२५॥

यह देखिये मनोहर महलश्रीहंसध्वज महाराजका है, और यह केकिध्वज महाराजका सुन्दर महल है ॥११६॥ यह परम मनोहर सदन श्रीमिथिलेशजी महाराजके सहोदर भाई श्रीकुशध्वज महाराजका है ॥११७॥ सुन्दर प्रकाशसे युक्त, देवताओंके भी दर्शन करने योग्य, परम शोभा-सम्पन्न यह दिव्य भवन श्रीमिथिलेशजी महाराज का है ॥११८॥

इस सदनमें पूर्वकी ओर स्यमन्तक-भवन, पश्चिमकी ओर स्फटिक-भवन, उत्तरमें हाटक-भवन और दक्षिणमें यह मरकत-भवन है ॥११९॥

हे बड़ी-बड़ी भुजाओं वाले सरकार ! ये चारों ही साठ-साठ खण्ड ऊँचे, मनोहर और विशाल महल दशयोजन (चालीस कोस) दूरसे ही भली भाँति दिखाई देते हैं ॥१२०॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! उनका दर्शन करनेके लिये कुछ स्त्रियाँ अपने गृह द्वार पर आगयीं और कुछ झरोखों द्वारा श्रीराजकुमारोंका दर्शन करने लगीं ॥१२१॥

कुछ मनोहर नेत्र और युवा अवस्था वाली स्त्रियां, अपने-अपने महलों पर चढ़कर श्रीदशरथजी-महाराजके परम रूपवान्, राजकुमारोंका दर्शन करने लगीं ॥१२२॥

चन्द्रबिम्बके समान सुन्दर जिनका श्रीमुखारविन्द है कमलदलके सदृश विशाल एवं मनोहर जिनके नेत्र हैं नवीन दूभ दलके समान श्याम जिनके श्रीअङ्ग हैं, किशोर जिनकी अवस्था है, जो करोड़ों कामदेवोंके सदृश मनोहर और अत्यन्त प्रिय दर्शनवाले हैं, सुन्दरता पर आसक्त सहस्रों पुरवासियोंके बीचमें राजमार्गसे जाते हुए श्रीलखनलाल भैयाके साथ जीव मात्रको आनन्द प्रदान करने वाले श्रीरामभद्रजूका दर्शनकरके सखियाँ परस्पर एक दूसरेसे कहने लगीं ॥१२३॥१२४॥१२५॥

श्रीजनकपुरस्त्रिय ऊचुः ।

सुमुखि ! सुरसुतानां यक्षगन्धर्वजानामसुरपतिसुतानां किन्नरेन्द्रात्मजानाम् ।
फणिपनवसुतानां नेदृशी चारुशोभा परममुनिमनोज्ञा मानुषाणां कुतस्तु ॥१२६॥
छविनिधिरिह कामः श्रूयते ब्रह्मसृष्टौ चरणनलिनसाम्यं नार्हति प्राप्तुमस्य ।
हरिरसुरनिहन्ता कैटभारीन्दिरेशः श्रुतिमितभुजयुक्तोऽनेन तुल्यः कथं स्यात् ॥१२७॥
निखिलभुवनशोभासंविधाता विरञ्चिर्व्रजति न चतुरास्यो हन्त सादृश्यमस्य ।
नगपतितनयेशो भूतपो भस्मधारी भव इह समतार्हः स्यात्कथं मुण्डमाली ॥१२८॥
अपर इह ततः कस्तुल्यतां प्राप्तुमर्हः, कथय सखि ! विमृश्यानेन विध्वाननेन ।
अहह सुमुखि ! योग्यो राजपुत्र्या वरोऽसाविह कथमुपयातस्तत्र विद्मः कुतश्च ॥१२९॥
त्रिभुवननरमध्ये को यतीनामधीशो विजितसुषममेनं यो न दृष्ट्वा विमुह्येत् ।
मरकतमणिगात्रं चन्द्रववत्रं सुनेत्रं कथय सखि ! सनेत्रः सर्वचित्तैकचौरम् ॥१३०॥

हे सुमुखी ! बड़े-बड़े ब्रह्मतत्त्वका मनन करनेवाले महात्माओंके भी मनको हरण करनेवाली ऐसी मनोहर शोभा देव, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, किन्नर नागराज (शेषजी) आदिके पुत्रोंमें भी नहीं है, फिर मनुष्य कुमारोंमें कहाँसे होगी ॥१२६॥ ब्रह्माजीकी सृष्टिमें कामदेव सुन्दरताका भण्डार ही सुना जाता है, किन्तु वह तो इनके श्रीचरणकमलकी भी समानताको नहीं प्राप्त कर सकता, राक्षसोंके संहार करने वाले कैटभ दैत्यके शत्रु जो श्रीलक्ष्मीपति श्रीविष्णु भगवान् हैं, वे चार भुजा होनेसे सुन्दरतामें इनकी तुलना भला कैसे कर सकते हैं ॥१२७॥

समस्त लोकोंकी सुन्दरताको बनाने वाले श्रीब्रह्माजी हैं पर उनके मुख चार हैं अत एव वे भी किसी प्रकार सुन्दरतामें इनकी समता नहीं कर सकते, पार्वतीवल्लभा श्रीभोलेनाथजी भी सुन्दर हैं, परन्तु वे चिताकी भस्म और मुण्डोंकी मालाको धारण करने वाले तथा भूतोंके स्वामी हैं, अत एव वे भी सुन्दरतामें, भला किस प्रकार इनकी बराबरी कर सकते हैं ? ॥१२८॥

अरी सखी ! फिर तू ही विचार करके बता, भला और कौन ऐसा दूसरा है जो सुन्दरतामें इन चन्द्रवदन (श्रीराजकुमार) जीकी तुलना करनेको समर्थ हो सकता है ? अरी सुमुखि ! अहह ! ये तो श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके योग्य वर हैं, परन्तु ये किस प्रकार और कहाँ से यहाँ पधारे हैं, यह हम नहीं जानतीं ॥१२९॥

अरी सखी ! बतला इस त्रिलोकीमें भला ऐसा कौन नेत्रवान् त्यागियोंका सम्राट है, जो मरकतमणिके समान प्रकाशमान श्यामवर्ण शरीरधारी, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखारविन्द एवं कमल-दलके सदृश सुन्दर नेत्रोंसेयुक्त, अपने श्रीअङ्गके अलौकिक सौन्दर्यसे लौकिक सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यको जीतने वाले सभी प्राणियोंके इन अनुपम चित्तचोरका दर्शन करके पूर्ण आसक्त न हो जाय ? ॥१३०॥

दशरथनृपसूनुः सर्वलोकाभिरामः कुशिकसुतमखैकत्राणयोगप्रवीणः ।
विजितसकलशत्रुर्गौतमीशापहारी कुसुमशरमनोज्ञः श्रीनिधिः श्याम एषः ॥१३१॥

समरहतसुबाहुः क्षिप्तमारीचरक्षा असुरवनदवाग्निः पूतपापाङ्घ्रिरेणुः ।
धृतनवशरचापः श्यामलो मोहनाङ्गः स्मितरुचिरकटाक्षो रामचन्द्रोऽयमालि ! ॥१३२॥

कनककलितकान्तिर्बाणकोदण्डपाणिर्ललितचपलचक्षुर्भ्रातृपादानुगामी ।
दलितविबुधशत्रुव्रात इन्द्वाननो वै सुमुखि ! शृणु सुमित्रानन्दनो लक्ष्मणोऽयम् ॥१३३॥

कुशिकतनययज्ञं पारयित्वा सलीलं विबुधरिपुकलापं संनिहत्याध्वरघ्नम् ।
मुनिवरसमुदायैः पूज्यमानाविदानीं हरधनुरिह दिष्टचा द्रष्टुमायातवन्तौ ॥१३४॥

यदि जनकनृपस्य स्याद्गतो दृष्टिमार्गं परममधुरमूर्त्तिर्नीलपङ्केरुहाङ्गः ।
पणमिह परिहृत्य स्वात्मजां वीर्यशुल्कां सपदि सखि! स दाता रूपमुग्धः किलास्मै ॥१३५॥

दूसरी सखी बोली:-अरी सखी ! कामदेवके भी मनको मुग्ध कर लेनेवाले, सभी लोगोंके प्यारे, सम्पूर्ण श्री(अलौकिक प्रतिभा और कान्ति)के भण्डार, ये श्रीश्यामसुन्दरजी श्रीविश्वामित्र महाराजके यज्ञकी रक्षा करनेमें अनुपम प्रवीण अर्थात् बड़ेही चतुर सम्पूर्ण शत्रुओंको परास्त एवं श्रीअहल्याजीको पतिशापसे मुक्त कर देनेवाले श्रीदशरथजी महाराजके राजकुमार हैं ॥१३१॥

अरी सखी ! जिन्होंने युद्धमें सुबाहु राक्षसको मारा और मारीचको समुद्रके किनारे फेंका, जो राक्षसरूपी वनको जलानेके लिये दावानलके समान समर्थ, और नूतन धनुष-बाणको धारण किये हैं, जिनकी चरणधूलि, पापियोंको भी पवित्र करने वाली है अर्थात् अहल्याको पवित्र किया है, जिनकी मुस्कान युक्त कटाक्ष बड़ी ही मनोहर है तथा जिनका प्रत्येक अङ्ग मुग्धकारी है, वे श्याम वर्णसे युक्त ये श्रीरामभद्रजू हैं ॥१३२॥ अरी सुमुखी ! सुनो:-सुवर्णके समान सुन्दर जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति है, जो अपने हाथोंमें धनुषबाण को धारण किये हैं, जिनके नेत्र चञ्चल एवं मनोहर हैं, जिनका श्रीमुखारविन्द चन्द्रमाके समान सुशोभित है, जो श्रीसुमित्रा-महारानीको वात्सल्य भाव-जनित आनन्दकी बिशेष वृद्धि करने वाले, असुर समूहोंके संहारक, अपने भाई श्रीरामभद्रजूके पीछे-पीछे चल रहे हैं, ये श्रीलखनलालजी हैं ॥१३३॥

अरी सखी ! यज्ञविध्वंसकारी राक्षस समूहोंका खेल-पूर्वक संहार करके श्रीविश्वामित्रजी महाराजके यज्ञको पूर्ण कराके बड़े-बड़े मुनियोंके द्वारा पूजित होते हुये, ये दोनों श्रीराजकुमारजी शिवधनुषका दर्शन करनेके लिये सौभाग्यवश इस समय यहाँ पधारे हैं ॥१३४॥

अरी सखी ! नीले कमलके समान सुगन्धमय कोमल अङ्गोंसे युक्त इस मनोहर मूर्तिको यदि कहीं श्रीजनकजी महाराज देख लेंगे, तो वे इनके रूप पर मुग्ध होकर अपनी वीर्य शुल्का अर्थात् शिवधनुष खण्डनकारी प्रताप रूपी न्यौछावर पाकर ही जिस पुत्रीके विवाह करनेकी प्रतिज्ञा है, उसको छोड़कर वे शीघ्रही अपनी श्रीललीजूका समर्पण इन श्रीरामभद्रजीको कर देंगे, यह निश्चय है ॥१३५॥

न हि न हि सखि! भूपो हास्यति स्वप्रतिज्ञां परमदृढतरोऽयं हन्त सिद्धान्त आलि!।
विदितपरिचयोऽसौ गाधिपुत्रेण साकं सविधि खलु समर्च्यावासमाभ्यां दिदेश ।।१३६।।
अहह! सखि! कथञ्चित्स्याद्वरोऽयं यदि श्रीजनकनृपतिपुत्र्याः श्यामलो मत्तकाशी ।
सफलमिह न एतन्मानुषं जन्म लोके दशरथनृपसूनोर्दर्शनेनास्य नूनम् ।।१३७।।
त्रिनयनधनुराल्यो दुर्भिदं वज्रसारं निखिलभुवनशूरैर्यद्विभज्यं कथं तत् ।
परममृदुतरेणानेन तूलोपमेन प्रभवति मनसीयं दुःखदाऽद्योरुशङ्का ।।१३८।।
रघुकुलकमलेनस्ताटकाप्राणहारी युधि निहतसुबाहुः पीतमारीचदर्पः ।
चरणशमितवेधःपुत्रपत्न्युग्रशापः परममृदुलगात्रो नावधार्योऽल्पवीर्यः ।।१३९।।

यह सुनकर दूसरी सखी बोली:-अरी सखी ! नहीं श्रीजनकजी महाराज अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकते, यह पूर्ण पक्का सिद्धान्त है। श्रीजनकजी महाराजको इन दोनों ही श्रीराजकुमारोंका परिचय प्राप्त है, क्योंकि उन्होंने ही यथोचित सत्कार करके श्रीविश्वामित्रजी महाराज के सहित इन दोनों भाइयोंको निवासस्थान प्रदान किया है ।।१३६।।

दूसरी सखी बोली:-अहह ! सखी ! यदि किसी प्रकारभी गजराजके समान मस्त चाल चलने वाले ये श्रीश्यामसुन्दर प्यारे श्रीजनकराजदुलारीजीके वर हो जाँय, तो इन श्रीदशरथ राजकुमारजीके बारम्बार दर्शनोंसे निःसन्देह हम लोगोंका यह मनुष्य जीवन सफल है। यह सुनकर अपर सखी बोली ।।१३७।।

अरी सखियों ! किन्तु जिसे समस्त लोकोंके शूरवीरोंको मिलकर भी तोड़ना कठिन है, उस वज्र-सारके समान कठोर श्रीभोलेनाथजीके पिनाक धनुषको रूईके समान अत्यन्त कोमल शरीर वाले ये श्रीराजकुमारजी भला किस प्रकार तोड़ सकेंगे ? यह आज मनमें बड़ी ही दुखदायी शङ्का हो रही है। यह सुनकर अपर सखी बोली ।।१३८।।

अरी सखी ! जैसे इनका शरीर अत्यन्त कोमल है वैसे बल पराक्रममें तू इन्हें कमजोर मत समझ, क्योंकि ये रघुकुल रूपी कमलको सूर्यके समान खिलाने वाले हैं, मार्गमें श्रीअयोध्या जीसे आते हुये इन्होंने महाबलवती ताड़का राक्षसीका प्राण लिया और युद्धमें सुबाहु राक्षसको मारा तथा मायावी राक्षस मारीचके अभिमानको पीलिया एवं अपने चरण-कमलके स्पर्श मात्रसे ब्रह्माजीके पुत्र श्रीगोतमजी महाराजकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीके महाभयङ्कर शापको समाप्त कर दिया है। यह सुनकर अन्य सखी बोली ।।१३९।।

निरुपमगुणरूपा ऽ पारशक्तिप्रभावा जनकनृपसुतेयं येन सृष्टा विधात्रा ।
दशरथकुलभानुस्तेन सृष्टो वरो ऽ यं सकलसुकृतिपुञ्जा भूरिभागा वयं वै ॥१४०॥
जनकनृपतिपुत्रीकोशलाधीशसून्वोर्नवलयुगलमूर्त्तिर्हेमदूर्वादलाभा ।
अहह! सुमुखि! पश्य भ्राजते वीज्यमाना परिणयवरभूषाऽलङ्कृता कीदृशीयम् ॥१४१॥
युगलतनुसुदीप्त्या मण्डपो दीप्यमानः प्रसभमृषिवराणामालि! चित्तापहोऽयम् ।
नगरनवबधूनां चारुमाङ्गल्यगानैः कथमपि न हि शब्दः श्रूयमाणोऽवगम्यः ॥१४२॥
वदसि वत किमेतद् दृश्यमानं यदस्ति त्वमसि विगतनेत्रा वीक्षसे यन्न युग्मम् ।
शशिमुखि! नयनाभ्यां संयुताऽहं न हीना न तु कमलदलाक्षि! त्वादृशी दिव्यचक्षुः ॥१४३॥
रबिकुलकमलेनं मैथिली कान्तमेनं जितमदननिकायं गच्छतु स्पर्द्धितश्रीः ।
भवतु सखि ! वचस्ते सत्यमुक्तं द्रुतेन सकलनगरनार्यः स्याम सौख्यर्द्धियुक्ताः ॥१४४॥

अरी सखी ! जिस विधाताने उपमारहित गुणरूपसे युक्त, अपारशक्ति और प्रभाव वाली इन श्रीजनकराजदुलारीजीको बनाया है, उन्होंने ही श्रीदशरथजीके कुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले इन श्रीराजकुमारजीको उनका, वर (दूलह) बनाया है, अत एव हम सभी निःसन्देह सम्पूर्ण साधनोंकी पुञ्ज और बड़भागिनी हैं। यह सुनकर भावावेशमें आकर दूसरी सखी बोली ॥१४०॥

हे सुन्दर मुखवाली सखी ! अहह ! देख, विवाहोचित उत्तम शृङ्गार धारण किये हुई श्रीजनकराजदुलारी और श्रीकोशलाधीशकुमारजूकी सुवर्ण एवं दूर्वादलके समान गौरश्याम नूतन युगल-मूर्त्ति किस प्रकार सुशोभित हो रही है ? ॥१४१॥

हे सखी ! श्रीयुगलसरकारके श्रीअङ्गकी सुन्दर कान्तिसे प्रकाशमान यह मण्डप, बड़े-बड़े ऋषियोंके चित्तको बलपूर्वक हरणकर रहा है, नगरकी नवबधुयें जो मङ्गलगीत गारही हैं, उससे सुनता हुआ शब्द भी किसी प्रकार समझमें नहीं आरहा है। यह सुनकर दूसरी सखी बोली ॥१४२॥

अरी सखी ! आश्चर्य है, यह तू क्या कह रही है ? उसने कहाः-जो दिख रहा है उसेही तो, मैं कह रही हूँ, क्या तू अंधी है ? जो इन युगलसरकारको नहीं देखती ? यह सुनकर वह बोलीः-हे चन्द्रमाके समान मुख और कमलके समान नेत्रवाली सखी ! मैं अंधी नहीं हूँ प्रत्युत दोनों नेत्र वाली हूँ, किन्तु तेरे समान मैं दिव्यदृष्टि सम्पन्ना नहीं हूँ ॥१४३॥

अरी सखी ! तेरी कही हुई यह बात शीघ्रही सत्य हो, अपनी शोभासे श्रीदेवीको भी ईर्ष्या (डाह) युक्त करने वाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, कामदेव समूहकी सुन्दरताको जीतने वाले इन रबिकुल कमलदिवाकर श्रीरामभद्रजीको दूलह रूपमें शीघ्र प्राप्त करें, जिससे हम पुर-नारियोंको पूर्ण सुख सम्पत्तिकी प्राप्ति हो ॥१४४॥

श्रीशिव उवाच ।

जनकनगरनार्यो हर्षमापुर्गदन्त्यो रघुकुलमणिमेवं वीक्ष्य वाचामतीतम् ।
स तु नरपतिसूनुर्बालकैश्चोपनीतो ललितरचनयाढ्यां चाप्ययज्ञावनिं तैः ॥१४५॥
सुखमपि तदवन्या दर्शनेनेन्दुवक्त्रः परममुदित आसीत्कौतुकासक्तचेताः ।
अथ मनसि विलम्बं संप्रबुध्योरुभीत्या त्वरितमभिजगाम श्रीगुरोः सन्निधिं सः ॥१४६॥

भगवान् शिवजी बोलेः-हे पार्वती ! श्रीजनकजी महाराजके नगरकी स्त्रियाँ रघुकुलमणि श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके अनायास ही अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुईं । उधर वे बालकवृन्द श्रीचक्रवर्तीकुमारजीको मनोहर सजावटसे युक्त धनुष-यज्ञ-भूमि पर ले गये ॥१४५॥

उस धनुष भूमिके सुख-पूर्वक दर्शनोंसे चन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी मुखारविन्द वाले श्रीरामभद्रजीको बड़ी ही प्रसन्नता हुई, उनका चित्त उस दृश्यमें आसक्त हो गया । पुनः जब उन्हें विलम्बका ज्ञान हुआ, तो महान् भयसे युक्तहो, वे तुरन्त अपने गुरुदेव श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पास पधारे ॥१४६॥

इत्येकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

—❀❀❀—

अथ नवतितमोऽध्यायः ।

पुष्पवाटिका में श्रीसीतारामजी का पारस्परिक दर्शन तथा पूजनोपरान्त श्रीजानकी-शैलजा सस्तुति वरदान ।

श्रीशिव उवाच ।

प्रातः परेद्युः कृतनित्यकृत्यः सौमित्रिणा साकमतुल्यरूपः ।
पुष्पार्थमाज्ञप्त इयाय रामः स वाटिकां गाधिसुतेन राज्ञः ॥१॥
तस्मिन्क्षणे भूमिसुता जनन्या निदेशमासाद्य सखीशतेन ।
तामेव शैलेन्द्रसुतार्च्चनाय प्रापेन्दुपुञ्जप्रतिमाननश्रीः ॥२॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! उपमा रहित रूपवाले श्रीरामभद्रजूने दूसरे दिन प्रातः काल अपने नित्य-कृत्यसे निवृत्त हो श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीलखनलालजी के सहित, पुष्प लानेके लिये श्रीमिथिलेशजी-महाराजकी फुलवारीमें पधारे ॥१॥

उसी क्षण चन्द्रसमूहोंके समान परम मनोहर प्रकाशमय, आह्लादवर्द्धक मुख-कान्ति से युक्त, भूमिसे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, अपनी श्रीअम्बाजीकी आज्ञा पाकर, सैकड़ों सखियों के साथ श्रीपार्वतीजीकी पूजा करनेके लिये उस पुष्पवाटिकामें पधारीं ॥२॥

सरोवरे साऽपि निमज्य मैथिली नखच्छविस्पर्द्धितबालचन्द्रका ।
उपेत्य शैलेन्द्रसुतानिकेतनं चमत्कृतं तां मुदितां व्यलोकत ॥३॥

पुनस्तु तामर्च्यसमर्च्यवन्दिता समर्चयामास शिवामयोनिजा ।
विधानतः स्वालिसमूहमध्यगा निसर्गमोदाम्बुधिमोहनस्मिता ॥४॥

तदन्तरे चन्द्रकला प्रवीणा राजेन्द्रसूनुच्छबिमत्तचित्ता ।
अदृश्यताश्चर्यदशां प्रपन्ना सखीभिरानन्दमहार्णवायाः ॥५॥

सख्यः ऊचुः ।

दशेयमाप्ता कुत आलि ! शंस त्वया प्रमत्ता सुधियां वरिष्ठे ! ।
दृग्वाणतः कस्य हतेन्दुवक्त्रे ! नृशंसवृत्तेस्त्वमुपागताऽसि ॥६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

अहं तु साकं भवतीभिराल्यः समाव्रजन्ती हतकामदर्पौ ।
दृष्ट्वा कमारौ सुपरीक्षणार्थं विहाय वस्तौ समुपागताऽऽसम् ॥७॥

अपने श्रीचरणकमलके नखोंकी सुन्दरतासे द्वितीयाके चन्द्रमाको ईर्ष्या (डाह) युक्त करनेवाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी सरोवरमें स्नान करके, श्रीपार्वतीजीके चमचमाते हुये मन्दिरमें पधारीं और आनन्द-पूर्वक उनका दर्शन करने लगीं ॥३॥

जिनकी स्वाभाविक मुस्कान आनन्द सागर (भगवान् श्रीराम) को भी मुग्ध कर लेती है तथा जो लोकोंमें पूजने योग्य साधु-ब्राह्मणोंके भी परम पूजनीय ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिके द्वारा प्रणामकी हुई, अपनी इच्छामात्रसे प्रकट हुई हैं, उन श्रीमिथिलेशराज-दुलारीने अपनी सखियोंके मध्यमें विराजमान होकर विधि-पूर्वक श्रीपार्वतीजीका पूजन किया ॥४॥

उसी बीच महासागरके समान अथाह आनन्दवाली श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीकी सखियों ने देखा कि बड़ी ही चतुरा सखी श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीचक्रवर्तीकुमारजीकी छबि दर्शनसे मस्त चित्त हो विचित्र दशामें प्राप्त हैं ॥५॥

सखियाँ बोलीं:—हे सखी श्रीचन्द्रकलाजी ! आपतो सभी बुद्धिमानोंमें अत्यन्त श्रेष्ठा हैं, तब बतलाइये-आपको यह मतवाली दशा किस प्रकार प्राप्त हुई ? हे चन्द्रमुखीजी ! किस निर्दयीके नेत्र रूपी बाणसे घायल होकर आप यहाँ आई हैं ? बतलाइये ॥६॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:— अरी सखियो ! आप सभीके साथ आती हुई मैंने अपने श्रीअङ्गकी शोभासे कामदेवके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, दो राजकुमारोंको देखा पुनः हर प्रकारसे परीक्षा लेनेके लिये उनके पास गयी थी ॥७॥

उभौ हि तौ पद्मपलाशलोचनौ विम्बाधरौ पूर्णसुधाकराननौ ।
अरालसुस्निग्धसुकोमलालकौ विशालभालौ स्मरचापसुभ्रुवौ ॥८॥
सुनासिकौ शुक्तिसमश्रुतिद्वयौ महामनोहारिकपोलयुग्मकौ ।
सुकम्बुकण्ठौ बिपुलांसशोभनौ निगूढ़जत्रू सुविशालवक्षसौ ॥९॥
गम्भीरनाभी मृगराजमध्यमौ स्वाजानुबाहू कदलीनिभोरुकौ ।
पादाब्जशोभालवनिर्जितस्मरौ सर्वाङ्गरम्यौ रमणीयचेष्टितौ ॥१०॥
नीलोत्पलस्वर्णनिभाद्भुताकृती दृष्टौ मया मत्तकरीन्द्रगामिनौ ।
आह्लादयन्तौ स्वरुचा मनो मम प्रकाशयन्ताविह पुष्पवाटिकाम् ॥११॥
तयोरहं श्यामलकान्तवर्ष्मणः कटाक्षवाणाभिहता विमोहिता ।
सलीलमाल्यः ! प्रसभं रसाम्बुधेर्नवीनपुष्पाणि मुदा विचिन्वतः ॥१२॥
अत्रागता राजसुताप्रसादात्कथञ्चिदाख्यातुमहं तमेव ।
स दर्शनीयो भुवनाभिरामः कन्दर्पकोटिच्छबिमोहनश्रीः ॥१३॥

उन दोनोंही के कमलदलके समान विशाल एवं मनोहरनेत्र हैं, विम्वाफलके सदृश लाल अधर पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमय मुख है, अत्यन्त कोमल चिकनी तथा घुंघुराली अलकें हैं, चौड़ा मस्तक, कामदेवके धनुषके समान सुन्दर तथा टेढ़ी भौंहे हैं ॥८॥

जिनकी तोतेकी नाकके समान सुन्दर नासिका है, शुक्ति(सीपी)के सदृश मनोहर दोनों कान हैं, अतिशय मनोहर दोनों कपोल, शङ्खके समान सुन्दर कण्ठ, वड़े और सुहावने कन्धे, कन्धेसे गले तक आने वाली छिपी हँसली, सुन्दर एवं विशाल वक्षः स्थल है ॥९॥

गहरी नाभि, सिंहके समान पतली कमर, घुटुने पर्यन्त लम्बी बाँहें, जङ्घें केलाखम्भके समान चिकने गोल तथा सुडौल जङ्घोंवाले तथा अपने श्रीचरणकमलकी कणमात्र शोभासे कामदेव को विजयकर रहे हैं, उनके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर और सभी चेष्टायें परम मनोहर हैं ॥१०॥

दोनों भैया अद्भुत नील-कमल और सुवर्णके सदृश श्याम गौर शरीर, अपनी दिव्य कान्तिसे मेरे मनको आह्लादित एवं पुष्पवाटिकाको इस समय प्रकाश युक्त करते तथा गजराजकी भाँति मस्त चलते हुये मुझे दीखे हैं ॥११॥

अरी सखियो ! उन दोनोंमें मनोहर श्याम शरीर वाले रससागर राजकुमारने, आनन्द-पूर्वक नवीन पुष्पोंको चुनते हुये अपने कटाक्ष रूपी बाणसे जवरदस्ती खेल पूर्वक मुझे घायल करके बेहोश कर दिया था ॥१२॥

अब मैं श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी की ही कृपासे किसी प्रकार, उन राजकुमारजीका वर्णन करनेके लिये यहाँ आसकी हूँ, अरी सखियो! वे राजकुमार अपनी सुन्दरतासे करोड़ों काम-देवोंकी छबिको मुग्ध कर लेने वाले, त्रिभुवन-सुन्दर, बस देखने ही योग्य हैं ॥१३॥

श्रीशिव उवाच ।

इतीरितं तद्वचनं निशम्य श्रीचारुशीलादिसमस्तसख्यः ।
प्रणम्य भूयो मिथिलेशपुत्रीमिदं निबद्धाञ्जलयो मुदोचुः ॥१४॥

सख्य ऊचुः ।

अयि! क्षमाशीलकृपास्वरूपिणि ! श्रीमैथिलि स्वाश्रितभावपूरिके ।
उभौ कुमारौ पुरमागतौ श्रुतौ तौ लोकनीयौ कुसुमाश्रये त्वया ॥१५॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्ता जनकात्मजा तदा निगूढभावा भजदीप्सितार्थदा ।
दूरं ततः किञ्चिदगान्मृगीक्षणा निरीक्ष्य रामं समगाद्विदेहताम् ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलोवाच ।

विलोकयैनं रघुवंशभानुं नीलाम्बुजश्यामतनुं मनोज्ञम् ।
पीताम्बरं पूर्णशशाङ्कवक्त्रं सहस्रपत्रायतमोहनाक्षम् ॥१७॥
शुचिस्मितं मन्मथकोटिसुन्दरं प्रियेक्षणं स्वीकृतताटकाबधम् ।
सुबाहुहन्तारमदेवनाशनं प्रक्षिप्तमारीचममोघविक्रमम् ॥१८॥

भगवान् शिवजी बोले:–श्रीचन्द्रकलजीके द्वारा इस प्रकार कहे हुये वचनोंको सुनकर श्रीचारुशीलाजी आदि सभी सखियाँ श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीको बारम्बार प्रणाम करके हाथ जोड़े हुई, प्रसन्नता-पूर्वक बोलीं:–॥१४॥

हे क्षमा, शील, कृपा-स्वरूपिणी तथा अपने आश्रितोंका भाव पूर्ण करनेवाली श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजी ! "जिन राजकुमारोंको नगरमें आये हुये सुना है, उन्हें आप हम लोगोंका भाव पूर्ण करनेके लिये पुष्पवाटिकामें, देख लीजिये ॥१५॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे पार्वती ! सखियों द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर भक्तोंका अभीष्ट प्रदान करने वाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी वहाँसे कुछ दूर आगे गयीं और वहींसे श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके अत्यन्त गूढ़ भाव होनेके कारण बेसुध हो गयीं ॥१६॥

श्रीचन्द्रकलाजी बोलीं:–हे श्रीललीजी ! रघुकुलको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले पीताम्बरधारी इन मनहरण सरकारको देखिये, जिनका नीले कमलके समान श्याम सचिक्कण वर्ण है, पूर्ण चन्द्रमाके सदृश परम प्रकाशमय आह्लादकारी श्रीमुखारविन्द और कमलदलके समान विशाल नेत्र हैं ॥१७॥ जिनकी पवित्र मुस्कान एवं प्यारी चितवन है, जो करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर, ताड़का राक्षसीका वध करने वाले, सुबाहु राक्षसके घातक तथा सभी राक्षसोंके विनाशक हैं, जिन्होंने अपने बिना नोकवाले बाणसे ही मारीच राक्षसको सौ योजन दूर समुद्रके किनारे फेंक दिया है, तथा अमोघ पराक्रमसे जो युक्त हैं अर्थात् जिनका कोई भी पराक्रम आज तक कभी निष्फल हुआ ही नहीं ॥१८॥

मुनीन्द्रवृन्दोत्तममानभाजनं समुद्धृतर्षीश्वरभार्यमात्मदम् ।
श्रीगाधिपुत्रेण समं समागतं विदेहसंमोहनचारुदर्शनम् ॥१९॥

स्वरूपसम्पत्तिविमोहकारिणं पुरौकसां ह्यो विहरन् सहानुजम् ।
पुष्पाणि चेतुं गुरुपूजनाय वै यदृच्छया सम्प्रति वाटिकागतम् ॥२०॥

अप्राकृतं प्राकृतभाववर्जितं जितेन्द्रियं वाग्मिनमात्मसाक्षिणम् ।
अनन्तकल्याणगुणैकसागरं शरीरिणामात्मशताधिकप्रियम् ॥२१॥

वेदान्तसारं जगदेकसारं सारैकसारं सुषमैकसारम् ।
आनन्दसारं जनकामसारं पश्य प्रिये ! श्रीरघुवंशहारम् ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

दिव्यद्युतिं ह्लादमयस्वरूपिणीं श्रुत्यन्तवेद्यां भजदेकवत्सलाम् ।
विदेहजां तामवलोक्य लक्ष्मणं जगाद रामोऽप्रतिमैकसुन्दरीम् ॥२३॥

इसलिये बड़े-बड़े मुनियोंने भी जिनका उत्तम सम्मान किया है, पुनः श्रीमिथिलाजी आते समय जिन्होंने मार्गमें गुरुदेवकी आज्ञासे अपने चरणकमलके स्पर्शमात्र द्वारा ही ऋषिश्रेष्ठ गोतमजीकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीका उद्धार किया है, इसी प्रकार श्रीविश्वामित्रजीके साथ श्रीमिथिलाजी आने पर जिनका दर्शन करते ही श्रीविदेहराज (आपके पिताजी) भी मुग्ध हो चुके हैं ॥१९॥ और कल अपने छोटे भैयाके साथ नगरमें विचरते हुये ही, जिन्होंने अपनी सुन्दरता रूपी सम्पत्तिसे समस्त पुरवासियोंको विमुग्ध कर लिया है, इस समय गुरुदेवके पूजनके लिये जो पुष्प चुनने हेतु इस फुलवारीमें पधारे हैं ॥२०॥

जो पाञ्चभौतिक सृष्टिसे परे स्वेच्छामय दिव्य शरीर मायिक भावोंसे रहित, अपने मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कारादि समस्त इन्द्रियोंको वशमें किये हुये, बड़े ही सुन्दरवक्ता तथा बुद्धिके साक्षी, अनन्तकल्याण कारी गुणोंके अनुपम भण्डार और समस्त प्राणधारियोंको आत्मासे भी सैकड़ों गुना अधिक प्यारे हैं ॥२१॥

हे श्रीप्यारीजू ! कहाँ तक कहें ? जो वेदान्तके, सम्पूर्ण जगत्के, समस्त सारोंके, सम्पूर्ण अनुपम सौन्दर्यके, सम्पूर्ण आनन्दके तथा भक्तोंकी सम्पूर्ण इच्छाओंके सार (सत्-चित्, आनन्दघन ब्रह्म) हैं, उन श्रीयुक्त रघु महाराजके वंशको हारके समान सुशोभित करने वाले इन श्रीराजकुमारजूका आप दर्शन कर लीजिये ॥२२॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! जो वेदान्त शास्त्रके द्वारा कुछ समझमें आती हैं, भक्तों पर जिनका अत्यन्त वात्सल्य है, उन दिव्य कान्तिसे युक्त, परम आह्लादमय स्वरूप वाली, अनुपम सुन्दरी; श्रीविदेहराजदुलारीजीको देखकर, श्रीरामभद्रजू श्रीलखनलालसे बोले ॥२३॥

श्रीराम उवाच ।

धनुर्मखः श्रीजनकेन निश्चितो यस्या निमित्तं दुहितुर्महीभृता ।
इयं हि नूनं सुषमैकवारिधिः साऽयोनिजा पावनमोहनस्मिता ॥२४॥
इयं श्रियः श्रीमिथिलेशनन्दिनी समस्तसम्पूज्यगुणैरुपासिता ।
नीलाम्बुजोत्फुल्लदलायतेक्षणा निसर्गपूताखिलचारुचेष्टिता ॥२५॥
देदीप्यमानाम्बरभूषणेयं माधुर्यसंछिन्नरतिस्मयाधिः ।
आह्लादिनी स्वीयरुचा मनो मे मुष्णाति दिव्येन जितात्मनो द्राक् ॥२६॥
वेदास्य हेतुर्विधिरेव तात ! वदामि किं ते सुधियां वरिष्ठ ! ।
जातो विलम्बो बहु वाटिकायां कोपाय मा गाधिसुतस्य सोऽस्तु ॥२७॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं तदोक्त्वा गुरुभीतिभीतो रामो मुनेरन्तिकमाजगाम ।
प्रसूनपूर्णोरुपुटाञ्चिताब्जसुकोमलस्निग्धमनोज्ञपाणिः ॥२८॥
सगाधिपुत्रेण मुदा सबन्धुर्गाढं परिष्वज्य शुभैर्वचोभिः ।
अभ्यर्चितस्तेन विलम्बहेतुं विज्ञाय तुष्टिः परमा प्रपेदे ॥२९॥

हे तात ! यह निश्चय है, कि श्रीजनकजी महाराजने अपनी जिस पुत्रीके निमित्त धनुष-यज्ञ करनेका निश्चय किया है, वही अनुपम सुन्दरताकी भण्डार, पवित्र और मुग्धकारी मुस्कानसे युक्त, अपनी इच्छासे प्रकट हुई ये श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी हैं ॥२४॥

शोभाकी भी शोभा स्वरूपा, सभी प्राणियोंके द्वारा सब प्रकारसे पूजित होने योग्य गुणोंसे युक्त, नीले कमलदलके समान विशाल नेत्रवाली इन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूकी सभी चेष्टायें परम पवित्र एवं मनोहर हैं ॥२५॥

हे तात! प्रकाशमान वस्त्र एवं भूषणोंसे युक्त अपनी सुन्दरतासे रतिके अभिमानरूपी मानसिक व्यथाको दूर करने वाली ये श्रीआह्लादिनीजू अपनी अलौकिक शोभाके द्वारा मेरे अधीन किये हुये भी मनको अनायास हरण कर रही हैं ॥२६॥ हे बुद्धिमानोंमें परम श्रेष्ठ ! इसका कारण विधाता ही जानते हैं, मैं आपसे क्या कहूँ ? हे तात ! अब फुलवारीमें विलम्ब विशेष हो गया है, कहीं वह गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजीके कोपका कारण न हो जाय ॥२७॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती इस प्रकार अपने भाईसे कहकर गुरुदेवके डरसे डरते हुये श्रीरामभद्रजू अपने कमलके समान सुकोमल चिकने और मनोहर हाथमें पुष्पोंसे भरे हुये बड़े दोनेको लेकर श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पास पधारे ॥२८॥ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने प्रसन्नता पूर्वक श्रीरामभद्रजीको लखनलालजीके सहित हृदयसे लगाकर अपने मङ्गलमय वचनों के द्वारा उनका पूजन किया पुनः विलम्बका कारण जानकर वे बड़े ही प्रसन्न हुये ॥२९॥

सख्योऽपि तां वीक्ष्य सुविह्वलाङ्गीं ता मातृभीत्या खलुबोधयित्वा ।
निन्युः सरः शोभितमन्दिरं तच्छैलेन्द्रपुत्र्याः परिपूजनाय ॥३०॥
प्रक्षालिताम्भोजकराङ्घ्रियुग्मया तया विदेहाधिपभूपकन्यया ।
अकारयञ्छैलसुतासमर्चनं पूजाविदुष्यो विधिना वराप्तये ॥३१॥
श्रीरामरूपाम्बुधिमग्नचित्ता ताभिः स्तवार्थं परिनोदिता सा ।
सीताऽसिताम्भोजपलाशनेत्रा ततः स्तुतिं कर्तुमभूत्प्रवृत्ता ॥३२॥

श्रीजनकनन्दिन्युवाच ।

जयशैलराजपुत्रिके ! भजदीप्सितार्थदायिके ।
मुनिसिद्धदेव वन्दिते प्रणमामि ते पदाम्बुजे ॥३३॥
त्वमसीह सर्वदेहिनां ध्रुवमन्तरात्मरूपिणी ।
विदितं वदामि किं हि ते मनसेप्सितं प्रसीद मे ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वेति वाचं तदशेषशक्तेर्याच्ञामयीं पाणिधृताङ्घ्रिकायाः ।
मूर्त्या निबद्धाञ्जलिसम्पुटाऽऽविर्भूयाऽम्बिका तत्पदयोः पपात ॥३५॥

उधर सखियाँ भी श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको विशेष विह्वल हुई देखकर श्रीसुनयना अम्बाजीका भय दिखाकर उन्हें सावधान करके सरोवरसे शोभित श्रीपार्वतीजीके मन्दिरमें, पूजन करानेके लिये ले गयीं ॥३०॥

वहाँ कमलवत् सुकोमल मनोहर हाथ-पैरोंको धोकर पूजापद्धति जाननेवाली सखियोंने वर प्राप्तिके लिये श्रीविदेहराजकुमारीजूके द्वारा श्रीगिरिराजकुमारीजीका विधि-पूर्वक पूजन कराया ॥३१॥ तत्पश्चात् श्रीरामभद्रजूके सौन्दर्य-सागरमें डूबे हुये चित्तवाली, नीलकमलदल-लोचना, भक्तोंका दुःख दूर करके उनके सुखका विस्तार करनेवाली, वे श्रीराजदुलारीजी उन सखियोंकी प्रेरणासे श्रीपार्वतीजीकी स्तुति करने लगीं ॥३२॥

श्रीजनकराजदुलारीजी बोलीं:—हे श्रीगिरिराजकुमारीजू ! मैं आपके उन श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करती हूँ जो भक्तोंके लिये सभी मनोरथोंको प्रदान करने वाले, मुनि, सिद्ध, देवताओंसे [illegible]कृत हैं ॥३३॥

हे देवि ! आप सभी देहधारियोंकी अन्तरात्मा (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारमें साक्षी रूपसे रहने वाली परमात्म) स्वरूपा हैं अत एव निश्चय ही आप मेरा मनोरथ जानती ही हैं, मैं कहूँ क्या ? मुझ पर प्रसन्न हों ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे कात्यायिनी ! अपने कर-कमलोंसे चरणोंको पकड़े हुई उन पूर्ण ब्रह्मकी शक्ति-स्वरूपा श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी याचनामयी इस वाणीको सुनकर श्रीपार्वतीजी, हाथ जोड़े हुई मूर्त्तिसे प्रकट हो उनके श्रीचरणकमलोंमें पड़ गयीं ॥३५॥

ततोऽति भक्त्या पुलकायमाना सर्वेश्वरीं दत्तजनैकमानाम् ।
तुष्टाव सा गद्गदया गिरा तां प्राणेश्वरी बालसुधांशुमौलेः ॥३६॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

नौमि सदा श्रीजनककिशोरीं नूतनपङ्केरुहविमलाक्षीम् ।
दत्तजनैकाद्भुतभृशमानां पादनखस्पर्द्धितशशिपङ्क्तिम् ॥३७॥
विष्णुमहेशद्रुहिणनताङ्घ्रि विद्युदद्भ्राद्भुतरुचिदेहाम् ।
घोरभवाम्भोनिधिपदपोतां भक्तनिलिम्पद्रुमवरिवस्याम् ॥३८॥
योगिमुनीन्द्रादितिसुतसिद्धादूषितचेतस्स्विह विहरन्त्यै ।
श्रीकुलविद्याप्रभृतिमदान्धैः शश्वदगम्याम्बुजचरणायै ॥३९॥
सर्वमहामङ्गलगुणरत्नव्रातसमालङ्कृतहृदयायै ।
भक्तसुखार्थं नम उदितायै प्राकृतकन्याचरितरतायै ॥४०॥
यत्पदपङ्केरुहशरणाप्ताः पूर्णकृतार्थाः सपदि भवन्ति ।
सा खलु मां प्रार्थयस इदं ते मानसुदानं दृढमिति मन्ये ॥४१॥

तत्पश्चात् मस्तक पर द्वितीयाके चन्द्रको धारण करने वाले, श्रीभोले नाथजीकी प्राणप्रिया श्रीपार्वतीजी पुलकायमान होती हुई अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक, गद्गद वाणीसे भक्तोंको अतुलित सम्मान प्रदान करने वाली सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीकी स्तुति करने लगीं ॥३६॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं:—जिनकी सेवा भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंको प्रदान करनेवाली है, तथा जिनके श्रीचरण-कमल घोर संसार-सागरसे पार करनेके लिये जहाजके सदृश हैं, बिजलीके समान महान्-अद्भुत कान्तिसे युक्त जिनका श्रीविग्रह है, जिनके श्रीचरणकमलोंको ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नमस्कार करते हैं, जिनके श्रीचरणकमलोंकी नखच्छटाको देखकर चन्द्रपङ्क्तिको डाह होता है तथा जो भक्तोंको अद्भुत महान् सम्मान प्रदान करनेवाली शक्तियों में सबसे बढ़कर है, नवीन कमलके सदृश सुन्दर, विशाल, स्वच्छ नेत्रोंवाली उन श्रीजनकराज-किशोरीजीको मैं सदा ही नमस्कार करती हूँ ॥३७॥३८॥

जो बड़े-बड़े योगी, मुनि, देव, सिद्धोंके पवित्र चित्तोंमे विहार करती है तथा जिनके श्रीचरण कमल, धन, रूप, कुल, विद्या आदिके मदसे अन्धे प्राणियोंके लिये सदा ही दुष्प्राप्य हैं ॥३९॥

जिनका हृदय सम्पूर्ण महामङ्गल कारी गुण रूपी रत्न समूहोंसे अलंकृत है, जो मुख्यतया केवल भक्तोंके सुखार्थ प्रकट हुई हैं और प्राकृत कन्याओं की तरह चरित कर रही हैं, उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके लिये मेरा नमस्कार है ॥४०॥

हे श्रीस्वामिनीजू! जिनके श्रीचरण-कमलोंकी शरणमें आये हुये प्राणी पूर्ण कृतार्थ हो जाते हैं, आज वे ही आप मुझसे (बरप्राप्तिके लिये) प्रार्थना कर रही हैं; यह मुझको मान प्रदान करने लिये एक आपकी लीला ही है, यही मैं दृढ़ करके मानती हूँ ॥४१॥

ददे वरं ते वरदवरेण्ये ! वचोऽभिसिद्धयै विधुवदनायै ।
अस्त्युचितं ते भवितुमजस्रं हन्त सुखे नो भुवि सुखिता वै ॥४२॥
याहि वरं श्रीरघुकुलभानुं ! मन्मथकोटिप्रतिमललामम् ।
राममुदारद्युतिविजितेनं नायकरत्नं मृदुतरगात्रम् ॥४३॥
स्वामिनि ! मे तं कुरु सुकटाक्षं येन पदाम्भोरुहयुगयोर्वै ।
दास्यरता ऽहं सरसिजनेत्रे ! स्यां युवयोः शाश्वतमिति याचे ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वाऽऽशिषं शैलनरेन्द्रपुत्र्याः सख्यः प्रहृष्टा अभवंस्तु सर्वाः ।
श्रीमैथिलीं मङ्गलमूलमूर्त्तिं निन्युर्नृपान्तःपुरमम्बुजाक्ष्यः ॥४५॥
आशीर्वचो यद् गिरिकन्ययोक्तं तद्वै जनन्यै समवर्णयंस्ताः ।
राज्ञी तदाश्रुत्य सुधांशुवक्त्रां पुत्रीं निजाङ्के मुमुदे निधाय ॥४६॥

हे बरदाताओंमें सर्व श्रेष्ठे ! हम सभीको आपके सुखमें ही सदैव सुखी रहना उचित है इस लिये अपनी वाणीको सिद्ध करनेके लिये मैं आप श्रीचन्द्रमुखीजीको, आपके भावानुसार वर प्रदान करती हूँ ॥४२॥

हे श्रीस्वामिनीजू! रघुकुल रूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले, करोड़ो काम देवोंके समान सुन्दर, अपनी उत्कृष्ट कान्तिसे भगवान् भास्करको जीतने वाले, नायकोंमें रत्न (सर्वोत्कृष्ट) अत्यन्त सुकोमल शरीर वाले श्रीरामभद्रजू ही आपको बर मिलें ॥४३॥

हे कमलदललोचने श्रीस्वामिनीजू ! अब आप मेरे प्रति वह कृपा कटाक्ष कीजिये, जिससे मैं आप दोनों सरकारके युगल श्रीचरण-कमलोंकी सेवामें तल्लीन हो जाऊँ, यही मैं आपसे सदा वरदान माँगती हूँ ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनी ! श्रीगिरिराजकुमारीजूकी मङ्गल मयी इस आशीष को [illegible]कर, वे कमल दल लोचना सखियाँ प्रसन्न हो समस्त मङ्गलोंकी मूल स्वरूपा श्रीमिथिलेश [illegible]लारीजीको अन्तः पुरमें ले गयीं ॥४५॥

[illegible] वहाँ उन्होंने श्रीगिरिराजकुमारीजीके द्वारा श्रीललीजीको दिये, हुये आशीर्वादको श्रीसुनयना अम्बाजीसे कह सुनाया, उसे सुनकर श्रीमहारानीजीने अपनी चन्द्रमुखी श्रीललीजीको गोदमें बिठाकर बड़े ही आनन्दको प्राप्त किया ॥४६॥

इति नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

—❀❀❀—

अथैकनवतितमोऽध्यायः ।

श्रीलखनलालजीके पूछने पर महर्षि श्रीविश्वामित्रजी द्वारा धनुष उत्पत्ति-वृत्तान्त वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथ रामो महातेजाः सीताध्यानपरायणः । कृतसान्ध्यविधिर्बन्धुं मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

श्रीराम उवाच ।

प्राच्यां प्रपश्य तात ! त्वं प्रोदितं शर्वरीकरम् । साभिमानं कलापूर्णं भ्राजते न तथाऽप्ययम् ॥२॥
लवणार्णवसम्भूतो विषबन्धुरयं यतः । दुःखदो दर्शनादेव विशेषेण वियोगिनाम् ॥३॥
क्षीयते वर्द्धते चायं सकलङ्कः सदा पुनः । राहुत्रासपरित्रस्तो हंसरूपो बको यथा ॥४॥
स चन्द्रश्छबिदुग्धाब्धिसम्भूतो विश्वमोहनः । नित्यःपूर्णद्युतिः श्रीलः सर्वदा क्षणदर्शनः ॥५॥
निष्कलङ्कः गतातङ्कः सर्वदा सुस्मिताधरः । सर्वतापैकशमनः कोटिचन्द्रविमोहनः ॥६॥
नायं तुलयितुं योग्यस्तेन चित्तापहारिणा । कथञ्चिज्जातु सद्बन्धो ! सागरेणेव सीकरः ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनी ! उधर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके ध्यानमें तल्लीन, महातेजस्वी श्रीरामभद्रजू सन्ध्या विधि करके अपने भाई श्रीलखनलालजीसे यह प्रिय बचन बोले१

हे तात ! देखिये पूर्व दिशामें चन्द्रदेव बड़े ही अभिमान पूर्बक पूर्ण कलाओंसे उदित हुये हैं किन्तु ये उस प्रकार शोभित नहीं होते जैसा श्रीमिथिलेश-राजदुलारीका वह श्रीमुखचन्द्र सुशोभित होता है क्योंकि यह चन्द्रमा एकतो खारे-समुद्रसे उत्पन्न हुआ है, दूसरे इसका भाई विष है, अत एव वियोगियोंको इसका दर्शन ही विशेष दुखदायी है ॥२॥३॥

यह चन्द्रमा कलङ्कसे युक्त १५ दिन घटता और १५ दिन बढ़ता है, पुनः राहुके भयसे सदा त्रस्त रहता है, अत एव देखने में तो यह हंसके समान सुन्दर है, किन्तु गुणोंमें बगुलाके सदृश ही है ॥४॥

श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजूका वह मुखचन्द्र तो छविरूपी दुग्ध-सागरसे उत्पन्न, चराचर विश्वको मुग्ध कर लेने वाला, सदा एक रस पूर्ण प्रकाशसे युक्त, श्रीसम्पन्न, दर्शनोंसे सदा ... को पूर्ण सुख प्रदान करने वाला ॥५॥

पूर्ण निर्दोष, भयसे रहित, मनोहर मुस्कान युक्त ओठोंसे सदा सुशोभित, सम्पूर्ण तापों को हरण करने में उपमा रहित, करोड़ों चन्द्रमाओं को भी मुग्ध कर लेने वाला है ॥६॥

हे भाई ! इस लिये इस चन्द्रमाका उस चित्तचोर मुखचन्द्रसे तुलना करना कभी किसी प्रकार उचित नहीं है, जैसे सीकर (सींकके अग्र भागमें लगे हुये जल कण) की समुद्रकी ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्त्वा भ्रातरं रामः समाधाय स्वचेतसम् । विह्वलन्तं महाधीरः प्रकृतिस्थो बभूव ह ॥८

ततो गत्वा महात्मानं विश्वामित्रं तपोनिधिम् । ननाम दण्डवद्भूमौ सानुजो रघुनन्दनः ॥९

कृतसान्ध्यविधिं दोर्भ्यां समालिङ्ग्य महामुनिः । रामं कमलपत्राक्षं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥१०

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वत्स! राम! महाभाग! धनुर्यज्ञो महात्मना । निश्चितः श्वो विदेहेन त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥११॥

अतोऽसि सानुजो द्रष्टा श्वो नृपालैः समाकुलाम् । धनुर्यज्ञस्थलीं तात! गत्वा रम्यां मया सह ॥१२॥

श्रीलक्ष्मण उवाच ।

तत्तु कस्य धनुर्नाथ ! कथं श्रीमिथिलापुरीम् । सम्प्राप्तमेतदाख्याहि सद्वृत्तान्तमशेषतः ॥१३॥

कस्मात्कृता प्रतिज्ञेति भगवंस्तदिहोच्यताम् । जनकेन सुताया मे धनुर्भङ्गकरो वरः ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्तो महातेजा लक्ष्मणेन महामुनिः । मोदमानेन चित्तेन कौशिको वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये! इस प्रकार अपने भैया श्रीलखनलालजी[illegible] कहकर (श्रीकिशोरीजीके विशेष चिन्तनसे) विह्वलताको प्राप्त होते हुये, अपने चित्तको सावधान [illegible] द्वारा महान धैर्य शाली श्रीरामभद्रजू अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आगये ॥८॥

तत्पश्चात् छोटे भाई श्रीलखनजीके सहित श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने जाकर तपस्याके [illegible]सि[illegible] स्वरूप, महात्मा श्रीविश्वामित्रजीको पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥९॥

महामुनि श्रीविश्वामित्रजी सन्ध्या वन्दन करके आये हुये उन दोनों भाइयोंको हृदयसे लगा कर कमलदललोचन श्रीरामभद्रजूसे यह मधुर बचन बोले ॥१०॥

हे महाभाग्यशाली वत्स श्रीरामभद्रजू ! महात्मा श्रीविदेहजी महाराजने कल तीनों लोकोंमें विख्यात धनुष यज्ञ करनेका निश्चय किया है ॥११॥

[illegible] तात ! इस लिये राजाओंसे परिपूर्ण उस धनुष यज्ञस्थलीको कल मेरे साथ चलकर श्री[illegible]खनलालजीके समेत आप अवलोकन करेंगे ॥१२॥

श्रीलखनलालजी बोले:—हे नाथ ! वह धनुष किसका है? और श्रीमिथिलाजीमें किस प्रकार आया ? आप इस सद्वृत्तान्तका वर्णन पूर्ण रूपसे कीजियेगा ॥१३॥

हे भगवन् ! श्रीजनकजी महाराजने यह प्रतिज्ञा क्यों की ? कि "जो धनुषको तोड़ेगा वही श्रीराजकुमारीजीका वर होगा" इसवृत्तान्त को भी आप कहनेकी कृपा करें ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोले:—हे प्रिये ! श्रीलखनलालजीके इस प्रकार प्रार्थना करने पर महातेजस्वी, मुनियोंमें श्रेष्ठ, श्रीविश्वामित्रजी महाराज प्रसन्न चित्त हो बोले:—॥१५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

धु साधु तव प्रश्नः सुमित्रानन्दवर्द्धन ! । शृणु चाहं प्रवक्ष्यामि तत्तु यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१६॥

याऽपि श्रूयतां वत्स! राम! राजीवलोचन!। पौराणिकी कथा या च लक्ष्मणार्थं मयोच्यते ॥१७॥

वृत्रासपरित्रस्तास्त्रिदशा जगदीश्वरम् । उपतस्थू रमानाथं शक्रमुख्याः सवेधसः ॥१८॥

श्रीदेवा ऊचुः ।

अथ

य सुरसिद्धयोगिमुनिवन्द्यपदाम्बुरुह ! त्रिभुवननाथ ! दीनजनरक्षणदक्षमते ! ।

प्राच्यरसि सदा प्रपन्नजनदुःखमतो मुनिभिर्हरिरिति कथ्यसेऽपहर दुःखमतोऽजित ! नः ॥१९॥

लवणत्वमसि जगद्भवस्थितिलयादिकरप्रथमो विधिहरवन्दितः श्रुतिनुतोरुपवित्रयशाः ।

क्षीयतेव महिमानमीश! कथनाय सहस्रमुखोऽप्यलमिह नास्ति तर्हि कुधियश्च कथं नु वयम्॥२०॥

स चन् ! सर्वदाऽस्माकं तव पादावलम्बिनाम् । निहत्यासुरसङ्घातं कृता रक्षा त्वया प्रभो!।२१।

निष्कं त्वां विना नाथ! गतिर्नो काऽपि दृश्यते । वृत्रासुरभयार्त्तानां सुराणां नो जगत्पते! ॥२२॥

नायं

हे श्रीसुमित्रानन्दवर्द्धनजू ! आपका प्रश्न बहुत ही अच्छा है, अब आप जिस रहस्यको
चाहते हैं उसे मैं वर्णन करता हूँ, श्रवण कीजिये ॥१६॥

महाते

हे राजीवलोचन श्रीरामभद्रजू ! वत्स ! मैं लखनलालजीको पुराणोक्त जिस कथाको सुना
हूँ, उसे आप भी श्रवण कीजियेगा ॥१७॥

किन्तु

हे वत्स ! जब वृत्रासुरके भयसे इन्द्रादि देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये, तब श्रीब्रह्माजीके
समेत वे सम्पूर्ण जगत्के नियामक श्रीलक्ष्मीपति भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१८॥

हे देव, सिद्ध, योगि, मुनि, वृन्दोंसे प्रणाम करने योग्य श्रीचरणकमल ! हे त्रिलोकीनाथ !
हे दीनोंकी, रक्षा करनेमें बड़ी ही चतुर बुद्धि वाले प्रभो! आपकी जय हो । आप शरणागत जीवों
के नाना प्रकारके दुःखोंको सदा हरण करते हैं, इसीलिये मुनिवृन्द आपको श्रीहरि कहते हैं।
हे अजित (सर्व विजयी प्रभो) इस हेतु आप हम देवोंके समस्त दुखोंको हरण कीजिये ॥१९॥

आपही इस जगत्के उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलयके मुख्य कारण हैं, ब्रह्मा शिव आदि सभी
आपकी वन्दना करते हैं, तथा आपके पवित्र यशकी वेद भगवान् स्तुति करते हैं । हे ईश आ[illegible]
महिमाको सहस्रमुख शेषजी भी जब वर्णन करनेको समर्थ नहीं हैं, तब खोटी (स्वार्थ-दूषित
बुद्धि वाले हम देवगण भला किस प्रकार वर्णन कर सकते हैं ॥२०॥

हे सर्वसमर्थ भगवान् ! आपने राक्षस-वृन्दोंका संहार करके अपने श्रीचरणकमलका
अवलम्ब लेने वाले हम देवताओंकी सदाही रक्षाकी है ॥२१॥

हे जगत्पते ! इस समय वृत्रासुरके भयसे व्याकुल हम देवताओंकी रक्षा करने
आपके बिना और कोई भी नहीं दीखता ॥२२॥

त्राहि त्राहि त्रिलोकेश ! प्रपन्नान्नो दयानिधे ! । वृत्रासुरमहाकालात् संक्षयाय कृतोद्यमात् ॥२३॥
अनष्टेऽस्मिन्कृपासिन्धो ! वृत्राख्येऽसुरसत्तमे । न श्रेयो विद्यतेऽस्माकममराश्च मृता वयम् ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं समीडितो भक्त्या भगवान् भक्तवत्सलः । वाचा मधुरया प्राह सस्मितं चतुराननम् ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच ।

ब्रह्मन् वृत्रासुरोऽवध्यस्तव सृष्टिसमुद्भवैः । नाहं तं घातयिष्यामि स्वभक्तं जातु वै प्रियम् ॥२६॥
चिन्तां त्यजन्तु विबुधाः प्रपन्नानां पितामह! । अहं रक्षां करिष्यामि सर्वदैतद्व्रतं मम ॥२७॥
मय्यासक्तमना वृत्रो मद्धामागमनस्पृही । तं न लोभयितुं शक्तं पारमेष्ठ्यादिकं पदम् ॥२८॥
शापादेवैष पार्वत्या आसुरीं योनिमाप्तवान् । योनिवृत्तिमुपालम्ब्य सुराणां निधनोद्यतः ॥२६॥
दधीचिरिति विख्यातो महर्षिस्तपतां वरः । तदस्थिनिर्मितास्त्रेण कालो बध्यः कुतोऽसुरः ॥३०॥
तस्मिन्निवेशयिष्यामि स्वतेजः कमलोद्भव! । बज्राख्ये तेन चास्त्रेण शक्रो जेता महासुरम् ॥३१॥

हे त्रिलोकीनाथ ! आप दयाके भण्डार हैं, अत एव दया करके पूर्ण विनाशके लिये कमर कसे हुये उस वृत्रासुर रूपी महाकालसे शरणमें आये हुये हम देवताओंकी रक्षा कीजिये ॥२३॥

हे कृपासागर ! जब तक राक्षस श्रेष्ठ इस वृत्रासुरका विनाश नहीं होता है, तब तक हम लोगोंका कल्याण है ही नहीं और हम अमर भी मरे ही के तुल्य हैं ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे कात्यायनी ! इस प्रकार प्रेम-पूर्वक देवताओंके द्वारा प्रार्थना करने पर भक्तवत्सल भगवान् मन्द मुस्काते हुये अपनी मधुरवाणी द्वारा श्रीब्रह्माजीसे बोले ॥२५॥ हे ब्रह्माजी ! आपकी सृष्टिमें जो उत्पन्न हैं या होंगे, उन सभीसे यह वृत्रासुर अवध्य है अर्थात् मर नहीं सकता और मैं कभी भी उसका वध करूँगा नहीं क्योंकि वह मेरा प्यारा भक्त है ॥२६॥

हे पितामह ! देववृन्द अपनी चिन्ताका परित्याग करदें, क्योंकि वे मेरी शरणमें आचुके हैं और मैं शरणागत प्राणियोंकी सदा अवश्य रक्षा करूँगा ॥२७॥

वृत्रासुरका मन मेरेमें आसक्त है और उसको मेरे दिव्यधाम आनेकी इच्छा है, अत एव अब उसको आपका परमेष्ठी पद आदि भी लोभमें फँसानेको समर्थ नहीं हो सकता ॥२८॥

भगवती श्रीपार्वतीजीके शापके कारण ही इसे यह राक्षसी योनि मिली है, अत एव उस योनिके अनुसार वृत्तिको ग्रहण करके यह देवताओंका विनाश करनेको उद्यत है ॥२६॥

तपस्वियोंमें श्रेष्ठ जो "महर्षि दधीचि" इस नामसे लोकमें विख्यात है, उनकी हड्डियों द्वारा बनाये हुये अस्त्रसे वृत्रासुरका ही कौन कहे कालका भी वध किया जा सकता है ॥३०॥

हे ब्रह्मन् ! श्रीदधीचि ऋषिकी हड्डियों द्वारा जो बज्र नामका अस्त्र बनाया जावेगा उसमें मैं अपनी शक्ति भर दूंगा और मेरी शक्तिसे युक्त उस अस्त्रके द्वारा इन्द्र इस वृत्रासुरको विजय करेगा ॥३१॥

सुराणामर्थसिद्धयर्थं दधीचिर्मत्परायणः । शरीरं प्रार्थितः सद्यो वदान्यो वः प्रदास्यति ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः पश्यतां त्रिदिवौकसाम् । ब्रह्मणा सान्त्वितः शक्रः स्वर्लोकं प्राप सामरैः ॥३३॥
ततो वृन्दारकाः साकं सुरेन्द्रेण महामुनेः । दधीचेराश्रमं गत्वा प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ॥३४॥
महर्षिस्तान्समालोक्य कृताञ्जलिपुटान्स्थितान् । पप्रच्छ प्रणतो भूत्वा समुत्थाय दिवौकसः ॥३५॥

श्रीदधीचिरुवाच ।

दृष्ट्वा यदृच्छयाऽऽयातं भवताममृतान्धसः । परं कौतूहलं जातमिदानीं मम चेतसि ॥३६॥
कस्मान्मदन्तिकं प्राप्ता इदानीं तदिहोच्यताम् । करवाणि यथाशक्ति सेवां वोऽदितिनन्दनाः॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य वाच ।

एवमाश्वासिता देवाः सदा स्वार्थपरायणाः । ऊचुः प्राञ्जलयो नम्रा दधीचिमृषिसत्तमम् ॥३८॥

देवा ऊचुः ।

त्वदस्थिनिर्मिताद्वज्रान्मृतिर्वृत्रस्य कल्पिता । येन संपीडिता ब्रह्मन् सम्भ्रमाम इतस्ततः ॥३९॥
बधकामा वयं तस्य भवन्तं शरणं गताः । स्वास्थिपुञ्जप्रदानेन भव देवाभयप्रदः ॥४०॥

श्रीदधीचि ऋषि मेरे भक्त तथा दाताओंमें श्रेष्ठ हैं अतः आप लोगोंके माँगने पर देवताओं की हितसिद्धिके लिये वे अवश्य अपना शरीर दान करदेंगे ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः–हे प्रिये! इतना कहकर उन देवताओंके देखते श्रीभगवान् अन्तर्हित हो गये, तब श्रीब्रह्माजीके आश्वासन देने पर इन्द्र देवताओं सहित अपने स्वर्ग लोक को गये ॥३३॥ तत्पश्चात् देववृन्दने इन्द्रको साथमें लेकर महर्षि दधीचिके आश्रममें पहुँचकर, उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया ॥३४॥

महर्षि श्रीदधीचिजी महाराजने देवताओंको हाथ जोड़े उपस्थित देखकरके उन्हें उठकर प्रणाम किया और पूछा ॥३५॥ हे देवताओ ! आप लोगोंका इस समय यह आकस्मिक आगमन देखकर मेरे चित्तमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है ॥३६॥

हे अदितिनन्दन देवताओ! मैं यथा शक्ति आप लोगोंकी अवश्य सेवा करूँगा, अतः बतलाइये इस समय मेरे पास आप लोग किस लिये पधारे हैं ? ॥३७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः–हे तपोधन ! सदा निज स्वार्थमें ही लगे रहने वाले वे, देवता इस प्रकारका आश्वासन पाकर नम्रहो हाथ जोड़ेहुये ऋषियोंमें परमश्रेष्ठ उन श्रीदधीचिजी महाराजसे बोले ॥३८॥ हे ब्रह्मन् ! जिस वृत्रासुरसे पीड़ित होकर हम सभी देवता इधर-उधर भटक रहे हैं, उसकी मृत्यु आपकी हड्डियों द्वारा बनाये हुये वज्रसे होनी निश्चित है ॥३९॥

हम लोग उसी वृत्रासुरके वधके इच्छुक हो, आपकी शरणमें आये हैं, अत एव आप अपनी हड्डियोंकी राशि प्रदान करके देवताओंको अभय कीजिये ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति तेषां वचः श्रुत्वा सुराणां विनयान्वितम् । महाधीरः प्रहृष्टात्मा महात्मा वाक्यमब्रवीत् ॥४१॥

श्रीदधीचिरुवाच ।

शरीरं नूनमेवेदं भौतिकं क्षणभङ्गुरम् । अस्पृश्यं विगतप्राणं नित्यश्चात्माऽक्षयोऽजरः ॥४२॥

तस्माच्छरीरदानेन यदि साध्यं हितं हि वः । तूर्णमेव प्रदास्यामि प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥४३॥

अहो धन्यं हि मे भाग्यं भवद्भिरभियाच्यते । स्वाभयार्थप्रसिद्धयर्थं गतासुं मत्कलेवरम् ॥४४॥

अस्थिपुञ्जं शरीरं मे सुखं स्वीकुरुतामराः ! । अहमेतत्परित्यज्य संव्रजामि हरेः पदम् ॥४५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्त्वा तपोमूर्त्तिर्यतवाक्कायमानसः । विसृज्य नश्वरं देहं जगाम हरिमन्दिरम् ॥४६॥

परोपकारः कर्त्तव्यः सदा निष्कामया धिया । तस्मान्नास्ति परं पुण्यं तपोदानव्रतादिकम् ॥४७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

अथ वत्स ! महाभाग! तदस्थीनि महात्मनः । सुरेन्द्रो विश्वकर्माणं प्रदायोवाच सादरम् ॥४८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! देवताओंके विनययुक्त वचनको सुनकर महान् धैर्यशाली महात्मा श्रीदधीचिजी महाराज बड़े हर्षित मनसे बोले ॥४१॥ यह पंच भूतोंसे बना हुआ शरीर निश्चय ही क्षणमात्रमें नष्ट हो जाने वाला है तथा प्राणोंके निकल जाने पर यह छूने योग्य भी नहीं रहता क्योंकि इतना अपवित्र हो जाता है और आत्मा जरामृत्यु आदि से रहित सदा एक रस रहने वाला है ॥४२॥

इसलिये यदि मेरे शरीर दानकर देनेसे आप लोगोंका हित बनता है, तो मैं अपने प्रसन्न हृदयसे इस शरीरको तुरन्त दान करता हूँ ॥४३॥

अहो मेरा भाग्य कितना सुन्दर है जो आप देवगण अपनी अभय कामना पूर्त्तिके लिये मेरे निष्प्राण शरीरका दान माँग रहे हैं ॥४४॥ हे अमरणशील देवताओ ! इसलिये आप लोग हड्डियोंके पुञ्ज भूत मेरे शरीरको सुख-पूर्वक स्वीकार कीजिये, मैं इसको छोड़कर भगवान् श्रीहरिके धाम (वैकुण्ठ) को जा रहा हूँ ॥४५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार देवताओंसे कहकर तपोमूर्त्ति श्रीदधीचिजी महाराज मौनहो सिद्धासनसे बैठ गये और अपने इच्छानुसार मनको श्रीभगवान्के श्रीचरणकमलमें लगाकर इस नाशवान् शरीरको छोड़कर श्रीवैकुण्ठधाम चले गये ॥४६॥

इसलिये निष्काम बुद्धिसे दूसरोंका हित सदैव करना चाहिये क्योंकि उस (परोपकार) से बढ़कर न कोई पुण्य है, न तप है न दान है न कोई व्रत आदि ॥४७॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः—हे वत्स ! हे महाभाग ! तत्पश्चात् देवराज इन्द्र विश्वकर्माको बुलाकर महात्मा श्रीदधीचिजीकी हड्डियोंको देकर उनसे आदर पूर्वक बोले ॥४८॥

श्रीइन्द्र उवाच ।

मुनेरस्थिचयादस्मान्निर्मितास्त्रैर्महामते ! । प्रहतो राक्षसः कोऽपि जीवितो न भविष्यति ।।४९।।
तस्मादस्य त्रयो भागाःकर्त्तव्या भवता पुनः । अस्त्रत्रयस्य निर्माणं यथा वच्मि विधीयताम् ।।५०।।
आदौ धनुर्द्वयं दिव्यं बज्रमेकमथोत्तमम् । निर्मापय महाबुद्धे ! नानामणिपरिष्कृतम् ।।५१।।

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवं मघवताऽऽदिष्टो विश्वकर्मा सुराधिपम् । यथोक्तं करवाणीति समाभाष्य ननाम तम् ।।५२।।
ततः सर्वेश्वरं नत्वा पञ्च देवांश्च भक्तितः । अस्त्राणि निर्ममे त्रीणि जगत्क्षेमकराणि सः ।।५३।।
तानि दृष्ट्वा प्रसन्नात्मा सुरेन्द्रः सुप्रशस्य तम् । ब्रह्मणे दर्शयामास स च वीक्ष्याह वासवम् ।।५४।।

श्रीब्रह्मोवाच ।

यदिदं निर्मितं पूर्वं शक्र! कोदण्डमद्भुतम् । अर्पणीयं त्वया भक्त्या विष्णवे शार्ङ्गसञ्ज्ञकम् ।।५५।।
पिनाकाख्यमिदं चापं शूलिने चन्द्रमौलये । सादरं त्रिदशश्रेष्ठ ! ह्यर्पणीयं पुरारये ।।५६।।
बज्राभिधमिदं चास्त्रं सर्वरक्षोविनाशनम् । त्वया सुरपते ! ग्राह्यं वृत्रविध्वंसमिच्छता ।।५७।।

हे विश्वकर्माजी ! श्रीदधीचि मुनिकी इन हड्डियोंसेजो अस्त्र बनेंगे उनके द्वारा प्रहार करने पर कोई भी राक्षस जीवित न बचेगा ।।४९।।

इसलिये इस अस्थिपुञ्जके पहिले आप तीन भागकर लीजिये पुनः मैं जैसे कहता हूँ उसी प्रकार अस्त्रोंका निर्माण कीजिये ।।५०।।

हे महाबुद्धे ! पहिले अनेक प्रकारकी मणियोंसे जटित दो दिव्य धनुष, उसके पश्चात् एक उत्तम वज्र बनाइये ।।५१।। श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले–हे वत्स ! इन्द्रकी इस आज्ञाको पाकर विश्वकर्माजीने, "आपकी आज्ञानुसार ही करूँगा" यह कहकर उनको प्रणाम किया ।।५२।। तत्पश्चात् श्रीविश्वकर्माजीने सर्वेश्वर प्रभु श्रीसाकेताधीशजीको तथा पञ्चब्रह्म(गणपति, दुर्गा, सूर्य, शिव, विष्णु, भगवान्) को प्रणाम करके विश्वकल्याणकारी तीनों अस्त्रोंको बनाया ।।५३।।

उन तीनों अस्त्रोंको देखकर देवराज इन्द्रका हृदय बहुत प्रसन्न हुआ, अत एव विश्वकर्माजी की सम्यक् प्रकारसे प्रशंसा करके उन अस्त्रोंको श्रीब्रह्माजीको दिखलाया, उन्हें देखकर ब्रह्माजी इन्द्रसे बोले ।।५४।।

हे इन्द्र ! पहिले जो यह अद्भुत अस्त्र बनाया गया है, उस शार्ङ्ग नामक धनुषको तुम श्रीविष्णु भगवानको अर्पण करो ।।५५।।

हे देव श्रेष्ठ ! दूसरा जो पिनाक नामका धनुष है, उसे तुम मस्तक पर चन्द्रमा और हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले पुर दैत्यघाती श्रीभोलेनाथजीको अर्पण करो ।।५६।।

हे देवराज ! वृत्रासुरका विनाश चाहने वाले तुम सभी राक्षसोंके नाश करने वाले इस बज्र नामक अस्त्रको ग्रहण करो ।।५७।।

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

बहुशः प्रार्थितौ देवौ ससुरेशेन वेधसा । प्रादुर्बभूवतुस्तत्र हरिः शम्भुः कृपान्वितौ ॥५८॥
परितोषाय देवानां धनुषी ते समर्पिते । ऊरीकृत्य सुरेन्द्रेण जग्मतुस्तावदृश्यताम् ॥५९॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः–हे वत्स! इन्द्रके सहित ब्रह्माजीके द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर वे कृपालु श्रीविष्णु भगवान् तथा श्रीभोलेनाथजी दोनों ही प्रकट हो गये ॥५८॥

देवताओंके सन्तोषके लिये इन्द्रके द्वारा अर्पण किये हुये दोनों धनुषको श्रीभोलेनाथजी तथा श्रीविष्णु भगवान् स्वीकार करके अन्तर्हित हो गये ॥५९॥

इत्येकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

—❀❀❀—

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः ।

श्रीजनकजीको पिनाक तथा श्रीपरशुरामजीको वैष्णव धनुष-प्राप्ति
सहित श्रीजनक प्रतिज्ञा हेतु वर्णन ।

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वृत्रं युधि जघानेन्द्रः सर्वदेवभयावहम् । तेन बज्राभिधास्त्रेण तदौदार्य्यविलज्जितः ॥१॥
वर्षपूगे गते देवाः कोऽधिको वीर्यवानिति । ईशविष्ण्वोरिति प्रश्नं मिथश्चक्रुः कुतूहलात् ॥२॥
केषांचिच्चमतेनेशहर्योरीशो मतो वरः । केषांचिदथ सम्मत्या हरिरेव वरोऽधिकः ॥३॥
अलब्धे निर्णये भूयो स्पर्द्धमानाः परस्परम् । उपगम्य विधातारं प्रणेमुर्निर्जरा हि ते ॥४॥
तानुवाच नतस्कन्धान्सर्वलोकपितामहः । आगच्छतोपविशत ब्रूतागमनकारणम् ॥५॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः–हे वत्स ! समस्त देवताओंके भयदायक उस वृत्रासुरको, उसकी अनुपम उदारतासे विशेष लज्जित होने पर भी इन्द्रने उसे बज्रास्त्रसे मार दिया ॥१॥

बहुत वर्षोंके व्यतीत होने पर कौतूहल वश देवोंने आपसमें यह प्रश्न किया, कि भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णुमें कौन अधिक बलवान् हैं ॥२॥

उनमें कुछ देवताओंके मतसे श्रीशङ्करजी और विष्णु भगवान्में शिवजी ही श्रेष्ठ सिद्ध हुये और कुछ देवताओंकी सम्मतिसे विष्णु भगवान् ही अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुये अर्थात् शैवोंने शिवजी को और वैष्णवोंने श्रीविष्णु भगवान्को अधिक श्रेष्ठ सिद्ध किया ॥३॥

इस विषयमें बारम्बार विवाद चलनेपर भी जब सर्व सम्मतिसे कोई एक निर्णय न हो सका, तब उन देववृन्दोंने श्रीब्रह्माजीके पास जाकर उनको प्रणाम किया ॥४॥

कन्धा झुकाये उन देववृन्दोंको देखकर समस्त लोकोंके बाबा श्रीब्रह्माजी बोलेः–हे देवताओ! आइये बैठिये तथा बतलाइये आप लोगोंके यहाँ आनेका क्या कारण है ? ॥५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

अधिगम्य शुभादेशं ब्रह्मणस्ते स्वयम्भुवः । ऊचुः प्राञ्जलयो नत्वा याचमानाः क्षमां मुहुः ॥६॥

देवा ऊचुः ।

ईशहर्य्योर्वरः कोऽस्ति विवादोऽयं हि नो महान् । केचिद्वदन्ति भूतेशं तयोः केचिद्वरं हरिम् ॥७॥

निश्चयं नाधिगच्छामः कतरः श्रेष्ठ इत्यतः । सर्वे वयं समायाताः शरणं त्वां जगद्गुरो ? ॥८॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

द्वयोर्युद्धं विना देवा नाभीष्टं वः प्रसिद्धयति । रोषवृद्धिं विना तस्य क्वापि सिद्धिर्न जायते ॥९॥

महादेवे कथं सा स्याद् विष्णोर्वैष्णवपुङ्गवे । शिवस्यापि तथा विष्णौ चिन्त्यमानपदाम्बुजे ॥१०॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

इति तद्व्याहृतं वाक्यं समाकर्ण्य दिवौकसः । ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं नान्यथा तुष्टिरेव नः ॥११॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एतादृशं हठं दृष्ट्वा देवानां भगवानजः । सुरर्षिं नारदं दध्यौ ततोऽसौ द्रुतमाययौ ॥१२॥

तमुवाच महातेजाः प्रणतं दीनवत्सलम् । परोपकारिणां मुख्यं ब्रह्मा भुवनवन्दितम् ॥१३॥

श्रीविश्वामित्रजीमहाराज बोलेः-हे वत्स ! वे देववृन्द श्रीब्रह्माजीकी इस मङ्गलमयी आज्ञा को पाकर बारम्बार क्षमा माँगते हुये, प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनसे बोले :-॥६॥

भगवान् श्रीशिवजी और भगवान् श्रीविष्णुमें कौन श्रेष्ठ है, इस विषयमें हम लोगोंका महान् विवाद(झगड़ा) है । उन दोनोंमें कुछ भगवान् श्रीभूतनाथजीको और कुछ लोग भगवान् श्रीहरि को श्रेष्ठ बतलाते हैं ॥७॥

परन्तु वस्तुतः दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है ? यह हम लोग निश्चय नही कर पाते । हे जगद्गुरो! इसी शङ्काको दूर करानेके लिये हम लोग आपकी शरणमें आये हैं ॥८॥

श्रीब्रह्माजी बोले-हे देवताओ ! बिना दोनोंमें युद्ध हुये आप लोगोंका यह अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता, और बिना क्रोध वृद्धिके कभी युद्ध होता नहीं ॥९॥

उस क्रोध की वृद्धि श्रीविष्णु भगवान्के हृदयमें परम वैष्णव श्रीसदाशिवजीके प्रति और श्रीभोलेनाथजीके हृदयमें उन श्रीविष्णु भगवान् के प्रति किस प्रकार हो सकती है ? जिनके, श्रीचरण कमलोंका वे सदा ध्यान करते हैं अर्थात् होना असङ्गत ही है ॥१०॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः-हे वत्स! श्रीब्रह्माजीके कहे हुये बचनको सुनकर, देवताओं ने फिर उनसे कहाः-हे पितामह! बिना अपनी शङ्का दूर कराये हमें सन्तोष नहीं है ॥११॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः-हे तात ! देवताओंका इस प्रकारका हठ देखकर भगवान् ब्रह्माजीने देवर्षि नारद का ध्यान किया, जिससे वे(श्रीनारदजी महाराज)तुरन्त आपधारे ॥१२॥

जिनको समस्त विश्व प्रणाम करता है, जो दीनों पर वात्सल्यभाव रखनेवाले तथा सबसे बढ़कर परोपकारी हैं, प्रणाम करने वाले उन श्रीदेवर्षिजीसे महातेजस्वी श्रीब्रह्माजी, बोले ॥१३॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

एते वृन्दारका वत्स ! ईशहर्य्योर्महात्मनोः । प्रत्यक्षं द्रष्टुमिच्छन्ति बलवान्क इति स्फुटम् ॥१४॥
मया निषिद्ध्यमानानां सन्तोषो नैव जायते । अतस्त्वं कलहोत्पत्तेः साधने देहि मानसम् ॥१५॥
त्वदन्यो न क्षमो लोके कार्यस्यास्य प्रसाधने । सुराणां संशयं छिन्धि न हानिस्ते भविष्यति ॥१६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

यथाऽऽदिष्टं करोमीति पितरं सोऽभिभाष्य तम् । नमस्कृत्य जगामाशु कैलासं शिवसेवितम्॥१७॥
तत्र शम्भुं सुखासीनं प्रणनाम समादृतः । संपृष्टकुशलो भूयः सुरर्षिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥

श्रीनारद उवाच ।

भवान् ब्रह्मा च विष्णुश्च पृथग्रूपेऽपि नो पृथक् । वस्तुतः प्रवदन्तीत्थं श्रुतयश्च महर्षयः ॥१९॥
मद्भिया पवनो वाति तपतीह त्विषांपतिः । वृष्टिं करोति देवेशः शेषो धत्ते वसुन्धराम् ॥२०॥
ब्रह्मणा सृज्यते विश्वं ह्रियते शम्भुना ऽखिलम् । ममैवाज्ञानुवर्तिभ्यां सर्वेषां च प्रभोरिति ॥२१॥

श्रीनारद उवाच ।

वैकुण्ठे श्रुतवानस्मि वदतः श्रीपतेः स्वयम् । ततः शङ्कान्वितो भूत्वा भवन्तमहमागतः ॥२२॥

हे वत्स ! ये देव वृन्द श्रीहरि-हरमें कौन विशेष बलवान है, यह स्पष्ट रूपसे प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं ॥१४॥ मैं इनको मना कर रहा हूँ, पर इन्हें सन्तोष ही नहीं होता, इस लिये उन भगवान् विष्णु तथा श्रीभोलेनाथजीमें जिस प्रकार कलह उत्पन्न हो जाय, वैसा ही साधन करने में अपना मनोयोग दें ॥१५॥

तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी इस कार्यको करनेमें समर्थ है नहीं, इस लिये इस कार्यके द्वारा तुम देवताओंकी शङ्का नष्ट करो, तुम्हारी किसी प्रकारकी हानि न होगी ॥१६॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोले:-हे वत्स ! श्रीनारदजी महाराज अपने पिताजीसे "जैसी आज्ञा है, वैसा करूँगा" ऐसा कहकर उन्हें नमस्कार करके वे तत्क्षण भगवान् शिवजी द्वारा सेवित कैलास को चले गये ॥१७॥

वहाँ सुखासनसे बैठे हुये श्रीभोलेनाथजीको, देवर्षि श्रीनारदजीने प्रणाम किया पुनः श्रीशिवजी द्वारा पूर्ण आदर पाकर कुशल समाचार पूछने पर वे श्रीभोलेनाथजीसे बोले:-॥१८॥

भगवन् ! आप (शिव), ब्रह्माजी तथा श्रीविष्णु भगवान् तीन स्वरूप होते हुये भी वास्तव में एक ही हैं, ऐसा चारों वेद तथा महर्षिगण कहते हैं ॥१९॥

मेरे डरसे पवन उचित मात्रामें बहता है, सूर्य मेरे भयसे अनुकूल मात्रामें उष्णता प्रदान करता है इन्द्र मेरे भयसे उचित परिमाणमें यथा समय जल बरसाता है मेरे भयसे शेषजी सदैव पृथ्वीको अपने सिर पर रखे रहते हैं ॥२०॥ मुझ सर्वेश्वरके आज्ञानुसारही ब्रह्मा इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि और रुद्र संहार करतेहैं॥२१॥ इस बात को बैकुण्ठमें स्वयं श्रीपति भगवान् विष्णुके कहते हुये मैंने सुना, इस लिये सन्देह वश, मैं आपके पास आया हूँ ॥२२॥

श्रीशिव उवाच ।

विष्णुः परात्परं ब्रह्म साकेताधिपतिः प्रभुः । अहं तद्भक्तिनिरतो न विष्णोः सृष्टिरक्षितुः ॥२३॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे सर्वदाऽऽज्ञापरायणाः । सर्वेश्वरस्य रामस्य तेषां मुख्यास्त्रयो वयम् ॥२४॥
चराचरस्य जगतः सृष्टिकर्ता पितामहः । विष्णुश्च पालकस्तस्य संहर्ताऽपि तथाऽस्म्यहम् ॥२५॥
एतेषां कस्यचित्कोऽपि न स्वामी दास एव च । दासाः सर्वे तु रामस्य स्वामी रामस्तथैव नः॥२६॥
तावदेवाखिलं विश्वं जायते दृष्टिगोचरम् । यावदस्य विनाशाय मतिर्मे नोपजायते ॥२७॥
मयि क्रुद्धे न देवेशो नान्तको वारिजासनः । न च विष्णुः परित्रातुं क्षमो विश्वं कथञ्चन ॥२८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

तस्येत्याशंसितं श्रुत्वा नारदो देवकार्यकृत् । अभिवाद्य तदाज्ञप्तो वैकुण्ठं समुपेयिवान् ॥२९॥
प्रणतः सत्कृतस्तेन रमानाथं जगत्पतिम् । संपृष्टकुशलस्तत्र सुरर्षिः प्राह साञ्जलिः ॥३०॥

श्रीनारद उवाच ।

यदृच्छयाऽद्य देवेश ! कैलासं गतवानहम् ! । साहङ्कारमुवाचेदं तत्र रुद्रस्तु मे वचः ॥३१॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे नारदजी! जो विष्णु परात्पर ब्रह्म, सर्वसमर्थ, श्रीसाकेताधीश राम हैं, मैं उनका भक्त हूँ, सृष्टि-रक्षक विष्णुका नहीं ॥२३॥

ब्रह्मादि सभी देवगण सर्वदा सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजूके ही आज्ञाकारी हैं, उन सभी देवोंमें भी हम लोग मुख्य तीन हैं ॥२४॥

जगत्के सम्पूर्ण चर-अचर प्राणियोंकी सृष्टि का काम ब्रह्माजीका, पालन करनेका विष्णुजी का तथा संहार करनेका काम हमारा है ॥२५॥

इस लिये इन तीनोंमें न कोई किसीका दास है, न कोई किसीका स्वामी ! हम सभी उन सर्वेश्वर प्रभु भगवान् श्रीरामजीके दास हैं तथा वही श्रीरामजी हम तीनोंके स्वामी हैं ॥२६॥

हे नारदजी ! यह विश्व तभी तक दिखाई दे रहा है, जब तक इसका विनाश करनेके लिये मेरा निश्चय नहीं होता ॥२७॥ मेरे क्रुद्ध होजाने पर न इन्द्र, न यम, न ब्रह्मा न विष्णु ही इस विश्वकी रक्षा करनेको समर्थ हो सकते हैं ॥२८॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीलखनलालजीसे बोले:-हे वत्स ! श्रीभोलेनाथजीके इस कथन को सुनकर देवताओंका कार्य करने वाले वे श्रीनारदजी महाराज उनकी आज्ञा पाकर प्रणाम करके, वैकुण्ठ पधारे ॥२९॥

वहाँ जगत्पति, श्रीलक्ष्मीनाथ भगवान्को प्रणाम करके उनके द्वारा सत्कार प्राप्त कर कुशल समाचर पूछने पर श्रीनारदजी हाथ जोड़कर बोले ॥३०॥

हे देवेश (देवताओंके स्वामी) ! दैव-संयोगसे आज मैं कैलाशको गया था, वहाँ भगवान् रुद्रने अहङ्कार पूर्वक मुझसे यह बात कही है ॥३१॥

श्रीरुद्र उवाच ।

गोप्यमानमिदं विश्वं विष्णुना प्रभविष्णुना । नाशयाम्यल्पकालेन प्रयासोऽपि न जायते ॥३२॥
मय्येतद्धि जगत्सर्वं संहाराय समुद्यते । न तु त्रातुं क्षमो विष्णुश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः ॥३३॥
अत एव मुने! शक्तौ मम विष्णोश्च संस्फुटम् । त्वया विचारः कर्त्तव्यो गुर्वी लध्वी तु कस्य सा ॥३४॥
त्रयाणामप्यहं श्रेष्ठ इत्यहङ्कार उद्धतः । विष्णोर्मत्सम्मुखं प्राप्तवतस्तूर्णं विनश्यति ॥३५॥

श्रीनारद उवाच ।

इत्यहं वाक्यमाकर्ण्य कौतूहलसमन्वितः । अनुक्त्वा तत्र किमपि प्रागमं तेऽन्तिकं प्रभो ! ॥३६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

साभिमानमिदं वाक्यं रुद्रस्य नारदेरितम् । समाश्रुत्य स्मितं कृत्वा प्रत्युवाच सतां पतिः ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच ।

सत्यमुक्तं हि रुद्रेण किन्तु युद्धेन तस्य मे । परीक्षा पश्यतां शक्तेः सर्वेषां वो भविष्यति ॥३८॥
क्व यातस्तद्बलं वीर्यं वृके चाप्यनुधावति । कमेत्य शरणं शर्म प्राप्तोऽसाविति चिन्तयेत् ॥३९॥

शक्तिशाली विष्णुके रक्षा करते रहने पर भी, जब मेरी इच्छा होती है, कुछ ही समयमें मैं इस सम्पूर्ण विश्वको नष्ट कर डालता हूँ, उसमें मुझे कुछ भी परिश्रम नहीं होता ॥३२॥

जब मैं सम्पूर्ण जगत्को संहार करनेके लिये उद्यत हो जाता हूँ, तब सुदर्शन चक्रधारी चार-भुजाओं वाले वे विष्णु भी इसकी रक्षा नहीं कर सकते ॥३३॥

हे मुने ! इसलिये मेरी तथा विष्णुकी शक्तिमें आपही विचार कर सकते हैं कि, किसकी कम है और किसकी अधिक? ॥३४॥ अत एव तीनों देवोंमें मैं ही श्रेष्ठ हूँ, विष्णु का यह बढ़ा अभिमान, मेरे सम्मुख आते ही तुरन्त नष्ट हो जायगा ॥३५॥

श्रीनारदजी बोलेः—हे प्रभो ! भगवान् शङ्करजीके इस कथनको सुनकर मैं आश्चर्यमें पड़ गया और बिना कुछ कहे ही वहाँसे आपके पास चला आया हूँ ॥३६॥

श्रीविश्वामित्रजी श्रीलखनलालजीसे बोलेः—हे वत्स ! श्रीनारदजीके द्वारा भगवान् शिवजी के कहे हुये, अभिमान युक्त इस वचनको सुनकर, सन्तोंकी रक्षा करने वाले भगवान् श्रीहरि मन्द मुस्करा कर उनसे बोले ॥३७॥

हे नारदजी ! श्रीरुद्रजीने सत्य ही कहा है, किन्तु यदि युद्ध हो, तो उसके द्वारा आप सभी उपस्थित दर्शकोंको हमारी और उनकी शक्तिकी परीक्षा हो जायगी ॥३८॥

जिस समय वृकासुर पार्वतीजीके लोभसे उन्हें भस्म करनेके लिये पीछे दौड़ रहा था, उस समय उनका वह बल और पराक्रम कहाँ चला गया था ? किसके शरण आने पर उन्हें शान्ति मिली थी ? इस बात पर वे ही विचार करें कि, कौन श्रेष्ठ है ? ॥३९॥

श्रीनारद उवाच ।

जानामि भगवन् सर्वं पौरुषं मुण्डमालिनः । भवन्तं सोऽवजानाति केवलं दर्पमाश्रितः ॥४०॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवमाभाष्य तं देवं प्रणिपत्य पुनः पुनः । कैलासं नारदो योगी प्राप्य रुद्रं ननाम ह ॥४१॥
नारदं व्यग्रमनसं समालोक्य पुरान्तकः । सादरं परिपप्रच्छ कस्माद्व्यग्रमना असि ॥४२॥

श्रीनारद उवाच ।

विजयाय धनुष्पाणिर्विष्वक्सेनादिपार्षदैः । स आयाति समं विष्णुः सगर्वस्तेऽन्तिकं प्रभो! ॥४३॥
तत्तु सूचयितुं तुभ्यं व्यग्रचित्तः समागमम् । परिणामो भवेत्कोऽस्य युद्धस्यैष न निश्चयः ॥४४॥
युद्धार्थं तेन गन्तव्यं त्वयाऽपि चन्द्रशेखर ! । स्वगणैरचिरेणैव रणे वार्यो हि तन्मदः ॥४५॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एवमुक्तो महाक्रुद्धो रुद्रो भूतगणान्वितः । योद्धुं संप्रस्थितः सार्द्धं पिनाकी शार्ङ्गपाणिना ॥४६॥
ततो वैकुण्ठमागत्य सुरर्षिस्त्रिपुरद्विषः । चेष्टितं हरये कृत्स्नं प्रणिपत्य न्यवेदयत् ॥४७॥

श्रीनारदजी बोलेः–हे भगवन् ! मैं मुण्डोंकी माला धारण करने वाले श्रीरुद्र भगवान्‌का पौरुष जानता हूँ, वे तो केवल अभिमानके वशीभूत होकर आपका अपमान कर रहे हैं ॥४०॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः–हे वत्स ! श्रीनारदजी इस प्रकार श्रीविष्णु भगवान्‌से कहकर तथा उन्हें बारम्बार प्रणाम करके कैलास पहुँचे और भगवान् शिवजीको नमन प्रणाम किया ॥४१॥

श्रीनारदजीका चित्त चञ्चल देखकर पुरदैत्यको मारने वाले भगवान् रुद्रजीने पूछाः–हे नारदजी ! आज आपका मन चञ्चल क्यों हो रहा है ? ॥४२॥

श्रीनारदजी बोलेः–हे प्रभो ! अपने विश्वक्सेनादि पार्षदोंके समेत, हाथमें शार्ङ्ग धनुष धारण किये हुये, विष्णु भगवान् अभिमान वश विजय पानेके लिये आपके पास आ रहे हैं ॥४३॥ आपको इस बातकी सूचना देने के लिये ही भयभीत चित्त होकर मैं आया हूँ ! इस युद्धका परिणाम क्या होगा ? यह अनिश्चित है ॥४४॥

हे चन्द्रशेखर (चन्द्रमाको मस्तक पर धारण करने वाले) प्रभो ! अब आपको भी अपने गणोंके सहित विष्णु भगवान्‌के साथ युद्ध करनेके लिये शीघ्र चल देना चाहिये, तथा युद्धमें उनका अभिमान दूरही करदेना चाहिये ॥४५॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीलखनलालजीसे बोलेः–हे वत्स ! श्रीनारदजीके इस प्रकार कहने पर श्रीरुद्रजी अत्यन्त क्रुद्ध हो भूतगणोंके सहित पिनाक धनुषको धारण करके शार्ङ्ग-पाणि श्रीविष्णु भगवान्‌से लड़नेके लिये चल पड़े ॥४६॥

इधर देवर्षि श्रीनारदजीने वैकुण्ठमें पहुँचकर भगवान्‌को प्रणाम करके, त्रिपुरदैत्य का वध करने वाले भगवान् रुद्रकी समस्त चेष्टाओंको उन्हें कह सुनाया ॥४७॥

तन्निशम्य रमानाथः स्मयमानमुखाम्बुजः। नारदं प्रत्युवाचेदं किमेतद्रुद्रनिश्चितम् ॥४८॥
युद्धायोपस्थितं दृष्ट्वा नैवार्होऽस्मि पलायितुम्। अजय्यो देवदैत्येन्द्रैर्नीतिरेषा दुरत्यया ॥४९॥
अतोऽहङ्कारमूढात्मा लाभायात्र समागतः। कृत्वा युद्धं मया सार्द्धं रुद्रो हानिमवाप्स्यति ॥५०॥
देवर्षे! किं करोम्यत्र दूषणं किं तथाऽस्ति मे। अनिच्छतोऽपि मे युद्धं तेन सार्द्धं भविष्यति ॥५१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

एवमुक्तं वचः श्रुत्वा श्रीपतेर्मधुराक्षरम्। नारदः स्वाञ्जलिं बद्ध्वा सादरं तमभाषत ॥५२॥

श्रीनारद उवाच।

भगवान्! युद्धकालेऽस्मिन्नैषा कार्या विचारणा। पराजितानां भवता हानिर्लाभाय कल्पते ॥५३॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

इत्थं संप्रार्थितो भक्त्या भगवान् भक्तवत्सलः। पार्षदैः संवृतो योद्धुं स रुद्रेण विनिर्ययौ ॥५४॥
तयोः समागमं दृष्ट्वा युद्धसंदत्तचित्तयोः। कौतूहलवशाद्देवास्तत्र मुख्या उपाययुः ॥५५॥
अथ शार्ङ्गधरं दृष्ट्वा रुद्रस्त्रिपुरघातकः। वाणान्ववर्ष कुपितो जलानीन्द्र इवाचले ॥५६॥

उसे सुनकर रमापति मुस्कराकर बोलेः–रुद्रने यह क्या निश्चय कर लिया ॥४८॥

युद्धके लिये उन्हें उपस्थित देखकर अब मुझे भाग जाना भी उचित नहीं है क्योंकि मैं देव-दैत्य दोनोंसे ही अजेय हूँ, इस लिये मुझे उनसे हार मान लेना भी नीति विरुद्ध है।४९॥

एतदर्थ अहङ्कारसे पागल हुई बुद्धि वाले रुद्र देव, बिजय लाभ के लिये यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करने पर पराजय रूपी हानि ही प्राप्त करेंगे ॥५०॥

हे देवर्षे! इस विषयमें अब मैं क्या करूँ? तथा इस उपस्थित परिस्थितिमें मेरा दोष ही क्या है? उनके आजाने पर विना इच्छाके भी मुझे, उनके साथ युद्ध करना ही पड़ेगा ॥५१॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः–हे वत्स श्रीलखनलालजी! श्रीपति भगवानके इन मधुर वचनोंको सुनकर, श्रीनारदजी हाथ जोड़कर उनसे आदर पूर्वक, बोलेः–॥५२॥

हे भगवन्! इस युद्ध के समय आप इस वात्सल्यपूर्ण विचारको छोड़ दीजिये, क्योंकि आप जिन्हें जीत लेते हैं, उनकी पराजय भी दिव्यधाम प्राप्ति का महान् लाभ प्रदान कर देता है ॥५३॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले! हे तात! श्रीनारदजी की प्रेम-पूर्वक की हुई प्रार्थना को सुनकर भक्त-वत्सल भगवान् विष्णु अपने पार्षदोंके सहित श्रीरुद्रजीसे युद्ध करनेके लिये बाहर निकले ॥५४॥

युद्ध में पूर्ण चित्त दिये हुये, श्रीहरि-हरको उपस्थित देखकर आश्चर्यवश हो, वहाँ सभी मुख्य देव-वृन्द उपस्थित हो गये ॥५५॥ तत्पश्चात् त्रिपुर दैत्य का बध करने वाले श्रीरुद्रजी शार्ङ्गधनुषधारी भगवान विष्णुको देखकर क्रुद्ध हो, इस प्रकार उनके ऊपर वाणोंकी वर्षा करने लगे जैसे इन्द्र पर्वत पर जलकी बर्षा कर रहा हो ॥५६॥

वारयित्वा निजैर्बाणैः सलीलं तान्स्मिताननः। मुमोच सायकं दिव्यं पिनाके गरुड़ध्वजः ॥५७॥
तत्स्पर्शादेव भूतेशः सपिनाको हि सत्वरम्। जडत्वमगमद्वत्स ! पश्यतां च दिवौकसाम् ॥५८॥
तदा देवा जगन्नाथमलं युद्धेन ते प्रभो !। प्रार्थयन्त इति श्रीशमब्रुवन्सादरं वचः ॥५९॥

देवा ऊचुः।

भगवन् महती शङ्का निवृत्ता नो दुरत्यया। नातः प्रयोजनं तेऽद्य सङ्ग्रामेण जगत्पते ॥६०॥
चेतनत्वं समायातु पिनाकी त्वत्प्रसादतः। निर्जराणामिमां नाथ ! प्रार्थनां स्वीकुरु प्रभो! ॥६१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

एवमुक्त्वा सुराःसर्वे नमस्कृत्य जगत्प्रभुम्। कृतकृत्येन मनसा प्रागमंस्ते दिवं मुदा ॥६२॥
कृपाकटाक्षमात्रेण चेतनत्वं पुरारये। प्रदाय भगवान् विष्णुर्ऋचीकाय ददौ धनुः ॥६३॥
त्र्यम्बकः प्राप्य चैतन्यं क्षीणवीर्योद्धतस्मयः। महत्या लज्जया युक्तः पपात श्रीशपादयोः ॥६४॥
आश्वास्य तं महादेवं विष्णुः सत्यपराक्रमः। पश्यतां सर्वलोकानामभूदन्तर्हितस्तदा ॥६५॥

उन बाणोंको अपने बाणोंसे खेलपूर्वक हटाकर मन्द मुस्काते हुये, गरुडध्वजाधारी श्रीविष्णु भगवानने अपना एक दिव्य बाण पिनाक धनुष पर छोड़ा ॥५७॥

हे वत्स ! उस वाण का स्पर्श होते ही देवताओंके देखते देखते श्रीरुद्रजी पिनाक धनुषके सहित जड़ अर्थात् चेतना शून्य से हो गये ॥५८॥

तब देवता लक्ष्मीपति जगत्‌के स्वामी श्रीविष्णु भगवान्‌से प्रार्थना करते हुये आदर-पूर्वक इस प्रकार बोले :– "हे प्रभो ! अब युद्ध बहुत हो गया, बन्द कीजिये,बन्द कीजिये ॥५९॥

हे भगवन् ! हे जगत्पते ! इस युद्धसे हम सभीकी वह बहुत बड़ी शङ्का, दूर हो गयी कि जिसका निवारण अत्यन्त कठिन था, इस लिये अब आपको रुद्रजीके साथ युद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रही ॥६०॥

हे नाथ ! हे प्रभो! आपकी कृपासे पिनाक धनुष धारण करनेवाले श्रीभोलेनाथजी चेतनता को प्राप्त हो जावें, हम देवताओंकी इस प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये ॥६१॥

श्रीविश्वामित्रजी बोले:–हे वत्स ! इस प्रकार वे देवता जगत् (चर-अचर मय प्राणियोंके) प्रभु विष्णु भगवान्‌को प्रार्थना पूर्वक नमस्कार करके प्रसन्नताके साथ, कृतकृत्य मनसे स्वर्ग लोक चले गये ॥६२॥ इधर श्रीविष्णु भगवान्‌ने अपनी कृपा-कटाक्ष मात्रसे श्रीभोलेनाथजीको चेतनता प्रदान करके अपना वह शार्ङ्ग, धनुष ऋचीक महाराजको दे दिया ॥६३॥

भगवान्‌की कृपा-कटाक्षसे चेतनताको प्राप्त हुये श्रीभोलेनाथजी अपनी शक्तिके अत्यन्त बढ़े हुई अभिमानसे रहित हो, परम लज्जा पूर्वक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुजीके दोनों श्रीचरण-कमलोंमें पड़ गये ॥६४॥ तब सत्यपराक्रम सम्पन्न श्रीविष्णुभगवान् श्रीमहादेवजीको सान्त्वना प्रदान करके समस्त लोगोंके देखते अन्तर्हित हो गये ॥६५॥

श्रीशिव उवाच ।

येन मे धनुषा युद्धं बभूव विष्णुना सह । तन्नधार्यं मया जातु भक्तिपक्षावलम्बिना ॥६६॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

विचिन्त्येति शिवानाथो देवराताय भूभृते । भक्ताय प्रददौ चापं पिनाकाख्यं वरात्मकम् ॥६७॥
देवरातो महीपालो धनुःपूजनतत्परः । विहाय प्राकृतं देहं हरिलोकमवाप्तवान् ॥६८॥
तस्य राज्ये सदा राज्ञामाधिपत्यजुषामिति । कुलक्रमागतं जातं नियतं चापपूजनम् ॥६९॥
तमेव नियमं प्राप्य पूज्यते शाम्भवं धनुः । अधुनाऽपि विदेहेन भक्तिभावेन सादरम् ॥७०॥
एकदा प्रेषिता मात्रा पाकसंसक्तचित्तया । मार्जनाय धनुर्भूमेः सालिभिर्जनकात्मजा ॥७१॥
देवासुरमहाशूरैरनुत्थाप्यं हि यद्धनुः । तन्ममार्ज यथाकाममुत्थाप्यापञ्चवार्षिकी ॥७२॥
अथ सीरध्वजो राजा धनुःपूजनहेतवे । प्रयाय मन्दिरं दिव्यरोचिष्कं तद्ददर्श सः ॥७३॥
ऋजु संस्थापितं दृष्ट्वा शिवकोदण्डमद्भुतम् । आश्चर्यं परमं गत्वा कथञ्चित् सोऽभ्यपूजयत्॥७४॥

जिस धनुष द्वारा मेरा युद्ध भगवान् विष्णुजीके साथ हो गया उसे कभी मुझे धारण करना उचित नहीं है क्योंकि मैं भक्ति पक्षावलम्बी हूँ ॥६६॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः—हे वत्स लखनलाल ! भगवान् शिवजीने ऐसा विचार करके उस धनुषको अपने भक्त श्रीदेवरातजी महाराजको वरदान रूपमें दे दिया ॥६७॥

श्रीदेवरातजी महाराज उस उनुषके पूजनमें तत्पर हो अपने पाञ्च-भौतिक शरीरको छोड़कर श्रीविष्णु लोक पधारे ॥६८।

उन धर्मात्मा राजाके वंशमें राज्यपद भोगी राजाओंके लिये धनुष पूजनका नियम परम्परागत चलता रहा ॥६९॥

उसी नियमानुसार श्रीविदेहजी महाराज भी भक्ति-भाव समन्वित, आदर-पूर्वक उस धनुषका पूजन करते हैं ॥७०॥ एक दिन रसोईके कार्यमें संलग्न होनेके कारण श्रीसुनयना महारानीजीने अवकाशाभावसे सखियों समेत अपनी राजदुलारीजीको धनुष भूमिकी सफाई करनेके लिये भेजा था ॥७१॥

उस दिन जिस धनुषको देव, राक्षस, महाशूर भी उठानेको समर्थ नहीं थे उसे श्रीजनकदुलारीजीने पाँच वर्षसे भी कमकी अवस्थामें उठाकर, इच्छानुसार सफाईकी ॥७२॥

तदनन्तर जब श्रीसीरध्वज महाराज श्रीधनुषजीका पूजन करनेके लिये उनके मन्दिरमें पधारे तो देखा उसमें दिव्य प्रकाश है ॥७३॥ पुनः भगवान् शिवजीके उस धनुषको सीधा रखा हुआ देखकर श्रीमिथिलेशजी महाराज अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हो, किसी प्रकार पूजाकी ॥७४॥

पुना राज्ञ्या निशम्येति जगामाद्यावनेः सुता । मार्जनार्थं धनुर्भूमेः प्रतिज्ञामिति चाकरोत् ॥७५॥

श्रीजनक उवाच ।

इदं सुमेरुसङ्काशं गौरवे शाम्भवं धनुः । अनयोत्थापितं पुत्र्या नवनीतशरीरया ॥७६॥
अत एव महच्छूरस्त्रैलोक्यविजयी हि सः । पतिर्मे भविता पुत्र्या य एतत्त्रोटयिष्यति ॥७७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

एतदर्थं समाहूता राजानः श्रुतविक्रमाः ।
आगता वलिनां वर्या राजन्ते साम्प्रतं पुरि ॥७८॥
श्व एव मैथिलेन्द्रेण धनुर्भङ्गाय सत्तिथिः ।
तेभ्यो दातुं महीपेभ्यो निदेशं वत्स ! निश्चिता ॥७९॥
यत्तात ! पृष्टं भवता तदीरितं सुखाय ते पुण्यतमं कथानकम् ।
स्वापो विधेयो विगताऽधिका निशा स्वास्थ्याय साकं द्रुतमग्रजन्मना ॥८०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्येवमुक्तौ रघुवंशदीपकौ निपीड्य पादौ तदनूतनाश्रमे ।
राजाधिराजालयमुख्यशायिनौ संवेशमाचक्रतुरन्तिके गुरोः ॥८१॥

पुनः जब श्रीसुनयना महारानीसे यह सुना कि आज धनुष भूमिको स्वच्छ करनेके लिये भूमिकुमारी श्रीललीजी पधारी थीं तब उन्होंने यह प्रतिज्ञाकी ॥७५॥ मक्खनके समान सुकोमल शरीर वाली श्रीललीजीने सुमेरु पर्वतके समान इस भारी शिव-धनुषको उठाया है ॥७६॥

अत एव जो महाशूर इस धनुषको तोड़ेगा, वही त्रिलोकविजयी मेरी श्रीराजदुलारीजीका वर होगा अर्थात् उसके साथ ही मैं अपनी श्रीललीजूका विवाह करूँगा ॥७७॥

श्रीविश्वामित्रजी महाराज बोलेः—हे वत्स ! श्रीलखनलालजी ! इसीलिये श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा बुलाये हुये सभी प्रसिद्ध पराक्रमी, महावलशाली राजा इस समय श्रीमिथिलाजी विराज रहे हैं ॥७८॥

प्रातःकाल ही श्रीमिथिलेशजी महाराजने उन राजाओंको धनुष तोड़नेके हेतु आज्ञा देनेके लिये उत्तम तिथि निश्चितकी है ॥७९॥

हे तात ! आपने जिस पवित्र कथाको मुझसे पूछा था, उसे मैंने आपके सुखार्थ वर्णन किया, अब रात्रि बहुत बीत गयी है, अत एव स्वास्थ्य-रक्षाके लिये अपने बड़े भ्राताजूके समेत आप शीघ्र शयन कीजिये ॥८०॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराज बोलेः—हे कात्यायनी ! गुरुदेवकी आज्ञा पाकर रघुवंशको दीपके समान सुशोभित करने वाले और श्रीचक्रवर्तीजीके प्रधान राज भवनमें शयन करने वाले उन दोनों राजकुमारोंने श्रीगुरुदेवकी चरण सेवा करके उनके समीप पुराने आश्रममें, शयन किया ॥८१॥

तयोरभेदेऽपि हरित्रिनेत्रयोरुपासनीयो हरिरेव मुक्तये ।
प्रसाधितः सत्त्वगुणप्रधानकः सर्वेश्वरेणाद्भुतलीलयाऽनया ॥८२॥

श्रीविष्णु भगवान् और श्रीभोलेनाथजीमें अभेद (समानता) है अर्थात् न श्रीविष्णुभगवान्से श्रीभोलेनाथजी छोटे और न श्रीभोलेनाथजीसे श्रीविष्णु भगवान् बड़े हैं, तथापि जन्ममरणके बन्धनसे छूटनेके लिये प्राणियोंको सत्वगुण प्रधान श्रीभगवान्की ही उपासना करनी चाहिये इसीको सिद्ध करनेके लिये सर्वेश्वर प्रभुने रजोगुण, तमो गुण मयी, यह अद्भुत (आश्चर्यमयी) लीलाकी है ॥८२॥

इति द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ।

भगवान श्रीरामजीके समक्ष श्रीजनकजीके मुखसे "निर्वीर भूमि" श्रवण कर श्रीलखनलालजीकी सरोष वीरोक्ति वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

प्रातः सुमित्रातनयः प्रबुध्य प्राबोधयद्राघवमिन्दुवक्त्रम् ।
तदा स चोत्थाय मुनीन्द्रपादौ निपीडयामास रघुप्रवीरः ॥१॥
विसृष्टनिद्रः कुशिकात्मजस्तं सौमित्रिणा साकमवेक्ष्य रामम् ।
आशीर्वचोभिः प्रणयातिरेकात्सत्कृत्य सद्योऽनिमिषेक्षणोऽभूत् ॥२॥
पुनः समाधाय मनो मुनीन्द्रः प्रभातकृत्याय ददौ निदेशम् ।
ताभ्यामयोध्याधिपपुत्रकाभ्यां स्वयं स्वकृत्याय मतिश्चकार ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! प्रातः काल होने पर सुमित्रानन्दन श्रीलखनलालजी ने जागकर चन्द्रवदन श्रीराघवेन्द्र सरकारको जगाया, रघुकुलको दीपकके समान सुशोभित करने वाले वे श्रीरामभद्रजू उठकर मुनिराज श्रीविश्वामित्रजी महाराजके चरण दबाने लगे ॥१॥

उस चरण-सेवासे निद्रा रहित हो श्रीविश्वामित्रजी महाराजने श्रीलखनलालजीके समेत श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके अपने शुभाशीर्वाद द्वारा उनका सत्कार कर प्रेमकी अधिकतासे तत्क्षण अपने नेत्रोंकी पलकोंका गिराना बन्दकर दिया अर्थात् वे एकटक दर्शन करने लगे ॥२॥

मुनियोंमें श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने अपने मनको सावधान करके दोनों श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंको नित्य नियम करने के लिये आज्ञा प्रदान की और स्वयं भी नित्य-कर्म करने को उद्यत हुये ॥३॥

अथोत्तराह्ले मिथिलामहेन्द्रः संप्रार्थितो ब्रह्मसुतस्य सूनुः ।
गाधेः सुतस्यान्तिकमूरुकीर्त्तेः प्राप्तः शतानन्द उदारतेजाः ॥४॥
श्रीराजराजेन्द्रसुतोत्तमेनाभिवादिताङ्घ्रिः करपङ्कजाभ्याम् ।
तद्दर्शनानन्दनिमग्नचेताः प्रणम्य गाधेयमिदं जगाद ॥५॥

श्रीशतानन्द उवाच ।

कोदण्डयज्ञावसरोऽयमाप्तो ह्यागन्तुकाः सर्व उपस्थिताश्च ।
यज्ञस्थले भूपतिशूरवीरा गर्वान्वितास्ते भगवन् ! प्रमत्ताः ॥६॥
तस्मादहं श्रीमिथिलेश्वरेण संप्रेषितो नेतुमितो भवन्तम् ।
साकं दशस्यन्दननन्दनाभ्यां यज्ञावनिं तेऽन्तिकमागतोऽस्मि ॥७॥
अतस्तु तूर्णं गमनं विधेयं यज्ञस्थले राजकुमारकाभ्याम् ।
मयैव सार्द्धं भवता कृपालो ! तपोधन श्रेष्ठ ! नमो नमस्ते ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तदीरितं वाक्यमिदं निशम्य बाढं समाभाष्य महामुनीन्द्रः ।
राजेन्द्रपुत्रद्वयशोभमानस्तदागमच्चापमखावनिं सः ॥९॥
सा दीप्तसौवर्णसमुच्छ्रितालयैः प्रकाशमाना परितो मनोहरा ।
अनिम्ननिम्नोत्तमपीठपङ्क्तिभिः सुशोभमाना समलङ्कृता मही ॥१०॥

तत्पश्चात् श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थनासे, अत्यन्त तेजस्वी श्रीशतानन्दजी महाराज महायशस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराजके पास आये ॥४॥ चक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजूके करकमलों द्वारा चरणोंमें प्रणाम करने पर श्रीशतानन्दजी महाराज का चित्त उनके दर्शन जनित आनन्द में डूब गया, पुनः सावधान होकर वे गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजी महाराजसे बोलेः– ॥५॥

हे भगवन् ! अब धनुष-यज्ञका समय उपस्थित है, अत एव अभिमानी, मतवाले सभी आगन्तुक शूरवीर राजा भी उस यज्ञस्थलीमें उपस्थित हो चुके हैं ॥६॥

इस लिये श्रीमिथिलेशजी महाराजका भेजा हुआ मैं दोनों श्रीदशरथ नन्दनोंके समेत आपको यहाँसे यज्ञभूमि ले जानेके लिये आया हूँ ॥७॥

हे तपोधनों में श्रेष्ठ ! हे कृपालो ! इस लिये आप मेरे साथ दोनों राजकुमारों के सहित यज्ञस्थली में शीघ्र पधारिये, मेरा आपको बारम्बार नमस्कार है ॥८॥

ब्रह्मकी महिमाका मनन करने वालोंमें श्रेष्ठ, श्रीविश्वामित्रजी महाराज उनकी इस प्रार्थनाको सुनकर "बहुत अच्छा" कह कर दोनों श्रीचक्रवर्तीकुमारोंसे सुशोभित होते हुये वे धनुष यज्ञ-भूमि में पधारे ॥९॥ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने देखा, कि वह भूमि, पूर्ण सुसज्जित चमकते सुवर्णके समान अत्यन्त ऊँचे महलों द्वारा चारो ओरसे प्रकाशित हो मनको हरण कर रही है, उसमें उत्तम सिंहासनोंकी ऊँची-नीची पङ्क्तियाँ चारोओर सुशोभित हैं ॥१०॥

शूरैश्च वीरैः क्षितिमण्डलेशैर्नारीनरैर्दर्शनसाभिलाषैः ।
समाकुला रूपरतिस्मराभैः समन्ततोऽदृश्यत कौशिकेन ॥११॥

सर्वोत्तमे तुङ्गसुवर्णमञ्चे मध्ये नृपाधीशकुमारयोश्च ।
श्रीकौशिकं तत्र समादरेण विराजयामास गुरुर्नृपस्य ॥१२॥

यथोडुवृन्दे रजनीकराभ्यां वियत्तलं राजकुमारकाभ्याम् ।
तथा परीता मखभूमिका सा भूपालवर्यैः सुभृशं रराज ॥१३॥

तदाऽऽज्ञया वन्दिवरोऽखिलेभ्यः कृतप्रणामो नृपतेः प्रतिज्ञाम् ।
निवेदयामास मनोज्ञवाचा श्रीरामचन्द्रास्यचकोरदृष्टिः ॥१४॥

श्रीवन्द्युवाच ।

हे भूपवर्या बलिनां वरिष्ठा ! नानाप्रदेशाधिनिवासिनश्च ।
शृण्वन्तु सर्वे खलु दत्तचित्ता यदर्थमत्रागमनं शुभं वः ॥१५॥

समुत्थपाणिर्मिथिलेश्वरस्य प्रतिश्रुतं वच्मि कृतं पुरा यत् ।
ज्ञात्वा समुत्थापितमीशचापमपञ्चवर्षान्वितया स्वपुत्र्या ॥१६॥

शूर, वीर राजा और दर्शनाभिलाषी; रति-कामके समान अत्यन्त सुन्दर स्त्री-पुरुषोंसे (वह धनुष-यज्ञ-भूमि) सब ओरसे खचा-खच भरी है ॥११॥

वहाँ श्रीविदेह महाराजके गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराजने आदर पूर्वक श्रीविश्वामित्रजी महाराजको सबसे उत्तम तथा ऊँचे सुवर्णके सिंहासन पर, श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजी तथा श्रीलखनलालजीके बीचमें विराजमान किया ॥१२॥

जैसे तारागणों सहित दो चन्द्रमाओंसे आकाश सुशोभित हो, उसी प्रकार राजाओंके सहित उन दोनों चक्रवर्ती कुमारोंसे, वह यज्ञभूमि अत्यन्त ही शोभाको प्राप्त हुई ॥१३॥

उस समय आज्ञापाकर बन्दीश्रेष्ठ प्रणाम करके श्रीरामभद्रजूके मुख रूप चन्द्रमा पर अपने नेत्ररूपी चकोरोंको आसक्त किये हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रतिज्ञाको अपनी मनोहर वाणी द्वारा सभीसे निवेदन करने लगे ॥१४॥

हे अनेक देशोंमें निवास करने वाले बलवानोंमें श्रेष्ठ, उत्तम राजाओ ! आप लोगोंने जिस कारण यहाँ आनेका कष्ट किया है, उसे एकाग्र-चित्तसे श्रवण कीजिये ॥१५॥

पाँच वर्षसे कम अवस्थावाली अपनी श्रीराजदुलारीजीके द्वारा भगवान् शिवजीके धनुषको उठाया हुआ जानकर, श्रीमिथिलेशजी-महाराजने पूर्वमें जो प्रतिज्ञाकी थी उसे मैं हाथ उठा कर वर्णन करता हूँ ॥१६॥

श्रीमिथिलेश उवाच ।

इदं महेशस्य धनुस्त्रिलोक्यामुत्थाप्य यस्त्रोटयितुं समर्थः ।
तेनैव पाणिर्मम पुत्रिकाया ग्राह्यस्त्रिलोकीविजयेन साकम् ॥१७॥

श्रीबन्द्युवाच ।

तदर्थसिद्ध्यै मिथिलाधिपेन धनुर्मखोऽयं समभीप्सितो हि ।
यं द्रष्टुकामाः सकला भवन्तोऽत्रोपस्थितास्तेन निमन्त्रिता वै ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य बलोन्मदान्धाः कोलाहलं भूपतयः प्रचक्रुः ।
छेत्स्याम्यहं चापमिमं किलेति पाणिं ग्रहीष्यामि विदेहपुत्र्याः ॥१९॥
इत्थं लपन्तः प्रणिपत्य देवान् स्वेष्टान् क्रमाद्भूपतयो मदान्धाः ।
उत्थाय गत्वाऽऽजगवान्तिकं ते चक्रुस्तदुत्थापनपूर्णयत्नम् ॥२०॥
यदा कथञ्चिन्न चचाल चापः केनापि शूरेण महीश्वरेण ।
तदा मिलित्वा बलिनो नरेन्द्रा उत्थापनार्थं युगपत् प्रवृत्ताः ॥२१॥
धनुस्तदानीं ववृधेऽभितस्तद्धृत्यै तावदुर्वीपतयश्च सर्वे ।
शूरा मिलित्वा युगपद्गृहीत्वा ह्युत्थापनार्थं स्म सुखं यतन्ते ॥२२॥

श्रीमिथिलेशजी-महाराज बोलेः—तीनों लोकोंमें जो भगवान् शिवजीके इस धनुषको उठाकर दो खण्ड कर देगा, उसे ही त्रिलोकीकी विजयश्रीके सहित हमारी श्रीललीजीके कर-कमलको ग्रहण करनेका अधिकार प्राप्त होगा ॥१७॥

बन्दी (भाट) बोलाः—हे राजाओ ! अपनी श्रीललीजीके पाणिग्रहण (विवाह) की सिद्धि के लिये ही श्रीमिथिलेशजी-महाराजको धनुषयज्ञ करनेकी इच्छा हुई, जिसको देखनेके लिये आप लोग उनसे निमन्त्रित हो, यहाँ उपस्थित हैं ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! बन्दी मुखसे इतना सुनते ही, बलके अभिमानसे अन्धे हुये राजा लोग "मैं धनुष तोड़ूंगा, मैं अवश्य भूमि कुमारी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी का पाणिग्रहण करूँगा" इस प्रकार कोलाहल करने लगे ॥१९॥

ऐसा कहते हुये वे अभिमानी राजा अपने-अपने इष्टदेवोंको प्रणाम करके क्रमशः उठकर भगवान् शिवजीके उस धनुषके पास जाकर उसके उठानेके लिये पूर्ण प्रयत्न करने लगे ॥२०॥

जब कोई भी शूरवीर राजा उस धनुषको हिला भी न सका, तब वे बलशाली राजा एक साथ मिलकर उस धनुषके उठानेका प्रयत्न करने लगे ॥२१॥

उस समय धनुष भी इतनी मात्रामें बढ़ गया, जिससे सभी राजाओंने उसको सुखपूर्वक एक साथ पकड़कर उठानेका यत्न प्रारम्भ किया ॥२२॥

तन्नोदतिष्ठच्चिकुरैकमात्रं तथाऽपि भूपालमदक्षयाय।
नष्टश्रियः केचिदपास्तसंज्ञा भूपा निपेतुस्तत एव भूमौ ॥२३॥
तर्ह्यागतौ चापमखं निशम्य यदृच्छया वाणदशाननौ च।
ज्ञात्वा प्रतिज्ञां मिथिलाधिपस्य प्रावर्ततोत्थापयितुं दशास्यः ॥२४॥
निषिद्ध्यमानो ऽपि बलोन्मदान्धो बाणासुरेणासुरराजराजः।
चापे प्रसक्तं करमावियुज्य नैवोत्थितेऽगात्स्वपुरं सलज्जः ॥२५॥
श्रीमैथिलेन्द्रस्तदवेक्ष्य भूपानुवाच शोकश्लथनिःस्वनेन।
उत्थाय सम्बोध्य सचिन्तचित्तश्चूर्णस्मया ! मे शृणुतोक्तिमेताम् ॥२६॥
नाना प्रदेशाधिनिवासिनश्च वीर्य्याभिमत्ता जगति प्रसिद्धाः।
यूयं सुताया मम चोरुकीर्त्तेर्लाभप्रलोभात्पुरमागता मे ॥२७॥
श्रुता प्रतिज्ञा विहिता मया या भवद्भिरेकाग्रहृदा कठोरा।
पाणिग्रहार्थं क्षितिसम्भवायाः सकारणा बन्दिवरोदिता वै ॥२८॥
छित्वा धनू राजसुतां वरिष्ये वदन्त एवं क्रमशश्च यूयम्।
उत्क्रम्य चोत्क्रम्य गृहीतचापा दृष्टा मया मोघपराक्रमा हि ॥२९॥

किन्तु वह धनुष राजाओंके बलका अभिमान नष्ट करनेके लिये पृथ्वीसे एक बालमात्र भी न उठ सका, इसलिये वे राजा श्रीहीन हो गये, कुछ मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पड़े ॥२३॥

उसी समय धनुष-यज्ञका समाचार सुनकर बाणासुर तथा दशमुख रावण, ये दोनों भी वहाँ आगये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रतिज्ञा सुनकर बाणासुरके मना करने पर भी राक्षसोंका सम्राट् रावण उस धनुषको उठाने का प्रयत्न करने लगा, इससे उसका हाथ उसीमें चिपक गया, फिर भी जब धनुष न उठ सका, तब वह किसी प्रकार अपने हाथको छुड़ाकर, लज्जित हो अपनी लङ्कापुरीको चला गया ॥२४॥२५॥

ऐसा देखकर चिन्तित चित्तहो श्रीमिथिलेशजी महाराज उठकर थरथराती हुई बोलीमें सभी राजाओंको सम्बोधित करके बोलेः-हे निरस्त अभिमानियो! मेरे इस कथनको सुनो ॥२६॥

आप लोग अनेक देशवासी पृथिवीतल पर प्रसिद्ध बलाभिमानी हैं, मेरी महायशस्विनी श्रीराजदुलारीजूके लाभके महान् लोभसे ही मेरी श्रीमिथिला पुरीमें आये हैं ॥२७॥

भूमिसे प्रकट हुई अपनी श्रीराजकुमारीजीके विवाहके लिये जो मैंने कठोर प्रतिज्ञाकी है और जिस कारणसे की है, उसे भी आप लोगोंने बन्दीके मुखसे एकाग्र चित्तसे श्रवण किया है ॥२८॥ "मैं धनुष तोड़कर राजकुमारीको वरण करूँगा" इस प्रकार कथनी कथते हुये उछल-उछल कर आप लोगोंने क्रमशः धनुषको पकड़ा, किन्तु मैंने देख लिया, आप लोगोंका पराक्रम सब व्यर्थ हुवा ॥२९॥

अद्य प्रभृत्यात्मबलाभिमानं करोतु मा कश्चिदिहासुधारी ।
निर्वीरमेतद्भुवनत्रयं हि ज्ञातं मया शम्भुधनुःप्रसादात् ॥३०॥
इदं पुरा चेद्विदितं मया स्यात्कृता प्रतिज्ञेति तदैव न स्यात् ।
यस्या निमित्तं मम राजपुत्री शश्वत्कुमारी प्रभविव्यवन्याम् ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वा वाक्यमिदं विदेहभणितं रोषान्वितो लक्ष्मणः
प्रोत्थायाशु पदारविन्दयुगलं भ्रातुः प्रणम्यादरात् ।
श्रीरामं नियताञ्जलिः क्षितिभृतामाशृण्वतां तिष्ठतां
वाचं प्रोच इमां महीं च दिगिभान् सञ्चालयन्वीरराट् ॥३२॥

श्रीलक्ष्मण उवाच ।

हा हा नाथ ! समस्तभूमिपतयः शूरा महाविक्रमा
राजन्ते खलु यत्र तत्र समितौ केनाप्यभाष्यं वचः ।
हन्तायं समवोचदद्य सहसा स्वैरं भवन्तं प्रभो !
ज्ञात्वा श्रीमिथिलेश्वरो रघुकुलोत्तंसं स्थितं सानुजम् ॥३३॥

आज भगवान् शिवजीके धनुषकी कृपासे मुझे ज्ञात हो गया, कि यह त्रिलोकी (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल) वीरोंसे शून्य है अर्थात् तीनों लोकोंमें अब कोई वीर रह ही नहीं गया, इस हेतु आजसे अब कोई भी प्राणी अपने बलका अभिमान न करे ॥३०॥

यदि मुझे यह पहिले ज्ञात होता, कि अब तीनों लोकोंमें कोई वीर है ही नहीं, तो इस प्रकारकी मैं कठोर प्रतिज्ञा न करता, जिसके परिणाममें मेरी श्रीललीजीको इस पृथिवी पर सदाके लिये अविवाहिता ही रहना पड़ेगा ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके कहे हुये इन वचनोंको सुनकर वीरचक्रवर्तीकुमार श्रीलखनलालजीको रोष आ गया अतः वे तुरन्त उठकर अपने भ्राता श्रीरामभद्रजूके दोनों श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर, उपस्थित राजाओंके सुनते, पृथ्वी पर दिग्गजोंको कम्पायमान करते हुये उनसे आदर-पूर्वक बोले ॥३२॥

हे नाथ! बड़े दुःखकी बात है जिस स्थान पर महापराक्रमी शूरवीर समस्त राजा विराजमान हैं, उस सभामें छोटे भाईके सहित, आप रघुकुल भूषणको उपस्थित जानकर भी, जो बात किसी के भी कहने योग्य न थी, उसे इन मिथिलेश महाराजने स्वच्छन्दता पूर्वक कह डाली ॥३३॥

भिन्द्यां मूलकसन्निभं गिरिवरं ब्रह्माण्डकुम्भं तथा
खेलन् वामकरे निधाय सुचिरं संस्फोटयाम्यञ्जसा ।
एतन्नाथ ! कियत्तवैव कृपया जीर्णं पुराणं धनु-
र्देह्याज्ञां हि मृणालवद्द्रुतमहं छेत्स्यामि दासस्तव ॥३४॥

नोचेन्नैव शरासनं रघुपते ! गृह्णाम्यहं कर्हिचित्
सत्यं वच्मि विधाय नाथ शपथं त्वत्पादपाथोजयोः ।
प्रत्यक्षं खलु दर्शयामि मिथिलानाथाय लोकत्रयं
निर्वीरं न सवीरवर्यमिति ते छित्वा धनुश्च द्रुचिः ॥३५॥

लोकाः कौतुकमेतदेव विहितं पश्यन्तु सर्वे मया
रामस्यानुचरेण नो रघुपतेरर्हा जना वीक्षितुम् ।
वीर्यं चाद्भुतविक्रमं निरुपमं ब्रह्माण्डवृन्देशितु-
र्दुर्दृश्यं द्रुहिणादिदेवनिवहैः स्वल्पायुषां का कथा ॥३६॥

हे नाथ ! आपकी कृपासे मैं हिमालय पर्वतको मूलीके समान तोड़ सकता हूँ और ब्रह्माण्ड
को घड़ेके समान अपने बायें हाथ पर रखकर बहुत समय तक खेलता हुआ बिना किसी परिश्रम
के फोड़ सकता हूँ, फिर यह पुराना जीर्ण (गला हुआ) धनुष किस गिनती में है ? मैं आपका
दास हूँ, आज्ञा दीजिये, कमलकी दण्डीके समान मैं इसे तत्क्षण तोड़ डालूँ ॥३४॥

हे नाथ ! मैं आपके श्रीचरणकमलोंकी शपथ खाकर सत्य कहता हूँ, यदि मैं ऐसा न कर
सकूँ, तो फिर कभी भी मैं धनुष धारण नहीं करूँगा। हे रघुकुलके स्वामी ! यदि आपकी
प्रसन्नता हो, तो मैं इस धनुषको तोड़कर श्रीमिथिलेशजी महाराजको दिखला दूँ, कि यह त्रिलोकी
वीरोंसे शून्य नहीं अपितु वीरश्रेष्ठसे युक्त है ॥३५॥

आज श्रीरामभद्रजूके मुझ अनुचरमात्रका किया हुआ यह खेल सभी लोग देखें, क्योंकि वे
अनन्त ब्रह्माण्ड-नायक भगवान् श्रीरामजीके अद्भुत पराक्रम और बलको देखनेके अधिकारी ही
नहीं हैं, कारण उसका दर्शन तो ब्रह्मादि देव-समूहोंके लिये भी कष्टसाध्य है, फिर अल्पायु
मनुष्योंके लिये कहना ही क्या ? ॥३६॥

इति त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

—❀❀❀—

अथ चतुर्णवतितमोऽध्यायः ।

धनुष टूटने पर श्रीसुनयना अम्बाजीकी आज्ञासे श्रीकिशोरीजीके
द्वारा श्रीराघवेन्द्रजीके गले में जयमाल्य समर्पण ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति बचस्तु निशम्य तदीरितं द्रुतमवारयदङ्ग मृदुस्मितः ।
रघुपतिर्नयनेङ्गितमात्रतो रिपुनिषूदनपूर्वजमानतम् ॥१॥

अथ महर्षिवरेण रघूत्तमो मधुरया परयेति गिरोदितः ।
त्वमिह वत्स ! महेशशरासनं मम निदेशत आशु विभञ्जय ॥२॥

जनकतापमपाकुरु सत्वरं सुकृतिमज्जनतामुदमावहन् ।
हरधनुः परिभज्य शिवोऽस्तु ते जनकजाकरमाल्यमुरीकुरु ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति निदेशभरेण नतेक्षणः कुशिकजस्य विधाय मुहुर्नतीः ।
चरणयोर्मृगराजगतिर्ब्रजन् निखिलचित्तहरो रघुनन्दनः ॥४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे प्रिये! श्रीलखनलालजीके इन वीर रसयुक्त वचनोंको सुनकर मधुर मुस्कान युक्त, रघुकुलके स्वामी श्रीराघवेन्द्र-सरकारजूने सिर झुकाये हुये शत्रुघ्नलालजीके बड़े भ्राता श्रीलखनलालजीको अपने नेत्रोंके इशारे द्वाराधनुष तोड़नेसे मना किया, क्योंकि दयालु सरकारने विचारा 'श्रीजनकजी-महाराजकी यह प्रतिज्ञा है, कि जो कोई इस धनुषको तोड़ेगा उसीके साथ मैं अपनी श्रीराजकुमारीजूका विवाह करूँगा', सो ये लखनलालजी उन जगज्जननी तथा अपनी स्वामिनीजूके साथ किस प्रकार विवाह कर सकेंगे ? लोग भी हँसी करेंगे कि बड़े भाईके रहते हुये लखनलालजीने अपने विवाहके लोभसे धनुष तोड़ डाला । अतः इनका धनुष तोड़ना घोर पश्चात्तापका कारण बन जायगा, रोषके आवेशमें इन्हें परिणामका ध्यान नहीं है, अतः तोड़नेको मना किया । श्रीलखनलालजी तत्सुख-प्रधान एवं परम आज्ञाकारी हैं यह सिद्ध करनेके लिये उन्हें नेत्रोंके सङ्केतसे मना किया ॥१॥

तदनन्तर महर्षियोंमें श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने, अपनी परम मधुर-वाणीके द्वारा श्रीरघुकुलोत्तम श्रीरामसरकारजीको आज्ञा दी:–हे वत्स ! मेरी आज्ञासे शिवधनुषको अब शीघ्र तोड़ डालिये ॥२॥ हे वत्स ! आपका कल्याण हो । आप भगवान् शिवजीके धनुषको तोड़कर श्रीजनकजी महाराजके हृदय सन्तापको दूर करें तथा पुण्यशाली जनताको आनन्दित करते हुए श्रीजनकराजदुलारीजूके कर-कमलोंकी जयमाल स्वीकार कीजिये ॥३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे प्रिये ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजके इस आज्ञाभारसे नतदृष्टि हो, श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने उनके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम करके सिंहके समान मतवाली चाल से धनुषकी ओर चलते हुये, सभीके चित्तको चुरा लिया ॥४॥

शूरैः शूरतमो नृपैः कुमतिभिः कालस्तदा सज्जनै-
रिष्टो वत्सतरः सभार्यमिथिलानाथेन चोद्वीक्षितः।
विद्विद्भिश्च विराडनङ्गसुभगः स्त्रीभिर्वरः सीतया
सर्वेषामिति वै निसर्गमधुरो रामो हि भावानुगः ॥५॥
तमवलोक्य पिनाकसमीपगं सुनयना मिथिलाधिपवल्लभा।
कमलकोमलकान्तकलेवरं द्रुतमसौ प्रबभूव सुविह्वला ॥६॥
धृतिमवाप्य जगाद सुदर्शनां परमविज्ञतमां श्लथया गिरा।
विधिरहो प्रतिकूल उदीक्ष्यते दुहितरीति ममेह महीभुवि ॥७॥
यत इमं सुमकोमलविग्रहं सखि! न कोऽपि निवारयति प्रियम्।
हरकठोरशरासनभञ्जनान्मतिरभूत्सुधियामपि कुण्ठिता ॥८॥
अपि नृपो जडतावशमागतः पणमुपेक्ष्य सुतेन नृपेशितुः।
परिणयं न करोति हितावहं दुहितुरालि! महाछबिबारिधेः ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इति निगद्य विवर्जितसञ्ज्ञकां समवदत्प्रतिबोध्य सुदर्शना।
शृणु समाश्रुतमेव वदामि ते धृतिमती मिथिलाधिपवल्लभे ॥१०॥

उस समय सहज मनहरण श्रीरघुनन्दन प्यारेजू शूर राजाओंको शूरशिरोमणि, पापवुद्धि राजाओंको काल, सज्जनोंको इष्टदेव, महारानी श्रीसुनयनाजीके समेत श्रीमिथिलेशजी महाराज को अत्यन्त शिशु, ज्ञानियोंको विराट्, स्त्रियोंको काम देवसे बढ़कर अत्यन्त सुन्दर और श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजी को दूलह रूप में, दिखाई दिये। इस प्रकार श्रीरामभद्रजूने सभीको उनके भावानुसार तत्तद् रूपसे दर्शन प्रदान किये ॥५॥

कमलके समान कोमल मनोहर अङ्गों वाले उन श्रीरामभद्रजूको धनुषके समीपमें उपस्थित हुये देखकर, श्रीमिथिलेशबल्लभा श्रीसुनयना महारानीजी तुरन्त अत्यन्त व्याकुल हो उठीं॥६॥

पुनः धैर्यको प्राप्त हो वे परम चतुरा श्रीसुदर्शना महारानीके प्रति शिथिल(गद्‌गद)वाणीसे बोलीं:-हे बहिन! भूमिसे प्रकट हुई हमारी श्रीललीजीके प्रति विधाता प्रतिकूल प्रतीत होरहाहै७

जो सुमनके समान कोमल अङ्गोंवाले इन श्रीरामभद्रजूको भगवान् शिवजीके इस बज्र, कठोर धनुषको तोड़नेसे कोई भी बरजता नहींहै हे सखी! बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी कुण्ठित होगयी है ॥८॥

हे सखी! राजा भी अज्ञानतामें पड़े हैं, जो प्रतिज्ञाकी उपेक्षा करके महाछबिसागरा श्रीलली-जूका हितकर विवाह इन श्रीचक्रवर्तीकुमारजूके साथ कर नहीं देते हैं ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये! ऐसा कहकर जब श्रीसुनयना महारानी मूर्च्छित हो गयीं, तब उनको सावधान करके श्रीसुदर्शनाजी बोलीं:-हे श्रीमिथिलाधिपवल्लभे! आप धैर्य धारण कर सुनें, मैंने जो सुना है, आपसे कहती हूँ ॥१०॥

मुनिमखं समवता सुबाहुको युधि हतोऽब्धिपुलिने निपातितः ।
रघुवरेण खलु ताटकासुतो निजशरेण तदमृत्युमिच्छता ॥११॥
अमितविक्रम उदारसद्यशाः पदसमुद्धृतमुनीश्वरप्रियः ।
मधुर एष निजदर्शनेन वै न तु बलेन भुवि पौरुषेण च ॥१२॥
अपि यथा प्रथित एकवर्णको लघुतमः प्रणवसञ्ज्ञको मनुः ।
शिवविरिञ्चिहरिवासवादयः सुमुखि ! सर्व इह तद्वशं गताः ॥१३॥
मिहिरविम्ब उत भाति पश्यतां लघुतरस्तु हरते जगत्तमः ।
वुधजनेन न तु तेजसाऽन्वितो लघुरतोऽब्जनयने हि गण्यते ॥१४॥
धनुरिदं सपदि खण्डयिष्यति त्वरितमेव रविवंशभास्करः ।
वरयिता च तनयां तवप्रियां ध्रुवमतो न कुरु चात्र संशयम् ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति वचोभिरथ हेतुदर्शकैः सुनयना जनकराजवल्लभा ।
धृतिमवाप परिबोधिता तया सुकृतशालिवरकीर्त्यसौभगा ॥१६॥

इन श्रीरघुवरप्यारेजूने श्रीविश्वामित्रजीकी यज्ञ रक्षा करते समय युद्धमें सुबाहु राक्षसको मारा और मृत्युकी इच्छा न करके मारीच राक्षसको अपने वाणसे समुद्रके किनारे फेंक दिया ॥११॥ पुनः मुनीश्वरगोतमकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीका अपने चरणस्पर्श से उद्धार किया, अत एव इनका पवित्र यश सर्वोत्तम तथा पराक्रम अनन्त है, केवल देखनेमें ही ये मधुर अर्थात् सुकुमार हैं, पर बल-पराक्रममें मधुर नही हैं ॥१२॥

हे श्रीसुमुखीजू ! जैसे एक वर्णका प्रसिद्ध प्रणव मन्त्र ॐ सबसे छोटा है, किन्तु ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि सभी देवगण उसके अधीन हैं अर्थात् उस परम छोटे मन्त्र ॐ के द्वारा इन सभी देवताओंको वशमें किया जा सकता है, यह शक्तिकी महिमा है, रूपकी नहीं ॥१३॥

इसी प्रकार सूर्यका घेरा, देखनेवालोंको अत्यन्त छोटा प्रतीत होता है, किन्तु वह समस्त जगत्का अन्धकार दूर कर देता है। हे कमलनयने इसलिये बुद्धिमान (विचार शील) लोग तेजस्वीको कभी छोटा नहीं मानते ॥१४॥

इसलिये यह निश्चय है, कि सूर्यवंशको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले ये श्रीरामभद्रजू अब तुरन्त ही धनुषको तोड़ेंगे, और भूमिसे प्रकट हुई आपकी श्रीराजदुलारीजूको वरण करेंगे, इस विषयमें आप कुछ भी सन्देह न करें ॥१५॥ श्रीसुदर्शनामहारानीजूके प्रमाण युक्त इन वचनों द्वारा समझाने पर, पुण्य शालियोंके द्वारा कीर्त्तन करने योग्य महान् सौभाग्य सम्पन्ना श्रीजनकजी महाराजकी महारानी श्रीसुनयनाजीने धीरजको प्राप्त किया ॥१६॥

उपगतं तमरविन्दलोचनं धनुरवेक्ष्य मिथिलेशनन्दिनी।
मृदुतमाङ्गमतिकान्तदर्शनं सजलकञ्जनयनेत्यचिन्तयत् ॥१७॥

कुलिशसारकठोरमिदं धनुः कमलकोमलकायवता विधे।
कथमनेन विभज्यमहो भवेत्पितुरयं पण एव सुदारुणः ॥१८॥

व्रजतु चापमिदं सुमलाघवं नृपकुमारककञ्जकरान्वितम्।
हरिहरद्रुहिणेन्द्रगजाननप्रभृतयोऽस्य भवन्तु सहायकाः ॥१९॥

पुनरभूदतिदुस्तरचिन्तया जनकजा भृशविह्वलमानसा।
तदवगम्य मनोहरदर्शनो धनुषि दृष्टिमदाद्रघुसत्तमः ॥२०॥

तद्दृष्ट्वोन्नतपाणिपद्मयुगलः संबोधयँल्लक्ष्मणः
प्रोवाचेति फणीन्द्रनागकमठान् युष्मद्भिराज्ञा मम।
सश्रद्धैर्नियतात्मभिः क्षितिधरैः सर्वैरियं श्रूयतां
सद्यः सन्तु समाहितेन मनसा यूयं स्वकार्योद्यताः ॥२१॥

परम मनोहर दर्शन तथा अत्यन्त कोमल अङ्गों वाले उन कमलदललोचन श्रीरामभद्रजीको धनुषके समीपमें उपस्थित हुये देखकर श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू माधुर्य भावावेशसे अपने कमलवत् नेत्रोंमें जल भरकर चिन्ता करने लगीं ॥१७॥

हे विधाता ! कहाँ तो बज्र सारके समान अत्यन्त कठोर यह धनुष ? और कहाँ कमलके समान अत्यन्त सुकुमार अङ्गों वाले ये राजकुमार ? भला इनसे यह धनुष कैसे टूट सकेगा ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं अतः पिताजीका यह प्रण बहुत ही कष्ट कारक है ॥१८॥

यह धनुष, श्रीराजकुमारजीके करकमलका योग पाते ही पुष्पके समान अत्यन्त हलका हो जाय और इसे तोड़नेमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुरेश, गणेश आदिक सभी देवगण इन श्रीराजकुमारजीकी सहायता करें ॥१९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनी ! इसके पश्चात् दुस्तर चिन्ताके कारण श्रीजनकराजदुलारीजीका मन अत्यन्त विह्वल हो उठा, इस बातको जानकर श्रीराघवेन्द्रसरकारजूने अपने मनोहर दर्शनसे उनके चिन्तित मनको हरण करके, अपनी दृष्टि उस धनुष पर डाली ॥२०॥

यह देखकर श्रीलखनलालजी अपने दोनों कर-कमलोंको उठाकर, शेष, दिग्गज और कच्छपको सम्बोधित करके बोलेः—हे शेष ! हे दिग्गजो ! हे कच्छप ! आप लोग पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं अतः सभी मेरी इस आज्ञाको दत्तचित्त होकर सुनें और अपने-अपने भूमि रक्षण कार्यमें तत्क्षण श्रद्धा-पूर्वक अत्यन्त सावधान मनसे उद्यत हो जाइये ॥२१॥

श्रीरामो जगदीश्वरो हरधनुर्लब्ध्वा निदेशं गुरो-
भंक्तुं दत्तमनाः कृपार्द्रहृदयस्तस्यान्तिकं चाययौ।
भूमिं तत्तु रसातलाभिगमनाद्यूयं प्रयत्नान्विता
रुन्ध्वन्त्वद्य बलेन विश्वमखिलं यायाल्लयं नो यतः ॥२२॥
पृथ्वीं वीक्ष्य सुरक्षितां क्षितिधरैरव्यग्रचित्तैस्तदा
निर्देशादनुजस्य भूरियशसः सीतां तथा व्याकुलाम्।
शैवश्चापमथाब्जदण्डसदृशं ह्युत्थाप्य रङ्गाजिरे
सर्वोपस्थितदेहिनां सुकुतुकं रामेण चोत्पादितम् ॥२३॥
राज्ञां दर्पमपाहरन् नरपतेः सन्तापमुन्मूलयन्
राज्ञ्याः शर्म विवर्धयन् सुकृतिनां चेतस्ततो ह्लादयन्।
वैदेहीविरहानलं प्रशमयन् ध्यानं हरञ्छूलिन-
स्त्रैलोक्यं परिकम्पयन् हरधनू रामो बभञ्जाञ्जसा ॥२४॥
मातुस्तर्हि निदेशमेत्य सुखदं मोदाब्धिमग्नात्मभिः
स्वालीभिर्जनकात्मजा धरणिजा रामान्तिकं प्रापिता।
आपादाब्जशिरोविभूषणवरालङ्कारसंशोभिता
दृष्ट्वा रूपमलौकिकं च मुमुहुस्तत्सर्वदेहिव्रजाः ॥२५॥

क्योंकि गुरुदेवकी आज्ञा पाकर जगत्पति भगवान् श्रीरामजी, कृपासे द्रवित नेत्र हो शिव धनुषको तोड़नेकानिश्चय करके उसके पासमें आगये हैं, इसलिये आप लोग बलपूर्वक पूर्णप्रयत्नके साथ इस पृथ्वीको रसातल जानेसे थाम लीजिये, जिससे आज यह समस्त विश्व लयको न प्राप्त हो जाय ॥२२॥ तब महायशस्वी भ्राता श्रीलखनलालजीकी आज्ञासे पृथ्वीको धारण करने वाले स्थिर चित्त शेष कच्छप, तथा दिग्गजोंके द्वारा भूमिको सुरक्षित एवं श्रीजनकराजदुलारीजी को व्याकुल देखकर, भगवान् श्रीरामजीने कमलनालके समान अनायास उस शिव-धनुषको उठा कर, रङ्गभूमिमें उपस्थित सभी जनताके लिये सुन्दर कौतुक प्रकट कर दिया ॥२३॥

उसके अन्तर्गत राजाओंके बलाभिमानको हरण करते तथा श्रीमिथिलेशजी महाराजके सन्तापको जड़से उखाड़ते, श्रीसुनयनामहारानीके आनन्दको विशेष बढ़ाते, पुण्यात्माओंके चित्त को आह्लादित करते तथा श्रीविदेहराजनन्दिनीजूकी विरहाग्निको पूर्ण शान्त करते तथा भगवान् शिवजीका ध्यान तोड़ते एवं त्रिलोकीको थरथराते हुये भगवान् श्रीरामजीने अनायास ही उस शिव-धनुषको तोड़ डाला ॥२४॥ तब श्रीसुनयनाअम्बाजीकी सुखद, आज्ञाको पाकर आनन्दसागर में निमग्न मनवाली सुन्दरी सखियाँ श्रीचरणकमलोंसे लेकर शिखा-पर्यन्तके सर्वोत्तम शृङ्गारसे पूर्ण सुशोभित, अवनिकुमारी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको श्रीरामभद्रप्यारेजूके समीपमें ले गयीं। उनके उस अलौकिक दिव्य धामोचित स्वरूपका दर्शन करके सभी देहधारी चकित हो गये ॥२५॥
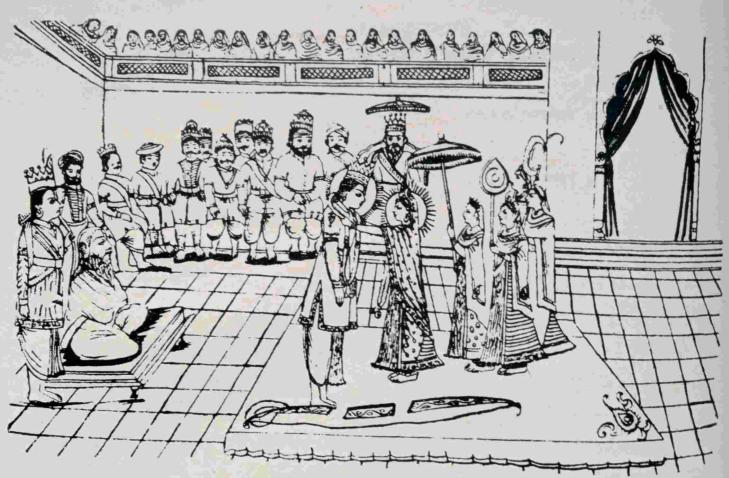
धनुष टूटने पर सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी गुरुजनोंकी आज्ञानुसार सखियोंके साथ आकर, प्यारे श्रीरामभद्रजूके गलेमें जयमाल पहिना रही हैं।

नेमुस्तां सुधियः कृतार्थहृदया लोकाभिरामाकृतिं ।
प्रेक्ष्य श्रीरघुनन्दनोऽपि समभूत्पूर्णाभिलाषः स्वराट् ।
ऊचुस्तामिति पद्मपत्रनयनाः प्रेम्णा प्रणम्यादरात्
सख्यःसानुनयं गिरा मधुरया माधुर्य्यवारां निधिम् ॥२६॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

हे श्रीराजकिशोरि! कञ्जनयने! सौभाग्यपाथोनिधे!
लावण्याहृतमीनकेतुदयितारूपस्मये ! शोभने ।
सद्यो विश्वविमोहनस्य जगतीनाथेन्द्रसूनोर्गले
मालामस्य निधाय कम्बुसदृशे सद्वृन्दमानन्दय ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्त्वा जनकात्मजा प्रियसखीवृन्दैर्विनम्रेक्षणा
रम्यालौकिकरोचिषा निजतनोः प्रद्योतयन्ती दिशः ।
मालां कञ्जकरद्वयेन च शनैरुत्थापितेनाद्भुतां
श्रीरामस्य जगन्मनोज्ञवपुषः कण्ठे ततोऽधारयत् ॥२८॥

विवेकशील सज्जनोंने विश्वसुखद स्वरूपा उन श्रीजनकराजदुलारीजूका दर्शन करके हृदयसे अपनेको कृतार्थ मानकर उन्हें प्रणाम किया, समस्त जीवोंके राजा श्रीरघुनन्दनप्यारेजू भी उनका दर्शन करके कृत-कृत्य हो गये, उन माधुर्य्य सागरा श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे कमल-लोचना सखियाँ प्रार्थना-पूर्वक अपनी मधुरी वाणी द्वारा सप्रेम इस प्रकार बोलीः-॥२६॥

अपने सौन्दर्यसे रतिके सुन्दरता-जनित अभिमानको दूर करने वाली, मङ्गलमयी, सौभाग्य-सागरा कमल-लोचना हे श्रीजनकराजकिशोरीजू! अब आप शीघ्र विश्वविमोहन इन श्रीचक्रवर्ती-कुमारजूके शङ्खके सदृश मनोहर गलेमें जयमाल डालकर, सज्जनवृन्दको आनन्दित कीजिये ।२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! प्रिय सखियोंके इस प्रकार प्रार्थना करने पर अपने श्रीअङ्गकी मनोहर अलौकिक (दिव्य) कान्तिसे दशो दिशाओंको पूर्ण प्रकाशित करती हुई श्रीजनकराजदुलारीजूने दृष्टि नीचे किये हुये, अपने कमलवत् सुन्दर सुकोमल हाथोंको धीरे-धीरे उठाकर उस अद्भुत मालाको, अपने रूप सौन्दर्यसे चर-अचर प्राणियोंके मनको मुग्धकर लेने-वाले भगवान् श्रीरामभद्रजूके गलेमें धारण करादी ॥२८॥

आलोक्योरसि राघवस्य ललितां दिव्यां च रत्नस्रजं
दोर्भ्यां श्रीमिथिलाधिराजसुतया प्रेम्णा स्वयं धारिताम् ।
प्रारब्धा विबुधैस्तदा सुमनसां वृष्टिः शिवा हर्षदा
नानावाद्यसुशोभना जयजयेत्युच्चैः सुघोषान्विता ॥२९॥

इत्थं सा कलधौतकोमलतनुः सञ्चिन्त्यपादाम्बुजा
श्रीरामस्य गले निधाय विजयश्रीलां शुभां मालिकाम् ।
गायन्तीः सुमनोहरं च नृपजा सर्वाः कुरङ्गीदृशो
मातुः पार्श्वमुपागमद्विधुमुखी संमोदयन्ती सखीः ॥३०॥

तब श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके करकमलों द्वारा प्रेमपूर्वक धारण करायी हुई रत्नोंकी उस दिव्य मनोहर मालाको श्रीराघवेन्द्र सरकारके हृदय पर सुशोभित देखकर देवताओंने "जय हो, जय हो" इस सुखद उच्चघोषसे युक्त नाना प्रकारके बाजाओंसे सुहावनी फूलोंकी मङ्गलमयी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥२९॥

इस प्रकार सुवर्णके समान गौर तथा अत्यन्त कोमल अङ्ग, ध्यान करने योग्य कमलवत् कोमल श्रीचरण शरद्-चन्द्रमाके सदृश परम आह्लादकारी निर्मल प्रकाश युक्त श्रीमुखारविन्द वाली श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, श्रीरामभद्रजूके गलेमें विजयलक्ष्मी सहित मङ्गलमयी जयमाल पहिनाकर, मृग-लोचना सखियोंके मङ्गलगीत गाते समय अपनी सखियोंको पूर्ण सुखी करती, श्रीसुनयना अम्बाजीके पास पधारीं ॥३०॥

इति चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

इति मासपारायणे षड्विंशतितमो विश्रामः ॥२६॥

—❀❀❀—

अथपञ्चनवतितमोऽध्यायः ।

श्रीलक्ष्मण-परशुराम संवाद तथा भगवान् श्रीरामजीसे क्षमाप्रार्थी हो भृगुनन्दनजीका महेन्द्राचल प्रस्थान ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथोर्वीशपुत्रो धनुः खण्डयित्वा । मुनेर्दक्षपार्श्वे रराज स्रजाढ्यः ॥१॥
समालिङ्गितः प्रेमपूर्णोरसाऽसौ । महर्षिप्रकृष्टेन वै कौशिकेन ॥२॥
तदालोक्य हृष्टः सुमित्राकुमारः । विदेहो विदेहत्वमाशु प्रपेदे ॥३॥
तदा भूमिपाला निकृष्टस्वभावाः । मिथोऽनर्थकं ते विवादं प्रचक्रुः ॥४॥

नृपा ऊचुः ।

सुबालस्य किं वै धनुर्भञ्जनेन । रणे सर्वजेत्रा कुमारी हि लभ्या ॥५॥
अहं राजपुत्रीं वरिष्ये न चान्यः । वलीयान् हि मत्तः परः कोऽस्ति लोके ॥६॥
विदेहो हठाच्चेत्प्रदाता किलास्मै । सुतामोजसैनं विजित्याहरिष्ये ॥७॥
यदि स्यात्सहायो विदेहो ऽस्य भूपः । तमाहत्य तूर्णं निबध्नामि पुत्रौ ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

निशम्येति तेषां वचो बुद्धिमन्तः । शनैरेतदाहुः परेशानुरक्ताः ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! धनुष तोड़नेके पश्चात् जयमालको धारण किये हुये श्रीराघवेन्द्र सरकारजू श्रीविश्वामित्रजी महाराजके दाहिने भागमें जाकर विराजमान हुये ॥१॥ महर्षियोंमें परम श्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने श्रीरामभद्रजीको प्रेम-पूर्वक हृदयसे लगाया ॥२॥ यह देखकर श्रीसुमित्राकुमार श्रीलखनजी, बड़ेही हर्षको प्राप्त हुए और श्रीविदेहजी महाराज तो दर्शन करतेही अपने देहकी सुधि बुधि भूल गये ॥३॥

जयमाल्य धारण किये श्रीरामसरकारको देखकर खोटे स्वभाव वाले राजा आपसमें व्यर्थ का विवाद करने लगे ॥४॥ राजा बोलेः—भाइयो ! इस सुन्दर बालकके धनुष तोड़नेसे ही क्या हुआ ? श्रीजनक-राजकुमारीजी तो उसीको मिलेंगी, जो युद्धमें सभीको जीत लेगा ॥५॥

राजपुत्रीको मैं वरूँगा दूसरा नहीं, क्योंकि मुझसे बढ़कर लोकमें बलवान है कौन? ॥६॥

यदि श्रीविदेहजी महाराज कहीं हठ पूर्वक अपनी श्रीराजकुमारीको इन्हें ही अर्पण करेंगे, तो हम अपनी सामर्थ्यसे इनको जीतकर, राजकुमारीको छीन लेंगे ॥७॥ और यदि श्रीविदेहजी महाराज इनकी सहायता करेंगे, तो मैं उनको भी मारकर इन पुत्रोंको बाँध लूँगा ॥८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोलेः-हे तपोधने ! उन दुष्ट राजाओंकी इन बातोंको सुनकर भगवत्-चरण-कमलानुरागी बुद्धिमान राजाओंने धीरेसे यह कहा ॥९॥

श्रीसद्भूपा ऊचुः ।

अलं वः प्रलापैर्नरेन्द्राः समेषाम् । यदि प्राणरक्षा त्विदानीमभीष्टा ॥१०॥
पिनाकं सभायां समुत्थापयन्तः । क्षितावुच्छ्वसन्तो भवन्तोऽपतन्यत् ॥११॥
बलं पौरुषं वस्तदेवास्ति यद्वा । इदानीं नवीनं समासादितं हि ॥१२॥
दशास्योऽपि हस्तैर्धनुर्यत्सलज्जः । अभिस्पृश्य कामं गतो मोघवीर्यः ॥१३॥
अनायासमैशं धनुः पश्यतां वः । तदुत्थाप्य भग्नं ह्यकार्षीद्द्रुतं यः ॥१४॥
स बालो भवद्भिः परिज्ञायतेऽतः । नमो दर्पमत्ता ! धियै कोटिशो वः ॥१५॥
अयं रामभद्रस्त्रिलोकीपरेशः । परं ब्रह्म साक्षादुपास्यो मुनीन्द्रैः ॥१६॥
असौ राजपुत्री पराशक्तिरस्य । त्रिलोक्येकमाता रमोमादिवन्द्या ॥१७॥
तपः पुञ्जतुष्टो दशस्यन्दनस्य । गतः पुत्रभावं सुरैर्याचितोऽयम् ॥१८॥
अयोन्युद्भवाऽऽद्या धरागर्भजाता । विदेहार्थिताऽसौ पुराजन्मनीह ॥१९॥
वचस्तथ्यमेतद्भवन्तो विदित्वा । दुराशां विसृज्याक्षिलाभं लभध्वम् ॥२०॥

हे राजाओ ! यदि आप लोगोंको अपने प्राणोंकी रक्षा अभीष्ट हो, तो पारस्परिक निरर्थक विवाद बहुत हो चुका, अर्थात् अब चुपहो जाओ ॥१०॥ क्योंकि सभाके बीचमें पिनाक धनुषको तोड़नेका प्रयत्न करते ही आपलोग ऊर्ध्वश्वास लेते हुये पृथिवी पर गिर चुके हैं ॥११॥

आप लोगोंका बल पौरुष वही है न ? अथवा इस समय कुछ नूतन प्राप्त हो गया है ? ॥१२॥ जिस धनुषको बीसों हाथोंसे इच्छानुसार भली-भाँति स्पर्श करके दशमुख रावण भी अपने पराक्रमको निष्फल देखकर लज्जा वश, लङ्कापुरीको चला गया ॥१३॥

भगवान् शिवजीके उसी पिनाक धनुषको आप लोगोंके देखते-देखते जिस बालकने उठाकर तोड़ डाला ॥१४॥ हे अभिमान मदसे पागलराजाओ ! उसे आप लोग बालक ही समझ रहे हैं ? अतः आप लोगोंकी इस बुद्धिको कोटिशः प्रणाम अर्थात् धिक्कार है ॥१५॥

ये श्रीरामभद्रजू तीनों लोकोंके सबसे बड़े शासक, मुनिराजोंके उपास्यदेव साक्षात् पर ब्रह्म हैं ॥१६॥ और वे श्रीमिथिलेशराजदुलारी त्रिलोकीकी आदि माता, श्रीलक्ष्मी, गिरिजादि महाशक्तियोंके प्रणाम करने योग्य इनकी परा शक्ति हैं ॥१७॥

ये श्रीरामभद्रजू देवताओंकी याचनासे श्रीदशरथजी महाराजकी पूर्व जन्मकी तपो राशिसे प्रसन्न हो उनके पुत्र बने हैं ॥१८॥ और ये श्रीजनकदुलारीजी इन श्रीविदेह महाराजके पूर्वजन्म की प्रार्थना से बिना किसी कारण अपनी भक्तभावपूरिणी इच्छा मात्रसे भूमि गर्भसे प्रकट हुई हैं ॥१९॥ आप लोग इस बातको सत्य जानकर अपनी नीच वासनाका परित्याग करके, नेत्रोंका लाभ लीजिये ॥२०॥

अयं रामबन्धुस्तदाज्ञानुसारी । फणीशावतारी पयःसिन्धुशायी ॥२१॥
प्रियं जीवितं वो नृपास्तावदेव । न यावद्रुषाढ्यो भवेल्लक्ष्मणो ऽयम् ॥२२॥
वयं राजपुत्रीं कुमारं तथैनम् । समालोक्य सद्यः कृतार्थत्वमाप्तः ॥२३॥
वयं जन्मनोऽद्धा फलं प्राप्तवन्तः । भवन्तो यथेष्टं तथा वै कुरुध्वम् ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

धनुर्भङ्गशब्दं तदा जामदग्न्यः । निशम्यागतोऽसौ महाकालकल्पः ॥२५॥
तमालोक्य भूपाः प्रणेमुर्नताङ्गाः । समुच्चार्य नाम स्वकं सान्वयं ते ॥२६॥
समभ्यर्च्चितं तं भृगूणामधीशम् । महार्हासनस्थं नतो मैथिलेशः ॥२७॥
समाहूतयाऽसौ प्रणामं स्वपुत्र्या । ततोऽकारयत्तन्मुनेः पादयुग्मे ॥२८॥
शुभाशीर्वचोभिः स तां भार्गवेन्द्रः । समादृत्य सीतां जगामातिहर्षम् ॥२६॥
मुनिः कौशिकस्तं नमस्कृत्य भूयः । नतिं राघवाभ्यां मुदाऽकारयत्सः ॥३०॥
इमौ तेन पुत्रौ दशस्यन्दनस्य । सुविज्ञापितौ सूनवे रेणुकायाः ॥३१॥
अयं रामभद्रो दिनेशान्वयार्कः । सदाऽस्यानुगामी श्रुतो लक्ष्मणोऽयम् ॥३२॥

और ये श्रीलखनलालजी, श्रीरामभद्रजूके भैया उनकी ही आज्ञानुसार चलने वाले शेषजीके अवतारी, श्रीक्षीरशायी विष्णुभगवान् हैं ॥२१॥ अतः हे राजाओ! आप लोगोंका यह प्रियजीवन तभीतक है, जब तक ये श्रीलखनलालजी रोष नहीं करते ॥२२॥ हम लोग तो श्रीजनकराज-दुलारीजू तथा इन श्रीचक्रवर्तीकुमारजूका दर्शन करके तत्क्षण कृतकृत्य हो गये ॥२३॥ हम लोगोंको तो अपने जन्मका फल मिल गया, आप लोगोंकी जो इच्छा हो करें ॥२४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी कात्यायनीजीसे बोलेः—हे तपस्विनि ! उसी समय धनुष टूटनेका शब्द सुनकर महाकालके समान भयभीतकारी श्रीजमदग्नि ऋषिके पुत्र श्रीपरशुरामजी आकर उपस्थित हुये ॥२५॥ उनको देखकर राजाओंने कुलके सहित अपना नाम लेकर सभी अङ्गोंसे झुककर उन्हें प्रणाम किया ॥२६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने परमोत्तम आसन पर विराजमान करके, षोडशोपचारसे उनका पूजन कर भृगुवंशियोंमें परम श्रेष्ठ उन श्रीपरशुरामजीको प्रणाम किया ॥२७॥ पुनः अपनी श्रीललीजीको बुलाकर, उन मुनि श्रीपरशुरामजीके चरणकमलोंमें प्रणाम कराया ॥२८॥

श्रीपरशुरामजी महाराजने मङ्गलमय आशीर्वाद द्वारा श्रीजनकदुलारीजूका पूर्ण आदर करके अत्यन्त हर्षको प्राप्त किया ॥२६॥ श्रीविश्वामित्रजी महाराजने उनको बारम्बार प्रणाम करके, दोनों राजकुमारोंसे प्रणाम कराया ॥३०॥ पुनः उन्होंने रेणुका पुत्र, श्रीपरशुरामजीको बतलाया-ये दोनों पुत्र श्रीदशरथजी महाराजके है ॥३१॥ सूर्यवंशको सूर्यवत् प्रकाशित करनेवाले ये श्रीरामभद्रजू हैं और इनका सदा अनुगमन करने वाले ये श्रीलखनलालजी हैं ॥३२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

विलोक्याद्भुतं तन्मनोहारिरूपम् । मुनिस्ताटकारेर्भृशं शातमाप ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

धनुर्वीक्ष्य भग्नं ततो ऽसौ पुरारेः । अपृच्छद्विदेहं क एतद्बभञ्ज ॥३४॥

मुखस्याकृतिं तत्समालोक्य तूष्णीम् । गते भूमिपाले नमन् राम ऊचे ॥३५॥

श्रीराम उवाच ।

भवेन्नाथ ! दासस्तवैको हि कश्चित् । धनुर्येन भक्तं पुरारेः पुराणम् ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवैतत्तदुक्तं वचो राघवस्य । समाकर्ण्य वीरोऽवदज्जामदग्न्यः ॥३७॥

श्रीजामदग्न्य उवाच ।

न दासोऽस्ति शत्रुर्य एतद्बभञ्ज । गुरोः कार्मुकं मे भवेत्सम्मुखं सः ॥३८॥

नृपा भूप ! सर्वे प्रयास्यन्ति मृत्युम् । इदानीं तु नोचेन्न दोषो ममास्ति ॥३९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

वाणीं निशम्य परुषामिति लक्ष्मणस्तं कम्पत्तनुं परशुपाणिमुवाच वीरः ।
बाल्ये बहूनि दलितानि धनूंषि देव ! क्रोधः कृतो न भवता हि कदापि पूर्वम् ॥४०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! ताड़का राक्षसीको मारनेवाले श्रीरामभद्रजूके उस मनोहर अद्भुत रूपको देखकर, मनन-परायण श्रीपरशुरामजीमहाराज, अत्यन्त सुखको प्राप्तहुये॥३३॥

तत्पश्चात् भगवान शिवजीके धनुषको खण्डित हुआ देखकर श्रीपरशुरामजीने श्रीविदेहजी महाराजसे पूछाः—राजन् ! इस धनुषको किसने तोड़ा ? ॥३४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! इस प्रकार उनके पूछने पर जब श्रीमिथिलेशजी महाराज उनके मुखकी(रोषयुक्त)आकृति देखकर मौन रहे तब श्रीरामभद्रजू नमस्कार करते हुये बोले॥३५॥

हे नाथ ! जिसने भगवान् शिवजीके पुराने इस धनुष को तोड़ा है, वह कोई आपका एक (मुख्य) दास ही होगा ॥३६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोलेः-हे तपोधने! श्रीराघवेन्द्र सरकारके इन वचनोंको सुनकर बीर श्रीपरशुरामजी रोषयुक्त हो बोलेः ॥३७॥

हे राम ! जिसने मेरे गुरुदेवका धनुष तोड़ा है, वह मेरा दास नहीं शत्रु है, मेरे वह सम्मुख हो जाय ॥३८॥ हे भूप ! नही तो इसी समय सभी राजाओं की मृत्यु हो जायगी, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है ॥३९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले-हे कात्यायनी! उनके इन कठोर वचनोंको सुनकर वीर श्रीलखनलालजी कम्पित शरीरसे युक्त, हाथमें फरसा लिये हुये श्रीपरशुरामजीसे बोलेः—हे देव बाल्यावस्थामें न जाने मैंने कितने ही धनुष तोड़ डाले, किन्तु आप ने पहिले कभी क्रोध नहीं किया ॥४०॥

कस्मान्ममत्वमिति ते किलकार्मुकेऽस्मिन्नीषत्कराम्बुरुहयोगविखण्डिते च।
रोषः किमर्थमिति वै क्रियते त्वयाऽतो दोषो न कोऽपि मुनिवर्य ! रघूद्वहस्य ॥४१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

सौमित्रिणोक्तमिदमेव वचो निशम्य क्रोधं गतो द्विगुणितं भृगुजस्तमूचे।
चापैरुपेति समतां किमु चन्द्रमौलेः कोदण्डमेतदितरैर्वद मूढ़ ! मह्यम् ॥४२॥
गर्भार्भकघ्नपरशुर्मम पाणिपद्मे तस्माच्छुचा गमय मा पितरौ स्वकीयौ।

श्रीलक्ष्मण उवाच।

किं मे प्रदर्शयसि मोघभटाभिमानिन् ! भूयः कुठारमभितो गतसाध्वसोऽहम् ॥४३॥
मत्वा द्विजं भृगुकुलप्रभवं भवन्तं रोषं निरुद्धय परुषाणि वचांसि सेहे।
सर्वाणि ते विबुधविप्रगवांकुलेऽस्मद्वंशस्य नैव मुनिनाथ ! यतो हि शौर्य्यम् ॥४४॥

श्रीपरशुराम उवाच।

त्वं बालकं कलयता हि मयाऽधुनाऽपि नो हन्यसेऽत इह वै मुनिमेव वेत्सि।
मां कार्तवीर्यभुजखण्डनयोगदक्षं राजन्यवंशदहनं भुवनप्रसिद्धम् ॥४५॥

श्रीलक्ष्मण उवाच।

क्रोधं वदन्ति मुनयः खलु पापमूलं द्वारं प्रशस्तमिनसूनुपुरस्य देव !।
त्यक्त्वा तदेव मुनिवर्य ! शमेन युक्तस्तोषो यथाऽस्तु न चिरेण तथा कुरुष्व ॥४६॥

फिर किञ्चित् हस्त कमलके स्पर्शमात्रसे टूटे हुये इस धनुष पर आपकी ऐसी क्यों ममता है? और किस लिये आप इस प्रकार का क्रोध कर रहे हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! श्रीरामभद्रजू का धनुष टूटने में कोई दोष नहीं है ॥४१॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले:—हे तपोधने ! सुमित्रा-नन्दन श्रीलखनलालजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीपरशुरामजी दुगुने क्रुद्धहो उनसे बोले:-हे मूढ़! मुझे बतला, क्या यह भगवान शिवजीका धनुष अन्य धनुषोंके समान साधारण हो सकताहै?।४२।

गर्भके बालकों का नाश करने वाला यह कुल्हाड़ा मेरे हस्त-कमलमें है, अतः अपने माता-पिताको शोकमें मत डाल। श्रीलखनलालजी बोले:—हे योद्धा होने का व्यर्थ अभिमान रखने वाले भूदेव! मुझको आप बारम्बार कुल्हाड़ा क्यों दिखा रहे हैं? मैं सब प्रकारसे अभय हूँ ॥४३॥

आपको भृगुकुलमें उत्पन्न ब्राह्मण मानकर ही मैंने अपने हृदयमें तरङ्गित रोषको रोककर, आपके सभी कठोर वचनोंको सहन कर रहा हूँ। हे मुनिनाथ! क्योंकि देवता-गौ-ब्राह्मणोंके प्रति हमारे कुलकी शूरता नहीं है ॥४४॥ श्रीपरशुरामजी बोले:-तुझे मैं बालक समझकर अभीतक नहीं मार रहा हूँ, इसीलिये राजवंशको अग्निके समान जला डालने वाले तथा कार्तवीर्य (सहस्र वाहु) की भुजाओंको काटनेमें परम चतुर मुझ विश्वविख्यात को केवल मुनि ही जानता है ॥४५॥

श्रीलखनलालजी श्रीपरशुरामजीसे बोले:—हे देव! हे मुनिश्रेष्ठ ! मुनि जन क्रोधको पापकी जड़ और यमलोकका मुख्य द्वार बतलाते हैं इस लिये आप उसका परित्याग कर जिस प्रकार आपको शान्ति मिले, वही शीघ्र कीजिये ॥४६॥

दृष्ट्वा कुठारविशिखासनबाणपाणिं वीरं विचार्य यदिहानुचितं मयोक्तम्।
हे ब्राह्मणेन्द्र ! भृगुनायक ! वीरमूर्त्ते तत्त्वं क्षमस्व कृपया नम एव तुभ्यम् ॥४७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

एतन्निशम्य वचनं रघुवीरबन्धोः प्रोवाच गाधितनयं स तु जामदग्न्यः।

श्रीपरशुराम उवाच।

जातः कलङ्क इव विश्रुतसूर्यवंशे नूनं निसर्गकुटिलो नृपबालकोऽयम् ॥४८॥
रक्षा त्वयाऽभिलषिता यदिमन्दबुद्धेरस्याशु चैनमुपवर्जय कौशिक ! त्वम्।
उक्त्वा बलं च मम पौरुषमेव नोचेदेषोऽन्तकस्य भविता कवलः क्षणेन ॥४९॥

श्रीलक्ष्मण उवाच।

कीर्त्तिः स्विका स्वमुखतो बहुवारमद्धा तोषो न चेत्कथयतो हृदि जायते ते।
हेब्रह्मवंशमणिराज ततोऽधुनाऽपि मह्यं प्रशंस पुनरेव हि तां शृणोमि ॥५०॥

श्रीपरशुराम उवाच।

बालं विचार्य कुटिलं कटुवादिमुख्यं तन्मर्षितानि सुबहूनि दुरीरितानि।
भूयो मया न सकृदद्य निजस्वभावाद् गन्ता मृतिं नृपतिसूनुरयं तथाऽपि ॥५१॥

श्रीविश्वामित्र उवाच।

बालस्य नैव गणयन्ति गुणं न दोषं सन्तः पवित्रमतयो विदितात्मतत्त्वाः।
क्षन्तुं विधत्स्व करुणां भृगुवंशभानो ! दोषानतोऽस्य तनयस्य नृपेश्वरस्य ॥५२॥

हे वीर मूर्त्ते ! हे भृगुकुलनायक ! हे ब्राह्मणोत्तम ! आपको कुल्हाडी तथा धनुष-बाण हाथमें धारण किये देखकर बीर विचार करके मैंने जो कुछ अनुचित कह दिया हो, उसे आप कृपया क्षमा कीजिये, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥४७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले–हे कात्यायनी ! श्रीरामभद्रजूके भैया श्रीलखनलालजीके इन बचनों को सुनकर श्रीपरशुरामजी महाराज श्रीविश्वामित्रजीसे बोलेः–हे गाधिनन्दन ! यह राजकुमार तो स्वाभाविक बड़ा ही कुटिल है और बिख्यात सूर्यवंशमें मानो कलङ्क ही उत्पन्न हुआ है॥४८॥

हे कुशिक नन्दन श्रीविश्वामित्रजी ! इस लिये आप यदि बिचार शक्ति हीन इस बालककी रक्षा चाहते हैं, तो मेरा बल पराक्रम सुना कर इसको (बोलने से) मना कर दीजिये, नहीं तो यह क्षणभरमें कालका ग्रास बन जायगा ॥४९॥ श्रीलखनलालजी बोलेः–हे मुने ! अपने मुखसे अपनी कीर्त्तिको बारम्बार वर्णन करते हुये भी यदि आपके हृदयमें अभी तक सन्तोष नहीं हो रहा है, तो फिर उसे अनेक प्रकारसे वर्णन कीजिये ! मैं निःसन्देह उसका श्रोता हूँ ॥५०॥

श्रीपरशुरामजी श्रीविश्वामित्रजीसे बोलेः–हे मुनिराज ! अत्यन्त कड़ुई वाणी बोलने वाले इस कुटिलको, बालक विचार करके मैंने एक बार नहीं, अनेकों बार इसके कहे हुये बहुतसे दुर्वचनोंको सहन किया, तथापि यह राजकुमार अपने इस दुष्ट स्वभावके कारण आज मरनेको ही है ॥५१॥ श्रीविश्वामित्रजी बोलेः–हे भृगुवंशको सूर्यके समान प्रकाशित करने वाले ! महाराज परमात्मतत्वको समझने वाले, पवित्र विचारशील सन्त, बालकोंके दोष-गुणोंकी गिनती नहीं करते, इसलिये आप भी इस चक्रवर्तीकुमारके दोषोंको क्षमा ही करें ॥५२॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

प्रत्युत्तरं प्रददतोऽभिमुखं स्थितस्य दृष्ट्वा मयाऽस्य सकुठारकरेण रक्षा ।
शीलेन ते मुनिवर ! क्रियते निहत्य नोचेद्व्रजाम्यनृणतां स्वगुरोरिहाद्य ॥५३॥

श्रीसौमित्रिरुवाच ।

ज्ञात्वा मयाऽपि मुनिवर्य ! भृगूद्वहस्त्वं भूपध्रुगद्य सनयं समुपेक्षितोऽसि ।
त्वं मे कुठारमनुवारमिहोत्थपाणिः किं दर्शयस्यखिललोकधवाश्रिताय ॥५४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

क्रोधानलं भृगुवरस्य समेधमानं दृष्ट्वा निवार्य निजबन्धुमुवाच रामः ।

श्रीराम उवाच ।

हे नाथ तेऽतुलितमेव बलं प्रतापं जानाति चेद्वदति किं परुषा गिरस्ते ॥५५॥
विज्ञानसिन्धुरसि शूरतमश्च धीरः क्षन्तुं शिशोरनुचरस्य वचोऽर्हसि त्वम् ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तुष्टः स्मितास्यमवलोक्य च रामवाचा क्रुद्धो जगाद पुनरेव स लक्ष्मणस्य ॥५६॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

रक्षामि राम तव बन्धुमिमं विदित्वा दुष्टाशयं सविषहेमघटोपमं च ।
रम्याकृतिं मलिनचित्तमहं किलेति मन्दं जहास स निशम्य हि लक्ष्मणस्तत् ॥५७॥

श्रीपरशुरामजी बोले:–हे मुनिश्रेष्ठ ! हाथमें कुल्हाड़ा रहते, मैं केवल आपके शीलसे ही सम्मुख स्थित हो, उत्तर प्रत्युत्तर देते देखकर भी, इस बालककी रक्षा कर रहा हूँ, नहीं तो इसका बध करके मैं अनायास ही गुरु-ऋणसे मुक्त हो जाता ॥५३॥

श्रीलखनलालजी बोले:–हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं जानता हूँ, कि आप समस्त राजाओंके शत्रु हैं, तथापि भृगु कुलमें उत्पन्न जानकर मैंने न्याय पूर्वक आपकी उपेक्षाकी है ! आप सम्पूर्ण लोक स्वामीके मुझ आश्रितको हाथ उठाकर बारम्बार फरसा क्या दिखा रहे हैं ? ॥५४॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे तपोधन ! श्रीपरशुरामजीके क्रोध रूपी अग्निको पूर्ण रूपसे बढ़ती हुई देखकर, अपने भैया श्रीलखनलालजीको बोलनेसे रोककर, प्यारे श्रीरामभद्रजू उनसे बोले:–हे नाथ ! यदि यह बालक आपके अतुलित बल-प्रतापको जानता ही होता, तो आपके प्रति ऐसी कठोर वाणी क्यों बोलता ॥५५॥

आप विज्ञानके सागर, महान् शूरवीर तथा धीर हैं, इसलिये शिशु सेवकके कठोर वचनोंको क्षमा ही करें श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे तपोधने ! श्रीरामभद्रजूकी इस अमृतमयी वाणीसे वे प्रसन्नहो गये, किन्तु श्रीलखनलालजीके मुस्कानयुक्त मुखको देखकर, पुनः क्रुद्धहो बोले:-।५६।

श्रीपरशुरामजी बोले:–हे राम ! जैसे विष, भरा हुआ सोनेका घड़ा देखनेमें सुन्दर, किन्तु प्राणान्तकारी दुःख देने वाला होता है, उसी प्रकार यह देखनेमें तो अत्यन्त सुन्दर है, किन्तु है मलिन चित्त दुष्ट विचार वाला, महान् दुःखदाई, तथापि आपका भाई विचार कर मैं इसकी रक्षा कर रहा हूँ, यह सुनकर श्रीलखनलालजी मन्द मुस्काने लगे ॥५७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

संदह्यमानहृदयं भृगुवंशदीपं क्रोधानलेन सकठोरकुठारपाणिम् ।
बन्धुं हसद्विधुमुखं च निरीक्ष्य रामः प्राहेत्यसौ प्रणयतस्तमुदारभावः ॥५८॥

श्रीराम उवाच ।

श्राव्यानि सन्ति न हि बालवचांसि देव ! विज्ञोत्तमेन महता भवता द्विजेन्द्र ! ।
चापच्छिदस्मि खलु सम्प्रति सापराधो दोषो न चास्य शिशुभावमुपाश्रितस्य ॥५९॥
कार्यो ऽत एव मयि कोप उत क्षमा हि बन्धो बधश्च भवता निजदासदासे ।
शान्तिर्भवेन्मनसि ते च यथा कुरुष्व कामं स्थितोऽस्मि नतकायशिरास्त्वदग्रे ॥६०॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

मां साभ्यसूयमवलोकयतस्तवास्य भ्रातुः प्रदाय न गले कठिनं कुठारम् ।
शान्तिः कुतः करुणया न निहन्मि चैनं जातो विरुद्ध इति हन्त मम स्वभावः ॥६१॥

सौमित्रिरुवाच ।

कारुण्यमेव मम दुःसहदुःखमूलं जातं ममाद्य मनसीह यदृच्छयैव ।
तस्माद्भवान् करुणमूर्त्तिरिह प्रसिद्धो वाक्ते निसर्गमधुरा श्रवणस्पृशा च ॥६२॥

तब भृगुकुलको दीपकके समान सुशोभित करनेवाले, श्रीपरशुरामजीको हाथमें कठोर फरसा लिये तथा उनके हृदयको क्रोधाग्निसे जलते एवं श्रीलखनलालजीके चन्द्रवत् मनोहर मुखको मुस्काते हुयेदेख कर, उदार भाव वाले श्रीरामभद्रजू उनसे प्रेम-पूर्वक बोले:–॥५८॥

हे देव ! द्विजोत्तम ! आप तो महान् ज्ञानी हैं, अतः आपको बालकके वचनों पर ध्यान नहीं देना चाहिये, पुनः धनुषको तोड़ा है मैंने, अतः अपराधी मैं ही हूँ, शिशु भाव युक्त इस बालक का कोई दोष नहीं है ॥५९॥

अत एव मुझ अपने दासोंके दास पर ही आपको क्षमा, अथवा कोप, बन्धन, मृत्यु आदि दण्ड करना उचित है । इतना ही नहीं अपितु जिस प्रकार भी मनको शान्ति मिले, उसी प्रकार आप अपनी इच्छानुसार व्यवहार कीजिये । मैं शरीर व सिरको झुकाकर आपके आगे उपस्थित हूँ ॥६०॥

यह सुनकर तिरछी दृष्टि पूर्वक मुस्काते हुये श्रीलखनलालजीको देखकर, श्रीपरशुरामजी श्रीरामभद्रजूसे बोले:–हे राम ! तिरस्कार पूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुये इस तेरे भाईके गले पर बिना इस कठोर फरसाको दिये मेरेको शान्ति कहाँ? किन्तु फिरभी दयावश मैं इसे नहीं मारता हूँ । आश्चर्य है मेरा यह स्वभाव बदल कैसे गया ? ॥६१॥

हे राम ! आज अकस्मात् मेरे मनमें उदय हुई करुणा ही मेरे दुःखका कारण बन गयी है । यह सुनकर श्रीलखनजी बोले:–हे महाराज ! इसीलिये आप लोकमें करुणाकी मूर्त्ति प्रसिद्ध हैं ना? और आपकी वाणी भी क्या ही सहज स्वभावसे बड़ी मधुर व श्रवण सुखदाई है ॥६२॥

कारुण्यतो दहति चेद्धृदयं त्वदीयं क्रोधाद्धि रक्ष न चिरेण भृगुप्रवीर ! ।

श्रीजामदग्न्य उवाच ।

बालं निहन्मि न तु दूरमितो नयैनं मच्चक्षुषोर्विषयतो नृप रे विदेह ! ॥६३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आकर्ण्य तद्वचनमाह स लक्ष्मणस्तं दृश्यो निमीलितदृशो भवतो न कोऽपि ।
रामानुजस्य वचनं श्रुतिगं विधाय श्रीजामदग्न्य इति राममुवाच रुष्टः ॥६४॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

चापं विभज्य परितोषयसीह मां त्वं भक्त्या करोषि विनयं मम कैतवेन ।
लब्धेङ्गितो हि कटुवाग्विशिखैरयं ते भ्राताऽनुताडयति राघव ! सोपहासम् ॥६५॥
युध्यस्व सम्प्रति मया सह राम ! नोचेद्धन्ता सबन्धुमहमस्म्यचिरेण च त्वाम् ।
दोलत्कुठारकरवाक्यमिदं सरोषं श्रुत्वाऽऽह राम इति तं प्रणमन्सुशीलः ॥६६॥

श्रीराम उवाच ।

युद्धं कथं नु कथय प्रभुदासयोः स्याद्रोषं विहाय भगवन्नुपयाहि शान्तिम् ।
त्वद्वीरवेषमवलोक्य कुलानुसारं वीरोक्तयो निगदिता न हि जानता त्वाम् ॥६७॥

हे भृगुवंशियोंमें परमश्रेष्ठ ! यदि कृपाके कारण आपका हृदय जल रहा है तो क्रोधसे उसे शीघ्र बचा लीजिये । यह सुनकर श्रीपरशुरामजी बोले:–रे विदेह नृप ! मैं इस बालकको मार डालूंगा, नहीं तो इसे मेरी आंखोंके सामने से हटा दो ॥६३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीकात्यायनीजीसे बोले:–हे तपोधने ! श्रीपरशुरामजीके उक्त वचनको सुनकर श्रीलखनलालजी उनसे तिरस्कारसूचक वाणीमें बोले:–हे महाराज ! "आप अपनी आँखें मूंद लीजिये, कोई भी नहीं दिखाई देगा । श्रीरामभद्रजूके छोटे भाईके इन वचनोंको सुनकर श्रीपरशुरामजी रुष्ट होकर श्रीरामजीसे बोले:–॥६४॥

हे राम ! तू धनुषको तोड़कर मुझे प्रसन्न करना चाहता है, पर कपटयुक्त भक्तिके द्वारा मेरी प्रार्थना करता है, क्योंकि तेरा भाई तेरा ही सङ्केत पाकर अपने कटु वचन रूपी वाणोंसे मुझे उपहास पूर्वक बारम्बार पीड़ित कर रहा है ? ॥६५॥

हे राम अब आप मेरे साथ युद्ध करो नहीं तो अब भाईके समेत तुझे शीघ्र मार डालूंगा । उनकी इस बातको सुनकर प्रणाम करके सुशील श्रीरामभद्रजू हाथमें कुल्हाड़ा घुमाते हुये उन श्रीपरशुरामजीसे बोले:–॥६६॥

हे भगवन् ! आपही बतलाइये दास और स्वामी में किस प्रकारसे युद्ध हो सकता है ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं, अतः आप क्रोधको छोड़कर शान्त हो जाइये ! आपके वास्तविक मुनि स्वरूपको न जानकर, केवल बाहरी वीर वेषको देखकर इस बालकने अपने कुलके अनुरूप ही वीर वाणी कही हैं ॥६७॥

संपश्यता तु मुनिवेषमनेन नूनं त्वत्पादरेणुरनिशं ध्रियते स्म मूर्ध्नि।
बालं विचार्य परितुष्टिमुपैहि देव ! वात्सल्यतोऽस्य पितृवत्खलु वीरवाग्भिः ॥६८॥
युग्माक्षरं हि मम नाम सपञ्चवर्णं त्वन्नाम लोकविदितं द्विजवंशरत्न ! ।
एको गुणो मम धनुर्नव ते शमाद्याः स्यादावयोः क्व समता शिरसा पदस्य ॥६९॥

श्रीजामदग्न्य उवाच ।

बाह्वोर्बलं न विदितं मम वै त्वयाऽतो विप्रेति राम ! गदता समनादृतोऽस्मि ।
त्वं वेत्सि मां लघुमते ! यदि विप्रमेव सोऽहं यथा द्विजवरः शृणु तथ्यतस्तत् ॥७०॥
चापस्स्रुवश्च विशिखाहुतिरुग्रकोपो बह्निः समित्सुपृतना चतुरङ्गिणी च।
भूपा हि यज्ञपशवो मम तान्निहत्यानेनास्मि वै परशुना कृतकोटियज्ञः ॥७१॥
कोदण्डमेव परिखण्डच मदोन्मदान्धो निःशेषविश्वजिदिवेह रघूद्वहाभूः।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

रोषप्रकम्पिततनोरिदमेव वाक्यं संश्रुत्य तच्च निजगाद रघुप्रवीरः ॥७२॥

यदि यह आपके मुनि वेषको देखता, तो अवश्य आपके श्रीचरणकमलोंकी रजको अपने मस्तक पर धारण करता अतः इसे बालक विचार कर पिताके समान आप अपने वात्सल्यभावसे इसकी वीरोचित वाणियों द्वारा पूर्ण प्रसन्नताको प्राप्त होइये ॥६८॥

हे ब्राह्मण-वंशमें रत्नके समानसर्वश्रेष्ठ ! फिर मेरा नाम केवल दो अक्षरोंका और आपका लोक विख्यात पाँच अक्षरोंका नाम है, पुनः हमारेमें एक धनुषकाही गुण प्रधान है, और आपमें शम-दमादि नव गुणोंकी प्रधानता है, अतः जैसे चरणकी सिरसे बराबरी नहीं होती उसी प्रकार हमारी आपकी बराबरी नहीं हो सकती ॥६९॥

श्रीपरशुरामजी बोले:–हे राम ! तुझे मेरी भुजाओंके बलका ज्ञान नहीं है, इसीलिये तूने ब्राह्मण कहकर मेरा घोर अपमान किया है। हे अल्प बुद्धि राम ! यदि तुम मुझे ब्राह्मण ही जानते हो तो, मैं जैसा ब्राह्मणोत्तम हूँ, उसे वस्तुतः सुनो ॥७०॥

मेरा धनुष ही स्रुवा (अग्निमें घृत छोड़नेका काष्ठ पात्र) बाण आहुति, विकराल क्रोध अग्नि, चतुरङ्गिणी सेना लकड़ी तथा मेरे यज्ञके पशु राजा हैं, सो इसी फरसासे उनको मारकर मैंने करोड़ों यज्ञ किये हैं ॥७१॥

हे रघुवंशीपुत्र ! एक धनुषको तोड़कर अभिमानके मदमें तू ऐसा अन्धा हो रहा है, मानों सम्पूर्ण विश्वको ही जीत लिया हो, श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले :– हे कात्यायनी ! क्रोधके कारण थर-थर कांपते शरीर वाले उन श्रीपरशुरामजीके इन वचनोंको सुनकर रघुवंशियोंमें सर्वोत्तम वीर श्रीराघवेन्द्र सरकार बोले:–॥७२॥

श्रीराम उवाच ।

स्वल्पापराध इह मे तव भूरिकोपो मत्पाणिसङ्गपरिखण्डितमैशचापम् ।
कस्मात्करोमि तदहं कथयाभिमानं हे भार्गवेन्द्र ! मदमत्तनरेन्द्रशत्रो ! ॥७३॥
दर्पेण ते यदि मया क्रियतेऽपमानो विप्रेन्द्र ! नाथ ! मुनिवर्यतमेति चोक्त्वा ।
तं ब्रूहि विश्वजठरेऽसुरदेवतानां कोऽसौ भियाऽहमपि यं प्रणतिं करोमि ॥७४॥
कालाद्भयं न सुरदानवयक्षकानां मह्यं कुतो भुवि नृणां रणसंस्थिताय ।
एष द्विजेन्द्र ! रघुवंशभुवां स्वभावः संस्तौमि नैव निजवंशमृतं ब्रवीमि ॥७५॥
एतन्महत्त्वमपि भूमिसुरान्वयस्य त्वत्तो बिभेमि गतभीः सचराचरेभ्यः ! ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रुत्वेति वाक्यमिदमिन्दुनिभाननस्य प्रोवाच तं परशुपाणिरसौ सशङ्कः ॥७६॥

श्रीपरशुराम उवाच ।

चापं प्रगृह्य रघुनन्दन ! शार्ङ्गपाणेराकर्षयैनमचिरेण कराम्बुजेन ।
शङ्काऽस्तमेतु यत एव हि मे हृदिस्था जग्राह राम इति तद्धनुरञ्जसोक्तः ॥७७॥

हे मदोन्मत्त राजाओंके शत्रु तथा भृगुवंशियोंके स्वामी ! मेरे अत्यन्त थोड़ेसे अपराध पर आपका महान् कोप है, यह धनुष तो हाथका स्पर्श पाते ही टूट गया है अतः आप ही बतलाइये मैं अभिमान किस बात पर करूँ ? ॥७३॥

हे नाथ ! यदि मैं अभिमान वश-हे ब्राह्मणोत्तम ! हे भृगुवर्य ! अथवा हे मुनिश्रेष्ठ ! कहकर आपका अपमान ही कर रहा हूँ, तब आप ही बतलाइयेः-इस विश्वमें देवता अथवा असुरों (राक्षसों) में भी ऐसा कौन है ? जिसको मैं भयसे प्रणाम करूँ ॥७४॥

युद्ध भूमिमें उपस्थित हो जाने पर जब मुझे कालका भी भय नहीं होता, न देवता दानव यक्षोंका, तब मनुष्योंसे क्या भय होगा? हे ब्राह्मणोत्तम रघुवंशियोंका यही स्वभाव है । मैं अपने कुलकी यह प्रशंसा नहीं करता अपितु सत्य कहता हूँ ॥७५॥

फिर भी ब्राह्मण कुलकी यह महिमा है, जो चर-अचर सभी प्राणियोंसे निर्भय होकर भी मैं आपसे डर रहा हूँ । श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः-हे कात्यायनी ! चन्द्रवदन श्रीराघवेन्द्र सरकारके इस (रहस्य मय) वचनको सुनकर हाथमें फरसाको धारण करने वाले वे श्रीपरशुरामजी महाराज शङ्कायुक्त हो बोलेः-७६॥

हे श्रीरघुनन्दनजू ! श्रीविष्णु भगवानके इस धनुषको लेकर अपने करकमलसे खींचिये, जिससे मेरे हृदयमें बैठी हुई शङ्का दूर हो जाय । श्रीपरशुरामजीके ऐसा कहने पर भगवान् श्रीरामजीने अनायास ही श्रीविष्णु भगवान्के उस धनुषको, उनसे ले लिया ॥७७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

वाणं नियोज्य च गुणे धनुषश्चकर्ष रामः सलीलममितस्मरमोहनाङ्गः ।
दृष्ट्वा व्यपास्तमदकोपमुवाच रामं वाणं वदेति नचिरात्क्वनिपातयानि ॥७८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आकृष्टचापगुणराममुवाच रामः कम्पायमानसकलावयवः प्रणम्य ।

श्रीपरशुराम उवाच ।

ज्ञातोऽधुना त्वमसि नाथ ! मया परेशः सर्वावतारभृदनन्तगुणोऽवतारी ॥७९॥
त्वां द्रष्टुकाम इह सिन्धुसुतेशचापं पाणौ वहामि सततं नयनाभिराम ।
कारुण्यशीलसुषमाक्षमतैकसिन्धो ! तुभ्यं नमोऽस्तु रघुनन्दन ! सानुजाय ॥८०॥
व्रीडा तवेति भवितुं न हि चार्हतीश ! काकुत्स्थ ! हे रघुपते ! दशयानसूनो ! ।
विप्रोऽहमद्य भवता ऽस्म्यनुशासितो यल्लोकत्रयाधिपतिना नृपवंशशत्रुः ॥८१॥

पुनः अनन्तकामदेवोंको अपनी सुन्दरतासे मुग्ध कर लेनेवाले उन श्रीरामभद्रजूने खेलपूर्वक धनुषकी डोरी पर वाणको चढ़ाकर खींचा, ऐसा देखकर अभिमान व क्रोधसे रहित हो गये श्रीपरशुरामजीसे वे बोलेः–मुझे शीघ्र बतलाइए–इस वाणको कहाँ (किस पर) छोड़ूँ ॥७८॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः–हे तपोधने ! तब सभी अङ्गोंसे काँपते हुये श्रीपरशुरामजी धनुष व, डोरीको खींचे हुये श्रीरामभद्रजीको प्रणाम करके बोले–हे नाथ ! इस समय मैंने जान लिया कि आप सम्पूर्ण अवतारोंको धारण करनेवाले अनन्त दिव्यगुणोंसे युक्त, सभी अवतारोंके मूलकारण, तथा ब्रह्मादि देवताओंके भी स्वामी हैं ॥७९॥

हे रघुनन्दनजू ! आपके दर्शनोंकी इच्छासे ही श्रीलक्ष्मीपति विष्णुभगवान्के इस धनुषको मैं अपने हाथमें ढोता रहा हूँ, हे कृपा-शील-सौन्दर्य-क्षमाके अनुपम सागर प्रभो ! छोटे भ्राता श्रीलखनलालजीके समेत आपको मेरा नमस्कार है ॥८०॥

हे ईश ! हे ककुत्स्थ वंशमें प्रकट हुये रघुकुलके स्वामी दशरथ नन्दन श्रीरामभद्रजू! आपने जो मुझको अनुशासित किया, इस बातके लिये आपको लज्जा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि आप केवल रघुकुलके ही पति नहीं, अपितु त्रिलोकीके पति हैं और मैं ब्राह्मण ही नहीं, राजवंशका शत्रु हूँ, इसलिये रघुपतिपदके अधिकारानुसार नहीं, अपितु त्रिलोकी नाथ पदके अधिकारानुसार जब आप सभी गौ-ब्राह्मण-देव सन्तोंको भी उनके कर्मानुसार दण्ड व पुरस्कार दे सकते हैं, तब मेरे उद्दण्ड कर्मानुसार यदि आपने मुझे यह दण्ड दिया ही, तो त्रिलोकीनाथके पदानुसार आपके लिए लज्जा करने की कोई बात नहीं है ॥८१॥

छिन्ध्यप्रमेयमहिमञ्जगदेकनाथ ! बाणेन पुण्यनिवहं मम स्वर्गतिं च ।
संक्षम्य भानुकुलकैरवपूर्णचन्द्र ! सर्वापराधनिचयं न विजानतस्त्वाम् ॥८२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्युक्तइन्दुवदनो गतगर्ववाचा श्लक्ष्णं शरेण कलुषेतरस्वर्गती तत् ।
चिच्छेद तर्हि भृगुनायक आनतस्तं तप्तुं तपश्च समियाय महेन्द्रशैलम् ॥८३॥

हे सूर्यवंश रूपीकोकाबेली (कुमुदिनी) को पूर्ण चन्द्रमाके समान विकसित करने वाले, असीम महिमासे युक्त, जगत्‌के हे अनुपम नाथ ! आपको न जानने वाले मुझ अज्ञानीके अपराध समूहों को क्षमा करके, आप अपने इस बाणके द्वारा मेरे पुण्य समूह तथा स्वर्ग जानेकी शक्ति नष्ट कर दीजिये ॥८२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये! जब परशुरामजी महाराजने अभिमान रहित वाणीसे इस प्रकार प्रार्थनाकी, तब पूर्णचन्द्रमाके समान परम आह्लादकारी मुख कमल वाले, श्रीराघवेन्द्र सरकारजूने उस धनुष पर चढ़े हुये बाणसे, उनके पुण्य तथा स्वर्ग जाने की शक्तिको नष्ट कर, दिया, उसी समय भृगुकुल-नायक श्रीपरशुरामजी श्रीरामभद्रजीको प्रणाम करके तपस्या करने के लिये महेन्द्र पर्वत पर चले गये ॥८३॥

इति पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

— ❀❀❀ —

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः ।

श्रीराम विवाहार्थ दूतों द्वारा श्रीजनकजीका बुलावा सुनकर बरात सहित श्रीचक्रवर्तीजीका श्रीमिथिला प्रस्थान ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तस्मिन् गते तु वै सर्वे जामदग्न्ये महीश्वराः । बभूवुर्विगतातङ्का गताशा विगतस्मयाः ॥१॥
अकारि नाकिभिर्वृष्टिः कुसुमानां शुभावहा । निगद्य जय रामेति कुर्वद्भिर्दुन्दुभिस्वनम् ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनी ! श्रीपरशुरामजी महाराजके चले जाने पर सभी राजाओंका भय, आशा तथा अभिमान, नष्ट हो गया ॥१॥

हे राम ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो, ऐसा कहकर नगाड़ोंका शब्द करते हुये देवताओंने मङ्गलमयी पुष्प वर्षाकी ॥२॥

विश्वामित्रान्तिकं गत्वा नत्वा तस्य पदाम्बुजे । उवाच स्निग्धया वाचा विदेहो हर्षगद्गदः ॥३॥

श्रीजनक उवाच ।

मुनिराज ! कृपादृष्टया तवानेनेशकार्मुकः । सलीलमधुनोत्थाप्य रामभद्रेण खण्डितः ॥४॥
कारितः कृतकृत्योऽहं त्वया रामेण सर्वथा । अद्य यच्चोचितं नाथ ! तद्विचार्य्य विधीयताम् ॥५॥
भञ्जिते कार्मुके ह्यस्मिन् विवाहो दुहितुर्मम । बभूव किल रामेण मत्प्रतिज्ञानुसारतः ॥६॥
तथाऽपि मुनिशार्दूल ! लोकरीतिं प्रपश्यता । कर्त्तव्यो विधिनोद्वाहो मया सर्वसुखावहः ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इति तद्भाषितं श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः । उवाच मधुरां वाणीं ह्लादयन्नृपतेर्मनः ॥८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

प्रेष्यन्तां भवता दूता अयोध्यामविलम्बतः । समानेतुं नृपं दत्त्वा पत्रिकां स्वाक्षराङ्किताम् ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

कौशिकेन समाज्ञप्तस्तदैवं मिथिलाधिपः । आदिदेश समाहूय दूतान् गमनहेतवे ॥१०॥
ते प्रहृष्टेन मनसा दूताः कार्यविशारदाः । आदाय पत्रिकामीयुरयोध्यां नृपमानताः ॥११॥
अथ श्रीमान् समाहूय विदेहः सर्वमन्त्रिणः । अलङ्कारयितुं तेभ्यो निदेशं दत्तवान् पुरीम् ॥१२॥

श्रीविदेहजी महाराज श्रीविश्वामित्रजीके समीपमें जाकर उनके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करके हर्षसे गद्गद हो, स्नेहभरी वाणीसे बोले ॥३॥ हे मुनिराज ! आपकी कृपादृष्टिसे ही खेलपूर्वक इस समय श्रीरामभद्रजूने भगवान् शिवजीके धनुषको उठाकर तोड़ा है ॥४॥

हे नाथ ! आपने श्रीरामभद्रजूके द्वारा मुझे पूर्ण कृतार्थ कर दिया, अब जैसा उचित हो विचार कर कीजिये ॥५॥ हमारी प्रतिज्ञानुसार इस धनुषके टूटते ही निश्चय ही श्रीरामभद्रजूके साथ श्रीललीजूका विवाह हो चुका ॥६॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! तथापि यह विवाह सभी को सुखदाई होनेसे, लोक रीतिको देखते हुये मुझे विधि पूर्वक करना ही ठीक होगा ॥७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस वचनको सुनकर मुनियोंमें परमश्रेष्ठ श्रीविश्वामित्रजी महाराज उनके मनको आह्लादित करते हुये यह मधुर वाणी बोले ॥८॥ श्रीदशरथजी महाराजको बुलानेके लिये अपने हस्त कमलकी लिखी हुई पत्रिका देकर दूतोंको शीघ्र श्रीअयोध्याजी भेज दें ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे तपोधने ! श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी उस आज्ञाको पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने दूतोंको बुलाकर श्रीअयोध्याजी जानेका आदेश दिया ॥१०॥

वे कार्य कुशल दूत बड़े ही प्रसन्न मनसे श्रीमिथिलेशजी महाराजको प्रणाम करके पत्रिका लेकर श्रीअयोध्याजी गये ॥११॥ तत्पश्चात् श्रीमान् विदेहजी महाराजने अपने सभी मन्त्रियोंको बुलाकर, उन्हें पुरीको सजाने के लिये आज्ञा प्रदानकी ॥१२॥

अमात्यैस्तैर्नृपादिष्टैर्महोत्साहसमन्वितैः । अलङ्कर्तुं पुरीं कृत्स्नां शिल्पिनः संप्रचोदिताः ॥१३॥
तेषां ये परमाचार्या विश्रुता जगतीतले । निर्मातुमुद्यता आसन् विवाहोत्सवमण्डपम् ॥१४॥
ब्रह्माणं ते नमस्कृत्य विधातारं जगद्गुरुम् । मण्डपं रचयामासुर्दर्शयन्तः स्वकौशलम् ॥१५॥
अथ दूताः समासाद्य कोशलेन्द्रपुरीं शुभाम् । द्वाः स्थैः स्वागमनं राज्ञे मिथिलाया न्यवेदयन्॥१६॥
राजा दशरथस्तांस्तु समाहूय च सादरम् । प्रीत्या कुशलमप्राक्षीत्प्रणतान्भक्तिसंयुतान् ॥१७॥
निवेद्य कुशलं तस्मै पत्रिकां मिथिलेशितुः । प्रदाय नरदेवाय स्थिताः संयतपाणयः ॥१८॥
तामसौ मिथिलेन्द्रस्य करकञ्जाक्षराङ्किताम् । पत्रिकां वाचयामास स्रवत्स्नेहाश्रुलोचनः ॥१९॥
पुनस्तानुरसाऽऽलिङ्ग्य दूतान्वचनमब्रवीत् । कथं श्रीमिथिलेन्द्रेण रामो ज्ञातस्तु सानुजः ॥२०॥

दूता ऊचुः ।

अयं भानुरितिज्ञानप्राप्तये किं नराधिप ! । दीपापेक्षा भवेत्पुंसां कदाचिदपि मानद ॥२१॥
एवं हि सानुजो रामस्तेजसा स्वेन भूभृता । परिज्ञातो महाराज तेनाचिन्त्यपराक्रमः ॥२२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञा पाकर महान् उत्साहसे युक्त उन मन्त्रियोंने नगरकी सजावट के लिये शिल्पकारोंको प्रेरित किया ॥१३॥

पुनः पृथ्वीतल पर उन शिल्पकारोंके विशेष विख्यात परमाचार्य विवाह-मण्डप बनानेको उद्यत हो गये ॥१४॥ उन परमाचार्योंने सम्पूर्ण सृष्टिको बनाने वाले, जगद्गुरु श्रीब्रह्माजीको प्रणाम करके, अपनी चतुराईको दिखाते हुये विवाह मण्डपकी रचना प्रारम्भकी ॥१५॥

उधर दूतोंने श्रीचक्रवर्तीपुरी(श्रीअयोध्याजीमें)पहुँचकर द्वारपालोंके द्वारा अपने श्रीमिथिलाजी से आनेका समाचार श्रीदशरथजी महाराजको निवेदन कराया ॥१६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके उन श्रद्धालु दूतोंको बुलाकर उनके प्रणाम कर चुकने पर श्रीदशरथजी महाराजने प्रेमपूर्वक आदर समन्वित उनसे कुशल समाचार पूछाः—॥१७॥

वे दूत कुशल समाचार निवेदन करके उन्हें श्रीमिथिलेशजी महाराजकी चिट्ठी देकर हाथ जोड़कर खड़े होगये ॥१८॥

श्रीदशरथजी महाराजने अपने नेत्रोंसे स्नेहमय अश्रुओंको गिराते हुये श्रीमिथिलेशजी महाराजके करकमलोंसे लिखी हुई उस पत्रिकाको पढ़ा ॥१९॥

पुनः हृदय लगाकर दूतोंसे बोलेः-हे भैया! छोटे भ्राता लखनलालके सहित श्रीरामभद्रजीको श्रीमिथिलेशजी महाराजने किस प्रकार पहिचाना ? ॥२०॥

दूत बोलेः—हे सम्मान-प्रदायक महाराज ! ये सूर्य देव हैं इस जानकारीके लिये क्या कभी मनुष्योंको दीपककी आवश्यकता होती है ? अर्थात् नहीं, तेज ही उनका परिचय करा देता है ॥२१॥ हे महाराज! इसी प्रकार राजा श्रीजनकजीने छोटे भाई सहित, जिनके पराक्रमका कोई विचार भी नहीं कर सकता, उन श्रीरामभद्रजीकोउनके तेजसेही पहिचाना है ॥२२॥

सर्वासुधारिणां शक्तिस्वरूपं शाङ्करं धनुः । यत्स्पर्शात्सर्वभूपाला बभूवुर्वञ्चितस्मयाः ॥२३॥
उद्धृतो येन कैलासः पुरा वै कन्दुकोपमः । सोऽपि दृष्ट्वा दशग्रीवो सलज्जोयं ययौ पुरीम् ॥२४॥
तमेव शाम्भवं चापं सभायां रघुनन्दनः । कौशिकेन समादिष्टो बभञ्जोत्थाप्य लीलया ॥२५॥
महता कर्मणाऽनेन रामो राजीवलोचनः । विराजते महाराज ! नृपाणां सदसि स्थितः ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

दूतागमनमाकर्ण्य भरतः खेलतत्परः । सानुजस्तूर्णमागच्छत्तदानीमन्तिके पितुः ॥२७॥
पठित्वा सोऽपि तां नत्वा पत्रिकां प्रेमनिर्भरः । भूयो भूयो हि पप्रच्छ वृत्तान्तं स्वाग्रजन्मनः ॥२८॥
दूता बहुविधं प्राहुस्तेऽपि प्रीतिवशंगताः । चरितं रामचन्द्रस्य पुण्यं श्रवणमङ्गलम् ॥२९॥
वशिष्ठाय ततस्तेन पत्रिका चक्रवर्तिना । दर्शिता मिथिलेन्द्रस्य प्रणिपत्य सुखावहा ॥३०॥
तामवेक्ष्य प्रहृष्टात्मा वशिष्ठः कोशलेश्वरम् । अब्रवीच्छ्लक्ष्णया वाचा रामस्मरणविह्वलम् ।३१।

श्रीवशिष्ठ उवाच ।

अतृष्णं सरितो यान्ति यथा सर्वा हि सागरम् । आयान्ति धर्मशीलं वै तथैवाशेषसम्पदः ॥३२॥

सभी प्राणियोंका शक्तिस्वरूप भगवान् शिवजीका धनुष था, जिसके स्पर्शमात्रसे ही सभी राजा अभिमानसे वञ्चित हो गये ॥२३॥

जिसने पहिले कैलाशको गेंदके समान उठा लिया था, वह रावण भी जिस धनुषको देखकर लज्जित हो अपनी पुरी (लङ्का) को चला गया ॥२४॥

उसी शिव धनुषको श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी आज्ञासे श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने खेल-पूर्वक उठाकर सभाके बीचमें तोड़ डाला ॥२५॥ हे महाराज ! इस महान् कर्मके द्वारा कमलदललोचन श्रीरामभद्रजू राजसभामें सर्वोत्कृष्टताको प्राप्त हो रहे हैं ॥२६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे तपोधने ! उसी समय खेलते हुये श्रीभरतलालजी दूतोंके आनेका समाचार सुनकर भैया श्रीशत्रुघ्नलालजीके समेत, अपने पिताजीके पास तुरन्त आगये ॥२७॥

उस पत्रिकाको प्रणाम पूर्वक पढ़ करके प्रेम निर्भर हो, बारम्बार अपने बड़े भैया श्रीराघवेन्द्रकुमार सरकारका समाचार पूछने लगे ॥२८॥ उन दूतों ने भी प्रेम वश हो श्रवण-मात्रसे मङ्गलकारक श्रीरामभद्रजूके विविध प्रकारके पवित्र चरितों को कह सुनाया ॥२९॥

तत्पश्चात् श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने प्रणाम करके श्रीवशिष्ठजी महाराजको श्रीमिथिलेशजी महाराजकी सुख प्रदायिनी उस चिठ्ठी को दिखाया ॥३०॥

पत्रिका को देखकर मनमें अत्यन्त हर्षित हो श्रीवशिष्ठजी महाराज, श्रीरामभद्रजूके स्मरणसे विह्वल, अयोध्यानाथ श्रीदशरथजी महाराजके प्रति, अत्यन्त कोमल वाणी बोले:-॥३१॥

हे राजन् ! धर्मात्मा पुरुषोंके पास सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ इस प्रकार स्वयं आती रहती हैं, जैसे सभी नदियाँ कामनाहीन समुद्रके पास पहुँचती हैं ॥३२॥

कश्च लोकत्रये राजन् ! पुण्यपुञ्जो भवादृशः । यस्य पुत्रत्वमापन्नो रामः सर्वेश्वरः प्रभुः ॥३३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

मिथिलागमनार्थाय सुप्रबन्धो विधीयताम् । निगद्येति महातेजा बशिष्ठः स्वाश्रमं ययौ ॥३४॥
प्रविश्यान्तः पुरं राजा दर्शयामास पत्रिकाम् । राज्ञीभ्यः खिन्नचित्ताभ्यो विरहोच्छेदकारिकाम् ।३५।
तां विलोक्य मुदं प्राप्ता अनिर्वाच्यां हि मातरः । दानं दत्त्वा च विप्रेभ्यः प्रचक्रुर्मङ्गलोत्सवम्।३६।
अयोध्या सर्वतोऽमात्यैस्तदाऽलङ्कारिता भृशम् । सहट्टमार्गपुलिना सदेवालयवाटिका ॥३७॥
सीतारामात्मकं गानं माङ्गलिकं वराङ्गनाः । गायन्त्यः पर्यदृश्यन्त यत्र तत्र मृगीदृशः ॥३८॥
वेदपाठध्वनिश्चापि क्वचिच्चित्तापहारकः । विवाहवार्ता रामस्य जनैः सर्वत्र श्रूयते ॥३९॥
विवाहयात्रां रामस्य सामात्यो भरतः प्रियः । नरदेवेन सोत्साहो रचयामास चोदितः ॥४०॥
शुभे मुहुर्ते संप्राप्ते बशिष्ठो भगवान् स्वयम । विवाहयात्रया साकं भूपं प्रस्थातुमादिशत् ॥४१॥
तदा स्वर्णमये रम्ये नानारत्नचमत्कृते । रथे बशिष्ठमुर्वीशः सादरं संन्यवेशयत् ॥४२॥

हे राजन्! सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामभद्रजी जिनके पुत्र हैं, भला उन आपके समान तीनों लोकों में पुण्य का राशि ही कौन है ? अर्थात कोई नहीं ॥३३॥

अत एव श्रीमिथिला चलनेके लिये अब आप सुन्दर प्रवन्ध कीजिये । श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले— हे कात्यायनी! महातेजस्वी श्रीवशिष्ठजी महाराज श्रीदशरथजी महाराज से इस प्रकार कह कर अपने आश्रम को पधारे ॥३४॥

श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने अपने अन्तः पुरमें जाकर खिन्न चित्त हुई अपनी रानियोंको विरह काटने वाली वह चिट्ठी दिखायी ॥३५॥

उसको देखकर सभी माताओंने अवर्णनीय सुखको प्राप्त किया, पुनः ब्राह्मणोंको दान देकर वे मङ्गलोत्सव मनाने लगीं ॥३६॥

मन्त्रियों ने देवालय, वाटिका, बाजार, मार्ग, तथा नदी, सर (तालाब) के किनारों समेत श्रीअयोध्याजीकी सब ओर से बहुत-बहुत सजावट करायी ॥३७॥

जहाँ तहाँ सर्वत्र मृगलोचना सुन्दरी स्त्रियाँ श्रीसीताराम सम्बन्धी मङ्गलगान गाती दिखाई देने लगीं ॥३८॥ कहीं कही चित्ताकर्षक वेद पाठ ध्वनि, तो कहीं श्रीरामविवाहकी चर्चा लोगोंको सर्वत्र सुनाई पड़ने लगीं ॥३९॥ श्रीदशरथजीमहाराजकी प्रेरणासे मन्त्रियोंके सहित प्यारे श्रीभरतलालजीने उत्साह-पूर्वक श्रीरामभद्रजूकी बरातको सजाया ॥४०॥

शुभ मुहूर्त आने पर भगवान् श्रीवशिष्ठजीने श्रीदशरथजीमहाराजको बरातके समेत प्रस्थान करनेकी आज्ञा प्रदानकी ॥४१॥

तब श्रीदशरथजी महाराजने अनेक प्रकारके रत्नोंसे चमकते हुये, सुवर्णके मनोहर रथपर श्रीवशिष्ठजीमहाराजको आदर पूर्वक विराजमान किया ॥४२॥

गानं माङ्गलिकं स्त्रीषु गायन्तीषु मनोहरम् । आरुरोह रथं राजा हृदि संस्मृत्य शङ्करम् ॥४३॥
गर्जितैः कुञ्जराणां च सह घण्टामहास्वनैः । रथानां घण्टिकाशब्दैर्ह्रेषाभिश्चैव वाजिनाम् ॥४४॥
अनेकबिधवाद्यानां जयघोषस्य निःस्वनैः । पूरितं सकलं भद्रे ! तदानीं भुवनत्रयम् ॥४५॥
अवर्षन् देवपुष्पाणि त्रिदशा मोदनिर्भराः । प्रस्थीयमाने भूपेन्द्रे रथस्थे ससुतद्वये ॥४६॥
श्यामकर्णहयारूढाः कुमारा रघुवंशजाः । गच्छन्तः परिशोभन्ते चञ्चलाश्चित्तचौरकाः ॥४७॥
सज्जितया प्रवेण्या च शोभमानान् महागजान् । सुखमारुह्य गच्छन्तः सुशोभन्ते सहस्रशः ॥४८॥
केचिद्धयरथारूढा केचिद्गजरथे स्थिताः । जग्मुश्च तीव्रवेगेन सर्वाभरणभूषिताः ॥४९॥
मागधा वन्दिनः सूता दासाश्चैव पुरौकसः । यथाधिकारमारूढाः प्रस्थिता मिथिलापुरीम् ॥५०॥
उच्चैर्ध्वजपताकाभिः स्यन्दनो भास्करप्रभः । नाना मणिगणाकीर्णः खे नृपस्येन्दुवद्बभौ ॥५१॥
दर्शनीयतमा साऽऽसीद्विबुधानामपि प्रिये ! । विवाहयात्रा रामस्य व्रजन्ती रम्यवर्त्मना ॥५२॥

स्त्रियोंके द्वारा मङ्गलगान होते समय श्रीदशरथजी महाराज अपने हृदयमें श्रीभोलेनाथजी का सुमिरण करके रथ पर विराजमान हुये ॥४३॥

हे कल्याणी! हाथियोंकी गर्जनसमेत उनके घण्टोंके, रथोंकी घण्टियोंके, घोड़ोंके हिनहिनानेके तथा अनेक विध बाजोंके, एवं जय घोषके महान् शब्दों द्वारा तीनों लोक परिपूर्ण होगये ।४४-४५।

श्रीभरत, शत्रुघ्न, दोनों राजकुमारोंके समेत रथमें बैठकर श्रीदशरथजी महाराजके प्रस्थान करते समय आनन्द निर्भर हो, देवता कल्पवृक्ष फूलोंको वर्षाने लगे ॥४६॥

श्यामकर्ण जातिके घोड़ों पर चढ़कर चञ्चल, चित्तचोर, रघुवंशी-राजकुमार चलते हुये अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुये ॥४७॥ तथा झूलोंसे सजाये हुये बड़े-बड़े हाथियों पर बैठकर चलते हुये, सहस्रों रघुवंशी कुमार बड़ी शोभा को प्राप्त हो रहे थे ॥४८॥

उन बरातियोंमें कुछ सम्पूर्ण शृङ्गार धारण किये हुये घोड़े और कुछ हाथी वाले रथोंमें बैठकर शीघ्र गतिसे प्रस्थित हुए ॥४९॥

मागध, बन्दी, सूत, (भाट आदिक बंश प्रशंसक जाति वाले) दास तथा पुरवासी जन अपने अपने अधिकारानुसार सवारियों पर बैठकर श्रीमिथिला पुरी को बिदा हुए ॥५०॥

ऊँची ऊँची ध्वजा पताकाओंसे युक्त सूर्यके समान प्रकाशमान, अनेक प्रकारकी मणियोंसे परिपूर्ण श्रीदशरथजी महाराजका रथ आकाशमें चन्द्रमाके समान सुशोभित हुआ अर्थात् जैसे चन्द्रमासे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार उनके रथसे सारी बारात सुशोभित हुई॥५१॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे प्रिये! कहाँ तक कहें? मनोहर मार्गसे जाती हुई श्रीरामभद्रजूकी वह बरात देवताओंके लिये भी अत्यन्त दर्शन करने योग्य हुई ॥५२॥

शकटोष्ट्रवृषेन्द्राश्वैः सहस्त्रैर्मन्त्रिणोदिताः । पाथेयं विविधं तूर्णमानयन् राजकिङ्कराः ॥५३॥
आयान्तीं तामथाकर्ण्य विदेहो नृपसत्तमः । पन्थानं शिल्पिनां मुख्यैः सहस्त्रैः समशोधयत् ॥५४॥
निम्नगास्वपि सर्वासु बद्धाः सुदृढ़सेतवः । सरयूकमलामध्यप्रदेशस्थासु शोभनाः ॥५५॥
कृतानि पथि रम्याणि विश्रामार्थं शतानि च । स्थानानि परिपूर्णानि सर्वावश्यकवस्तुभिः ॥५६॥
जलशालासहस्त्राणि खाद्यवस्तुयुतानि च । कृतानि शिल्पिभिश्चैव निदेशान्मिथिलेशितुः ॥५७॥
अतः सुखेन मिथिलां नृपेन्द्रः पञ्चमेऽहनि । प्रविवेश महारम्यां जनकेनाभिपालिताम् ॥५८॥
प्राकारैः सप्तभिर्युक्तां नानारत्नचमत्कृतैः । चतुर्विंशतिसंख्याकैरुद्यानैश्च सुवेष्टिताम् ॥५९॥
रक्षकैः बहुसाहस्त्रैः रक्षिताञ्च समन्ततः । दत्तचित्तैर्महाशूरैश्चतुर्भिर्निःसरैर्युताम् ॥६०॥
त्रिखण्डोच्चगृहश्रेण्या ह्याद्यया च तथान्त्यया । आवृत्या मनुखण्डोच्चगृहपङ्क्त्या विराजिताम्॥६१॥
सरित्कूपतडागैश्च वापिकाभिः सरोवरैः । आरामैर्वाटिकाभिश्च विहारोद्यानसङ्कुलाम् ॥६२॥
अत्यन्तमृदुलक्षोणीं पताकाध्वजमण्डिताम् । कलशैर्दीप्तसौवर्णैर्योजनप्राप्तदर्शनाम् ॥६३॥

मन्त्रियोंकी आज्ञानुसार राजसेवक हजारों बैल गाड़ी, ऊँट, बैल, तथा घोड़ोंके द्वारा अनेकों प्रकारकी मार्गोचित्त आवश्यक सामग्रियों को लेकर शीघ्र चले ॥५३॥

बरातको आती हुई सुनकर राजाओंमें परमश्रेष्ठ श्रीविदेहजी महाराजने सहस्त्रों मुख्य शिल्पकारियोंके द्वारा बरात मार्गको सम्यक् प्रकारसे ठीक कराया ॥५४॥

श्रीकमलाजीसे लेकर श्रीसरयूजीके मध्य वाले देशोंमें स्थित सभी नदियों पर सुन्दर तथा अत्यन्त पक्के पुलों का निर्माण कराया ॥५५॥ मार्गमें विश्राम करनेके लिये सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुओंसे परिपूर्ण कई सौ मनोहर विश्रामगृहोंको बनवाया ॥५६॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञासे शिल्पकारियोंने खाद्य-वस्तुओंसे युक्त कई सहस्त्र जलशालायें (प्याऊ) बनाई अत एव पाँचवे दिन श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने सुखपूर्वक श्रीजनकजी महाराज द्वारा पालित अत्यन्त मनोहारिणी श्रीमिथिलाजीमें प्रवेश किया॥५७॥५८॥

वह श्रीमिथिला पुरी अनेक रत्नोंसे अलंकृत सात आवरणों (घेरों) से युक्त तथा चौबिस मनोहर उपवनोंसे घिरी हुई कई सहस्त्र पूर्ण सावधान बड़े-बड़े योद्धा रक्षक जिसकी चारो ओरसे सुरक्षा कर रहे थे, और जो चार द्वारोंसे युक्त थी ॥५९॥६०॥

जो प्रथम आवरणके तीनखण्ड ऊँचे महलोंकी पंक्तिसे और अन्तिम (सातवें) आवरणके चौदह खण्ड ऊँचे महलोंकी पंक्तिसे सुशोभित नदी, कुआँ, तालाब, वापी(बावड़ी), कुण्ड, बगीचा, पुष्पवाटिका(फुलवाड़ी)तथा विहार-वनोंसे पूर्ण थी॥६१॥६२॥ जिसकी भूमि अत्यन्त कोमल थी, प्रकाशमान सुवर्ण(सोने)के कलशोंसे जिसकादर्शन एक योजनसे ही प्राप्तहोने लगता था तथा जो ध्वज-पताकाओंकी सजावटसे युक्त थी ॥६३॥

अनेकविधवाद्यानां कलघोषैः समाकुलाम् । तामुदीक्ष्य पुरीं राजा रामस्मरणविह्वलः ॥६४॥
तदानीं मिथिलेन्द्रेण प्रेषिता भ्रातरो मुदा । लक्ष्मीनिध्यादिभिः पुत्रैः शतानन्देन संयुताः ॥६५॥
स्वागतार्थं नरेन्द्रस्य रथवाजिगजस्थिताः । विप्रवृन्दैरमात्यैश्च पुरवासिभिरन्विताः ॥६६॥
दून्दुभ्यादिसुवाद्यानि वाद्यविद्याविपश्चिताम् । वादयतां मनोज्ञानि द्रुतं ते तमुपस्थिताः ॥६७॥
मिमिलुश्च मिथः सर्वे परमानन्दसंप्लुताः । जयेति कुर्वतां घोषं वन्दिनां च पुरौकसाम् ॥६८॥
प्रणम्यान् प्रणतिं कृत्वा वयस्यानुपगूह्य च । प्रेम्णा विधाय संहृष्टा आदरं ते लघीयसाम् ॥६९॥
शुभोपायनपात्राणि सहस्राणां शतानि च । अनेकविधिवस्तूनां नृपेन्द्राय समार्पयन् ॥७०॥
फलानां रसपूर्णानां विविधानां पृथक्पृथक् । दध्नां च चिपिटान्नानां भारान्वस्त्रसमावृतान् ॥७१॥
राजभृत्यैः समानीतान् स्वागतार्थं मनोहरान् । माङ्गल्यद्रव्यसंयुक्तान्नृपः प्रेक्ष्य प्रहर्षितः ॥७२॥
सादरं तैर्द्रुतं नीतो ह्यतीत्यावरणानि षट् । राजद्वारं विदेहेन विधिना तत्र पूजितः ॥७३॥

अनेक प्रकार बाजाओंके मनोहर शब्दोंसे परिपूर्ण उस श्रीमिथिलापुरीका दर्शन करके श्रीदशरथजी महाराज श्रीरामभद्रजूका स्मरण करके विह्वल हो गये ॥६४॥

उसी समय श्रीमिथिलेशजी महाराजने हर्ष पूर्वक ब्राह्मणवृन्द, मन्त्रिगण पुरवासियोंके सहित श्रीलक्ष्मीनिधि आदि अपने राजकुमारोंके समेत श्रीशतानन्दजी महाराजके साथ हाथी, घोड़ों और रथों पर विराजमान अपने श्रीकुशध्वजजी आदि भाइयोंको श्रीदशरथजी महाराजका स्वागत करनेके लिये भेजा ॥६५॥६६॥

वाद्य-विद्याके पूर्ण ज्ञाताओंके मनोहर दुन्दुभी आदि सुन्दर बाजोंके बजाते हुये, वे शीघ्र ही श्रीदशरथजी महाराजके समीपमें जा पहुँचे ॥६७॥

पुनः पुरवासी तथा वन्दियों (भाटों) के जयकार घोष करते समय, महान् आनन्दमें डूबे हुये, वे परस्पर एक दूसरेसे मिलने लगे ॥६८॥

गुरुजनोंको प्रणाम व सम अवस्था वालोंका आलिङ्गन तथा छोटोंका स्नेह पूर्वक आदर करके वे पूर्ण हर्षको प्राप्त हुये ॥६९॥ पुनः उन्होंने अनेक प्रकारकी वस्तुओंके कई लाख पात्रोंको श्रीदशरथजी महाराजको अर्पण किया ॥७०॥

राजसेवकों द्वारा स्वागतार्थ लाये हुये वस्त्रोंसे ढके अनेक प्रकारके रस पूर्ण फल, दही, चिउड़ा आदिके अलग-अलग मनोहर भारोंको मङ्गल वस्तुओंसे युक्त देखकर, श्रीदशरथजी महाराज अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुये ॥७१॥७२॥

स्वागतकारी श्रीविदेह महाराजके उन भाइयोंने उन्हें आदरपूर्वक नगरके छः आवरणों को पार करके श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वार पर पहुँचाया, वहाँ पर श्रीविदेहजी महाराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥७३॥

प्रविवेश प्रहृष्टात्मा जनावासं नृपस्तदा । कोशलेन्द्रो वशिष्ठेन साकमुद्वाहपर्वणि ॥७४॥
वृष्टिं पुष्पमयीं चक्रुर्निर्जरा मोदनिर्भराः । प्रविशन्तं महाराजं जनावासं विलोक्य च ॥७५॥
पञ्चमावरणं तत्तु जनावासो बभूव ह । पुर्य्याः श्रीमिथिलेन्द्रस्य तप्तकार्तस्वरप्रभम् ॥७६॥
पितुरागमनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । दर्शनातुरचित्तोऽपि नैच्छद्वक्तुं महामुनिम् ॥७७॥
ततो राममुवाचेदं विश्वामित्रः स्वयं वचः । वत्स ! रामेति सम्बोध्य तच्छीलेन प्रहर्षितः ॥७८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

सहायातोऽनुजाभ्यां ते पिता श्रीदशरथो वशी । तं त्वद्वियोगसंतप्तं नचिराद्द्रष्टुमर्हसि ॥७९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एवमुक्त्वोत्थिते तस्मिन् कौशिके हि तपोधने । सुताभ्यां गुरुणोर्वीशो वशिष्ठेन समन्वितः ॥८०॥
मन्त्रिभिर्विप्रवृन्दैश्च युक्तो दशरथो नृपः । रामदर्शनलोलाक्षः स्यन्दनेन समाययौ ॥८१॥
दण्डवत्पतितं भूमौ तं निरीक्ष्य नरेश्वरम् । विश्वामित्रो महातेजा द्रुतमुत्थाप्य सस्वजे ॥८२॥

तत्पश्चात् श्रीदशरथजी महाराज उस विवाह पर्व पर अत्यन्त हर्षित हृदयसे श्रीवशिष्ठजीके सहित बरातके साथ-साथ जनवासेमें पधारे ॥७४॥

उस जनवासेमें श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको प्रवेश करते देखकर आनन्द मग्न हो देवताओंने पुष्पोंकी वर्षाकी ॥७५॥ तपाये सुवर्णके समान प्रकाशसे युक्त श्रीमिथिलेश महाराजकी पुरीका वह पाँचवाँ आवरण ही जनवासा हुआ ॥७६॥

कमलके समान विशाल व मनोहर नयन श्रीरामभद्रजू अपने पिताजीका आगमन सुनकर दर्शनोंके लिये चित्तमें व्याकुल होने पर भी संकोच वश उन्होंने महामुनि श्रीविश्वामित्रजीसे कहनेकी इच्छा न की ॥७७॥ किन्तु उनके शीलसे अत्यन्त हर्षित हो श्रीविश्वामित्रजी महाराज उनसे हे वत्स ! हे राम ! इस प्रकार सम्बोधित करके स्वयं बोले:–॥७८॥

हे वत्स ! आपके पिता श्रीदशरथजी आपके दोनों छोटे भैया श्रीभरत-शत्रुघ्नलालजीके समेत आये हैं और वे आपके वियोगसे अत्यन्त संतप्त हैं अतः आप अपने पिताजीका शीघ्र दर्शन कीजिये ॥७९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे यशोधने ! इस प्रकार कहकर महामुनि श्रीविश्वामित्रजी महाराजके उठते ही श्रीदशरथजी महाराज दोनों पुत्र श्रीभरत-शत्रुघ्नलालजी तथा गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी महाराजके सहित श्रीरामभद्रजूके दर्शनार्थ चञ्चल नेत्र हो अपने मन्त्रियों तथा ब्राह्मणोंके साथ रथके द्वारा वहाँ आ पहुँचे ॥८०॥८१॥

श्रीदशरथजी महाराजको भूमि पर दण्डके समान पड़े अर्थात् साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये देखकर, महातेजस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराजने उनको उठाकर तुरन्त हृदयसे लगाया ॥८२॥

अभिवाद्य वशिष्ठं स कुलाचार्यं महामुनिम् । रामः कमलपत्राक्षो लक्ष्मणेनान्वितो मुदा ॥८३॥
प्रणमन्तं तमिन्द्वास्यं सानुजं कोशलेश्वरः । समालोक्योरसाऽऽलिङ्ग्य परमानन्दमाप्तवान् ॥८४॥
ततो भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या परमया युतौ । रामस्य लोकरामस्य पद्मपादौ ववन्दतुः ॥८५॥
उभावालिङ्ग्य तौ तेन श्रीरामेण कृतार्थितौ । ततो ननाम भरतं लक्ष्मणः परया मुदा ॥८६॥
तं महताऽनुरागेण भरतः कैकयीसुतः । गाढमालिङ्ग्यामास तस्य भाग्यं प्रशंसयन् ॥८७॥
कृतप्रणामं सौमित्रिं सौमित्रिः परिषस्वजे । ब्राह्मणा वन्दिता भक्त्या रामेणानन्दनिर्भराः ॥८८॥
मन्त्रिणः सानुजं रामं वीक्ष्य तेन नमस्कृताः । भूयो भूयः समालिङ्ग्य समीयुः सुखमद्भुतम् ॥८९॥

इत्थं पङ्क्तिरथः समाजसहितः श्रीकौशिकेनान्वितो
रामं विश्वमनोहरं तदनुजं कामं हृदाऽऽलिङ्ग्य च ।
ब्रह्मानन्दयुतः प्रसन्नहृदयः पुत्रैश्चतुर्भिः समं
प्रागच्छज्जनवासमुख्यनिलयं द्वारेण पूर्वेण सः ॥९०॥

कमलदललोचन श्रीरामभद्रजू श्रीलखनलालजीके समेत अपने कुलगुरु महामुनि श्रीवशिष्ठजी को प्रणाम करके, मोद को प्राप्त हुये ॥८३॥ पुनः श्रीलखनलालजीके समेत चन्द्रमाके समान परमाह्लादकारी मुखवाले श्रीरामभद्रजीको प्रणाम करते हुये देखकर, श्रीदशरथजी महाराजने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त किया तत्पश्चात् श्रीभरतलालजी तथा श्रीशत्रुघ्न-लालजीने समस्त लोकोंके मनको हरनेवाले श्रीरामभद्रजूके श्रीचरणकमलोंकोप्रणाम किया८४-८५।

दोनों भाइयोंको प्यारे श्रीरामभद्रजूने अपने हृदयसे लगाकर कृतार्थ करदिया, तदनन्तर श्रीलखनलालजीने बड़े हर्ष-पूर्वक श्रीभरतलालजीको प्रणाम किया उन्हें कैकयी नन्दन श्रीभरत-लालजीने बड़ेही प्रेमपूर्वक उनके सौभाग्यकी सराहना करते हुये अपने हृदयसे लगाया॥८६॥८७॥

श्रीशत्रुघ्नलालजीके प्रणाम करने पर श्रीलखनलालजीने उनका आलिङ्गन किया, इधर श्रीरामभद्रजूके श्रद्धा-समन्वित प्रणाम करने पर ब्राह्मण वृन्द आनन्द निर्भर हो गये ॥८८॥ श्रीरामभद्रजूने मन्त्रियोंको नमस्कार किया । श्रीलखनलालजी सहित राभद्रजूकादर्शन करके तथा बारम्बार उन्हें हृदयलगाकर वे विलक्षण सुखको प्राप्त हुए।॥८९॥ इस प्रकार विश्वमनोहर श्रीरामभद्रजीको तथा उनके छोटे भैया श्रीलखनलालजीको इच्छानुसार हृदयसे लगाकर, पूर्ण भगवदानन्दको प्राप्त हो प्रसन्नहृदय श्रीदशरथजीमहाराज अपने चारो राजकुमारोंसे युक्त, समाज सहित श्रीविश्वामित्रजीके साथ-साथ पूर्व द्वारसे मुख्य जनवासा भवन पधारे ॥९०॥

इति षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

--❀❀❀--

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः ।

बरात स्वागत, श्रीराम-विवाहमण्डप प्रवेश तथा श्रीवशिष्ठजीकी आज्ञासे
सर्ववन्दिता श्रीजानकीजी का मण्डपागमन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रीकोशलेन्द्रं जनवासगेहे निवेश्य ते सर्वसुखोपपन्ने ।
सुखं निवृत्ता जनकानुजास्तं नतास्ततः स्वागतकारिणश्च ॥१॥
सख्यस्तदानीं नवसप्तपूर्णा विध्वाननाः पद्मपलाशनेत्राः ।
सहस्रशो मङ्गलगानपङ्क्ति गायन्त्य आपुर्जनवासगेहम् ॥२॥
रामस्य भाले तिलकं मनोज्ञं गोरोचनाद्यैः शुभदैर्विधाय ।
लब्ध्वा पुरस्कारममूश्च राज्ञः समागता मैथिलराजवेश्म ॥३॥

श्रीपुरजना ऊचुः ।

नार्यो नरास्तर्हि निबद्धयूथा ऊचुर्मिथः सादरमेतदेव ।
शोभैकसिन्धू मिथिलेशपुत्री रामो दशस्यन्दननन्दनश्च ॥४॥
श्रीकोशलेशो मिथिलेश्वरश्च लोकत्रये सत्कृतिनां वरिष्ठौ ।
वयं सुधन्या अपि पुण्यपुञ्जा अभूम लोके मिथिलौकसश्च ॥५॥
रामस्य या येमिथिलेशजायाः शोभामपश्याम मनोऽभिरामाम् ।
तयोरथोद्वाहसुवेषभूषां स्यामावलोक्याङ्ग सुखं कृतार्थाः ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनि! श्रीजनकजी महाराजके भैया, श्रीदशरथजी महाराज को सब सुख सम्पन्न उस जनवास भवनमें विराजमान करके, स्वागतकारियों सहित उनको प्रणाम कर वहाँ से सुखपूर्वक वापस हुये तब सहस्रों कमल-दललोचनाएँ, चन्द्रमुखी सखियाँ सोलहो शृङ्गार धारण करके, मङ्गल गान गाती हुई जनवासेमें गयीं ॥१॥२॥

श्रीरामभद्रजूके मस्तक पर गोरोचन आदि मङ्गलकारी (द्रव्यों) से मनोहर तिलक करके श्रीचक्रवर्तीजी महाराजसे पुरस्कार ले, वे श्रीमिथिलेश भवन वापस आईं ॥३॥

स्त्री तथा पुरुष अपना-अपना झुण्ड बना कर यह आदर पूर्वक परस्पर कहने लगे—श्रीमिथिलेशराजदुलारी तथा श्रीदशरथनन्दन श्रीरामभद्रजू, दोनों ही शोभाके सागर हैं और श्रीअवधेशजी तथा श्रीमिथिलेशजी ये दोनों, तीनों लोकोंमें सभी पुण्यकर्माओंमें श्रेष्ठ हैं, हमलोग भी बड़े सौभाग्यशाली एवं पुण्यकी राशी हैं, जो लोकमें मिथिलावासी हो श्रीरामभद्र तथा श्रीजनकराजदुलारीजूकी मनोहारिणी सुन्दरताका दर्शन कर रहे हैं और आगे पुनः दोनोंके विवाह वेषकी झाँकीका सुखपूर्वक दर्शन करके अनायास ही कृतार्थ होगें।॥४॥५॥६॥

यथा सबन्धुः सखि ! रामचन्द्रो गुणैश्च रूपेण मनोऽभिरामः ।
तथा सबन्धुर्भरतः सकाशे निरीक्षितः पङ्क्तिरथस्य रम्यः ॥७॥
रामोपमः श्रीभरतः कुमारो रामः कुमारो भरतोपमश्च ।
श्रीलक्ष्मणस्यारिरिपुश्च तस्य श्रीलक्ष्मणो भ्रात्युपमोपमेयः ॥८॥
भवेद्विवाहो ननु पङ्क्तियानप्रियात्मजानामिह चेदमीषाम् ।
गायेम सख्यः शुभमङ्गलानि गीतानि कामं परमप्रहृष्टाः ॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतत्समाकर्ण्य वचस्तयोक्तमन्या सखी तामिति संजगाद ।
विधास्यतीदं द्रुहिणो ह्यभीष्टं मा चात्र शङ्कां कुरु वारिजाक्षि ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं वदन्त्यो मुदिताननास्ता भावानुसारं सुखमद्भुतं ताः ।
जग्मुर्विशालाम्बुजपत्रनेत्राः प्रपूर्णताराधिपतुल्यवक्त्राः ॥११॥
धनुर्मखे पापधियो नृपालाः समागता ये मिथिलां मदान्धाः ।
अपूर्णकामा ह्यवलोक्य रामं स्वं स्वं च देशं विमदाः प्रजग्मुः ॥१२॥

हे सखी ! जैसे भैया लखनलालजीके सहित श्रीरामभद्रजी अपने गुण व रूपके द्वारा समस्त विश्वके मनमोहक चितचोर हैं, उसी प्रकार श्रीदशरथजी महाराजके पास अपने भैया श्रीशत्रुघ्न-लालजीके सहित श्रीभरतलालजी भी मनोहर दीखते हैं ॥७॥

श्रीरामजीकी उपमा योग्य श्रीभरतकुमारजी और श्रीभरतजीकी उपमा योग्य श्रीरामकुमारजू हैं तथा श्रीलखनलालजीकी उपमा योग्य श्रीशत्रुघ्नलालजी व उनकी उपमा योग्य श्रीलखनलालजी प्रतीत होते हैं अर्थात् दोनों ही युगल जोड़ी, एक दूसरेके उपमा और उपमेय हैं ॥८॥

अरी सखियो ! यदि दैव-संयोगसे श्रीदशरथजी महाराजके इन प्यारे चारो राजकुमारोंका विवाह यहीं हो, तो हमलोग अनुपम हर्षसे युक्त हो मङ्गलगीत गानेका सौभाग्य पा सकती हैं॥९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे कात्यायनी! उस सखीके इस बचनको सुनकर दूसरी सखी उससे बोली:–हे कमल पत्रके समान सुन्दर नेत्रोंवाली सखी ! तू इस विषयमें शङ्का न करे, हमलोगों के इस मनोरथको, ब्रह्माजी अवश्य सफल करेंगे ॥१०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे तपोधने ! पूर्ण चन्द्रमाके सदृश मुख व कमलदलके समान नेत्रों वाली वे सखियाँ इस प्रकार कहती हुई प्रसन्न मुख हो, अपने-अपने भावानुसार विलक्षण सुखको प्राप्त हुईं ॥११॥

धनुष-यज्ञमें जो अभिमानसे अन्धे, पापबुद्धि राजा श्रीमिथिलाजी आये थे, वे श्रीरामभद्रजूको देखते ही अहङ्कार रहित हो, मनोरथकी सफलता न देखकर अपने-अपने देशको चले गये ॥१२॥

सुखेन तत्रावसतो दिनानि बहून्यतीतानि नृपस्य दृष्ट्वा ।
सोद्वाहयात्रस्य सुतैश्चतुर्भिस्ततस्तु देवर्षिमुवाच वेधाः ॥१३॥

श्रीब्रह्मोवाच ।

योगर्क्षलग्नानि सवासराणि मार्गे सिते प्राणतिथि शुभानि ।
आयान्ति सर्वाणि ततो हि तस्मिन् कार्यो विवाहो दुहितुर्नृपेण ॥१४॥
त्वं सूचयैतन्मिथिलां हि गत्वा विदेहराजाय यशोधनाय ।
मा वत्स ! कार्य्यो भवता विलम्बो भद्रं हि ते तात! ममाज्ञयेतः ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इमं समासाद्य तदा विधातुर्निदेशमम्भोरुहपत्रनेत्रः ।
तं नारदो दिव्यगतिः प्रणम्य द्रुतं विदेहाधिपमाजगाम ॥१६॥
वाक्यं यदुक्तं द्रुहिणेन तस्मै तच्छ्रावयित्वा ससुखं सुरर्षिः ।
अन्तर्हितोऽभूदचिरेण तस्य प्रपश्यतो विद्युदिवाम्बुदे सः ॥१७॥
ब्रह्मोदितां पुण्यतिथिं निशम्य श्रीनारदास्यान्मिथिलेश्वराय ।
विनिश्चितां प्राग्गणकैर्नृपस्य द्विजोत्तमाः शातमवाच्यमापुः ॥१८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अवर्ण्यसत्कीर्त्तिरयं विवाहो यस्मिन्विधाता गणको बभूव ।
एतावदुक्त्वा वचनं मिथस्ते श्रीमैथिलेशं वच एतदूचुः ॥१९॥

बरातके सहित चारो पुत्रोंके साथ श्रीदशरथमहाराजको वहाँ सुख-पूर्वक निवास करते बहुत दिन व्यतीत हुये देखकर श्रीब्रह्माजीने देवर्षि श्रीनारदजीसे कहा—॥१३॥

हे तात! इस अगहन शुक्ला पञ्चमी तिथिमें सभी शुभ योग, नक्षत्र, ग्रह, दिन आरहे हैं अत एव श्रीजनकजी महाराजको अपनी श्रीललीजूका विवाह उसी दिन करना चाहिए ॥१४॥

हे तात ! तुम्हारा कल्याण हो, मेरी आज्ञासे तुम यहाँ से श्रीमिथिलाजी जाकर यशोधन (यश रूपी पूर्ण सम्पत्ति वाले) श्रीविदेहजी महाराजसे इस बातकी सूचना करदो । हे वत्स ! बिलम्ब न करना ॥१५॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे तपोधने ! श्रीब्रह्माजी की इस आज्ञाको पाकर अलौकिक गमन शक्ति वाले कमल-दल-लोचन श्रीनारदजी उन्हें प्रणाम करके श्रीविदेहजी महाराजके पास आये ॥१६॥ जो बात श्रीब्रह्माजीने कही थी, उसे सुख-पूर्वक सुनाकर उनके देखते हुये वे तुरन्त मेघमें बिजलीकी भाँति छिप गये ॥१७॥

राज-ज्योतिषियोंके द्वारा पूर्वसे निश्चितकी हुई तिथिको ही श्रीमिथिलेशजीके प्रति श्रीनारदजीके मुखसे, श्रीब्रह्माजीकी कही हुई सुनकर श्रेष्ठ ब्राह्मण वृन्द अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुये ।१८॥ जिस विवाहमें श्रीब्रह्माजी ज्योतिषी बने हैं, उसकी पवित्र-कीर्त्तिका वर्णन नहीं हो सकता, श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे प्रिये! इस प्रकार आपसमें कहकर वे उत्तम ब्राह्मणगण मिथिवंशियोंके स्वामी श्रीविदेहजी महाराजसे बोलेः—॥१९॥

श्रीब्राह्मणा ऊचुः ।

गोधूलिवेला समुपागतेयं समस्तमाङ्गल्यनिधिस्वरूपा ।
उपस्थितं कार्यमतो विधेयं त्वयाऽधुनाऽस्यां समुदारबुद्धे ! ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

आज्ञापितो विप्रवरैर्नरेशो गुरुं समाहूय समर्च्चिताङ्घ्रिम् ।
तं सुप्रसन्नाखिलरोमराजिः प्रणम्य बद्धाञ्जलिरेतदाह ॥२१॥

श्रीविदेह उवाच ।

शुभे मुहूर्त्ते सति चागते को विलम्बहेतुर्भगवन्निदानीम् ।
आनीयतां नाथ ! सगीतवाद्यं समाजयुक्तो विधिनाऽऽशु रामः ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्यर्थितः सप्रणयं नृपेण तूर्णं समाहूय स मन्त्रिवर्गम् ।
द्रव्याण्यशेषाणि शुभानि नीत्वा दध्मौ दरं वै वरमानिनीषुः ॥२३॥
अवादयन्वाद्यकलाप्रवीणा वाद्यानि नानाविधिभिर्मनोज्ञम् ।
जगुःकलं माङ्गलिकं सुगान नवा बधूट्यः पिकपोतकण्ठ्यः ॥२४॥
वेदध्वनिं तर्हि महीसुराणां प्रकुर्वतां भूपतिबान्धवाश्च ।
मुदा महीपालसुतैः समेता द्रुतेन जग्मुर्जनवासवेश्म ॥२५॥

हे सम्यक् उदार बुद्धि वाले राजन् ! सम्पूर्ण मङ्गलोंकी भण्डार-स्वरूपा यह गोधूलिकी बेला निकट है, अतः आप उपस्थित कार्यको इसमें सम्पन्न करें ॥२०॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे तपोधने ! द्विज वरोंकी इस आज्ञाको पाकर श्रीजनकजीमहाराज गुरुदेव श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाकर तथा पूजन-पूर्वक उनके श्रीचरकमलोंको प्रणाम करके प्रसन्नतासे रोम-रोम खिले हुये वे हाथ जोड़कर बोलेः-॥२१॥

हे भगवन् ! शुभ मुहूर्तके उपस्थित होने पर विलम्ब करनेका क्या कारण है ? अतः हे नाथ ! अब विधिपूर्वक श्रीरामभद्रजीको जनवासे से गानवाद्य पूर्वक समाजके सहित शीघ्र मण्डपमें ले आइये ॥२२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यायनि ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रेम-पूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीशतानन्दजी महाराजने मन्त्रियोंको बुलाकर सम्पूर्ण माङ्गलिक द्रव्योंको ले, श्रीवर सरकारको लानेकी इच्छा करके शङ्खको बजाया ॥२३॥

वाद्य कला जानने वाले गुणी जन, अनेक प्रकारसे मनोहर बाजोंको बजाने लगे और कोकिल शिशुके समान सुरीले कण्ठवाली नव बधुयें मनोहर मङ्गलगान गाने लगीं तब ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि करते हुये श्रीमिथिलेशजीके श्रीकुशध्वजजी आदि भाई श्रीलक्ष्मीनिधि आदि राजकुमारों के सहित प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र जनवास-भवनमें गये ॥२४॥२५॥

समाजमालोक्य नृपाधिपस्य तुच्छं निलिम्पाधिपवैभवं ते ।
मत्वा मुनिभ्यां सहितं प्रणम्य तं प्रार्थयामासुरिदं सभावम् ॥२६॥

श्रीजनकानुजा ऊचुः ।

उपस्थितोऽयं समयो नरेन्द्र ! वैवाहिको माङ्गलिको वरस्य ।
इतस्त्वया शैघ्र्यमतो विधेयं गन्तुं विदेहाधिपराजसद्म ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं च तेषां वचनं निशम्य वाढं समाभाष्य विरिञ्चिसूनोः ।
आज्ञामुपालभ्य सगाधिजस्य सुहृज्जनैः साकमियेष गन्तुम् ॥२८॥
अतुल्यलावण्यमयाश्वमुख्यं तदा समारुह्य समीरवेगम् ।
लोकाभिरामो वरवेषरामः कन्दर्पशोभां च तिरश्चकार ॥२९॥
भेरीविपञ्चीसुषिरादिकानां शब्दध्वनिः कर्णसुखप्रदो हि ।
व्याप्तिं चकाराखिललोकमध्ये तद्व्यद्भुतं चैतदभूत्सुराणाम् ॥३०॥
नृत्यद्धयारूढमुदारशोभं तं भ्रातृभिः साकमवेक्ष्य रामम् ।
श्रीवागुमेशा मुमुहुस्तदानीमिन्द्रः स्वभाग्योदयमोदमग्नः ॥३१॥

चक्रवर्ती श्रीदशरथजी महाराजकी सभाको देखकर उन्होंने इन्द्रके वैभवको तुच्छ मानकर श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीविश्वामित्रजी दोनों मुनियोंके समेत उनको प्रणाम करके भावपूर्वक यह प्रार्थना निवेदितकी ॥२६॥ हे राजन् ! वरके विवाहका यह मङ्गल मय समय उपस्थित है, अत एव आप यहाँसे श्रीविदेहजी महाराजके राजभवनमें पधारनेकी शीघ्रता करें ॥२७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनि ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंकी उस प्रार्थना को सुनकर तथा उनसे ऐसा ही होगा कहकर, श्रीविश्वामित्रजीके समेत श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर, सुहृज्जनोंके समेत श्रीदशरथजी महाराज श्रीजनकभवन चलनेके इच्छुक हुये ॥२८॥ तब समस्त लोक सुखदायक सौन्दर्य युक्त, दूलह वेषधारी प्यारे श्रीरामभद्रजीने अनुपम सुन्दर, वायुके समान वेगसे चलने वाले घोड़े पर विराजमान हो सबकी दृष्टिमें कामदेव की सुन्दरताको तुच्छ कर दिया ॥२९॥

उस समय भेरी (नगाड़ा) विपञ्ची (वीणा) सुषिर (वायु संयोगसे बजने वाले छिद्र युक्त) बाजोंकी श्रवण-सुखद ध्वनि सभी लोकोंमें व्याप्त हो गयी यह देखकर देवताओंको बहुत आश्चर्य हुआ ॥३०॥ नाचते हुये घोड़े पर विराजमान, अतिशय सुन्दरतासे युक्त, भ्राताओंके साथ, उन श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मुग्ध हो गये और इन्द्र अपने सौभाग्योदयके हर्षमें डूब गया ॥३१॥

एवं मुदाऽसौ स्वसुतैः परीतः श्रीकोशलेन्द्रो जनवासगेहात् ।
चचाल भूदेववरैर्मुनीन्द्रैः सुहृज्जनैः साकमृषीश्वराभ्याम् ॥३२॥
तदा भृशं खं दिविषद्विमानैराच्छादितं चित्रविचित्रवर्णैः ।
पुष्पाणि वर्षद्भिरनुत्तमाभैश्चन्द्राननाभिः शुशुभे परीतैः ॥३३॥
तन्मार्गपार्श्वद्वयमन्दिराणां गवाक्षजालेषु विराजमानाः ।
रामं समालोक्य मनोऽभिरामा व्यपास्तलज्जाः कुसुमान्यवर्षन् ॥३४॥
अपाहरश्चित्तमणींश्च तासां शृण्वन्स्ववैवाहिकभद्रगानम् ।
सर्वत्र मोदाप्लुतमानसानां स्त्रीणां कलं कोकिलकण्ठकानाम् ॥३५॥
पश्यन्समुन्नेत्रमुखाम्बुजानां प्रेमप्रवाहं तटयोः स्थितानाम् ।
असङ्ख्यवाद्यध्वनिपूज्यमानो ययौ विदेहाधिपवेश्म रामः ॥३६॥
देवाङ्गना वीक्ष्य विदेहपुर्याः सौभाग्यलक्ष्मीं विपुलेक्षणानाम् ।
अत्यल्पपुण्यां खलु मन्यमाना आत्मानमासन् हतभाग्यदर्पाः ॥३७॥
पुरीपरिस्पन्दमवेक्ष्य हृष्टस्ततो विरिञ्चो रचनां स्वकीयाम् ।
कुत्रापि नासाद्य निरीक्षमाणः कौतूहलाब्धौ हि बभूव मग्नः ॥३८॥

इस प्रकार आनन्द पूर्वक श्रीदशरथजी महाराज उत्तम ब्राह्मण, मुनिश्रेष्ठ, सुहृद् वर्गके सहित ऋषि-नायक (श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी) के साथ अपने चारो राजकुमारोंके समेत जनवासे से चले ॥३२॥

उस समय पुष्पोंकी वर्षा करते हुये चन्द्रमुखी देवाङ्गनाओंसे युक्त, अनुपम प्रकाशमय, चित्र-विचित्रवर्णके देव-विमानोंसे ढका हुआ आकाश अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुआ ॥३३॥

उस मार्गके दोनों बगलके महलोंके झरोखोंमें बैठी हुई मनोहारिणी स्त्रियां श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके लज्जा छोड़कर फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥३४॥

श्रीरामभद्रजू कोकिल (कोयल) के समान सहज चित्ताकर्षक कण्ठ तथा आनन्दनिमग्न-चित्तवाली स्त्रियों द्वारा निज विवाह-सम्बन्धी मङ्गल गान सुनते हुये उनके चित्तरूपी मणियोंकी चोरी करते ॥३५॥ असङ्ख्य बाजाओंकी ध्वनिसे सम्मानित हो तथा मार्गके दोनों किनारों पर नीचे उपस्थित ऊँचे नेत्र मुखकमल किये नर-नारियोंके प्रेम-प्रवाहको देखते, श्रीरामभद्रजू श्रीमिथिलेशजी महाराजके राजभवनको गये ॥३६॥

श्रीजनकपुरीकी विशाललोचना स्त्रियों की सौभाग्यलक्ष्मीको देखकर अपने आपको अत्यन्त अल्पपुण्यवाली मानकर देव स्त्रियोंने अपने सौभाग्यका अभिमान छोड़ दिया ॥३७॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी श्रीजनकपुरीकी विलक्षण रचनाको देखकर हर्षित हुये, किन्तु खोजने पर भी वहां कहीं अपनो रचनाको न पाकर वे आश्चर्य-सागरमें डूब गये ॥३८॥

श्रीशिव उवाच ।

सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशपुत्री सर्वेश्वरः श्रीदशयानसूनुः ।
तयोर्विवाहावसरे किमस्मिन्नाश्चर्यकं ब्रूहि विचार्य धातः ॥३९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं स उक्तो द्रुहिणो हरेण माध्व्या गिरा युक्तिपरीतया च ।
निरस्तशङ्कः सह षड्मुखाद्यैः श्रीराममिन्द्राननमाददर्श ॥४०॥
उद्वाहवेषं तदवेक्ष्य वेधःषडास्यपञ्चास्यमुखाः प्रहृष्टाः ।
नेत्रैः स्वकीयैः क्रमशोऽधिकैस्ते भाग्यश्रियं स्वामनुवर्णयन्तः ॥४१॥
दृष्ट्वा सहस्राक्षमथो त ऊचुः प्रेम्णा तदालोकनतत्परं तम् ।
नान्येन तुल्यः सुकृतां वरिष्ठः शापो वरः सम्प्रति यस्य जातः ॥४२॥
इत्थं वदत्स्वेव सुरेषु तेषु त्यक्त्वा स षष्ठावरणं तदानीम् ।
संप्राप सप्तावरणे मनोज्ञे रामो विदेहालयमुत्तमाभम् ॥४३॥
अथो नृपद्वारमुपस्थितं तं विज्ञाय मावाग्गिरिराजपुत्र्यः ।
सुराङ्गनाभिस्सहिता अवेद्याः योषिद्‌गणं संविविशुर्मनोज्ञम् ॥४४॥

भगवान् शिवजी बोलेः–हे ब्रह्मन् ! श्रीमिथिलेशदुलारीजी सर्वेश्वरी और श्रीदशरथनन्दन श्रीरामभद्रजू सर्वेश्वर है, यह विचारकरके आपही कहेंकि उनके इस विवाहके मङ्गलमय अवसर पर आश्चर्यकी बात ही क्या है? अर्थात् सब कुछ सम्भवका असम्भव और असम्भवका सम्भवहो सकता है ॥३९॥ श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः–हे तपोधने! भगवान् शङ्करजीके युक्ति-युक्त इस-प्रेम भरी वाणी के द्वारा समझाने पर ब्रह्माजी शङ्का-रहित हो षट्मुख(कार्तिकेयजी)आदि देवोंके सहित चन्द्रवदन श्रीरामभद्रजू का दर्शन करने लगे ॥४०॥

श्रीब्रह्माजी (चतुर्मुख), षट्मुख (श्रीकार्तिकेय) जी, पञ्चमुख (श्रीशिव) जी श्रीरामभद्रजूके दूलह वेष का क्रमशः अपने-अपने अधिक आठ, बारह, पन्द्रह नेत्रोंके द्वारा दर्शन करके निज सौभाग्य-लक्ष्मीकी प्रशंसा करते महान हर्षको प्राप्त हुये ॥४१॥

पुनः सहस्र नेत्रधारी इन्द्रको प्रेम-पूर्वक श्रीरामभद्रजूके उस वर वेषका दर्शन करनेमें तत्पर देखकर, वे ब्रह्मादि देवगण बोलेः–हे देवश्रेष्ठो! इस समय इन्द्रके समान कोई भी श्रेष्ठ पुण्यात्मा नहीं है जिसके प्रति महर्षि गोतमजीका दिया हुआ शापभी वरदान हो गया, जिससे इन्हें भगवान् श्रीरामजीके इस बर-वेषके दर्शन करने का सौभाग्य सहस्र (हजार) नेत्रोंसे प्राप्त है ॥४२॥ उन देव वृन्दोंके परस्पर इस प्रकार कथन करते हुये श्रीरामभद्रजू छठे आवरणको त्यागकर सातवें आवरणके उत्तम प्रकाश युक्त मनोहर श्रीविदेहजी महाराजके भवनको पधारे ॥४३॥ तत्पश्चात् श्रीरामभद्रजी को श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारपर पधारे हुये जानकर उमा, रमा, ब्रह्माणी ये तीनों शक्तियाँभी अन्य देव स्त्रियोंके सहित गुप्तरूपसे स्त्रियोंके मनोहर यूथमें जामिलीं ॥४४॥

गानं प्रचक्रुर्मधुरस्वरेण चन्द्राननास्ताः समयानुसारम् ।
नीराजयन्त्यो नयनाभिरामं रामं मुनीन्द्रामलचित्तचौरम् ॥४५॥
पथांऽशुकाढ्येन सुकोमलेन सुवासितेनोत्तमगन्धिभिस्तम् ।
निन्युर्मुदा मण्डपमम्बुजाक्ष्यो वैवाहिकं दृश्यतमं सुरम्यम् ॥४६॥
दूर्वादलश्यामलकोमलाङ्गं लोकाभिरामं शरदिन्दुवक्त्रम् ।
विवाहभूषापरिशोभमानं निरीक्ष्य रामं सुखिनी सुनेत्रा ॥४७॥
मृगीदृशां माङ्गलिके सुगाने प्रवर्तमाने जितकोकिलानाम् ।
निसर्गचित्तापहरे मुनीनां प्रीत्याऽन्विताऽथो महताऽऽदरेण ॥४८॥
मनः समाधाय कुलानुसारं शास्त्रानुसारं व्यवहारमद्धा ।
विधाय सर्वं सविधिं सखीभिस्तस्मै ददौ मङ्गलमासनं सा ॥४९॥
गायन्त्य आपुर्न च तृप्तिमाल्यो वीणास्वरा मङ्गलमम्बुजाक्ष्यः ।
ब्रह्मादिदेवा धृतविप्ररूपास्तद्दर्शनासक्तदृशो बभूवुः ॥५०॥
श्रीकोशलेन्द्रं मिथिलामहेन्द्रः प्रीत्या मिमेलातुलया सभावम् ।
तयोर्न चायानुपमां निलिम्पा लोकत्रयेऽस्मिन्परिमार्गयन्तः ॥५१॥

पुनः वे चन्द्रमुखी सखियाँ, बड़े-बड़े मुनियोंके चित्तको चुराने वाले सुन्दर और नयन-सुखद श्रीरामभद्रजूकी आरती करती हुई, मधुर स्वरसे समयानुकूल मङ्गलगान करने लगीं ॥४५॥

तत्पश्चात् कमलदललोचना सखियाँ उत्तम सुगन्धसे सुवासित, सुकोमल वस्त्रोंसे आच्छादित, अर्थात् पाँवड़े डाले मार्ग द्वारा उन्हें अकथनीय-मनोहर विवाह-मण्डपमें ले गयीं ॥४६॥

दूर्वादल (दूबकी पत्ती)के समान श्यामवर्ण एवं कोमल अङ्गों वाले, सभी प्राणियोंको सुखद, शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके सदृश आह्लादकारी मुख-कमल वाले, दूलह वेषमें, अत्यन्त सुशोभित उन श्रीरामभद्रजूका दर्शन करके श्रीसुनयनामहारानीजी पूर्ण सुखी हो गयीं ॥४७॥

तत्पश्चात् अपने मनोहर स्वरसे कोयलपक्षीको पराजित करने वाली मृगलोचना सखियोंके स्वाभाविक मुनिचित्तहारी, सुन्दर मङ्गलगान प्रारम्भ करने पर अत्यन्त प्रीति युक्तहो श्रीसुनयना-महारानीजीने महान् आदरके साथ अपने आनन्द-विभोर चित्तको सावधान करके कुलानुसार तथा शास्त्रानुसार सभी व्यवहारोंको करके, श्रीरामभद्रजूको मङ्गलमय आसन प्रदान किया॥४८॥४९॥

वीणा समान स्वर वाली कमलदललोचना, सखियाँ मङ्गल गाती हुई अघाती ही न थीं, उसे सुनकर ब्राह्मण वेषधारी ब्रह्मादि देवताओंके नेत्र श्रीरामदूलह-सरकारके दर्शनोंमें आसक्त हो गये ॥५०॥ श्रीदशरथजी महाराजसे श्रीमिथिलेशजी महाराज बड़े ही प्रेम-पूर्वक भावसमन्वित मिले, देववृन्द तीनों लोकोंमें खोजने पर भी उन दोनोंकी उपमा न पा सके ॥५१॥

अर्घ्यं प्रदायानयदूर्विनाथं स मण्डपं सादरमिन्द्रवन्द्यम् ।
मुनीश्वराभ्यामनुजैः परीतं सवामदेवादिमहर्षिवृन्दम् ॥५२॥
स्वयं कराभ्यां विशदासनानि प्रदाय सर्वेभ्य उपस्थितेभ्यः ।
संपूजयामास यथाविधानं विदेहराजः परयाऽनुरक्त्या ॥५३॥
रामानुजा रामधियाऽर्चिता वै श्रीमैथिलेन्द्रेण च पूर्वमेव ।
पार्श्वद्वये भूपमणेस्तदानीं भृशं व्यशोभन्त सुमण्डपे ते ॥५४॥
अभूत्समाजद्वयमेव तर्हि मोदाब्धिमग्नं वरमुद्विलोक्य ।
स्वस्त्युच्चरन्तो मुनयो विरेजुर्वाद्यध्वनिं चारु निशामयन्तः ॥५५॥
विष्ण्वीश्वराजेन्द्रदिवाकराद्याः महत्त्ववेत्तार उदारकीर्त्योः ।
रामस्य च श्रीमिथिलेशजायास्तत्रागताः स्वीकृतविप्ररूपाः ॥५६॥
रामस्तु विज्ञाय ननाम भक्त्या तान्नम्रमूर्द्धा मनसा सुरेशान् ।
शीलं तदालोक्य दिवौकसस्ते न्यस्तस्मयाः शातमपारमापुः ॥५७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी महाराज दोनों मुनीश्वरों सहित छोटे भाइयोंके साथ, वामदेव आदि महर्षियोंसे युक्त, इन्द्र द्वारा प्रणाम करने योग्य श्रीदशरथजी महाराजको अर्घ्य देकर आदर पूर्वक मण्डपमें ले गये ॥५२॥

पुनः सभी उपस्थितोंको अपने हाथोंसे सुन्दर आसन प्रदान करके श्रीविदेहजी महाराजने उनका विधिपूर्वक, बड़े ही अनुरागके साथ पूजन किया ॥५३॥

श्रीरामभद्रजूके तीनों भाई श्रीरामभद्रजूके अनुसार ही श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा पूर्वमें पूजित होकर, उस मण्डपमें श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके दोनों भागमें विराजमान हो अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुये ॥५४॥

उस समय वर सरकारका दर्शन करके श्रीअवध तथा श्रीमिथिलाजीका दोनों समाज आनन्द-सागरमें डूब गया, मुनिवृन्द बाजोंकी मनोहर ध्वनिको श्रवण करते व स्वस्तिवाचन करते हुये महान् उत्कर्षको प्राप्त हुये ॥५५॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, सूर्य आदि देवगण, जो उदार कीर्त्ति श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके तथा श्रीदशरथराजदुलारे श्रीरामभद्रजूकी महिमाको जानने वाले थे, सभी अपना ब्राह्मण रूप बनाकर उस मण्डपमें जा मिले ॥५६॥

उन देवताओंको पहिचानकर श्रीरामभद्रजूने सिर झुकाये, उनको श्रद्धापूर्वक हृदयसे प्रणाम किया, प्रभुके इस अभिमान रहित मर्यादा-पालक स्वभावको देखकर वे देवगण अभिमान रहित हो अपार सुखको प्राप्त हुये ॥५७॥

श्रीकौशिकस्यानुमतेन वेधःसुतेन पौत्रो जलजासनस्य ।
उक्तोऽधुनाऽऽहूय विदेहकन्या ह्यानीयतामाशु च मण्डपेऽस्मिन् ॥५८॥
तेनापि राज्ञी मिथिलेश्वरस्य विज्ञापिताऽयोनिभवा तया च ।
सर्वाम्बराभूषणभूषिताङ्गी ह्यानीयमाना सुभृशं रराज ॥५९॥
देवाङ्गनास्ता नगराङ्गनाभिर्मनोहराङ्गयो रतिमोहिनीभिः ।
तामन्वयुर्मत्तगजेन्द्रगत्या मुदा जगन्मोहनमोहनाङ्गीम् ॥६०॥
ध्यानं विसृष्टं मुनिभिस्तदानीमञ्जोऽत्रपन्त स्मरकोकिलाश्च ।
गानं निशम्यामरसुन्दरीणां तथा च भूपान्वयसम्भवानाम् ॥६१॥
स्त्रीणां तथा मध्यगता कुमारी विदेहराजस्य जगन्नियन्त्री ।
रराज दिव्यच्छबिसुन्दरीणां विश्वैकवन्द्या सुषमाङ्गनेव ॥६२॥
कृता मुदा पुष्पमयी सुवृष्टिः सुरद्रुमाणां त्रिदशैरनल्पा ।
आनन्दवारां निधिमग्नचित्तैर्निरन्तरं तज्जयमुच्चरद्भिः ॥६३॥

पुनः श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी अनुमतिसे श्रीब्रह्माजीके पौत्र (महर्षि गोतमजीके पुत्र) श्रीशतानन्दजी महाराजको बुलाकर ब्रह्मपुत्र श्रीवशिष्ठजी महाराजने उनसे कहा:—अब श्रीविदेह राजनन्दिनीजूको इस मण्डपमें शीघ्र ले आवें ॥५८॥

श्रीशतानन्दजी महाराजने श्रीसुनयना महारानीको उस बातकी सूचना दी, तदनुसार श्रीअम्बाजी द्वारा मण्डप लाते समय अपनी इच्छासे प्रकट, सम्पूर्ण वस्त्राभूषणोंका शृङ्गार धारणकी हुई श्रीललीजी अत्यन्त शोभाको प्राप्त हो रही थीं ॥५९॥

अपनी सहजसुन्दरतासे रतिको मुग्ध कर लेने वाले मनोहर अङ्गों वाली पुरवासिनी स्त्रियोंके सहित पहलेसे आई हुई, श्रीरमा, उमा, ब्रह्माणी आदि देवाङ्गनायें, अपने मनोहर अङ्गोंसे चर-अचर सम्पूर्ण प्राणियोंके मनहरण करनेवाले श्रीरामभद्रजीको भी मुग्धकर लेनेवाली उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके पीछे-पीछे प्रसन्नतापूर्वक मस्त गजराजकी भाँति चालसे चलीं ॥६०॥ देवाङ्गनाओं तथा राजवंशी कन्याओंका गान सुनकर उस समय मुनियोंने अपना ध्यान छोड़ दिया तथा कामदेवके कोयल अनायास लज्जित होगये ॥६१॥

चर-अचर प्राणियोंकी स्वामिनी तथा विश्वके द्वारा एकमात्र प्रणाम करने योग्य श्रीविदेह-राजकुमारीजी, स्त्रियोंके मध्यमें इस प्रकार सुशोभित हुईं, जैसे दिव्य छबिरूपी स्त्रियोंके बीचमें सुषमा (अनुपम सौन्दर्य) रूपी स्त्री की शोभा हो ॥६२॥

उन श्रीजनकराजदुलारीजूका, जय-जयकार बोलते हुये आनन्दमें डूबे चित्त, देववृन्दोंने कल्पवृक्ष पुष्पोंकी अखण्ड प्रचुर वर्षा की ॥६३॥

विसृष्टदेहस्मृतयश्च सर्वे ते मण्डपस्था युगपक्षवन्तः ।
श्रीजानकीं दृष्टिचरीं विधाय कृतप्रणामाः सुषमैकसिन्धुम् ॥६४॥

तद्रूपमाधुर्य्यमवेक्ष्य रामो मुग्धः परां तृप्तिमथाससाद ।
श्रीकोशलेन्द्रोऽपि जगाम मूर्च्छां मोदाम्बुनाथं व्यवगाहमानः ॥६५॥

ब्रह्मादयो देवगणा मिलित्वा सर्वे मिथः कैतवविप्ररूपाः ।
वेदध्वनिं चक्रुरतीवपुण्यं श्रेयोमयं तामुरसा प्रणम्य ॥६६॥

अवाचयन्स्वस्ति महामुनीन्द्रा जयध्वनिं सर्व उपस्थिताश्च ।
उच्चैः प्रचक्रुः किल सानुरागं तेनाततं विश्वमिदं समग्रम् ॥६७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इत्थं श्रीमिथिलामहेन्द्रतनया दिव्याङ्गनालङ्कृता
सौभाग्येन वलीयसा च महता संप्राप्यसद्दर्शना ।
शान्तिं संपठतां प्रसन्नमनसां तेषां मुनीनामसा-
वागच्छच्छुभमण्डपं गजगतिस्साऽऽह्लादयन्ती जगत् ॥६८॥

मण्डपमें विराजे हुये दोनों (वर-दुलहिन सरकार) पक्षके सभी लोग उनको प्रणाम करके अपने देहकी सुधि-बुधि भूल गये और अनुपम श्रेष्ठ सौन्दर्य सम्पन्ना श्रीजनकराजदुलारीजूकी ओर टक-टकी लगाये रह गये ॥६४॥

श्रीरामभद्रजू भी उनके रूपकी अनुपम छवि अवलोकन करके मुग्ध हो गये और उन्हें सर्वश्रेष्ठ तृप्तिकी प्राप्त हुई तथा श्रीदशरथजी महाराज उस आनन्द-सागरमें गोता लगाते बेसुध हो गये ॥६५॥ सभी ब्रह्मादि देवगण कपटसे ब्राह्मण वेष धारण किये हुये श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी को हृदयसे प्रणाम करके आपसमें मिलकर, परमपुण्य व मङ्गलमय वेद-ध्वनि करने लगे ॥६६॥

बड़े-बड़े मुनिराज स्वस्तिवाचन करने लगे तथा सभी उपस्थित लोग अनुराग-पूर्वक उच्च स्वरसे जय-ध्वनि करने लगे । वह जयकार घोष समस्त विश्वमें व्याप गया ॥६७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे कात्यायनि ! इस प्रकार प्रसन्न मन मुनियोंके शान्तिपाठ करते हुये, गजगामिनी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, जिनका दर्शन सदा एक रस रहने वाला बहुत बड़े बलवान सौभाग्यसे ही प्राप्त होता है वे देवस्त्रियोंके द्वारा शृङ्गार युक्त की हुई समस्त चर-अचर प्राणियोंको भली प्रकार पूर्ण आह्लादित करती हुई मङ्गलमय विवाह मण्डपमें पधारीं ॥६८॥

इति सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥६७॥

इति मासपारायणे सप्तविंशतितमो विश्रामः ॥२७॥

इति-नवाह्नपारायणेऽष्टमो विश्रामः ॥८॥

—***—

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः ।

तीनों राजकुमारी कुमारों सहित श्रीसीताराम विवाह छवि देखकर भगवान शिवजीका हार्दिकोद्गार वर्णन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तात्कालिकोऽथ युगलान्वययोर्गुरुभ्यां शास्त्रोदितोऽखिलविधिः किल कारितश्च ।
गौरीगजाननमुखास्त्रिदशाः प्रहृष्टाः पूजामलुः प्रकटिताः परिपूज्यमानाः ॥१॥

दत्त्वाशिषं च शुभदां वरकन्यकाभ्यां ब्रह्माण्डकोटिसुषमासुखसागराभ्याम् ।
भूयश्च ते सकललोकमहेश्वराभ्यामीयुः सुखं परतरं वचसामगम्यम् ॥२॥

द्रव्याणि चैव परिचारकवृन्दमुख्याश्चित्तेप्सितानि निखिलानि मुनीश्वराणाम् ।
सौवर्णपात्रनिहितानि निधाय पाण्योः पार्श्वस्थिता नयनमार्गचरा भवन्ति ॥३॥

रीतिं कुलस्य सकलां सविधिं समुक्तां प्रीत्या विधाय मिहिरेण महामुनीन्द्रैः ।
सौवर्णकं विविधरत्नमयं प्रदत्तं सिंहासनं जनकभूपतिपुत्रिकायै ॥४॥

प्रीतिस्तयोः समवलोकयतो मिथो वै कस्यापि नैव समभून्मतिगोचरा च ।
होमाहुतिं प्रकटदिव्यतनुः कृशानुर्जग्राह शातपरिपूर्णहृदा तदानीम् ॥५॥

वेदैर्गृहीतवसुधासुरवर्यदेहैर्वैवाहिको विधिरशेषतया सहर्षम् ।
संस्मार्यते स्म शुभदः समयानुसारं दिव्याम्बराभरणकौसुममाल्ययुक्तैः ॥६॥

वर कन्या दोनों सरकारके कुल गुरु श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीशतानन्दजी महाराजने विवाह समयोचित शास्त्रोक्त पूरी विधि सम्पन्न करायी, पूजनके समय श्रीगौरी गणेशजी आदि प्रमुख देवी-देवोंने, अत्यन्त हर्षित हो अर्पणकी हुई अपनी पूजा प्रकट होकर ग्रहण की तथा वे समस्त लोकोंके सर्वोपरि नियामक, करोड़ों ब्रह्माण्डोंके अनुपम सौन्दर्य व सुखके समुद्र, उन बर-कन्या-रूपधारी श्रीसीतारामजी सरकारको बारम्बार मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान करके उस अत्यन्त सुखको प्राप्त हुए, जिसका वर्णन वाणीके द्वारा हो नहीं सकता ॥१॥२॥

मुनिराज जिस समय, जिस माङ्गलिक द्रव्यकी इच्छा करते, श्रीमिथिलेशजी महाराजके प्रमुख सेवक, उसे अपने हाथोंमें सुवर्णके पात्रोंमें लिये, सामने उपस्थित दिखाई देते ॥३॥

सूर्य भगवान्की बतलाई हुई कुलकी सभी रीतिको विधिपूर्वक सम्पन्न करके, महामुनीन्द्रोंने प्रेमपूर्वक अनेक रत्नोंसे जटित सुवर्णका सिंहासन श्रीजनकराजदुलारीजीको प्रदान किया ॥४॥

उस समय परस्पर अवलोकन करते हुये उन दोनों वर-दुलहिन सरकारकी प्रीतिको, श्रीब्रह्माजी भी न समझ सके, अग्नि देव दिव्य शरीरको धारण करके हवनकी आहुतियोंको पूर्णसुखी हृदयसे प्रकट होकर ग्रहण करने लगे ॥५॥

दिव्य वस्त्र भूषण तथा पुष्प हारोंसे युक्त उत्तम ब्राह्मण रूप धारी चारो वेद समयानुसार विवाहकी सम्पूर्ण मङ्गलकारी विधियोंको हर्ष पूर्वक स्मरण कराते रहे ॥६॥

भाग्योल्लसत्सुनयना मुनिभिस्तदानीं वैदेहपट्टमहिषी सह सुन्दरीभिः ।
विज्ञापिता भुवनमोहनमण्डपं हि ह्लादप्रपूर्णहृदया द्रुतमाजगाम ॥७॥
सा श्रीयशःसुकृतिराशिरिवोपसृष्टा धात्रा श्रुता जनकजाजननी जगत्याम् ।
शक्ता कथं कथयितुं कविभिः कदाचिद्भाग्यश्रिया विजितनिर्जरपट्टकान्ता ॥८॥
सव्ये निदेशमुपलभ्य ततो मुनीनां राज्ञी रराज मिथिलानृपतेः सुनेत्रा ।
श्रीमेनकेव गिरिनायकपार्श्वगा वै पुत्र्या विवाहसमयेऽभ्यधिकाऽपि तस्याः ॥९॥
कुम्भं समङ्गलजलं मणिभाजनं च तौ दम्पती परमहर्षनिमग्नचित्तौ ।
श्रीकोशलेन्द्रसुकुमारपुरोऽधरेतां तद्रूपसक्तनयनौ स्वकराम्बुजाभ्याम् ॥१०॥
संवर्षतां सुकुसुमानि ततोऽमराणां वेदं सुमङ्गलगिरा पठतां मुनीनाम् ।
आज्ञापितो द्रुहिणसूनुसुतेन पादप्रक्षालनाय नृपतिःसमभूत्प्रवृत्तः ॥११॥
रामस्यवीक्ष्य वररूपमपारशोभं रोमाञ्चितस्तदुपगूह्य पदारविन्दम् ।
उच्चैर्जयध्वनिततिः प्रययौ दिगन्तं तात्कालिको नगरनाकनिवासिनां च ॥१२॥

अपने सौभाग्य द्वारा चमकती हुई, श्रीविदेहकुलोत्पन्न श्रीसीरध्वज महाराजकी पटरानी श्रीसुनयना महारानीजी मुनियोंकी आज्ञासे आह्लादयुक्तहृदय हो सुन्दरीसखियोंके साथ उस विश्व विमोहन-मण्डपमें तुरन्त आ पधारीं ॥७॥

अपनी सौभाग्य सम्पत्तिसे इन्द्राणी पर विजय प्राप्त करनेवाली, श्रीजनकराजदुलारीकी माता श्रीसुनयना महारानीजीको मानो विधाताने पृथिवी पर शोभा, यश और पुण्यकी राशि ही बनाया है, अतः कवि-जन भला उनका वर्णन किस प्रकार करने को समर्थ हो सकते हैं ? ॥८॥

मुनियोंकी आज्ञा पाकर श्रीसुनयनामहारानीजी श्रीमिथिलेशजी महाराजके बायें भागमें इस प्रकार सुशोभित हुईं, जिस प्रकार अपनी पुत्रीके विवाह में श्रीमयनाजी श्रीहिमाचलमहाराजके पासमें बैठकर शोभाको प्राप्त थीं, वैसे ही नहीं अपितु उनसे बढ़कर सुशोभित हुईं ॥९॥

अपार हर्षमें निमग्न चित्त हो, वे दम्पती श्रीसुनयनामहारानी तथा श्रीमिथिलेशजीमहाराज ने श्रीकोशलेन्द्रकुमार श्रीराम-वरसरकार पर आसक्त नेत्र हो अपने कर-कमलोंसे मङ्गल-जल-युक्त कलश एवं मणिमय पात्रको उनके सामने रखा ॥१०॥

पुनः देववृन्दोंके पुष्प वर्षा तथा मुनिवरोंके मङ्गलमयी वाणी द्वारा वेद-पाठ करते समय श्रीब्रह्मजीके पौत्र (श्रीगौतमजीके पुत्र) श्रीशतानन्दजी महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराज पाद प्रक्षालन के किये प्रवृत्त हुये ॥११॥

श्रीविदेहजी महाराज श्रीरामभद्रजूके उस दूलह रूपकी अपार शोभाको देखकर उनके श्रीचरणकमलोंको हृदयसे लगाकर रोमाञ्चको प्राप्त हो गये। उस समय नगर तथा देवलोक निवासियोंकी ऊँची विपुल जयध्वनि दशो दिशाओंमें पहुँच गयी ॥१२॥

शश्वन्मनोजरिपुमानसराजहंसं पुण्यं सकृत्स्मरणशान्तकलिप्रकोपम् ।
चेतोमलघ्नमननं भजदर्थदोहं योगीन्द्रसिद्धमुनिदेववरैकवन्द्यम् ॥१३॥
देवापगा शिरसि यन्मकरन्दरूपा पापापहा शुचितरा विधृता शिवेन ।
पादाम्बुजं शमितगोतमदारशापं प्राक्षालयत्क्षितिपतिस्तदमोघभावः ॥१४॥
सौभाग्यपात्रमयमेव नृपो जगत्यामित्थं विचार्य मनसा मुनयो निलिम्पाः ।
उच्चैः समूचुरथ ते परिमुक्तकण्ठा राजन् ! जयेति तदवेक्ष्य भृशं प्रसन्नाः ॥१५॥
कन्याकुमारशुभपाणियुगं नियोज्य मार्तण्डवंशनिमिवंशगुरू प्रहृष्टौ ।
वंशद्वयस्य विमलस्य च शंसतुस्तौ शाखे पवित्रयशसः शुभ आदितश्च ॥१६॥
सर्वेशयोर्जनकजादशयानसून्वोर्ध्येयं सुमङ्गलकरग्रहणं विलोक्य ।
ब्रह्मादयोऽमरवरा मुनयो मनुष्या आनन्दमग्नहृदया अभवन्नशेषाः ॥१७॥

जो पुण्यस्वरूप सर्वदा भगवान् शिवजीके मनरूपी मानसरोवरमें राजहंसके समान विराजते हैं, जिनका एकबारका स्मरणभी कलिकालके प्रकोपको शान्त कर देता है, तथा जिनका मनन चित्तके सभी विकारोंको नष्ट कर देता है, जो सेवकोंको सब प्रकारका हितकर अभीष्ट प्रदान करते हैं तथा जो बड़े-बड़े योगी, सिद्ध मुनि, देव श्रेष्ठोंके द्वारा भी अनुपम प्रणाम करने योग्य हैं ॥१३॥

जिनकी मकरन्द स्वरूपा, पापहारिणी, अत्यन्त पवित्रा, भगवती भागीरथी श्रीगङ्गाजीको भगवान् शिवजीने अपने सिर पर धारण कर रखा है, तथा जिन्होंने श्रीगोतमजीकी धर्मपत्नी श्रीअहल्याजीको शापसे मुक्तकर दिया, उन श्रीचरणकमलोंको अमोघभाव, श्रीमिथिलेशजी महाराज पखारने लगे ॥१४॥

पखारते देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो मुनियों तथा देवताओंने मनमें यह विचार किया कि ये श्रीमिथिलेशजी महाराज ही तो जगत्में सौभाग्यके पात्र हैं अतः प्रसन्न चित्तसे पूर्ण गला खोलकर उच्च स्वरसे बोलेः–हे राजन् ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो ॥१५॥

पुनः सूर्य तथा निमिवंशके गुरु श्रीवशिष्ठजी तथा शतानन्दजी महाराज वर-कन्याकी दोनों हथेलियोंको एकमें जोड़कर पूर्ण हर्षित हो, दोनों निष्कलङ्क तथा पवित्र यश सम्पन्न निमि व सूर्यवंशकी मङ्गलमयी शाखाओंका आदिसे बखान करने लगे अर्थात् दोनों कुलोंके पूर्वजोंके नाम एवं गुण वर्णन करते हुये, सङ्कल्प तथा मंत्र बोलने लगे ॥१६॥

सर्वेश्वरी श्रीजनकराजनन्दिनीजू तथा सर्वेश्वर श्रीदशरथनन्दनप्यारेजूके सुन्दर मङ्गलमय पाणिग्रहण-महोत्सवका ध्यान करने योग्य, दर्शन करके ब्रह्मादिक देव-श्रेष्ठ, मुनिवृन्द, तथा मनुष्य सभी आनन्द विभोर हो गये ॥१७॥

मूलं सुखस्य वरमिन्दु विमोहनास्यं तौ दम्पती प्रमुदितावथलोक्यरामम् ।
कन्याप्रदानमिह चक्रतुरात्मदाये तस्मैतदा सपुलकं हि यथाविधानम् ॥१८॥
शैलेन्द्रजा हिमवता त्रिपुरान्तकाय दत्ता यथा च हरये जलराशिना श्रीः ।
रामाय कामशतकान्तिमनोहराय सीतामदाज्जनकराट् भुवनाभिरामाम् ॥१९॥
हुत्वा तदा सविधि विप्रवराश्चताभ्यां ग्रन्थि निबध्य पटयोर्वरकन्ययोश्च ।
वामेतरक्रमविधिं समकारयंस्ते संवर्षतां दिविषदां कुसुमानि भूयः ॥२०॥
वाद्यध्वनिं च विपुलं जयघोषपूर्वं शृण्वन्त एत्य न तु तृप्तिमुदारभावाः ।
चक्षुष्फलं समगमन् नगरौकसस्ते संदर्शनेन तदतीवदुरासदेन ॥२१॥
वीतोपमं परिणयं तदसौ मनोजो रत्या समं विहितकोटिसहस्ररूपः ।
संपश्यतीति युगलप्रतिबिम्बमद्धा स्तम्भेषु रत्नखचितेषु गतं बभासे ॥२२॥
निःसीमसौख्यपरिवर्षणदर्शनाशो ह्याविर्भवत्यनुपलं हि पुनः पुनः सः ।
वीक्ष्यैव रूपममुयोः परिलज्जितात्मा संमानभङ्गभयतोऽन्तरधाच्छनैश्च ॥२३॥

अपने श्रीमुखारविन्दके आह्लादपूर्ण सहजाकर्षक सौन्दर्यसे चन्द्रमाको मोहित करने वाले सुखके मूल स्वरूप श्रीरामवर सरकारका दर्शन करके अत्यन्त हर्षित तथा रोमाञ्चित शरीर हो श्रीसुनयना महारानी तथा श्रीजनकजी महाराज, अपने आपको दे डालने वाले उन वर सरकार को विधिपूर्वक कन्यादान करने लगे ॥१८॥

जिस प्रकार हिमवान्ने श्रीपार्वतीजीको भगवान् शिवजीके लिये तथा श्रीलक्ष्मीजीको समुद्रने श्रीविष्णु भगवान्के लिये अर्पण किया था, उसी प्रकार श्रीजनकजी महाराजने त्रिभुवन-सुन्दरी श्रीसीताजीको सैकड़ों कामदेवोंके समान मनोहर कान्ति वाले श्रीरामवर सरकारके लिये प्रदान किया ॥१९॥ तब मुनिवरोंने हवन कराके विधिपूर्वक वर और कन्याके वस्त्रोंमें गांठ बाँधकर उनसे सम्यक् प्रकारसे भाँवरीकी विधि करायी, उस समय पूर्ण विधि पर्यन्त देवता लोग बारंबार फूलोंकी वर्षा करते रहे ॥२०॥

जयघोष-पूर्वक बाजोंकी महान् ध्वनिको सुनते उदार भावसम्पन्न नगरवासियोंने तृप्तिको प्राप्त न होकर, भाँवरीके अत्यन्त दुर्लभ-दर्शनों द्वारा अपने नेत्रोंको सफल किया ॥२१॥

श्रीयुगल(वर-दुलहिन)सरकारकी रत्न जड़ित खम्भों पर छाया इस प्रकार प्रतीत होरही थी, मानो रतिके समेत कामदेव अनन्त रूप धारणकर उस अनुपम विवाहका दर्शन कर रहा हो ॥२२॥

दोनों श्रीवरकन्याओंके असीम सुखवर्षणकारी दर्शनोंकी आशासे वह कामदेव बारम्बार प्रकट होता किन्तु उनके सामने अपनी सुन्दरताको तुच्छ देखकर अपनी मानहानिके भयसे धीरे से छिप जाता है ॥२३॥

आसन् विदेहा अपरेऽपि सर्वे तत्प्राप्तसद्दर्शनपुण्ययोगाः ।
प्रदक्षिणप्रक्रमणं च ताभ्यामित्थं मुनीन्द्रैः समकारि भद्रम् ॥२४॥
भाले विशाले जनकात्मजायाः प्रेमाप्लुताक्षो रघुवंशदीपः ।
दातुं स सिन्दूरमभूत्प्रवृतो जयध्वनिं देवगणश्चकार ॥२५॥
भोगी यथा रक्तपरागमब्जे धृत्वा सनालेऽमृतलोलुपश्च ।
विभूषयंश्चन्द्रमसं विभाति सीतालिकं रामकरस्तथैव ॥२६॥
गुरोर्वशिष्ठस्य निदेशतश्च कन्यावरौ तौ सुषमैकसिन्धू ।
एकासनस्थौ प्रबभूवतुस्तद् विलोक्य सर्वे जयमित्यथोचुः ॥२७॥
श्रीकोशलेन्द्रः पुलकाञ्चिताङ्गो निरीक्ष्य बध्वा सहितं स्वपुत्रम् ।
श्रीमैथिलेन्द्रो हि विदेहभूपो भाग्यश्रियं स्वामुदितामुदीक्ष्य ॥२८॥
अभूद्विवाहो मिथिलेशपुत्र्या रामस्य सर्वेश्वरयोरिहेति ।
आनन्दमग्नं समभूत्तदानीं लोकत्रयं वै परमोत्सवाढचम् ॥२९॥

इसी भाँति उन दोनों सरकारके नित्य सदा एक रस रहने वाले दर्शनोंका पुण्यमय संयोग प्राप्त करके अन्य लोग भी, देहानुसन्धान-रहित (बेसुध विदेह) हो गये । इस प्रकार मुनिवरोंने दोनों सरकारकी मङ्गलमयी भाँवरी कराई ॥२४॥

श्रीरघुकुलके दीपक (प्रकाशक) श्रीराम-वर सरकारजूने प्रेमार्द्रनेत्र हो श्रीजनकराजदुलारी जूके मनोहर विशाल भालमें सिन्दूर प्रदान करनेको उद्यत हुये, उस समय देवता लोग जय-जयकार करने लगे ॥२५॥

जैसे अमृतका लोभी सर्प,नाल युक्त कमल-पुष्पमें लालपरागको भरकर उससे चन्द्रमाको भूषित करते हुये शोभाको प्राप्त होता है, उसी प्रकार श्रीरामभद्रजूका प्रेमरूपी अमृतका लोभी हस्त-कमल सिन्दूरसे श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके मस्तकको अलंकृत करते हुये अत्यन्त सुशोभित हुआ ॥२६॥

तत्पश्चात् आचार्य श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञासे अनुपम निरतिशय सौन्दर्य सागर दोनों श्रीकन्या तथा वर सरकार एक आसन पर विराजमान हुये, उस छटाको देखकर सभी बोल उठे–श्रीनवदुलहिन दूलह सरकारकी जय हो, जय हो, जय हो ॥२७॥

श्रीदशरथजीमहाराज श्रीवधू सरकारके साथ अपने श्रीराजदुलारेजीको देखकर, हर्ष पुलकित हो गये तथा श्रीमिथिलेशजी महाराज तो अपनी सौभाग्य-लक्ष्मीका उदय देखकर, आनन्द की अत्यन्त बाढ़से विदेहभूप (बेसुधि वालोंके राजा) ही हो गये ॥२८॥

"सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशदुलारी श्रीसीताजी तथा सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजूका विवाह श्रीमिथिलाजी में हो गया" इस आनन्दमें डूब कर तीनों लोक उस समय महोत्सवसे परिपूर्ण हो गये ॥२९॥

आज्ञां बशिष्ठस्य तदा निशम्य कुशध्वजं श्रीजनको जगाद ।
भ्रातः ! कुमारीः समुपानयात्र तासां विवाहो भविताऽधुनैव ॥३०॥
अस्मत्कुलं पुण्यतमं कृतार्थं सौभाग्यपात्रं जगति प्रसिद्धम् ।
श्रीकोशलाधीशकुमारकाणामर्थे वृणोत्येष सुता वशिष्ठः ॥३१॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

इदं प्रियं वाक्यमुदाहृतं तन्निशम्य हृष्टस्तनये स्वकीये ।
वैवाहिकालङ्कृतिशोभमाने तत्रानयामास सुमण्डपे सः ॥३२॥

अथोर्मिला चापि विदेहपुत्री शीघ्रं जनन्या समलङ्कृताङ्गी ।
आनीय वैवाहिकमण्डपं सा निवेशिता सादरमिन्दुवक्त्रा ॥३३॥

रीत्या ययाऽयोनिभवा स्वपुत्री रामाय राज्ञा विधिनाऽर्पिता वै ।
तथैव तिस्रः किल कन्यकाश्च समर्पिता राजकुमारकेभ्यः ॥३४॥
श्रीमाण्डवी श्रीभरताय दत्ता भावप्रधाना च सुदर्शनाभूः ।
पुत्र्युर्मिला कान्तिमतीकुमारी श्रीलक्ष्मणाय स्मरणीयकीर्त्तिः ॥३५॥

तब श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञा सुनकर श्रीजनकजी महाराज श्रीकुशध्वजजीसे बोले:—
हे भैया ! राजकुमारियोंको यहाँ ले आइये, उनका भी विवाह अभी होगा ॥३०॥
ये भगवान् श्रीवशिष्ठजीमहाराज श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंके लिये, पुत्रियोंकी माँग कर रहे हैं,
अतः आज हमारा यह निमिकुल परमपवित्र, कृतार्थ तथा जगतमें प्रसिद्ध सौभाग्यका पात्र है॥३१॥
श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे तपोधने ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके इस प्रिय वचनको
सुनकर श्रीकुशध्वजजी महाराजने हर्षित हो, विवाह-शृङ्गार सुशोभित, अपनी दोनों पुत्रियोंको,
उस विवाह मण्डपमें बुला लिया ॥३२॥
श्रीविदेहजी महाराजकी विवाह-शृङ्गारसे अलंकृत चन्द्रमुखी राजकुमारी श्रीउर्मिलाजी
को महारानीजीने बुलाकर उस मण्डपमें आदर-पूर्वक बिठाया ॥३३॥
श्रीमिथिलेशजी महाराजने जिस प्रकार अपनी अयोनिसम्भवा (अपनी इच्छासे प्रकट हुई)
श्रीललीजीको विधि-पूर्वक श्रीरामभद्रजीको अर्पण किया था, उसी प्रकार उन तीनों पुत्रियोंको
भी श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके कुमारोंको प्रदान किया ॥३४॥
भाव प्रधान श्रीसुदर्शनाकुमारी श्रीमाण्डवीजी श्रीभरतलालजीको व स्मरण करने योग्य
कीर्त्तिवाली, श्रीकान्तिमतीकुमारी, श्रीउर्मिलाजी, श्रीलखनलालजीको दी गयी ॥३५॥

शत्रुद्विषे श्रीश्रुतिकीर्त्तिनाम्नी सुधीः सुभद्रातनया मनोज्ञा।
समर्पिता सादरमम्बुजाक्षी यथाविधानं जनकेन राज्ञा ॥३६॥
कन्याश्चतस्रोऽथ वरास्तथैव महार्हसिंहासनराजमानाः।
तन्मण्डपे वै विभवश्च जन्तोरुरस्यवस्थाभिरिवोपपन्नाः ॥३७॥
श्रीसीतयाऽम्भोजदलायताक्ष्या बाल्यादजस्रं परिलाल्यमानाः।
तत्पादपद्मार्पितजीवितास्ताः सुताः सुतैः साकमपास्तरागैः ॥३८॥
विवाहिता श्रीजनकात्मजेयं रामेण सार्द्धं नचिरादयोध्याम्।
ध्रुवं गमिष्यत्यनया शुचार्त्ताः पूर्वाद्विसृष्टन्नजलाः कृशाङ्गीः ॥३९॥
निरीक्ष्य ता भ्रातृगणस्य राज्ञः तासां प्रदानाय मनोऽभिलाषः।
जातः सुतायै मिथिलाधिपस्य सवल्लभस्याशु सुखैकमूलम् ॥४०॥
शृङ्गारयित्वा बहुशः स्वपुत्रीः पुत्रांश्च सर्वाभरणैः परार्ध्यैः।
श्रीजानकीपङ्क्तिरथात्मजाभ्यामुवाच दैन्येन स दातुकामः ॥४१॥

श्रीजनकभ्रातृगण उवाच।

स्वसृरिमा बन्धुभिरन्विताश्च समर्प्यमाणास्तव दास्यरक्ताः।
वत्से ! गृहाणाङ्घ्रिनिषेवणार्थं त्वत्पाणिपङ्केरुहलालिता हि ॥४२॥

श्रीजनकजी महाराजने श्रीसुभद्रा महारानीकी मनोहर, कमललोचना सुन्दरबुद्धि, सम्पन्ना पुत्री श्रीश्रुतिकीर्त्तिजीको श्रीशत्रुघ्नलालजीको, आदर-पूर्वक अर्पण किया ॥३६॥

उस समय चारों कन्यायें तथा चारों दूलह-सरकार उस मण्डपमें बहुमूल्य सिंहासनों पर इस प्रकार सुशोभित हुये, मानो जीवके हृदयमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति व तुरीया, इन चारो अवस्थाओंसे युक्त विश्व, तैजस, प्राज्ञ व ब्रह्म ये चारो विभु विराजमान हों ॥३७॥

विवाहके पश्चात् श्रीजनकराजदुलारीजू श्रीरामभद्रजूके साथ शीघ्र ही श्रीअयोध्याजी चली जायँगी, इस चिन्ताके कारण कमल-दललोचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी द्वारा बाल्यावस्थासे ही लाड़ लड़ाई तथा उनकेही श्रीचरणकमलोंमें अपना जीवन अर्पणकी हुई पुत्रियोंको, आसक्ति-रहित पुत्रों सहित पूर्वसे ही अन्न-जल छोड़े कृश शरीर हुई देखकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयों तथा उनकी रानियोंके मनमें उन पुत्रियों तथा पुत्रोंको श्रीमिथिलेशनन्दिनी लाडिलीजूको ही समर्पित कर देनेकी सुखमूल अभिलाषा उदय हुई ॥३८॥३९॥४०॥

अत एव अपने पुत्र तथा पुत्रियोंको बहुमूल्य भूषणोंसे शृङ्गार युक्त करके उन्हें वे विधिपूर्वक दान करनेकी इच्छासे श्रीजनकराजदुलारीजू तथा श्रीदशरथनन्दन प्यारेजूसे दीनतापूर्वक बोले:- हे वत्से! आपके करकमलोंसे सदा लाड़को प्राप्त, सेवानुरागी अपने भाइयों सहित अपनी इन बहिनों को हमारे अर्पण करते हुये, आप अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवामें ग्रहण कीजिये ॥४१॥४२॥
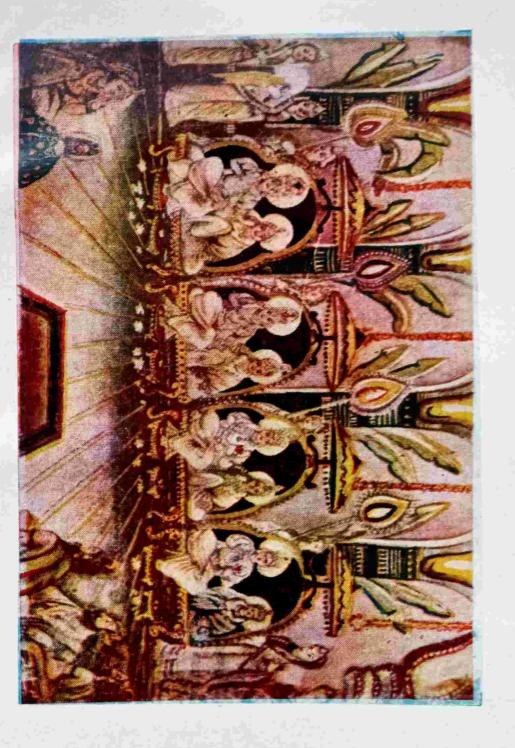
विवाह मण्डप में श्रीसीतारामजी महाराज आदि चारो वर दुलहिन सरकार ।

हे वत्स ! सूर्यान्वयवारिजेन सौहार्दमूर्त्ते मिथिलेन्द्रपुत्र्याः ।
अस्या वियोगागमबोधदीनास्त्यक्तान्नतोयाः कृतलालनायाः ॥४३॥

एते कुमाराः स्वसृभिः परीताः समर्प्यमाणाः कृपया युवाभ्याम् ।
अङ्गीक्रियन्तां निमिवंशजाताः स्वभृत्यभावेन रघुप्रवीर ! ॥४४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

तैरेवमुक्तो रघुवंशरत्नं रामः सवाष्पाम्बुजपत्रनेत्रः ।
अङ्गीचकाराशु सबन्धुवर्गास्ताश्चैव पाणिग्रहणेन सर्वाः ॥४५॥

तासां च तेनेन्दुकलाक्रमेण श्रीचारुशीला तदनन्तरं हि ।
श्रीलक्ष्मणाद्याश्च ततो गृहीताः श्रृङ्गारनिध्यादिकबन्धुभिस्ताः ॥४६॥

इत्थं बधूभिः सहितान्स्वपुत्रान् स्वीयानुजैः स्वसृभिरन्विताभिः ।
प्रेमाप्लुतैर्दास्यपरायणाभिर्दृष्ट्वा नृपेन्द्रस्तदभूत्कृतार्थः ॥४७॥

श्रीशिव उवाच ।

अङ्गीकृतोद्वाहसुवेषयोश्च श्रीजानकीराघवयोस्त्रिलोक्याम् ।
चक्षुष्मतां स्वर्णसुनीलवर्णं विचित्रसंमोहनमास तेजः ॥४८॥

हे सूर्यवंश रूपी कमलको सूर्यके समान प्रफुल्लित करने वाले ! हे वत्स ! लाड़ करने वाली दया सागरा इन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूके लाड़से सदा पोषित, उनके वियोग आगमन के ज्ञानसे दीन, अन्न-जल छोड़े कृशशरीर हुई बहिनोंके समेत इन निमिवंशी पुत्रोंको, आपदोनों श्रीललीलालजू कृपया सेवक-भावसे स्वीकार कीजिये, क्योंकि आप रघुवंशमें सबसे अधिक दानवीर हैं ।४३।४४।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनि ! श्रीमिथिलेशजी महाराजके भाइयोंके इस प्रकार प्रार्थना करने पर सजलकमलदलके समान आर्द्र नेत्र हो, रघुकुल-रत्न श्रीरामभद्रजूने बन्धु वर्गोंके सहित उन सभी निमिवंश कुमारियोंको, पाणिग्रहणके द्वारा स्वीकार किया ॥४५॥

उन्होंने उनमें क्रमशः श्रीचन्द्रकलाजी, श्रीचारुशीलाजी तत्पश्चात् श्रीशृङ्गारनिधि आदि भाइयोंके सहित श्रीलक्ष्मणाजी आदि कुमारियोंको ग्रहण किया ॥४६॥

इस प्रकार प्रेममग्न अपने भाइयों सहित सेवापरायणा बहिनोंके साथ, बधुओंसे सुशोभित अपने श्रीराजकुमारोंको देखकर, श्रीचक्रवर्तीजी महाराज सब प्रकारसे कृतार्थ हो गये ॥४७॥ भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! सुन्दर विवाह-वेष-धारी श्रीजानकीजी तथा श्रीरघुनन्दनप्यारेजूका सुवर्ण तथा नीले रङ्गका तेज, तीनों लोकोंमें नेत्रवालों के लिये आश्चर्य-जनक मुग्धकारी हुआ ! ॥४८॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

एतावदुक्त्वा वचनं महार्थं महेश्वरोऽसौ छविसिन्धुमग्नः ।
संलब्धसञ्ज्ञः पुनराप्तकामो महीध्रपुत्रीं कृपयेत्युवाच ।।४९।।

श्रीशिव उवाच ।

गौरश्यामाद्‌भुतं तेजो दृशोर्यस्य विराजते । तस्य मायानटो किं वै विप्रियं कर्तुमर्हति ।।५०।।
गौरश्यामाद्‌भुतं तेजो न यावद्धृदि भासते । तावदेव हि संसारो दुस्तरः शैलनन्दिनि ! ।।५१।।
गौरश्यामाद्‌भुतं तेजो दुर्लभं योगिनामपि । कृपासाध्यमतो विद्धि परं मुक्तैकजीवनम् ।।५२।।
गौरश्यामाद्‌भुतं तेजो न लब्धं जीवता यदि । धिगस्तु जीवितं तत्तु पापमस्वार्थसाधनम् ।।५३।।
गौरश्यामाद्‌भुतं तेजस्तेन लब्धं कथम्भवेत् । हृदयं दूषितं यस्य प्रिये ! दुर्वासनादिभिः ।।५४।।
गौरश्यामाद्‌भुतं तेजो येन लब्धं कथञ्चन । तस्य भाग्यं प्रशंसन्ति मुक्तकण्ठास्तु सूरयः ।।५५।।
गौरश्यामाद्‌भुतं तेजो दृशोर्न्यस्तवतः प्रिये । ब्रह्मानन्दोऽपि दुर्गम्यो न लोभायोपकल्पते ।।५६।।

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे तपोधने ! महान् अर्थसे युक्त इस वचनको कहकर पूर्ण काम, महेश्वर (श्रीभोलेनाथ) जी, श्रीयुगलसरकारके उस छवि रूपी समुद्रमें डूब गये, पुनः सावधान हो कृपा-वश वे श्रीपार्वतीजीसे इस प्रकार बोलेः—।।४९।।

जिस प्राणीके नेत्रोंमें वह गौर-श्याम तेज विराजमान है, माया रूपी नटी भला उस भाग्यशालीका क्या अपकार कर सकती है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।।५०।।

हे श्रीगिरिराजनन्दिनीजू ! जब तक हृदयमें वह अद्‌भुत गौर एवं श्याम तेज भासित नहीं होता, तब तक संसारसे पार होना कठिन है ।।५१।।

वह अद्‌भुत गौर-श्याम तेज, मुक्त-प्राणियोंका परम जीवन स्वरूप, उन्हीं श्रीयुगलसरकारकी कृपासे प्राप्त होने योग्य है, अत एव उसकी प्राप्ति योगियोंके लिये भी दुर्लभ जानो ।।५२।।

यदि जन्म पाकर उस अद्‌भुत गौर-श्याम तेजकी प्राप्ति न हुई, तो अपने हित-साधनमें सहायक न बनने वाले इस पाप मय मानवजीवनको धिक्कार है ।।५३।।

हे प्रिये ! जिसका हृदय नाना प्रकारकी दुर्वासनादिसे अपवित्र हो गया है भला वह प्राणी उस अद्‌भुत गौर-श्याम तेजको किसप्रकार प्राप्त कर सकता है? अर्थात् किसी साधनसे नहीं।।५४।।

सार-असारको समझने वाले विद्वान जन उसी प्राणीके भाग्यकी प्रशंसा करते हैं, जिसने किसी प्रकार भी उस अद्‌भुत गौर-श्याम तेजको प्राप्त कर लिया है ।।५५।।

हे प्रिये ! जिसने अपने नेत्रोंमें उस अद्‌भुत गौर-श्याम तेजको स्थापित कर लिया है, उसे परम दुर्लभ, ब्रह्म-सुख भी लोभ नहीं करा सकता, विषय सुखकी बात ही क्या ? ।।५६।।

श्रीदुलहिनदूलह सरकार

गौरश्यामाद्भुतं तेजो हृदये यस्य राजते । तस्यानर्थं कथं कुर्यात्पुष्पबाणो गणैः सह ।।५७।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजः सर्वगं विगतोपमम् । तस्मिन् दृष्टे शिवे ! नूनं नानात्वं विनिवर्तते ।।५८।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो यदि चित्तं समाविशेत् । जीवितं सफलं ज्ञेयं सर्वकृत्यमनुष्ठितम् ।।५९।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो न यावन्नेत्रयोर्वसेत् । मनःक्षोभकरास्तावद्विषयाः विजितात्मनाम् ।।६०।।
विषयासक्तचित्तानां लोचनाशुद्धमन्दिरे । गौरश्यामाद्भुतं तेजः क्षणार्द्धं नावतिष्ठते ।।६१।।
यत्र वै विषयासक्तिः सर्वोत्कृष्टेन वर्तते । गौरश्यामाद्भुतं तेजस्तत्र स्वप्नेऽपि दुर्लभम् ।।६२।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो यत्र सूक्ष्ममपि स्थितम् । तत्र गन्तुं न विषयाः शक्ताः सूर्यं यथा तमः ।।६३।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो न यावदुपलभ्यते । अनिवार्य्यं ध्रुवं तावत्प्रिये ! संसारदर्शनम् ।।६४।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो यस्य बुद्धौ प्रतिष्ठितम् । सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः स उच्यते ।।६५।।
गौरश्यामाद्भुतं तेजो भवभावविमोचनम् । न लब्धं चेन्मुधा सर्वं तपो यावत्स्वनुष्ठितम् ।।६६।।

जिसके हृदय (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार) में वह अद्भुत गौर श्याम तेज विराजमान है भला उसका कामदेव अपने गणों (उर्वशी मेनकादि अप्सराओं) के सहित भी क्या अनर्थ (अहित) कर सकता है ? ।।५७।। वह अद्भुत गौरश्याम तेज सभी उपमाओंसे परे सर्वत्र विराजमान है, जब उसका दर्शन हो जाता है, अर्थात् उसे भली प्रकार समझ लिया जाता है, तब वही एक सर्वत्र दीखता है नानात्व भावना नहीं रहती ।।५८।।

वह अद्भुत गौर-श्याम तेज यदि भली प्रकारसे चित्तमें बस जाये, तो जीवनको सफल और सभी कृत्योंको सम्पन्न जानना चाहिये ।।५९।।

वह अद्भुत गौर-श्याम तेज, जब तक हृदयमें नहीं बसता, तब तक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँचों विषय मन-इन्द्रियोंको वशमें कर लेने वाले योगियोंके भी मनको क्षोभकारी हो जातेहैं६०

जिनका चित्त इन पाँच विषयोंमें आसक्त है, उनके नेत्र रूपी अपवित्र मन्दिरमें, वह गौर-श्याम तेज, आधे क्षणके लिये भी नहीं ठहरता ।।६१।।

जिसमें विषयासक्तिकी प्रधानता है, उस हृदयमें वह अद्भुत गौर-श्याम तेज स्वप्नमें भी दुर्लभ है ।।६२।। जिस हृदयमें वह अद्भुत गौर-श्याम तेज सूक्ष्म रूपसे भी विराजमान है, उसमें जानेके लिये पाँचो विषय इस प्रकार असमर्थ हैं, जैसे सूर्यमें अन्धकार ।।६३।।

हे प्रिये ! जब तक उस अद्भुत गौर-श्याम तेजकी प्राप्ति नहीं होती, तब-तक संसारका दर्शन अनिवार्य है, अर्थात् संसाराकार दृष्टिका निवारण असम्भव है ।।६४।।

जिसकी बुद्धिमें वह अद्भुत गौर-श्याम तेज स्थित होगया, वह सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित, जीवन्मुक्त कहाता है ।।६५।।

संसारकी भावना छुड़ाने वाला वह अद्भुत गौर-श्याम तेज यदि न प्राप्त हो सका, तो सब प्रकारका किया हुआ तप व्यर्थ ही है ।।६६।।

तपस्तदेव मन्ये ऽहं यतस्तु त्रिविधाघहृत् । गौरश्यामाद्भुतं तेजो हृदयागारमावसेत् ॥६७॥
गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेज उपासते । न स प्राप्नोति संसिद्धिं वर्षैरप्ययुतायुतैः ॥६८॥
अहो रूपमनल्पाभं सर्वविश्वविमोहनम् । श्रीसीतारामयोर्दिव्यमवाच्यानन्दवर्षणम् ॥६९॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

वर्णयन्नित्थमेवासौ पार्वतीं पार्वतीपतिः । तयोर्ध्यानसमासक्तो जगादानन्दनिर्भरः ॥७०॥

श्रीशिव उवाच ।

स्यातामशेषवरदोत्तमपूज्यमाने श्रेयोनिधी शिरसिगे शरणे मदीये ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजपाणिपद्मे ॥७१॥
वन्दे मुनीन्द्रयतिसिद्धिमनोऽलिजुष्टे वाञ्छाप्रदे सुजतुनूपुरशोभमाने ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजपादपद्मे ॥७२॥
लोकोत्तरं त्रिविधतापहरं मनोज्ञं चित्ते ममावसतु दिव्यसुखैकवर्षि ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजमन्दहास्यम् ॥७३॥

मैं उसी साधनको वास्तविक तप मानता हूँ, जिसके द्वारा कायिक वाचिक मानसिक तीनों प्रकारके पापोंको नष्ट कर देने वाला यह अद्भुत गौर-श्याम तेज अपने हृदय रूपी मन्दिरमें आ बसे ॥६७॥ जो बिना गौर तेजके केवल श्यामतेजकी उपासना करता है, वह अर्बों वर्षोंमें भी अपने लक्ष्यकी पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता ॥६८॥

अहो समस्त विश्वको मुग्ध करने वाला, महान् प्रकाशमय, अवर्णनीय (वर्णनमें न आ सकने योग्य) आनन्दकी वर्षा करनेवाला श्रीसीतारामजी महाराजका यह क्या ही दिव्य रूप है ॥६९॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:-हे प्रिये ! उस अद्भुत गौर-श्याम तेजके ध्यानमें आसक्त, पार्वती-पति श्रीभोलेनाथजी इस प्रकार उस युगल तेजका वर्णन करते-करते आनन्द निर्भर हो श्रीपार्वतीजीसे बोले ॥७०॥ अपनी छबिसे अनन्त काम व रतिको मुग्ध कर लेने वाले विवाह वेषसे युक्त श्रीजानकीजू तथा रघुनन्दन प्यारेजूके वे कर-कमल मेरे सिरपर विराजमान हों, जो समस्त उत्तम वरदानियोंसे पूजित, कल्याणके भण्डार तथा सबकी रक्षा करने वाले हैं ॥७१॥

अपनी छबिसे अनन्त काम व रतिको मुग्ध कर लेने वाले विवाह वेष युक्त श्रीजानकी रघुनन्दन प्यारेजूके उन श्रीचरणकमलोंको मैं प्रणाम करता हूँ, जो मुनिराज यति, सिद्धोंके मनरूपी भँवरोंसे सेवित, भक्तोंकी हितकर इच्छाओंको प्रदान करने वाले, सुन्दर महावर तथा नूपुरोंसे सुशोभित हैं ॥७२॥ अपनी छबि माधुरीसे अनन्त काम व रतिको मुग्ध कर लेने वाले विवाह वेषसे युक्त श्रीजनकनन्दिनी-रघुनन्दनप्यारेजूकी दैहिक-दैविक, भौतिक तीनों तापोंको हरण करने वाली, अलौकिक, मनोहर, तथा दिव्य सुखकी वर्षा करने वाली मन्द मुस्कान मेरे चित्तमें आबसें ॥७३॥

काम्यः कृपासमुपलभ्य उदारभावः पुण्यो मनोहरतरो मयि सर्वदाऽस्तु ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजसत्कटाक्षः ॥७४॥

विद्युत्पयोधरनिभा भुवनाभिरामा सौभाग्यवत्प्रवरचित्तगताऽस्तु हृत्स्था ।
सानन्तकामरतिमोहिविवाहवेषश्रीजानकीभरतपूर्वजकान्तकान्तिः ॥७५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रीशम्भुशुद्धमनसा हि विचिन्त्यमानौ सीरध्वजाब्जकरलब्धयथार्हपूजौ ।
ध्यायत्सुरद्रुमनिभौ शरणं ममास्तां श्रीजानकीरघुकुलोत्तमयोः शुभाङ्घ्री ॥७६॥

विद्युत्पयोदसदृशातिमनोज्ञवर्णौ विम्बाधरौ शशिकरस्मितमोहनास्यौ ।
कैशोरकञ्जकमनीयदलायताक्षौ श्रीजानकीरघुवरौ सततं भजामः ॥७७॥

कात्यायनीमेतदसौ प्रभाष्य श्रीयाज्ञवल्क्यो भगवान्मुनीन्द्रः ।
श्रीजानकीरामविवाहवेष – च्छबिप्रसक्ताक्षियुगो बभूव ॥७८॥

अपने सौन्दर्यसे अनन्त रति व कामको मुग्ध कर लेनेवाली श्रीजानकी रघुनन्दनप्यारेजूका निरन्तर एक रस रहने वाला, कामना करने योग्य तथा कृपासे ही प्राप्त होनेवाला उत्कृष्ट भाव सम्पन्न, वह पवित्र एवं अत्यन्त मनोहर कृपाकटाक्ष मेरे प्रति सदा बना रहे ॥७४॥

अपनी सुन्दरतासे अनन्त काम व रतिको मुग्धकर लेने वाले विवाह वेष युक्त श्रीजानकी रघुनन्दनप्यारेजूकी विजली और सजल मेघोंके समान गौर-श्याम वर्ण वाली त्रिभुवनमोहिनी तथा अत्यन्त सौभाग्यशालियोंके ही चित्तमें प्राप्त होने वाली वह मनोहर कान्ति मेरे नेत्रोंमें सदा निवास करे ॥७५॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे प्रिये ! श्रीभोलेनाथजीका अत्यन्त पवित्र चित्त जिनके चिन्तनमें संलग्न है, जो श्रीमिथिलेशजी महाराजके करकमलोंसे यथोचित पूजित, ध्यान करने वालोंके कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथ पूर्ण करने वाले, श्रीजानकी रघुकुलोत्तम (श्रीरामभद्र) जूके मङ्गलमय श्रीचरणकमल मेरी रक्षा करें ॥७६॥

जो विजली तथा मेघके समान अत्यन्त मनोहर गौर-श्याम वर्णसे युक्त, विम्बाफलके सदृश लाल अधर व चन्द्र किरणोंके समान मुस्कानसे मनोहर मुख वाले हैं, उन नूतन खिले कमलके सदृश मनोहर नेत्रोंसे युक्त दोनों श्रीजानकी-रघुनन्दनप्यारेजूका हम सदा भजन करते हैं ॥७७॥

श्रीसूतजी बोले:–हे शौनकजी ! इस प्रकार श्रीकात्यायनीजीसे कहकर मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्यजीके दोनों नेत्र, श्रीजनकराजदुलारी व श्रीरामभद्रजूके विवाह वेषकी छविमें आसक्त हो गये ॥७८॥

मनोज्ञं भावज्ञं निखिलजगदानन्दसदनं स्मितास्यं बिम्बोष्ठं परिणयसुवेषेण सहितम् ।
प्रवर्षच्छोभाभ्रान्मुदमृतमदोऽपारविभवं वसेद्रत्नं चित्ते विमलनिमिरघ्वोर्हि युगलम् ॥७९॥
इमं सीतोद्वाहं निरतिशयमाङ्गल्यनिवहं यतात्मा यो नित्यं पठति शृणुयाद्वा शुभमतिः ।
चिरस्थौ तौ तस्याखिलशुभनिधीशौ नयनयोः शुभौ शीघ्रं स्यातां गदत गमनीयं किमु ततः ॥८०॥

मनोहर भावको जानने वाले, सम्पूर्ण जगत्के आनन्द स्थान, मुस्कानयुक्त श्रीमुखारविन्द, कुन्दरू, फलके सदृश लाल ओष्ठ, सुन्दर विवाह वेष सम्पन्न, अपने सौन्दर्य रूपी मेघसे आनन्दरूपी अमृतकी वर्षा करते हुये वे अपार वैभव सम्पन्न निमि व रघुमहाराजके कुलके युगल रत्न श्रीसीतारामजी महाराज सदा हमारे चित्तमें निवास करें ॥७९॥

श्रीजनकनन्दिनीजूका यह विवाह मङ्गलोंकी राशि है, इसे जो पवित्र बुद्धि, पढ़ता अथवा सुनता है, उसको सम्पूर्ण मङ्गलभण्डारोंकी स्वामिनी तथा स्वामी श्रीसीताराामजी महाराज शीघ्रही दर्शन देते हैं, उससे बढ़कर प्राप्त करने योग्य फिर और है ही क्या ? ॥८०॥

इत्यष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

—❀❀❀—

अथैकोननवतितमोऽध्यायः ।

कोहवर भवनमें वरोंकी तथा नीचे श्रीअम्बाजीकी आज्ञासे बहनों सहित श्रीकिशोरीजीकी भोजन–शयन लीला ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

अथो मुनीन्द्रस्य निदेशमेत्य हर्षाप्लुताभिः समुता वरास्ते ।
श्वश्रूभिरापूर्य विधिं समग्रं नीता द्युमत्कौतुकरम्यवेश्म ॥१॥
प्राच्या निकेतं भरतो हि नीतो याम्याः सुमित्रातनयप्रधानः ।
तथा ह्युदीच्या रिपुसूदनोऽपि रामः प्रतीच्याः स्वयमेव नीतः ॥२॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:–हे तपोधने ! श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञा पाकर हर्ष-मग्ना श्रीसुनयना अम्बाजी आदि सासुवें मण्डपकी सभी विधियों को पूरा करके, अपनी पुत्रियोंके सहित वर सरकारोंको प्रकाशयुक्त रमणीय कोहवर-भवनमें ले गयीं ॥१॥

पूर्व दिशाके भवनमें श्रीभरतजीको दक्षिणके भवनमें श्रीलखनलालजीको तथा उत्तर वालेमें श्रीशत्रुघ्नलालजीको और पश्चिम दिशा वाले मनोहर भवनमें स्वयं श्रीराम दूलहसरकारको ले गयीं ॥२॥

इमानि चत्वारि गृहाणि राज्ञः खण्डे द्वितीये भवनस्य चासन् ।
मध्याजिरे रत्नचमत्कृतोऽसौ वैवाहिको मण्डप आलयस्य ॥३॥
चामीकरोर्व्या स्फटिकालयास्ते लसन्ति भव्याः समलङ्कृताः स्म ।
ससारिकाकीरमृगादिचित्रैर्मनोहरैश्चित्तमुषो मुनीनाम् ॥४॥
रत्नाञ्चितादर्शततिर्विभाति रम्या चतुर्दिक्षु तथा वितानम् ।
विनिर्मितं हाटकतन्तुभिश्च मध्योल्लसच्चन्द्रमणिप्रकाशम् ॥५॥
सुवर्ण्यसूत्रास्तरणं मनोज्ञं विचित्रचित्रं मृदुलं चकास्ति ।
तेष्वालयेषूत्तमचित्रपङ्क्तिर्मनोभिरामो च सुरोत्तमानाम् ॥६॥
तेषां चतुर्दिक्षु निकेतनानां सेवागृहा रम्यतरा विरेजुः ।
अवर्ण्यसौन्दर्यपरिष्कृता वै संदर्शनीया दिविषद्वराणाम् ॥७॥
रामे स्थिते कौतुकमन्दिरेऽद्धा तया विदेहाधिपराजपुत्र्या ।
स्त्रीणां सहस्रै रतिमोहिनीनां जयेति घोषस्तुमुलो बभूव ॥८॥
सुदर्शनाम्बा भरतं सखीभी रामानुजं कान्तिमती तदैव ।
निन्ये सुभद्रा रिपुसूदनं च पृथक्पृथक् कौतुकवेश्म रम्यम् ॥९॥

ये चारों भवन श्रीमिथिलेशजीमहाराजके राजभवनके द्वितीय खण्ड पर थे और भवनके मध्य आँगनमें रत्नोंसे चमचमाता हुआ प्रकाशमान विवाह-मण्डप था ॥३॥

वे चारो कोहवर-भवन स्फटिक मणिके बने हुये, सुवर्णमणि भूमिसे युक्त शुक-सारिका (तोता-मैना) हरिण आदिके मनोहर चित्रोंसे सब प्रकार सुसज्जित, मुनियोंके भी चित्तकी चोरी करने वाले हुये ॥४॥

उन भवनोंमें चारों ओर रत्न जटित शीशोंकी पङ्क्तियाँ तथा मध्यमें चन्द्रमणिके प्रकाशसे युक्त, सोनेके धागोंसे निर्मित तना हुआ चँदोवा सुशोभित था ॥५॥

चारो कोहवर भवनोंमें देवताओंके उत्तम, मनोहर, चित्रोंकी पङ्क्ति तथा सुवर्णके धागोंसे बने हुये अत्यन्त कोमल बिछावन बिछे थे ॥६॥

उन महलोंमें चारो ओर अकथनीय सौन्दर्य सम्पन्न, देवश्रेष्ठोंके लिये भी परम दर्शन करने योग्य मनोहर सेवागृह बने थे ॥७॥

श्रीबिदेहराजनन्दिनीजू सहित श्रीरामभद्रजूके कोहवर भवन पहुँच जाने पर, अपनी छबि से रतिको मुग्ध कर लेने वाली, सहस्रों स्त्रियोंने अति-उच्च स्वरसे जय घोष किया ॥८॥

तब श्रीसुदर्शना अम्बाजी सखियोंके सहित श्रीभरतलालजीको, श्रीकान्तिमतीजी श्रीलखन-लालजीको तथा श्रीसुभद्रा अम्बाजी शत्रुघ्नलालजीको, पृथक–पृथक मनोहर कोहवर, भवनोंमें ले गयीं ॥९॥

रामं सहा ऽयोनिजया निवेश्य भद्रासने रत्नचमत्कृते च ।
मृद्वंशुकाढ्ये मिथिलेश्वरी वै ताभ्यां सुरार्च्चां समकारयत्सा ॥१०॥

विधाय देवा नयनाभिरामं योषिद्वपुः संविविशुः प्रधानाः ।
द्रष्टुं सुखं कौतुकमन्दिरं स्वं तदद्भुतं भाग्यवशोपलब्धम् ॥११॥

देव्यः समस्ताः प्रमदप्रमत्ताः सुदिव्यशृङ्गारसुशोभनाङ्ग्यः ।
प्रागेव राज्ञ्या सममागमंस्ता दिव्यत्विषोऽशेषगुणप्रवीणाः ॥१२॥

माङ्गल्यगीतानि निशामयन्त्यो वरं विलोक्य च्छविसिन्धुसारम् ।
सौवर्णपात्रे मधुपर्कमाल्यो निधाय सद्यो ह्यानयंस्तु तत्र ॥१३॥

सिद्धिः स्वहस्तेन तदम्बुजाक्षी निधाय रामस्य तदा पुरस्तात् ।
उवाच विस्मेरमुखी तमेतत् प्रियां प्रिय ! प्राशय लोकरीत्या ॥१४॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

सङ्कोचतः प्राशयितुं कराब्जं नोत्थीयमानं रघुनन्दनस्य ।
प्रियां सखीभिः परिणोदितस्यासकृद्ददाशैलसुता ददर्श ॥१५॥

तत्पश्चात् मिथिलेश्वरी श्रीसुनयना महारानीजूने अपनी अयोनिजा श्रीललीजूके सहित प्यारे श्रीराम-वर सरकारजीको कोमल बिछावन युक्त, रत्नोंसे जगमगाते हुये मङ्गलमय आसन पर विराजमान करके दोनोंसे देवपूजन करवाया ॥१०॥

भाग्यसे प्राप्त, उस अद्भुत सुखको देखनेके लिये प्रधान देव-गण, मनोहर स्त्री रूप धारण करके उस कोहवर-भवन में जा पहुँचे ॥११॥

सम्पूर्ण गुणोंमें चतुरी दिव्यकान्ति वाली उनकी देवियाँ अत्यन्त हर्षसे मतवाली हो, अपने अङ्गोंको दिव्य सुन्दर-शृङ्गारसे सुशोभित करके वहाँ पहले ही श्रीसुनयना अम्बाजूके साथ आ चुकी थीं ॥१२॥ सखियाँ मङ्गल गीतोंको श्रवण करती हुई, छवि-समुद्रके सार स्वरूप श्रीदूलह-सरकार का दर्शन करके, सुवर्ण-पात्रमें मधुपर्क (मधु, घृत मिला हुआ दही आदि) रखकर वहाँ तुरन्त ले आईं ॥१३॥

तब कमलके समान नेत्र व मुस्कान युक्त मुख वाली, श्रीसिद्धिजी अपने हाथ से उसे श्रीरामभद्रजूके सामने रखकर बोलीं:— हे प्यारे लोक रीतिके अनुसार इसे आप अपनी श्रीप्रियाजीको पवाइये ॥१४॥

सखियोंके बारम्बार प्रेरणा करने पर भी श्रीप्रियाजीको पवानेके लिये सङ्कोचके कारण जब श्रीपार्वतीजीने श्रीरघुनन्दन प्यारेजूके हाथको उठते नहीं देखा ॥१५॥

तदा गृहीत्वा स्वकरेण पाणिं रामस्य सीतां पुलकाञ्चिताङ्गी ।
तत्प्राशयामास विवाहभूषाचमत्कृताङ्गीं गिरिजा प्रहृष्टा ॥१६॥
तदद्भुतं शातमवेक्ष्य सख्यः प्रेमप्रमत्ता यतपद्महस्ताः ।
श्रीलक्ष्मणाद्या अवदन्विनीतास्तां प्राशयेतीन्दुमुखि ! स्वकान्तम् ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

नोच्छिष्टमाज्ञाय तदात्मनः सा पस्पर्श तत्पात्रमपीति दृष्ट्वा ।
सौषम्यलेशाहृतविश्वगर्वा गिरा गृहीतं करपङ्कजं तत् ॥१८॥
तस्याः कराब्जेन करस्थितेन संप्राशयन्ती नयनाभिरामम् ।
रामं स्म चायाति न मोदपारं बागीश्वरी श्रीमिथिलेन्द्रपुत्र्याः ॥१९॥
उच्छिष्टसंप्राशनको विधिर्वै ताभ्यां मुदा मङ्गलगीतवाद्यैः ।
इत्थं भवानीविधिकन्यकाभ्यां सुकारितोऽद्वैतमतिप्रसिद्ध्यै ॥२०॥
आसाद्य सङ्केतमयोनिजाया मातुर्वयस्या जलपूर्णपात्रम् ।
उपानयत्केलिविलोलचित्ता सौवर्णकं रत्नचमत्कृतं द्राक् ॥२१॥

तब पुलकायमान होती हुई वे अपने हाथसे श्रीरामभद्रजूका हाथ पकड़कर, विवाह-शृङ्गारसे चमत्कृत अङ्गोंवाली श्रीकिशोरीजीको, अत्यन्त हर्षके साथ मधुपर्क पवाने लगीं ॥१६॥

उस अद्भुत सुखको देखकर श्रीलक्ष्मणाजी आदि प्रेम मतवाली सखियाँ विनम्रभावसे अपने हस्तकमल जोड़कर उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूसे बोलीं:— हे श्रीचन्द्रमुखीजू ! अब आप श्रीप्राणप्यारेजूको पवाइये ॥१७॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे प्रिये ! अपनी सुन्दरताके कणमात्रसे समस्त विश्वके अभिमानको हरण करने वाली श्रीललीजीने उस मधुपर्कको अपना उच्छिष्ट जानकर उसके पात्रका भी स्पर्श नहीं किया, यह देखकर श्रीसरस्वतीजी उनके कर-कमलको पकड़ लिये ॥१८॥

पुनः अपने हाथमें विराजमान श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके उस कर-कमल द्वारा, अपनी छबिसे नेत्रोंको अतीव सुखदेने वाले श्रीरामभद्रजीको श्रीवागीश्वरीजी, उसी प्रसादी मधुपर्कको पवाती हुई वे आनन्दका पार नही पा रही थीं अर्थात् उसीमें डूबी जा रही थीं ॥१९॥

इस प्रकार श्रीपार्वतीजी तथा श्रीसरस्वतीजीने मङ्गलमय गीत वाद्योंके सहित दोनों अलौकिक दुलहिन-दूलह सरकारसे परस्पर पूर्ण-अभेदबुद्धिकी सिद्धि (प्राप्ति) के लिये उच्छिष्ट संप्राशन नामकी विधिको हर्षपूर्वक सम्पन्न कराया ॥२०॥

पुनः अयोनिजा अर्थात् बिना किसी कारण (अपनी इच्छा) मात्रसे प्रकट हुई श्रीजनकराज-दुलारीजीकी श्रीअम्बाजीका सङ्केत पाकर, हास्य-लीलाके लिये सदा चञ्चलचित्त रहनेवाली सखी, जल पूर्ण रत्न जटित सोनेके पात्रको, तत्क्षण समीपमें ले आई ॥२१॥

प्रपश्यतोस्तर्हि तयोर्मनोज्ञे वराटिके श्रीमिथिलेश्वरी द्वे।
निपात्य तस्मिन्मणिनिर्मिते च प्रोवाच वाक्यं वरकन्यके ते ॥२२॥

श्रीसुनयनोवाच।

पूर्वं समुद्धृत्य कपर्द्दिका मे प्रदर्शिता स्यात्तु यया च येन।
सा वा स वै कौतुकमन्दिरस्य ह्यस्यां सभायां जयपत्रमीयात् ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच।

इत्थं वदन्त्यां वचनं च तस्यां कलं जगुर्मङ्गलगीतमाल्यः।
रामः करं वारिगतं विधाय तामुद्यतोऽन्वेष्टुमभूज्जयेप्सुः ॥२४॥
तर्ह्येव दृष्ट्वा मणिकङ्कणेऽ सौ प्रियामुखेन्दुप्रतिबिम्बमञ्जः।
तद्दर्शनासक्तसरोजनेत्रो वराटिकां स्पर्ष्टुमभूदनीशः ॥२५॥
लब्ध्वाऽवकाशं मिथिलेन्द्रपुत्र्या करारविन्देन कपर्द्दिके ते।
जलात्समुद्धृत्य ततो जनन्यै समर्पिते तत्क्षणमम्बुजाक्ष्या ॥२६॥
जेत्रीति घोषं नृपनन्दिनी नः पराजितो दाशरथिः प्रियोऽयम्।
एणीदृशः पाणितलं वयस्याश्चक्रुः स्मितास्याः परिवादयन्त्यः ॥२७॥
सख्यस्तदानीमथ शारदाद्या विशारदाः सादरमेकमत्यः।
अकारयंश्छद्ममयीरनेका लीला वरै राजसुतामुदे ताः ॥२८॥

महारानी श्रीसुनयनाजी दोनों वर-कन्या सरकारके देखते हुये, मणिनिर्मित दो मनोहर कौड़ियोंको उसमें डालकर बोलीं ॥२२॥ इस पात्रसे कौड़ी निकालकर जो हमें पहिले दिखायेगा या दिखायेगी, उसीको इस समाजमें कोहवर-भवनका विजयपत्र प्राप्त होगा ॥२३॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोले:—हे कात्यायनी! श्रीसुनयना अम्बाजीके इस प्रकार कहने पर सखियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं, तब श्रीरामदूलह सरकारजी जयके इच्छुक हो, उस जलमें अपना हस्त-कमल छोड़कर कौड़ी खोजनेके लिये उद्यत हुये ॥२४॥

उसी समय मणिमय कंगनामें श्रीप्रियाजूके मुखचन्द्रका दर्शन करके उनके कमलनेत्र उस मुखचन्द्रके दर्शनोंमें आसक्त हो गये, अतः जलमें पड़ी कौड़ीका स्पर्श करनेमें भी वे असमर्थ रहे ॥२५॥ इसलिये अवकाश पाकर, कमललोचना श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीने अपने कमलवत् कोमल हाथसे उन दोनों कौड़ियोंको जलसे निकालकर, श्रीसुनयना अम्बाजीको उसी क्षण अर्पण कर दिया ॥२६॥

मुस्कानयुक्त मुखवाली, मृगलोचना सखियाँ, हाथकी तालीबजाती हुई यह घोष करने लगीं:-हमारी श्रीराजनन्दिनीजू जीत गयीं, श्रीदशरथनन्दनप्यारेजू हार गये ॥२७॥ पुनः श्रीशारदाजी आदि परम-चतुरी सखियाँ एक मति हो श्रीजनकदुलारीजू आदि राजकुमारियोंकी प्रसन्नताके लिये चारो वर-सरकारों द्वारा अनेक प्रकारकी छलपूर्ण लीला करवाने लगीं ॥२८॥

क्षुधाऽन्विता मे तनयेति चेतसा विचारयन्ती न चिराच्छुचाऽऽकुला ।
तद्वेश्मनोऽधः स्थितगेहमालिभी राज्ञी सुतां स्वां गमयाञ्चकार ह ॥२९॥
निदेशमाश्रुत्य सुदर्शनादयो राज्यो महिष्या मिथिलेशितुर्मुदा ।
कन्याः स्विकास्ता गमनं हि चक्रिरे तस्या मनोहारि रहोनिकेतनम् ॥३०॥
सषड्रसं वेदविधं सुधोपमं सुवासितं स्वादुयुतं ततोऽशनम् ।
सौवर्णपात्रेषु निधाय सत्वरं समानयामास विदेहवल्लभा ॥३१॥
तदर्पितं न स्पृशतीति पाणिना वरः समालोक्य समादृतोऽपि सन् ।
बुद्ध्वा मनोभावममुष्य पुष्कलं राज्ञी ददावोप्सितपारितोषिकम् ॥३२॥
तदा सखीनां सरसं रघूद्वहः शृण्वन् कलं हास्यगिरो मनोहराः ।
श्वश्र्वा वचोभिर्मधुरैः प्रतोषितो भोक्तुं ह्यसावारभत स्मिताननः ॥३३॥
शेषेभ्य एवाशु वरेभ्य आलिभिः संप्रेष्य वस्तून्यशनस्य तानि ।
यथा हि रामाय तथैकभावतो जगाम तेषां भवनानि सा क्रमात् ॥३४॥
सुलालयन्ती बहुशो मुदाप्लुता प्रसाद्य तानीप्सितपारितोषिकैः ।
आज्ञां वरेभ्यः सुगिरा समादिशद्भोक्तुं सहस्रालियुतेभ्य आदरात् ॥३५॥

"हमारी श्रीललोजी भूखी होंगी" श्रीसुनयना महारानीजोने मनमें यह विचार करती हुई, शोकसे व्याकुल हो तुरन्त अपनी श्रीललीजीको सखियोंके द्वारा उस कोहवर भवनके नीचे वाले स्थित भवनमें भेज दिया ॥२९॥

श्रीसुदर्शनाजी आदि रानियोंने श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी–अपनी कन्याओंको उनके ऐकान्तिक भवनमें ले आईं ॥३०॥

तत्पश्चात् छः रसोंसे युक्त अमृतके समान स्वादिष्ट चार प्रकार गुणकारी भोजनोंको सुवर्णके पात्रोंमें सजाकर श्रीविदेहराजवल्लभाजू वहाँ तुरन्त ले आईं ॥३१॥

सब प्रकार आदर करने पर भी, श्रीवरसरकार उस अर्पित भोजनको छू भी नहीं रहे हैं, यह देखकर उनके मनोभावको समझकर श्रीसुनयना महारानीजीने उन्हें यथेष्ट भेंट प्रदानकी ॥३२॥

तब अपनी सासुजीकी मधुरवाणी द्वारा पूर्ण सन्तुष्टहो, सखियोंके हास्ययुक्त वचनोंको श्रवण करते हुये, मन्द मुस्कान युक्त मुखवाले वे वर-सरकार श्रीरामभद्रजू भोजन करने लगे ॥३३॥

पुनः श्रीसुनयनाअम्बाजी शेष तीनों वरोंके लिये श्रीरामभद्रजूके समान एकभावसे सखियोंके द्वारा सम्पूर्ण भोजन सामग्री शीघ्र भेजकर, स्वयं क्रमशः उनके भवनोंमें पधारीं ॥३४॥

हजारों सखियोंसे युक्त उन वरोंको बहुत प्रकारसे प्यार करती हुई, तथा अभीष्ट भेंट देकर आनन्दमें डूबी श्रीसुनयना महारानीजीने उन्हें भोजन करनेकी आज्ञा प्रदान की ॥३५॥

पुनः समासाद्य रहः स्वमन्दिरं निलिम्पनाथादिककौतुकप्रदम् ।
ददर्श पुत्रीं निमिजासहस्रकैर्निषेव्यमाणां परिदर्शितालसाम् ॥३६॥

तामङ्कमादाय मृगायतेक्षणां विवाहभूषापरिदीप्तविग्रहाम् ।
प्रेमातिरेकेण बभूव विह्वला प्रशंसयन्ती निजभाग्यवैभवम् ॥३७॥

पुनः समाधाय मनो मनस्विनी श्रीकान्तिमत्यादिभिराशु बोधिता ।
निवेश्य मध्ये स्वसुतामयोनिजां कुमारिकाणां स्वकुलस्य हर्षिता ॥३८॥

संस्थाप्य पात्राणि शतानि चाग्रतः प्रत्येकपुत्र्या मणिभास्वराण्यथ ।
पृथक्पृथग्भोजनवस्तुसंयुतान्युदारभावा सकला ददर्श ताः ॥३९॥

मोदाब्धिमग्ना मिथिलेश्वरी तदा सर्वाभ्य आज्ञामशनाय चादिशत् ।
कुमारिकाभ्योऽवनिजापदाब्जयोः प्रसक्तधीभ्यो जलजायतेक्षणा ॥४०॥

लब्ध्वा प्रसादं दुहितुर्धरेशितुः समाशुरम्बेङ्गितमुद्विलोक्य ताः ।
अत्यल्पमत्वा मिथिलेशनन्दिनी गता विरामं सुमनोज्ञदर्शना ॥४१॥

शोभा शृङ्गारसे इन्द्र आदिको भी आश्चर्ययुक्त करनेवाले, अपने ऐकान्तिक भवनमें पहुँचकर उन्होंने हजारों निमिवंशकुमारियोंसे सेवित, अपनी श्रीललीजीको आलस्य प्रकट करती हुई देखा ॥३६॥ विवाह शृङ्गारसे अत्यन्त प्रकाशमान श्रीअङ्गोंसे सुशोभित, हरिणके सदृश सुन्दर नेत्रोंवाली श्रीललीजीको गोदमें लेकर, अपने भाग्य सम्पत्तिकी प्रशंसा करती हुई प्रेमकी अधिकतासे वे विह्वल हो गयीं ॥३७॥

श्रीकान्तिमतीजी आदि रानियोंके सावधान करने पर उदार मनवाली श्रीसुनयना महारानीजी मनको सावधान करके, अपने कुलकी कुमारियोंके बीचमें अपनी अयोनिजा श्रीललीजीको विराजमान करके हर्षको प्राप्त हुई तत्पश्चात् अत्यन्त उत्कृष्ट भाववाली वे श्रीअम्बाजी प्रत्येक पुत्रीके सामने पृथक्-पृथक् मणियोंसे प्रकाशमान, भोजन वस्तुओंसे युक्त, सैकड़ों पात्रोंको रखकर सभीकी ओर देखने लगीं ॥३८॥३९॥

पुनः आनन्द-सागरमें डूबी हुई कमलके समान विशाल नेत्रों वाली श्रीमिथिलेशजीकी महारानीजीने श्रीललीजीके चरण-कमलोंमें आसक्त बुद्धि वाली सभी कुमारियोंको, भोजन करने के लिये आज्ञा प्रदान की ॥४०॥

श्रीमिथिलेशरानन्दिनीजूका प्रसाद प्राप्त करके तथा श्रीअम्बाजीका सङ्केत देखकर वे सभी बहिनें भोजन करने लगीं, किन्तु अत्यन्त मनोहर दर्शनों वाली श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजू, अत्यन्त थोड़ा भोजन करती रुक गयीं ॥४१॥

ततः समस्ता निमिवंशसम्भवा आप्रार्थयन्भोक्तुमुदीक्ष्य तन्मुहुः ।
मोघं प्रयाते विनये समत्यजंस्तस्मिञ्छुचा ता युगपद्धि भोजनम् ।।४२।।

श्रीसुनयनोवाच ।

किमर्थमश्नासि न मोदवारिधे! भद्रं हि ते ब्रूहि तदाशु मे प्रिये! ।
त्यक्ताशनायां त्वयि तेऽनुजा इमा सर्वाः प्रपश्योज्झितभोजनाः स्थिताः ४३

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्ताऽवनिनाथनन्दिनी जगाद सा मातरमम्बुजेक्षणा ।
नात्तुं ममोत्तिष्ठति हेऽम्ब वै करः किं कारणं तेऽन्यदहं ब्रवीम्यतः ।।४४।।

श्रीशिव उवाच ।

इत्थं सुमुख्याऽभिहितं वचोऽमृतं श्रुत्यञ्जलिभ्यां च निपीय सादरम् ।
स्वदेवरस्त्रीभिरसौ प्रचोदिता न्यवेशयत्स्वाङ्कमुपेत्य तां सुताम् ।।४५।।
ग्रासं विरच्येन्दुमुखीं दरस्मितां वत्से ! भवत्याऽयमयं प्रगृह्यताम् ।
इत्युच्चरन्ती प्रणयेन पुत्रिकां तां प्राशयामास विदेहवल्लभा ।।४६।।
सा तद्गृहीत्वा जलजाभपाणिना ग्रासत्रयं नाश चतुर्थकं यदा ।
चन्द्रप्रभा प्रीतिपरीतया गिरा जगाद सग्रास कराम्बुजेति ताम् ।।४७।।

यह देखकर सभी निमिवंश-कुमारियोंने उनसे वारम्बार भोजन करनेके लिये प्रार्थनाकी, और उसके सफल न होने पर शोकवश उन्होंने भी एक साथ भोजन छोड़ दिया ।।४२।।

श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीललीजीसे बोलीं:-हे समुद्रवत् अथाह आनन्दवाली ! हे प्यारी ! आपका कल्याण हो, मुझे बतलाइये-आप भोजन क्यों नहीं कर रही हैं? आपके छोड़ते ही देखिये आपकी ये सभी बहिनें भी भोजन छोड़ बैठी हैं ।।४३।।

भगवान् शिवजी बोले:-हे गिरिराजकुमारी ! कमललोचना, अवनिनाथ श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजी, श्रीअम्बाजीके इस प्रकार कहने पर बोलीं:-हे श्रीअम्बाजी! भोजन करनेके लिये मेरा हाथ ही नहीं उठ रहा है, दूसरा कारण क्या बताऊँ ? ।।४४।।

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! श्रीसुमुखीजूके इस प्रिय वचन रूपी अमृतको अपने कान रूपी अञ्जुलियोंसे पीकर, अपनी देवरानियोंकी प्रेरणासे श्रीललीजूके पास जाकर श्रीसुनयना महारानीजीने, उन्हें आदरपूर्वक अपनी गोदमें बिठा लिया ।।४५।।

तदनन्तर विदेह, बल्लभा श्रीसुनयनामहारानीजी ग्रास बनाकर किञ्चित् मुस्कानयुक्त चन्द्रमाके समान परम-आह्लादकारी, प्रकाशमान मुख वाली अपनी श्रीललीजीसे, हे वत्से ! इस ग्रासको ले लीजिये, अच्छा इस ग्रासको ले लीजिये, इसप्रकार प्रेमपूर्वक कहती, उन्हें भोजन कराने लगीं।।४६।।

श्रीललीजी अम्बाजीके कमलवत् हाथोंसे तीन ग्रास लेकर जब चौथेको नहीं लिए, तब श्रीचन्द्रप्रभाजी अपने हस्त कमलमें ग्रास लेकर प्रेमभरी वाणीसे बोलीं ।।४७।।

श्रीचन्द्रप्रभोवाच ।

स्नेहोऽस्ति चेन्मय्यनुरागविग्रहे किञ्चित्तवाप्येकमिमं ह्युरीकुरु ।
स्वस्त्यस्तु ते श्रीसुकुमारि! शोभने! भावप्रसन्ने! ऽखिलभावपूरिके ॥४८॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा मिथिलेशनन्दिनी जग्राह तद्ग्रासमसौ मुदान्विता ।
ततस्तु सर्वाभिरगाधनिश्चया संभोजितेत्थं क्रमशो दयामयी ॥४९॥
कुमारिकाश्चापि तथैव तर्पिताः सर्वाः स्वमात्रा स्वसृमातृभिः क्रमात् ।
सर्वाभिरानन्दयुताभिरुर्विजा यथैव ताभिर्निमिवंशसम्भवाः ॥५०॥
प्रक्षालितेन्द्वास्यकराङ्घ्रिपङ्कजा ताभिः परीताऽवनिनाथनन्दिनी ।
प्रदाय ताम्बूलमथाम्बया मुदा प्रस्वापिता सादरमात्मसद्मनि ॥५१॥
विदेहराजः सह बन्धुभिः स्वकैः सोद्वाहयात्रं निशि भोजनालये ।
श्रीकोशलेन्द्रं कृतभोजनं मुदा ह्यप्रापयत्तं जनवासमन्दिरम् ॥५२॥
लब्ध्वाऽवकाशं स विधाय भोजनं सर्वैर्दिवास्वापगृहे सहास्वपत् ।
प्रस्वापितांस्तांश्च तथैव ता नृपो विज्ञाय राज्ञ्या तनया वरान्सुखम् ॥५३॥

हे शोभने (सुन्दरी)जू ! हे श्रीसुकुमारीजू ! आप सभीके भावोंकोपूर्ण करती हैं तथा भाव से ही प्रसन्न होती हैं, आपका मङ्गल हो ! यदि मेरे प्रति आपका कुछ भी स्नेह है, तो मेरे एक इस ग्रासको स्वीकार कीजिये ॥४८॥

अथाह दृढ़सङ्कल्प वाली दयामयी श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूने उसके उस ग्रासको हर्षपूर्वक ग्रहण कर लिया तत्पश्चात् इसी प्रकार सभी माताओंने क्रमशः पारी-पारीसे उनको भोजन कराया ॥४९॥

जैसे श्रीभूमिनन्दिनीजीको उनकी माताजीके समेत आनन्द युक्ता सभी रानियोंने भोजनके द्वारा क्रमशः तृप्त किया, उसी प्रकार निमिवंशमें प्रकट हुई सभी कुमारियोंको सभी रानियों ने तृप्त किया ॥५०॥

पुनः श्रीसुनयना अम्बाजीने उन सभी पुत्रियोंके सहित श्रीललीजूके मुखचन्द्र तथा हस्त-चरण कमलोंको धोकर आनन्द-पूर्वक पान देकर उन्हें अपने भवनमें शयन कराया ॥५१॥

उधर अपने भाइयों सहित श्रविदेहजी महाराजने बरातके साथ अयोध्यापति श्रीदशरथजी महाराजको व्यारू सदनमें भोजन कराकर, आनन्द पूर्वक उन्हें जनवासभवनमें पहुँचाया ॥५२॥

पुनः श्रीमहारानीजी द्वारा कन्याओं तथा वरोंको शयन कराया हुआ जानकर उन्होंने अवकाश मिलने पर भोजन करके, सबके सहित दिनके विश्रामभवनमें जाकर शयन किया ॥५३॥

अम्बा सुनेत्रा स्वसखीर्विचक्षणा संप्रेष्य वै कौतुकमन्दिराणि सा ।
आज्ञां बधूभ्यः परिदिश्य चास्वपत्ततो वराणां शयनाय सत्वरम् ॥५४॥

श्रीस्नेहपरोवाच ।

आह्लादसिन्ध्वाप्लुतमानसा सती माताऽस्मदीया सदयोरुवत्सला ।
निद्रामसौ प्रेष्ठ ! भवेदवाप्तये कथं समर्थाऽगमभाग्यभूषिता ॥५५॥
निद्रां प्रयातास्वखिलासु वै ततः शनैः समुत्थाय ददर्श भूमिजाम् ।
शशोर्णकप्रावृतकान्तविग्रहां शरत्प्रपूर्णेन्दुमनोहराननाम् ॥५६॥
क्वचिच्छयाना क्वचिदुत्थिता पुनः पश्यत्यसौ तच्छविसिन्धुमीप्सितम् ।
बिम्बोष्ठमब्जाक्षमुशत्स्मिताननं न तृप्तिमेति स्म हृदा कथञ्चन ॥५७॥
निसर्गसम्मोहनरूपसम्पदा गुणैर्मनोज्ञैश्चरितैर्हृदिस्पृशैः ।
भूत्वा ह्यसुभ्योऽप्यधिका वरीयसी प्राणप्रियेयं जगतां विराजते ॥५८॥

इधर अत्यन्त चातुर्य्यगुण सम्पन्ना श्रीसुनयनाअम्बाजी अपनी सखियों द्वारा कोहवर-भवन में तुरन्त चारो वर कुमारोंको शयन करानेके लिए सिद्धिजी आदि बहुओंको आज्ञा देकर, स्वयं भी शयन करती हुईं ॥५४॥

श्रीस्नेहपराजी श्रीरामभद्रजूसे बोलीं:—हे प्यारे ! किसी अन्यको न प्राप्त होने योग्य सौभाग्यसे अलंकृत हमारी अत्यन्त वात्सल्य रसभरी हुई उन दयालु माँ श्रीसुनयनाअम्बाजीका जब मनही आह्लादसागरमें डूबा पड़ा था तब भला वे निद्रा लेनेको किस प्रकार समर्थ हो सकती थीं ? अर्थात् किसी प्रकार भी नहीं अत एव सबके सो जाने पर वे धीरेसे उठीं और खरगोशके रोमोंसे वने हुये ऊनी दुशालेसे ढके, मनोहर शरीर वाली अपनी शरद्ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान परम प्रकाशमय, आह्लाद - परिपूर्ण मुखवाली श्रीललीजूका दर्शन करने लगीं ॥५५॥५६॥

कभी वे किसीके जागनेकी सम्भावनासे सो जातीं और कभी सबको सोई हुई जानकर दर्शनकी अधीरता वश उठकर अपने मनोऽभिलषित उनके बिम्बाफलके समान लाल ओष्ठ, कमलके समान विशाल नेत्रोंसे युक्त, समुद्रके समान अथाह सौन्दर्य वाले मनोहर मुस्कान युक्त श्रीमुखारविन्दका दर्शन करतीं, किन्तु उससे वे किसी प्रकार भी तृप्त नहीं हो रही थीं ॥५७॥

हे प्यारे ! इस प्रकार अपने सम्यक् प्रकार मुग्धकारी, सौन्दर्य सम्पत्ति, तथा मनोहर गुण-गण एवं अत्यन्त हृदयाकर्षक चरितोंके द्वारा सभी चर-अचर प्राणियोंकी प्राणोंसे भी अत्यन्त प्यारी होकर, हमारी ये श्रीप्राणप्रियाजी सर्वाधिक उत्कर्षको प्राप्त हैं ॥५८॥

इत्येकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

—❀❀❀—

अथ शततमोऽध्यायः ।

श्रीसुनयना अम्बाजीके आदेशानुसार भोजन कराके श्रीसिद्धिजी आदि बहुओं द्वारा चारो वरोंका शयनाशन ग्रहण ।

श्रीशिव उवाच ।

राज्ञ्यां गतायां तदधः स्वमन्दिरं सख्यः सुमुख्यो मृगशावकेक्षणाः ।
हास्योक्तिभी राममनङ्गमोहनं ता हासयन्त्यो मुदमद्भुतां ययुः ॥१॥
संपाययित्वा चषकेण निर्मलं सुधोपमं श्रीकमलासरिज्जलम् ।
रामाय लब्धाचमनाय चार्पयंस्ताम्बूलवीटीः कृतभोजनाय ताः ॥२॥
उपानहौ तस्य सुवस्त्रवेष्टिते व्यकल्पयन्दिव्यविभूषणान्विताम् ।
देवीं सुपीठस्थगतां सकौतुकं पुष्पस्रजाढ्यां वसनावृताननाम् ॥३॥
ज्ञात्वा तदम्भोजदलायतेक्षणा सिद्धिर्महाहास्यकलाविशारदा ।
जगाद रामं स्मितपूर्वया गिरा माध्व्येति वाक्यं पिकमोहनस्वना ॥४॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

उपस्थितोऽयं समयः शुभावहो देव्यर्चनस्यातिवरोऽब्जलोचन ! ।
इतस्ततः साकमुपेत्य वै मया तदालयं तां परिपूजय द्रुतम् ॥५॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! जब श्रीसुनयना महारानीजी उस कोहवर-भवनके नीचे अपने भवनमें चली गयीं, तब मृग शिशुके समान विशाल चञ्चल नेत्रों तथा सुन्दर मुखों वाली वे सखियाँ अपनी छबिसे कामको भी मुग्ध कर लेने वाले श्रीदूलह-सरकारको हास्य-मय वचनों द्वारा हँसाती हुई विलक्षण सुखको प्राप्त हुईं ॥१॥

पुनः श्रीकमलानदीके अमृत समान सुन्दर निर्मल जलको, सुवर्ण-मय गिलाससे पिलाकर आचमन करलेने पर उन्होंने श्रीरामभद्रजीको पानके बीरे अर्पण किये ॥२॥

इसके बाद सखियोंने श्रीकिशोरीजीकी जूतियोंको, सुन्दर वस्त्रसे लपेटकर उन्हें दिव्य भूषणों से अलंकृत सुन्दर चौकी पर विराजमान, पुष्पमालाओंसे सुशोभित वस्त्रसे मुख ढकी हुई देवीजी बना दिया ॥३॥

हास्यकलामें अत्यन्त प्रवीणा कमललोचना तथा अपने स्वरसे कोयलोंको मुग्ध करने वाली श्रीसिद्धिजी इस (लीलाको) जानकर मुस्कान पूर्वक मधुरवाणी द्वारा दूलहसरकार श्रीरामभद्रजूसे बोलीं—॥४॥

हे कमललोचन ! देवी-पूजनका यह अति उत्तम मङ्गलकारी समय उपस्थित है, अत एव आप यहाँसे मेरे साथ मन्दिरमें पधारकर उनका शीघ्र पूजन कीजिये ॥५॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा निखिलाण्डनायकं सिद्धिस्तमादाय ययौ मुदान्विता ।
देव्यालयं कल्पितमाशु शोभनं खण्डे तृतीये मणिभिः प्रभासिते ॥६॥
प्रविश्य तन्मन्दिरमम्बुजेक्षणं जगाद रामं वरवेषमित्यसौ ।
इयं कृपामूर्त्तिरशेषसिद्धिदा सिद्धीश्वरी ते कुलपूज्यदेवता ॥७॥
दाम्पत्यसौख्यर्द्धिविवृद्धिमिच्छतां पूज्या वराणां शुभदा विशेषतः ।
इयं समस्तापदरिष्टवारिणी त्वया वरश्रेष्ठ ! ततः प्रपूज्यताम् ॥८॥
ब्रह्मादिभिर्वन्द्यतमेयमन्वहं भजज्जनानामखिलेष्टदायिका ।
निरस्तसर्वाघगिरीन्द्रदर्शना समर्च्यतां प्रेष्ठ ! ममार्चिता त्वया ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

प्रपूज्यतां वागुदितां मुहुर्मुहुः कुलस्य देवी भवतेति सादरम् ।
स्मृत्वा हसन्तीरवलोक्य शङ्कितश्चन्द्रानना राम उवाच तामिदम् ॥१०॥

श्रीराम उवाच ।

संप्रेर्यमाणोऽस्म्यसकृत्प्रियेऽधुना त्वया समानीय किलात्र शोभने ।
समर्च्यतां सद्य इयं वरप्रदा कुलस्य देवीति सरोरुहेक्षणे ! ॥११॥

भगवान् श्रीसदाशिवजी बोले:–हे गिरिराजकुमारीजू ! इस प्रकार कहकर श्रीसिद्धिजी अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीदूलहसरकारको लेकर, प्रसन्नता पूर्वक तुरन्त मणियोंसे प्रकाशित तीसरे खण्ड पर कल्पित देवीके सुन्दर मन्दिरमें गयीं ॥६॥

उस मन्दिरमें जाकर वर-वेषधारी कमललोचन श्रीरामभद्रजूसे वे इस प्रकार बोलीं:-हे प्यारे! सम्पूर्ण सिद्धियोंको देने वाली, ये कृपामूर्त्ति, आपकी कुल पूज्यदेवता श्रीसिद्धीश्वरीदेवीजी हैं ॥७॥ ये सिद्धेश्वरी देवी समस्त आपत्तियों व अनिष्टोंको हटाने वाली तथा मङ्गल देने वाली हैं, इस लिये दाम्पत्य(स्त्री-पुरुष सम्बन्ध) सुख, सम्पत्तिकी विशेष वृद्धि चाहने वाले वरोंके लिये ये विशेष पूजने योग्य हैं, इस हेतु हे सर्वोत्तम वर सरकार! आप भी इनका पूजन कीजिये ॥८॥

हे प्यारे ! ये देवीजी ब्रह्मादि देवोंके भी नित्य प्रणाम करने योग्य, भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली तथा दर्शनमात्रसे समस्त पाप रूपी पहाड़ोंको नष्ट करनेवाली हैं, मैं इनका पूजन कर चुकी हूँ, अतः आप भली प्रकारसे इनका पूजन कीजिये ॥९॥

भगवान् शिवजी बोले:–हे श्रीपार्वतीजी ! "इन कुल देवीजीका आप आदर-पूर्वक पूजन कीजिये" बारम्बार इस कही हुई वाणीका स्मरण करके तथा चन्द्रमुखी सखियोंको हंसती हुई देखकर शङ्कायुक्त हो, श्रीरामभद्रजू सिद्धिजीसे बोले:–॥१०॥ हे शोभने ! हे प्रिये ! कमल-लोचने ! आप हमें यहाँ लाकर इन वरदायिनी कुल देवीजीका भली प्रकार पूजन कीजिये", इस प्रकार हमें आप पूर्णरूपसे बारम्बार प्रेरणा कर रही हैं ॥११॥

अपश्यतोऽस्या मुखपङ्कजं हि मे श्रद्धा कथञ्चिद्धृदि नैव जायते ।
तस्मादपावृत्य पटं यथोचितं प्रपूजयिष्यामि विलोक्य साम्प्रतम् ॥१२॥

श्रीशिव उवाच ।

इत्येवमाभाष्य सरोरुहेक्षणः सिद्धिं स्मितास्यो रघुवंशवर्द्धनः ।
देवीमुपागत्य सरोजपाणिना निषिद्ध्यमाणोऽपि तया सहालिभिः ॥१३॥
रामो दशस्यन्दनसूनुसत्तमोऽपसारयामास पटं प्रवेष्टितम् ।
वस्त्रेष्वपश्यन्नपसारितेष्वसौ नैजं पदत्राणयुगं गिरीन्द्रजे ! ॥१४॥

श्रीराम उवाच ।

उदाहरन्त्यास्तव चेतसि प्रिये ! देवीति वस्त्रैः परिवेष्ट्य नूतनैः ।
उपानहौ नैव भयं प्रजायते धूर्त्तोत्तमासीति ममैष निश्चयः ॥१५॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

इयं तु देवी प्रिय ! सत्यमेव हि ब्रह्मादिवन्द्या महदर्चिता शिवा ।
निषेविताऽस्माभिरभूदुपानहौ त्वदङ्घ्रिसंश्लेशमवाप्तुमुत्सुका ॥१६॥
इमां समर्च्येप्सितमाप्यतेऽखिलं सर्वैर्ममश्रोत्रगतेति विश्रुतिः ।
तस्मादिदानीं तव भद्रकाम्यया कृता मयेच्छाऽर्चयितुं त्वया किल ॥१७॥

किन्तु मुखकमलको देखे बिना मेरे हृदयमें इनके पूजनेकी श्रद्धा, किसी प्रकार हो नहीं रही है, इसलिये अब मैं वस्त्र हटाकर तथा दर्शनकरके, इनका यथोचित्त भलीप्रकार पूजन करूँगा ॥१२॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! इस प्रकार रघुकुलकी वृद्धि करने वाले, मृदुमुस्कान युक्त मुख, कमलके समान नेत्र वे श्रीवरसरकार सिद्धिजीसे इस प्रकार कहकर देवीजीके समीपमें प्राप्त हो, सखियों सहित श्रीसिद्धिजीके मना करने पर भी, अपने कमलवत् हाथसे लपेटे हुये वस्त्रको हटा दिये, हे अनघे! उन वस्त्रोंके हटाते ही उन सर्वोत्तम श्रीदशरथनन्दन श्रीरामभद्रजूने देवी रूपमें अपनी ही जूतियोंको देखा ॥१३॥१४॥

श्रीरामभद्रजू बोलेः—हे प्रिये ! जूतियोंको नवीन वस्त्रोंसे लपेट कर "ये देवी हैं" ऐसा कहते हुये आपके चित्तमें भय नहीं होता ? अतः आप बड़ी धोखे बाज हैं, यह मेरा निश्चय है ॥१५॥ श्रीसिद्धिजी बोलींः—हे प्यारे ! ये ब्रह्मादि देवोंसे प्रणाम करने योग्य, महात्माओंसे पूजित, तथा हम सभी आश्रिताओंसे सब प्रकार सेवित निश्चय ही सच्ची देवी हैं, केवल आपके श्रीचरणकमलोंका आलिङ्गन प्राप्त करनेकी उत्सुकतासे जूती बन गयी हैं ॥१६॥

इनका सम्यक् प्रकार (विधिपूर्वक) पूजन करके सभी भाग्यशाली अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सफलता प्राप्त करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि मैंने सुनी थी इस हेतु आपके कल्याणकी इच्छासे ही मैंने इस समय आपके द्वारा इनका पूजन करवानेकी इच्छा की ॥१७॥

श्रीशिव उवाच ।

तस्यां वदन्त्यामिति पाटवं वचः सिद्धौ च रामं स्मितशोभिताननम् ।
संप्रेषिता आश्वगमंस्तदालयं सख्यो विदेहाधिपपट्टकान्तया ॥१८॥
रामस्य दृष्ट्वा वरवेषमद्‌भुतं ता रूपमुग्धा अभवन्पुरःस्थिताः ।
स्मृत्वा निदेशं समवेदयन्पुनः सिद्धयै च राज्ञ्या कथितं मुदान्विताः ॥१९॥

श्रीसख्य ऊचुः ।

यामैकशेषा रजनी हि वर्तते प्रस्वाप्यतामाशु वरा ममाज्ञया ।
नापैत्वियं हास्यविलासलीलया बध्वो यथा वै कुरुताचिरात्तथा ॥२०॥
प्रदत्तवत्येति निदेशमागता संप्रेपितास्त्वां वयमम्बुजेक्षणे ।
राज्ञ्या स्वयं स्वसृगणेन संयुतां संप्राश्य वै श्रीनिमिवंशभूषणाम् ॥२१॥

श्रीशिव उवाच ।

तामेतदाभाष्य मनोहरस्मितां सिद्धिं च लक्ष्मीनिधिवल्लभां शुभाम् ।
वाण्यादिका अप्युपगम्य ताः क्रमादश्रावयन् राज्ञ्युदितं यथातथम् ॥२२॥
श्वश्वा निदेशं सुनिशम्य शोभनं ज्येष्ठं वरं सा शशिसन्निभानना ।
निन्येऽथ संवेशगृहं प्रकल्पितं मध्ये स्थितं चन्द्रमणिप्रकाशितम् ॥२३॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे प्रिये ! इस प्रकार मुस्कानसे सुशोभित मुखवाले श्रीरामभद्रजूके प्रति श्रीसिद्धिजीके अत्यन्त चतुरता युक्त वचन कहते ही श्रीमिथिलेशजी महाराजकी पटरानी श्रीसुनयना अम्बाजीकी भेजी हुई सखियाँ वहाँ तुरन्त आ पहुँची ॥१८॥

वे श्रीरामसरकारके उस अद्‌भुत वर-वेपका दर्शन करके उनके रूप पर मुग्ध हो सामने जा बैठी पुनः आज्ञाको स्मरण करके प्रसन्नता पूर्वक श्रीसिद्धिजीको श्रीसुनयना महारानीजूके कहे हुये आदेशको भली प्रकारसे ज्ञात कराया ॥१९॥

सखियाँ बोलीं:-अब केवल एक याम मात्र रात्रि शेप है, इसलिए वरोंको शयन करना चाहिये । हे बहुओं ! जिस प्रकार यह शेप रात्रि भी हास्य विलास लीलामें समाप्त न हो जावे, वैसी तुरन्त युक्ति करें ॥२०॥ हे कमलके समान नेत्रवाली बहूजी ! बहिनों सहित निमिकुलकी भूषण-स्वरूपा श्रीललीजी को स्वयं भोजन कराके, उक्त प्रकारकी आज्ञा देकर श्रीमहारानीजी की भेजी हुई हम, आपके पास आई हैं ॥२१॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वती ! इस प्रकार वे सखियाँ मनोहर मुस्कानसे युक्त, शुभ आचरण सम्पन्ना, लक्ष्मीनिधिजीकी प्रिया श्रीसिद्धिजीसे कहकर श्रीवाणीजी आदि तीनों मुख्य बहुओंके पास क्रमशः जाकर, उन्हें भी श्रीमहारानीजीका आदेश यथावत् ज्ञात कराया ॥२२॥

अपनी सासुजीकी उस सुन्दर आज्ञाको सुनकर बड़े श्रीदूलह सरकारको चन्द्रमुखी श्रीसिद्धिजी उस कल्पित शयनभवनमें ले गयीं, जिसके मध्यमें चन्द्रमणिका प्रकाश था ॥२३॥

सौवर्णतल्पे मणिभिश्चमत्कृते दिव्यैः सुतूलास्तरणैः परिष्कृते ।
नीराज्य तस्मिन्सुमुखीगणैर्वृता सा ऽस्वापयत्तं महताऽऽदरेण वै ॥२४॥
वाण्या तदाऽऽनीय मुदाऽऽशु लक्ष्मणः प्रस्वापितः श्रीभरतस्तथोषया ।
इत्थं रिपुघ्नस्त्वरयैव नन्दया रामान्तिके कौतुकमन्दिरे शुभे ॥२५॥

श्रीसिद्धिरुवाच ।

स्वल्पाऽवशिष्टा रजनी हि वर्तते तन्द्रान्विता राजकुमारका इमे ।
वयं व्रजामो मदनुज्ञया न वै कस्याश्चिदस्त्वागमनं ततस्त्विह ॥२६॥

श्रीशिव उवाच ।

एतत्समाभाष्य वचः शुभाक्षरं शनैस्तु लक्ष्मीनिधिवल्लभा सखीः ।
विसृज्य तिस्रोऽप्यनुजाः समन्विता सखीभिरायात्स्वरहो निकेतनम् ॥२७॥
इत्थं ताः शरदिन्दुपूर्णवदनं रामं सरोजेक्षणं
सख्यो भ्रातृभिरन्वितं मृगदृशः प्रस्वाप्य मोदाप्लुताः ।
शेषां वीक्ष्य तदोनयामरजनीं सिद्धेर्निदेशानुगा-
श्चक्रुः स्वापमुपाद्भुतालयगृहे तेषां हृदा सन्निधौ ॥२८॥

वहाँ उन्होंने सुन्दर मुखवाली सखियोंके सहित आरती करके, गद्दोंसे सुसज्जित मणियोंसे चमचमाते हुये सोनेके पलङ्ग पर महान् आदरके साथ बड़े श्रीवरसरकारको शयन कराया ॥२४॥ तब वाणीजीने श्रीलखनलालजीको, उषाजीने श्रीभरतलालजीको एवं नन्दाजीने श्रीशत्रुघ्नलालजीको लाकर तुरन्त उस कोहवर-भवनमें श्रीरामभद्रजूके समीपमें शयन कराया।२५।

श्रीसिद्धिजी बोलीं:—अब रात्रि बहुत थोड़ी बची है, इन राजकुमारोंको आलस्य भी आ रहा है अतः मेरी आज्ञासे यहाँ कोई अब न आवे, मैं जा रही हूँ ॥२६॥

भगवान् श्रीशिवजी बोले:—हे श्रीपार्वतीजी! इस प्रकार श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाजूकी प्राणप्रिया श्रीसिद्धिजी सखियोंके प्रति धीरेसे कहकर तथा तीनों नन्दा, वाणी, उषा बहिनोंको विदा करके, सखियोंके सहित वे अपने ऐकान्तिक भवनको विदा हुईं ॥२७॥

इस प्रकार श्रीसिद्धिजीकी आज्ञाकारिणी, आनन्दमग्ना वे मृगलोचना सखियाँ एक पहर भी कम रात्रिको शेष देखकर, भ्राताओंके सहित शरद ऋतुके पूर्ण चन्द्रवत् मनोहर मुख तथा कमलदल लोचन श्रीरामदूलह सरकारको शयन कराके उस कौतुक भवनके पासमें, किन्तु हृदयसे चारो वरसरकारके पास शयन करती हुईं ॥२८॥

इति शततमोऽध्यायः ॥१००॥

—❀❀❀—

अथैकोत्तरशततमोऽध्यायः ।

जनवासेमें गुरुजन आह्लादक वरों का भोजन, विश्राम पुनः
कोहवरमें अन्तःपुर सुखवर्षिणी भोजन शयन, लीला ।

श्रीशिव उवाच ।

अनेकवाद्यघोषेण मधुरेण प्रबोधिताः । प्रातः संददृशुः सख्यो गतं यामार्द्धकं दिनम् ॥१॥
आचम्यापो जगुस्ताश्च माङ्गल्यानि समन्ततः । वीतनिद्रास्ततोजातास्ताभिरुत्थापिता वराः ॥२॥
ईषदालस्ययुक्तास्ते जृम्भमाणा मुहुर्मुहुः । क्षालितेन्द्वास्यपद्माक्षा दृष्ट्वा मङ्गलभाजनम् ॥३॥
नीराजितास्ततस्ताभिः सखीभिः परया मुदा । गायन्तीभिर्मनोज्ञानि मङ्गलानि वरोत्तमाः ॥४॥
विधाय पुष्पवृष्टिं च जयकारसमन्विताम् । नीताःपृथक्पृथग्वेश्म भरताद्या नृपात्मजाः ॥५॥
सादरं दन्तसंशुद्धिपर्यन्ता विधयोऽखिलाः । कारितास्तैश्च विधिना ताभिरेव महोत्सवैः ॥६॥
प्रेम्णोपाशनं किञ्चित् कारयित्वा वरोत्तमान् । हावभावकटाक्षैस्ता यथाकाममरञ्जयन् ॥७॥
राज्ञ्या सुनेत्रया तर्हि सुविद्याद्या निजानुगाः । आदिष्टाः समुपानेतुं जामातॄन्द्रुतमाययुः ॥८॥

श्रीसुविद्योवाच ।

अहो पुत्र्यो महाराज्ञ्या निदेशाद्वै त्रयो वराः । अनेन रामभद्रेण समं नेयास्तदालयम् ॥९॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे प्रिये ! अनेक प्रकारके बाजाओंके सुखप्रद घोषके द्वारा जागी हुई सखियोंने देखा, आध पहर दिन व्यतीत होगया है ॥१॥

अतः जलसे आचमन करके वे चारों ओरसे माङ्गलिक पद गाने लगीं, उससे जब वर सरकारों की निद्रा भङ्ग हुई तब उन्हें सखियोंने उठाया॥२॥ किञ्चित् आलस्य युक्त बारम्बार जम्हुआई लेते हुये, उन राजकुमारोंने मङ्गलथालका दर्शन करके अपने मुखचन्द्र तथा नेत्र-कमलोंको धुलाया तत्पश्चात् मनोहर मङ्गल गीत गाती हुई, उन सखियोंने बड़े हर्ष पूर्वक सर्वोत्तम उन चारों वर सरकारकी आरतीकी तथा जयकार संयुक्त पुष्पोंकी वर्षा करके, श्रीभरतजी आदि राजकुमारों को वे पुनः अलग अलग भवनोंमें ले गयीं ॥३॥४॥५॥

वहाँ विधानानुसार उन्होंने महोत्सव पूर्वक वर सरकारों द्वारा दन्तधावन पर्यन्तकी सारी पवित्र विधियाँ सम्पन्न करायीं पुनः थोड़ासा कलेऊ करवाकर अपने हाव, भाव, कटाक्षोंके द्वारा उन वरोंको अपनी इच्छानुसार प्रसन्न करने लगीं ॥६॥७॥

उसी समय श्रीसुनयनामहारानीजीकी आज्ञासे उनकी श्रीसुविद्याजी आदि दासियाँ, जामाताओं (दामादों) को उनके पास ले जानेके लिये वहाँ शीघ्र आगयीं ॥८॥

श्रीसुविद्याजी बोलीं:—हे पुत्रियो! श्रीसुनयनामहारानीजूके निदेशानुसार श्रीरामभद्रजू सहित तीनों बरोंको उनके भवनमें ले चलना है ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

एवं तासां समुक्तानां भरतादिनिकेतनम् । गत्वा कतिपयाः क्षिप्रं राज्ञ्यनुज्ञां न्यवेदयन् ॥१०॥
ततस्ते भ्रातरो हृष्टाः सखीभिः परिवेष्टिताः । राममासाद्य शीघ्रेण प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजे ॥११॥
चतुर्णां रूपमाधुर्यं पिबन्त्यो नेत्रसम्पुटैः । अतृप्ता एव तान्निन्युः सख्यः सुनयनालयम् ॥१२॥
तत्र नीराजितान्प्रेम्णा लालयन्त्या ह्यनेकधा । राज्ञ्युपभोजनं तैश्च सानुरोधमकारयत् ॥१३॥
पुनस्तेप्रेषिताः सार्द्धंलक्ष्मीनिध्यादिसूनुभिः । भूपान्तिकं जनावासं लब्धताम्बूलवीटिकाः ॥१४॥
श्यामकर्णहयारूढा सेनया परिरक्षिताः । पुष्पवृष्टया मृगाक्षीणां पूज्यमाना मनोहराः ॥१५॥
श्रवः सुखदवाद्यानां शृण्वन्तश्चारुनिःस्वनम् । जनावासंसहागच्छन् सहस्रैः पुरवासिभिः ॥१६॥
प्रत्युद्गम्य समानीता जनावासं मुदान्वितैः । सखीभिर्मन्त्रिभिः साकं राज्ञा दशरथेन च ॥१७॥
ते प्रणम्य महीपालं पितरं कुलभूषणाः । कृतस्वाध्यायमायान्तं वशिष्ठं चाभ्यवादयन् ॥१८॥
पितृव्यानथ वन्दित्वा विप्रान् वृद्धान् वयोवरान् । लघीयसः समादृत्य कटाक्षैः कौशिकं ययौ ॥१९॥

भगवान् शिवजी बोले:-हे पार्वतीजी ! श्रीसुविद्याजीके ऐसा कहने पर उनमेंसे कुछ सखियों ने कोहवर भवनमें जाकर, श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञा निवेदन की तब सखियोंसे घिरे हुये श्रीभरतलालजी आदि भाइयांने, श्रीरामभद्रजूके पास शीघ्र आकर उनके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥१०॥११॥

अपने नेत्र रूपी दोनोंसे चारो वर सरकारकी छबि माधुरीका पानकरती हुई भी अतृप्त सखियाँ उन्हें श्रीसुनयना अम्बाजीके महल ले गयीं ॥१२॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीने आरती करके वहाँ अनेक प्रकारसे दुलार करती हुई उन्हें अनुरोध पूर्वक कलेऊ करवाया ॥१३॥ पुनः पानका बीड़ा देकर उन्हें श्रीलक्ष्मीनिधि आदि पुत्रोंके साथ श्रीदशरथजीमहाराजके पास पहुँचाया ॥१४॥

श्यामकर्ण घोड़े पर सवार तथा सेनासे सुरक्षित हो, मृगलोचना सखियोंकी पुष्पवृष्टिके द्वारा पूजित (सम्मानित) होते हुये, मनको हरण करनेवाले वे दूलह सरकार श्रवण-सुखद बाजोंका मनोहर शब्द सुनते सहस्रों पुरवासियोंके साथ जनवासे पहुँचे ॥१५॥१६॥

श्रीदशरथजी महाराज आनन्द युक्त सखाओं तथा मन्त्रियोंके सहित आगे आकर उन्हें जनवासेमें ले गये ॥१७॥

कुलको भूषणके समान सुशोभित करनेवाले वे वर सरकार, अपने पिता राजा दशरथजीको प्रणाम करके वेद पाठसे निवृत हो आये हुये श्रीवशिष्ठजीमहाराजको अभिवादन(प्रणाम)किये उनके बाद चाचाओंको, ब्राह्मणोंको, वृद्धोंको, तथा अवस्थामें अपने बड़ोंको प्रणाम करके छोटोंको अपनी कृपा-कटाक्षके द्वारा सत्कार करके, श्रीविश्वामित्रजीमहाराजके पास पधारे ॥१८॥१९॥

ध्यानस्थं तं परिक्रम्य श्रीरामो बन्धुभिर्युतः । ववन्दे चरणौ तस्य शिरसा भक्ति-पूर्वकम् ॥२०॥
बहिर्वृत्तिर्मुनिर्भूत्वा विलोक्य रघुनन्दनम् । भ्रातृभिः सहितं रामं वरवेषं मुदाप्लुतः ॥२१॥
सस्वजे तं समाधाय स्वचित्तं स्नेहपूर्वकम् । कौशल्यानन्दनं रामं वैह्वल्यास्ततनुस्मृतिः ॥२२॥
ततोऽसौ भरतं प्रीत्या सौमित्री च पुनः पुनः । परिष्वज्य हृदा काममपारानन्दमाप्तवान् ॥२३॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

वत्स ! राम ! कृतार्थोऽहं भवन्तं भ्रातृभिर्युतम् । वरवेषं समालोक्य सर्वविश्वमनोहरम् ॥२४॥
अद्य मे सफलं जन्म सफलं चाद्य मे तपः । सफलाः सत्क्रियाः सर्वा मम त्वां वत्स! पश्यतः ॥२५॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्त्वा समाघ्राय मस्तकं स तपोनिधिः । आशीर्वाक्यैः समातोष्य निन्ये दशरथान्तिकम् ॥२६॥
तेनाभिपूजितो भक्त्या सत्कृतश्चाजसूनुना । विश्वामित्रो महातेजा नृपेन्द्रं वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥

श्रीविश्वामित्र उवाच ।

भोजयैतान्नराधीश ! गतं यामद्वयं दिनम् । लज्जया श्वशुरागारे नैते कामं कृताशनाः ॥२८॥

उन्हें ध्यानस्थ देखकर अपने भाइयोंके सहित परिक्रमा करके, श्रीरामभद्रजूने भक्ति-पूर्वक सिर झुकाकर उनके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम किया ॥२०॥

तब मननशील श्रीविश्वामित्रजी महाराज सावधान होकर, भ्राताओंके सहित रघुकुलनन्दन श्रीरामभद्रजीको वरवेषमें देखकर आनन्दमें डूब गये ॥२१॥

तदनन्तर अपने चित्तको सावधान करके उन्होंने स्नेह-पूर्वक, कौशल्यानन्दन श्रीरामभद्रजीको अपने हृदयसे लगाया और भाव-विह्वलताके कारण वे पुनः अपने देहकी सुधि भूल गये ॥२२॥

उनके पश्चात् श्रीभरतलालजी व दोनों सुमित्रानन्दन श्रीलखनलालजी तथा श्रीशत्रुघ्नलालजी को बारम्बार हृदयसे लगाकर असीम सुखको प्राप्त हुये ॥२३॥

श्रीविश्वामित्रजी बोलेः—हे वत्स ! श्रीरामभद्रजू ! भाइयोंके सहित आपके इस विश्व मन हरण दूलह वेषको देखकर मैं कृतार्थ हो गया ॥२४॥ हे वत्स ! आज आपको इस वेषमें देख कर मेरा जन्म, मेरा तप, तथा मेरे सभी सत्कर्म सफल हो गये ॥२५॥

तपोराशि श्रीविश्वामित्रजी महाराज इस प्रकार कहकर तथा उनके मस्तक को सूँघ कर आशीर्वाद मय वचनों के द्वारा सन्तुष्ट करके, उन्हें श्रीदशरथजी महाराजके पास ले गये ॥२६॥

उनसे प्रेमपूर्वक पूजित होकर तथा श्रीवशिष्ठजी महाराजसे सत्कार पाकर महातेजस्वी श्रीविश्वामित्रजी महाराज श्रीचक्रवर्तीजी महाराजसे बोलेः—॥२७॥

हे राजन्! दो पहर दिन बीत चुका, अस्तु इन राजकुमारोंको भोजन कराइये क्योंकि श्वसुर के भवनमें सङ्कोच-वश इन्होंने अपनी इच्छानुसार (पूर्ण) भोजन नहीं किया होगा ॥२८॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापितस्तेन सवशिष्ठेन सादरम् । सम्मतया रामभद्रस्य नृपो मन्त्रिणमब्रवीत् ।।२९।।

श्रीदशरथ उवाच ।

आहूयन्तां त्वया सर्वे भोजनार्थं नरेश्वराः । सामात्यबन्धुपुत्राश्च ससुहृत्किङ्करव्रजाः ।।३०।।
निवेश्य पङ्क्तितस्तांश्च सादरं नतिपूर्वकम् । ततो मे सूचनां दद्या व्रजेतो मा विलम्बय ।।३१।।
वशिष्ठकौशिकाभ्यां च बन्धुभिश्च द्विजोत्तमैः । तूर्णमेवाहमायामि कुमारैः परिशोभितः ।।३२।।

श्रीशिव उवाच ।

एवमुक्तस्तथेत्युक्तः सत्वरं भोजनालयम् । सुमन्त्रो ह्यानयामास सर्वानेव नरेश्वरान् ।।३३।।
आसनेष्वति रम्येषु तान्निवेश्य सुपङ्क्तितः । राज्ञे निवेदयाञ्चक्रे सर्व एवागता इति ।।३४।।
तस्य तत्सूचितं श्रुत्वा मन्त्रिणः कोशलेश्वरः । गन्तुमभ्यर्थयामास वशिष्ठकुशिकात्मजौ ।।३५।।
जग्मतुस्तौ महात्मानौ कुमारैर्बन्धुभिर्द्विजैः । शोभितेन नृपेन्द्रेण समं तद्भोजनालयम् ।।३६।।
नवदूर्वादलश्यामं पीतकौशेयवाससम् । शरच्चन्द्राननं राम भ्रातृभिः परिशोभितम् ।।३७।।
विलोक्य लोचनानन्दं कोटिमन्मथसुन्दरम् । कृतकृत्या बभूवुस्ते सह पित्रा समागतम् ।।३८।।

भगवान् शिवजी बोले:—हे श्रीपार्वतीजी ! इस प्रकार श्रीवशिष्ठजी महाराजके समेत श्रीविश्वामित्रजी महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीरामभद्रजूकी सम्मतिसे श्रीदशरथजी महाराजने श्रीसुमन्त्रजीसेकहा:— आप पुत्र,बन्धु, मन्त्रियों, तथा सखा, सेवक समुदाय सहित सभी राजाओंको भोजन करनेके लिये बुला लीजिये ।।२९।।३०।।

पुनः प्रणाम पूर्वक आदरके साथ उन्हें पङ्क्तिपूर्वक विराजमान करके हमें सूचित करें, इसलिये आप यहाँसे जाइये विलम्ब न कीजिये ।।३१।। उस सूचनाको पाते ही श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी तथा भ्राताओं व द्विजवरोंके सहित मैं तुरन्त कुमारोंसे सुशोभित वहां आजाऊँगा ।।३२।।

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये! श्रीचक्रवर्तीजीके इस प्रकार आदेश करने पर श्रीसुमन्त्रजी उनसे "ऐसा ही होगा" कहकर तुरन्त सभी राजाओंको भोजन गृहमें बुला लिये ।।३३।।

पुनः अत्यन्त मनोहर आसनों पर उन्हें पङ्क्तिपूर्वक विराजमान करके "सभी आगये" ऐसा श्रीसुमन्त्रजीने श्रीचक्रवर्तीजीसे निवेदन किया ।।३४।।

मन्त्रीजीकी सूचनाको सुनकर अयोध्यापति श्रीदशरथजीमहाराजने श्रीविश्वामित्रजी तथा श्रीवशिष्ठजी महाराजसे चलने हेतु प्रार्थना की ।।३५।।

तब वे दोनों महात्मा श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजी, चारो राजकुमारों, बन्धुओं तथा द्विजवरोंसे सुशोभित हो श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके साथ उस भोजन भवनमें पधारे ।।३६।।

नेत्रोंके लिये आनन्द-स्वरूप, करोड़ों कामदेवोंके सदृश सुन्दर, अपने पिताजीके साथ आये हुये भाइयोंसे सुशोभित, रेशमी पीत वस्त्रोंसे युक्त, शरद्ऋतुके पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुखारविन्द नवीन दूर्वा दलके तुल्य श्याम वर्णवाले श्रीरामभद्रजीको देखकर वे सभी कृतकृत्य होगये।।३७।३८।।

सत्कृत्य सकलान् राजा साङ्केत्यैश्च विलोकनैः। पाकशालां प्रविष्टोऽसौ मुनिभ्यां बन्धुभिः सह ॥३९॥
भोजनाय विदेहेन प्रेषितास्तत्र सादरम्। मिष्टान्नानामनेकेषां पक्वान्नानां तथैव च ॥४०॥
प्रत्येकप्रकाराणां कूटतुल्याश्च राशयः। दृष्टा दशरथेनैव हर्षसम्प्लावितात्मना ॥४१॥
ततोऽयुतानि भाण्डानि दध्यादीनां महीभृता। शाकानां पृथुपात्राणि लक्षाण्यैवेक्षितानि च ॥४२॥
सङ्केतं नृपतेर्लब्ध्वा गुणरूपमनोहराः। मणिपात्रेषु सर्वेभ्यः सूदा विपुलसङ्ख्यकाः ॥४३॥
पृथक्पृथग्घि वस्तूनि समग्राण्यचिरेण च। वितीर्य परया प्रीत्या बभूवुः शातनिर्भराः ॥४४॥
राजा दशरथस्ताभ्यां समाज्ञप्तो हि सादरम्। प्रार्थितो राजभिश्चैव रामाभिमुखमाविशत् ॥४५॥
बान्धवाः पार्श्वयोस्तस्य विरेजुर्विमलत्विषः। कुमाराश्चापि वै तेषां रामस्योभयपार्श्वयोः ॥४६॥
तदा वशिष्ठसम्मत्या सर्व एव मुदान्विताः। अकुर्वन् भोजनं राममुखासक्तविलोचनाः ॥४७॥
कोशलेन्द्रस्तमिन्द्वास्यं लालयन्वहुशो वशी। प्रणयेनाशयामास भ्रातृभिः पार्श्वशोभितम् ॥४८॥

श्रीदशरथजी महाराजने चितवन व सङ्केत आदिके द्वारा सभीका सत्कार करते हुये वन्धुओं तथा दोनों मुनियों सहित पाकशालामें प्रवेश किया ॥३९॥

वहाँ भोजनार्थ सम्मान पूर्वक श्रीविदेह महाराज द्वारा भेजे हुए अनेक प्रकारके मिष्टान्नों तथा प्रत्येक प्रकारके पक्वानोंकी पर्वत शिखर जैसी ऊँची राशियोंको हर्ष सरावोर हृदय हो श्रीदशरथजी महाराजने अवलोकन किया ॥४०॥४१॥

तत्पश्चात् श्रीचक्रवर्तीजीने दही आदिके दसहजार और शाकों (भाजियों) के कई लाख पात्रोंको अवलोकन किया ॥४२॥

श्रीचक्रवर्तीजीका सङ्केत पाकर अपने रूप व गुणोंसे सभीके मनको हरण करने वाले, बहु सङ्ख्यक रसोइया सभीके लिये मणिमय पात्रोंमें पृथक्-पृथक् सभी प्रकारकी वस्तुओंको अत्यन्त प्रेम-पूर्वक शीघ्र वितरण करके आनन्दसे परिपूर्ण हो गये अर्थात् उनके रोम-रोममें आनन्द भर गया ॥४३॥४४॥

श्रीविश्वामित्रजी तथा श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आदर-पूर्वक आज्ञा तथा सभी राजाओंकी प्रार्थनासे श्रीदशरथजी महाराज श्रीरामभद्रजूके सम्मुख विराजमान हुये ॥४५॥

निर्मल कान्तिसे युक्त भाई वृन्द महाराजके दोनों बगलमें तथा भाइयोंके राजकुमार श्रीरामभद्रजूके दोनों बगलमें सुशोभित हुये ॥४६॥

तब श्रीवशिष्ठजीकी सम्मतिसे, अपने नेत्रोंको श्रीरामभद्रजूके मुखचन्द्र पर आसक्त करके, हर्षसे युक्त हो, सभी भोजन करने लगे ॥४७॥

तत्पश्चात् श्रीदशरथजीमहाराज भ्राताओंद्वारा दोनोंबगलमें सुशोभित,चन्द्रवत् मनोहर मुस्कान वाले श्रीरामभद्रजीका बहुत प्रकारसे लाड करते हुये अत्यन्त प्रेम-पूर्वक भोजन करने लगे।॥४८॥

निवृत्ते भोजनाद्रामे स सर्वैः सह बन्धुभिः । आज्ञया श्रीवशिष्ठस्य कोशलेन्द्रः समुत्थितः ॥४९॥
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च लब्धताम्बूलवीटिकाः । आज्ञया तस्य ते सर्वे तदा भूपा विशश्रमुः ॥५०॥
श्रीरामो बन्धुभिः सार्द्धं मध्याह्नशयनालयम् । आदाय स्वापितः पित्रा पङ्क्तियानेन सत्वरम् ॥५१॥
पुनरेव तदागारे विश्रामं स चकार ह । भ्रातृभिः सहितो राजा चिन्तयन्हृदि राघवम् ॥५२॥
कालेनाल्पीयसा देवि ! विदेहाधिपतेः सुतः । समं मित्रानुजैश्चापि जनावासमुपागमत् ॥५३॥
सत्कृतः कोशलेन्द्रेण ज्ञात्वोत्थाय समागतः । अङ्कमारोप्य सस्नेहं तेन रामो यथाऽन्वहम् ॥५४॥
भूपं प्रणम्य स श्लक्ष्णं वचनं चेदमब्रवीत् । आनेतुं प्रेषितवती मामम्बा वरसत्तमान् ॥५५॥
तस्माच्छीघ्रेण तं सार्द्धं मया गन्तुमुपादिश । भवनं बन्धुभिर्युक्तं कुमारं मोहनस्मितम् ॥५६॥

श्रीशिव उवाच ।

इति तद्भाषितं वाक्यं समाकर्ण्य नृपाधिपः । आह्वयामास शीघ्रेणानुजैः साकं गतालसम् ॥५७॥
आगतं तं विशालाक्षं सुकुमारवयःस्थितम् । लालयन्निदमेवोचे वाक्यं वाक्यविदां वरम् ॥५८॥

पुनः भाइयों तथा सबके सहित श्रीरामभद्रजूके भोजनसे निवृत्त हो जाने पर श्रीवशिष्ठजी महाराजकी आज्ञासे श्रीदशरथजी महाराज उठे ॥४९॥

हाथ-पैर धोकर पानका बीराले, उनसभी राजाओंने, महाराजकीआज्ञासे विश्राम किया॥५०॥

पुनः भाइयों सहित श्रीरामभद्रजीको, पिता दशरथजी महाराजने मध्याह्नके शयन भवनमें ले जाकर शयन कराया ॥५१॥

तत्पश्चात् उन्होंने भी अपने भाइयों सहित हृदयमें श्रीरघुनन्दन प्यारेका चिन्तन करते हुये उसी भवनमें विश्राम किया ॥५२॥

भगवान् शिवजी बोलेः–हे देवि ! थोड़े समय बाद श्रीविदेहजी महाराजके पुत्र श्रीलक्ष्मीनिधिजी, अपने छोटे भैया तथा मित्रोंके साथ, उस जनवासेमें पधारे ॥५३॥

उन्हें आया हुआ जानकर श्रीकोशलेन्द्र (दशरथ) जी महाराजने उठकर, स्नेह-पूर्वक उसी प्रकारसे सत्कार किया, जिस प्रकार प्रतिदिन वे श्रीरामभद्रजूका करते थे ॥५४॥

श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाजीने प्रणाम करके श्रीदशरथजी महाराजसे यह मनोहर वचन कहाः– हे तात ! बर श्रेष्ठोंको ले आनेके लिये हमें श्रीअम्बाजीने भेजा है ॥५५॥

इस हेतु भाइयों सहित मनोहर मुस्कान वाले श्रीकुँवरजीको आप प्रसन्नता-पूर्वक हमारे साथ भवन चलनेके लिये, शीघ्र आज्ञा प्रदान कीजिये ॥५६॥

भगवान् शिवजी बोलेः–हे देवि! इस प्रकार उन श्रीलक्ष्मीनिधिके कहे हुये बचनको सुनकर, श्रीदशरथजीमहाराजने भाइयों सहित आलस्य रहित हुये, श्रीरामभद्रजीको बुला भेजा ॥५७॥

अत्यन्त सुकुमार अवस्थामें विराजमान, विशालनयन, वाणीका अर्थ समझने वालोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ, जब वे श्रीरामभद्रजू यहाँ आये, तब उनका दुलार करतेहुये श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजने कहा५८

श्रीदशरथ उवाच ।

भद्रमस्तु हि ते वत्स ! राम ! राजीवलोचन ! । सर्वदा देवदैत्यर्षिग्रहादीनां सुरक्षताम् ॥५९॥
आगतः प्रेषितो मात्रा वयस्यैर्बन्धुभिर्युतः । स्वालयं त्वामितो नेतुं श्यालो ऽयं तव पुत्रक! ॥६०॥
गच्छ त्वं श्वशुरागारमत एवाविलम्बतः । सहानेन कुमारेण भ्रातृभिः सौम्यमूर्तिना ॥६१॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापितस्तेन पित्रा दशरथेन सः । नत्वा तं श्वशुरागारं गमनायोद्यतो ऽभवत् ॥६२॥
ततोऽभिवाद्य राजेन्द्रं लक्ष्मीनिधिरुदारधीः । सानुरागं समुत्थायाग्रहीद्रामकराङ्गुलिम् ॥६३॥
बहिर्निष्क्रम्य भवनाद्गजयानं मनोहरम् । आरुरोहानुजैर्युक्तो दाशरथीन्निवेश्य सः ॥६४॥
बहूनि हययानानि सज्जितानि विशेषतः । अन्वयुर्निमिवंश्यानां बालकैः शोभितानि च ॥६५॥
रामो विदेहभवनं ययौ यानेन सत्वरम् । श्वश्रूर्नीराज्य तं द्वारि निनायान्तर्निकेतनम् ॥६६॥
फलैर्नानाविधैर्मिष्टै रसवद्भिः सुधोपमैः । संतर्प्य लालयन्ती तं कौतुकागारमानयत् ॥६७॥
वराणां परिचर्यायां संनियोज्य प्रियाः स्नुषाः । आजगामान्तिकं पुत्र्याः सेवितायाः स्वस्वसृभिः ।६८।

हे कमल-लोचन ! वत्स श्रीरामभद्रजू ! सभी देव, दैत्य, ऋषि, ग्रहादिकोंके रक्षा करते हुये, आपका सर्वदा मङ्गल हो ॥५९॥

अपने भाइयों तथा मित्रों सहित ये आपके साले श्रीलक्ष्मीनिधिजी, अपनी अम्बाजीके भेजे हुये आपको महलमें ले जानेको आये हैं ॥६०॥

इसलिये अपने भाइयों सहित इन सौम्यस्वरूप-श्रीविदेहराजकुमारजूके साथ शीघ्रता पूर्वक आप अपने श्वसुरके भवनको जाइये ॥६१॥ भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! इस प्रकार वे अपने पिता श्रीदशरथजी महाराजकी आज्ञा पाकर, उन्हें प्रणाम करके अपने श्वसुर श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनको, चलनेके लिये उद्यत हुये ॥६२॥

तब उदार बुद्धि श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाजीने श्रीचक्रवर्तीजीको प्रणाम करके अनुरागपूर्वक उठ कर श्रीरामभद्रजीके हाथकी उँगुली पकड़ ली ॥६३॥

उस विश्राम भवनसे बाहर निकलकर श्रीदशरथ-राजकुमारोंको मनोहर गजयानमें विराजमान करके अपने भाइयों सहित श्रीलक्ष्मीनिधि भैयाजी भी उसमें विराजमान हुये ॥६४॥

उस(गजयान)के पीछे निमिवंशी बालकोंसे सुशोभित, बहुतसे सुसज्जित अश्वयान चले॥६५॥

गजयान द्वारा श्रीरामभद्रजू अपने श्वसुर श्रीमिथिलेशजी महाराजके महलमें पहुँचे, सासु श्रीसुनयना महारानीजी, द्वारपर आरती करके उन्हें अपने महलके भीतर ले गयीं ॥६६॥

वहाँ अनेक प्रकारके रसमय, अमृतके समान मीठे, स्वादिष्ट फलोंके द्वारा तृप्त करके, प्यार पूर्वक उन्हें वे कोहवर भवन ले गयीं ॥६७॥ वहाँ वरोंकी सेवामें, अपनी प्यारी पतोहुओंको लगाकर स्वयं बहिनोंसे सेवित अपनी श्रीललीलीजूके पास आगयीं ॥६८॥

फलानि भोजयामास प्रीत्या परमया युता । सुदर्शनादिभिः सार्द्धं मुखचन्द्रार्पितेक्षणा ॥६९॥
नागवल्याः कृता वीटीः स्वादुपूर्णाः प्रदाय सा । सुतां नेतुं गृहाराममादिदेशाखिलाः सखीः ॥७०॥
तासां तु दर्शयन्तीनां नृत्यगीतादिकौशलम् । वेलोपभोजनस्यापि सञ्जाता कौतुकालये ॥७१॥
ततस्ताभिर्मुदाढ्येन चेतसा रघुनन्दनः । सहितो भ्रातृभिश्चैव भोजनैश्चारु तर्पितः ॥७२॥
आदिष्टाभिर्महाराज्ञ्या स्नुषाभिः स्वापिताः पुनः । कुमारा राजराजस्य लोकोत्तरविभूतयः ॥७३॥
मैथिलीं निमिवंश्याभिर्गृहारामात्समागताम् । उपभोज्य महाराज्ञी सुखमस्वापयद्द्रुतम् ॥७४॥

और श्रीसुदर्शनाजी आदि देवरानियों सहित श्रीललीके मुखचन्द्र पर अपनी दृष्टिको अर्पित (संलग्न) करके श्रीअम्बाजी बड़े प्रेम-पूर्वक उन्हें फल पवाने लगीं ॥६९॥

पुनः पानका लगाया हुआ अत्यन्त स्वादिष्ट वीरा प्रदान करके उन्हें अपने भवनके उद्यान में ले जानेके लिये उन्होंने सभी सखियोंको आज्ञा प्रदानकी ॥७०॥

उधर कोहवर-भवनमें सखियोंके नृत्य गीतादिकी कुशलता (चतुराई) दिखानेमें ही, व्यारूका समय उपस्थित हो गया ॥७१॥

इस हेतु उन श्रीसिद्धि आदिकोंने बड़े ही प्रसन्न चित्तसे, भाइयों सहित, श्रीरघुनन्दनप्यारेजी को भोजन द्वारा भली प्रकारसे तृप्त किया पुनः श्रीसुनयना महारानीजीकी आज्ञासे उन्होंने अलौकिक विभूति सम्पन्न चारो श्रीचक्रवर्ती कुमारोंको शयन कराया ॥७२॥७३॥

इधर निमिवंश कुमारियोंके सहित महलके उद्यानसे पधारी हुई अपनी श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीको श्रीसुनयना महारानीजीने भी कलेऊ करवाकर सुख-पूर्वक शयन कराया ॥७४॥

इत्येकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

इति मासपारायणे अष्टाविंशतितमो विश्रामः ॥२८॥

--❀❀❀--

अथ द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ।

समस्त बारातियों समेत चक्रवर्तीजी महाराजका श्रीमिथिलेश—भवनमें भोजन ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ प्रातः समुत्थाय माता सुनयना सुताम् । ऊचे मधुरया वाचा लालयन्ती त्वनेकधा ॥१॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कञ्जाक्षि ! लोकोत्तरगुणालये ! । त्वय्युत्थीयमानायामुत्थितं भुवनत्रयम् ॥२॥
उत्तिष्ठ सहजानन्दविग्रहे ! कामवर्षिणि ! । त्वय्युत्थीयमानायामुत्थितं स्याज्जगत्त्रयम् ॥३॥
इत्थं प्रबोधिता मात्रा सहजानन्दिनी तदा । भुजमालां गले दत्त्वा पर्य्यङ्के तां न्यवेशयत् ॥४॥
साऽपि तामुरसाऽऽलिङ्ग्य प्रेमाकुलितलोचना । आघ्राय मस्तकं तस्याः शातमापदनुत्तमम् ॥५॥
पुत्र्यः सर्वास्तदोत्थाय वन्दित्वा तत्पदाम्बुजे । प्रणता मैथिलीं सीतामुपतस्थुर्मुदान्विताः ॥६॥
ततस्तां स्वस्तिकागारं जगामादाय सा सुताम् । सेव्यमाना सखीवृन्दैः छत्रचामरपाणिभिः ॥७॥
वध्वः सिद्धयादयो ऽभ्येत्य कौतुकागारमद्भुतम् । जगुः कलं सुमधुरं पिककण्ठयः सहालिभिः ॥८॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीसुनयनाअम्बाजी प्रातः काल उठकर अनेक प्रकारसे दुलार करती हुई बड़ी मीठी वाणी द्वारा अपनी श्रीललीजीसे बोलीं:—हे अलौकिक गुणोंकी मन्दिर स्वरूपे, कमल-लोचने श्रीकिशोरीजी ! अब आप उठें, उठें क्योंकि आपके उठने पर ही त्रिलोकीका उत्थान है ॥१॥२॥

हे भक्तोंकी समस्त हितकर कामनाओंकी वर्षा करनेवाली, सहज आनन्द स्वरूपा श्रीललीजी! अब आप उठें, क्योंकि यह त्रिलोकी आपके उठने पर ही उत्थानको प्राप्त होता है ॥३॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे प्रिये ! श्रीअम्बाजीके इस प्रकार जगाने पर स्वाभाविक आनन्द स्वरूपा श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूने अपनी भुजमाला उनके गलेमें डालकर उन्हें पलङ्ग पर बिठा लिया ॥४॥ प्रेम भरे नेत्रोंवाली श्रीअम्बाजी उन्हें हृदयसे लगाकर तथा मस्तक सूंघकर उस (ब्रह्म) सुखको प्राप्त हुईं जिससे बढ़कर कोई सुख होता ही नहीं ॥५॥

उस समय सभी पुत्रियाँ उठकर श्रीअम्बाजीके श्रीचरणकमलोंको प्रणाम करके, सब दुःख-भञ्जिनी तथा सब सुख-विस्तारिणी श्रीललीजीको प्रणाम करके हर्षित हो, उनके समीपमें जा विराजीं ॥६॥

तत्पश्चात् छत्र, चवँर आदि हाथोंमें लिये अपनी सखियोंसे सेवित होती श्रीसुनयनाअम्बाजी अपनी श्रीललीजीको लेकर स्वस्तिक (मङ्गल) भवन पधारीं ॥७॥

उधर कोकिलके समान कण्ठवाली श्रीसिद्धिजी आदि राजपुत्रवधुयें सखीवृन्दोंके सहित उस कोहवर भवनमें जाकर अत्यन्त मधुर तथा मनोहर मङ्गल गीत गाने लगीं ॥८॥

त्यक्तनिद्रोऽभवत्तेन श्रीरामो वरसत्तमः । भ्रातृभिः सुपमासिन्धुस्तूयमानपदाम्बुजः ॥९॥
तदार्तिक्यं मुदा चक्रुर्गायन्त्यस्ताः सुमङ्गलम् । दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं तस्मै माङ्गल्यानि व्यदर्शयन् ॥१०॥
मज्जनं कारयामासुस्तान् वरान्वामलोचनाः । दन्तधावनमिन्द्वास्याः कारयित्वाऽतिवल्लभान् ॥११॥
आसाद्य भवनं मुख्यं राज्ञी प्रेमपरिप्लुता । प्राशनाय च राजेन्द्र-कुमारान् समुपाह्वयत् ॥१२॥
श्वश्रवा आहूतिमाज्ञाय वरांस्तांस्तामुपानयन् । मसिविन्दूल्लसद्भालान् सिद्धचाद्याः संविभूषितान् १३
प्रत्युद्गम्य महाराज्ञी जामातॄन् हर्षनिर्भरा । गाढं तानुरसाऽऽलिङ्गच निन्ये प्रथममन्दिरम् ॥१४॥
कान्तिमत्यादयः सर्वा राज्यस्तान् क्रमशस्तदा । अभोजयन् समंराज्ञ्या रम्योर्णासनराजितान् ॥१५॥
दक्षिणस्यां तु कक्षायां पुत्रिका भूमिजादयः । तथोपभोजिताः सर्वास्ताभिश्चन्द्रनिभाननाः ॥१६॥
पुनः प्रदाय ताम्बूलवीटिकाः कौतुकालयम् । प्रेषिता राजपुत्रास्ते महाराज्ञ्या पृथक्पृथक् ॥१७॥
कुशध्वजेन भूपेन्द्रः प्रार्थितः सहबन्धुभिः । सामात्यैः ससुहृद्भिश्च श्रीविदेहालयं ययौ ॥१८॥

उपमा रहित सुन्दरताका समुद्र, अपनेको तुच्छ देखकर जिनके श्रीचरणकमलोंकी प्रशंसा करता है, वरोंमें सर्वोत्तम वे श्रीरामभद्रजी अपने भाइयों सहित उस गानसे निद्रा रहित हो गये अर्थात् जाग गये ॥९॥

तब मङ्गल गाती हुई श्रीसिद्धिजी आदिकोंने बड़े हर्ष-पूर्वक उनकी आरती की, पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान करके उन्हें माङ्गलिक पदार्थोंका दर्शन कराया ॥१०॥

तत्पश्चात् मनोहर नेत्रों तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली सखियोंने दन्त-धावन कराके उन अत्यन्त प्यारे वरोंको स्नान कराया ॥११॥

प्रेममें डूबी हुई श्रीसुनयना महारानीजी जब अपने मुख्य भवनमें पहुँची, तब उन्होंने कलेऊ करानेके लिये श्रीचक्रवर्ती-कुमारोंको बुला भेजा ॥१२॥

अपनी सासुजीका बुलावा जानकर वे श्रीसिद्धिजी आदि बहुयें पूर्ण शृङ्गार करके कज्जल विन्दुसे सुशोभित भाल वाले उन वरोंको उनके पास ले गयीं ॥१३॥

श्रीसुनयना महारानीजी हर्ष निर्भर हो आगे जाकर अपने जमाइयोंको हृदयसे लगाकर अपने मुख्य भवन ले गयीं ॥१४॥

तब श्रीकान्तिमतीजी आदि सभी रानियाँ, मनोहर ऊनी आसनों पर विराजमान, उन वरों को श्रीमहारानीजीके सहित अपनी-अपनी पारीसे भोजन कराने लगीं ॥१५॥

उसी प्रकार दक्षिणवाले कमरेमें उन्होंने श्रीसुनयनामहारानीजूके साथ-साथ चन्द्रमाकेसमान मनोहर मुखवाली भूमिजा(श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी)जू आदि सभी पुत्रियोंको भोजन कराया ।१६।

पुनः पानका बीरा देकर श्रीसुनयना महारानीजीने श्रीराजकुमारोंको अलग-अलग कोहवर गृहोंमें भेज दिया ॥१७॥ उधर श्रीकुशध्वजमहाराजकी प्रार्थनासे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अपने सुहृद, बन्धु तथा मन्त्रियोंके सहित श्रीविदेहजी महाराजके राजभवनको चले ॥१८॥

दर्शनोत्सुकचित्तानां जनानां पुरवासिनाम् । सहस्रैः परिपूर्णं तद्राजमार्गतटद्वयम् ॥१९॥
अनेकविधवाद्यानां निःस्वनैः पूरिता पुरी । आगच्छतो नरेन्द्रस्य तस्य श्रीजनकालयम् ॥२०॥
विज्ञायागमनं राज्ञः कोशलेन्द्रस्य हर्षिताः । राज्ञ्यः सर्वा सखीवृन्दैर्भोजनालयमाययुः ॥२१॥
ततः स राजशार्दूलः ससमाजो महानसम् । सत्कृत्य विधिनाऽऽनीतो मिथिलेन्द्रेण धीमता ॥२२॥
लोकोत्तरवरा राज्ञ्या समानीताः प्रियोत्तमाः । नत्वा मुनीन्द्रौ पितरं प्रणेमुः प्रणयान्विताः ॥२३॥
अथायोध्याधिपो राजा ससमाजो हि सादरम् । प्रक्षालितसरोजाङ्घ्रिः स्वासने संनिवेशितः ॥२४॥
उपविष्टेषु सर्वेषु मुनीन्द्रेषु नृपेषु च । स्वासनानि महार्हाणि स वरेष्वाह भूपतिः ॥२५॥
औदनिकप्रधाना मे ऽनुज्ञया परमाशनैः । भवद्भिराशु भूपेन्द्रः ससमाजः सुतर्प्यताम् ॥२६॥
त इत्याज्ञापिता राज्ञा वितेरुर्विविधाशनम् । सर्वेषां मणिपत्राणामुपर्य्याशु यथाक्रमम् ॥२७॥
नानोदनांश्च सूपांश्च स्वर्णपात्रेषु धारितान् । वेढ़मिकास्तथाऽऽज्याक्ता गोधूमादेश्च रोटिकाः ॥२८॥

उनके दर्शनोंके उत्सुक सहस्रों पुरवासियोंसे उस राजमार्गके दोनों किनारे परिपूर्ण हो गये ॥१९॥ श्रीदशरथजी महाराजके श्रीजनक-भवन जाते समय अनेक प्रकारके बाजोंके घोषसे वह नगर परिपूर्ण हो गया ॥२०॥

श्रीदशरथजी महाराजको आये हुये जानकर, सभी रानियाँ अपनी सखियोंके सहित भोजन सदनमें आ गयीं ॥२१॥ उधर सम्पूर्ण समाजके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजका सत्कार करके बुद्धिमान् श्रीजनकजी महाराज उन्हें अपनी भोजन शालामें ले गये ॥२२॥

श्रीसुनयनाअम्बाजीके लाये हुये उन अलौकिक परम प्यारे श्रीदूलहसरकारोंने प्रेमपूर्वक दोनों मुनियोंको प्रणाम करके पिता श्रीदशरथजी महाराजको प्रणाम किया ॥२३॥

तदनन्तर चरण-कमलोंको धोकर श्रीजनकजी महाराजने समाजके सहित श्रीअयोध्यापति महाराजको आदर-पूर्वक सुन्दर आसन पर विराजमान किया ॥२४॥

बहु मूल्य सुन्दर आसनों पर, वरों समेत सभी मुनियों तथा राजाओंके विराजमान होजाने पर, पृथिवीपति श्रीमिथिलेशजी महाराज बोलेः—॥२५॥

हे हमारे प्रधान रसोइयो ! आपलोग मेरी आज्ञासे सर्वोत्तम प्रकारके भोजनों द्वारा, सम्पूर्ण समाज सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजको, शीघ्र तृप्त कीजिये ॥२६॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती ! श्रीमिथिलेशजी महाराजकी इस आज्ञाको सुनकर वे रसोइया, शीघ्र ही सबके मणिमय पत्तलोंके ऊपर क्रमशः विविध प्रकारकी सामग्रियों को परोसने लगे ॥२७॥

अनेक प्रकारके भात, स्वर्णपात्रों में रखी हुई विविध प्रकारकी दालें, बेढ़ई तथा घृतमें बोरी हुई गेहूँ आदि की रोटियाँ ॥२८॥

कृशरा सर्पिषा युक्ता मुद्गवटचम्लिका वटाः । अङ्गारकर्करीश्चापि काञ्जिकावटकांस्तथा ॥२९॥
कूष्माण्डवटिका मुद्गवटका 'सुपरिष्कृताः' । मुद्गार्द्रवटकाश्चैव वेसनवटिका अपि ॥३०॥
अलावूवटिका माषवटिकाश्चैव मण्डकम् । कुलमाषा विविधाश्चैव तिलकुट्टानि वै तथा ॥३१॥
राज्यक्तान् क्वथितास्तापहरीः सस्वादुपर्पटाः । अपूपान् पूरिकाश्चैव शष्कुलीर्मठकं तथा ॥३२॥
संयावान् पायसं नालिकेरक्षीरी च सेविकाः । लप्सिकाश्चैव कर्पूरनालिका दुग्धकूपिकाः ॥३३॥
लाजाक्षीरीं तथा तक्रं पृथुकं दधिमिश्रितम् । दध्योदनं च दधिजं नूतनं खण्डमिश्रितम् ॥३४॥
कुण्डलिनीः फेनिकाश्चैव माषगर्भाश्च कूर्चिकाः । सूत्रिका मिष्टमण्ठश्च मल्लपूपाश्च चक्रिकाः ॥३५॥
मोदकान् विविधांश्चैव दधिजं नाना प्रपानकान् । तेमनानि पटोलस्यालावुवो मूलकस्य च ॥३६॥
कूष्माण्डस्य च कर्कटचा रक्तालोरालुकस्य च । वृन्ताकस्य तथा शिम्बेस्तथा रम्भाफलस्य च ॥३७॥
नवराजकोशातक्याः सुविम्ब्याः सर्षपस्य च । आर्पयन् विविधाञ्छाकान् रुक्मपात्रनिवेशितान् ३८

घीसे तर-वतर खिचड़ी, मुगोड़ी (मूंगकी बड़ी), इमली आदिके रसमें बनाये गये बरे, नाना प्रकारकी बेढ़ियाँ, अङ्गार कर्कटी (बाटी-लिटी), सुन्दर सुस्वादु लाभप्रद काञ्जीयोगसे बनाये गये बड़े॥२९॥ कूष्माण्डवटिका (कुम्हड़ौरी) अच्छी तरह बनाये गये मूँगके बड़े, मूँग और आदी इन दोनोंसे बनाये गये बड़े, और वेसनकी बनी पकौड़ी ॥३०॥

सजकोहड़ेकीबड़ी, माष (उड़द) की बड़ी, मण्डक जूश-मशाले डालकर अच्छी तरह बनाया गया माँड, कुल्माष (कुलथीसे बने हुये), और तिलको कूट कर उससे बनाये गये नाना प्रकार के व्यञ्जन तथा चटनी ॥३१॥

राई देकर बनाये गये शाक, तापको हरने वाले सुन्दर-सुन्दर काढ़े, अच्छे स्वादिष्ट पापड़, मालपुआ पूड़ियाँ, रोटियाँ, मट्ठा (छोला) ॥३२॥

संयाव (हलुआ आदि), पायस दूध डाल कर पकाया गया चावल अर्थात् 'खीर' नारियल डालकर पकाया हुआ गाढ़ा दूध, सेविका (सेव = झिल्ली जैसी खानेवाली पवित्र चीज) अनेक प्रकारकी लप्सियाँ, कपूरनी शाक विशेष, दूग्ध कूपिका (रसगुल्ला) ॥३३॥

तक्र (छाँछ), लाजाक्षीरी (लावाकी खीर), दही-चूड़ा, दही-भात, खांड़ मिश्रित दहीसे बनाया गया खाद्य पदार्थ श्रीखण्ड ॥३४॥

इमरती, फेनी, कचौड़ी, मलाई, सेवई, बालूशाही, मालपुआ, बर्फी ॥३५॥

अनेक प्रकारके लड्डू, मक्खन तथा नाना प्रकारके पेय पदार्थ, परवल, सजमनि, कुम्हड़ा, मूली आदिसे बने हुये अनेक प्रकारके तीमन ॥३६॥

कूष्माण्ड(कुम्हड़ा)कर्कटी(कांकड़ या गुलमण्टी)लाल आलू,आलू-बेगन-सीम-और केला ॥३७॥

घिउरा(नेनुआँ = घेरा)-तिलकोड़-सरसौं, आदिसे बने हुये नाना प्रकारके शाक, सोने(स्वर्ण) की कटोरियोंमें भरकर अर्पित किये गये ॥३८॥

तेषां कतिपयानां च श्रृणु नामानि शैलजे! । राजिकायाः कलायस्य तण्डुलीयस्य वै तथा ॥३९॥
कासमर्दस्य कन्दस्य वास्तूकस्य तथैव च । सौभाञ्जनफलानां च कारवेल्लपटोलयोः ॥४०॥
सूरणालाबुवोश्चैव पट्टकूष्माण्डयोस्तथा । सर्षपस्य कलायस्य कर्कटीकासमर्दयोः ॥४१॥
राजकोशातकी विम्बयोः शिम्बिवृन्ताकयोस्तथा । आरूकस्य तथा शाकं रक्तालोः स्वादुवत्तरम् ४२
शाकं मूलकपत्राणां रम्भाकन्दादिकस्य च । रचितं नैकविधिभिः प्रत्येकस्य च वस्तुनः ॥४३॥
दधि दुग्धं घृतं तोयं मुक्तहस्तैर्मुदान्वितैः । निहितं स्वर्णपात्रेषु सर्वेभ्यस्तैः समर्पितम् ॥४४॥
ग्रासमुत्थापयामास कोशलेन्द्रो वरैर्युतः । लब्ध्वेप्सितोपहारांश्च प्रार्थितो जनकेन सः ॥४५॥
श्रृण्वन्मृगनिभाक्षीणां गायन्तीनां मुदान्वितः । हास्यवाचो नृपाधीशःसमश्नाति शनैः शनैः ॥४६॥
तल्लीलादर्शनानन्दप्रमत्तानां दिवौकसाम् । जयध्वन्याऽखिलं विश्वं संव्याप्तं शातपूर्णया ॥४७॥
प्रेषिताः सादरं यानैर्लब्धताम्बूलवीटिकाः । आवासमन्दिरं सर्वे समं श्रीचक्रवर्तिना ॥४८॥

हे पार्वतीजी! उनमेंसे कुछके नाम भी सुनो, राई-मटर, चौराई (गेन्हारी) और ॥३९॥

कासमर्द (गमहारि), कन्द, और बथुआ इत्यादि पत्ती शाक और सोहिजन (मुनिगा) करैल-परवल (पड़ोर) आदिका ॥४०॥

सूरण (ओल) सजमन-पटुआ-कोहड़ा-सरसों-मटर-गुलभण्टी वा कांकड़ आदि पत्ती और कन्द फलकी मिलावटसे बने हुये व्यञ्जन ॥४१॥

नेपाली घिउरा-तिलकोड़-सीम-वैगन (भाँटा)-अरुआ-और लालआलू आदि दो दो के मेलसे बने हुये बड़े स्वादिष्ट शाक ॥४२॥

मूलीकी पत्ती-केला-और कन्द आदिसे अनेक भाँतिके (अलग-अलग और दो तीन या उससे भी अधिक वस्तुकी मिलावटसे बनाये गये, भूजे तथा रसदार) शाक (व्यञ्जन) ॥४३॥

दही, दूध, घी, और जलको सोनेके पात्रोंमें रखकर रसोइयोंने सभीको खुले हाथों समर्पण किया (अन्य वस्तुओंके लिये फिर कहना ही क्या ?) ॥४४॥

अपनी इच्छानुसार अनेक प्रकारकी भेंट पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजकी प्रार्थनासे श्रीचक्रवर्ती-महाराजने चारों वर सरकारोंके साथ (भोजनके लिये) ग्रास उठाया ॥४५॥

मृगलोचना मैथिलानियोंके हास्य रस युक्त गाते हुये वचनोंको श्रवण करते, आनन्द पूरित हो श्रीचक्रवर्तीजी महाराज बहुत धीरे-धीरे भोजन करने लगे ॥४६॥

उस लीला-दर्शन-जनित आनन्दसे मतवाले हृदय देववृन्दोंकी, सुखसमन्वित जयकार ध्वनि से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया ॥४७॥

श्रीजनकजी महाराजने पानका वीरा ले चुकने पर सभीको सवारियों द्वारा आदर पूर्वक श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजके साथ जनवासे में भेज दिया ॥४८॥

सत्कृताः सविधि प्रेम्णा विदेहेन यथोचितम् । सहिताः कोशलेन्द्रेण मुनिवर्य्यैर्नृपार्च्चितैः ॥४६॥
सत्कृतिं नम्रतां स्थैर्य्यं स्वभावं शीलमेव तत् । अवाच्यानन्दमापन्ना वर्णयन्तः परस्परम् ॥५०॥
सिद्धचादयो महाभागा मैथिलीमभिवाद्य च । कृपाकटाक्षसन्तुष्टा आव्रजन्नशनालयम् ॥५१॥
राज्ञी सुनयना ताश्च श्रीकुशध्वजमन्दिरम् । व्यादिदेश वरान्नेतुं तत्सुखस्याभिवृद्धये ॥५२॥
सुदर्शना सुभद्रा च निशम्यादेशमीप्सितम् । तस्या प्रहर्षपूर्णाक्ष्यौ पादपद्मे प्रणेमतुः ॥५३॥

श्रीसुनयनोवाच ।

कुमारीरवलोक्यैव स्वापयित्वा पुनश्च ताः । आगमिष्याम्यहं शीघ्रं स्वालयं नयतं वरान् ॥५४॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापिते राज्ञ्या ते प्रणम्य पुनः पुनः । वरयाने स्थिते रामे भ्रातृभिर्मुदितानने ॥५५॥
स्थितासु परिचर्यायां सिद्धचादिषु स्नुषासु च । वराणां माण्डवीमाता चलच्चामरपाणिषु ॥५६॥
वरयानस्थिताभिश्च राज्ञीभिः स्वालिभिस्तथा । प्रार्थ्यमाना मुहुर्भक्त्याऽऽरुरोहरथमादरात् ॥५७॥
चचाल वरयानं तत्सुभद्राया निदेशतः । सर्वोच्छ्रितं महारम्यं पताकाध्वजमण्डितम् ॥५८॥

श्रीविदेह महाराजसे पूजित मुनिवरोंके सहित, श्रीदशरथजीमहाराजके साथ श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा यथोचित सत्कारको पाकर, सभी वराती परस्पर उनके सत्कार, नम्रता, स्थिरता, स्वभाव तथा शीलकी प्रशंसा करते हुये अवर्णनीय सुखको प्राप्त हुये ॥४६॥५०॥

महाभाग्यशालिनी श्रीसिद्धिजी आदि राजबहुवें श्रीललीजीकी कृपाकटाक्षको पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट हो, उन्हें प्रणाम करके भोजन-भवनमें पधारीं ॥५१॥

वहाँ श्रीसुनयनामहारानीजीने श्रीकुशध्वज महाराजके विशेष सुखार्थ वरोंको उनके महलमें, ले जानेके लिये सिद्धिजी आदि अपनी चारो बहुओं को आज्ञा दी ॥५२॥

श्रीसुभद्राजी एवं श्रीसुदर्शनामहारानीजी उस मनोऽभिलषित आज्ञाको सुनकर हर्ष पूर्ण नेत्र हो, श्रीसुनयना महारानीजीके श्रीचरण-कमलों को प्रणाम किये ॥५३॥

श्रीसुनयना अम्बाजी बोलीं:—मैं कुमारियोंको देखकर तथा उन्हें विश्राम कराके शीघ्र आती हूँ, आप दोनों ही वरों को लेकर अपने महल को चलें ॥५४॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीसुनयना महारानीजीकी यह आज्ञा पाकर, वे दोनों महारानी उन्हें बारम्बार प्रणाम करके, भाइयों सहित श्रीरामभद्रजूके उस वरयानमें विराज जाने पर उनके मुख प्रसन्न हो गये ॥५५॥

हाथमें चँवर डोलाती हुई श्रीसिद्धिजी आदि पतोहुओंके वरोंकी सेवामें तत्पर हो जाने पर श्रीमाण्डवीजीकी माता श्रीसुदर्शना अम्बाजी वरयान पर विराजी हुई अन्य रानियों तथा अपनी सखियोंके प्रेम-पूर्वक आदर समन्वित बारम्बार प्रार्थना करने पर रथमें विराज गयीं ॥५६॥५७॥

श्रीसुभद्रा महारानीजीकी आज्ञासे तब ध्वजा-पताकासे अलंकृत सबसे ऊँचा तथा अत्यन्त मनोरम रथ चल दिया ॥५८॥

परिवृत्य विमानानां सहस्राण्येव योषिताम् । चेलुस्तदद्भुतं मुक्तापुष्पमाल्यैरलङ्कृतम् ॥५९॥
सुभद्रा ह्यग्रतोऽगच्छत्स्वागतार्थं निजालयम् । बहिर्द्वारं समायाता सखीभिः पुनरावृता ॥६०॥
प्रत्युद्गम्य विमानं सा तान्नीराज्य वरर्षभान् । महोत्सवेन स्वागारं निमायानन्दनिर्भरा ॥६१॥
जयवादित्रमाङ्गल्यगीतघोषविमिश्रितैः । रथानां घण्टिकाशब्दैः खान्तमापूरितं जगत् ॥६२॥
आससादातिशीघ्रेण दिवासंवेशमन्दिरम् । तेषामर्थे वराणां हि सर्वतः समलङ्कृतम् ॥६३॥
कृत्वा नीराजनं प्रेम्णा वराणां श्रीसुदर्शना । पाययित्वा पयः क्षिप्रं स्वापयामास तान्मुदा ॥६४॥
ततो नीत्वा बहिः सर्वाः सत्कृतास्ता यथेप्सितम् । सत्कृतिं चिन्तयन्त्येव वराणां तन्मयी बभौ॥६५॥
आजगाम तदा राज्ञी स्वालिभिः परिवारिता । स्वापयित्वा प्रियां पुत्रीं परीतां स्वसृभिर्द्रुतम् ॥६६॥
तदागमनमाज्ञाय तूर्णमेव समुत्थिता । नत्वा सत्कारयामास सविधं तां सुदर्शना ॥६७॥
ततो वीतालसान्बुद्ध्वा वराञ्छ्रीजनकप्रिया । ददर्श तांस्तथा साकं प्रविश्यान्तर्निकेतनम् ॥६८॥

मोतियों तथा पुष्पमालाओं द्वारा सब प्रकारसे सुसज्जित, उस विलक्षण रथको चारो ओर से घेर कर, स्त्रियोंके हजारों रथ चले ॥५९॥

वरोंका स्वागत करनेके लिये श्रीसुभद्रा महारानी आगे ही अपने महलको गयीं पुनः -स्वागतार्थ सखियों सहित द्वार पर आगयीं ॥६०॥ विमानके आगे आकर तथा आरती करके वे चारो सर्वोत्तम वरोंको महान् उत्सवपूर्वक, आनन्दमें निर्भर हो, अपने भवन ले गयीं ॥६१॥

उस समय बाजोंके, जयकारके तथा माङ्गलिक गीतोंके घोषसे मिले हुये रथोंकी घण्टियों के शब्दसे यह चर-अचर प्राणियों-मय जगत आकाश पर्यन्त भर गया ॥६२॥

वह रथ बड़ी शीघ्रतापूर्वक दिनके विश्राम-भवनमें जा पहुँचा, क्योंकि वह भवन उन वरोंके ही लिये सब ओरसे सजाया गया था ॥६३॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजीने प्रेमपूर्वक वरोंकी आरती करके, तथा दुग्ध-पान कराके हर्षपूर्वक उन्हें वहाँ शयन कराया ॥६४॥

तत्पश्चात् श्रीसुदर्शना अम्बाजी यथोचित सत्कारकी हुई सभी माताओंको बाहर लाकर वरोंके सत्कारका चिन्तन करती तन्मय हो गयीं ॥६५॥

उसी समय श्रीसुनयना महारानीजी बहिनों समेत परमप्यारी श्रीललीजीको शयन कराके तुरन्त अपनी सखियोंके साथ श्रीकुशध्वज महाराजके भवनमें आपधारीं ॥६६॥

उनके शुभागमनको जानकर श्रीसुदर्शना महारानीजी तत्क्षण उठकर खड़ी हो गयीं, पुनः प्रणाम करके विधिपूर्वक उन्होंने उनका सत्कार किया ॥६७॥

श्रीसुनयना महारानीजीने दूलहसरकारोंको आलस्य रहित हुये जानकर, श्रीसुदर्शना रानी जीके समेत भीतर महलमें जाकर उनका दर्शन किया ॥६८॥

आचमनादिकं कृत्यं कारयित्वाऽथ सादरम् । मध्यं वेशमानयामास तस्यास्तान् समहोत्सवम् ॥६९॥
दर्शनानन्दमग्नानां समक्षं कुलयोषिताम् । सुदर्शना समं राज्ञ्याताननुरागनिर्भरा ॥७०॥
उपवेश्य सुपीठेषु वाञ्छितं पारितोषिकम् । प्रदाय सादरं प्रेम्णाऽतर्पयद्विविधाशनैः ॥७१॥
वराणामागतिं गेहे स्वस्याकर्ण्य कुशध्वजः । प्रविश्य तत्र तानाशु दृष्ट्वा प्राप कृतार्थताम् ॥७२॥
लब्धेङ्गिता महाराज्ञ्याः सकान्ता श्रीसुदर्शना । वरैराचमनं प्रीत्या कारयामास सादरम् ॥७३॥
नागवल्ल्या दलानां च रचिताः सुष्ठुवीटिकाः । स्वकरेणार्पयामास तेषामास्यसुधांशुषु ॥७४॥
घ्रापयित्वा पुनर्धूपं पुष्पमाल्यैर्विभूषितान् । मुदा नीराजयाञ्चक्रे गानवाद्यपुरः सरम् ॥७५॥
अथेनं निष्प्रभं दृष्ट्वा राज्ञ्याज्ञप्ता वरोत्तमान् । कथञ्चिद्धैर्य्यमालम्व्य निनायोर्वीशमन्दिरम् ॥७६॥
तांस्तु कान्तिमती राज्ञी पुरोऽभ्येत्य मुदाप्लुता । नीराज्य महता प्रेम्णा सादरं गृहमानयत् ॥७७॥
उपविष्टेषु वै तेषु वरेषु स्वासनेषु च । सखीनां नृत्यगीतादेः समारम्भो बभूव ह ॥७८॥

पुनः आचमनादि कृत्योंको करवा कर आदर-पूर्वक महान् उत्सवके सहित, उन चारो वरोंको वे श्रीसुदर्शना महारानीके मध्य महलमें ले गयीं ॥६९॥

वहाँ महारानी श्रीसुनयनाअम्बाजी सहित श्रीसुदर्शनाअम्बाजीने अनुराग निर्भर हो, दर्शनोंके लिये व्याकुल चित्तवाली निमिकुलकी स्त्रियोंके समक्ष उन वरोंको सुन्दर सिंहासनोंपर विराजमान करके तथा इच्छानुसार नेग देकर प्रेम व आदरपूर्वक उन्हें विविध प्रकारके भोजनों द्वारा तृप्त किया ॥७०॥७१॥

श्रीकुशध्वज महाराज अपने महलमें वरोंका आगमन सुनकर वहाँ पहुँचे और उनका यथेष्ट दर्शन करके कृतकृत्य हो गये ॥७२॥

श्रीसुनयना महारानीका सङ्केत पाकर श्रीसुदर्शना अम्बाजीने प्रेमपूर्वक आदर सहित अपने पतिदेव सहित वरोंको आचमन कराया ॥७३॥

पुनः पानके बनाये हुये स्वादिष्ट वीरोंको उन्होंने स्वयं अपने कर-कमलसे, उनके मुखचन्द्रों में अर्पण किया ॥७४॥ तत्पश्चात् पुष्प मालाओंसे विभूषित करके धूपको सुँघाकर, अपार हर्ष-पूर्वक गान बजानके सहित उनकी आरतीकी ॥७५॥

भगवान् भास्करको प्रभाहीन हुये देखकर श्रीसुनयना महारानीकी आज्ञा पाकर श्रीसुदर्शना अम्बाजी किसी प्रकार धैर्यका अवलम्ब लेकर सर्वोत्तम वर सरकारोंको श्रीजनकजी महाराजके महलमें ले गयीं ॥७६॥

आनन्दमें डूबी हुई श्रीकान्तिमती अम्बाजी आगे आकर महान् अनुरागके साथ आरती करके उन्हें अपने भवन ले गयीं ॥७७॥ वरोंके सुन्दर सिंहासनों पर विराजमान हो जाने पर वहाँ सखियोंका नृत्य-गान प्रारम्भ हुआ ॥७८॥

उपनैशाशनं तेभ्यः कारयित्वा स्वपाणिना । प्रेषयामास सा ताभिः समं तान् कौतुकालयम् ॥७९॥
पुत्र्यस्त्वशेषराज्ञीभिः श्रीजनकात्मजादिकाः । स्वापिता लाल्यमानास्ता कारितोपनिशाशनाः॥८०॥
सुदर्शना सुभद्राद्या राज्ञ्यः सर्वाः कृताशनाः । महाराज्ञ्या समं तत्र शिशियरे मुदितात्मना ॥८१॥
कोशलेन्द्रं विदेहोऽपि ससमाजं सकौशिकम् । भोजयित्वाऽनुजैः प्रागात्तद्विसृष्टो महानसम् ॥८२॥
तत्र कृत्वाऽशनं सुप्तान् वरान् पुत्रीश्चभोजिताः । निशम्य चिन्तयंस्तांस्ताः सुष्वापानन्दनिर्भरः ८३
श्रीरामं कौतुकागारे भ्रातृभिर्मोहनेक्षणम् । स्वापयित्वा विदेहत्वं राजवध्वोऽञ्जसा गताः ॥८४॥

सिद्ध्यादिभिः श्रीधरपुत्रिकाभिः सेवारताभिः सुखमद्वितीयम् ।
लब्धं वराणां दशयानजानां श्रीवागुमानामपि दुर्लभं यत् ॥८५॥
इत्थं समासादितदिव्यमोदा निद्रां प्रयातेषु वरोत्तमेषु ।
रात्रौ गतायां हि ततोऽधिकायां स्वापं गताः श्रीधरपुत्रिकास्ताः ॥८६॥

तब श्रीकान्तिमती अम्बाजीने चारो वरोंको अपने हाथसे रात्रिका भोजन (व्यारू) करवाकर उन्हें सखियोंके साथ कोहवर-भवन भेजा ॥७९॥

तथा श्रीसुनयनाअम्बाजी आदि सभी महारानियोंने श्रीजनकदुलारीजी आदि सभी पुत्रियों को प्यार करती हुई भोजन कराकर, शयन कराया ॥८०॥

पुनः श्रीसुदर्शनाजी, श्रीसुभद्राजी आदि सभी रानियोंने श्रीसुनयना महारानीजी सहित व्यारू करके प्रसन्न मन हो वहीं शयन किया ॥८१॥ उधर अपने भाइयोंके सहित श्रीविदेहजी महाराजने श्रीविश्वामित्रजीके समेत, समाज संयुक्त श्रीदशरथजी महाराजको भोजन कराके जनवास में पहुँचाया, उनके विदा करने पर वे वापस भोजन-भवन पधारे ॥८२॥

वहाँ वरोंके सहित अपनी पुत्रियोंको भोजनपूर्वक विश्रामकी हुई सुनकर वे स्वयं भोजनसे निवृत्त हो नव युगलजोड़ियोंका चिन्तन करते हुये आनन्द निर्भर हो सो गये ॥८३॥

उस कोहवर भवनमें भाइयोंके सहित अपनी चितवनसे सभीको मुग्ध कर लेने वाले श्रीरामभद्रजीको शयन कराकर वे राजबधुयें अनायास अपने देहकी सुधि-बुधि भूल गयीं ॥८४॥

जो अनुपम सुख, श्रीलक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीसरस्वतीजीके लिये भी दुर्लभ है, उसी सुखको श्रीदशरथकुमार नववरोंकी सेवापरायणा श्रीधर महाराजकी श्रीसिद्धिजी आदि पुत्रियोंने प्राप्त कर लिया ॥८५॥ इस प्रकार उन उत्तम वरोंके सो जाने पर दिव्य सुखको प्राप्त वे श्रीश्रीधरजी महाराजकी श्रीसिद्धिजी आदि पुत्रियाँ अधिक रात्रि व्यतीत हो जाने पर अपनी सखियोंके सहित निद्राको प्राप्त हुई ॥८६॥

इति द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

—❀❀❀—

अथ त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ।

कङ्कन खोलाई महोत्सवमें श्रीजनकजी महाराज द्वारा
बरातियों सहित समस्त प्रजाके लिए प्रीतिभोज ।

श्रीशिव उवाच ।

अथ प्रत्यूषसमये दुन्दुभीनां कलस्वनम् । निशम्योत्थापिताः शीघ्रं सखीभिः सादरं हि ताः ॥१॥
रामध्यानसमासक्ता मैथिलीचरणाम्बुजे । प्रणम्य मनसा हृष्टा उत्थापनपदं जगुः ॥२॥
तेन संवीततन्द्राका अभूवन्वरसत्तमाः । तैश्च ताः कारयामासुर्मुदिता दन्तधावनम् ॥३॥
ततस्ताः पद्मपत्राक्ष्यः समानेतुं कुमारिकाः । श्वश्वा भवनमासाद्य प्रणेमुस्तां मुदाऽखिलाः ॥४॥
मैथिलीपादपाथोजे ताः प्रणम्य पुनः पुनः । अपारहर्षमगमन् सिद्धयाद्याः परमादरात् ॥५॥
सवाद्यं पिककण्ठीनां श्रुत्वा माङ्गलिकं पदम् । कान्तिमत्यादिभिः साकं सुनयना प्रहर्षिता ॥६॥
पुत्र्यन्तिकं समासाद्य परिष्वज्य पुनः पुनः । लालयन्तीदमूचे तां वाक्यं मधुरया गिरा ॥७॥

श्रीसुनयनोवाच ।

साम्प्रतं कौतुकागारविधिसंपूर्त्तिहेतवे । त्वां समानेतुमायाता इमा वध्वो मृगेक्षणे ! ॥८॥

भगवान् शिवजी बोलेः—हे श्रीगिरिराजकुमारीजू! पुनः प्रातः काल होने पर नगाड़ोंके मनोहर शब्द को श्रवण करके सखियोंने श्रीसिद्धिजी आदि बहुओंको शीघ्र आदर पूर्वक उठाया ॥१॥

श्रीरामसरकारके ध्यान में आसक्तचित्ता वे राजबधुएँ श्रीमिथिलेश राजदुलारीजी को मन ही मन प्रणाम करके हर्षितहो उत्थापनके पद गाने लगीं उस गानसे वर शिरोमणि श्रीरामभद्रजू आदि चारो भाइयोंने आलस्यका परित्याग किया, तब श्रीसिद्धिजी आदि बहिनोंने मुदित हो उन्हें दातून करवाई ॥२॥३॥

तत्पश्चात् वे सभी कमललोचनायें श्रीजनकराजनन्दिनीजू आदि सभी कुमारियोंको लेने हेतु श्रीसुनयना महारानीजीके महलमें पहुँच कर उनको प्रणाम किये ॥४॥

श्रीसिद्धिजी आदिकों ने श्रीमिथिलेश-राजदुलारीजीके श्रीचरणकमलोंको आदरपूर्वक बारम्बार प्रणाम करके, अपार हर्ष को प्राप्त किया ॥५॥

बाजोंके सहित कोकिलके समान कण्ठवाली सखियोंके मङ्गलमय पदों को श्रवण करके श्रीकान्तिमतीजी आदि रानियोंके सहित श्रीसुनयनाअम्बाजी अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुई पुनः अपनी श्रीललीजीके पास आकर, तथा बार-बार हृदय लगाकर प्यार करती हुई वे उनसे मधुर वाणी बोलीं:—॥६॥७॥

हे मृगलोचने श्रीललीजू ! कोहवर भवनकी शेष विधिको पूर्ण करानेके लिये आपकी भौजाइयाँ इस समय आपको वहां ले जानेके लिये आई हैं ॥८॥

वत्से ! तद्गम्यतां शीघ्रमेताभिः स्वसृभिस्सह । कौतुकागारमिन्द्वास्ये ! स्वाश्रितामोदवृद्धये ॥९॥

श्रीशिव उवाच ।

एवमाज्ञापिता मात्रा महागाम्भीर्यतोयधिः । मैथिली शीलसम्पन्ना युक्तया सा विमातृभिः ॥१०॥
गायन्तीनां वयस्यानां सामयिकं सुमङ्गलम् । स्वसृवृन्देन सहिता महामाधुर्य्यमण्डिता ॥११॥
छत्रचामरहस्ताभिः सेव्यमाना समन्ततः । सिद्धयादिभिर्मृगाक्षीभिर्मत्तमातङ्गगामिनी ॥१२॥
प्रणम्य जननीः सर्वा विनयानतलोचना । जगाम कौतुकागारं जयघोषाभिनन्दिता ॥१३॥
उर्मिला माण्डवी चैव श्रुतिकीर्त्तिः सुता इमाः । सेव्यमानाः सखीवृन्दैः प्रणम्य जनकात्मजाम् ॥१४॥
मातुराज्ञां पुरस्कृत्य स्वं स्वं ताः कौतुकालयम् । प्रागमन्निन्दुवदनाश्चिन्तयन्त्यो धरासुताम् ॥१५॥
विधायोद्वर्तनं ताश्च ग्रन्थिबन्धनपूर्वकम् । वस्त्रमन्तरतः कृत्वा सप्रियाः स्नापिता मुदा ॥१६॥
धारयित्वा सुवस्त्राणि महार्हाणि मृदूनि च । केशप्रसाधनं चक्रुर्भूमिजाया मृगीदृशः ॥१७॥
ततः साऽलङ्कृता ताभिः सप्रिया जनकात्मजा । गर्भागारं समानीता जगदानन्दरूपिणी ॥१८॥

हे चन्द्रमुखी वत्से ! इस लिये आप अपनी बहिनोंके सहित, इन भौजाइयोंके साथ, अपनी आश्रितोंके आनन्दवृद्धिके लिये, आप शीघ्र कोहवर भवन पधारिये ॥९॥

अन्य माताओं सहित अपनी सुनयना अम्बाजीकी यह आज्ञा पाकर महासागरके समान अथाह गम्भीरता वाली शील (सौन्दर्य) सम्पन्ना श्रीललीजी सखियोंके समयोचित मङ्गल-गीत गाते हुये बहिनोंके सहित महामाधुर्यसे युक्ता छत्र, चँवर हाथोंमें लिये हुई मृगलोचना श्रीसिद्धिजी आदि द्वारा सब ओरसे सेवित होती, मस्त हाथीके समान सुन्दर चालसे सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी सभी माताओंको प्रणाम करके जयघोषके द्वारा सभी ओरसे सत्कारको प्राप्त होती कोहवर-भवनमें पधारीं ॥१०॥११॥१२॥१३॥

सखीवृन्दोंसे सेवित श्रीउर्मिलाजी, श्रीमाण्डवीजी, श्रीश्रुतिकीर्तिजी इन तीनों पुत्रियोंने श्रीजनकराजदुलारीजीको प्रणाम किया ॥१४॥

श्रीअम्बाजीकी आज्ञाको स्वीकार करके श्रीभूमिनन्दिनीजूका ही चिन्तन करती हुई, वे चन्द्रमुखीराजकुमारियाँ अपने-अपने कोहवर भवनमें पधारीं ॥१५॥

सखियोंने श्रीदुलहिन सरकारोंसे वरोंके साथ गँठबन्धन-पूर्वक उबटन लगानेकी विधि पूरी कराके, दोनोंके बीचमें वस्त्रकी आड़(ओट)देकर उन्हें साथ ही साथ स्नान कराया ॥१६॥

पुनः अत्यन्त कोमल, बहुमूल्य, सुन्दर वस्त्रोंको धारण कराके मृगलोचना सखियोंने भूमिसुता श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके बालोंको सँवारा ॥१७॥

तदनन्तर सम्पूर्ण चर-अचर प्राणियोंकी आनन्दस्वरूपा श्रीजनकराजनन्दिनीजूको प्यारेके सहित भवनके बीचवाले मुख्य भागमें ले गयीं ॥१८॥

आससाद तदा राज्ञी सुनयना तदालिभिः । अहल्यया समं तत्र कुलस्त्रीभिः समावृता ॥१९॥
पूजां तु पञ्चदेवानां सविधं मोदनिर्भरा । प्रार्थिता श्रीमहाराज्ञ्या सादरं गोतमप्रिया ॥२०॥
ताभ्यां सा कारयामास कृतार्थेनान्तरात्मना । पिबन्ती रूपमाधुर्यं कन्यायाश्च वरस्य च ॥२१॥
कङ्कणोन्मोचनाख्यश्च तयोः संपादितो विधिः । गायन्तीनां वयस्यानां मङ्गलं ध्यानमङ्गलम् ॥२२॥
तौ हि सर्वेश्वरावित्थं नरलीलानुसारतः । वैदिकं लौकिकं सर्वं चक्रतुः सादरं विधिम् ॥२३॥
त्रिभ्योऽपि चानया रीत्या कारितोऽशेषतो विधिः । वरेभ्यः सह कन्याभिर्महाराज्ञ्या पृथक्पृथक् ॥२४॥
मार्गे-मार्गे नगर्यां स्म विदेहस्य तदाशिवे । सर्वत्र वाद्यवृन्दानां श्रूयते मङ्गलस्वनः ॥२५॥
कङ्कणोन्मोचनाख्यो हि विधिश्चाद्य प्रपूरितः । श्रीसीतारामयोः पुण्यः कथेतिमिथिलौकसाम् ॥२६॥
सर्वेषामेव जिह्वाग्रे समवर्तत सौख्यदा । अवर्ण्यं तत्सुखं देवि जिह्वयेति मतिर्मम ॥२७॥
मङ्गलस्पर्शनं चक्रुस्ततः सर्वा हि योषितः । वरकन्याशुभाङ्गानां वाद्यगानपुरः सरम् ॥२८॥
तदानन्दपरीतात्मा राज्ञी सुनयना शुभा । सर्वाभ्यः प्रददौ कामं पुष्कलं पारितोषिकम् ॥२९॥

उसी समय अपनी सखियों सहित श्रीअहल्याजीके साथ कुलकी स्त्रियोंसे घिरी हुई वहाँ महारानी श्रीसुनयनाजी पधारीं ॥१९॥

उनकी प्रार्थनासे गोतमजीकी प्राणप्रिया श्रीअहल्याजीने कृतार्थ हृदयसे, वर-कन्याओं की स्वरूप-माधुरीका पान करते हुये हर्ष निर्भर हो दोनोंसे पञ्चदेवोंकी पूजा कराई ॥२०॥२१॥

पुनः उन्होंने सखियोंके मङ्गल गाते हुये दोनों सरकारोंसे ध्यान मात्रसे मङ्गल करने वाली, कङ्गन-खोलवाई नामकी विधि सम्पन्न करायी ॥२२॥

इसी प्रकार सर्वेश्वर (समस्त शासकोंके अनुपम शासक) होते हुये भी दोनों दुलहिन-दूलह सरकार प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजने अपनी वर-लीलाके अनुसार आदर पूर्वक श्रद्धा समन्वित वैदिक तथा लौकिक सभी प्रकारकी विधियोंका पालन किया ॥२३॥

इसी रीतिसे श्रीसुनयना महारानीने कन्याओं सहित तीनों वरोंसे अलग-अलग सम्पूर्ण विधियोंको पूरी कराया ॥२४॥

हे शिवे (मङ्गलस्वरूपे !) उस समय श्रीमिथिलापुरीके प्रत्येक मार्गमें सर्वत्र, अनेक प्रकारके बाजोंकी मङ्गल-ध्वनि सुनाई पड़ रही थी ॥२५॥

वर-वधू वेषधारी श्रीसीताराम युगलसरकारकी आज कङ्कण खोलाई नामकी पुण्य विधि पूरी हो गयी, यह कथा पूर्ण रूपसे सभी मिथिला वासियोंकी जिह्वा पर विराज गयी, हे देवि ! उस सुखका जिह्वा द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता, ऐसा मेरा निश्चय है ॥२६॥२७॥

पश्चात् सभी सौभाग्यवती स्त्रियोंने गान वाद्य-पूर्वक वर-कन्याओंके मनोहर अङ्गोंका स्पर्श किया ॥२८॥ उस आनन्दसे युक्त हृदया मङ्गलमयी महाराणी श्रीसुनयनाजीने सभी माताओं को बहुत-बहुत अभीष्ट न्योछावर प्रदान की ॥२९॥

अहल्यामभिवाद्याङ्ग वन्दिता हि द्विजाङ्गनाः। उभाभ्यां वन्द्यवन्द्याभ्यां तदाम्बश्वा निदेशतः॥३०॥
वस्त्रैर्भूषैर्महार्हैश्च धनैः संतर्प्य पुष्कलैः। ताः स्वकीयालिभी राज्ञी जगामागारमात्मनः॥३१॥
तन्निशम्य महीपालो विदेहकुलभूषणः। आज्ञां दिदेश मन्त्रिभ्यःसमाहूयेति सादरम्॥३२॥

श्रीविदेह उवाच।

अद्य श्रीकोसलाधीशः सूपहारैः सहस्रशः। सामात्यः ससुहृद्वृन्दो महोत्साहेन तर्प्यताम्॥३३॥
अन्नैर्वस्त्रैर्नरेन्द्रार्हैर्गजैरश्वै रथैर्धनैः। तर्प्यन्ता मे प्रजाः सर्वाः पुरग्रामनिवासिनः॥३४॥

श्रीशिव उवाच।

पालयितुं तमादेशं विदेहेन्द्रस्य मन्त्रिणः। निशम्यानन्दमग्नास्ते शकटैश्च सहस्रशः॥३५॥
भूषणानि महार्हाणि वस्त्राण्यभिनवानि च। धनानि तप्तगाङ्गेयमणिरत्नमयानि च॥३६॥
गवाश्वनागमहिषीरथानामयुतं तथा। न चिरेण प्रतिग्रामं प्रेषयामासुरानतैः॥३७॥
कुमार्यः श्रीधरस्याथ ह्युपयामोत्थितं दिनम्। समीक्ष्योपाशनार्थाय वराणां चिन्तयान्विताः॥३८॥
प्रातराशाय ताः सर्वाः प्रार्थयामासुरुत्सुकाः। सादरं परया प्रीत्या नवपङ्कजलोचनान्॥३९॥

उस समय सासु श्रीसुनयनाअम्बाजीकी आज्ञासे वन्दनीयों(ब्रह्मादि देवताओं)के भी वन्दनीय उन दोनों वर-कन्या सरकारोंने श्रीअहल्याजीको प्रणाम करके सभी ब्राह्मण-पत्नियों को प्रणाम किया॥३०॥

श्रीसुनयना अम्बाजी उन्हें बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा पर्याप्त धनके द्वारा सम्यक् प्रकारसे तृप्त करके अपने भवन पधारीं॥३१॥

कुल भूषण श्रीजनकजी महाराज यह सुनकर आनन्दातिरेकसे देहकी सुधि भूल गए, पुनः सावधान हो मन्त्रियोंको बुलाकर उन्हें आदर पूर्वक यह आज्ञा प्रदान की॥३२॥

हे मन्त्रियो! आज अनन्त प्रकारके सुन्दर उपहारोंके द्वारा महान् उत्साहपूर्वक मन्त्रियों तथा सुहृद्वृन्दों सहित अयोध्यानरेश (श्रीदशरथजीमहाराज) को पूर्ण तृप्त कीजिए॥३३॥

हमारी पुर-ग्राम निवासी प्रजा को भी राजोचित्त सुन्दर अन्न, वस्त्र, हाथी-घोड़ा, रथ तथा अनेक प्रकारकी सम्पत्तियोंके दान द्वारा पूर्ण सन्तुष्ट करें॥३४॥

भगवान शिवजी बोले–हे पार्वती! श्रीविदेह महाराजके मन्त्रियोंने उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिए परम (भगवत्) आनन्दमें डूब कर हजारों बैलगाड़ियों के द्वारा नवीन बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा तपाया हुआ स्वर्ण, मणि, रत्नमय अनेक प्रकारका धन दसहजार गौ, घोड़ा, हाथी, भैंसें तथा रथोंको अपने सेवकोंके द्वारा तुरन्त प्रत्येक ग्राममें पहुँचा दिया॥३५॥३६॥३७॥

श्रीधरमहाराजकी कुमारी श्रीसिद्धिजी आदिकोंने लगभग एक पहर दिन उठा हुआ देखकर वरोंको कलेऊ करवानेके लिये चिन्तित हो सभीने नवीन कमलकेसमान सुन्दर विशाल नेत्रोंवाले चारों वर सरकारोंसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक आदरके साथ कलेऊके लिये प्रार्थनाकी॥३८॥३९॥

तासां स्नेहमयीं वाणीं संनिशम्य रघूद्वहः । चकार प्रातरशनं सानुजैश्च पृथक्पृथक् ॥४०॥
आहूतश्चः पुनः श्वश्वा मुदा श्रीमत्सुनेत्रया । नीत्वा ताभिर्विशालाक्षः प्रापितो ऽसौ तदन्तिकम् ॥४१॥
तयाऽसौ सत्कृतः प्रीत्या बन्धुभिः शातवर्द्धनः । क्षालिताङ्घ्रिकराम्भोजः सुखासनविराजितः ॥४२॥
लाल्यमानस्तया राज्ञीभिरन्याभिः परीतया । चकार भ्रातृभी रामस्तदानीमुपभोजनम् ॥४३॥
शृण्वन्मृगनिभाक्षीणां सरसं मोदवर्द्धनम् । हास्यवाक्यान्वितं गानं सखीनां सुस्मिताननः ॥४४॥
पत्न्यो ह्यशेषबन्धूनां जनकस्य तदा क्रमात् । सर्वा जामातृबुद्धया तान् सानुरागमभोजयन् ॥४५॥
प्रीत्या प्रदाय सा तेभ्यो राज्ञी ताम्बूलवीटिकाः । आजगामान्तिकं पुत्र्याः समाचान्तेभ्य एव च ॥४६॥
लालनैर्विविधैस्तस्यै युतायै सर्वस्वसृभिः । तर्पयामास सुप्रीत्या विविधैस्तत्प्रियाशनैः ॥४७॥
कारयित्वा तयाऽऽचामं प्रदत्ता वीटिकाः पुनः । तद्रूपामृतपाथोधिमग्नपङ्कजनेत्रया ॥४८॥
सिद्धिः श्वश्रूमनुज्ञाप्य श्रीरामं बन्धुभिर्युतम् । निनाय भवनं स्वीयं सखीभिः परिवारिता ॥४९॥

उनकी स्नेहमयी वाणीको सुनकर श्रीरघुनन्दन-प्यारेजू अपने भैयों सहित अलग-अलग कलेवा करने लगे ॥४०॥

तब सासु श्रीसुनयना महारानीजीके बुलाने पर श्रीसिद्धिजी आदिकोंने विशालनयन श्रीरामभद्रजीको प्रसन्नता-पूर्वक उनके पास पहुँचाया ॥४१॥

उन्होंने भाइयों सहित सुखवर्द्धन प्यारेजूका सत्कार करके उनके कमलवत्-सुकोमल हाथों तथा पैरोंको धुलवाकर सुखपूर्वक विराजमान किया ॥४२॥

मृग समान चञ्चल तथा मनोहर नेत्रों वाली उन सखियोंके रसमय, आनन्द वर्धक, हास्य वचन युक्त गीतोंको श्रवण करते हुये, अन्य रानियों सहित श्रीसुनयना अम्बाजीके प्यार करते हुये, भाइयों समेत श्रीरामभद्रजूने कलेऊ प्रारम्भ किया ॥४३॥४४॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके पन्द्रहों भाइयोंकी रानियोंने क्रमशः उन चारोंको अपने भाव से अनुराग पूर्वक भोजन कराया ॥४५॥

जब वे आचमन ले चुके, तब श्रीसुनयना-महारानीजीने उन कुमारोंको पानका वीरा प्रदान करके अपनी श्रीललीजीके पास पधारीं ॥४६॥ और हर्ष पूर्वक, अत्यन्त प्रेमके साथ, सभी बहिनों सहित अपनी श्रीललीजीका अनेक प्रकारसे प्यार करती हुई, उनके विविध प्रकारके प्रिय भोजनों द्वारा उन्हें तृप्त किया ॥४७॥

पुनः श्रीललीजीके छबि सुधा-सागरमें डूबे हुये नेत्रोंवाली श्रीअम्बाजीने आचमन कराकर उन्हें पानका बीरा प्रदान किया ॥४८॥

श्रीसिद्धिजी अपनी सासुजीसे आज्ञा माँगकर भाइयों सहित दूलहसरकार श्रीरामभद्रजी को सखियोंके सहित अपने भवनमें ले गयीं ॥४९॥

कृत्वा नीराजनं प्रेम्णा गानवाद्यपुरः सरम् । गृहीत्वा पाणिना पाणिं मणितल्पे न्यवेशयत् ॥५०॥
स्वसृभिः सहिता तैश्च वसन्तोत्सवकाङ्क्षिणी । पिष्टातेन कपोलौ द्वौ तेषां सा चार्वभूषयत् ॥५१॥
क्रीडया च तया रामः कृत्वा तां मुदितां भृशम् । जनावासं समागत्य प्रणनाम मुनीश्वरौ ॥५२॥
सानुजैः प्रणमन्तं तं कोशलेन्द्रो विमोहनम् । अवगाहत वीक्ष्यैव महानन्दपयोनिधिम् ॥५३॥
ततो लक्ष्मीनिधिश्चैव श्रीनिधिं च गुणाकरम् । आलिलिङ्ग मुदायुक्तः श्रीनिधानकमेव सः ॥५४॥
अन्ये सर्वे कुमाराश्च सत्कृता भूपपुत्रवत् । महाराजेन मुदिता रामपार्श्वे उपस्थिताः ॥५५॥
प्रहितो मैथिलेन्द्रेण चन्द्रभानुर्महामतिः । नृपेन्द्रं प्रार्थयामास गन्तुं स भोजनालयम् ॥५६॥
ततः सर्वसमाजैश्च युक्तो दशरथो नृपः । वशिष्ठकौशिकाभ्यां तु चन्द्रभानुसमन्वितः ॥५७॥
स्यन्दनं स समारुह्य चचालाशनमन्दिरम् । गजयाने स्थिते रामे श्यालैर्भ्रातृभिर्युते ॥५८॥
सफलानि च चक्षूंषि कुर्वन्तो नृपतेः सुताः । जनानां मार्गलब्धानां दर्शनेन मनोऽहरन् ॥५९॥

वहाँ गान-वजान सहित आरती करके श्रीसिद्धिजीने उनके कर-कमलको अपने हस्तकमल से पकड़ कर उन्हें मणिमय पलङ्ग पर विराजमान किया ॥५०॥

पुनः सखियों सहित उन्होंने उन वरोंसे वसन्तोत्सवकी इच्छा करके सुगन्ध युक्त गुलालसे उन चारोंके कपोलोंको भूषित किया ॥५१॥ सर्वसुखदाई तथा सभीके अन्तः करणमें रमण करने वाले, वे प्रभु श्रीरामजी उस क्रीडाके द्वारा श्रीसिद्धिजीको अत्यन्त सुखी करके जनवासे पहुँच कर, उन्होंने मुनीश्वर श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम किया ॥५२॥

भाइयों सहित विश्वविमोहन सरकार (श्रीरामभद्रजू) को प्रणाम करते देख कर ही श्रीदशरथजी महाराज महान्-आनन्द-सागरमें डुबकी लगाने लगे ॥५३॥

तत्पश्चात् श्रीलक्ष्मीनिधिजी, श्रीनिधिजी, श्रीगुणाकरजी तथा श्रीनिधानकजीको हर्षित हो उन्होंने हृदयसे लगाया ॥५४॥

श्रीरामभद्रजूके बगलमें उपस्थित अन्य कुमारोंका सत्कार भी उन्होंने श्रीविदेहराजकुमार श्रीलक्ष्मीनिधि आदि भाइयोंके समान ही किया ॥५५॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके भेजे हुये महामति श्रीचन्द्रभानुजी महाराजने श्रीचक्रवर्तीजीसे भोजन-भवनमें पधारनेके लिये प्रार्थना निवेदन की ॥५६॥

उनकी प्रार्थनासे सम्पूर्ण समाज सहित, श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजीमहाराजके साथ श्रीचन्द्रभानु महाराजसे युक्त श्रीदशरथजीमहाराज श्रीभरतजी आदि भाइयों तथा श्रीलक्ष्मीनिधि आदि सालोंके सहित श्रीरामभद्रजूके गजरथ पर बैठ जाने पर, वे (श्रीचक्रवर्तीजी) रथपर आरूढ़ हो भोजन-भवनको चले ॥५७॥५८॥

चारो राजकुमारोंने अपने दर्शनोंसे मार्गमें उपस्थित जनताके नेत्रोंको सफल करते हुए उनके मनको हरण कर लिया ॥५९॥

विदेहो भोजनागारं निशम्यागच्छतो वरान् । प्रत्युद्गम्यानयामास तान्सपित्रा महानसम् ॥६०॥
वशिष्ठादिमहर्षीणां प्रक्षाल्यादौ पदाम्बुजे । ततः श्रीकोशलेन्द्रस्य वराणां तदनन्तरम् ॥६१॥
क्षालयित्वा पदाम्भोजे संनिवेश्यासनेषु च । यथोचितेषु सर्वान् सः स्वौदनिकानचोदयत् ॥६२॥
ते तदिङ्गितमासाद्य नरेन्द्रस्य स्मिताननाः । सद्यो वितरयामासुर्भोजनं हि चतुर्विधम् ॥६३॥
षड्रसं निहितं तत्तु सौवर्णे पृथुपात्रके । लघुपात्रशताकीर्णे नानारत्नचमत्कृते ॥६४॥
ततस्तु भोजनं चक्रुः सर्वे विनयतोषिताः । विदेहस्य नृपेन्द्रेण शोभितेन सुतैः सह ॥६५॥
तद्वंश्या मन्त्रिवंश्याश्च सर्व एवाशुरादृताः । कोशलेन्द्रसमाजेन सार्द्धमानन्दनिर्भराः ॥६६॥
सर्वे पुरौकसश्चापि बालवृद्धस्त्रियो नराः । यत्र तत्र निकेतेषु सादरं परितर्पिताः ॥६७॥
अतर्पयन् राजपुंभिः स्वनिदेशानुवर्तिभिः । प्रतिग्रामं प्रजाः सर्वा मन्त्रिणो विनयान्वितैः ॥६८॥
ग्रामे ग्रामे नगर्यां च मार्गे मार्गे गृहे गृहे । आशिशुशुक्लकेशानां तदानीं योषितां नृणाम् ॥६९॥
हृदयेनोरुतृप्तानां परमाह्लादवर्द्धनः । सर्वत्रेति गतः कर्णं मिथिलायां जयध्वनिः ॥७०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजने वरोंको भोजन भवनमें पधारते हुये सुनकर, आगे जाकर श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके सहित उन्हें भोजन गृहमें ले आये ॥६०॥

पहिले श्रीवशिष्ठजी आदि महर्षियोंके चरण-कमलोंको धोकर पुनः श्रीदशरथजीके, तदनन्तर चारो वरोंके श्रीचरण-कमलोंको धोकर, सभीको यथोचित आसनों पर विराजमान करके अपने रसोइयोंको परोसनेके लिये उन्होंने सङ्केत किया ॥६१॥६२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजके उस सङ्केतको पाकर, मन्द मुस्कान युक्त उन रसोइयोंने चारो प्रकारके भोजनोंको तुरन्त परोस दिया ॥६३॥

छोटे-छोटे सैकड़ों लघुपात्रोंसे परिपूर्ण अनेक प्रकारके रत्नोंसे चमकते हुये सोनेके विशाल थालमें रखे हुए उस षड्रस भोजनको श्रीविदेहजी महाराजकी विनयसे संतुष्ट हो, पुत्रोंसे सुशोभित श्रीचक्रवर्तीमहाराजके साथ सभी आरोगने अर्थात् पाने लगे ॥६४॥६५॥

श्रीदशरथजीमहाराजके तथा मन्त्रियोंके वंशके सभी लोग, समाज सहित श्रीदशरथजी, महाराजके साथ बड़े आदर-पूर्वक भोजन करने लगे ॥६६॥

बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष आदि सभी पुरवासी जो जहाँ थे, उन्हें वहीं आदर-पूर्वक तृप्त किया गया ॥६७॥ उधर मन्त्रियोंने अपने आज्ञाकारी विनय सम्पन्न राजकर्मचारियों द्वारा अपने देशके प्रत्येक ग्रामकी समस्त प्रजाको तृप्त किया ॥६८॥

उस समय श्रीमिथिला नगरीके प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक मार्ग और प्रत्येक घरोंमें महान तृप्त शिशुओंसे लेकर श्वेत केश पर्यन्त प्रत्येक नर-नारियोंके हृदयसे परम-आह्लादवर्द्धक जयध्वनि इस प्रकार सर्वत्र श्रवणगोचर होने लगी ॥६९॥७०॥

जयतु जानकी सीता वैदेही जनकात्मजा। निमिराजकुलोद्भूता बधूवेषसुशोभिता ॥७१॥
रामो जयतु जामाता जनकस्य रघूद्वहः। दाशरथिः सरोजाक्षो वरो लक्ष्मणपूर्वजः ॥७२॥
जयतु माण्डवी पुत्री श्रुतिकीर्त्तिस्तथोर्मिला। विवाहवेषसम्पन्ना मैथिलीलीनमानसा ॥७३॥
महाराज्ञी सुनयना सर्वदोत्तानहस्तका। कौसल्या च महाराज्ञी जयतं भाग्यभूषिते ॥७४॥
अस्माकं जयताद्राजा जनको योगिसत्तमः। ज्ञानिलब्धप्रतिष्ठाग्र्यो महासौभाग्यभूषितः ॥७५॥
चक्रवर्तिमहाराजो वराणां जनको ऽनघः। अतुल्यभाग्यसम्पन्नो जयतूरुयशाः सदा ॥७६॥
जयन्तु भ्रातरः सर्वे राज्ञ्यस्तेषां हि सान्वयाः। जनकस्य महीपस्य कोसलेन्द्रस्य चानिशम् ॥७७॥
द्विजानां मुक्तकण्ठानां स्वस्तिपाठस्त्रिवर्णिनाम्। साकं बभूव श्रोतृणां जयध्वन्या ऽतिहर्षदः ॥७८॥
शृण्वन् गानं मृगाक्षीणां कोसलेन्द्रः सुतैः सह। स्मितास्यो मुत्परीतात्मा परितृप्तः सुधाशनैः ॥७९॥
आचमनं ततः कृत्वा क्षालिताङ्घ्रिकराम्बुजः। ससमाजो विदेहेन सत्कृतो विविधोपदैः ॥८०॥

श्रीजानकीजीकी जय हो। लाड़िली श्रीसीताजीकी जय हो। श्रीजनकदुलारीजूकी जय हो। श्रीनिमिराजकुलोत्पन्नाजीकी जय हो। बधू वेष सुशोभिता श्रीसियाजूकी जय हो ॥७१॥

रघुकुलनन्दन श्रीरामललाजीकी जय हो। जनक-जमाई श्रीराम बबुआजीकी जय हो। दशरथ नन्दन श्रीरामभद्रजूकी जय हो। कमललोचन श्रीराम नौसै बबुआ की जय हो। श्रीलखनलालजूके बड़े भैया श्रीरामजू की जय हो ॥७२॥

श्रीमैथिलीजूके चरण कमलोंमें लीन मनवाली पुत्री माण्डवी की जय हो। श्रुतिकीर्त्तिकुमारी की जय हो। कुमारी उर्मिलाजीकी जय हो ॥७३॥

दान देनेके भावसे अपना हाथ सदा ऊपर रखनेवाली, सौभाग्यभूषिता श्रीसुनयनामहाराणीजो की जय हो। महाराणी श्रीकौशल्याजू की जय हो ॥७४॥ योगि शिरोमणि ज्ञानियोंमें परम प्रतिष्ठित, महासौभाग्य विभूषित हमारे राजा श्रीजनकजीमहाराजकी सदा जय हो॥७५॥ अनुपम भाग्यशाली, महान् यशस्वी वरोंके निष्पाप पिता श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजकी सदा जय हो ॥७६॥

श्रीजनकजी महाराजके सभी भाइयोंकी जय हो। सपरिवार उनकी रानियोंकी जय हो। कोसलनरेश श्रीदशरथजी महाराजके सभी भाइयों की जय हो। सपरिवार उनकी रानियोंकी जय हो ॥७७॥ इस प्रकार त्रिवर्णों(क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों)की जयकार ध्वनिके साथ ब्राह्मणों द्वारा गला खोलकर किया गया स्वस्ति पाठ, श्रोताओंके लिए अत्यन्त हर्ष दायक हुआ ॥७८॥

मृगके समान चञ्चल तथा मनोहर नेत्रों वाली सखियोंके हास्यवचन युक्त गीतोंको श्रवण करते हुए श्रीदशरथजी महाराज राजकुमारों सहित, अमृतमय भोजन से पूर्ण सन्तुष्ट हुए उनका हृदय आनन्दसे भर गया ॥७९॥

आचमन पूर्वक कमलवत् हाथ पैरोंको धुलवा लेने के बाद श्रीविदेहजी महाराजने, समाज सहित श्रीदशरथजी महाराजका अनेक प्रकारके उपहारों द्वारा सत्कार किया ॥८०॥

स राजेन्द्रः पुनस्तेन प्रार्थितो नतिपूर्वकम् । भ्रातॄणां मे गृहं गत्वा भवैषां भावपूरकः ॥८१॥
इति तद्व्याहृतं वाक्यं समाकर्ण्य नृपाधिपः । वाढमित्याह तच्छ्रुत्वा सर्वेऽपारसुखं ययुः ॥८२॥
ततः कमलपत्राक्षं रामं स्मेरमुखाम्बुजम् । प्रवेशयन्तः पुरं शीघ्रं भ्रातृभिः परिशोभितम् ॥८३॥
गमयित्वा जनावासं सादरं नृपपुङ्गवम् । चकार भोजनं राजा भ्रातृवृन्दसमन्वितः ॥८४॥
वरास्ते सादरं नीत्वा स्वनिकेतं महाधिया । मणितल्पेषु नीराज्य सिद्ध्या च स्वापिताः प्रियाः॥८५॥
स्वसंवेशालये दृष्ट्वा मीलिताक्षीमयोनिजाम् । स्वसृवृन्देन सहितां भासयन्तीं त्विषाऽऽलयम् ॥८६॥
राज्ञी सुनयना चापि संसुप्तासु दुहितृषु । सह वंशाङ्गनाभिश्च चकाराशनभालिभिः ॥८७॥
कोशलेन्द्रो महापूर्णो नावकाशं विलोक्य च । स्थापयितुं हि तद्गेहे प्रेषितानुपदांस्ततः ॥८८॥
पुनरावर्तयामास सानुरोधं हि तान्बुधाः । अमात्याः स्थापयामासुः पृथगन्यत्र वेश्मनि ॥८९॥

पुनः श्रीविदेहजी महाराजने नमस्कार पूर्वक श्रीचक्रवर्तीजीमहाराजसे प्रार्थना निवेदन की–आप हमारे इन भाइयोंके भवनोंमें भी पधार कर इनके भावको पूर्ण करनेकी कृपा करें ॥८१॥

श्रीचक्रवर्तीजीमहाराज श्रीमिथिलेशजी महाराजकी उस निवेदित प्रार्थनाको सुन कर बोले–"ऐसा ही होगा" आश्वासन पूर्ण ऐसी स्वीकृति श्रवण कर श्रीमिथिलेशजी महाराजके उपस्थित सभी भाइयोंको अपार सुख प्राप्त हुआ ॥८२॥ तत्पश्चात् भाइयोंसे सुशोभित कमलदललोचन तथा मुस्कान युक्त मुख कमलवाले श्रीरामभद्रजीको अपने अन्तःपुरमें भेजकर, तथा नृपति श्रेष्ठ श्रीदशरथजी महाराजको जनवासेमें पहुँचाकर, श्रीमिथिलेशजी महाराजने अपने भाइयोंके साथ भोजन किया ॥८३॥८४॥

महाबुद्धिमती श्रीसिद्धिजी ने उन प्यारे वरों को अपने भवनमें लेजाकर आरती पूर्वक उन्हें मणिमय पलङ्गों पर शयन कराया ॥८५॥

पुनः बहनों सहित अपने श्रीअङ्गकी कान्तिसे भवन को प्रकाशित करती हुई अयोनिसम्भवा अर्थात् बिना किसी कारण अपनी इच्छा मात्र से प्रकट हुई श्रीललीजी को अपने शयन भवनमें आँखे बन्द किए देखकर, महाराणी श्रीसुनयनाजी ने भी पुत्रियोंके सो जाने पर अपने वंश की स्त्रियों तथा सखियों के साथ भोजन किया ॥८६॥८७॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज के भेजे हुए उपहारों को देखकर श्रीचक्रवर्तीजी महाराज अत्यन्त अघा गए, तत्पश्चात् जनवासेमें रखनेके लिए स्थानाभाव देखकर, उन्हें बड़े अनुरोध पूर्वक वापस कर दिया । धर्मरहस्यज्ञ मन्त्रियों ने श्रीचक्रवर्तीजी महाराज के अनुरोधको स्वीकार करके उन्हें दूसरे भवनमें अलग रखवा दिया ॥८८॥८९॥

औदार्येणेति महता हर्षोल्लाससमन्वितः । वैवाहिकस्तु सम्पन्नः प्रीतिभोजमहोत्सवः ॥९०॥

इस प्रकार हर्षोल्लास समन्वित "वैवाहिक प्रीतिभोज महोत्सव" महती उदारता पूर्वक सम्पन्न हुआ ॥९०॥

इति त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

—❀❀❀—

अथ चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ।

श्रीकुशध्वज भवनमें पूरे समाज सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराज तथा
सभी कुल पुत्रियोंकी पहुनाई ।

श्रीशिव उवाच ।

प्रतिबुध्य विदेहाय प्रणम्य श्रीकुशध्वजः । ससमाजं नृपं वेश्म नेतुमिच्छामदर्शयत् ॥१॥
तस्मादसौ विदेहेन्द्रो गत्वा दशरथं नृपम् । भ्रातुरभीप्सितं नत्वा निजगाद कृताञ्जलिः ॥२॥
स च तद्भाषितं श्रुत्वा सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् । उवाच परया प्रीत्या कोशलेन्द्रः शुभाक्षरम् ॥३॥

श्रीदशरथ उवाच ।

सत्वरं स्वं समाजं त्वं कुरु गन्तुं समुद्यतम् । श्रीमत्कुशध्वजागारमभिपृच्छ्य महामुनी ॥४॥

श्रीशिव उवाच ।

स गत्वा क्षणमात्रेण विधायाशु सुसज्जितम् । शोभमानं मुनीन्द्राभ्यां तस्मै सुखमदर्शयत् ॥५॥
आगतौ मुनिनाथौ तौ निरीक्ष्योत्थाय सादरम् । ननाम नृपशार्दूलो विदेहेन समन्वितः ॥६॥

श्रीकुशध्वज महाराजने सावधान होकर श्रीविदेहजी महाराजको प्रणाम करके, उनसे समाज सहित श्रीदशरथजी महाराजको अपने भवनमें ले जानेकी इच्छा प्रकटकी ॥१॥

इस हेतु श्रीविदेहजी महाराजने श्रीदशरथजी महाराजके पास जाकर उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम पूर्वक, अपने भाई श्रीकुशध्वज महाराजकी प्रार्थना निवेदन की ॥२॥

कोशलेन्द्र श्रीदशरथजी महाराज, श्रीमिथिलेशजी महाराजकी उस प्रार्थनाको सुनकर श्रीसुमन्त्रजी से प्रेमपूर्वक-मधुर, वाणीमें बोले ॥३॥

हे सुमन्त्रजी ! आप श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीविश्वामित्रजी दोनों महामुनियोंसे आज्ञा लेकर श्रीकुशध्वज महाराजके भवनको चलनेके लिये अपना दल तैयार कीजिये ॥४॥

भगवान् शिवजी बोले:—हे पार्वती ! श्रीसुमन्त्रजी जाकर क्षणमात्रमें सुसज्जित करके दोनों मुनियोंसे शोभायमान उस समाजको सुखपूर्वक श्रीचक्रवर्तीजीको दिखाया ॥५॥

आये हुये उन मुनिवरोंको देखकर, श्रीविदेहजी महाराजके सहित श्रीचक्रवर्तीजी महाराजने आदर-पूर्वक उठकर उन्हें प्रणाम किया ॥६॥

तयोरारूढ़योर्भूपः स्यन्दनं दिव्यतेजसम् । समादिष्टस्ततस्ताभ्यां निजयानं समारुहत् ॥७॥
अन्ये सर्वेऽपि यानानि स्वेप्सितानि शुभानि च । आरुरुहुर्मुदा युक्ता दिव्याम्वरविभूषणाः ॥८॥
वाद्यानि युगपन्नेदुर्विविधानि कलस्वनम् । प्रस्थीयमान उर्वीशे मनोज्ञं सर्वदेहिनाम् ॥९॥
अन्वगाद्राजयानं तन्मुनियानं रविप्रभम् । आजगाम क्षणेनैव श्रीविदेहोपमन्दिरम् ॥१०॥
वराः स्वलङ्कृता राज्ञ्या सूचितया नृपेण च । आहूय सिद्धेर्भवनात्कृतोत्थापनभोजनाः ॥११॥
पुत्रीः शीघ्रं समादाय कुशध्वजगृहं व्रज । इत्याज्ञाप्य नृपो राज्ञीं वरान्निन्ये नृपान्तिकम् ॥१२॥
वरयाने ततो रामं संनिवेश्यानुजैर्युतम् । आजगामालयद्वारं कुशकेतोर्मनोहरम् ॥१३॥
पुत्रिकाभिर्युता राज्ञी सर्वाभिः स्वालिभिः सह । बधूभिः सहिता पूर्वमाययौ तन्निवेशनम् ॥१४॥
श्रीसुदर्शनया तर्हि महाराज्ञ्या परीतया । द्वारमालीभिरभ्येत्य वरा नीराजितास्तया ॥१५॥
सत्कृतिं विधिना कृत्वा तान्निनायात्ममन्दिरम् । तदोत्सवेन महता महाराज्ञ्योपशोभितान् ॥१६॥

उन दोनोंके दिव्य तेजोमय रथपर विराजमान हो जाने पर, श्रीदशरथजी महाराज उनकी आज्ञा पाकर अपने दिव्य रथपर सवार हुये ॥७॥

अन्य सभी लोग दिव्य वस्त्र भूषणोंको धारण करके, प्रसन्नता-पूर्वक अपनी इच्छानुसार मनोहर रथों पर आसीन हुये ॥८॥

श्रीदशरथजी महाराजके जनवासे से श्रीकुशध्वज महाराजके भवनको प्रस्थान करते समय प्राणियोंके मुग्धकारी, धीमी, मीठी ध्वनिसे अनेक प्रकारके सभी बाजे एकही साथ बजने लगे ॥९॥

मुनिरथके पीछे श्रीचक्रवर्तीजीका सूर्यके समान रथ चला और थोड़ी देरमें ही वह श्रीमिथिलेशजीके राज-भवनके समीप जा पहुँचा ॥१०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीसुनयना अम्बाजीने उत्थापन भोग पाये चारो दूलह सरकारोंको श्रीसिद्धिजीके भवनसे बुलाकर, भली प्रकारसे सजाया ॥११॥

"आप पुत्रियोंको लेकर शीघ्र श्रीकुशध्वज भवन जाइये" यह आज्ञा महारानीजीको देकर श्रीमिथिलेशजी महाराज वरोंको लेकर, श्रीदशरथजी महाराजके पास गये ॥१२॥

वहाँसे वरवाले रथपर भाइयों सहित श्रीरामदूलहसरकारको बिठाकर, श्रीकुशध्वजमहाराजके मनोहर भवन-द्वार पर आगये ॥१३॥ श्रीसुनयनामहारानीजी अपनी पुत्रियों, बहुओं तथा सभी सखियोंके सहित उनसे पहिले ही श्रीकुशध्वज भवन जा पहुँची ॥१४॥

तब श्रीसुनयनामहारानीजीके समेत श्रीसुदर्शनाअम्बाजीने सखियोंके सहित द्वार पर आकर हर्ष-पूर्वक वरोंकी आरतीकी ॥१५॥

पुनः वे विधि-पूर्वक सत्कार करके महान् उत्सवके साथ, महारानी श्रीसुनयना अम्बाजीसे सुशोभित, उन वरोंको अपने राज-भवनमेंले गयीं ॥१६॥

मुदा सुभद्रया दोर्भ्यां समालिङ्ग्य पुनः पुनः। स्वासनेषु महार्हेषु सादरं ते निवेशिताः ॥१७॥
कोशलेन्द्रो विदेहेन ससमाजो महानसे। समानीय सुसत्कृत्या मुनिभ्यां स्थापितोऽन्वितः ॥१८॥
प्रविश्यान्तः पुरं मुख्यं तानवेक्ष्याद्भुतान् वरान्। राजा कुशध्वजो हृष्टो विदेहेन समन्वितः॥१९॥
पुनस्तस्याज्ञया शीघ्रं सूदानांद्विशतं प्रिये!। भोजयितुं महीनाथं मुदा तत्र समुद्यतम् ॥२०॥
स्वासनेषु महार्हेषु संनिवेश्य मुदान्विताः। कल्पयित्वा शुभाः पङ्क्तीः सर्वेषां च पृथक्पृथक् ॥२१॥
सौवर्णशतपात्रेषु निहितानि कृतत्वराः। नानाविधानि भोज्यानि तेभ्यस्ते पर्यवेषयम् ॥२२॥
प्रार्थितो मिथिलेन्द्रेण कोशलेन्द्रोऽनुजैर्युतः। चकार भोजनं प्रीत्या षड्रसं सचतुर्विधम् ॥२३॥
एवमेव महाराज्ञ्या समेता श्रीसुदर्शना। वरान्संतर्पयामास लालयन्ती सुधाशनैः ॥२४॥
पुत्रिकाः पुनरासाद्य प्रणयेन परीतया। तया संतर्पिता भोज्यैश्चतुर्भिः षड्रसान्वितैः ॥२५॥

श्रीशिव उवाच।

अन्तः सीताऽनुजाभिश्च वही रामोऽनुजैर्युतः। मुखचन्द्ररुचा ऽऽनन्दसिन्धुमुच्छालयत्यसौ ॥२६॥

तब श्रीसुभद्रा अम्बाजीने वरोंको बारम्वार हृदयसे लगाकर आदर-पूर्वक उन्हें अपने दोनों हाथोंसे मोद पूर्वक अत्युत्तम सिंहासन पर विराजमान किया ॥१७॥

उधर श्रीविदेहजी महाराजने सम्पूर्ण समाज सहित श्रीवशिष्ठजी व श्रीविश्वामित्रजीसे युक्त श्रीदशरथजी महाराजको बड़े सत्कार-पूर्वक भोजन भवनमें लाकर विराजमान किया ॥१८॥

तब श्रीविदेह महाराजके सहित श्रीकुशध्वज महाराज, अपने मुख्य अन्तःपुरमें जाकर उन बिलक्षण वरोंका दर्शन करके हर्षित हो गये ॥१९॥ उनकी आज्ञासे भोजन भवनमें दो हजार रसोइयाँ श्रीदशरथजी महाराजको भोजन करानेके लिये सहर्ष तत्पर हुये ॥२०॥

सभीके लिये अलग-अलग पङ्क्तियाँ बनाकर सभीको अत्युत्तम आसनों पर विराजमान करके वे बड़े आनन्दको प्राप्त हुये ॥२१॥ उन रसोइयोंने सैकड़ों सुवर्णके पात्रोंमें रखे हुये, अनेक प्रकार के भोजनोंको शीघ्रता पूर्वक उन्हें परोस दिया ॥२२॥

श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी प्रार्थनासे श्रीदशरथजीमहाराजने अपने भाइयों सहित प्रेम-पूर्वक षट्रसोंसे युक्त, चारो प्रकारका भोजन किया ॥२३॥

इसी प्रकार श्रीसुनयनामहारानीजूके समेत, श्रीसुदर्शनाअम्बाजी प्यार करती हुई, अमृततुल्य हितकारी भोजनोंके द्वारा चारो वरोंको तृप्त किया ॥२४॥

तत्पश्चात् पुत्रियोंके पास जाकर प्रेमयुक्ता उन श्रीसुदर्शनाअम्बाजीने चारो प्रकारके षड्रस भोजनों द्वारा उन्हें तृप्त किया ॥२५॥ भगवान् शिवजी बोलेः—हे पार्वती! उस समय भीतर (माताओंकी समाजमें) अपनी बहिनों समेत श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी और बाहर (पुरुष मण्डल) में अपने भाइयों सहित श्रीदशरथनन्दन प्यारे श्रीरामभद्रजू अपने मुखचन्द्रकी कान्तिसे आनन्द-सागरको उछालने लगे ॥२६॥

या हि यत्र गता तत्र निमग्नैव बभूव ह । वच्मि किं गिरिजे ! तुभ्यं सुखं तद्वागगोचरम् ॥२७॥
प्रदाय वीटिकास्ताभ्यो वरेभ्यश्च सुधामयीः । नागवल्ल्याः स्वरचिताः प्रेममग्ना सुदर्शना ॥२८॥
ताम्बूलवीटिकाभिश्च सुमाल्यैर्दिव्यसौरभैः । सत्कृते स्वसमाजेन सुखं राजनि राजिते ॥२९॥
पुत्रिकानां सकाशे च वराणामन्तिके तथा । कुशध्वजो महाराजो धावन्नेव सुखाप्लुतः ॥३०॥
भ्रातुरन्तः पुरं गत्वा स शीघ्रं मिथिलेश्वरः । सेव्यमानो मुदा तेन वराणां दर्शनाशया ॥३१॥
संप्रहृष्टा समालोक्य लालयित्वा शुभाशिषा । तान्नियोज्य स धर्मात्मा प्रणतान् भूपतिं ययौ ॥३२॥
सप्रियांश्च वरांस्तर्हि सुभद्रा विश्वदृङ्मुषः । सिंहासनेषु हैमेषु स्थापयामास पङ्क्तितः ॥३३॥
पुनर्नीराजयाञ्चक्रे सखीभिः प्रेमकातरा । श्रीसुदर्शनया सार्द्धं गानवाद्यैः सुशोभितम् ॥३४॥
पुष्पवृष्टिमनल्पां च संविधाय पुनः पुनः । वस्त्राभरणरत्नानि न तृप्ति वितरन्त्यगात् ॥३५॥
उपहारैरसङ्ख्यैश्च सत्कृतः परया मुदा । अथासौ श्रीमहाराजः प्रहृष्टः कुशकेतुना ॥३६॥

इस हेतु उस समय जो भीतर या बाहर जहाँभी पहुँची, वहीं वह आनन्द सागरमें डूब गयी हे श्रीगिरिराजकुमारीजी ! मैं आपसे उस सुखका क्या वर्णन करूँ ? उसे न मन मनन ही कर सकता है न वाणी वर्णन ॥२७॥

श्रीसुदर्शना अम्बाजी अपने हाथके बनाये हुये पानके अमृतमय वीरोंको उन वर सरकारों को प्रदान करके प्रेममें डूब गयीं ॥२८॥

पान तथा सुगन्ध मय पुष्प मालाओं द्वारा समाज संयुक्त सत्कृत होकर, श्रीचक्रवर्तीजी महाराजके सुखपूर्वक विराज जाने पर, श्रीकुशध्वज महाराजजी उनके पास तथा वरोंके पास इधर-उधर दौड़ते हुये सुखमें डूब गये, क्योंकि दोनों ओर ही आनन्द सागर उछाला जा रहा था ॥२९॥३०॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज अपने भाई श्रीकुशध्वज महाराजसे सेवित होते हुये वरोंको देखनेके लिये उनके अन्तःपुरमें पधारे ॥३१॥

वहाँ वरोंका दर्शन करके, तथा उन प्रणाम कारियोंको शुभाशीर्वाद प्रदान करके वे अत्यन्त हर्षित हो श्रीचक्रवर्तीजीके पास आये ॥३२॥

उस समय श्रीसुभद्रा महारानीजीने उन विश्वविलोचन-चोर, चारों वरोंको दुलहिनोंके सहित एक पंक्तिमें सोनेके सिंहासनों पर विराजमान किया ॥३३॥

पुनः प्रेम विह्वल हो उन्होंने श्रीसुदर्शना महारानीके साथ, सखियोंके सहित चारो युगल जोड़ियोंकी गान बजानसे सुशोभित आरतीकी ॥३४॥

तत्पश्चात् बारम्बार पुष्पोंकी पर्याप्त वर्षा करके श्रीसुभद्रा अम्बाजी वस्त्र, भूषण, रत्नोंको लुटानेसे तृप्त नहीं हो रही थीं ॥३५॥ उधर श्रीकुशध्वज महाराजने असङ्ख्यों उपहारोंके द्वारा बड़े ही प्रेम-पूर्वक श्रीचक्रवर्तीजी महाराजका सत्कार किया ॥३६॥

सायं समयमालोक्य नित्यकृत्यविधित्सया । जनावासं नृपो गन्तुं स्वाभिलाषं न्यवेदयत् ॥३७॥
कुशध्वजं समातोष्य तेन साकं नृपाधिपम् । जनावासं विदेहेन्द्रो निनायाशु महाप्रभम् ॥३८॥
ततः सुनयना राज्ञी कान्तिमत्या समन्विता । सुदर्शनां सुभद्रां च परितोष्य स्वभाषितैः ॥३९॥
प्रेषयित्वा सुताःपूर्वं बधूभिः परिषेविताः । रक्षिकाणां सखीनां च सहस्त्रैः परिरक्षिताः ॥४०॥
स्वालिभिर्दयिताभ्यां च कुशकेतोः समन्विता । राज्ञी यानं समारोप्य वरान्स्वालयमानयत् ॥४१॥
इत्थं नित्यं जनकनृपतेर्बन्धुसन्मन्दिरेषु गत्वा साकं क्वचिदवरजै राजराजं विनैव ।
पित्रा साकं क्वचिदवरजैः कुर्वतो दिव्यकेलिं मुद्वृद्धयै वो भवतु शुभदा दृष्टिरुर्वीशसूनोः ॥४२॥
सिद्धयादीनामनुजलसतो वः सदा सप्रियस्य रामस्यास्तु प्रथितयशसश्चिन्तनं चित्तशुद्धयै ।
श्वश्रूणां वै निखिलमिथिलावासिनां सज्जनानां नित्यं वेशमस्वपि विहरतः कुर्वतो भावसिद्धिम् ॥४३॥

सायंकालका समय देखकर अपने नित्य कृत्यको पूर्ण करनेके लिये, श्रीचक्रवर्तीजीने जनवास में जानेके लिये अपनी इच्छा निवेदन की ॥३७॥

श्रीविदेहजी महाराज श्रीकुशध्वज महाराजको भली प्रकारसे सांत्वना देकर उनके सहित श्रीदशरथजी महाराजको शीघ्र परम प्रकाश मय, उस जनवास भवनमें ले गये ॥३८॥

तब श्रीकान्तिमतीजीके समेत श्रीसुनयना अम्बाजी श्रीसुदर्शनाजी व श्रीसुभद्रा अम्बाजीको अपने आश्वासन-पूर्ण वचनोंसे परितोष प्रदान करके, हजारों रक्षा करने वाली सखियोंसे सुरक्षित तथा श्रीसिद्धिजी आदि बहुओंसे सब प्रकार सेवित हुई अपनी श्रीललीजूको पहिले भेजकर, अपनी सखियोंके सहित, श्रीकुशध्वज-वल्लभा श्रीसुदर्शना अम्बाजी तथा सुभद्रा अम्बाजी सहित श्रीसुनयना महारानीजी रथपर बिठाकर वरोंको अपने भवनमें ले आईं ॥३९॥४०॥४१॥

इस प्रकार भक्तोंके आनन्दकी वृद्धिके लिये कभी अपने पिताजीके विना ही केवल छोटे भाइयोंके साथ, कभी अपने पिताजी व भाइयोंके सहित, श्रीजनकजी महाराजके भाइयोंके उत्तम भवनोंमें जाकर, दिव्य (शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आदिकी आसक्तिसे रहित) लीला करते हुये श्रीचक्रवर्तीकुमारजीकी कृपा दृष्टि आप सभी भक्तोंको मङ्गल प्रदान करें ॥४२॥

अपने छोटे भाइयोंके सहित श्रीसिद्धिजी आदि सभी सालियों तथा श्रीसुनयना अम्बाजी आदि सभी सासुओंके ही कौन कहे ? सम्पूर्ण मिथिला-निवासी सज्जनोंके भवनोंमें नित्य विहार व उनके भावकी पूर्त्ति करते हुये, वेद शास्त्रोंमें प्रसिद्ध कीर्त्ति वाले, प्रिया श्रीजनकराजदुलारीजू सहित श्रीरामभद्रजूका चिन्तन, आप सभीके चित्तमें निर्विकारिता प्रदान करनेवाला होवे अर्थात् उनके चिन्तनसे आप लोगोंके चित्तके काम-क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, तथा शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध आदिकी आसक्ति रूप सभी प्रकारके विकार नष्ट हो जाँय ॥४३॥

इति चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

—❀❀❀—

अथ पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ।

श्रीजनकजीको मूर्तिपञ्चक रूपमें सदा अन्तःपुर रहनेके लिए श्रीरामजीका आश्वासन तथा श्रीअयोध्या-आगमन ।

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच ।

लीलामभीप्सितां श्रुत्वा समाधिस्थे शिवेऽप्युमा । तदानन्दातिरेकेण साऽन्तर्वृत्तिरभूत्क्षणात् ॥१॥
ततस्तौ च परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः । ब्रह्मपुत्रा महात्मानः कृतार्था जग्मुरीप्सितम् ॥२॥
तां समासेन ते लीलां वदन् कलिमलापहाम् । अवाच्यानन्दमग्नोऽहं बहुनोक्तेन किं प्रिये ! ॥३॥

श्रीसूत उवाच ।

कात्यायनी महाभागा निमज्जन्ती सुखार्णवे । कृतार्थिताऽस्मि भवता मुनिमुक्त्वेत्यभूदवाक् ॥४॥
पुनश्चित्तं समाधाय मैथिलीध्यानतत्परा । जगौ कलं गिरा माध्व्या बाष्पसंरुद्धकण्ठया ॥५॥

श्रीकात्यायन्युवाच ।

जाताऽऽह्लादकविग्रहा निमिकुले साकेतधामेश्वरी
भित्त्वा भूमितलं परात्परतमा सिंहासनस्था शुभा ।
नानोपायनपाणिभिश्च भुवि या संसेव्यमानालिभि-
र्विद्युत्कोटिनिभद्युतिर्विधुमुखी तस्यै सदा मङ्गलम् ॥६॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी बोलेः—हे कात्यानीजी ! अपनी इच्छित लीलाको श्रवण करके भगवान् शिवजीके समाधिस्थ होजाने पर आनन्दकी बाढ़से, भगवती श्रीपार्वतीजी भी क्षणमात्रमें ध्यानस्थ हो गयीं ॥१॥ पश्चात् सनकादिक चारों ब्रह्म-पुत्रअपने मन, बुद्धि, चित्त आदिमें एक उन्हीं विवाह-वेष धारी श्रीसीतारामजीको विराजमान करके कृतकृत्य हो दोनों श्रीगौरीशङ्कर भगवान्‌को परिक्रमा पूर्वक बारम्बार नमस्कार करके अपने इच्छित स्थानको चले गये ॥२॥

हे प्रिये ! उसी कलि-मल (काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग,-द्वेष्य, ईर्ष्या, पाखण्ड) नाशिनी श्रीजनकराजनन्दिनीजूकी लीलाको संक्षेपसे वर्णन करता हुआ मैं अवर्णनीय आनन्द (भगवदानन्द) में डूब गया हूँ...! इससे अधिक और कहने की क्या आवश्यकता...? ॥३॥

श्रीसूतजी बोलेः—हे श्रीशौनकजी ! महाभाग्य शालिनी श्रीकात्यायनीजी सुख-सागरमें डूबती हुई विवाह वेषधारी प्रभु सीतारामजीके स्वरूपका मनन करते हुये श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजसे "हमें आपने कृतार्थ कर दिया", ऐसा कहकर वे प्रेमावेशके कारण रूद्धकण्ठ हो मौन होगयीं ॥४॥

पुनः चित्तको सावधान करके श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके ध्यानमें तल्लीन हो, कण्ठमें रुकी हुई अपनी मीठी वाणी द्वारा वे धीमे स्वरमें बोलीं ॥५॥

जिनका श्रीमुखारविन्द पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादकारी है तथा जिनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति करोड़ों विजलीके समान है, जो अनेक प्रकारकी भेंटोंको हाथोंमें लिये हुई सखियोंसे सेवित होती हुई आह्लादकारक स्वरूपसे पृथ्वीको भेदनकर, सिंहासन पर बैठी हुई, निमिकुलमें प्रकट हुई हैं, उन सबसे बड़ी मङ्गल-स्वरूपा श्रीसाकेतधामेश्वरी श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका सदाही मङ्गल हो॥६॥

या नेतीति निगद्यते रसमयी वेदैरशेषेश्वरी
यस्याः पादसरोजजा श्रुतिनुता शक्तिः स्वतः प्राकृता ।
उत्पाद्येदमवत्यथास्ति सकलं सा सद्गतिर्गीयते
लोके श्रीजनकात्मजेति मुनिभिस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥७॥

सर्वा सर्वगतिर्ध्रुवा शरणदा सर्वांशिनी सर्वगा
सर्वाभीष्टदपादारविन्दचरणा सर्वं ययेदं ततम् ।
सा सर्वेश्वरनायकस्य दयिता सीरध्वजस्याजिरे
क्रीडत्यात्मसखीसमूहसहिता तस्यै सदा मङ्गलम् ॥८॥

यस्याः सागरसीकरांशनिभया शक्त्या सुदुर्बोधया
ब्रह्माण्डौघनिवासिनः प्रतिपलं चेष्टामयन्तेऽखिलाम् ।
लक्ष्यन्ते तु विना मृता इव तया सा वै गृहीत्वाङ्गुलीं
मातुः स्निग्धतया प्रयाति मधुरं तस्यै सदा मङ्गलम् ॥९॥

जिन सर्वेश्वरी, रसस्वरूपाजीको वेद भगवान् नेति नेति कहकर गान करते हैं, तथा जिनके श्रीचरणकमलसे उत्पन्न हुई स्वाभाविक शक्ति वेदोंसे स्तुत, सम्पूर्ण विश्व को स्वयं उत्पन्न करके पालन व संहार करती है, मुनिजन सन्तोंकी रक्षा करनेवाली उन्हीं श्रीसाकेतविहारिणीजी को लोकमें श्रीजनकराजनन्दिनीजी कहते हैं, अतः उन अनन्त ब्रह्माण्डनायिकाजूका सदा ही मङ्गल हो ॥७॥

जो सर्वस्वरूपा, सभीकी निवासस्थान और सभीको रक्षा प्रदान करनेवाली हैं, जिनके अंश से अनन्त शक्तियोंकी उत्पत्ति होती है, जो अपने निराकार स्वरूपसे सर्वत्र उपस्थित हैं तथा जिनके श्रीचरणकमल सभी प्रकारके अभीष्टको प्रदान करने वाले हैं, जिन्होंने अपने सर्वव्यापक ब्रह्म-स्वरूपसे इस विश्वको व्याप्त कर रखा है, वे समस्त इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्र तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिकोंको पृथक्-पृथक् लोकहितकर कार्योंमें नियुक्त करनेवाले साकेताधीश प्रभु श्रीरामजीकी प्राण वल्लभाजू अपने सखीवृन्दोंके सहित श्रीमिथिलेशजी महाराजके आँगनमें खेल रही हैं, उन अनुपम भक्तवत्सला, दयासागराजूका सदा ही मङ्गल हो ॥८॥

जिनके सागरके सीकर अंशके समान अत्यल्प किन्तु समझमें न आने योग्य शक्तिके द्वारा, अनन्त ब्रह्माण्डोंमें निवास करनेवाले प्राणी प्रत्येक पलमें सभी प्रकारकी चेष्टाको प्राप्त करते हैं और उस शक्तिके बिना वे मृतक तुल्य ही दृष्टिगोचर होते हैं, वे शक्ति-सागरा श्रीजनकराज-दुलारीजी अपनी श्रीअम्बाजीके हाथकी अङ्गुली पकड़कर फिसलती हुई चलती हैं, उन अद्भुत भक्त-सुखद-लीला विस्तारिणी श्रीकिशोरीजीका मङ्गल हो ॥९॥

या धीचित्तमनोगिरामविषया सर्वान्तरात्मा शिवा
बेधोविष्णुशिवाद्यलभ्यचरणा वेदान्तवेद्या परा ।
आविर्भूय विदेहवंश उदिते सीरध्वजस्याङ्गणे
खेलत्यात्मसखीसमूहसहिता तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१०॥

दृष्ट्वा यां चपलासहस्रनिचया नष्टत्विषो भान्ति वै
यस्या वीक्ष्य सहिष्णुतां क्षितिरियं मुग्धाऽचलत्वं गता ।
चन्द्रोऽभूद्रजनीचरः क्षयरुजं प्राप्तश्च चिन्ताकुलो
यस्याः प्रेक्ष्य मृदुस्मितास्यममलं तस्यै सदा मङ्गलम् ॥११॥

यस्या भीरपि साध्वसाच्च सभया दृष्ट्वैव सा चक्षुषा
दूराद्वानरचित्रमाशु भयतः क्रोडं समाश्लिष्यति ।
सर्वानन्दकरीर्विचित्ररुचिरा लीलाः करोत्यन्वहं
भाव्येयं मिथिला कृता ननु यया तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१२॥

जिन्हें चित्त चिन्तन नहीं कर सकता, नेत्र देख नहीं सकते, बुद्धि निश्चय नहीं कर सकती, वाणी जिनका वर्णन नहीं कर सकती, जो सभी प्राणियोंके मन, बुद्धि चित्त व अहङ्कारमें निवास करने वाली, मङ्गलस्वरूपा तथा सबसे परे हैं, जिनकी महिमाको ब्रह्मा विष्णु महेशभी नहीं जान सकते, जिनके स्वरूपका कुछ ज्ञान वेदान्तके द्वारा प्राप्त किया जासकता है, वे उदय हुये श्रीविदेह वंशमें श्रीसीरध्वज महाराजके प्राङ्गणमें अपनी सखी वृन्दके साथ खेलती हैं, उन विलक्षण लीला वाली श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१०॥

जिनका दर्शन करके विजलीकी हजारों राशियाँ प्रकाशहीनसी प्रतीत होती हैं, पृथ्वी देवी जिनकी सहन शक्तिको देखकर मुग्ध हो अचलताको प्राप्त हो गयी, अर्थात् प्रेम मूर्च्छाको प्राप्त है, जिनके मन्दमुस्कान युक्त श्रीमुखारविन्दका दर्शन करके चन्द्रदेव अपनी मान-हानि चिन्तासे व्याकुल हो क्षयरोग ग्रस्त रजनीचर बन गये हैं अर्थात् रात्रिमें ही विचरते हैं, उन अद्भुत तेज व कान्तिमयी श्रीजनकराजदुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥११॥

जिनके भयसे भयभी भय मानता है, वे दूरसे बानरके चित्रको देखकर भयके कारण अपनी श्रीअम्बाजीकी गोदमें झटसे लिपट जाती हैं, इस प्रकार सभीको आनन्द-प्रदान करने वाली आश्चर्य मयी लीलाओंको जो नित्यही करती हैं तथा जिन्होंने अपने बालविहारसे श्रीमिथिलाजी को ध्यान करने योग्य बना दिया है, उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका सदाही मङ्गल हो ॥१२॥

सर्वज्ञा श्रुतिवेद्यलेशमहिमा ह्याचार्यया पाठ्यते
या वै श्रीमिथिलानिवासितनया अध्यापयद्वैं स्वयम् ।
लोकानां नयनोत्सवात्मसुगुणैर्या संबभूवाधिका
कारुण्यामृतसागरा रसनिधिस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१३॥

दृष्ट्वा स्वप्रतिविम्बमेव चकिता त्वं कासि कासीति या
जल्पन्ती सुखवर्षिणी सुमधुरं हस्ताज्जिघृक्षुः क्वचित् ।
मिष्टान्नं प्रददाति हर्षसहिता तस्मै कराभ्यां स्वयं
तामुत्सृज्य तनोति केलिमपरां तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१४॥

नीत्वा सर्वसखीसमूहममलं श्रीकञ्चनाख्ये वने
नानावर्णलताद्रुमालिसहिते नानानिकुञ्जावृते ।
नानाचारुमनोहरा रसमयीर्लीलाः करोत्यन्वहं
यां जानन्ति न तत्त्वतः श्रुतिविदस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१५॥

जो अनन्त कोटि ब्राह्मण्डोंमें स्थित सभी जीवोंके मन, बुद्धि, चित्त आदिकी तीनों कालकी सभी बातोंका व उनके हित-अहितका पूर्ण ज्ञान रखती हैं, वेदोंके द्वारा जिनकी किञ्चित मात्र महिमाका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उन्हें गुरुआनीजी विद्या पढ़ाती हैं, जो श्रीमिथिला-निवासी कन्याओंको स्वयं पढ़ानेकी कृपा करती हैं तथा जो अपने सर्व सुखद, हितकर गुणोंके द्वारा सभीके नेत्रोंको उत्सवके समान विशेष सुख देनेवाली, करुणारूपी अमृतकी समुद्र, रस (भगवान् श्रीरामजी) की निधि (खजाना) स्वरूपा हैं, शिक्षाका आदर्श देनेवाली उन श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥१३॥

जो मणिमय खम्भों आदिमें अपने प्रतिविम्ब(मूर्त्ति) को देखकर चकित हो "तुम कौन हो? हे तुम कौन हो?" इस प्रकार बड़े प्रेमसे कहती हुई उसको पकड़नेकी इच्छुक हो उसे हर्ष-पूर्वक अपने दोनों हाथोंसे मिष्टान्न प्रदान करती हैं, पुनः अपनी उस केलिको छोड़कर दूसरी लीलाका विस्तार करती हैं, उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१४॥

जिन्हें वस्तुतः वेद-वेत्ता भी नहीं जानते, वही अनेक वर्णकी लता वृक्ष भँवरोंसे युक्त विविध प्रकारके लतागृहोंसे घिरे हुये श्रीकञ्चनवनमें, विशुद्ध भाव वाले अपने सखीवृन्दको ले जाकर जो (वहाँ) अनेक प्रकारकी सुन्दर, मनोहर भगवत्-सम्बन्धी लीलाओंको नित्य किया करती हैं, उन श्रीमिथिलेशजीकी राजदुलारीजू का सदा ही मङ्गल हो ॥१५॥

मञ्जुस्निग्धसुकुञ्चितासितकचा कोटीन्दुतुल्यानना
भाले सुन्दरचन्द्रिका मणिमयी बालार्कपुञ्जप्रभा ।
फुल्लाम्भोजदलार्द्रचारुनयना मन्दस्मिता शोभना
नाना रत्नसुकुण्डला जयति या तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१६॥

सुभ्रूर्बिम्बफलाधरा च सुदती रत्नाम्बुजस्रग्विणी
रक्ताम्भोरुहहस्तपादसुतला चित्राम्बरा बालिका ।
नाना भूषणभूषिता सुललिता भालाङ्कसंशोधिका
भावज्ञाऽखिलवन्दिता जयति या तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१७॥

आदाय स्वयमेव कञ्जकरयोर्मिष्टान्नपात्रं क्वचित्
सर्वांस्तर्पयति प्रदाय विपुलं यस्या यदेवेप्सितम् ।
नीत्वेत्थं नवकन्दुकं सुललितं साकं सखीभिर्मुदा
या क्रीडत्यखिलेश्वरी जनकजा तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१८॥

जिनके मनोहर, चिकने, अत्यन्त घुंघुराले, काले केश हैं, करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश आह्लाद वर्द्धक प्रकाशमय जिनका श्रीमुख है, जिनके मस्तक पर उदय कालके सूर्य-पुञ्जके समान प्रकाश वाली मणियोंकी चन्द्रिका है, खिले कमल-दलके सदृश जिनके सुन्दर नेत्र और मन्द मुस्कान है एवं जो मङ्गलकारिणी नाना प्रकारके रत्नमय सुन्दर कुण्डलोंको धारण किये हुई सर्वोत्कर्षको प्राप्त हैं, उन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१६॥

जो भक्तोंके भालमें लिखे हुये प्रतिकूल दुःखकर कुअङ्कोंको सुधार देती है अर्थात् सुखकर व अनुकूल बना देती हैं। जो प्राणी मात्रके मन, बुद्धि, चित्तमें समाई हुई होनेके कारण सभीके सब भावोंको जानती हैं, वात्सल्य भावकी पराकाष्ठा पूर्वक विलक्षण उदारताके कारण अखण्ड देहधारी (भगवान् श्रीरामजी भी) जिनको नमस्कार करते हैं, जिनकी भौंहे कामदेवके धनुषके समान सुन्दर हैं, जिनके अधर व ओष्ठ कुन्दरू फलके सदृश लाल-लाल हैं, जिनकी दन्त पंक्ति अनारके दानोंके समान सुन्दर है, जो कमलपुष्प व रत्नोंकी मालाओंको धारण किये हैं, लाल कमलके समान जिनके हाथ पैरोंके तलवोंकी लालिमा है, जिनके वस्त्र विचित्र वर्णके हैं, जो बाल्यावस्थासे युक्त अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित अत्यन्त सुन्दरी, सर्वोत्कर्षको प्राप्त हो रही हैं, उन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥१७॥

जो सर्वेश्वरी श्रीजनकराजदुलारीजी कभी अपने कर कमलोंमें स्वयं मिष्टान्न-पात्र लेकर जिसको जो अभीष्ट होता है उसको वही विशेष मात्रामें देकर सभीको तृप्त करती हैं, उसी प्रकार जो नवीन, अत्यन्त मनोहर गेंदको लेकर अपनी सखियोंके साथ आनन्दपूर्वक खेलती हैं, उन मनसुखद-लीला विस्तारिणी श्रीजनकराजदुलारीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥१८॥

गत्वा श्रीकमलां तु या सुखनिधिः पश्यन्मनोह्लादिनी
तस्या क्रीडति सा सुखं सुनयनाहृत्पद्मभानुप्रभा ।
सिद्धानामपि बुद्धिवागविषया सर्वादिजा स्वालिभि-
र्भक्तैर्ग्रस्तसुकोमलार्द्रहृदया तस्यै सदा मङ्गलम् ॥१६॥

गौराङ्गी मधुरस्मितार्द्रनयना सिंहासनस्था क्वचि
न्नाना पूजनवस्तुभिः सहचरी वृन्दैः समभ्यर्च्यते ।
नौर्लीलां च कदाचिदेव कुरुते ता ह्लादयन्ती भृशं
नृत्यं पश्यति या कदाचिदथ वै तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२०॥

या वै दीनहिता पवित्रचरिता कारुण्यवारांनिधिः
सौशील्यादिसमस्तदिव्यसुगुणैः संभूषिताऽयोनिजा ।
यस्याः क्षान्तिरशेषलोकविदिता गात्रेषु चावेक्षिता
ब्रह्माण्डाः परमाणवो रसनिधेस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२१॥

जो सभी सुखोंकी भण्डार, दर्शकोंके मनको आह्लादित करने वाली तथा श्रीसुनयनाअम्बाजी के हृदय कमलको खिलानेके लिये जो सूर्यके प्रकाशके समान हैं, एवं सिद्धोंका मन भी जिनके वास्तविक स्वरूपका यथार्थ मनन नहीं कर सकता, वाणी वर्णन नहीं कर सकती, जो साकार रूपमें सबसे पहिले प्रकट हुई हैं, तथा जिनका अत्यन्त कोमल हृदय भक्तोंके द्वारा पकड़ा हुआ है, उन श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥१६॥

जो गौर वर्ण, मन्दमुस्कान और दयासे द्रवित नेत्र कमल वाली श्रीकिशोरीजी, कभी सिंहासन पर विराजमान होकर अपनी सहचरियोंसे अनेक प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंके द्वारा षोडशोपचारसे पूजित होती हैं, कभी उन सखियोंको अत्यन्त आह्लाद युक्त करती हुई नौका-लीला करती हैं, कभी उनका नृत्य देखती है, उन दयामयी श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥२०॥

सम्पूर्ण रसोंकी भण्डार स्वरूपा जिन श्रीकिशोरीजीके अङ्गोंमें ब्रह्माण्ड समूह परमाणुओंके समान अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि-गोचर होते हैं, जिनकी क्षमा समस्त लोकोंमें विख्यात हैं, जो बिना और किसी कारणोंके केवल अपनी इच्छा मात्रसे प्रकट, सौशील्य आदि समस्त मङ्गलकारी गुणोंसे युक्त व पवित्र यश वाली हैं, जिनकी दयालुता समुद्रके समान अथाह और कीर्ति अत्यन्त पवित्र है, तथा जो दीन (सम्पूर्ण साधनोंके अभिमानसे रहित) प्राणियोंका वास्तविक हित करने वाली हैं, उन श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजीका सदा ही मङ्गल हो ॥२१॥

आलीनां निजपादपङ्कजजुषां सौभाग्यलक्ष्म्यैकया
देवानां वरयोषितां बहुविधं दर्पं जहाराञ्जसा ।
या श्रीरामवरेण शोभितवती वैवाहभूषान्विता
नानारत्नमयासने छविनिधिस्तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२२॥

विश्यानन्तगुणाऽप्रमेयचरिता निःसीमसत्त्वं भवा
स्वाङ्गोदाररुचा स्वभर्तुररसः कौतूहलोत्पादिका ।
रामस्याखिलचित्तहारिवपुषः शोभामहावारिधे-
र्नित्यं याऽऽश्रितभावपूर्त्तिनिरता तस्यै सदा मङ्गलम् ॥२३॥

श्रीन्दुभालदयिताद्यलङ्कृताऽरालकेशकमनीयदर्शना ।
चन्द्रिकाञ्चितमनोज्ञमस्तका प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२४॥
सीरकेतुसुखधिः शुचिस्मिता फुल्लनीलजलजायतेक्षणा ।
कुन्तलाकुलकपोलशोभिता प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२५॥

जिन छवि-निधि (सौन्दर्यकी भण्डार-स्वरूपा) जी ने विवाह वेषसे युक्त हो श्रीरामदूलह सरकारके सहित अनेक प्रकारके रत्न जटित सिंहासन पर विराजी हुई, अपने श्रीचरणकमलकी सेविका सखियोंकी उपमा रहित सौभाग्य रूपी लक्ष्मीके द्वारा, देवताओंकी उत्तम स्त्रियोंके गुण-रूपादिक अनेक प्रकारके अभिमानको अनायास ही हरण कर लिया है, उन श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥२२॥

जो वात्सल्य सौशील्य, सौलभ्य, सौहार्द, सौजन्य, कारुण्य, माधुर्य्य, सर्वैश्वर्य आदि अनन्त अप्राकृत गुणोंसे युक्त असङ्ख्य चरितों वाली हैं, जिनका ऐश्वर्य सदा एक रस रहने वाला अनन्त है, जो अपने श्रीविग्रहकी छटासे सभी प्राणियोंके चित्तको हरण करने वाले महासागरके समान अथाह शोभासे युक्त अपने प्राणवल्लभ श्रीरामभद्रजूके चित्तमें, अपने श्रीअङ्गकी उदार (मनोहर) कान्तिसे आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हैं तथा जो आश्रित-भक्तोंके भावकी पूर्ति करनेमें सदैव तत्पर रहती हैं, उन श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूका सदा ही मङ्गल हो ॥२३॥

श्रीलक्ष्मीजी तथा श्रीपार्वतीजी आदि महाशक्तियोंने जिनका शृङ्गार किया है, घुंघुराले केशोंसे जिनका दर्शन बड़ा ही सुन्दर है तथा जिनका मनोहारी मस्तक मणिमय चन्द्रिकासे विभूषित है वे श्रीकिशोरीजी हम सभी पर प्रसन्न हों ॥२४॥

जो श्रीसीरध्वज महाराजके सुखकी भण्डार-स्वरूपा, पवित्र मुस्कान, नीले कमलके समान नेत्रों वाली हैं, केशोंसे सुहावन जिनके कपोल हैं, वे श्रीजनकराजकन्या श्रीकिशोरीजी हम सब पर प्रसन्न होवें ॥२५॥

तालपत्रपरिशोभितश्रवा नासिकाग्रमणिशोभनाधरा ।
नीलवस्त्रवरभूषणाञ्चिता प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२६॥
यैकभावरतशातवृद्धये स्वीकृतातिशयकान्तविग्रहा ।
या दयार्द्रहृदया स्वभावतः प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२७॥
स्वालियूथपरिसेविता मुदा वागुमाजलधिजादिवन्दिता ।
प्राणनाथभुजमालमण्डिता प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२८॥
हारभूषिहृदयप्रदेशिका स्निग्धभूरिमृदुपादपङ्कजा ।
प्रीतिशीलकरुणाप्लुताशया प्रीयतां जनकराजकन्यका ॥२९॥

श्रीसूत उवाच ।

गायन्त्यथैवं स्रवदम्बुनेत्रा श्रीमैथिलीपादविलीनवृत्तिः ।
तपोगिरस्ताखिलकल्मषा सा कात्यायनी मोदनिधौ निमग्ना ॥३०॥

दिनपूगे गते राजा पङ्क्तियानो महामनाः । जनकं प्रार्थयामास साकेतं गन्तुमिच्छया ॥३१॥

कर्ण-भूषणोंसे जिनके कान अत्यन्त सुशोभित हैं, नासामणिसे जिनके अधर मनोहर हैं तथा नीले वस्त्र व उत्कृष्ट भूषणोंसे जो अलंकृत हैं, वे श्रीजनकराज-कन्या श्रीकिशोरीजी हम सभी जीवों पर प्रसन्न होवें ॥२६॥ जिन्होंने अनन्यभावमें आसक्त भक्तोंकी सुखवृद्धिके लिये, अत्यन्त मनोहर स्वरूपको धारण किया हैं, वे स्वाभाविक दयासे द्रवित हृदयवाली श्रीजनकराज कन्या सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी हम सभी पर प्रसन्न होवें ॥२७॥

जो अपने सखीयूथोंके द्वारा हर्ष-पूर्वक सब ओर सेवित हैं, जिन्हें सरस्वतीजी, पार्वतीजी तथा श्रीलक्ष्मीजी प्रणाम करती हैं, जो अपने श्रीप्राणनाथजूकी भुजमालासे अलंकृत हैं, वे श्रीजनकराज-कन्या सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी हम सभी चेतनों पर प्रसन्न हों ॥२८॥

जिनका हृदय प्रदेश हारोंसे विभूषित है तथा जिनके श्रीचरणकमल चिकने एवं अत्यन्त कोमल हैं, जिनका हृदय प्रेम, शील, व करुणासे डूबा हुआ है, वे श्रीजनकराज कन्या सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी हम सभी चेतनो पर प्रसन्न होवें ॥२९॥

श्रीसूतजी बोलेः–हे शौनकजी ! श्रीकात्यायनीजी नेत्रोंसे आँसुओंको गिराती हुई श्रीमिथिलेशललीजूके गुण रूपादिका इस प्रकार गान करते, श्रीकात्यायनीजीकी चित्त-वृत्ति श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनीजूके श्रीचरण-कमलोंमें तल्लीन होगयी, अत एव वे आनन्द सागरमें डूब गयीं क्योंकि तपस्याके कारण उनके सभी पाप नष्ट हो चुके थे ॥३०॥

बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर उदार चित्तवाले उन श्रीदशरथजीमहाराजने श्रीअयोध्याजी जानेकी इच्छासे श्रीजनकजी महाराजसे प्रार्थना की ॥३१॥

वशिष्ठेन समाज्ञप्तः शतानन्देन च स्वयम् । प्रस्थापनविधिं चक्रे सर्वमेव यथोचितम् ॥३२॥
तद्यौत्किकेन महता कोशलेन्द्रोऽपि विस्मितः । बभूव प्रेमवशगो विदेहाधिपतेः प्रभोः ॥३३॥
आदौ पतिव्रताधर्मं शिक्षयित्वा सविस्तरम् । पुत्रीं सुनयना राज्ञी बहुशस्ता ह्यलालयत् ॥३४॥
जामातॄन्संपरिष्वज्य सत्कृतान् साश्रुलोचना । पुत्रीः समर्पयामास क्रमशस्तेभ्य आदरात् ॥३५॥
अनेकविधवाद्यानां प्रवृत्ते मङ्गलध्वनौ । कथञ्चिन्मातृभिस्ता वै शिविकासु निवेशिताः ॥३६॥
सीताविरहतप्तानां दशाऽवाच्या पतत्रिणाम् । तदानीं मुनिशार्दूल ! मातॄणां तु कथैव का ॥३७॥
जयकारो महानासीत् पुष्पवृष्टिपुरः सरः । प्रस्थिते भ्रातृभी रामे कोशलाभिमुखं शुभः ॥३८॥
वेदघोषो महर्षीणां बभूवानन्दवर्द्धनः । विशेषेण महाप्राज्ञ ! वरपक्षावलम्बिनाम् ॥३९॥
श्रीराममुरसाऽऽलिङ्ग्य सीताविरहविह्वलः । जनकः प्रार्थयामास वाचा प्रेमनिरुद्धया ॥४०॥

श्रीजनक उवाच ।

वत्स ! श्रीराम ! भद्रं ते मुनयस्तत्त्ववादिनः । वदन्ति परमात्मानं त्वामजं प्रकृतेः परम् ॥४१॥

तब श्रीवशिष्ठजी तथा श्रीशतानन्दजी महाराजकी आज्ञा पाकर श्रीमिथिलेशजी महाराजने विदाईकी यथोचित सभी विधि सम्पन्न की ॥३२॥

श्रीमिथिलेशजी महाराज द्वारा दिये हुये दहेजको देखकर श्रीदशरथजी महाराज भी चकित हो उनके प्रेमके वशीभूत हो गये ॥३३॥ उधर श्रीसुनयना महारानीजीने सभी पुत्रियोंको पहले पतिव्रता स्त्रियोंके धर्मकी शिक्षा देकर उनका बहुत प्रकारसे प्यार करने लगीं पुनः सत्कार किये हुये अपने सभी जमाइयोंको हृदयसे लगाकर उन्होंने सजल नेत्र हो, आदर-पूर्वक उन्हें क्रमशः अपनी पुत्रियोंको समर्पित किया ॥३४॥३५॥

अनेक प्रकारकी मङ्गल ध्वनि होते समय माताओंने किसी प्रकार हृदयमें धीरज धारण करके श्रीजनकराजदुलारीजी आदि अपनी सभी पुत्रियोंको पालकियोंमें बिठाया ॥३६॥

उन श्रीजनकराजदुलारीजीके वियोग से संतप्त शुक-सारिकादि पक्षियोंकी भी उस समयकी वियोग स्थिति जब कहने योग्य नहीं रही, फिर माताओंकी दशाका कहना ही क्या ? ॥३७॥

भाइयों सहित श्रीरामभद्रजूके श्रीअयोध्याजी प्रस्थान करते समय पुष्पवृष्टि पूर्वक मङ्गलमय महान् जय जय कार होने लगा ॥३८॥

हे महाप्राज्ञ ! (श्रीशौनकजी) महर्षियोंका उस समय का वेदघोष वर (दूलह सरकार) के पक्ष वालोंके लिये विशेष आनन्द वर्द्धक रहा ॥३९॥

श्रीजनकजी महाराजने श्रीकिशोरीजीके विरहसे अत्यन्त विह्वलहो श्रीरामभद्रजीको हृदयसे लगाकर गद्गद वाणी द्वारा उनसे यह प्रार्थनाकी ॥४०॥

हे वत्स! श्रीराम! आपका मङ्गल हो। तत्ववादी अर्थात् ब्रह्म तत्वकी ही प्रधानता बतलाने वाले मुनिजन आपको मायासे परे, जन्मसे रहित, परमात्मा बतलाते हैं ॥४१॥

परत्वं नारदाच्छ्रुत्वा मया प्राग्भवदाप्तये । सर्वेश्वर्या हि संप्राप्तिः सुतारूपेण काङ्क्षिता ॥४२॥
सेच्छया भवतः पूर्णा मम स्वल्पप्रयत्नतः । इदानीं कृतकृत्योऽहं भवतो हि प्रसादतः ॥४३॥
अन्तःस्थस्त्वं यथा मेऽसि तथा भव बहिश्वरः । इयं मे प्रार्थनाऽप्येका स्वीक्रियतां त्वया हरे! ॥४४॥
त्वद्वियोगमहं सोढुं न क्षमोऽस्मि कथञ्चन । न क्षमोऽस्मि तथा पुत्र्या दारुणं संप्रसीद मे ॥४५॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्तस्तदा रामः श्वशुरेण महात्मना । आहूय विश्वकर्माणमादिदेश तमादरात् ॥४६॥

श्रीराम उवाच ।

भ्रातृभिः सीतया युक्तां मम मूर्त्तिं मनोहराम् । निर्मापय महाबुद्धे ! शीघ्रमेव ममाज्ञया ॥४७॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमाज्ञापितस्तेन श्रीरामेण त्वरान्वितः । निर्माप्य परमं रम्यं मूर्त्तिपञ्चकमभ्यगात् ॥४८॥

श्रीराम उवाच ।

अनेनैव स्वरूपेण सदा स्थास्यामि ते गृहे । सुलभः सर्व लोकानां कल्याणैकविधित्सया ॥४९॥

श्रीसूत उवाच ।

बहुशस्तोषयित्वैवं श्वशुरं रघुनन्दनः । सद्यो निवर्त्तयामास विदेहाधिपतिं प्रभुम् ॥५०॥

पहिले श्रीनारदजीके मुखसे आपके परत्वको सुनकर आपकी प्राप्तिके लिये मैंने पुत्री रूपमें श्रीसर्वेश्वरीजीकी प्राप्तिकी इच्छा (कामना) की थी ॥४२॥ वह आपकी इच्छासे मेरे स्वल्प प्रयाससे ही पूरी हो गयी अतः इस समय मैं आपकी कृपासे पूर्ण कृतार्थ हूँ ॥४३॥

आप जैसे मेरे हृदयमें निवास करते हैं, उसी प्रकार दृष्टिके बाहर भी निवास कीजिये, हे भक्तोंके समस्त अनिष्टोंको हरण करने वाले प्रभो ! मेरी एक इस प्रार्थनाको भी स्वीकार कीजिये क्योंकि न मैं आपके ही इस प्रत्यक्ष वियोगको सहन करनेके लिये किसी प्रकार समर्थ हूँ, न अपनी श्रीललीजीके दारुण वियोगको, अतः मेरे प्रति आप प्रसन्न होवें अर्थात् मेरे लिये भीतरके समान बाहर भी प्रत्यक्ष बने रहिये ॥४४॥४५॥

श्रीसूतजी बोले:-हे श्रीशौनकजी! महाबुद्धिशाली श्वसुर श्रीजनकजीमहाराजके इसप्रकार प्रार्थना करने पर श्रीरामभद्रजूने श्रीविश्वकर्माजीको बुलाकर उन्हें आदरपूर्वक यह आज्ञा प्रदानकी ।४६।

हे महाबुद्धे ! मेरी आज्ञासे श्रीजनकराजकिशोरीजीके सहित तीनों भाइयोंसे युक्त, मेरी मनोहर मूर्त्तिका निर्माण शीघ्र कीजिए ॥४७॥

श्रीसूतजी बोले:-हे शौनकजी ! श्रीरामभद्रजूकी इस आज्ञाको पाकर श्रीविश्वकर्माजी शीघ्रताके साथ पाँच मूर्त्तियोंको बनाकर चले गये ॥४८॥

समस्त प्राणियोंका कल्याण करनेकी मुख्य इच्छासे मैं

श्रीरामभद्रजूने कहा:-हे तात !

इसी स्वरूपसे सुलभ होकर सदा आपके भवनमें निवास करूँगा ॥४९॥

श्रीरघुनन्दनप्यारेजूने अपने श्वशुरजीको

श्रीसूतजी बोले:-हे मुने ! इस प्रकार सर्व-समर्थ

बहुत प्रकारसे सन्तोष प्रदान करके, उन्हें शीघ्रही वापस कर दिया ॥५०॥

रामस्यागमनं श्रुत्वा श्रीसाकेतनिकेतनाः। महामहोत्सवं चक्रुरलञ्चक्रुश्च तां पुरीम् ॥५१॥
मातरो हर्षपूर्णाक्ष्यः समेताः पुत्रवत्सलाः। द्वारि नीराज्य तनयान् बधूभिर्गृहमानयन् ॥५२॥
अतुल्यसुषमाशीलं पुत्रमाचिन्त्य मातरः। मैथिलीं सुषमाराशिं निरीक्ष्यातीवविस्मिताः ॥५३॥
कैकेय्या स्वं तदा दत्तं भवनं हेमनिर्मितम्। अद्वितीयं मुदा तस्यै सप्तावरणसंयुतम् ॥५४॥
कुमारान् जननी साकं वधूभिः परया मुदा। सिंहासनेषु संस्थाप्य विधिं सर्वमकारयत् ॥५५॥
भक्तिसूत्रोपनद्धौ तावुभौ स्वच्छन्दचारिणौ। मातुराज्ञां पुरस्कृत्य चक्रतुः सकलान्विधीन् ॥५६॥
ब्राह्मणेभ्यः सभार्येभ्यः पूजयित्वाऽतिभक्तितः। दानं बहुविधं प्रादात्कौशल्या तर्हि पुष्कलम् ॥५७॥

श्रीअयोध्यानिवासी श्रीचक्रवर्तीकुमार श्रीरामभद्रजूके शुभागमनका समाचार सुनकर महान् उत्सव पूर्वक पुरीकी सजावट करने लगे ॥५१॥

हर्ष भरे नेत्रों वाली श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि पुत्रवत्सला मातायें एकत्रित हो द्वार पर आरती करके बहुओंके सहित अपने पुत्रोंको भवनके भीतर ले आईं ॥५२॥

अपने पुत्र श्रीरामभद्रजीको अतुलनीय महान् सुन्दर विचार कर, श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूको सब प्रकारसे उपमा रहित सुन्दरताकी भण्डार देखकर आश्चर्यमें पड़ गयीं अर्थात् जब माताओंने श्रीरामभद्रजीको देखा, तो उनके हृदयमें यह भाव उठा, कि हमारे श्रीलालजी निःसन्देह अतुलित सुन्दर हैं अतः इनके अनुरूप सुन्दरी बहू मिलना असम्भव ही है, यह विचार कर कुछ हताश होकर भी लोक रीतिके अनुसार जब वे श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीका दर्शन करती हैं, तब वे उन्हें उपमा रहित सुन्दरताकी भण्डार देखकर चकित रह गयीं अर्थात् श्रीरघुनन्दन प्यारेसे भी उन्हें अधिक सुन्दरी पाया ॥५३॥

श्रीकैकयी अम्बाजीने हर्ष-पूर्वक उपमा रहित सात आवरणोंसे युक्त, सोनेका बनवाया हुआ अपना "श्रीकनक-भवन" श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीको मुख दिखलाईमें प्रदान किया ॥५४॥

तब श्रीकौशल्या अम्बाजी बधुओंके सहित अपने श्रीराजकुमारोंको महान् हर्ष-पूर्वक सिंहासनों पर विराजमान करके सभी विधियोंको कराने लगीं ॥५५॥

सर्वेश्वर, सर्व नियन्ता होनेके कारण सदा अपनी इच्छानुसार सब व्यवहार करने वाले दोनों सरकार श्रीसीतारामजी महाराज, श्रीकौशल्या अम्बाजीकी श्रद्धा व आसक्ति रूपी डोरसे बँधे होनेके कारण माताजीकी आज्ञा मानकर, मृदु मुस्काते हुये सभी विधियोंको सम्पन्न करने लगे ॥५६॥

तब श्रीकौशल्या अम्बाजीने अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक पत्नियों सहित ब्राह्मणोंका पूजन करके उन्हें बहुत प्रकारका पर्याप्त दान-प्रदान किया ॥५७॥

स्वादुवद्भिः सुधाकल्पै रन्धोभिश्च चतुर्विधैः । षड्रसैः सहितै राज्या लालनैर्विविधैः सुतान् ॥५८॥
तर्पिताञ्जृम्भमाणास्यान्मुहुर्मीलितलोचनान् । सालसाम्भोजपत्राक्षीः स्नुषाश्चावेक्ष्य कातरः ॥५६॥
राजा दशरथः श्रीमान् महाराज्ञीर्महोदयः । स्वापयितुं द्रुतं पुत्रांस्तदाऽऽज्ञाप्य बहिर्ययौ ॥६०॥
ताश्च पत्या समाज्ञप्ता महिष्यः प्रेमविह्वलाः । बधूः स्वोत्सङ्गमामदाय स्वापिताः परया मुदा ॥६१॥
पुत्रान् प्रस्वापितान्पूर्वं स्वपन्तीश्च नवा बधूः । चक्षुर्भ्यामसकृद्वीक्ष्य ह्यपारं मोदमाप्नुयुः ॥६२॥

एवं महाभाग्यतमो नृपेन्द्रः श्रीकोशलेन्द्रस्तनयान्स्वकीयान् ।
उद्वाह्य सम्यङ् मिथिलाप्रदेशात्सत्यां गतोऽभूत्परिपूर्णकामः ॥६३॥

तब श्रीकौशल्या महारानीजीके द्वारा चार प्रकारके अमृतवत् अत्यन्त स्वादिष्ट षट्रस व्यञ्जनों के द्वारा तृप्त किये हुये राजकुमारोंको बारंबार नेत्र बन्द करते जम्हुआई लेते तथा आलस्य युक्त नेत्रकमल वाली अपनी पुत्र-बधुओंको देखकर महान् उदयशीलताको प्राप्त वे श्रीचक्रवर्तीजी महाराज घबड़ाहटको प्राप्त हो, उन्हें शीघ्र शयन करानेके लिये आज्ञा देकर स्वयं बाहर चले गये ॥५८॥५६॥६०॥

प्रेम-विह्वला श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि माताओंने अपने पतिदेवकी आज्ञा पाकर बधुओंको अपनी गोदमें लेकर बड़े हर्ष पूर्वक शयन कराया ॥६१॥

पहिले शयन कराये हुये पुत्रोंको तथा सोती हुई नव बहुओंको बारम्बार देखकर श्रीकौशल्यादि महारानियाँ हर्षका पार न पासकीं ॥६२॥

इस प्रकार समस्त भाग्यशालियोंमें श्रेष्ठ अयोध्यानाथ श्रीदशरथजी महाराज अपने पुत्रोंका सम्यक् प्रकारसे विवाह कराके श्रीमिथिलाजीसे श्रीअयोध्याजी पहुँचकर पूर्ण कृत-कृत्य हो गये ॥६३॥

इति पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

इति मासपारायणे एकोनत्रिंशतितमो विश्रामः ॥२६॥

—❀❀❀—

अथ षडुत्तरशततमोऽध्यायः ।

श्रीकौशल्या अम्बाजीकी श्रीरामजी से वात्सल्यमयी वार्ता एवं कदम्बवन में विश्वनाटच लीला ।

श्रीसूत उवाच ।

राममेकान्त आलिङ्गच कौशल्या जननी मुदा । अपृच्छद्वृत्तमखिलं सादरं पुत्रवत्सला ॥१॥

श्रीकौशल्योवाच ।

पद्भ्यां नु गच्छता वत्स! क्रव्यादा दुष्टचारिणी । कथं त्वया हता पापा पुष्पकोमलवर्ष्मणा ॥२॥
कथं निपातिता युद्धे राक्षसाः कूटयोधिनः । यज्ञमारक्षता तस्य कौशिकस्य महात्मनः ॥३॥
यं न जेतुं क्षमा देवा मनुष्या दानवादयः । कथं सुबाहुमवधीः क्रूरकर्माणमाहवे ॥४॥
शरेणैकेन मारीचं प्राक्षिपः सागरान्तिके । कथमेव दुराधर्षमनासादितयौवनः ॥५॥
अहल्यां पादरजसा पावयित्वा शिलामयीम् । कथं त्वं मिथिलां प्राप्तः सानुजस्तदिहोच्यताम् ॥६॥
अप्युत्थापयितुं शक्तो रावणो न महाबलः । लीलयोत्थापितो येन कैलाश इव कन्दुकः ॥७॥
शूरा महारथश्रेष्ठास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः । समेत्य यस्य भूस्पर्शमपाकर्तुं न चक्षमाः ॥८॥
तत्कथं वत्स ! लोकेषु विश्रुतं सव्यपाणिना ।अत्रोटच उदारात्मन् ! धनुरुत्थाप्य लीलया ॥९॥

श्रीसूतजी बोले:–हे शौनकजी ! पुत्रवत्सला श्रीकौशल्याअम्बाजी एकान्तमें श्रीरामभद्रजीको हर्ष-पूर्वक हृदयसे लगाकर उनसे आदर-पूर्वक सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछने लगीं ॥१॥

हे वत्स ! आपका शरीर तो पुष्पके समान अत्यन्त कोमल है, फिर आपने पैदल जाते हुये दुष्ट-आचरण सम्पन्ना मांस भक्षिणी उस पापिनी ताडका राक्षसीको किस प्रकार मारा? ॥२॥

पुनः किस प्रकार आपने महात्मा विश्वामित्रजीकी यज्ञकी रक्षा करते समय, छलसेयुद्ध करने वाले उन हजारों राक्षसोंको मार गिराया ? ॥३॥

जिसको देवता, मनुष्य, दानव आदि कोई भी जीतनेको समर्थ नहीं थे, उस क्रूर कर्म करने वाले सुबाहु राक्षसको आपने युद्धमें किस प्रकार मार दिया ? ॥४॥

हे वत्स ! अभी तो आप युवावस्थाको भी नहीं प्राप्त हुये हैं, तब उस दुर्जय मारीच राक्षस को आपने किस प्रकार एकही बाणसे समुद्रके किनारे फेंक दिया ? ॥५॥

बतलाइये प्रस्तरमयी श्रीअहल्याजीको आप अपने चरण धूलिसे पवित्र करके अपने भैयाके साथ किस प्रकार श्रीमिथिलाजी गये ? ॥६॥ जिसने कैलाशपर्वतको गेंदके समान विना किसी परिश्रमके उठा लिया था, वह महाबल शाली रावण भी जिसको उठाने में असमर्थ रहा तथा तीनों लोकोंमें विख्यात सभी शूर, महारथी भी मिलकर जिसके भूमि-स्पर्शको भी नहीं छुड़ा सके, हे वत्स ! भगवान् शिवजीके उसी त्रिलोकी विख्यात धनुषको खेलपूर्वक किस प्रकार उठाकर आपने बायें हाथसे तोड़ा था ? ॥७॥८॥९॥

रहस्यं सम्यगाख्याहि परं कौतूहलं हि मे । मया दीर्घवियोगान्ते वत्स ! प्राप्तमिदं सुखम् ।।१०।।

श्रीराम उवाच ।

सर्वमेतद्धि विज्ञेयं महर्षेः सुप्रसादतः । चरित्रमद्भुतं मातस्तथ्यमेव वदामि ते ।।११।।
स शक्तः सर्वकार्येषु भगवान् कुशिकात्मजः । कृतो निमित्तमात्रं वै तेनाहं विदितात्मना ।।१२।।

श्रीकौशल्योवाच ।

वत्स! सत्यमिदं मन्ये विश्वामित्रो महातपाः । कर्तुं कारयितुं शक्तो न यत्कार्यं न तत्क्वचित् ।।१३।।
अपश्यन्त्या गता वारास्त्वामिमे ये ममात्मभूः । विदधातु न सङ्कल्पं दर्शयितुं पुनश्च तान् ।।१४।।

श्रीसूत उवाच ।

कौशिकं तमथाहूय स्वभवने परमोत्तमे । महिषी पूजयामास भक्त्या परमयान्विता ।।१५।।
अयोध्यायामुषित्वा स दिनानि कतिचिन्मुनिः । रामं सानुजमालिङ्ग्य गाधेयः स्वाश्रमं ययौ ।।१६।।
श्रीरामः सीतया साकं हेमागारकृतालयः । भजतां भावपूर्त्यर्थं रेमे विष्णुरिव श्रिया ।।१७।।

हे वत्स ! मुझे इन उक्त सभी विषयोंमें महान् आश्चर्य है, अत एव मेरे सन्देहानुसार आप उन सभी घटनाओंका रहस्य सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये ।।१०।।

श्रीरामभद्रजू बोले:–हे श्रीअम्बाजी ! मैं आपसे यथार्थ कहता हूँ, आप इन सम्पूर्ण आश्चर्य-मय चरितोंको महर्षि श्रीविश्वामित्रजी की ही विशेष कृपासे हुआ जानिये अर्थात् उन सभी घटनाओंमें गुरुदेवकी कृपा ही प्रधान कारण थी ।।११।।

वे कुशिकनन्दन गुरुदेव भगवान् श्रीविश्वामित्रजी सभी कार्योंको करनेमें पूर्ण समर्थ हैं, उन सभी कार्योंमें उन्होंने केवल मुझे निमित्तमात्र बना दिया था, वस्तुतः वह सब लीला उन्हींकी थी ।।१२।। यह सुनकर श्रीकौशल्या अम्बाजी बोलीं:–हे वत्स ! मैं आपके कथनको सत्य मानती हूँ क्योंकि वास्तवमें कहीं भी कोई ऐसा दुष्कर कार्य नहीं है, जिसे वे महातपस्वी श्रीविश्वामित्रजी करने व कराने में असमर्थ हों ।।१३।।

हे वत्स ! आपके दर्शनोंके विना जो मेरे इतने दुःखमय दिन व्यतीत हुये हैं, उन्हें पुनः विधाता कभी दिखाने का सङ्कल्प न करे ।।१४।।

श्रीसूतजी बोले:–हे शौनकजी ! पुनः श्रीकौशल्या महारानीजीने श्रीविश्वामित्रजी महाराज को अपने अत्यन्त श्रेष्ठ भवनमें बुलाकर, उनकी परम श्रद्धाके साथ पूजाकी ।।१५।।

गाधिनन्दन श्रीविश्वामित्रजी महाराज कुछ दिन श्रीअयोध्याजीमें रहकर श्रीरामभद्रजू तथा लखनलालजूको हृदयसे लगाकर अपने आश्रमको पधारे ।।१६।।

श्रीरामभद्रजू श्रीजनकराजनन्दिनीजूके सहित श्रीकनकभवनमें निवास करते भक्तोंकी भाव-पूर्त्तिके लिये इस प्रकार की लीलायें करने लगे, जैसे विष्णु भगवान श्रीलक्ष्मीजीके सहित वैकुण्ठमें करते हैं ।।१७।।

स लब्धस्वीकृती रामः सुतारत्नानि भूभृताम् । अन्येषामपि चानीय प्रियायै मुदितोऽर्पयत् ॥१८॥
नागकन्याश्च गन्धर्व्यो देवकन्या मनोहराः । वरुणस्य सुता दिव्या भक्तियोगचमत्कृताः ॥१९॥
स्वीकृता रामभद्रेण सीताकैङ्कर्यलोलुपाः । अनेकशास्त्रकुशलाः प्रेमतत्त्वविचक्षणाः ॥२०॥
रूपलावण्यसम्पन्ना भावमत्ताः शुचिव्रताः । ताः समालोक्य वैदेही प्रससाद मृगेक्षणा ॥२१॥
सन्तोष्य ता गिरा मृद्व्या स्वालये वासमादिशत् । महाकरुणयोपेता स्वभावमृदुलाशया ॥२२॥
ता अपि सर्वदा तस्या दासीभावमनुव्रताः । स्वदेहस्य यथा मूर्खा अभवन्सेवने रताः ॥२३॥
ताभिरेव कृपामूर्त्तिर्वैदेही वामलोचना । ययौ प्रमोदविपिनं कदाचित्स्वसृभिर्युता ॥२४॥
तस्मिन् कदम्बविपिनमतीवप्रियदर्शनम् । सा प्रविश्यैव दिव्येहा जगामानन्दमद्भुतम् ॥२५॥
तत्र सिंहासनस्थायां तस्यामिन्दुप्रभासुता । मृगीः प्रदर्शयामास प्राव्रजन्तीः सहस्रशः ॥२६॥
मैथिली कौतुकं तत्तु दर्शयन्ती शुचिस्मिता । सकलाः किङ्करीः स्वस्या यतवाणी व्यराजत ॥२७॥

पुनः स्वीकृति लेकर श्रीरामभद्रजूने राजाओंकी भी कन्यारत्नोंको लाकर हर्ष पूर्वक अपनी प्रिया श्रीमिथिलेशराज नन्दिनीजीको समर्पण किया ॥१८॥

जो नागकन्या, देवकन्या, गन्धर्वकन्या भक्ति योगसे चमकती हुई मनोहर प्रेम-तत्त्वको पूर्ण समझने वाली, अनेक शास्त्रोंकी पण्डिता तथा श्रीमिथिलेशराज-किशोरीजीकी सेवाके प्रति अत्यन्त लोभ वाली थीं, उन्हें श्रीरामभद्रजूने स्वीकार किया ॥१९॥२०॥

रूपकी मनोहरतासे युक्त, पवित्र ब्रत वाली भावमस्त, उन कन्याओंको देखकर मृगलोचना श्रीकिशोरीजी देहकी सुधि बुधि भूलकर बड़ी ही प्रसन्नताको प्राप्त हुईं ॥२१॥

स्वभाविक अत्यन्त कोमल हृदयवाली, श्रीकिशोरीजी अतिशय करुणासे युक्त, होनेके कारण उन्हें कोमल वाणीसे सन्तुष्ट करके श्रीकनक-भवनमें निवास प्रदान किया ॥२२॥

वे सब कुमारियाँ भी उनके दासीभावको ग्रहण करके उनकी सेवामें सदा इस प्रकार रत हुईं, जिस प्रकार अपने वास्तविक स्वरूपको न जानने वाले अज्ञानी प्राणी अपने शरीरकी सेवा में आसक्त रहते हैं ॥२३॥ कृपामूर्त्ति, मनोहरलोचना श्रीविदेहराजनन्दिनीजू उन सभीके सहित अपनी सखियोंके साथ एक दिन श्रीप्रमोदवनमें पधारी ॥२४॥

श्रीप्रमोदवनके अत्यन्त प्रिय दर्शनों वाले कदम्ब वनमें प्रवेश करके ही सम्पूर्ण दिव्य (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी आसक्ति रहित) चेष्टाओं वाली श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजी विलक्षण आनन्दको प्राप्त हुईं ॥२५॥

वहाँ श्रीयुगलसरकारके सिंहासन पर विराजमान हो जाने पर श्रीचन्द्रप्रभा महारानीकी पुत्री श्रीचन्द्रकलाजीने आती हुई उन्हें हजारों मृगियोंका दर्शन कराया ॥२६॥ श्रीमिथिलेशराज-किशोरीजी अपनी सेविकाओंको वह कौतुक दिखलाती हुई मौन विराजी रहीं ॥२७॥

प्रियां मृग्यः परिक्रम्य सम्मुखे बद्धपङ्क्तयः । संस्थिता स्तोत्रयामासुर्देववाण्या विशुद्धया ।।२८।।
मनोऽभिप्रायमाबुध्य तासां जनकनन्दिनी । कृपया परयोपेता बभूवेषत्स्मितानना ।।२९।।
पश्यन्तीनां हि सर्वासां ता युगपत्तिरोहिताः । आश्चर्य्याप्लुतचित्तानां पुनरेवाविलम्बतः ।।३०।।
आजगाम तदा तत्र राघवो रघुनन्दनः । मधुरदासवृन्देन परीतो मन्मथोन्मथः ।।३१।।
सत्कृत्य परया प्रीत्या सोऽभ्युत्थानादिभिः प्रियः । सादरं स्वासने रम्ये भूमिपुत्र्या निवेशितः ।।३२।।
भूयो भूयः प्रपश्यन्तीं सुभगां सुस्मिताननाम् । विवक्षया हसन् रामस्तामवोचदिदं वचः ।।३३।।

श्रीराम उवाच ।

सुभगे ! का विवक्षास्ति कथ्यतां मुदितात्मना । इष्यते सा मया श्रोतुं कौतूहलसमन्विता ।।३४।।

श्रीसुभगोवाच ।

प्राणनाथाद्य संप्राप्य मृग्यः परमशोभनाः । स्वामिनीं तुष्टुवुः प्रेम्णा व्यक्तया देवभाषया ।।३५।।

श्रीमृग्य ऊचुः ।

जय जय कृपाशीले ! रामकान्ते कलस्मिते । यक्षकन्या वयं बोध्याः प्रपन्नास्त्वत्पदाम्बुजम् ।।३६।।

वे हरिणियाँ परिक्रमा करके पङ्क्ति बाँधकर सम्मुख खड़ी हो विशुद्धदेववाणी (संस्कृत-भाषा) द्वारा उनकी स्तुति करने लगीं ।।२८।।

उनके मानसिक भावको जानकर महती कृपासे युक्त हो श्रीजनकराजनन्दिनीजीका मुखार-विन्द किञ्चित् मुस्कान युक्त हो गया ।।२९।। तब आश्चर्यमग्न चित्तवाली उन सभी सखियोंके देखते वे पुनः तत्क्षरण एक साथ गुप्त हो गयीं ।।३०।।

उसी समय अपने सौन्दर्यसे कामदेवके अभिमानको चूर्ण करनेवाले रघुकुलनन्दन श्रीराघवजी अपने मधुर दासवृन्दके सहित वहाँ आगये ।।३१।।

भूमिपुत्री श्रीकिशोरीजीने आसनसे उठ कर खड़े हो बड़े प्रेमपूर्वक आदर सहित उनका सत्कार करके, श्रीप्राणप्यारेजीको अपने मनोहर आसन पर विराजमान किया ।।३२।।

उस समय कुछ पूछनेकी इच्छासे वारम्बार विशेष रूपसे अपनी ओर देखती व सुन्दर मुस्काती श्रीसुभगाजीसे प्यारे श्रीरामभद्रजू हँसते हुये बोले—।।३३।।

हे सुभगाजी ! आप कौनसी आश्चर्यकी बात कहना चाहती हैं ? मुझे सुननेकी इच्छा है अतः आप उसको कहिये ।।३४।।

श्रीसुभगाजी बोलीं:—हे श्रीप्राणनाथजू ! आज बड़ी सुन्दरी मृगियोंने आकर इन श्रीस्वा-मिनीजीकी स्पष्ट देवभाषा (संस्कृत वाणी) में यह स्तुति की ।।३५।।

मृगियोंने कहा:—हे कृपाकारक स्वभाव वाली ! हे मनोहर मुस्कान युक्ते ! हे श्रीराम-वल्लभेजू ! हमें आप अपने श्रीचरणकमलोंकी शरणागत यक्ष-कुमारियाँ जानिये ।।३६।।

कामरूपधराः सर्वा नाट्यलीलाविशारदाः । आगता अद्य तेऽभ्याशे गुणसाफल्यकाम्यया ॥३७॥

श्रीशुभगोवाच ।

एवमुक्त्वा तु वैदेहीं दृष्ट्वा मन्दस्मिताननाम् । अन्तर्हिता बभूवुस्ताः पश्यन्तीनां हि नः प्रिय! ॥३८॥

किमुक्ता स्मितया स्वामिन्या कुत्र चागमन् । मृग्यः कास्ता मनोज्ञाङ्ग्यो न विद्मः प्राणवल्लभ! ॥३९॥

श्रीराम उवाच ।

यदुक्तं याश्च ताः सख्यो वीक्षध्वं मीलितेक्षणाः । क्षणमात्रेण मद्वाचि विश्वासो यदि वो भवेत् ॥४०॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्तास्तदा सख्यः प्रेयसा कौतुकान्विताः । निमीलिताक्ष्यो मुदिता अभवन्सुस्मिताननाः ॥४१॥

आज्ञया प्रेयसोः प्राप्ता यक्षकन्याः सहस्रशः । तत्क्षणं ता हि विध्वास्याः क्वणत्पादाङ्गदाङ्घ्रयः ॥४२॥

निर्ममे सुस्थलं तासामेका परमशोभनम् । सत्वरं सिद्धसङ्कल्पास्तयोरिङ्गितमात्रतः ॥४३॥

फलवृक्षाननेकांश्च नानास्वादुसमन्वितान् । परितस्तत्र निर्माय नता पादाब्जयोर्द्वयोः ॥४४॥

ततः सैका शुभां वाचमूचे यक्षकुमारिकाः । इमानीमानि भुञ्जीध्वं नेमानीमानि कर्हिचित् ॥४५॥

हम लोग अपने इच्छानुसार स्वरूपको धारण करनेवाली नाट्य लीलाकी पण्डिता हैं अतः इस समय अपने प्राप्त गुणको सफल करनेके लिये ही आपके पास आई हैं ॥३७॥

श्रीसुभगाजी बोलीं:–हे प्यारे ! श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका दर्शन करके तथा उनसे इस प्रकारकी प्रार्थना निवेदन करके हम सभीके देखते-देखते वे वहीं गुप्त हो गयीं ॥३८॥

हे श्रीप्राणवल्लभजू! हम नहीं जानती, कि उन परमसुन्दरी मृगियोंसे श्रीस्वामिनीजूने अपनी मुस्कानरूपी वाणी द्वारा क्या कहा ? और वे सुनकर कहाँ चली गयीं तथा 'थीं कौन'? ॥३९॥

श्रीरामभद्रजू बोले:–हे सखियो ! यदि मेरे वचनोंमें आप सबको विश्वास हो, तो आँखें बन्द करके क्षणमात्रमें देख लीजिये कि वे कौन थीं और श्रीप्रियाजूने उनसे क्या कहा था ॥४०॥

श्रीसूतजी बोले:–हे शौनकजी ! श्रीप्यारेजूके इस प्रकार कहने पर हर्षित हो आश्चर्यके साथ सुन्दर मुस्कान युक्त मुखवाली उन सखियोंने, नेत्र बन्द कर लिये ॥४१॥

उसीक्षण दोनों प्रिया-प्रियतम श्रीसीतारामजी महाराजकी आज्ञासे अपने चरणोंमें पायजेब आदिका शब्द करती हुई, वे हजारों चन्द्रमुखी यक्षकुमारियाँ वहाँ आ गयीं ॥४२॥

उनमें एक (सर्वप्रधान) सिद्धसङ्कल्पवाली यक्षकुमारीने श्रीयुगलसरकारका सङ्केत पाकर तत्क्षण एक सुन्दर परम मनोहर स्थल बनाया ॥४३॥

उसमें चारों ओर नाना प्रकारके स्वादुवाले अनेक वृक्षोंको बनाकर, उसने दोनों सरकारके युगल-श्रीचरणकमलोंमें प्रणाम किया ॥४४॥

तत्पश्चात् उस प्रधान कुमारीजूने सभी यक्षकुमारियोंसे मङ्गलकारिणी यह वाणी कही–हे सखियो ! आप लोग इन-इन फलोंको ग्रहण कीजियेगा पर इन-इनको कभी भी नहीं ॥४५॥

यदि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य स्वदिष्यध्वे यथेप्सितम् । तत्प्रभावं तदा यूयं स्वयमनुभविष्यथ ॥४६॥

श्रीसूत उवाच ।

तदेवं बोधयित्वा ता दम्पत्योः पार्श्वमास्थिता । नन्दयन्ती यथा बुद्धि स्वयमानन्दनिर्भरा ॥४७॥
अथादेशं समासाद्य तयोरानतकन्धरा । कौतुकं दर्शयामास विविधं मोहसम्भवम् ॥४८॥
काश्चनानेकधा लीलास्तयोः प्रीतिप्रसिद्धये । कुर्वन्त्यो मोदमापन्ना मनोवाचामगोचरम् ॥४९॥
काश्चित्तु तौ किलोपेक्ष्य प्रापश्यन्स्थलसौष्ठवम् । तुच्छनेत्रसुखासक्ता आरभन्तात्तुमुत्फलम् ॥५०॥
अहर्षितास्ततः काश्चित्काश्चिदुन्मत्तबुद्धयः । रुरुदुश्च जगुः काश्चित्काश्चिदानतकन्धराः ॥५१॥
ननृतुर्जहसुः काश्चित्काश्चिदालापतत्पराः । काश्चिज्जजल्पुर्हाहेति मुमुहुः काश्चिदञ्जसा ॥५२॥
काश्चिदाहुर्याऽस्मि दीनाऽस्मि बलवत्यबलाऽस्मि च । काश्चिदाहुरयं शत्रुर्मित्रमेष प्रियो मम ॥५३॥
अग्रजो बाहुजश्चास्मि वैश्योऽहं पादजोऽस्म्यहम् । गृहस्थोऽस्मि विरक्तोऽस्मि वानप्रस्थोऽस्म्यहं वटुः ५४।

और यदि मेरी वाणीका उल्लङ्घन करके आप लोग अपने इच्छानुसार हो फलोंका स्वादु
ग्रहण करेंगी, तो उसी समय उसके प्रभाव (परिणाम) का अनुभव स्वयं ही कर लेंगी ॥४६॥

श्रीसूतजी बोले:—हे श्रीशौनकजी, इस प्रकार अपनी सभी सखियोंको समझा बुझा कर वह
प्रमुख सखी युगल सरकारके पासमें बैठकर अपनी मतिके अनुसार उन्हें आनन्दित करती हुई
उन (श्रीयुगल सरकार) के स्वरूपानन्दमें निमग्न हो गई ॥४७॥

पुनः श्रीयुगल सरकारकी आज्ञा पाकर उन्हें प्रणाम करके, जीवोंके अज्ञानमयी आसक्तिसे
होने वाले अनेक प्रकारके कौतुक दिखाने लगीं ॥४८॥

कुछ सखियाँ श्रीयुगल सरकारकी प्रसन्नता कारक अनेक प्रकारकी लीलाओंको करती हुई
उस आनन्दको प्राप्त हुईं जिसे न वाणी वर्णन और न मन-मनन ही कर सकता है ॥४९॥

कुछ यक्षकुमारियाँ नेत्रोंके तुच्छ विषय-सुखमें आसक्त होनेके कारण उन दोनों सरकारकी
उपेक्षा करके स्थलकी ही सुन्दरताको अवलोकन करने लगीं, तो कुछ फलोंका आस्वादन करना
प्रारम्भ कर दिये ॥५०॥ उन फलोंके आस्वादनसे कुछ हर्षित हो उठीं, कुछकी बुद्धि पागल हो
गयी, कुछ रोने लगीं तो कुछ गाने लगीं, कुछ सिर झुका दिये ॥५१॥

कुछ नृत्य करने लगीं, तो कुछ हँसने लगीं, कुछ आलाप करने लगीं, कुछ हा हा शब्द
करने लगीं, कुछ अनायास मूर्छित हो गयीं ॥५२॥

कुछ बोलीं मैं धनी हूँ तो कुछ मैं दीन हूँ, कुछ मैं बलवती हूँ, और कुछ मैं अबला हूँ तो
कुछ मेरा यह शत्रु है, कुछ बोलीं मेरा यह मित्र है तो कुछ मेरा यह प्रिय है ऐसा बोलने
लगीं, कुछ मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ मैं वैश्य हूँ, मैं सूद्र हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, मैं विरक्त हूँ, मैं वान-
प्रस्थ हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ ऐसा कहने लगीं ॥५३॥५४॥

सुखिता दुःखिता चास्मि दाताऽहं भिक्षुकोऽस्म्यहम् ।
अहं यक्ष्यामि दास्यामि मोदिष्ये मुदिताऽस्म्यहम् ॥५५॥
कर्ता कारयिता चास्मि शिष्योऽहं दैशिकोऽस्म्यहम् ।
भूमिपालोऽस्मि रङ्कोऽस्मि जेताऽहं निर्जिताऽस्म्यहम् ॥५६॥

अहं बद्धो विमुक्तोऽहं मुमुक्षुरहमेव च । अजितात्मा जितात्माऽहं सज्ञानोऽज्ञानवानहम् ॥५७॥
सर्वसाधनयुक्तोऽहमहमप्राप्तसाधनः । अहं साधुरसाधुश्च जीवोऽहं ब्रह्म चास्म्यहम् ॥५८॥
एवं नानाविधान्भावान्व्यञ्जयामासुरञ्जसा । फलानि तानि संभुज्य नानागुणमयानि ताः ॥५९॥
पुनस्तस्यां समाप्तायां लीलायां त्वरितं हि ताः । पूर्वां वृत्तिं समास्थाय सर्वा नेमुः प्रियाप्रियौ ॥६०॥

मैं सुखी हूँ ! मैं दुखी हूँ! मैं दाता हूँ ! मैं भिक्षुक हूँ ! मैं यज्ञ करूँगा ! मैं दान करूँगा ! मैं आनन्द करूँगा ! मैं आनन्दित हूँ ॥५५॥

मैं अमुक कार्योंका करने वाला हूँ ! मैं अमुक कार्योंको करवाने वाला हूँ ! मैं शिष्य हूँ ! मैं गुरु हूँ ! मैं राजा हूँ ! मैं दरिद्र हूँ ! मैं विजयी हूँ ! मैं पराजित हूँ ॥५६॥

मैं बद्ध हूँ ! मैं मुक्त हूँ ! मैं मोक्षार्थी हूँ ! मैं इन्द्रियोंके वशीभूत हूँ ! मैं इन्द्रियोंको वश में करने वाला हूँ ! मैं ज्ञानी हूँ ! मैं अज्ञानी हूँ ॥५७॥

मैं सब साधन सम्पन्न हूँ ! मेरे पास कोई साधन नहीं है ! मैं साधु (अपने-पराये हितका साधक) हूँ ! मैं असाधु (अपने परायेका हित घातक) हूँ ! मैं जीव हूँ ! मैं ब्रह्म हूँ ॥५८॥

श्रीसूतजी बोलेः—हे शौनकजी ! इस प्रकार वे यक्षकुमारियाँ नाना प्रकारके प्रभावमय उन फलोंको खाकर अनेक प्रकारके पृथक्-पृथक् भावोंको प्रकट करने लगीं ॥५९॥

पुनः उस लीलाके समाप्त होने पर उन सभी (यक्षकुमारियों)ने अपनी पूर्वकीसहजा वृत्तिको प्राप्त हो तत्क्षण श्रीयुगलसरकारको प्रणाम किया ॥६०॥

इति षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

—❀❀❀—

अथ सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ।

सखियोंके पूछने पर भगवान् श्रीरामजी द्वारा विश्वनाटच लीला रहस्योद्घाटन तथा यक्ष कुमारियों कृत रामलीला ।

श्रीसख्य ऊचुः ।

प्राणनाथ ! रसागार ! सुखसिन्धो! कृपानिधे! । इमा युगपदायाताः सर्वा एव हि नोऽग्रतः ॥१॥
दशामनेकधा प्राप्ताः कुतः कस्माच्च कारणात् । अस्मभ्यं कृपया ब्रूहि शरणागतवत्सल ! ॥२॥

श्रीराम उवाच ।

एताः सर्वाः समायाता आवयोरेव तुष्टये । परिस्पन्दः स्थलस्यापि मदर्थं विहितो ह्ययम् ॥३॥
एकया बोधिताः पूर्वं सकला मुक्तया गिरा । आवयोरिङ्गितं लब्ध्वा भ्रमस्योन्मूलनाय ह ॥४॥
आसां निवृत्तसर्वाशाः श्रद्धावत्यो विचक्षणाः । यथार्थफलमप्यापन् मय्यनन्यमनोधियः ॥५॥
अनेकविषयासक्तमनोबुद्धीन्द्रियव्रजाः । विभिन्नफलभेदेन विभिन्नां सिद्धिमाप्नुयुः ॥६॥
विश्वनाट्चमिदं कृत्स्नमावयोरेव तुष्टये । मायया रचितं सख्य अद्यया परमाद्भुतम् ॥७॥

सखियाँ बोलीं:–हे समस्त शान्त, दास्य, सख्य, शृङ्गार आदि रसोंके भण्डार ! हे समुद्रवत् अथाह सुखवाले ! हे कृपाके निधान ! हे श्रीप्राणनाथजू ! ये सभी सखियाँ हम सभीके सामने एक ही साथ आई थीं ॥१॥

तब इन्हें अनेक प्रकारकी यह अवस्था कहाँसे ? किस कारण प्राप्त हुई ? हे शरणागत वत्सल कृपा करके हम लोगोंको यह समझाइये ॥२॥

श्रीरामभद्रजू बोले:–हे सखियो ! वास्तवमें ये सभी यक्षकुमारियाँ हमको प्रसन्न करनेके लिये ही यहाँ आई थीं और हमदोनोंकी प्रसन्नता प्राप्तिके लियेही उनकी प्रधानाजूने इस मनोहर स्थलका निर्माण किया था ॥३॥

पुनः उस प्रधाना सखीने मेरा सङ्केत पाकर अपनी स्पष्ट वाणी द्वारा भ्रम दूर करनेके लिये उन्हें सावधान भी कर दिया, कि इन, फलोंको खाना और इनको नहीं ॥४॥

उस मुख्य सखीके समझा देने पर इनमें जो सभी इच्छाओंसे रहित, कर्त्तव्यका ज्ञान रखने वाली श्रद्धालु थीं, उन्होंने ही अपने मन व बुद्धिको केवल मुझमें लगाकर, अपने आनेके यथार्थ फलको प्राप्त किया ॥५॥

किन्तु जिनके मन, बुद्धि तथा इन्द्रिय समूह अनेक विषयोंमें आसक्त थे, वे भाँति-भाँतिके फलोंके भेदसे भांति-भाँतिकी सिद्धियोंको प्राप्त हुईं अर्थात् जिसने जिस गुण वाला फल खाया, संस्कारमय वह उसी गुणसे युक्त हो गयी ॥६॥

हे सखियो ! यह समस्त विश्व अद्भुत नाटचलीला है इसे हम दोनोंको प्रसन्न करनेके लिये आदि माया (मेरी इच्छा शक्ति) ने रचा है ॥७॥

आवां समाश्रिता ये ते सर्वासक्तिविवर्जिताः । सच्चिदात्मसुखे मग्ना वीतमायैकशासनाः ॥८॥
आवां विहाय ये चैव स्वातन्त्र्यसुखलोलुपाः । मायापाशेन बद्धास्ते दृश्यन्ते बहुरूपिणः ॥९॥
नाट्यपात्राणि यान्येव निर्विण्णानि चनाट्यतः । आवां शरणमायान्ति मायातीतानि तानि वै ॥१०॥
नातीतविषयासक्तिर्याति नौ साधनैः शतैः । यथाऽऽसां यक्षकन्यानां स्वयं यूयमपश्यत ॥११॥
इदं मद्भोग्यमाज्ञाय सत्कुर्वन्तो मदात्मकम् । अपाञ्चविषयासक्ता गुरोराज्ञानुवर्तिनः ॥१२॥
हितकृत्स्वेव कार्येषु योजयन्तो निरन्तरम् । यान्ति मामेव मच्चित्ता इन्द्रियाणि चतुर्दश ॥१३॥
आचरतोऽहितं कर्म मनसा चेतसा धिया । अपि स्युर्नावयोः प्रीत्यै साधनानि शतानि च ॥१४॥
आशु तुष्टिकरी लोके मम सख्यो ! ह्यसंशयम् । सर्वभूतहितेहैव प्रियायाश्चाखिलात्मनः ॥१५॥

अत एव इनमें जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध आदि पञ्च विषयों तथा स्त्री-पुत्रादि सभी प्रकारकी आसक्तियोंको छोड़कर सब प्रकारसे केवल हम दोनोंके ही आश्रित हैं, उनके ऊपर माया (ईश्वर रूपमें स्थित मेरी इच्छा शक्ति) का कोई शासन नहीं रहता अर्थात् वह सभी विधि निषेधोंसे परे होकर मेरे सदा एकरस रहनेवाले चिन्मय-भगवत् सुखमें निमग्नहो जाता है तथा जो हम दोनोंको छोड़कर स्वतन्त्रताके सुखका लोभ करते हैं वे मायापाश में बँधे हुये अनेक रूप वाले दिखाई देते हैं ॥८॥९॥

जो नाटच-लीलाके पात्र उस लीलासे घबड़ा कर हम दोनोंकी शरणमें आ जाते हैं, उनके ऊपर माया रूपी नाटचलीलाध्यक्षका कोई शासन नहीं रहता ॥१०॥

जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों विषयोंकी आसक्तिसे रहित नहीं है, वह सैकड़ों साधन करने पर भी हम दोनोंको प्राप्त नहीं कर सकता, जैसा कि इन यक्षकुमारियोंमें आप लोगों ने स्वयं देखा है ॥११॥

जो इस विश्वको मेरा स्वरूप और मेरे भोगनेकी वस्तु जानकर इसका केवल सत्कार करते हुये शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध इन पाँचो विषयोंकी आसक्तिसे रहित हो, श्रीसद्गुरु भगवान्के आज्ञाकारी हो जाते हैं, वे अपनी श्रवण, नेत्र नासिका, जिह्वा आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रिय व हाथ-पैर, गुदा, उपस्थ आदि पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार इन चौदहो इन्द्रियोंको केवल अपने व दूसरोंके हितकर कर्मोंमें लगाते हुये, चित्तको निरन्तर मेरेमें तल्लीन रखते हैं, वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ॥१२॥१३॥

किन्तु जो मन, बुद्धि, चित्तसे भी अपना या किसी अन्यका अहित करता है, उसके सैकड़ों साधन हम दोनोंको प्रसन्न नहीं कर सकते ॥१४॥

हे सखियो ! सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति हितकर चेष्टा ही हमारी तथा विश्वके सभी शरीरोंमें निवास करने वाली श्रीप्रियाजूकी शीघ्रातिशीघ्र प्रसन्नता कराने वाला अमोघ साधन है ॥१५॥

इदं रहस्यमाख्यातं सारात्सारतरं मया । विश्वनाट्यप्रसङ्गेन यो यच्चित्तस्तमेति सः ॥१६॥
तस्माद्धि विश्वकल्याणभावसंशुद्धया धिया । आवयोरर्पितं चित्तं विधायावां सुखं व्रजेत् ॥१७॥
सख्यः किमिच्छथ द्रष्टुं यूयं कामं हि शंसत । यक्षकन्या इमाः सर्वा दर्शयिष्यन्ति वाञ्छितम् ॥१८॥

सख्य ऊचुः ।

श्रूयते भगवान् विष्णुर्भवतो रूपमन्वधात् । तस्य लीलां वयं द्रष्टुमिच्छामो युवयोः पुरा ॥१९॥

श्रीसूत उवाच ।

सखीनां प्रार्थितं श्रुत्वा स्मयमानमुखाम्बुजौ । दिदिशतुस्तदैवाज्ञां यक्षकन्याभ्य आदरात् ॥२०॥

श्रीदम्पत्यूचतुः ।

भवतीभिर्मुदा लीला विष्णुनाऽनुकृता शुभा । दर्श्यन्तामावयोरग्रे संक्षेपेण शुभेक्षणाः ॥२१॥

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्ताश्च तास्ताभ्यां रामलीलामदर्शयन् । आजन्मराज्यलाभान्तां यथा वच्मि तथा मुने! ॥२२॥
यथा पापभराक्रान्ता माधवी माधवप्रिया । ब्रह्माणं नाकिभिः साकं समियाद्गोस्वरूपिणी ॥२३॥

इस विश्वनाटयके प्रसङ्ग द्वारा मैंने आप लोगोंसे समस्त सारोंके सारभूत इस रहस्यको कथन किया है, कि जिसका चित्त जिसके प्रति आसक्त है, वह उसीको प्राप्त होता है ॥१६॥

इसलिये प्राणीको चाहिये, कि वह विश्वकल्याणकी भावना द्वारा अपनी शुद्ध अर्थात् विकार रहितकी हुई बुद्धि द्वारा, चित्तको हम दोनोंको अर्पण करके सुखपूर्वक हम दोनोंको प्राप्त करले ॥१७॥

हे सखियों ! बतलाइये, अब आप लोग और कौनसी नाटय लीला देखना चाहती हैं ? ये यक्षकुमारियाँ उसे दिखलायेंगी ॥१८॥

सखियाँ बोलीं:—हे प्यारे ! सुना जाता है, श्रीविष्णु भगवान्ने आपका रूप धारण किया था अतः हम लोग आप दोनों सरकारके सामने उनकी लीलाको देखना चाहती हैं ॥१६॥

श्रीसूतजी बोले:—हे श्रीशौनकजी! तब सखियोंकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीयुगलसरकारने मन्द मुस्काते हुये यक्षकुमारियोंको आदर-पूर्वक आज्ञा प्रदानकी :—॥२०॥

श्रीयुगलसरकार बोले:—हे सुन्दर लोचनाओं! आपलोग प्रसन्नता पूर्वक हमारे सामने श्रीविष्णु भगवानके द्वारा अनुकरणकी हुई हम दोनोंकी मङ्गलमयी लीलाको सूक्ष्मरूपसे दिखलाइये ॥२१॥

श्रीसूतजी बोले:—हे श्रीशौनकजी ! श्रीयुगल सरकारकी इस आज्ञाको सुनकर यक्षकुमारियों ने जिस प्रकार जन्मसे राजसिंहासनारूढ़ होने तककी श्रीरामलीलाका दृश्य दिखाया, उसी प्रकार मैं आपसे वर्णन करता हूँ ॥२२॥

जिस प्रकार भगवानकी प्यारी श्रीपृथ्वी देवी पापके भारसे बोझिल हो गौ रूपको धारण करके देववृन्दों सहित श्रीब्रह्माजीके पास गयी ॥२३॥

धरादुःखाभिभूतेन ब्रह्मणा च यथा हरिः । प्रादुर्भूय स्तुतः प्रादात्सान्त्वनां कृपयाऽन्वितः ॥२४॥
दाशरथे गृहे विष्णोः प्रादुर्भावो यथाऽभवत् । निजांशैः संयुतस्यापि रामरूपेण शार्ङ्गिणः ॥२५॥
भ्रातृभिः सह रामस्य बालचेष्टा मनोहराः । मातृभिर्लालनं प्रेम्णा यथा नित्यं विधीयते ॥२६॥
विश्वामित्रमहाराज–संवादोऽपि यथाऽ भवत् । कौशल्यया तदाज्ञप्तो रामो गन्तुं सहर्षिणा ॥२७॥
ताटकां च यथा हत्वा यज्ञं संरक्षता मुनेः । रक्षसां सुभुजादीनां बधो रामेण वै कृतः ॥२८॥
अहल्यां शापनिर्मुक्तां विधाय मिथिलापुरीम् । आगतो मिथिलेन्द्रेण तथा दृष्टश्च सानुजः ॥२९॥
भिन्ने धनुषि रामस्य मैथिली पद्मपाणिना । जयमालां यथा कण्ठे प्रार्पयन्नृपसंसदि ॥३०॥
बिवाहो भ्रातृभिस्तस्य परीतस्य तथाऽभवत् । रामस्य लोकरामस्य श्रीमिथिलेशसद्मनि ॥३१॥
जामदग्न्यस्य संवादः श्रीरामेण यथाऽ भवत् । कौशल्याया यथा गेहे मैथिलीनां प्रवेशनम् ॥३२॥
तथा प्रदर्शिता लीला ध्येया हृदयसंस्पृशः । यक्षकन्याभिरालीभ्यो मुदा श्रीरामसीतयोः ॥३३॥

पुनः पृथ्वी देवीके दुखसे दुखी श्रीब्रह्माजीके प्रार्थना करने पर, जिस प्रकार भगवान्ने प्रकट होकर उन्हें धैर्य देनेकी कृपाकी ॥२४॥

जिस प्रकार अपने अंशोंके सहित शार्ङ्ग-धनुषधारी श्रीविष्णु भगवान्ने श्रीरामरूपसे श्रीदशरथजी महाराजके भवनमें अवतार ग्रहण किया ॥२५॥

पुनः भाइयों सहित श्रीरामभद्रजूकी जो मनोहर लीलायें हुई, श्रीकौशल्या अम्बाजी आदि सभी मातायें जैसे उनको नित्य प्यार करती थीं ॥२६॥

श्रीविश्वामित्रजीका श्रीदशरथजीमहाराजके साथ जिस प्रकार संवाद हुआ, पुनः श्रीकौशल्या अम्बाजीने जिस प्रकार श्रीरामभद्रजीको श्रीविश्वामित्रजीके साथ जानेकी आज्ञा प्रदानकी ॥२७॥

जैसे ताड़का राक्षसीका बध करके श्रीविश्वामित्रजी महाराजके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामभद्रजूने सुबाहु आदि राक्षसोंका बध किया ॥२८॥

जिस प्रकार श्रीअहल्याजीको शापसे मुक्त करके श्रीरामभद्रजी मिथिलाजीमें पधारे तथा जिस प्रकार श्रीमिथिलेशजी महाराजने श्रीलखनलालजीके सहित उनका दर्शन किया ॥२९॥

धनुष तोड़ने पर जिस प्रकार श्रीमिथिलेश-राजकिशोरीजीने अपने कर-कमलों द्वारा राज-सभामें श्रीरामभद्रजूके गलेमें जयमाल अर्पणकी ॥३०॥

जिसप्रकर भाइयों सहित श्रीरामभद्रजूका श्रीमिथिलेशमहाराजके भवनमें विवाह हुआ।३१॥

जिस प्रकार श्रीरामभद्रजूसे श्रीपरशुरामजीका सम्वाद हुआ पुनः जिस प्रकार श्रीजानकीजी आदि श्रीमिथिलेशकुमारियोंने श्रीकौशल्या अम्बाजीके भवनमें प्रवेश किया ॥३२॥

उसी प्रकार यक्षकुमारियोंने सखियोंको श्रीसीतारामजी की, ध्यान करने योग्य मनोहर लीलाओंका दर्शन कराया ॥३३॥

अतीते द्वादशे वर्षे रामप्रव्राजनं वने। प्रीत्यै यथेह कैकेय्याः पित्रा दशरथेन च ॥३४॥
द्वारमावृत्य तिष्ठन्त्या माण्डव्या साश्रुनेत्रया। रामाद्वनं न यास्यामि वागवाप्ता यथेति च ॥३५॥
प्रव्रजन्तं समालोक्य श्रीरामं सीतयाऽन्वितम्। लक्ष्मणेन समं भ्रात्रा प्रकृतीनां यथा दशा ॥३६॥
सर्वा विरहसंतप्ताः श्रीरामे प्रस्थिते वनम्। माण्डवी दुःखरहिता चकिता वीक्ष्य तां यथा ॥३७॥
निषादस्नेहवार्ता च भरद्वाजसमागमः। यमुनापारगमनं दर्शितेन पथा मुनेः ॥३८॥
वाल्मीकिमहितो रामस्तदाज्ञामनुपालयन्। चित्रकूटे यथोवास पर्णशालां विधाय सः ॥३९॥
कोशलेन्द्रतनुत्यागो यथा च भरतोद्यमः। नेतुं पुरीमयोध्यां श्रीरामं दुःखदकाननात् ॥४०॥
सीताया अंशुकोत्सृष्टा दिव्याः कनकविन्दवः। सुप्तायाः शिंशपामूले यथाऽऽसंस्तस्य तापदाः ॥४१॥
समुत्तीर्णः परीक्षायां भरद्वाजेन सान्त्वितः। यथा ददर्श श्रीरामं भरतश्चित्रकूटगम् ॥४२॥

बारह वर्ष व्यतीत होनेके पश्चात् रानी कैकेयीकी प्रसन्नताके लिये पिता श्रीदशरथजीने जिस प्रकार श्रीरामभद्रजीको वन वास दिया ॥३४॥

द्वार घेरकर खड़ी अश्रुलोचना श्रीमाण्डवीजीने "अच्छा हम वनको नहीं जाँयगे" श्रीरामभद्रजूसे इस बचनको जिस प्रकार प्राप्त किया ॥३५॥ श्रीलखनलालजी तथा श्रीजनकराज-किशोरीजीके सहित श्रीरामभद्रजीको बन जाते हुये देखकर प्रजाकी जो दशा हुई ॥३६॥

श्रीरामभद्रजूके वन चले जाने पर जिसप्रकार उनके वियोग जन्य दुःखसे रहित श्रीमाण्डवीजी सभी माताओंको विरह ज्वालासे अत्यन्त तपी देख कर चकित हुईं, कि ये सब क्यों इस प्रकार दुःखी हैं ? क्योंकि श्रीरामभद्रजू तो अपनी प्रतिज्ञानुसार बनको न जाकर मेरी आँखोके सामने अनेक प्रकारकी परिकर-सुखद लीलायें कर ही रहे हैं, और वे विरह व्याकुल मातायें जिस प्रकार उन श्रीमाण्डवीजो को दुखी न देखकर आश्चर्य करती हुईं, कि यह कितनी कठोर है, जो सबको रोते हुये देखकर भी नहीं रो रही हैं ॥३७॥

श्रीरामभद्रजीसे निषादराजगुहकी जिस प्रकार प्रेम वार्ता हुई तथा जिस प्रकार उनका श्रीभरद्वाजजीसे मिलन हुआ, पुनः उनके दिखलाये हुये मार्गके द्वारा श्रीयमुनाजीको जिस प्रकार पार किये ॥३८॥ जिस प्रकार महर्षि श्रीवाल्मीकिजीसे पूजित होकर श्रीरामभद्रजूने उनकी आज्ञाका पालन करते हुये पत्तोंकी कुटी बनाकर चित्रकूटमें निवास किया ॥३९॥

जिस प्रकार श्रीदशरथजी महाराजने अपने शरीरका त्याग किया, जिस प्रकार श्रीभरत-लालजीने श्रीरामभद्रजीको दुःखदायक वनसे वापस श्रीअयोध्यापुरी लानेके लिये प्रयत्न किया४०

जिस प्रकार शीशम वृक्षकी जड़में सोते हुये श्रीजनक-राजदुलारीजीके वस्त्रोंसे टूट कर गिरे सोनेके नगोंको देखकर श्रीभरतलालजीके हृदयमें महान परिताप हुआ ॥४१॥

राजसुख-त्याग-परीक्षामें पास हो जाने पर श्रीभरतलालजीने जिस प्रकार श्रीभरद्वाजजीके सान्त्वना (धैर्य) देने पर चित्रकूटमें विराजे श्रीरामभद्रजीका दर्शन प्राप्त किया ॥४२॥

रामभरतसंवादो यथा जातो ह्यलौकिकः। प्रदाय पादुके भ्रात्रेऽयोध्यायां तं न्यवर्तयत् ॥४३॥
दर्शिता मोहिनी लीला दृश्यैरावश्यकैर्युता। भवतापहरी पुण्या यक्षकन्याभिरुज्ज्वला ॥४४॥
यथा जनकनन्दिन्याः सुसंवादोऽनुसूयया। शरभङ्गतनुत्यागः सुतीक्ष्णप्रेमदर्शनम् ॥४५॥
श्रीरामागस्त्ययोर्वार्ता यथाऽऽसीन्मोदवर्द्धिनी। यथापञ्चवटीं गत्वा न्यवसत्कुम्भजाज्ञया ॥४६॥
ससेनानां खरादीनां कृतो रामेण वै वधः। पञ्चवट्यां च वसता यथा हिंसारतात्मनाम् ॥४७॥
मायासीतापहरणं जटायूरामदर्शनम्। कबन्धे निहते मार्गे भक्षणाय कृतोद्यमे ॥४८॥
शवरीरामसंवादस्तत्कृता प्रभुसत्क्रिया। तथा ता दर्शयामासुर्लीला यक्षकुमारिकाः ॥४९॥
वायुपुत्रेण रामस्य ऋष्यमूकगिरौ यथा। कारितः कृतकृत्येन सुग्रीवेण समागमः ॥५०॥
निहत्य बालिनं युद्धे हर्य्योश्च युद्धचमानयोः। सुग्रीवाय ददौ राज्यं यथा रामो हि बुद्धिमान् ॥५१॥

जिस प्रकार श्रीचित्रकूटमें श्रीरामजीका श्रीभरतलालजीके साथ अलौकिक संवाद हुआ, पुनः जिस प्रकार अपनी चरण-पादुकाओंको देकर श्रीरामभद्रजूने श्रीभरतलालजीको श्रीअयोध्याजी वापस भेजा उसी प्रकार यक्ष-कन्याओंने अनेक आवश्यक दृश्यों सहित संसारकी ताप हरण करने वाली अर्थात् दिव्यधाम-प्रदान करने वाली पवित्र, उज्ज्वल, मोहिनी लीला का दर्शन कराया ॥४३॥४४॥

जैसे श्रीजनकनन्दिनीजूका श्रीअनसूयाजीके साथ मातृ-लोक-परमहितकर संवादहुआ जिसप्रकार शरभङ्गऋषिने अपने शरीरका त्याग किया, जिस प्रकार श्रीसुतीक्ष्णजीके प्रेमका दर्शन हुआ॥४५॥

जैसे श्रीरामभद्रजूका श्रीअगस्त्यजी महाराजके साथ आनन्दवर्द्धक सम्वाद हुआ, जैसे श्रीरामभद्रजूने श्रीअगस्त्यजी महाराजकी आज्ञासे पञ्चवटीमें जाकर निवास किया ॥४६॥

जिस प्रकार पञ्चवटीमें निवास करते हुये श्रीरामभद्रजूने सेना सहित हिंसापरायण खर, दूषण आदि चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया ॥४७॥

मायाकी बनाई श्रीसीताजीका जिस प्रकार हरण हुआ, जिस प्रकार जटायुने श्रीरामभद्रजूका दर्शन किया, मार्गमें भक्षण करनेको उद्यत हुये कबन्ध राक्षसके मारे जाने पर श्रीरामभद्रजूका श्रीशवरीजीके साथ जिस प्रकार सम्वाद हुआ, जिसप्रकार श्रीशवरीजीने श्रीरामभद्रजीका सत्कार किया, उसी प्रकारसे यक्ष कुमारियोंने सखियोंको सभीलीला दिखायी ॥४८॥४९॥

ऋष्यमूक पर्वतपर कृत कृत्य हो वायु पुत्र श्रीहनुमत्लालजीने जिस प्रकार श्रीरामभद्रजूका श्रीसुग्रीवजीसे मिलन कराया ॥५०॥

युद्धमें दोनों वानरोंमें परस्पर युद्ध करने पर जिस प्रकार महाबुद्धिमान श्रीरामभद्रजूने बालीको मारकर उसका राज्य सुग्रीवको प्रदान किया ॥५१॥

तथा प्रदर्शयाञ्चक्रुर्लीलास्ता यक्षकन्यकाः । सखीभ्यो विस्मितात्मभ्यो जानकीरामभद्रयोः ॥५२॥
विसृष्टो वानरेन्द्रेण हनुमान् मारुतात्मजः । अङ्गदाद्यैः समं शूरैः सहस्रैर्वानरैर्यथा ॥५३॥
सम्पातिवचनाल्लङ्कां प्रविष्टेन हनूमता । अशोकवनिकामध्ये यथा दृष्टा विदेहजा ॥५४॥
दग्धलङ्केन वै तेन भर्त्सयित्वा दशाननम् । वानरेभ्यस्तटस्थेभ्यः प्रदत्ता सान्त्वना यथा ॥५५॥
मारुतेः सर्ववृत्तान्तं श्रीसीताया रघूत्तमः । निशम्य वानरैः सेतुं यथा सिन्धावकारयत् ॥५६॥
तथा ता दर्शयामासुर्यक्षपुत्र्यो मनोहराः । दृश्यैश्च संयुतां लीलां यथार्हैस्ताभ्य आत्मदाम् ॥५७॥
सुवेलाचलमासाद्य प्रहितो रावणान्तिकम् । अविरोधसुखस्थित्यै राघवेणाङ्गदो बली ॥५८॥
बलैश्वर्यमदान्धं तं निरीक्ष्य कपिकुञ्जरः । धर्षयित्वा दशग्रीवं श्रीरामान्तिकमाययौ ॥५९॥
कथितं बालिपुत्रस्य समाकर्ण्य रघूद्वहः । युद्धारम्भाय भगवान् कपीन्द्राय यथाऽऽदिशत् ॥६०॥
रक्षसां वानरैर्ऋक्षैर्हर्यृक्षाणां च राक्षसैः । समारब्धं यथा युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६१॥

आश्चर्य युक्त हृदय हुई सखियोंको यक्षकुमारियोंने श्रीयुगल सरकारकी उसी प्रकारकी लीलायें दिखाई ॥५२॥

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवने श्रीअङ्गदजी आदि सहस्रों शूर वानरोंके सहित श्रीहनुमानजी को श्रीजनकनन्दिनीजूकी खोज करनेके लिये विदा किया ॥५३॥

जिस प्रकार सम्पातिके बतलाने पर श्रीहनुमानजीने लङ्कामें पहुँचकर अशोक वाटिकामें श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका दर्शन किया ॥५४॥

जिस प्रकार लङ्का जलाने वाले उन श्रीहनुमानजीने दशमुख (रावण) को फट्कार लगाकर, समुद्रके किनारे उपस्थित वानरोंको सान्त्वना प्रदानकी ॥५५॥

जिस प्रकार श्रीरामभद्रजूने श्रीपवनकुमारके द्वारा श्रीजनकराजनन्दिनीजूका सम्पूर्ण समाचार ज्ञात करके वानरों द्वारा समुद्र पर पुल बँधवाया ॥५६॥

यक्षकुमारियोंने उसी प्रकार यथायोग्य दृश्यों सहित सखियोंको भगवत्प्राप्तिकारिणी लीला दिखाई ॥५७॥ जिस प्रकार सुवेलपर्वत पर पहुँच कर, श्रीरामभद्रजूने विना विरोध (प्रेमभाव) वाले सुखको स्थिर रखनेके लिये बलशाली अङ्गदजीको रावणके पास भेजनेकी कृपा की ॥५८॥

बल व ऐश्वर्यके अभिमानमें रावणको अंधा हुआ देखकर श्रीअङ्गदजी जिस प्रकार उसे अपमानित करके श्रीरामभद्रजूके पास आये ॥५९॥

श्रीअङ्गदजीके कथनको सुनकर सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण धर्मके भण्डार श्रीरामभद्रजूने वानर-राजसुग्रीवको युद्ध आरम्भ करने के लिये जिस प्रकार आज्ञा प्रदानकी ॥६०॥

राक्षसोंका वानरोंके साथ और वानरोंका राक्षसोंके साथ जिस प्रकार अत्यन्त घोर तथा रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हुआ ॥६१॥

लक्ष्मणेन हतो युद्धे मेघनादो महाबलः । कुम्भकर्णस्तु रामेण त्रिलोकीभयदोऽसुरः ॥६२॥
अवशिष्टैर्महाशूरैः परीतः सबलव्रजः । यथा रामेण निहतो रावणो लोकरावणः ॥६३॥
विभीषणाय तद्राज्यं प्रदाय जनकात्मजाम् । पश्यतां सर्वदेवानामग्निहस्ताद्यथा ऽग्रहीत् ॥६४॥
पुष्पकं स समारुह्य विमानं देवनिर्मितम् । अयोध्याभिमुखं रामो लङ्कायाः प्रस्थितो यथा ॥६५॥
तथा प्रदर्शिता लीला यक्षकन्याभिरादरात् । समेता बहुभिर्दृश्यैः सर्वचित्तापहारिभिः ॥६६॥
प्रवृत्तिं भरतस्याथ श्रुत्वा स्नेहचमत्कृताम् । भरद्वाजाश्रमाद्रामो नन्द्रिग्रामं यथाऽगमत् ॥६७॥
यथा भरतमालिङ्ग्य ददौसंयोगजं सुखम् । मातृभ्यश्च प्रजाभ्यश्च सर्वाभ्यो युगपत्क्षणात् ॥६८॥
तथा ता दर्शयाञ्चक्रुर्विष्णो रामस्वरूपिणः । लीलाः सुखश्रवा हृद्याः स्मर्तॄणां किल्बिषापहाः ॥६९॥
राज्याभिषेकलीलां च सखीभ्यः श्रुतिपावनीम् । अदर्शयन्महाभागाः सुदृश्यैर्विश्वमोहिनीम् ॥७०॥
हर्षशोकावतिक्रम्य प्रणतानन्दवर्द्धनौ । प्रणेमुर्दम्पती प्रीत्या पुनस्ता प्राणवल्लभौ ॥७१॥

जिस प्रकार युद्धमें श्रीलखनलालजीने महाबलशाली मेघनादको और त्रिलोकीके भयदायक कुम्भकर्ण राक्षसको प्रभु श्रीरामजीने मारा ॥६२॥

जिस प्रकार बचे हुये शूरों तथा सेना सहित अपने उग्र व्यवहारके द्वारा समस्त लोकोंको रुदन करानेवाले रावणका भगवान् श्रीरामभद्रजूने संहार किया ॥६३॥

पुनः जिस प्रकार उस रावणका राज्य श्रीविभीषणजीको प्रदान करके श्रीरामभद्रजूने समस्त देवताओंके समक्ष अग्निदेवके हाथसे श्रीजनकराजनन्दिनीजीको ग्रहण किया ॥६४॥

जिस प्रकार देव निर्मितपुष्पक विमानमें बैठकर श्रीरामभद्रजू लङ्कासे श्रीअयोध्याजीकी ओर प्रस्थान किये उसी प्रकार यक्षकुमारियोंने अनुकूल दृश्योंसहित आदरके साथ सभीके चित्त हरण कर लेने वाली लीलायें दिखाईं ॥६५॥६६॥

जिस प्रकार श्रीभरतलालाजीकी स्नेहविभूषित प्रवृत्तिको सुनकर श्रीरामभद्रजी, श्रीभरद्वाजजी के आश्रमसे नन्दिग्रामको पधारे ॥६७॥

जिस प्रकार श्रीभरतलालजीको हृदय लगाकर श्रीरामभद्रजूने उन्हें व श्रीकौशल्याअम्बाजी आदि माताओंको तथा सभी प्रजाको एक ही साथ क्षणमात्रमें अपने संयोगका सुख प्रदान किया उसी प्रकार उन यक्षकुमारियोंने श्रीरामरूपधारी विष्णु भगवानकी सुखद, मनोहर तथा चिन्तन करनेवालोंके सम्पूर्ण पापोंको हरण करने वाली लीलाओंका दर्शन कराया ॥६८॥६९॥

पुनः उन महाभाग्यवतियोंने सुन्दर दृश्योंसे युक्त श्रवणोंको पवित्र और विश्वको मुग्ध कर लेने वाली श्रीरामभद्रजूकी राज्याभिषेक, लीलाका दर्शन सखियोंको कराया ॥७०॥

तदनन्तर हर्ष शोकसे रहितहो उन यक्षकुमारियोंने, भक्तोंके आनन्द-वर्द्धक प्राणप्यारे श्रीयुगल-सरकारको बड़े प्रेम पूर्वक प्रणाम किया ॥७१॥

श्रीदम्पती ऊचतुः ।

वरं ब्रूत यथा कामं ज्ञात्वा नौ हृष्टमानसौ । भद्रं वो यक्षपुत्र्योऽस्तु वरदौ नाटचलीलया ॥७२॥

श्रीयक्षकुमार्य ऊचुः ।

यदि तुष्टौ कृपामूर्त्ती भवन्तौ जगदीश्वरौ । वयं धन्या महाभागाश्चीर्णनानाविधव्रताः ॥७३॥
दास्यमेवेप्सितं नित्यं दम्पत्योः पद्मपादयोः । अस्माकं वरमासाद्यं तद्धि नो दातुमर्हथ ॥७४॥
वासः प्रदीयतां तत्र वसन्तीनां हि यत्र नः । सेवासौलभ्यसंप्राप्तिर्युवयोः सर्वदा भवेत् ॥७५॥
तोषिताभ्यां च किङ्कर्यः सेवया तुच्छया वयम् । युवाभ्यां प्राणनाथाभ्यां निबोध्याः शरणं गताः ७६

श्रीसूत उवाच ।

एवमुक्तौ दयाशीलौ शरण्यौ सर्ववित्प्रभू । जानकीराघवौ ताभ्यो ददतुर्वाञ्छितं वरम् ॥७७॥
अथ सरसिजनेत्रौ संपरीतौ सखीभिः कनकभवनसञ्ज्ञं प्रेयतुर्दिव्यहर्म्यम् ।
असितकनकवर्णौ नीलपीताम्बराढ्यौ विविधवनजमालौ पूर्णलावण्यधाम्नी ॥७८॥

श्रीयुगलसरकार बोले:—हे यक्षकुमारियो ! आप लोगोंका कल्याण हो । इस नाट्य लीलासे हम दोनों वरदायकोंको तुम प्रसन्न जानकर जो इच्छा हो, माँग लो ॥७२॥

यक्षकुमारियाँ बोलीं:—हे कृपामूर्त्ती ! यदि आप दोनों चर-अचरके नियामक प्रभु हम लोगों के प्रति प्रसन्न हैं, तो हमारे नाना प्रकारके सभी ब्रत पूरे हो गये, और हमलोग निश्चय ही बड़ी भाग्यशालिनी तथा पुण्यात्मा हैं ॥७३॥

हे श्रीयुगलसरकार ! आप दोनों श्रीप्रियाप्रियतमजूके श्रीचरणकमलोंकी सेवकाई ही हम लोगोंका अभीष्ट तथा प्राप्त करने योग्य वर है, आप उसे ही प्रदान करनेकी कृपा करें ॥७४॥

हम लोगोंको जहाँ रहकर युगल—सेवाकी सुलभता प्राप्त हो वहीं निवास प्रदान करने की कृपा कीजिये तथा तुच्छ सेवासे प्रसन्न हुये आप दोनों सरकार, हम लोगोंको शरणमें आई हुई अपनी किङ्किरियाँ जानिये ॥७५॥७६॥

श्रीसूतजी बोले:—हे शौनकजी ! यक्षकुमारियोंके इस प्रकार प्रार्थना करने पर दयामय स्वभाव वाले, समस्तजीवोंकी रक्षा करनेको समर्थ, सर्वज्ञ, सर्व-सममर्थ, श्रीजनकराजनन्दिनीजी तथा श्रीरघुनन्दन प्यारेजूने उन्हें अभीष्टवर प्रदान किया ॥७७॥

तत्पश्चात् जिनके कमलके समान नेत्र हैं, श्याम व सुवर्णके समान जिनका श्याम गौर वर्ण है, नीलाम्बर तथा पीताम्बरको जो धारण किये हैं, अनेक प्रकारके कमलोंकी मालायें जिनके गलेमें सुशोभित हैं, एवं जो पूर्ण सौन्दर्यके धाम हैं, वे दोनों सरकार श्रीसीतारामजी महाराज अपनी सखियोंके साथ श्रीकनक-भवन नामके दिव्य भवनमें पधारे ॥७८॥

इत्थं नित्यं प्रमुदि विपिने स्वालिभिः सप्रियश्च कुर्वन्केलीः कनकभवने ह्लादिनीः कीर्त्यकीर्त्तिः ।
सर्वेशोऽसौ स्वतनुसुषमाकामदर्पापहारी हित्वाऽयोध्याममितविभवां पादमेकं न याति ॥७६॥

इस प्रकार कीर्त्तनकरने योग्य कीर्त्तिसे युक्त, अपने श्रीअङ्गकी अतुलित शोभासे कामदेवके अभिमानको हरण करने वाले वे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामभद्रजू अपनी श्रीप्रियाजूके सहित-श्रीकनक भवनमें आह्लाद-प्रदायिनी केलियोंको करते हुये अनन्त ऐश्वर्य शालिनी श्रीअयोध्याजीको छोड़कर कभी एक पैर भी बाहर नहीं जाते ॥७६॥

इति सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

—❀❀❀—

अथाष्टोत्तरततमोऽध्यायः ।

ग्रन्थके सम्पूर्ण अध्यायोंकी विषयसूची तथा स्तुतिपूर्वक श्रीकिशोरीजीसे प्राप्तके दुरुपयोगकी क्षमायाचना ।

काव्यं सुमङ्गलं हृद्यं 'जानकी-चरितामृतम् । विषय - सूच्यध्यायानां क्रमादस्योच्यतेऽधुना ॥१क॥
आदौ कात्यायनीपृष्टो याज्ञवल्क्यो जगाद ताम् । जीवकल्याणसंसिद्धयै साधनं सिद्धसम्मतम् ॥१॥
श्रीसीतारामसम्बन्ध-भावनिष्ठानुवर्णनम् । मुनिना याज्ञवल्क्येन द्वितीये भावितात्मना ॥२॥
आविर्भावस्य को हेतुः पराशक्तेर्निशम्य तत् । पार्वतीशिवसंवादं तृतीये स समूचिवान् ॥३॥
श्रीसीतामन्त्रराजार्थं प्रियायै चाभिशंसनम् । पृष्टस्य याज्ञवल्क्यस्य चतुर्थे भावितात्मनः ॥४॥

लौकिक-पारलौकिक मङ्गलोंसे भरपूर हृदयको प्रिय प्रतीत होने वाला जो "श्रीजानकी-चरितामृत" नामका 'काव्य' है, उसके अध्यायोंकी विषय सूचीका वर्णन अब क्रमशः किया जाता है ॥१क॥ प्रथम अध्यायमें श्रीकात्यायनीजीके पूछने पर श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजने सिद्धोंके मतानुसार जीवकल्याणकारी साधन का वर्णन किया है ॥१॥

दूसरे अध्यायमें भगवच्चिन्तन-परायण श्रीयाज्ञयल्क्य मुनिने श्रीसीतारामजी महाराजके प्रति अनेक सम्बन्ध-भाव निष्ठाओंका वर्णन किया है ॥२॥

तीसरे अध्यायमें पराशक्ति, जगज्जननी, सर्वेश्वरी, श्रीकिशोरीजीके इस पृथ्वीतल पर अवतार ग्रहण करनेका क्या कारण हुआ ? श्रीकात्यायनीजीके इस प्रश्नको सुनकर श्रीयाज्ञवल्क्यजीने उनके प्रति भगवती श्रीपार्ववतीजी तथा श्रीभोलेनाथजीके सम्वादको वर्णन किया है ॥३॥

चौथे अध्यायमें पूछने पर भगवत् तत्त्वचिन्तक श्रीयाज्ञवल्क्यजीने अपनी प्रिया श्रीकात्यायनी जीके प्रति श्रीसीतामन्त्रराजके अर्थका वर्णन किया ॥४॥

परधामानुकथनं कृत्वा श्रीमङ्गलस्तुतिम् । सेवाया मुक्तजीवानां पञ्चमे वर्णनं शुभम् ॥५॥
भावसुग्राहिणी सीता प्रोक्ता षष्ठे पुरारिणा । सप्रमाणं समाभाष्य प्रियाशङ्का निवारिता ॥६॥
श्रीसीतारामसंवादवर्णनं सप्तमे कृतम् । जीवकल्याणप्राप्त्यर्थं साकेतस्य शुभावहम् ॥७॥
निमिवंशानुकथनं सीरध्वजनृपावधि । सदारापत्यबन्धूनामष्टमे तस्य वर्णनम् ॥८॥
सम्बन्धिनां तथाऽन्येषां वर्णनं क्रमपूर्वकम् । कृतं मातामहादीनां नवमे तत्समासतः ॥९॥
स्नेहपराशुभासक्तेर्दिनचर्य्याविधेस्तथा । पद्मगन्धोपदेशस्य कथनं दशमे शिवम् ॥१०॥
सीतारामसमाह्वानं दर्शके तत्स्वमन्दिरे । इच्छन्त्या उक्ति कथनं पद्मगन्धोत्तरं तथा ॥११॥
चन्द्रकलोपदिष्टायास्तन्मनोभाववर्णनम् । नित्यसेवारतायाश्च द्वादशे श्रीविहारिणोः ॥१२॥
भोजनान्तेऽसुनाथाभ्यां मनोभावनिवेदनम् । चन्द्रकलाप्रधानायास्तस्याः स्तुत्वा त्रयोदशे ॥१३॥
एवमस्त्विति संपीय दम्पत्योर्वचनामृतम् । विश्रामागारगमनं श्रुतीन्दौ तच्छुभात्मनः ॥१४॥

पाँचवें अध्यायमें श्रीकिशोरीजीकी मङ्गल स्तुति करके श्रीयाज्ञवल्क्यजी महाराजने दिव्य-धामका तथा वहाँके निवासी नित्य मुक्त जीवोंकी सेवाका मङ्गलमय वर्णन किया है ॥५॥

छठें अध्यायमें श्रीराम-वल्लभा श्रीमिथिलेश राजकिशोरीजी "केवल भावग्राहिणी हैं" इसे प्रमाण सहित वर्णन करके श्रीभोलेनाथजीने अपनी प्रिया श्रीपार्वतीजीकी शङ्काका निवारण किया है ॥६॥ सातवें अध्यायमें जीवोंके कल्याण-प्राप्तिके लिये श्रीसाकेतधाममें पारस्परिक श्रीसीता-रामजी महाराजके मङ्गलकारी सम्वादका वर्णन है ॥७॥

आठवें अध्यायमें श्रीइक्ष्वाकु महाराजसे लेकर श्रीसीरध्वज महाराज तकके निमिवंशका तथा उनकी रानी, पुत्रादि सहित वन्धुओंका वर्णन है ॥८॥ नवमें अध्यायमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके नाना आदि अन्य सम्बन्धियोंका क्रमपूर्वक वर्णन है ॥९॥

दशवें अध्यायमें श्रीस्नेहपराजीकी मङ्गलमयी आसक्तिका तथा उनकी दिन-चर्या विधि एवं उनके प्रति श्रीपद्मगन्धाजीके उपदेशका मङ्गलकारी वर्णन है ॥१०॥

ग्यारहवें अध्यायमें श्रीसीतारामजी महाराजको अपने भवनमें बुलानेकी इच्छा रखती हुई हुई श्रीस्नेहपराजीकी उक्तिका कथन तथा श्रीपद्मगन्धाजीके उत्तरका वर्णन है ॥११॥

बारहवें अध्यायमें भक्तोंके हृदयमें विहार करने वाले श्रीसीतारामजीकी नित्यसेवापरायणा तथा श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा उपदेश प्राप्तकी हुई श्रीस्नेहपराजीके मानसिक भावोंका वर्णन है।१२।

तेरहवें अध्यायमें श्रीचन्द्रकलाजीको अपनी प्रधान यूथेश्वरी (परमाचार्या) मानने वाली श्रीस्नेहपराजूका भोजनके बाद स्तुति करके दोनों प्राणनाथोंके प्रति अपना मनोभाव निवेदन प्रसङ्ग वर्णित है ॥१३॥

चौदहवें अध्यायमें श्रीयुगलसरकारके "ऐसा ही होगा" इस वचन रूपी अमृतका पान करके पवित्र मति श्रीस्नेहपराजीका अपने विश्राम भवन जानेका वर्णन है ॥१४॥

गृहमायास्यतो मेऽद्य प्राणेशौ तच्छरक्षितौ । संस्मरन्त्या इति प्रेमप्रलापादिप्रकीर्त्तनम् ॥१५॥
श्रीसीतारामगमनं स्नेहपरानिकेतने । तदाभोजनपूजाया वर्णनं तु रसोडुपे ॥१६॥
समाप्य शेषपूजां तत्स्तुत्वा सप्तदशे प्रियौ । क्षमापनानुकथनं प्रमादकृतविस्मृतेः ॥१७॥
स्वापितयोश्च पर्यङ्के तयोः शोभावलोकनम् । पुष्पालङ्कारकरणं ततो वसुनिशाकरे ॥१८॥
चन्द्रकला नभो वीक्ष्य ग्रहभूमौ घनावृतम् । प्रियाभ्यां वेदयामास दोलोत्सवमनोरथम् ॥१९॥
वियन्नेत्रे समागत्य सुचित्रानन्दिनीगृहात् । प्रेयसोः सरयूतीरे दोलनोत्सववर्णनम् ॥२०॥
एकविंशे तयोस्तस्माच्छ्रीसरय्वास्तटाच्छुभात् । रत्नसिंहासनागारगमनस्यानुकीर्त्तनम् ॥२१॥
सम्पन्ने मङ्गले गाने सखीनामञ्जसा सति ! । अदृष्टवाणीभावानां द्वाविंशे श्रवणं स्मृतम् ॥२२॥
सोद्धार्येति त्रिविंशे च गदन्त्या श्रुतिरूपया । दृष्टं जीवाशिरोजुष्टं प्रेयसोश्चरणद्वयम् ॥२३॥
श्रुतिनेत्रे तया भावपुष्पाञ्जलिसमर्पणम् । आनिशाशनशृङ्गारभवनागमनं तयोः ॥२४॥

पन्द्रहवें अध्यायमें हमारे दोनों प्राणनाथ श्रीयुगलसरकारजी "आज मेरे भवनमें पधारेंगे" ऐसा स्मरण करती श्रीस्नेहपराजीके प्रेम-प्रलापका वर्णन है ॥१५॥

सोलहवें अध्यायमें श्रीसीतारामजीका श्रीस्नेहपराजीके भवनमें पधारने तथा उनके द्वारा श्रीयुगलसरकारके भोजन पर्यन्तकी पूजाका वर्णन है ॥१६॥

सत्रहवें अध्यायमें शेष पूजाको पूर्ण करके श्रीस्नेहपराजीका अपने प्यारे श्रीसीतारामजी महाराजसे स्तुति करके प्रमाद वशकी हुई अपनी भूल चूककी क्षमा-याचनाका वर्णन है ॥१७॥

अठारहवें अध्यायमें श्रीस्नेहपराजीका पलङ्ग पर शयन कराये दोनों श्रीसीतारामजी महाराजकी शोभाका अवलोकन तथा उनके द्वारा श्रीयुगलसरकारको पुष्पोंका शृङ्गार धारण करानेका वर्णन है ॥१८॥

उन्नीसवें अध्यायमें मेघोंसे आच्छादित आकाश मण्डलको देखकर श्रीचन्द्रकलाजीके द्वारा दोनों परम प्यारे श्रीसीतारामजीसे सखियोंके झूलन महोत्सव मनोरथका निवेदन है ॥१९॥

बीसवें अध्यायमें सुचित्रानन्दिनी श्रीस्नेहपराजीके भवनसे प्रस्थित हुये श्रीप्रियाप्रियतमजूके श्रीसरयूतटपरके झूलनोत्सवका वर्णन है॥२०॥ इक्कीसवें अध्यायमें प्यारे श्रीसीतारामजीमहाराज केश्रीसरयूजीके पवित्र तटसे रत्नसिंहासन भवन पधारनेका वर्णन है ॥२१॥

बाइसवें अध्यायमें श्रीरत्न-सिंहासन भवनमें सखियोंके मङ्गलगान सम्पन्न हो जाने पर, अदृष्ट वाणी भावोंका श्रवण वर्णन है ॥२२॥

श्रीश्रुतिरूपाजीकी जीवा सखीके उद्धारके लिए प्रार्थना श्रीयुगलसरकारसे एवं उसकी सफलता का प्रत्यक्ष दर्शन वर्णन तेइसवें अध्याय में है ॥२३॥

चौबीसवेंअध्यायमें श्रीयुगलसरकारके लिये श्रीजीवासखी द्वारा भाव पुष्पाञ्जलि समर्पण तथा उनके ब्यारूसे शृङ्गार-भवन तक पदार्पणका वर्णन है ॥२४॥

शरनेत्रमिते स्वापमन्दिरे गमनं तयोः । रासागारमथो गत्वा कृत्वा रासमहोत्सवम् ॥२५॥
सुचित्रानन्दिनी ताभ्यां विसृष्टा रसलोचने । स्वालये सा प्रियौ दृष्ट्वा पृच्छ्यते प्रेयसा पुनः ॥२६॥
मुनिनेत्रे प्रियागाथा कथ्यतां रतिदायिनी । इति स्नेहपराऽऽज्ञप्ता नतोचे नारदागमम् ॥२७॥
रामोऽयं मे कथं भूयाज्जामातेति शुचा नृपः । भ्रातरं प्रेषयामास वसुनेत्रेऽन्तिकं सताम् ॥२८॥
आगतेभ्यो महर्षिभ्यः समाह्वानस्य कारणम् । प्रोक्तं विदेहराजेन पृष्टेन ग्रहलोचने ॥२९॥
आज्ञया परमर्षीणां वियद्रामे प्रतोषितात् । जनकस्य वरप्राप्तिः शङ्करान्मनसेप्सिता ॥३०॥
भूमिलोके च यज्ञार्थमावासादिप्रकल्पनम् । पुनराह्वानकरणं महर्षिनृपशिल्पिनाम् ॥३१॥
पञ्चम्यां माधवे मासि यज्ञारम्भश्च दृग्गुणे । अब्दे पूर्णे नवम्यां च मैथिलीजन्मकीर्त्तनम् ॥३२॥
प्रेममुग्धैर्मुनिश्रेष्ठैर्दम्पत्योरभिनन्दनम् । जगद्गुणे कुमारीणां हार्दिकेहानुवर्णनम् ॥३३॥
श्रुतिलोके तु प्रत्येकवर्गजातिनिकेतने । जन्मोत्सवस्य जानक्या आषष्ठ्युत्सववर्णनम् ॥३४॥

पच्चीसवें अध्यायमें रास-भवन (भगवान्‌के मन्दिर) में जाकर भगवदानन्द प्रदायक महोत्सव करके श्रीयुगलसरकारका अपने शयन-भवन प्रस्थानका वर्णन है ॥२५॥

छब्बीसवें अध्यायमें श्रीयुगलसरकारके द्वारा विदाकी हुई श्रीस्नेहपराजीको शयनगृहमें दोनों सरकारका दर्शन तथा श्रीप्यारेजीकी श्रीप्रिया चरित्र जिज्ञासाका वर्णन है ॥२६॥

सत्ताइसवें अध्यायमें श्रीप्रियाजूके चरित्र वर्णन की आज्ञा स्वीकार करके श्रीस्नेहपराजी द्वारा उन प्यारेके जन्मोत्सवमें श्रीनारदजीके शुभागमनका वर्णन है ॥२७॥

अट्ठाइसवें अध्यायमें श्रीचक्रवर्ती-कुमार श्रीरामभद्रजू, "हमारे किसप्रकार जमाई बनसकेंगे" इस चिन्तासे युक्त हो श्रीमिथिलेशजी महाराजका अपने भाई श्रीकुशध्वजीको सन्तोंके पास भेजनेका प्रसङ्ग वर्णित है ॥२८॥ उन्तीसवें अध्यायमें श्रीमिथिलाजीमें आयेहुये महर्षियोंके पूछने पर श्रीविदेहजी महाराज द्वारा उनके बुलानेका कारण निवेदित है ॥२९॥

तीसवें अध्यायमें ऋषियोंकी आज्ञासे प्रसन्न किये हुये श्रीभोलेनाथजी द्वारा श्रीमिथिलेशजी महाराजकी मनोभिलषित वरदान प्राप्तिका वर्णन है ॥३०॥

एकतीसवें अध्यायमें पुत्रीष्टि यज्ञके लिये निवासस्थानोंको बनवाना तथा आमन्त्रित महर्षियों राजाओं एवं शिल्पकारियोंका आगमन वर्णित है ॥३१॥

बत्तीसवें अध्यायमें वैशाख शुक्ला पञ्चमीके दिन यज्ञको प्रारम्भ करना तथा एक वर्ष पूर्ण होने पर वैशाखशुक्ला नवमीके दिन श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनीजूके प्राकटयका वर्णन है ॥३२॥

तेंतीसवें अध्यायमें प्रेममुग्ध महर्षियोंके द्वारा श्रीसुनयनामहारानी व श्रीमिथिलेशजीमहाराज का अभिनन्दन तथा श्रीनिमिवंश-कुमारियोंका हार्दिक भाव निवेदन प्रसङ्ग है ॥३३॥

चौंतीसवें अध्यायमें प्रत्येक वर्गकी प्रत्येक जातियोंमें श्रीजनकराज-नन्दिनीजूके प्राकटयसे लेकर छट्ठी पर्यन्त उत्सव का वर्णन है ॥३४॥

चन्द्रकलादिकन्यानामवतारादिवर्णनम् । शरलोके भुवः पुत्री प्रसादैकजुषां शुभम् ॥३५॥
सर्वेश्वरीपदप्राप्तिः शङ्करेण प्रकीर्त्तिता । तथेशचन्द्रकलायाश्च रसलोकेऽखिलेशयोः ॥३६॥
मुनिलोके विदेहस्य नारदागमनं गृहे । तस्य श्रीमैथिलीपादपद्मचिह्नानुवर्णनम् ॥३७॥
वसुलोके तु मैथिल्याः पाणिचिह्नानुवर्णनम् । ब्रह्मपुत्रस्य मे नोक्तिर्मृषेति भाषणं पुनः ॥३८॥
तान्त्रिकस्यागतस्याथ ग्रहशङ्करलोचने । मैथिल्या व्याधिव्याजेन भावपूर्त्तिप्रदापनम् ॥३९॥
दृष्ट्वा सीतां नभोवेदे तिरोधानादिवर्णनम् । ध्यानस्थानां कुमाराणां ध्यायतो मिथिलेशितुः॥४०॥
नामकरणलीलाया विधुवेदेऽनुकीर्त्तनम् । जनकस्य सुतायाश्च राघवाणां प्रपश्यताम् ॥४१॥
आह्वानं दाशरथीनां मैथिलीजननीगृहे । उपाशनविधेश्चैव कथनं पक्षवर्गके ॥४२॥
कौतुकादिगृहं गत्वा तेषां कृत्वेप्सिताशनम् । गुणवेदे दिवास्वापसद्मप्राप्त्यनुवर्णनम् ॥४३॥
पुरस्थानानि विज्ञाप्य राज्ञी हेमगृहाद्गतः । नन्दयामास राजेन्द्रकुमारान्निगमश्रुतौ ॥४४॥

पैंतीसवें अध्यायमें भूमिसे प्रकट हुई श्रीमिथिलेशराजदुलारीकी मुख्य प्रसन्नता प्राप्त श्रीचन्द्रकलाजी तथा श्रीचारुशीलाजी आदि निमिवंश कुमारियोंके मङ्गलमय अवतारका वर्णन है॥३५॥

छत्तीसवें अध्यायमें भगवान् शिवजी द्वारा दोनों सर्वेश्वरी-सर्वेश्वर प्रभु श्रीसीतारामजी महाराजसे श्रीचन्द्रकलाजीके लिये सर्वेश्वरी पद प्राप्ति वरदानका वर्णन है ॥३६॥

सैंतीसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशजी महाराजके भवनमें श्रीनारदजीका आगमन तथा उनके द्वारा श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके श्रीचरणकमलके(अड़तालीस) चिह्नोंका वर्णन है ॥३७॥

अड़तीसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके हस्त-कमलोंके चौंसठ-चिह्नोंका वर्णन एवं "मेरा कथन झूठा नहींहो सकता मैं ब्रह्म-पुत्र है" श्रीनारदजीके इस सावेश कथनका वर्णन है॥३८॥

ऊनचालिसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराज-नन्दिनीजू द्वारा अपनी व्याधिके बहाने नगरमें आये हुये श्रीतान्त्रिक महाराजकी भावपूर्त्ति का वर्णन है ॥३९॥

चालीसवें अध्यायमें श्रीजनकराजदुलारीजीका दर्शन करके श्रीमिथिलेशजी महाराजके ध्यानस्थ होते ही श्रीसनकादिक चारों भाइयोंकी अन्तर्धान लीलाका वर्णन है ॥४०॥

एकतालिसवें अध्यायमें श्रीरामभद्रजी आदि चारों रघुवंशी राजकुमारोंके सामने श्रीजनकराजनन्दिनीजूकी नाम-करण लीलाका वर्णन है ॥४१॥

बयालिसवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूकी अम्बा श्रीसुनयनामहारानीजीके भवनमें चारों श्रीचक्रवर्तीकुमारोंका बुलावा तथा उनके कलेऊ पर्यन्तका वर्णन है ॥४२॥

तैंतालिसवें अध्यायमें कौतुक तथा भोजन गृह हो कर श्रीराजकुमारोंका दिनके शयन-भवनमें पदार्पण प्रसङ्गका वर्णन है ॥४३॥

चौवालिसवें अध्यायमें हाटक भवनकी छतसे अपने नगरके स्थानोंका परिचय कराके श्रीचक्रवर्तीकुमारोंको श्रीसुनयना महारानी द्वारा आनन्दित करनेका प्रसङ्ग वर्णित है॥४४॥

मङ्गलादिकसद्मानि नीत्वा वाणश्रुतौ मुदा । मण्डितानां कुमाराणां प्रेषणं राजसंसदि ॥४५॥
कारयित्वाऽशनं प्रेम्णा सुनयना रसश्रुतौ । अनयद्भोजनागारात्तान्दिवास्वापमन्दिरम् ॥४६॥
सर्वावरणधिष्ण्यानां मुनिवेदेऽभिशंसनम् । राघवेभ्यो महाराज्ञ्याः क्रमात्स्यामन्तकादृतः ॥४७॥
कृताशनैस्तदा पुत्रैः पङ्क्तियानस्य भूपतेः । वसुवेदे महाराज्ञ्यास्तैः समं स्वापवर्णनम् ॥४८॥
सकाशं पङ्क्तियानस्य श्रुत्वा नृपतिभाषितम् । प्रेषणं राजपुत्राणां राज्ञ्या ग्रहयुगेऽसुखम् ॥४९॥
व्योमवाणे महाधीरः सत्कृतान् विधि पूर्वकम् । श्रीकोशलेन्द्रप्रमुखान् नृपो गन्तुं समादिशत् ॥५०॥
दैवज्ञावेषमासाद्य धातुरिन्दुशरे शुभम् । आगमनं नृपागारे मैथिलीं द्रष्टुमिच्छतः ॥५१॥
विष्णोर्ब्राह्मणरूपेण जनकस्य निवेशने । दर्शनार्थं तु वैदेह्याः प्रवेशे नेत्रमार्गणे ॥५२॥
चन्द्रखेलोपकरणं दीयतां गुणजिह्मगे । इति सीताहठं दृष्ट्वा जनन्या युक्तिवर्णनम् ॥५३॥
निगमेषौ महाराज्ञीं वाक्यबद्धां तथागिरः । दृष्ट्वा विमूर्च्छितां तस्यै प्रदानं स्वस्यदर्शनम् ॥५४॥

पैंतालिसवें अध्यायमें मङ्गल आदिक भवनोंमें ले जाकर श्रीसुनयनाअम्बाजी द्वारा श्रृङ्गार विभूपित राजकुमारोंको राजसभा भवन भेजने का प्रसङ्ग वर्णित है ॥४५॥

छियालिसवें अध्यायमें प्रेम-पूर्वक भोजन कराके श्रीसुनयनाअम्बाजी द्वारा श्रीकोशलेन्द्रकुमारों को दिनके शयन-भवन ले जानेका प्रसङ्ग वर्णित है ॥४६॥

सैंतालिसवें अध्यायमें स्यमन्तक भवनकी छतसे श्रीसुनयनाअम्बाजीके द्वारा श्रीदशरथकुमारों के लिये अपने नगरके सातो आवरणों(घेरों)के सभी प्रमुख स्थानोंका क्रमशः वर्णन है ॥४७॥

अड़तालिसवें अध्यायमें श्रीदशरथराजकुमारोंके भोजन करलेने पर उनके सहित श्रीसुनयना अम्बाजीका शयन वर्णन है ॥४८॥

ऊनचासवें अध्यायमें श्रीमिमिलेशजीमहाराजके कथनको सुनकर श्रीसुनयना महारानीजी द्वारा दुःखपूर्वक चारों श्रीराजकुमारोंको श्रीचक्रवर्तीजीके पास भेजनेका प्रसङ्ग वर्णितहै ॥४९॥

पचासवें अध्यायमें महान् धैर्यशाली श्रीमिथिलेशजी महाराजके द्वारा विधिपूर्वक सत्कार करके श्रीदशरथजी महाराज आदि सभी आगन्तुक राजाओंकी विदाईका वर्णन है ॥५०॥

इक्यावनवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजूके दर्शनोंकी इच्छासे ज्योतिषिनीजीका रूप धारण करके श्रीजनकजी महाराजके भवनमें श्रीब्रह्माजीका आगमन वर्णित है ॥५१॥

बावनवें अध्यायमें श्रीविदेहराजनन्दिनीजूके दर्शनोंके लिये मिथिलेशजी महाराजके भवनमें ब्राह्मण रूपसे श्रीविष्णु भगवान्का प्रवेश वर्णित है ॥५२॥

तिरपनवें अध्यावमें श्रीजनकराजनन्दिनीजूके "मां मुझे चन्द्र खेलौना दे" इस हठको देखकर श्रीसुनयना अम्बाजीकी युक्तिका वर्णन है ॥५३॥

चौवनवें अध्यायमें वचन बद्धा श्रीसुनयना महारानीजीको मूर्च्छित देखकर श्रीसरस्वती महारानीजीको उन्हें दर्शन प्रदान करनेका प्रसङ्ग वर्णित है ॥५४॥

वेषेण स्वर्णकारिण्या शरेषौ शैलकन्यया । उपेत्यान्तःपुरं सर्वं भावसम्मोहितं कृतम् ॥५५॥
कपाटपिहितद्वारं प्रविश्य सुवृतालयम् । रसेषौ भावसम्पूर्त्तिः कृता तस्या महीभुवा ॥५६॥
दोलोत्सवस्य मैथिल्याः काञ्चने विपिने तथा । आत्मस्थितेस्तु रामेण वर्णितं मुनिमार्गणे ॥५७॥
श्रीप्रमोदवनस्योक्ता काञ्चनारण्यसङ्गतिः । वसुभूते तु रामस्य स्वप्नदर्शनसंस्मृतिः ॥५८॥
ग्रहषौं यद्द्विजोक्तं ते विद्धि सत्यं न चानृतम् । भावानुसारिणः शान्त्यै प्राहेत्याकाशगीस्तदा ॥५९॥
विवादविजयप्राप्तेर्गगनतौं प्रकीर्त्तनम् । चन्द्रभानुसुतायाश्च रामाद्भुवनसुन्दरात् ॥६०॥
निशेशतौं समाख्यातः सीतारामसमागमः । निमिवंशकुमारीणामपूर्वानन्ददायकः ॥६१॥
अभिनन्द्य मिथःप्राप्तदुर्लभेप्सितकामयोः । रासादिकविहाराणां नेत्रतौं चाभिशंसनम् ॥६२॥
दिव्यसुखप्रदानाय सखीभ्यः प्रेयसा सह । गुणतौं राजनन्दिन्या जलक्रीडादिवर्णनम् ॥६३॥
स्वप्नदर्शनसंसिद्धया समाश्वास्य विदेहजाम् । निगमतौं तु रामस्य सत्याप्रस्थानवर्णनम् ॥६४॥

पचपनवें अध्यायमें स्वर्णकारिणी वेषमें पधार कर अपने विलक्षण भाव द्वारा शैलकुमारी श्रीपार्वतीजीके पूरे अन्तःपुरको सम्यक् प्रकारसे मुग्ध कर लेनेके प्रसङ्गका वर्णन है ॥५५॥

छप्पनवें अध्यायमें भूमिसुता श्रीजनकनन्दिनीजूने श्रीसुवृता अम्बाजीके कपाट बन्द भवनमें पधारकर उनके भावको सम्यक् प्रकारसे पूर्ण करनेका प्रसङ्ग वर्णित है ॥५६॥

सत्तावनवें अध्यायमें प्रमोद वन सहित श्रीकञ्चन-वनमें पहुँचकर श्रीविदेहराजनन्दिनीजीका स्मरण करके श्रीरामभद्रजू द्वारा अपनी मानसिक स्थितिका वर्णन है ॥५७॥

अट्ठावनवें अध्यायमें श्रीप्रमोदवनका कञ्चनवनसे मिलन एवं श्रीरामभद्रजीके स्वप्न दर्शन स्मृतिका वर्णन है ॥५८॥ उनसठवें अध्यायमें भावानुसारी श्रीराघवेन्द्र प्यारेकी शान्तिके लिये आकाशवाणी द्वारा हे श्रीलालजी ! ब्राह्मणने जो भी आपसे कहा है, वह सत्य है, झूठा नहीं, इस प्रसङ्गका वर्णन है ॥५९॥ साठवें अध्यायमें पारस्पारिक विवादमें भुवन-सुन्दर श्रीरामभद्रजीसे श्रीचन्द्रकलाजीकी विजय प्राप्तिका वर्णन है ॥६०॥

एकसठवें अध्ययामें श्रीनिमिवंशकुमारियोंको अपूर्व आनन्द प्रदान करने वाले श्रीसीताराम-जीका मिलन प्रसङ्ग वर्णित है ॥६१॥

बासठवें अध्यायमें परस्पर अभिनन्दन करके भक्तोंके साथ दुर्लभ मनोरथ प्राप्त श्रीयुगल-सरकारजूकी क्रीड़ाका कथन है ॥६२॥

तिरसठवें अध्यायमें सखियोंको दिव्यधामका सुख प्रदान करनेके लिये प्यारेके सहित श्रीकिशोरीजीकी जल-क्रीड़ादिका वर्णन है ॥६३॥

चौंसठवें अध्यायमें स्वप्न दर्शनकी प्रत्यक्ष पूर्ण सिद्धि द्वारा श्रीविदेहराजनन्दिनीजीको आश्वासन प्रदान करके श्रीरामभद्रजीके श्रीअयोध्या प्रस्थानका वर्णन है ॥६४॥

सुतामालिभिरानीतां जनन्या परिरभ्य च । प्रेमाश्रुपूर्णनेत्राया शरतौ चाभिभाषणम् ॥६५॥
पुनर्निशाशनागारे रसतौ श्रीमहीभुवः । स्वसॄणां भावसम्पूर्त्तेविधिवैचित्र्यवर्णनम् ॥६६॥
मातुराज्ञानुसारिण्यै लेपयित्वा धनुर्धराम् । मुन्यृतौ भूमिकन्यायै क्रीडानुमतिशंसनम् ॥६७॥
दृङ्मीलनाभिधां लीलां कुर्वन्त्या वस्वृतौ शुभाम् । गुप्तप्रकटलीलायाः कथनं श्रीमहीभुवः ॥६८॥
सचन्द्रकलासंवादं स्वसृभ्यो मुक्तया गिरा । न त्यक्ष्यामीति जानक्या ग्रहतौ वोऽभिशंसनम् ॥६९॥
पुनरशनलीलायाः स्वसॄणां तोषवृद्धये । व्योमर्षौ नृपनन्दिन्याः कृतायाश्चारुवर्णनम् ॥७०॥
भक्त्या परिचरन्तीनां प्रदाय मङ्गलाशिषः । चन्द्रर्षौ मेदिनी पुत्र्यै स्वसॄणां भाववेदनम् ॥७१॥
धनुर्दर्शनसंक्षुब्धचेतसे नृपमौलये । आगताय महाराज्ञ्याः पक्षद्वीपेऽथ सान्त्वनम् ॥७२॥
गुणर्षौ मिथिलेन्द्रस्य निगद्य क्षोभकारम् । राज्यै मरकतागारगमनेच्छानिवेदनम् ॥७३॥
वेदर्षौ पृच्छते तस्मै चारुशीलानिवेदनम् । धनुरुत्थापितं तात ! मम स्वस्रैकयेति वै ॥७४॥

पैंसठवें अध्यायमें सखियों द्वारा लाई हुई श्रीललीजीको हृदयसे लगाकर उनके साथ प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रवाली श्रीसुनयना महारानीजीके वार्तालाप का वर्णन है ॥६५॥

छाछठवें अध्यायमें अपनी बहनोंका भावपूर्ण करनेके लिये ब्यारू कुञ्जमें भूमिनन्दिनी श्रीकिशोरीजीकी विचित्र विधिका वर्णन है ॥६६॥

सड़सठवें अध्यायमें आज्ञानुसार धनुष भूमिको लीप कर वापस आने पर भूमिकुमारी श्रीजनकराजदुलारीजीके लिये श्रीअम्बाजीकी खेलकी अनुमति प्रदानका वर्णन है ॥६७॥

अड़सठवें अध्यायमें आँख मिचौनी लीला करती हुई श्रीकिशोरीजीकी तिरोधान तथा आविर्भाव लीलाका वर्णन है ॥६८॥

उनहत्तरवें अध्यायमें श्रीचन्द्रकलाजीके संवाद सहित "मैं आप लोगोंको कभी नहीं छोड़ूंगी" अपनी इस स्पष्ट वाणी द्वारा सभी बहिनोंको श्रीजनकराजदुलारीजीका सान्त्वना प्रदान प्रसङ्ग वर्णित है ॥६९॥ सत्तरवें अध्यायमें बहिनोंके सन्तोष वृद्धिके लिये श्रीजनकराजनन्दिनीजूकी की हुई सुन्दर भोजन-लीलाका वर्णन है ॥७०॥

एकहत्तरवें अध्यायमें भूमि-पुत्री श्रीजनकराजदुलारीजीको मङ्गलमय आशीर्वाद प्रदान करके प्रेम-पूर्वक सेवा करती हुई बहिनोंका हृदय भाव निवेदन प्रसङ्गका वर्णन है॥७१॥

बहत्तरवें अध्यायमें धनुष दर्शनसे क्षुभित चित्त, भवनमें आयेहुए, नृपशिरोमणि श्रीमिथिलेशजी महाराजको देखकर, श्रीसुनयना महारानीजी द्वारा उन्हें सान्त्वना प्रदान करनेका प्रसङ्ग वर्णित है ॥७२॥तिहत्तरवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशजीमहाराजका श्रीमहारानीजीसे अपने क्षोभका कारण निवेदन करके उसकी निवृत्ति हेतु मरकत-भवन जानेकी इच्छा निवेदनका प्रसङ्ग वर्णितहै॥७३॥

चौहत्तरवें अध्यायमें पूछने पर श्रीमिथिलेशजी महाराजसे हे तात ! "धनुषको, हमारो श्रीदीदोजीने ही उठाया है" श्रीचारुशीलाजीके इस निवेदन प्रसङ्गका वर्णन है ॥७४॥

त्रोटयिष्यति यश्चापं जामाता मे स नापरः । इति राजप्रतिज्ञायाः शरर्षौ परिकीर्त्तनम् ॥७५॥
कमलायास्तटे रम्ये मैथिलीं द्रष्टुमिच्छताम् । सङ्गमो ब्रह्मपुत्राणां राज्ञा रसमुनौ स्मृतः ॥७६॥
मुक्तिमालोक्य गच्छन्तीं गच्छतां धामतत्परम् । लब्धसीताप्रसादानां द्वीपर्षौ च स्तवब्रजः ॥७७॥
वस्वृषौ गृहमागत्य सखीभिः सह भूभुवः । ततो मोदस्रवागारगमनस्यानुवर्णनम् ॥७८॥
सुचित्रागारगमनं ग्रहद्वीपे सहालिभिः । श्रीमज्जनकनन्दिन्यास्तस्याः संवादवर्णनम् ॥७९॥
चम्पकारण्यगमनं महीपुत्र्या वियद्वसौ । मुरल्याः सम्भवस्तत्र मुरलीसरसः स्मृतः ॥८०॥
विद्याध्ययनकथनं सुताया मिथिलेशितुः । भावपूर्त्तिर्महेन्द्राण्या वर्णिता मेदिनीवसौ ॥८१॥
सुशीलायाः पराभक्तेर्दृग्वसौ परिकीर्त्तनम् । लब्धदर्शनलाभायाः श्रीकृपाप्राप्तिवर्णनम् ॥८२॥
श्रीधरस्य स्वपुत्रीणां विवाहेच्छानिवेदितुम् । गुणसिद्धौ विदेहाय श्रुतशीलविसर्जनम् ॥८३॥

पचहत्तरवें अध्यायमें "भगवान् शिवजीके इस धनुषको जो तोड़ेगा वही मेरा जमाई होगा अर्थात् मेरी पुत्रीको वरण करेगा, दूसरा नहीं" श्रीमिथिलेशजीमहाराजकी इस प्रतिज्ञाका वर्णन है ७५

छिहत्तरवें अध्यायमें श्रीकमलानदीके तट पर श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके दर्शनोंके इच्छुक ब्रह्माजीके प्रधान-पुत्र सनकादिकोंका श्रीसुनयना महारानीसे भेंट का प्रसङ्ग वर्णित है ॥७६॥

सतहत्तरवें अध्यायमें श्रीमिथिलाधामकी उपासिका मुक्तिदेवीको धाममें जाती देखकर, वहाँसे आते हुये श्रीमिथिलेशनन्दिनीजूके परमकृपापात्र सनकादिकोंके स्तोत्र-समूहोंका वर्णन है ॥७७॥

अठहत्तरवें अध्यायमें अपने भवन पधार कर सखियोंके साथ भूमिनन्दिनी श्रीकिशोरीजीके मोदस्रवागार पदार्पण का वर्णन है ॥७८॥

उन्नासिवें अध्यायमें श्रीसुचित्राअम्वाजीके भवनमें सखियों सहित जनकनन्दिनी श्रीकिशोरीजीके पदार्पण प्रसङ्ग और उनके साथ श्रीअम्बाजीके संवादका वर्णन है ॥७९॥

अस्सीवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका श्रीचम्पकबनमें पधारना तथा वहाँ उनकी मुरलीसे मुरलीसरकी उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन है ॥८०॥

इक्क्यासिवें अध्यायमें श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका विद्याध्ययन तथा इन्द्राणीजीका राजभवनमें उनकी भाव पूर्त्तिका वर्णन है ॥८१॥

बयासिवें अध्यायमें श्रीसुशीलाजीकी पराभक्तिका तथा श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीके दर्शनोंकी प्राप्ति होने पर उन्हें श्रीकिशोरीजीकी विशेष कृपा-प्राप्तिका वर्णन है ॥८२॥

तिरासिवें अध्यायमें श्रीधरमहाराजका श्रीमिथिलेशजी महाराजसे अपनी पुत्रियोंके विवाहकी इच्छाका वर्णन पुनः अपनी पुरीमें पहुँचकर वहाँ से अपने कुलपुरोहित श्रीश्रुतिशीलजीको श्रीविदेहराजजीके पास भेजने का प्रसङ्ग वर्णित है ॥८३॥

धनुर्भङ्गेऽथ रामस्य वेदाङ्के शोभने गले। पश्यतां सर्वलोकानां स्रक्प्रदानं महीभुवः ॥९४॥
शराङ्के जामदग्न्यस्य संवादं लक्ष्मणेन च। वर्णयित्वा हि तद्रूपं नत्वा प्रस्थानवर्णनम् ॥९५॥
आगतिं पङ्क्तियानस्य मिथिलायां रसग्रहे। श्रीरामलक्ष्मणाभ्यां तत्सङ्गमः पुनरीरितः ॥९६॥
विवाहमण्डपे सीतारामयोः परिकीर्त्तितम् । मुन्यङ्के शुभागमनं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥९७॥
सीतारामशुभोद्वाहसुमहोत्सववर्णनम् । तथैव निमिवंश्यानां ताभ्यां वसुग्रहेऽर्पणम् ॥९८॥
ग्रहाङ्के कौतुकागारादानीतायै महीभुवे । कारयित्वाऽशनं मातुः स्वापच्छव्यवलोकनम् ॥९९॥
रामस्य कौतुकागारे स्वापो व्योमवियद्विधौ। भ्रातृभिः समुपेतस्य रक्षितस्यालिभिर्मुदा ॥१००॥
ह्लादयित्वा जनावासं भूव्योमेन्दौ सहानुजैः। कोशलेन्द्रकुमारस्यागमनं श्वसुरालये ॥१०१॥
पक्षव्योमावनौ चैव राज्ञो दशरथस्य वै। श्रीजनकालये प्रोक्तं ससमाजस्य भोजनम् ॥१०२॥
गुणव्योमक्षितौ प्रोक्तः प्रीतिभोजमहोत्सवः। सिद्ध्यालये वराणां तु दिवाविश्रामवर्णनम् ॥१०३॥

चौरान्नवे अध्यायमें धनुष टूटनेपर समस्त लोगोंके अवलोकन करतेहुये श्रीरामभद्रजूके मनोहर गलेमें भूमिसुता श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीके जयमाल-दान प्रसङ्गका वर्णन है ॥९४॥

पञ्चान्नवे अध्यायमें श्रीलखनलालजीके साथ श्रीपरशुरामजीका संवाद वर्णन करके श्रीराम-भद्रजीको नमस्कार करके उनके प्रस्थानका वर्णन है ॥९५॥

छान्नवे अध्यायमें श्रीदशरथजी महाराजका श्रीमिथिलाजीमें आगमन व उनका श्रीरामभद्रजू तथा श्रीलखनलालजीसे मिलन प्रसङ्गका वर्णन है ॥९६॥

सत्तान्नवे अध्यायमें स्वस्तिवाचन-पूर्वक विवाह-मण्डपमें श्रीसीतारामजी महाराजके शुभा-गमन प्रसङ्गका वर्णन है ॥९७॥

अट्ठान्नवे अध्यायमें श्रीसीतारामजी महाराजके मङ्गलमय विवाहके सुन्दर उत्सवका वर्णन पूर्वक दोनों सरकारके लिये निमिवंश-कुमारियोंका समर्पण प्रसङ्ग वर्णित है ॥९८॥

निन्न्यानबे अध्यायमें कोहवर भवनसे बुलाई हुई, भूमिसे प्रकट श्रीललीजीको भोजन कराके श्रीसुनयना महारानीजीका उनके शयनकी छबि, अवलोकनका वर्णन है ॥९९॥

सौवें अध्यायमें सहस्रों सखियोंसे सुरक्षित अपने श्रीलखनलालजी आदि भाइयों सहित श्रीरामभद्रजीका कोहबर भवनका शयन वर्णित है ॥१००॥

एकसौएकवें अध्यायमें जनवासे को आह्लादित करके अनुजों सहित कोशलेन्द्रकुमार श्रीराम दूलह सरकारके श्वसुरालय आगमनके प्रसङ्गका वर्णन है ॥१०१॥

एकसौदोवें अध्यायमें श्रीजनकजी महाराजके भवन में समाज-सहित श्रीदशरथजी महाराजके भोजन प्रसङ्ग का वर्णन है ॥१०२॥

एकसौतीनवें अध्यायमें वैवाहिक प्रीतिभोज महोत्सव तथा श्रीसिद्धिजीके भवनमें चारो वरों के माध्याह्निक विश्रामका वर्णन है ॥१०३॥

आकुशध्वजसर्वेभ्यो दिव्यमुद्दानपूर्वकम् । रामस्य श्रुतिखेन्दौ च कात्यायिन्याः स्थितिवर्णनम् ॥१०४॥
मैथिलीनां सकान्तानां शरव्योमभुवीरितः । गृहप्रवेशोऽयोध्यायामाशातीतसुखप्रदः ॥१०५॥
कदम्बविपिने सीतारामयो रसखावनौ । आज्ञया यक्षकन्याभिर्विश्वनाटचप्रदर्शनम् ॥१०६॥
हरेर्लीलां समालोक्य मुनिव्योमक्षितौ पुरः । धृतरामावतारस्य तयोः सख्यः सुविस्मिताः ॥१०७॥
वसुव्योमावनौ सूची संक्षिप्तविषयान्विता । अध्यायानां हि सर्वेषां ग्रन्थस्यास्य प्रवर्णिता ॥१०८॥
संहितेयं महापुण्या सीताबालयशोऽन्विता । कल्मषघ्नी सुपठतां पराभक्ति-प्रदायिनी ॥१०९॥
य इमां मानवा लोके पुण्यपुञ्जा हताशुभाः । अध्येष्यन्ते प्रयास्यन्ति स्वाभीष्टं नात्र संशयः ॥११०॥
ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य तेजसो यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव निधानं भूमिजाऽवतु ॥१११॥
जननी सर्वलोकानामद्वितीयदयाम्बुधिः । सा हि सद्बुद्धिदा सर्वप्राणिनामस्तु जानकी ॥११२॥

एकसौचारवें अध्यायमें श्रीराम वर सरकारकी दिव्यानन्द प्रदान लीला पूर्वक श्रीकुशध्वज महाराजसे लेकर सभी प्रेमियोंके लिए श्रीकात्यायिनीजीकी प्रेमसमाधिस्थ स्थितिका वर्णन है।१०४।

एकसौपाँचवें अध्यायमें पतिदेवोंके सहित श्रीअयोध्याजी पहुँच कर अपने श्वशुरके गृहमें श्रीमिथिलेशराजकुमारियोंके आशातीत सुखप्रद प्रवेश का वर्णन है ॥१०५॥

एकसौ छःवें अध्यायमें कदम्बवनमें श्रीसीतारामजी महाराजकी आज्ञासे यक्षकुमारियोंके विश्वनाटच लीला प्रदर्शन का प्रसङ्ग वर्णित है ॥१०६॥

एकसौसातवें अध्यायमें श्रीयुगलसरकारके सामने श्रीरामावतारधारी श्रीविष्णुभगवान्‌की अभिनय रूपमें लीलाओंका दर्शन करके सखियोंके विस्मित होनेका प्रसङ्ग वर्णित है ॥१०७॥

एकसौआठवें अध्यायमें ग्रन्थके सभी अध्यायओंकी संक्षिप्त विषय-सूचीका वर्णन है ॥१०८॥

श्रीजनकराजदुलारीजीके बाल चरितोंसे युक्त यह संहिता अत्यन्त पवित्र, पाठकोंके सम्पूर्ण पापोंका नाश तथा प्रेमा भक्तिको प्रदान करने वाली है ॥१०९॥

लोकमें इस संहिताका जो पुण्य शाली पाठ करेंगे, वे निःसन्देह अपने मनोरथोंकी सिद्धिको प्राप्त होंगे और उनके सभी अमङ्गल नष्ट हो जावेंगे ॥११०॥

जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण तेज, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्णज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्यकी भण्डार हैं, भूमिसे प्रकट हुई वे श्रीमिथिलेशराजदुलारीजी, सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करें ॥१११॥

वही अनुपम दया-सागरा जगज्जननी श्रीजनकराजदुलारीजी समस्त प्राणियोंको सद् (भगवत् सम्बन्धी) बुद्धि प्रदान करनेकी कृपा करें ॥११२॥

स्वयं या ऽऽविर्भूता जनकमखभूमौ मृदुतनुः सखीवृन्दैः साकं कनकमणिसिंहासनगता।
निमेः श्लाघ्ये वंशे निरतिशयमाधुर्य्यजलधिर्भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११३॥
सुताभावं गत्वा जनकनृपतेर्विश्वजननी शिशुक्रीडा सर्वा निरवधिमनोज्ञाः प्रकुरुते।
चिदानन्दाकारा बिधिहरिहरैर्जुष्टचरणा भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११४॥
जगन्त्यादि यस्या भृकुटिगतिमात्रेण नितरां स्थितिं चान्तं यान्ति प्रथितविभवा या धरणिजा।
सखीभिः क्रीडन्ती हरति मुनिचेतांस्यपि दृशा भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११५॥
किशोरी हेमाङ्गी कुवलयदृशा चन्द्रवदना सुकेशी विम्बोष्ठी जितमदनजायाधिकरुचिः।
दयापारावारा ह्यभयदकरा क्षान्तिनिलया भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११६॥

जिनका माधुर्य गुण समुद्रके समान असीम (अथाह) व श्रीविग्रह अत्यन्त कोमल है, जो सखी वृन्दोंके सहित, निमि महाराजके प्रशंसनीय वंशमें श्रीजनकजी महाराजकी यज्ञ भूमिसे सुवर्ण मणिके सिंहासन पर विराजमान होकर अपनी स्वयं भक्त-भाव पूरण शीला निर्हेतुकी कृपा घश प्रकट हुई हैं, रघुकुल नायक श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीजनकराजदुलारीजीका हम सभी चेतन वृन्द सदा भजन करते हैं ॥११३॥

जिनके श्रीचरण-कमल ब्रह्मा, विष्णु, महेशादिसे सेवित हैं, चैतन्य व आनन्दमय जिनका श्रीविग्रह है तथा जो समस्त विश्वकी जननी(मां)होकर भी श्रीजनकजी महाराजके पुत्री भावको स्वीकार करके मनोहारिणी सभी प्रकारकी अनन्त शिशु लीलाएँ कर रही हैं, रघुकुलनायक श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका हम सभी प्राणी वृन्द सतत भजन करते हैं ॥११४॥

जिनके भृकुटि हिलाने मात्रसे ही सभी ब्रह्माण्ड उत्पत्ति, स्थिति, तथा संहारको प्राप्त हो जाते हैं, जिनकी महिमा जगत्-रूपमें विख्यात है, जो पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं और सखियोंके साथ खेलती हुई अपनी दृष्टि मात्रसे मुनियोंके चित्तको हरण कर लेती हैं, समस्त जीवोंके नियामक (स्वामी) श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका हम सभी चेतन जन भजन करते हैं ॥११५॥

जिनकी १२ वर्ष आयुके अनुरूप अवस्था है, सुवर्णके समान जिनका गौरवर्ण है, कमलके समान नेत्र हैं पूर्ण चन्द्रमाके समान जिनका परम आह्लादकारक श्रीमुखारविन्द है, सुन्दर घुंघुराले केश तथा विम्बाफलके सदृश लाल ओष्ठ हैं, अनन्त रतियोंको जीतने वाली जिनकी कान्ति है, समुद्रके समान जिनकी अथाह, व महान् दया है जिनके करकमल प्राणिमात्रको अभय प्रदान करने वाले हैं, जो सहनशीलताकी भण्डार ही हैं, रघुकुलके स्वामी श्रीरामभद्रजूके समेत उन श्रीजनकराजदुलारीजूका हम सभी आश्रित जन सदा भजन करते हैं ॥११६॥

रमोमासावित्री–प्रभृतिपरमाशक्तिनिकरा यदीयांशाः प्रोक्तास्त्रिगुणनिधयोऽपारगतिकाः ।
सदाराध्याऽजस्रं प्रणतजनकल्याणवरदा भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११७॥
मुमुक्षूणां यस्या युगलचरणाम्भोरुहमृते गतिर्नान्या दृष्टा श्रुतिषु मुनिभिः काऽपि सुखदा ।
महालावण्याब्धिर्विमलहृदया सच्छरणदा भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११८॥
कृपाशीलक्षान्तिप्रणयसुषमैश्वर्यजलधिर्वधार्हेष्वप्यात्ताभयदमृदुभावा स्मितमुखी ।
श्रियः श्रीः साकेतप्रभुहृदयपाथोजनिलया भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥११९॥
निराधाराधाराऽऽदृतसपदिवध्याधमशठा मनोहारीन्द्वास्याऽऽभरणपटरोचिष्णुसुतनुः ।
मनोज्ञा भावज्ञा प्रणतिपरितुष्टार्द्रहृदया भजामस्तां सीतां रघुपतिपरीतामविरतम् ॥१२०॥

सत्व, रज, तम तीनों गुणोंकी भण्डार-स्वरूपा, अपार महिमा वाली उमा, रमा, सावित्री आदि सर्वोत्कृष्ट शक्तियाँ जिनकी अंश कही जाती हैं तथा जो सन्तोंके द्वारा सदा ही उपासना करने योग्य आश्रित जनोंको कल्याण-कारक वरदान देनेवाली हैं, रघुकुलके स्वामी श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजीका हम प्राणीजन सदा भजन करते हैं ॥११७॥

जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पानेके इच्छुक प्राणियोंके लिये मुनियोंको वेदोंमें जिनके श्रीचरणकमलको छोड़कर और कोई सुखद उपाय ही नहीं दीखता, जो सर्वोत्कृष्ट सुन्दरताकी समुद्र, विमल (मायिक विकारोंसे रहित) भगवान् श्रीरामजीको ही अपने हृदयमें विराजमान रखने वाली तथा अपने आश्रितोंको सदा एकरस रहनेवाले अपने दिव्यधामको प्रदान करनेवाली हैं, रघुकुलके स्वामी श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीमिथिलेशराजदुलारीजूका हम सभी दीन जन आश्रित प्राणी सतत भजन करते हैं ॥११८॥

जिनकी कृपा, शील, क्षमा, प्रेम, अनुपम सुन्दरता व ऐश्वर्य सब समुद्रके समान अथाह है तथा जो बध योग्य प्राणियोंके प्रति भी अभयदायक कोमलताका भाव चाहती हैं, जिनका श्रीमुखारविन्द मुस्कानसे युक्त हैं जो शोभाकी शोभा और श्रीसाकेताधीश प्रभुके हृदयकमलमें निवास करने वाली हैं, रघुकुल पति श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीजनकराजदुलारीजीका हम सभी अबोध जीव निरन्तर भजन करते हैं ॥११९॥

अवलम्ब रहित प्राणियोंकी परम आधार-स्वरूपा, तुरन्त बधकर देने योग्य अधम शठ जीवों का भी आदर करनेवाली, चन्द्रमाके समान परम प्रकाशमान मनोहर मुखवाली, भूषण-वस्त्रोंसे चमकता हुआ अर्थात् देदीप्यमान जिनका शरीरहै, अपने नाम, रूपलीला, धामसे जो मनको हरण करने वाली हैं तथा मन, बुद्धि, चित्तमें विराजमान होनेके कारण जो सभी प्राणियोंके सभी भावोंको भली प्रकारसे जानती हैं। जिनका सरसहृदय प्रणाममात्रसे ही प्रसन्नताको प्राप्त हो जाता है, समस्त जीवोंके कुलका पालन करने वाले श्रीरामभद्रजूके सहित उन श्रीजनकराज-दुलारीजीका हम सभी साधन हीन प्राणी सदा भजन करते हैं ॥१२०॥

सीता मे शरणं विदेहतनया सीतां भजे सप्रियां
संरक्ष्योऽस्मि च सीतया जगति सीतायै नमः सर्वदा ।
सीताया ननु का परा श्रुतिषु सीतायाः प्रपन्नोऽस्म्यहं
सीतायां रतिरस्तु मे शुभतरा सीते ! प्रसन्ना भव ॥१२१॥

चित्तेन्द्रियं मे च विधाय तस्मिन्स्वचिन्तनस्यापि ददौ सुशक्तिम् ।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां दुश्चिन्तितं सा च तया क्षमेत ॥१२२॥

कृत्वेन्द्रियं मानसमेव तस्मिन्छक्तिं ददौ सन्मननस्य या वै ।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां क्षमेत सा दुर्मननं तया मे ॥१२३॥

बुद्धीन्द्रियं मे च विधाय तस्मिन्निश्चेतुमर्हां प्रददौ सुशक्तिम् ।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां दुर्निश्चितं सा च तया क्षमेत ॥१२४॥

विदेहराजकुमारी श्रीसीताजी ही हमारी सब प्रकारसे रक्षा करने वाली हैं, प्यारे श्रीरामभद्रजूके सहित मैं उन्हीं श्रीसीताजीका भजन करता हूँ, वही श्रीजनकराजदुलारीजी मेरी रक्षा भी कर सकती हैं अतः उन श्रीसीताजीके लिये जगत्में मेरा सदाही नमस्कार है, वेदोंमें श्रीसीताजी से बढ़कर भला है ही कौन ? अतः मैं उन्हीं श्रीसीताजीकी शरणागत हूँ, मेरी परम पवित्र प्रीति उन्हीं श्रीकिशोरीजीमें हो, हे श्रीकिशोरीजी ! आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥१२१॥

जिन्होंने मेरी चित्त इन्द्रियको बनाकर उसमें अपने स्वरूप चिन्तनकी वह महती शक्ति प्रदान की, जो मनुष्योंको छोड़कर और किसीको भी सुलभ नहीं है उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके विपरीत जो मैंने अहितकर खोटी २ बातोंका चिन्तन किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२२॥

जिन्होंने मेरी मन इन्द्रियको बनाकर मेरे कल्याणार्थ उसमें सत् (त्रिकालावधि सदा एकरस रहने वाले भगवान्) का मनन करने की शक्ति प्रदानकी, जो मनुष्यको छोड़कर अन्य किसीको भी प्राप्त होने योग्य नहीं, उस महान् शक्तिके द्वारा जो मैंने अहितकर वस्तुओंका मनन किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२३॥

जिन्होंने मेरी 'बुद्धि' इन्द्रियको बनाकर हमारे कल्याणके लिये उसमें "हितकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य"का निश्चय करनेकी सुन्दर शक्ति प्रदानकी, जो मनुष्योंके अतिरिक्त और किसी प्राणधारी के लिये सुलभ ही नहीं, उस शक्तिके द्वारा उनके सुमिरण-भजन तथा उनके प्यारे भक्तोंकी सेवा आदिसे भगवदानन्द प्राप्तिका निश्चय छोड़कर उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने अहितकर विषयानन्द प्राप्तिका निश्चय किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२४॥

या ऽहङ्कृतिप्रख्यमथेन्द्रियं मे कृत्वाभ्यदादुन्नतये सुशक्तिम् ।
मर्त्येतरप्राणभृतां दुरापां सा क्षन्तुमर्हा दुरहङ्कृतिं मे ॥१२५॥
नेत्रेन्द्रियं मे च विधाय तस्मिञ्छक्तिं ददौ या च विलोकनस्य ।
विशेषतोऽनुग्रहभाजनानां दुष्प्रेक्षितं सा च तया क्षमेत ॥१२६॥
कर्णेन्द्रियं मे च विधाय तस्मिञ्छक्तिं ददौ या श्रवणाय कीर्त्तेः ।
विशेषतः प्राणपरप्रियाणां सा दुःश्रुतं मे च तया क्षमेत ॥१२७॥
घ्राणेन्द्रियं मे कृपया विधाय तस्मिन् समाघ्रातुमदात्सुशक्तिम् ।
हितं समाघ्रातुमपीह या वै तया दुराघ्रातमसौ क्षमेत ॥१२८॥

जिन्होंने मेरी अहङ्कार इन्द्रियको बनाकर, उसमें उन्नतिके लिये अपने वास्तविक "स्वरूपसे मैं ब्रह्म हूँ अथवा मैं उन सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ, सर्वव्यापक प्रभुका सेवक या अंश हूँ प्रभु मेरे हैं" इस प्रकारका हितकर शुद्ध अहङ्कार करनेकी सुन्दर शक्ति प्रदानकी, जो मनुष्योंको छोड़कर और किसीको प्राप्त नहीं हो सकती, उस शक्तिके द्वारा, उनकी इच्छाके विपरीत अपना या किसीका भी अहित करनेवाला "मैं अमुक हूँ मेरा यह ऐश्वर्य है, मेरे ये कुटुम्बी हैं, ये मेरे सहायक हैं इत्यादि" जो मैंने मिथ्या सीमित अहङ्कार किया हो, मेरे उस महान् अपराध को वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२५॥

जिन्होंने मेरे कल्याणार्थनेत्र इन्द्रियको बनाकर, उसमें विशेष करके अपने कृपापात्रोंके दर्शन करनेकी शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने किसीके प्रति बुरी (अहितकर) दृष्टिकी हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२६॥

जिन्होंने मेरी श्रवण इन्द्रियको बनाकर उसमें विशेष करके अपने प्राणप्रिय सन्त-भक्तोंकी कीर्त्तिको श्रवण करनेकी सुन्दर शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा जो मैंने उनकी इच्छाके विपरीत अहितकर शब्दोंको श्रवण किया हो, उस मेरे महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२७॥

जिन्होंने मेरी नासिका इन्द्रियको बनाकर, उसमें हितकर वस्तुओंको सूंघनेके लिये शक्ति प्रदान की, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने दुःखप्रद (अहितकर) पदार्थोंको सूंघा हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२८॥

विरच्य या मे रसनेन्द्रियं वै तस्मिन्समास्वादनशक्तिमादात् ।
हितं समास्वादयितुं कृपातो दुःस्वादितं मे च तया क्षमेत ॥१२६॥

त्वगिन्द्रियं मे च विधाय तस्मिन् सत्स्पर्ष्टुमर्हां प्रदिदेश शक्तिम् ।
हिताय याऽपारदयासमुद्रा तयाऽहितस्पृष्टमसौ क्षमेत ॥१३०॥

वागिन्द्रियं चैव विधाय तस्मिन्नुच्चारणार्हां प्रददौ सुशक्तिम् ।
हिताय भक्ताचरितस्य मुख्यतस्तथा दुरुच्चारितमाक्षमेत ॥१३१॥

हस्तेन्द्रियं मे च विरच्य तस्मिन् हिताय कर्मार्हसुशक्तिमादात् ! ।
प्राधान्यतो भागवतान् हि सेवितुं तयाऽहितं मे विहितं क्षमेत ॥१३२॥

पादेन्द्रियं या च विरच्य तस्मिन्-हिताय गन्तुं प्रदिदेश शक्तिम् ।
विशेषतः सन्मनसां दिदृक्षया तया तु सा दुश्चलितं क्षमेत ॥१३३॥

जिन्होंने मेरी जिह्वा-इन्द्रियको बनाकर, उसमें हितकर पदार्थोंका आस्वादन करनेके लिये शक्ति प्रदानकी, उनकी इच्छाके विरुद्ध उस शक्तिके द्वारा जो मैंने दुःखप्रद वस्तुओंका स्वादु लिया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१२६॥

जिन्होंने मेरी त्वचा (खाल) इन्द्रियको बनाकर उसमें सन्तोंका हितकर स्पर्श करने की शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने किसीका भी अहितकर स्पर्श किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३०॥

जिन्होंने वाणी इन्द्रियको बनाकर मेरे कल्याणकी सुविधाके लिये उसमें विशेषकर अपने भक्तों के चरित कथन करने योग्य शक्ति प्रदानकी, उस शक्ति के द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने किसीके भी प्रति अहितकर शब्दोंका उच्चारण किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३१॥

जिन्होंने मेरे कल्याणके लिये हस्तेन्द्रिय (हाथ) बनाकर उसमें हितकर कर्म मुख्यतया अपने भक्तोंकी सेवा करनेकी शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके प्रतिकूल जो मैंने किसीका भी अहित कर कर्म किया हो, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३२॥

जिन्होंने मेरे चरण (पाँव) इन्द्रियको बनाकर, मेरे हित साधनके लिये उसमें विशेष करके उन सन्त-भक्तोंके दर्शनार्थ चलनेकी शक्ति प्रदानकी, जिनके हृदयमें एक सत् स्वरूप भगवान् ही सदैव विहार करते हैं, उनकी उस इच्छाके विपरीत जो मैं बुरे कर्मोंके लिये चला होऊँ, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३३॥

गुदेन्द्रियं मे च विरच्य तस्मिन् ददौ मलोत्सर्जनचारुशक्तिम् ।
स्वास्थ्याय या लोकहितप्रसाधितुं तया तु सा दुर्विहितं क्षमेत ॥१३४॥
कृत्वा ह्युपस्थेन्द्रिमेव तस्मिञ्छक्तिं ददौ मूत्रविसर्जनार्हाम् ।
स्वास्थ्याय याऽशेषहितप्रसाधितुं तया तु सा दुश्चरितं क्षमेत ॥१३५॥
सर्वे भवन्तु सुखिनो विगतामयाश्च पश्यन्त्वशेषसुहृदः किल मङ्गलानि ।
मा कश्चिदस्त्वसुखभाक्तव सन्तु भक्ताः सर्वेऽस्तु नेतृनिकरो हितकृन्महात्मा ॥१३६॥
चेतश्चिन्तयताद्धि सच्चमननं नित्यं विदध्यान्मनो
भूयाद्गोनिकरः सदा हितकरो धीः सद्विचारान्विता ।
अस्माकं कमलार्च्चिते ! प्रतिदिनं रामप्रिये ! याचतां
सर्वासम्भवसम्भवाय कुशले ! लीलाजगन्मोहिनि ! ॥१३७॥
लोकाः श्रयध्वं हितमात्मनश्चे दिष्टं मनोज्ञं चरणारविन्दम् ।
रामप्रियाया जगतां सुशक्तेः सञ्चारिकायाः सकलेन्द्रियेषु ॥१३८॥

जिन्होंने मेरी 'गुदा' इन्द्रियको बनाकर उसमें लोक हितकर साधन करनेके लिये स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त मल विसर्जन करनेकी उत्तम शक्ति प्रदानकी है उस शक्तिके द्वारा मैंने जो कुत्सित व्यवहार किये हों, मेरे उस महान् अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें।१३४।

जिन्होंने मेरी उपस्थ(मूत्रेन्द्रिय)को बनाकर सम्पूर्ण हितसाधन करनेके लिये उसमें स्वास्थ्य-रक्षार्थ मूत्र त्यागनेकी शक्ति प्रदानकी, उस शक्तिके द्वारा उनकी इच्छाके विपरीत जो मैंने दुराचरण किये हों, मेरे उस अपराधको वे दयामयी श्रीकिशोरीजी कृपया क्षमा करें ॥१३५॥

हे श्रीकिशोरीजी ! सभी प्राणी सबके सुहृद अर्थात् हितचिन्तक मित्र बनें, सभी सब प्रकार से शारीरिक तथा मानसिक रोगोंसे रहित हो, सदाके लिये पूर्ण सुखी हो जाँय, सभी सर्वदा सर्वत्र मङ्गल ही मङ्गल अवलोकन करें, सभी भक्त अर्थात् आपके प्रति अटूट श्रद्धा-विश्वासपूर्ण अनन्य प्रेम रखने वाले बनें तथा सभी नेतागण अपनी बुद्धिमें भगवानकी प्रधानता मानने वाले जनताकी वास्तविक हित (भगवत्प्राप्ति) कराने वाले बनें ॥१३६॥

हे श्रीरामवल्लभाजू ! आप सभी असम्भवको सम्भव करनेमें अत्यन्त चतुरा तथा अपने विश्वरूपी लीलासे समस्त चर-अचर प्राणियोंको मुग्ध करने वाली श्रीकमलाजीसे पूजित हैं, हम याचकों (भिखारियों) का चित्त सदा (आपके सत् एक रस रहने वाले) स्वरूपका ही चिन्तनकरे और उसीका मन मनन करे, हमारी बुद्धि आपके उसी सत् स्वरूप नाम, रूप लीला धाम आदिके विषयमें ही सदा विचार करने वाली बने, हमारी सभी इन्द्रियाँ सदा वास्तविक हित् अर्थात् भगवत्प्राप्ति कराने वाली बनें ॥१३७॥ हे प्राणियो ! यदि आप लोग अपना वास्तविक हित (भगवत्प्राप्ति) चाहते हों, तो समस्त चर-अचर प्राणियोंकी सम्पूर्ण इन्द्रियों में शक्तिसञ्चार करने वाली श्रीरामवल्लभाजूके मनोहर श्रीचरणकमलोंकी सेवा करें ॥१३८॥

विश्वस्य सेवा हितकारिकैका तुष्टिप्रदा तज्जगतां जनन्याः ।
तदानुकूल्याच्च परं न जन्तोर्हितं हि वैमुख्यपरा न हानिः ॥१३९॥
इदं विदित्वा क्षणभङ्गुरं तन्नृदेहमुत्सृष्टसमस्ततर्काः ! ।
शक्त्या स्वबुद्धयाऽसुभृतो हि तस्यां नियोजयन्तो हितमारभध्वम् ॥१४०॥

एषा बुद्धिमतां मतिर्भगवतः सिद्धान्ततो विश्रुतम् शूराणां खलु शौर्य्यमेतदतुलं सत्यं पदं चामृतम् ।
देहेन क्षणभङ्गुरेण तदियात्सत्येतरेणैव य न्नोचेच्छूकरगर्दभोपमधियां धिग्धिङ्मृषा जीवितम् ॥१४१॥
भक्तानां हृदयेप्सितार्थफलदा संश्रृण्वतां गायतां सर्वस्वं जनकात्मजापदजुषामाकर्णिताऽऽपृच्छ्य च ।
श्रीरामेण मुदा विदेहतनयासद्बाललीलान्विता रामानुग्रहकारिणी सुपठतां भूयादियं संहिता ॥१४२॥

विश्वकी हितकर-सेवा ही उन जगज्जननीजूकी सबसे बढ़कर प्रसन्नता कराने वाली, है, उनके अनुकूल (कृपापात्र) बन जानेसे बढ़कर जीवका और कुछ हित नहीं और उनसे विमुख होनेके समान उसकी और कोई हानि भी नहीं है ॥१३९॥ हे प्राणियों ! इसलिये इस मनुष्य देहको क्षणमात्रमें नष्टहो जानेवाला जानकर, समस्त कुतर्कोको छोड़करके अपनी शक्ति व बुद्धिके द्वारा प्राणियोंको किसी प्रकार उन सर्वेश्वरी, अनन्त ब्रह्माण्ड नायिका, जगज्जननी, श्रीमिलिलेश-राजदुलारीजूमें, लगाते हुये अपने तथा अन्य प्राणियोंके वास्तविक हित साधक बने ॥१४०॥

जीवोंकी गति-अगतिका उपाय जाननेवाले सम्पूर्ण ज्ञानके भण्डारस्वरूप श्रीभगवान्के सिद्धान्त से बुद्धिमानोंकी उसी बुद्धि और शूरोंकी उसी अनुपम विख्यात शूरताकी प्रशंसा है, जो असत्य (परिवर्तन शील) क्षणमात्रमें नष्ट हो जानेवाले इस मनुष्य शरीरके द्वारा उन श्रीमिथिलेशराज-दुलारीजीके सदा एक रस रहनेवाले, अविनाशी पद श्रीसाकेतधामको प्राप्तकर लें, अन्यथा शूकर (के समान केवल तुच्छ विषय सुखमें ही आसक्त)और गदहेके समान(अपनी योग्यता रूपी भारका समुचित लाभ न ले सकने योग्य बुद्धि वालोंके इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है, धिक्कार है॥१४१॥

श्रीजनकराजदुलारीजूके श्रीचरणकमलोंके सेवकोंकेलिये जो सर्वसम्पत्ति स्वरूपा श्रीकिशोरीजीकी सत् अर्थात् अप्राकृत बाललीलाओंसे युक्त है, जिसे श्रीरामभद्रजूने स्वयं स्नेहपराजीसे पूछकर बड़े हर्ष पूर्वक श्रवण किया है, वही यह संहिता (निर्मिति) श्रवण, गान तथा पाठ करनेवाले भक्तोंके हृदयकी अभिलाषा पूर्त्ति पूर्वक भगवान् श्रीरामभद्रजूकी कृपा कराने वाली बनें ॥१४२॥

इत्यष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

इति मासपारायणे त्रिंशतितमो विश्रामः ॥३०॥

इति-नवाह्नपारायणे नवमो विश्रामः ॥९॥

—❀❀❀—

श्रीकिशोरीजीकी जय ॥

(३) तृतीय गुरु श्रीरामदासजी महाराज हैं। आपका निवासस्थान विहारकुण्ड श्रीजनकपुरधाम है। आपने श्रीलताजीमहाराजको श्रीयुगलसरकार की अष्टयाम सेवाविधि का मार्गदर्शन दिया।

आपकी लौकिक शिक्षा अत्यल्प है, किन्तु श्रीकिशोरीजी की अलौकिक लीलालेखन हेतु उन्हीं की अहैतुकी कृपा से आपके अन्दर देववाणी संस्कृत का प्रकाश हुआ। आपने विश्व-संस्कृत-साहित्य के मूर्द्धाभिषिक्त 'श्रीजानकीचरितामृतम्' नामक अद्वितीय ग्रन्थ की रचना की है। इसमें लगभग ६५०० श्लोक हैं। इस ग्रन्थ श्री का वर्ण्य-विषय श्रीयुगलसरकार की पूर्णतः अन्तरङ्ग दिव्यलीलानुभूतियों पर आवृत है, जिन्हें पढ़-सुनकर संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों की मेधा थकित रह जाती है।

एतद्व्यतिरिक्त श्रीमहाराजजी ने कतिपय अन्य रचनाएँ भी की हैं। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—

श्रीकिशोरी सुमङ्गलम्, श्रीसीतारामकृपाकटाक्षस्तोत्र, श्रीकिशोरीजी की अद्भुत लीला, श्री सद्गुरुमङ्गलस्तोत्र इत्यादि।

— कु० गीता शर्मा